

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

संपादक

डॉ. अश्विनी महाजन

रीडर, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

वर्ष : 11 अंक : 4 □ जुलाई-अगस्त, 2019

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

प्रो. लॉरेंस ओएडिजी

वेगेनिंग विश्वविद्यालय, नीदरलैंड

डॉ. मार्टिन ग्रिन्डले

नॉटिंगम विश्वविद्यालय, लंदन

डॉ. अरुण अग्रवाल

ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबोरो, ओन्टारियो

डॉ. दया शंकर तिवारी

राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी

काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. सुरज नन्दन प्रसाद

मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

डॉ. प्रकाश सिन्हा

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. दीपक त्यागी

दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ. सी.पी. शर्मा

विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग

डॉ. अरुण कुमार

रांची विश्वविद्यालय, रांची

डॉ. महेश कुमार सिंह

सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका

डॉ. पूनम सिंह

बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ. एस. के. सिंह

पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. अनिल कुमार सिंह

जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा

डॉ. मिथिलेश्वर

वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

संपादकीय सम्पर्क:

448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-110091

फोन : 011-22753916, 40564514, 35522994 Mobile: 9710050610, 9810050610

e-mail : editorialindia@yahoo.com; editorialindia@gmail.com; delhijournals@gmail.com

Website : www.ugc-care-drishikon.com

©Editorial India

Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

अर्थव्यवस्था धीमी जरूर पर बेहतर

पिछले कुछ समय से अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं समेत कई संस्थाओं एवं व्यक्तियों द्वारा अर्थव्यवस्था में सुस्ती और धीमेपन पर चिंता व्यक्त की जा रही है। दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था की विकास दर में कमी के कारण चिंता होना स्वाभाविक ही है। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या यह अर्थव्यवस्था में मंदी की ओर इंगित करती है या फिर यह धीमापन अल्पकालिक ही है। इस संदर्भ में दो प्रकार के परस्पर विरोधी बयान आते रहे हैं। एक ओर लोगों का कहना है कि अर्थव्यवस्था में मंदी आ गई है या आने का शुरुआती संकेत है। वे इस संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय वित्त संस्थाओं जैसे अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आइएमएफ), विश्व बैंक और मूडीज सरीखी रेटिंग एजेंसियों का हवाला देते हैं।

गौरतलब है कि आइएमएफ द्वारा 2019-20 में विकास की संभावनाओं को घटाकर 6.1 प्रतिशत कर दिया है। वहीं विश्व बैंक ने भी इसे 6.0 प्रतिशत पर आंका है। उधर मूडीज नाम की अंतरराष्ट्रीय रेटिंग एजेंसी ने भारत की साख रेटिंग को 'स्थिर' से घटाकर 'नकारात्मक' कर दिया है और उसके बाद एजेंसी ने वर्ष 2019 के लिए आर्थिक विकास की संभावनाओं को अपने पूर्व के 5.8 प्रतिशत के लक्ष्य को घटाकर 5.6 प्रतिशत कर दिया है। दूसरी ओर, सरकार समेत कई अर्थशास्त्रियों का मानना है कि आर्थिक विकास में मात्र कुछ धीमापन आया है पर मंदी की कोई आशंका नहीं है। संसद के शीतकालीन सत्र की शुरुआत में ही वित्तमंत्री ने अपने बयान में कहा कि हाल में आर्थिक विकास में आए धीमेपन के बावजूद आइएमएफ के अक्टूबर 2019 के वैश्विक आर्थिक दृष्टिकोण में भारत को जी-20 देशों में सबसे तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था बताया है। इस बीच, मुद्रास्फीति जो लंबे समय से काफी कम चल रही थी, सितंबर 2019 के 3.99 फीसदी से बढ़कर अक्टूबर 2019 में 4.62 फीसदी हो गई। यह वृद्धि खाद्य पदार्थों की मुद्रास्फीति के कारण हुई। गौरतलब है कि अक्टूबर में खाद्य पदार्थों में खुदरा मुद्रास्फीति 7.89 फीसदी दर्ज की गई, जो पिछले माह 5.1 फीसदी ही थी।

मुद्रास्फीति में आए इस उछाल से प्रभावित होकर पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने बयान दिया है कि अर्थव्यवस्था 'स्टंगफ्लेशन' यानी 'मुद्रास्फीति' के साथ आर्थिक ठहराव की स्थिति में प्रवेश कर सकती है। गौरतलब है कि 'मुद्रास्फीति' हालांकि आम भाषा में कीमतों में वृद्धि को कहते हैं लेकिन आर्थिक सिद्धांतों के अनुसार कीमतों में हर वृद्धि को मुद्रास्फीति नहीं कहते। किसी एक माह या किसी एक वर्ष या दो-तीन वर्षों तक की कीमत वृद्धि को भी मुद्रास्फीति नहीं कहा जाता। कीमत वृद्धि को मुद्रास्फीति कहने के लिए उसे लंबे समय तक भारी वृद्धि होना पड़ेगा। गौरतलब है कि मोदी सरकार के आने के बाद कीमतों में वृद्धि न केवल घटती गई, एक समय तो यह तीन प्रतिशत से भी कम हो गई थी। एक बयान के अनुसार कीमतों में लगातार कम वृद्धि के कारण पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह चिंता व्यक्त कर रहे थे कि इसके कारण देश में आर्थिक गतिविधियों में गिरावट आ रही है। उनके इस बयान से काफी बड़ी संख्या में अर्थशास्त्री, बैंकर और अन्य जानकार सहमत थे कि आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के लिए मुद्रास्फीति में होने वाली लगातार गिरावट को रोकना चाहिए। आज जब मुद्रास्फीति मात्रा एक-दो माह में बढ़ी है, इसे 'स्टेगफ्लेशन' कहना राजनीति से प्रेरित ही माना जाएगा। वो भी तब, जबकि एक माह पहले ही मनमोहन सिंह मुद्रास्फीति में लगातार कमी से चिंताग्रस्त थे और मुद्रास्फीति में वृद्धि को आर्थिक गतिविधियों में उठाव के लिए जरूरी मान रहे थे। वास्तव में समझना होगा कि लगातार कम होती कीमतें, रिजर्व बैंक द्वारा ब्याज दरों में अपेक्षित कमी न किया जाना और उसके कारण बाधित होती आर्थिक गतिविधियां और उसके फलस्वरूप सरकार

जुलाई-अगस्त, 2019

द्वारा टैक्स प्राप्ति के लक्ष्य प्राप्ति में बाधाएं चिंता का कारण बन रही थी। कीमतों में थोड़ा बहुत उछाल आने से आर्थिक गतिविधियों को वास्तव में प्रोत्साहन मिल सकता है। एक अमरीकी अर्थशास्त्री, एलबॉन फिलिप्स के विश्लेषण को मानें तो मुद्रास्फीति में हुई यह वृद्धि एक अच्छी खबर है क्योंकि इससे आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिलेगा, मांग बढ़ेगी, उत्पादन बढ़ेगा और बेरोजगारी भी घटेगी। इसे समझते हुए कि देश में मांग में धीमापन रोकने की जरूरत है पर इसके लिए राजकोषीय संतुलन को बनाए रखते हुए, आर्थिक गतिविधियों का ऐसे संचालन करना होगा कि अन्य प्रकार से बिगाड़ न हो जाए। गौरतलब है कि वर्ष 2008 में वैश्विक मंदी के बाद यूपीए सरकार ने करों में छूट और सरकारी खर्च में अनाप-शनाप वृद्धि करनी शुरू कर दी थी। उसका परिणाम यह हुआ कि देश का राजकोषीय संतुलन बिगाड़ गया। राजकोषीय घाटा जीडीपी के 6 प्रतिशत से भी ज्यादा बढ़ गया। कीमतों में बेहताशा वृद्धि होने लगी, उसके कारण ब्याज दरों में तेजी से वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप जीडीपी विकास दर धीमी हो गई। विकास दर लगभग 5 प्रतिशत पर और मुद्रास्फीति दो अंकों को पार करते हुए 12 प्रतिशत तक पहुंच गई थी। इसे अर्थशास्त्र में सबसे ज्यादा अवांछनीय स्थिति माना जाता है, जब तेजी से बढ़ती मुद्रास्फीति के स्थान पर जीडीपी में धीमा विकास हो।

वर्तमान सरकार समझदारी के उपाय अपना रही है और उन्हें सराहा भी जा रहा है। हर हालत में राजकोषीय घाटे को एक सीमा से ज्यादा बढ़ने नहीं दिया जा रहा, जिससे ब्याज दरें घटाई जा सकी हैं। इससे उपभोक्ता व निवेश मांग दोनों के बढ़ने की संभावना है। स्थिर पुँजी निर्माण गति में थोड़ी वृद्धि भी हुई है। देश में निवेश वातावरण को बेहतर बनाने के लिए कॉर्पोरेट कर की दर घटाकर 22 फीसदी व नई कंपनियों के लिए मात्र 15 फीसदी किया गया है, जो अन्य कम करों वाले एशियाई देशों के समान है। माना जा रहा है कि सरकार द्वारा दिए जा रहे तमाम प्रोत्साहन दीर्घकाल में न केवल आर्थिक गतिविधियों, उत्पादन और रोजगार बढ़ाएंगे, इससे सरकारी राजस्व भी बढ़ेगा।

— संपादक

इस अंक में

घरेलू हिंसा के विविध रूप—डॉ० कमलेश कुमार	1
मैथिली उपन्यासक क्षेत्रमे प्रभासक योगदान—पुष्पम ज्योति	3
बाल केन्द्रित शिक्षा व संबेगात्मक विकास—डॉ० कल्पना जैन; रत्नेश कुमार जैन	6
भारत की विदेश नीति पड़ोसी देश के संदर्भ में—डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय	11
चीन की पाकिस्तान में रुचि—डॉ० धर्मेन्द्र कुमार उपाध्याय	13
‘वरूण के बेटे’ उपन्यास में आदिवासी मछुआ जीवन: आख्यान और विमर्श—अरविन्द कुमार अवस्थी	16
स्त्री मुक्ति की चुनौतियाँ और परिवार—आपका बंटी—डॉ० मीरा कश्यप	20
उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में नारी संदर्भ—डॉ० नम्रता जैन	23
बाल शिक्षा के जनक गिजुभाई के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता—रत्नेश कुमार जैन	26
भारत में कैदियों के मताधिकार - एक विधिक अध्ययन—डॉ० क्षेमेन्द्र मणि त्रिपाठी; राम दुलार सोनकर	30
“भारत के माड़िया जनजाति में युवागृह की भूमिका” (छत्तीसगढ़ के अबुलमाडू क्षेत्र के माड़िया के संदर्भ में)—डॉ० कविता कन्नौजिया	33
शिक्षा की गुणवत्ता में I.C.T. के गुणात्मक प्रयोग से शैक्षिक प्रणाली में डिजीटलीकरण—डॉ० माधुरी सिंह	38
भारतीय स्वाधीनता संग्राम और विद्यार्थी—डॉ० बृजेश कुमार पाण्डेय	40
माध्यमिक स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता का उनके सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में अध्ययन—डॉ० धर्मेन्द्र कुमार; डॉ० निदा खान	43
इलाहाबाद में उग्रवादी आन्दोलन—डॉ० अनीता प्रकाश	46
महिला सशक्तिकरण में मनरेगा की भूमिका—डौली कुमारी; सुदीप कुमार	50
वैश्विक परिदृश्य में गीता का मूल्य—डॉ० अजायब सिंह	54
विद्यालयी शिक्षा में कार्यरत ग्रामीण व शहरी परिवेश के शिक्षको (अध्यापक व अध्यापिकाओं) के मूल्यों (सैद्धांतिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य, एवं धार्मिक मूल्य) का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० अजय सिंह यादव	58
वैदिक वाङ्मय: एक तथ्यात्मक विवेचन—डॉ० सुगन्धा जैन	65
उद्योगों का स्तर: कार्यक्षमता पर प्रभाव—डॉ० रोमी अरोड़ा	70
रूस की विदेश नीति एवं वैश्विक महत्वाकांक्षाएँ—शैलेन्द्र कुमार	73
‘तीसरी कसम’ कहानी में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना एवं प्यार की उत्कृष्टता—राम चरण मीना	77
पं० दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म दर्शन और राष्ट्र चिंतन—डॉ० संजय कुमार	80
आधुनिक भारत के निर्माता: डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर—प्रा० डॉ० मनोहर भंडारे	85
भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता: स्वरूप एवं इसको प्रभावित करने वाले कारक—मोनिका विजय	89
संस्कृत साहित्य में शतककाव्य—एक अध्ययन—डॉ० ज़ेबा खान	96
संवैधानिक नैतिकता एवं लोक नैतिकता: एक सामाजिक एवं विधिक विश्लेषण—मरयम इशरत बेग	99
भारतीय लोकतंत्र एवं दबाव समूह : एक समीक्षात्मक अध्ययन—डॉ० पुष्पांजली कुमारी	102
माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन—डॉ० रोहित कुमार त्रिवेदी	106
प्रयागराज जनपद के ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं का विद्यालय की स्वच्छता के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन—संतोष कुमार यादव; डॉ० शिवराज कुमार	111
भारतीय अर्थव्यवस्था में आवास क्षेत्र का महत्व—किरण कुमारी	115
भारतीय जनमत निर्माण में प्रेमचन्द की पत्रकारिता का योगदान—अहमद रजा	119

उत्तरआधुनिकता और उपभोक्तावाद: मृगतृष्णा या वास्तविक सुख की तलाश—डॉ० रमेश कुमार बर्णवाल	125
अर्वाचीन कवियित्री पंडिता क्षमाशिव का संस्कृत साहित्य में योगदान—डॉ० मीना गुप्ता	129
धुमिल का काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' : व्यवस्था विरोध का जीवंत दस्तावेज—डॉ० मलकीयत सिंह	132
पटना जिला में अनुसूचित जाति की साक्षरता: एक भौगोलिक मूल्यांकन—डॉ० मनोज कुमार सिन्हा	138
उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों में सामाजिक कौशल का विकास: एक अध्ययन—श्रीमती चेतना योगी; प्रो० वंदना गोस्वामी; डॉ० सपना शर्मा	145
गुरु ग्रन्थ साहब में कबीर (भक्ति आन्दोलन के सन्दर्भ में)—डॉ० कुलदीप कौर पाहवा	150
नाट्य साहित्य में डॉ. सिद्धनाथ कुमार का योगदान—रोशन कुमार	153
भारत में राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम—डॉ० जया भारती	156
बिहार में सुशासन और जल जीवन हरियाली: एक समीक्षात्मक अध्ययन—डॉ० तेलानी मीना होरो	159
वैदिक संस्कृति व धर्म के पुनरुत्थान में गुप्त शासकों का योगदान—डॉ० ईशा शर्मा	163
पारंपरिक और आधुनिक योग का स्वरूप: एक दार्शनिक विश्लेषण—प्रिया कुमारी तिवारी	166
दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत विद्यार्थियों का एम० लर्निंग के प्रति अभिमत का अध्ययन—प्रियंका रावल	169
भारतीय अमूर्त चित्रकला के अग्रदूत डॉ० गगनेंद्रनाथ ठाकुर (पाश्चात्य धनवादी कला के परिप्रेक्ष्य में)—डॉ० मंजू सिंह	174
कला शिक्षा के कुछ मूलभूत प्रश्न—आकांक्षा वर्मा; डॉ० शकुन्तला मिश्र	177
साहित्य में दलित चिंतन का स्वर—डॉ० मनीषा सिंह	179
संस्थानों में विकलांग व्यक्तियों को 'समावेश' के संचार में बाधाएं : एक सामान्य परिप्रेक्ष्य—शिवानी	182
विश्व भाषा हिन्दी के विविध आयाम—डॉ० अनु शर्मा	186
कुमारुं वाणी सामुदायिक रेडियो का ग्रामीणों पर प्रभाव—हर्षवर्धन पाण्डे	189
हिंदी के विकास में बुन्देलखंडी साहित्य का योगदान—क्रमांक शुक्ला	195
डॉ० संतोष कुमार तिवारी की लघु कथाओं का सौंदर्य—अंजना गुप्ता; विनोद कुमार जयसवाल	199
1818 की ब्रिटिश संधि व बीकानेर रियासत—पार्वती गोदारा	203
आधुनिक चित्रकला में कोलाज चित्रण—डॉ० ईश्वर चन्द गुप्ता	207
ग्रामीण विकास में स्वयं सहायता समूह माइक्रोफाइनेंस : महिला सशक्तिकरण की सर्वोच्च विधि—डॉ० गालिब ईमाम	211
साहित्य की जनवादी धारा और मुक्तिबोध—डॉ० अंबुजा एन् मलखेडकर	213
आधुनिक संदर्भ में वाल्मीकीय रामायण एवं श्रीराम के आदर्शों की प्रासंगिकता—डॉ० श्रीधर हेगडे	216
श्रम संघ के प्रगति का काल (1924 से 1939 तक)—डॉ० सीमा पटेल; नीतू कुमारी	219
बसौली लघु चित्रों में सांस्कृतिक प्रभाव—डॉ० पुनीता शर्मा	223
भारत में केन्द्र-राज्य सम्बन्ध: एक अध्ययन—डॉ० अफताब आलम	226
भारतीय विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता: एक अवलोकन—प्रो० (डॉ०) पूनम	230
भारत में सामाजिक कल्याण कार्यक्रम: बदलते परिदृश्य, उभरती समस्याएं और लक्षित समूह—अम्बुज मिश्र	233
निराला के काव्य में प्रगति चेतना का समीक्षात्मक अध्ययन—डॉ० नगीना बानों	238
हिंदी के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान—डॉ० ज्ञानोबा गादगे	242
वैश्वीकरण के दौर में परंपरागत लोक कलाओं का बदलता स्वरूप: एक अध्ययन—डॉ० रश्मि शर्मा	244
ब्रिटिश आर्थिक नीतियों का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव—राजेश कुमार	249
समकालीन हिन्दी की महिला उपन्यासकार और स्त्री-विमर्श—डॉ० अवधेश कुमार	253
भारतीय नारी के उत्थान में गांधी जी का योगदान—प्रदीप कुमार	256

भारत और नयी वैश्विक व्यवस्था—डॉ० सच्चिदा नन्द राम	260
जैनधर्म में प्रतिमा निर्माण, उद्भव एवं विकास—रवींद्र सिंह	263
गुप्त काल का संक्षिप्त परिचय—डॉ० कविता सिंह; अजय कुमार सिंह	266
भारत-श्रीलंका संबंध—डॉ० अरूण कुमार दीक्षित	269
शिक्षा का विकास एवं शिक्षा की समस्याएँ—डॉ० ममता दीक्षित	272
चुनावी-व्यवहार निर्धारक के रूप में जाति और धर्म : एक विश्लेषण—आलोक रंजन	276
यशपाल का मार्क्सवादी साहित्य एवं कला-चिन्तन—डॉ० अंजू बाला	279
समकालीन हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श—डॉ० सुरेन्द्र शर्मा	284
‘जाति’ से मृत्युपर्यंत पीछा नहीं छूटता—डॉ० राजन तनवर	289
ब्रिटिश काल में शिक्षा का विकास: अवध की शिक्षा के विशेष संदर्भ में—डॉ० अनूप पांडे	292
जौनपुर जनपद में अवस्थित उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन का लिंग एवं निवासी स्थिति के सम्बन्ध में अध्ययन—स्वराज गौतम; डॉ० अंजनी कुमार मिश्र	295
दार्शनिक अभ्यास में सत्य एवं अहिंसा का औचित्य: अनुप्रयुक्त जैन दर्शन के विशेष संदर्भ में—मेघा जैन	299
आदिवासी क्षेत्रों में बढ़ते माओवादी-नक्सलवादी आन्दोलन: झारखण्ड के विशेष संदर्भ में—राकेश कुमार गौड़	303
प्राचीन भारत में शूद्र वर्ण की उत्पत्ति का इतिहास (प्रारम्भ से 1200 ई० तक)—कृष्ण कुमार	306
कथाकार शिवमूर्ति कृत ‘तर्पण’ उपन्यास में स्त्री जीवन का यथार्थ—डॉ० हिमांशु कुमार	310
गुरुबाणी और नैतिकता—डॉ० हरबंस सिंह	313
महाकवि भारवि का अर्थगौरव—एक विश्लेषण—ज्ञानी राम	316
वाराणसी नगर में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का पुनरावलोकन: एक दृष्टि—डॉ० रेनू तोमर	319
‘रत्नावली’ के आधार पर हर्ष का सामुद्रिकशास्त्रवेत्ता के रूप में मूल्यांकन—डॉ० राजकुमार	323
अस्मिताओं का सवाल और भक्ति काव्य—कविता भाटिया	327
मेघदूत में वर्णित संवेदना—डॉ० नीलिमा चौधरी	330
हिन्दू त्रिमूर्ति में प्रजापति ब्रह्मा—डॉ० अर्चना मिश्रा	332
मंजरी शुक्ला की बाल कहानियाँ: समीक्षात्मक अध्ययन—मीनाक्षी	334
भारत में ग्रामीण बुनियादी ढाँचे से रोजगार की सम्भावना: एक दृष्टि—ओंकार यादव	337
“महाकवि राजशेखर कृत बालरामायण में हनुमत्तत्त्वानुशीलन”—डॉ० अशोक कुमार द्विवेदी	340
भारतीय संस्कृति और विवेक के मूल आधार—डॉ० सानंद कुमार सिंह	348
रामायण में उल्लिखित प्रमुख नगरी मिथिला - एक ऐतिहासिक अध्ययन—डॉ० रूबी तबस्सुम	350
आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण—डॉ० अखिलेश कुमार वर्मा	353
जनक्रान्ति के कवि - नागार्जुन—डॉ० मंजुला यादव	357
छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा की रहस्यानुभूति—डॉ० अमिता रानी सिंह	361
बाबा अजीत सिंह—डॉ० अमरबीर कौर	365
लोकतंत्र के चतुर्थ स्तंभ के रूप में मीडिया की भूमिका—राजेश गुप्ता	374
कानपुर में गुप्तकालीन मंदिर विशेष संदर्भ में भीतरगांव मंदिर—ओम प्रकाश	378
स्वतंत्रता आंदोलन में बाबूराव विष्णु पराङ्कर की पत्रकारिता का योगदान—डॉ० प्रेरणा त्रिपाठी	381
तेजेंद्र शर्मा की कहानियों में आधुनिकता बोध—प्रो० प्रदीप श्रीधर	384
सूचना तकनीक एवं पत्रकारिता—डॉ० साधना	386
विभाजित लेबनान में शांति स्थापना की चुनौती—डॉ० निशा बक्सी	388

भारतीय राजनीति के बदलते दायरे और पसमाँदा आन्दोलन की उपयोगिता—डॉ० चन्द्रकांता के माथुर	391
स्त्री विमर्श की ऐतिहासिकता—डॉ० सविता उपाध्याय	396
भारतीय उपमहाद्वीप के सन्दर्भ में अमेरिका की विदेशनीति : एक विश्लेषण—डॉ० अनिल कुमार सिंह	403
भारतीय भाषा ओ पत्रकारिता—डॉ० मीनू कुमारी	407
आधुनिक भारत में नारी—उमेश सिंह	4235
समाज तथा राष्ट्र की प्रगति में शिक्षा का स्वरूप—विकास सिंह	4237
दलित साहित्य और भारतीय सामाजिक व्यवस्था—डॉ० वंदना यादव	416
योग और आधुनिक जीवन शैली—सीमा चौहान	420
भारत में कृषि और किसानों की स्थिति: बिहार के विशेष सन्दर्भ में—संजय कुमार सिंह	429
भारत में लोक सेवायें: साख पर सवाल—शालिनी सिंह	433
औपनिवेशिक वित्तीय शोषण के रूप में नव उदारवादी नीतियाँ—गंगाराम	437
वैश्विक चुनौतियों के समाधान में गांधीवादी विचारधारा की प्रासंगिकता—महेन्द्र प्रताप बॉयला	442
स्पेट: शासन संचालन एवं प्रशासनिक नैतिकता उत्थान का बेहतर साधन—डॉ० ज्ञानचंद भारती	445
संस्कृत साहित्य में स्त्री विमर्श—डॉ० सरोज मीना	452
भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकारों का स्वरूप एवं विकास—डॉ० गुलाब बाई मीना	456
व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में गांधीजी के एकादश व्रतों की उपादेयता—डॉ० सुशीला देवी मीणा	460
भारत में निर्वाचन प्रणाली एवं दलीय व्यवस्था: स्वरूप एवं सुधार हेतु सुझाव—नन्दराम खटीक	465
अथर्ववेद में निहित सतत् विकास की अवधारणा—डॉ० योगिता मकवाना	469
वर्तमान शासन व्यवस्था और राजनीतिक दल—बबीता मीणा	472
आसियान और सार्क के आर्थिक एवं राजनीतिक आयाम का समीक्षात्मक विश्लेषण—डॉ० गुलाब बाई मीना	475
भारवि की सूक्तियों में नीति लालित्य—श्रीमती कविता; डॉ० योगिता मकवाना	481
भारत में कृषि विकास: मुद्दे एवं चुनौतियाँ—आसीन खाँ	485
धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना के अग्रदूत श्रीमंत शंकरदेव: एक अध्ययन—मुनमी गौ	489
मृणाल के पाण्डे में सामाजिक जीवन—दर्शन—आरती	491
ग्रामीण स्त्री के बदलते जीवन—मूल्य (चाक उपन्यास के सन्दर्भ में)—डॉ० देवी प्रसाद	494
लीलाधर जगूड़ी के काव्य एवं राजनीतिक विचार—प्रो० संजय एल० मादार; नेहा कुमारी	499
भारत में महिलाओं की प्रगति में केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों की भूमिका—किरण सिंह	502
मिथिला की ज्ञान प्रणाली: रूझान और परंपराएँ—प्रो० (डॉ०) प्रभासचन्द्र मिश्र	505
माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान का उपलब्धि अभिप्रेणा के सम्बन्ध का अध्ययन—डॉ० एम० पी० सिंह	513
हरियाणा सरकार द्वारा कृषि के आधुनिकीकरण की दिशा में किये गये प्रयास—कृष्ण कुमार	518
हृदयेश के कथा साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिकता का स्वरूप—डॉ० आरती दुबे	521
डॉ० ए०पी०जे० अब्दुल कलाम का तकनीकी योगदान—जयदीप सिंह; डॉ० धर्मपाल सिंह	524
पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका— एक अध्ययन—अमरनाथ वर्मा	528
ब्राह्मणवादी प्रतिक्रिया एवं प्रतिगामिता के विरुद्ध बौद्ध धर्म का प्रगतिशील स्वर (ई. पूर्व 600 से 200 ई. पूर्व) के विशेष संदर्भ में —डॉ० राजेश कुमार सिंह	531
गांधार कला: स्थापत्य की एक विशिष्ट परम्परा—कविता लखैयार	538
दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन अलवार और नयनार—नीता लखैयार	540
नयी कविता में मानवीय मूल्यों की अवधारणा—डॉ० सुशीला सिंह	542
गाँधीवादी सर्वोदय का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य—डॉ० मन्मथ नारायण सिंह	545

हिंदी दलित साहित्य की भाषा—प्रा० भरत सुरेशराव जवजाळे	549
वर्तमान में सोशल मीडिया का युवा वर्ग पर प्रभाव—आशीलता त्रिपाठी	550
अद्वैतवाद और मोक्ष—डॉ० लता शर्मा	552
मिथिलेश्वर के 'सुरंग में सुबह' उपन्यास में लोक और तंत्र के मध्य बढ़ती दूरियाँ—डॉ० देवेन्द्र शुक्ल	554
दलित साहित्य में उपेक्षा, अपमान और पीड़ा की अभिव्यक्ति: सहानुभूति नहीं स्वानुभूति—डॉ० बिभा कुमारी	557
पिछड़ी जाति के उत्थान में गुरुघासीदास की भूमिका का अध्ययन—डॉ० महेश कुमार शुक्ला	564
कबीर पंथ के आस्थागत प्रवाह केन्द्र कुदुरमाल—डॉ० अंजू तिवारी	566
छत्तीसगढ़ में पलायन के कारण व पलायन से वापस आये श्रमिकों की दशा सुधारने के उपाय—प्रो. डॉ० ऋचा यादव	571
छत्तीसगढ़ में प्रचलित विवाह पद्धतियाँ—श्री रामरतन साहू	576
पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी का व्यक्तित्व कृतित्व एवं शिक्षा दर्शन का अध्ययन—डॉ० प्रेम सिंह	579
वैदिकयुग में वर्ण व्यवस्था का आधार—डॉ० दिवाकर त्रिपाठी	587
कमार जनजाति की सामाजिक आर्थिक स्थिति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (गरियाबंद जिले के मैनपुर विकासखंड के विशेष संदर्भ में) —चम्पा साहु एवं तिलोचनी साहु	590

घरेलू हिंसा के विविध रूप

डॉ० कमलेश कुमार

असि० प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग परास्नातक महाविद्यालय, पुखरायां, कानपुर देहात

सारांश:- घरेलू हिंसा एक विश्वव्यापी बुराई है जो मानव समाज के हर तबके में किसी न किसी रूप में दिखायी देती है। यह परिवार के कुछ सदस्यों द्वारा अपने ही घर के किसी भी स्त्री या पुरुष तथा बच्चों के प्रति किया गया दुर्व्यवहार है। यह ऐसा कार्य है जो किसी पुरुष बच्चे या महिला द्वारा घर के ही अन्य किसी व्यक्ति को शारीरिक या मानसिक आघात पहुंचाता है। इसके विविध रूप देखे जा सकते हैं जैसे बुजुर्गों के स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही, उनकी देखभाल न करना, किसी महिला को शारीरिक, मानसिक व मनोवैज्ञानिक रूप से परेशान करना। अथवा छोटे-छोटे बच्चों को प्यार देने के बजाय मारना, पीटना व प्रताड़ित करना आता है। उपर्युक्त सभी प्रकार के कृत्य जिससे अगले आदमी को मानसिक व शारीरिक कष्ट हो तथा अपमान सहना पड़े घरेलू हिंसा की श्रेणी में आता है। भारत सरकार द्वारा इस पर समय-समय पर इस पर कानून भी बनाए जाते रहे हैं। जैसे घरेलू हिंसा के विरुद्ध महिला संरक्षण की अधिनियम 2005 इसमें शारीरिक या मानसिक तौर से क्षति पहुंचाना या उसके जीवन को खतरे में डालना है। इसके अलावा यदि कोई व्यक्ति किसी महिला को चाहे वह मौखिक और भावनात्मक हो या शारीरिक तथा यौनिक दृष्टि से परेशान करता हो तो वह भी सजा का दोषी पाया जाता है। वर्तमान सामाजिक परिदृश्य को यदि देखा जाए तो इण्टरनेट और मल्टीमीडिया जैसे संचार माध्यमों ने अपसंस्कृति को भी बढ़ावा दिया है जो हिंसा के वातावरण जन्म देने में प्रेरक की भूमिका निभा रहे हैं। किन्तु इन्हीं माध्यमों का सही दिशा में प्रयोग कर हम हिंसा द्वारा प्रताड़ित व्यक्ति का बचाव भी कर सकते हैं।

मुख्य शब्द- अपसंस्कृति, चाहारदीवारी, खामियाजा, रायसुमारी, अभिशप्त

उद्देश्य:- घरेलू हिंसा से संरक्षण देने के लिए लोगों में जागरूकता पैदा करना। लोगों को यह जानकारी देना कि हिंसा के शिकार व्यक्ति का व्यक्तित्व किस स्तर तक प्रभावित होता है इसके विविध आयाम क्या हैं विभिन्न समयों में भारत सरकार द्वारा पारित कानूनों को आत्मसात करना जिससे जरूरत पड़ने पर प्रभावित व्यक्ति अपना बचाव कर सके।

प्रस्तावना- घरेलू हिंसा महिलाओं के विरुद्ध की गयी हिंसा, घरेलू हिंसा के अन्तर्गत है, चाहे वह जिस प्रकार की हो, यथा उनसे मारपीट करना, शारीरिक पीड़ा देना, मानसिक यातना देना, ठोकर मारना, अश्लील हरकतें करना, उनके साथ अप्राकृतिक कृत्य करना, बलात्कार करना, अपमानित करना, महिला के चरित्र पर दोषारोपण करना, उसकी शादी इच्छा के विरुद्ध करना, धमकी देना, मौखिक दुर्व्यवहार आदि।

“यूनाइटेड नेशंस पापुलेशन फंड” रिपोर्ट के अनुसार “लगभग 2/3 विवाहित भारतीय महिलाएं घरेलू हिंसा की शिकार हैं और भारत में 15- 49 आयु वर्ग की 70 प्रतिशत विवाहित महिलाएं बलात्कार या जबरन यौन शोषण का शिकार हैं।” स्रोत- दृष्टि आई०ए०एस० -भारत सरकार ने वन स्टाप सेन्टर जैसी योजनाएं चला रखी हैं, जिसका उद्देश्य किसी प्रकार की हिंसा की शिकार महिला को, मनोवैज्ञानिक व चिकित्सीय सहायता पहुंचाना तथा इसके साथ-साथ ही उन्हें कानूनी संरक्षण देना भी है जबकि विश्व मानवाधिकार संगठन ‘ब्रेकथ्रू’ द्वारा महिलाओं के संरक्षण व पोषण के लिए “बेल बजाओ” अभियान चलाया जा रहा है। ‘थॉमन रायटर्स फाउंडेशन’ संस्था के सर्वेक्षण में यह पाया गया कि सम्पूर्ण विश्व में यदि महिलाओं की स्थिति को देखा जा तो भारत में महिलाओं की स्थिति सबसे ज्यादा खतरनाक है। गैर यौन हिंसा की शिकार महिलाओं की स्थिति में भारत तीसरे नम्बर पर है। इस हिंसा की शिकार महिलाओं की स्थिति काफी भयावह है यद्यपि भारत सरकार ने समय-समय पर इनके संरक्षण हेतु अनेक कानून बना रखे हैं, किन्तु ये अपनी पूर्णता को तभी प्राप्त कर पायेंगे जब इसके लिए महिलाएं स्वयं सामने आएँ और अपनी समस्याओं को समाज के सामने मजबूती से रख पायें। महिलाएं विशेषकर उस समय लाचार हो जाती हैं जब अपने ही परिवार या परिचित द्वारा प्रताड़ित होती हैं, ऐसी स्थिति में वे संकोच व लज्जावश, शिकायत नहीं दर्ज करा पाती हैं और हिंसा का शिकार हो जाती हैं।

समाज में बच्चों एवं किशोरों में भी घरेलू हिंसा देखने को मिलती है। आज के आधुनिक समाज में बच्चों को घर की चहारदीवारी में बंद कर व्यक्ति अपना रोजगार चलाने में व्यस्त है। उन्हें इस बात का ध्यान ही नहीं कि वह अपने बच्चों को उचित समय व प्यार दे पा रहे हैं कि नहीं। वह अपनी प्रगति के आगे बच्चों की परवरिश समय नहीं निकाल पाते। गांवों की अपेक्षा शहरी बच्चे घरेलू हिंसा के ज्यादा शिकार होते हैं। गांवों में अचों की अपनी हमजोली के बच्चे मिल जाते हैं, जिससे उनका शारीरिक व मानसिक विकास तेजी से होता है और उन्हें घरेलू हिंसा का सामना नहीं करना पड़ता है। बालश्रम जैसी प्रथा आज भी जारी है जो हिंसा का ही एक रूप है। अवयस्क बच्चे भी किसी न किसी रूप में घरेलू हिंसा के शिकार हो जाते हैं। यूनीसेफ तथ उसकी सहयोगी बाल संरक्षण संस्था के द्वारा प्रकाशित एक लेख में कहा गया है कि पूरी दुनिया के लगभग आधे बच्चे किसी न किसी रूप में घरेलू हिंसा के शिकार हैं जिसमें लगभग 64 प्रतिशत बच्चे दक्षिण एशिया में रहते हैं। बच्चों के खिलाफ जो भी हिंसा चाहे वो जिस प्रकार की हो, वह न केवल जीवन व स्वास्थ्य

पर असर डालती बल्कि ऐसी घटनाओं से बच्चों का भविष्य और मानसिक संतुलन भी खराब हो जाता है। हिंसा के शिकार बच्चे गलत दिशा की तरफ मुड़ जाते हैं, और तरह-तरह की बुरी आदतों के शिकार भी हो जाते हैं। उनके साथ होने वाली घरेलू हिंसा कभी-कभी इस तरह से घटित होती है कि उनको इस बात का एहसास भी नहीं हो पाता और उनका खमियाजा बच्चों को भुगतना पड़ जाता है। ऐसी परिस्थितियों से निपटने के लिए पूरे समाज को आगे आना होगा तथा हर बच्चों के संरक्षक को भी आत्मानुशान के साथ-साथ सतर्क रहने की आवश्यकता है, जिससे कि समाज में फैली इस विकृति का सामना किया जा सके और इस से मुक्ति मिल सकेंगी।

आज के भारतीय समाज में वृद्धों व बुजुर्गों के प्रति की जाने वाली हिंसा की स्थिति में वृद्धों व बुजुर्गों के प्रति की जाने वाली हिंसा की स्थिति अत्यन्त ही संवेदनशील और भयावह होती जा रही है। घरेलू हिंसा के इस स्वरूप का तात्पर्य है जो परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा वृद्धों व बुजुर्गों के साथ किया जाने वाला दुर्व्यवहार है इसके द्वारा परिवार के सभी सदस्य चाहे वे बच्चे हों या महिलाएं या पुरुष सभी लोग बुजुर्गों का अपमान करना, उनसे घरेलू काम करवाना, ताने देना और तरह तरह की मानसिक यातना देना है। ज्यादातर लोग बुजुर्गों को घर के किसी अलग कमरे में रहने के लिए बाध्यकर कर देते हैं, जिससे अपनी ही शान शौकत में बाधा न पड़े, और स्वयं भी उनसे अलग रहते हैं।, उनसे बातचीत रायसुमारी भी नहीं करते हैं, और न ही उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखते हैं, भारतीय परिदृश्य में यह अब एक नयी तरह की समस्या का आगाज हुआ है, हमारा देश में पहले वृद्धों को आदर करना, ईश्वर की पूजा करना माना जाता था। किन्तु आज स्थितियां भयावह होती जा रही हैं और वृद्ध व बुजुर्ग इसको झेलने के लिए अभिशप्त हैं।

कोविड-19 के लॉकडाउन के बाद वैश्विक परिदृश्य में यदि घरेलू हिंसा को देखा जाए तो विश्व के सभी देशों में महिलाओं व बच्चों के प्रति दुर्व्यवहार में भारी वृद्धि हुई है, इसके अनेकों कारण गिनाए जा सकते हैं।, जैसे महामारी के कारण उपजी आर्थिक व सामाजिक चुनौतियों तथा आम आदमी को घरों में कैद होकर रहना आदि हैं। यद्यपि महामारी से पूर्व की स्थिति पर यदि ध्यान दिया जाए तो हम पाते हैं कि विश्व की करीब एक तिहाई महिलाएं किसी न किसी रूप में अपने जीवन में घरेलू हिंसा की शिकार हुयी हैं। लॉकडाउन के समय में राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार जहां मार्च 2019 के पहले सप्ताह में महिलाओं के प्रति हिंसा विरुद्ध 116 मामले दर्ज किये गये वहीं इसी महीने के अंतिम सप्ताह में महिला हिंसा के विरुद्ध हिंसा के मामलों की संख्या बढ़कर 251 हो। इस प्रकार यदि आंकड़ों पर ध्यान दें तो हम पाते हैं कि लॉकडाउन के दौरान घरेलू हिंसा के मामलों में काफी वृद्धि देखी गयी। समाज में इसका प्रभाव न केवल महिलाओं पर बल्कि बच्चों व बुजुर्गों के साथ नवयुवकों पर भी पड़ा। ऐसी स्थिति में बच्चों को खेलने के लिए पार्क आदि स्थानों को बन्द कर दिया गया जिससे वे घरों में ही कैद होकर रह गये और अवसादपूर्ण जीवन जीने के लिए बाध्य हुए। घरों में ज्यादा समय तक पति के उपस्थिति के कारण स्वादिष्ट भोजन व यौन इच्छाओं की पूर्ति का भी अतिरिक्त दबाव भी पतियों को झेलना पड़ा दाम्पत्य जीवन में विवाहेतर संबंधों में लिप्त होने का शक भी घरेलू हिंसा का प्रमुख कारण रहा है। लॉकडाउन के दौरान इसमें भी काफी बढ़ोतरी देखी गयी। घरेलू हिंसा के प्रभाव का यदि हम विश्लेषण करें तो पाते हैं कि जो व्यक्ति इसका शिकार हो जाता है, वह अपने को समाज की मुख्य धारा से कटा महसूस करता है, और अवसादग्रस्त जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो जाता है। बच्चों पर इसका असर गम्भीर रूप से पड़ता है उनमें सीखने व समझने की क्षमता का ह्रास हो जाता है जिससे उनका व्यक्तित्व ही प्रभावित हो जाता है।

निष्कर्ष - निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि समाज के प्रत्येक वर्ग में जारी घरेलू हिंसा तथा उसके विविध रूपों से निजात दिलाने हेतु कानूनी प्रावधान, तथा इन प्रावधानों का कड़ाई से पालन होना जरूरी है, साथ ही समाज में इसके विरुद्ध जागरूकता, जनचेतना व संवेदनशीलता को बढ़ावा देने की जरूरत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. दृष्टि आई0ए0एस0 नेट्स
2. राम अहूजा- सामाजिक समस्याएं - रावत पब्लिकेशन 2012
3. अरुण मिश्रा- भारतीय सामाजिक समस्याएं - रावत प्रकाशन 2012
4. वी0एन0 सिंह/ जनमेजय सिंह- रावत पब्लिकेशन 2010
5. योजना- नारी सशक्तिकरण - सितम्बर 2016
6. कुरुक्षेत्र पत्रिका महिला विशेषांक- जनवरी 2018
7. रakesh द्विवेदी- महिला सशक्तिकरण चुनौती एवं रणनीतियां, पूर्वाशान प्रकाशन भोपाल खण्ड।

मैथिली उपन्यासक क्षेत्रमे प्रभासक योगदान

पुष्पम ज्योति

शोध छात्रा (मैथिली), ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

आधुनिक मैथिली साहित्यक वरिष्ठ कथाकार ओ उपन्यासकारक रूपमे प्रभास कुमार चौधरी प्रसिद्ध छथि। साहित्यमे कोनो उपन्यासकारक असल परिचय हुनक व्यक्तित्व ओ कृतित्वसँ कयल जाइत अछि। आधुनिक मैथिली उपन्यासमे प्रभासजी प्राचीनता ओ नवीनताक संघर्षक निरूपण कएने छथि। हिनक शिक्षा एम.ए. धरि भेल। ई जिविकाक रूपमे प्राध्यापक पद तथा भारतीय जीवन बीमा निगममे वरीय पदाधिकारी सेहो भेल छलाह।

मैथिली उपन्यास क्षेत्रमे हिनक आगमन 1977 ई.मे भेल छल। प्रभास कुमार चौधरी कुल पाँचटा उपन्यास लिखलनि। ई उपन्यास सभ पोथीक रूपमे 1977 सँ 1981क बीचमे प्रकाशित भेल छल। पहिल 'हमरा लग रहब?' (1977) दोसर 'अभिषाप्त' (1978), तेसर 'युगपुरुष' (1978), चारिम 'नवारम्भ' (1979), आ पाँचम 'राजा पोखरिमे कतेक मछरी' (1981)। ओना अभिषाप्त ओ युगपुरुष कर्मशः 1970 ओ 1971मे मिथिला मिहिरमे प्रकाशित भऽ गेल छल।

हमरा लग रहब? प्रभास जीक पहिल उपन्यासक श्रेणीमे अबैत अछि। प्रस्तुत उपन्यासमे समाजक विविध व्यापक चित्र प्रस्तुत कएल गेल अछि। एहिमे उपन्यासक नायक प्रणवक समान सत्वगुण संपन्न सर्वथा निर्दोष एक एहन प्रतिभाशाली ओ चरित्रवान व्यक्तिक जीवन गाथाक वर्णन कएल गेल अछि, जकरा कारणे ओकर देवत्व अभिशाप बनि जाइत अछि। एहिमे मामी समान एक एहन ममतामयी नारीक चरित्र-चित्रण भेल अछि। जकरा त्याग, करुणा, एवं सहिष्णुताक कारणे भारतीय मातृत्वक रूपमे कहल जा सकैत अछि। मुदा उपन्यासकार अमर-चित्रण सृष्टिक दृष्टिँ शीलाक चरित्र विशेष रूपसँ उजागर कएने छथि। वास्तवमे, उपन्यासक नायक प्रणव जे मातृपितृहीन, गाम घरसँ वंचित, समाजक शासक-प्रशासक वर्गसँ तिरस्कृत, टूंगर-टापर-बिलटल बटुक अछि- मामा मामीक सघन आश्रय, किन्तु घटल आश्रममे पलल, पोसायल, बढ़ल। ज्ञान-प्राण होइते ई एकक बाद एक, एहिना अनोकोकेँ अपक्षाबड चाहलक, संगी बनबऽ चाहलक, मुदा सभ दुर भगैत गेलैक। एक दिस प्रवव जँ लगन आ प्रतिभाक धनी छल तँ दोसर दिस ई भाग्यक महादरिद्र छल।

एहि उपन्यासमे लेखक कामभावनाक सफल चित्रण सेहो कएलनि अछि। स्वामीक श्राद्धक इंतजाममे मीना रातिकँ असगर कल्लू चौधरीक सनकलामी, बहशीक समक्ष पहुँच जाइत अछि। आ सहज रूपँ ओकर हवसक शिकार भऽ जाइत अछि। डेढ़ साल बीतलाक बादो ओही हवेलीमे आ लोकके कानोकान पता नहि लगैत अछि। एहि उपन्यासक दू गोटा आओर विशेष पात्र अछि-माला ओ शीला। माला आ शीला कल्लूक चौधरीक बेटी थिक। मालाक विवाह यौवनसँ आकर्षित अछि आ ओकर आँखि सदरिवाल प्रणवक युवादेहपर लुबधल रहैत अछि। ओ अपन आसिक चेष्टासँ प्रणवके आकृष्ट करबामे संलग्न रहैत अछि। मुदा प्रणव कान नहि पटबैत अछि। एहि उपन्यासक कथनमे बेमल विवाहक आक्रोश प्रकट होइत अछि। तँ दोसर पंक्तिमे एकटा विद्रोही कामपिरताक स्वर सेहो परिलक्षित होइत अछि।

“ तोहर ओझाजीकेँ एकटा मौगी देह चाहियनि। मासे-मास आबि जाइत छथि, खोआक संग, हमरो सिसोहि लैत छथि।”

अभिषाप्तक लेखकीयमे प्रभासजी एहि उपन्यासकेँ पहिल उपन्यास कहने छथि। उपन्यासमे प्रयाश जी नोकरी-पेशा लोकक जीवनकेसफल चित्रण कएने अछि। हिनक आनो उपन्यास जकाँ ई उपन्यास सेहो बाबीसँ सुनल खिस्सासँ शुरू होइत अछि। एकटा भिखारीकेँ एकटा शाप रहैक जे एक गाम भीख मांगय तैओ एक तामा चाउर आ सात गाम भीख मगय तैओ एके तामा चाउर। भिखारीकेँ ओ शाप समस्त निम्न मध्यवर्गीय नौकरीपेशा लोकक शाप कहलनि प्रभास जी। एक सए कमाय तैओ ओएह हाल, सात सत कमाए तैओ ओएह हाल।

अभिषाप्त उपन्यास एही लोककथापर आधारित अछि। वस्तुतः प्रभास कुमार चौधरीक सभ उपन्यासमे कोने-ने-कोने लोककथा, लोक मानसमे चलैत प्रेमकथा ओ नीक-बेजायक द्वन्द्वक आश्रय लेल गेल अछि।

प्रस्तुत उपन्यासमे लेखक दिशसँ निम्नलिखित गद्यांशमे कहल गेल अछि- “एक सय कमाय तैयो वैह हाल, सात सय कमाय तैयो वैह हाल। खाली अर्थ नहि लागल, स्वयं अनुभवो भेल।”²

एहि उपन्यासमे लेखक पटनाक प्रवेशक चर्च सेहो कएने छथि-रिक्षापर जखन प्रकाश अपना अभिन्न मित्रक डेरापर बिदा होइत छथि, तखन देखैत छथि चारूकात जगमग प्रकाश। पैघ-पैघ सजल-सजाओल मकान आ सुन्दर सुसज्जित फुलबाड़ीक जखन रिक्शा ओहि बंगलाक सोझाँ आगू बढ़ैत छैक ओ एहि मोहल्लाक इतिहासमे डूबि जाइत छथि- “दस वर्ष पूर्व ई मोहल्ला साँझोकेँ डेराओन लगैत छलैक। सड़क पर दूर-दूर पर बिजलीक रौशनी। दूर-दूरनर दू-चारिटा मकान बनल। किछु निर्माणक क्रममे।”³

नवारम्भ उपन्यासमे लेखक प्रेम कथाक चित्रण कएलनि अछि। उपन्यासकार एहिमे ग्राम्य-जीवनक विविध पक्ष-ईध्या-द्वेष-छल-कपट, दलित वर्गक शोषण, स्वार्थ पर्ता, ग्राम्य राजनीतिक विद्रूपता, भ्रष्टाचार आदिक यथार्थ चित्रण अंकित करबामे अपन प्रतिभाक उत्तम परिचय देने छथि। तथापि एहि मध्य उपन्यासकारक शीर्षकके पार नहि कऽ सकला अछि।

नवारम्भ उपन्यासक पहिल भाग हवेली मोहनपुरक कथामे ध्वस्त होइत प्राचीन गौरव ओ परम्पराक वर्णन भेल अछि। तँ दोसर भाग लंका मोहन पुरक कथामे समाधिपर उपजैत लज्जा स्पद सभ्यताक चित्रण भेल अछि। तेसर भाग नवारम्भमे प्रभास कुमार चौधरी दलित वर्गक नवचेतनाक स्फूर्णक चित्रित करबाक चेष्टा कएने छथि। एहि उपन्यासक नायक रवि ओ नायिका कविता छथि। जिनका मानसिक ऊहापोहक चित्रण करबामे उपन्यासकारक कुशलता देखल जा सकैत अछि। मुदा जेना प्रभास कुमार चौधरीक अन्य उपन्यासक नायक चरित्रमे लक्षित कएल जा सकैत अछि। एहि उपन्यासक रवि दार्शनिक ओ चरित्रवान तँ अवश्य छथि। मुदा एक विलक्षण प्रकारक विवस्ता ओ निर्बलतासँ ग्रस्त तथा सफलतापूर्वक संघर्ष करबाक गुणक अभावक कारणे अपन नायककँ सिद्ध नहि कऽ पबैत छथि। एहि उपन्यासमे स्वयं उपन्यासकारक शब्दमे निम्नलिखित गद्यांशकँ देखल जा सकैछ- “प्राचीन गौरव आ परम्परा तथा ओकर ध्वस्त समाधिपर उपजल एकटा लज्जास्पद सभ्यताक बीच एकटा नवचेतनाक स्फूर्णक कथा थिक।”⁴

नवारम्भे स्वतंत्रतापूर्वक मिथिलाक विश्रुतलित होइत ग्रामीण परिवेशसँ शुरू होइत अछि तथा स्वातंत्र्योत्तर कालक राजनीतिक, आर्थिक आ समाजिक परिवर्तनक दिशाकँ इंगित करैत समाप्त होइत अछि। ग्राम्य-वातावरणक सजीव चित्रण दहैत समान्ती परिवारक चारित्रिक पतन नारिक प्रति संकुरन दृष्टि आ कथा कहबाक विलक्षण शिल्पक कारणे प्रभास कुमार चौधरीक उपन्यास सभ बहुते लोकप्रिय भेल अछि। प्रस्तुत उपन्यासमे 1934मे आयल भीषण भूकम्पक चित्रण सेहो भेल अछि। भूकम्पक वर्णनमे कहल गेल अछि- “ककरा सुनबाक होस रहैक ? दिनमे तारा निकलि गेल रहैक। आसमान गर्दासँ तोपल आ राति जकाँ लगैत दिन। चारूकात खसल घरक माटि, सुखी, ईटाक ढेरी। मैदान सभमे दरारि फाटि गेल रहैक। दूनू दोमहले टा नहि, सभ घर खसि पड़ल रहैक। दलान-बडली सेहो भहरि गेल रहैक। सभटा अन्न-पानि भड़ारक माँटि-सुखीमे मिलि गेलैक। खाली चारूकात लोकक किलोल, घायलक आर्तनाद आ हेरायलक तक्का हेरी।”⁵

युगपुरुषक उपन्यासमे निक-बेजायक चिन्तन द्वन्द्व वर्तमान युगमे पसरल दिशा हिनताकें नैतिक हास्य, अनास्था खंड विश्वास आदिक चित्रण यथार्थ शैलीमे भेल अछि। ई एक यथार्थवादी उपन्यास अछि, जाहि मध्य कथावस्तुक सुनियोजित विकास ओ घटनाक्रमक विन्यास नहि, मनोविश्लेषण ओ चिन्तनक प्रधानता अछि। उपन्यासकारक कथ्य अछि, खंडित विश्वास ओ भ्रष्टाचारक युगमे अपनाकें ओहि अनुरूप बना लैत छथि, सेहे वस्तुतः युगपुरुष थिकाह। युगपुरुषमे चम्पा आ शोभाक प्रेम प्रकरण बड़ मधुर आ अर्थगर्भित भेल अछि।

राजा पोखिरिमे कतेक मछरी लघु उपन्यासक श्रेणीमे अबैत अछि। एहि उपन्यासक मध्य उपन्यासकार राजनिति ओ प्रशासनिक संदर्भमे आदर्शवादक, पराज्यक कथाक चित्रण कएने छथि। एहिमे क्षेत्र विकृति ओ कामलोलुपताक कथा, दहैत समान्ती प्रतिष्ठाक कथा एवं ग्राम्य समाजमे गरीबक शोषण ओ निराशाक प्रतिशोधक कथाक सफल चित्रण कएलनि अछि। उपन्यासकारक एहि मध्य भास्कर, नामक आदर्श जीवन दृष्टिक कारणे नहि तँ अपन परिवार ओ ग्राम्य समाजसँ आओर ने आई. ए. एस. पदाधिकारीक रूपमे वर्तमान भ्रष्ट सरकारी तन्त्रसँ समाजस्य स्थापित कए पबैत अछि। अन्तमे अपन उच्च प्रशासनिक पदकें त्यागी प्राध्यापकक पद ग्रहण करैत अछि। तँ शिक्षा-क्षेत्रमे सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार ओ अनीतिसँ असांमजस्य कारणे उपहासक पात्र बनैत अछि एवं एकसरे अन्यायसँ संघर्ष करैत एक गुण्डाक धूराक शिकार बनि जाइत अछि। उपन्यासकारक भास्करक दुःखान्त द्वारा फादरक एहि उक्तिके चरितार्थ करैत छथि- “वी हैव आलवेज हैरड दोज हू ट्राइड टु टेल क्रुसीफाइड आवर अस ट्रुथ..... वी हैव आलवेज क्रुसीफाइड आवर जेसस।”⁶

भारतीय चित्रण द्वारा लेखक एक एहन महिमामयी नारीक उदान्त ओ उज्ज्वल चित्र अंकित करबामे समर्थ भेलाह अछि जे यथार्थवादक घोर अन्धकारमे अलौकिक आदर्शवादी आशाक आलोक विकीर्ण करैत प्रतीत होइत छथि।

प्रभासजी अपन उपन्यास सभ उनैस सए सत्तरिसँ शुरू कएकें उनैस सए एकासी धरि लिखने छथि। एहि अवधिमे देश राजनीतिक ओ समाजिक रूपसँ बहुते उथल-पुथलकें देखलक आ भोगलक। से नक्सलवादी आन्दोलन हो, इन्दिरा गाँधीक गरीब हटाओ नारा हो, प्रान्त सभमे संविद सरकारक बनब हो वा इमरजेन्सी ओ जनता सरकारक स्थापना। समाजमे जातीय विशमता ओ असामान्य हो, आ कि दलित चेतनाक उन्मेष, एहि सभ उथल-पुथलक झँकौ उपन्यास सभमे भेटैत अछि। स्वाभाविक अछि जे एहि सभक प्रति उपन्यासकारक अपन सोच छनि आन से ठाम-ठामपर प्रकट सेहो भेल अछि। हुनकर सामाजिक सोच सामंजस्यक छनि। राजनीतिक ओ समाजिक सोचसँ सहमत वा असहमत भेल जा सकैत अछि। मुदा ई बात निश्चित जे ओ अपन गामक लोकसँ अत्यधिक स्नेह करैत छलाह। गामक सभ जाति-वर्गक लोकसँ हुनका उपन्यास सभक बहुते पात्रक नाम धरि एक्के अछि। वस्तुतः प्रभासजीक विभिन्न कथा ओ उपन्यास सभ हुनक आत्मकथे थिक। जेना ओ फराकसँ आत्मकथा लिखबाक खगता अनुभव करैत छथि कि नहि त हमरा लगैत अछि जे एकर आवश्यकता हुनका नहि रहि गेल छलनि। प्रभासजीक आरम्भिक ओ परवर्ती जीवन, सोच-विचार, मैथिली साहित्य-संसार कथा ओ उपन्यास सभमे स्थान पाबि लेने अछि। मैथिली संसारपर तऽ अपन उपन्यास ‘अभिषप्त’मे एकदम सटीक टिप्पणी कए गेल छथि, जे आइओ प्रासंगिकी लगैत अछि।

अपन लोक-वेद गामसँ गहन लगावक कारणे पारस्परिक संबधपर हुनकर दृष्टि सदिखन टिकल रहैत छल। सम्बन्ध प्रति ओ अत्यधिक मोहासक्त छलाह। सम्बन्ध बहुत प्रमुखतासँ हुनक कथा-उपन्यासमे आएल अछि। विभिन्न सम्बन्ध-पिता-पुत्रक सम्बन्ध, भाइ-भाइयक सम्बन्ध, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, दोस, समाजक लोकसँ सम्बन्धक विभिन्न रंग हुनकर रचनामे भेटैत अछि। सम्बन्धक मामिलामे ओ पारस्परिक समाजिक सोचक विपरित सम्बन्धकें जायज ओ नजायजक सीमामे नहि मानैत छथि।

मनुष्यक गरीमाके अक्षुण्ण रखबाक हुनक सोच उपन्यास सभमे सहज रूपमे प्रकट होइत अछि। मनुष्यक मनुष्यता, मानवीयता जेना हुनका लेल सर्वोपरि छल। कहल जाइत अछि जे साहित्यिकी रचना, ओ कथा, कविता वा उपन्यासो ओकरामे निहित अभिप्राय महत्वपूर्ण होइत अछि।

निष्कर्षतः प्रभासजीक उपन्यास अध्ययनक बाद ई स्पष्ट होइत अछि जे कथा कहबाक कला हुनकामे तँ अद्भूत छलनि। लोक कथा-खिस्सा हुनकर उपन्यास सभमे रचल-पचल अछि। मुदा अभिप्राय बूझबाक लेल जोड़ लगबे पड़ैत अछि। तथापि ई कहल जा सकैत अछि जे अपन उपन्यास सभमे मनुष्य शक्तिशाली होयबासँ बेसी प्रभाजीक नीक लोक होएबाकें श्रेष्ठता देलनि अछि। भेलहि अहाँ कमजोर बूझल जाय। मुदा, खराब लोक नहि बूझल जाय। हमरा जनैत

आमलोकक मोनमे बसल सज्जनताक इएह दृष्टि प्रभासक उपन्यासक मूलाधार अछि। उपन्यास सभक मूल कथ्य अछि। वस्तुतः इएह हुनक जीवन-दृष्टिओ रहनि।

सन्दर्भ

1. मैथिली उपन्यासक विकास- सम्पादक- अशोक अविचल, पृष्ठ संख्या - 263 प्रकाशक- साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-2016
2. अभिशप्त- प्रभास कुमार चौधरी- लेखकीयसँ, प्रकाशक-ज्योत्सना प्रकाशन पिण्डारूच दरभंगा। प्रकाशन वर्ष - 1978
3. मैथिलीक उपन्यासक विकास-सम्पादक अशोक अविचल, पृष्ठ संख्या- 246 प्रकाशक-साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली। प्रकाशन वर्ष- 2016
4. नवारम्भ-प्रभास कुमार चौधरी, पृष्ठ संख्या- 75ए प्रकाशक-राजेन्द्रनाथ झा, हितनाथ झा, पाटलिपुत्र कॉलनी, पटना, प्रकाशन वर्ष- 1979
5. मैथिलीक उपन्यासक विकास-सम्पादक अशोक अविचल, पृष्ठ संख्या- 217ए प्रकाशक-साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली। प्रकाशन वर्ष- 2016
6. मैथिलीक साहित्यक इतिहास-दुर्गानाथ झा 'श्रीश', पृष्ठ संख्या- 362ए प्रकाशक-भारती पुस्तक केन्द्र, दरभंगा, प्रकाशन वर्ष- 1991

बाल केन्द्रित शिक्षा व संबेगात्मक विकास

डॉ० कल्पना जैन

प्राचार्या, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद

रत्नेश कुमार जैन

प्राचार्य, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद

बालक के मनोविज्ञान को समझते हुए शिक्षण की व्यवस्था करना तथा उसकी अधिगम सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करना बाल केन्द्रित शिक्षण कहलाता है। अर्थात् बालक की रुचियों, प्रवृत्तियों, तथा क्षमताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा प्रदान करना ही बाल केन्द्रित शिक्षा कहलाता है। किसी भी देश में किशोरों के जीवन का सही दिशा में कार्य करना उस देश की उन्नति का सबसे बड़ा आधार है। किशोरों की संवेदनाओं और भावनाओं को ध्यान में रखने वाला परिवार निरन्तर विकास करता है। इतना निश्चित है कि किशोरों की भावनाओं और संवेदनाओं का सदुपयोग करके हम न केवल अपनी उन्नति करते हैं अपितु अपने साथ ही साथ समाज और देश की भी उन्नति करते हैं। तुलसीदास के द्वारा रचित रामचरित मानस (रामायण) के सुन्दरकाण्ड में चोपाई 39 में प्रेम पर आधारित एक पद इस प्रकार है!

जहाँ सुमति वहाँ सम्पत्ति नाना

जहाँ कुमति तहा विपत्ति विधाना!

इसका अर्थ इस प्रकार है जहाँ पर सुमति (आपस में प्रेम नेह) होती है वहाँ पर या वह परिवार विभिन्न प्रकार से सुख की अनुभूति करता है और जहाँ कुमति (ईयो द्वेष घृणा आदि सवेगात्मक तत्व होती है, यहाँ पर विघटन होने से पेशानियों और कष्टों का होना निश्चित है अर्थात् जहाँ पर सकारात्मक संवेग धागे वहाँ पर सुख, सम्पत्ति नद आदि होगा और जहाँ पर नकारात्मक संवेग होंगे वहाँ पर दुख ही दुख होगा!

किशोरावस्था (Adolescence)

किशोरावस्था शब्द अंग्रेजी भाषा के Adolescence शब्द का हिन्दी पर्याय है। Adolescence शब्द का उद्भव लैटिन भाषा से माना गया है, जिसका सामान्य अर्थ है बढ़ना या विकसित होना। बाल विकास की प्रक्रिया भ्रूणावस्था से लेकर जीवनभर चलती है

यही कारण है कि किशोरों की भावनाओं का उपयोग करने वाला समाज और देश आता है और दूसरे देश के युवाओं के लिए भी प्रेरणादायक आर आकर्षक होता है एक संवेदनशील परिवार यह भली भाँति जानता कि किशोर संवेदनशील होता तो सबकी मदद करेगा अथवा संवेदन विहीन होगा तब परिवार विखण्डन करना। इसीलिए किश्वर की संवेदनाओं के महत्व को कौन नहीं जानता है। किशोर ही अच्छे समाज का निर्माता अथवा विनाशक है। इस आधार पर कह सकती हैं कि समाज में जो भी अच्छे लोग होते हैं उनमें संवेदनाएं अधिक होती हैं और दुष्ट लोगों में संवेदनाएँ कम से कम होती हैं। संवेदनाएँ बदलती रहती हैं, इसमें किसी प्रकार का ठहराव नहीं है। सृष्टि के आदिकाल से यही कम चलता आ रहा है और अंतकाल तक चलता रहेगा। कोई इसे रोक नहीं सकता है। जिन्होंने किशोर की संवेदनाओं को पहिचानने में भूल या देर की उन्हें विभिन्न प्रकार के धोखे खाने पड़ते हैं।

आज के युग में किशोर की संवेदनाओं का उपयोग करना बहुत ही जरूरी है। केवल शिक्षित ही नहीं अपितु अशिक्षित वर्ग भी किशोर की संवेदनाओं को भली भाँति समझ रहा है। सही संवेदनाओं के अधिक से अधिक उपयोग करने से ही परिवार और समाज में वैभव प्राप्त हो सकता है। जैसे समाज में कहावत है कि संतोष परमसुखम अर्थात् व्यक्ति को सतुष्टि होनी चाहिए जिससे सुख मिलता है। सतुष्टि अर्थात् धैर्य या शांति। अब मानव को धन तो किसी प्रकार सतुष्टि न होने से वह समय के अति उपयोग से भी कभी थकावट नहीं होती है क्योंकि उसे अब विश्वास हो गया है कि सोचा हुआ काम सुरन्त करने से ही पूरा होगा अन्यथा बदलती हुयी संवेदनाओं में कब क्या हो जाएगा यह कौन जानता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस परिवार में प्रेम, दया, करुणा आदि संवेदनाएँ होती हैं उस परिवार के किशोरों को अच्छा कहा जाता है और जिस परिवार में क्रोध, घृणा, चोरी मारपीट आदि संवेदनाएँ होती हैं उन परिवार के किशोरों को लोग अच्छा नहीं कहते हैं। इसीलिए कह सकती हूँ कि संवेदनाओं का समुचित एवं यथोचित उपयोग न केवल सफलता की कुंजी है जिसे खोने पर पुन प्राप्त करना असम्भव होता है!

किशोरावस्था तीव्र भावनात्मक और व्यवहारिक सम्बन्धी परिवर्तनों का काल होती है। यह परिवर्तन शरीर में उत्पन्न होने वाले कुछ हार्मोन्स के कारण आत हैं, जिनके परिणामस्वरूप कुछ एक ग्रन्थियों एकाएक सक्रिय हो जाती हैं। ये सब परिवर्तन सवेगों के साथ जुड़े होते हैं। किशोर बात बात में अपनी अलग पहिचान का आग्रह करते हैं या विरोध करते हैं। बच्चे की तरह माता पिता पर निर्भर रहने की उपेक्षा प्रौढ़ की तरह स्वतन्त्र रहना चाहते हैं। वे अपने माता-पिता से थोड़ी दूरी बनाने लगते हैं। यदि इस स्थिति में किशोर नकारात्मक सवेगों को अपनाता है तब वह गलत रास्ते पर चलकर समाज के अराजक तत्व के रूप में सामने आते हैं।

आज विश्व में किशोरों और युवाओं की संख्या भारत में सर्वाधिक है। स्वतन्त्र भारत में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं उन सबका प्रभाव हमारे पारिवारिक जीवन पर भी पड़ा है। यह पूर्णतः सत्य है कि पिछले वर्षों की तुलना में किशोरों के विचारों और व्यवहारों में अत्यधिक परिवर्तन देखने को मिलता है अर्थात् लोगों का जीवन स्तर बढ़ा है और मानसिक सोच में बड़ा भारी अन्तर देखने को मिलता है। खान-पान और जीवन शैली बदली है क्योंकि आज शिक्षितों की संख्या तथा जागरूक होते किशोरों की भूमिका महत्वपूर्ण है। शिक्षित किशोरों के विचारों और सबगों का भी विस्तार हुआ है। जिस कारण किशोरों की स्थिति और कार्य प्रणाली में बहुत बदलाव हुआ है। मैंने अपने शोध के लिए निम्न शोध समस्या का चुनाव किया है

किशोरों के जीवन में संवेगों का महत्व

परम्परागत अवधारणा के अनुसार किशोरावस्था तनाव एवं तूफान की अवस्था होती है। जिसमें शरीर और ग्रन्थियों में अत्यधिक परिवर्तन होता है। इन्हीं परिवर्तनों के कारण संवेगात्मक तनाव में वृद्धि होती है। यह वृद्धि किशोरावस्था के प्रारम्भिक वर्षों में बहुत अधिक पायी जाती है किन्तु बाद में कम हो जाती है। किशोरों के संवेग प्रायः तीव्र अनियंत्रित अभिव्यक्ति वाले और विवेक शून्य होते हैं। नव किशोर में छोटी छोटी बातों पर चिड़चिड़ाहट पायी जाती है। वे जल्द ही उत्तेजित हो जाते हैं तथा अपने भावा पर नियंत्रण नहीं रख पाते हैं। यह विशेषताएँ 15-16 वर्ष के किशोरों में परिलक्षित होती हैं। इस अवस्था के किशोर अपने ष्भावों को छिपाने की कोशिश करता है व उदास हो जाता है। 16-17 वर्ष का किशोर अपनी समस्याओं का समाधान शांतचित से करता है।

जीवन में सुख समृद्धि ऐश्वर्य धन दौलत यश नाम सुख व आनन्द की प्राप्ति में सवेगों का असीम योगदान है। अच्छे सवेगों से विभूषित व्यक्ति के चरणों में धन दौलत यश नाम स्वयं ही लोटने लगता है। यहाँ तक कि स्वर्ग से उतरकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश उसकी समस्त इच्छाओं की पूर्ति करने हेतु इस धरा पर है तभी तो कहा गया है

खुदी को कर बुलंद इतना, कि हर तकदीर से पहले!

खुदा बन्दे से पूछे, बता तेरी रजा क्या है!!

अतः स्पष्ट है कि अच्छा विकास से किशोरी के आचरण एव्यवहार में शुद्धता आती है जिससे कार का सुन्दर व्यक्तित्व विकास होता है किसीरों के जीवन में सपेगों का क्या महत्व है। इसे निम्नन्दुओं से समझाने का प्रयास किया गया है

- चरित्र निर्माण में सहायक
- समाजीकरण में सहायक
- जागरूकता के विकास में सहायक
- व्यक्तित्व के विकास में सहायक
- आचरणों के निर्धारण में सहायक
- सुरक्षा की भावना का विकास में सहायक
- सही निर्णय लेने की क्षमता का विकास
- अभीव्रततियों के विकास में

सवेग का अर्थ (Meaning of Emotion)

सवेग का शब्द आंग्ल भाषा के Emotion शब्द का हिन्दी रूपान्तर है इमोशन शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के Emovere नामक शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है शरीर को हिला देना। इस प्रकार सवेग शरीर को हिलाने या उत्तेजित करने वाली प्रक्रिया है। इससे स्पष्ट होता है कि संवेग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मानसिक एवं शारीरिक दोनों प्रकार की प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं। अर्थात् सवेग बालक किशोर/व्यक्ति की वह दशा है जिसमें उसकी शारीरिक स्थिति परिवर्तित होती है तथा यह उत्तेजित महसूस करता/करती है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि सवेग एक चेतन अनुभव (Conscious Experience) है। जिसमें अनेक प्रकार की शारीरिक क्रियायें सम्मिलित रहती हैं। इस में शारीरिक क्रियाओं की अपेक्षा अनुभव को अधिक महत्व दिया है।

कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि शारीरिक क्रियाओं की चेतन अनुभूति (Consciousness awareness of the bodily activities) को संवेग कहते हैं। इस में चेतन अनुभूति की अपेक्षा शारीरिक क्रियाओं को अधिक महत्व दिया गया है। जेम्स एवं लेगे (James and Lange) इसी मत के समर्थक हैं। युडवर्थ ने लिखा है संवेग प्राणी की उत्तेजित तथा तीव्र अवस्था है (Emotion is a move or stirred up state of organism)। इस की व्याख्या करते हुए उन्होंने स्वयं

लिखा है कि संवेग के समय की प्राणी की यह उत्तेजित अथवा तीव्र अवस्था उसको कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। कार्यशीलता के कारण विभिन्न प्रकार के शारीरिक परिवर्तन होते हैं। इस प्रकार इस परिभाषा में प्राणी की मानसिक अवस्था चेतन अनुभव एवं संवेग में होने वाले आन्तरिक एवं बाह्य परिवर्तन (Internal and external bodily changes) दोनों को महत्व प्रदान किया गया है। इस प्रकार बुडबर्थ की दी गयी संवेग की परिभाषा उचित प्रतीत होती है। संवेग को और अच्छी तरह समझने के लिए यदि उसकी कुछ मान्यताओं (Criteria) को प्रस्तुत किया जाय तो अधिक आसानी होगी। सबसे पहले व्यक्ति में संवेग की उत्पत्ति के लिए मनोवैज्ञानिक परिस्थिति का उपस्थित होना आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक परिस्थिति का तात्पर्य ऐसी उत्तेजना के उपस्थित होने से है जिसके प्रति व्यक्ति प्रक्रिया करने लगता है।

संवेग की परिभाषाये (Definitions of Emotion)

- (1) पी०टी० युग-संवेग सम्पूर्ण जीव का वह मूलतः मनोवैज्ञानिक तीव्र उद्वेग है जिसमें कि चेतन अनुभूति व्यवहार एवं जाठरिक क्रियायें संचिहित रहती है।
- (2) बुडबर्थ के अनुसार-संवेग जीव शरीर को उत्तेजित अथवा तीव्र अवस्था है। यह अनुभूति की उस रूप में उत्तेजित अवस्था है जिसमें कि यह व्यक्ति को स्वयं प्रतीत होती है। यह पेशक और ग्रान्थिक क्रिया की गड़बड़ी है जैसा कि बाह्य निरीक्षक को प्रतीत होती है।
- (3) बोरिंग, लैंगफील्ड एवं वील्ड-प्संवग प्रभावात्मक क्रियाओं से इस दृष्टि से मिलते जुलते हैं कि दोनों जीव की सामान्य प्रतिक्रिया मनोवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं और जीव के लिए विशिष्ट प्राणीशास्त्रीय महत्व रखते
- (4) रॉस-संवेग चेतना की यह अवस्था है जिसने भावनात्मकता रागात्मक है तत्व की प्रधानता होती है

किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास (Emotion Development in Adolescence)

किशोरावस्था की अवधि 12 से 21 वर्ष तक होती है। इस अवस्था में किशोर अपने पारिवारिक सम्बन्धों, समाज द्वारा अपेक्षित व्यवहार तथा स्वयं अपने लाभ-हानि के प्रति जागरूक रहता है। इसके साथ वह सामाजिक बन्धन, पारिवारिक सीमाओं, आर्थिक समस्याओं तथा अपनी योग्यताओं एवं कमजोरियों को समझने लगता है। इन सभी बातों का प्रभाव बालक के संवेग प्रदर्शन एवं नियन्त्रण पर पड़ने लगता है। इस अवस्था में बालक सभी संवेग परिपक्व (Mature) होने लगते हैं, किन्तु बाल्यावस्था के समान वह इन संवेगों के प्रदर्शन की मात्रा प्रचुर एवं तीव्र रूप में नहीं करता।

उदाहरण इस अवस्था में बालक क्रोध (Anger) का संवेग हाथ-पैर पटक कर वस्तुएँ या कपड़े फाड़कर या किसी को मार पीटकर प्रकट नहीं करता बल्कि अपने क्रोध को अपनी भाषा (Language) द्वारा या धमी देकर प्रकट करता है। और इसी प्रकार अपन स्नेह (Affection) संवेग का दूसरों के शरीर को स्पर्श के द्वारा प्रकट न करके हसकर या मुस्कराहट द्वारा प्रकट करता है। किशोर एवं किशोरी अपने संवेगों को पृथक-पृथक ढंग से प्रदर्शित करते हैं। किशोर प्रेम (Love) प्रदर्शित करने में शर्माति है तथा भय (Fear) की दशा में उदास हो जाते हैं जबकि किशोरियाँ प्रेम प्रदर्शित करने के लिये प्रायः मुस्कराती ईआर भय की अस्था में वरना या रोना प्रारम्भ कर देती है।

किशोरावस्था में किशोर एवं किशोरियों में अनेक क्रान्तिकारी शारीरिक परिवर्तन होते हैं, जिनके कारण उनमें संवेगात्मक तनाव (Emotional Tension) उत्पन्न हो जाता है। यह तनाव भीतर ही भीतर सुलगता रहता है किन्तु ये नैतिक मन (Super Ego) के विकसित होने के कारण उसकी बाह्य अभिव्यक्ति (External Expression) नहीं होने देते हैं। बर्जोन्सकी ने अपने एक अध्ययन में यह देखा कि किशोरावस्था में बालकों में शारीरिक परिवर्तन के कारण चिन्ता (Anxiety) के भाव पाये जाते हैं।

प्रारम्भिक किशोरावस्था में बालकों का बौद्धिक एवं तार्किक विकास पर्याप्त मात्रा में हो जाता है जिसके कारण सामाजिक नियमों एवं आदर्शों के प्रति अत्यधिक जागरूक एवं चिन्तित रहते हैं। इस अवस्था में माता-पिता के साथ-साथ शिक्षक उनसे अधिक अपेक्षा करते हैं। अतः किशोर किशोरियों आने वाली विस्फोटक परिस्थितियों के प्रति अधिक चिन्तित दिखायी देते हैं।

वस्तुतः किशोर किशोरियाँ प्रायः संवेगात्मक तनाव (Emotional Tension) की स्थिति में रहते हैं और वे इस तनाव का प्रकाशन प्रायः उदासीनता, निराशा विद्रोह आदि के रूप में करते हैं। उपर्युक्त संवेगात्मक विशेषताओं के कारण किशोरावस्था को जीवन का सबसे कठिन काल (The Most Difficult Period of Life) कहा जाता है।

किशोरावस्था में संवेगात्मक जीवन (Emotional Life in Adolescence)

परम्परागत अवधारणा के अनुसार किशोरावस्था तनाव एवं तूफान (Stress and strain) की अवस्था होती है। जिसमें शरीर और ग्रंथियों में अत्यधिक परिवर्तन होता है। इन्हीं परिवर्तनों के कारण संवेगात्मक तनाव में वृद्धि होती है। यह वृद्धि किशोरावस्था के प्रारम्भिक वर्षों में बहुत अधिक पायी जाती है किन्तु बाद में कम हो जाती है। किशोर अपने सामाजिक परिस्थितियों तथा समूह द्वारा पड़ने वाले दबाव एवं सामाजिक प्रत्याशाओं के कारण बहुत अधिक संवेगात्मकता की अनुभूति करता है।

सभी किशोरों में तनाव व तूफान की विशेषता आवश्यक नहीं है। यह सत्य है कि उनमें से अधिकतर समय-समय पर सर्वगात्मक अस्थिरता का अनुभव करते हैं क्योंकि किशोर नये व्यवहार रूपों और नयी सामाजिक प्रत्याशाओं से समायोजन कर रहा होता है। जैसा कि किसी भी आयु में नये अनुभवों से समायोजन करने में होता है। ऐसा करने में कुछ संवेगात्मक तनाव की अभिव्यक्ति अनिवार्य है। यदि संवेगात्मक तनाव स्थायी होता है तो कुसमायोजन के

लक्षण उत्पन्न होते हैं। किशोरी के संयुग प्रायः तीव्र अनियंत्रित अभिव्यक्ति वाले और विवेक शून्य होते हैं। निय किशोर में छोटी छोटी बातों पर निराइड पायी जाती है और वे जल्द ही उत्तेजित हो जाते हैं तथा अपने भावों पर नियंत्रण नहीं रख पाते हैं। अतः यह विशेषताएँ 15 वर्ष किशोर में परिलक्षित होती हैं। 15 वर्षीय किशोर अपने भावों को छिपाने की कोशिश करता है व उदास हो जाता है। 16 वर्ष में किशोर अपनी समस्याओं का समाधान शातचित होकर करते हैं और यह अपने संवेगों पर पूर्ण रूप से नियंत्रण करने की प्रबल इच्छा रखता है।

किशोरावस्था में प्राय वही संवेग पाये जाते हैं जो कि बाल्यावस्था में पाये जाते हैं। किन्तु बालकों के संवेगों से अन्तर उद्दीपनों के प्रकार और अभिव्यक्ति अलग ढंग से होती है। किशोरावस्था के प्रमुख संवेग निम्न हैं

क्रोध (Anger)

किशोरावस्था का क्रोध बाल्यावस्था के क्रोध से भिन्न होता है। दोनों अवस्थाओं में क्रोध की अभिव्यक्ति में कम या अधिक का अन्तर होता है। उनमें क्रोध उत्पन्न करने वाले उद्दीपनों क्रोध की अवधि और अनुक्रियाओं के प्रकार भी अलग-अलग होते हैं। किशोरावस्था में क्रोध उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ अधिकांशतः सामाजिक होती हैं।

भय (Fear)

किशोरावस्था में परिपक्वता के कारण बाल्यावस्था में उत्पन्न भय समाप्त हो जाते हैं और उनके स्थान पर नये प्रकार के भय पाये जाते हैं। जैसे अकेले में जाने का भय, रात में अकेले रहने का भय, सामाजिक परिस्थिति का भय, स्कूल एवं स्कूल विषयों का भय आदि सामान्यतः जब मूल्यों और अनुभवों में परिवर्तन होते हैं तब भय उत्पन्न करने वाली वस्तुओं में भी परिवर्तन हो जाता है। भयों की संख्या और तीव्रता में अन्तर पाया जाता है। 12वें वर्ष बहुत से किशोर यह दावा करने लगते हैं कि इन्हें किसी भी वस्तु से डर नहीं लगता है

आकुलता (anxiety)

आकुलता भय का एक रूप है। आयु में वृद्धि के साथ भय की मात्रा कम होती जाती है। जिसका स्थान आकुलता के रूप में प्रदर्शित होता है। आकुलता वास्तविक वस्तुओं से न होकर काल्पनिक चीजों से होता है। जैसे-जैसे भय की संख्या व तीव्रता घटती जाती है त्या त्या किशोर उनके स्थान पर आकुलताएँ अपनाता जाता है, जो कि वास्तव में काल्पनिक होती है। भय की तरह आकुलताएँ भी अधिकतर किशोर के अनुभव के उन क्षेत्रों से सम्बन्धित होती हैं जो उसके लिए महत्वपूर्ण हाल हैं

ईर्ष्या (Jealousy)

ईर्ष्या वास्तव में एक शोषवाचित संवेग माना जाता है किन्तु किशोरावस्था में भी यह तीव्र और भलीभाँति छिपी तौर पर होता है। जैसे ईर्ष्यालु बालक वैसे ईर्ष्यालु बालक वैसेईया किशोर भी प्रिय व्यक्तियों से अपने सम्बन्धी के बारे में स्वयं को असुरक्षित अनुभव करता है। किशोर बालक की ईर्ष्याओं का सम्बन्ध उन व्यक्तियों से होता है जो अपेक्षा अधिक ख्याति या उपलब्धि अर्जित कर लेता है।

स्नेह (Affection)

किशोरों का स्नेह उन लोगों में केन्द्रित होता है जिनके साथ उनका सुखद सम्बन्ध होता है, और जिनसे उसे प्यार की प्राप्ति होती है तथा सुरक्षा की भावना विकसित होती है। सामान्यतः बालक बाल्यावस्था में अपने परिवार वालों से जितना अधिक स्नेह होता है उतना किशोरावस्था में नहीं होता है। क्योंकि इस समय अप्रत्यक्ष रूप से माता-पिता से तनाव उत्पन्न हो जाता है घर के बाहर के लोगों से कुछ समलिंगियों से ऐसे प्रीट से जो वीर-पूजा के भाव को जाग्रत करें तथा कुछ विषमलिंगीय व्यक्तियों से स्नेह का सम्बन्ध अधिक सामान्य होता है। बालक की तुलना होती है। में किशोर का जिन लोगों से प्रगाढ़ स्नेह होता है, उनकी संख्या कम होती है।

हर्ष (Pleasure)

हर्ष जिसके हलके रूप को प्रसन्नता या खुशी अथवा सुख के नाम से जाना जाता है। एक सामान्य संवेग है। किशोर को हर्ष तब होता है, जब उसका अपने कार्य से और उन सामाजिक परिस्थितियों से जिनके साथ उसका अच्छा समायोजन हो जाता है। जब किशोर किसी परिस्थिति के हास्यापद पहलू को देखता है जब आकुलता क्रोध ईर्ष्या के बाद उसकी अवरुद्ध संवेगात्मक शक्ति मुक्त हो जाती है तथा जब किशोर सफलतापूर्वक किसी कार्य को निष्पक्ष करने के बाद अपनी श्रेष्ठता का अनुभव करता है तो हर्ष नामक संवेग की अनुभूति होती है

जिज्ञासा (Curiosity)

जब बालक किशोरावस्था में पर्दापण करता है तब उसकी स्वाभाविक जिज्ञासा बाहरी प्रतिबन्धों से दब चुकी होती है अर्थात् बचपन में जिज्ञासा को उद्दीप्त करने वाले जितने उद्दीपन होते हैं ये कम हो जाते हैं। फिर नवकिशोर के जीवन में नयी चीजों व परिस्थितियों आती रहती हैं जो कि उसकी सि को जाग्रत

करती रहती है। किशोर का विषमलिंगीय व्यक्तियों से सन्दर्भ में अनुभव नया होता है तथा काम सम्बन्धी समस्त क्रियाकलाप व स्त्री पुरुष के सम्बन्ध उसकी जिज्ञासा को उद्दीपन प्रदान करते हैं।

प्रेम (Love)

बहुत से मनोवैज्ञानिक प्रेम या स्नेह या नमता को एक जन्मजात सग बताते हैं किन्तु बाद में इस सम्बन्ध में किये गये प्रयोगों से पता चलता है कि स्नेह एक जन्मजात सवेगन होकर शिक्षण तथा सामाजिक वातावरण के द्वारा अर्जित किया जाता है। छोटी आयु में बालक असहाय होने के कारण केवल उन्हीं व्यक्तियों तथा वस्तुओं से सेट करता है जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। प्रारंभ में उसे सनीय तथा निर्णय वस्तुओं में कोई अन्तर पतीत नहीं होता है। 5-6 महीने की आयु में बालक के परिवार के उनके प्रति स्नेह करने लगता है जो बालक का विशेष ध्यान रखता है।

चिन्ता (Anxiety)

चिन्ता किशोर या व्यक्ति की ऐसी मन स्थिति है जिसमें वह भावी चिपरियों की आशंका कर बेचनी तथा कष्ट का अनुभव करता है। चिन्ता की उग्रता भय को उग्रता से भिन्न होती है। चिन्ता की उग्रता का कारण स्वयं व्यक्ति की मानसिक स्थिति से रहता है और इस प्रकार इसका वातावरण से कोई सम्बन्ध नहीं है जबकि भय को उग्रता का कारण कोई बाह्य वस्तु होती है जिससे व्यक्ति को भावी आपत्ति अनुभव होती है। इस प्रकार चिन्ता एक काल्पनिक गये है। कल्पना पर आधारित होने के कारण प्रायः किशोर अधिक चिन्तित रहते हैं क्योंकि किशोर का मानसिक विकास न होने के कारण चिन्ता नहीं होती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- उपाध्याय आनन्द कुमार, 2017, सामाजिक अनुसंधान एक परिचय, ए. एस. आर. पब्लिकेशन्स, लखनऊ
- जनगणना रिपोर्ट, 2001, जनगणना निदेशालय, उ०प्र०, लखनऊ।
- Jahoda Marie] Claire Seltiz & Others, उद्धृत प्रो० श्यामधर सिंह, 2009, वैज्ञानिक सामाजिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण के मूलतत्व, सपना अशोक प्रकाशन वाराणसी।
- मुकजी रविन्द्र नाथ 1996 सामाजिक शोध व सांख्यिकी विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
- वाजपेयी डा० एस०आर०. 2000, सामाजिक अनुसंधान तथा सर्वेक्षण, किताब घर मेस्टन रोड, कानपुर
- शर्मा विरेन्द्र प्रकाश, 1999 रिसर्च मेथडालाजी पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
- सिंह प्रो० श्यामधर, 2009, वैज्ञानिक सामाजिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण के मूलतत्व सपना अशोक प्रकाशन वाराणसी।

भारत की विदेश नीति पड़ोसी देश के संदर्भ में

डॉ० अरविन्द नेत्र पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, सतीश चन्द्र कालेज, बलिया (उत्तर प्रदेश)

भारत के प्रधानमंत्री मोदी ने अपने प्रथम कार्यकाल 2014 में शपथ ग्रहण समारोह में दक्षिण एशियाई सभी पड़ोसियों को आमंत्रित करके अपने 'पहले पड़ोसी की नीति' को घोषित किया और यह दिखाया कि उनकी सरकार सभी के साथ सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बनाना चाहती है। वह अपने को केवल दक्षिण एशिया तक ही सीमित नहीं रखे बल्कि वे अपना विस्तार दक्षिण पूर्व एशिया तथा पश्चिमी एशिया या मध्यपूर्व तक ले गए जो वास्तव में एशिया का भौगोलिक विस्तार है। भारत की विदेश नीति को पुनर्संरचित करते हुए बिना किसी मौलिक बदलाव आदर्शों तथा सिद्धांतों में किये उन्होंने अपने लक्ष्यों को दर्शाया। दुबारा लोकसभा में ज्यादा जनादेश से सत्ता मिलने के बाद उन्होंने अपनी विदेश नीति को अधिक क्षमता से दर्शाया, जैसकि सर्जिकल स्ट्राइक पाकिस्तान में करके या म्यांमार में। बिना अमेरिका या चीन के दबाव में आये अपने राष्ट्रीय हितों को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने अपनी वरियता दी है। यही कारण है कि उन्होंने S-400 वायु सुरक्षा सिस्टम को निरस्त करने से इंकार कर दिया, जो रूस से किया गया था और अमेरिका ऐसा न करने का दबाव बना रहा था और इसके बाद सफलतापूर्वक दूसरे चन्द्रयान अभियान को अपने शक्तिशाली रॉकेट से शुरू किया। इन सारे अन्तरविरोधों के बाद अन्य विषय जैसे व्यापार तथा कार्बन इमिशन आदि पर विवाद बना हुआ है। इसी तरह हाल ही में भारतीय संविधान से धारा 370 तथा 35ए जो जम्मू कश्मीर को विशेष दर्जा से सम्बंधित था, उसे हटाया जाना पाकिस्तान तथा चीन के लिए प्रतिकूल है और विश्व के मुस्लिम देशों के लिए भी। जो हमेशा भारत की तुलना में पाकिस्तान के ऊपर अपना ध्यान रखते हैं।

विश्व में हथियारों तथा गोला बारूद का उद्योग जो पश्चिमी विश्व के विभिन्न देशों में चलता है वे इस बात से निराश हैं कि आतंकवाद को समाप्त हो जाएगा तो आतंकी तथा कट्टरपंथी उनके उत्पादों को खरीद नहीं पायेंगे जिससे उनकी आर्थिक क्षति होगी तथा उनका लाभ कम होगा। विश्व की तरह दक्षिण एशियाई क्षेत्र का परिदृश्य में जो बदलाव आ रहे हैं उसका प्रभाव भारत की विदेश नीति पर भी पड़ेगा जिसे आने वाले वर्षों में हम देख सकते हैं। वर्तमान भारतीय विदेश नीति जो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में चल रही है उसमें भारत को मजबूत बनाने का प्रयास किया जा रहा है जिससे इसमें नवीनता, गतिशीलता, ऊर्जा तथा ऊंचा स्तर की विदेश नीति का निर्माण विश्व में होगा जो यथार्थवाद पर आधारित होते हुए भी आदर्शवाद को ओझल नहीं करेगा क्योंकि उसमें शांति, अहिंसा, मित्रता तथा सहयोग तथा सार्वभौम नैतिकता के नैतिक मूल्य भी होंगे।

भारत की मित्रतापूर्ण तथा सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों को विशेष रूप से दक्षिण एशिया के सभी पड़ोसी देशों के साथ-साथ एशियाई क्षेत्र के अन्य सम्प्रभु साझेदारों के साथ बनाकर देश को विश्व में महान व अग्रणी बनाना है। नव निर्वाचित मोदी सरकार ने सबसे पहले पड़ोसी की नीति को आधार बनाकर अपने विदेश नीति को शुरू किया है। भारत स्पष्ट रूप से सभी पड़ोसी देशों के साथ जुड़ रहा है और विश्व के साथ भी, शांति प्रेम के मार्ग पर चलते हुए नजदीक आ रहा है। भारत ने अपने पड़ोसियों के साथ-साथ पूरे विश्व में सच्चे अर्थों में लोगों के अन्दर दिलों व दिमाग में अपना स्थान बनाया है।

पड़ोसी देश में

मालदीव और पाकिस्तान जैसे पड़ोसी देशों से संबंधों के अतिरिक्त भारतीय सरकार ने अपने चार साल की कार्यावधि के दौरान सबसे अधिक पड़ोसी देशों से संबंधों के प्रति ध्यान केन्द्रित करने के लिए प्राथमिकता दी है और उन राष्ट्रों से भी संवाद कायम करने की कोशिश जो राष्ट्र वैचारिक तौर पर भारत के खिलाफ रहे हैं। यह प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के व्यक्तिगत या निजी तौर पर कूटनीतिक शैली का ही असर रहा जिससे कि भारत की साख और छवि दक्षिण एशिया और समूचे विश्व में बढ़ी। स्त्रातेजिक मामले के विशेषज्ञ ब्रम्हा चौलानी ने कहा- “यह सही है कि मोदी जी ने कूटनीति के अलावे अपनी व्यक्तिगत दक्षता का भी परिचाय दिया है। उन्होंने भारत के कूटनीति पर अपनी छाप छोड़ी और मुख्यतः द्विपक्षीय शिखर वार्ता पर ही भरोसा किया और इस तरह से सहयोग के नये द्वार खुले।” हालांकि भारत ने सबसे पहले विदेशनीति के अंतर्गत पड़ोसी देशों पर ध्यान केन्द्रित किया लेकिन फिर भी परिणाम संतोषप्रद नहीं रहे। भारत की ‘सबसे पहले पड़ोसी देश’ नीति में कुछ मिली जुली चीजें रही। आज भी भारत पड़ोसी देशों के तरफ से चुनौतियां झेल रहा है। पाकिस्तान की तरफ से सीमापार आतंकवाद बदस्तूर कायम है। नेपाल के साथ भी भारत के रिश्तों में बर्फ जमी है। केवल बांग्लादेश के साथ भारत के रिश्तों में उल्लेखनीय सुधार रहा। प्रधानमंत्री के बांग्लादेश की यात्रा के दौरान सर्वाधिक उल्लेखनीय उपलब्धि यह रही कि लंबे समय से चली आ रही भू-सीमा पर सहमति बन गई।

इसके अतिरिक्त कुछ और सहमतियों पर हस्ताक्षर हुए जिसमें दोनों देशों (बांग्लादेश और भारत) के लाभ सन्निहित थे। बांग्लादेश बीमा विकास एवं नियामक प्राधिकरण ने भारतीय जीवन बीमा निगम (भारत सरकार के सार्वजनिक उपक्रम) को अनुमति दिया कि वो बांग्लादेश में बीमा व्यवसाय करें। बांग्लादेश में भारतीय जीवन बीमा निगमको व्यवसाय करने के लिए संयुक्त उपक्रम बांग्लादेश के बीमा कम्पनियों के साथ बनाने को कहा गया।¹ दोनों देशों ने व्यापार सहमतियों का नवीनीकरण किया और आपस में मेमोरेण्डम ऑफ अण्डरस्टैंडिंग (MoU) तैयार किया ताकि चितगांग एवं मोगला पोर्ट का व्यापार के हित में उपयोग किया जा सके। परिणामतः भारतीय जलपरिवहन के पोत सीधे इस बंदरगाह पर आ-जा सकते हैं। इससे बांग्लादेश और भारत उत्तरपूर्वी हिस्सों के बीच निकटता आएगी। इससे व्यापारिक मूल्यों में घटोत्तरी आएगी क्योंकि वर्तमान में कोई भी मालवाहक जलपोत कोलंबो या सिंगापुर से होकर

बांग्लादेश पहुंचा करते हैं। इससे व्यापारिक मूल्यों में अनावश्यक वृद्धि होती रहती थी और उसका खमियाजा व्यापारियों को भुगतना पड़ता था। दोनों देशों ने चार सहमतियों पर हस्ताक्षर किया जिसमें ढाका-शिलांग और गुवाहाटी के लिए बस सेवा और कलकत्ता-ढाका-अगरतला रास्ते पर भी बस सेवा उपलब्ध कराना शामिल था।

इस पारस्परिक सहमति से विशेषकर भारत के नार्थ ईस्ट (उत्तर पूर्व) के लोग लाभान्वित होंगे। इस यात्रा में समय भी कम लगेगा और पर्यटन को बढ़ावा मिलेगा। जहां तक सैन्य एवं सुरक्षा का प्रश्न है, इसके लिए MoU पर हस्ताक्षर किए गए। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों देशों के तटरक्षक मानव-व्यापार को रोकेंगे, तस्करी पर प्रतिबन्ध लगेगा और जाली नोटों के आवागमन पर लगाम कसेगी। इन दोनों देशों ने आतंकवाद के उन्मूलन के संकल्प को दोहराया और इसके लिए परस्पर सहयोग करने की भी बात कही। व्यापार एवं निवेश की संभावनाओं को देखते हुए भारत ने 2 बिलियन डालर के साख नीति की घोषणा बांग्लादेश के लिए जिसका प्रयोग ढांचागत विकास, ऊर्जा, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में किया जाएगा। इस 2 बिलियन डालर का निवेश पहले से किए जा रहे एक बिलियन डालर के निवेश के अतिरिक्त होगा। वाकई में निःसंदेह यह समझौता दोनों देशों के लिए फायदेमंद रहा।

इसी तरह भारत देश ने भूटान के साथ भी संबंध सुधारने पर जोर दिया। भारत ने भूटान के प्रति अपनी गहरी प्रतिबद्धता जारी की क्योंकि सन् 2007 में भूटान और भारत में हुई मैत्रीपूर्ण संधि में दोनों देशों ने पारस्परिक राष्ट्रीय विषयों पर सहयोग करने पर रजामंदी व्यक्त की थी। सन् 2018 में भारत और भूटान के मध्य कूटनीतिक रिश्तों के स्थापना की गोल्डेन जुबिली मनाई गई। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने भूटान की पहली बार यात्रा की और एक नारा दिया- 'भारत भूटान के लिए है और भूटान भारत के लिए है।'

वास्तव में प्रधानमंत्री श्री मोदी ने भारत के पड़ोसी राष्ट्रों को प्रमुखता दी। इसीलिए उन्होंने शपथग्रहण के अवसर पर सन् 2014 में साऊथ एशिया के शासनाध्यक्षों एवं राष्ट्राध्यक्षों को आमंत्रित किया। बाद में उन्होंने अपना पूरा ध्यान बे ऑफ बंगाल इनिशियेटिव फॉर मल्टी सेक्टरल टेक्निकल एण्ड इकोनॉमिक कोऑपरेशन (बिम्स्टेक) और बांग्लादेश, भूटान, इंडिया, नेपाल (ठठण्ड) समूहों की तरफ केन्द्रित किया। प्रो0 सचिन चतुर्वेदी (डायरेक्टर जनरल ऑफ देलही बेस्ड थिंक टैंक: दी रिसर्च एण्ड इंफॉर्मेशन सिस्टम फॉर डेवलपिंग कन्ट्रीज) ने कहा- “भारत सरकार ने 8 बिलियन से अधिक की साख पिछले चार सालों में विभिन्न विकास परियोजनाओं पर खर्च किया है।”³

पड़ोसी देशों से संबंध सुधारने के बाद भी, पाकिस्तान के साथ भारत के रिश्तों में थोड़ा भी फर्क नहीं पड़ा है। शपथ ग्रहण के मौके पर प्रधानमंत्री नवाज शरीफ को भारत आमंत्रित करने से लेकर पाकिस्तान प्रधानमंत्री नवाज शरीफ के जन्मदिन के मौके पर प्रधानमंत्री श्री मोदी के अचानक पाकिस्तान यात्रा तक; पठानकोट हमले से लेकर उड़ी हमले तक; कश्मीर में पाकिस्तान समर्थित आतंकवाद से लेकर नियंत्रण रेखा पर सर्जिकल स्ट्राइक तक कुछ भी परिवर्तन नहीं दिखाई देता है। हाल ही में इमरान खान के नेतृत्व में पाकिस्तान में नवनिर्वाचित सरकार अस्तित्व में आई। प्रधानमंत्री इमरान खान एक प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी रहे हैं और पाकिस्तानी क्रिकेट टीम का कई बार नेतृत्व भी किया है। लेकिन उग्रवादियों के प्रति नरम रूख रखने के कारण इनको 'तालिबान खान' से भी नवाजा गया है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि सरकार बदलने से भी कुछ नहीं बदला है। पाकिस्तान हमेशा से ही क्षेत्र में शांति स्थापित होने में हमेशा से खलल डालता रहा है। निश्चित रूप से ये सारी चीजें मोदी सरकार के लिए चुनौती रहे हैं।

निष्कर्ष-

भारत का इस समय इस क्षेत्र में जो छवि बनी है वह ठीक वैसे ही जिसे पिछली शताब्दी में एक विद्वान ने कहा था 'यह सही है कि भारत के छोटे-छोटे पड़ोसी समय-समय पर भारत के साथ चीनी कार्ड खेलते हैं, जिसकी वजह से आक्रामक गतिविधियां नहीं दिखती बल्कि रचनात्मक धर्मशाली कूटनीति का ही प्रदर्शन किया जाता है। यह बात भी स्वीकार्य है कि भारत के पास इतनी भौतिक क्षमता नहीं है कि वह चीन के साथ जीरो-सम खेल इस क्षेत्र में खेल सके। इसलिए बिना किसी संकोच के इस क्षेत्र में अपने आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कूटनीति ही एकमात्र सहारा है।' लेकिन धीरे-धीरे नयी दिल्ली को भी लग रहा है कि अब हम विश्व की एक प्रभावशाली आर्थिक ताकत बन गये हैं और अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के महत्वपूर्ण सदस्य बन गए हैं जिससे वैश्विक मामलों में हमारी महत्वपूर्ण भूमिका बन गयी है। जिससे छोटे पड़ोसी भारत की ओर आकर्षित हो रहे हैं और भारत सरकार को भी उनकी भावनाओं तथा राष्ट्रीय वरियताओं का सम्मान करना चाहिए जिसमें पुराने सम्बन्ध बाधा नहीं पैदा करें, इसलिए नयी ऊर्जा के साथ नये संबंधों को तैयार करना चाहिए। मोदी की नयी सरकार पड़ोसी देशों के साथ नजदीकी व शांतिपूर्ण मैत्री संबंधों को लेकर आगे बढ़ रही है न केवल दक्षिण एशिया के साथ बल्कि विश्व के सभी देशों के साथ।⁴ मोदी के नेतृत्व में भारत की विदेश नीति हमारे राष्ट्रीय हितों को मजबूत बनाने के साथ-साथ हमारे सभी क्षेत्रीय सहयोगियों को भी मजबूती दे रही है जिससे शांति, स्थिरता तथा सुरक्षा का वातावरण दक्षिण एशिया के अन्दर और पूरे एशिया के अन्दर तैयार होगा। अन्त में, भारत को सामुद्रिक सुरक्षा की मशीनरी तैयार करके विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं, समाजों, राजनीतियों, तथा सैन्य लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सभी क्षेत्रीय साझीदार देशों के साथ मिलकर काम करना होगा। जिसमें न केवल एशिया को लाभ मिलेगा बल्कि संपूर्ण विश्व ही लाभान्वित होगा। यह संभव है क्योंकि मानव प्रयास से कुछ भी असंभव नहीं है।

संदर्भ

- 1 Lt. Gen Gautam Banarjee, "Strategic Discourse on the people's Republic of China: Military power and politics, Pentagon Press, Vivekanand International Foundation, New Delhi, 2017
- 2 Paul R. Virothi, Mark V. Kauppi, "International Relations and world politics: Security, Economy, Identity". Dorling Kinderley India Pvt. Ltd., New Delhi 2007
- 3 T.N. Kaul, "Diplomacy in peace and war Recollection and Reflection" Gyan Publishing House, New Delhi 2016
- 4 Shori, A. K. (2017), "NAM Needs Alignment Check", *South Asia Politics*, New Delhi, Vol. 16, No. 8, December, PP. 12-16.

चीन की पाकिस्तान में रूचि

डॉ० धर्मेन्द्र कुमार उपाध्याय

सहायक प्रोफेसर- सैन्य विज्ञान विभाग, एल0एस0एम0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)

सन् 1949 में पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाईना का गठन होने पर पाकिस्तान ने उत्साह से लबरेज होकर स्वागत किया क्योंकि अब एशियन देश के रूप में आजाद होकर किसी राष्ट्र ने विदेशी संप्रभुता से मुक्ति पाई थी। कमोबेश चीन में नागरिक संघर्ष का समापन हो गया। पाकिस्तान ऐसे देशों में था जिसने चीन में स्वतंत्र सरकार के गठन होने पर मान्यता प्रदानकी। चीन और पाकिस्तान में पहले तो संबंध की शुरुआत उदासीन स्तर पर रही। केवल औपचारिक रूप में ही व्यापार संबंध निर्मित हुए। लेकिन इसी समय कुछ ऐसे तनाव बिन्दु भी रहे जिससे चीन और पाकिस्तान दोनों ही प्रभावित रहे। इन तनावों एक पाकिस्तान की असफलता रही, जब वो संयुक्त राष्ट्र में चीन की सदस्यता का समर्थन नहीं पाया। इसके पीछे कारण यह था कि पाकिस्तान का अमेरिका के साथ गठबंधन हो चुका था।

चीन और पाकिस्तान दोनों के लिए अपरिहार्य था कि वो संबंधों का निर्वहन करें। लेकिन पिछले दो दशकों से इनमें प्रगाढ़ता दिखाई दे रही थी। चीन और पाक के मध्य संबंधों के लिए उनके अपने परस्पर हित जिम्मेदार थे। पाकिस्तान के लिए चीन सदाबहार मित्र है। चीन भी पाकिस्तान के प्रति समय-समय गंभीर जिम्मेदारी निभाता रहा है। चीन और पाकिस्तान संबंधों में जान तब आई, जब भारत और चीन के मध्य सन् 1962 में युद्ध हुआ। इसके अलावे सन् 1915 एवं सन् 1971 में भारत और पाकिस्तान के युद्ध के समय भी चीन और पाकिस्तान के रिश्तों में सकारात्मकता दिखाई दी। पाकिस्तान का विदेशनीति में अचानक महत्वपूर्ण मोड़ तब आया, जब सन् 1962 में भारत और चीन के बीच युद्ध ठन गई। इस समय दोनों देशों ने भारत के खिलाफ अपने दरम्यान सर्वनिष्ठ चीजें देखीं। सन् 1962 में भारत और चीन के युद्ध के पहले अमेरिका ने पाकिस्तान के साथ विचार विमर्श करने पर सहमति व्यक्त किया। लेकिन सन् 1962 में युद्ध के समय अमेरिका ने इंग्लैण्ड के साथ 120 मिलियन यू0 एस0 डालर की सैन्य सहायता भारत भेज दिया। लेकिन इस मामले में पाकिस्तान की कोई सलाह नहीं ली गई। इस समय अमेरिका ने पाकिस्तान को हथियार आपूर्ति नहीं की। अतः सन् 1962 के कटु अनुभव ने पाकिस्तान को विवश किया कि वो अब विकल्प की तलाश शुरू कर दें।

सन् 1962 में भारत और चीन के युद्ध के बाद पाकिस्तान और चीन ने सौहार्द्रपूर्ण संबंध विकसित कर लिए और एक दूसरे के साथ कई एक मुद्दों पर आम सहमति कायम कर दी। इनके मध्य व्यापार और वायु परिवहन सहमति बन गई। मार्च सन् 1965 में पाकिस्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति ने बीजिंग की यात्रा की। इस दौरान चीन ने पाकिस्तान को समर्थन का वायदा, यदि भारत के तरफ से किसी भी तरह के आक्रमक रवैया अपनाए जाते हैं। बाद में जब पाकिस्तान ने सन् 1965 में भारत के साथ युद्ध में प्रवेश किया, तो पाकिस्तान और चीन स्वतः एक दूसरे के नजदीक आ गए, जैसे कि लग रहा था कि मानों दोनों देश एक हो और उनकी समस्याएँ भी एक हो। बाद में चीन और पाकिस्तान ने भारत की ताकत का मुकाबला करने के लिए एका प्रदर्शित किया। चीन और पाकिस्तान के बीच मजबूत बंधन से दोनों ही देशों को फायदा हुआ। पाकिस्तान चीन की चिरप्रतिक्षित महत्वाकांक्षा की पूर्ति कर रहा था कि अब चीन के लिए एशियाई देशों से संबंध निभाना आसान हो गया। इससे भारत में रूस के बढ़ते प्रभाव का मुकाबला करने में भी आसानी थी। ऐसा भी महसूस किया गया कि सन् 1965 में भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय चीन ने पाकिस्तान का भरपूर साथ दिया।

चीन ने भारत के खिलाफ कड़ा रुख लिया और भारत के निर्णय की आलोचना की क्योंकि भारत को पंजाब में युद्ध भड़काने के लिए जिम्मेदार मानता था। उसने भारत को तीन दिन का मोहलत दिया ताकि वो सिक्किम-चीन सीमा से अपनी सैन्य गतिविधियों को वापस ले लें। अमेरिका ने इस मामले में मध्य मार्ग अपनाया और भारत तथा पाकिस्तान को सैन्य आपूर्ति रोक दी। हालाँकि अमेरिका ने सन् 1959 के सहयोग से संबंधित द्विपक्षीय समझौते की शर्तों का उल्लंघन किया। लेकिन उसने अपनी स्थिति और दृष्टिकोण को न्यायोचित ठहराया क्योंकि उसे समझ में नहीं आ रहा था कि किसका समर्थन किया जायें। पाकिस्तान अमेरिका के द्वारा लिये जा रहे निर्णय से सदमे में था क्योंकि वो उसी पर पूरी तरह आश्रित था। लेकिन सन् 1965 के युद्ध के बाद चीन हथियारों का मुख्य आपूर्तिकर्ता हो गया। सन् 1971 के भारत और पाकिस्तान युद्ध में चीन ने फिर सन् 1965 वाली स्थिति ले ली। हालाँकि पाकिस्तान विश्व राजनीति के संदर्भ में चीन की नीतियों का कायल रहा। लेकिन चीन ने कभी यह इच्छा व्यक्त नहीं की कि पाकिस्तान के आंतरिक मामलों में दखलंदाजी किया जाय। सन् 1971 में भारत और सोवियत संघ के बीच मैत्री पर हस्ताक्षर हुए। इससे दक्षिण एशिया की राजनीति में अस्थिरता व्याप्त हो गई। इससे सोवियत संघ और चीन की स्थिति उदासीन हो गई। सन् 1971 में भारत और पाकिस्तान के युद्ध के समय, हालाँकि चीन ने भारत की आलोचना की थी, लेकिन पाकिस्तान को भी उसने सीमित सहायता ही पहुँचाई। पाकिस्तान के लिए यह काफी निराशाजनक रहा क्योंकि वह चीन पर ही पूरी तरह निर्भर था। लेकिन विश्व राजनीति में हो रही घटनाओं पर नजर रखते हुए पाकिस्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति श्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने चीन के साथ किसी भी तरह के संघर्ष को आगे नहीं बढ़ाया, बल्कि उन्होंने चीन के साथ आपसी सैन्य सहमति का प्रस्ताव सामने रखा। लेकिन चीन ने इसे तुरंत खारिज कर दिया। लेकिन जब सन् 1974 में भारत ने अपना पहला परमाणु परीक्षण किया तो फिर चीन और पाकिस्तान के संबंध पुनः पटरी पर आ गए। चीन ने पाकिस्तान के सुझाव पर ध्यान दिया तथा वायदा भी किया कि वो पाकिस्तान को पूर्ण समर्थन जारी रखेगा।

पाकिस्तान से अपने संबंध को सुधारने की कवायद में चीन ने पाकिस्तान को सन् 1974 तक साठ मिग-19 लड़ाकू विमान, 150 टैंक और अन्य हथियार भेजे। इसके अलावे सन् 1979 में दिसंबर के महीने में इसके संबंधों में विस्तार तब दिखा जब अफगानिस्तान में सोवियत संघ की सेना ने प्रवेश किया। प्रारंभ में चीन और पाकिस्तान के संबंध तनावपूर्ण रहे, लेकिन बाद में संबंध पुनः सामान्य हो गये क्योंकि पाकिस्तान ने अफगान में सोवियत समर्थित सरकार का समर्थन नहीं किया। पाकिस्तान ने मुजाहिदीनों को अनुमति दिया ताकि वो उनकी धरती का इस्तेमाल अपनी गतिविधियों के लिए करें। हालाँकि इस बात के पुख्ता प्रमाण हैं कि चीन ने उद्धार के मुस्लिमों के साथ कठोर बर्ताव किया क्योंकि इन मुस्लिमों ने चीन के शासन की मुखालफत की। लेकिन फिर भी चीन ने मुजाहिदीनों को जिस तरह के समर्थन दिए, उसको समझना मुश्किल है। बाद में, सन् 1988 के दौरान पाकिस्तान ने चीन के साथ दो सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किए जिससे पाकिस्तान ने ऐसा कभी सोचा नहीं था। सन् 1989 में दोनों देशों ने सैन्य सहयोग सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किए। इससे चीन पाकिस्तान का मुख्य आपूर्तिकर्ता हो गया। इसी समय भारी यात्रा में चीनी हथियार पाकिस्तान को बेचे गए। सन् 1990 के उत्तरार्द्ध में भारत और पाकिस्तान के दौरान व्यापक नाभिकीय परीक्षण संबंधी सहयोग विकसित होने से निश्चित रूप से चीन और पाकिस्तान के संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। पाकिस्तान का चीन के साथ नाभिकीय परीक्षण संबंधी सहयोग सन् 1980 एवं 1990 के पूर्णार्द्ध में सर्वाधिक रहा।

चीन और पाकिस्तान के हालिया घटनाक्रम में यह अनुभव किया गया कि भारी चीनी निवेश किए गए। जिससे इनके रिश्तों में प्रगाढ़ता आई। हालाँकि चीनी निवेशों के प्रकार को लेकर कई तरह के असमंजस और आशंका व्याप्त थी, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि इन सारी घटनाओं से पाकिस्तान और चीन के दरम्यान नजदीकियाँ बढ़ी। ऐसा माना जाता है कि यदि ये सारी परियोजनाएँ निर्धारित समय में पूरी हो गई तो दक्षिण एशियाई क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन दिखाई देगा। भारत और चीन के बीच मुख्यतः दो परियोजनाएँ हैं, जिसमें परिवहन और ऊर्जा भी शामिल हैं। परिवहन के विकास के लिए कुछ ऐसी भी योजनाएँ हैं जिनकी लागत 12 मिलियन यू0 एस0 डालर है। इसमें रेल संबद्धता भी शामिल है। इसके अलावे कराकोरम हाईवे भी चीन के सौजन्य से चल रही एक प्रमुख परियोजना है। ग्वाडर एयरपोर्ट में 125 मील का एक सुरंग भी विकसित किया जा रहा है जो कई तरह के राजमार्गों को जोड़ता है, इसमें कराची-लाहौर मार्ग भी शामिल है। पाकिस्तान के लिए ये सौदेबाजी लाभदायक है क्योंकि इससे देश का परिसंरचनात्मक विकास हो रहा है। लेकिन चीन को भी ग्वाडर के विकास से लाभ है क्योंकि भारतीय सागर पर बीजिंग की पकड़ मजबूत हो जाएगी।

हालाँकि चीन और पाकिस्तान के मध्य द्विपक्षीय संबंध कई गुना विकसित हुए, लेकिन फिर भी पाकिस्तान की धरती के कुछ हिस्सों में चीन की उपस्थिति को लेकर नाराजगी रही। हाल ही में पाकिस्तान के कराची में चीन के राजदूत पर तीन बन्दूकधारियों के द्वारा कातिलाना हमला हुआ। इस घटना में चार लोग मारे गए। हालाँकि दूतावास के भीतर के कर्मचारी को कोई चोट नहीं आई। फिर भी चीन के विदेश मंत्रालय ने पाकिस्तान में चीनी नागरिकों की सुरक्षा के लिए विशेष कदम उठाए। इसके बाद इस हमले की जिम्मेदारी बलूचिस्तान लिबरेशन आर्मी ने अपने सिर पर ली। चीनी परियोजना पर लगातार हो रहे हमले का यह भी एक हिस्सा था। इसके पीछे कारण यह था कि शायद बलूचिस्तान के लोगों को उनके धरती पर चीन के बढ़ते कदमों के निशान मंजूर नहीं थे। चीन लगातार पाकिस्तान की क्षमता पर भरोसा जताता रहा। हालाँकि पाकिस्तान में चीन की बढ़ती रूचि लगातार निशाने पर रही। बलूचिस्तान पाकिस्तान का अत्यंत पिछड़ा हिस्सा है, जबकि यहाँ का क्षेत्र प्रचुर खनिज संसाधनों – गैस और कोयले से भरपूर है। बलूची लोगों का मानना है कि यह इस्लामाबाद की दमनकारी नीति है और वो कभी भी यहाँ के लोगों के उनके हक और हुकूक नहीं देता है। पाकिस्तान की सेना और बलूचिस्तान के लोगों में झड़पें हुआ करती हैं। हालाँकि बीजिंग के पास कई समस्याएँ एवं चुनौतियाँ हैं, फिर भी इसने 'बेल्ट एंड रोड इनिशियेटिव' जैसी महत्वाकांक्षी योजनाएँ शुरू की ताकि चीन के जिजियांग क्षेत्र से अरब सागर की संबद्धता कायम हो सकें। यह एक ऐसी परियोजना है जिसमें हाईवे, रेलवे और पाईप लाइन का संजाल है। इसके साथ ही साथ ऊर्जा, उद्योग एवं अन्य ढाँचागत परियोजनाएँ भी हैं। चीन पाकिस्तान इकोनॉमिक कोरिडोर की पूरे पाकिस्तान में संबद्धता है और आर्थिक दृष्टि से एक सुनहरे भविष्य की कल्पना भी की जा सकती है।

यहाँ यह भी प्रामाणिक है कि पाकिस्तान में इन द्विपक्षीय परियोजना के विरुद्ध व्यापक घरेलू राजनीतिक विरोध है क्योंकि यहाँ केन्द्र और प्रांत की सरकारों के बीच नीतिगत विरोध है। इस प्रकार चीन पाकिस्तान इकोनॉमिक कोरिडोर के समक्ष गंभीर समस्याएँ एवं चुनौतियाँ हैं। पाकिस्तान के समक्ष कठिन हालात पैदा हो रहे हैं। इसके अमेरिका के साथ संबंध भी तनाव के दौर से गुजर रहे हैं। अमेरिका के राष्ट्रपति श्री डोनाल्ड ट्रंप ने अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष को पाकिस्तान को उधार देने से सतर्क किया है। अमेरिका का तर्क है कि पाकिस्तान अब कर्ज अदा करने की स्थिति में नहीं है। चीन की 'बेल्ट रोड इनिशियेटिव' जैसी महत्वाकांक्षी परियोजना को भी गंभीर आलोचना का सामना करना पड़ रहा है। इसकी आलोचना थाईलैण्ड, लाओस, श्रीलंका, मलेशिया और मालदीव जैसे राष्ट्रों ने की है। सभी ने चीन के द्वारा पाकिस्तान को दिये जा रहे ऋण के तौर तरीके को लेकर आलोचना की है।

बलूचिस्तान में चीनी राजदूत पर हो रहा कातिलाना हमला यह प्रदर्शित करता है कि चीन और पाकिस्तान के आर्थिक संबंधों और चीन पाकिस्तान इकोनॉमिक कोरिडोर के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ हैं।

बीजिंग के पास रणनीतिक, अभिप्रेरणात्मक, वित्तीय, तकनीकी और हथियार संबंधी अकूत क्षमताएँ हैं। वो पाकिस्तान को एक सशक्त राष्ट्र के रूप में उभरने में मदद कर सकता है। इन दोनों देशों के भावी संबंध इस्लामाबाद की काबिलियत पर निर्भर करते हैं।

चीन की पाकिस्तान में रूचि

यह सर्वविदित है कि चीन और पाकिस्तान सदाबहार दोस्त हैं। बीजिंग ने इस्लामाबाद की उसके आतंकी संजाल के लिए हर तरह से समर्थन एवं सुरक्षा दिया है। व्यवस्थित ढंग से देखा जाय तो इसमें बड़ा खेल चल रहा है। 'ग्रेट गेम' शब्द का सबसे पहला प्रयोग 19 वीं शताब्दी में ब्रिटेन और रूस के नियंत्रण विस्तार के लिए हो रहे राजनीतिक विरोध के लिए किया गया। बाद में इसका प्रयोग शक्ति स्पर्धा के लिए किया जाने लगा, जब प्राथमिक रूप से प्रतिस्पर्धायित चीन, अमेरिका और भारत परस्पर शक्ति स्पर्धा के लिए रणनीतियाँ बनाया करते थे। ये सारे देश निम्नलिखित रूचियों के लिए प्रतिस्पर्धायित रहते हैं –

- कैस्पियन देशों के तेल एवं खनिज सम्पदा निर्बाध रूप से प्राप्त करने के लिए।
- केन्द्रीय एशियाई क्षेत्रों के संसाधनों पर पूर्ण नियंत्रण करना।
- अफगानिस्तान के माध्यम से केन्द्रीय एवं दक्षिण एशिया के बीच संबंधों पर नियंत्रण करना।

चीन पहले से ही चीन पाकिस्तान इकोनॉमिक कोरिडोर को दक्षिण एशिया में रणनीतिक संतुलन स्थापित करने के लिए शुरू करना चाहता है। क्योंकि उसकी भारतीय प्रशांत क्षेत्रों में गहरी रुचि है और वह भारत के 'पूरब की तरफ देखा' की नीति को रोकना भी चाहता है ताकि उसकी इन क्षेत्रों में अहम् भूमिका हो सके। अतः 'न्यूग्रेट गेम' इन सारे कारणों में से एक है जिसने BRI (बेल्ट रोड इनिशियेटिव) में चीन की अभिरूचियों को बढ़ा दिया है।¹ इसके बाद 'चाईना पाकिस्तान इकोनॉमिक कोरिडोर' के बारे में पहली बार चीन के प्रधानमंत्री श्री ली किम्यांग ने अपनी पाकिस्तान के यात्रा के दौरान मई, 2013 में उम्मीद जताई।² इसके बाद, जुलाई 5 सन् 2013 को इन दोनों देशों के मध्य स्मारक पत्र पर हस्ताक्षर हुए।³

इस महत्वाकांक्षी चाईना पाकिस्तान इकोनॉमिक कोरिडोर के झंडे तले दोनों देशों ने सड़कें, रेलवे, तेल एवं गैस पाईप लाईन एवं अन्य ढाँचागत विकास के लिए सहमति व्यक्त किया। पाकिस्तान का ग्वाडर बंदरगाह, अब इस योग्य हो जाएगा कि वो चीन के शहर कश्गरे से राजमार्गों, रेलवे, तेल एवं प्राकृतिक गैसों के माध्यम से जुड़ जाएगा।⁴ चीन पाकिस्तान इकोनॉमिक कोरिडोर की कुल लंबाई 2,700 किमी है, जो चीन के वृहत्तर महत्वाकांक्षी योजना का रणनीतिक एवं महत्वपूर्ण हिस्सा है जिसका उद्देश्य एशिया, अफ्रीका, सेंट्रल एशिया, मध्यपूर्वी एवं यूरोप को जोड़ना है। इस वृहत्त योजना की शुरूआत 46 बिलियन यू0 एस0 डालर से हुई, जो बढ़कर 54 बिलियन यू0 एस0 डालर तक पहुँच गया। वर्तमान तक इस परियोजना कुल चीनी निवेश 62 बिलियन यू0 एस0 डालर तक का हो चुका है। इसमें रेलवे, हाईवे, पाईप लाईन, ऊर्जा एवं औद्योगिक परियोजनाएँ शामिल है। इस परियोजना से चीन के जिंजियांग क्षेत्र से पाकिस्तान के ग्वाडर शहर तक संबद्धता कायम हो चुकी है, जिसमें बेहतर सुविधाओं, कार्य अवसरों एवं अन्य चीजें शामिल है।⁵

चाईना पाकिस्तान इकोनॉमिक कोरिडोर चीन और पाकिस्तान के उद्देश्यों का मिला जुला स्वरूप है जिससे इनके राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संबंधों के निर्वहन संभव हो सकते हैं। इसकी महत्ता इसी बात से समझ में आती है कि इसको चीन के विकास के 13 वें पंचवर्षीय विकास योजनाओं में शामिल किया गया। चीन के राष्ट्रपति श्री जिंजिपिंग ने इसको दोनों देशों के लिए लाभदायक कहा।

संदर्भ

- ¹ <http://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S1879366512000061>
- ² <http://www.worldaffairsjournal.org/article/balancing-act-china-india-us-triangle>
- ³ http://idsa.in/issuebrief/LikeqiangVisittoPakistan_mandipsingh_050613
- ⁴ <http://tribune.com.pk/story/573220/nawazs-beijing-visit-trade-corridor-tops-mou-bonanza/>
- ⁵ <http://multimedia.scmp.com/news/china/article/One-Belt-One-Road/Pakistan.html>
- ⁶ <http://www.lowyinstitute.org/publications/understanding-belt-and-road-initiative>

‘वरूण के बेटे’ उपन्यास में आदिवासी मछुआ जीवन: आख्यान और विमर्श

अरविन्द कुमार अवस्थी

डणणए छम्ज् ; भूखम्द्धए डणचैपसणए चैणक्क; श्रच्छन्द

एसोसिएट प्रोफेसर ‘हिन्दी’, वी०श०के०च०राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय डाकपथर देहरादून

सारांश: मछुआरे इतिहासनिर्माण की प्रक्रिया से अधिकतर बाहर रहने के कारण अन्त्यज और फिर आदिवासी समुदाय बनते गए हैं। आधुनिक काल में आजादी के बाद तो यह दुर्दशा और भी बढ़ती गई। जलस्रोतों पर चौतरफा हमलों के फलस्वरूप आज मछुआ संस्कृति तथा मछुआ जीवन अपने अस्तित्व की रक्षा की लड़ाई लड़ रहा है। साठ के दशक में इस लड़ाई का जो स्वरूप था, उसे नागार्जुन ने ‘वरूण के बेटे’ उपन्यास (1957) में बखूबी अभिव्यक्त किया है तथा अपनी प्रखर राजनीतिक समझ से उसे दिशा देने का भी प्रयास किया है।

बीज शब्द: अवलोकन बिन्दु, कथक, आख्यान, विमर्श।

शोधपत्र: ‘आदिवासी’ से अभिप्राय किसी भूक्षेत्र में प्राचीन काल से रहती चली आई उन खाद्यसंग्राहक जातियों से लिया जाता है, जो प्रकृति के आदिम रूपों के निकट रह कर अपनी जीवनप्रणाली की निरन्तरता बनाए रखती आई हैं। इस दृष्टि से मछुआरे सर्वत्र आदिवासी समुदाय ही हैं। मछुआरों का सम्बन्ध मूलतः भूक्षेत्र से न होकर जलक्षेत्र से रहा है। भूक्षेत्र से मछुआरों का सम्बन्ध बनना तब शुरू हुआ, जब आरम्भिक कृषि बस्तियाँ कायम हुईं। परन्तु मछुआ जीवन की प्राचीनता का अनुमान नहीं किया जा सकता। वे हमेशा ही रहे हैं। किसानों की बस्तियों के कायम होने के साथ मनुष्य प्रकृति के आदिम रूप की अपेक्षा उसके सभ्य रूप के साथ जुड़ने लगा और इस तरह इतिहासनिर्माण की प्रक्रिया आगे बढ़ी। इतिहास के भीतर वर्णसमाज के निरन्तर मजबूत होते जाने के साथ श्रमविभाजन की आवश्यकता के फलस्वरूप खाद्यसंग्राहक कबीलों को उसके भीतर खींचने के प्रयास होने लगे। इस प्रकार शाश्वत काल में जीने वाले स्वतन्त्र कबीले ऐतिहासिक काल के अधीन होने लगे। जो कबीले वर्णसमाज में न खींचे जा सके, वे उसकी परिधि पर जीने वाले अन्त्यज समुदायों के तौर पर जीने के लिए विवश होते गए। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ‘सीता भूमि’ को बढ़ाने तथा घुमन्तू-अर्द्धघुमन्तू कबीलों को उस पर बसाने पर काफी जोर दिया गया है।

सच्चिदानन्द सिन्हा लिखते हैं, “यह बात उल्लेखनीय है कि अधिकांश अन्त्यज जातियों के पेशे वाले काम ऐसे ही थे, जिनके चलते उनको प्रायः गाँव से बाहर ही रहना पड़ता था। इनमें शिकार करना, मछली पकड़ना, नाव चलाना, जड़ी-बूटियाँ या शहद जमा करना, तमाशा दिखाना वगैरह शामिल था। बौद्ध और जैन मतों के उभार और शाकाहार का जोर बढ़ने के साथ ही सम्भवतः उनको खघस कर शिकारियों, मांस और चमड़े का कारोबार करने वालों और मछली पकड़ने वालों को अछूत घोषित कर दिया गया हो। इसी मूल का होने के चलते अन्त्यजों से न सिर्फ तीन ऊपरी वर्णों के लोग घृणा करते थे, बल्कि शूद्र भी ऐसा ही व्यवहार करते थे। अलबेरूनी के विवरणों से पता चलता है कि ग्यारहवीं शताब्दी के शुरू तक भी अन्त्यज जातियों के लोग अधिकांश ऐसे ही काम करते थे, जो गाँवों में बसी खेतिहर आबादी के दायरे से बाहर के थे। सिर्फ सफाई करने वाले और कसाई का काम करने वाले लोग ही अपवाद थे जिनके पेशे नगरों के उभर आने के बाद जरूरी हो गए थे।”

मछुए जलस्रोतों के साथ आदिम प्रणाली से जुड़े हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इतिहास के साथ उनका सम्बन्ध स्थिर और अपरिवर्तनशील है। यह सम्भव ही नहीं है क्योंकि प्रकृति के साथ उनके रिश्ते के बीच हजारों साल की मानव सभ्यता का विकास भी तो मौजूद है। सभ्यता की परिधि पर रह कर इतिहास की कालयात्रा करने वाले इन समुदायों ने इतिहास बनाने के बजाय बनते हुए इतिहास के प्रभावों और परिणामों को भोगा ही अधिक है। किसानों, सामंती और औद्योगिक समाज अवस्थाओं की कालयात्रा करता हुआ मछुआ समाज आज भूमण्डलीकरण के युग में भी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहा है।

मैदानी क्षेत्र के मछुआरों के जीवन पर आधारित नागार्जुन का अत्यन्त महत्वपूर्ण उपन्यास ‘वरूण के बेटे’ सन् 1957 में प्रकाशित हुआ। अंग्रेजीराज का अन्त हो चुका था। परन्तु इसी समय वरूण के ये बेटे सतघरा के नए व्यवसायी जमींदार के चंगुल से अपने ‘गढ़पोखर’ को बचाने की लड़ाई लड़ रहे थे। बिहार राज्य के मिथिला जनपद में मछुआरों की एक छोटी-सी बस्ती है – मलाही गोंडिघ्यारी। इसमें तीस-पैंतीस मछुआ परिवार रहते हैं जो धनहाचौर के लगभग तीन सौ साल पुराने जलाशय ‘गढ़पोखर’ से अपना जीविकोपार्जन करते आए हैं। मछलियाँ निकालने के साथ-साथ इस पानी से सिंघाड़ा, कमल, कमलनाल, कमलगट्टा, तालमखाना, सारूख, कैसोर, कड़हड़, पुरइन-पद्म के गोल-चिकने पत्ते आदि की भी उपज इनकी आय का स्रोत रही है। यह हक पुश्त-दर-पुश्त इनके पास बना रहा है, भले ही गढ़पोखर के मालिक बदलते रहे हों। पहले देपुरा के मैथिल जमींदार का इस पर मालिकाना था। परन्तु जब जमींदारी प्रथा

समाप्त हो गई तो लगान वसूलने का उनका हक चला गया। इसलिए वे चुपके-चुपके पोखर, चारागाह इत्यादि बेचने लगे। गढ़पोखर को खरीदा सतधरा के नये जमींदार ने। उन्होंने उसकी बन्दोबस्ती नए सिरे से करके मुनाफा बढ़ाना चाहा। यहीं से मछुआरों के साथ उनके संघर्ष की शुरुआत हुई। इस प्रकार नागार्जुन उपन्यास के कथासूत्र को बिल्कुल सीधे-सीधे ऐतिहासिक सन्दर्भ के साथ जोड़ देते हैं।

दरअसल ब्रिटिशराज ने भारत में व्यवसायीकरण की जिस प्रक्रिया को आरम्भ किया था, उसने सामूहिक स्वामित्व की स्थानीय परम्पराओं को ध्वस्त करके निजी सम्पत्ति और व्यक्तिगत न्याय की धारणाओं को मजबूती से स्थापित कर दिया था। इसके कारण मछुआरों का जलस्रोतों से नैसर्गिक सम्बन्ध टूट गया तथा जलस्रोतों पर बाहरी लोगों का कब्जा हो गया। जल-जंगल-जमीन साहूकारों, जमींदारों के हाथ से चले गए। उन्नीसवीं सदी के अन्त तक अंग्रेज सरकार का प्राकृतिक संसाधनों पर नियन्त्रण काफी कठोर रूप ले चुका था। मछुआरों को उम्मीद थी कि गाँधी जी की अगुवाई में चलने वाली आजादी की लड़ाई उनके नसीब में भी जलस्रोतों का स्वामित्व वापस लाएगी। सुराज आया ! गढ़पोखर का कब्जा लगान वसूलने वाले जमींदार के हाथ से निकल कर मुनाफाखोर ठेकेदार के हाथ में चला गया। अपने पारम्परिक काम से ही हाथ धो बैठने की नौबत आ गई। खुरखुन के नेतृत्व में गोलबन्द होकर हक की लड़ाई शुरू हुई, “यह पानी सदा से हमारा है, किसी भी हालत में हम इसे छोड़ नहीं सकते। पानी और माटी न कभी बिके हैं, न कभी बिकेंगे। गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं, वह तो हमारे शरीर का लहू है। जिनगी का निचोड़ है।”²

नागार्जुन की राजनीतिक चेतना बहुत स्पष्ट और धारदार है। वह मोहन माँझी नामक शिक्षित पात्र के माध्यम से ‘मछुआ संघ’ को ‘किसान सभा’ के संघर्षों के साथ जोड़ते हैं। किसानों का संगठन बड़ा है। लोकतन्त्र में संख्याबल का महत्त्व है। नागार्जुन अलग-थलग आदिवासी अस्मिता के चक्कर में ज्यादा नहीं पड़ते। चुनाव सिर पर आते देख कर मछुआरे आन्दोलन को तेज करके कांग्रेस पर दबाव बनाते हैं। आजादी के बाद की परिस्थितियों को लेकर ऐसी राजनीतिक समझदारी कम उपन्यासों में ही दिखाई दी है। इसके बावजूद यथार्थ की विषमता इतनी अधिक है कि उपन्यास में चित्रित की गई मछुआरों की लड़ाई वास्तविक जगत में सफलता से कोसों दूर है। सच तो यह है कि ठेकेदारी प्रथा के चल पड़ने के बाद से मछुआरा मछली मारने वाला मजदूर बन कर रह गया है। भूमण्डलीय तापन की मार पड़ने से गाड़-गदरे, नदी-तालाब वैसे ही सूख रहे हैं। सबसे यातनाप्रद स्थिति वह है जिसमें मछुआरा परम्परागत काम खत्म हो जाने पर भूमिहीन होने के कारण खेत मजदूर में बदल गया है। विच्छिन्नता और निरन्तर पलायन की जिन्दगी जीता हुआ मछुआरा मजदूर के रूप में अलगाव और सांस्कृतिक विस्थापन का भी शिकार हो रहा है। बनारस और उसके आसपास के जिलों में तमाम मछुआ परिवार बाल-बच्चों समेत कालीन बुनने के काम में लगे हुए देखे जा सकते हैं।

जिस तरह नागार्जुन की राजनीतिक दृष्टि स्पष्ट, चित्रण साफ-साफ और तेवर प्रखर हैं, उसी तरह उनके पात्र भी तमाम अभावों और संघर्षों के बीच भी घुटने न टेकने वाले चरित्र के रूप में सामने आते हैं। गरीब मछुआरे खुरखुन की बड़ी बेटी मधुरी ताड़ी पीकर उसकी पिटाई करने वाले ससुर और पति का अत्याचार चुपचाप सहन करते रहने के बजाय ससुराल छोड़ कर चली आती है तथा मछुआरों के व्यापक सामाजिक संघर्षों में संलग्न होकर अपने जीवन को सार्थक करती है। मंगल के साथ अपने प्रेम की रोमाण्टिक दुनियाँ में पड़ी रहने के बजाय वह मंगल को सामाजिक मर्यादा के महत्त्व का अहसास कराती है। स्वयं अपने जीवन को भी वह व्यापकता से संलग्न करके सार्थक करती है। उसका प्रेम ऊँचे धरातल पर चित्रित किया गया है। नागार्जुन की यथार्थवादी दृष्टि का प्रभाव चरित्रों के निरूपण पर पूरा-पूरा दिखाई देता है। पता नहीं क्यों, रामदरश मिश्र या बंसीधर जैसे आलोचकों को मधुरी, मंगल, मोहन माँझी जैसे पात्र लेखकीय हस्तक्षेप के कारण अस्वाभाविक हो गए जान पड़े हैं।³

समाज चाहे कितना भी छोटा हो, उसमें वर्गभेद होता ही है। मछुआरों में भी कुछेक सम्पन्न श्रेणी के मछुआरे हैं जो नाव और जाल के मालिक हैं। बाकी अधिकतर उनकी नावों पर काम करते हैं। नागार्जुन स्वयं लिखते हैं, “भोला की श्रेणी के सम्पन्न-सुखी गृहपति इनमें दो ही तीन थे। अधिकतर मछुए खुरखुन की हैसियत के थे।”⁴ एक तरफ नकछेदी, खुरखुन, चुल्हाई, गोनड़, कल्लर जैसे गरीब मछुआरे हैं तो दूसरी तरफ भोला, गंगा, मोहन माँझी जैसे कुछ सम्पन्न गृहपति भी हैं। मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं, “नामों का मनोविज्ञान और समाजशास्त्र भारतीय समाज की संरचना के साथ जुड़ा है। प्रायः उच्च वर्ण और उच्च वर्ग के लोगों के नाम श्रेष्ठतासूचक हैं, जबकि जातिव्यवस्था में हीन अवस्था में रहने वाले लोगों के नाम हीनता के द्योतक होते हैं।”⁵ मलाही-गोंदियारी के बारे में नागार्जुन बताते हैं, “इनकी भी चार-पाँच उपजातियाँ यहाँ थीं: सानी, माँझी, खुनौत, तिअर, जलुआ।”⁶ आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ नई पीढ़ी में नामों का समाजशास्त्र बदलने लगा है। मंगल और मधुरी जैसे नाम रखे जाने लगे हैं।

मछुआ संस्कृति के चित्रण में नागार्जुन के कवि-कथाकार को अद्भुत सफलता मिली है। मछुआपाड़ा में हर वर्ष मनाए जाने वाले ‘महाजाल’ के उत्सव का लेखक ने बहुत सुन्दर वर्णन किया है। मिथिलांचल में मौजूद मछलियों के शिकार की संस्कृति का परिचय वह खुरखुन के घर पर रखे मछली फाँसने और पकड़ने के औजारों से देते हैं - “मछलियाँ पकड़ने और फाँसने के औजार भीत की खूँटियों से टँगे थे - गाँज, टापी, सहत, सरैला, किस्म-किस्म के डण्डे। जालों की कढ़ाई-बिनाई में काम आने वाले छोटे-बड़े सूए, शलाखें। जालों के अधूरे टुकड़े।” मछलियों का जिक्र करते हुए लेखक लिखता है, “छोटी मछलियों में तीन का बड़ा नाम है - सिंगी, मंगुरी और कबई। सिंगी और मंगुरी लोगों को बेहद रूचिकर लगती हैं। गाढ़े किरमिची रंग की चिकनी, पतली और बिता-डेढ़ बिता लम्बी यह सिंगी और मंगुरी मछलियाँ आसिन से लेकर माघ-फागुन तक हाट-बाजारों में अपनी शहरत की धूम मचाए रहती हैं।”⁸ नागार्जुन ब्यौरे देने में भी दिलचस्पी रखते हैं। भादों से लेकर जेठ तक मिलने वाली छोटी मछलियों की किस्मों को बताते हुए वह लिखते हैं, “बड़ी-बड़ी नहीं, छोटी-छोटी, मौसमी मछलियाँ। इच्चा, मारा, कतरा, पोटी, पोठा, टेंगरी, टेंगरा, गरई, गरचुन्नी, कबई, सिंगी, मंगुरी, अन्हई आदि।”⁹ इसी तरह छोटे-छोटे जालों की किस्में बताते हुए वह लिखते हैं, “घुमा-घुमा कर पानी में फेंके जाने वाले जाल ये थे - दोनही, पोठिया, मरइली, खपियार, घनी, सतोल, दुआली, टेंटी ----- कई किस्में थीं छोटे जालों की।”¹⁰

जाल वस्तु है तो रूपक भी है। मंगल के गौना की तैयारी होते देख मधुरी अपनी चुप्पी में गाती है -

“जिनगी भेल पहााड़, उमिर भेल काााल !

नइ फेंकऽ नइ फेंकऽ आहे मोर दिलचन,

नेहिया पिरितिया के जालाल !!¹¹

अलंकारों का समाजशास्त्र तो तब सामने आता है, जब भोला अपनी पत्नी की रूपछटा के बारे में सोचता है, “बचपन में मंगुरी मछलियों की छविछटा उसे बेहद पसन्द थी और पत्नी मिली तो वह भी मंगुरी की-सी रंगत वाली।”¹² इसी तरह मछली को रूपक बनाता हुआ एक प्रेमगीत देखिए -

“कबहूँ पकड़ में न आवे मछरिया !

जुलमी मछरिया चलबल मछरिया !

कबहूँ पकड़ में न आवे मछरिया !

ताल में खेले, तलइया में खेले

कुइयाँ में डुबकी लगावे मछरिया

कबहूँ पकड़ में न आवे मछरिया !

जुलमी मछरिया !

रात की बेरिया बिलकुल लापता !

दिन में नजर मटकावे मछरिया !

कबहूँ पकड़ में न आवे मछरिया !

जुलमी मछरिया !”¹³

‘महाजाल’ के उत्सव के अवसर पर नागार्जुन जो गीत रचते हैं, उसमें जाल पर नियन्त्रण रखने और होशियार रहने की चेतावनी के साथ पारम्परिक मछलियों को पोखर में पहुँचाने वाली नदियों के उल्लेख के साथ मछुआ जीवन की एकसूत्रता का संदेश देते हुए जो सामूहिक हुंकार भरी जाती है, उसे आजादी की लड़ाई को दिशा देने वाले गाँधी बाबा के उद्घोष तक पहुँचा कर लेखक राजनीतिक आशयों को सांस्कृतिक चित्रण के भीतर गूँथ देता है। गीत इस प्रकार है -

“रेहू ब्वारी,

हुइ यो !

- मोदनी भुन्ना,

हुइ यो !

- नैनी भाकुर,

हुइ यो !

- उजला सोना,

हुइ यो !

- लाल चाँदी,

हुइ यो !

- गंगा मइया,

हुइ यो !

- कमला मइया,

हुइ यो !

- कोसी मइया,

हुइ यो !

- भारथ माता,

हुइ यो !

- गान्ही बाबा,

हुइ यो !

- बाह गरोखर,

हुइ यो !

- बाह बहादुर,

हुइ यो !
- पसीना पोंछ ---
पसीना पोंछा !!¹⁴

निष्कर्ष: निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि 'वरुण के बेटे' साठ के दशक के मैदानी मछुआ जीवन को अत्यन्त प्रामाणिक रूप से जनपक्षधरता के साथ अभिव्यक्त करता है। इस उपन्यास की राजनीतिक चेतना और समझ बड़ी प्रखर तथा स्पष्ट है। उपन्यास का शीर्षक ही बता देता है कि इसमें मछुआ जीवन का आख्यान तथा उस पर सांस्कृतिक-राजनीतिक विमर्श साथ-साथ मौजूद हैं। उपन्यास में कथक का स्वर स्थानीय बोली के प्रयोग के द्वारा पात्रों के साथ समवेत रूप से घुल-मिल सा गया है। इस उपन्यास के आख्यान को रचने में कथा की कला के साथ काव्य की कला का भी बहुत कुशल नियोजन हुआ है। लोकसंस्कृति तथा स्थानीय भाषा-बोली का रचनात्मक प्रयोग करते हुए नागार्जुन ने आजादी के बाद के परिदृश्य में मछुआरों के जीवन का सांस्कृतिक और राजनीतिक विमर्श रचा है तथा उसके माध्यम से उनके जीवन-यथार्थ के सन्दर्भ में एक सशक्त रचनात्मक हस्तक्षेप किया है।

सन्दर्भ सूची:

1. सिन्हा, सच्चिदानन्द. जाति व्यवस्था. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2006, पृ0 180-81
2. नागार्जुन. वरुण के बेटे. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1985, पृ0 28
3. बंसीधर. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास:सिद्धान्त और समीक्षा. नई दिल्ली:भाषा प्रकाशन, 1983, पृ0124
4. नागार्जुन. वरुण के बेटे. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1985, पृ0 16
5. पाण्डेय, मैनेजर. उपन्यास और लोकतन्त्र. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2013, पृ0 148
6. नागार्जुन. वरुण के बेटे. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1985, पृ0 75
7. नागार्जुन. वरुण के बेटे. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1985, पृ0 11
8. नागार्जुन. वरुण के बेटे. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1985, पृ0 17
9. नागार्जुन. वरुण के बेटे. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1985, पृ0 16
10. नागार्जुन. वरुण के बेटे. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1985, पृ0 30
11. नागार्जुन. वरुण के बेटे. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1985, पृ0 19
12. नागार्जुन. वरुण के बेटे. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1985, पृ0 65
13. नागार्जुन. वरुण के बेटे. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1985, पृ0 22-23
14. नागार्जुन. वरुण के बेटे. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1985, पृ0 56-57-58

स्त्री मुक्ति की चुनौतियां और परिवार-आपका बंटी

डॉ० मीरा कश्यप

एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, के०जी०के० महाविद्यालय, मुरादाबाद।

सारांश:—जीवन और साहित्य में बना दी गयी स्त्री से मुक्ति का प्रयास स्त्री की मुक्ति की ओर ले जाता है। यहाँ मुक्ति का अर्थ किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं बल्कि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक हर क्षेत्र में स्त्री का स्वयं के लिए सोचने, विचारने और निर्णय लेने से है। यही विचार स्त्री विमर्श का आधार है। प्रख्यात कथाकार मन्नू भंडारी ने हिन्दी-कथा जगत में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। ‘आपका बंटी’ उपन्यास बाल मनोविज्ञान आधारित प्रसिद्ध कृति है। ‘आपका बंटी’ जितनी बालक बंटी की कथा है, उससे कम शकुन की नहीं है। यह कृति बनाती है कि एक औरत जब अपनी अस्मिता का संधान करने लगती है तो सक्षम भी हो जाती है, और यही बात पुरुष के लिए चुनौती बन जाती है, और दाम्पत्य संबंधों में तनाव पैदा होता है जो अलगाव तक पहुँच जाता है, और इसी पारिवारिक द्वंद्व और त्रासदी को मन्नू भंडारी ‘आपका बंटी’ में दिखाती हैं कि एक-एक रेशा पाठक की आँख के सामने खुलता जाता है।

छठें, सातवें दशक के कथा-साहित्य में स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर काफी साहित्य रचे गये थे। कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, उषा प्रियवंदा हों या मन्नू भंडारी सबने परिवार और रिश्तों में आए बदलावों, तनावों और टूटन को रेखांकित किया है। स्त्री-पुरुष संबंधों का विश्लेषण करते हुए सामाजिक मान्यताओं और नैतिक मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन ही नहीं किया गया, कथाकृतियों के बहाने नये यथार्थ का समाज शास्त्र भी प्रस्तुत किया। मन्नू भंडारी का उपन्यास ‘आपका बंटी’ इसी परिवर्तन और टूटन का महत्वपूर्ण अंश है। उपनिवेश भारत को मिली आजादी, संवैधानिक परिवर्तन, राजनीतिक और आर्थिक बदलाव, औद्योगीकरण, शहरीकरण आदि के माध्यम से व्यक्ति चेतना का भी उदय होता है। शिक्षित और आत्मनिर्भर स्त्री में ‘वैयक्तिक स्वतंत्रता’ की बलवती इच्छा जाग्रत होती है, स्वावलम्बी स्त्री में अस्मिता तथा अस्तित्व संपन्न होने का गौरव-भाव भी जाग्रत होता है, परन्तु पति पुरुष उसे सह नहीं पाता, तब प्रारम्भ होता है ‘गृह-कलह’ जिससे परिवार का ही नहीं, व्यक्तित्व का भी विघटन होता है, वस्तुतः स्त्री-मुक्ति के प्रश्न सामाजिक-पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में ही उठाये जा सकते हैं। बदलते रिश्तों की जटिलता की सहज अभिव्यक्ति के कारण इसकी पठनीयता में लगातार वृद्धि होती गयी, इतने वर्षों के अन्तराल में भी पुस्तक पढ़ते हुए मन-मस्तिष्क में यह सवाल उठता है कि औपन्यासिक यक्ष-प्रश्न क्या आज के समाज में नहीं गूँज रहे हैं? औपन्यासिक विषय वस्तु तलाक और तलाक के बाद माता-पिता के संयुक्त प्यार और जिम्मेदारी से वंचित संतान की करुण चीत्कार समाज में नहीं ध्वनित हो रही है? वस्तुस्थिति यही है कि तलाक या संबंध-विच्छेद की समस्या दिनों-दिन बढ़ी है, वैयक्तिकता और आर्थिक दबावों के कारण ‘संयुक्त परिवार’ टूटे हैं, पारिवारिक अवधारणा बदली है, पति-पत्नी और संतान की सामूहिकता ही ‘परिवार’ का पर्याय बना। फिर स्त्री-मुक्ति के सवाल और सह-अस्तित्व की दरकार से एकल परिवार भी टूटने लगे। अहमन्यता और वर्चस्वताबोध से ग्रसित पति के साथ अहर्निष्ठ पत्नी की तकरार शुरू होती है, और उनके रास्ते अलग-अलग हो जाते हैं। विवाह संस्था की यह मान्यता भी खंडित होने लगती है कि पति-पत्नी जीवन पर्यन्त के साथी होते हैं, और सामान्य सी लगने वाली यह घटना तब और अधिक भयावह हो जाती है, जब उनके बीच संतान होती है। शकुन और अजय के बेटे बंटी के माध्यम से कथा लेखिका इसी भयानक समस्या को उपन्यास का कथावस्तु बनाती हैं। दोष किसका है? और निदान क्या हो सकता है? इसका उनके पास कोई उत्तर नहीं है, यह सवाल निरन्तर बना रहता है। बदलते रिश्ते, स्त्री-पुरुष के अन्तर्गत, संबंधों में उपजती दरारें, अहं की टकराहट, साथ ही मानवीय रिश्तों को बचाये और जिलाये रखने की कोशिश भी उनमें भरपूर है। कपड़ों की तरह बदलते रिश्तों को परोक्ष रूप से अनुचित ठहराती हैं, माता-पिता के प्रति उनमें तीखी प्रश्नाकुलता है कि क्या बच्चों के प्रति उनकी उभयात्मक जिम्मेदारी नहीं है? ‘अबोध बच्चों’ के रहते उनकी वैयक्तिक स्वतंत्रता का कोई मायने है क्या? “जीते-जागते बंटी का तिल-तिल करके समाज की एक बेनाम इकाई भर बनते जाना यदि पाठक को अश्रुविगलित ही करता है तो मैं समझूंगी कि बंटी का यह पत्र सही पतों पर नहीं पहुँचा है।” (मन्नू भंडारी-जन्मपत्री बंटी की पृष्ठ 8) ‘आपका बंटी’ उपन्यास व्यक्ति और परिवार के द्वन्द्व और अन्तर्विरोध को उजागर करता है। परिवार को बनाने और बनाये रखने के लिए वैयक्तिकता का निषेध किया जाता है, सामाजिक प्राणी होने के नाते किसी भी संस्था में आपसी व्यवहारों में सामंजस्य की अपेक्षा की जाती है, और पति-पत्नी के लिए यह आवश्यक हो जाता है, कि परस्पर सम्मान और सह-अस्तित्व का भाव उन्हें स्वीकार्य हो। छोटी-छोटी बातों पर तूफान खड़ा नहीं किया जाये। इसीलिए परम्परा को देख चुकी फूफी कहती हैं—अनबन किसमें नहीं होती? तो क्या व्याही औरत को यो छोड़ दिया जाता है? और जब शकुन डॉ० जोशी से विवाह करने का निर्णय करती है तो वह कहती हैं, “जवानी यो ही अंधी होती है बहू, फिर बुढ़ापे में उठी जवानी, महासत्यानाशी। साहब ने जो किया तो आपकी मट्टी पलीद हुई और अब आप जो कर रही हैं, उससे इस बच्चे की मट्टी पलीद होगी।”¹² (मन्नू भंडारी आपका बंटी) ऐसा लगता है जैसे फूफी निश्चित ही लेखिका की प्रवक्ता है, संभवतः सामाजिक दुश्चिन्ताओं से उबर जाने का ही एक रास्ता वह दिखाती है। वह रास्ता परम्परागत ही नहीं सर्वमान्य भी होगा, भविष्य (बच्चों) को स्वस्थ और समुन्नत बनाये रखने का एक आदर्श पहलू भी। ताकि मानसिक विकृतियों, अवसाद, वैयक्तिकता और आपराधिकता का शिकार बच्चे न हो सकें। लेखिका का यह मंतव्य न तो निर्णायक है और न ही आरोपित, वरन् वे तो पारिवारिक त्रिकोण की सभी भुजाओं का आंकलन निरपेक्ष रूप से करना चाहती हैं—“इस त्रिकोण की किसी एक भुजा को न अस्वीकार कर सकी न ही गलत सिद्ध कर सकी। पात्र अपनी-अपनी दृष्टि-संवेदना की

सीमाओं में एक-दूसरे को गलत-सही करते रह सकते हैं, लेकिन देखना यह जरूरी होता है कि लेखकीय समझ किसी के प्रति पक्षपात तो नहीं कर रही है?..... इस पूरी स्थिति की सबसे बड़ी विडम्बना ही यह है कि इन संबंधों के लिए सबसे कम जिम्मेदार और सब ओर से बेगुनाह बन्ती इस ही ट्रेजेडी के त्रास को सबसे अधिक भोगता है।”³ (मनू भंडारी-आपका बंटी, पृ०-7) लेखिका का सारा संकट परंपरा और आधुनिकता के द्वन्द्व का है, व्यक्ति और परिवार के अन्तर्विरोध का है और स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में आये दूरियों को दूर कर, मानवीय विकलता, किन्तु नये चिंतन और नए सरोकारों को भी झुठलाना और अनदेखा करना, लेखिका के वश में नहीं है, लेकिन लेखिका नारीवादी सोच तथा परिवार और समाज पर उनके पड़ते प्रभाव और परिवर्तन का विश्लेषण करती हैं। उपन्यास में शकुन क्रियावादी नहीं, प्रतिक्रियावादी है, यह तो जरूरी नहीं कि हर बंटी की माँ (शकुन) प्रिंसिपल हो और बंटी माँ को छोड़कर अपने पुनर्विवाहित पिता के पास रहने जाये और फिर वहाँ से हास्टल, जरूरी नहीं कि हर शकुन नौकरी शुदा हो और अपने बच्चे को गहरा लगाव रखते हुए भी उसके बालमन की उपेक्षा करते हुए किसी डॉ० जोशी के घर चली जाये, यह भी तो जरूरी नहीं बंटी एक पढ़े-लिखे मध्यमवर्गीय माँ-बाप का बेटा हो या शकुन उस साठोत्तरी, अपने अधिकारों और अपनी निजता के प्रति सचेत होती। “बंटी शकुन अजय तब भी थे जब मुन्नी जी ने उनका सृजन नहीं किया था, और आज भी है, जब उनके सृजन को लगभग चार दशक हो गये हैं, वे हजार रूप स्थितियों में आज भी हैं, बस मुन्नी जी से पहले किसी ने बंटी को इतने करीब से नहीं देखा था, कोई बंटी के मन में इतने गहरे तक नहीं बैठा था, किसी ने बंटी की अपनी बाल-निजता को इतनी स्वायत्तता नहीं दी थी”⁴ (विभांशु दिव्याल कथा देश जनवरी 2009, पृ० 184) शकुन में आंतरिक कमजोरी या आत्मविश्वास की कमी नहीं है? मुद्दा कैरियर का हो या पुनर्विवाह का, सात वर्षों में विभागाध्यक्ष से प्रिंसिपल हो जाने के पीछे भी कहीं अपने को बढ़ाने से ज्यादा अजय को गिराने की आकांक्षा ही थी, वह स्वयं कभी अपना लक्ष्य रही ही नहीं। एक अदृश्य अनजान सी चुनौती थी, जिसे उसे हर समय अपने सामने हवा में लटकता हुआ महसूस किया था, और जैसे उसका मुकाबला करते-करते जूझते ही वह आगे बढ़ती चली गयी थी”⁵ (मनू भंडारी-आपका बंटी, पृ० 36) उपन्यास में अहम् का जैसा टकराव और खींचा तानी वर्णित है, वैसा ही राजेन्द्र यादव की कहानी ‘टूटना’ में है।

समाज में स्त्री की सामाजिक हैसियत या पहचान पति के पद या प्रतिष्ठा के अनुसार होती है। इसलिए आज की तारीख में कोई भी स्त्री भले ही वह स्वावलंबी हो, नहीं चाहती कि उसके पति की हैसियत उससे कमतर हो, फिर शकुन का इतना प्रतिक्रियावादी होना दोनों का अहंवादी होना ही लगता है, हो सकता है शकुन के वैवाहिक जीवन की बुनियाद में ही संतुलन का अभाव रहा होगा। लेखिका ने उन संदर्भों का (अपमान और अविश्वास) उल्लेख नहीं किया है, जिससे शकुन की प्रतिद्वन्द्वात्मकता को उचित ठहराया जा सके। वैवाहिक जीवन की असहजा और सफलता का बयान जरूर है- “दस वर्ष का विवाहित जीवन एक अंधेरी सुरंग में चलते चले जाने की अनुभूति से भिन्न न था, तलाक से मिली मुक्ति से भी आगे प्रकाश नहीं।”⁶ (मनू भंडारी-आपका बंटी, पृ० 37) जीवन कोरा स्लेट नहीं होता है कि उस पर लिखे हुए को एकदम साफ कर दिया जाए यह सच है, बीती घटनाएँ या अनुभव हमेशा के लिए आत्मा में गड़ जाते हैं, शरीर मन पर अपना निशान छोड़ जाते हैं। शकुन डॉ० जोशी से विवाह भी अजय की प्रतिक्रिया में करती है, क्योंकि अजय का मित्र जो कि वकील है वह उसे सलाह देता है कि- “तुम केवल बंटी की माँ की तरह ही मत जियो, शकुन की तरह भी जियो।”⁷ (मनू भंडारी-आपका बंटी, पृ० 41) शकुन माने एक स्त्री, एक व्यक्ति, प्रत्येक व्यक्ति जीवन में खुशियों का आकांक्षी होता है, इसी प्रत्याशा में शकुन दो बच्चों के पिता डॉ० जोशी से विवाह करती है। ‘अपने लोग’ और ‘अपने घर’ की भावनात्मक अनुभूति के लिए आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर शकुन बेटे बंटी के साथ डॉ० जोशी के घर आ जाती है, कॉलेज कैम्पस का अपना घर बाग-बगीचा सब कुछ छोड़कर। उसकी मानसिक निर्भरता आधुनिक स्त्री की भी बनी हुई है। सामाजिक, पारिवारिक मान्यताओं और विश्वास में ही वह जीना चाहती है, गुलाम बनकर नहीं सह अस्तित्व की अपेक्षा रखकर। कठिनाई उसे सिर्फ बंटी को लेकर होती है, क्योंकि बंटी न तो जोशी के घर को अपना घर समझ पाया और न ही उन्हें पापा कह सका। “घर के एक कोने पर भी वह अपना अधिकार न जता पाता, वह एक ऐसा पौधा है, जो कॉलेज कैम्पस के घर से उखाड़ा गया तो, फिर कहीं जड़ न पकड़ सका, मुझाता ही चला गया, उसका बचपन, उसका दुलार, प्यार सब छिन-बँट जाता है, डॉ० जोशी के घर में रहने वाली शकुन उसकी ‘मम्मी’ नहीं रह जाती।”⁸ (डॉ० शशि कला त्रिपाठी उत्तरराती के उपन्यासों में स्त्री, पृ० 19) इस प्रकार डॉ० जोशी के घर में आकर, बंटी गुमसुम सा हो जाता है। वस्तुतः देखा जाए तो शकुन न तो अभय की पत्नी बनकर रह सकी न ही बंटी की माँ। वैसी माँ तो बिल्कुल भी नहीं जो हर हाल में बच्चे की परवरिश के लिए अपना उत्सर्ग कर सके। वह ‘पत्नी’ और ‘माँ’ की गौरवपूर्ण धारणाओं को खण्डित करती है, वह शकुन बनकर जीने की कोशिश करती है, उसका अपना जीवन प्रथम है, त्यागमयी माँ की प्रतिमूर्ति नहीं। जो शकुन अजय के लिए स्वतंत्र और डॉमिनेंटिंग थी, वह डॉ० जोशी के प्रति एकदम समर्पित और आश्रित हो जाती है, प्राचार्य शकुन डॉ० जोशी पर इस तरह निर्भर हो जाती है कि उसके बिना एक कदम भी नहीं चल पाती, मनू भंडारी स्पष्ट करती है- औरत कहीं की कहीं पहुँच जाये फिर भी पुरुष का साथ उसके लिए कितना जरूरी है..... पर वह साथ हो सही अर्थों में।”⁹ (डॉ० मनू भंडारी-आपका बंटी, पृ० 106) शकुन एक ऐसी औरत है जो आजादी का ककहरा पढ़कर घर की दहलीज लाँघकर निकल तो पड़ी, पर जीवन में चुनौतियाँ मिलने पर शायद घबरा जाती है, और ऐसे कन्धे की तलाश करती है जो उसके बोझ को ढो सके। परन्तु हमारे सामने प्रश्न बनकर खड़ा हो जाता है कि क्या पति बदल देने से उसका वजूद एक व्यक्ति का बना रहेगा ? क्या विवाह संस्था के भीतर डॉ० जोशी उस पर अपना वर्चस्व कायम नहीं रखते? क्यों बन्ती को लगने लगता है कि उसकी मम्मी डॉ० जोशी की उपस्थिति में, सहमी-सहमी रहती है? ऐसा लगता है कि शकुन का व्यक्तित्व परंपरा और आधुनिकता के द्वन्द्वात्मक रूपों से गढ़ा गया है। सामाजिक पारिवारिक संरचना की कुछ बनावट ही ऐसी है कि स्त्री की आजादी का हर चरण उसे दंश देता है, शकुन के साथ भी ऐसा ही होता है। अजय शकुन से अलग होकर मीरा से विवाह करके एक बच्चे का पिता भी बनता है, उसके अन्दर कोई दर्द नहीं पर शकुन अजय से अलग होकर परित्यक्ता होने की चुभन सहती रहती है, अकेलेपन की भावनात्मक असुरक्षा के कारण ही वह बंटी की कहानियाँ सुनाती रहती है। बंटी के लिए मम्मी ही सब कुछ होती है, पापा से तो वह साल, छः महीने पर ही मिलता है। माँ के बिना बंटी एक पल भी नहीं रह पाता, ऐसा होने पर भी मिसेज जोशी (शकुन) के लिए वह अनावश्यक तत्त्व बन जाता है, मम्मी पर एकल अधिकार जताने पर वह मम्मी की नई दुनिया का बाधा बन जाता है, यही गरिमापूर्ण मातृत्व का पद खण्ड-खण्ड हो जाता है। इस समस्या को लेकर लेखिका चिन्ताग्रस्त हैं कि- “स्वतंत्र व्यक्तित्व आकांक्षाओं और आजिविका के साधनों से तृप्त ‘माँ’ का क्या होगा? क्या सचमुच यह कहानी सोनल रानी की भी है, जो भूख लगने पर, रूप बदलकर अपने बेटे को खा जाती है।”¹⁰ (मनू भंडारी-जन्म पन्नी: बंटी की, पृ० 7) वस्तुतः ‘आपका बंटी’ एक गंभीर समस्या का मनोवैज्ञानिक

विश्लेषण है, क्योंकि शकुन और अजय तो आपसी तनाव की असहनियता से मुक्त होने के लिए एक दूसरे से ही मुक्त हो जाते हैं, लेकिन बंटी क्या करे? उपन्यास पाठकीय-संवेदना को कुरेदता है, इंसानियत को बचाये रखने की पूरी कोशिश करता है, इसलिए संवेदना के केंद्र में बंटी ही है। हॉस्टल एक वैकल्पिक आवास हो सकता है, किन्तु मनुष्य का अन्तर्जगत भौतिकता से कभी परिपूर्ण नहीं होता। बंटी का 'बचपन' छिन लिया जाता है, फिर उसके आगे की जिंदगी में सामरस्य कैसे रह सकता है? उपन्यास इन्हीं मानवीय चिंताओं और मनोवैज्ञानिक विवेचन के कारण विशिष्ट है। बच्चे भविष्य होते हैं, बचपन अनमोल होता है, बच्चे की चिन्ता भविष्य की चिन्ता होती है। अगर बचपन ही हाशिए पर हो तो स्त्री-पुरुष संघर्षों के कारणों के लिए चिंतित होना एक जिम्मेदार नागरिक का कर्तव्य है। "यह वही बन्टी है जो जगह-जगह से झाँकता रहता है, यही वह बन्टी है जो उपन्यास के खत्म होने के साथ खत्म नहीं होता, और आगे का बड़ा उपन्यास बन पूरी समाज-परिवार व्यवस्था के आगे एक विराट प्रश्न चिन्ह बनकर खड़ा हो जाता है।..... बंटी केवल हॉस्टल के कमरे में पहुँचकर नहीं रूकता वह आपके आस-पास आकर बढ़ता फैलता है।" (विभांशु दिव्याल कथादेश 2009, पृ0 184) जाहिर है लेखिका की चिन्ता में साहित्यकार के सामाजिक दायित्व-बोध का ज्ञान होता है। स्त्री-मुक्ति को लेकर उनकी दृष्टि इकहरी नहीं है, परिवार व समाज सापेक्ष है। हर व्यक्ति के जीवन में बचपन का खास महत्त्व होता है, इसलिए जिन लेखकों का बचपन संकटग्रस्त रहा है, उनकी लेखनी में वह बचपन बार-बार आता है। बचपन की अवस्थिति से ही किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्मित होता है, किन्तु नारी-मुक्ति की अवधारणा व परिवार की अवधारणा में जो गहन अन्तर्विरोध है, सामंजस्य की समस्याएँ हैं, उन्हीं की अभिव्यक्ति उपन्यास में बंटी के माध्यम से हुई है। माता-पिता के सहज संबन्ध न होने या अलगाव की स्थिति में बच्चे का कोमल मन प्रताडित होता है, तत्कालीन समय के हिसाब से उपन्यास का विषय वस्तु पाठकों के लिए लगभग नया है, तलाश विदेशों में होते रहे थे, पर अपना देश भी इस समस्या से जूझ रहा है, इस प्रकार उपन्यास, बहुपठित और बहुचर्चित होने के साथ ही विषय की तल्खी लिए हुए है, लेखिका की सहज अभिव्यक्ति का कला कौशल भी प्रवाहित करता है। इसी उपन्यास से साहित्य जगत में मन्नू भंडारी की विशिष्ट पहचान होती है और यह रचना स्त्री-मुक्ति के सवालियों के लिए 'मील का पत्थर' बन जाता है।

उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में नारी संदर्भ

डॉ० नम्रता जैन

सहायक प्राध्यापिका, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद

प्रस्तावना

कथा साहित्य की जब भी बात की जाती है तो हमारे समक्ष कई कथा सामने प्रकट होने लगती हैं। चाहे वह कथा धार्मिक हो, पौराणिक हो, ऐतिहासिक हो, राजनीतिक हो या सामाजिक हो, लेकिन जब हिन्दी कथा साहित्य की बात की जाती है तो नाटक, निबन्ध, कहानी, उपन्यास आदि एक-एक करके हमारे सामने आने लगते हैं। हिन्दी कथा साहित्य में कई साहित्यकार हुए हैं, जिन्होंने हिन्दी साहित्य को विश्व में आज उस मुकाम पर पहुँचा दिया है, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

जीवन में कई बार कुछ ऐसा होता है, जो कुछ हम चाहते हैं, वह हमें मिल नहीं पाता और जो नहीं चाहते वह सब कुछ हमें बड़ी आसानी से मिलता है। इसी अनचाहे की प्राप्ति की पीड़ा लेखिका की सर्जना है। जीवन का यथार्थ चित्रण उषा प्रियंवदा की रचना के केन्द्र में है। उन्होंने टूटते परिवेश में जीवन की परिवर्तनशीलता और नारी सम्बन्धी जीवन मूल्यों को गहरी मार्मिकता एवं सहानुभूति से अभिव्यक्त किया है। आज की नारी में युग के साथ-साथ आमूल परिवर्तन आया है। कल तक जो सत्य था, वही आज असत्य सिद्ध हो रहा है।

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में इसी परिवर्तित नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण है। उषा प्रियंवदा स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षरों में स्वीकृत हैं। उषा प्रियंवदा जी ने नारी जीवन की विसंगतियों, नई परिस्थितियों तथा उलझनपूर्ण मनःस्थिति में नारी के मिसफिट होने की प्रवृत्ति को अपने कथा-साहित्य में चित्रित किया है। आज नारी की बदलती हुई मान्यताओं, विश्वासों और परिस्थितियों के बदलाव को लेखिका ने अपनी कलम का आधार बनाया है। आज का व्यक्ति नई परिस्थितियों में स्वयं से टूटते हुए जिन्दगी से जूझते हुए आर्थिक संकट से संघर्ष कर रहा है। मध्यवर्ग कभी आदर्श और नैतिकता से जूझता है, तो कभी आधुनिक यथार्थ से। यही लेखिका के कथा-साहित्य का केन्द्र है।

अत्याधुनिकता के कारण आज व्यक्ति-व्यक्ति के बीच की भावनात्मक सम्बन्धों की आदरता समाप्त हो गयी है। उषा जी की रचनाएं इसी सच्चाई को लेकर आगे बढ़ती हैं। पाश्चात्य संस्कृति का मिला-जुला रूप, उनमें पिसते रहते व्यक्ति और समाज का जीवन चरित्र उषा जी के कथा-साहित्य में पूरी ईमानदारी के साथ उभरा है। भारत और विदेश दोनों ही देश उनके कार्यक्षेत्र रहे हैं। उषा प्रियंवदा जी की कथा में कभी भारतीय पृष्ठभूमि होती है, तो कभी विदेशी विदेशी धरती और परिवेश में आदर्श भारतीय नारी पारम्परिकता और आधुनिकता के द्वन्द्व में जीती हैं। भारतीय संस्कारों पर किस प्रकार से पाश्चात्य प्रभाव हावी होता जा रहा है, इस तथ्य को भी लेखिका ने उभारा है। दोनों संस्कृतियों के बीच व्यक्ति किस प्रकार पिसता चला जाता है, उसका अंकन भी मार्मिकता से किया है। नारी जीवन की अनेक विडम्बनाएं, आशाएं, निराशाएं, ऊल, घुटन, तनाव, विसमता, कटुता को लेखिका ने अपने कथा-साहित्य में गहरी संवेदना और कलात्मक सूझ-बूझ के साथ व्यक्त किया है। इनके इर्द-गिर्द का पूरा समाज भी हमारे सामने अभिव्यक्त हुआ है। वातावरण निर्माण के साथ पात्र जिस परिवेश में जीते हैं, लेखिका उनका अभिभूत प्रवण चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। परिणामस्वरूप अपने कथा साहित्य निर्माण में लेखिका सफल रही है।

साहित्य अपने समय और समाज का प्रतिबिम्ब होता है। आदिम युग से लेकर अब तक के साहित्य का अवलोकन करने पर इस बात की पुष्टि होती है कि देश-काल, प्रवृत्तियाँ, परिस्थितियाँ एवं मान्यताएं सहज ही प्रतिबिम्बित होती रही हैं। कारण लेखक अपने समय व समाज को जिस रूप में देखता है, उसे उसी रूप में प्रकट करता है और केवल प्रकट ही नहीं करता बल्कि अपनी प्रतिभा से एक ऐसे कल्पना संसार के निर्माण की संकल्पना को भी अभिव्यक्त करता है, जिससे पाठक को एक सकारात्मक संदेश भी मिल सके।

उषा प्रियंवदा जी का कथा-साहित्य

मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति का नाम है कथा-साहित्य कथा-साहित्य की मूल चिन्ता में हमेशा अपने समय का मनुष्य रहा है, परिवेश और काल तो मनुष्य के संदर्भ में ही मूल्य और अर्थवत्ता ग्रहण करते हैं। साहित्यकार के व्यक्तित्व, उसके चिन्तन, मनन, दर्शन आदि के निर्माण में जितना योगदान उसकी व्यक्तिगत परिस्थितियों और स्वयं के जीवन का होता है, उतना ही उसकी युगीन परिस्थितियों और सामाजिक वातावरण का भी होता है। साहित्य की चाहे जो भी विधा रही है, वह अपने युगीन परिवेश के दबाव एवं अन्तर्विरोधों से ही उत्पन्न होती है। इसलिए कहा जा सकता है कि कोई भी साहित्यकार अपने परिवेश से जितना अधिक जुड़ा हुआ होगा या अपने आस-पास के जीवन का जितना अधिक दबाव महसूस करेगा, उसके लेखन में उतनी ही अधिक गहराई होगी। इसलिए कहा जा सकता है कि साहित्यकार अपने युग का ही स्पष्ट नहीं होता, बल्कि अतीत और भविष्य का द्रष्टा भी होता है। वह अपनी भावनाओं और अनुभूतियों के आधार पर साहित्य को माध्यम बनाकर समाज को भविष्य के प्रति सजग कर उसका मार्ग प्रशस्त करता है।

उपन्यास और कहानी आधुनिक युग में कथा-साहित्य की महत्वपूर्ण विधाएँ रही हैं। व्यक्ति मन की जटिलताओं के विविध आयामों, नये सामाजिक सम्बन्धों के संक्रमण और बदलती संवेदनाओं आदि का जितना सूक्ष्म अंकन कथा साहित्य की इन दोनों विधाओं से हो सकता है उतना और साहित्य की अन्य विधाओं के द्वारा नहीं। मध्यवर्ग एवं निम्न वर्ग कहीं न कहीं इन दोनों विधाओं के केन्द्र में रहा है। इन विधाओं ने इन वर्गों के सारे पुराने प्रतिमानों को तोड़कर समय के साथ होने वाले हर बदलाव के साथ कदमताल करते हुए। समसामयिक जीवन के सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों को बहुत करीब से देखा है, अनुभव किया है और बदलते माहौल में रहने वाले मनुष्य के भीतर से गहराई से टटोला है।

उषा प्रियंवदा के कहानी साहित्य में नारी अनुभूति एवं मानवीय संवेदना

उषा प्रियंवदा के कहानी साहित्य में नारी अनुभूति एवं मानवीय संवेदना। उषा प्रियंवदा के कहानी - साहित्य का अध्ययन करने पर सामाजिक संरचना एवं उसके स्वरूप का जो चित्रण हमें दिखाई देता है उसमें पात्र जिन समस्याओं से जूझते हैं वह समस्या व्यक्तिगत होते हुए भी सूत्र रूप में पूरे परिवेश से जुड़ी हुई दिखाई देती है। उनके अधिकांश कथानकों का परिवेश मध्यवर्गीय है। उनके मध्यवर्गीय पात्र प्रायः शिक्षित हैं।

उषा प्रियंवदा के जिन्दगी और गुलाब का फूलश तथा श्वापसीश कहानी ध्यानाकर्षित करती है। पारिवारिक वातावरण के चित्रण को परिवार का व्यक्ति जब तक कमाता है तब तक उसकी नजरों में प्रिय बना रहता है लेकिन जब कमाना छोड़ देता है, तो वह परिवार की नजरों में अपरिचित बन जाता है तथा उसके साथ शुष्क व्यवहार होने लगता है।

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में जहाँ वस्तु विन्यास का प्रश्न है, तो उसमें लेखिका का अभिव्यक्ति कौशल व्यक्त होता है। लेखिका मानवीय संवेदनाओं के उन्मेष द्वारा घटना एवं परिस्थितियों का निर्माण करते हुए आगे बढ़ती हैं और कथा का अन्त खुला छोड़ देती हैं।

अनुभूति की तीव्रता और उसका सहज चित्रण उषा जी की निजी विशेषता है। उनके प्रायः सभी कहानियों तथा उपन्यासों में संवेदनात्मक स्थलों की अधिकता है। अतः बोझिल मनःस्थिति एवं सूक्ष्म संवेदनाएँ भी जिस सहजता से वे प्रस्तुत करती हैं, वह उनके अभिव्यक्ति कौशल का परिचायक है।

उषा प्रियंवदा के उपन्यास- साहित्य में नारी अनुभूति एवं मानवीय संवेदना

उषा प्रियंवदा के उपन्यास साहित्य में नारी अनुभूति एवं मानवीय संवेदना में हमने उषा जी के प्रवासी जीवन के अनुभवों और प्रवासी समाज से उनके साहचर्य के अनुभवों को उनके उपन्यासों में चित्रित किया है। अपने पहले उपन्यास पचपन खम्भे लाल दीवारों से शुरू की गयी अपनी उपन्यास लेखन यात्रा में उषा जी ने स्त्री जीवन के कई पहलुओं को छुआ। पचपन खम्भे लाल दीवारें उपन्यास उषा जी ने दिल्ली के एक मशहूर कॉलेज में पढ़ाते हुए और वहाँ पर पढ़ा रही अन्य शिक्षिकाओं तथा आस-पास के समाज में व्याप्त घुटने में इस उपन्यास के कथानक को जन्म की पृष्ठभूमि तैयार की। कैसे एक पढ़ी-लिखी आत्मनिर्भर नारी समाज में फैलाये रेशमी जाले में फँसती चली जाती है और वो जाले जिनके मुख्य तन्तु और कुछ नहीं बल्कि सामाजिक मान्यताएं, परम्पराएं और रूढ़ियाँ हैं।

अपने लेखन के संक्रमण काल में उषा जी का महत्वपूर्ण उपन्यास रुकोगी नहीं राधिका है। राधिका एक ऐसी नायिका है, जो चपल है, विद्रोहिणी है और जिसमें संसार के सामने अकेले खड़े होने का सामर्थ्य है। इसके अलावा उषा जी के चार उपन्यास श्लेषयात्रा, श्रान्तर्वशी, श्रमया कबीर उदास और नदी प्रकाशित हुए।

उषा जी के उपन्यासों की नारी अपने जीवन से, अपनी अभिव्यक्तियों से और अपने आचरण से पुरुष प्रधान सत्ता की जड़ पर वैचारिक आघात करती हैं, चाहे वो सुषमा हो, राधिका हो, वाना हो, अनु हो, यमन हो या फिर आकाशगंगा सब की सब धारा के नीचे चिल्ला चिल्ला कर बदलाव की आत पुकार करती हैं।

उषा प्रियंवदा जी के पात्र जीवन्त एवं गतिशील हैं। वे आधुनिक व्यक्ति की संवेदना और अनुभव के एकदम निकट है। पढ़े-लिखे, टेलेन्टेड व्यक्ति की मानसिक यन्त्रणा को लेखिका ने मार्मिकता से उभारा है। दो संस्कृतियों के बीच पिसती अत्याधुनिक नारी-जीवन की उक्ति, विवशता, अजनबीपन, सन्त्रास, अकेलेपन की स्थितियों को लेखिका ने सजनात्मक स्तर पर अंकित किया है।

आज का व्यक्ति नयी परिस्थितियों से स्वयं से टूटते हुए जिन्दगी से जूझते हुए आर्थिक संकट से संघर्ष कर रहा है। उषा जी के सभी पात्र जो अत्याधुनिक हैं, किसी न किसी समस्या से त्रस्त हैं। ये सभी पात्र आधुनिक एवं मध्यवर्गीय एवं उच्चवर्गीय समाज से आये हैं। उनके पात्र कभी भारतीय परिवेश से जुड़े हुए हैं, तो कभी विदेश की धरती से ये अपनी सारी कमियों, खूबियों के बावजूद हमारे सामने जीवन्त मनुष्य के रूप में प्रस्तुत होते हैं।

अत्याधुनिकता के कारण आज व्यक्ति व्यक्ति के बीच की भावनात्मक सम्बन्धों में आर्द्रता समाप्त हो गयी है। उषा प्रियंवदा के उपन्यास इसीसच्चाई को लेकर आते हैं। पाश्चात्य संस्कृति का मिला-जुला रूप, उनमें पिसते रहते व्यक्ति और समाज का जीवन चरित्र उषा जी के उपन्यासों में पूरी ईमानदारी के साथ उभरा है। भारत और विदेश दोनों ही देश उनके कार्यक्षेत्र रहे हैं। उषा प्रियंवदा जी के कथा में कभी भारतीय पृष्ठभूमि होती है, तो कभी विदेशी विदेशी घरेलू और परिवेश में आदर्श भारतीय नारी पारम्परिकता और आधुनिकता के द्वन्द्व में जीती हैं। भारतीय संस्कारों पर किस प्रकार से पाश्चात्य प्रभाव हावी होता जा रहा है, इस तथ्य को भी लेखिका ने उभारा है। दोनों संस्कृतियों के बीच व्यक्ति किस प्रकार पिसता चला जाता है, उनका अंकन भी मार्मिकता से किया है। नारी जीवन की अनेक विडम्बनाएं, आशाएं, ऊब, घुटन, तनाव, विषमता, कटुता और प्रवासी जीवन की पीड़ा को लेखिका ने अपने कथा-साहित्य में गहरी संवेदना और कलात्मक सूझ के साथ व्यक्त किया है। इनके इर्द-गिर्द का पूरा समाज भी हमारे सामने अभिव्यक्त हुआ है। वातावरण निर्माण के साथ-साथ पात्र जिस परिवेश में जीते हैं, लेखिका उनका अभिभूत प्रवण चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। परिणामस्वरूप कथा-साहित्य के वातावरण निर्माण में लेखिका सफल रही है।

कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से मूल्यांकन

उषा जी का कथा साहित्य सिर्फ कथ्य की ही दृष्टि से नहीं शिल्प की दृष्टि से भी अत्यन्त रोचक और पठनीय है। उनकी कहानियाँ तथा उपन्यास सिर्फ रोचक ही नहीं बल्कि हमारे मन में कौतूहल का संचार भी करते हैं। उषा जी की कथा-साहित्य के पात्रों की संख्या को देखा जाय तो ऐसी संयम कम लेखिकाओं में देखने को मिलती है। उषा जी की भाषा सीधे-साधे शब्दों में अनुभूति को सम्प्रेषित करने वाली है। हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू हो या पंजाबी सभी भाषाओं के शब्द उनके कथा-साहित्य में पूरी पात्रानुकूलता के साथ विद्यमान हैं। बिम्बों का विधान, उचित शाब्दिक शब्दों का चयन, पात्रानुकूलता, परिस्थितिनुकूल, प्रसंगानुकूल, भाषिक व्यंजना, मुहावरे एवं कहावतों का सार्थक प्रयोग, प्रवाहमयी शैली उनके कथ्य को अधिक गम्भीर बनाती है। उमा प्रियंवदा ने अपने कथा-साहित्य में विभिन्न शैलियों वर्णनात्मक शैली डायरी शैली बिम्बात्मक शैली, संवाद शैली, पूर्वदीप्त आदि शैलियों का प्रयोग किया है तथा उसकी योजना से विगत और वर्तमान के संदर्भों को पात्रों की मन स्थिति एवं अन्तर्द्वन्द्वों के साथ जोड़कर कथानक में रोचकता प्रदान किया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में उनके अभिव्यक्ति पक्ष की सहजता ही उन्हें वैशिष्ट्य प्रदान करती है। उन्होंने अपनी शक्ति और संवेदनात्मक दृष्टि से जीवन और जगत के यथार्थ को पहचाना तथा आधुनिक जीवन की विसंगतियों, विवशताओं के भीतर घुटती टूटती बिखरती नारी की करुण गाथा को पूरी निष्ठा के साथ प्रस्तुत किया है।

उपसंहार

उषा प्रियंवदा ने अपने कथा साहित्य में आधुनिक परिवेश की नई पीढ़ी की, क्रियाएं प्रतिक्रियाएं तथा स्त्री पुरुष के आपसी सम्बन्धों का चित्रण यथार्थ के साथ किया है। कथ्य की दृष्टि से इनका कथा साहित्य कई आयामों को स्पर्श करता है। निःसन्देह कथ्य और शिल्प की दोनों ही दृष्टियों से उषा जी का कथा-साहित्य हिन्दी जगत में अपनी अलग पहचान कायम करता है।

उषा प्रियंवदा ने कई प्रकार की कहानियों और उपन्यासों की रचना की हैं। नई कहानी के दौर में उनकी कहानियों का सृजन हुआ है। अतः नई कहानी की सारी मान्यताएँ उनके कथा साहित्य में दृष्टिगोचर होती हैं। उषा प्रियंवदा का साहित्य बहुआयामी है। उनके कथा-साहित्य का अनुशीलन करने के पाश्चात् यह बात स्पष्ट उभर कर आती है कि उनकी कहानियों और उपन्यासों की भावभूमि नारी संवेदना को लेकर चलती हैं। उनकी कहानियाँ मानवीय सम्बन्धों के जटिलता की कहानियाँ होती हैं। उन्होंने एक और बहिर्मुखी यथार्थ के रूप में सामाजिक जीवन की छवि को लेखकीय दायित्व से उभारा है और उनकी (नारी केन्द्रित) समस्याओं को पकड़ने का प्रयास किया है, तो दूसरी ओर अन्तर्मन को केन्द्र बनाकर नारी जीवन की सूक्ष्म संवेदनशीलता, उनके अन्तर्द्वन्द्व अकेलापन, अजनबीपन, कुंठाओं, घुटन सत्रास आदि विकृतियों एवं विसंगतियों को बारीकी से निरूपित किया है। उषा प्रियंवदा जी की कहानियों में चाहे उसका परिवेश भारतीय हो या विदेशी उसमें नारी मन की गहराइयों एवं उसके अन्तर्मन की सूक्ष्म संवेदनाओं से परिचित होने का अवसर उपलब्ध होता है। उषा जी की कहानियों में प्रेम सम्बन्धों के अनेक पहलू हैं और परिवार की समस्याएँ हैं जो स्थूल धरातल पर न होकर सूक्ष्म धरातल पर हैं। उनकी अधिकांश कहानियाँ नारी प्रधान हैं, जो आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में अकेलापन ऊब, क्षणवाद अतीत, मोह, अवसाद कुंठा घुटन अपराधबोध आदि की अभिव्यक्ति हुई है। उनकी कहानी वर्तमान में शुरू हो या स्मृति से पर स्मृतियों उन पर हावी हो जाती है और पूरी कहानी पर छाया रहती है।

उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में टूटन, घुटन, यंत्रणाएँ, अवसाद, बिखराव, अकेलापन, ऊब, मोहभंग, अपराधबोध एवं कुंठाएँ सर्वत्र हैं। लेकिन उसमें संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का स्वरूप उसे भिन्न वातावरण देता है। उनकी आरम्भिक रचनाओं में सामान्यतः नायिकाओं को कभी मातृत्व, कभी फर्ज तो कभी सामाजिक सोच ने स्थिति से समझौता करने एवं सम्बन्धों को ढोने के लिए विवश किया है, लेकिन बाद की रचनाओं में नायिकाओं ने अपनी अस्मिता को पहचानकर अपने अस्तित्व एवं सम्मान के लिए अपने पैसे पर खड़ा होने का प्रयास किया है। अनुभूति की तीव्रता और उसका सहज चित्रण उषा जी की निजी विशेषता है। उनके प्राय सभी कहानियों तथा उपन्यासों में संवेदनात्मक स्थलों की अधिकता है। अतः बोझिल मनः स्थिति एवं सूक्ष्म संवेदनाएँ भी जिस सहजता से वे प्रस्तुत करती हैं, वह उनके अभिव्यक्ति कौशल का परिचायक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2/35, असारो रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002 संस्करण, 2005
- शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान 4268-8 / 3, असारो रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002 संस्करण, 2014 6.
- वाजपेयी, नन्ददुलारे, आधुनिक साहित्य, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, 1. बी. नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली 110002, संस्करण 2003
- मधुरेश, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, सुमित प्रकाशन यू०एफ० 42. अलोपशकरी अपार्टमेंट 107/177 अलोपीबाग इलाहाबाद पंचम संस्करण 2011
- लाल लक्ष्मीनारायण आधुनिक हिन्दी कहानी, वाणी प्रकाशन 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002. द्वितीय संस्करण 2001
- राय, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास राजकमल प्रकाशन प्रालि 1. बी. नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली 110002 संस्करण 2005
- प्रकाश, आनन्द, हिन्दी कहानी का विकास प्रक्रिया, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 1. प्रथम संस्करण 1997
- खरे, नीरज, 20वीं सदी के अन्त में हिन्दी कहानी, बी०के० तनेजा क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, 28 शापिंग सेण्टर, कर्मपुरा, नई दिल्ली
- मिश्र, रामदरश, हिन्दी कहानी अन्तरंग पहचान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली-110002. द्वितीय संस्करण, 1993
- यादव, राजेन्द्र कहानी स्वरूप और संवेदना, वाणी प्रकाशन, 4695, 21- ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2013
- चन्द्र विपिन आजादी के बाद का भारत हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 10 केवेलरी लेन, नई दिल्ली
- मिश्र, रामदरश हिन्दी उपन्यास, नेशनल हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, द्वितीय संस्करण 1993

बाल शिक्षा के जनक गिजुभाई के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता

रत्नेश कुमार जैन

प्राचार्य, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद

प्रस्तावना

शिक्षा जीवन-व्यापी प्रक्रिया है। इस प्रवृत्ति का उद्गम हमारे भीतर से है। उद्गम का मूल है- अन्तरात्मा की भूख कोई व्यक्ति किसी को सिखा नहीं सकता। विकास की आधारशिला है अनुभव अनुभव स्वतन्त्र क्रिया में निहित है और स्वतन्त्र क्रिया अविरोध में एवं भीतर के यथेष्ट, अनवरत प्रतिक्षण आविष्कार में निहित है।

गिजुभाई प्रवीणवीर शिक्षक के साथ-साथ बाल साहित्य के प्रणेता भी थे। उन्होंने गुजराती में दो सौ से अधिक बाल पोथियाँ लिखकर सम्पूर्ण गुजरात के बच्चों को स्वाध्याय हेतु प्रेरित किया। यही गुजराती बाल पोथियाँ आगे चलकर विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुईं। और आज सम्पूर्ण भारत ही नहीं अपितु बाल जगत का विश्व इसे सहर्ष मन से स्वीकार कर रहा है। इन्होंने न केवल बाल साहित्य ही अपितु बालकों के माता-पिता एवं शिक्षकों के लिए भी कई पुस्तकें लिखीं।

बाल पुस्तकों के प्रतिभाशाली लेखक होने के साथ-साथ गिजुभाई एक प्रभावशाली शैक्षिक पत्रकार भी थे। वे शिक्षण-पत्रिका के केवल सम्पादक ही नहीं थे अपितु बराबर उसमें कुछ लिखा भी करते थे। इन लेखों में कुछ लेख बच्चों के लिए और कुछ अभिभावकों के लिए होते थे। पत्रिका जगत में गिजुभाई ने अनेक लोगों को प्रभावित और प्रेरित किया।

बाल मन्दिर में विभिन्न विषयों के शिक्षण के साथ-साथ विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाओं तथा चरित्र निर्माण पर ज्यादा बल दिया जाता है। सत्य, अहिंसा, करुणा, स्नेह, आदर दया, त्याग परोपकार, ईमानदारी, मंत्री, भाईचारा जैसे उच्च मानवीय गुणों के विकास का यह एक वास्तविक केन्द्र है। महत्त्वपूर्ण स्मरणीय बिन्दु यह है कि यही वह केन्द्र भी है, जहाँ गिजुभाई बधेका ने बैठकर अपने शैक्षिक अनुभवों पुस्तकें सिर्फ शिक्षकों अभिभावकों के निमित्त लिखीं।

गिजुभाई बधेका का शिक्षा दर्शन

आज राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समाज विषम जटिलताओं में उलझता जा रहा है। निस्संदेह इन समस्याओं का समाधान शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। किन्तु आज की शिक्षा व्यवस्था पर ध्यान देने से यह पता चलता है कि शिक्षा व्यवस्था स्वयं ही समस्याओं का शिकार है। अतः राष्ट्र में आदर्श नागरिक के निर्माण हेतु इसमें आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। या यूँ कहिए कि प्रारम्भिक शिक्षा (बाल शिक्षा) किसी बाल शिक्षण के सिद्धान्तों पर आधारित हो। ऐसे में बाल शिक्षक गिजु भाई का शिक्षा दर्शन अत्यन्त उपयोगी और सक्षम है।

जिस शिक्षा में समाज और देश के कल्याण की चिन्ता के तत्त्व नहीं होते, वह कभी भी सच्ची शिक्षा नहीं कही जा सकती। यह मन्तव्य निश्चित ही शिक्षा के प्रति घोर निराशा की ओर संकेत करता है। भारतीय शिक्षा के विषय में डॉ. सीताराम जायसवाल ने लिखा है, वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों में गहरी खाई है। इसका जन-जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। आज शिक्षा अवयस्क चालकों को दिग्भ्रमित कर रही है, उन्हें गलत रास्ते पर चलने के लिए पथ प्रशस्त कर रही है। इसका प्रमुख कारण है- शिक्षा मनीषियों के विचारों की उपेक्षा।

किसी भी व्यक्ति का शिक्षा दर्शन उसके जीवन दर्शन से बहुत गहराई तक जुड़ा रहता है। जहाँ तक गिजुभाई के शिक्षा दर्शन के प्रासंगिकता का प्रश्न है उसे हम उनके बाल शिक्षण के विशेष सन्दर्भ में ही देखने का प्रयास कर रहे हैं। कारण शिक्षा क्षेत्र में उनका प्रमुख योगदान इसी से सम्बन्धित है। जिस प्रकार से बीज के भीतर ही एक महान वृक्ष छिपा हुआ है उसके फूल-फल छिपे हुए हैं, ठीक उसी प्रकार से बच्चों के भीतर एक सम्पूर्ण मानव छिपा हुआ है। हम युवावस्था को बचपन के विकास की अवस्था कह सकते हैं। इस प्रकार यदि शैशवावस्था उदयकाल है, तो बाल्यावस्था प्रातः काल तथा युवावस्था मध्याह्नकाल के रूप में जाना जा सकता है। कालभेद की दृष्टि से यदि देखा जाय तो मानव जीवन की सभी अवस्थाएँ शिशु के विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हैं।

शिशु मानव जाति का मूल है। यही मूल आगे के सभी प्रगति का स्रोत बनता है। जीवन के सभी लक्ष्य इसी मूल के सोत से निकलने वाली धारा से ही पूरे होते हैं। बेशक बचपन का यह प्रवाह वेगवान होता है किन्तु अपने सूक्ष्म रूप में ही रहता है। इसकी गति धीमी होती है। अलग-अलग कूलों तटों से टकराता यह प्रवाह धीरे-धीरे प्रगति करता चलता है और अन्ततः अपनी मंजिल पर पहुँच जाता है। इसके बावजूद बच्चा और उसका बचपन उपेक्षा ही सहते रहते हैं।

वे दुत्कारे जाते हैं अपमानित होते हैं और दर-दर की ठोकें खाते हैं। आवश्यकता इस बात की होती है कि यदि बालपन के विकास की ही भिन्न-भिन्न अवस्था मानव जीवन की सभी अवस्थाएँ होती हैं, तो फिर इसी बालपन में ही बाल शिक्षण का विशेष महत्त्व है। सौभाग्यवश भारतीय जमीन पर खड़े रहकर बाल-मन को समझने बाल-शिक्षण के व्यावहारिक सिद्धान्तों को समझने तथा सच्चे शिक्षक के कर्तव्यों को रेखांकित करने वाले एक विलक्षण शिक्षक पिछली सदी के नवोन्मेष में हमारे मध्य हो चुके हैं। बीस वर्षों तक प्रतिदिन बालकों के साथ रहते हुए प्रतिपल उनकी विविध गतिविधियों का बारीकी से अवलोकन करते हुए उन्होंने बाल शिक्षण के अपने सिद्धान्त और अपनी पद्धतियाँ निर्मित की थी। एकलव्य जैसे एकनिष्ठ आराधक वे थे गुजरात के गिजूभाई बधेका।

गिजूभाई बधेका अर्थात् भारतीय शिक्षा को समर्पित एक ऐसा नाम जिसने अपने काम से सार्थक किया अपना सकल्प। एक सामान्य से सरकारी स्कूल में गिजूभाई ने जो नवाचार में प्रारम्भ किया था, वही तो आज की बाल केन्द्रित शिक्षा है, वही आनन्दमयी और सहभागी शिक्षा है और उसी के अन्दर से प्रकट होते हैं, सीखने एवं सिखाने के वे तत्त्व, जिन्हें जिज्ञासा, प्रश्न या तर्क, विश्लेषण, विवेचन, वर्गीकरण तुलना और निष्कर्ष आदि कहा जाता है। शिक्षा ज्ञान का मात्र अक्षरीकरण नहीं है। शिक्षा परिवर्तन की सबसे अधिक प्रभावशाली प्रक्रिया है। यदि भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66) यह कहता है कि भारत का भविष्य उसकी शालाओं की कक्षाओं में आकार ले रहा है, तो यह सोचना होगा कि वह भविष्य क्या है, कौन है और कक्षाओं में कैसे आकार ले रहा है?

गिजूभाई अर्थात् एक ऐसा असाधारण शिक्षक जिसने अंधविश्वासों, रूढ़ियों और बंधे-बँधाये शैक्षिक प्रबन्ध के बावजूद विद्यार्थियों को विद्यालयी व्यवस्था के कड़े शिकजे से बाहर निकाला था, पाठ्यक्रम की सत्ता को खुली चुनौती दी थी और बालकों के लिए सच्ची जीवन निर्मात्री एवं विमुक्तकारी शिक्षा का प्रबन्ध किया था पूरी तरह से बालकों के लिए समर्पित था, जो गुलाम मानसिकता को तोड़कर स्वतन्त्रता एवं सृजनशीलता की बात करता था, जो सिद्धान्त नहीं बघारता था बल्कि अनुभूतिविहीन आयातित सिद्धान्तों की धज्जियाँ बिखेरता था, जो स्वयं अपने प्रयोग में भरोंसा रखता था और अपने व्यावहारिक सिद्धान्तों का कड़ाई से पालन करता था अर्थात् जो सिद्धान्तवादी नहीं व्यवहारवादी था और पक्का मानववादी था।

गिजूभाई कोई नियमित शिक्षक नहीं थे और न ही उन्होंने शिक्षा का कोई प्रशिक्षण ही लिया था। जिस समय नवाचार बालकेन्द्रित शिक्षा, आनन्ददायी एवं सहभागी शिक्षा जैसे मुहावरे भारतीय शिक्षा में शैक्षिक प्रक्रिया, पद्धति या प्रणाली के रूप में मौजूद ही नहीं थे, उस समय गिजूभाई ने तत्कालीन शिक्षा और शिक्षण पद्धति में सार्थक हस्तक्षेप किया था, शिक्षा के तत्कालीन स्वरूप, संस्था की स्थिति और उसकी कार्यप्रणाली, शिक्षक एवं उनकी शिक्षा, चेतना व्यवस्था एवं उसकी शैक्षिक प्राथमिकता समाज और उसकी शिक्षा के प्रति जिम्मेदारी आदि सभी को अपने प्रयोगों चकित था और शिक्षण नयी पहचान दी थी। शिक्षक दोनों को ही एक आज इतने सारे शिक्षा आयोगों के प्रतिवेदनों शिक्षानीतियों और सेमिनारों के निर्णयों निष्कर्षों के बावजूद बाल शिक्षण अपना वाञ्छित स्वरूप नहीं पा रहा है, न स्वतंत्रचेता। स्वाध्यायशील उद्यमी व प्रजातान्त्रिक जीवन शैली में आस्था रखने वाली पीढ़ियों निर्मित हो रही है। न बच्चों में उल्लास, उत्साह, कुछ नया कर गुजरने की उमंग शेष बची है। क्या कारण है इसका ? जाहिर है पश्चिमीकरण की बाद में सब बहे जा रहे हैं, न अपनी जमीन को समझना चाहते हैं, न जीवन-मर्म को गिजूभाई का एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह रहा कि बालकों को बिना डराये-धमकाये, प्यार से पढ़ाना और उन्हें अनुशासित रखना वास्तविकता तो यह है कि यह सिद्धान्त गिजूभाई का शिक्षा जगत की देन है जो आज के परिवेश में भी प्रासंगिक है।

अपने छात्र जीवन का यह स्मरण कि. हमारी शाला शिक्षा की न तो तपोभूमि थी। न न नाट्यशाला थी, न ही संग्रहालय तथा कला मन्दिर ही थी। इतना ही नहीं वह बगीचा भी नहीं थी। थी क्या? टूटी-फूटी चार दीवारें मेला- कुचला उखड़े तले वाला आँगन, दागों से भरी हुई बेचे, टूटी हुई पाटी तथा फटी हुई किताबों वाले हम और डंडा हाथ में लेकर घूमते हुए हमारे मास्टरजी बस यही हमारी शाला थी। गिजूभाई का यह मर्म अपने बाल शिक्षण को आगे बढ़ाने में बड़ा सहयोग किया। परिणामतः शिक्षा जगत् में जकड़े हुए बालक में उन्होंने स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन प्रदान करने का प्रयास किया है जो आज बाल केन्द्रित शिक्षा का प्रमुख अंग है। अस्तु आज के दिन भी उनका दर्शन प्रासंगिक है। इतना ही नहीं उन्होंने स्वावलम्बन, स्वतन्त्रता और स्वयं स्फूर्ति को शिक्षा का स्वाभाविक साधन मानते हुए इसे साधन त्रयी से सम्बोधित किया।

गिजूभाई ने अपने देश में बाल शिक्षा के क्षेत्र में एक नये आन्दोलन की शुरुआत अपने गृह प्रान्त गुजरात से की थी। इस आन्दोलन का प्रभाव सरकारी प्राथमिक पाठशालाओं पर तो न के बराबर पड़ा किन्तु निजी स्वैच्छिक संस्थाओं पर इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। लोगों में अपने शिक्षण संस्थाओं को सजाने सवारने में होड़ लग गयी। छोटे बच्चों के साथ प्रेमपूर्व व्यवहार किया जाने लगा, उन्हें खेल-खेल में सीखने के अवसर दिये जाने लगे, उनकी सृजनशीलता के विकास के लिए उन्हें स्वतन्त्र अवसर दिये जाने लगे। छोटे बच्चों की मूल प्रवृत्तियों हेतु यह सम्पूर्ण कार्य, जिसको गिजूभाई ने शिक्षा जगत् में दिया, वह आज उससे भी ज्यादा प्रासंगिक है जितना प्रारम्भ में था। गिजूभाई की यह मान्यता थी कि शिक्षा मात्र अर्थोपार्जन के लिए नहीं है और न ही केवल आर्थिक स्वावलम्बन हेतु है अपितु यह सम्पूर्ण मानव के विकास के लिए है। वे कहते थे कि प्छौद्धिक विकास के विषय सिखाने के पहले हृदय का विकास करने वाले विषय सिखाये जाने आवश्यक है, क्योंकि अगर मनुष्य का हृदय विकसित होगा तो उसकी बुद्धि उसे स्वयं ही सन्मार्ग पर ले जायेगी।

राजनीति और शिक्षा दोनों एक दूसरे के सम्पूरक हैं। यहाँ हम यह भी स्पष्ट रूप से कहना चाह रहे हैं कि गांधी और गिजूभाई में बहुत कुछ साम्य है। दोनों समकालीन हैं, एक स्थान के हैं, एक जैसा काम है। अन्तर केवल कार्य क्षेत्र का है। एक का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र स्वतन्त्रता आन्दोलन के द्वारा देश को स्वतन्त्र कराने का संकल्प है तो दूसरे का क्षेत्र बाल जगत् को उचित शिक्षण प्रशिक्षण प्रदान करके उन्हें आगे बढ़ाने का आधार प्रदान करने का है। इस प्रकार जो काम गाँधी जी ने राजनीति में किया वही काम गिजूभाई बधेका ने शिक्षा क्षेत्र में किया। दोनों ने जो कुछ भी किया, तल्लीनता और निष्ठाभाव से किया। दोनों हमेशा प्रयोग द्वारा सत्य की खोज में लगे रहे।

माता-पिता के द्वारा उठाये गये सवालियों के जो उत्तर गिजूभाई बधेका ने दिया है, वे आज भी उतने ही उपयोगी हैं, जितने वे पहले थे। गिजूभाई द्वारा दिये गये माँ-बाप के प्रश्नों के उत्तर जानकर आज के माँ बाप भी उसके द्वारा अपने बच्चों को फिर समझने की कोशिश करेंगे। कारण गिजूभाई के सोचने का तरीका हमें नयी दृष्टि देता है-सोचने के लिए। गिजूभाई का साहित्य लोगों को आज भी नयी दृष्टि के लिए तैयार करेगा, प्रयोग हेतु उत्साहित करेगा और दिल-दिमाग खुला रखेगा। गिजूभाई ने बहुत सारे साहित्य लिखे हैं। किसी एक पुस्तक के विषय में कुछ भी कहना उपयुक्त नहीं है। कहना उपयुक्त है तो

केवल यह कि “गिजूभाई का पूरा साहित्य घर विद्यालय की शोभा है। उनकी सभी रचनाएँ एवं कृतियाँ प्रत्येक परिवार बालक, अभिभावक, विद्यालय तथा नागरिक के लिए उपयोगी है। गिजूभाई का सिद्धान्त बाल मन की अनेक बातों, उनकी जिज्ञासाओं उनकी उलाहनों को हमारे सामने रखता है। साथ ही साथ इनका शिक्षण सिद्धान्त और शिक्षण विधि अनेक सूक्ष्म बिन्दुओं पर प्रकाश डालता है। आज की बालकेन्द्रित शिक्षा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित है। इस हेतु में भी आज ये और इनके विचार प्रासंगिक है।

आज भी गिजूभाई का बाल मन्दिर समा ज्ञान का वातावरण रचकर उसमें से बालक को अपनी पढ़ाई का विषय ढूँढ़ निकालने की अनुकूलता प्रदान करता है। इस प्रक्रिया में स्वतन्त्रता, स्वानुभव, स्वक्रिया एवं बालमन को समझने में आसानी होती है। सृजनशीलता की सामग्री निर्भय वातावरण एवं आदर स्नेह और सम्मान के कारण बालकों को आनन्द और संतोष मिलता है। भावनगर का दक्षिणामूर्ति बाल मन्दिर उनका उपासना स्थल रहा जहाँ बैठकर उन्होंने अपने शैक्षिक अनुभवों की पन्दह पुस्तकें केवल शिक्षकों एवं अभिभावकों हेतु लिखी थीं। गिजूभाई बधेका द्वारा गुजराती भाषा में लिखी गयी सारी शैक्षिक पुस्तकों का हिन्दी एवं अन्य विभिन्न भाषाओं में आज किया जा रहा अनुवाद उनके साहित्य एवं उनके व्यक्तित्व की प्रासंगिकता का ज्वलन्त प्रमाण है उनके चौदह पुस्तकों का हिन्दी भाषा में एक ही साथ किया गया अनुवाद एवं प्रकाशन गिजूभाई ग्रन्थमाला के नाम से जाना जा रहा है।

इस प्रकार गिजूभाई के शैक्षिक विचारों और प्रयोगों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपना सर्वस्व बच्चों की शिक्षा पर समर्पित कर दिया था। बाल शिक्षण और प्राथमिक शिक्षण में उनका अभूतपूर्व योगदान उन्हें विश्वभर में अनेक शिक्षाविदों व अध्यापकों से आगे खड़ा करता है। मॉण्टेसरी ने जो चिन्तन किया वह बालमन्दिरों तक सीमित हो गया। फोबेल का चिन्तन बाल वाटिका तक ही केन्द्रित था। गिजूभाई ने बालमन्दिर से आगे चलकर प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा पर विचार किया। गिजूभाई ने जो प्रयोग किये, शिक्षा को खेल से जोड़ा, आनन्द से जोड़ा और प्रेम से जोड़ा उससे शिक्षा की क्रूरता से मुक्ति हुई। गिजूभाई ने यह भी सिद्ध किया कि कम-से-कम और खराब से खराब साधनों से भी श्रेष्ठतम शिक्षा सम्भव है। शिक्षक की कर्मठता कल्पनाशीलता और कला यदि शिक्षण के प्रति समर्पित है तो शिक्षा न केवल अपेक्षित स्तर की होगी, बल्कि शिक्षा से जिस नये मनुष्य का निर्माण होगा, वह एक सार्थक मनुष्य होगा। इस दृष्टि से गिजूभाई का सम्पूर्ण शैक्षिक साहित्य, उनके नवाचार एवं उनके प्रयोग न केवल आज, बल्कि आने वाले समय के लिए भी। प्रासंगिक है। इतना ही नहीं यदि हम अपने बच्चों के प्रति स्नेह रखते हैं तो भविष्य दर भविष्य में भी इनके विचारों साहित्यों एवं दर्शन में कोई कमी नहीं आयेगी और इनकी प्रासंगिकता बरकरार रहेगी।

महात्मा गांधी और गिजूभाई

महात्मा गांधी ने जिस अहिंसक क्रान्ति के द्वारा देश की आजादी के लिए संघर्ष किया और 1920 से 1939 तक का स्वतन्त्रता संग्राम जिस प्रकार गाँधी जी का समय या गाँधी राजनीति का काल बना। वैसा ही निरन्तर और निर्बाध कार्य शिक्षा के क्षेत्र में गिजूभाई ने किया। बच्चों की स्वतन्त्रता, स्वायत्तता, स्वावलम्बन और सम्मान की रक्षा में उन्होंने बाल अधिकारों की चेतना और माँग पैदा की। उन्हें लगा कि कोई भी राष्ट्र अपने बच्चों की उपेक्षा करके और उनसे उदासीन रहकर एक सुन्दर और खुशहाल राष्ट्र नहीं बन सकता। बालक को उन्होंने मानवीय व्यक्तित्व की पहचान दी उनमें आत्मविश्वास और प्रेम रचा, सहयोग और सद्भाव रचा और बच्चों के पालन-पोषण से लेकर उनकी शिक्षा-दीक्षा तक गाता पिताओं को उनके सही दायित्व का अहसास कराया। ये बालकों के गुरु या शिक्षक नहीं बने बल्कि उन्होंने बालको को अपना गुरु या शिक्षक माना। बाल जीवन को समृद्ध राक्षम और आनन्दमय बनाने के लिए उन्होंने शिक्षा के माध्यम से जो वातावरण रचा जो प्रयोग किये और बालमन्दिर को जिस प्रकार बच्चों के आनन्द की किलकारी करती संस्था में बदल दिया, उसी वजह से उनके काम को उतना ही महत्वपूर्ण माना गया, जितना गाँधी का राजनीति के क्षेत्र में इस प्रकार वे बच्चों के बापू या गाँधी बन गये।

इस प्रकार जो काम गांधीजी ने राजनीति और देश सेवा में किया, वही काम गिजूभाई ने शिक्षा के क्षेत्र में किया। सरलता और सादगी को सर्वोपरि रखा। देश की जमीन से जुड़े रहे। विशाल विश्वदृष्टि के कारण मानवीयता से ओत प्रोत रहे जो किया तल्लीनता से किया, सीखने की दृष्टि से किया प्रयोग की भावना से किया और सबको साथ लेकर चलने की पक्की निष्ठा से किया। लोग गाँधी जी को भूल गये गिजूभाई को भी मूलते जा रहे हैं। देश का हित इसी में है कि इस गाँधीजी और गिजूभाई को हमेशा अपने सामने रखें, उनकी ही तरह जीवन को अध्ययन का विषय बनायें, प्रयोग करें, सीखें और सिखाएँ।

दोनों के लिए जीवन का लक्ष्य सत्य का अनुसंधान था और समूचा जीवन ही उनके लिए प्रयोगशाला था। उन्होंने कभी नहीं माना कि जो उन्होंने जाना वही सत्य है। जीवनभर वे सत्य की खोज में लगे रहे प्रयत्न और प्रयोग करते रहे, अपने अनुभवों को दुनिया को बताते रहे और उन अनुभवों पर ध्यानपूर्वक विचार करते हुए आगे का रास्ता तय करते रहे। बाल जीवन और बाल शिक्षण के मर्म को समझने वाली विभिन्न बाल-पोथियों, ग्रन्थों, लेखों आदि को लिखते हुए बम्बई में एक सामान्य बीमारी (पक्षाघात) के परिणामस्वरूप बधेका की 23 जून, 1939 ई० को मृत्यु हो गयी। महात्मा गाँधी उनके प्रत्येक शैक्षिक गतिविधि से आश्चस्त थे। उनके असामयिक मृत्योपरान्त उन्होंने कहा था कि उनके कार्यों ने मुझे सदैव मुग्ध किया है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि उनका कार्य आगे बढ़ता चलेगा

उपसंहार

इस प्रकार गिजूभाई ने जब शिक्षक के रूप में बाल मन्दिर में कदम रखा, तो वे एक कोरी स्लेट की तरह नहीं आए बल्कि उनकी आत्मा में मॉण्टेसरी थी। उनके अनुभव में थे वे सभी धुरंधर शिक्षाविद, विचारक चिकित्सक एवं शिक्षक जिन्होंने इस दुनिया में बच्चों के जीवन को आनन्ददायी स्वतन्त्र और सुन्दर बनाने में अपने आपको समर्पित कर दिया। गिजूभाई की प्रसिद्ध पुस्तक दिवास्वप्न और उनके समस्त विचार जो लगभग 17 प्रमुख पुस्तकों में सम्मिलित हैं, भारतीय ही नहीं अपितु समूचे विश्व की प्राथमिक शिक्षा में उतने ही महत्वपूर्ण है, जितने पेस्टोलॉजी या फोबेल के एवं लॉक या मॉण्टेसरी के गिजूभाई बच्चों के भक्त थे, किन्तु उनमें समन्वय था- ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों ही धाराओं का। बच्चे ही उनका दर्शन थे और बच्चे ही उनके देवता गिजूभाई बच्चों के देवत्व में ऐसे मनुष्यों की परिकल्पना करते थे, जो मन विचार एवं बुद्धि से सुदृढ़ एवं सक्षम हो और उनके प्रयोग इस देश के उन करोड़ों बच्चों के आनन्द

के प्रयोग है जो शिक्षा के माध्यम से ऊपर उठकर एक पीढ़ी का निर्माण करते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि गिजुभाई प्राथमिक शिक्षा के प्रथम प्रयोग-पुरुष के साथ-साथ भविष्य की पीढ़ी के निर्माता भी थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कर्ण सिंह उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, गोविन्द प्रकाशन, लखीमपुर खीरी 2009
- चौबे, एस.पी. भारत और पश्चिम के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या फैजाबाद
- डॉ. पाण्डेय एवं डॉ. त्रिपाठी: विश्व के प्रमुख शिक्षा मनीषी एवं शिक्षादर्शन, 2006
- डॉ. पाण्डेय एवं डॉ. त्रिपाठी : शिक्षा के दार्शनिक आधार, न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद,
- डॉ. इन्द्रा ग़ोवर संसार के महान शिक्षाशास्त्री विश्वविद्यालय प्रकाशन. वाराणसी
- डॉ. ओ.पी. शर्मा शैक्षिक अनुसन्धान एवं सांख्यिकी विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
- डॉ. केपी माथुर शिक्षा दर्शन एवं शिक्षाशास्त्री सामाजिक एवं मानवीय विचार
- डॉ पृथ्वीनाथ पाण्डेय भारतीय चिन्तक
- डॉ. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव भारत के महान शिक्षाशास्त्री
- डॉ. रमाकान्त दुबे विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री
- डॉ. सरयूप्रसाद चौबे भारत और पश्चिम के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री, भवदीय प्रकाशन अयोध्या फैजाबाद

भारत में कैदियों के मताधिकार - एक विधिक अध्ययन

डॉ० क्षेमेन्द्र मणि त्रिपाठी¹

राम दुलार सोनकर²

मूलशब्द: कैदी, संवैधानिक अधिकार, विधिक अधिकार, मानवाधिकार पक्ष, मताधिकार, आपराधिक पृष्ठभूमि

प्रस्तावना

वर्तमान परिपेक्ष्य में मताधिकार का अधिकार एक विधिक पक्ष से हटकर कैदियों के मानवीय मूल्य एवं मानव अधिकार के दृष्टि से भी देखा जाना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकार के सार्वभौमिक घोषणा पत्र के अनुच्छेद 21³ एवं सिविल तथा नागरिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 जिसका की भारतीय संविधान में समानता के अधिकार में उल्लेख भी मिलता है, कैदियों के मताधिकार पर संकीर्ण एवं विधिक पक्ष से ऊपर उठने की आवश्यकता प्रतीत होती है। प्राचीन भारत से लेकर आधुनिक भारत तक किसी व्यक्ति को साक्ष्यों के आधार पर दोषी पाया जाना एवं दण्डित करना यह एक न्यायिक प्रणाली की प्रक्रिया है, अपराध और दण्ड सदैव समाज में विभिन्न स्वरूपों में हमारे सामने पाये जाते हैं, परन्तु अपराध⁴ और अपराधी की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि भी देखना आवश्यक है। कैदियों को जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 62(5)⁵ में मताधिकार से वंचित रखना मूलतः एक समूह को राजनीतिक प्रक्रिया से वंचित रखना एक स्वामाविक प्रश्न परिलक्षित करता है कि क्या उन्हें भी मत देने का अधिकार दिया जाना चाहिए ?

आधुनिक समाज में अपराध करना और अपराधी प्रवृत्ति का होना दोनों अलग प्रश्न हैं। अपराध की विधिक अज्ञानता किसी भी व्यक्ति को अपराधी बना तो देता है किन्तु उसे हम वास्तविक रूप में उसे हम अपराधी मान ले इस पर पुनर्समीक्षा की आवश्यकता प्रतीत होती है।⁶ द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त विश्व के अनेको देशों ने कैदियों को मताधिकार देने से वंचित नहीं रखा गया है। जहाँ तक अपराध और दण्ड की व्याख्या की बात है अपराध सिद्ध होने पर दण्ड उसकी स्वामाविक प्रक्रिया है किन्तु आपराधिक न्याय प्रणाली के अन्तर्गत न्यायपालिका को भी मानवीय आधार पर यह निर्णय देना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति को सजा देने के पहले उसकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि का संज्ञान रखना चाहिए⁶।

1. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:-

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार ऋग्वेद की ऋचाओं में पाप को धार्मिक व्याख्या का अभाव है, लेकिन ऐसे आक्षेप निराधार हैं, नैतिकता के मूलभूत आधार उस समय भी विद्यमान थे⁷, अनेक ऋचाओं में ईश्वर पाप को हेय दृष्टि से देखता है, विभिन्न ऋचाओं में पाप, पुण्य की व्याख्या की गई है। आरम्भिक समाज में दूसरे के हित समाप्त करने की क्रिया अनुचित समझी जाती रही है। वध, चोरी आदि शाश्वत रूप से सर्वत्र अनुचित माने गये हैं। प्रारम्भिक समाज में दैवीय भावना का अधिक प्रभाव रहने से उचित और अनुचित के फल का सम्बंध ईश्वर एवं सदाचार से जोड़ा गया, सदाचार की अवहेलना अपराध माना गया और सदाचार का उल्लंघन व्यक्ति समाज या समुदाय का अवराध स्वीकार किया गया। ईश्वर नैतिकता का संरक्षक था और सभी देवता मानव कल्याण चाहते हैं अतएव मानवीय कल्याण के विपरित किया गया कार्य दैवीय इच्छा के विपरित माना गया, ऐसे कार्यों का सम्बंध समाज एवं देवता से न होने से पाप और अपराध दोनों माने गये हैं।⁸

2. अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं मताधिकार

आधिकारिक रूप से कोई भी दस्तावेज उपलब्ध नहीं है कि कैदियों को मत देने का अधिकार किन-किन देशों में प्रमाणित रूप से दिया गया है किन्तु बी.बी.सी.⁹ द्वारा प्रकाशित दस्तावेज में तकरीबन यूरोप के 18 देशों ने कैदियों का पूर्ण मताधिकार का अधिकार दिया है। आयरलैण्ड और स्लोवेनिया इनके अधिकारों के प्रति प्राथमिक रूप से अग्रणी रहे हैं, विशिष्ट यह है कि इन देशों में न हो न्यायपालिका, मीडिया एवं जनआक्रोश दिखायी देता है¹⁰। संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार घोषणा पत्र 1948 के अनुच्छेद 21 तीन प्रमुख बिन्दुओं का उल्लेख प्रदत्त है क्रमशः

- (1) प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चुने गये स्वतंत्र प्रतिनिधियों द्वारा हर व्यक्ति को अपने देश का सरकार बनाने में भाग लेने का अधिकार
- (2) हर व्यक्ति को अपने देश की सार्वजनिक सेवाओं में भाग लेने का समान अधिकार,
- (3) हर व्यक्ति की इच्छा भी सरकारी प्राधिकार का आधार है।

अनुच्छेद 21¹¹ का उल्लेख किसी भी स्वतंत्र एवं नियमित चुनावों में परिलक्षित होता है जहाँ पर सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार एवं गुप्त मतदान की निष्पक्ष वोटिंग प्रक्रिया व्यवहार में दिखाई देती है,

सिविल तथा नागरिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसविदा, 1966 के अनुच्छेद 25 में भी हर नागरिक को बिना किसी नस्ल, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनैतिक या अन्य मान्यताओं जैसे कि राष्ट्रीय या सामाजिक उद्भव, सम्पत्ति, जन्म या अन्य आधारों पर भेदभाव किये बिना प्रजातांत्रिक प्रक्रिया में मत देने का अधिकार दिया गया है।

गौरतलब है कि नेल्सन मंडेला नियम 1955¹² के अनुच्छेद 57, 58, 60 एवं 61 दैहिक स्वतंत्रता बनाम कैदी जीवन के आपसी समन्वय एवं दोनों में वर्गीकरण करते हुए कैदियों को भी एक सामान्य मनुष्य की तरह उनको सम्मान और गरिमा प्रदान की जानी चाहिए। मूलरूप से अनुच्छेद 61 कुछ सामान्य नागरिक हितों, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक लाभ से जुड़ा है, उसे अग्रसरित करना चाहिए अन्यथा यह कैदियों के लिए प्रत्यक्ष रूप से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अलावा अनुच्छेद 20(2)¹³ का भी उल्लंघन है।

3. भारतीय संविधान एवं न्यायिक प्रतिक्रिया

यह उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है कि मेनका गांधी बनाम भारत संघ,¹⁴ बंधुआ मुक्ति मोर्चा¹⁵, चार्ल्स शोमराज बनाम सेन्ट्रल जेल¹⁶, सुनील बात्रा बनाम दिल्ली प्रशासन¹⁷, शीला बरसे बनाम भारत संघ¹⁸ जैसे कई वादों में उच्चतम न्यायालय ने कैदियों एवं विचाराधीन कैदियों के मानवाधिकार को उल्लिखित करते हुए यह विचारधारा व्यक्त की है कि उन्हें भी अन्य नागरिकों की तरह सम्मान एवं गरिमा के साथ जीने का अधिकार है, उच्चतम न्यायालय ने संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों का मेनका गांधी वाद के उपरान्त एक व्यापक दृष्टिकोण और निर्वचन को स्थापित किया, न्यायालय ने अनुच्छेद 14, 19 और 21 को Composite Code Theory के नाम से सम्बोधित किया है और विशेष तौर पर अनुच्छेद 21 के संदर्भ में कार्यपालिका को प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त का अनुसरण एवं व्यवहारिक रूप से क्रियान्वित करने का आदेश भी पारित किया। न्यायमूर्ति पी०एन भगवती, जस्टिस कृष्णा अय्यर, जस्टिस एच० आर० खन्ना¹⁹ और पूर्व के जस्टिस पतंजलि शास्त्री, जस्टिस हिदायतुल्ला जैसे अनेकों न्यायाधीशों ने नागरिकों और व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों को सशक्त रूप से सुदृढ़ और प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया है।

प्रजातंत्र में न्यायाधीशों की विशेष आस्था थी और उन्होंने भारतीय मनीषा, संस्कृति को पाश्चात्य विचारधाराओं के समान्तर भारतीय विधिशास्त्र को सुदृढ़ करने हेतु कुछ नये मौलिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने का प्रयास किया है जिससे की भारत की एक कल्याणकारी राज्य²⁰ की अवधारणा स्थापित हो सके।

यहाँ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने मैरी एन्ने बनाम अधीक्षक तिहाड़ जेल के वाद में अपना मत व्यक्त किया कि श्कारावास का तात्पर्य यह नहीं है कि आपके मौलिक अधिकारों को तिलांजली दे दी जाये, यह अलग बात है कि व्यवहारिक रूप से और पुनर्विलोकन करते हुए न्यायालय पूरे भाग III को, जोकि स्वतंत्र नागरिकों को सुनिश्चित करता है, कैदियों को वह स्वतंत्रता देने से मना कर सकता है²¹। संदर्भ के तौर पर कारागार अधिनियम, 1894²² आदर्श नियम और विधिनियमों का संकलन है जिसमें प्रमुख रूप से कारागार के अन्दर अनुशासन और दण्डित कैदियों की सजा सुनिश्चित करने का विधिक दस्तावेज है।

भारतीय संविधान, अनुच्छेद 324 में निर्वाचन आयोग को स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव कराने का संवैधानिक दायित्व जिसमें संघ और राज्य की विधायिकाओं के गठन का भार है उसी के फलस्वरूप संविधान के अनुच्छेद 326 को जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1950 के धारा 16, 19 और धारा 11 A और 62 के साथ निर्वचन किया जाता है जिसके अन्तर्गत कौन से व्यक्ति चुनाव लड़ने हेतु अयोग्य है तथा 18 वर्ष तक की आयु के व्यक्ति मतदाता सूची के अन्तर्गत अपना मतधिकार प्रयोग कर सकते हैं, विधानसभा और लोकसभा के गठन में। उपरोक्त प्रावधान संविधान और सम्बंधित विधि में किसी भी व्यक्ति को मताधिकार करने से अयोग्य घोषित किया जा सकता है निम्नलिखित आधारों पर, अप्रवासी भारतीय, विकृतचित्त, अपराध या भ्रष्ट या अवैध कार्यों के परिपेक्ष्य में।

निष्कर्ष

संविधान के कुछ प्रावधान विशेष तौर पर अनुच्छेद 19(1)(a) और अनुच्छेद 21, जिसका सर्वोच्च न्यायालय ने मेनका गांधी वाद के उपरान्त एक व्यापक दृष्टि और दृष्टिकोण अंगीकृत किया है उसी परिपेक्ष्य में कैदियों को भी मानवाधिकार के नजरिये से अपना संकारात्मक पक्ष (मताधिकार) रखने का भी अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। मताधिकार के अधिकार दिये जाने से उनकी अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत दैहिक स्वतंत्रता पर कोई भी नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ेगा और उन्हें भी लोकतंत्र में आस्था रखते हुए अनुच्छेद 19(1)(a) के अन्तर्गत मताधिकार के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति करने का मौका मिलेगा। कारागार अधिनियम, 1894 के अन्तर्गत यदि कैदियों को पठन- पाठन एवं अन्य सुविधाएँ मुहैया करायी जा सकती है, ताकि कारावास से निकलकर वह एक स्वतंत्र और जिम्मेदार नागरिक बन सकते हैं, उनकी सजा भी न्यून की जा सकती है उनके सकारात्मक आचरण के कारण एक प्रगतिशील समाज में मताधिकार से वंचित रखना उसे लोकतांत्रिक प्रक्रिया में पीछे रखता है। यदि किसी कैदी को राष्ट्रपति या राज्यपाल के द्वारा क्षमादान देने कि संवैधानिक पृष्ठभूमि हो सकती है तो कैदियों को भी मताधिकार देने के लिए न्यायपालिका और कार्यपालिका को पुनर्विचार करना श्रेयस्कर होगा।

संदर्भ

- 1 एसोसिएट प्रोफेसर, विधि संकाय, बी०एच०यू० वाराणसी (kshemendratrpathi@gmail.com)
- 2 शोध छात्र, CUBS Gaya
- 3 अनुच्छेद 21 मानव अधिकार की सार्वभौमिक घोषणा 1948.
- 4 धारा 321 दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973.
- 5 जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1950
- 6 धारा 354, दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973

- 7 राधा बिनोद पाल, द हिस्ट्री ऑफ हिन्दू लॉ, पेज नं० 168
- 8 प्राचीन भारत में राज्य एवं न्यायपालिका: प्रो० हरिहर नाथ त्रिपाठी, 1965 पेज नं० 185
- 9 ब्रिटिश ब्रॉडकॉस्ट कारपोरेशन, 2012
- 10 कनाडा, क्रोएशिया, चेकगणराज्य, अल्बेनिया, ऑस्ट्रीया, बांग्लादेश, बोस्निया, डेनमार्क, फिनलैंड, फ्रांस, जर्मनी, ग्रीस, आइसलैंड, ईरान, इजराइल, जापान, केन्या, लेटिविया, मैसीडोनिया, नीदरलैंड, नार्वे, दक्षिण सूडान, स्पेन, स्वीटजरलैंड, पाकिस्तान आदि देशों ने कैदियों को मत देने का अधिकार प्रदान किया है।
- 11 मानवाधिकार का सार्वभौमिक घोषणा, 1948
- 12 द यूनाइटेड नेशन स्टैंडर्ड मिनिमम रूल फॉर ट्रीटमेंट ऑफ प्रीजनर्स
- 13 किसी भी व्यक्ति को एक अपराध के लिए दो बार दण्ड नहीं दिया जा सकता (Double Jeopardy)
- 14 ए० आई० आर० 1978 एस०सी० 597
- 15 ए० आई० आर० 1984 एस०सी० 38
- 16 ए० आई० आर० (1978)4 एस०सी०सी० 104
- 17 ए० आई० आर० 1978 एस०सी० 1635, इसे भी देखें हुसैन आरा खातून I-6 बनाम गृह सचिव बिहार राज्य 1980,1 एस०सी०सी० 81
- 18 ए० आई० आर० 1980 एस०सी० 773
- 19 ए० डी०एम० जबलपुर बनाम शिवाकांत शुक्ला 1976 Habeas Corpus Case
- 20 अनुच्छेद 37 एवं 38 भारत का संविधान, के०के० कोच्चुनी बनाम मद्रास राज्य, केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य 1973
- 21 प्रेम शंकर बनाम दिल्ली प्रशासन, ए०आई० आर० 1980 एस०सी० 1535
- 22 कारागार टप्पू अनुसूची प्रविष्टि संख्या 4, राज्य सूची
- 23 अनुच्छेद 72
- 24 अनुच्छेद 151 इसे भी देखें अनुकूल चन्द्र प्रधान बनाम भारत संघ 1997ब2814

“भारत के माड़िया जनजाति में युवागृह की भूमिका” (छत्तीसगढ़ के अबुझमाड़ क्षेत्र के माड़िया के संदर्भ में)

डॉ० कविता कन्नौजिया

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, किशोरी रमण स्नातकोत्तर महिला, महाविद्यालय मथुरा।

सारांश-

प्रस्तुत लेख छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर जिले के अबुझमाड़ क्षेत्र की माड़िया जनजाति में ‘युवागृह’ (गोटुल) की भूमिका के अन्तर्गत माड़िया जनजाति के ऐतिहासिक बिन्दुओं, सांस्कृतिक पहलुओं एवं बदलते परिवेश में युवागृह की आवश्यकता आदि तथ्यों पर आधारित है। इस लेख में प्रयुक्त तथ्यों, आकड़ों, चित्रों का संग्रह विभिन्न द्वितीयक स्रोतों एवं जनजाति क्षेत्र के माड़िया जनजाति के युवाओं से साक्षात्कार के माध्यम से किया गया है। युवागृह (गोटुल) माड़िया जनजाति का सांस्कृतिक विरासत एवं शिक्षा का केन्द्र है। ‘गोटूल’ की व्यवस्थाएं अपने आप में बेजोड़ हैं। इसके नियम बहुत ही व्यवस्थित और अनुशासित हैं। इसकी दिनचर्या निश्चय ही युवाओं के व्यक्तित्व विकास एवं चरित्र निर्माण का आधार है। ‘गोटुल’ के सदस्य पूरे दिन की अपनी जीविकोपार्जन की प्रक्रिया पूरी करके शाम को भोजन करने के बाद सांस्कृतिक क्रियाकलाप में शामिल होने के लिए युवागृह में एकत्रित होते हैं, यहाँ पर अपने संस्कृति से सम्बन्धित गीत, नृत्य, मनोरंजन के कार्यक्रमों द्वारा पूरे दिन के थकान को मिटाते हैं। इसका एक अच्छा परिणाम यह है कि चिन्ता से मुक्त स्वस्थ जीवन व्यतीत करना है। गोटुल के सदस्यों के लिए उसके द्वारा बनाये गये नियम का पालन करना अनिवार्य होता है। नियम पालन न करने वाले के लिए दण्ड का भी विधान है हालांकि इसके नियम व दण्ड कठोर नहीं हैं। इसमें आदर करना, सम्मान करना, गृहस्थ जीवन सुखमय बनाने की शिक्षा दी जाती है। ‘गोटुल’ के नियम के उल्लंघन जल्दी कोई करता नहीं है। यदि कोई उल्लंघन कर भी दिया उसे साधारण दण्ड दिया जाता है। जैसे प्रतिदिन घर से एक लकड़ी लेकर आना होता है। इसमें शारीरिक व यौन से सम्बन्धित किसी प्रकार का कोई शोषण नहीं होता है। बल्कि संस्कृति का संरक्षण होता है। जनजाति में युवागृह के नये रूप में सृजन करने की आवश्यकता है, क्योंकि यह हमारा सांस्कृतिक विरासत है, इसका विलुप्त हो जाना हमारे संस्कृति का बहुत बड़ा क्षति है। युवागृह एक आत्मानुशासित संस्था भी है। जहाँ दोनों ही लिंगों (स्त्री और पुरुष) के युवा सामाजिकता को विकसित करते हैं। आर्थिक जीवन के कर्तव्यों में प्रशिक्षित होते हैं।

Keywords-जनजाति, माड़िया, युवागृह, गोटुल।

प्रस्तावना-

जनजाति ‘युवागृह’ एक प्रकार का संघ है। जिसके सदस्यता व्यक्ति को एक निश्चित आयु प्राप्त कर लेने पर सहज मिल जाती है। प्रवेश लेने वाले जनजाति युवक एवं युवतियों को उसकी गतिविधियों में भाग लेना आवश्यक होता है। मजूमदार के अनुसार-: जनजाति युवागृह एक प्रकार का परिसंघ अथवा समिति है जिसकी स्थापना कुछ विशेष नियमों के अन्तर्गत कुछ इच्छित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए की जाती है”। लेवी का कथन है कि-“मानव व्यवहार पर सबसे अधिक प्रभाव अपने आयु वर्ग के साथी सदस्यों का होता है जब संघ के भीतर एक किशोर दूसरे युवक सदस्यों से शिक्षा प्राप्त करता तब उसे शीघ्र ही ग्रहण कर लेता है। सामान्य जगह पर एकत्रित होकर सामूहिकता की भावना को प्रोत्साहन देना, जनजाति संस्कृति की शिक्षा प्राप्त करना तथा बाहरी आक्रमणों से समुदायकी रक्षा करने के उद्देश्य से युवागृह बनाया गया। ”

जनजातियाँ लोगो का एक ऐसा समूह है जिसकी भाषा, संस्कृति, जीवनशैली और सामाजिक आर्थिक स्थिति भिन्न-भिन्न होती है, ये सभी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजाति देश की कुल जनसंख्या के 8.6 प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करता है। जनजातीय समुदाय हमारे समाज का एक बड़ा हिस्सा है जो विभिन्न क्षेत्रों में रहते हुए अपनी संस्कृति के जरिये भारतीय संस्कृति को एक अनोखी पहचान देता है। जनजातियों में संस्कृति एवं मानविय मूल्यों की रक्षा परंपरागत संस्था युवागृह के द्वारा किया जाता है। भारत के लगभग सभी जनजातियों में एक लिंगीय तथा द्विलिंगीय युवागृह पाए जाते हैं। इनको अलग-अलग जनजातियों में अलग-अलग नाम से जाना जाता है जैसे असम के कोयकनाक लड़कों के युवागृह को ‘मोरंग’ और लड़कियों के युवागृह को ‘इलोइची’ कहते हैं। भोटिया जनजाति के युवागृह को ‘रंगबंग’ कहते हैं। मुंडा और हो जनजाति के युवागृह को

‘गिटिओर’ कहा जाता है। गोंड जनजाति के युवागृह को ‘गोटुल’ कहते हैं। कहीं-कहीं पर इसे ‘घोटुल’ नाम से वर्णित किया गया है। लेकिन प्राचीनतम नाम ‘गोटुल’ है।

युवागृह एक ऐसा सामाजिक संगठन है जो जनजातीय क्षेत्र से बाहर की दुनियाँ में जिज्ञासा, उत्सुकता, कौतुहल और विस्मय के भाव से चर्चित रहा है। यह एक प्रकार के प्रशिक्षण केन्द्र की तरह काम करता है। युवागृह प्रायः गाँव के बाहर जंगल के मध्य बनाया जाता है। यह बाहर से विशिष्ट दिखे हर संभव कोशिश की जाती है। दीवारों पर प्रायः टोटमी प्रतिक चित्र बनाये जाते हैं। युवागृह एक ऐसी संस्था है जो परम्परागत परम्पराओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाती है तथा अपनी सदस्यों को भूमिका निभाने तथा अपनी संस्कृति को बनाये रखने के लिए सुदृढ़ता प्रदान करती है। यदि कोई सदस्य युवागृह में अनुपस्थित रहता है तो उसे दण्डित भी किया जा सकता है। एक व्यक्ति (लड़का या लड़की) विवाह होने तक एक सदस्य या अधिकारी के रूप में युवागृह का सदस्य बना रहता है। युवागृह जीवन के कई प्रथाओं एवं अनुपालनों से जुड़ा है इनमें से कुछ प्राचीन परम्परा से चले आ रहे हैं तो कुछ इस संस्था की क्रियाशीलता के दौरान प्राप्त अनुभव द्वारा जोड़ दिये गये हैं। युवागृह के अन्दर का जीवन उल्लास पूर्ण होता है। इसमें खेल तथा मनोरंजन करते हुए दिखते हैं। इसमें आर्थिक एवं शैक्षिक प्रेरणाएँ निहित हैं। सामान्यतः इसके युवागृह का सदस्य दिन के समय अपनी परिवार वालों के साथ रहते हैं, शाम को भोजन के बाद युवागृह के कार्यों में सम्मिलित होते हैं। युवागृह के अन्दर जो कुछ होता है उससे ज्यादातर गोपनीय रखा जाता है। युवागृह के सदस्यों की दो श्रेणियाँ देखने को मिलती हैं। वरिष्ठ तथा कनिष्ठ सदस्यों में से युवागृह के अधिकारी चुने जाते हैं। ये अधिकारी उसके क्रियाकलापों पर नियन्त्रण व अनुशासन बनाये रखते हैं, वरिष्ठ सदस्य ही जनजाति के परम्परागत संस्कृति को कनिष्ठ सदस्यों में समप्रवाहित करते हैं। कनिष्ठ सदस्य अपने अधिकारियों के नेतृत्व में वक्त व जरूरत के हिसाब से विभिन्न सामुदायिक कार्यों में सहायता करते रहते हैं। विवाह आयोजन, गृह निर्माण, फसल सम्बन्धि कार्यों में सहायता करते हैं।

भारत का छत्तीसगढ़ प्रदेश एक जनजाति बाहुल्य राज्य है, छत्तीसगढ़ में कुल 42 जनजातियाँ पायी जाती हैं, यहाँ की प्रमुख जनजाति गोंड है। माड़िया जनजाति गोंड की एक उपशाखा है। गोटुल इनका युवागृह है। यहाँ बस्तर की कुछ परम्पराएँ, वनवासियों के तौर-तरीकें सदियों पुराना हैं, अपने उसी मौलिक रूप में जीवित हैं। छत्तीसगढ़ के बस्तर में पच्चेतर दिनों तक दशहरा मनाया जाता है लेकिन रावण नहीं जलाया जाता। यह ‘बस्तर दशहरा’ के नाम से चर्चित है। इसकी शुरुआत सावन के महिने में पढ़ने वाली हरियाली अमावस्या से होती है, इस दिन रथ बनाने के लिए जंगल से पहली लकड़ी लाई जाती है। और मोरिया दरबार रस्म के साथ समाप्त होती है।

छत्तीसगढ़ की अबुझमाड़िया एक पिछड़ी जनजाति है। यह दक्षिण दिशा में स्थित बस्तर जिले के अबुझमाड़ क्षेत्र में निवास करती है। माड़िया जनजाति अपने सांस्कृतिक परम्पराओं को जीवित रखे हैं। बस्तर की माड़िया जनजाति के लोग गोंडी भाषा की माड़िया उपभाषा बोलते हैं। अबुझमाड़ के अनगढ़ जंगलों में निवास करने वाली जनजाति अपनी मूल परम्परा और संस्कृति को सहेज कर रखा हुआ है। ये प्रकृति की पूजा करते हैं। ये बाहरी लोगों से मिलना जुलना पसन्द नहीं करते। परगनामाझीं मुड़िया जनजाति का मुखिया होता है। मुखिया उनकी समस्याओं का निराकरण करता है। प्राचिनतम् एवं मौलिक संस्था ‘गोटुल’ आज भी इनके परम्परा का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह संस्था युवागृह कहलाता है। यह एक पाठशाला के रूप में काम करता है। यही पर युवक व युवतियों को समाज के प्रति दायित्व, कर्तव्य निष्ठा, अनुशासन, सेवक, सामुदायिक जीवन और चाल-ढाल का प्रशिक्षण दिया जाता है, युवागृह (गोटुल) सामाजिक बौद्धिक, सांस्कृतिक स्थल माना जाता है। माड़िया जनजाति की सामाजिक संरचना की एक विलक्षण विशेषता है कि युवागृह इनकी सामाजिक जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है। यह एक संगठन है जिसकी स्थापना विशेष नियमों के अन्तर्गत की गई है। जिसका कार्य अविवाहित युवक व युवतियों को अपने समाज की संस्कृति से परिचित कराना एवं उन्हें संस्कृतिक के अनुरूप उनके मानसिक विकास को सुनिश्चित करना है। माड़िया जनजाति की धारणा है कि युवागृह (गोटुल) संसार में सबसे बड़ा वैभव है। जो लिंगों देवता ने हमें दिया है इनकी आस्था और मानता है कि लिंगों देवता ‘गोटुल’ के प्रथम जन्मदाता हैं। लिंगों देवता ने ही गोटुल के लया (युवती) और लयुर (युवक) को संगीत की शिक्षा दी थी। लिंगों के बारे में कहा जाता है कि वह अठारह वाद्य यंत्रों को बजाकर अपनी भाभियों का मनोरंजन करता था कालान्तर में उसे घर से निकाल दिया गया। तब उसने गोटुल की स्थापना की थी। अब यह युवागृह अजिब और चौकाने वाला अजूबा लगती हैं। आधुनिक समाज में इसका परिवर्तित रूप ‘क्लब’ है।

शोध पद्धति-

प्रस्तुत अध्ययन माड़िया जनजाति में युवागृह (गोटुल) की भूमिका “ बस्तर जिले के अबुझमाड़ क्षेत्र की माड़िया जनजाति पर केन्द्रीत है। इस अध्ययन में तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूचि का प्रयोग किया गया गया है। अबुझमाड़ क्षेत्र के लगभग 500 उत्तरदाताओं में से 100 उत्तरदाताओं का चयन अध्ययन के लिए किया गया है।

युवागृह (गोटुल) की व्यवस्था:-

गोटुल बाँस या मिट्टी की बनी झोपड़ी होती है। गाँव के सभी अविवाहित युवक व युवतियाँ गोटुल के सदस्य होते हैं। इनके सदस्यों का प्रवेश के बाद नामकरण होता है। उसे यहाँ के नियम दण्ड तथा उसके कर्तव्य के सम्बन्ध में समझाए जाते हैं। यहाँ के पुरुष मुखिया को सिरेदार तथा महिला मुखिया को बेलौस कहते हैं। यहाँ पर सदस्यों को पारस्परिक पदाधिकारियों के अधिन रहना पड़ता है, जिनमें माझीं, पटेल कोटवार आदि पदाधिकारी होते हैं इनके नियम एवं दण्ड विधान कठोर होते हैं, जिसे पदाधिकारियों को मानना पड़ता है। यहाँ के सदस्यों को आयु के आधार पर विभक्त किया जाता है। पुराने सदस्यों को

विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं। गोदुल के देखरेख इनके हाथों में होता है। गोदुल की पूरी साफ सफाई की जिम्मा वहां रह रही बालिका पर होता है। यहाँ के युवक सदस्या को 'चेलिक' तथा युवती को मोटियारी नाम से संसोधित किया जाता है। यदि कोई सदस्य गोदुल के अनुशासन और नियमों का उलंघन करता है तो पटेल, संरपंच व अन्य युवक मिलकर उसे दण्ड देते हैं। गोदुल के चारों ओर बाँस या लकड़ी का घेरा (बाड़ी) बनाया जाता है। गोदुल के अन्दर की ओर बैठने के लिए प्लेटफार्म बनाया जाता है तथा मध्य में आग जलाने के लिए पतला चौकोर पत्थर गाढ़ दिया जाता है इसपर रात्रि में आग जलाकर उसके चारों ओर युवक शयन करते हैं। बाहर एक बड़ा सा पत्थर रखा जाता है जिसमें उत्सव के समय ग्राम देवता को मुर्गे, बकरी, सुअर आदि की बलि दी जाती है। अबुझमाड़ के प्रत्येक गाँव में एक गोदुल होता है। यह माड़िया जनजाति के सामूहिकता का प्रतीक है। तथा इनके सामाजिक सांस्कृतिक जीवन का केन्द्र बिन्दु भी है। इसे गाँव के मध्य में युवक व युवतियाँ मिलकर बनाते हैं इसका आकार गाँव की आबादी पर निर्भर करता है। यह एक बड़ा घर के समान होता है। जो आयताकार में बना होता है। इसके खम्भों मोटी लकड़ियों के होते हैं इसके छत खजुर के पत्ते के सुखाकर बनाया जाता है। छत के नीचे लकड़ियों से छज्जा नुमा पटाव बनाया जाता है। यहाँ ढोल, नगाड़ा, मानदरी, तुरकी, आदि वाद्ययन्त्रों को रखा जाता है। खम्भों में ढोल, पशु पक्षियों की शिकार की उपकरणों के चित्र बनाये जाते हैं।

युवागृह के कार्य:-

युवागृह के सदस्या सामूहिक रूप से कार्य करते हैं। जिससे पारस्परिक स्नेह, सदभावना और एकता की भावना को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार युवागृह "समाजवादी व्यवस्था के प्रतीक है।

- 1- सामान्य कार्य-गोदुल एक स्वशासित संस्था के रूप में सामुदायिक एकता का केन्द्र है। कतिपय अवसरों पर यह "ग्राम सभा" तथा यात्रियों के लिए अतिथि शाला भी हैं। गाँव की समस्त लड़ाई झगड़ों का निपटारा यहाँ पर बैठकर किया जाता है। सामूहिक शिकार व त्यौहार से पूर्व रात्रि को सभी पुरुष सदस्य "गायता" के साथ गोदुल में आते हैं।
- 2- प्रशिक्षण-गोदुल गाँव के समस्त अविवाहित युवक-युवतियों की शिक्षा का स्थान है यदि गाँव में आग लग जाये तो उसे बुझाने की शिक्षा दी जाती है। इसके अलावा दैनिक जीवन, रीति-रिवाज, परम्पराओं की जानकारी, नृत्य, गोदुल पाटा, पेंडूल पाटा (विवाह गीत) आदि सिखाया जाता है, जिससे अबुझमाड़िया बच्चे युवावस्था या विवाह पूर्व संस्कृति से पूरी तरह परिचित हो जाते हैं। गोदुल शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति में एक मौलिक साधन है, यहाँ पर जनजाति अपने रीति-रिवाजों का अभ्यास करते हैं।
- 3- धार्मिक कार्य-गोदुल में गाँव के सभी धार्मिक कार्यों की तिथि का निर्धारण ग्राम के सदस्यों द्वारा गोदुल में "ग्राम सभा" के माध्यम से किया जाता है। गाँव में होने वाली बीमारी, वन्य पशुओं के आक्रमण, दैवीय आपदा से बचाव के लिए प्रतिरक्षात्मक धार्मिक क्रियाएँ एवं कक्साड़ त्यौहार के समय दूसरे गाँव के देवी देवताओं के पुजारियों को यही पर ठहराया जाता है तथा इसे एक मंदिर की भाँति पवित्र मानते हैं।
- 4- समाजिक कार्य-ग्राम के विवाह या शोक के समय संबंधियों को सूचित करना व आये हुए संबंधियों की भोजन व आवास संबंधी व्यवस्था करते हैं। इसी प्रकार भोज में भोजन व शराब वितरण करना गोदुल के युवाओं द्वारा किया जाता है। गाँव में किसी युवक या युवतियों की विवाह हो रही हो तो गोदुल के साथी युवक-युवतियाँ विवाह की तैयारी में उसकी सहयोग करते हैं, विवाह के 15-20 दिन पूर्व से ही उस युवक के नाम से गोदुल में युवक युवतियाँ मांदरी बजाकर नाचते गाते हैं।
- 5- सांस्कृतिक कार्य-घर का सारा काम काज निपटाने के पश्चात युवक और युवती गोदुल में एकत्रित होकर जलती आग के आस-पास बैठकर गपशप शुरू करते करते हैं। सामूहिक गायन होता है और मौसम अच्छा होने पर चाँदनी रात्रि में गोदुल के आंगन में सब मिलकर नाचतें-गाते और मनोरंजन करते हैं जैसे रात्रि गहरी होती जाती है ओर साथ में ढोलों का थाप, घुंघरूओं की खनक और नृत्य का वेग तेज होता जाता है। सब की एक सी राग, लय और गति होती है। कभी खत्म न होने वाली एक अनंत लय में डूब जाते हैं।

आकड़ों का विवरण एवं विश्लेषण-

सारिणी संख्या-1

गोदुल में प्रवेश की आयु की विवरण-

वर्ष	संख्या	प्रतिशत
0-5	00	00
5-10	00	00
10-15	100	100.00
15-20	00	00
योग	100	100.00

प्रस्तुत सारिणी संख्या-1 से स्पष्ट होता है कि बस्तर के माड़िया जनजाति में युवागृह (गोदुल) में प्रवेश की आयु 10-15 वर्ष है।

सारिणी संख्या-2

उत्तरदाताओं द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेने व शौक का विवरण-

सांस्कृतिक कार्यक्रम में हिस्सा	संख्या	प्रतिशत
गीत	50	50.00
नृत्य	30	30.00
वाद्य	20	20.00
योग	100	100.00

सारिणी संख्या-2 से स्पष्ट हो रहा है कि सर्वाधिक 50 प्रतिशत उत्तरदाता गीत (गायन) को पसन्द करते हैं। 30 प्रतिशत नृत्य को, केवल 20 प्रतिशत उत्तरदाता वाद्य (वादन) को पसन्द करते हुए सांस्कृतिक गतिविधियों में हिस्सा लेते हैं।

सारिणी संख्या-3

उत्तरदाताओं को वैवाहिक विचारों का विवरण-

वैवाहिक विचार	संख्या	प्रतिशत
भाई-बहन	2	2.00
ममेरे-फूफेरे भाई-बहन	50	50.00
नाते-रिश्ते	40	40.00
समूह से बाहर	8	8.00
योग	100	100.00

सारिणी संख्या-3 से स्पष्ट हो रहा है कि सर्वाधिक 50 प्रतिशत उत्तरदाता ममेरे-फूफेरे भाई-बहन विवाह को अच्छा मानते हैं। 40 प्रतिशत उत्तरदाता नाते-रिश्ते में विवाह सम्बन्ध बनाना चाहते हैं और 8 प्रतिशत उत्तरदाता समूह से बाहर विवाह सम्बन्ध बनाना चाहते हैं। मात्र 2 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार किया है कि विशेष परिस्थिति में भाई-बहन विवाह सम्बन्ध स्थापित करने की स्वीकृति देते हैं। इसमें घर वाले जब वर का माला कर देते हैं तभी गोदुल के वरिष्ठ उसको स्वीकृत मानते हैं।

सारिणी संख्या-4

जीविकोपार्जन के तरिके सिखाये जाने का विवरण-

जीविकोपार्जन की सीख	संख्या	प्रतिशत
हाँ	98	98.00
नहीं	02	2.00
योग	100	100.00

सारिणी संख्या-4 से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 98 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि युवागृह में जीविकोपार्जन के तरिके जैसे-कृषि करना, शिकार करना, उपकरण बनाना, टोकरी बनाना इसके अलावा अपनी जरूरत की चीजें बर्तन एवं वाद्य यन्त्रों को बनाना सिखाया जाता है।

सारिणी संख्या-5

युवागृह के नियम तोड़ने वाले सदस्यों के दण्ड के बारे में जानकारी का विवरण-

दण्ड	संख्या	प्रतिशत
हाँ	5	5.00
नहीं	95	95.00
योग	100	100.00

सारिणी संख्या-5 से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 95 प्रतिशत उत्तरदाता कभी भी 'गोटुल' के नियम का उलंघन नहीं किये। मात्र 5 प्रतिशत उत्तरदाता नियम का उलंघन करने की बात स्वीकार किये हैं, उनको दण्ड के रूप में घर से प्रतिदिन एक लकड़ी लाकर गोटुल में जमा करना होता था।

सारिणी संख्या-6

युवागृह से लाभ का विवरण-

लाभ का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
जीवन साथी चयन में आसानी	30	30.00
विवाह संबंधित चिंताओं में कमी	20	20.00
जीविकोपार्जन की सीख	50	50.00
योग	100	100.00

सारिणी संख्या-6 से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक उत्तर दाताओं ने यह स्वीकार किया है कि युवागृह में जीविकोपार्जन के तरिके सिखाये जाते हैं। 30 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि इसमें जीवन साथी चयन आसानी होती है। 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि परिवार में बड़े बुजुर्गों को विवाह संबंध चिन्ता नहीं करनी पड़ती है।

सारिणी संख्या-7

सदस्यों के शोषण का विवरण-

शोषण का विवरण	संख्या	प्रतिशत
हाँ	10	10.00
नहीं	90	90.00
योग	100	100.00

सारिणी संख्या-7 से स्पष्ट है सर्वाधिक 90 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि माड़िया जनजाति के युवागृह (गोटुल) में किसी भी प्रकार की शारीरिक, यौनिक, आर्थिक शोषण नहीं किया जाता मात्र 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि नियम का उलंघन करने पर आर्थिक वस्तुओं को दण्ड के रूप में बहुत कम मात्रा में देना पड़ता है।

गोटुल माड़िया जनजाति की अपनी एक परम्परागत संस्था है। यह गाँव के अविवाहित युवक-युवतियों का एक ऐसा सुनियोजित संगठन है जो उन समस्त सामाजिक जीवन को शक्ति अथवा प्राण प्रदान करता है यही वह संगठन है जो प्रत्येक सदस्य के चरित्र में अनुशासन, सहिष्णुता, उदारता तथा अन्य गुणों का बीजारोपण करता है। तथा यह एक ऐसा स्कूल है जहाँ वैवाहिक जीवन को सफल बनाने हेतु यौन जीवन की महत्पूर्ण शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार युवागृह एक आत्मानुशासित संस्था जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों ही आदिवासी समाजिकता को विकसित करते हैं। प्रौढ़ों के नियन्त्रण से आजाद होकर सामाजिक और आर्थिक जीवन के कर्तव्यों में प्रशिक्षित होते हैं। और कुछ शुल्क के बदलें आदिवासी समाज की सेवा करते हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि संध्या होते ही युवक-युवतियां युवागृह (गोटुल) में इकट्ठा होने लगते हैं। जिससे की वे बड़े बूढ़ों के बिना किसी हस्तक्षेप के नृत्य, गीत, खेल, सामाजिक वह अन्य प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। माड़िया जनजाति में 10 से 15 वर्ष के युवक-युवतियों को युवागृह में सदस्यता मिल जाती है इस जनजाति के अधिकांश जनसमूह का मानना है कि इस संस्था के सहयोग से जीवन साथी चयन में आसानी होती है। विवाह संबंधी चिन्ताएं कम होती हैं, क्योंकि गोटुल में सभी युवक-युवतिया एक दूसरे को जानते हैं। गोटुल में आने वाले लड़के-लड़कियों को अपना जीवन साथी चुनने की छूट होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

- 1- विश्वकर्मा सुचित्रा जनजातीय युवागृह बदलते प्रतिमान, पृष्ठ 29
- 2- तिवारी, एस. के.,-छत्तीसगढ़ की जनजातियां, पृष्ठ 49, 137,136, 139,140,
- 3- शुक्ला, शान्ता-छत्तीसगढ़ का सामाजिक धार्मिक इतिहास, पृष्ठ 132
- 4- ठाकुर, केदारनाथ-बस्तर भूषण, पृष्ठ 218
- 5- उप्रेती, हरिश्चन्द्र-भारतीय जनजातियां, पृष्ठ 90
- 6- नायडू, पी.आर.-भारत के आदिवासी विकास की समस्याएं, पृष्ठ 438, 439
- 7- श्रीवास्तव, प्रदीप व वी.एस. मुखर्जी-भारत का जनजातीय जीवन, पृष्ठ 258, 259
- 8- शुक्ला, हीरालाल,-आदिवासी अस्मिता और विकास, पृष्ठ 115,116,117

शिक्षा की गुणवत्ता में I.C.T. के गुणात्मक प्रयोग से शैक्षिक प्रणाली में डिजीटलीकरण

डॉ० माधुरी सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, के.आर. गर्ल्स पी.जी. कालेज, मथुरा (उ.प्र.)

हाई-टेक वर्तमान समाज क्षण प्रतिक्षण उत्थान के क्रान्तिकारी पथ पर द्रुत गति से अग्रसर है। जहाँ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास से भौतिकी, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, कृषि, रक्षा, परिवहन, पर्यटन, वाणिज्य, उद्योगों में आशातीत विकास हुआ है। वहीं भारतीय संस्कृति भी विश्व समुदाय को प्रभावित करने में पीछे नहीं है। प्रकृति एवं पर्यावरण में बढ़ती हुयी असंतुलन (प्रदूषण) चाहे वह भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक (प्रदूषणों) के संरक्षण हेतु विश्व समुदाय भारत की शैक्षिक धरोहरों को बड़ी तेजी से अपने में आत्मसात कर लेने की प्रवृत्ति की ओर उन्मुख है। वहीं भारतीय उच्च शिक्षा में नित नये प्रयोगों से राजनैतिक मूल्य विहीनता से समाज में भ्रष्टाचार, आतंकवाद, नक्सलवाद व अन्य भौतिक संतुलनों (बाढ़, सूखा क्लाइमेट, असंतुलन) का होना अति स्वाभाविक है। ऐसे में एक शिक्षक, मनीषी, शिक्षाशास्त्री सामाजिक चिंतक होने के नाते, संकट मोचक के रूप में प्रयुक्त शैक्षिक प्रणाली में रूपान्तरण पर विचार मन्थन होना अति आवश्यक, ज्वलन्त एवं अति समसामयिक हो गया है। यहाँ पर यह कहना समीचीन होगा कि शैक्षिक तकनीकी (I.C.T.) में अब तक हुयी पाँच क्रांतियों में से भारतीय शैक्षिक प्रणाली अभी तक स्वतंत्रता के लगभग सात दशक बाद भी दूसरी, तीसरी क्रान्ति के परिवर्तनों को भी पूर्ण प्रयोग करने में असफल रही है। जिसके परिणाम स्वरूप शिक्षा की गुणात्मकता में शिथिलता दुष्टिगोचर है।

यदि इसके मूल कारणों का चिन्तन, विश्लेषण, विवेचन करें तो मिलेगा कि भारतीय दर्शन और विचार हमेशा से संकुचित न हो कर व्यापकता की ओर उन्मुख रहा है। चाहे वह कोई भी तन्त्र रहा हो। जिसके फलस्वरूप शिक्षा के उद्देश्य व्यक्तिगत व सामाजिक विकास को बराबरी का दर्जा देते हुए व्यक्तित्व के विकास को समष्टि के कल्याण हेतु माना गया है। चाहे आदर्शवाद रहा हो या प्रकृतिवाद सभी में एक अहम सत्ता को निमित्त माना था। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् को स्थाई एवं अपरिवर्तनीय माना गया था।

वहीं पाश्चात्य दर्शन, प्रयोजनवाद, प्रयोगवाद, क्रियावाद, अर्थक्रियावाद व्यक्तिगत विकास को ही, विकास माना और उसके लिये येन-केन-प्रकारेण अर्थात् स्व-इच्छा की पूर्ति को प्रधानता दी। जिसके अनुकरण से भारतीय नेतृत्व पूरी तरह ओत-प्रोत होते हुये डूब चुकी है। अर्थात् मान्यता प्रदान कर चुकी है। इस प्रकार व्यक्तिगत विकास को मान्यता प्राप्त हो गयी परन्तु सामाजिक विकास को नीति निर्धारण में स्थान प्राप्त नहीं हुआ। चूँकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति में समग्रता तथा व्यापकता होती है, दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय नीति में शिक्षा नीति, सामाजिक नीति आदि समाहित होते हैं। जबकि शिक्षा प्रणाली में शिक्षा के उद्देश्य पाठ्यक्रम अनुशासन मूल्यांकन आदि समाहित व निर्धारित होते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्धारण करने का दायित्व उनका होता है जो शासन सूत्र का संचालन करते हैं अर्थात् नीति निर्धारण का अन्तिम दायित्व विधान सभाओं एवं संसद का होता है। शिक्षा न तो राष्ट्रीय नीति का निर्माण करती है न शिक्षा नीति का निर्धारण करती है। उसका प्रमुख कार्य निष्णात राय प्रस्तुत करना होता है तथा निर्धारित नीति के अनुसार शिक्षा प्रणाली का संचालन करना होता है।

भले ही शिक्षकों को राष्ट्र निर्माता, समाज निर्देशक कहा जाय, परन्तु शिक्षा नीति का निर्धारण या निर्माण वे नहीं करते। इस प्रकार हम पाते हैं कि भौतिक प्रणाली में शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, परीक्षा मूल्यांकन आदि सभी पूर्व निर्धारित हैं। यदि शिक्षक के लिये कहीं कुछ सीमा तक स्वतन्त्रता है तो वह है उसकी शिक्षण कला कौशल या शिक्षण प्रणाली।

जहाँ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास से भौतिकी, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, कृषि, रक्षा, परिवहन, पर्यटन, वाणिज्य, उद्योगों में आशातीत विकास हुआ है, वहीं शैक्षिक प्रणाली भी अछूती नहीं रही है। यहाँ पर यह कहना समीचीन होगा कि शैक्षिक तकनीकी में अब तक हुयी पाँच क्रांतियों में से भारतीय शैक्षिक प्रणाली अभी तक दूसरी तीसरी क्रांति के परिवर्तनों को भी पूर्ण प्रयोग करने में असफल रही है।

यहाँ इन शैक्षिक तकनीकी के क्रांतियों का विवेचन करें तो पहली क्रांति मौखिक क्रांति थी जब मानव अपने भाव, विचार अनुभवों का आदान प्रदान मौखिक रूप से करना सीखा। दूसरी क्रांति वह थी, जब अक्षरों का आविष्कार एवं प्रयोग प्रारम्भ हुआ अर्थात् भाव, विचार एवं अनुभवों को लिखित रूप दिया जाने लगा। स्कूलों में शिक्षण प्रक्रिया में मौखिक के साथ लिखित अभ्यास अर्थात् पटरी, श्यामपट्ट व खडिया का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। तीसरी क्रांति शिक्षा एवं शिक्षण में मशीनों के प्रयोग अर्थात् मुद्रण प्रिंटिंग की खोज से हुयी। मनुष्य अपने भावों, विचारों, अनुभवों को मुद्रण के द्वारा किताबों पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा अनादिकाल तक के लिए सुरक्षित करने में सफल हुआ। इस समय शिक्षण प्रणाली में शिक्षा-शिक्षण के उद्देश्यों, पाठ्यक्रमों में प्रयोग प्रारम्भ किया। चौथी क्रांति आकशवाणी एवं दूर-दर्शन के खोज एवं प्रयोग से हुआ, जिसका प्रयोग भारतीय विद्यालयों में यदा-कदा ही होता है। पाँचवीं सफलता एवं प्रभावी क्रांति के रूप में इन्टरनेट

एवं वेब प्रणाली को जाता है, जिसने पूरी दुनियाँ के ज्ञान, भाव, विचार अनुभवों को एक चिप में पिरो कर रख दिया, जिसके कारण समाज, विकसित, अविकसित एवं विकासशील समाज के रूप में प्रत्यक्षतः विभक्त होता जा रहा है। जिसके पास शैक्षिक तकनीकी जितनी अधिक है व उतना ही विकसित है। जैसे-अमेरिका, रूस, जापान, चीन इत्यादि। क्योंकि इन शिक्षण तकनीकियों ने शिक्षण को सरल एवं प्रभावी तथा ग्राह्य बनाने में सफलतम योगदान किया है। वहीं हमारी भारतीय शैक्षिक प्रणाली अभी भी चाक, डस्टर, श्यामपट्ट एवं लेक्चर मौखिक तक ही सिमटी पड़ी है।

जबकि हम अच्छी तरह जानते हैं कि ज्ञानार्जन हेतु मनुष्य के पास बुद्धि, विवेक की तीक्ष्णता हेतु पाँच (आँख, कान, नाक, जिह्वा एवं त्वचा) ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, जिसमें से सीखने-सिखाने हेतु सबसे अधिक प्रभाव 70 प्रतिशत से 80 प्रतिशत दृश्य अर्थात् आँख को जाता है। 10 प्रतिशत से 15 प्रतिशत श्रव्य अर्थात् कान को तथा शेष अन्य तीनों इन्द्रियों को। इस प्रकार मौखिक या लेक्चर पद्धति से मात्र 10 से 15 प्रतिशत सूचना ही उपलब्ध या ग्राह्य हो पाती है। जबकि दृश्य-श्रव्य सामग्री के प्रयोग से 70 प्रतिशत से 80 प्रतिशत तक सूचनायें ग्राह्य एवं स्थानान्तरित करने में सफलता हासिल हो सकती है। वहीं अभ्यास एवं स्वयं करने से अधिकतम सफलता प्राप्त होती है। यही कारण है कि रेडियो, टीवी, कम्प्यूटर, कान्फ्रेंसिंग इत्यादि ने शिक्षण को सरलतम एवं ग्राह्य बनाने में सफलता प्राप्त की है। इन सबसे विज्ञ होते हुए भी आज का भारतीय शिक्षक परम्परागत प्रणाली से 10 प्रतिशत को 100 प्रतिशत में रूपान्तरित करने में विवशतः अथक प्रयास करता आ रहा है।

इतना ही नहीं उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए बी.एस. ब्लूम महोदय ने 1956 में सूचना एवं ज्ञान की उपलब्धि के स्थायित्व हेतु शिक्षण उद्देश्यों को प्रमुखता देते हुए उनके पाठ्यक्रमों को ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों में वितरित करते हुए, मुख्यतः ज्ञानात्मक, बोधात्मक, अनुप्रयोगात्मक, कौशलात्मक रूप से वितरित करने पर जोर दिया। जिससे शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में आशातीत सफलता प्राप्त हो सकती है।

उपरोक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि शैक्षिक प्रणाली में डिजिटलीकरण की नितान्त आवश्यकता है। यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि शैक्षिक प्रणाली में किस प्रकार के रूपान्तरण की आवश्यकता है। यदि हम भारतीय शैक्षिक प्रणाली का विश्लेषण व चिन्तन करें तो पाते हैं कि भारतीय शैक्षिक प्रणाली में व्यापकता थी, जिसके चार स्तम्भ हैं यथा (1) सूचना (2) ज्ञान (3) विवेक (4) दृष्टिकोण।

सूचना + ज्ञान = अविधा परिवर्तनीय-दृष्टिगोचर

विवेक + दृष्टिकोण = विधा अपरिवर्तनीय-अदृश्य

इस प्रकार ज्ञान, सूचना के आधार पर आधारित है यह प्रमाणिक है, प्रत्यक्ष है, ज्ञानेन्द्रियों पर आधारित है, जिसे विज्ञान संज्ञा है, जो परिवर्तनीय है, इसीलिए इसे अविधा कहते हैं। जबकि विवेक किसी इन्द्रियातीत या उपकरणों पर आधारित न होते हुए प्रकृति, पर्यावरण, बुद्धि एवं ज्ञान पर आधारित होती है। वहीं दृष्टिकोण मानवता, परोपकार, कल्याण, मानवीय, सामाजिक, आध्यात्मिक, वैश्विक, पर्यावरण एवं ब्रह्माण्ड के साथ-साथ चेतन-अचेतन में व्याप्त बीज रूप में स्थिर होने को मानता है। इसीलिए सत्यम् शिवम् सुन्दरम् स्थिर है, परिवर्तनीय नहीं है। जिससे मानवता, आध्यात्मिकता, परोपकारिता, सहभागिता, सत्य अहिंसा एवं मूल्यों को बल मिलता है।

दूसरी और वर्तमान वैज्ञानिकता प्रौद्योगिकी तकनीकी विकास को नकारा भी नहीं जा सकता। क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। अतः सूचना प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी उपकरणों से अधिकतम सूचनाओं को डिजीटलाज करते हुए, उसको आधार स्वरूप देते हुए तात्त्विक विश्लेषण कर सहभागिता एवं सामाजिकता को प्रमाणिक स्वरूप देते हुए शैक्षिक प्रणाली के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, अनुशासन, परीक्षा एवं मूल्यांकन को ज्ञान रूप में आधारित किया जा सकता है। इस प्रकार ज्ञान को प्रकृति एवं पर्यावरण के संतुलन से विवेक को आधारित करते हुए सामाजिक एवं समष्टि के कल्याण से दृष्टिकोण पर बल दिया जा सकता है।

इस प्रकार यदि भारत को ही नहीं विश्व को विनाश से बचाना है, तो भारतीय शिक्षा प्रणाली जो विदेशी दर्शन पर आधारित है, उसे जड़मूल से उखाड़कर भारतीयता की परम्परा, दर्शन, मनोविज्ञान-विज्ञान से युक्त शिक्षा में समानता हेतु I.C.T. को डिजिटलाइज को शिक्षा पद्धति में रोपित सिंचित एवं विकसित करना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ-

- (1) Atkins. D.C. construction and analysis of Achievement test Washington, D.C., U.S. 1947.
- (2) All India National Education Conference, B.P. Johri, History of Indian Education, Agra, (1998)
- (3) Anastasi, A. (1982) A psychological testing 5th Edition Mac Milan Publishing Co.inc., New York.
- (4) Best J. W. Research Education, New Delhi, Printice Hall India Ltd. 2002.
- (5) धनपाल (2002) ग्रामीण दलित समाज एवं आरक्षण नीति जनपद मुजफ्फरनगर के ग्रामों का अध्ययन पीएच० डी० (एजुकेशन) चौ० चरण सिंह वि० वि० मेरठ।
- (6) Singh R.D. and Singh Madhuri – Manual for Sanskrit Achievement test. H.P. Bhargava Book House, Agra 2006.
- (7) सिंह आर० डी० एवं सिंह माधुरी जूनियर हाईस्कूल स्तर पर हिन्दी भाषा में उपलब्धि परीक्षण का निर्माण एवं मानकीकरण नई शिक्षा, जयपुर 1989
- (8) Singh R.D. & Singh Madhuri- Manual for Hindi Achievement Test. National Psychological Corporation, 4/230, Kacheri Gate Agra (2007)
- (9) सिंह आर० डी० एवं सिंह माधुरी हाईस्कूल स्तर पर संस्कृति भाषा के विभिन्न (मुख्य) अवयवों में उपलब्धियों के सम्बन्धों का अध्ययन ANWESHIKA IJ of T.E. N.C.T.E. Vol.2, Number 2, December 2005.
- (10) सिंह आर० डी० (2008) उपलब्धि परीक्षण बैटरी (AT Bettery) H-P- Bhargava Book House, 4/230, Kacheri Gate, Agra.

भारतीय स्वाधीनता संग्राम और विद्यार्थी

डॉ० बृजेश कुमार पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, संत विनोबा पी0जी0 कालेज, देवरिया, उ0प्र0

स्वाधीनता-संग्राम में विद्यार्थियों ने खुलकर भाग लिया तथा सक्रिय सहयोग भी दिया। स्वाधीनता-संग्राम के राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने के कारण भारतीय विद्यार्थियों में प्राधिकारी तथा तत्कालीन शासन के विरुद्ध आवाज बुलंद करने का विद्रोहात्मक एवं प्रतीकात्मक प्रवृत्तियों के प्रदर्शन की आदत पड़ गई। उस समय भारतीय राजनीति के कार्यकर्ताओं की ओर से भी विद्यार्थियों को इस मनोवृत्ति को बढ़ावा दिया जाता था। समय-समय पर राजनीतिक कार्यकर्ताओं तथा अन्य धार्मिक सामाजिक सुधारकों द्वारा तत्कालीन पाठ्य-प्रणाली की आलोचना की जाती थी। विद्यार्थियों को यह बतलाया जाता था कि इस पढ़ाई से कोई विशेष लाभ नहीं है। इससे तो अंग्रेजी राज्य के संचालन हेतु कुछ सहायक कर्मचारी उत्पन्न होते हैं। इसका लक्ष्य संदेहास्पद है। अतः यह त्याज्य है।

परिणामतः छात्रों ने कालेजों और स्कूलों का त्याग किया तथा वे स्वाधीनता युद्ध के सिपाही बने। किसी भी कारण जो विद्यार्थी आन्दोलन में भाग नहीं ले सके, वे नेताओं के विचारों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित अवश्य हुए, जिसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में एकाएक स्कूल और कालेजों के पढ़ाई के प्रति अरुचि उत्पन्न होती गई। विद्यार्थियों में अपने प्रत्येक अधिकारों के प्रति विद्रोहात्मक भावना का जन्म हुआ। अधिकांश शिक्षकों ने राजनीतिक आन्दोलनों में भाग नहीं लिया, जिसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता बढ़ती गयी।

बंग-भंग आन्दोलन के पश्चात् स्वतन्त्रता संग्राम बढ़ता गया। इसी समय महात्मा गांधी ने अपना मंगलमय मंत्र फूँका। उन्होंने अपने भाषणों और लेखों द्वारा जनता को जगाना भी प्रारम्भ किया। सामान्य जनता, पढ़ा-लिखा वर्ग तथा विद्यार्थी समाज सभी महात्मा गांधी की आवाज से प्रभावित हुए। पंजाब में जलियावाला बाग काण्ड हुआ। युवक वर्ग इन घटनाओं से बहुत प्रभावित हुआ। “स्कूल-कॉलेज छोड़ दो” का नारा लगा तथा विद्यार्थियों से अंग्रेजों द्वारा संचालित शिक्षा-संस्थाओं को छोड़ देने के लिए कहा गया। परिणामस्वरूप हजारों-हजार छात्रों ने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। सन् 1942 के आन्दोलन में बहुतांश ने स्कूल कालेज छोड़ा और जेल गये। असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद भी बहुत विद्यार्थियों के आत्मसम्मान ने उन्हें स्कूल कालेज जाने से रोका।

ब्रिटिशकालीन भारत में राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने शासन और अधिकार के विरोध में विद्यार्थियों को आन्दोलात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया अवश्य, परन्तु अब ऐसा होना आदर्श नहीं कहा जा सकता। यद्यपि उस समय भी महात्मा गांधी ने अनुशासनहीनता की कमी प्रोत्साहित नहीं किया। सत्य और अहिंसा के पुजारी से ऐसी आशा भी नहीं की जा सकती थी। ये कुछ अन्य व्यक्ति थे, जिन्होंने उनके विचारों को, उनकी प्रवृत्ति एवं आदेश को गलत ढंग से अपनाया और उसकी वास्तविक स्थिति पर अमल नहीं कर वे महाशक्ति का दुरुपयोग कर बैठे। चौरी-चौरा काण्ड और महात्मा गांधी-इन समस्त बातों को आज भी स्पष्ट कर सकते हैं कि वस्तुतः राष्ट्रपिता महात्मा गांधी क्या चाहते थे। अतः आज की अनुशासनहीनता की प्रवृत्ति के लिए महात्मा गांधी को जिम्मेवार ठहराना युक्ति संगत नहीं। अगर आजादी के पहले राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने विद्यार्थियों को उत्साहित और उत्प्रेरित कर राजनीतिक कार्यों के निमित्त प्रेरित भी किया, तो अब हमारा लक्ष्य पूरा हो चुका है। अब विद्यार्थियों की उस मनोवृत्ति को उभारता, जिससे वे शासन और अधिकार का विरोध करें, एक सामाजिक और राष्ट्रीय अपराध है।

ब्रिटिशकालीन भारत में राजनीतिक कार्यकर्ताओं द्वारा शासन और अधिकार के विरोध में विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देना एक सीमा तक समयानुकूल था। राजनीतिक नेता तथा अन्य सामाजिक कार्यकर्तागण स्कूल और कालेजों के विद्यार्थियों को राजनीतिक प्रचार और चुनाव-अभियान के निमित्त उपयोग में लाते हैं। छात्रों में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता के लिए शिक्षक, अभिभावक एवं नेतागण सभी दोषी कहे जा सकते हैं। अब उत्तरदायी तथा जिम्मेवार राजनीतिक नेताओं और कार्यकर्ताओं इस ओर बहुत सावधान होना चाहिए। बालकों और किशोरों की मनोवृत्ति को इस ओर खींचना और उत्तेजित करना सर्वथा अनुचित कहा जायेगा। भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री एस0सी0 छागला का विचार द्रष्टव्य है—“यह कहना अनुचित नहीं होगा कि हमारे विद्यार्थी अनुशासनहीनता के रोग से ग्रस्त हैं, बल्कि यह सत्य है कि वे उचित नेतृत्व तथा मार्गदर्शन के अभाव से गैर जिम्मेवार राजनीतिज्ञों के स्थानों के शिकार हो जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि आज विद्यार्थियों को अपना भविष्य, जो अंधकारमय नजर आता है, उसके सामने एक निश्चित लक्ष्य होना चाहिए। यह कमी इसलिए है कि जो लोग शिक्षा के क्षेत्र में हैं, वे ढीले हैं तथा विद्यार्थियों का पथ-प्रदर्शन करने में अग्रसर नहीं होते। ब्रिटिश शासन काल में अध्यापकों के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा अनेक प्रकार से विद्यार्थियों को दी जाती थी। सन् 1953 ई0 में आचार्य नरेन्द्र देव समिति ने शिक्षा संस्थाओं में व्याप्त अनुशासनहीनता के

प्रश्न पर विचारते हुए एक प्रमुख कारण यह भी बतलाया कि विद्यार्थी संगठनों का दुरुपयोग दलों की ओर से हो रहा है। आजादी से पहले विद्यार्थी राजनीति हमें आकृष्ट होकर आ गए थे, यद्यपि देश में स्वतन्त्र होने से यह स्थिति बदल गयी है। परन्तु, अब भी राजनीतिक दल विद्यार्थी-वर्ग से अनुचित लाभ उठाकर अपनी शक्ति बढ़ाना चाहते हैं। कभी-कभी अध्यापकों को भी दलगत भावना का शिकार बनाया जाता है। ऐसा करना सर्वथा अनुचित और अशोभनीय है। बालक और किशोर विद्यार्थियों के भविष्य के साथ ऐसा खेल करना किसी भी जिम्मेवार नागरिक के लिए सामाजिक और राष्ट्रीय पाप है। राजनीतिक दलों को ऐसा करने से पहले गम्भीरतापूर्वक सोचना चाहिए कि वे क्या करने जा रहे हैं ?

बिहार के भूतपूर्व गवर्नर श्री आर0आर0 दिवाकर ने छात्र अशान्ति की समस्या और उसका समाधान नामक अपने निबन्ध में लिखा है कि “छात्रों तथा उनसे सम्बद्ध सभी व्यक्तियों को विचार करके निश्चय कर लेना चाहिए कि वे हिंसात्मक विचारों और कार्यों की तिलांजलि देंगे, जिससे प्राणी और सम्पत्ति का नारा न हो। दुर्भाग्य से हमारे देश में ऐसे राजनीतिक गुण्डे तथा गुण्डा दल हैं, जो छात्रों, किसानों और मजदूरों द्वारा हिंसात्मक कार्य का समर्थन करते हैं। छात्रों को इन तत्वों से सावधान रहना चाहिए और उनके द्वारा दिखलाए गए आकर्षक भविष्य के चित्र से प्रभावित नहीं होना चाहिए। हिंसात्मक विचार, हिंसात्मक वचन तथा हिंसात्मक कार्य करने की मनोवृत्ति ही मानव जाति की प्रगति में बाधक है। छात्रों को इस तरह की मनोवृत्ति से मुक्त रहकर सृजनात्मक तथा लोकतांत्रिक विचारों का साथ देना चाहिए। उन्हें तर्क तथा बुद्धि से कार्य लेना चाहिए। जो लोग मानव जाति की प्रगति में रुचि रखते हैं, उन्हें छात्रों द्वारा लोकतांत्रिक दृष्टिकोण अपनाने तथा हिंसा से दूर रहने में सहायता करनी चाहिए, ताकि मानवीय सम्बन्धों में सुधार आ सके। वस्तुतः छात्रों के लिए तात्कालिक कार्य यह है कि वे ऐसे प्रत्येक कार्य के विरुद्ध दृढ़ता का रुख अपनावें और अपना समस्त ध्यान शिक्षा प्राप्ति में केन्द्रित करें, उसमें सफलता प्राप्त करें। इस दृष्टिकोण से सभी पक्षों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट होगा और अनुकूल परिणाम लायेगा। अनुशासनहीनता और हिंसा से कुछ भी नहीं मिल सकता है, ऐसे उचित दृष्टिकोण से सहानुभूति और स्नेह प्राप्त किया जा सकता है। जो सभी प्रकार की सहायता और समर्थन का द्वार खोल देगा।”

मुदालियर आयोग ने अपने रिपोर्ट में प्रकाशित मंतव्य में कहा कि 17 वर्ष की उम्र के नीचे के किशोरों को राजनीतिक प्रचार और चुनाव-अभियान में करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध इलेक्शन-ऑफेन्स (Election-off-ence) की सरकारी कार्यवाही करने के लिए आवश्यक कानून की व्यवस्था होनी चाहिए।

Suitable legislation should be passed making it an election-offence to utilise students below the age of 17 for the purpose of political propaganda or Election campaigns - Secondary Education commission Report.

छात्र-अशान्ति अथवा छात्र अनुशासनहीनता के लिए महात्मा गांधी दोषी नहीं कहे जा सकते, अपितु दोषी कोई दूसरा है। गांधी जी के सारे विचार अहिंसा के आधार पर अवस्थित हैं। अगर हम समूचे रूप में बुनियादी शिक्षा पद्धति को अपनाते हैं तो निःसंदेह हमारा, हमारे समाज एवं हमारे राष्ट्र का आज बहुत बड़ा कल्याण होगा और अनुशासनहीनता के दोष का स्वतः समूल नाश हो जायेगा।

समाज और शिक्षा का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज की संस्कृति को आत्मसात करना और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संक्रमण करना ही शिक्षा है। समाज का संस्कृति के संक्रमण का एक बहुत बड़ा काम शिक्षा के द्वारा होता है। समाज की उपेक्षा कर हम अपना हित चिंतन कदापि नहीं कर सकते। समाज में दुर्गुण और दुर्व्यवस्था व्याप्त है। उनकी समाप्ति की चेष्टा होनी चाहिए। प्रत्येक विचारवान नागरिक का यह कर्तव्य है कि वे बुरे सामाजिक तत्वों को नष्ट करें। भारतीय विद्यार्थियों में व्याप्त अनुशासनहीनता की समाप्ति के लिए भारत के प्रत्येक नागरिक को उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। मुदालियर आयोग के अनुसार भारतीय विद्यार्थियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति अनुशासनात्मक है। परन्तु भारतीय नागरिक आज एक क्षण के लिए भी यह सोचने को तैयार नहीं है कि उनमें क्या और कैसे अनुशासनहीनता वर्तमान है।

अनुशासन की समस्या का निदान एक या दो दिन में नहीं हो सकेगा। अनुशासन हमारा नैतिक गुण है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व का, समाज की सामाजिक उन्नति का और राष्ट्र की जीवनी-शक्ति का मापदण्ड है। अगर आपको किसी व्यक्ति में या किसी समाज में अथवा राष्ट्र में अनुशासन दिखलाई पड़ता है तो आप समझ लें कि यह उसकी वर्षों की शांतिपूर्ण तपस्या और चेतनायुक्त साधना का फल है। उसी प्रकार अगर किसी व्यक्ति में, समाज अथवा राष्ट्र में अनुशासन का अभाव है, नियंत्रण की कमी है, तो आप निःसंदेह मान लें कि इसका आधार-स्तम्भ हिल चुका है।

नवजीवन में प्रकाशित विद्यार्थियों के बीच में गांधी जी ने कहा है कि असहयोग को मानने वाला किसी भी विद्यार्थी के हाथों में शांति-भंग देखना नहीं चाहता। असहयोग को मनाने की दूसरी तीनों शर्तें मंजूर होनी चाहिए। असहयोग को मानने की इसकी तीन शर्तें-शान्ति, समय और यज्ञ हैं विद्यार्थी अगर मन से लग जाय तो एक वर्ष के भीतर स्वराज्य आ सकता है। मगर, इसके लिए बड़ी भारी कोशिश करने की जरूरत है। किसी खास शर्त पर ही आप अपना यह ध्येय प्राप्त कर सकते हैं। विद्यार्थी अपनी पढ़ाई बन्द करके हिन्दुस्तान के लिए मजदूर बन जाए। अगर आप अपनी मजदूरी के लिए कुछ मेहनताना न लो तो आपकी मेहरबानी होगी। मगर जिसे लेना हो, वह खुशी से ले सकता है। गांधी जी कहते हैं कि विद्यार्थियों के किये हुए त्याग पर अभिमान है। मैं जानता हूँ कि विद्यार्थियों ने देश की सेवा की है। मगर विद्यार्थियों ने बहुत कुछ किया है। तो उससे करोड़ों गुना ज्यादा करना अभी बाकी रहा है। त्याग की हद नहीं होती। इतना त्याग बहुत है, यह कहने वाले को घमण्ड आया और उसका त्याग बेकार गया। पूरे त्याग के बाद स्वराज्य आता है। यह हमारी कसौटी है। जब तक स्वराज्य नहीं मिलता, तब तक त्याग अधूरा ही है।

सन्दर्भ:

1. वर्मा, वी०एन० प्रसाद: विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, पटना बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2. चौधरी, एस०सी० राय: आधुनिक भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास, सरजीत पब्लिकेशन्स
3. विद्या वाचस्पति, इन्द्र: भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास।
4. वर्मा, वी०पी०: आधुनिक भारतीय राजनैतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
5. अवस्थी, अवस्थी: आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
6. चौबे, एस०पी०: भारतीय शिक्षा दर्शन, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली।
7. सिंह, अयोध्या: भारत का मुक्ति संग्राम, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली।

माध्यमिक स्तर के छात्रों की सृजनात्मकता का उनके सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में अध्ययन

डॉ० धर्मेन्द्र कुमार

सह प्राध्यापक, अध्यापक शिक्षा विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर

डॉ० निदा खान

सहायक प्राध्यापिका, अध्यापक शिक्षा विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर वर्धमान कॉलेज, बिजनौर

सारांश

सृजनात्मकता का मानव के जीवन में प्रमुख आधार है। आज संसार में जो भी विकास हुआ है, वह मानव की सृजनात्मकता का ही परिणाम है। आज के युग में सृजनात्मकता का अनिवार्य शर्त हो गयी है। व्यक्ति नित नवीन अनुभवों के साथ अपने व्यवहार में परिवर्तन करता रहता है तथा अपनी सृजनात्मक शक्तियों के विकास में रत रहता है। उसके इस कार्य में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। इसी कारण से व्यक्ति की सृजनात्मकता एवं शिक्षा एक-दूसरे के साथ सम्बन्धित है। बहुत सारे अध्ययन सृजनात्मकता पर किये गये हैं, परन्तु प्रस्तुत अध्ययन को छात्रों की सृजनात्मकता का उनके सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की सृजनात्मकता एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर का अध्ययन किया गया है जिसमें जनपद बिजनौर के दस माध्यमिक विद्यालयों में से 123 छात्र एवं 39 छात्राओं कुल 162 छात्र-छात्राओं का चयन यादृच्छिक विधि के द्वारा किया गया। आंकड़ों के संग्रह हेतु डॉ० बाकर मेहदी द्वारा निर्मित सृजनात्मक चिन्तन का अशाब्दिक परीक्षण तथा एस0 जलोटा, आर0 एन0 पाण्डेय एवं एस0 डी0 कपूर द्वारा निर्मित सामाजिक-आर्थिक स्तर मापनी का प्रयोग किया गया है। आंकड़ों के विधिवत विश्लेषण एवं व्याख्या हेतु गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन के परिणामों से प्राप्त निष्कर्ष छात्रों की सृजनात्मकता पर उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं।

प्रस्तावना

सृजनात्मकता किसी वस्तु, विचार, कला, साहित्य आदि से सम्बन्धित किसी समस्या का समाधान निकालने आदि के क्षेत्र में कुछ नवीन आविष्कृत करने या पुनर्सृजित करने की एक प्रक्रिया है। यह एक मानसिक प्रक्रिया है जो भौतिक परिवर्तनों को जन्म देती है। यह उत्तरदायित्व के साथ कार्य के प्रति निष्ठा, लगन, परिश्रम एवं कार्य पूर्णता में दृढ़ आस्था के प्रति सजग बनाने में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करती है। सृजनात्मकता तर्क, कल्पना, विचार-शक्ति और संगठन करने की शक्ति के विकास में सहायक सिद्ध होती है।

अरस्तू ने कहा है कि मानव एक सामाजिक प्राणी है। मानव समाज के सदस्य के रूप में नित नवीन क्रियाओं को सीखकर अपने व्यवहार में परिवर्तन करके अपनी सृजनात्मक शक्तियों का विकास में संलग्न रहता है। इस प्रक्रिया में शिक्षा सदैव सहायक सिद्ध होती है। शिक्षा, व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करती है या फिर दूसरे शब्दों में कहे तो शिक्षा के बिना व्यक्ति का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता। मानव की सृजनात्मकता के विकास में भी शिक्षा की सीधी-सीधी भूमिका होती है। प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत विभिन्नताएँ लिए हुए होता है, जिस कारण से उसकी सृजनात्मक शक्ति भी भिन्न-भिन्न होती है। इस प्रकार उचित शिक्षा की व्यवस्था करके बालकों की आन्तरिक शक्तियों को बाहर प्रस्फुटित कर उसको सही दिशा प्रदान करने की जिम्मेदारी परिवार, समाज, विद्यालय की होती है। सृजनात्मकता की योग्यता बालकों में विशेषकर जन्म से ही विद्यमान होती है परन्तु इस क्षमता का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उसके आसपास का वातावरण किस प्रकार का है। मानव की सभी प्रकार की उन्नति का आधार उसकी सृजनात्मक शक्ति ही है। आज इस तकनीकी युग में मानव जीवन के लिए सृजनात्मकता एक जरूरत बन गयी है जिसकी अनेकों क्षेत्रों में उत्तरोत्तर वृद्धि की सम्भावना बलवती होती जा रही है।

मानव को अपने जीवन में निरन्तर प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं सहयोग की आवश्यकता होती है। यह प्रेरणा, प्रोत्साहन और सहयोग उसको अपने परिवार, समाज, विद्यालय और आसपास के वातावरण से प्राप्त होता रहता है। परिवार बालक की प्रथम पाठशाला होती है। सबसे अधिक प्रेरणा, प्रोत्साहन और सहयोग उसे यही से प्राप्त होता है। बालक जिस प्रकार का वातावरण अपने परिवार में प्राप्त करता है उसका पूरा प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर दिखाई देता है। विभिन्न

सामाजिक-आर्थिक स्तर का पारिवारिक वातावरण बालकों की विभिन्न सृजनात्मकता को विकसित होने का अवसर प्रदान करता है। प्रस्तुत अध्ययन में बालकों की सृजनात्मकता का उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर का क्या प्रभाव है, का अध्ययन किया जायेगा।

अध्ययन के उद्देश्य

- 1- छात्रों के सामाजिक-आर्थिक स्तर का उनकी सृजनात्मकता के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।
- 2- राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सृजनात्मकता एवं उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।
- 3- छात्र एवं छात्राओं की सृजनात्मकता एवं उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना

- 1- छात्रों के सामाजिक-आर्थिक स्तर का उनकी सृजनात्मकता के मध्य कोई सहसम्बन्ध नहीं है।
- 2- राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सृजनात्मकता एवं उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य कोई सहसम्बन्ध नहीं है।
- 3- छात्र एवं छात्राओं की सृजनात्मकता एवं उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य कोई सहसम्बन्ध नहीं है।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोध अध्ययन में यदृच्छक प्रतिदर्श के आधार पर जनपद बिजनौर के दस माध्यमिक विद्यालयों में से 162 छात्र-छात्राओं का चयन किया गया है।

उपकरण

प्रस्तुत शोध अध्ययन में आंकड़ों के एकत्रीकरण हेतु डॉ० बाकर मेंहदी द्वारा निर्मित सृजनात्मक चिन्तन का अशाब्दिक परीक्षण तथा एस० जलोटा, आर० एन० पाण्डेय एवं एस० डी० कपूर द्वारा निर्मित सामाजिक-आर्थिक स्तर मापनी का प्रयोग किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकी विधियाँ

आंकड़ों के विधिवत विश्लेषण एवं व्याख्या हेतु गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक का प्रयोग किया गया है।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

तालिका संख्या-1

छात्रों के सामाजिक-आर्थिक स्तर का उनकी सृजनात्मकता के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन

छात्र संख्या	चर	सहसम्बन्ध गुणांक	सार्वकता
162	सृजनात्मकता एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर	0.09137	असार्वक

तालिका संख्या-1 का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि छात्रों की सृजनात्मकता एवं सामाजिक-आर्थिक स्थिति के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक 0.09137 प्राप्त हुआ है, जोकि अत्यन्त निम्न सहसम्बन्ध को प्रदर्शित करता है अर्थात् इनके मध्य कोई सहसम्बन्ध नहीं है। अतः स्पष्ट है कि सार्वकता स्तर 0.05 पर परीक्षण करने पर इन दोनों चरों के मध्य कोई सहसम्बन्ध नहीं है। जिसके आधार पर परिकल्पना संख्या-1 छात्रों के सामाजिक-आर्थिक स्तर का उनकी सृजनात्मकता के मध्य कोई सहसम्बन्ध नहीं है, स्वीकृत होती है।

तालिका संख्या-2

राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सृजनात्मकता एवं उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन

क्रम संख्या	विद्यालय	छात्रों की कुल संख्या	चर	सहसम्बन्ध गुणांक	सार्वकता
1.	राजकीय माध्यमिक विद्यालय	84	सृजनात्मकता एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर	-0.178	असार्वक
2.	निजी माध्यमिक विद्यालय	78	सृजनात्मकता एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर	0.0642	असार्वक

तालिका संख्या-2 का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि राजकीय माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की सृजनात्मकता एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक-0.178 प्राप्त हुआ है, जो कि दोनों प्रकार के चरों के मध्य अत्यन्त निम्न सहसम्बन्ध को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार से निजी माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की सृजनात्मकता एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक 0.0642 प्राप्त हुआ है, जो कि दोनों प्रकार के चरों के मध्य अत्यन्त निम्न सहसम्बन्ध को प्रदर्शित करता है। अतः स्पष्ट है कि सार्वकता स्तर 0.05 पर परीक्षण करने इन दोनों चरों के मध्य कोई सार्वक सहसम्बन्ध नहीं है। जिसके आधार पर परिकल्पना संख्या-2 राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सृजनात्मकता एवं उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य कोई सहसम्बन्ध नहीं है, स्वीकृत होती है।

तालिका संख्या-3

छात्र एवं छात्राओं की सृजनात्मकता एवं उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन

संख्या	चर	सहसम्बन्ध गुणांक	सार्थकता स्तर
छात्रों की संख्या			
123	सृजनात्मकता एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर	0.1492	असार्थक
छात्राओं की संख्या			
39	सृजनात्मकता एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर	0.1275	असार्थक

तालिका संख्या-3 का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की सृजनात्मकता एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक 0.1492 प्राप्त हुआ है, जो कि दोनों प्रकार के चरों के मध्य अत्यन्त निम्न सहसम्बन्ध को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार से माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं की सृजनात्मकता एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक 0.1275 प्राप्त हुआ है, जो कि दोनों प्रकार के चरों के मध्य अत्यन्त निम्न सहसम्बन्ध को प्रदर्शित करता है। अतः स्पष्ट है कि सार्थकता स्तर 0.05 पर परीक्षण करने इन दोनों चरों के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है। जिसके आधार पर परिकल्पना संख्या-3 छात्र एवं छात्राओं की सृजनात्मकता एवं उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य कोई सहसम्बन्ध नहीं है, स्वीकृत होती है।

परिणामों की व्याख्या

उपरोक्त सांख्यिकीय परिणामों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि छात्रों की सृजनात्मकता का उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य कोई भी सार्थक सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार से राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों की सृजनात्मकता का उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है। कमोवेश यही स्थिति छात्र एवं छात्राओं की सृजनात्मकता के सम्बन्ध में है, उनकी सृजनात्मकता का उनके सामाजिक-आर्थिक स्थिति के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोधकार्य के निष्कर्ष निम्नवत हैं-

1. छात्रों के सामाजिक-आर्थिक स्तर का उनकी सृजनात्मकता के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।
2. छात्रों एवं छात्राओं के सामाजिक-आर्थिक स्तर का उनकी सृजनात्मकता के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।
3. राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों के सामाजिक-आर्थिक स्तर का उनकी सृजनात्मकता के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

शैक्षिक उपादेयता

1. अभिभावक अपने बालकों को सृजनात्मकता के विकास हेतु किस प्रकार से प्रोत्साहित कर सकते हैं, इस सम्बन्ध में अभिभावकों को परामर्श प्रदान किया जा सकता है।
2. विद्यालयों में शिक्षकों को बालकों की सृजनात्मकता के विकास हेतु उचित परामर्श दिया जा सकता है।
3. छात्रों को भी समय-समय पर सृजनात्मकता के विकास हेतु प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया जा सकता है।
4. विद्यालयों में समय-समय पर बालकों के अन्दर छिपी हुई सृजनात्मकता के प्रकटीकरण हेतु पाठ्यसहगामी क्रियाओं के आयोजन का महत्वपूर्ण सुझाव प्रदान किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कपिल एच.के. (1975) : सांख्यिकी के मूल आधार, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।
2. गुप्ता एस.पी. (1975) : आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
3. सिंह, अरूण कुमार (2005) : शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन पब्लिकेशन।
4. श्रीवास्तव, डी.एन. (2006) : अनुसन्धान विधियाँ, आगरा, साहित्य प्रकाशन।

इलाहाबाद में उग्रवादी आन्दोलन

डॉ० अनीता प्रकाश

एसोशिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, एम०एम०एच० कॉलेज, गाजियाबाद

सन् 1905 के बंगाल-विभाजन के उपरान्त राष्ट्रवाद के विकास को एक नयी गति मिली तथा भारतीय राजनीति में “जुझारू राष्ट्रवाद का युग” “the era of militant nationalism” प्रारम्भ हुआ। सन् 1895 से ही कांग्रेस की अनुनय-विनय की नीति के विरुद्ध असन्तोष बढ़ने लगा था। यह स्पष्ट होने लगा था कि सरकार पर आन्दोलनात्मक दबाव डाले बिना, केवल आवेदन-निवेदन करके ही कोई परिणाम प्राप्त नहीं होगा। कांग्रेस नेतृत्व की नीतियों एवं कार्यपद्धति के विरुद्ध इस असन्तोष से कांग्रेस के अन्दर “गरम दल” की उत्पत्ति हुई, जिसके नेता बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल तथा लाला लाजपत राय थे। गरम दल के नेता अधिक संघर्षशील एवं सशक्त कार्यनीति में विश्वास रखते थे। सन् 1905 में बंग-भंग के बाद नरम तथा गरम दल के दृष्टिकोणों का और उद्देश्यों का अन्तर और भी स्पष्ट हो गया। गरम दल के नेता “बहिष्कार” का प्रयोग देशव्यापी स्तर पर राजनैतिक अस्त्र के रूप में करना चाहते थे। इसके विपरीत, माडरेट नरमपन्थी “बहिष्कार”-आन्दोलन को केवल बंगाल तक ही सीमित रखना चाहते थे। गरम दल का ब्रिटिश सरकार पर विश्वास पूरी तरह से उठ चुका था और अब वे आन्दोलनात्मक संघर्ष के मार्ग पर रखना चाहते थे। लेकिन नरमपन्थी अब भी ब्रिटिश सरकार की न्यायप्रियता तथा सम्बैधानिक राजनीति में विश्वास रखते थे। गरम दल के नेता कांग्रेस को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संग्राम का हथियार बना देना चाहते थे, पर नरमपन्थी उस पर अपना कब्जा छोड़ने को तैयार न थे। इस प्रकार, गरम दल कांग्रेस की नरमपन्थी राजनीति के लिए एक चुनौती के रूप में उभरने लगा और सतत विकासमान राष्ट्रवाद को प्रसर बनाने लगा। इस नवीन राष्ट्रवाद को आरम्भिक कांग्रेस की नरमपन्थी राजनीति से पृथक् करने के लिए उसे “उग्रवाद” का नाम दिया गया। “उग्रवाद” के उभार से भारतीय राजनीति और जनमानस में एक नयी चेतना तथा स्फूर्ति आयी। यद्यपि उग्रवाद का चरम विकास बंगाल, महाराष्ट्र तथा पंजाब में अधिक पाया गया, किन्तु अन्य प्रदेश व स्थान भी इससे अप्रभावित न रह सके। उत्तरप्रदेश में जो नगर इस लहर से सर्वाधिक प्रभावित हुआ था, वह था इलाहाबाद।

इस लेख का उद्देश्य इलाहाबाद नगर में उग्रवादी आन्दोलन के स्वरूप एवं विकास को रेखांकित करते हुए यह देखना है कि किस प्रकार उग्रवादी आन्दोलन ने नरमपन्थी राजनीति के लिए एक चुनौती के रूप में उभार कर स्थानीय राजनीति को प्रभावित किया। इलाहाबाद नगर में उग्रवादी आन्दोलन का उभार इसलिए महत्व रखता है, क्योंकि यह नगर नरमपन्थी राजनीति का एक प्रमुख गढ़ रहा था। दूसरे, प्रान्त की राजधानी होने के कारण भी इस नगर की राजनैतिक घटनाओं का प्रभाव समूची प्रान्तीय राजनीति पर पड़ना स्वाभाविक ही था। यह एक खेद का विषय है कि सरकारी दस्तावेजों तथा स्थानीय समाचारपत्रों का रिपोर्टों के रूप में उपलब्ध अनेक साक्ष्यों के बावजूद भी इस विषय पर शोध-अध्ययनो का नितान्त अभाव रहा है। उपलब्ध शोध-ग्रन्थों में केवल सी०ए०बेली की पुस्तक “द लोकल रूट्स ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स, इलाहाबाद 1880-1920” में ही इलाहाबाद के उग्रवादी आन्दोलन का उल्लेख मिलता है।¹ किन्तु इसमें भी कैम्ब्रिज इतिहास-लेखन के अपने विशिष्ट अन्दाज़ में उग्रवादी आन्दोलन के इलाहाबाद की राजनीति पर पड़ने वाले प्रभाव को नकार दिया गया है। बेली ने अपनी पुस्तक में उग्रवादी आन्दोलन की विफलता तथा नरमपन्थी राजनीतियों की सत्ता के वर्चस्व के अन्ततः बने रहने पर ही अधिक बल दिया है तथा यह बताने की अधिक चेष्टा की है कि नरमपन्थी राजनीति के किस प्रकार उग्रवाद के “खतरे” का निराकरण तथा अवरोध किया। किन्तु यदि गौर से देखा जाये, तो यह बात उतनी महत्वपूर्ण नहीं है कि आन्दोलन अन्त में सफल रहा या विफल। असली महत्व तो इस बात का है कि उग्रवादी आन्दोलन ने समय से पिछड़े गये नरमपन्थियों की कार्यपद्धति तथा विचारधारा को स्थानीय स्तर पर चुनौती दी तथा नगर के राजनैतिक वातावरण में एक नयी चेतना और जन-जागृति को उत्पन्न करने की कोशिश की। इस परिप्रेक्ष्य में इलाहाबाद में उग्रवादी आन्दोलन के महत्व को समझने का प्रयास यहां किया जा रहा है।

भारतीय राष्ट्रवाद के प्रारम्भिक विकास के दौरान ही जो राजनैतिक केन्द्र उभरे, उनमें इलाहाबाद का अपना एक विशिष्ट स्थान है। यही कारण है कि कांग्रेस के बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास के आरम्भिक तीन अधिवेशनों के बाद जब चौथे अधिवेशन का प्रश्न उठा, तो इलाहाबाद ही इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया। सन् 1889 के इलाहाबाद अधिवेशन में न केवल स्थानीय और प्रान्तीय स्तर पर, अपितु राष्ट्रीय स्तर पर भी कांग्रेस आन्दोलन के प्रति लोगों की बढ़ती रुचि, उत्साह और सक्रिय हिस्सेदारी दिखाई दी।² इस प्रकार, 1905 तक इलाहाबाद नरमपन्थी राजनीति के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में उभर चुका था और यहां पर मदनमोहन मालवीय, सी०वाई० चिन्तामणि, मोतीलाल नेहरू और तेजबहादुर सप्रू सरीखा नरमपन्थी नेतृत्व विकसित हो चुका था। नरमपन्थियों की इस प्रभुता को चुनौती देने का कार्य उग्रवादी आन्दोलन ने किया।

इलाहाबाद के सामाजिक परिवेश में ऐसे कई कारक थे, जो नगर के इस राजनैतिक उभार में सहायक सिद्ध हुए। प्रथमतः, इलाहाबाद में अनेकों देशी तथा पाश्चात्य शिक्षा के संस्थान थे, जिनमें इलाहाबाद विश्वविद्यालय, मेयो कॉलेज एवं कायस्थ पाठशाला के आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार, इलाहाबाद में वह विशाल छात्र समुदाय था, जो आगे चलकर उग्रवादी आन्दोलन का प्रमुख सामाजिक आधार बना। दूसरे, हिन्दुओं का एक प्रमुख तीर्थस्थान तथा कुम्भ मेले का स्थल होने के कारण इलाहाबाद में वह पुनरुत्थानवादी शक्तियां भी विद्यमान थी, जिनका उपयोग उग्रवादियों द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर जनता

को आन्दोलन के साथ जोड़ने में किया जा रहा था। तीसरे, इलाहाबाद रेलवे द्वारा उस समय के प्रमुख राजनैतिक केन्द्रों, जैसे-कलकत्ता, बम्बई तथा पंजाब आदि से भी सम्बद्ध था, जिसके कारण उग्रवादी आन्दोलन को यहां फैलाने में अधिक देर न लगी तथा राष्ट्रीय स्तर के नेताओं का प्रचार-कार्य सुगम हो गया। इन सब कारणों से ही इलाहाबाद में प्रान्त के अन्य किसी भी नगर की अपेक्षा उग्रवादी आन्दोलन को विकसित होने का अनुकूल वातावरण मिला।

सन् 1905 में बनारस कांग्रेस के बाद से ही इलाहाबाद उग्रवादी आन्दोलन का एक प्रमुख प्रान्तीय केन्द्र बना। स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन का एक प्रमुख प्रान्तीय केन्द्र बना। स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन से संबंधित कई जन-सभाओं का यहां आयोजन किया गया। आरम्भिक चरण में इलाहाबाद के उग्रवादी आन्दोलन पर बंगाल के आन्दोलन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित हुआ। इलाहाबाद में काफी मात्रा में बंगाली परिवार बसते थे। इस समुदाय की सहानुभूति स्वभावतः ही बंगाल के बहिष्कार आन्दोलन के प्रति थी। अतः यह वर्ग सबसे पहले आन्दोलन से प्रभावित हुआ। बंगाली स्त्रियों के लिए निजी मकानों में सभाओं का आयोजन किया गया।³ धीरे-धीरे आन्दोलन का क्षेत्र व्यापक होता गया।

इलाहाबाद के नरमपन्थी नेताओं का नगर के गणमान्य खत्री तथा वैश्य घरानों के साहूकारों एवं व्यापारियों के साथ सम्पर्क था। इसके विपरीत, स्थानीय गरम दल के नेताओं का सामाजिक आधार सम्पन्न घराने नहीं, बल्कि युवा शिक्षकों, कलर्कों तथा विद्यार्थियों विशाल समुदाय था। अतः यह सर्वथा स्वाभाविक ही था कि शैक्षणिक संस्थाएं उग्रवादी आन्दोलन का प्रचार-बिंदु बनती। स्वदेशी आन्दोलन के विकास के साथ-साथ विद्यार्थियों की राजनीति में हिस्सेदारी उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई। कॉलेज के शिक्षक वर्ग ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। इलाहाबाद में उग्रवादी आन्दोलन के लोकप्रिय नेता प्रिंसिपल रामानन्द चटर्जी के नेतृत्व में कायस्थ पाठशाला, इलाहाबाद के उग्रवादी राजनीति का प्रमुख केन्द्र बनी। उनकी अध्यक्षता में एक विशाल जनसभा का आयोजन कायस्थ पाठशाला के प्रांगण में किया गया। सभी में विद्यार्थियों ने स्वदेशी आन्दोलन के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की। लगभग 300 विद्यार्थियों ने शपथ ग्रहण की कि वे यथासम्भव स्वदेशी वस्तुओं का ही प्रयोग करेंगे और अपने मित्रों तथा रिश्तेदारों पर भी ऐ ही करने का दबाव डालेंगे।⁴ इलाहाबाद के प्रसिद्ध म्योर कॉलेज के हिन्दू बोर्डिंग हाउस के विद्यार्थियों ने भी स्थानीय नरमपन्थी नेताओं के प्रति खुले विरोध का रवैया अपनाना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार, उग्रवादी आन्दोलन की लहर से इलाहाबाद की जनता प्रभावित होने लगी। नरमपन्थी मोतीलाल नेहरू ने अपने पुत्र जवाहरलाल नेहरू को (जो उस समय इंग्लैंड में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे) लिखा-“इस ब्रिटिश भारत के इतिहास के सबसे कठिन दौर से गुजर रहे हैं। ‘वन्देमातरम्’ इलाहाबाद तक में अभिवादन का सबसे आम तरीका हो गया है। यदि यह आन्दोलन चलता रहा, तो तुम यहां लौटने पर अपने भारत छोड़ने से बिल्कुल भिन्न भारत पाओगे।”⁵

इसी बीच, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की गिरफ्तारी का समाचार इलाहाबाद पहुंचा। इससे नगर में उत्तेजना की एक नयी लहर दोड़ गयी। इलाहाबाद में तत्काल ही एक विशाल विरोध-सभा का आयोजन किया गया। जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इलाहाबाद के प्रसिद्ध मेयो हाल के उपयोग की मनाही करने से जनता का रोष और भी अधिक बढ़ गया। अन्त में यह सभी प्रान्तीय कांग्रेसी नेताओं, मदनमोहन मालवीय, मुंशी गोविन्दप्रसाद व तेजबहादुर सप्रू के नेतृत्व में खुले मैदान में हुई। अपने दृष्टिकोण के अनुरूप इन नरमपन्थी नेताओं ने अपने भाषणों में अत्यन्त संयम तथा नरमी से काम लिया। किन्तु सभा में एकत्रित भीड़ की बेचैनी छुपी न रह सकी। उग्रवादियों के प्रति सहानुभूति रखनेवाले समाचारपत्र “सिटिज़न” ने इस सभा के विषय में अपनी टिप्पणी देते हुए लिखा-“हालांकि भाषण ‘नरम’ थे, एक ‘आक्रोश’ का भाव सभा पर छाया हुआ था।”⁶

शनैःशनैः सरकार की दमन-नीति के विरुद्ध आक्रोश का यह भाव बढ़ता ही गया। साथ ही, नरमपन्थी राजनीतिज्ञों की अपेक्षा गरम दल के नेताओं की ओर युवा वर्ग का रुझान बढ़ने लगा। नगर में स्वदेशी तथा बहिष्कार आन्दोलन से संबंधित कई प्रदर्शनों तथा सभाओं का आयोजन किया गया। इन प्रदर्शनों में युवा वर्ग नगर की प्रमुख सड़कों पर ‘वन्देमातरम्’ के नारे लगाता हुआ बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय तथा विपिनचन्द्र पाल की तस्वीरें लेकर निकला।⁷ देशभक्ति के गीतों तथा कविताओं के माध्यम से भी लोगों में राष्ट्रवादी चेतना तथा आत्मत्याग की भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया। इन गीतों का सार्वजनिक रूप से शहर की सड़कों पर जुलूसों में गाया जाता था। ये गीत तिलक, विपिनचन्द्र पाल एवं लाला लाजपतराय की राष्ट्रवादी गतिविधियों पर आधारित थे। मंज़ूरअली सोख्ता इलाहाबाद के बहिष्कार आन्दोलन के प्रमुख विद्यार्थी-नेता बने। उनके नेतृत्व में मुस्लिम विद्यार्थियों ने भी कुछ अंशों तक स्वदेशी आन्दोलन में भाग लिया।

स्थानीय समाचारपत्रों ने भी उग्रवादी विचारों के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रसे केओजस्वी लेखों में इलाहाबाद के प्रमुख वर्ग को आन्दोलित किया। उग्रवादी विचारधारा से सहानुभूति रखनेवाला प्रमुख समाचारपत्र “सिटिज़न” था, जिसके सम्पादक स्थानीय उग्रवादी नेता ज्योतिन्द्रनाथ सेन थे। इस समाचारपत्र द्वारा स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन को आगे बढ़ाने पर बल दिया जाता तथा नरमपन्थियों की राजनीतिक विचारधारा की कटु आलोचना की जाती।

सन् 1907 में नरमपन्थियों तथा उग्रवादियों के बीच अन्तर और अधिक बढ़ गया। ऐसे में उग्रवादियों द्वारा अपनी विचारधारा को प्रभावित करने के लिए एकनये समाचारपत्र की आवश्यकता अनुभव हुई। परिणामस्वरूप, शान्तिस्वरूप के सम्पादन में इलाहाबाद से “स्वराज्य” नामक समाचारपत्र के प्रकाशन की व्यवस्था की गयी। विज्ञापन के रूप में वितरित किये गये पर्वे से पत्र के ओजस्वी स्वर का शंखनाद किया गया। पर्वे का शीर्षक रखा गया - “हम भारत के, भारत हमारा।” इसमें समाचारपत्र की स्थापना के उद्देश्य की निर्भीक घोषणा करते हुए कहा गया कि “स्वराज्य” का लक्ष्य स्वराज्य-प्राप्ति है, और स्वदेशी तथा बहिष्कार इसके अस्त्र हैं।⁸ इस समाचारपत्र के द्वारा उग्रवादी प्रचार का कार्य तेजी से आगे बढ़ा। आन्दोलन के सहानुभूति रखनेवाले नागरिक “स्वराज्य” की कुछ अतिरिक्त प्रतियां खरीदते और उन लोगों को भिजवाते, जो स्वयं समाचारपत्र क्रय करने की सामर्थ्य नहीं रखते थे।⁹

अपने ओजस्वी और प्रखर राष्ट्रवादी स्वर के कारण “स्वराज्य” को अनेकों बार सरकारी दमन का शिकार होना पड़ा। अप्रैल 1908 में उसे चेतावनी दी गयी कि यदि उसने राजद्रोहात्मक लेखों का प्रकाशन बन्द नहीं किया, तो इस पत्र को बन्द कर दिया जायेगा। जून 1908 में इसके सम्पादक शान्ति नारायण

को साढ़े 3 वर्ष की सज़ा दी गयी। इसके अगले सम्पादकों में राय हरि को दिसम्बर 1908 में 7 साल की तथा नन्दगोपाल और लहणराम संन्यासी को क्रमशः मार्च तथा मई 1910 में 10-10 साल के कारावास का दण्ड दिया गया। किन्तु इस सबके बावजूद भी, अपने संक्षिप्त जीवनकाल में “स्वराज्य” का दफ्तर उग्रवादी प्रचार तथा आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बना रहा।

नगर में उग्रवाद के उभार से स्थानीय नरमपंथी नेताओं की आशंका बढ़ गयी। उधर उग्रवादी नेता जनता के साथ सीधा सम्पर्क करके प्रान्तीय राजनीति पर अपनी पकड़ और अधिक मजबूत करने में संलग्न थे। इसके लिए उन्होंने गरमदल के लोकप्रिय राष्ट्रीय नेताओं के दौरे आयोजित किये। इसी कार्यक्रम के तहत तिलक को भी इलाहाबाद आमन्त्रित किया गया।

अपने दौरे के मध्य तिलक ने नगर के उन गणमान्य व्यक्तियों से सम्पर्क किया, जिनसे नगर के उग्रवादी आन्दोलन को मदद मिलने की सम्भावना थी। उन्होंने चारुचन्द्र मित्र (इलाहाबाद के एक प्रसिद्ध बंगाली रईस), ईश्वर सरन (कायस्थ पाठशाला के एक जोशीले बुद्धिजीवी) और पं० श्रीकृष्ण जोशी (प्रान्त के हिन्दू पुनरुत्थानवाद के प्रसिद्ध नेता) से भेंट की। तिलक के स्वागत में एक विशाल सभा खुले मैदान में हुई। उदारवादी नेता इस सभा से अनुपस्थित रहे। यही नहीं, उन्होंने तिलक के स्वागत में हो रहे विशाल प्रदर्शन को रोकने का हर सम्भव प्रयास भी किया, पर असफल रहे। भारी संख्या में विद्यार्थी तिलक का भाषण सुनने गये। तिलक के भाषण से वे अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने नगर में चल रहे आन्दोलन के प्रति अपनी पुरी निष्ठा व्यक्त की।¹⁰

अब तक की घटनाओं यह स्पष्ट है कि उग्रवाद स्थानीय नरमपंथी राजनीति के लिए एक चुनौती के रूप में उभरने लगा था। ऐसी स्थिति में नरमपंथी नेताओं को प्रान्तीय कांग्रेस पर अपनी पकड़ और अधिक मजबूत करने की आवश्यकता अनुभव हुई। कांग्रेस के 1906 के कलकत्ता अधिवेशन में भी हर प्रान्त में प्रान्तीय कांग्रेस आयोजित करने का प्रस्ताव पारित किया गया। इसी सिलसिले में उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद नगर में प्रान्तीय कांग्रेस आयोजित करने का निर्णय लिया गया। नरमपंथी नेता चाहते थे कि प्रान्तीय कांग्रेस में किसी भी प्रकार उग्रवादियों के प्रतिनिधि न चुने जा सके तथा उग्रवादियों का प्रभाव न होने पाये। दूसरी ओर, उग्रवादियों के लिए प्रान्तीय कांग्रेस आयोजन स्थानीय एवं प्रान्तीय राजनीति पर अपना प्रभाव का एक सुनहरा अवसर था। स्थानीय गरम दल के नेताओं ने आगामी प्रान्तीय कांग्रेस के लिए जन-जागृति फैलानी आरम्भ कर दी, जिससे के कांग्रेस में स्थानीय जनता का अधिक से अधिक प्रतिनिधित्व हो सके तथा उसमें “बॉयकाट” के पक्ष में प्रस्ताव पारित करवाया जा सके। नगर के प्रमुख उग्रवादी नेता ज्योतिन्द्रनाथ सेन ने इस संबंध में लोगों को संगठित करने की आवश्यकता परबल देते हुए लिखा-

“...आवश्यकता इस बात की है कि अनेक सभाओं का आयोजन जिले की हर तहसील में, और यदि संभव हो सके तो शहर के हर वार्ड में किया जाये, जिससे लोगों को आने वाले सम्मेलन में हिस्सा लेने या कम से कम कुछ सक्रिय रूचि लेने के लिए जगाया जा सके।¹¹

उधर नगर के विद्यार्थियों तथा कुछ स्वदेशी डीलरों ने पं० मोतीलाल नेहरू को, जोकि प्रथम प्रान्तीय कांग्रेस के सभापति चुने गये थे, एक धमकी भरा पत्र लिखा कि अगर वह “बॉयकाट” को कांग्रेस के कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं करेंगे, तो वे उन्हें “हुट” करेंगे।¹²

यह तथ्य यह दिखाता है कि शहर के विद्यार्थियों में बहिष्कार आन्दोलन के प्रति कितनी तत्परता थी।

उस समय कांग्रेस के प्रतिनिधियों का चुनाव सार्वजनिक सभाओं के माध्यम से हुआ करता था। अतः स्थानीय उग्रवादी नेताओं में जन-सभाओं को आयोजित करके उग्रवादी आन्दोलन के प्रति सहानुभूति रखने वाले लोगों को प्रतिनिधियों के रूप में निर्वाचित करने की योजना बनायी। एक विशाल जनसभा का आयोजन इलाहाबाद के रेलवे थियेटर में किया गया। “सिटिज़न” के अनुसार-“इस सभा का उद्देश्य ऐसे प्रतिनिधियों का चुनाव करना था, जो केवल उच्चवर्ग के ही नागरिक न होकर, विभिन्न वर्गों के हितों के सच्चे प्रतिनिधि हों।¹³ इस सभा ने कुल मिलाकर 200 प्रतिनिधियों का चुनाव किया। किन्तु प्रान्तीय कांग्रेस की कार्यसमिति ने (जिसमें नरमपंथियों का बाहुल्य था) इन प्रतिनिधियों को मान्यता देने से इंकार कर दिया। इस प्रकार, व्यापक जन-समर्थन के बावजूद भी उग्रवादियों का प्रान्तीय कांग्रेस पर अपना कब्ज़ा करने का प्रयत्न असफल रहा।

पर इसके स्थानीय उग्रवादी निराश नहीं हुए। उग्रवादी आन्दोलन में जनता की रूचि बनी रही और सभाओं तथा प्रदर्शनों का आयोजन इलाहाबाद में पहले की भांति ही होता रहा। मई 1907 में लाला लाजपतराय के मॉडले में निर्वासन के समाचार ने नगर के राजनैतिक वातावरण को फिर एक बार अनुप्रणित कर दिया। सी०आई०डी० के डायरेक्टर की दैनिक रिपोर्ट से पता चलता है कि इस संबंध में विरोध प्रकट करने एवं लोगों में चेतना जगाने हेतु विद्यार्थियों ने नुक्कड़ सभाओं को सम्बोधित किया। लोगों का तीव्र रोष तथा प्रतिक्रिया स्थानीय नरमपंथी नेताओं द्वारा आयोजित सभाओं में भी स्पष्ट रूप से देखने को मिली। उग्रवादी राजनीति के जनता पर प्रभाव का अन्दाज़ा इसी बात से लगता है कि जब मदनमोहन मालवीय ने लाला लाजपतराय की रिहाई के लिए एक प्रार्थनापत्र गवर्नर-जनरल व भारत-सचिव के पास भेजने का प्रस्ताव रखा, तो प्रार्थना करने के खिलाफ विरोध के स्वर उपस्थित जन-समूह में सब तरफ से उठे।¹⁴ यह बात यह प्रदर्शित करती है कि नरमपंथी तरीकों से किस सीमा तक शहर की जनता का विश्वास उठ चुका था।

इसी प्रकार, लाला लाजपतराय की रिहाई के उपलक्ष्य में आयोजित आम सभा में नरमपंथियों द्वारा ब्रिटिश सम्राट तथा लार्ड मिन्टो को धन्यवाद-ज्ञापन देने के प्रस्ताव का उग्रवादी नेता ज्योतिन्द्रनाथ सेन (सिटिज़न के सम्पादक) तथा सुन्दरलाल (गरमदल के स्थानीय नेता) ने कड़ा विरोध किया। उनके इस विरोध के अनुमोदन में समूचा हॉल “वन्देमातरम्” के नारों से गूँज उठा। हालांकि अपनी मजबूत राजनीतिक स्थिति के कारण उदारवादी अपना प्रस्ताव पारित कराने में सफल हो गये, पर जैसाकि “सिटिज़न” ने लिखा- “यह घटना प्रान्त के राजनैतिक इतिहास में एक सीमाचिह्न बन गयी।”¹⁵ वस्तुतः इस घटना ने स्पष्ट कर दिया कि स्थानीय जनता को उग्रवादी प्रचार ने किस सीमा तक आन्दोलन कर दिया था।

यह सत्य है कि उग्रवादी आन्दोलन स्थानीय स्तर पर अपने बढ़ते राजनैतिक प्रभाव के बावजूद प्रान्तीय कांग्रेस के नेतृत्व पर कब्ज़ा करने में असफल रहा, पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उग्रवादी आन्दोलन का कोई स्थाई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने नगर के राजनैतिक वातावरण में एक नवीन चेतना एवं

स्फूर्ति भी दी और नगर में स्वतन्त्रता-संघर्ष को आगे बढ़ाया। स्थानीय राजनीति में, विशेष रूप से युवा पीढ़ी पर, उग्रवादी आन्दोलन का प्रभाव निर्णायक रहा। आगे चलकर उग्रवाद के अनेकों समर्थकों तथा कार्यकर्ताओं ने गांधीवादी आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। इस प्रकार, 1920 के जन-आन्दोलन के लिए व्यापक जनाधार तैयार करने तथा स्थानीय कार्यकर्ताओं और नेतृत्व की दूसरी कतार तैयार करने में इस आन्दोलन का व्यापक योगदान रहा।

संदर्भ

1. सी०ए०बेली, द लोकल स्ट्रस ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स, इलाहाबाद 1880-1920 (ऑक्सफोर्ड, 1975)
2. जैदी (सं०) इंसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, खण्ड-1
3. द इंडियन पीपुल (इलाहाबाद), 3 दिसम्बर 1905, यू.पी. नेटिव न्यूज़पेपर रिपोर्ट 1905, (यू.पी.एन.एन.आर.)
4. द इंडियन पीपुल (इलाहाबाद), 21 सितम्बर 1905, (यू.पी.एन.एन.आर., 1905)
5. मोतीलाल नेहरू का पत्र जवाहरलाल नेहरू को, दिनांक 16 नवम्बर 1905, सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ मोतीलाल नेहरू, खण्ड-1, (नई दिल्ली, 1982), पृ.सं. 91
6. सिटिज़न (इलाहाबाद), 30 अप्रैल 1906, (यू.पी.एन.एन.आर., 1906)
7. सी.आई.डी. का साप्ताहिक रिपोर्ट, (डब्ल्यू.आर.डी.सी.आई.), 11 सितम्बर 1909
8. सी.आई.डी. की साप्ताहिक रिपोर्ट, 16 नवम्बर 1907
9. स्वराज्य (इलाहाबाद), 3 जुलाई 1909, यू.पी.एन.एन.आर. 1909
10. द इंडियन पीपुल (इलाहाबाद), 17 जनवरी 1907, यू.पी.एन.एन.आर., 1907
11. सिटिज़न (इलाहाबाद), 25 मार्च 1907, यू.पी.एन.एन.आर., 1907
12. मोतीलाल नेहरू का जवाहरलाल नेहरू के नाम पत्र, दिनांक 21 जनवरी 1907, (सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ मोतीलाल नेहरू से उद्धृत)
13. सिटिज़न (इलाहाबाद), 1 अप्रैल 1907, यू.पी.एन.एन.आर. 1907
14. अभ्युदय (इलाहाबाद), 4 जून 1907
15. सिटिज़न (इलाहाबाद), 2 दिसम्बर 1907, यू.पी.एन.एन.आर. 1907

महिला सशक्तिकरण में मनरेगा की भूमिका

डौली कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, अर्थशास्त्र विभाग, एम. एल. आर्य कॉलेज कसबा, पूर्णियाँ (बिहार)

सुदीप कुमार

सहायक प्राध्यापक, गणित विभाग, सच्चिदानंद सिन्हा महाविद्यालय औरंगाबाद (बिहार)

सारांश:

कहा जाता है कि किसी देश के विकास की तस्वीर उस देश के महिलाओं की क्या स्थिति है, इस पर निर्भर करती है। यदि महिलाएँ स्वस्थ, शिक्षित एवं सुरक्षित वातावरण में हैं तब वो देश विकसित राष्ट्रों की कतार में है। इसके विपरीत यदि महिलाएँ असुरक्षित हैं, अशिक्षित हैं, आजीविका के अवसरों में कमी है तो उस देश की स्थिति बदतर होगी। सरकार महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए निरन्तर प्रयासरत रही है। सरकार के द्वारा रोजगारपरक योजना मनरेगा शुरू की गई, जो महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में सहायनीय रही है। मनरेगा महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बना रहा है, इससे उनका परिवार एवं समाज में मान-सम्मान बढ़ा है।

Keywords: विकास, तस्वीर, वातावरण, अवसर, आजीविका, आत्मनिर्भर, मान-सम्मान

प्रस्तावना:

किसी भी राष्ट्र के विकास में समाज के प्रत्येक व्यक्ति, वर्ग, जाति, समुदाय की सहभागिता महत्वपूर्ण मानी जाती है। विकास की इस अवधारणा में हम महिलाओं की सहभागिता को नजरअंदाज नहीं कर सकते। इतिहास इसका साक्ष्य है कि राष्ट्र के विकास में महिलाओं की सहभागिता को नजरअंदाज नहीं कर सकते। महिलाओं को विकसित देशों की श्रेणी में लाने के लिए एवं पुरातनवादी व्यवस्था से मुक्ति दिलाने के लिए यह आवश्यक था कि उन्हें कुछ महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान किए जाए। महिलाओं के लिए इस प्रयास की प्रक्रिया को महिला सशक्तिकरण कहते हैं। सशक्तिकरण का अर्थ है आत्मनिर्भर होना अपने हिसाब से जीने का हक जागरूकता तथा स्त्रियों के लिए सुरक्षित समाज। महिला सशक्तिकरण का अर्थ है- उनके जीवन के लिए उपयोगी समस्त अधिकार। आज महिलाएँ भले ही शिक्षित हो गई हों परन्तु अभी भी वह अपने फेसले स्वयं नहीं लेती। विश्व की लगभग आधी आबादी महिलाओं की हैं, अतएव आधे 1 आबादी को शिक्षित किए बिना राष्ट्र का विकसित होना संभव नहीं है। महिला सशक्तिकरण का प्राथमिक उद्देश्य महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक दशा को सुधारना है।

मनरेगा ग्रामीण अकुशल श्रमिकों के लिए रोजगार सुनिश्चित करने के लिए भारत सरकार द्वारा यह अधिनियम पारित किया गया। यह योजना 25 अगस्त 2005 को अधिनियमित किया गया। इस योजना का शुभारंभ 2 फावरी 2006 को आंध्र प्रदेश के अनंतपुर जिले में किया गया। 2 अक्टूबर 2009 को महात्मा गांधी की 140वीं जयंती पर प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह ने इसका नवीण नामकरण किया। यह एक ऐसा कार्यक्रम है, जिससे ग्रामीण गरीबों एवं मजदूरों पर आश्रित व्यक्तियों को संबल प्रदान करता है।

मनरेगा को प्रारंभिक चरणों में इसे देश के 200 जिलों में लागू किया गया। वर्ष 2007-08 में इसका 130 और जिलों में विस्तार किया गया। 5 वर्षों के मूल लक्ष्य से पहले तीन वर्ष के भीतर 1 अप्रैल, 2008 से देश के सभी 593 जिलों में लागू कर दिया गया। यह योजना कई अर्थों में दूसरी सरकारी योजनाओं से अलग है। यह एक कानूनी बाध्यता है, अधिकार है, जिसके अन्तर्गत हर काम माँगने वाले को काम उपलब्ध करवाना सरकार का कानूनी दायित्व है। यह अधिनियम न केवल ग्रामीण बेरोजगार को न केवल रोजगार की गारंटी देता है बल्कि वेतन के निर्धारण और भुगतान की कार्यवाही को भी विधिक स्वरूप प्रदान करता है। महिलाओं की मजदूरी पुरुषों के बराबर दी जाती है। महिलाओं को प्रोत्साहन देने के लिए यह व्यवस्था कि गई कि उन्हें घर के आसपास ज्यादा से ज्यादा पाँच किलोमीटर के दायरे में काम दिया जाए। यह भी व्यवस्था की गई है कि उन्हें कम मशक्कत वाला काम दिया जाए। मनरेगा के द्वारा महिलाओं को

मनरेगा की मुख्य विशेषताएँ

- ग्रामीण परिवार का कोई भी व्यक्ति सदस्य यदि अकुशल श्रम के तहत कार्य करने को इच्छुक है तो वह आवेदन कर सकता है।
- ऐसे परिवारों को स्थानीय ग्राम पंचायत में लिखित या मौखिक रूप से रजिस्ट्रेशन करवाना पड़ता है।

- जाँच पड़ताल के पश्चात् ग्राम पंचायत इच्छुक सभी सदस्यों का फोटो युक्त जॉब कार्ड जारी करता है।
- रोजगार के लिए आवेदन के बाद 15 दिनों के अन्दर उसे काम दे दिया जाता है।
- इस योजना के तहत कम से कम 1/3 भाग महिलाओं को काम दिये जाने की व्यवस्था है।
- कार्य के दौरान कार्यस्थल पर कार्य कर रही महिलाओं के 6 वर्ष या उससे कम उम्र के बच्चों की देखभाल की व्यवस्था की जाती है।
- घर से 5 किलोमीटर के आस-पास के क्षेत्रों में ही रोजगार दिया जाता है।
- मजदूरी कम से कम 60 रु. प्रतिदिन हो सकती है, जिसका भुगतान बैंक खातों के जरिए होता है।
- योजना को बनाने एवं लागू करने में पंचायत की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

मनरेगा एवं महिला सशक्तिकरण:

इस योजना में शेड्यूल 2 पैरा 6 मनरेगा के अन्तर्गत कहा गया है- कार्य के वितरण में महिलाओं को प्राथमिकता देनी होगी ताकि कम से कम एक प्रकार के लाभ प्राप्त करने वालों में एक तिहाई से अधिक हिस्सा महिलाओं का है। ऐसी व्यवस्था रखने का एकमात्र उद्देश्य महिलाओं के सशक्तिकरण को बढ़ावा देना है, उनका मनोबल उँचा उठाना है एवं उन्हें आत्मनिर्भर बनाना है। महिलाएँ जैसे ही आत्मनिर्भर हो जाती हैं, पुरुषों पर उनकी निर्भरता कम हो जाती है। मनरेगा जैसी योजनाएँ न केवल बेरोजगारी हटाने का काम कर रही हैं बल्कि महिलाओं को स्वावलंबी बनाकर उनके अन्दर सशक्तिकरण की भावना को भी बढ़ावा मिल रहा है।

महिलाओं की उच्च भागीदारी मनरेगा की प्रमुख प्राथमिकता है। महिलाओं की सम्पूर्ण भारत में भागीदारी यह दर्शाते हैं कि इस योजना में महिलाओं की भागीदारी अन्य सभी योजनाओं की तुलना में सबसे अधिक है। मनरेगा ने महिलाओं के लिए काम का एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किया है जो रोजगार एवं उनके सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। मनरेगा में महिलाओं की भागीदारी 2006-07 में महिला रोजगार एवं श्रम दिवस लगभग 40.64 प्रतिशत रहा। वित्तीय वर्ष 2007-08 में 47.73 प्रतिशत, 2008-09 में 47.87 प्रतिशत, 2009-10 में 48.91 प्रतिशत, 2010-11 में 47.73 प्रतिशत, 2011-12 में 49.33 प्रतिशत, 2012-13 में 51.30 प्रतिशत, 2013-14 में 52.82 प्रतिशत, 2014-15 में 54.88 प्रतिशत, 2015-16 में 55.26 प्रतिशत, 2016-17 में 56.14 प्रतिशत, 2017-18 में 54.67 प्रतिशत रहा है।

विभिन्न राज्यों में महिलाओं की भागीदारी अलग-अलग रही है। केरल में 71 प्रतिशत, राजस्थान में 69 प्रतिशत, तमिलनाडू में सबसे अधिक 82 प्रतिशत, असम में 31 प्रतिशत, बिहार में 27 प्रतिशत, पश्चिम बंगाल में 17 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 15 प्रतिशत, हिमाचल प्रदेश में 30 प्रतिशत एवं झारखण्ड में 27 प्रतिशत रही है।

भारत में मनरेगा की प्रगति यह बताती है कि महिलाएँ निश्चित रूप से लाभान्वित एवं सशक्त हुई हैं। मनरेगा द्वारा महिलाओं का अपनी मजदूरी पर अधिक नियंत्रण हो गया है और वे उन्हें छोटे ऋणों को चुकाने, बच्चों के स्कूल फीस भरने व स्वास्थ्य- संबंधी खर्चों पर इस्तेमाल करती हैं। मनरेगा अधिनियम के अनुसार महिला एवं पुरुषों को समान मजदूरी का प्रावधान है, एवं यह भी अनिवार्यता है कि कार्यस्थल पर कम से कम 33 प्रतिशत महिलाओं का होना आवश्यक है।

विकासशील देश में जहाँ महिलाओं की भूमिका एवं स्थिति प्रारंभ से ही दयनीय थी आज भी सुधार नहीं पाई है किन्तु फिर भी समय-समय पर सरकारी प्रयास किए हैं मनरेगा उन्हीं सार्थक प्रयासों का एक सफल एवं सकारात्मक ऋण, जाति के आधार पर भेदभाव किए बिना सभी लोगों को कार्य करने के समान अवसर प्रदान करता है।

भारत जैसे कदम है। काम करने के प्रति महिलाओं का रवैया बदला है, एक समान मजदूरी होने के कारण उनके अन्दर भी पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर चलने का सामर्थ्य आया है। मनरेगा के द्वारा उन्हें वर्ष में 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराया जाता है इससे वह स्वयं को आर्थिक, सामाजिक एवं मानसिक रूप से संगठित एवं मजबूत महसूस कर रही हैं।

मनरेगा एक वास्तविक कार्य है महिलाओं के सशक्तिकरण का उन्हें निजी तौर पर काम तो मिलता है लेकिन वह अनियमित होता है, उनका शोषण बहुत अधिक होता है। मनरेगा उन्हें गाँव के आस-पास रोजगार उपलब्ध कराती है, मानकीकृत मजदूरी प्रदान करती है एवं प्रवजन को रोकती है। मनरेगा के तहत उन्हें वर्ष में 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराता है, एवं उन्हें 85-100 रुपये प्रतिकार्य दिवस मिलता है। महिलाएँ स्वयं को आर्थिक, सामाजिक एवं मानसिक रूप से मजबूत महसूस करती हैं।

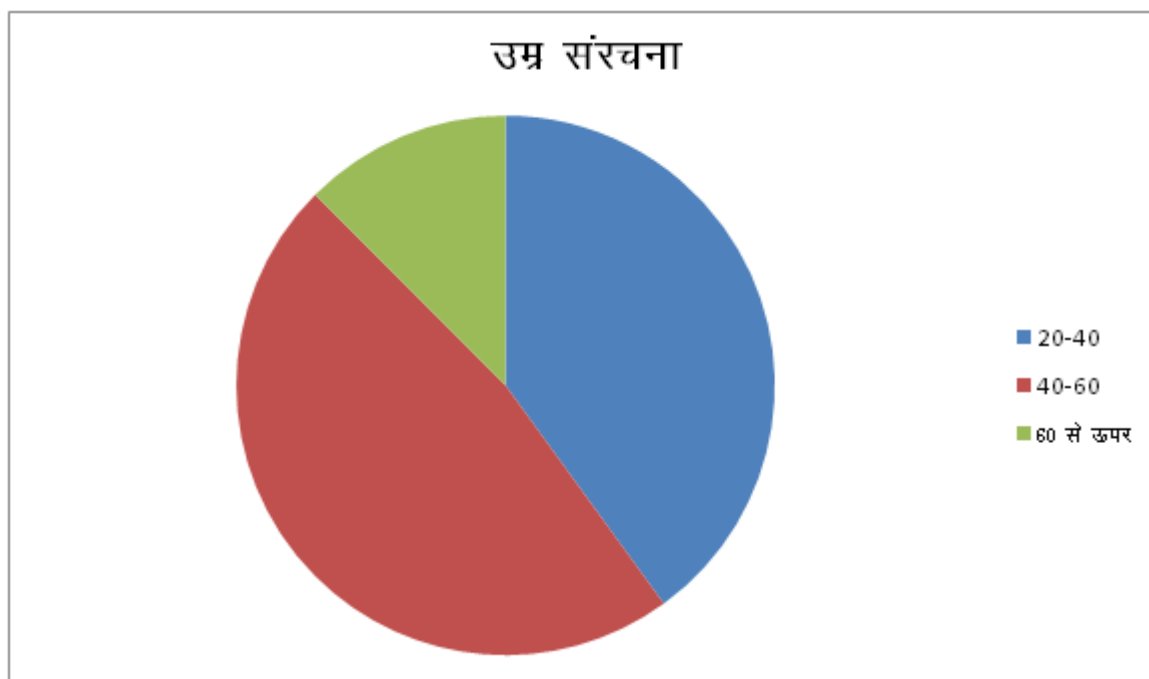
मनरेगा के तहत किये जाने वाले कार्य स्थानीय सरकार के द्वारा ग्रामीण जनता को प्रदान किया जाता है एवं सरकारी कार्य होने की वजह से इसमें कार्य 7-8 घंटे प्रति दिन से ज्यादा नहीं हो सकते हैं, साथ ही कार्य क्षेत्र में बच्चों के रख-रखाव की व्यवस्था भी की जाती है जिसमें पाँच से अधिक बच्चे जो कि 6 वर्ष से कम के हो, शामिल किये जाते हैं। सरकारी कार्य होने की वजह से यहाँ श्रमिकों की सुरक्षा का भी पूरा ध्यान रखा जाता है, जिसमें आर्थिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की सुरक्षा शामिल है।

इस प्रकार मनरेगा योजना द्वारा महिलाएँ जागरूक हो रही हैं एवं कहीं न कहीं पुरुषों के साथ बराबरी का अहसास उनके अन्दर जन्म ले रहा है। महिलाएँ सामाजिक एवं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने के साथ-साथ आत्म सम्मान के प्रति सचेत हो रही हैं और स्वयं के लिए एवं अपने परिवार के भविष्य के लिए इन पैसों का इस्तेमाल कर रही हैं। इस योजना के माध्यम से महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही हैं, शिक्षा के महत्व को पहचान रही हैं। मनरेगा के माध्यम से महिलाएँ यदि अकेली हैं तो भी अपना जीवन यापन करने में सक्षम हो रही हैं एवं परिवार के अनेक समस्याओं जैसे छोटे ऋण चुकाना, स्वास्थ्य, बच्चों की शिक्षा, भोजन और उपभोग आदि से निजात दिला रही हैं। मनरेगा द्वारा पूरे देश का आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक विकास हो रहा है।

शोधार्थी द्वारा कसबा प्रखण्ड के सबदरपुर एवं लखना पंचायत का चयन किया गया है। इस पंचायत में 40 महिलाओं से साक्षात्कार अनुसूची से सूचनाएँ एकत्र की गई हैं। चयनित महिलाओं का मनरेगा के द्वारा सशक्तिकरण हुआ है या नहीं का विश्लेषण किया गया है। इसमें उम्र, शैक्षणिक स्थिति इत्यादि कारकों को सम्मिलित किया गया है।

तलिका 1: उम्र संरचना

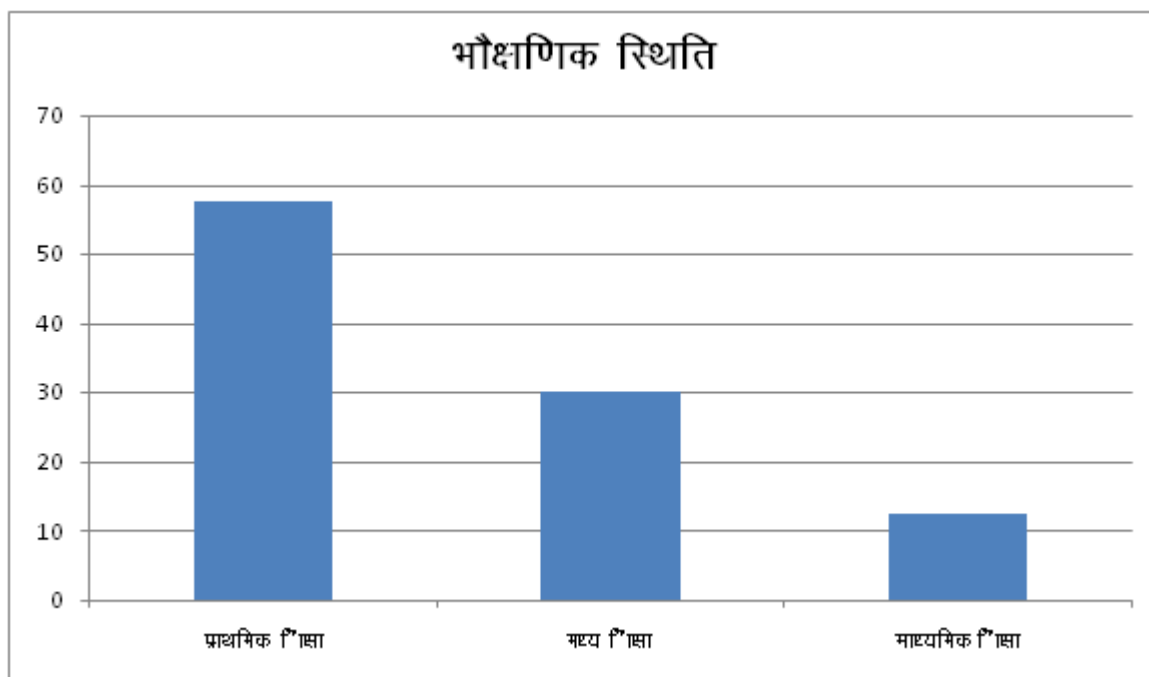
क्र. सं.	उम्र (वर्ष में)	आवृत्ति	प्रतिशत
1	20 - 40	16	40
2	40 - 60	19	47.5
3	60 से ऊपर	5	12.5
योग		40	100.003



तलिका 1 से स्पष्ट होता है कि 20-40 वर्ष के उम्र की महिलाओं का प्रतिशत 40 है, 40-60 वर्ष के महिलाओं का प्रतिशत 47.5 प्रतिशत है एवं 60 वर्ष से ऊपर महिलाओं का प्रतिशत 12.5 है। इस तालिका से स्पष्ट है कि 40-60 वर्ष एवं 60 वर्ष से ऊपर के महिलाओं की संख्या अधिक है जो मनरेगा के अन्तर्गत काम कर रही है। इसे हम निम्न प्रकार दिखा सकते हैं।

तलिका 2: शैक्षणिक स्थिति

शिक्षा	आवृत्ति	प्रतिशत
प्राथमिक शिक्षा	23	57.5
मध्य शिक्षा	12	30
माध्यमिक शिक्षा	5	12.5
योग	40	100.0



तालिका 2 से स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाओं का प्रतिशत 57.5 प्रतिशत है, मध्य शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाओं का प्रतिशत 30 है एवं माध्यमिक शिक्षा प्राप्त महिलाओं का प्रतिशत 12.5 प्रतिशत है। इस तालिका से स्पष्ट है कि प्राइमरी शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाओं की संख्या अधिक है। इसे निम्न प्रकार दिखा सकते हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव:

- महिलाओं के सर्वांगीण विकास में मनरेगा महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, इसके माध्यम से महिलाओं को देश के विकास की मुख्य धारा में शामिल करने का प्रयास किया गया है।
- मनरेगा के द्वारा महिलाओं में आत्मगौरव, आत्मविश्वास, रोजगार की उपलब्धता से आत्मनिर्भरता का विकास हुआ है। उनकी क्रय क्षमता बढ़ी है, परिवार सुरक्षित हुए हैं एवं सामाजिक समस्याएँ कम हुई हैं।
- ज्यादातर 40-60 वर्ष के उम्र की महिलाएँ मनरेगा के अन्तर्गत कार्य कर रही हैं। 20-40 एवं 40-60 एवं 60 से ऊपर वर्ष की कम महिलाएँ मनरेगा के अन्तर्गत काम कर रही हैं।
- प्राथमिक शिक्षा पास ज्यादातर महिलाएँ मनरेगा के अन्तर्गत काम कर रही हैं। मध्य एवं माध्यमिक शिक्षा पास कम महिलाएँ मनरेगा में काम कर रही हैं।
- मनरेगा का लक्ष्य महिलाओं की उन्नति, विकास एवं सशक्तिकरण को सुनिश्चित करना है। इसका उद्देश्य महिलाओं के विकास के लिए अनुकूल माहौल तैयार करना, जिससे महिलाएँ अपनी क्षमता का विकास कर सकें।
- मनरेगा के अन्तर्गत महिलाओं को रोजगार के अवसर सपलब्ध कराया जा रहा है, इससे महिलाएँ आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन रही हैं।
- मनरेगा से महिलाओं का सर्वांगीण विकास हो रहा है, इसके माध्यम से पिछड़ों, निर्धनों, ग्रामीण महिलाओं को देश के विकास की मुख्य धारा में शामिल करने का प्रयास किया जा रहा है।
- मनरेगा से महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति सुधारी है, इससे उनके जीवन स्तर में सुधार आया है।

संदर्भ:

- <https://nrega.nic.in>
- कुरुक्षेत्र मासिक पत्रिका, जनवरी 2018, वॉल्यूम-64, अंक-3, प्रश्न संख्या-18, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
- कुरुक्षेत्र मासिक पत्रिका, अप्रैल 2020, वॉल्यूम-66, प्रश्न संख्या-1, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
- राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम 2005, भारत सरकार।
- वसावा, प्रो. रेखा डी (2019), मनरेगा एवं ग्रामीण विकास, जे. टी. एस पब्लिकेशन
- भारत 2020 (वार्षिकी), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
- Patgiri, Dr. Rimki (2018), Poverty Alleviation and Mgnrega Highbrow Scribes Publication

वैश्विक परिदृश्य में गीता का मूल्य

डॉ० अजायब सिंह

सह-आचार्य, हिन्दी-विभाग, मुकुन्द लाल नेशनल कॉलेज, रादौर (यमुनानगर)

‘श्रीमद्भगवद् गीता’ शाश्वत मूल्यों का भण्डार है। ‘मूल्य’ शब्द संस्कृत की ‘मूल’ धातु में ‘यत्’ प्रत्यय लगाने से बना है, जिसका मूल अर्थ ‘कीमत’ है। ‘मूल्य’ शब्द को अंग्रेजी में वैल्यू का पर्याय माना जाता है। ‘वैल्यू’ शब्द लैटिन भाषा के वैलीरी शब्द से बना है जिसका अर्थ ‘अच्छा’ ‘सुन्दर’ होता है। आर. के. मुकर्जी ने ‘मूल्य’ के पर्यायों की ओर संकेत किया है—लक्ष्य, आदर्श, प्रतिमान आदि। डॉ. कुमार विमल ने ‘मूल्य’ को जीवन-दृष्टि माना है। प्रबुद्ध चिंतक ‘अर्बन’ ने मूल्य की तीन परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं— प्रथम परिभाषा के अनुसार जो “जो मानवीय इच्छा की तुष्टि करे वही मूल्य है।”¹

“‘मूल्य’ वह वस्तु है जो जीवन को सदैव विकास की ओर ले जाती है।”² “‘मूल्य वह है जो व्यक्तियों को विकास अथवा आत्म-विकास या आत्मानुभूति की ओर ले जाती है।”³ पेरी नामक पाश्चात्य विद्वान् ने मूल्य के अनेक पर्यायों की ओर संकेत किया है— कर्तव्य, दया, मूल्य, उपयोगिता, आदर्श, नियामक, सुंदर, पवित्र, न्याय, प्रसन्नता।⁴

डॉ. हुकमचंद राजपाल ‘मूल्य’ को लोकमंगल की श्रेष्ठ अवस्था मानने के पक्षधर हैं। मूल्य समष्टिगत उद्देश्य को आत्मसात् किए रहते हैं। उन्होंने मूल्य को निजी स्वार्थों से ऊपर लोकहित के अर्थ में स्वीकार किया है।⁵ मानव जीवन को सुंदरतम बनाने की प्रेरणा इन मूल्यों में ही सन्निहित होती है। वास्तव में श्रेष्ठ मूल्य वही हैं जो समूची मानव जाति के उत्थान का मार्ग प्रदर्शित करते हैं।⁶

मूल्यों का मानव के साथ चिरंतन सम्बन्ध रहा है। मानव की उन्नति और विकास मूल्यों पर ही आधारित रहते हैं। मानव-मूल्य ही मानव को अनेक जीवधरियों से पृथक् करता है। मानव की क्रिया, संगठन, व्यक्तित्व, समाज और सभ्यता जैसी महान् व्यवस्थाओं के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्य महत्त्व रखता है। ‘मूल्य’ सम्बन्धी सभी सिद्धान्त प्रगति और समृद्धि के हेतु होते हैं। भारत में जीवन को व्यवस्थित चलाने के लिए चार पुरुषार्थ की कल्पना की गई है। ये चारों पुरुषार्थ जीवन को सम्यक् एवं संयमति ढंग से चलाने के लिए बनाये गये हैं। मूल्य से समाज का गहरा सम्बन्ध है। वस्तुतः मूल्य मानव-समाज की आधार भूमि है। मानव-मूल्य मानव मात्र के शाश्वत और चिरंतन के मूल तत्त्व हैं।

श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास द्वारा विरचित ‘श्रीमद्भगवद्गीता’ ‘महाभारत’ के भीष्म पर्व का एक अध्याय है। गीता को ‘उपनिषद्’, ‘योग शास्त्र’, ‘ब्रह्म-विद्या’, ‘श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद’ भी कहा जाता है। वस्तुतः यह महाग्रंथ वेदों का सार है। गीता के माहात्म्य के संबंध में एक श्लोक आता है –

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

अर्थात् समस्त उपनिषद् गाय हैं, उन गायों को दुहने वाले श्रीकृष्ण भगवान् हैं। अर्जुन बछड़ा है और इस गीता के दूध रूपी अमृत का पान ज्ञानीजन करते हैं।

श्रीमद्भगवद् गीता धार्मिक ग्रंथ होने के साथ-साथ, समस्त मानव जाति के लिए ज्ञान का स्रोत भी है। इसीलिए विश्व की लगभग सभी भाषाओं में इसके अनुवाद उपलब्ध हैं। मनुष्य जीवन का मार्गदर्शन भगवद् गीता का मूल विषय एवं अभिप्राय है। यह ज्ञान भगवान् श्रीकृष्ण जी के मुखारविंद से एवं महर्षि वेदव्यास जी के माध्यम से महाभारत के युद्ध से कुछ पूर्व अर्जुन तक पहुँचा और तत्पश्चात् मानव जाति के कल्याण के लिए सुरक्षित रहा। भगवद् गीता 700 श्लोकों पर आधारित है। ये सभी श्लोक, महाभारत के युद्ध के कुछ समय पूर्व श्रीकृष्ण-अर्जुन के संवाद के रूप में वर्णित किए गए हैं।⁷

भगवद् गीता के अठारह अध्यायों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पहले छः अध्याय कर्मयोग विषय से संबंधित हैं। अगले छः अध्याय ज्ञान योग को वर्णित करते हैं तथा अंतिम 6 में भक्तियोग का उल्लेख है। ज्ञान, कर्म व भक्ति— ये तीनों मानव मात्र की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं, ऐसा गीता में कहा गया है।

भगवद् गीता संसार की लोकप्रिय रचना है। विदेशी विद्वानों को भी भगवद्गीता ने बहुत प्रभावित किया है। सुप्रसिद्ध अमरीकी दार्शनिक हैनरी थ्युरो ने कहा है कि, “हर रोज मैं अपने मस्तिष्क को गीता के महान् एवं विश्वव्यापी फलसफे से स्नान करवाता हूँ। गीता ज्ञान के सामने विश्व के दूसरे सब ज्ञान तुच्छ लगते हैं।”⁸ पाश्चात्य विद्वान् ऐमरसन ने गीता के मूल्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। रूस के प्रसिद्ध लेखक ताल्सताय ने भी भगवद् गीता को संसार का बेजोड़ ग्रंथ कहा है।

भगवद्गीता के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण ने कहा है— जो व्यक्ति इस गीता शास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा वह निस्संदेह मुझी को प्राप्त होगा— य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेस्वभिधास्यति। भक्ति मपि परां कृत्वा मामैवैष्यत्य संशयः॥

भगवद् गीता संसार का लोकप्रिय ग्रंथ है। इस ग्रंथ के सैकड़ों अनुवाद हुए हैं। गीता भारतीय मनीषा की मानव जाति को अनुपम देन है। गीता कालजयी रचना है। गीता के ज्ञान की सार्वभौमिकता एवं सार्वकालिकता को सभी विद्वानों ने स्वीकारा है। गीता वस्तुतः अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का ग्रंथ है। इसका लक्ष्य सम्पूर्ण मानवता का कल्याण है। यह ग्रंथ शाश्वत सुख व शांति का मार्ग सुझाता है। आज जो समाज व राष्ट्र की दुर्दशा है, चरित्रहीनता, भटकन व किंकर्तव्यविमूढ़ता है, वह केवल गीता के अनुसार आचरण से विमुख होने के कारण है। अनिश्चितता, अनिर्णय, दुविधा या असमंजस की स्थिति में गीता का उपदेश ही मार्गदर्शक हो सकता है।

गीता एक बहुमूल्य ग्रंथ है। यह संसार को जीवन जीने की शिक्षा देता है। गीता जीवन संग्राम में विजय प्राप्ति के लिए कर्मयोग की शिक्षा देता है। गीता का ज्ञान सचेष्ट व असरकारक है। गीता का कर्मयोग मानव-मात्र को प्रेरित करता है। गीता में योगीराज श्रीकृष्ण कहते हैं-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफल हेतुर्भुमा ते संगोऽस्त्व कर्मणि॥¹

अर्थात् हे मानव! तेरा कर्म करने का अधिकार है, उसके फल की तनिक भी चिन्ता मत करो। वस्तुतः इस सिद्धान्त को सभी देशों ने स्वीकारा है। वैश्विक परिदृश्य में गीता के मूल्य-बोध की यह महत्ता सर्वमान्य है। अनेक देशों ने कर्म-साधना को कर्म संस्कृति माना है जबकि हमारा देश उत्सवोन्मुखी संस्कृति है। वस्तुतः हमारा देश पाखंडवाद से घिरा हुआ देश है। किसी विद्वान् ने कहा है- 'उठो जागो और अपने देश को देखो' गीता के अनुसार कर्मयोगी कर्मों के फल का त्याग करके भगवत् प्राप्ति रूप शांति को प्राप्त होता है।

गीता में 'संयम बोध' का विस्तार से वर्णन किया गया है। संयम बोध को समस्त देशों ने माना है। गीता में स्पष्ट कहा है कि विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। इसी भाव को निम्न श्लोक में व्यक्त किया गया है, यथा-

क्रोधात् भवती सम्मोह, सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।

स्मृति, भ्रंशाद् बुद्धि नाशो, बुद्धि नाशात्प्रणश्याति॥²

आज के इस आपा-धापी और अफरा-तफरी के इस युग में मानव विचलित और बेचैन है। ऐसे में गीता मानव को शांति का उपदेश देती हुई कहती है-

विहाय कामान्य सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृह।

निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधि गच्छति॥³

अर्थात् जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर ममता रहित, अहंकार रहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है वही शांति को प्राप्त होता है।

आज यह संसार राग-द्वेष से आक्रांत है। गीता का मत है-

ज्ञेयः स नित्य संन्यासी यो न द्वेष्टि न कांगति।

निद्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बान्धात्प्रमुच्यते॥⁴

जो पुरुष न किसी से द्वेष करता है और न किसी की आकांक्षा करता है, वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है, क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित पुरुष संसार बंधन से मुक्त हो जाता है। वैश्विक परिदृश्य में श्रेष्ठ पुरुष बनने की शिक्षा देते हुए गीता में कहा गया है-

शक्रोती-हैव यः सोदुप प्राक्शरीरविमोक्षणात्।

कामक्रोधोद्भवं वेगं सं युक्त स सुखी नरः॥

अर्थात् जो साधक इस मनुष्य शरीर में, शरीर का नाश होने से पहले-पहले ही काम-क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है, वही पुरुष योगी है और वही सुखी भी है।

संसार के मानवों को शिक्षा देती हुई गीता कहती है-

सुहृन्मित्रार्युदासीन मध्यस्थ द्वेष्य बंधुषु।

साधुष्वपि च पापेसु समबुद्धिर्विशिष्यते॥⁵

अर्थात् स्वार्थरहित सबका हित करने वाला सुहृद्, मित्र, बैरी, उदासीन, मध्यस्थ द्वेष्य और बंधुगणों में और पापियों में भी समान भाव रखने वाला व्यक्ति अत्यंत श्रेष्ठ है।

गीता के अठारहवें अध्याय के सोलहवें श्लोक में कहा गया है कि सत्संग और शास्त्र के अभ्यास से तथा भगवद् कर्म और उपासना करने से मनुष्य की बुद्धि शुद्ध होती है, जो व्यक्ति उपर्युक्त साधनों से रहित है, उसकी बुद्धि अशुद्ध है।

वैश्विक परिदृश्य में 'योग' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गीता में कहा गया है कि जो दुःख रूपी संसार से संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है, वह जानना चाहिए। धैर्य और उत्साहयुक्त चित्त से निश्चयपूर्वक करना कर्त्तव्य है-

सविद्यात् दुःख संयोग वियोगं योग संगितम्।

अनिश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्ण चेतसा॥⁶

गीता में शुद्ध आहार पर प्रकाश डाला गया है जो सम्पूर्ण विश्व के लिए मान्य है क्योंकि स्वास्थ्य ही धन है-

आयुः सत्त्व बलारोग्य सुखप्रीति विवर्धनाः।

रस्या स्निग्धाः स्थिरा हृद्वा आहाराः सात्त्विकप्रियाः।¹⁷

अर्थात् आयु, बुद्धि-बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय-ऐसे आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।

संसार में श्रेष्ठ पुरुष कौन है? इसका उत्तर गीता में दिया गया है। सुख-दुःख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रियों और विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्ष के योग्य होता है। गीता में कहा गया है-

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।

समदुःखसुखंधीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।¹⁸

सम्पूर्ण विश्व का यह सार्वभौमिक नियम है कि जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है। यथा-

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च।¹⁹

संसार के सभी देशों के लोगों ने यह स्वीकार किया है कि ज्ञान पवित्र वस्तु है। गीता में कहा गया है-

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।²⁰

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कितने ही काल से कर्मयोग के द्वारा शुद्ध अन्तःकरण हुआ मनुष्य अपने आप ही आत्मा में पा लेता है।

गीता में कहा गया है कि जगत् के जीवन-संग्राम में विजय की प्राप्ति के लिए कर्मयोग सिद्धान्त का ज्ञान जितना उपयोगी है, जितना सचोट और असरदायक है उतना दूसरा और कोई ज्ञान नहीं है। इस कारण कर्मयोग का अभ्यास प्रत्येक व्यक्ति के लिए बहुत उपयोगी है। वस्तुतः योग का संसार में विशेष महत्त्व है। योगीराज बाबा रामदेव के आशीर्वाद से, वैश्विक परिप्रेक्ष्य में योग का महत्त्व उल्लेखनीय है। वस्तुतः गीता का योग सिद्धान्त पूर्ण रूपेण व्यावहारिक तथा सर्वग्राही सिद्धांत है।

गीता के बारहवें अध्याय के बीसवें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करने वाला व्यक्ति सदैव सुखी रहता है। गीता के अनुसार अहिंसा, सत्य, दया, शांति, ब्रह्मचर्य, शम, दम, तितिक्षा, यश, दान, तप, अध्ययन, अध्यापन को धर्म का क्षेत्र माना जा सकता है। वस्तुतः गीता वैश्विक परिप्रेक्ष्य में शाश्वत सुख व शांति का रास्ता है। “आज जो समाज व राष्ट्र की दुर्दशा है, चरित्रहीनता, भटकाव, किंकर्तव्यविमूढ़ता है, वह केवल गीता के अनुसार आचरण से विमुख होने के कारण है। आज के इस युग में अनिश्चितता, अनिर्णय, दुविधा या असमंजस की स्थिति में गीता का उपदेश ही मार्गदर्शक हो सकता है।”²¹

वस्तुतः गीता मानव-मूल्यों का भंडार है। गीता भवसागर पार करने का मूल मंत्र है। गीता हृदय में धारण करने योग्य है। ईश्वर तत्त्व को जानने के लिए इसके समान कोई ग्रंथ नहीं है। गीता व्यक्ति को सम्पूर्ण होने का अहसास कराती है। गीता जीवन में आत्मानंद की अनुभूति कराने का माध्यम है। जीवन को पूर्णत्व की ओर ले जाने का नाम ही गीता है। गीता के अनुसार, संसार में न कोई शत्रु है, न मित्र। एक आत्मा ही सत्य है। गीता के अनुसार आत्मा का उत्कर्ष ही अहिंसा है और आत्मा का हनन ही हिंसा है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्य मात्र में कोई भेद नहीं करती। उसकी सार्वभौमिक दृष्टि ‘सर्वधर्मसमभाव’ की अलख जगाती है। मनुष्य के आत्मोद्धार के लिए ‘अभय’ का होना बहुत आवश्यक है। गीता की जीवन-दृष्टि मनुष्य को निर्भयता का कवच प्रदान करती है। वस्तुतः आज का मानव विपर्यस्त स्थितियों में साँस ले रहा है। स्वार्थपरता, भौतिक संकुलता, पारस्परिक वैमनस्य, मानवीय मूल्यों का ह्रास, संताप एवं संत्रास प्रभृति आसुरी प्रवृत्तियों से सम्पूर्ण विश्व संतप्त है। ऐसे में भगवद्गीता ही संसार को नई गति व नई दिशा दे सकती है।

संदर्भ

1. W.M. Urban, Fundaments of Ethics, P. 16
2. वही, पृ. 17
3. वही, पृ. 18
4. The American peoples Ency, Vol 19
5. हुकमचंद राजपाल, आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य, पृ. 60
6. वही, पृ. 61
7. केवल कृष्ण ऋषि, शम्भु-ए-ह+की+कत, प्रस्तावना
8. वही, पृ. 2

9. वही, पृ. 2
10. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-18, श्लोक-68
11. वही, 2/47
12. वही, 2/63
13. वही, 3/71
14. वही, 5/3
15. वही, 6/9
16. वही, 6/23
17. वही, 17/8
18. वही, 2/16
19. वही, 2/27
20. वही, 4/38
21. दामोदर भगेरिया, श्रीमद्भगवद् गीता, पृ. 15

विद्यालयी शिक्षा में कार्यरत ग्रामीण व शहरी परिवेश के शिक्षको (अध्यापक व अध्यापिकाओं) के मूल्यों (सैद्धांतिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य, एवं धार्मिक मूल्य) का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० अजय सिंह यादव

प्राचार्य /विभागाध्यक्ष बी०एड०/एम०एड० महाविद्यालय

सारांश

प्रस्तुत किये गए शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा विद्यालयी शिक्षा में कार्यरत शिक्षकों के मूल्यों का अध्ययन किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया एवं शून्य परिकल्पना के अंतर्गत शोधार्थी द्वारा मूल्यों के सन्दर्भ में शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयी शिक्षकों के मध्य सार्थक अंतर की जाँच की गयी। प्रस्तुत शोध अध्ययन में मुरादाबाद मंडल के जिला रामपुर की तहसील बिलासपुर में अवस्थित ग्रामीण व शहरी क्षेत्र के मान्यता प्राप्त विद्यालयों (कक्षा 1-से 12) से 100-100 विद्यार्थियों का चयन स्तरीकृत यद्विचक्षक न्यादर्श विधि से किया गया है। शोधार्थी द्वारा डॉ० (श्रीमती) हरभजन एल सिंह गुरु नानक पब्लिक स्कूल उदयपुर राजस्थान एवं डॉ०यस०पी०अहलूवालिया प्रो० हेड येण्ड डीन फैकल्टी ऑफ एजुकेशन यूनिवर्सिटी ऑफ सागर मध्य प्रदेश द्वारा निर्मित अध्यापक मूल्य परीक्षण का प्रयोग कर शिक्षकों के मूल्यों का अध्ययन किया गया है सांख्यिकीय प्राविधि के अंतर्गत शोधार्थी द्वारा मध्यमान, मनकविचलन व टी-परीक्षण व आलोचनात्मक अनुपात (CR) का अनुसरण किया गया है। निष्कर्ष के रूप में दर्शाया गया है। सैद्धांतिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य, एवं धार्मिक मूल्य के सन्दर्भ में ग्रामीण एवं शहरी परिवेश के शिक्षकों के मध्य सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

जिसमें चतुर्थ कारक सामाजिक मूल्यों का मध्यमान सबसे ज्यादा तथा राजनैतिक मूल्यों का मध्यमान सबसे कम है

1.1.0 प्रस्तावना

समाज के स्वीकृत नियम सामान्यतया मूल्य कहलाते हैं। और व्यक्ति की प्रतिष्ठा का आंकलन इससे किया जाता है। उसकी सफलता और असफलता इससे निर्देशित होती है। परन्तु मूल्य इससे कही ऊपर भी जाना चाहते हैं यथापि

अध्यापक और मूल्य का नजदीकी सम्बन्ध है और बात अगर अध्यापक शिक्षा की हो तो बिषय और गंभीर हो जाता है जहा अध्यापक शिक्षा और अध्यापन की योजना निर्देशन और मूल्यांकन का दायित्व पूरा करते हैं तो मूल्य के कारण अनेक महापुरुष गौतमबुध, महत्मा गाँधी स्वामीविवेकानंद आदि अमर हो गए मूल्य के बिना जीवन की कल्पना अमानवीय है यद्यपि आज की शिक्षा बाल केंद्रित होती जा रही है और बालक की शिक्षा में अध्यापक पथ-प्रदर्शक के रूप में विद्यमान रहता है और शिक्षा की सफलता बहुत हद तक उसकी निर्देशन-शक्ति एवं प्रणाली पर ही निर्भर करती है। अध्यापक को ऊँचे चरित्र का होना चाहिए, जिससे बालको के सामने सही आदर्श रख सके, और अध्यापको को अपने कार्यों में उतावलापन नहीं दिखाना चाहिए।

व्यक्ति अपने जीवन में कुछ न कुछ अनुभव करता है। जब व्यक्ति इन्ही अनुभवों में से कुछ सामान्य सिद्धान्तों को जीवन दर्शन के रूप में स्वीकार कर लेता है तो इससे जीवन यापन की एक विशिष्ट कला विकसित होती है जो भविष्य में पथ-प्रदर्शक के रूप में कार्य करती है। इसी कला को मूल्य कहते हैं व्यक्ति का मूल्य इस बात का दर्पण है की वह अपनी सीमित समय और शक्ति में क्या करना चाहता है। जीवन के पथ प्रदर्शक के रूप में मूल्य अनुभवों के साथ-साथ अधिक परिपक्व होते जाते हैं।

प्रत्येक समाज के अपने कुछ लक्ष्य आदर्श एवं महत्वपूर्ण मापदंड होते हैं, जिसकी सहायता से व्यक्ति समाज की विशिष्ट वस्तुओं, घटनाओं और व्यक्तिगत व्यवहारों का मूल्यांकन करता है। इन्ही के द्वारा व्यक्ति नैतिक, अनैतिक, उचित एवं अनुचित आदि की व्याख्या करता है और उसी के अनुरूप अपना व्यवहार निश्चित करता है।

मूल्य का सम्बन्ध व्यक्ति की स्वाभाविक एवं जन्मजात प्रकृति से है जो सामाजिक अन्तः क्रिया और सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखता है।

प्रत्येक समाज एवं संस्कृति में प्रचलित मूल्यों के आधार पर ही व्यक्ति, समाज व सामूहिक जीवन से सामंजस्य स्थापित करता है।

इन मूल्यों को व्यक्ति सुझाव अनुकरण अदि प्रक्रियाओं द्वारा ग्रहण करता है।

इस प्रकार सामाजिक मूल्यों को सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण द्वारा, सुझाव अनुकरण आदि प्रक्रियाओं के आधार पर व्यक्ति, परिवार, पड़ोस, स्कूल अदि समूह में, अन्य व्यक्तियों के साथ अन्तः क्रिया करते हुये प्राप्त करता है। इस सम्बन्ध में परिवार का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि बालक परिवार में जन्म लेकर माता-पिता, परिवार अध्यापक, विद्यालय के अन्य सदस्यों द्वारा जीवन के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में उचित-अनुचित, अच्छे-बुरे मूल्यों को सीखता है। स्कूल में अध्यापको द्वारा बालक को जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बंधित मूल्यों का ज्ञान प्राप्त होता है जिन्हे बालक अध्यापको की प्रतिष्ठा के कारण स्वीकार करता है।

प्रभावती कुमारी (1997) ने व्यक्तित्व आवश्यकताएँ, नैतिक न्याय तथा मूल्यों की संरचना का माध्यमिक विद्यालय के अध्यापको का अध्ययन किया।

उनके अनुसार पुरुष अध्यापको ने सौंदर्यात्मक, राजनैतिक व सामाजिक मूल्यों में अधिक अंक प्राप्त किये। शहरी अध्यापिकाओं ने आर्थिक व सामाजिक मूल्यों को अधिक पसंद किया तथा ग्रामीण अध्यापिकाओं ने सौंदर्यात्मक व धार्मिक मूल्यों को अधिक पसंद किया।

आयु के अनुसार 45 से अधिक आयु के अध्यापको ने सामाजिक, धार्मिक व सौंदर्यात्मक मूल्यों को अधिक महत्व दिया। इन सभी मूल्यों का पारस्परिक सहसम्बन्ध था।

येन० यस० गोस्वामी (1963) श्री गोस्वामी ने गुजरात के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में मूल्यों का एक अध्ययन किया तथा निष्कर्ष निकला की उच्च प्राथमिक तथा अन्य विद्यालय के अध्यापको में सैद्धांतिक, सामाजिक व धार्मिक मूल्यों में अंतर है। उच्च प्राथमिक के अध्यापको ने इन मूल्यों में अधिक अंक प्राप्त किये।

राजनैतिक, सौंदर्यात्मक व आर्थिक मूल्यों में भी सार्थक अंतर पाया गया तथा उच्च माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापको के सापेक्ष में सामान्य विद्यालय के अध्यापको में ये मूल्य अधिक मान्य थे।

एच०येल० सिंह (1974) इन्होंने अध्यापको के मूल्यों अभिवृत्तियों तथा व्यावसायिक संतुष्टि के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया।

इसके अनुसार अध्यापको ने सैद्धांतिक एवं सामाजिक मूल्यों में अधिक अंक प्राप्त किये। अध्यापको की उम्र का मूल्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता केवल धार्मिक व राजनैतिक मूल्य ही उम्र के साथ बदलते हैं। विद्यालय के आकार का मूल्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इन अध्यापको के व्यावसायिक संतुष्टि के अंको व अभिवृत्तियों के अंको में सकारात्मक व सार्थक अंतर था।

काल (1974) ने लोकप्रिय अध्यापको के विभिन्न मूल्यों का अध्ययन किया तथा निष्कर्षतः पाया की -

- 1- लोकप्रिय अध्यापको में सैद्धांतिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक मूल्य अधिक पाए गये।
- 2- आर्थिक व सौंदर्यात्मक मूल्यों का महत्व कम था। उनकी लोकप्रियता का मुख्य कारण अधिक सैद्धांतिक मूल्य व सामाजिक मूल्य का होना पाया गया।

आर० पी० वर्मा (1972) ने अपने अध्ययन में पाया की प्रशिक्षण के फलस्वरूप अध्यापको ने सौंदर्यात्मक व धार्मिक मूल्यों में अपने प्राप्तांको में वृद्धि की।

1.2.0 अध्ययन के उद्देश्य

- 1- विद्यालयी शिक्षा में कार्यरत ग्रामीण परिवेश के शिक्षकों (अध्यापको व अध्यापिकाओं) के मूल्यों का अध्ययन।
- 2- विद्यालयी शिक्षा में कार्यरत शहरी परिवेश के शिक्षकों (अध्यापको व अध्यापिकाओं) के मूल्यों का अध्ययन।
- 3- विद्यालयी शिक्षा में कार्यरत ग्रामीण व शहरी परिवेश के शिक्षकों (अध्यापको व अध्यापिकाओं) के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन।

1.3.0 अध्ययन की परिकल्पना

विद्यालयी शिक्षा में कार्यरत ग्रामीण व शहरी परिवेश के शिक्षको (अध्यापक व अध्यापिकाओं) के मूल्यों (सैद्धांतिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य, एवं धार्मिक मूल्य) में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

1.4.0 न्यादर्श प्रारूप

शोधार्थी द्वारा महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्व विद्यालय बरेली उत्तर प्रदेश के परिक्षेत्र तथा उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद् इलाहाबाद (प्रयागराज) के परिक्षेत्र जिला रामपुर तहसील बिलासपुर उत्तर प्रदेश में अवस्थित ग्रामीण व शहरी क्षेत्र के मान्यता प्राप्त विद्यालयों में से 100-100 शिक्षकों का चयन स्तरीकृत यादृक्षिक न्यादर्श विधि से किया गया है।

1.5.0 अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा आंकड़ों को एकत्रित करने के लिए डॉ० (श्रीमती) हरभजन एल सिंह गुरु नानक पब्लिक स्कूल उदयपुर राजस्थान एवं डॉ०यस०पी०अहलूवालिया प्रो० हेड एंड डीन फैकल्टी ऑफ एजुकेशन यूनिवर्सिटी ऑफ सागर मध्य प्रदेश द्वारा निर्मित अध्यापक मूल्य परीक्षण का प्रयोग कर अध्यापको के मूल्यों का अध्ययन किया गया है।

1.6.0 सांख्यिकीय प्रविधियां

सांख्यिकीय प्राविधि के अंतर्गत शोधार्थी द्वारा मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात की गणना की गयी।

1.7.0 अध्ययन की उपलब्धियां

1.7.1 विद्यालयी शिक्षा में कार्यरत ग्रामीण व शहरी परिवेश के शिक्षकों के मूल्यों (सैद्धांतिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य, एवं धार्मिक मूल्य) का तुलनात्मक अध्ययन करना।

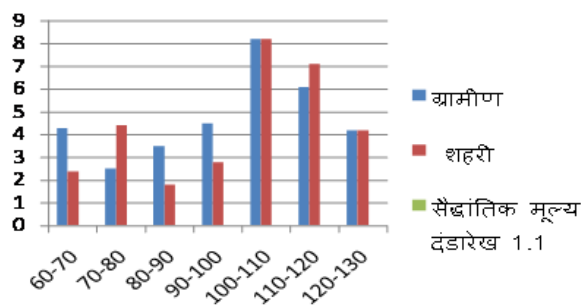
अध्यापक मूल्य सूची के प्रथम कारक 'सैद्धांतिक मूल्य' पर ग्रामीण व शहरी अध्यापकों के मध्यमान, मानकविचलन, आलोचनात्मक अनुपात, और सार्थकता के स्तर निम्न प्रकार है

तालिका 1.1

श्रेणी	मध्यमान	यस० डी०	सी० आर०	सार्थकता .05 व .01 के स्तर पर
1.ग्रामीण शिक्षक	90.25	13.81	.15	अंतर सार्थक नहीं है।
2 शहरी शिक्षकों	91.25	14.35		

उपरोक्त तालिका 1.1 से स्पष्ट है की अध्यापक मूल्य सूची के घटक 'सैद्धांतिक मूल्य' पर ग्रामीण व शहरी अध्यापक व अध्यापिकाओं के मध्यमान अंक का मान लगभग सामान है। मानकविचलन का मान भी दोनों के लिए लगभग सामान है। गणना द्वारा प्राप्त आलोचनात्मक अनुपात का मान 0.15 है 0.05 एवं 0.01 स्तर पर सी० आर० का सारणी मूल्य 2.58 व 1.96 से कम है है अर्थात ग्रामीण व शहरी अध्यापकों के सैद्धांतिक मूल्यों में कोई सार्थक अंतर नहीं है। जिसका दंडारेख निम्न है

दंडारेख 1.1



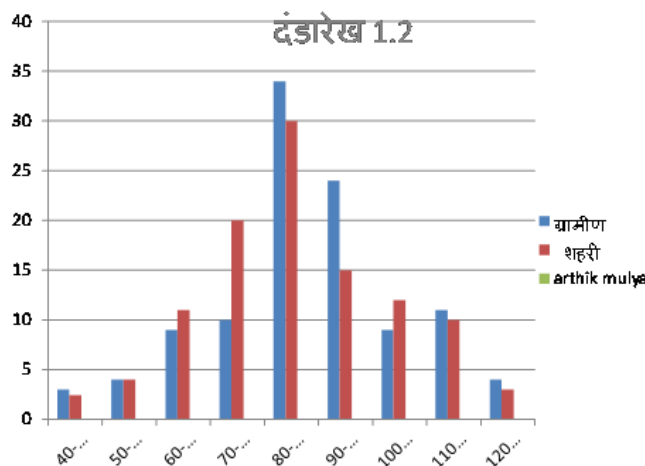
अध्यापक मूल्य सूची के दूसरे घटक आर्थिक मूल्य पर ग्रामीण व शहरी अध्यापकों के मध्यमान मानक विचलन, आलोचनात्मक अनुपात और सार्थकता के स्तर

तालिका 1.2

श्रेणी	मध्यमान	यस० डी०	सी० आर०	सार्थकता .05 व .01 के स्तर पर
1.ग्रामीण शिक्षक	88.09	15.99	0.72	अंतर सार्थक नहीं है।
2 शहरी शिक्षक	86.47	15.72		

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है की अध्यापक मूल्य सूची के दूसरे घटक आर्थिक मूल्य पर ग्रामीण व शहरी अध्यापक व अध्यापिकाओं के मध्यमान अंक का मान लगभग सामान है। मानक विचलन का मान भी दोनों के लिए लगभग सामान है। गणना द्वारा प्राप्त आलोचनात्मक अनुपात का मान 0.72 है .05 एवं 0.01 स्तर पर सी०आर० का सारणी मूल्य 2.58 व 1.96 से कम है अर्थात ग्रामीण व शहरी अध्यापको के आर्थिक मूल्य में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

दंडारेख 1.2



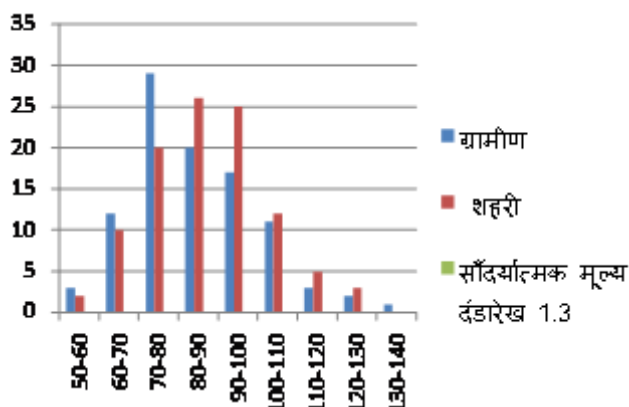
अध्यापक मूल्य सूची के तीसरे घटक “सौंदर्यात्मक मूल्य” पर ग्रामीण व शहरी अध्यापको के मध्यमान मानक विचलन, आलोचनात्मक अनुपात और सार्थकता के स्तर तालिका 1.3 में

तालिका 1.3

श्रेणी	मध्यमान	यस० डी०	सी० आर०	सार्थकता .05 व .01 के स्तर पर
1.ग्रामीण शिक्षक	85.08	16.27	0.64	अंतर सार्थक नहीं है।
2 शहरी शिक्षक	86.45	14.04		

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है की अध्यापक मूल्य सूची के तीसरे घटक ‘सौंदर्यात्मक मूल्य’ पर ग्रामीण व शहरी अध्यापक व अध्यापिकाओं के मध्यमान अंक का मान लगभग सामान है। मानक विचलन का मान भी दोनों के लिए लगभग सामान है। गणना द्वारा प्राप्त आलोचनात्मक अनुपात का मान 0.64 है 0.05 एवं 0.01 स्तर पर सी० आर० का सारणी मूल्य 2.58 व 1.96 से कम है अर्थात ग्रामीण व शहरी अध्यापको के सौंदर्यात्मक मूल्य में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

दंडारेख 1.3



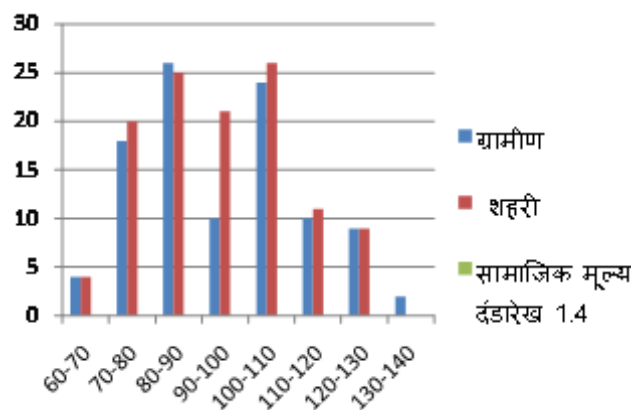
अध्यापक मूल्य सूची के चतुर्थ घटक 'सामाजिक मूल्य' पर ग्रामीण व शहरी अध्यापको के मध्यमान मानक विचलन, आलोचनात्मक अनुपात और सार्थकता के स्तर

तालिका 1.4

श्रेणी	मध्यमान	यस० डी०	सी० आर०	सार्थकता .05 व .01 के स्तर पर
1.ग्रामीण शिक्षक	92.28	15.25	0.17	अंतर सार्थक नहीं है।
2 शहरी शिक्षक	91.90	15.52		

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है की अध्यापक मूल्य सूची के चतुर्थ घटक 'सामाजिक मूल्य' पर ग्रामीण व शहरी अध्यापक व अध्यापिकाओं के मध्यमान अंक का मान लगभग सामान है। मानक विचलन का मान भी दोनों के लिए लगभग सामान है। गणना द्वारा प्राप्त आलोचनात्मक अनुपात का मान 0.17 है 0.05 एवं 0.01 स्तर पर सी०आर०का सारणी मूल्य 2.58 व 1.96 से कम है अर्थात ग्रामीण व शहरी अध्यापको के सामाजिक मूल्य में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

दंडारेख 1.4



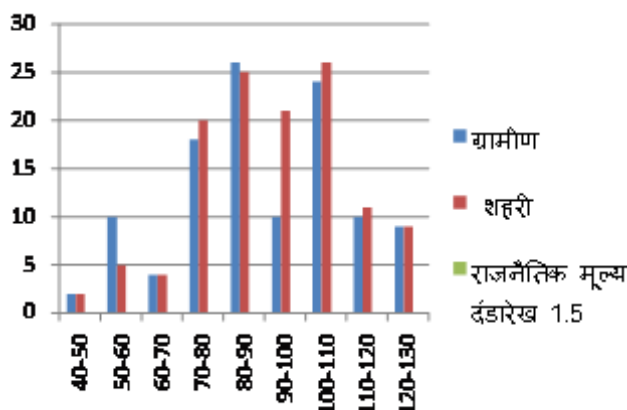
अध्यापक मूल्य सूची के पंचम घटक 'राजनैतिक मूल्य' पर ग्रामीण व शहरी अध्यापको के मध्यमान मानक विचलन, आलोचनात्मक अनुपात और सार्थकता के स्तर

तालिका 1.5

श्रेणी	मध्यमान	यस० डी०	सी० आर०	सार्थकता .05 व .01 के स्तर पर
1.ग्रामीण शिक्षक	81.48	14.90	0.20	अंतर सार्थक नहीं है।
2 शहरी शिक्षक	81.08	14.32		

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है की अध्यापक मूल्य सूची के पंचम घटक 'राजनैतिक मूल्य' पर ग्रामीण व शहरी अध्यापक व अध्यापिकाओं के मध्यमान अंक का मान लगभग सामान है। मानक विचलन का मान भी दोनों के लिए लगभग सामान है। गणना द्वारा प्राप्त आलोचनात्मक अनुपात का मान 0.20 है 0.05 एवं 0.01 स्तर पर सी० आर० का सारणी मूल्य 2.58 व 1.96 से कम है अर्थात ग्रामीण व शहरी अध्यापको के 'राजनैतिक मूल्य' में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

दंडारेख 1.5



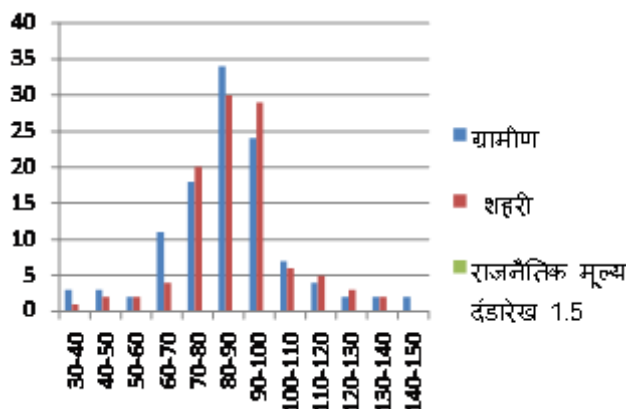
अध्यापक मूल्य सूची के षष्ठम घटक 'धार्मिक मूल्य' पर ग्रामीण व शहरी अध्यापको के मध्यमान मानक विचलन, आलोचनात्मक अनुपात और सार्थकता के स्तर

तालिका 1.6

श्रेणी	मध्यमान	यस० डी०	सी० आर०	सार्थकता .05 व .01 के स्तर पर
1.ग्रामीण शिक्षक	85.71	16.92	0.86	अंतर सार्थक नहीं है।
2 शहरी शिक्षक	87.63	14.93		

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है की अध्यापक मूल्य सूची के षष्ठम घटक 'धार्मिक मूल्य' पर ग्रामीण व शहरी अध्यापक व अध्यापिकाओं के मध्यमान अंक का मान लगभग 1.92 का अंतर है। मानक विचलन के मान में भी 2.49 का अंतर है। गणना द्वारा प्राप्त आलोचनात्मक अनुपात का मान 0.86 है 0.05 एवं 0.01 स्तर पर सी०आर० का सारणी मूल्य 2.58 व 1.96 से कम है अर्थात ग्रामीण व शहरी अध्यापको के षष्ठम घटक 'धार्मिक मूल्य' में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

दंडारेख 1.6



निष्कर्ष

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के अध्यापकों के किसी भी मूल्य में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया चाहे वह सैद्धांतिक मूल्य हो आर्थिक मूल्य हो, सौन्दर्यात्मक मूल्य हो, सामाजिक, राजनैतिक या धार्मिक मूल्य हो इसकी वजह अगर सोचा जाये तो यह बात समझ में आती है की शिक्षक एक उच्च मूल्य का व्यक्ति होता है उसका परिवेश (शहरी एवं ग्रामीण) से बहुत ज्यादा फर्क मूल्यों में नहीं पड़ता जिसका हम शोध में सामान्य डेटा से निकाल सके क्योंकि वह राष्ट्र निर्माता (कलाकार) भी होता है बातें बनाना भी जानता है आदर्शवादी बातें करके भी निकल जाता है और दूसरी बात अध्यापक ग्रामीण एवं शहर दोनों जगह शिक्षा ग्रहण किये होते हैं प्रशिक्षण प्राप्त कर व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करता और उच्च शिक्षित भी होते हैं इसलिए मूल्यों की अच्छी समझ रखते हैं और अच्छा सोचते हैं व्यवहार भी अच्छा करने लगते हैं यही वजह हो सकती है सार्थक अंतर न मिलने का। और आलोचन पत्र के संपादक महोदय से बात -चीत के पश्चात् यह महसूस हुआ की अगर नैतिक मूल्यों की तुलना की जाती तो जरूर अंतर निकलता जो मुझे भी ऐसा प्रतीत हुआ अगले शोध पेपर में नैतिक मूल्य को भी लेकर निष्कर्ष निकाला जायेगा इसमें क्योंकि नैतिक मूल्य के अतिरिक्त 6 मूल्य ही लेकर गड़ना की गयी जिसका निष्कर्ष मूल्यों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

1.8.0 सन्दर्भ सूची

1. वैल्यूज इन्वेन्ट्री नेशनल सायकोलॉजिकल कारपोरेशन आगरा (1981), पेज नं० 168-170
2. हरभजन एल०एवं अहलूवालिया यस०पी० “दी मैनुअल ऑफ टीचर वैल्यूज इन्वेन्ट्री ‘नेशनल सायकोलॉजिकल कारपोरेशन आगरा (1981), पेज नं० 224-226
3. येलहंस डी०येन० ‘फंडामेंटल ऑफ स्टेटिस्टिक्स’ किताब महल इलाहाबाद (प्रयागराज) 1969, पेज नं० 162-172
4. सुपर डी०इ० “अप्रिसिंग बोक्शेनल फिटनेस’ हार्पर एंड रॉ पब्लिशर्स न्यूयार्क, 1962, पेज नं० 221-225
5. कपिल एच०के० “सांख्यिकी के मूल तत्व” हरप्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशन आगरा, (1980), पेज नं० 90-93
- 6- <https://isseea.org.au/philosophy/human-values-education/>

वैदिक वाङ्मयः एक तथ्यात्मक विवेचन

डॉ० सुगन्धा जैन

तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

वैदिक-वाङ्मय विश्व-संस्कृति का मूल उत्स है। जिसने विश्व को राह दिखाने में अपना महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है। वैदिक-वाङ्मय न केवल हमारी समग्र संस्कृति का प्रेरणा स्रोत है वरन् उसका संरक्षक भी है। भारतीय संस्कृति का संपूर्ण इतिहास वैदिक वाङ्मय में निहित है। वैदिक-वाङ्मय ज्ञान का वह मानसरोवर है जहां से ज्ञान की विमल धाराएं विभिन्न मार्गों से प्रवाहित होते हुए भारत ही नहीं वरन् संपूर्ण जगत की मिट्टी को उर्वरा बनाती हैं। यह आर्यों के ही नहीं प्रत्येक मानव जाति के सर्व प्राचीन ग्रंथ हैं। वैदिक वाङ्मय की श्रेष्ठता का महान आदर्श नारी सम्मान है। जिसके प्रमाण यत्र-तत्र प्रकीर्ण हैं। वैदिक-वाङ्मय की विशेषताओं के अनेक आधार हैं यथा उसका सर्वाधिक प्राचीन होना, जीवन क्षमता, आध्यात्मिकता, त्याग, तप, मानव मूल्य, आशावाद, पुनर्जन्मवाद, विश्व-कल्याण, विश्व-बंधुत्व की भावना, साम्यवाद, समन्वयवाद, सहिष्णुता, सर्वांगीणता आदि। आज विश्व इस बात को माने या न माने किन्तु विन्टरनिट्ज कहते हैं कि “यदि हम अपनी संस्कृति के विकास का अध्ययन करना चाहते हैं तो हमें भारत जाना चाहिए जहाँ भारोपीय समुदाय का प्राचीनतम साहित्य सुरक्षित है”।

अपने प्राति भक्षु के सहारे साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों द्वारा अनुभूत अध्यात्म-शास्त्र के संपूर्ण तत्त्वों की विशाल-विमलराशि का नाम ही वेद है। वेदवह ज्ञान ज्योति हैं जिन की प्रशंसा करते स्मृति, पुराण, शास्त्र आदि भी नहीं थकते।

‘वेद’ शब्द ‘विद्-ज्ञाने’ धातु से घञ् प्रत्यय करके बना है। अतः ज्ञान का विषय, ज्ञेय-पदार्थ एवं ज्ञान के साधन यह तीनों ही ‘वेद’ के वाच्य कहे जा सकते हैं।

महर्षि पाणिनि ने तो वेद शब्द में चार धातुओं का प्रयोग करते हुए ‘वेद’ शब्द की निष्पत्ति की है-

1. विद् ज्ञाने
2. विद् सत्तायाम
3. विद् लाभे एवं
4. विद् विचारणे।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने ऋग्वेद भाष्य भूमिका में वेद का विवेचन करते हुए कहा है कि, - जिनसे सब मनुष्य सत्य-विद्या को जानते हैं अथवा प्राप्त करते हैं या विचारते हैं अथवा विद्वान् होते हैं अथवा सत्य विद्या की प्राप्ति के लिए जिनमें प्रवृत्त होते हैं, वह ‘वेद’ हैं।

वेद संख्या में चार हैं-

1. ऋग्वेद
2. यजुर्वेद
3. सामवेद तथा
4. अथर्ववेद

ऋग्वेद

ऋग्वेद स्वरूप में सबसे बड़ा एवं प्राचीन है। सभी वेदों में इसको सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। ऋग्वेद के अनेक मंत्र अन्य वेदों में भी प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में अष्टकक्रम के अनुसार 8 अष्टक, 64 अध्याय तथा 2006 वर्ग हैं। इसमें ऋचाओं के समुदाय की संज्ञा वर्ग है। मंडलक्रम के अनुसार इसमें 10 मंडल हैं, जिसके आधार पर इसे दशतयी भी कहा जाता है। इसके प्रत्येक मंडल में अनुवाक हैं और अनुवाकों में सूक्त हैं, सूक्त में ऋचाएँ समाहित हैं। इन ऋचाओं को ही मंत्र कहते हैं। ऋग्वेद के 10 मंडलों पर 85 अनुवाक, 1028 सूक्त एवं 10580, 1/4 मंत्र है। पतंजलि के अनुसार ऋग्वेद की 21 शाखाएँ हैं। वर्तमान में केवल 5 ही उपलब्ध हैं। 1. शाकल, 2. वाष्कल, 3. आश्वलायन, 4. माण्डूकायन और 5. शांखायनशाखा।

ऋग्वेदीय ब्राह्मण -

ऋग्वेद पर मात्र दो ब्राह्मण-ग्रन्थ मिलते हैं। जिसमें शाकल-शाखा का ऐतरेय-ब्राह्मण तथा वाष्कल-शाखा का शांखायन-ब्राह्मण उपलब्ध है।

ऐतरेय-ब्राह्मण में 8 पंचक, 5-5 अध्यायों में विभक्त हैं। इस प्रकार कुल 40 अध्याय 285 कण्डिकाओं में विभक्त हैं। इसके प्रवक्ता महिदास ऐतरेय थे। जो इतरदासी के पुत्र थे। इस ब्राह्मण में राजा हरिश्चंद्र तथा शुनःशेष का आख्यान भी उपलब्ध होता है।

शांखायन-ब्राह्मण 30 अध्याय, तथा 226 खंडों में विभक्त है। इसमें तत्कालीन धार्मिक दशा के साथ-साथ याज्ञिक कर्मकाण्डों का भी रमणीय निरूपण प्राप्त होता है। विषय की दृष्टि से यह ऐतरेय का ही अनुगामी सिद्ध होता है।

ऋग्वेदीय आरण्यक-

1. ऐतरेय-आरण्यक-ऋग्वेद के आरण्यकों में यह अन्यतम है। जो ऐतरेय-ब्राह्मण का ही परिशिष्ट भाग है। इसमें कुल 5 आरण्यक हैं। इसके अध्यायों की संख्या 18 है तथा प्रत्येक अध्याय खंडों में विभक्त है।
2. शांखायन-आरण्यक - इस आरण्यकमें कुल 15 अध्याय हैं और 137 खण्ड है, जो महाव्रत आदि ऐतरेय में प्रोक्त है। वही कर्तव्य इसमें भी बताए गए हैं। कौषीतकि उपनिषद् इसी आरण्यक के तीसरे अध्याय से प्रारंभ होता है।

ऋग्वेदीय-उपनिषद्-

ऐतरेयोपनिषद्- ऐतरेय आरण्यक का चतुर्थ से षष्ठ अध्याय तक का भाग ऐतरेय उपनिषद् कहलाता है। इसके 3 अध्याय हैं। द्वितीय तथा तृतीय अध्याय के एक-एक खंड है, प्रथम अध्याय के 2 खंड हैं। इसमें चराचर जगत् की सृष्टि आत्मा से ही मानी गई है।²

कौषीतकि उपनिषद्- इस उपनिषद् में चार अध्याय हैं। जिनमें प्रथम में देवयान तथा पितृयान का विस्तृत वर्णन है, द्वितीय तथा तृतीय में विशुद्ध दार्शनिक सिद्धांतों का वर्णन है एवं चतुर्थ में बालाकि और आज्ञातशत्रु के आख्यान की पुनरावृत्ति की गई है। इसे कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् भी कहते हैं। इसके उपदेष्टा कुषीतक ऋषि हैं।

ऋग्वेदीय सूत्र-साहित्य-

ऋग्वेद पर आश्वलायन, कौषीतकि श्रौतसूत्र, आश्वलायन, कौषीतकि, शाम्बव्य गृह्यसूत्र तथा वशिष्ठ धर्मसूत्र प्राप्त होता है। इस वेद पर कोई भी शुल्बसूत्र उपलब्ध नहीं है। ऋग्वेदपरपाणिनीय शिक्षा एवं ऋक्संप्रतिशाख्य शिक्षा-ग्रंथ उपलब्ध हैं।

यजुर्वेद:-

गद्यात्मकोयजुः अर्थात् गद्य में रचे गए मंत्रों को यजुष्कहते हैं। यजुषों का वेद होने के कारण ही यह यजुर्वेद कहलाता है। यजुर्वेद को अध्वर्युवेद भी कहते हैं। मुख्य रूप से यजुर्वेद वैदिक कर्मकांड के लिए प्रतिपादित है। यजुर्वेद के दो प्रधान रूप हैं- शुक्ल-यजुर्वेद एवं कृष्ण-यजुर्वेद। शुक्ल-यजुर्वेद आदित्य संप्रदाय का प्रतिनिधि तथा कृष्ण-यजुर्वेद ब्रह्म संप्रदाय का प्रतिनिधि है। शुक्ल-यजुर्वेद को वाजसनेयि संहिता के नाम से भी जाना जाता है।

शुक्ल-यजुर्वेद - इसकी, 1. माध्यन्दिन (वाजसनेयि संहिता) और 2. काण्व, दो शाखाएं हैं।

कृष्ण-यजुर्वेद - इसकी 4 शाखाएं हैं-

1. कठ शाखा,
2. कपिष्ठल शाखा,
3. मैत्रायणी शाखा एवं
4. तैत्तिरीय शाखा।

इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण यजुर्वेद की माध्यन्दिन (वाजसनेयि संहिता) है। जिसमें 40 अध्याय, 303 अनुवाक, 1975 मंत्र हैं। ईशावास्योपनिषद् किसी शाखा का 40 वां अध्याय है। यजुर्वेद की काण्व शाखा में 40 अध्याय, 328 अनुवाक और 2086 मंत्र हैं।

यजुर्वेदीय ब्राह्मण -

शतपथ-ब्राह्मण- शुक्ल-यजुर्वेद की दोनों शाखाओं माध्यन्दिन (वाजसनेयि संहिता) और काण्व, पर शतपथ-ब्राह्मण उपलब्ध होता है। दोनों ही शाखाओं के ब्राह्मण का नाम शतपथ है। 100 अध्याय होने के कारण इसका नाम शतपथ पड़ा है। माध्यन्दिन-शाखा के शतपथ-ब्राह्मण में 14 कांड, 100 अध्याय, 438 ब्राह्मण तथा 7624 कण्डिकाएँ पाई जाती हैं। इसमें 68 प्रपाठक भी हैं जो कि काण्व शतपथ में नहीं हैं। काण्व शाखा के शतपथ ब्राह्मण में 17 काण्ड, 104 अध्याय, 435 ब्राह्मण और 6806 कण्डिकाएँ हैं। वैदिक सभ्यता में यद्यपि ऋग्वेद अति महत्वपूर्ण है तथापि ब्राह्मण ग्रंथों में आकार व प्रतपाद्य की दृष्टि से शतपथ ब्राह्मण अत्यधिक महत्व रखता है, याज्ञिक कर्मकांड, ऐतिहासिक सामग्री तथा पौराणिक आख्यान में मत्स्यावतार द्वारा मनु की रक्षा इसी में उपलब्ध है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण-कृष्ण यजुर्वेद का ब्राह्मण तैत्तिरीय ब्राह्मण के नाम से जाना जाता है। इसमें तीन कांड हैं जो 28 प्रपाठकों तथा 308 अनुवाकों में विभक्त हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में गवामयन, बाजपेय, राजसूय आदि यज्ञों की विधि एवं कर्मकांड का विशद विवेचन प्राप्त होता है।

यजुर्वेदीय-आरण्यक-

जंगल में रहकर यज्ञों के रहस्य को प्रतिपादन करने वाले आरण्यकग्रंथ ब्राह्मण ग्रंथों का ही अंश हैं, लेकिन विशिष्टता के कारण इन्हें रहस्य ब्राह्मण भी कहते हैं³

1. बृहदारण्यक- बृहदारण्यक माध्यन्दिन में 6 अध्याय हैं तथा 44 अवांतर ब्राह्मण हैं। तथा ये खंड अथवा कंडिका में विभक्त है लेकिन बृहदारण्यक-काव्य में 6 अध्याय और 47 ब्राह्मण है तथा माध्यन्दिन से इसका अंतर कुछ पाठ भेद के रूप में प्राप्त होता है। इस आरण्यक में संन्यास का स्पष्ट विधान मिलता है⁴

2. तैत्तिरीय आरण्यक- इस आरण्यक में कुल 10 प्रपाठक है तथा 170 अनुवाक हैं। इस आरण्यक में व्यास और वैशंपायन का नाम प्राप्त होता है।
3. मैत्रायणी आरण्यक- इस आरण्यक में कुल 10 प्रपाठक है तथा 73 खंड है यह वर्तमान में मंत्री उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है। इस आरण्यक में आर्यवर्त के प्राचीनतम अनेक चक्रवर्ती राजाओं का विवरण भी प्राप्त होता है।

यजुर्वेदीय उपनिषद्- (क) शुक्ल यजुर्वेदीय

1. बृहदारण्यक उपनिषद् - यह दोनों शाखाओं पर आधारित है। दोनों संहिताओं के ब्राह्मण में आरण्यक एवं उपनिषद् संयुक्त रूप से मिले हुए हैं। दोनों के अंतिम 6 अध्याय बृहदारण्यक अथवा बृहदारण्यकोपनिषद् कहलाते हैं। आरण्यक की उपेक्षा इसमें उपनिषद् का भाग अत्यधिक है। 6 अध्यायों में दो दो अध्यायों के 3-3 कांड हैं, जिन्हें मधु याज्ञवल्क्य एवं खिलकांड कहा जाता है। इसके प्रधान प्रवक्ता महर्षि याज्ञवल्क्य हैं जिनके अनेक संवाद इस उपनिषद् में संकलित हैं।
2. ईशावास्योपनिषद्-माध्यन्दिन संहिता का अंतिम 40 वां अध्याय ईशावास्योपनिषद् के नाम से जाना जाता है। इसमें 18 मंत्र हैं तथा इसमें कर्म सिद्धांत की महिमा एवं व्यवहारिक जीवन निर्वाह का वर्णन बताया गया है। आत्मा का स्वरूप विद्या एवं अविद्या का सुंदर समन्वय यहां पर प्रस्तुत किया गया है।

कृष्ण यजुर्वेदीय उपनिषद्-

3. तैत्तिरीय उपनिषद् -तैत्तिरीय आरण्यक के सात से नवें खंड तक का भाग-तैत्तिरीय उपनिषद् के नाम से जाना जाता है। सप्तम प्रपाठक को शिक्षावल्ली, अष्टम को ब्रह्मानंदवल्ली तथा नवम को भृगुवल्ली कहते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में जहां ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन है वही गुरु और शिष्य के पारस्परिक व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले आदर्शों का भी रमणीय चित्रण किया गया है।
4. कठोपनिषद् - कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा से संबंधित कठोपनिषद् 2 अध्याय और 6 वल्लियों में विभक्त है, जिसमें यम नचिकेता को ब्रह्म का उपदेश देते हैं। इसमें स्वर्गीय ऐश्वर्यों की नश्वरता, श्रेय और प्रेय मार्ग का वर्णन किया गया है।⁶ इसमें यम द्वारा अजन्मा, अविनाशी, आत्म-तत्त्व का विवेचन किया गया है। यह उपनिषद् प्रायः अध्यात्मिक एवं पद्यात्मक है।
5. श्वेताश्वतरोपनिषद् - श्वेताश्वतर ब्राह्मण का एक भाग श्वेताश्वतरोपनिषद् कहलाता है। इस उपनिषद् में भी 6 अध्याय हैं। यह उपनिषद् शैव धर्म के गौरव का प्रतिपादन करता है। इसके दूसरे अध्याय में योग का, तीसरे से पंचम तक सांख्य सिद्धांतों का तथा अन्तिम अध्याय में गुरु भक्ति के सार तत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् एक मात्र ऐसी कृति है जो किसी एक विद्वान की संरचना के रूप में वर्णित है। वह विद्वान स्वयं श्वेताश्वतर ही हैं। सांख्य तथा वेदांत के उदय काल के सिद्धांतों की जानकारी के लिए यह उपनिषद् अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

यजुर्वेदीय सूत्र साहित्य-

यजुर्वेदीय सूत्र साहित्य में शुक्ल यजुर्वेद पर वाराह, कात्यायन, खादिर, लाट्यायन, द्राह्यायण, श्रौतसूत्र तथा कृष्ण यजुर्वेद पर आपस्तम्ब, बोधायन, हिरण्यकेशी, भारद्वाज, वैखानस एवं मानव श्रौतसूत्र प्राप्त होते हैं। शुक्लयजुर्वेद पर कात्यायन तथा कृष्ण यजुर्वेद पर आपस्तम्ब, बोधायन, सत्यासाढ़, वैखानस तथा कठगृह्य सूत्र प्राप्त होते हैं। धर्म सूत्रों में शुक्ल एवं कृष्ण यजुर्वेद से संबंधित कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता। शुल्बसूत्र में कृष्ण यजुर्वेद पर छःबोधायन, आपस्तम्ब, मानव, मैत्रायणी, वाराह एवं बाधूल तथा शुक्ल यजुर्वेद पर एक कात्यायन शुल्बसूत्र प्राप्त होता है। शिक्षा ग्रंथों में यजुर्वेद पर वाजसनेयी तथा कृष्ण यजुर्वेद पर तैत्तिरीय प्रातिशाख्य प्राप्त होता है।

सामवेद

‘रीतिषुसमाख्या’ इस जैमिनीय सूत्र के अनुसार शगीतीश को शसामश की संज्ञा प्रदान की गई है। ‘सा’ शब्द का अर्थ है ‘ऋक्’ और ‘अम’ का अर्थ है ‘गांधार’ आदि स्वर।⁷ अतः ‘साम’ शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ होता है ‘ऋक्’ के साथ संबंध स्वर-प्रधान गायन।⁸ जो पुरुष ‘साम’ को जानता है, वही वेद के रहस्य को जानता है। गीता में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण सामवेद को अपना ही स्वरूप बतलाया है -

‘वेदानांसामवेदोस्मि’

छांदोग्य के अनुसार उदगीथ⁹ संपूर्ण ‘साम’ का सार है उदगीथ ओमकार का ही दूसरा नाम है। अतः ओमकार का सब वेदों में भगवद् रूप होने से तात्पर्य सामवेद की महत्ता से है। सामवेद की 3 शाखाएं उपलब्ध हैं-

1. कौथुम
2. राणायनीय तथा
3. जैमिनीय

सामवेद के दो भाग प्रचलित हैं पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक। जिनकी समवेतमन्त्र-संख्या 1896 है। सामवेद के मंत्रों की संख्या मात्र 75 है।

सामवेदीय ब्राह्मण

सामवेदीय ब्राह्मणों की संख्या 9 हैं। जिनका उल्लेख सायण ने इस प्रकार किया है-

1. ताण्ड्य ब्राह्मण
2. पंचविंश ब्राह्मण
3. षडविंश ब्राह्मण

4. सामविधान ब्राह्मण
5. आर्षेय ब्राह्मण
6. देवताध्याय ब्राह्मण
7. उपनिषद् ब्राह्मण
8. संहितोपनिषद् ब्राह्मण तथा
9. वंश ब्राह्मण

किंतु सामवेद पर उपलब्ध ब्राह्मण तीन ही है-ताण्ड्य, षडविंश, तथा जैमिनीय ब्राह्मण।

सामवेदीय आरण्यक ग्रंथ

तवल्लकार आरण्यक-सामवेद से संबंध मात्र तवल्लकार आरण्यकही उपलब्ध होता है। इस आरण्यकका एक और नाम जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण भी है। संपूर्ण ग्रंथ चार अध्याय में और चार अध्याय 154 खंडों में विभक्त हैं। चतुर्थ अध्याय के दशम अनुवाक में प्रसिद्ध तवल्लकार या केनोपनिषद् है।

सामवेदीय उपनिषद्

1. छांदोग्य उपनिषद्-सामवेदीयकौथुम ब्राह्मण के अंतिम 8 अध्याय छांदोग्य उपनिषद् के नाम से जाने जाते हैं। यह 8 प्रपाठक क्रमशः 13,24,19,17,24,16,26 और 15 खंडों में विभक्त है। आरंभ के 2 अध्यायों में सूर्य का वर्णन मधुमक्खियों के रूप में, तीसरे अध्याय में सूर्य का वर्णन वर्णित है। यह उपासना की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण।
2. केनोपनिषद्- इसे तवल्लकार तथा ब्राह्मणोपनिषद् भी कहते हैं। ईषोपनिषद् के समान ही केन शब्द से आरंभ होने के कारण इसका नाम केनोपनिषद् पड़ा है। यह उपनिषद् जैमिनीयतवल्लकार ब्राह्मण का ही नवम अध्याय है। इसके चार खंड हैं जिनमें से 2 गद्यात्मक एवं पद्यात्मक है।

सामवेदीय सूत्र साहित्य

सामवेद पर खादिर, गोभिल, गौतम गृह्यसूत्र तथा गौतम धर्मसूत्र प्राप्त होता है।

अथर्ववेद

‘अथर्व’ शब्द की व्याख्या तथा निर्वाचन निरुक्त¹⁰ में तथा गोपथ ब्राह्मण¹¹ में मिलता है। ‘अथर्व’ शब्द का अर्थ है और अकुटिलता तथा अहिंसा वृत्ति से मन की स्थिरता प्राप्त करने वाला व्यक्ति।¹² ऋग्वेद आदि तीनों वेदआमुष्मिक फल देने वाले हैं जबकि अथर्ववेद ऐहिक फल देने वाला भी है। यज्ञ के पूर्ण निष्पादन के निमित्त जिन चार ऋत्विजों की आवश्यकता होती है, उनमें से अन्यतमऋत्विज ब्रह्मा का साक्षात् संबंध अथर्ववेद से ही है। अथर्ववेद की दो शाखाएं उपलब्ध हैं- 1. शौनक शाखा एवं 2. पिप्पलादशाखा। इनमें शौनक शाखा ही अधिक प्रचलित एवं प्रामाणिक है। तथा सायण आदि पर इसी का प्रभाव है। अथर्ववेद में कुल 20 अध्याय 731 सूक्त तथा मंत्रों की संख्या लगभग 6000 है इसमें भी अधिकांश मंत्र ऋग्वेद से लिए गए हैं।

अथर्ववेदीय ब्राह्मण

अथर्ववेद पर एक ही ब्राह्मण उपलब्ध है। जिसका नाम गोपथ ब्राह्मण है। इसके दो काण्ड हैं पूर्व गोपथ तथा उत्तर गोपथ। पूर्व गोपथ में 5 प्रपाठक तथा उत्तर में छः प्रपाठक हैं। कुल 11 प्रपाठक 258 कण्डिकाओं में विभक्त हैं। अग्निष्टोम, अश्वमेध, संवत्सर आदि याज्ञिक विधि-विधान तथा तत्संबंधी आख्यान के अतिरिक्त इस ब्राह्मण में ओमकार और गायत्री मंत्र की महिमा भी दर्शनीय है।

अथर्ववेदीय आरण्यक- अथर्ववेद पर कोई आरण्यक उपलब्ध नहीं है।

अथर्ववेदीय उपनिषद्

प्रश्नोपनिषद्- अथर्ववेद की पैप्लाद शाखा के ब्राह्मण ग्रंथ का एक भाग प्रश्नोपनिषद् के नाम से जाना जाता है। ऋषि ब्रह्म विद्या की खोज में महर्षि पिप्पलाद के समीप जाते हैं और उनसे अध्यात्मपरक प्रश्नों का उत्तर पूछते हैं। इसी कारण इसका नाम प्रश्नोपनिषद् पड़ा है। इन प्रश्नों में प्रजा की उत्पत्ति, प्रजा की धारण करने वाली शक्ति, प्राण-उत्पत्ति, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति का रहस्य, ओंकार की उपासना तथा उनसे लोकों की विजय, षोडशकला संपन्न पुरुष की विवेचना आदि पर विचार प्रस्तुत किया गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह उपनिषद् अत्यधिक सूक्ष्म एवं श्रेयस्कर है। यह उपनिषद् गत्यात्मक शैली में निबद्ध है।

मांडूक्योपनिषद् - परिमाण की दृष्टि से यह लघु है। इसमें 12 मंत्र हैं। ओंकार की महिमा को समस्त विश्व में स्थित होने के विषय को वर्णित किया गया है।

अथर्ववेदीयसूत्र साहित्य

अथर्ववेद पर एकमात्र वैतान श्रौतसूत्र तथा कौशिक गृह्यसूत्र का वर्णन है। जिसमें एकमात्र कौशिक गृह्यसूत्र उपलब्ध है जो कि 14 अध्यायों में विभक्त है। जिसके ऊपर केशव और हरित की व्याख्या प्राप्त होती है।

वैदिकवांग्मय की विशेषताएं

वैदिक वांग्मय सर्वप्राचीन, संपूर्णता को धारण करने वाला, विश्व के इतिहास का प्रथम प्रमाण, संपूर्ण मानव जाति के प्रमुख लक्ष्य पुरुषार्थ प्राप्ति, मोक्ष प्राप्ति, सत्य का दिग्दर्शक आदि विभिन्न विशेषताओं से युक्त है। उसकी विशेषताओं को कुछ शब्दों में समाहित करना मूर्खता है। वैदिक वांग्मय वह कड़ी

है, वह नींव है जिसके आधार पर यह संसार प्रत्येक क्षेत्र में अपनी प्रगति के प्रतिमान स्थापित करता है, जिसके ज्ञान सूर्य का अवलंब लेकर संपूर्ण विश्व आलोक को प्राप्त करता है, जिससे संसार के सभी मत-मतान्तर प्रारंभ होते हैं। इस साहित्य के विशाल चार स्तंभ वेद स्वतः प्रमाण्य हैं। सृष्टि में जो कुछ भी है उसके ज्ञान का प्रमाण वेदों में ढूँढा जाता है। ब्रह्म क्या है? जीव क्या है? सृष्टि क्या है? समय चक्र क्या है? ज्ञान क्या है? शक्ति क्या है? दर्शन क्या है? इस सृष्टि की उत्पत्ति का रहस्य क्या है? किस प्रकार जीव ब्रह्म में मिलता है? हमारी भाषा क्या है? संस्कृति क्या है? कलायें क्या हैं? विद्याएँ क्या हैं? सभी प्रश्नों के उत्तर यदि कहीं हैं तो वैदिक वांग्मय में, क्योंकि संपूर्ण सृष्टि का जो आदि साहित्य है वह वैदिक वांग्मय है। तथापि कुछ बिंदुओं के द्वारा वैदिक वांग्मय की विशिष्टता पर विहंगम दृष्टि डाली जा सकती है।

वैदिक वांग्मय की पहली विशेषता उसका अपौरुषय होना है, जो उसके किसी देश विशेष के लिए नहो कर सार्व भौम होने का परिचायक है। वैदिक वांग्मय संपूर्ण संसार के कल्याणार्थ प्रकाशित हुआ है, यह निश्चित है। वैदिक वांग्मय की दूसरी विशेषता उसका पर ब्रह्म से साक्षात् संबंध है। वैदिक वांग्मय मानव को सीधे ब्रह्म से जोड़ने की राह दिखाता है अतः वह कहता है 'तमेवविदित्वाति मृत्युमे तिनान्यः पन्था विद्यतेयनाय' अर्थात् संसार में मनुष्य उस पर ब्रह्म परमात्म को जानकर ही मृत्यु के भय से बच सकता है, अन्य किसी के द्वारा नहीं। इससे सिद्ध होता है कि किसी पीर, पैगंबर, साधु, संत, महात्मा आदि की सिफारिश से व्यक्ति कल्याण की प्राप्ति नहीं कर सकता उसे अपने कल्याण के लिए स्वयं ब्रह्म से जुड़ना होगा। सम्पूर्ण वैदिक वांग्मय मातृ वतप्रेममयी, पितृवतरक्षक, देववत कल्याणकारी और प्रकृति वतपोषणकारी है। अतः वेद कहते हैं -

“त्वंहिनः पितावसो, त्वमाताचशतप्रतिशतबभूविथ, अथातोसुम्नमीमहे”

अर्थात् हे प्रभु आप हमारे सच्चे पिता और आपही हमारा कल्याण करने वाली माता हैं, हम आपकी शरण में आते हैं।

वैदिक वांग्मय की तीसरी विशेषता उसके नकद धर्म की शिक्षा है वेद कहते हैं कि जो व्यक्ति जैसा करेगा उसको वैसा ही फल भोगना पड़ेगा -

“अनुलनं निहितं पात्र मे तत्पत्तारंपक्वः पुनराविशातिष अर्थात् तमनुष्य के कर्मों का पात्र उसके सामने रखा है इसमें किसी प्रकार की न्यूनता- अधिकता नहीं, किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं। वैदिक वांग्मय में जो कुछ भी कहा गया है वह अंधानुकरणया अंधविश्वास नहीं है उसमें तर्क, बुद्धि, विवेक, प्रेरणा, रहस्य, गूढ़ता, कल्याण तथा ब्रह्मज्ञान निहित है। जो इसकी अप्रतिम विशेषता है। वैदिक वांग्मयमानव को, उसके व्यक्तित्व कोस वांणीण बनाने की संपूर्ण शक्ति प्रदान करने की शिक्षा प्रदान करता है। वैदिक वांग्मय स्वतः प्रमाण्य है उसकी भाषा देववाणी है अतः संपूर्ण साहित्य भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत है। उसमें मुख्यतः ईश्वर के लिए भिन्न भिन्न अवसरों के अनुकूल प्रार्थनाएँ, सृष्टि के नियम, मनुष्य को मानव जीवन के उपदेशों के प्रति संदेश आदि निहित हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. ऋग्वेद
2. यजुर्वेद
3. सामवेद
4. अथर्ववेद
5. वैदिक संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
6. वैदिक संस्कृति
7. वैदिक अनुशीलन

फुटनोट

- 1 ऋग्वेद भाष्य भूमिका स्वामी दयानंद सरस्वती
- 2 ऐतरेय उपनिषद् 1/1/ - 2
- 3 बोधायन धर्मसूत्र - 3/7/7 / 16
- 4 किं प्रश्रया करिष्यामि येषां नो परमात्मा यं लोक इति ते हस्मि पुत्र्यर्ण्यायाश्च चित्तैषणीयाश्च लोकेषणायाश्च व्युत्थाय भिक्षाचर्यचरन्तिः। - वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पृष्ठ 238.
- 5 वैदिक वांग्मय - पृष्ठ 238
- 6 कठोपनिषद् - 1/2/1-2
- 7 सा चामश्चेति तत्साम्नः सामत्वम् - बृ०उ० 1/3/22.
- 8 तथा सह सम्बद्ध अमो नाम स्वरः यत्र वर्तते तत्साम ।
- 9 “सामने उद्गीथो रसः” ।
- 10 निरुक्त- 11/2/17
- 11 गोपथ ब्राह्मण -1/4
- 12 वैदिक साहित्य और संस्कृति - पृष्ठ 166 बलदेव उपाध्याय

उद्योगों का स्तर: कार्यक्षमता पर प्रभाव

डॉ० रोमी अरोड़ा

सह-प्राध्यापक, एस. आर. सरकार महाविद्यालय, अमृतसर-143001

भारत एक विकासशील देश है। इस तरह के सभी देशों और प्रांतों के लिए उद्योगों की अपनी अलग ही महत्ता है। उद्योग न केवल रोजगार प्रदान करने में मदद करते हैं अपितु वो देश के सर्वपक्षीय विकास में भी बहुत बड़ा योगदान देते हैं। जनसंख्या अधिक होने के कारण भारत के अंदर बेरोजगारी भी बहुत ऊँचे स्तर की है जिस को काबू पाना सरकार के बस की बात नहीं लग रही। एक क्लर्क का पद रिक्त होता है तो उसके आवेदन में लाखों की गिनती में लोग हाजिर हो जाते हैं। इस बात से स्पष्ट है कि उद्योगीकरण आज के समय की बहुत बड़ी मांग है। उद्योगीकरण के लिए सब से पहले आधारभूत संरचना की जरूरत होती है और इस बात की योजना भी अति आवश्यक है कि किस स्तर के उद्योग की स्थापना की जाए।

उद्योग का स्तर इस बात पर निर्भर करता है कि उसमें कितनी पूंजी का निवेश किया गया है और उसके अंदर कितने लोगों को रोजगार मिल रहा है। इसके इलावा उसकी कितनी उत्पादकता है। उद्योगों के विभिन्न आकार हो सकते हैं।

1. **छोटे स्तर के उद्योग:-** वो सारे उद्योग जो थोड़े से लोग मिल कर लगा सकते हैं और उसमें कुछ लोगों को ही रोजगार मिल सकता है, वो सारे उद्योग छोटे स्तर के उद्योग कहलाते हैं। परन्तु भारतीय सरकार ने अपनी छोटे उद्योगों की नीति जो कि 1991 में बनी थी उसमें 2006 वर्ष के अंदर कुछ महत्वपूर्ण शोध किए गए हैं।

उद्योग	निवेश
1. माइक्रो उद्योग	25 लाख तक निवेश
2. छोटे स्तर के उद्योग	25 लाख से 50 करोड़ तक निवेश
3. मध्यम स्तर के उद्योग	5 करोड़ से 10 करोड़ तक निवेश
प्रदत्त सेवा	निवेश
1. माइक्रो	10 लाख
2. छोटा स्तर	10 लाख से 2 करोड़
3. मध्यम स्तर	2 करोड़ से 5 करोड़

2. **मध्यम स्तर के उद्योग:-** मध्यम स्तर के उद्योगों में न तो कुल ज्यादा पूंजी का निवेश होता है और न ही बहुत ज्यादा लोगों को रोजगार मिलता है। उदाहरण के तौर पर रेडियो, टेलीविजन बनाने के उद्योग और साईकल बनाने के उद्योग इत्यादि।
3. **बड़े स्तर के उद्योग:-** जिन उद्योगों में बहुत ज्यादा लोगो को रोजगार मिल रहा हो और पूंजी निवेश भी अधिक हो उनको बड़े स्तर के उद्योग माना जाता है। जैसे कि कपड़ा बनाने के उद्योग आदि।

बड़े और छोटे उद्योगों में अंतर

1. **पूंजी निवेश:-** बड़े उद्योगों में निवेश पांच करोड़ है और छोटे उद्योगों में निवेश 1 करोड़ से कम होगा।
2. **गर्भावधि:-** बड़े उद्योगों में गर्भावधि समय ज्यादा और छोटे उद्योगों में ये समय काफी कम होता है।
3. **रजिस्ट्रेशन:-** बड़े उद्योगों Schedule of Industrial Development के अंदर आते हैं और छोटे उद्योगों को (Director of Industries of State) राज्य उद्योगिक डायरेक्टर के पास रजिस्ट्रेशन करवाना अनिवार्य है।
4. **प्रबंधित:-** सभी छोटे उद्योगों का प्रबंध एक ही आदमी के अधीन होता है जबकि बड़े उद्योगों का प्रबंध पेशेवर लोग ही करते हैं। बड़े उद्योगों के पास पूंजी अधिक होने के कारण वो चतुर्विधता को कार्य के लिए रख सकते हैं।
5. **मालिकाना हक:-** छोटे उद्योगों का मालिक एक आदमी ही हो सकता है। लेकिन बड़े उद्योगों को कम्पनी के रूप में बना कर चलाया जाता है।
6. **टैक्नोलोजी:-** बड़े उद्योगों में टैक्नोलोजी का उपयोग अधिक किया जाता है जबकि छोटे उद्योगों में श्रम का ही अधिक उपयोग किया जाता है। छोटे उद्योगों में पूंजी की मात्रा कम होने के कारण आधुनिक टैक्नोलोजी को उपयोग करने में वो समर्थ नहीं होते।

बड़े स्तर के उद्योगों के फायदे

1. **मंडी में लीडरशिप (Leadership):**— बड़े स्तर के उद्योगों को अनगिनत फायदे होते हैं उनमें से मंडी के अंदर उनका नेता के रूप में अग्रसर होना भी है। वो अपनी नीति खुद बनाते हैं और किसी के ऊपर निर्भर नहीं करते। नीति को अमल में लाने के तरीके भी उनके अपने ही होते हैं जिससे वो अधिक उन्नित करने में सक्षम होते हैं। एक नेता के रूप में वो नए उत्पादकों को भी मंडी में लाते हैं और पुराने उत्पादकों के नए उपयोगों के बारे में भी लोगों तक जानकारी पहुंचाते हैं जिससे उनके ग्राहकों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती है। पूंजी की उनके पास कोई कभी नहीं होती, इस लिए वो अनुसंधान की गतिविधियों को भी बढ़ावा देते हैं। मंडी में उनकी बनाई गई नीतियां ही सबसे आगे रहती हैं।
2. **कार्यकुशल कर्मचारी:**— बड़े स्तर के उद्योगों में पूंजी की अधिकता के कारण वो कुशल व्यक्तियों को उनकी कुशलता के अनुरूप अधिक वेतन देने में भी सक्षम होते हैं। इसी के कारण और अधिक कार्यकुशल लोग उनके पास आने को तैयार रहते हैं। छोटे उद्योगों के लिए ये सब एक सपने के सामान ही होता है।
3. **मुकाबले की भावना:**— बड़े उद्योगों के पास अधिक मात्रा में उत्पादन होने की वजह से उनकी लागत भी कम होती है और उत्पादन की गुणवत्ता भी बढ़िध्या पाई जाती है। मंडी में विज्ञापन करने की काबलियत होने की वजह से वो मुकाबले की भावना रखते हुए काफी आगे निकल जाते हैं।
4. **अनुसंधान और विकास:**— उत्पादन के लिए अनुसंधान का प्रबंध करना सिर्फ बड़े उद्योगों के लिए ही मुमकिन है। अनुसंधान एक लम्बा समय, लागत आदि की मांग करते हैं। छोटे उद्योग इस दिशा में तो कुछ सोच ही नहीं सकते।
5. **वित्त प्रबंधन:**— बड़े उद्योगों को वित्त का प्रबंध करने में कोई मुश्किल नहीं आती। बैंक से वो आसान किशतों वाला कर्ज ले सकते हैं। इसके इलावा वो पब्लिक को भी अपने शेयर खरीदने का आग्रह कर सकते हैं। लोग भी आज कल शेयर मंडी में अपनी रुचि रखते हैं और बड़े उद्योगों के लिए ये अधिक फायदे की बात है कि उनको वित्त प्रबंधन में छोटे उद्योगों की तरह उलझन में नहीं फंसना पड़ता।
6. **निर्यात करने की रुचि:**— बड़े उद्योग न सिर्फ अपने देश के लिए उत्पादन करते हैं बल्कि दूसरे देशों को निर्यात करने में भी अपनी रुचि दिखाते हैं। अधिक उत्पादन होने की वजह से उत्पादन शुल्क भी कम होता है और वो अधिक लाभ कमाते हुए देश के लिए विदेशी मुद्रा कमाने में भी मदद करते हैं। देश की अर्थव्यवस्था में उनका योगदान सराहनीय होता है।
7. **मोल भाव करने की ताकत:**— बड़े उद्योगों में मोल भाव करने की ज्यादा ताकत होती है। उसका कारण है कि उनका उत्पादन बहुत बड़ी मात्रा में होता है और बड़ी मात्रा का लेन-देन करने में वो समर्थ होते हैं। यही ताकत ही उनको अधिक लाभ कमाने में भी मदद करती है और मंडी में दिन प्रतिदिन उनका हिस्सा भी बढ़ता नजर आता है।
8. **उत्पादन की लागत:**— छोटे उद्योगों के मुकाबले बड़े उद्योगों में उत्पादन की लागत बहुत कम पाई गई है। कच्चा माल खरीदने से शुरु करके, उसको बनाने में पेशेवर लोगों का साथ और मंडी में उनका एक अलग ही स्थान बन जाता है। यही कारण है कि मंडी में वो एक नेता की भांति नजर आते हैं और उनकी बिक्री भी बड़े स्तर पर होती है।
9. **शेयर मार्किट में स्थान:**— बड़े उद्योगों की कार्यकुशलता होने की वजह से शेयर मार्किट में भी उनका उत्तम स्थान हो रहता है। उनके शेयर की कीमत लगातार बढ़ती रहती है जिससे लोग उनको ज्यादा खरीदते हैं और मार्किट में उनकी छवि भी छोटे उद्योगों की अपेक्षा बढ़िध्या रहती है।
10. **उत्पादन की गुणवत्ता:**— बड़े उद्योगों के उत्पादन की गुणवत्ता को नियंत्रण करने के लिए एक अलग विभाग कार्यशील रहता है जिससे वो अपने उत्पादन को दोष रहित करने में सक्षम हो जाते हैं। छोटे उद्योग कभी भी ऐसा नहीं कर सकते। बड़े उद्योगों के लिए गुणवत्ता निर्धारण करना एक जरूरी कदम है ताकि उनकी मंडी के अंदर बनी छवि खराब न हो।
11. **उत्पादन में विविधता:**— ग्राहक हमेशा विविधता की मांग करते हैं तभी तो उत्पादन में विविधता लाने वाले उत्पादक ही मंडी में टिक पाते हैं। आज के इस फैशन के युग में नए-नए डिजाइनों का अधिक मूल्य है और लंबे समय तक बड़े उद्योग ही विविधता को अपना सकते हैं।
12. **पैमाने की अर्थव्यवस्थाएं:**— बड़े स्तर के उद्योगों का ये सबसे बड़ा फायदा है चाहे कच्चे माल को खरीदना हो, उत्पादन करना हो, पूंजी का प्रबंध करना हो, माल को संभालना हो या मंडी में विज्ञापन इत्यादि करना हो।
13. **उद्योगिकी का प्रयोग:**— हर उद्योग में उद्योगिकी के प्रयोग की महत्ता होती है। परन्तु सिर्फ बड़े स्तर के उद्योग ही उच्च कोटि की उद्योगिकी का प्रयोग करने में सक्षम पाए गए हैं। छोटे उद्योग वाले तो इसको खरीदने में असमर्थ ही होते हैं। इससे न सिर्फ पूंजी निवेश करनी पड़ती है बल्कि कई तरह के खतरों से भी जूझना पड़ता है।
14. **पूंजीगत परिसंपत्ति और आधारभूत संरचना:**— बड़े उद्योगों के पास गुणवत्ता से भरपूर पूंजीगत परिसंपत्ति पाई जाती है। जब कि छोटे उद्योगों के पास पूंजी की कमी ही रहती है। जिससे वो अपने आधारभूत संरचना को भी मजबूत नहीं कर सकते।

बड़े स्तर के उद्योगों की हानियाँ

1. **व्यक्तिगत रुचि न लेना:**— बड़े स्तर के उद्योगों को एक आदमी के प्रबंधन से चलाया नहीं जा सकता। बहुत से लोगों को कार्य के लिए अपने साथ न तो सिर्फ जोड़ना पड़ता है। बल्कि उन पर विश्वास भी करना पड़ता है। अधिकतर कार्यों में मालिक हाजिर नहीं होता पर अगर विश्वास योग्य कार्यकर्ता नहीं मिल पाते तो कई बार कार्य को निपुणता से सम्पन्न करना मुश्किल ही हो जाता है। आपसी सामंजस्य की कमी होने से कई बार तो जतपामद्ध हड़ताल तक की नौबत भी आ जाती है।
2. **व्यक्तिगत उत्पादन की कमी:**— बड़े स्तर के उद्योगों में बड़ी मात्रा में उत्पादन किया जाता है और एक जैसी वस्तुएं ही बनाई जाती हैं। परन्तु फैशन के इस युग में लोग व्यक्तिगत पसंद को बढ़ावा देते हैं। उनके अनुसार उत्पादन करना संभव नहीं है।

3. **मुकाबले की भावना:**– बड़े स्तर के उद्योगों में मुकाबले की भावना भी बड़े स्तर की ही होती है। इस तरह के मुकाबले में वो अपने ऊर्जा को गंवा देते हैं। क्योंकि मंडी को अपने कब्जे में रखना उनकी पसंद नहीं बल्कि जरूरत हो जाती है। इस तरह की भावना अपने समाज के लिए भी हानिकारक साबित होती है।
4. **बदलाव असंभव:**– बड़े स्तर के उद्योगों के लिए अपनी उत्पादन की दिशा का बदलाव करना मुश्किल ही नहीं असंभव-सा हो जाता है। छोटे उद्योग अपने उत्पादन की रूपरेखा को आसानी से बदल सकते हैं। परन्तु बड़े उद्योगों में बहुत-सी पूंजी का निवेश करना होता है।
5. **अंतरराष्ट्रीय जटिलता:**– जब भी बड़े उद्योग अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कार्य करते हैं तो उनको अनेक तरह की जटिलताओं का सामना करना पड़ता है। मंडी में बदलाव के मध्यनजर वो अपना कार्यस्तर इतनी आसानी से बदल नहीं सकते।
6. **कार्य की अधिकता का भार:**– बड़े स्तर के उद्योगों के प्रबंधन के ऊपर कार्य की अधिकता का भार रहता है। वो हर कार्य की जांच करने में समर्थता नहीं दिखा सकते। इसी कारण बहुत-सी हानि भी सहनी पड़ती है। इस लिहाज से छोटे स्तर के उद्योगों को फायदा रहता है।
7. **बड़ी मात्रा में पूंजी का निवेश:**– बड़े स्तर के उद्योगों में पूंजी भी बड़ी मात्रा में ही लगाई जाती है। क्योंकि उनको उत्पादन भी बड़े स्तर का करना होता है और लोगों को कई तरह की विविधता भी प्रदान करनी होती है। बड़ी मात्रा की पूंजी का प्रबंध करना हरेक के बस की बात नहीं होती।
8. **डिप्रेषन की संभावना:**– बड़े स्तर के उद्योगों में बड़ी मात्रा में निवेश और बड़ी मात्रा में उत्पादन होता है। कई बार ऐसा भी होता है कि उत्पादन बड़ी मात्रा में हो जाए परन्तु उसकी मांग उतनी नहीं होती या ये कह सकते हैं कि मांग में गिरावट आ जाती है। उस समय मालिक को ये लगता है कि उनका उत्पादन किसी काम का नहीं रहा। क्योंकि वो मंडी में बिक नहीं रहा। इससे निश्चित रूप से उनको डिप्रेषन होने की संभावना बढ़ जाती है।
9. **स्वतंत्र कार्य करने की इच्छा:**– कई लोगों में स्वतंत्र रूप से कार्य करने की इच्छा होती है। क्योंकि उनको लगता है कि वो अपने फैसले खुद अच्छे तरीके से ले सकते हैं और ज्यादा लाभ कमाने में भी सक्षम हैं। परन्तु बड़े उद्योगों में स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं किया जा सकता। इस के अंदर सभी के साथ मिल कर ही चलना पड़ता है।

संदर्भ

1. Sato (2012), Market Size and Entrepreneurship.
2. <http://www.kuk.ac.in>
3. Karim (2011), Industry Type and Business Size on Economic Growth.
4. Hasan (2010), The Distribution of Firm Size in India.
5. Valence (2010), Defining An Industry.
6. Natarajan (1998), The Nature and Scope of Industry.
7. Schlund (2018), Describing The Technological Scope of Industry.

रूस की विदेश नीति एवं वैश्विक महत्वाकांक्षाएं

शैलेन्द्र कुमार

सहायक प्राध्यापक, सेलेक्शन ग्रेड, राजनीति विज्ञान विभाग, जे पी कालेज नारायणपुर, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय भागलपुर

सार

पिछले कई वर्षों में, अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने एक महत्वपूर्ण वैश्विक अभिनेता के रूप में रूस की वापसी देखी है। दुनिया के कई दूर-दराज के कोनों में वर्तमान सक्रिय रूसी मुद्रा अपनी विदेश नीति के दो पहले से स्पष्ट प्रमुख तत्वों से परे है: इसकी तत्काल परिधि के आसपास विशेषाधिकार प्राप्त हितों के क्षेत्र का दावा, जिसे 2008 के मद्देनजर बाहर रखा गया था। जॉर्जिया के साथ युद्ध, और यूरोप में शीत युद्ध के बाद के सुरक्षा आदेश को स्वीकार करने से इनकार, क्रीमिया के 2014 के विलय के साथ निर्णायक रूप से पुष्टि की गई। हाल ही में, क्रेमलिन ने दुनिया के कुछ हिस्सों में सक्रिय पहुंच के साथ अपनी विदेश नीति के भौगोलिक पैमाने का विस्तार किया है, जहां सोवियत संघ ने अपनी विदेशी महत्वाकांक्षाओं को कम करने के बाद से लगभग तीन दशकों तक रूसी उपस्थिति एक कारक नहीं रही है। इस पत्र के अंतर्गत रूस की विदेश नीति एवं वैश्विक महत्वाकांक्षाएं पर विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: विदेश नीति; रणनीतिक गहराई; महत्वाकांक्षाएं; पश्चिम के साथ संबंध।

परिचय

पहली नजर में, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका, मध्य पूर्व और दुनिया के अन्य हिस्सों में संबंधों और परियोजना प्रभाव का एक जाल बनाने के मास्को के प्रयास रूसी विदेश नीति का एक नया तत्व प्रतीत होता है। हालाँकि, यह निष्कर्ष गलत होगा। रूसी विदेश नीति दो दशकों से भी अधिक समय से अपने वर्तमान विस्तार चरण तक निर्माण कर रही है। इसके अलावा, इसकी महत्वाकांक्षाओं की जड़ें बहुत गहरी हैं। सोवियत काल के साथ निरंतरता और यहां तक कि रूसी इतिहास के पहले के दौर भी क्रेमलिन की वर्तमान विदेश नीति और अपने लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के लिए जिस टूलकिट पर निर्भर करता है, उसकी एक बानगी है। इसलिए सोवियत संघ की विदेश नीति विरासत की समीक्षा करना आवश्यक है। वर्तमान रूसी टूलकिट के मुख्य घटक समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं, और इस बात के हर संकेत हैं कि मास्को पुतिन के बाद के युग में भी उन पर भरोसा करना जारी रखेगा।

वापस भविष्य में

रूस की समकालीन सक्रिय विदेश नीति, वास्तव में, उनके राष्ट्रपति बनने से पहले ही शुरू हो गई थी। इसे पहली बार येवगेनी प्रिमाकोव द्वारा लॉन्च किया गया था, जिन्हें 1996 में रूसी विदेश मंत्री नियुक्त किया गया था। उन्होंने वह तैयार किया जिसे प्रिमाकोव सिद्धांत के रूप में जाना जाने लगा। प्रिमाकोव के अनुसार, रूस अब पश्चिमी शक्तियों, विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व का पालन नहीं करेगा, बल्कि विश्व मंच पर खुद को सत्ता के एक स्वतंत्र केंद्र के रूप में स्थापित करेगा, जो अमेरिका के विकल्प के रूप में एक बहुध्रुवीय दुनिया के विकास में योगदान देगा। – एकध्रुवीय व्यवस्था का नेतृत्व किया। विदेश मंत्री के रूप में प्रिमाकोव के उत्तराधिकारी, सर्गेई लावरोव ने अक्टूबर 2014 में अपने पूर्ववर्ती के प्रभाव को अभिव्यक्त करते हुए कहा:

जिस क्षण उन्होंने रूसी विदेश मंत्रालय का कार्यभार संभाला, रूस की विदेश नीति में एक नाटकीय मोड़ आया। सोवियत संघ के टूटने के बाद हमारे पश्चिमी भागीदारों ने जिस रास्ते पर चलने की कोशिश की थी, रूस ने उसे छोड़ दिया और अपने रास्ते पर चल पड़ा।¹

इस दृष्टि ने तब से रूसी विदेश नीति को निर्देशित किया है। कई पश्चिमी नीति निर्माताओं और पर्यवेक्षकों ने प्राइमाकोव की दृष्टि को अंकित मूल्य पर लेने में धीमी गति से विश्वास किया, यह आश्वस्त था कि रूस अकेले जाने के लिए बहुत कमजोर था, अकेले 1989 के बाद, यू.एस. जैसे-जैसे रूसी अर्थव्यवस्था में सुधार हुआ और क्रेमलिन ने सिद्धांत को लागू करने के लिए और अधिक संसाधनों का अधिग्रहण किया, इसकी नीति पश्चिमी पहलों को प्रतिरोध के अधिक सक्रिय रूप में स्वीकार करने के लिए अपेक्षाकृत निष्क्रिय इनकार से विकसित हुई; अंततः यह एक महत्वाकांक्षी भौगोलिक दायरे के साथ एक सक्रिय विदेश नीति में रूपांतरित हो गया। अपने निपटान में काफी अधिक संसाधनों का लाभ उठाने के अलावा, रूसी विदेश नीति ने क्रेमलिन की इच्छा को एक अनुकूल बाहरी वातावरण का लाभ उठाने और यू.एस. सफलता अधिक सफलता प्राप्त करती है, और 2012 में पुतिन की राष्ट्रपति पद पर वापसी के बाद से, उनके रिकॉर्ड को रूसी अधिकारियों द्वारा कई महत्वपूर्ण जीत के रूप में देखा गया है। क्रीमिया का विलय, पूर्वी यूक्रेन में युद्ध, सीरिया में सैन्य तैनाती, बाल्टिक और काला सागर में पश्चिम के साथ तनावपूर्ण सैन्य गतिरोध, और अमेरिका और यूरोपीय घरेलू राजनीति में हस्तक्षेप ने रूस की छवि को एक प्रमुख शक्ति के रूप में बढ़ाया है। महत्वपूर्ण शक्ति प्रक्षेपण क्षमताओं के साथ-साथ एक साहसी और कुशल नेता के रूप में पुतिन की प्रतिष्ठा। इन जीतों ने दुनिया को जोखिम लेने और अपने वजन से ऊपर मुक्का मारने की रूस की प्रवृत्ति के साथ-साथ युद्ध और संचालन के लिए अपनी बेहतर क्षमताओं के साथ-साथ कई डोमेन-भूमि, वायु, अंतरिक्ष, समुद्र, साइबर और सूचना संचालन में युद्ध की क्षमता का प्रदर्शन किया है।

इसके अलावा, 2012 से क्रेमलिन के रिकॉर्ड से पता चलता है कि यह आर्थिक कठिनाइयों से विचलित या विवश नहीं होगा। रूसी अर्थव्यवस्था ने तब से खराब प्रदर्शन किया है, लंबे समय से अतिदेय संरचनात्मक सुधारों को स्थापित करने में विफलता और हाइड्रोकार्बन और अन्य कच्चे माल के निर्यात पर अत्यधिक निर्भरता के कारण विकास में बाधा उत्पन्न हुई है। लेकिन आर्थिक कठिनाइयों ने विदेशों में रूसी सक्रियता पर ब्रेक नहीं लगाया है। इसके विपरीत, क्रेमलिन की घरेलू आर्थिक कठिनाइयों और पश्चिमी प्रतिबंधों दोनों को बिना पाठ्यक्रम बदले झेलने की क्षमता देश के नेतृत्व की दीर्घकालिक पसंद के रूप में एक सक्रिय विदेश नीति के लिए मास्को की प्रतिबद्धता का संकेत है।

इसके निर्धारण और इसके निपटान में पर्याप्त संसाधनों के अलावा, क्रेमलिन की विदेश नीति के रिकॉर्ड को पश्चिम के कार्यों या निष्क्रियता द्वारा प्रस्तुत अवसरों से लाभ हुआ है। उदाहरण के लिए, क्रीमिया का विलय और पूर्वी यूक्रेन में युद्ध उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) की पृष्ठभूमि के खिलाफ हुआ, जिससे यह स्पष्ट हो गया कि यह हस्तक्षेप नहीं करेगा और यूक्रेन पर रूस के साथ युद्ध का जोखिम नहीं उठाएगा। इसी तरह, सीरिया में रूस की सैन्य तैनाती संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके सहयोगियों द्वारा प्रदर्शित किए जाने के बाद हुई कि उन्हें वहां हस्तक्षेप करने की बहुत कम भूख है।

कहीं और, लंबे समय तक संघर्ष, जैसे कि अफगानिस्तान, इराक और लीबिया में, या बाल्कन जैसे संघर्ष के बाद के पुनर्निर्माण के अधूरे व्यवसाय ने रूस को खुद को सम्मिलित करने और जमीन पर नए तथ्य बनाने के अवसर प्रदान किए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप में, बढ़ते राजनीतिक विभाजन, सूचना प्रदाताओं के प्रसार, और 2008 के वैश्विक वित्तीय संकट के मद्देनजर शासी अभिजात वर्ग के साथ लोकप्रिय निराशा ने रूसी हस्तक्षेप के लक्ष्य को उजागर कर दिया है।

रूसी एजेंटों ने पश्चिमी समाजों के अंदर इन दीर्घकालिक संघर्षों या दरारों का कारण नहीं बनाया, लेकिन उन्होंने अपने लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के लिए उनका इस्तेमाल किया है, जो परिस्थितियों के आधार पर भिन्न होता है। कई उदाहरणों में, क्रेमलिन ने एक विविध टूलकिट पर भरोसा किया है जो रूसी सरकार से हटाए गए एक कदम के संचालन की उपस्थिति बनाता है (राज्य के स्वामित्व वाले निगमों जैसे रोसाटॉम और रोसनेफ्ट, वैगनर समूह जैसी निजी सुरक्षा कंपनियों सहित कई अभिनेताओं के माध्यम से), संगठित अपराध सिंडिकेट, हैकर, और इंटरनेट अनुसंधान एजेंसी जैसे सूचना संचालन संगठन)।

सोवियत रूस के बाद की पश्चिमी धारणाएँ 1990 के दशक के दौरान देश के आर्थिक और राजनीतिक प्रभाव और विदेश नीति के पीछे हटने से काफी प्रभावित हुई हैं। उस पृष्ठभूमि के खिलाफ, पुतिन की 2012 में राष्ट्रपति पद पर वापसी के बाद से रूसी विदेश नीति की महत्वाकांक्षा और गतिशीलता अपेक्षाकृत नई घटना प्रतीत होती है। मास्को की 2012 के बाद की विदेश नीति सोवियत और यहां तक कि पूर्व-सोवियत रूसी विदेश नीति की लंबे समय से चली आ रही ऐतिहासिक और बौद्धिक परंपरा में आराम से फिट बैठती है।

रूसी विदेश नीति का ट्रोइका

समकालीन रूसी विदेश नीति विश्व मंच पर मास्को की मुद्रा के तीन सदियों पुराने चालकों की अचूक उपस्थिति प्रदर्शित करती है। इन चालकों में प्रमुख है रूस की रणनीतिक गहराई और बाहरी खतरों के खिलाफ सुरक्षित बफर की तलाश, जिसने देश के भूगोल और इसके और पड़ोसी शक्तियों के बीच प्राकृतिक सुरक्षात्मक बाधाओं की अनुपस्थिति को देखते हुए इसके भौगोलिक विस्तार को निर्देशित किया है। भौतिक असुरक्षा और विस्तार के साथ, रूसी विदेश नीति का दूसरा प्रमुख चालक एक महान शक्ति के रूप में मान्यता के लिए इसकी महत्वाकांक्षा रही है, जिसे क्रेमलिन ने लंबे समय से अपनी भौगोलिक विजय और भू-राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को वैध बनाने के लिए आवश्यक माना है। तीसरा चालक, पहले दो से संबंधित, पश्चिम के साथ रूस का जटिल संबंध है, जो प्रतिद्वंद्विता को सहयोग की आवश्यकता के साथ जोड़ता है।

ये आवर्तक विषय महत्वपूर्ण हैं। वे इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि पुतिन युग में रूसी विदेश नीति किस हद तक कई गतिविधियों की निरंतरता है, जो कि दशकों और सदियों पुरानी हैं और पिछली रूसी सरकारों ने उनके राजनीतिक अनुनय की परवाह किए बिना गले लगा लिया था। ऐतिहासिक रिकॉर्ड रूसी राज्य के नागरिकों के लिए एक महत्वपूर्ण वैधीकरण कार्य भी करता है, जो कि तीन दशक से कम पुराना है, सदियों से चली आ रही लंबी, शानदार परंपरा के उत्तराधिकारी होने के राज्य के दावे को मजबूत करता है। इस परंपरा के संदर्भ इस प्रकार पुतिन सरकार की महत्वाकांक्षी विदेशी गतिविधियों को वैध बनाते हैं और उन्हें ऐतिहासिक निरंतरता और रूस के अभिन्न अंग के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

भूगोल और सामरिक गहराई

रूस की विदेश नीति के पीछे एक चालक के रूप में भूगोल की भूमिका को कम करके आंकना कठिन है। रूसी राज्य और उसकी सुरक्षा नीति को प्राकृतिक भौगोलिक बाधाओं-महासागरों, नदियों या पहाड़ों की अनुपस्थिति से आकार दिया गया है। भूगोल ने रूसी पहचान और उसके शासकों की रूसी राज्य के पूरे अस्तित्व में सुरक्षा की समझ को आकार दिया है। सदियों के दौरान, समकालीन रूस, सोवियत संघ, शाही रूस, और मुस्कोवी की रियासत सभी ने पश्चिम, दक्षिण और पूर्व में शत्रुतापूर्ण माने जाने वाले पड़ोसियों से क्षेत्र के एक विशाल खंड को हासिल करने की चुनौती का सामना किया है। अपने क्षेत्र को सुरक्षित करने के लिए, रूसी राज्य ने अधिक क्षेत्र का अधिग्रहण किया, जिसे बदले में, किसी न किसी तरह के बाहरी खतरों से हमेशा के लिए सुरक्षित होना पड़ा। इतिहासकार स्टीफन कोटकिन के शब्दों में, “शुरुआती रूसी विस्तारवाद के पीछे मूल कारण जो भी हो – जिनमें से अधिकांश अनियोजित थे – देश के राजनीतिक वर्ग में कई लोग समय के साथ विश्वास करने लगे कि केवल और विस्तार ही पहले के अधिग्रहण को सुरक्षित कर सकता है। इस प्रकार, रूसी सुरक्षा को पारंपरिक रूप से बाहरी हमले को रोकने के नाम पर, आंशिक रूप से बाहर की ओर बढ़ने के लिए समर्पित किया गया है।”²

क्षेत्र का नुकसान, जैसा कि बीसवीं शताब्दी में रूस द्वारा अनुभव की गई दो महान अव्यवस्थाओं के बाद हुआ था – पहली बार 1917 की क्रांति और 1918 की ब्रेस्ट-लिटोव्स्क संधि के बाद, और बाद में सोवियत संघ के 1991 के टूटने के बाद – एक गहन अर्थ में रूसी असुरक्षा और सामरिक गहराई हासिल करने के लिए एक नए सिरे से खोज। जैसे ही देश क्रांति और गृहयुद्ध के आघात से उबरना शुरू हुआ, और 1990 के दशक के पतन के बाद मास्को ने फिर से ताकत हासिल करना शुरू कर दिया, उस गहराई को फिर से हासिल करना सोवियत सरकार का प्रमुख कार्य था।

महान शक्ति महत्वाकांक्षाएं

एक महान शक्ति के रूप में मान्यता की खोज रूस के भौगोलिक विस्तार और उसके चालक दोनों का परिणाम रही है। एक महान शक्ति के रूप में मान्यता के उनके दावे के केंद्र में, रूसी नेताओं की नजर में भौगोलिक विस्तार था और है। इस तरह की मान्यता, बदले में, क्षेत्रीय विजय के लिए वैधता का एक लिबास देने के लिए आवश्यक है। शायद इसलिए कि उन्हें इस तरह की मान्यता के लिए बार-बार संघर्ष करना पड़ा है, रूस के शासक किसी भी सुझाव के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील रहे हैं कि रूस प्रमुख शक्तियों के रैंक में नहीं है।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में, रूसी इतिहासकार और लेखक निकोले डेनिलेव्स्की ने यूरोप द्वारा रूस के अनुचित व्यवहार के बारे में शिकायत की, जिसने दो डेनिश प्रांतों के कब्जे के बाद डेनमार्क के खिलाफ प्रशिया और ऑस्ट्रियाई आक्रमण के लिए आंखें मूंद लीं, फिर भी अधिकारों की रक्षा के लिए रूस के प्रयासों की आलोचना की। डेनिलेव्स्की की शिकायत, वास्तव में, क्रीमिया के रूस के कब्जे और सर्बिया से कोसोवो को अलग करने से निपटने में पश्चिम के दोहरे मानकों के बारे में पुतिन के विलाप का एक अग्रदूत था। सोवियत पतन से उभरे स्वतंत्र रूस के नेताओं के लिए, सोवियत और रूसी शाही विरासत महान शक्ति की स्थिति के उनके दावे के लिए एक प्रेरणा और औचित्य दोनों के रूप में काम करती थी। उन्हें अपने दावे के लिए पर्याप्त दार्शनिक तर्क मिले। प्रसिद्ध रूसी राजनीतिक दार्शनिक निकोलाई बर्देव के शब्दों में, साम्राज्य और महान शक्ति की स्थिति रूसी पहचान का सार है, भले ही देश अपने आध्यात्मिक और भौतिक संपदा के कारण बड़े पैमाने पर चुनौतियों और असफलताओं का सामना कर रहा हो। रूसी संघ की आधिकारिक विदेश नीति अवधारणा में अन्य विदेश नीति प्राथमिकताओं के अलावा, “स्वतंत्र राज्यों के राष्ट्रमंडल के एकीकरण को आगे बढ़ाने” के उद्देश्य और “महान शक्ति” के रूप में विश्व मंच पर रूस की सक्रिय भूमिका सुनिश्चित करना शामिल है। 1996 में रूसी विदेश नीति की स्थापना के शीर्ष पर, महान शक्ति महत्वाकांक्षाएं फिर से क्रेमलिन की प्रेरक शक्ति बन गईं। विदेश मंत्री के रूप में अपने पहले समाचार सम्मेलन में, प्रिमाकोव ने कहा, “वर्तमान कठिनाइयों के बावजूद, रूस एक महान शक्ति था और है और इसकी विदेश नीति को उसी के अनुरूप होना चाहिए।”³

पुतिन ने 2000 में राष्ट्रपति बनने पर इस दृष्टि को अपनाया, और यह है तब से उनके नेतृत्व की आधारशिला के रूप में कार्य किया। पुतिन सरकार के लिए विशेष महत्व रूसी राज्य और उसके कई विजयों का सैन्य रिकॉर्ड रहा है। पुतिन ने 2012 में रूसी सैन्य-ऐतिहासिक समाज के पुनर्गठन के लिए एक राष्ट्रपति आदेश जारी किया।⁴

लंबे समय से सेवा करने वाले रूसी संस्कृति मंत्री व्लादिमीर मेडिंस्की समाज के सक्रिय संरक्षक भी रहे हैं। हथियारों के बल पर रूसी राज्य का विस्तार – पोलैंड, स्वीडन, ओटोमन साम्राज्य और मध्य एशिया पर कई जीत सहित – समकालीन रूसी राज्य के मूलभूत आख्यान का एक अभिन्न अंग है। यह कथा एक विशाल राज्य प्रचार तंत्र, आधिकारिक सरकारी गतिविधियों और शैक्षिक पाठ्यक्रम द्वारा प्रबलित है। इस कथा में कई ऐतिहासिक घटनाओं को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। नेपोलियन की रूस की हार को उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय व्यवस्था के महत्व के साथ-साथ एक महान शक्ति के रूप में रूस की स्थिति को मजबूत करने वाली उपलब्धि होने के कारण एक विशिष्ट महत्वपूर्ण घटना के रूप में माना गया है। द्वितीय विश्व युद्ध में नाजी जर्मनी पर जीत को सोवियत राज्य की सबसे बड़ी उपलब्धि के रूप में माना जाता है, जिसने न केवल सोवियत संघ और यूरोप को बल्कि पूरी दुनिया को फासीवाद से बचाया। यह विजय वर्तमान में रूस के राष्ट्रीय आख्यान का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है। समग्र रूप से, यह विरासत न केवल अपनी विशाल परिधि के आसपास बल्कि इसके तटों से परे अपनी महत्वाकांक्षाओं को आगे बढ़ाने के लिए रूस को औचित्य और प्रेरणा दोनों प्रदान करती है।

पश्चिम के साथ असहज संबंध

सदियों से पश्चिम के साथ मास्को का असहज संबंध उसकी विदेश नीति की सबसे प्रमुख विशेषताओं में से एक रहा है। एक ओर – पीटर द ग्रेट की बाल्टिक तटों पर नई रूसी राजधानी की स्थापना से लेकर कैथरीन द ग्रेट की उस समय के प्रमुख यूरोपीय प्रबुद्धता विचारकों के साथ जुड़ाव, जार अलेक्जेंडर पृ प्रमुख यूरोपीय शक्तियों के घेरे में रूस की जगह हासिल कर रहा है जोसेफ स्टालिन का समेकन पूर्वी यूरोप पर सोवियत संघ की पकड़-रूस लंबे समय से यूरोप और उसके राजनीतिक और सुरक्षा ताने-बाने का एक अभिन्न अंग रहा है।

दूसरी ओर, पीटर द ग्रेट के समय से पूरे रूसी इतिहास में, रूसी अभिजात वर्ग, राजनीतिक विचारकों और सांस्कृतिक हस्तियों ने रूस की यूरोपीय पसंद और यूरोप के साथ संबंधों पर सवाल उठाया है। उस द्विपक्षीयता के एक और हालिया और बहुत ही स्पष्ट संकेत में, विदेश मंत्री लावरोव ने 2016 में लिखा था कि, सदियों से, रूस ने खुद को यूरोप और पश्चिम के हिस्से के रूप में, पश्चिम से बेहतर, पश्चिम से अलग और अद्वितीय के रूप में देखा है, और पूर्व और पश्चिम के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी का प्रतिनिधित्व करने के रूप में।⁵

सबसे बड़ी बाधा जिसने रूस को यूरोप के साथ घनिष्ठ और अधिक स्थिर संबंध रखने से रोक दिया है, लावरोव के अनुसार, यूरोप की अक्षमता या अनिच्छा केवल रूस को रूस होने देने के लिए है, और मास्को को यूरोपीय मानदंडों के अनुरूप बनाने का उसका आग्रह – ऐसा कुछ जिसे कोई रूसी नेता या रूस के लोग कभी स्वीकार नहीं करेंगे। महान शक्ति की स्थिति के लिए मास्को का दावा नेपोलियन और हिटलर के खिलाफ पश्चिम में अपनी जीत से प्राप्त हुआ है। लेकिन रूस के सबसे बड़े झटके भी पश्चिम द्वारा दिए गए हैं – क्रीमिया युद्ध और शीत युद्ध में – और ये झटके मास्को की सुरक्षा और रक्षा नीति के सबसे बड़े चालक बने हुए हैं।⁶

जैसा कि शीत युद्ध के दौरान हुआ था, पश्चिम के प्रति रूसी नीति का लंबे समय से एक महत्वपूर्ण वैचारिक आयाम रहा है। सोवियत काल के दौरान, सोवियत साम्यवाद और लोकतांत्रिक पूंजीवाद के बीच वैचारिक प्रतिस्पर्धा थी। एक अपेक्षाकृत संक्षिप्त अवधि के बाद जब रूस ने पश्चिम में शामिल होने का प्रयास किया, मास्को ने एक स्पष्ट रूप से पश्चिमी विरोधी विचारधारा को अपनाया है। उदार लोकतांत्रिक पूंजीवाद की पश्चिम की धारणा के विकल्प के रूप में साम्यवाद को राष्ट्रवादी, सत्तावादी और राज्य-पूंजीवादी विचारों के मिश्रण से बदल दिया गया है। शत्रुतापूर्ण पश्चिमी डिजाइनों और प्रभावों का सामना

करने वाले एक घिरे किले के रूप में रूस की अवधारणा एक महत्वपूर्ण उपकरण है जिसका उपयोग शासन रूसी अभिजात वर्ग और आम नागरिकों के राजनीतिक समर्थन को समान रूप से जुटाने के लिए करता है।

पुरानी आदतें नहीं मरती

जटिल भू-राजनीति, महान शक्ति महत्वाकांक्षाओं और पश्चिम के साथ एक कठिन संबंध की विरासत के अलावा, नए रूसी राज्य को अपने सोवियत पूर्ववर्ती से एक समय-परीक्षणित विदेश नीति टूलकिट विरासत में मिली है। जबकि इस टूलकिट के कुछ तत्व सोवियत काल के बाद की शुरुआत में अनुपयोगी हो गए थे, जब रूस घरेलू संकटों की एक श्रृंखला से जूझ रहा था, इन उपकरणों को देश की विदेश नीति और राष्ट्रीय सुरक्षा प्रतिष्ठान द्वारा फिर से लिया गया है क्योंकि मॉस्को दुनिया में वापस आ गया है।

जॉर्ज केनन ने “सोवियत आचरण के स्रोत” में लिखा है:

. . . क्रेमलिन अपने उद्देश्यों को जल्दबाजी में पूरा करने के लिए किसी भी वैचारिक बाध्यता के अधीन नहीं है। . . और यह धैर्य रखने का जोखिम उठा सकता है। इन उपदेशों को रूसी इतिहास के पाठों द्वारा दृढ़ किया गया है: एक विशाल दुर्गम मैदान के हिस्सों पर खानाबदोश ताकतों के बीच सदियों की अस्पष्ट लड़ाई। यहां सावधानी, चौकसी, लचीलापन और छल मूल्यवान गुण हैं। . . इसकी (सोवियत संघ की) राजनीतिक कार्रवाई एक तरल धारा है जो किसी दिए गए लक्ष्य की ओर, जहां कहीं भी जाने की अनुमति है, लगातार चलती रहती है। . . . मुख्य बात यह है कि वांछित लक्ष्य की ओर हमेशा दबाव, निरंतर दबाव होना चाहिए। सोवियत मनोविज्ञान में इस बात का कोई निशान नहीं है कि उस लक्ष्य को किसी भी समय प्राप्त किया जाना चाहिए।⁷

पुतिन युग में रूसी विदेश नीति आधी सदी से भी पहले के केनन के विवरण पर फिट बैठती है। क्रेमलिन के दृष्टिकोण में राष्ट्रीय शक्ति के अन्य गैर-सैन्य उपकरणों के संयोजन में सैन्य बल का अपेक्षाकृत कम लागत, सीमित उपयोग शामिल है। सूचना संचालन, प्रचार और दुष्प्रचार, साइबर संचालन, व्यापार प्रतिबंध, और अन्य उपकरणों की एक विस्तृत श्रृंखला को एकीकृत किया गया है जिसे आमतौर पर हाइब्रिड युद्ध के रूप में जाना जाता है। पश्चिमी राजधानियों में वर्तमान नीतिगत चर्चाओं से अक्सर यह धारणा बनती है कि मास्को मौलिक रूप से एक नया टूलकिट लेकर आया है। वास्तव में, ऐसे उपकरणों पर व्यापक निर्भरता लंबे समय से रूसी घरेलू राजनीति और विदेश नीति की विशेषता रही है।

निष्कर्ष

रूस की विदेश नीति के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए ऑफ-द-शेल्फ सोशल मीडिया तकनीकों का उपयोग 2016 में अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव के साथ-साथ अन्य स्थितियों में भी प्रदर्शित किया गया है। तकनीकी सफलता-आभासी वास्तविकता और कृत्रिम बुद्धि, प्रगति के सबसे अधिक बार उल्लेख किए गए क्षेत्रों में से केवल दो नाम देने के लिए-निस्संदेह रूसी राज्य अभिनेताओं और उनके एजेंटों द्वारा अपनाया जाएगा, उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल, और (यदि आवश्यक हो) चल रहे टकराव के लिए हथियार पश्चिम के साथ। ये प्रौद्योगिकियां नई हो सकती हैं, और वे रूसी विदेश नीति के शस्त्रागार के विस्तार और समृद्ध करने की संभावना रखती हैं। फिर भी मॉस्को की ड्राइविंग महत्वाकांक्षा, साथ ही उस शस्त्रागार में कई अन्य उपकरण, सोवियत विदेश नीति की स्थायी छाप जारी रखेंगे।

संदर्भ

1. ओल्गा क्रिस्टानोव्सकाया, “पुतिन का शासन: एक उदार मिलिटोक्रेसी,” प्रो एट कॉन्ट्रा 7:4 (2002): 158-180।
2. वही, पृ 182
3. सर्गेई बिरयुकोव, “द ऑल-इनवेसिव क्लाइटेला,” स्वोबोडनया माइस्ल 7 (2012): 32-33।
4. ए.ई. चिरिकोवा, “क्षेत्रीय अभिजात वर्ग के आकलन में शक्ति का कार्यक्षेत्र: परिवर्तन की गतिशीलता,” पोलितिचेस्की इस्लेडोवानिया 6 (2008), पृ. 101.
5. वही, पृ. 105.
6. “कुलीन समूहों के रीसेट की पूर्व संध्या पर पोलित ब्यूरो 2.0,” रिपोर्ट जनवरी-फरवरी 2013 (मिनचेंको कंसल्टिंग, 19 फरवरी 2013)।
7. संघीय विधानसभा में आरएफ अध्यक्ष वी. पुतिन के बयान का शब्दशः रिकॉर्ड, रोसियस्काया गजेटा, 12 दिसंबर 2012।

‘तीसरी कसम’ कहानी में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना एवं प्यार की उत्कृष्टता

राम चरण मीना

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110021

फणीश्वरनाथ ‘रेणु’ का जन्म 4 मार्च सन् 1921 ई. में बिहार के पूर्णिया जिले के औराही-हिंङना गाँव में हुआ। हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत उन्हें आँचलिक उपन्यासकार एवं कहानीकार के नाम से जाना जाता है। हिन्दी कथा साहित्य में आंचलिकता के कारण ‘रेणु’ का आगमन एक धूमकेतु की तरह हुआ। अपने विपुल साहित्य में उन्होंने उपन्यास, कहानी, निबन्ध रिपोर्टाज आदि गद्य की विविध विधाओं में रचना की है। उनकी प्रमुख कृतियों में उपन्यास- मैला आँचल, परती परिकथा, जुलूस आदि।

कहानी- तुमरी, रसप्रिया, अच्छे आदमी, अजिन खेर आदि।

निबंध- ऋणजल: धन जल, वनतुलसी की गंध, श्रुत-अश्रुत पूर्व आदि।

रिपोर्टाज- नेपाली क्रांति कथा आदि प्रमुख हैं।

फणीश्वरनाथ ‘रेणु’ प्रेमचंद परम्परा के आंचलिक कथाकार के रूप में जाने जाते हैं उन्होंने अपने कथा साहित्य में पिछड़े हुए ग्रामीण वर्ग संघर्ष, शोषण तथा अत्याचारों का वर्णन किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में लोक संस्कृति की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर वहाँ की मूलभूत समस्याओं को उन्हीं की भाषा में अभिव्यक्त किया है। भाषा के स्तर पर वे अपनी रचनाओं में निरन्तर प्रयोग करते रहे हैं। ‘रेणु’ ग्रामीण जीवन के कुशल कथाकार के नाम से जाने जाते हैं। उनका साहित्य ग्रामीण अंचल के एक साधारण आदमी का पूरा चित्र है। उनकी कहानियों में प्रेम, हिंसा, संवेदना, अज्ञानता राजनीति और भावुकता के अनेक रंग देखने को मिलते हैं जो आजादी के बाद के भारत का आईना प्रस्तुत करते हैं।

‘रेणु’ अपनी कहानियों में ‘एक ओर आधुनिकीकरण की विडंबना के रूप में शहर की ओर पलायन करते ग्रामीण युवकों को अंकित करते हैं तो दूसरी ओर भारतीय ग्रामों की लोक कला एवं लोक संस्कृति को मिशनरी उत्साह और काव्यात्मक संवेदना के साथ पुनर्जीवित करने का प्रयास करते हैं।’¹ उनकी रचनाओं के बारे में रघुवीर सहाय ने कहा है कि “वह जैसा सोचते थे वैसा बोलते थे और जैसा बोलते थे, वैसा लिखते थे, और फिर जब उसको पढ़ें तो लगता था कि रेणु बोल रहे हैं। रेणु का देखना एक ही साथ बाहर और भीतर दोनों ओर होता है।

‘तीसरी कसम’ फणीश्वरनाथ ‘रेणु’ की सुप्रसिद्ध कहानी है इस कहानी ने ‘रेणु’ को साहित्य जगत में महत्वपूर्ण पहचान दिलाई है यह ‘तुमरी’ कहानी संग्रह में संकलित है। यह बिहार राज्य के आंचलिक जीवन पर आधारित कहानी है इस कहानी का प्रमुख पात्र ‘हिरामन’ है जो अपने जीवन में हुए कटु अनुभवों के कारण स्वयं के जीवन में तीन कसमें खाता है।

पहली कसम गाड़ी में बाँस न लादने की खाता है, दूसरी कसम गाड़ी में चोरी का माल न ढोने की खाता है तथा तीसरी कसम कहानी के कलेवर को समेटे हुए चलती है जिसमें वह अपनी गाड़ी में कंपनी में नौटंकी करने वाली स्त्री को न बिठाने की खाता है। इस कहानी की प्रारंभिक उक्ति अंतिम कथा से संबद्ध है। कहानी में ‘रेणु’ ने पूर्वदीप्ति के माध्यम से बीस वर्ष के अंतराल में घटने वाली घटनाओं का वर्णन करके कथा को आगे बढ़ाया है।

ग्रामीण अंचल पर आधारित ‘तीसरी कसम’ कहानी ग्रामीण परिवेश के पात्र गाड़ीवान ‘हिरामन’ के प्रेम को अभिव्यक्त करती है कहानी प्रेम के उस रूप को जिसमें अपेक्षा कम और समर्पण अधिक होता है व्यक्त करती है। यह प्रेम अति पवित्र और स्वार्थ-रहित होता है।

कहानी की मूल संवेदना को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

(1) मानवीय प्रेम का यथार्थ-

इस कहानी में प्रेम के सुन्दर स्वरूप का वर्णन हुआ है इसके साथ ही मानवीय पक्ष को भी प्रधान रूप से व्याख्यायित किया है। कहानी का प्रमुख पात्र ‘हिरामन’, ‘हीराबाई’ नामक स्त्री को सहज मानवीय भावों के साथ ही अपनी गाड़ी में स्थान देता है रास्ते में गाड़ी रोककर जलपान कराता है, मनोरंजन के लिए गीत भी सुनाता है-

“सजनवा बैरी हो गये हमार! सजनवा...!
अरे चिटिया हो तो सब कोई बाँचे, चिटिया हो तो...
हाय! करमवा, हो करमवा...”²

इन सब संदर्भों में हिरामन का सरल प्रेम जो नायक-नायिका में विद्यमान होता है उसके अतिरिक्त जो प्रेम सहज मानव हृदय में प्रज्वलित होता है उसे कहानी में उभारा है। 'हिरामन' किसी भी कार्य, क्रिया तथा स्वभाव से 'हीराबाई' को असहज महसूस नहीं कराता। वह उसका पूरा ख्याल रखता है। 'हीराबाई' भी नौटंकी देखने के लिए हिरामन को पाँच टिकट देती है। ताकि हिरामन और उनके मित्र बिना किसी परेशानी के कार्यक्रम देख सकें। ये सब व्यवहार एक-दूसरे के प्रति मानवीय प्रेम के यथार्थ को दर्शाता है।

(2) आधुनिक भारत और बाजारीकरण का प्रभाव

'तीसरी कसम' कहानी में बदलते भारत का स्वरूप सहज रूप में दृष्टिगोचर है। कहानी में जाल की तरह बिछी सड़कें और गाड़ीवान के माध्यम से व्यवसाय आदि इस बात की पुष्टि करता है। आधुनिकीकरण का प्रभाव केवल भौतिक वस्तुओं की उपलब्धता के रूप में ही नहीं बल्कि विचारों में समता, मानवता और एकता के भाव बोध के रूप में भी देखा जा सकता है। ग्रामीण परिवेश के गाड़ीवानों के बीच की आत्मीयता कोई नई बात नहीं है किन्तु हिरामन जो एक गरीब गाड़ीवान है और हीराबाई आर्थिक रूप से मजबूत है उनके बीच जो प्रेम, भावाभिव्यक्ति और आचार-विचार का सहज आदान-प्रदान देखने को मिलता है वह उल्लेखनीय है। इसका मुख्य कारण आधुनिक भारत के उस विचार या आंदोलन से है जहाँ मनुष्य को मनुष्यता और मानवता के आधार पर जोड़ने की बात होती है न कि ऊँच-नीच, गरीब-अमीर आदि।

कहानी में बाजारीकरण का भी सहज-बोध देखने को मिलता है। चाहे ग्रामीण समाज हो या शहरी समाज हर जगह बाजार का प्रभाव दृष्टिगोचर है। कहानी में मेले के माध्यम से जरूरत और मनोरंजन के साधनों को एक ही जगह उपलब्ध कराया गया है। नेपाल से खाद्य पदार्थों और वस्तुओं का आयात-निर्यात देखा जा सकता है। ये सब बाजार और पूंजी के ही महत्व पर आधारित है।

(3) मेहनत, मजदूरी और कार्य के प्रति निष्ठा

हिरामन एक गरीब परिवार से आता है। उसके अन्य बन्धुगण भी ऐसे ही समाज से आते हैं। वे गाड़ी चलाकर अपनी रोजी-रोटी की व्यवस्था करते हैं। और अपने कार्य के प्रति निष्ठावान भी होते हैं। उल्लेखनीय है कि एक बार जब सारे गाड़ीवान बाद्य को एक मले से दूसरी जगह यात्रा कराने के लिए मालिक की बात को मानने में असहज हो जाते हैं तो गाड़ीवान हिरामन ही अपने कार्य के प्रति अपनी निष्ठा का प्रमाण देते हुए उसे अपनी गाड़ी में ले जाने के लिए तैयार हो जाता है। ये उसके साहस के साथ ही अपने कर्म के प्रति श्रद्धावान होने का भी प्रमाण देता है। इसके अलावा जब हीराबाई हिरामन को आवश्यकता से अधिक रूपये-पैसे देती है तब हिरामन उसे बड़ी उदारता के साथ लौटा देता है।

(4) देहाती जीवन का यथार्थ चित्रण

'तीसरी कसम' कहानी में रेणु ने आँचलिकता का परिचय अपनी विशेष कला के माध्यम से दिया है। उन्होंने ग्रामीण अंचल की जो रूपरेखा तैयार की है वह मनोरंजक और रूचिकर है। गाँवों में रहने वाले लोगों के बीच जो प्रेमभाव, आत्मीयता और रिश्तों में गर्माहट होती है वह सहज ही दृष्टिगोचर है।

ग्रामीण जीवन का स्नेह और आत्मीयता के अतिरिक्त भी कई दृश्य कहानी में विद्यमान हैं जो पाठकों को हंसाता और आनंद देता है। जब हिरामन अपनी गाड़ी में हीराबाई को बैठाकर गाँव की सड़क से गुजरता है तो वहाँ मौजूद छोटे-छोटे बच्चे उसके पीछे लग जाते हैं और मिठाई की माँग करते हैं। बच्चे लोक गीत भी गाते हैं-

“लाली-लाली डोलिया में

लाली रे दुलहनिया

पान खाये...।³

इसके बाद की प्रतिक्रिया निम्नलिखित है-

“हिरामन हँसा!... दुलहनिया लाली-लाली डोलिया!

दुलहनिया पान खाती है, दुलहा की पगड़ी में मुँह

पोंछती है। ओ दुलहनिया, तेगछिया गाँव के बच्चों

को याद रखना। लौटती बैर गुड़ का लड्डू लेती आइयो।

लाख बरिस तेरा दुलहा जीये!”⁴

शहर या तथाकथित सभ्य समाज में बच्चों की ये क्रियाएँ उछल-कूद न के बराबर ही देखने को मिलती हैं। हिरामन द्वारा महुआ घटवारिन की प्रसिद्ध कहानी सुनाना जिसमें उसके सौतेली माँ के कठोर हृदय का वर्णन, महुआ का स्वभाव और दैनिक कार्य गाँव की भोली-भाली लड़की की कहानी को प्रस्तुत करता है। हीराबाई को गीत और कथा दोनों का शौक है... इस! महुआ घटवारिन वह बोला, “अच्छा, जब आपको इतना शौक है तो सुनिए महुआ घटवारिन का गीत! इसमें गीत भी है, कथा भी है।”

हिरामन ने धीरे-धीरे गुनगुनाकर गला साफ किया-

“हे अ-अ-अ सावना-भादवा के-रे-उमडल नदिया-गे-मैं-यो-ओ-ओ,

मैया गे रैन भयावनि-हे-ए-ए-ए;

तड़का-तड़का धड़के करेज-आ-आ मोरा,

कि हमकूँ जे बार- नान्ही रे-ए-ए...।”⁵

(5) सामाजिक यथार्थ का चित्रण

‘तीसरी कसम’ कहानी आधुनिक युग में समाज को केन्द्र में रखकर लिखी गई है इसलिए राजनीति, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तन दृष्टिगोचर है। समाज में आधुनिकता का प्रभाव और तर्क का प्रसार देखा जा सकता है। किन्तु इन सब के बावजूद तत्कालीन समाज में जाति, नसल और कार्य समूह को लेकर विशेष कुण्ठा सहज ही देखने को मिलती हैं कहानी में देखा जा सकता है जब हीराबाई स्टेज पर अपना कार्यक्रम दे रही होती है तब हिरामन के नजदीक में बैठे कुछ दर्शक उसे वेश्या कह कर सम्बोधित करते हैं। उसका उपहास करते हैं। हिरामन के विरोध दर्ज करने पर भी वे अपनी मानसिकता में परिवर्तन नहीं लाना चाहते बल्कि इस पूर्वाग्रह बड़ी जडता के साथ जुड़े होते हैं। उनका ये पूर्वाग्रह उसी सामाजिक कुरीति का परिचायक है जहाँ हम किसी के बारे में पहले से एक धारणा बना लेते हैं।

अंत में यह कहा जा सकता है कि ‘रेणु’ की कहानियों में पात्रों और परिवेश की संश्लिष्ट घुलावट का वर्णन मिलता है इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव ने ठीक ही लिखा है- “परिवेश-वातावरण जीवित पात्र की तरह सामने खड़ा होकर अपना हक अकेले में ही माँगता है।”⁶

संदर्भ सूची:-

1. हिन्दी कहानी का विकास, मधुरेश, पृ. 96
2. फणीश्वरनाथ रेणु-चुनी हुई रचनाएँ, सं. भारत यायावर, पृ. 87
3. वही, पृ. 89
4. वही, पृ. 90
5. वही, पृ. 91
6. रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ, सं. राजेन्द्र यादव, भूमिका, पृ. 6

पं० दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म दर्शन और राष्ट्र चिंतन

डॉ० संजय कुमार

इतिहास विभाग, देशबंधु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

सभ्य समाज में उद्दीप्त मानव विचारों का एक पुंज होता है, विचारों की प्रखरता से आबद्ध होकर ही संस्कारों का अभ्युदय होता है। मनुष्य के इन्हीं विचारों के संकेन्द्रण में कर्म की व्युत्पत्ति होती है, जो सामाजिक धरातल पर व्यष्टि और समष्टि, सभी के हितों का कारक होता है। भारतीय मनीषियों ने इन्हीं मानवीय हितों को संकेद्रित कर विचार विमर्श की ऊचाइयों को छूने का प्रयास किया। इस विचार प्रवाह में यह सारतत्व प्राप्त हुआ कि उत्तम धर्म वह है, जहाँ सह-अस्तित्व से अभिप्रेरित एक सामंजस्यता हो। मनुष्यों के मध्य विकास का मार्ग खुला हो, जो परस्पर एक दूसरे के लिए साधक हो। समाज में धर्म न हो तो मानवीय कर्म सहित राज्य का स्थायित्व भी अनिश्चित हो जाता है। धर्म जीवन के सभी पहलुओं से संबंध रखने वाली चीज है जिसके मूलतत्त्व सनातन और सर्वव्यापी हैं और देशकाल परिस्थिति के अनुरूप व्यवहार करते हैं। यही कारण है कि धर्म में हमारा विश्वास केवल उसकी सघनता के कारण नहीं अपितु वह स्वयंभू है। मानवीय मूल्यों की कल्पना एक यथार्थवादी और भेदविहीन दृष्टिकोण में करने वाले पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का नाम भारतीय चिंतन धारा के विशिष्ट मनीषियों में लिया जाता है। जिन्होंने मानव की यथार्थ कल्पना भेदविहीन रूप में करते हुए व्यक्ति के शरीर, मस्तिष्क, दृष्टि व आत्मा की सामूहिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। इनकी सामूहिक उपस्थिति में मानवीय मूल्यों व मानवीय संवेदनाओं को अभिकेंद्रित कर भारतीय संस्कृति, दर्शन व विचार को लक्षित कर मानव मात्र के कल्याण हेतु एकात्म मानववाद का विचार प्रस्तुत किया। दीनदयाल उपाध्याय दीर्घकालिक सोच के व्यक्ति थे। इन्होंने मानव जीवन के सम्पूर्ण परिदृश्य को अपने विचार अभिव्यक्ति में स्थान प्रदान किया तथा उसके जीवनकाल की समस्त जरूरतों को केन्द्रित कर अपने विचार संकल्पना को प्रस्तुत किया। पं. दीनदयाल जी का विचार दर्शन कोई रहस्य नहीं है अपितु यह प्रकृति से लिए हुए मौलिक विषय के तत्व हैं। यह विचार दर्शन हमारी संस्कृति, पूरी सृष्टि व समाज का ही नहीं वरन मानव मन, बुद्धि, आत्मा और तन (शरीर) का भी समुच्चय है। इन्होंने मानव स्वभाव को समझकर सुखी, शांत एवं मुक्त जीवन जीने की ऐसी पद्धति विकसित की, जो पूर्णतः वैज्ञानिक है।

भारतीय संस्कृति अपनी सनातनी संस्कृति की अविरल धारा लिए सहस्रों वर्षों से चली आ रही है। जिसमें निरंतर चेतना है और यह सतत जीवंत, गतिशील और स्पन्दनशील बनी हुयी है। भारतवर्ष अपनी संस्कृति और परंपरा के माध्यम से राष्ट्र जीवन के सभी क्षेत्रों में राष्ट्रीय अस्मिता के चिंतन को प्रवाहित करती है। जिस प्रकार भारत की पवित्र नदी गंगा गंगोत्री से निकलकर विभिन्न नदियों की जलधारा को आत्मसात करते हुए गंगासागर में अपने मूलरूप में ही मिलती है ठीक उसी प्रकार उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक विभिन्न प्रभावों को समेटे हुए भारतीय राष्ट्रीय चिंतन धारा 'विविधता में एकता' के भाव को भारतीय संस्कृति का मूल विचार मानती है। पं. दीनदयाल जी ने सांस्कृतिक अस्मिता पर जोर देकर कहा है कि, "भारतीयता की पहचान भारतीय संस्कृति ही है। भारत की अस्मिता उसकी गौरवशाली परम्पराओं, आध्यात्मिक ज्ञान, मान्यताओं और मूल्यों में निहित है।" भारतीय संस्कृति व जीवन पद्धति अपनी श्रेष्ठ परम्पराओं को इस प्रकार संजोये हुए हैं कि इसमें सभी प्रकार की वनस्पतियों, वृक्षों, पशु-पक्षियों, नदियों, सरोवरों, पर्वतों तथा समुद्रों में देवत्व के दर्शन सहजता से परिलक्षित होते हैं। भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति से राष्ट्रीय प्रेरक बल व सामर्थ्य की उत्पत्ति होती है। इसके सन्दर्भ में अथर्ववेद में भी उल्लिखित है—

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वविदुर्स्तपो दीक्षमुपनिषेदुरग्रे।

ततो राष्ट्रं बलमोजश्चजातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु।^१

अर्थात् कल्याण की रक्षा करने वाले आत्मज्ञानी ऋषि प्रारंभ में तप और दीक्षा का आचरण करने लगे। उससे राष्ट्र हुआ और बल तथा सामर्थ्य भी उत्पन्न हुआ। पं. दीनदयाल राष्ट्रीय चेतना के विषय में अत्यंत सजग दिखाई देते हैं। उनका मानना है कि सांस्कृतिक चेतना के अतिरिक्त राष्ट्र को संगठित करने हेतु उसके भीतर की चेतनता को जगाना पड़ता है। मानवीय चिति जागृत हो गयी तो राष्ट्रीय चौतन्य जागृत हो जायेगा। पं. दीनदयाल जी भू-सांस्कृतिक अवधारणा के सन्दर्भ में चिति को राष्ट्रीय संस्कृति का नियामक तत्व स्वीकार करते हुए कहते हैं, "हर एक राष्ट्र की एक विशेष प्रकृति होती है, एक मूल स्वभाव होता है। हमारे राष्ट्र की जो मूल प्रकृति है उसका नाम चिति है।" भारतीय राष्ट्रीय-सांस्कृतिक परंपरा में चिति के दो परस्पर अन्तः सम्बन्धी आयाम धर्म व संस्कृति का उल्लेख पं. दीनदयाल ने किया है, जो परस्पर राष्ट्र चिंतन व राष्ट्र निर्माण की दिशा में साथ-साथ चलती हैं। जिससे राष्ट्र विकास की ओर अग्रसर होता है। भारतीय मनीषियों ने साहित्य व विमर्शों के माध्यम से भारतीय राष्ट्रीय चेतना को समय-समय पर जागृत करने का कार्य किया है। हिंदी साहित्य के राष्ट्रवादी लेखक जयशंकर प्रसाद ने भी अपने साहित्यिक कृतियों को राष्ट्रीय जागरण का माध्यम बनाया तथा भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता के जागरण व रक्षा हेतु देशवासियों से समर्पण की अपील करते हैं—

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारतीय।

स्वयंप्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती॥

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ प्रतिज्ञा सोच लो।

प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो बढ़े चलो॥⁴

भारतीय राष्ट्रीय व सांस्कृतिक एकता अटूट है, जो न केवल भौतिक पक्षों में अपितु सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों में भी एकनिष्ठ भाव रखती है। भू-पटलपर शायद ही कोई अन्य राष्ट्र है जिसकी भौगोलिक, सामाजिक व धार्मिक विभिन्नताओं में सांस्कृतिक एकता का मूल हो। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 1916 में कोलंबिया विश्वविद्यालय में 'कास्ट्स इन इंडिया : देयर मेकेनिज्म, जेनेसिस एंड डेवेलपमेंट' शीर्षक से आयोजित सेमिनार में भारतीय सांस्कृतिक एकता को समस्त विविधताओं का मूल मानते हुए भारतीय प्रायद्वीप की विशिष्ट संस्कृति घोषित किया है- "I venture to say there is no country that can rival the Indian Peninsula with respect to the unity of its culture- It has not only a geographical unity, but it has over and all a deeper and much more fundamental unity & the indubitable cultural unity that cover the land from end to end"⁵

भारतीय एवं वाह्य सभी चिंतन धाराओं का सम्यक आकलन कर, शक्ति और दुर्बलताओं को परखता हुआ, मानवीय एकात्मवाद, एक ऐसा मार्ग प्रशस्त करता है जो मानव के अब तक के चिंतन अनुभवों की उपलब्धि को शीर्ष तक पहुंचाता है। एकात्मवादी दर्शन का उद्बोधन पं. दीनदयाल जी ने तब किया, जिस समय पूरा विश्व पूंजीवाद और साम्यवाद की अच्छाई और बुराई में उलझा हुआ था। उस समय पं. दीनदयाल जी ने इन दोनों विचार धाराओं को नकारते हुए एकात्म मानववाद की अवधारणा प्रस्तुत की। साम्यवाद और पूंजीवाद की निरपेक्ष वकालत करते हुए पं. दीनदयाल जी ने अपने कहा है कि, "पूंजीवादी और साम्यवादी, दोनों प्रणालियाँ आम आदमी के पूर्ण व्यक्तित्व और उसकी आकांक्षाओं को पूर्ण करने में विफल रही है। एक (प्रणाली) मात्र स्वार्थ, पैसे (भौतिकवाद) के पीछे भागना, जहाँ केवल एक ही कानून है, प्रतिस्पर्धा का कानून; जबकि दूसरे की पूरी योजना में एक कमजोर बेजान व्यक्तित्व, जो कठोर नियमों द्वारा विनियमित है, और कुछ भी अच्छा करने में असमर्थ, जब तक उसे निर्देशित न किया जाए। दोनों प्रणालियों ने मानवता के साथ खिलवाड़ किया है।"⁶ यद्यपि पं. दीनदयाल का विचार दर्शन उपर्युक्त दोनों विदेशी विचारधाराओं से भिन्न था परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं था कि उनका किसी बाहरी पाश्चात्य विचार वस्तु से कोई दुराग्रह था बल्कि उन्होंने जीवन में प्रतिसंतुलन के साथ एकात्म स्थापित करने तथा इसकी तलाश अपने निज सनातनी धर्म, संस्कार व संस्कृति में किया। इन्हीं मानवीय प्रति संतुलन को अभिव्यक्ति प्रदान करता एकात्म मानववाद भारतीय संस्कृति व दर्शन के बीच से ही उपजा एक विचार है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने कभी भी इस बात का दावा नहीं किया कि उन्होंने दुनिया के सामने कोई नयी बात रखी है। अपने विचार के पक्ष में उन्होंने सदैव यह कहा है कि एकात्म मानववाद के माध्यम से भारत की सनातन संस्कृति की ही बात की गयी है। उनका ध्येय था कि समाज का आधार संघर्ष नहीं सहयोग है। एकात्म मानव दर्शन के सन्दर्भ में दीनदयाल जी का मत था कि मैं आप लोगों के सम्मुख कोई नई बात नहीं रख रहा हूँ। हमारी जो मिटटी है, इन सबके लिए जिन चीजों की आवश्यकता है और हमारे स्वभाव से जो मेल खाती हुयी चीजे हैं उन सबका एक मिश्रण, निचोड़ ही एकात्म दर्शन है। उन्होंने देश को अपने एकात्म दृष्टिकोण द्वारा आर्थिक उन्नति की ओर अग्रसर करने की नई दिशा प्रदान की है, अर्थात् आर्थिक व्यवहारों को आध्यात्मिक मूल्यों के साथ समावेशित कर एक खुशहाल समाज की नींव डालने का प्रयास किया। उन्होंने अपने विचार शोध में एकात्म मानववाद के सन्दर्भ में कहा है, "मानव भगवान की उत्कृष्ट देन है, जो अपनी पहचान खो रहा है। हमें उसको सही स्थिति में फिर से स्थापित करना चाहिए, उसे उसकी महानता की पहचान, उसकी क्षमताओं को जगाने और ऊँचाइयों को प्राप्त करने के लिए, उसके दिव्य अव्यक्त व्यक्तित्व को फिर से जगाने के लिए उसे प्रोत्साहित करना चाहिए।"⁷ यह दर्शन समाज में मानवीय गरिमा को स्थापित करने का एक प्रयास है। इस मानवीय विचार का उदघाटन पं. दीनदयाल जी के श्रीमुख से 1964 में ग्वालियर मध्यप्रदेश के जनसंघ के सम्मलेन में हुआ। इन्होंने अपने विचार दर्शन के सन्दर्भ में पूंजीवाद व साम्यवाद के वैचारिक संकल्पनाओं से अलग मानव जीवन व मानव मूल्य के समग्र रूपों को शामिल किया। जहाँ पूंजीवाद ने मानव को एक आर्थिक इकाई माना और साम्यवाद ने व्यक्ति को राजनीतिक और कार्मिक इकाई माना। इसके विपरीत एकात्म मानववाद में व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र और फिर मानवता को स्थान दिया है। एकात्म मानववाद के अनुसार, व्यक्ति केवल शरीर मात्र नहीं है, इसलिए शरीर पर ठीक से विचार किया जाना चाहिए। इसके अनुसार मनुष्य का शरीर मानव मन, बुद्धि और आत्मा का मिलन है। इसलिए मानव को समग्र रूप में देखना चाहिए और यही समग्रता उसे समाज के लिए उपयुक्त और उपादेय बनाती है। उनका ये मानना था कि शरीर हमारे धर्म, जीवन और सभी कार्यों और लक्ष्यों का साधन है तथा भारतीय चिंतन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की अवधारणा अर्थात् चातुर्विध एवं पुरुषार्थके समन्वय का विचार ही एकात्म मानववाद में समाहित है। पूरे मानव का निर्माण करने वाली इन चार तत्वों में एकात्मकता अपेक्षित है क्योंकि यही एकात्मकता मानव को कर्मठता की ओर प्रेरित करके उद्यमी बना सकती है। जिससे पूरे समाज का कल्याण होगा, एकात्म दर्शन के व्यावहारिक स्वरूप पर सांसद तरुण विजय ने राज्यसभा टीवी को दिए साक्षात्कार में यह कहा कि, "राष्ट्र प्रथम, राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को शिक्षा और संस्कार मिले। इसके लिए ही सरकार की शासन की नीति होनी चाहिए और समाज तथा सरकार दोनों को परस्पर सहयोग के साथ राष्ट्र के अभ्युदय और परम वैभव के साथ कार्य करना चाहिए। एकात्म मानव दर्शन का यही स्वभाव है।"⁸

पं. दीनदयाल उपाध्याय स्वतंत्र भारत की राजनीति को सुचारू रूप से चलाने के लिए तथा लोकतांत्रिक सूचितता को बरकरार रखने में भारतीय दर्शन को ही सबसे उपयुक्त मानते हैं, चाहे राजनीति का सवाल हो या अर्थव्यवस्था का या समाज का। भारतीय अर्थनीति के स्वरूप और विकास को भी उन्होंने इसी दृष्टि से देखा। अपने लेख भारतीय अर्थनीति विकास की दशा में उन्होंने लिखा है कि शासन का उद्देश्य उन्मोदक की परिकल्पना के अनुरूप होना चाहिए तथा शासन को व्यापार नहीं करना चाहिए और व्यापारी के हाथ में शासन नहीं आना चाहिए। भारतीय गणतंत्र के निर्माण के पश्चात् दीनदयाल उपाध्याय ने इस मत पर ज्यादा जोर दिया कि भारत के विकास के लिए ग्रामीण विकास और लघु उद्योगों को बढ़ावा देने की जरूरत है। आज भारत सरकार का विकासवादी मूलमंत्र 'सबका साथ सबका विकास' उन्हीं के अन्त्योदय की संकल्पना पर आधारित है। जिसका उद्देश्य समाज के अंतिम व्यक्ति का उद्धार था। पं. दीनदयाल जी ने अपने विकासवादी सूत्र के तहत 'आर्थिक लोकतंत्र' की परिभाषा प्रस्तुत की। अपनी पुस्तक 'Two Plans: Promises and Performance, Prospectus'

और 'भारतीय अर्थनीति विकास की एक दशा' में इन्होंने भारतीय अर्थायाम की अवधारणा को प्रस्तुत किया है। जिसमें परम्परागत स्वरोजगार को सफल बनाने तथा निजी व सार्वजनिक क्षेत्र के कृत्रिम विभाजन से दूरी बनाये रखने की बात की है। अंत्योदय की राष्ट्रीय संकल्पना का खाका प्रस्तुत करते हुए पं. दीनदयाल जी ने त्रि-सूत्रीय समीकरण प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि गरीबी केवल अर्थाभाव की गरीबी नहीं है अपितु इसमें त्रि-सूत्रीय चरित्र को भी ध्यान देने की जरूरत है, जिसमें उत्पादन में वृद्धि, वितरण में समानता तथा उपभोग में संयम होना बहुत जरूरी है। पं. दीनदयाल जी ने अर्थतंत्र में रुपये-पैसे की महत्ता को कमतर करते हुए श्रम को तरजीह दिया है। उनका मत है कि, "समाज के मानदंड ऐसे बनाये जाय कि हर वस्तु पैसे से न खरीदी जा सके। पैसे से मूल्य आँकने का परिणाम यह होगा कि दुर्बल की रक्षा ही नहीं हो पायेगी। शरीर शक्ति में दुर्बल अपनी बुद्धि का उपयोग कर धूर्तता से धन कमाकर अपनी रक्षा का मूल्य कमाएगा।" इस प्रकार श्रम और पारिश्रमिक दोनों के मूल्यांकन का आधार रूप-पैसे नहीं होने चाहिए क्योंकि श्रम की प्रतिष्ठा उसके पारिश्रमिक में नहीं अपितु उसके धर्मत्व में है। इस प्रकार किसी व्यक्ति को श्रम के बदले में प्राप्त पारिश्रमिक प्रतिदान मात्र है, जो उसके मूल्याङ्कन का आधार नहीं हो सकता है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय शासन व सत्ता के साथ ही साथ सामाजिक व आर्थिक व्यवस्थाओं के विकेन्द्रीकरण के पक्षधर थे। पं. दीनदयाल ने पूंजीवाद के मूल तत्व अतिकेंद्रियकरण के खिलाफ विकेन्द्रीकरण को सार्थक पहल मानते हैं। एकात्म मानववाद में पं. दीनदयाल जी ने मानव के सम्पूर्ण विकास में समाज और राष्ट्र के कल्याण को आधारित करते हुए राष्ट्रीय अर्थनीति हेतु विकेन्द्रीकरण के पक्ष में कहा है कि, "स्वदेशी और विकेन्द्रीकरण, वर्तमान परिस्थितियों में ये दो शब्द अर्थनीति का संक्षेप में वर्णन करने के लिए उपयुक्त हैं।" ¹⁰ उनकी अर्थनीति के अनुसार विकेन्द्रीकरण के प्रभाव में यदि पूंजीवादी ताकतों को धन सृजन का अवसर नहीं मिलेगा तो उत्पादन धीमा होगा, जिससे ग्रामीण कुटीर उद्योगों के उत्थान को बल मिलेगा और गाँव स्वावलंबी होंगे। प्रेरणा प्राप्त व्यक्ति अधिक से अधिक उच्च गुणवत्ता वाले वस्तुओं का निर्माण करेंगे। यह निर्माण हमारी पुरातन संस्कृति के मूलभूत उपादानों के अनुरूप होगी। यही कारण है कि पं. दीनदयालविभिन्न सामाजिक क्षेत्रों के राष्ट्रीयकरण के खिलाफ थे। उनका मत था कि मेहनतकश लोगों को अपनी बुनियादी जरूरतों के लिए राज्य पर आश्रित रहने की जरूरत नहीं है। उनका मत है कि जिस प्रकार ग्राम पंचायत भारतीय लोकतंत्र की प्राथमिक राजनीतिक इकाई है, उसी प्रकार ग्रामीण स्वावलंबन व कुटीर उद्योगों का विकास अर्थनीति की प्रारंभिक इकाई है। पं. दीनदयाल इस प्राथमिक अर्थ इकाई के द्वारा राष्ट्रीय अर्थनीति दिशा निर्धारित करने की बात करते हैं। आर्थिक विकेन्द्रीकरण के इस बिंदु पर पं. दीनदयाल महात्मा गाँधी जी के इस कथन का समर्थन करते हैं, "मैं विशाल उत्पादन चाहता हूँ परन्तु विशाल जनसमूह के द्वारा।" ¹¹ इस प्रकार ग्रामीण विकास के द्वारा राष्ट्रीय विकास की परिधि को दीनदयाल जी ने चिन्हित करने का प्रयास किया। जिसमें उच्च उत्पादन हो, उत्पादित वस्तुओं का समान वितरण हो, मितव्ययी उपभोग हो तथा सरकारी तंत्र का न्यूनतम हस्तक्षेप हो। इस प्रकार दीनदयाल ने ऐसे अर्थतंत्र की वकालत की जहाँ राष्ट्र का आर्थिक विकास ग्रामीण आर्थिक विकास से निर्धारित होता हो।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय परंपरा को एकात्म मानववाद से परिभाषित किया जिसमें राज्य की भूमिका को निर्धारित करते हुए, 'राज्य के उत्स' की खोज भारतीय परंपरा में करने की बात कही है। धर्म को राज्य का नियामक तत्व मानते हुए कहते हैं कि जब राज्य रूपी कल्पना नहीं थी न ही राजा तथा न ही उसका कोई दंड विधान था, तब धर्म ही एक मात्र केन्द्रीय तत्व था जिसके आरोहण में लोग एक दूसरे की रक्षा करते थे अतः धर्म की राज्य के उत्पत्ति में विशिष्ट भूमिका है। पं. दीनदयाल जी मानते हैं कि राज्य की उत्पत्ति से पूर्व समाज की उत्पत्ति हुई और इसी के सामानांतर धर्म के उत्स को देखा जा सकता है, इसीलिए धर्म को समाज का सहोदर मानते हुए कहते हैं कि, "समाज प्राथमिक संगठन है और राज्य द्वितीयक। पहले समाज बना और वह समाज बिना राज्य के चलता रहा तथा समाज को चलाने वाली उस व्यवस्था को धर्म कहा गया है।" ¹² पं. दीनदयालजी राज्य को समाज का अनिवार्य अंग मानते हुए समाज रूपी संस्था का नियामक माना है, जो लोगों को अधर्म करने से रोकता है तथा अच्छे कर्म करने वाले लोगों को प्रोत्साहित करता है। अर्थात् वर्तमान संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि राज्य का मूल कर्तव्य कानून और व्यवस्था का निर्माण करना तथा सभी सामाजिक प्राणियों द्वारा उस नियम के अनुरूप आचरण करने की व्यवस्था करना है। इस कर्तव्यपथ पर राज्य समाज में धर्म की चेतना का सहकारी होता है। यही कारण है कि पं. दीनदयाल जी ने राज्य के राजा व प्रशासक को भी धर्म का नियामक न मानते हुए केवल सहकारी माना है। उन्होंने धर्म को भारतीय प्रज्ञा से निकला हुआ एक मौलिक शब्द स्वीकार किया है, जिसकी व्याख्या दोस्तरों पर की जा सकती है- प्रथम-राज्य विहीन धर्म व्यवस्था तथा दूसरा धर्म-राज्य की व्यवस्था। इसका तात्पर्य 'राज्य विहीन धर्म व्यवस्था में धर्म-राज्य की स्थापना करना है। उनका मानना है कि धर्म को इसलिए नियामक माना गया है क्योंकि राज्य और राजा दोनों को निरंकुश होने की छूट नहीं दी जा सकती कि वे मनमानी से नियम व कानून बनाए तथा राज्य को अपनी निरंकुशता की सनक में प्रवाहित कर दें। यही कारण है कि पं. दीनदयाल जी विधि के शासन की बात करते हुए कहते हैं, "धर्म-राज्य का निकटतम अंग्रेजी अनुवाद है- 'रूल ऑफ लॉ'। इसका मतलब है वह राज्य जहाँ पर कांस्टीट्यूशनल लॉ है और रूल ऑफ लॉ है, वहाँ व्यक्ति का नहीं विधि का शासन है।" ¹³ पं. दीनदयाल जी ने राज्य का कर्तव्य समाज का प्रतिनिधित्व करना बताया है लेकिन समाज का एकीकरण करना राज्य का कार्य नहीं, उसके लिए राज्य के अतिरिक्त विभिन्न संस्थाओं जैसे- पंचायत की संस्था, जाति की संस्था, उपासना पद्धतियों की संस्थाएँ इत्यादि का अभ्युदय भी भारतीय चित्त से हुआ है। जिनका कार्य भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ करना है जिससे राज्य और राष्ट्र की समेकित संकल्पना को प्रतिबिंबित किया जा सके। इन सभी को समवेत करते हुए भारतीय सांस्कृतिक अखंडता की प्रौणताको आगे बढ़ाते हुए राज्य अपनी समेकित भूमिका का निर्वहन भारतीय संविधान की प्रतिबिंब में कर रहा है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने शिक्षा को राष्ट्र निर्माण व एकीकरण का सशक्त माध्यम स्वीकार किया है। शिक्षा का अर्थ है 'समर्थ होना' है, अर्थात् शिक्षा हमें समर्थ बनाती है। जिससे मनुष्य विपरीत परिस्थितियों में भी आपसी सामंजस्य व सहयोग के द्वारा विकास के पथ पर अग्रसर हो सके। ऋग्वेद में भी शिक्षा का अर्थ 'देने' के सन्दर्भ में बताया है। कौटिल्य ने भी शिक्षा के उद्देश्य को चिन्हित करते हुए कहा है कि, "धर्म-अविरुद्ध जीवन की स्थापना ही शिक्षा का सहज उद्देश्य है।" ¹⁴ पं. दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद की परिधि में राष्ट्र की मूल प्रकृति, विवेक और राष्ट्र की आत्मा के रूप में 'राष्ट्र की चित्ति' को स्थान प्रदान किया है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का अनुशीलन राष्ट्र चित्ति के सानिध्य में किया जा सकता है, जिसके लिए शिक्षा एक अनिवार्य शर्त है। दीनदयाल जी ने अपनी राष्ट्रीय सांस्कृतिक अस्मिता को विश्व जगत में प्रसारित करने में शिक्षा के महत्त्व को चिन्हित करते हुए कहा है, "भारत की

आत्मा को यदि समझना है तो उसे राजनीति अथवा अर्थनीति के चरमों से न देखकर सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखना होगा। विश्व को यदि हम कुछ सीखा सकते हैं तो उसे अपनी सांस्कृतिक सहिष्णुता एवं कर्तव्य प्रधान जीवन की भावना की शिक्षा दे सकते हैं।¹⁵ इस प्रकार शिक्षा एक उत्तम उपादान है जो मनुष्य के सशक्तिकरण में अग्रणी भूमिका का निर्वहन करती है। शिक्षा द्वारा मनुष्य के भीतर की मौलिकता का प्रकटीकरण किया जा सकता है जिसमें गुरु अर्थात् शिक्षक की भूमिका ईश्वर तुल्य होती है। वैदिक युग से ही भारतवर्ष में गुरु को साक्षात् परमेश्वर का स्वरूप स्वीकार किया गया है। हमारे प्राचीन पौराणिक ग्रंथों में भी गुरु की महिमा का बड़े ही मार्मिक रूप में चित्रण किया गया है। श्री गुरु गीता में भगवान शिव स्वयं गुरु शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं-

गुरुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्गुरुशब्दस्तनिरोधकः।

अंधकारनिरोधीत्वाद् गुरुरित्यभिधीयते।¹⁶

यहाँ 'गु' शब्द का अर्थ अंधकार और 'रु' का अज्ञान रूपी अंधकार का नाश है अर्थात् गुरु का संबंध अज्ञानता रूपी अंधकार के नाश से ज्ञान रूपी प्रकाश के दैवीव्यमान रूप से है। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने प्राचीन वैदिक युग की इसी गुरु शिष्य परंपरा को उदीप्त करने की बात कही है तथा यह बताया कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में शिक्षा और शिक्षक का एकात्म ही मनुष्य को श्रेष्ठ की श्रेणी प्रदान करते हैं। राष्ट्र को प्राणवान बनाये रखने में शिक्षा एक महत्वपूर्ण घटक है, यदि पाठ्यक्रम, पाठ्य सामग्री, पाठन पद्धति, शिक्षा के तंत्र, सन्दर्भ व उद्देश्य तथा शिक्षक, शिक्षणतंत्र व विद्यार्थी आदि सभी अनिवार्य तत्वों का अभिव्यक्तिकरण सुचारू ढंग से किया जाय तो राष्ट्र की चिति अर्थात् राष्ट्रीय चेतना का अस्तित्व प्रवीण होगा। अतः सार रूप में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा का कार्य व्यक्ति को धर्मानुरूप आचरण करने के लिए प्रवृत्त करना है जो शिक्षा के व्यष्टि और समष्टि रूप में सामंजस्य और सामरस्य का प्रणिपात करती है। शिक्षा का यह स्वरूप मनुष्य को जिज्ञासु व समर्थ बनाती है। यह मानवीय सद्गुणों यथा- इन्द्रिय-निग्रह, विनय, अहिंसा, मनसा वाचा कर्मणा शुद्धि, दयालुता, क्षमा, एकात्मकता इत्यादि के सृजन व विकास का मुख्य कारण है। राष्ट्र निर्माण के क्रम में पं. दीनदयाल जी ने शिक्षा को अभूतपूर्व कड़ी माना तथा मानव कल्पना को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि, "व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि और परमेश्वर इन चारों की एकात्मकता का नाम है 'मानव'। मानव से परमेश्वर को निकाल दो, मानव में से समष्टि को निकाल दो, मानव में से व्यष्टि को निकाल दो तो मानव विकलांग हो जायेगा। इसलिए जिन नीतियों का निर्माण करना है, जो कानून बनाना है, वह इस एकात्म मानव की शिक्षा कैसी हो, एकात्म मानव की अर्थव्यवस्था कैसी हो, इस एकात्म मानव की न्याय व्यवस्था कैसी हो तथा इस एकात्म मानव की सब व्यवस्थाएँ कैसी हों इनका विचार करे और अनुसंधान करे।"¹⁷ इस प्रकार हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति एकात्म मानव के इन चतुर्थांश व्यष्टि में ही उलझ कर रह गयी है जबकि प्राचीन शिक्षा पद्धति का उद्देश्य व्यक्ति को इतना समर्थ बनाना था कि वह स्वयं में ही इस एकात्म मानव का निर्माण कर सके। इन्हीं तत्वों के अवलोकन में पं. दीनदयाल जी ने शिक्षा के सरकारीकरण का विरोध किया। उनका मानना था कि शिक्षा देने का कार्य सरकार के हाथों में नहीं दिया जा सकता। ये काम समाज पर छोड़ा जा सकता है। उनका मानना था कि सरकार उन्हीं क्षेत्रों में अपना हस्तक्षेप करे और कार्य करे जिन क्षेत्रों में समाज या नीजी क्षेत्र जोखिम उठाने को राजी न हो। इस प्रकार यदि भारतवर्ष को ज्ञान के क्षेत्र में विश्वगुरु के स्थान पर पुनर्स्थापित करना है तो शिक्षा को भारतीय प्राच्य दृष्टि के अनुरूप परिवर्तित करना अनिवार्य है। जिससे प्रशिक्षु व्यक्ति स्वयं का, समाज का, इस प्रकृति तथा परमसत्ता का अंश बनकर सर्वजनहिताय, सर्वजन सुखाय के लक्ष्य को हासिल कर सके।

इस प्रकार पं. दीनदयाल ने अपने विचार दर्शन में मानव मात्र को केंद्र में रखते हुए अपने विचार दर्शन को व्यावहारिक आधार प्रदान किया। अधिक से अधिक जन भागीदारी को सुनिश्चित करने हेतु लोकमत परिष्कार पर ज्यादा जोर देने की बात की। इन्होंने लोकमत को बढ़ावा देने के लिए यह कहा कि, समाज का यह कर्तव्य होना चाहिए कि लोगों को जाति व धर्म के प्रति जागरूक करें, जिससे लोगों में एक दूसरे के प्रति परस्पर सद्भाव व सम्मान रहे तथा आपसी मनमुटाव न हो। इन सबके लिए सरकार की आर्थिक नीतियाँ भी प्रभावी भूमिका का निर्वहन करती हैं। अतः हमारी आर्थिक नीतियाँ भी इस प्रकार होनी चाहिए कि किसी प्रकार की आपसी विसंगति न दिखाई पड़े। इन सबके बावजूद ही अच्छे समाज का निर्माण संभव है। यदि अच्छे समाज का निर्माण होगा तो अच्छी राजनीति होगी, अच्छी राजनीति होगी तो राष्ट्र का निर्माण सही दिशा में होगा और देश प्रगति की ओर उन्मुख होगा। इस प्रकार पं. दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद एक वैचारिक अनुष्ठान मात्र नहीं है, बल्कि इसमें राजनीति, समाजनीति, अर्थव्यवस्था, उद्योग, शिक्षा और लोकनीति पर व्यापक और व्यावहारिक नीति निर्देश शामिल है। पं. दीनदयाल जी के राष्ट्र निर्माण की इसी विचार दर्शन के अभिकेंद्रण में देश विकास के पथ पर अग्रसर है। इस विचार दर्शन के अमरत्व को आत्मसात करते हुए पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के पुण्य अंत्येष्टि के अवसर पर श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने समस्त भारतवासियों का आह्वान करते हुए, पंडित जी के रक्त की एक-एक बुँद को माथे का चंदन बनाकर धैर्य पथ पर अनवरत अग्रसर होने की बात कही। वाजपेयी जी के रुधिर कणों से पं. दीनदयाल जी के संबंध में कहे गए उक्त कथन उन्हें तथा उनके विचार दर्शन (एकात्म मानववाद) की, भारतीय राष्ट्रीय सांस्कृतिक अखंडता में महत्त्व को परिलक्षित करते हैं-

नंदा दीपक बुझ गया, हमें अपने जीवन-दीपक जलाकर अन्धकार से लड़ना होगा।

सूरज छिप गया, हमें तारों की छाया में अपना मार्ग ढूँढ़ना होगा।

हमारा मित्र, सखा, नेता और मार्गदर्शक चला गया, हमें उनकी पवित्र स्मृति को

हृदय में संजोकर धैर्य पथ पर आगे बढ़ना होगा।¹⁸

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. चंद्रप्रकाश सिंह, भारतीय अस्मिता की निरंतरता (संपादित), अरुंधती वरिष्ठ अनुसंधान पीठ, प्रयागराज, प्रथम संस्करण- 2017, पृष्ठ संख्या-35
2. अथर्ववेद 19/14/1
3. डॉ. चंद्रप्रकाश सिंह, राष्ट्र दृष्टि (संपादित), अरुंधती वरिष्ठ अनुसंधान पीठ, प्रयागराज, प्रथम संस्करण-2019, पृष्ठ संख्या-33

4. जयशंकर प्रसाद, चंद्रगुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (प्रयागराज), लोकभारती संस्करण- 2009, पृष्ठ संख्या- 137
5. Indian Antiquary, vol-XLV May, 1917p-94
6. इंटिग्रल ह्यूमनिज्म, नवचेतन प्रेस, दिल्ली, 1965, पृष्ठ संख्या-76
7. एकात्म मानववाद, नवचेतन प्रेस,दिल्ली, 1965, पृष्ठ संख्या-78
8. दीनदयाल उपाध्याय दर्शन, राज्यसभा टीवी. (विशेष) कार्यक्रम, दिनांक- 25 सितंबर 2018
9. डॉ. श्यामबाबू गुप्त, श्रद्धेय दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म दर्शन के विभिन्न आयाम (संपादित), स्वरांजलि प्रकाशन, 2018, पृष्ठ संख्या-46
10. एकात्म मानववाद, नवचेतन प्रेस, दिल्ली, 1965, पृष्ठ संख्या-78
11. डॉ. श्यामबाबू गुप्त, श्रद्धेय दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म दर्शन के विभिन्न आयाम (संपादित), स्वरांजलि प्रकाशन, 2018, पृष्ठ संख्या-50
12. डॉ. महेंद्र शर्मा, पूर्व सांसद एवं अध्यक्ष एकात्म मानववाद दर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान द्वारा दिनांक 24 फरवरी 2015 को इलाहाबाद में दिया गया व्याख्यान।
13. डॉ. महेश चंद्र शर्मा,एकात्म मानववाद: राजनीतिक आयाम (लेख), एकात्म मानववाद विविध आयाम (संपादित), अरुंधती वशिष्ठ अनुसंधान पीठ, प्रयागराज, प्रथम संस्करण-2016, पृष्ठ संख्या-33
14. डॉ. चंद्रप्रकाश सिंह, भारतीय अस्मिता की निरंतरता (संपादित), अरुंधती वरिष्ठ अनुसंधान पीठ, प्रयागराज, प्रथम संस्करण- 2017, पृष्ठ संख्या-95
15. प्रो. कल्पलता पाण्डेय, भारतीय अस्मिता की शिक्षा में निरंतरता (लेख), भारतीय अस्मिता की निरंतरता (संपादित), प्रयागराज, प्रथम संस्करण-2017, पृष्ठ संख्या-93
16. Sanskritdocuments-org/doc_giitaa
17. डॉ. चंद्रप्रकाश सिंह, भारतीय अस्मिता की निरंतरता (संपादित), अरुंधती वरिष्ठ अनुसंधान पीठ, प्रयागराज, प्रथम संस्करण- 2017, पृष्ठ संख्या-111
18. श्री अटल बिहारी वाजपेयी, हम चुनौती स्वीकार करते हैं (लेख), पंडित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति दर्शन(संपादित), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,नई दिल्ली,पहली आवृत्ति-2018, पृष्ठ संख्या-95

आधुनिक भारत के निर्माता: डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर

प्रा० डॉ० मनोहर भंडारे

हिंदी विभाग, श्री. हावगीस्वामी महाविद्यालय, उदगीर

संसार में तीन प्रकार के विचार होते हैं। एक, जो तत्कालीन समय में प्रासंगिक होते हैं किंतु भविष्य में नहीं। दो, तत्कालीन में अप्रासंगिक किंतु भविष्य में प्रासंगिक और तीसरा, जो तत्कालीन समय और भविष्य में भी प्रासंगिक होता है। तीसरे प्रकार में बाबासाहब अम्बेडकर आते हैं क्योंकि वे किसी प्रश्न का ऐतिहासिक, तुलनात्मक, वैज्ञानिक और विश्लेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन करते थे। वे प्रखर बुद्धिवादी थे जिसका परिचय उनके समग्र लेखन से आता है। उन्होंने चार्वाक, बुद्ध और महात्मा फुले के भौतिक चिंतन पद्धति को सामान्य मनुष्य के जीवन का हिस्सा बनाया। इस बौद्धिक चिंतन का परिचय 'अनिहिलेशन ऑफ कास्ट' और 'कास्ट इन इंडिया' शोध निबंध से आता है। लोकतांत्रिक राष्ट्र के लिए जातिव्यवस्था सबसे बड़ी रूकावट है जिस जातिव्यवस्था को बाबासाहब ने भोगा भी था। भारत में शायद ही किसी ने जातिव्यवस्था पर इतना गहरा और मौलिक चिंतन किया होगा।

सन् 9 मई, 1916 को कोलंबिया विश्वविद्यालय में मानववंश शास्त्र के अंतर्गत बाबासाहब ने 'कास्ट इन इंडिया' शोध आलेख प्रस्तुत किया था जिस पर गंभीर चर्चा हुई थी। उस विश्वविद्यालय में बाबासाहब ने अनेक विषयों का अध्ययन किया था। वह अध्ययन कितनी गहराई से किया होगा, उसका परिचय सन् 2004 की एक घटना से आता है। 2004 में कोलंबिया विश्वविद्यालय को 250 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में उन्होंने 100 विद्वान छात्रों की सूची बनायी जिसमें अनेक नोबल पुरस्कार प्राप्त लोग थे। उस सूची में प्रथम क्रमांक पर बाबासाहब का नामोल्लेख था। क्यों? 1936 में जाति-पाँति तोड़क मंडल लाहौर की अध्यक्षता के लिए बाबासाहब को आमंत्रित किया था। कार्यक्रम के पूर्व बाबासाहब ने अपना भाषण इस मंडल को भेज दिया था। भाषण में जाति व्यवस्था पर प्रखर प्रहार किए थे। हिंदू धर्म ग्रंथों की चिकित्सा की थी। उस मंडल का पत्र आया उसमें लिखा था कि आप उस भाषण से वेद तथा धर्म ग्रंथों की जो आलोचना की है हटा दीजिए। तब बाबासाहब ने कहा था सम्मेलन का अध्यक्ष होना मेरी दृष्टि से कोई बड़ी बात नहीं है। अध्यक्ष पद के लिए मैं अपने विचारों से कभी समझौता नहीं कर सकता। मैं तो अपने भाषण से अल्पविराम भी कम नहीं कर सकता। किसी पद से अधिक मैं अपने विचारों का सम्मान करता हूँ। मेरे लिए उससे बड़ी कोई बात नहीं। सम्मेलन का अध्यक्ष पद उन्होंने त्याग दिया। बाबासाहब ने वह भाषण अपने खर्च से प्रकाशित किया। वह भाषण यानी 'अनिहिलेशन ऑफ कास्ट' ग्रंथ है। बाबासाहब के लेखन का सबसे मौलिक ग्रंथ यही कहना होगा।

महात्मा गांधी जाति व्यवस्था की ओर सहानुभूति, दया भाव की दृष्टि से देखते थे किंतु बाबासाहब ने उसे ऐतिहासिक, तार्किक दृष्टि से विश्लेषण कर उसकी सत्यता को सामने लाया। महात्मा गांधी अस्पृश्यता को पाप समझते थे तो बाबासाहब अस्पृश्यता को कानूनन अपराध। महात्मा गांधी जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था अर्थात् दोनों को अलग समझते हैं किंतु बाबासाहब का कहना था कि जाति व्यवस्था और वर्णव्यवस्था दोनों भिन्न नहीं हैं, जिसकी जड़ धर्मग्रंथ में हैं। वैसे जाति एक मनोविकार है। वह एक मनोवृत्ति है। उसका आधार कोई वैज्ञानिक नहीं है। चार्वाक ने भी जाति का तार्किक विश्लेषण करते हुए यह प्रश्न उपस्थित किया था कि यदि किसी नदी के रेत से एक घोड़ा, हाथी, गाय, कुत्ता जाता है और उसी रेत से एक चमार और ब्राह्मण जाति का व्यक्ति जाएगा। जैसे गाय और हाथी के पाँव के चिह्न भिन्न-भिन्न हैं क्योंकि दोनों प्राणियों की जातियाँ भिन्न-भिन्न हैं। किंतु उसी भाँति चमार और ब्राह्मण के पाँव की निशानी यदि भिन्न नहीं तो उसका अर्थ दोनों की जाति एक है। यह प्रकृतिगत सत्य है। लेकिन अपने स्वार्थ के लिए जातिव्यवस्था निर्माण की है। वह प्रकृतिगत नहीं है। बाबासाहब ने जिसे इमलों का घर कहा है, जिस घर को सीढियाँ ही नहीं हैं। किसी का किसी से संपर्क नहीं है अर्थात् जाति, धर्म और ईश्वर मनुष्य निर्मित है। जातिभेद करनेवाला पुरानी पीढ़ी के परिवेश का अनुकरण करता है। इसलिए वह उतना दोषी नहीं है। असली शत्रु तो 'मनुस्मृति' जैसे धर्मग्रंथ हैं।

'मनुस्मृति' जैसे धर्मग्रंथों ने मनुष्य-मनुष्य में भेद किया है। वर्णव्यवस्था निर्माण की। जातिव्यवस्था फैलाई। अस्पृश्यता ने तो मनुष्य के छाँव को भी नकार दिया था। इसीलिए बाबासाहब ने 25 जुलाई, 1927 को महाड में सार्वजनिक रूप से 'मनुस्मृति' ग्रंथ को जलाया। सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से यह एक ऐतिहासिक घटना थी। महात्मा फुले और बाबासाहब ने धर्मग्रंथों की चिकित्सा की। उसके पाखंड को समाज के सामने लाया। उसे सुरंग लगाया। वैसे सामान्य मनुष्य अनुकरण प्रिय होता है। वह विचारों का, तथ्यों का विश्लेषण कर सत्यता की खोज नहीं करता। अनुकरण में श्रद्धा बहुत महत्वपूर्ण होती है। सामान्य मनुष्य के सामने पीढ़ी-दर-पीढ़ी जो रखा जाता है वही वह स्वीकारता है। लेकिन पढ़े-लिखे वर्ग का दायित्व है कि सत्य से परिचित कराए। पाखंडता, धूर्तता से अवगत कराए।

गांधी जी ने कहा था जातिव्यवस्था सहभोजन से समाप्त होगी, लेकिन बाबासाहब ने तत्कालीन जातिव्यवस्था का गंभीर अध्ययन कर निष्कर्ष रूप में कहा कि अंतर्जातीय विवाह से ही जातिव्यवस्था समाप्त होगी क्योंकि अंतर्जातीय विवाह से अलग-अलग लोगों में रक्तसंबंध आते हैं, जिससे जातिव्यवस्था कमजोर हो जाएगी। जातिव्यवस्था गुफा है तो विवाह उसका ताला है। जाति के अंतर्गत विवाह के कारण सती प्रथा आरंभ हुई थी। पति मरने पर वह स्त्री परपुरुष से संबंध रखेगी या दूसरे जाति के व्यक्ति से शादी करेगी। इससे भला वह सती प्रथा स्वीकारे। बालविवाह के पीछे भी जातिव्यवस्था थी। सयानी होने से पहले ही यदि उसकी शादी अपने ही जाति में हुई तो उसे अन्य व्यक्ति से प्रणय भाव निर्माण नहीं होगा और लैंगिक शुचिता भी बनी रहेगी। वह शुद्धवंश की वाहक बने। विधवा विवाह के साथ ऐसा ही दुर्व्यवहार होता था। महात्मा फुले ने तो ऐसी स्त्रियों के लिए रहने की भी व्यवस्था की थी। इसलिए बाबासाहब ने जातिव्यवस्था उन्मूलन के लिए अंतर्जातीय विवाह आवश्यक माना।

उन्होंने जातिव्यवस्था के उन्मूलन के लिए धर्मचिकित्सा को दूसरा विकल्प माना। इसलिए धर्म चिकित्सा हो। धर्म की पाखंडता से लोग परिचित हो। उस वास्तविकता से लोग अवगत होंगे तो लोग परिवर्तन भी करेंगे। अवैदिक परंपरा के सभी लोगों ने धर्म चिकित्सा की है, जैसे-महात्मा फुले की 'गुलामगिरी'। बाबासाहब को लगता था बौद्ध धम्म सागर है जिसमें नदियों की भाँति अनेक जातियाँ मिलेगी तो जाति का कोई अलग अस्तित्व नहीं रहेगा। दुनिया के सारे धर्मग्रंथ ईश्वर पर केंद्रित हैं, किंतु बौद्ध धम्म मनुष्य केंद्रित है। वह वैज्ञानिक है। वह भौतिक जीवन को ही अनिवार्य मानता है। बाबासाहब ने हिंदू समाज में रहते हुए जातिव्यवस्था पर खूब प्रहार किया लेकिन जब उन्हें एहसास हुआ कि धर्मांतर करना चाहिए तब उन्होंने 13 अक्टूबर, 1935 को येवला के सभा में कहा कि 'मैं हिंदू धर्म में जन्मा पर हिंदू धर्म में नहीं मरूँगा।' बाबासाहब ने जाति व्यवस्था के विनाश के लिए सन् 1956 को बौद्ध धम्म स्वीकारा। उनके विचार से जाति व्यवस्था रूपा दानव का विनाश किए बिना राजकीय, आर्थिक और सामाजिक समता स्थापित नहीं होगी।

बाबासाहब को लगता है कि श्रम विभाजन होना सभ्य समाज का ही लक्षण है। लेकिन यहाँ श्रम विभाजन न होकर श्रमिकों का विभाजन हुआ। वह विभाजन कला, कौशल्य, श्रम के अनुसार होना चाहिए, किंतु सवर्ण पिता की संपत्ति बिना श्रम के बेटे को मिलती है लेकिन साधन संपत्ति से वंचित दलित बेटे को बाप का ही गुलामीनुमा शूद्र काम करना अनिवार्य था। अस्पृश्यता से वंचित दलित मनुष्य को समाज के मुख्य प्रवाह में लाने हेतु संविधान में आरक्षण का प्रावधान किया गया। इसके पूर्व राजर्षि शाहू महाराज ने आरक्षण का अमल अपने राज्य में किया था। दूसरी बात सन 1950 से ब्रिटिश सैन्य में महार जाति की भर्ती की थी। उनके हाथ में झाड़ू की जगह बंदूक आयी थी। उनके भीतर प्रतिष्ठा निर्माण हो रही थी। वे अपने बच्चों को पढ़ा रहे थे। यह सारे तत्कालीन संदर्भ बाबासाहब के सामने थे। बाबासाहब को ज्ञात था कि केवल आर्थिक स्तर पर परिवर्तन होने से सामाजिक समता स्थापित नहीं होगी। इसलिए सामाजिक स्तर पर बदलाव होना चाहिए। समता और सामाजिक न्याय मिलने हेतु आरक्षण का प्रावधान हुआ था। बाबासाहब को लगता था कि केवल समता और स्वातंत्र्य से काम नहीं चलेगा सभी में बंधुत्व का भाव निर्माण हो। सभी समाज में समताधिष्ठित, ज्ञानाधिष्ठित विषमतारहीत समाज निर्माण होगा, जिसके बिना लोकतांत्रिक राष्ट्र निर्माण नहीं होगा। बाबासाहब ने अपने संसद के भाषण में कहा था कि हम भारत को राजनीतिक लोकतंत्र तो दे रहे हैं, किंतु सामाजिक और आर्थिक समता निर्माण न होगी तो यह लोकतंत्र नहीं बचेगा। क्योंकि बाबासाहब जातिव्यवस्था से निर्मित विषमता से परिचित थे। चर्चिल ने भी कहा था कि भारत में जातिव्यवस्था है, विषमता है, यहाँ अनेक धर्म और अनेक पंथ हैं। इन लोगों में इतनी विभिन्नता है तो भारत राष्ट्र के रूप में कभी एक नहीं होगा और उनका लोकतंत्र अधिक दिन नहीं रहेगा। भारत टुकड़ों में बट जाएगा। बाबासाहब ने इस संदर्भ में कहा था कि दुनिया की कोई ताकत हमारे लोकतंत्र को समाप्त नहीं कर सकती है। बहुसांस्कृतिकता ही लोकतंत्र के लिए उपयोगी है, जो भारत में है। हम संविधान के द्वारा समता स्थापित करेंगे। सभी को एक ओट और एक मूल्य रहेगा। संविधान के सामने कोई बड़ा या छोटा नहीं होगा। वे राष्ट्र की कमियों और खूबियों दोनों से परिचित थे। इंग्लैंड तथा अमेरिका में रहते हुए उन्होंने कई राष्ट्रों के इतिहास का अध्ययन किया था। वो लोकतंत्र, साम्यवाद और तानाशाही तीनों प्रकार की सत्ता से परिचित हुए थे।

बाबासाहब ने संसद में अपने पहले भाषण में कहा था हम यहाँ अलग-अलग गुट में आए हैं, मैं भी उसी प्रकार का हूँ, लेकिन हमें यदि राष्ट्र के बारे में सोचना है तो हमें गुट की राजनीति को छोड़कर समग्र भारत के बारे में सोचना होगा। हमें अभी अपनी संकीर्ण मानसिकता से बाहर आना होगा। बाबासाहब के इस भाषण से सभी प्रभावित हुए थे। इस भाषण का प्रभाव महात्मा गांधी पर भी हुआ था। दिसम्बर 1946 को वर्धा के आश्रम में ब्रिटिश लेडी लेस्टरबाई महात्मा गांधी से मिलने गई थी। उन्होंने गांधी से कहा था कि आप बाबासाहब को नजरअंदाज न करें। संविधान लेखन में उनके विद्वता का लाभ हितकारी होगा। लेस्टरबाई ने कहा कि मैं बम्बई में अपने सहेली की ओर जा रही हूँ। वहाँ बाबासाहब से भी मिलूंगी। तब गांधीजी ने तत्क्षण अधिक न बोलते हुए इतना ही कहा कि आप बाबासाहब की मानसिकता को समझो। बाबासाहब और लेस्टरबाई की चर्चा हुई। बाबासाहब काँग्रेस के अनुभवों से नाराज थे। लेकिन लेस्टरबाई ने कहा कि आप उसे भूल जाओ। आप संविधान समिति के भीतर रहकर ही अधिक बदलाव कर सकते हो। उन्होंने इस सकारात्मक चर्चा से महात्मा गांधी को अवगत कराया था।

वल्लभभाई पटेल और राजेंद्र प्रसाद का बाबासाहब से पत्र व्यवहार हुआ। बाबासाहब बंगाल प्रांत के जिस जगह से चुनकर आए थे वह भाग पाकिस्तान में चला गया था। फिर जयकर जी ने इस्तीफा दिया तब बाबासाहब काँग्रेस के सहयोग से चुनकर आये और संविधान समिति के अध्यक्ष बने। महात्मा गांधी के इस सकारात्मक परिवर्तन से बाबासाहब भी आर्चभित हुए थे। पूना करार और संसद का पहला भाषण अर्थात् इन दो घटनाओं से महात्मा गांधी के भीतर बहुत बड़ा परिवर्तन आया था। पूना करार के बाद महात्मा गांधी उसी शादी में जाते थे, जो अंतर्जातीय हो। वे अपने मित्र महादेव देसाई के बेटे के शादी में नहीं गये थे, क्योंकि वह शादी उन्हीं की जाति में थी। बाबासाहब दूसरी शादी के समय पत्रिका लेकर प्यारेलाल के पास गये थे। वे महात्मा गांधी के सबसे नजदीक थे। उस बातचीत में बाबासाहब ने कहा था कि यदि महात्मा गांधी जीवित होते तो उनको मेरी शादी के लिए आने में विशेष आनंद मिलता क्योंकि यह शादी अन्तर्जातीय है। उस समय प्यारेलाल से वार्तालाप करते हुए बाबासाहब की आँखों में आँसू आये थे।

हाँ, यह भी सही है कि महात्मा गांधी और बाबासाहब अर्थात् दोनों की भूमिकाएँ अलग थी। दोनों की परवरिश भिन्न थी। दोनों की सोच भिन्न थी। दोनों की वृत्तियाँ भिन्न थी। गांधी जी का पूर्वार्ध वर्णव्यवस्था से प्रभावित था। उनमें उत्तरार्द्ध में बहुत बड़ा बदलाव हुआ था। बाबासाहब के कारण महात्मा गांधी की भूमिका और अधिक लोकतांत्रिक बनी थी। गांधीजी जब तक कहते रहे कि ईश्वर ही सत्य है तब तक कोई प्रश्न उपस्थित नहीं हुआ, लेकिन जब सत्य ही ईश्वर कहने लगे तब ब्राह्मण्य मानसिकता की दीवार हिलने लगी जिसका परिणाम महात्मा गांधी की हत्या। इसलिए मुझे लगता है कि जब गांधीजी को समझना है तो बाबासाहब को समग्र रूप से पढ़ना चाहिए यही बात बाबासाहब को समझते समय महात्मा गांधी को समग्र रूप से समझना चाहिए। हम दोनों को समग्र रूप में न समझकर कुछ संदर्भों को ही उद्धृत करेंगे तो दुराग्रही वृत्ति निर्माण होगी।

बाबासाहब ने जैसे सवर्ण जातिव्यवस्था पर प्रहार किया है उसी प्रकार का कड़ा प्रहार दलितों की जातियों और उपजातियों पर भी किया है क्योंकि दलित जातियों में भी श्रेष्ठ-कनिष्ठता भाव है। इन जातियों में भी एक-दूसरे के प्रति द्वेष है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा था कि भारत की हर व्यक्ति अपने से एक निचली जाति को इसलिए ढूँढ़ लेता है कि मैं उसकी तुलना में स्वयं को श्रेष्ठ साबित करूँ। लेकिन वे सभी भूल जाते थे कि हम सभी सवर्ण की नजर से दलित हैं। इसलिए बाबासाहब ने सभी दलित जातियों को अपनी जातियाँ भूलकर संगठित होने के लिए कहा था। इसलिए तो अहमदपुर की सभा में अण्णा

भाऊ साठे ने कहा था कि हमारा नेता बाबासाहब हैं। “सौ दिन बकरी होकर जीने से अच्छा है कि एक दिन शेर होकर जिये” यह ‘फकीरा’ का वाक्य भी बाबासाहब के विचारों से प्रभावित है। इतना आदर बाबासाहब के प्रति अण्णा भाऊ साठे के मन में था। बाबासाहब ने भी एक सभा में कहा था कि मेरी पार्टी महारेतर पार्टी होनी चाहिए। किसी एक जाति विशेष से जुड़ी न हो। बाबासाहब और अण्णाभाऊ अर्थात् दोनों का लक्ष्य एक था। लेकिन हमने उन्हें समझ लेने में भूल की है। हमने उन्हें व्यक्तिपूजक बनाया। बाबासाहब स्वयं व्यक्तिपूजक के विरोधी थे। इस बारे में वे जार्ज वॉशिंगटन का उद्धरण देते थे क्योंकि जार्ज वॉशिंगटन का कहना था कि मैं दूसरी बार अमरिका का राष्ट्राध्यक्ष नहीं बनना चाहता हूँ क्योंकि लोकतंत्र में दूसरों को भी अवसर मिलना चाहिए। नहीं तो वह व्यक्ति पूजा होगी। व्यक्ति पूजा लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा होता है क्योंकि व्यक्तिपूजा तानाशाही की ओर झुकती है। इसी तानाशाही मानसिकता से हाल ही में रशिया और चीन के प्रमुखों ने अपना संविधान ही बदलकर हमेशा के लिए सत्ता में बने रहने के लिए संशोधन कर लिया है अर्थात् इसलिए बाबासाहब ने व्यक्तिपूजा पर कड़ा प्रहार किया था।

बाबासाहब ने स्त्री के बारे में भी गंभीर चिंतन किया है। उनका कहना था कि स्त्री की प्रगति कितनी हुई है और उनका समाज में क्या स्थान है? इसके अनुसार राष्ट्र की प्रगति को नापना चाहिए। भारत के पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री के प्रति कोई विशेष अहमियत या आदर भाव नहीं है, जिसका नतिजा बाबासाहब के शब्दों में कहे तो दलितों में भी कोई दलित है तो वह स्त्री। स्त्री ने ही मनुष्य की घूमन्तु वृत्ति को स्थायी रूप दिया क्योंकि कृषि की खोज स्त्री की खोज है, इसी वजह से मनुष्य एक जगह स्थिर होकर रहने लगा, किंतु कृषि उत्पादन के सारे साधनों पर पुरुषों ने कब्जा जमा लिया तबसे स्त्री की जिंदगी गुलाम बनी है। दुनिया के सारे धर्म ग्रंथ पुरुषों ने लिखे हैं और आचरण के लिए स्त्री पर थोप दिए हैं। बाबासाहब तथा सिमोन द बोव्हुआर दोनों का भी यही कहना है स्त्री का सबसे अधिक शोषण धर्म ने किया। महात्मा फुले की भाँति बाबासाहब भी स्त्री को स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में स्थापित करना चाहते थे। अमेरिका के संसद में स्त्रियों को वोट का अधिकार मिलने हेतु जॉनस्टुअर्ट मिल ने सवाल उठाया था कि वहाँ अधिकतर लोगों का कहना था यदि पति का वोट का अधिकार है तो पत्नी के लिए अलग अधिकार क्यों चाहिए? क्योंकि यदि पत्नी पति के कहे उसे ही वोट करेगी तो अलग वोट की क्या आवश्यकता है? लेकिन वहाँ स्त्रियों ने संघर्ष कर वोट अधिकार प्राप्त किया। उसी भाँति यहाँ भी कहा जाने लगा कि स्त्री के अलग वोट की क्या आवश्यकता है? तब बाबासाहब ने कहा था कि स्त्री स्वतंत्र है और उसका स्वतंत्र अस्तित्व है। भारतीय स्त्री को आजादी के साथ वोट का अधिकार प्राप्त हुआ। उसे अमेरिका के स्त्री जैसा वोट के लिए संघर्ष करना नहीं पड़ा।

स्त्रियों के अधिकार के लिए बाबासाहब ने हिंदू कोड बिल लाया। अधिकतर सांसदों ने इस बिल का विरोध किया, जिसे पास नहीं होने दिया। उन्होंने स्त्रियों को अधिकार देना जैसे दखलांदाजी लग रहा था। इस बिल को लेकर अनेक बार विवाद हुआ। बिल पास नहीं हुआ तो बाबासाहब ने इस्तीफा दिया। स्त्री प्रश्न के लिए इस्तीफा देनेवाले बाबासाहब भारत के पहले सांसद हैं। हिंदू कोड बिल में तीन बातें सबसे महत्वपूर्ण थीं—1. तलाक का अधिकार 2. पिता के संपत्ति में समानाधिकार और 3. अंतरजातीय विवाह के लिए कानूनन अधिकार। धार्मिक दृष्टि से विवाह एक संस्कार होगा, किंतु संविधान की दृष्टि से वह एक करार है।

सन् 1927 में बाबासाहब अम्बेडकर मजदूर मंत्री बने थे। तब वे कोयला खदान देखने गये। उस खदान से दो स्त्रियाँ ऊपर आकर खड़ी हुई थी। एक अधिक उम्र की थी और दूसरी साढ़े सात माह की गर्भवती। बाबासाहब ने पहली स्त्री को प्रश्न किया कि ‘क्या आपको पुरुष की जितनी मजदूरी मिलती है?’ तब स्त्री ने कहा ‘ऐसा थोड़ा ही होता है हम स्त्रियों को पुरुष जैसी तनखा कैसे मिलेगी?’ बाबासाहब ने दूसरा प्रश्न गर्भवती स्त्री से किया ‘क्या आपको इस अवस्था में छुट्टी नहीं मिलती है?’ उस स्त्री ने कहा ‘छुट्टी ली तो क्या खाएँगे?’

उस समय बाबासाहब ने कहा कि मुझे खदान में उतरना है तब अधिकारियों ने कहा कि खदान चार सौ फिट गहरी है। बाबासाहब खदान में गये तो उन्हें महसूस हो रहा था कि यहाँ ऑक्सीजन कम मिल रहा है। उन्होंने गर्भवती स्त्री को लेकर अधिकारियों पर गुस्सा किया था। पसीने से लथपथ गर्भवती स्त्री को देखकर बाबासाहब अस्वस्थ हुए थे। फिर बाबासाहब ने स्त्रियों के लिए मैटर्निटी बेनिफिट बिल और प्रसुति के दौरान वैद्यकीय छुट्टी का आग्रह किया। उन्हीं के प्रयत्नों से मैटर्निटी बेनिफिट ऐक्ट अस्तित्व में आया। वैद्यकीय छुट्टी भी मंजूर हुई। उसी वैद्यकीय छुट्टी के ऐक्ट में 2017 में संशोधन कर बारह सप्ताह की छुट्टी की जगह छब्बीस सप्ताह की छुट्टी में परिवर्तित किया गया। संविधान के आर्टिकल 39 (ड) के अंतर्गत “Equal pay for equal work irrespective of sex”, की क्रांतिकारी कल्पना भी बाबासाहब की थी।

बाबासाहब केवल दलितों के नेता और संविधान निर्माता तक सीमित नहीं थे बल्कि उन्होंने किसान, स्त्री, आदिवासी, पर्यावरण, अर्थनीति, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति आदि विषयों पर गंभीर और मौलिक चिंतन किया था। दलितेतर के बाबासाहब बहुत बड़े हैं जिन्हें हमें समझना होगा। बम्बई के विधिमंडल पर किसानों का पहला मोर्चा 10 जनवरी, 1938 को गया था जिसका नेतृत्व बाबासाहब ने किया था। उस आंदोलन में 25000 लोग थे और अधिकतर सवर्ण थे। महाराष्ट्र के कोंकण प्रांत में खोती प्रथा थी अर्थात् ब्रिटिश के साथ खोत लोगों को भी टैक्स देना पड़ता था। खोत बिचलौयी थे।

बाबासाहब ने कणकवली, दापोली, अरवली, तिलोरी, चिपलूण, देवरूख, महाड आदि जगह खोती प्रथा के विरोध में सभाएँ ली थी इसमें सवर्ण लोगों का खूब प्रतिसाद मिला था। उन सभाओं में बाबासाहब ने कहा था कि खोती प्रथा किसी भी हालात में बंद होनी चाहिए। उसके लिए मैं जेल में भी जाने के लिए तैयार हूँ। इन सभाओं में उन्होंने यह भी कहा था कि आप सभी किसान संगठित हो जाओ, सभी का दुःख समान है। आप अपनी जात को भूल जाओ और प्रश्न से भीड़ो। खोत आपको लालच भी दिखाएँगे। आप जाति को भूलकर संगठित होकर अपने प्रश्न पर ध्यान केंद्रित करें। और सभी किसान संगठित होकर खोती प्रथा के विरोध में खड़े रहे। किसान संगठन के प्रमुख शरद जोशी ने भी कहा था कि हमारा आंदोलन असफल होने के अनेक कारण हैं किंतु उनमें जाति सबसे प्रधान कारण है। बाबासाहब ने 1938 में चिपलूण की सभा में कहा था कि किसान का बेटा ही इस देश का पंतप्रधान होना चाहिए। अधिकतर अधिकारी किसान वर्ग से हो जिससे वे किसान का दुःख समझेंगे। महात्मा फुले का यही मत था। लेकिन दुःख की बात यह है कि महाराष्ट्र पर अधिकतर सत्ता किसान वर्ग से आये हुए नेताओं की हैं किंतु किसानों की सबसे ज्यादा आत्महत्याएँ इसी राज्य में हुई हैं। हमने प्रश्न से अधिक जाति को महत्व दिया। हम महात्मा फुले और अम्बेडकर की भूमिका को भूल गये हैं। जयंती के दिन ही उनकी याद आती है। भारत के सभी राज्यों की सवर्ण जातियाँ

आरक्षण क्यों माँग रही हैं जिस भविष्यवाणी का उल्लेख आपको बाबासाहब ने संसद में दिये भाषण में मिलेगा। यदि आर्थिक विषमता निर्माण होगी तो लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा होने के प्रति उन्होंने सचेत भी किया था। प्रत्येक राज्य की सत्ता में वहाँ की बहुसंख्यक सवर्ण जाति है उन्होंने चुनाव में जीत कर आने के लिए जाति का केवल इस्तेमाल किया है। उनके जीवन का आर्थिक स्तर सुधारने हेतु कोई बुनियादी कार्य नहीं किया है।

बाबासाहब ने अपने 'स्मॉल होल्डिंग इन इंडिया एंड देयर रेमिडिज' नामक शोध आलेख में कृषि के बारे में गंभीर और मौलिक चिंतन किया है, जो शोध आलेख 1918 में 'जर्नल ऑफ द इंडियन इकॉनॉमिक्स' में प्रकाशित हुआ है। उस आलेख में कहा था आकार की दृष्टि दुनिया में सबसे बड़ा कृषि क्षेत्र भारत में है किंतु उत्पादन में सबसे पिछड़ा है। उत्पादन बढ़ाने के लिए हमने नये बीज उत्पादन की खोज करनी चाहिए, कृषि उपयोगी आधुनिक यंत्र हो, खेती के लिए जल और बिजली मिले। साथ ही उन्होंने कहा था कि भारत की दृष्टि से खेती शाश्वत उद्योग है। उसकी ओर उद्योग की दृष्टि से देखे। साथ ही खेती का उत्पादन कम और उस पर निर्भर रहनेवाले लोगों की संख्या अधिक है। इसलिए खेती पर निर्भर संख्या कम करने हेतु शहरों में उद्योग निर्माण हो और वे उद्योग कृषिपूरक हो। खेती पर निर्भर संख्या कम नहीं होगी तो आर्थिक विषमता बढ़ेगी। आज यही आर्थिक विषमता का परिणाम यानी सवर्णों के आरक्षण की माँग है। यहाँ हमें बाबासाहब के दूरदृष्टि का परिचय होता है। जिस राष्ट्र की राजनीति चुनाव तक सीमित रहती है वह राष्ट्र समृद्ध कैसा होगा और अधिक लोकतांत्रिक कैसा होगा। खेती टुकड़े-टुकड़े में रहेगी तो खर्च अधिक, परेशानी अधिक और उत्पादन कम मिलेगा। उन्होंने सामूहिक खेती अधिक लाभदायक होने की बात कही थी। बाबासाहब जब जलसिंचन मंत्री थे तब उनके कार्यकाल के केवल चार वर्ष में पंद्रह बाँध बनाये थे। उसमें से भाकरा-नानगल और दामोदर घाटी योजना है। भाकरा नानगल का पूरा प्लान बाबासाहब का ही था। उसके उद्घाटन पर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि यही हमारे आधुनिक मंदिर होंगे। ऐसे मंदिरों से ही भारतीय किसानों का उद्धार होगा।

दामोदर नदी झारखंड, बिहार और पश्चिम बंगाल अर्थात् तीन राज्यों से बहती है। प्रत्येक वर्ष में दामोदर नदी के बाढ़ से तीनों राज्यों के किसानों का बड़ी मात्रा में नुकसान होता था। जल को रोकने के अनेक प्रयत्न किये किंतु सभी असफल रहें। जो बाढ़ का जल चुनौतीपूर्ण था। बाबासाहब ने उस नदी तथा उप नदी पर छोटे-बड़े बाँध से दामोदर घाटी परियोजना का कार्य पूर्ण कर उस बाढ़ के प्रश्न को ही हल नहीं किया बल्कि बाबासाहब ने उस जल से बिजली बनाने का भी प्रावधान किया था। आज भी हम बिजली में पूर्णतः आत्मनिर्भर नहीं हैं। किन्तु वर्तमान समय में यदि किसी राष्ट्र के पास अधिक जल है तो वह है चीन। चीन केवल दक्षिण चीन का ही जल उत्तर में नहीं ले गया बल्कि चीन ने दुनिया के सबसे बड़े दस बाँध बनाए। उस जल से बिजली के बहुत बड़े प्लॉट खड़े किये जा रहे हैं। इतना ही नहीं, थोड़े ही दिनों में हमें ब्रह्मपुत्रा से जल मिलना भी बंद हो जाएगा। उतना बड़ा बाँध ब्रह्मपुत्रा नदी पर चायना ने बनाया। लेकिन हम बाबासाहब के सपने को भूल गए। बाबासाहब ने कहा था कि भारत में सभी जगह समान बारिश नहीं होती है और नदियों का जल समुन्द्र में जाता है इससे अच्छा नदी जोड़ परियोजना पूर्ण करें। उनका यह सपना सपना ही रह गया। बाबासाहब का कहना था कि जैसे रेलमार्ग भारतभर है वैसा जलमार्ग भी हो। जैसे रेल पर राज्य के साथ केंद्र का अधिकार होता है उसी भाँति नदियों पर भी हो। वह भी रेल की भाँति जलमार्ग बने। इससे बाबासाहब के दूरदृष्टि का परिचय होता है जिसे हमें समझना चाहिए।

अतः डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था का तार्किक, मौलिक और ऐतिहासिक चिंतन किया है, जिसमें उनका प्रखर बौद्धिक चिंतन है। साथ ही बाबासाहब केवल दलितों के नेता और संविधान निर्माता तक सीमित नहीं हैं बल्कि उन्होंने किसान, स्त्री, आदिवासी, जलसिंचन, पर्यावरण, अर्थनीति, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति आदि विषयों का गंभीर और मौलिक चिंतन किया है, जो उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का परिचायक है। उन्होंने अत्यंत व्यापक और यथार्थ दृष्टि से भारत का सपना देखा। इसलिए बाबासाहब अम्बेडकर आधुनिक भारत के निर्माता हैं।

संदर्भ:

1. Dr. B. R. Ambedkar - 'Annihilation of Caste' (Speech prepared) - (1936)
2. Dr. B. R. Ambedkar - 'Castes in India' (Indian Antiquary Vol. XLXI)- (May 1917)
3. Dr.B.R. Ambedkar-'Small Holdings in Indian and Their Remedies'-(1918)
4. प्रल्हाद लुलेकर - अनंत पैलूंचा सामाजिक योद्धा - दलितेतरांसाठी डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (2011)
5. रावसाहेब कसबे - 'गांधी: पराभूत राजकारणी आणि विजयी महात्मा' (2020)

भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता: स्वरूप एवं इसको प्रभावित करने वाले कारक

मोनिका विजय

शोधार्थी - राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

शोध सारांश

यह निर्विवाद सत्य है कि महिलाओं की समृद्धि, संरक्षण, विकास तथा कल्याण के लिए उनकी शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक स्थिति में सुधार करना आवश्यक है जो उनकी राजनीतिक प्रगति के बिना असम्भव है, इसीलिये महिलाओं के सशक्तिकरण और सामाजिक-आर्थिक कल्याण के लिये महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता पर बल दिया जा रहा है। प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो का मत है, कि स्त्रियों का घर की चारदिवारी के भीतर रखने का परिणाम सिर्फ यहीं नहीं होता है, कि उनका विकास रुक जाता है बल्कि यह भी होता है कि राज्य अपने आधे सदस्यों की सेवा से वंचित रह जाता है। उन्हें सभी कार्य करने का अधिकार मिलना चाहिये, जिन्हें करने की उनमें स्वाभाविक योग्यता हो।

किसी भी समाज के समग्र विकास के लिए सम्बन्धित महिला वर्ग का राष्ट्र के विकास की मुख्य धारा से जुड़ा होना परमावश्यक है। राष्ट्र की आधी आबादी अर्थात् महिला वर्ग का सक्रिय एवं पूर्ण सहयोग ही सम्बन्धित समाज के पूर्ण विकास की पूर्व शर्त है। राजनीतिक समाज के आधे सदस्यों की सक्रिय एवं पूर्ण सहभागिता के बिना स्वस्थ एवं सुदृढ लोकतंत्र का विकास संभव नहीं है। राज्य सभा की पूर्व उप-सभापति नजमा हेतपुल्ला के अनुसार राजनीति के प्रत्येक स्तर पर महिलाओं को साथ लेने पर ही लोकतंत्र पूर्ण होता है। नीति एवं निर्णय निर्माण और सोच के प्रत्येक स्तर पर साथ चलने से ही सहभागिता पूर्ण होती है।

राजनीतिक मुद्दे के रूप में नारी सशक्तिकरण का प्रश्न पिछले कुछ दशकों में सार्वजनिक मंचों से एक महत्वपूर्ण प्रश्न के रूप में हमारे समक्ष है। पिछले दशकों में विश्वस्तर पर यह आम सहमति उभरी है कि जन आबादी के आधे भाग महिलाओं की सक्रिय सहभागिता के बिना संतुलित सामाजिक संरचना एवं अर्थपूर्ण राजनीतिक एवं आर्थिक विकास संभव नहीं है।¹ वर्तमान में लगभग सभी राष्ट्रों में लोकतांत्रिकरण की प्रक्रिया को स्वीकार किए जाने के बावजूद भी वर्तमान युगीन लोकतांत्रिक समाज में आधी आबादी अर्थात् महिलाओं को जो हिस्सा एवं दर्जा मिलना चाहिए, उससे वह वंचित है। तमाम प्रयासों के उपरान्त भी महिला विकास एवं महिला सशक्तिकरण का प्रश्न राजनीति, अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक उन्नयन की मुख्य धारा के साथ जुड़ नहीं पाया है।

मूल शब्द - लोकतांत्रिकरण, सशक्तिकरण, प्रतिनिधित्व, संस्थाकरण, सहभागिता, स्थानीय, क्रियाशीलता, अपराधीकरण, दृष्टिकोण।

प्रस्तावना - यद्यपि आज महिलाएँ क्रियाशीलता के प्रत्येक महत्वपूर्ण स्तर पर कार्यरत हैं। समाज, राजनीति, प्रशासन, न्यायिक, कला साहित्य, संस्कृति, कॉर्पोरेट, विज्ञान-प्रौद्योगिकी सहित सामरिक क्षेत्र (रक्षा अनुसंधान) में भी महिलाएँ अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर समाज एवं राष्ट्र के विकास में सहयोगी बन रही हैं।² पुरुषों का कुटिल खेल मानी जाने वाली राजनीति भी महिलाओं के वर्चस्व के आगे नतमस्तक होती दिखाई दे रही है। घर के बजट के संचालन से लेकर देश की अर्थव्यवस्था को संभालने का दायित्व महिलाएं बखूबी निभा रही हैं।

भारत, ब्राजील, जर्मनी, अर्जेंटीना, कोस्टारिका, ऑस्ट्रेलिया, आयरलैंड, आइसलैंड, स्विजरलैंड, लाइबेरिया जैसे अनेक राष्ट्रों के शीर्ष संवैधानिक पदों पर महिलाएं काबिज रह कर शासन की बागडोर बड़ी दक्षता के साथ संभाल चुकी हैं। भारत सहित पड़ोसी देशों पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका और म्यांमार की राजनीति में भी महिलाओं की विशेष भूमिका रही है, लेकिन यह सब तस्वीर का मात्र एक पहलू है तथा वास्तविकता कुछ और है। महिलाओं ने अपनी योग्यता एवं क्षमता के बल पर प्रत्येक क्षेत्र में सफलता दर्ज की है, लेकिन संख्यात्मक दृष्टि से उनकी स्थिति बहुत शोचनीय है।³

दुनिया के अधिकांश देशों की तरह, भारत ने भी महिलाओं की राजनीति में सहभागिता और उनके प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के लिए संघर्ष किया है। यह हम जानते हुए कि महिला विकास वर्तमान शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण एवं चर्चित संकल्पना है, जो स्थानीय स्तर से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक सरकारी गैर सरकारी अभिकरणों की गतिविधियों का मुख्य केन्द्र है, फिर भी भारत में आधी आबादी का प्रभावी राजनीतिक सशक्तिकरण क्यों नहीं हो पाया है, जिनकी वे हकदार हैं।

यद्यपि 19 वीं एवं 20 वीं शताब्दी में भारतीय समाज सुधारकों द्वारा महिला अधिकारों हेतु किए गए प्रयासों के उपरान्त महिलाओं के सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण में सुधार अवश्य हुआ एवं स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान में महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण हेतु विभिन्न संवैधानिक प्रावधान किए गए और विभिन्न कानूनी अधिकारों के द्वारा उनके सशक्तिकरण को एक नया आधार देने का प्रयास किया गया और इसी का प्रतिफल है कि वर्तमान में राजनीतिक रूप से महिला सशक्तिकरण एवं महिला प्रतिनिधित्व निश्चित रूप से पूर्व की तुलना में बढ़ा है लेकिन भारतीय परिदृश्य में मध्यकाल

से शुरू हुआ महिलाओं की सामाजिक व राजनीतिक स्थिति में क्षरण आज भी जारी है। कुछेक नामों को छोड़कर विश्व सहित भारत का राजनीतिक पटल भी लगभग महिला विहीन है। आज के राजनीति प्रधान समाज में किसी भी वर्ग का राजनीतिक प्रतिनिधित्व बहुत महत्व रखता है, लेकिन दुर्भाग्य से भारतीय राजनीति में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। भारतीय लोकतंत्र में महिला नेतृत्व की यह स्थिति अत्यन्त निराशाजनक है।⁴

भारत एक विकासशील देश है, जहां राजनीतिक सहभागिता व्यवस्था में मौजूद कई प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कारकों एवं परिस्थितियों से प्रभावित होती है। महिला राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करने वाले मुख्य सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक कारकों का उल्लेख निम्नानुसार है -

सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियां - महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक उनकी सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि और परिस्थितियां रही है क्योंकि भारत के साथ अन्य सभी लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में मतदाता मतदान व्यवहार का निरूपण करते समय निर्वाचन क्षेत्र में मौजूद सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से पूरी तरह प्रभावित रहते हैं। भारत में होने वाले चुनाव के समय विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में पल रहे सामाजिक-आर्थिक परिवेश का यहां के मतदाताओं पर गहरा प्रभाव स्पष्ट रूप देखा जा सकता है।⁵ इस संबंध में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करने वाले सामाजिक-आर्थिक कारकों की विवेचना निम्नानुसार है-

लैंगिक आधार पर श्रम विभाजन - पितृसत्तात्मक मूल्यों और उस पर आधारित आचरण संहिता के अनुसार स्त्री एवं पुरुष के मध्य लिंग आधार पर श्रम विभाजन किया गया, जिसके तर्कानुसार स्त्रियों के लिए परिवार की 'निजता' को एवं पुरुषों के लिए बाह्य आर्थिक एवं राजनीतिक सार्वजनिक क्षेत्र को स्वाभाविक क्षेत्रों के रूप में स्थापित किया गया।⁶ नारी का क्षेत्र घर की चारदीवारी में सीमित करने के लिए पुरुष और स्त्री के कार्य विभाजन को आन्तरिक व बाह्य स्थलों के रूप में विभक्त किया गया, जिसके अन्तर्गत घर के सभी कार्य व बच्चों के लालन-पालन का दायित्व नारी की भूमिका के साथ संस्थापक रूप में जोड़ दिया गया।

परिणामस्वरूप सत्ता व शक्ति की प्राप्ति से नारी वंचित रही क्योंकि सत्ता व शक्ति के अवसर, परिस्थितियाँ व पद घर के बाहर विद्यमान है। इस प्रक्रिया से पुरुषों का इन क्षेत्रों में संस्थापक व सांस्कृतिक मान्यताओं के आधार पर एकाधिकार हो गया तथा सार्वजनिक क्षेत्र की वर्जना ने नारी को गृहस्थ जीवन के नैतिक कामों से बाँधकर रखा।

इस प्रकार पारम्परिक भारतीय परिवार का स्वरूप अलोकतांत्रिक तथा उसकी संरचना असमता पर आधारित रही है। परिवार की यह असमतावादी संरचना लैंगिक असमानता की ही परिणति रही, जो लिंग विभेद पर आधारित सामाजिक सोच का परिणाम रही है। सामाजिक चिन्तन एवं पितृसत्ता पर आधारित आचरण के कारण स्त्रियों की निजी एवं पुरुषों की सार्वजनिक भूमिका को वैध ठहराकर स्त्रियों की अधीनता को सुनिश्चित किया गया। असमतावादी चिन्तन के कारण ही परिवार संरचना के भीतर आधिपत्य एवं अधीनता की स्त्री विरोधी सोपान को बल प्राप्त हुआ, जिससे स्त्री का जीवन परिवार के दायरे में सिमट कर रह गया। नारीवादियों ने लिंग भेद को लिंग असमानता के रूप में धीरे-धीरे हुए रूपान्तरण को सामाजिक संस्थाकरण का परिणाम माना।⁷

पुरुष प्रधान समाज - महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करने वाला दूसरा अन्य महत्वपूर्ण कारक पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता है। भारतीय समाज की सम्पूर्ण संरचना पुरुष प्राधान्य पर आधारित है। पुरुष सत्तात्मक भारतीय समाज में महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष नहीं, अपितु पुरुषों के अधीन माना गया है तथा राजनीति महिलाओं के लिए वर्जित क्षेत्र माना गया है। पुरुष प्रधान मानसिकता के कारण ही महिलाओं को कतिपय पूर्वाग्रह एवं नियोग्यताओं के साथ देखा जाता है।⁸

परिवार, समाज, राजनीतिक दल, विधान मण्डल इत्यादि प्रत्येक स्तर पर महिलाओं को इस मानसिकता से जूझना पड़ता है जो महिलाओं को चुनौतीपूर्ण कार्यक्षेत्रों में प्रवेश से रोकती है। कुमारी कुमुद बेन जोशी, तत्कालीन संसद सदस्या व आंध्रप्रदेश की पूर्व राज्यपाल ने स्वीकार किया कि विशेष रूप से जब कोई भी महिला घर से बाहर कदम निकालती है तो उसे दिक्कतों का सामना तो करना ही पड़ता है। वे दिक्कतें सभी क्षेत्रों में आती हैं।

सामाजिक पूर्वाग्रह - सामाजिक पूर्वाग्रह भी महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता को प्रभावित करता है। परम्परावादी समाज में महिलाओं की सार्वजनिक जीवन में सहभागिता को वर्जित माना जाता है तथा राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय महिलाओं को हेय दृष्टि से देखा जाता है। युवा महिलाओं के लिए राजनीति का पथ और भी कठिन है, क्योंकि उनका राजनीति में प्रवेश परम्परावादी समाज की दृष्टि से ही नहीं बल्कि, नैतिक तथा चारित्रिक दृष्टि से भी गलत माना जाता है।⁹

सांस्कृतिक प्रतिबंध एवं रूढ़िवाद - सांस्कृतिक मापदंड तथा रूढ़िवादिता भी महिलाओं की राजनीति सहभागिता को प्रभावित करने में एक महत्वपूर्ण कारक है। इनके कारण भी महिलाएँ राजनीति में भाग नहीं ले पातीं। सक्रिय राजनीति में महिलाओं की कम भागीदारी के लिए जिम्मेदार सिर्फ राजनीतिक दल ही नहीं बल्कि हमारा समाज भी है, जो महिलाओं को राजनीति में स्वीकारने को तैयार नहीं होता है।¹⁰

पारिवारिक उत्तरदायित्व - पारिवारिक उत्तरदायित्व राजनीति में महिला सहभागिता को प्रभावित करने वाला एक अन्य पहलू है। पारम्परिक रूप से पारिवारिक दायित्व के लिए महिला को ही उत्तरदायी माना जाता है तथा पुरुष सामान्यतः इनसे मुक्त रहते हैं। अतः पुरुष, समाज एवं राजनीति को अधिकांश समय दे पाते हैं, लेकिन महिला के लिए परिवार, समाज एवं राजनीति के मध्य सन्तुलन बनाए रखना बड़ा मुश्किल होता है।

योग्यता एवं क्षमता के बावजूद पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन में अपना अधिकांश समय व्यतीत होने के कारण महिलाएँ सामाजिक एवं राजनीतिक दायित्वों की दिशा में पर्याप्त समय नहीं दे पाती हैं। राजनीतिक दृष्टि से जन सम्पर्क आवश्यक है तथा जनता भी यह अपेक्षा रखती है, कि उनका प्रतिनिधि इन्हें पर्याप्त समय दें, उनकी समस्याओं को सुने तथा उनका समाधान करे, लेकिन इसके विपरीत परिवार के सदस्यों की यह अपेक्षा रहती है कि महिला ज्यादा से ज्यादा समय उनके साथ व्यतीत करे तथा उनकी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं का ध्यान रखे।¹¹

भूमिकाओं के विस्तार के रूप में दोहरा भार - भारतीय परिवार की संस्था में संस्कारगत व सांस्कृतिक आयाम नारी को उसमें पूर्णरूपेण आबद्ध किए हुए है। शिक्षा व्यवसाय के माध्यम से ज्ञान, सूचना व आर्थिक सुधार प्राप्त करके भी महिला गृहस्थ जीवन के भावनात्मक व सम्बन्धात्मक परिधियों से बंधी हुई है। संस्था के रूप में परिवार का कोई उचित विकल्प समाज में उपलब्ध व स्वीकृत नहीं है। अतः गृह कार्यभार को बिना त्यागे भारतीय नारी ने घर के बाहर व्यावसायिक कार्य को भी अपनाया है। भूमिकाओं के विस्तार ने उस पर दोहरे भार थोपे हैं। सामंजस्य व समझौते की परिस्थितियों में प्रायः नारी को स्वः की बलि देनी पड़ती है। गृहस्थ जीवन के भावनात्मक व सम्बन्धात्मक परिस्थितियों से बंधी होने के कारण भारतीय नारी परिवार तोड़कर स्वतन्त्रता व शक्ति को प्राप्त करने के लिए तत्पर नहीं है।¹²

पारिवारिक असहयोग - इन सामाजिक पूर्वाग्रहों के कारण राजनीति में प्रभावी भूमिका निभाने की इच्छुक महिला राजनीतिज्ञों को कई बार वह पारिवारिक सहयोग और समर्थन नहीं मिल पाता, जिसकी वे हकदार हैं। पारिवारिक असहयोग महिलाओं के लिए शारीरिक व मानसिक रूप से घातक होता है। महिलाओं द्वारा कार्यस्थल पर किए गए कार्यों व दी गई सेवाओं के अतिरिक्त परिवार को दिए जाने वाले विशुद्ध समय में कटौती तत्पश्चात् परिवार द्वारा की जाने वाली उपेक्षा उनके जीवन में तनाव उत्पन्न करती है जिसके फलस्वरूप महिलाओं द्वारा इस क्षेत्र में संभावनाएँ नहीं खोजी जाती।

अधिकांशतः कामकाजी महिलाएँ विवाहित हैं, वे अपने परिवार एवं पति सहित संपूर्ण वातावरण में कार्य का संपादन कर कार्यस्थल पर उपस्थित होती हैं परन्तु अनेक प्रसंगों में परिवार द्वारा उनका सहयोग नहीं किया जाता तथा वे अपनी स्थिति को लेकर असमंजस में होती हैं। महिला राजनीतिज्ञ के समक्ष यह स्थिति अधिकांशतः विद्यमान होती है। चूँकि पारिवारिक सदस्यों की अपेक्षा उन्हें अधिक से अधिक समय दिए जाने से सम्बन्धित होती है एवं पारम्परिक रूप से महिला को ही परिवार के लिए उत्तरदायी माना जाता है। इसके विपरीत पुरुष इससे मुक्त ही रहते हैं। यह दोहरा दबाव जो कि परिवार और कार्यस्थल पर उपस्थित होता है, महिला राजनीतिज्ञ के समक्ष गंभीर समस्या उत्पन्न कर उन्हें मानसिक रूप से तनावग्रस्त करता है।¹³

शिक्षा - शिक्षा भी महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है क्योंकि शिक्षा एक ऐसा तत्व है जिसके माध्यम से महिला वर्ग को आत्मनिर्भर बना कर उन्हें समाज सेवा के योग्य बनाया जा सकता है। महिलाओं के व्यक्तित्व निर्माण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। लेकिन महिलाओं के सन्दर्भ में यह पुरातन मान्यता रही है कि उस पर बचपन में पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र का नियंत्रण होना चाहिए। साथ ही उसका स्थान घर की चारदीवारी तक सीमित होना चाहिए। ऐसी कुप्रथा विद्यमान है कि वह ससुराल में प्रवेश डोली में बैठकर तथा प्रस्थान अर्थी पर लेटकर करेगी।

महिला को अधिक शिक्षित न करना, जीवनसाथी के चयन के अधिकार से वंचित रखने जैसे कुसंस्कार भी देखने को मिलते हैं, जो महिला अधिकारों का हनन है। ऐसी कुप्रथाओं के कारण महिलाओं का शैक्षिक स्तर पुरुषों की तुलना में बेहतर नहीं हो पाया, लेकिन अब वर्तमान समय में सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर प्रयास किए जाने के कारण महिलाओं का शैक्षिक स्तर और उनकी राजनीतिक सहभागिता तीव्र गति से बढ़ रही है, यद्यपि इसे और अधिक बेहतर बनाने की अत्यधिक गुंजाइश है।

स्थानीय सत्ता संरचना - वास्तव में महिला राजनीति की प्रथम पाठशाला ग्राम पंचायत है क्योंकि स्थानीय सत्ता संरचना की कार्यशैली एवं मतदाताओं के प्रति स्थानीय प्रतिनिधियों का दृष्टिकोण मतदान व्यवहार को प्रभावित करने में महती भूमिका निभाता है। स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के संचालन में जिन राजनीतिक दलों का प्रभुत्व होता है, अर्थात् जिस राजनीतिक दल के समर्थित उम्मीदवार ज्यादा जीत कर आते हैं, वे अपने दलों की नीतियों व कार्यक्रमों के संबंध में स्थानीय मतदाताओं को ज्यादा बेहतर ढंग से प्रभावित कर पाते हैं। स्थानीय नेताओं द्वारा स्थानीय मुद्दों को ज्यादा दमदार ढंग से उठाया जाता है जो उस निर्वाचन क्षेत्र में निवास करने वाले सदस्यों के मतदान व्यवहार को एक ठोस दिशा में मोड़ने का कार्य करता है।¹⁴

73वें व 74वें संविधान संशोधन के द्वारा पंचायती राज संस्थान को संवैधानिक दर्जा प्राप्त होने एवं इसमें महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण का प्रावधान होने के बाद महिला राजनीतिक सहभागिता को एक नया आधार मिला है। स्थानीय स्तर पर इस व्यवस्था से लगभग 15 लाख महिलाओं को ग्राम पंचायतों तथा शहरी निकायों के चुनावों में भागीदारी का अवसर प्रदान किया।

राजनीति में महिला सहभागिता को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारक

आर्थिक-सामाजिक पृष्ठभूमि - भारतीय राजनीति में मुकाम स्थापित करने वाली महिलाओं के पिछले कुछ समय के आंकड़ों पर विचार करें तो देखते हैं कि किसी महिला के लिये राजनीति में भाग लेने के लिये उसकी आर्थिक-सामाजिक पृष्ठभूमि भी महत्वपूर्ण कारक है। उच्च सामाजिक वर्ग (जाति) व आर्थिक वर्गों की महिलाओं में राजनीतिक भागीदारी शिक्षा का उच्च स्तर एवं राजनीतिक जागरूकता अधिक होने के कारण अधिक देखने को मिली है, जबकि निम्न सामाजिक-आर्थिक तबके की महिलाओं में यह भागीदारी तुलनात्मक रूप से कम है। कमजोर सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में अवरोध उत्पन्न करती हैं।

आर्थिक परतंत्रता - महिला विकास में व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्वतंत्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतंत्रता भी एक महत्वपूर्ण पहलू है। आर्थिक स्वतंत्रता के बिना महिला विकास असम्भव है, महिला की आर्थिक परतंत्रता पर निर्भरता के कारण ही पुरुष वर्ग ने उस पर अधिकार जमाया है। मार्क्सवादी लेखकों के अनुसार आर्थिक परतंत्रता ही नारी की वैयक्तिक स्वतंत्रता के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती है।¹⁵

खर्चीली चुनाव प्रणाली - महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक अर्थ अथवा धन का राजनीति में बढ़ता प्रयोग भी है। खर्चीली चुनाव प्रणाली भी महिलाओं की राजनीतिक क्रियाशीलता के मार्ग में महत्वपूर्ण बाधक तथ्य है। दृढ़ महत्वाकांक्षी, साहसी, कर्मठ महिला जब अपनी योग्यता एवं प्रतिभा के बल पर किसी प्रकार से राजनीति में अपनी पहचान तो बना लेती है, लेकिन जब वह महिलाओं के अधिकारों की रक्षा का लक्ष्य लेकर प्रत्याशी के रूप में चुनाव लड़ने का प्रयास करती है, तो उस समय चुनाव में होने वाला असीमित धन उनकी क्रियाशीलता में बाधक सिद्ध होने लगता है। यही कारण है कि राजनीति में महिलाओं को प्राप्त कम प्रतिनिधित्व का एक प्रमुख कारण चुनाव कार्यों का दिनोदिन बढ़ता खर्च भी है।

राजनीति में महिला सहभागिता को ऊपर विवेचित सामाजिक-आर्थिक कारकों के अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण राजनीतिक कारक भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, यथा -

राजनीति में पुरुषों का वर्चस्व - अनादिकाल से मर्दवादी सामाजिक व्यवस्था में पुरुष का ही वर्चस्व रहा है। जनजातीय समाज में भी मातृसत्तात्मक परिवार को छोड़कर अधिकांश जनजातीय कबीलों की राजनीति में पुरुष सरदार का ही बोलबाला था। सामंती समाज में तो पुरुषों का एकाधिकार हो गया और नारी दासी जैसा जीवन व्यतीत करने लगी। सामन्ती व्यवस्था ध्वस्त होने के पश्चात् नारी चेतना का ज्वार बढ़ने लगा। अपने अधिकारों के लिए जहां वह संघर्ष और नारी मुक्ति का आन्दोलन चलाने लगी, वहीं पुरुष के नाजायज दबाव, उत्पीड़न और शोषण के विरुद्ध वह सड़कों पर उतरने लगी। लेकिन हजारों वर्षों से चला आ रहा समाज पर पुरुष वर्चस्व इतनी सरलता से तो समाप्त नहीं हुआ है, परंतु ढीला होना अवश्य आरंभ हो गया है।¹⁶

आज महिलाएँ प्रत्येक क्षेत्र में सफलताओं के कीर्तिमान स्थापित कर रही हैं, लेकिन राजनीति के क्षेत्र में आज भी महिलाओं की उपस्थिति गौण है। इसका एक प्रमुख कारण राजनीति की जटिल प्रकृति है। राजनीति की डगर महिलाओं के लिए कठिन है, क्योंकि राजनीति में आमतौर पर पुरुषों का वर्चस्व रहता आया है। यही कारण है कि संसद में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण को विभिन्न राजनीतिक दल जिन पर पुरुष का ही वर्चस्व है, पारित होने नहीं दे रहे हैं। कुछ अपवाद छोड़ दे तो निचले स्तर पर राजनीति में प्रवेश करने वाली महिलाएँ कई तरह के कांटों पर चलकर भी शिखर तक आसानी से नहीं पहुँच पाती।

राजनीति में नेपोटिज्म - वर्तमान राजनीति में नेपोटिज्म महिला सहभागिता को प्रभावित करने वाले एक बहुत बड़े मुद्दे के रूप में हमारे समक्ष है। नेपोटिज्म से तात्पर्य है कि यद्यपि राजनीति में कई पदों पर महिलाएँ प्रतिनिधि कार्य कर रहीं हैं लेकिन पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता और महिलाओं को राजनीतिक स्तर पर निर्णय लेने के अयोग्य मानने की कई लोगों की गलत सोच के कारण कई महिला प्रतिनिधियों के निर्णय उनके पुरुष रिश्तेदारों के द्वारा लिए जाते हैं। कई महिलाएँ चुनाव जीतकर तो आती हैं लेकिन उन्हें कहाँ, क्या और कैसे फैसले लेने हैं, इन सबका निर्धारण उनके घर के पुरुष ही करते हैं।

ग्रामीण स्तर पर नेपोटिज्म की समस्या अधिक है, क्योंकि ग्रामीण स्तर पर सामाजिक पूर्वाग्रह एवं रूढ़िवादिता ज्यादा है और महिलाओं को राजनीतिक रूप से निर्णय लेने की स्वतंत्रता तुलनात्मक रूप से कम है। 73 वें एवं 74 वें संविधान संशोधन के द्वारा महिलाओं को पंचायती राज एवं नगरीय निकायों में 33% आरक्षण प्रदान कर दिया गया है। इस कारण कुल सीटों की एक तिहाई सीटों पर महिला उम्मीदवारों का खड़ा होना आवश्यक है। इस तरह वे पुरुष जो राजनीति में अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहते हैं, वे अपनी नजदीकी रिश्तेदार महिला को ही उम्मीदवार बनाते हैं, लेकिन इन महिला प्रत्याशियों के जीतने पर प्रशासनिक निर्णय लेने की शक्ति इनके पुरुष रिश्तेदार ही अपने पास रखते हैं और इस कारण महिलाएँ राजनीतिक रूप से पराधीन रहकर प्रशासनिक निर्णय लेने में खुद को असक्षम पाती हैं। सरपंच पति, प्रधान पति की अवधारणाएँ इसी विचार का प्रतिफल है।

राजनीतिक दलों की उदासीनता - राजनीति में महिलाओं को पर्याप्त प्रतिनिधित्व न मिलने का प्रमुख कारण विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा उन्हें उम्मीदवार न बनाना है। आज भी समाज में स्त्री को पिता, पति व पुत्र के अधीन रखा जाता है। स्त्री को सर्वथा निर्बल असहाय मानकर 'कमजोर लिंग' कहा जाता है। जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में स्त्री-पुरुष का अनुपात महिलाओं के विपरीत रहा है। भारत में 1000 पुरुषों पर मात्र 899 महिलाएँ हैं तथा राजस्थान में 1000 पुरुषों पर 947 महिलाएँ हैं, लेकिन ये अनुपात राजनीतिक स्तर पर देखा जाए तो महिलाओं का स्थान पुरुषों की अपेक्षा नगण्य है।

राजनीति में महिला प्रतिनिधित्व की बात की जाए तो लंबे समय से दावा और वादा महिलाओं को हर क्षेत्र में तैत्तिशत आरक्षण दिलाने का होता आ रहा है, लेकिन 70 साल के संसदीय इतिहास में लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व पंद्रह प्रतिशत तक भी न पहुँच पाना एक अलग संकेत देता है।¹⁷

राजनीति के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण - आम लोगों में राजनीति की नकारात्मक छवि तथा इसमें व्याप्त भ्रष्टाचार की वजह से भी महिलाएँ राजनीति में कम रूचि लेती हैं। नैतिक दृष्टि से राजनीति का क्षेत्र जनसाधारण द्वारा उपयुक्त नहीं माना जाता है। उषा श्रीवास्तव ने "आसों नहीं शिखर छूना" नामक लेख में राजनीति को काजल की कोठरी माना है। उनके अनुसार काजल की कोठरी में पैर रखा है, तो कालिख लगने का अंदेशा भी है। आरोप-प्रत्यारोप की राजनीति में जमकर कीचड़ उछाले जाते हैं। महिलाएँ इसका ज्यादा शिकार होती हैं। उन्हें अश्लील टिप्पणियों और अभद्र व्यवहार से जूझना पड़ता है। "दुश्मन का मनोबल तोड़ने के लिए महिलाओं से ज्यादा आसान शिकार कोई नहीं" जैसे विचार का राजनीति में भी अनुसरण करते हुए विरोधी दलों द्वारा महिला उम्मीदवारों पर अधिक छीटांकशी की जाती है।¹⁸

स्वयं को आधुनिक समझने वाला समाज महिलाओं के राजनीति में प्रवेश को चारित्रिक दृष्टि से संदिग्ध बना देता है। अभद्र व्यवहार, शारीरिक-मानसिक शोषण, चारित्रिक लांछन की आशंका और सबसे बढ़कर राजनीति का यह तथाकथित काजल ही राजनीति में महिलाओं के प्रवेश एवं सक्रियता को बाधित करता है। चारित्रिक लांछन एवं शोषण से आहत अधिकांश महिला कार्यकर्ता राजनीति से किनारा कर स्वयं को गुमनामी के अन्धेरों में खो देती हैं, क्योंकि परिवार एवं समाज द्वारा उनकी अस्वीकृति के उपरान्त एकाकीपन ही उनके लिए बेहतर विकल्प होता है।

राजनीति का अपराधीकरण - राजनीति का अपराधीकरण एक कारक के रूप में राजनीति में महिला सहभागिता को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है। आज राजनीति और अपराध का रिश्ता करीबी बनता जा रहा है और निर्वाचित सदनों में ऐसे जनप्रतिनिधियों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है, जिनका सम्बन्ध अपराध की दुनिया से है। चुनाव आयोग ने भी इस सत्य को स्वीकार किया है, कि देश में अनेक जनप्रतिनिधि ऐसे हैं, जिनकी आपराधिक पृष्ठभूमि है। आज राजनीति राजनेताओं की कर्मस्थली के स्थान पर अपराधियों की शरण स्थली बनता जा रहा है।¹⁹

राजनीति में वंशवाद - भारत में सहभागी लोकतंत्र होने के बावजूद महिलाओं के समक्ष सबसे बड़ी समस्या राजनीति में प्रवेश की है। राजनीति में वंशवाद की परंपरा लोकतंत्र के बुनियादी ढांचे को कमजोर कर रहीं हैं। परिवारवाद और वंशवाद ने देश के लोकतंत्र को एक तरह से जकड़ रखा है। दूसरी बड़ी समस्या राजनीति में बढ़ता व्यक्तिवाद है। महिलाओं के राजनीति में प्रवेश के लिए यह भी प्रतिरोध खड़ा करता है। संसदीय प्रणाली को आधार बनाकर चलने वाले लोकतंत्र में व्यक्तिवाद जहाँ एक तरफ संघीय भावना के खिलाफ है, वहीं दूसरी ओर राजनीति में अंधश्रद्धा को भी बढ़ावा देता है। यह संगठनों के

लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रियाओं को सीधे-सीधे प्रभावित करता है। इस प्रकार वंशवाद, परिवारवाद, और व्यक्तिवाद लोकतंत्र की बुनियाद पर खतरा है, जो प्रतिभावान, सक्षम, और योग्य महिलाओं को राजनीति में आने के अवसर से वंचित करता है, जबकि धन-बल और रसूखदार आदमी चाहे कितना भी भ्रष्ट और अनैतिक हो, राजनीतिक दलों में आसानी से जगह पा लेता है।

परिवार एवं नातेदारी - महिला सहभागिता को प्रभावित करने वाला यह समसामयिक कारक है। मतदान व्यवहार को प्रभावित करने में परिवार एवं रिश्तेदारों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। अधिकांशतः यह देखा जाता है कि माता-पिता, भाई-बहन आदि जिस राजनीतिक दल की नीतियों या नेताओं से प्रभावित होते हैं और उनके पक्ष में मतदान करते हैं तो उनके निकट परिवार जन भी उनके राजनीतिक दृष्टिकोण का अनुकरण करते हैं तथा उनके ही मार्गदर्शन में अपने मतदान व्यवहार का स्वरूप निर्धारण करते हैं। आज शिक्षित मतदाताओं की राजनीतिक चेतना में वृद्धि हो रही है और मतदाता व्यक्तिगत राजनीतिक निर्णय लेने में सक्षम हो गये हैं, तथापि प्राथमिक स्तर पर एवं जीवनपर्यन्त व्यक्ति के मतदान व्यवहार पर उसके परिवार और रिश्तेदारों का गहरा प्रभाव होता है।

महिलाओं के लिए अपेक्षाकृत नवीन क्षेत्र - यद्यपि आज महिलाएँ सामाजिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र की आधारशिला बनती जा रही हैं तथा वह राजनीतिक क्षेत्र में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। इसके बावजूद उन्हें राजनीति के क्षेत्र में वांछित सफलता नहीं मिल रही है, क्योंकि राजनीति महिलाओं के लिए अपेक्षाकृत नवीन क्षेत्र है, वे राजनीति में सफलता की सूक्ष्म रीति-नीति को समझ नहीं पाई है, अतः राजनीति के पुराने दिग्गज खिलाड़ियों के सामने वे टिक नहीं पाती हैं, लेकिन यह यह विचार एकपक्षीय दृष्टिगत हो रहा है।²⁰

राजनीतिक महत्वाकांक्षा - राजनीति में महिलाओं की गौण क्रियाशीलता का प्रमुख कारण उनमें राजनीतिक महत्वाकांक्षा का अभाव है। सामान्यतः यह देखा जाता है कि महिलाएँ पुरुषों की तुलना में बहुत ही कम दृढ़ महत्वाकांक्षी होती हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि विवाह के पूर्व कुछ महिलाओं में बड़ा ही उत्साह, महत्वाकांक्षा, कुछ कर गुजरने की तीव्र आकांक्षा, योग्यता तथा प्रतिभा होती है। वे तदानुसार इच्छित क्षेत्र में साहसिक कदम उठाती भी हैं, किन्तु जैसे ही वे विवाह बंधन में बंधती हैं, पारिवारिक उत्तरदायित्व, पारिवारिक अनुशासन उन्हें इस प्रकार से जकड़ लेता है कि वे चाहकर भी मुक्त नहीं हो पाती हैं। धीरे-धीरे उनकी महत्वाकांक्षा मृत प्रायः भी होने लगती है। वे स्वयं की विचारधारा में ही परिवर्तन करना अधिक श्रेयस्कर समझती हैं। धीरे-धीरे यथास्थिति को स्वीकार करना उनकी नियति बन जाता है।

महिला सहभागिता को हतोत्साहित किए जाने की प्रवृत्ति - कठिन परिश्रम, अथक् श्रम साध्य कार्य किए जाने, संवेदनशील होने तथा प्रत्येक भूमिका को महत्वपूर्ण ढंग से निभाये जाने के उपरान्त भी राजनीति में महिला प्रतिनिधियों का चयन किन्हीं बड़े उत्तरदायित्वों के लिए नहीं किया जाता अपितु उन्हें हतोत्साहित किया जाता है। उनकी क्षमताओं का पर्याप्त लाभ नहीं उठाया जाता जो कि महिलाओं में राजनीति के प्रति अरुचि पैदा करता है। कार्यस्थल पर पुरुष राजनीतिज्ञ से अनावश्यक तनाव व पुरुषों द्वारा महिलाओं को कमतर आंका जाना समस्याओं को बढ़ावा देता है तथा महिलाओं के समक्ष राजनीति के विपरीत मानसिकता बनाए जाने का कारण बनता है।

संप्रति राजनीतिक महिला सहभागिता को युवा मुद्दों के रूप में अनेक कारक प्रभावित कर रहे हैं, जो निम्नानुसार हैं -

बढ़ती डिजिटल राजनीति - भारत में तेजी से बढ़ते इंटरनेट उपभोक्ताओं के कारण डिजिटल दुनिया के लिए युवा भारत इस समय सबसे बड़ा उभरता हुआ बाजार है। 2014 के लोकसभा चुनाव में देश के एक अरब 30 करोड़ लोगों के पास बमुश्किल दस करोड़ स्मार्टफोन थे। अब इनकी संख्या 50 करोड़ से ज्यादा है। भारत फेसबुक, व्हाट्स एप और अन्य सोशल मीडिया एप का सबसे बड़ा बाजार है। भारत में लगभग 30 करोड़ से अधिक लोग फेसबुक का इस्तेमाल करते हैं, जिनमें 60 प्रतिशत से ज्यादा युवा हैं। 2019 के लोकसभा चुनाव में करीब 14 करोड़ युवाओं ने पहली बार मतदान किया। इसी कारण राजनीतिक दल 18 वर्ष से 35 वर्ष तक की आयु वाले उपभोक्ताओं को अपेक्षाकृत अपना लक्ष्य अधिक बनाते हैं क्योंकि भारत में सोशल मीडिया का प्रयोग करने वाले इसी आयु वर्ग के अधिक लोग हैं।²¹

सोशल मीडिया की अधिकतर इन तकनीकों का प्रयोग नई युवा पीढ़ी कर रही है। युवा सोशल मीडिया के जरिए देश की राजनीति के प्रति अपनी राय जाहिर कर रहे हैं और देश के राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों पर टिप्पणियां कर रहे हैं एवं पिछड़ी सोच रखने वाले बड़बोले राजनेताओं को सोच समझकर बोलने पर भी मजबूर कर रहे हैं। युवा जिस दल की ओर अपना रुझान प्रदर्शित करेंगे, निश्चित ही उस दल को फायदा पहुंचेगा। यही कारण है कि सभी राजनीतिक पार्टियां पूर्व के प्रचलित औपचारिक साधनों के साथ-साथ वर्तमान में नए विविध एवं अनौपचारिक जैसे फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप जैसे सोशल मीडिया के साधनों का प्रयोग करके अधिकाधिक युवा मतदाताओं को आकर्षित करने में कर रही हैं।

करिश्मा प्रधान नेतृत्व - किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाला यह महत्वपूर्ण कारक है। पूरे स्वाधीनता संघर्ष प्रकरण का तथा आजाद भारत के विगत 74 वर्षों के इतिहास का तथ्यावलोकन करने से यह स्पष्ट जानकारी होती है कि करिश्मावादी व्यक्तित्व वाले नेताओं द्वारा महिलाओं के मतदान व्यवहार को अपने दल के साथ बांध कर रखने में अत्यंत कारगर भूमिका निभायी गयी है। इस राजनीतिक कारक के प्रभाव का इस्तेमाल राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दोनों दलों के नेताओं द्वारा किया जाता है।²²

महिला करिश्मावादी नेताओं में अरुणा आसफ अली, सुभद्रा कुमारी चौहान, एनी बेसेन्ट, निर्मला देशपाण्डे, भीकाजी कामा, सरोजिनी नायडू, इन्दिरा गांधी, डा. मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी, विजय लक्ष्मी पंडित, सुचेता कृपलानी, मार्ग्रेट अल्वा, कोनिरा बेलियप्पा मुत्तम्मा शामिल हैं। इसके अलावा पिछले कुछ समय से भारत के राजनीतिक परिदृश्य में महिला करिश्मावादी नेताओं में भारत की पूर्व राष्ट्रपति रही प्रतिभा पाटिल, कांग्रेस की वर्तमान अध्यक्ष सोनिया गांधी के अलावा मायावती, जयललिता, ममता बनर्जी, वसुंधरा राजे सिंधिया, सुषमा स्वराज, शीला दीक्षित, वृंदा करार, स्मृति ईरानी, अम्बिका सोनी, मीरा कुमार, जयन्ती नटराजन, कुमारी शैलजा एवं आगाथा संगमा शामिल हैं।

सामाजिक राजनीतिक आन्दोलन - सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलन बड़ी संख्या में मतदान व्यवहार को सरकार के विरुद्ध और किसी भी दलके पक्ष में करने का माद्दा रखता है। इस रूप में यह भी राजनीति में महिला सहभागिता को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व है। पिछले कुछ समय से महिलाओं

द्वारा चलाए गए विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन की सफलता ने भी राजनीति में महिला सहभागिता को प्रभावित एवं प्रोत्साहित किया है। उदाहरण के लिए नर्मदा बचाओ आंदोलन में मेधा पाटकर एवं 2005 में सूचना का अधिकार अधिनियम को लाने में अरुणा राय का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा।

इसके अलावा भ्रष्टाचार के विरुद्ध आंदोलन एवं लोकपाल विधेयक को लाने हेतु किरण बेदी की भूमिका महत्वपूर्ण रही। अभी हाल ही में किसान आंदोलन जिसने केंद्र सरकार को तीनों कृषि कानून लेने पर वापस लेने पर मजबूर कर दिया, उसमें भी महिला सहभागिता की प्रभावी भूमिका रही। इन सामाजिक राजनीतिक आंदोलनों में महिला सहभागिता की बढ़ती भूमिका ने राजनीति में महिला प्रतिनिधियों की भूमिका को आगे बढ़ाने एवं इसे प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

असुरक्षा का भय - वर्तमान संदर्भ में यह अत्यंत संवेदनशील मुद्दा है जिसने महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता को नकारात्मक रूप में सबसे ज्यादा प्रभावित किया है क्योंकि किसी भी व्यक्ति के लिए उसकी सुरक्षा उसका सर्वप्रथम मौलिक अधिकार है। दिन-प्रतिदिन देश में बढ़ने वाले अनैतिक एवं हिंसक वातावरण के कारण समाज में असुरक्षा का भय व्याप्त होता जा रहा है, जिसके कारण महिलाएँ राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करने का साहस नहीं जुटा पाती हैं। विभिन्न संस्कृतियों से परिपूर्ण राष्ट्र में महिलाओं ने राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक सभी क्षेत्रों में प्रवेश किया है एवं प्रशासनिक भूमिकाएँ निभाई हैं। महिलाओं के विरुद्ध अपराधों का ग्राफ लगातार बढ़ता ही जा रहा है।²³

इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं के पिछड़ेपन के साथ भारतीय सामाजिक संरचना, महिलाओं में संकोच, महिलाओं में आर्थिक रूप से पूर्ण स्वावलम्बन के अभाव, परिवार में निर्धनता एवं बालक और बालिकाओं में भेदभाव की मनोवृत्ति, नैतिकता के दोहरे मापदण्ड, महिलाओं में असुरक्षा की भावना, समाज में नैतिकता का अभाव, भारत में खचीली चुनाव प्रणाली, महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता की कमी, राजनीति के दूषित आपराधिक वातावरण के कारण राजनीति में भाग लेने वाली महिलाओं के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का अभाव तथा विभिन्न राजनीतिक दलों में सत्ता प्राप्ति एवं स्वार्थ की दूषित प्रवृत्ति के कारण महिलाओं की राजनीति में सहभागी करने की इच्छाशक्ति का अभाव आदि मुख्य सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक कारण हैं जिनके कारण से महिलाएँ राजनीतिक क्षेत्र में अपना यथोचित स्थान प्राप्त करने से वंचित हैं और विधानमण्डलों में उनकी संख्या अत्यंत न्यून है।

निष्कर्ष - वर्तमान भारतीय राजनीति में सक्रिय महिलाओं ने राजनीतिक कार्यों में जिस क्षमता एवं सूझबूझ का परिचय दिया है, उससे महिला सामर्थ्य के प्रति आशंकित धारणाएँ शनैः शनैः खण्डित हो रही हैं। भारतीय राजनीति में महिलाएँ राजनीति सहित क्रियाशील जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ समान रूप से सहभागी होकर अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। राजस्थान विधानसभा में भी महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व के बावजूद प्रदेश की जिन महिलाओं ने राजनीति सहित विभिन्न दायित्वों को स्वीकार करके तथा उनका सफलतापूर्वक निर्वहन करके यह सिद्ध कर दिया है कि अवसर मिलने पर महिलाएँ राज्य के राजनीतिक जीवन में प्रभावशाली भूमिका निभा सकती हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि विधानसभा में महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व का कारण उनकी राजनीतिक अकुशलता नहीं है अपितु इसके लिये अनेक आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं राजनीतिक कारण उत्तरदायी हैं।²⁴

इसके साथ ही वर्तमान भारतीय समाज में महिलाएँ सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र से संबद्ध विभिन्न भूमिकाओं का निर्वहन कर रही हैं। महिलाओं में न केवल अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आई है वरन् वे समाज, कला, साहित्य, राजनीति, संस्कृति, कॉरपोरेट, विज्ञान प्रौद्योगिकी सहित सामरिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण पदों पर आसीन हुई हैं तथा राष्ट्र की प्रगति में विशेष योगदान दे रही हैं। महिलाएँ इस बदलते हुए सामाजिक परिदृश्य में पुरुषों के समान भागीदारी का हिस्सा बन रही हैं। इन्हीं विभिन्न क्षेत्रों में से महिला द्वारा भारतीय राजनीति में भी विशिष्ट भूमिका का निर्वहन किया जा रहा है।

वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं ने महिला हेतु राजनीति के द्वार खोले हैं। महिलाएँ स्वनिर्भर होने के लिए इस क्षेत्र में कदम रख रही हैं। स्थानीय स्तर पर महिलाओं के प्रतिनिधित्व हेतु आरक्षित व्यवस्था के कारण महिलाओं का राजनीति में प्रतिशत बढ़ा है लेकिन इन आंशिक समाधान ने उन बुनियादी समस्याओं को हल नहीं किया है जो महिलाओं को राजनीति में पूर्ण रूप से शामिल होने से रोकती हैं।²⁵ इन दिनों जिस राजनीतिक स्लोगन ने सबसे ज्यादा ध्यान आकर्षित किया है, वह है- “लड़की हूँ, लड़ सकती हूँ।” स्लोगन कांग्रेस की महासचिव प्रियंका गांधी द्वारा दिया गया है, इसलिए इस स्लोगन के अपने राजनीतिक निहितार्थ भी हैं। लेकिन यह स्लोगन पुरुषप्रधान भारतीय समाज व्यवस्था का मुद्दा कब बनेगा बनेगा? यह बड़ा सवाल है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, सविन्दर, भारत में विकास प्रशासन, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धर, 2001
2. अग्रवाल, जी. के. सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन, साहित्य भवन, आगरा, 2000
3. सिंह, जी. पी., सामाजिक परिवर्तन: स्वरूप सिद्धान्त, प्रेंटिस हॉल ऑफ इण्डिया, न्यू देहली, 2003
4. आहूजा, राम, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिशिंग, जयपुर, 1999
5. वर्मा, एस. पी., आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2000
6. आशुरानी, महिला विकास कार्यक्रम, इनाश्री पब्लिशर्स, जयपुर, 1997
7. कोहली चन्द्र, शांता, ए स्टडीज ऑफ वीमेन इन एडमिनिस्ट्रेशन: ए सिचुएशनल एनालिसिस, राधा पब्लिकेशन, न्यू देहली, 2018
8. मिश्रा, शीला, महिलाओं की राजनीतिक क्रियाशीलता एवं विविध राजनीतिक दल, उपलव हाऊस, न्यू देहली, 2018
9. बाला, राज, द लीगल एंड पॉलिटिकल स्टेटस ऑफ वीमेन इन इंडिया, मोहित पब्लिकेशंस, न्यू देहली, 2019
10. आहूजा, राम, भारत में सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 1994.
11. दीक्षित, सोना एवं दीक्षित, अरुण कुमार, महिलाओं के मानवाधिकारों का संरक्षण, कुरुक्षेत्र, कुरुक्षेत्र प्रकाशन, 2020

12. देसाई नीरा एवं ठक्कर ऊषा, वूमैन्स इन इंडियन सोसाइटी, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, 2017
13. आर्य साधना, मेनन नेविदिता एवं लोकनीता जिनी, नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन अकादमी, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2019
14. आर्य, सुधा, वूमैन, जेंडर, इक्वलिटी एण्ड स्टेट, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, दिल्ली, 2019.
15. डा. छिल्लर, मंजुलता, भारतीय नारी शोषण के बदलते आयाम, तृतीय संस्करण, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2017.
16. देवी, उमा, वूमैन्स इक्वलिटी इन इंडिया ए मिथ और रिएलिटी, डिसकवरी पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2000.
17. दैनिक भास्कर, अलवर संस्करण, 08.03.2021
18. योजना, दिसम्बर, 2020
19. कुरुक्षेत्र, नवंबर, 2020
20. परीक्षा मंथन, वार्षिकांक, भारत में महिला सशक्तिकरण - समग्र विवेचना, भाग 5, वर्ष 2020-21
21. कुरुक्षेत्र, नवंबर, 2020
22. पंवार, मीनाक्षी, नारी उत्पीड़न और कानून, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1990
23. लोकतन्त्रा समीक्षा, चुनाव में महिलाओं की सहभागिता, संयुक्त अंक, जनवरी-दिसम्बर, 2004
24. रंजन, राजीव, चुनाव लोकसभा और राजनीति, ज्ञान गंगा पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2019
25. देवी शकुन्तला: वूमैन्स स्टेट्स एण्ड सोशल चेज, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2019.

संस्कृत साहित्य में शतककाव्य-एक अध्ययन

डॉ० ज़ेबा खान

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत, फ0अ0अ0 राजकीय स्ना0 महाविद्यालय, महमूदाबाद, सीतापुर, उ0प्र0

प्राचीन काल से ही हमारे राष्ट्रीय जन-जीवन पर जिसका प्रभूत मात्रा में प्रभाव पड़ा तथा सम्पूर्ण भारतीय साहित्य एवं संस्कृति जिससे पूर्णतया प्रभावित है, वह संस्कृत भाषा ही इस महान् देश की अनुपम और अमूल्य निधि है। देवभाषा अभिधान से विभूषित होकर यह समय की विशाल एवं परिवर्तित गतियों में भी सांस्कृतिक समस्त तत्वों को सुरक्षित रूप में समाहित किए हैं।

संस्कृत की नाना काव्यविधाओं में हमारी संस्कृति पल्लवित तथा पुष्पित हुई है। हमारी संस्कृति का प्राण आध्यात्मिक भावना है, जो संस्कृत वाङ्मय में त्याग एवं तपस्या के द्वारा संवर्द्धित हुई है। वैदिक वाङ्मय से प्रभावित भारतीय कवि को आत्मानुभूति जब काव्य रूप ग्रहण करने के लिए चंचल कामिनी के समान थिरक पड़ी। उस समय भी हमारी सांस्कृतिक प्राण आध्यात्मवाद ने उसके हाव-भाव का रूप ग्रहण किया, फलतः नाना भंगिमाओं से निःसृत काव्य धारा आशावादिता से परिपूर्ण रही। शतक-काव्यों में भी अनेक रूपों में भावों की अभिव्यक्ति हुई है।

शतक हमारी वैदिक परम्परा में पूर्णता का प्रतीक रहा है। 'जीवेम शरदः शतम्' आदि की आत्मा पूर्णता तथा कल्याण से युक्त है। इसी से अनुप्राणित होकर भारतीय कवि की स्वानुभूति शतककाव्य के रूप में प्रकट हुई। संस्कृत काव्य की विधाओं में शतककाव्यों का स्थान खण्डकाव्य के अन्तर्गत प्रतिष्ठित होता है। वैसे शतककाव्य मुक्तकाव्य के प्रमुख उदाहरण है।

समृद्ध शतककाव्य का स्वरूप बहुआयामी होकर लोकमानस की सुन्दर मीमांसा करता है। लोकजीवन के धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक विभिन्न पक्षों पर शतककाव्यों की सुन्दर रचना हुई है। मुख्यतः शतककाव्य हमें चार रूपों में प्राप्त होते हैं-

1. भक्तिभावपूर्ण एवं स्तोत्रात्मक शतककाव्य
2. श्रृंगारिक शतककाव्य
3. नीतिसम्बन्धी शतककाव्य
4. राष्ट्रीय भावनापरक शतककाव्य

भक्तिभाव युक्त स्तोत्रात्मक शतककाव्यों का प्रतिपाद्य विषय देवताओं की स्तुतियाँ हैं। इन्हें स्तोत्र शतक साहित्य के नाम से जाना जाता है। संस्कृत कवियों ने अपने लौकिक कल्याण के भाव से ओत-प्रोत होकर दिव्य देवताओं की स्तुति में अनेक शतककाव्यों की रचना की। जिनमें उपास्य देवता विशेष को ही आधार बनाकर उन्हीं के यशोगान में मुक्तकपद्यों में सुन्दर भाव व्यक्त किए। इनमें शिव-पार्वती, राम-सीता, हनुमान, राधा-कृष्ण, दुर्गा स्थानीय लोक देवता विशेष की दिव्याकृति, करुणामय स्वरूप तथा दैवी शक्ति आदि तत्वों को काव्यात्मक रूप प्रदान किया। भारतीय मनीषियों ने वैदिक काल से ही ईश्वर के प्रति अपने को अर्पण करने में ही सफलता मानी है। देवता विशिष्ट के वन्दन में ही एक-एक सूक्त का निर्माण किया गया। उसी परम्परा में लौकिक संस्कृत-साहित्य में स्तोत्र रूप में विशाल शतक साहित्य का निर्माण किया गया। इनमें देवीशतक, चण्डीशतक, विष्णुस्तोत्रशतकम्, श्रीनिवासशतकम्, नृसिंहशतक, वामनशतक, कृष्णशतक, शक्तिशतक, कालिकाशतक, रामशतक, इत्यादि अनेक शतकों को कवि ने अपनी विलाक्षण लेखनी द्वारा देवताओं की अलौकिक शक्तियों एवं दिव्य रूप को बड़े ही अनूठे ढंग से काव्य रूपी माला में पिरोया है।

संस्कृत के लोकप्रिय कवियों ने जहाँ एक ओर स्तोत्र-परम्परा को समृद्धि शाली बनाया। वहीं सुप्रसिद्ध आचार्यों से प्रभावित होकर काव्य के महनीय प्रयोजन 'कान्तासम्मित उपदेश' का समादर किया।

भामह, मम्मट प्रभृति आचार्यों ने भी काव्यनिर्माण में लोक तत्व की महिमा को स्वीकार किया है। साहित्य एक श्रेष्ठ ललित कला है, कला के द्वारा काव्यकार अपनी सौन्दर्यानुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। सौन्दर्य रूप और विचार दोनों में पाया जाता है। उन विचारों की अभिव्यक्ति कवि को बेचैन कर देती है। श्रृंगारी शतकों का विकास इसी का परिणाम है। इन शतकों में श्रृंगार को ही प्रधान रस माना गया है तथा काम के विभिन्न रूपों मदन, मन्मथ, कन्दर्प एवं पंचशर आदि के मानव समुदाय में व्याप्त प्रभाव का चित्रण किया गया। कवियों ने नायिकाओं के विभिन्न अवयवों, विलास क्रीड़ाओं, मनोमुग्ध कारी रूपों के चित्रण में ही अपनी लेखनी को सार्थक बनाया। "सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानम्" तथा 'सर्वस्य गात्रस्य शिरः प्रधानम्' उक्तियों को कवियों ने अपने अलौकिक भावों से सार्थक सिद्ध कर दिया।

श्रृंगारी शतककाव्यों में कवियों ने रमणी के नयन, मुख, केश, नख, कटास, वक्षोज, कटि, रोमावलि आदि अवयवों को ही विषय बनाकर काव्य सर्जना की। इन्होंने अपनी अन्तः सूझ-बूझ से विषय वस्तु को जिस कलेवर में संजोया। वह संसार के किसी साहित्य में दुर्लभ है। श्रृंगार शतक अमरुकशतक एवं श्रृंगारतिलक आदि शतककाव्यों में श्रृंगार का बड़ा ही सुन्दर चित्रण है। श्रृंगारशतक में स्त्रियों की विविध वैलासिक चेष्टाओं का वर्णन करते हुआ कवि कहता है कि-

'सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति,
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।
एताः प्रविष्य हृदयं सदयं नराणां,
किं किं न वामनयना हि समाचरन्ति'॥

संस्कृत शतकाव्यों के माध्यम से भारतीय मनीषियों ने ऐसी उपदेशात्मक तथा नीतिपरक बातों की शिक्षा दी है जो किसी अन्य वाङ्मय में दुर्लभ हैं। इन नीति सम्बन्धी शतकों का समाज पर अत्याधिक प्रभाव पड़ा। इन शतकों में कवि में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में शिक्षाएं प्रदान की हैं। इन शतकों का यदि हम ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन करें तो स्पष्ट हो जाता है कि समाज में प्रत्येक युग में यथार्थ दिशा प्रदान करने का कार्य भारतीय मनीषों ही अपने काव्य के माध्यम से करते रहे। नीति सम्बन्धी शतकों में उनका साहित्यिक एवं सांस्कृतिक महत्व, लोक प्रचलित धर्मशास्त्र, व्यंग्य, सामाजिक, आत्मचरित, आचार्य चरित आदि शतकों का परिगणन किया गया है।

नीतिशतक में विद्या, वीरता, साहस, मैत्री जैसी वृत्तियों का महाभारत एवं मनुस्मृति जैसी गम्भीरता नैतिकता का सरस पदावली में वर्णन किया गया है। नीतिशतक के प्रसिद्ध पद्यों का प्रचार समस्त भारत में है। उदाहरण द्रष्टव्य है-

“मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणूनपर्वतीकृत्यनित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः क्विन्तः॥”

अन्य पद्य जो विद्या की प्रशंसा से युक्त है। द्रष्टव्य है-

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्,
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः।
विद्या बन्धुजने विदेशगमने विद्या परा देवता,
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्या विहीनः पशुः॥

इसी प्रकार राष्ट्रीय भावनापरक शतककाव्य राष्ट्र एवं राष्ट्र के महापुरुषों की स्तुति में विरचित है। ये शतककाव्य राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत है। इनमें देश के महान् पुरुषों के देश के लिए किये गये उनके महत्वपूर्ण कार्यों, योगदान, शोकगीत आदि का यथावत् उल्लेख कवि द्वारा किया गया है। इनमें भारतशतकम्, मातृभूलहरी, जय भारतभूमे, भारतशतकम्, श्री गान्धिचरितम्, गान्धिगौरवम्, जवाहरतरंगिणी, प्रियदर्शिनीयम् आदि प्रमुख शतककाव्य हैं। श्रीकृष्ण सेमवाल रचित प्रियदर्शिनीयम् के कीर्तिखण्ड का एक पद्य द्रष्टव्य है-

“जगति मातृभूकार्यसाधिका,
सततहर्षिणी द्रव्यवर्षिणी।
जलधिगर्भतो या रमा-समा
समजनीन्दिरा मातृकुक्षितः॥”

स्वातंत्र्यवीर शतक नामक शतककाव्य डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकर द्वारा रचित है। इसके 101 श्लोकों में कवि ने वीर सावरकर के गुण गौरव का गान किया है। कवि ने सुन्दर उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से सावरकर के चरित्र को ऊँचा उठाया है। एक स्थल पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि हनुमान ने नभोमार्ग से जाकर समुद्र का उल्लंघन किया तो उसमें कौन सा आश्चर्य है। हनुमान वायु पुत्र हैं। आकाशात् वायुः इस उपनिषद वचन के अनुसार वायु आसमान का पुत्र और वायु का पुत्र हनुमान आसमान का पौत्र है। उसने आकाश मार्ग से अर्थात् दादा की सहायता से समुद्र का उल्लंघन किया तो इसमें क्या आश्चर्य।

कवि ने संस्कृत साहित्य में अपार वैदुष्य अर्जित किया है, जिसका प्रयोग उन्होंने इस कृति में किया है। भाति में भारतम् डॉ० रमाकान्त शुक्ल प्रणीत एक राष्ट्रीय भाव प्रधान श्रेष्ठ शतककाव्य है। इसके 108 पद्यों में भारत की श्लाघनीय महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। वस्तुतः इस काव्य को पढ़कर पाठक भारत के प्रेम में रंग जाता है। भारत की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कवि भारतीयों के मन में राष्ट्रीय चेतना का उद्बोधन करता है।

जय भारतभूमे डॉ० रमाकान्त शुक्ल प्रणीत एक राष्ट्रीय भाव प्रधान श्रेष्ठ काव्य है। इसके 108 श्लोकों को कवि ने सात शीर्षकों में विभक्त किया है। अभिव्यक्ति इतनी मधुर है कि पाठक उसी के अनुरूप भाव जगत् में अवगाहन करने लगता है।

112 श्लोकों में गुम्फित नृप प्रताप विजयम् नामक शतककाव्य श्री हजारी लाल द्वारा लिखा गया है। इसमें राष्ट्र की स्वतन्त्रता के समर्थक तथा संरक्षक महाराणा प्रताप के मुगल सम्राट अकबर के साथ हुए संघर्ष तथा अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम का वर्णन है।

श्री गान्धिचरितम् श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल द्वारा रचित राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत एक शतककाव्य है। इसमें महात्मा गाँधी के चरित्र के कुछ महनीय पक्षों का संक्षेप में चित्रण है।

गान्धिगौरवम् शतककाव्य के रचयिता डॉ० रमेश चन्द्र शुक्ल हैं। इस शतककाव्य में महात्मा गाँधी की गौरवगाथा तथा राष्ट्रोपयोगी कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

गुरु महिमा से संबंधित शतककाव्य जिनमें 'गुरुमाहात्म्यशतकम्' डॉ० कैलाश नाथ द्विवेदी द्वारा रचित शतककाव्य हैं। इसमें गुरु की महिमा का विस्तार से वर्णन किया गया है। वस्तुतः प्रत्येक पुरुष संसार में विषयाग्नि जन्य, त्रिविध सन्तापों से पीडित होकर अपनी जलन ज्ञान के प्रक्षालन से बुझाते हैं। एक श्लोक द्रष्टव्य है-

कुबुद्धि-गते पतितं तमोवृतम्।
नरं नयत्युध्वतमं प्रकाशितम्।
सुमार्ग नेता करुणाकरोमहान्,
महामतिः को गुरुवन्महान् भुवि॥

गुरु से अधिक कोई महिमामय नहीं है। भारतीय साहित्य में सर्वत्र गुरु गौरव लक्षित होता है। भारतीय संस्कृति आदिकाल से ही गुरु को विशेष महत्वपूर्ण स्थान देती आई है। वैदिक काल से अब तक गुरु परम्परा निरन्तर नैसर्गिक रूप से चली आ रही है। आचार्य देवो भव यह औपनिषदवाणी आचार्य अर्थात् गुरु को देवतुल्य सम्मान देकर उनके प्रति श्रद्धा की भावना को व्यक्त करती है।

अपने गुरु शुक्राचार्य की दया-दृष्टि को प्राप्त कर दैत्यराज बलि स्वर्गश्री के स्वामी हो गए थे। उनकी बिना अनुमति को प्राप्त कर यज्ञ में तीन पृथ्वी दान में देने के कारण वह बलवान बलि विष्णु के द्वारा छले गए।

क्षमाशील, इन्द्रियो को वश में रखने वाले, धैर्यशाली, शिष्ट कर्मों को करने वाले, श्रेष्ठ नीतिज्ञ रघुवंश के कुलगुरु वशिष्ठ वन्दनीय हैं। ऋषि प्राचेतस द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर आगे ले जाने वाले, रामकाव्य(रामायण) की अमृत वर्षा करने वाले आदिकवि मुनीश्वर वाल्मीकि पूज्य गुरु हैं। कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध के पूर्व जिस महात्मा ने भुजा उठाकर कल्याणकारी धर्म को व्यक्त किया, उन ज्ञानमूर्ति गुरु-श्रेष्ठ वेद-व्यास को मैं नमस्कार करता हूँ।

गुरु सन्दीपन के प्रभाव से श्रीकृष्ण योगविद्या के स्वामी हो गए। उनके द्वारा कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में योग तत्व से युक्त ज्ञान का उपदेश दिया गया। गुरु द्रोणाचार्य के द्वारा ही अर्जुन इस संसार में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर के रूप में विख्यात हुए जिनके गाण्डीव धनुष की छाया में धर्मराज युधिष्ठिर ने शान्तिपूर्वक शयन किया।

संगीत शास्त्र, काव्यशास्त्र आदि अनेक कर्मों में (अनुल्लिखित) अनेक उदाहारण इस संसार में हैं। बिना गुरु के विद्याओं में किसी प्रकार की गति दृष्टिगत नहीं होती। ऐसा लोकजीवन में प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है।

इस प्रकार लोकजीवन के विभिन्न पक्षों पर शतकाव्यों की सुन्दर रचना हुई है। शतक मानव जीवन की प्रेरणा के सुन्दर स्रोत हैं। निःसन्देह उन शतककाव्यों के माध्यम से वर्तमान शिक्षा जगत् और शिक्षा पद्धति प्रेरणापद् परिष्कार प्राप्त कर शिक्षार्थियों को नवदिशा निर्देशन अवश्य प्राप्त होगा ऐसा हमारा विश्वास है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (डॉ० कैलाश नाथ द्विवेदी)।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास (पं० बलदेव उपाध्याय)
3. संस्कृत वाङ्मय कोष (श्रीधर भास्कर वर्णेकर)
4. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (डॉ० कपिल देव द्विवेदी)
5. समीक्षा लोक (डॉ० मीरा द्विवेदी) जयपुर 2020
6. हमारे महापुरुष, डॉ० शिव कुमार दिल्ली, 2001
7. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना (डॉ० हरिनारायण दीक्षित) दिल्ली, 1983
8. शृंगारशतक
9. नीतिशतक (भर्तृहरि)
10. प्रियदर्शिनीयम् (श्रीकृष्ण सेमवाल) कीर्तिखण्ड, श्लोक सं०-8।
11. गुरुमाहात्म्यशतकम् (डॉ० कैलाश नाथ द्विवेदी) श्लोक सं०-41 पृष्ठ सं०- 26।

संवैधानिक नैतिकता एवं लोक नैतिकता: एक सामाजिक एवं विधिक विश्लेषण

मरयम इशरत बेग

सह आचार्य, मणिपाल युनिवर्सिटी, जयपुर

निरंतर परिवर्तनीय समाज एवं सामाजिक दार्शनिक मूल्यों के कारण विधि एवं नैतिकता को सर्वसम्मत स्थिर संकल्पना के रूप में प्रस्तुत किया जाना विधि ज्ञान दार्शनिकों और समाजशास्त्रियों के लिये सदैव चुनौतीपूर्ण और विवादित रहा है। साधारणतः शब्दों में विधि का अर्थ है मानव व्यवहार को नियंत्रित करना एवं संतुलित बनाए रखने वाले नियमों की संहिता जो कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था का अभिन्न अंग है। अर्थात् विधि न्यायिक प्रशासन के लिए राज्य द्वारा मान्य एवं लागू किये जाने वाले नियमों की संहिता है। सामाजिक के विचार सामान्य के विचार अनुसार विधि राज्य द्वारा प्रमाणित एवं अनुकरणीय उन नियमों का समूह है जो कि न्याय प्रशासन के कार्यान्वयन हेतु प्रयुक्त होते हैं, किंतु रास्कोपाउण्ड विधि को सामाजिक वास्तविकता के रूप में परिभाषित करते हैं उनके अनुसार विधि मात्र प्राथमिक नियमों का सार संग्रह नहीं अपितु यह व्यक्तिगत एवं सामूहिक हितों का समायोजन समन्वय और संतुलन है विधि और नैतिकता का परस्पर संबंध सदैव से ही विवादित विषय रहा है विख्यात हार्टफुल्लर वाद विवाद से आज तक यह विषय विभिन्न अवधारणाओं का जन्मदाता है। विधि सामान्यता नियमों के रूप में उसी को अनुमत एवं लागू करती है जो कि समाज में उच्च नैतिक नियमों के रूप में मान्य एवं अनुकरणीय हैं।

नैतिकता को सामान्यतः एक ऐसे प्रमाणीकरण के रूप में लिया जाता है जो कि मानव व्यवहार के औचित्य को सिद्ध करती है एवं जो कि धर्म, सभ्यता, समाज, जाति और पारिवारिक मूल्यों पर निर्भर है। प्रत्येक समाज अपने नैतिक मूल्यों को स्वयं ही निर्धारित करता है। लोकनैतिकता को समाज द्वारा स्वीकृत एवं अस्वीकृत कृत्यों के बारे में प्रचलित धारणाओं का परिचायक माना जा सकता है। उपरोक्त संदर्भ में संवैधानिक नैतिकता का तात्पर्य न्यायिक न्यायिक नैतिकता से है। संवैधानिक नैतिकता का यदि अध्ययन किया जाए तो भारतीय संविधान में कहीं भी संवैधानिक नैतिकता को परिभाषित नहीं किया गया है। इसे संविधान वाद के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है जो कि उन मूल्यों पर आधारित है जो संविधान में सन्निहित हैं। अतः संवैधानिक नैतिकता का तात्पर्य वे मूलभूत संवैधानिक मूल्य हैं जो कि संविधान के मूलभूत ढाँचा का निर्माण करते हैं। संवैधानिक नैतिकता का विस्तार संवैधानिक प्रावधानों की अक्षरशः पालना से ही नहीं अपितु उस प्रक्रिया की सुनिश्चितता से है जो कि विधि का शासन, सामाजिक न्याय, व्यक्तिगत स्वातंत्र्य, स्वतंत्र न्यायपालिका, समतावाद आदि प्रजातांत्रिक मूल्यों पर आधारित हो। संवैधानिक नैतिकता के बिना संविधान का कार्यान्वयन निरंकुश स्थल एवं मनमाना हो जाता है।

संवैधानिक नैतिकता का संविधान सभा के वाद-विवादों में कुछ उल्लेख अवश्य हुआ है किन्तु यह नगण्य था। भारतीय संविधान जो कि सभी को समानता पर आधारित सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय और समान अवसर को सुनिश्चित करता है लोकतांत्रिक व्यवस्था में संवैधानिक नैतिकता एवं न्यायिक मूल्यों की अवधारणा एक व्यक्ति समुदाय या समाज की गरिमा एवं उसके स्वतंत्रता को सुनिश्चित करती है। राव अंबेडकर डॉक्टर अंबेडकर के अनुसार संवैधानिक नैतिकता का अर्थ किसी भी कीमत पर अपने हितों को प्राप्त करने के लिए काम कर रहे विभिन्न समूहों या विभिन्न लोगों के विरोधाभासी हितों के मध्य प्रभावी समन्वय स्थापित करना और प्रशासनिक सहयोग के बिना किसी टकराव के मामले को सुलझाना है।

संवैधानिक नैतिकता मुख्यतः दो बिंदुओं पर केंद्रित है :-

स्वतंत्रता और अनुशासन संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत स्वतंत्रताओं का अस्तित्व लोगों के स्वर अनुशासन पर निर्भर करता है।

सामाजिक मान्यताएं - समाज में व्याप्त विभिन्न समुदायों या समूहों की निजी मान्यताएं संविधान के प्रति निष्ठा का आधार नहीं होती है।

संवैधानिक नैतिकता के स्रोत

प्रस्तावना : संवैधानिक मूल्यों एवं उद्देश्यों का सार परिचय है।

संवैधानिक सभा के बाद विवाद जो कि संविधान निर्माताओं के दृष्टिकोण के परिचायक हैं

वे समस्त घटनाएं जो कि संविधान निर्माण के समय घटित हो जैसे कि सांप्रदायिक हिंसा एवं विभिन्न में पृथक तावादी समूहों के कार्यकलापों ने एक धर्मनिरपेक्ष संघीय एवं प्रजातांत्रिक संविधान का मार्ग प्रशस्त किया।

पूर्व निर्णयों के उचित अर्थ अध्ययन एवं व्याख्या में सहायक सिद्ध हुए।

संवैधानिक नैतिकता एवं न्यायिक मूल्य एक दूसरे के पूरक होकर ही सार्थक हैं न्यायपालिका का भारतीय संविधान के रक्षक होने के नाते यह मूल्य कार्य है कि संवैधानिक मूल्यों एवं उद्देश्यों की उपलब्धि को सुनिश्चित करें। चूंकि संवैधानिक निर्वाचन का कार्य न्यायपालिका का है अतः संवैधानिकता का संदर्भ सर्वप्रथम 'केशवानंद भारती केरल राज्य' के बाद में मिलता है जबकि जिसमें इसका उल्लेख मात्र ग्रेट एवं अंबेडकर के विचारों के माध्यम से किया गया।

बाद के कुछ निर्णयों में भी इसका संदर्भ आया किन्तु संवैधानिक नैतिकता को प्रकटतः नहीं स्वीकारा गया। एस. पी. गुप्ता² के निर्णय में संविधान के उल्लंघन को संवैधानिक नैतिकता के विरुद्ध माना गया तत्पश्चात इस्लामिक एकेडमी ऑफ एजुकेशन बनाम कर्नाटक राज्य³ के बाद में भी न्यायाधीश एस. बी. सिन्हा ने इसका प्रयोग अन्य संदर्भ में किया। मि. X बनाम हॉस्पिटल Z⁴ में लौक नैतिकता को किसी मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता देते हुए नैतिकता को निर्णायक कारक माना गया। किन्तु नाज फाउण्डेशन निर्णय⁵ में दिल्ली उच्च न्यायालय ने लौक नैतिकता के आधार पर अनुच्छेद 21 में वर्णित व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध को अस्वीकृत कर दिया। इसके पश्चात NCT दिल्ली बनाम भारत संघ⁶ के बाद में संवैधानिक नैतिकता को संवैधानिक नियमों के प्रति आस्था एवं पालन के रूप में जाना गया और सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यदि किसी देश का संविधान है तो यह एक स्पष्ट आश्वासन के कि नागरिकों और राज्य समेत सभी अन्य संविधान की बुनियादी मूल्यों से बंधे होंगे अर्थात् उनकी पालना करेंगे।

पिछले कुछ समय से संवैधानिक नैतिकता एवं लोकनैतिकता का अन्तःसंबद्ध सर्वोच्च न्यायालय के कुछ निर्णयों के कारणवश चर्चित विषय बना हुआ है। इन निर्णयों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि संवैधानिक नैतिकता सामाजिक एवं प्रथागत विधि से सर्वोपरि है और संविधान एक दस्तावेज मात्र नहीं अपितु सामाजिक नवसंरचना एवं परिवर्तन का अस्त्र भी है और संवैधानिक नैतिकता का प्रयोग सामाजिक नैतिकता को प्रभावित कर सकती है। मनोज नरूला बनाम यूनियन ऑफ इंडिया⁷ भारतीय राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार के बारे में यह अवलोकन किया गया कि भारत का संविधान एक जीवंत दस्तावेज है जो कि अत्यधिक गतिशीलता की क्षमता रखता है, यह प्रगतिशील समाज के लिए बना हुआ संविधान संवैधानिक नैतिकता लोक नैतिकता से सर्वोपरि है। इस निर्णय में संवैधानिक नैतिकता पर डॉ. भीमराव अम्बेडकर के संविधान सभा में दिये गए भाषण का उल्लेख करते हुए कहा कि संविधान के मानदण्डों की पालना करना और विधि के शासन का उल्लंघन नहीं होना तथा संविधान के प्रति प्रतिबद्धता संवैधानिक नैतिकता का गुण है। न्यायपालिका की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है जबकि किसी सामाजिक वर्ग या समूह के अधिकारों का प्रश्न हो और यह वर्ग या समूह ना केवल राज्य और समाज के द्वारा अपितु पारिवारिक सदस्यों के द्वारा भी क्रूरता, असमानता, अपमान हिंसा और अलगाव का शिकार हो।

सन दो हजार अठारह विशेष उपलब्धियों का वर्ष रहा जबकि भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऐसे कई निर्णय दिए गए जिन्होंने संवैधानिकता एवं विधि के शासन का मार्ग प्रशस्त किया इन क्रांतिकारी निर्णय होने परिणाम स्वरूप असुरक्षित वर्ग के अधिकारों को सुरक्षित कर संवैधानिक मान्यता प्रदान की जो कि लोक नैतिकता के आधार पर उपेक्षित रहे।

दिनांक 22 अगस्त 2017 को सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने 3 : 2 के बहुमत से मुस्लिम समाज में प्रचलित तीन तलाक (तलाक - ए - बिदअत प्रथा को असंवैधानिक घोषित कर दिया। सायरा बानो बनाम भारत संघ⁸ में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यह स्पष्ट है कि सुलह (समझौते के बिना किसी मुस्लिम व्यक्ति द्वारा वैवाहिक संबंध को सनकी तरीके से तोड़ना भारती; संविधान के अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत निहित मौलिक अधिकार का उल्लंघन माना जाना चाहिये। इसी आधार पर शरीयत एक्ट 1937 जो कि तीन तलाक को मान्यता देता है इसकी अनुमति देने तक अमान्य है। अतः उपरोक्त निर्णय ने सदियों से चले आ रहे प्रथागत विधि पर आधारित तीन तलाक को वैधानिक घोषित कर अप्रत्यक्षतः संवैधानिक नैतिकता को सर्वोपरि रखा। अगर कोई कानून समानता महिलाओं के अधिकार एवं गरिमा को प्रभावित करता है वह अमान्य होगा।

इसी संदर्भ में एक अन्य निर्णय नवतेज सिंह जोहर बनाम भारत संघ⁹ के रूप में आया जब कि इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने के अधिकारों की पुनः पुष्टि करने उस समूह के लोगों को उनकी गरिमा जीवन स्वतंत्रता और पहचान देते हुए आई- पी- सी- की धारा 377 को असंवैधानिक करार दे दिया। संवैधानिक पीठ ने धारा 377 को 156 साल पुराने अत्याचार को तर्कहीन असमर्थनीय और प्रकट रूप से मनमाना घोषित कर दिया। धारा 377 समलैंगिकता को 10 साल के कारावास से दंडित करती है। न्यायालय ने शारीरिक स्वायत्ता व्यक्तिवादी है और व्यक्ति को निजता का मौलिक अधिकार है। यह निर्णय भारतीय संविधान के परिवर्तनीय प्रारूप का परिचायक था जोकि अनु 21 के अन्तर्गत निजता गरिमा यौन अनुकूलन की स्वायत्ता तथा लैंगिक पहचान के अधिकारों को सुरक्षित करता है।

इन्हीं निर्णयों के अगले क्रम में सर्वोच्च न्यायालय ने जारता के अपराध से संबंधित जोसेप शाईन बनाम भारत संघ¹⁰ के निर्णय में आई- पी- सी- की धारा 497 को अनुच्छेद 14, 15 व 16 का उल्लंघन करने के आधार पर असंवैधानिक घोषित कर दिया है। माननीय मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा ने कहा कि पत्नियाँ पतियों की संपत्ति नहीं है और पति उनके मालिक नहीं हैं। आई- पी- सी- की धारा 497; (1) लिंगभेद पर आधारित है और पुरुषों को ही दंडित करती है तथा; (2) सिर्फ पति को अधिकार है कि वह एफ- आई- आर- लिखा सकता है; (3) अविवाहित महिला के साथ यौन संबंधों पर लागू नहीं होता; पति की सहमति को आवश्यक मानता है। अब एक सिविल अपराध है और यह माना गया कि आमतौर पर कानून लैंगिक तटस्थता पर आगे बढ़ता है किन्तु इस धारा में यह अवधारणा अनुपस्थित है। जारता अब एक सिविल दुष्कृत्य है और तलाक का आधार बन सकता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण निर्णय जिसे साधारणतः सबरीमाला निर्णय¹¹ के रूप में मान्यता मिली में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने एक आयु विशेष की महिलाओं के मंदिर में प्रवेश संबंधी अनुमति प्रबंधित करने को असंवैधानिक घोषित कर दिया। न्यायाधीश माननीय दीपक मिश्रा ने निर्णय में कहा कि एक विशेष आयुवर्ग की महिलाओं को मंदिर में प्रवेश की अनुमति होना अनुच्छेद 25; (1) सुरक्षित मूलाधिकार का उल्लंघन है। इसी के साथ केरला हिन्दु प्लेसेस ऑफ पब्लिक वर्शिप रूल जो महिलाओं के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाता है को अमान्य घोषित कर दिया व माननीय मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा ने निर्णय सुनाते समय कहा कि महिलाएँ पुरुषों के मुकाबले में कम नहीं होती हैं। धर्म में पितृसत्ता को आस्था के ऊपर हावी होने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। जैविक या शारीरिक कारणों को आस्था के लिये स्वतंत्रता में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। धर्म मूल रूप से जीवन का मार्ग है हालांकि कुछ प्रथाएँ विसंगतियाँ बनाती है। सीजेआई जस्टिस दीपक मिश्रा द्वारा प्रकट की गई बहुमत राय में यह कहा गया है कि संविधान के अनु 25 में आने वाले नैतिकता शब्द को संकुचित नहीं किया जा सकता है। ऐसे मामलों में जहां मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है नैतिकता शब्द का अर्थ स्वाभाविक रूप से, संवैधानिक नैतिकता है और संविधान न्यायालयों का निर्णय संवैधानिक नैतिकता के आधारभूत सिद्धान्तों के अनुरूप होना चाहिये जो संविधान स्वयं से ही उत्पन्न होता है। लोक व्यवस्था, नैतिकता एवं स्वास्थ्य की धारणाओं की धर्म स्वतन्त्रता को सीमित करने के लिये 10-50 वर्ष की आयु वर्ग की महिलाओं

के विरुद्ध भेदभाव करने के लिये एक रंगीन उपकरण के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है। इन्हें सबरीमाला मंदिर में प्रवेश करने एवं अपनी प्रार्थना के विधिक अधिकार से वंचित करने वाली सार्वजनिक नैतिकता से संवैधानिक नैतिकता कहीं उत्तर है।

माननीय न्यायाधीश डी आई चन्द्रचूड - ने कहा है कि संवैधानिक नैतिकता समय और काल की क्षणभंगुर कल्पनाओं के आधीन नहीं है अपितु इसकी जड़ें मानव स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व और गरिमा की मौलिक धारणाओं में अन्तर्निहित है। लोक विधि के सन्दर्भ में, धर्म और नैतिकता के मध्य, संवैधानिक नैतिकता की भावना ही प्रबलतम है। इस प्राचीन मंदिर में 10 - 50 साल की महिलाओं का प्रवेश इसलिये वर्जित है कि माना जाता है इस आयुवर्ग की महिलाओं को मासिक धर्म होने के कारण मंदिर की पवित्रता खण्डित हो जायेगी। यह प्रतिबंध पिछले 1500 वर्षों से लागू है। उपरोक्त निर्णय में नैतिकता एवं संवैधानिकता पर प्रकाश डालते हुए मुख्य न्यायाधीश ने कहा कि जब भी कहीं मूल अधिकारों का उल्लंघन होता है नैतिकता का अर्थ संवैधानिक नैतिकता ही समझा जाना चाहिये और संवैधानिक न्यायालयों को संवैधानिक नैतिकता के मूलभूत सिद्धांतों के अनुसरण में कार्य करना चाहिये जो कि संविधान द्वारा पोषित है। माननीय न्यायाधीश डी वाई चंद्रचूड ने कहा कि लोकविधि के विषयान्तर्गत धर्म एवं नैतिकता में संवैधानिक नैतिकता ही उच्चतर है। इन निर्णयों के विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सामाजिक नैतिकता या बहुसंख्यक नैतिकता देश के संविधान के अन्तर्गत है जो कि प्रत्येक को समान अधिकार देता है।

किन्तु इन निर्णयों ने संवैधानिक नैतिकता के आलोचनात्मक अवलोकन के लिये पृष्ठभूमि का कार्य किया। विधि मंत्री श्री रविशंकर ने कहा कि हमने संवैधानिक नैतिकता के बारे में सुना हम नवोन्वेषण की प्रशंसा करते हैं किन्तु संवैधानिक नैतिकता की बारीकियों को स्पष्ट परिभाषित होना चाहिये। एटॉर्नी जनरल के के वेणुगोपाल ने कहा कि संवैधानिक नैतिकता खतरनाक हो सकती है और हमें यह अनुमान नहीं है कि इसका अंत कहा है मैं आशा करता हूँ कि संवैधानिक नैतिकता का अंत हो जाए।

संवैधानिक नैतिकता के प्रयोग के अतिरेक में आलोचकों का मानना यह है कि चूंकि सर्वोच्च न्यायालय ने इसे एक उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया है। अतः इसके अस्तित्व के बारे में कोई शंका नहीं है किन्तु इसका निर्माण या गठन होना महत्वपूर्ण विचारणीय बिन्दु है। उदाहरण स्वरूप सबरीमाला निर्णय में न्यायमूर्ति इंदू मल्होत्रा की असहमति की राय इस प्रकार की थी कि संवैधानिक नैतिकता के लिये यह आवश्यक हो गया कि हर व्यक्ति को अपने विश्वास का अधिकार होगा और कोई भी इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। न्यायालय इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते कि आस्था का मामला क्या है संवैधानिक नैतिकता व्यक्ति विषयक हो सकती है तो स्थायित्व कहाँ है। इस अवधारण के आलोचक संविधान के शाब्दिक निर्वचन के पक्ष में हैं।

निष्कर्ष के रूप में यह समझा जा सकता है कि वैद्यता को सुदृढ़ स्थापित नियमों विधायी सक्षमता के रूप में परखा जाना चाहिये। साथ ही लौक नैतिकता जो कि बहुसंख्यक नैतिकता है, के लिये संवैधानिक सिद्धांतों को नहीं त्यागा जा सकता है। संवैधानिक नैतिकता के सिद्धान्त के उद्देश्य परक मानकों के अनुरूप समक्ष रूप से विकसित किया जा सकता है। आधारभूत संकल्पना के रूप में इसका प्रयोग विधि सम्मत ज्ञान के साथ, प्रगतिशील निर्णयों के माध्यम से किया जा सकता है तथा समाज में व्याप्त विभिन्न सामाजिक, प्रथागत एवं धार्मिक विसंगताओं के विरुद्ध व्यैक्तिक अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं की मान्यता हेतु संवैधानिक नैतिकता का परिभाषित किया जाकर उद्देश्यपरकता के साथ प्रयोग अति आवश्यक है।

सरोगैसी, वैवाहिक बलात्कार, लिव इन रिलेशनशिप, जैसी कई सामाजिक समस्याओं का विधिक समाधान इसी निष्कर्ष पर आधारित है कि न्यायालय संवैधानिक नैतिकता की व्याख्या किस प्रकार करते हैं। न्यायालय संवैधानिक नैतिकता से बाध्य है। संविधान लोक विश्वास व जनतंत्र की सफलता की मूल कुंजी है जिसका सम्मान ही लोकतंत्र को विजयी बना सकता है एवं समस्त विषमताओं को दूर कर अधिकारों की समानता को स्थापित कर सकता है।

संदर्भ

1. Kesavananda Bharati v. State of Kerala AIR 1973SC1461
2. S.P.Gupta V. Union of India (1989) SUPP(1) SCC87
3. Islamic Academy of Education V. State of Karnataka (2003)6SCC697
4. Mr. X V. Hospital 1998 SUPP (1) SCR723
5. Naz Foundation V. Govt. of NCT of Delhi, 160 Delhi Law Times 277
6. State (NCT of Delhi) V. Union of India, (2018) 8 SSC 501
7. Manoj Narula V. Union of India (2014) 9 SCC1.
8. Sayara Bano V. Union of India (2017) 9 SCCI
9. Navtej Singh Johar V. Union of India (2018)10 SCC1
10. Joshep Shine V. Union of India AIR 2018SC 4898
11. Indian Young Lawyers Association & others V. The state of Kerala & others (2019)11SCC1

भारतीय लोकतंत्र एवं दबाब समूह : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० पुष्पांजली कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान), डी.बी.के.एन. कॉलेज (नरहन) समस्तीपुर

शोध-सारांश

दबाब-समूह ऐसे हित समूह है जो सार्वजनिक नीतियों को प्रभावित करके कुछ विशेष हितों को सुरक्षित करने के लिए करते हैं। वे किसी भी राजनीतिक दल के साथ गठबंधन नहीं करते हैं तथा अप्रत्यक्ष रूप से काम करते हैं, परन्तु ये शक्तिशाली समूह होते हैं तथा अप्रत्यक्ष रूप में काम करते हैं, परन्तु ये शक्तिशाली समूह होते हैं। दबाब-समूह विभिन्न समुदायों की मांगों और हितों का प्रतिनिधित्व करने हैं। दबाब-समूह इसी कारण भारत जैसे एक बहुलवादी राष्ट्र के महत्वपूर्ण अंग हैं। ये लोगों को राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। ये मतदाताओं को शिक्षित और सूचित भी करते हैं और इस प्रकार वे सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देते हैं। लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए सामाजिक परिवर्तन उद्देश्य को प्राप्त करने में दबाब-समूह महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके माध्यम से नीति-निर्माताओं को यह पता चलता है कि कैसे कुछ विशेष मुद्दों पर जनता क्या अनुभव करती है। कई आदवासी समूहों ने जनजातीय आबादी के शोषण के खिलाफ आंदोलन की अगुआई की है, और सरकार को विवश किया है कि वो इनके अधिकारों की सुरक्षा हेतु प्रावधान करे, उदाहरण के लिए विभिन्न प्रादेशिक वन नीतियाँ और 'वन-अधिकार अधिनियम, 2006' इसके अतिरिक्त इन समूहों ने अपने प्रभाव का दुरुपयोग कर कभी-कभी देश के समक्ष प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न की हैं। भारत में कई दबाब समूह मुख्य रूप से विभिन्न असंवैधानिक पद्धतियों के माध्यम से सरकार को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं, जैसे हमले, आंदोलन, प्रदर्शन, तालाबंदी आदि के द्वारा। सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं को सड़क पर हल करने के प्रवृत्ति के कारण दबाब-समूहों को लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए एक गंभीर खतरा माना जा सकता है। इन सभी आलोचनाओं के बावजूद दबाब-समूहों का अस्तित्व लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए अनिवार्य है। दबाब-समूह राष्ट्रीयता और विशेष हितों को बढ़ावा देते हैं तथा नागरिकों एवं सरकार के बीच संवाद का एक जरिया बनते हैं।

दबाब-समूह की अवधारणा

आज के लोकतंत्रीय देशों में विभिन्न राजनीतिक दलों के विकास के साथ-साथ दबाब-समूह या हित-समूहों का भी विकास हुआ है। प्रायः विश्व के सभी विकसित तथा अविकसित देशों में दबाब-समूह राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। अमेरिका, इंग्लैंड तथा भारत जैसे देशों में इनकी भूमिका पहले की अपेक्षा काफी बढ़ गई है। 19वीं सद तक अमेरिका को छोड़कर अन्य यूरोपीय देशों में ऐसे कार्य-कलाप पर राजनीतिशास्त्र के विद्वानों का या तो ध्यान ही नहीं था, या उन्हें अपह्रास की दृष्टि से देखा जाता था। फ्रेडरीक का विचार था कि, “इन्हें ऐसी शैतानी शक्ति माना जाता था, जो आधुनिक लोकतंत्र और प्रतिनिधि शासन की जड़ों को धीरे-धीरे काट रही हो।” ‘लॉबी’ शब्द का अर्थ दोष, भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी आदि के समूहों से समझा जाता था। इसके साथ ऐसे कार्य-कलाप संगठित भी हो रहे थे।

लेकिन इस काल में भी व्यक्ति सरकार एवं राजनैतिक पद्धतियों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया समूहों के माध्यम से ही व्यक्त करता था, क्योंकि मनुष्य की यह एक स्वभाविक प्रक्रिया है। यह भी सही है कि मानव की संग्रहित प्रक्रिया को अभिव्यक्त करने में राजनीतिक दलों का उदय पहले हुआ, लेकिन दबाब-समूह, गुटों के अस्तित्व को हम नजरअंदाज नहीं कर सकते। इस संबंध में डी०वी० टुमेन ने ठीक कहा है, “कोई भी समाज चाहे वह कितना भी पुरातनवादी क्यों न हो, विभिन्न विशिष्ट एवं परस्पर व्याप्त समूहों की पच्चीकारी है।” लेकिन आज प्रायः हर अमेरिकी विधायक किसी-न-किसी हित विशेष का अधिकृत प्रवक्ता तथा उसका प्रतिनिधित्व करता है।

भारत में इनका विकास स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से हुआ। आज के राजनीतिक क्षेत्र तथा नीति-निर्धारण प्रक्रिया में इनका प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

स्पष्टतः यह ऐच्छिक और गैर-राजनीतिक समूह होते हैं। इनकी सदस्यता का आधार इनके सदस्यों के मध्य समान हित की चेतना होती है। गैर-राजनीतिक स्वरूप के बावजूद अपे हितों को देखते हुए ये किसी-न-किसी राजनीतिक दल से अपना संबंध स्थापित कर लेते हैं।

दबाब-समूहों के संगठन का मौलिक कारण सामाजिक, आर्थिक तथा व्यवसायिक होता है। अतएव, इनके संगठन का आधार राजनीतिक न हुए भी अंततोगत्वा राजनीति को प्रभावित करने लगते हैं। ये राजनीतिक दल नहीं हो हैं, लेकिन राजनीतिक दलों की तरह संगठित अवश्य होते हैं, जिनकी निजी सदस्यता, उद्देश्य, संगठन, एकता, प्रतिष्ठा और साधन होते हैं। जे० सी० चौधरी का कहना है कि, “दबाब-समूह का अध्ययन स्वहित क मनोवैज्ञानिक आध

राशिला पर आधारित है। वास्तव में स्वहित ही वह मुख्य कारक है जो समान विचारों और हितों वाले व्यक्तियों को संगठित होने के लिए बाध्य करता है, ताकि वे व्यक्ति अपने विशिष्ट हित की पूर्ति और संरक्षण की दिशा में अपनी स्थिति सुदृढ़ बना सकें।

दबाब-समूहों की विशेषताएँ:-

राजनीतिक दलों की ही भाँति भारतीय लोकतंत्र में दबाब-समूहों का महत्वपूर्ण स्थान है। दबाब-समूह भारतीय लोकतंत्र में अनेक स्वरूपों में विद्यमान है, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। उन्हीं आधार पर भारतीय दबाब-समूहों की विशेषताएँ एवं उपयोगिताओं को रेखांकित किया जा सकता है। वैसे प्रो० मामरन, वीनर व स्टनेलीक कोचनिक ने अपनी कृति क्रमशः पॉलिटिक्स ऑफ स्टैक सिटी तथा “विजनेस एण्ड पॉलिटिक्स इन इंडिया” में भारतीय दबाब-समूहों की विशेषताओं पर विस्तृत प्रकाश डाला है। जिनके निष्कर्षों के आधार पर दबाब-समूहों की अग्रांकित विशेषताएँ रेखांकित की जा सकती हैं-

- (1) भारतीय राजनीति में जाति, समुदाय, धर्म तथा क्षेत्रीय गुट प्रमुख दबाब-समूह के रूप में कार्य कर रहे हैं।
- (2) मायरन वीनर के अनुसार अधिकांश दबाब-समूहों का नेतृत्व राजनीतिक दलों के हाथ में है, लेकिन व्यवसायिक दबाब-समूह स्वायत्त हैं।
- (3) सार्वजनिक नीति के निर्माण के लिए दबाब-समूहों की भूमिका सीमित रहती है।
- (4) अधिकांश राजनीतिक दलों ने अनेक गुप्त संगठनों का निर्माण कर रखी है जो प्रयत्न रूप से तो हित-समूह की तरह कार्य करता है, लेकिन उसके पीछे राजनैतिक उद्देश्य छिपा रहता है।
- (5) राज्य (भारतीय संघ) केन्द्रीय सरकार की नीतियों को अपने हित में प्रभावित करने के लिए केन्द्र सरकार पर दबाव बनाये रखने का प्रयास करते हैं।
- (6) विदेशी लॉबी भी सरकार की नीतियों पर दबाव बनाए रखती है।
- (7) नौकरशाही के वर्चस्व के कारण दबाब-समूह प्रशासनिक अधिकारियों पर दबाव बनाये रखने का प्रयास करते हैं, इससे नीति-निर्माण को प्रभावित करने की ओर कम हो पाता है।

दबाब-समूहों की उपयोगिता:-

भारत में दबाब-समूहों की गतिविधियों को देखकर कुछ लोग कहते हैं कि उनसे भारतीय लोकतंत्र को खतरा है। चूँकि ये दबाब-समूह अपनी माँगों को पूरा करने के लिए प्रत्यक्ष कार्यवाही का सहारा लेते हैं। इसीलिये आये दिन यहाँ अनशन, बंद, हड़ताल या घेराव होते रहते हैं। ये कार्यवाहियाँ बहुधा हिंसात्मक रूप भी ले लेती हैं। अतः यह विचार करने की आवश्यकता है कि ऐसी गतिविधियाँ क्यों होती हैं? उन्हें कैसे नियंत्रित किया जा सकता है?

दबाब-समूहों की उपर्युक्त कार्यवाहियों के मूल में बात यह है कि भारत में विभिन्न समूहों की माँग को संतुष्ट करने के लिए साधनों की कमी है। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद देश का आर्थिक विकास पिछले विकास की तुलना में बहुत अधिक हुआ है, तथापि जनसंख्या की वृद्धि के कारण उसका पूरा लाभ लोगों को नहीं मिल सका। दूसरी बात यह है कि लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के क्रियान्वयन के परिणामस्वरूप लोगों में जागरूकता का विकास हुआ और उनकी आकांक्षाएँ बढ़ी हैं। अतः अब वे अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं हैं। फलस्वरूप अपने हितों के लिए समूहों के माध्यम से वे अपनी स्थिति सुधारने के लिए राजनीति प्रणाली पर दबाव डालते हैं। चूँकि की कमी है इसलिए कोई भी सरकार पर उनकी माँगों को पूरा नहीं कर सकती। ऐसी स्थिति में संभवतः दबाब-समूहों का असंतोष प्रत्यक्ष कार्यवाहियों के रूप में प्रकट होता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय लोकतंत्र में दबाब-समूहों की भूमिका केवल नकारात्मक है। ये दबाब-समूह सरकार पर अंकुश रखते हैं और उसे अत्याचारी होने से बचाते हैं। इनके दबाव से सरकार को यह मालूम होता है कि कोई नीति का कार्यक्रम किस सीमा तक कार्यान्वित हो सकता है? इससे सरकार की नीतियाँ और कार्यक्रम अधिक व्यवहारिकता होते हैं।

दबाब-समूहों की माँग हमेशा राष्ट्रीय हित में नहीं होती किन्तु इन माँगों को नियंत्रित करने के लिए यह आवश्यक है कि हित समूहों की संख्या घटे न बल्कि बढ़े, जिससे केन्द्र या राज्य सरकारों के नेता केवल एक या दो प्रभावशाली आर्थिक या जातीय समूहों पर निर्भर न रहें। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि राजनीतिक दलों के बीच इस बात पर सहमति लाई जाये कि किसी माँग को पूरा कराने के लिए ऐसे तरीके न अपनाये जाय, जिनसे कानून-व्यवस्था भंग हो और हिंसात्मक घटनाएँ हों।

भारत में दबाब-समूह:-

भारतीय लोकतंत्र में अमेरिकी लोकतंत्र की भाँति दबाब-समूह विकसित नहीं हो पाये हैं। इसका कारण ब्रिटिश विरासत है। ब्रिटिश काल में जन-संगठन राष्ट्रीय आंदोलन की गतिविधियों के कारण विकसित हुए और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हित-समूह राजनीतिक दलों तथा मुट्ठीभर नेताओं के नियंत्रण में है। हित स्पष्टीकरण में उनकी भूमिका नगण्य रही है। विरोधी एवं सत्तारूढ़ दल दोनों ने हित-समूहों का उपयोग अपने अभिकरणों के रूप में किया है जो उनके पक्ष में जनता का समर्थन जीते और दलीय शक्ति को बढ़ाये। कांग्रेस दल स्वयं ही स्थानीय समूहों और राज्य सरकारों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी रहा है। उसने एक ऐसे विचौलिये की भूमिका निभाई है जो राज्य प्रशासन पर दबाव डाले। विकास और आधुनिकीकरण के साथ-साथ देश में अब दबाब अथवा हित समूहों का महत्व भी बढ़ रहा है। कुछ दबाब-समूह स्वतंत्र शक्ति के रूप में उभरने लगे हैं। भारतीय समाज परम्परावाद और आधुनिकता का सम्मिश्रण है, अतः एक ओर जहाँ पश्चिम जैसे दबाब-समूह देखने को मिलते हैं वहीं दूसरी ओर समूहों की बहुलता है जिनका मुख्य उद्देश्य परंपरावादी है और साम्प्रदायिक संगठनों तथा जातिवाद पर आधारित समुदायों के रूप में हैं।

भारतीय समूहों का वर्गीकरण विभिन्न तरीके से किया है, लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से आमंड एवं पावेल के द्वारा किया वर्गीकरण ही युक्तियुक्त एवं सर्वव्यापी माना गया है। उन्होंने भारतीय दबाब-समूहों को चार वर्गों में विभाजित किया है।

- (1) संस्थानात्मक दबाब-समूह
- (2) समुदायात्मक दबाब-समूह
- (3) असमुदायात्मक दबाब-समूह
- (4) प्रदर्शनकारी दबाब-समूह

भारतीय लोकतंत्र में संगठित दबाब-समूहों को रेखांकित करता एक चार्ट-

भारत में दबाब-समूह

क्र. सं.	संस्थानात्मक	समुदायात्मक	असमुदायात्मक	प्रदर्शनात्मक
1.	कांग्रेस कार्य समिति	श्रमिक संघ	साम्प्रदायिक तथा धार्मिक समुदाय	जम्मू एंड कश्मीर
2.	कांग्रेस संसदीय बोर्ड	व्यावसायिक संघ	जातिगत समुदाय	लिवरेशन फ्रंट
3.	मुख्यमंत्री क्लब	कृषक समुदाय	भाषागत समुदाय	दल खालसा
4.	केन्द्रीय चुनाव समिति	छात्र समुदाय	गाँधीवादी संघ	खालिस्तान
5.	नौकरशाही	कर्मचारी संघ	युवा तर्क	कमांडो फोर्स
6.		साम्प्रदायिक संघ	सिण्डीकेट	उल्फा

दबाब-समूह : कार्य एवं शक्तियाँ:-

राजनीतिक दल जहाँ अपने हितों का न्यूनतम बल्कि राष्ट्रीय हितों एवं सार्वजनिक कल्याण का संवर्द्धन करते देखे जाते हैं, वहीं दूसरी तरफ भारतीय दबाब-समूहों का प्रधान उद्देश्य अपने हितों का संवर्द्धन करना होता है। इसके लिए वह समय-समय पर सरकार पर दबाव डालते देखे जाते हैं। भारत में दबाब-समूहों का विकास राजनीतिक दलों की ही तरह अस्पष्ट रहा है। इन्हें किसी-न-किसी राजनीतिक दल ने प्रेरित किया, परिणामस्वरूप दबाब-समूह अपने उद्देश्यों को गौण कर राजनीतिक हित प्राप्त करना अपना उद्देश्य समझने लगे हैं। इस कारण से इनके तरीकों का शुद्धिकरण नहीं है, बल्कि संवैधानिक साधनों का प्रयोग कर अपने राजनैतिक हितों को प्राप्त करते पाये जाते हैं। अर्थात् यह एक नकारात्मक भूमिका भी निभाते पाये जाते हैं लेकिन कुछ सकारात्मक लड़ाई भी लड़ते देखे जाते हैं, जैसे-इंडियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स आदि।

छात्र-संगठन जहाँ शैक्षणिक गतिविधियों पर नियंत्रण एवं नवीन योजनाओं को क्रियान्वयन के प्रति सरकार पर दबाव डालने का प्रयास करते हैं, वहीं ट्रेड यूनियन महिला संगठन, कृषक संघ, वकील प्रकोष्ठ इत्यादि समूह भी अपने हित संवर्द्धन हेतु राजनीतिक दलों के संरक्षण में सरकार पर दबाव डालने का कार्य करते हैं। संक्षिप्त में, भारतीय दबाब-समूह निम्नांकित कार्य करते हैं-

- (1) अपने हितों की पूर्ति के लिए दबाब-समूह बहुत सारे प्रचार विभिन्न तरीकों से करते हैं और सरकार पर दबाव डालते हैं, ताकि उनकी इच्छानुसार कानून बन जाय।
- (2) वे सरकार के अधिकारियों से अपने-अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संपर्क स्थापित करते हैं।
- (3) वे राजनीतिक दलों से अपना संपर्क स्थापित करते हैं।
- (4) वे अपने उद्देश्यों की पूर्ति तथा हित साधनों के लिए आवश्यकतानुसार अहिंसात्मक अथवा हिंसात्मक आंदोलन तथा हड़ताल भी करवाते हैं।
- (5) लोकमत को प्रभावित करते हैं, इस हेतु दबाब-समूह समाचार पत्रों तथा अन्य साधनों का प्रयोग करते हैं।
- (6) दबाब-समूह अपने विधायकों से विभिन्न तरीका से अच्छे संबंध स्थापित करते हैं और उनसे अपने हित में कानून बनाने तथा काम निकलवाने का प्रयत्न करते हैं।

दबाब-समूह की आलोचनाएँ:-

यद्यपि दबाब-समूह प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने, सरकार की निरंकुशता को रोकने, जनता और सरकार में कड़ी का काम करने जैसे महत्वपूर्ण कार्य करते हैं और प्रत्येक राजनीतिक समाज इन्हें आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार भी करने लगा है, लेकिन फिर भी इनकी भूमिका की आलोचना की जाती है। आलोचकों का मत है कि दबाब-समूह विशिष्ट हित को लेकर ही सरकार के पास जाते हैं। उनका सामान्य हित से कोई लेना-देना

नहीं होता। कई बार दबाब-समूह अहिंसक साधनों का प्रयोग करके राष्ट्रीय सम्पत्ति को हानि पहुँचाते हैं और समाज की एकता व शांति को भंग करने से भी नहीं चूकते। विधायकों को अनैतिक साधनों से प्रभावित करके वे राजनीतिक भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं। अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वे न्यायपालिका जैसे पवित्र संगठन को भी नहीं छोड़ते। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए वे साम-दाम-दण्ड-भेद सभी नीतियों का प्रयोग निर्बाध रूप से करते हैं। अपने अनैतिक कारनामों द्वारा वे समाज में अनैतिकता का प्रसार कर देते हैं। उनकी बढ़ती भूमिका ने राजनीतिक दलों तक की भूमिका व महत्व को भी सीमित कर दिया है। इसलिए समय की यह माँग है कि दबाब-समूहों की निरंकुशता की प्रवृत्ति पर रोक लगाई जाए अन्यथा ये समाज और सरकार दोनों के लिए गंभीर खतरे उत्पन्न कर देंगे।

निष्कर्ष:-

उपरोक्त विवेचन के बाद यह कहा जा सकता है कि दबाब-समूह सार्वजनिक नीति को प्रभावित करने के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। आधुनिक समाज में उनके बढ़ते प्रभाव को देखकर कहा जा सकता है कि दबाब-समूह ही वास्तविक राजनीतिक दल है, जो सरकार और जनता को जोड़ने का कार्य करते हैं। लोगों को राजनीतिक शिक्षा देना, जनमत को तैयार करना, सार्वजनिक नीति को प्रभावित करना, सरकार को जनता की माँगें समूहीकरण के रूप में पेश करना आज राजनीतिक दलों के बजाय दबाब-समूहों के ही कार्य हो गए हैं। इसी कारण आज कहा जाने लगा है कि दबाब-समूह शासकों को बनाने वाले हो गए हैं। इस तरह से स्पष्ट है कि लोकतंत्र की सफलता में दबाब-समूह का महत्वपूर्ण योगदान है, लेकिन नैतिकता के दायरे में रह कर दबाब-समूह को कार्य करना चाहिए।

संदर्भ सूची:-

- (1) हंस राज- भारतीय राजनीति व्यवस्था, 1986 ई०, पृ०सं०-80
- (2) डा० पुखराज जैन और डा० बाबू लाल फाड़िया- भारतीय शासन एवं राजनीति, 1985 ई०
- (3) जे० सी० जौहरी- तुलनात्मक राजनीतिक, 1977 ई०
- (4) दैनिक जागरण- 25 जून, 1992 ई०, पृ०सं०-5
- (5) जी० ए० आमोन्ड व जी० वी० पावेल- कम्परेटिव पॉलिटिक्स, 1972 ई०, पृ०सं०- 75-76
- (6) रजनी कोठारी- पॉलिटिक्स इन इंडिया, 1970 ई०, पृ०सं०-216
- (7) के० के० सिन्हा- प्राब्लम्स आफ पब्लिक प्रोटेक्ट इन इंडिया, पृ०सं०- 542-56
- (8) अमर उजाला- 18 मई, 1991 ई०, पृ०सं०-5
- (9) एस० पी० कश्यप- द पॉलिटिक्स ऑफ डिफ्रैक्शन (दिल्ली:नेशनल), 1963 ई०, पृ०सं०-344
- (10) जे० ए० आलमंड एंड जी० वी० कोलमन- द पॉलिटिक्स ऑफ द डेवलपिंग एरियाज, प्रिंसटोन (1970 ई०), पृ०सं०-185

माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन

डॉ० रोहित कुमार त्रिवेदी

प्राचार्य, गौतम शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, भागनबिगहा-बिहार शरीफ, नालंदा (बिहार)

सारांश—प्रस्तुत शोध के निष्कर्षों द्वारा शोधकर्ता ने वर्तमान शिक्षण व्यवस्था में शिक्षकों के मनोवैज्ञानिक गुण यथा-संवेगात्मक बुद्धि को कक्षा की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित करती है व उनके विभिन्न मनोवैज्ञानिक गुण विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को किस प्रकार से प्रभावित करते हैं की शैक्षिक उपयोगिता का उल्लेख किया है। यह बात सर्वविदित है कि कक्षा शिक्षण के समय बच्चों के अधिकतम शैक्षिक विकास में शिक्षकों के शिक्षण विधियों व प्रयुक्त शिक्षण सहायक सामग्री के साथ-साथ उनके विभिन्न मनोवैज्ञानिक गुणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए शोधकर्ता ने प्रस्तुत शोध के निष्कर्षों को जन मानस के सम्मुख प्रस्तुत किया है। शोधकर्ता को आशा है कि प्रस्तुत शोध के निष्कर्ष भावी शैक्षिक योजनाओं के क्रियान्वयन में उपयोगी सिद्ध होंगे।

मुख्य शब्द—माध्यमिक विद्यालय, संवेगात्मक बुद्धि, मध्यमान, मानक विचलन, सी0आर0 परीक्षण इत्यादि।

प्रस्तावना— शिक्षा एक उद्देश्यपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार, उसकी कार्यप्रणाली एवं जीवनवृत्त में परिवर्तन एवं परिमार्जन किया जाता है। वर्तमान परिदृश्य में शैक्षिक आयोजनों की सार्थकता वहीं तक है जिस सीमा तक वह मानवीय एवं सामाजिक आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं की अभिपूर्ति कर सके। वर्तमान वैश्विक परिवर्तन के दौर में व्यक्ति के आकांक्षा स्तर में अत्यधिक वृद्धि हो गयी है तथा इनकी अभिपूर्ति न होने पर वह कुण्ठा एवं भगनाशा से ग्रस्त हो जाता है। व्यक्ति अपनी इच्छाओं की संतुष्टि किसी भी परिस्थिति में करना चाहता है। इसलिए शिक्षा के उत्तरदायित्व एवं भूमिका में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। आज विकास की तीव्र दौड़ में वही शिक्षा व्यवस्था उपयोगी एवं महत्वपूर्ण मानी जाती है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करता है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व—

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन न करके माध्यमिक विद्यार्थियों के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि के अध्ययन का प्रयास किया है और यह जानने का भी प्रयास किया है कि इस मनोवैज्ञानिक गुण से ओतप्रोत शिक्षकों के शिक्षण कार्य का प्रभाव विद्यार्थियों की अधिगम स्तर पर किस सीमा तक सकारात्मक प्रभाव डालती है क्योंकि विभिन्न मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि यदि शिक्षकों के अन्दर विभिन्न सकारात्मक मनोवैज्ञानिक गुणों का यदि अभाव होता है तो इसका नकारात्मक प्रभाव कक्षागत अधिगम पर पड़ता है तथा हम शिक्षा के उस लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाते जहाँ की कल्पना हमारे मस्तिष्क में होती है।

सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन—

सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान-कोषों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध-प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से है, जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

किसी भी विषय के विकास में किसी विशेष शोध प्रारूप का स्थान बनाने के लिए शोधकर्ता को पूर्व सिद्धान्तों एवं शोधों से भली-भाँति अवगत होना चाहिए। इस जानकारी को निश्चित करने के लिए व्यवहारिक ज्ञान में प्रत्येक शोध प्रारूप की प्रारम्भिक अवस्था में इसके सैद्धान्तिक एवं शोधित साहित्य की समीक्षा करनी होती है, यहाँ साहित्य समीक्षा का अर्थ दिया गया है।

सियारोच्ची, चान और चापूति (2008) ने संवेगात्मक बुद्धि (ग्रहण करने, समझने और संवेगों के प्रबन्ध की क्षमता) का मापन बहु-कारक संवेगात्मक बुद्धि के पैमाने के द्वारा समालोचनात्मक मूल्यांकन किया। विश्लेषण प्रदर्शित करते हैं कि संवेगात्मक बुद्धि का सम्बन्ध बुद्धि-लब्धि से नहीं है अपितु बुद्धि-लब्धि और व्यक्तित्व शील गुण के नियंत्रण के बाद भी इसका सम्बन्ध विशिष्ट व्यक्तित्व मापन और अन्य निकष मानक से है। संवेगात्मक बुद्धि व्यक्ति के संवेगों के प्रबन्धन करने की क्षमता से सम्बन्धित नहीं है। लेकिन उनके संवेगों को पक्षपात पूर्ण निर्णय से बचाने की क्षमता से सम्बन्धित नहीं है। संवेगात्मक बुद्धि और सहानुभूति, तथा आत्म सम्मान के मध्य सार्थक सह-सम्बन्ध पाया गया।

पेटराइडस (2018) ने मापित और आत्म अनुमानित आभासीय संवेगात्मक बुद्धि में लिंग-विभेद प्रदर्शित किया। महिलाओं में पुरुषों की अपेक्षा मापित आभासीय संवेगात्मक बुद्धि के 'सामाजिक कौशल' कारक में उच्च प्राप्तांक है। मापित और आत्म-अनुमानित के प्राप्तांकों के मध्य सह-सम्बन्ध सार्थक और

सकारात्मक है। संवेगात्मक बुद्धि को आत्म-अनुमानित करने वाले पुरुष सार्थक रूप से महिलाओं से उच्च हैं। किसी दूसरे कारक और पूर्णमापित आभासीय संवेगात्मक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तावित शोध में निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शोध अध्ययन को विस्तारित किया गया-

- 1- माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर का अध्ययन करना।
- 2- ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर का अध्ययन करना।
- 3- शहरी क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में अन्तर का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पना-उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गयी।

- 1- माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।
- 2- ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के संवेगात्मक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- 3- शहरी क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के संवेगात्मक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि- प्रस्तुत अध्ययन में प्रयोगात्मक शोध की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है ।

जनसंख्या-जनसंख्या का तात्पर्य सम्पूर्ण इकाइयों के निरीक्षण से होता है। इसमें कुछ इकाइयों का चयन करके न्यादर्श बनाया जाता है । प्रस्तुत शोध में प्रयागराज जनपद के माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के 100 शिक्षक तथा 100 शिक्षिकाओं को न्यादर्श के रूप में चुना गया है ।

न्यादर्शन (Sampling)- जनसंख्या (इकाई, वस्तुओं या मनुष्यों का समूह) में किसी चर का विशिष्ट मान ज्ञात करने के लिए उसकी कुछेक इकाइयों को चुन लिया जाता है तो इस चुनने की क्रिया को न्यादर्शन (sampling) कहते हैं, तथा चुनी हुई इकाइयों के समूह को न्यादर्श ('उचसम) कहते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में संभाव्यता न्यादर्शन के आधार पर आकड़ों को लिया गया है।

शोध उपकरण-डॉ० शुभ्रामंगल की अध्यापक संवेगात्मक बुद्धि अनुसूची

(Teacher's Emotional Intelligence Inventory):

डॉ० शुभ्रामंगल द्वारा निर्मित एवं प्रमापीकृत अध्यापक संवेगात्मक बुद्धि अनुसूची का प्रयोग प्रस्तुत शोध में किया गया है। इस अनुसूची में कुल 200 कथन हैं। ये कथन संवेग के निम्नलिखित चार कारकों से सम्बन्धित हैं-

- (1) **स्वयं और दूसरों की समझ:**
इस कारक से सम्बन्धित 56 कथन धनात्मक व 19 कथन ऋणात्मक हैं।
- (2) **व्यावसायिक निर्देशन:**
इस कारक से सम्बन्धित 16 कथन धनात्मक तथा 26 कथन ऋणात्मक हैं।
- (3) **अन्तः व्यक्तिगत प्रबन्धन (Intra-Personal Management):**
इस इस कारक से सम्बन्धित 9 कथन धनात्मक व 16 कथन ऋणात्मक हैं।
- (4) **अन्तर-व्यक्तिगत प्रबन्धन (Inter-personal Management):**
इस कारक से सम्बन्धित 25 कथन धनात्मक तथा 34 कथन ऋणात्मक हैं।

विश्वसनीयता (Reliability)

इस अनुसूची की विश्वसनीयता को दो विधियों से जाँचा गया है-

Method used	Test-Retest (Method (N-150)	Split-half Method (N-200)
Reliability Coefficient	0.96*	0.95*

* Significant at .01 level of significance.]

वैधता (Validity)

परीक्षण की यथार्थता को जाँचने के लिए तीन प्रकार की वैधता का प्रयोग किया गया।

- 1- विषयगत वैधता (Content Validity)
- 2- अन्वय वैधता (Construct Vldity)
- 3- Criterion Related Validity.

Validity Coefficients of the Teacher's Emotional Intelligence Inventory

Measures Used	Mangal's Teacher Adjustment Inventory (MTAI) N = 200	Rating of Teachers by their Headmasters (N=500)
Validity Coefficients	0.55*	0.65*

* Significant at .01 level of significance.

अंकन विधि:

अनुसूची में सम्मिलित सभी कथन या तो धनात्मक प्रकृति के हैं या ऋणात्मक। कथनों की अंकन विधि निम्नवत् है।

“अंकन विधि”

कथनों का प्रकार	a	b	c	d	e
धनात्मक	5	4	3	2	1
ऋणात्मक	1	2	3	4	5

निष्कर्ष-

परिकल्पना-1 माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-1

क्र० सं०	समूह	कुल संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक निष्पत्ति (t)	सार्थकता	
						0.05 स्तर पर	0.01 स्तर पर
1.	माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक	200	705.42	2.67	0.30	असार्थक	असार्थक
2.	माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षिकायें	200	705.32	3.75			

शोधकर्ता ने उपर्युक्त परिकल्पना-1 में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर ज्ञात करने का प्रयास किया, जिसमें माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि का मध्यमान 705.42 तथा माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि का मध्यमान 705.32 प्राप्त हुआ। इसी प्रकार दोनों समूहों के मध्य मानक विचलन क्रमशः 2.67 व 3.75 प्राप्त हुआ। दोनों समूहों के मध्यमानों के मध्य सार्थकता ज्ञात करने के लिए क्रांतिक निष्पत्ति ;जुद्ध की गणना की गयी जिसका मान 0.30 प्राप्त हुआ जो सार्थकता स्तर 0.05 व 0.01 के मानों से कम है। इसका अर्थ यह है कि दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है। इस प्रकार शोधकर्ता की परिकल्पना-1 स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना-2 ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-2

क्र० सं०	समूह	कुल संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक निष्पत्ति (t)	सार्थकता	
						0.05 स्तर पर	0.01 स्तर पर
1.	ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक	100	705.21	2.79	1.24	असार्थक	असार्थक
2.	ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालय की शिक्षिकायें	100	704.74	2.58			

उपर्युक्त परिकल्पना में शोधकर्ता ने ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है का पता लगाने का प्रयास किया। आँकड़ों के संग्रह एवं विश्लेषण के आधार पर देखा गया कि दोनों समूहों का मध्यमान क्रमशः 705.21 व 704.74 तथा मानक विचलन क्रमशः 2.79 व 2.58 प्राप्त हुआ। जबकि इन दोनों समूहों की सार्थकता की गणना करने के लिए क्रांतिक निष्पत्ति (CR) की गणना की गयी जिसका मान 1.24 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 व 0.01 सार्थकता स्तर के मानों क्रमशः 1.96 व 2.58 से कम है। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। परिणामस्वरूप शोधकर्ता की यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना-3 शहरी क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका-3

क्र० सं०	समूह	कुल संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक निष्पत्ति (t)	सार्थकता	
						0.05 स्तर पर	0.01 स्तर पर
1.	शहरी क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक	100	705.63	2.53	0.70	असार्थक	असार्थक
2.	शहरी क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालय की शिक्षिकाएँ	100	705.91	2.59			

उपर्युक्त परिकल्पना-3 में शहरी क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थकता लगाने का प्रयास किया गया, जिसके लिए सांख्यिकीय विधियों द्वारा दोनों समूहों का मध्यमान व मानक विचलन ज्ञात किया गया। दोनों समूहों का मध्यमान क्रमशः 705.63 व 705.91 तथा मानक विचलन क्रमशः 2.53 व 2.59 प्राप्त हुआ। दोनों समूहों के मध्य सार्थकता का पता लगाने के लिए क्रांतिक निष्पत्ति ;बुद्धि की गणना की गयी जिसका मान 0.70 प्राप्त हुआ जो सार्थकता स्तर 0.05 तथा 0.01 के मानों क्रमशः 1.96 व 2.58 से कम है। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि शहरी क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक तथा शिक्षिकाओं की संवेगात्मक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। इस प्रकार शोधकर्ता की उपर्युक्त परिकल्पना-3 की सत्यता सिद्ध होती है।

शोध की शैक्षिक उपयोगिता-शिक्षा के क्षेत्र में जो अनुसंधान किये जाते हैं उनका शैक्षिक जगत से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। शोध तथी सार्थक माना जायेगा जबकि उससे प्राप्त निष्कर्ष सार्थक हों तथा समस्या के समाधान में योगदान दें एवं भावी अनुसंधानकर्ताओं का मार्गदर्शन करा सकें। शिक्षा के क्षेत्र में किये गये शोधों के परिणामों व निष्कर्षों का वर्तमान समय में गतिमान शोधों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है तथा पूर्व के परिणाम व निष्कर्ष वर्तमान में शोधों को एक नई दिशा प्रदान करते हैं।

किसी भी शोधकर्ता के लिए यह सम्भव नहीं होता है कि वह समस्या से सम्बन्धित सभी सीमाओं अथवा सभी क्षेत्रों को अपने अध्ययन में समाहित कर सके। समय, धन तथा साधनों की परिसीमाओं के कारण शोधकर्ता ने प्रस्तुत शोध का गहन अध्ययन किया है। प्रस्तुत शोध के निष्कर्ष व परिणाम भावी शोधकर्ताओं के लिए निश्चिन्म रूप से मददगार सिद्ध होंगे। निःसंदेह प्रस्तुत शोध के परिणामों के द्वारा माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की संवेगात्मक बुद्धि से सम्बन्धित बहुत महत्वपूर्ण व आवश्यक जानकारीयाँ प्राप्त हुई हैं जो भावी अनुसंधानकर्ताओं के लिए शोध में सहायक होंगी परन्तु कुछ ऐसे भी प्रश्न हैं जो कि अब भी अनुत्तरित हैं जिनके समाधान के लिए अनुसंधान प्रयासों की आवश्यकता है।

शोध अध्ययन के दौरान शोधकर्ता के मनःमस्तिष्क में कई ऐसे बिन्दु उभरे हैं जिन्हें ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता भावी अनुसंधानकर्ताओं के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत करता है-

- (1) प्रस्तुत अध्ययन कुछ सीमित न्यादर्श व आयामों पर ही हो सका है। प्रस्तुत अध्ययन को विस्तृत क्षेत्र और व्यापक न्यादर्श पर भी किया जा सकता है।
- (2) प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के व्यक्तित्व एवं संवेगात्मक बुद्धि का कक्षागत अधिगम पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया है। इसे शिक्षा के अन्य स्तरों यथा-प्राथमिक व उच्च स्तर पर भी किया जा सकता है।
- (3) प्रस्तुत अध्ययन में शिक्षकों के मनोवैज्ञानिक गुणों जैसे-उनके व्यक्तित्व व संवेगात्मक बुद्धि को शामिल किया गया है। भावी शोधकर्ता शिक्षकों के अन्य मनोवैज्ञानिक गुणों जैसे-अभिवृत्ति, रुचि, सृजनात्मकता इत्यादि का भी अध्ययन कर सकते हैं।
- (4) माध्यमिक स्तर पर विज्ञान वर्ग के शिक्षकों का कक्षागत शिक्षण व्यवहार का अध्ययन किया जा सकता है।
- (5) माध्यमिक स्तर पर विज्ञान वर्ग और कलावर्ग के शिक्षकों के शिक्षण व्यवहारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

- (6) माध्यमिक स्तर पर भाषा शिक्षकों एवं सामाजिक विज्ञान शिक्षकों के कक्षागत शिक्षण व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
- (7) माध्यमिक स्तर पर शिक्षकों के शिक्षण अनुभवों तथा योग्यताओं के परिप्रेक्ष्य में कक्षागत शिक्षण व्यवहारों का अध्ययन किया जा सकता है।
- (8) माध्यमिक स्तर पर विभिन्न विषयों के शिक्षकों के व्यक्तित्व और उनके कक्षागत शिक्षण व्यवहारों के बीच सम्बन्धों का अध्ययन किया जा सकता है।
- (9) माध्यमिक स्तर पर प्रशिक्षित संस्कृत व अंग्रेजी शिक्षकों के कक्षा व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, आर०ए० (2008): भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास, आर०लाल बुक डिपो, मेरठ।
2. भटनागर, डॉ० ए०बी० (2008): अधिगम एवं शिक्षण, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ।
3. अग्रवाल, डॉ० नीता (2008): बाल विकास, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
4. नागर, डॉ० बीनू एवं राजपूत, डॉ० आशा (2010): बाल विकास आगरा पब्लिकेशन, आगरा।
5. जायसवाल, सीताराम (2012): व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
6. श्रीवास्तव, डी०एन० एवं पाठक, के०पी० (2012): बाल विकास एवं बाल मनोविज्ञान, आगरा पब्लिकेशन, आगरा।
7. श्रीवास्तव, महेन्द्र नाथ एवं कुमार सतीश (2014): बाल विकास एवं सीखने की प्रक्रिया, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
8. श्रीवास्तव, डॉ० डी०एन० (2020): अनुसंधान विधियाँ, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
9. गुप्ता, प्रो० एस०पी० एवं गुप्ता, डॉ० अलका, (2013): सांख्यिकीय विधियाँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. राय, पारस नाथ (2008): अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
11. सिंह, अरूण कुमार (2017): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस।

प्रयागराज जनपद के ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं का विद्यालय की स्वच्छता के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

संतोष कुमार यादव

(शोध छात्र), एन0एम0एस0एन0दास मेमोरियल कॉलेज बदायूँ
महात्मा ज्योतिबा फूले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ0प्र0)

डॉ० शिवराज कुमार

(निर्देशक), एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष (बी0एड0 विभाग) शिक्षाशास्त्र विभाग
एन0एम0एस0एन0दास मेमोरियल कॉलेज बदायूँ
महात्मा ज्योतिबा फूले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ0प्र0)

सारांश-

प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने प्रयागराजजनपद के ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित स्वचित्तपोषित व वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालय के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं का विद्यालय तथा विद्यालय परिसर की स्वच्छता के सम्बन्ध में अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन में यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए विद्यालय, विद्यालय परिसर, आस-पास का भौतिक वातावरण, खेल का मैदान इत्यादि की स्वच्छता अति आवश्यक है, इस पर दोनों ही प्रकार के विद्यालयों के शिक्षक व शिक्षिकाओं की अभिवृत्तियों में समानता पायी गयी। शोधकर्ता द्वारा पूर्व अनुमानित सभी परिकल्पनाओं की सत्यता भी सिद्ध हुई। यह माना गया कि विद्यालय व विद्यालय परिसर की स्वच्छता की नैतिक जिम्मेदारी शिक्षकों की भी है और वे इस कार्य में पीछे नहीं हट सकते। क्योंकि प्रभावी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के लिए विद्यालय की स्वच्छता आवश्यक है।

मुख्य शब्द- माध्यमिक विद्यालय, विद्यालय की स्वच्छता, अभिवृत्ति, मध्यमान, मानक विचलन, सी0 आर0 मूल्य आदि।

प्रस्तावना- वास्तव में शिक्षा को समाज में जन-जन तक पहुँचाने का दायित्व मूल रूप से शिक्षकों पर रहा है। चूँकि शिक्षक ही वह साधन है जिसके कंधों पर राष्ट्र व समाज का दायित्व सौंपा जा सकता है जिसका वह निर्वहन कर आने वाली पीढ़ी को एक खुशहाल कल सौंप सकता है। अतः शिक्षक में वे गुण, क्षमता व दायित्व बोध होना चाहिए जिसके आधार पर वह न केवल छात्रों को अपितु समाज को भी नयी दिशा दे सके। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति के विकास में वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विभिन्न अध्ययनों से यह प्रमाणित हो चुका है कि शिक्षकों पर भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक वातावरण के अभाव में शिक्षकों का शिक्षण कार्य भी प्रभावित होता है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव व्यक्ति के मानसिक विकास पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उत्तम वातावरण का छात्र एवं शिक्षक दोनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उचित वातावरण के फलस्वरूप ही बालक में स्वस्थ संरचनात्मक मस्तिष्क का विकास होता है और उसका मानसिक स्वास्थ्य संतुलित और सुरक्षित रहता है। अपनी समस्त अभिक्षमताओं का विदोहन भी बालक स्वस्थ वातावरण में ही कर सकता है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व- वर्तमान समय में प्रायः यह देखने को मिलता है कि विद्यालयों में सफाई तथा स्वच्छता पर कम ध्यान दिया जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा का उचित वातावरण लुप्तप्राय हो गया है। आज की व्यस्ततम जिंदगी एवं प्रदूषण भरे वातावरण में अभिभावकों को अपने पाल्यों के स्वास्थ्य के विषय पर गम्भीर होना स्वाभाविक है। अभिभावकों का मानना है कि स्वस्थ व स्वच्छ विद्यालय ही बच्चों की शिक्षा पर सकारात्मक ध्यान दे सकता है। इसलिए आवश्यकता है कि चाहे वे सरकारी विद्यालय हों या प्राइवेट सेक्टर के उन्हें अपने विद्यालयी वातावरण को शुद्ध व स्वच्छ रखना होगा जिसके आधार पर वे अपने विद्यार्थियों में स्वच्छ व स्वस्थ मानसिकता का विकास कर सकेंगे।

साहित्य का अवलोकन- साहित्य समाज का दर्पण है अतः शोध में सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन प्रत्येक अनुसंधान की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण कदम है। वस्तुतः साहित्य का पुनरावलोकन एक कठोर एवं परिश्रम का कार्य है, परन्तु साहित्य के पुनः अध्ययन के बिना कोई भी अनुसंधान कार्य उच्च स्तर का

नहीं हो सकता है। अतः अध्ययन का विस्तृत विश्लेषण करने से पूर्व अन्य अनुसंधानकर्ताओं द्वारा सम्पन्न प्रस्तुत शोध समस्या के क्षेत्र पर स्पर्श करने वाले शोधों पर विचार उचित एवं प्रासंगिक प्रतीत होता है।

सम्बन्धित साहित्य-बहुगुणा, सुशील चन्द्र (2008)- ने कोटद्वार महाविद्यालय के छात्र-छात्राओं का पर्यावरणीय अध्ययन के प्रति अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन के निम्न उद्देश्य थे-

1. कला वर्ग के छात्र-छात्राओं की पर्यावरणीय अध्ययन के प्रति अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. वाणिज्य वर्ग के छात्र-छात्राओं की पर्यावरणीय अध्ययन के प्रति अभिरूचि तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. विज्ञान वर्ग (पी0सी0एम0 ग्रुप) के छात्र-छात्राओं की पर्यावरणीय अध्ययन के प्रति अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं के पर्यावरणीय अध्ययन के प्रति अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
5. कला एवं वाणिज्य वर्ग की छात्राओं की पर्यावरणीय अध्ययन के प्रति अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
6. विज्ञान की छात्राओं की पर्यावरणीय अध्ययन के प्रति अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
7. कला एवं वाणिज्य वर्ग के छात्रों की पर्यावरणीय अध्ययन के प्रति अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
8. विज्ञान के छात्रों का पर्यावरणीय अध्ययन के प्रति अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

निष्कर्ष-

अध्ययन एवं शोध करने के पश्चात् यह पाया गया कि छात्राओं की अभिरूचि पर्यावरण के प्रति छात्रों से अधिक है। केवल कला वर्ग के छात्र एवं छात्राओं में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। शेष सभी वर्गों में छात्राओं में छात्रों से अधिक जागरूकता एवं जानकारी है। ऐसा हो सकता है कि छात्रायेँ, छात्रों की अपेक्षा पर्यावरण से अधिक नजदीक हैं एवं दिन प्रतिदिन की समस्याओं से भलीभाँति अवगत हैं। अतः उनमें प्रकृति का अधिक अच्छा ज्ञान एवं पर्यावरण के प्रति अधिक सजगता तथा जागरूकता है। समाज एवं आम जनमानस को तैयार करने में छात्रायेँ छात्रों की तुलना में अधिक सहायक सिद्ध हो सकती है।

सिंह राजेश कुमार (2010)- ने इण्टरमीडिएट स्तर के विद्यार्थियों की पर्यावरणीय सचेतना की स्थिति की अध्ययन किया। अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य थे-

उद्देश्य-

1. इण्टरमीडिएट स्तर के विद्यार्थियों की पर्यावरणीय सचेतना के स्तर का अध्ययन करना।
2. इण्टरमीडिएट स्तर के कला तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की पर्यावरणीय सचेतना के मध्य स्तरों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. इण्टरमीडिएट स्तर के कला तथा विज्ञान वर्ग के छात्रों तथा छात्राओं की पर्यावरणीय सचेतना के मध्य स्तरों का परस्पर तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. पर्यावरण सचेतना हेतु पर्यावरण शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण करना।

शोध के उद्देश्य-

प्रस्तुत शोध अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पना:-प्रस्तुत अध्ययन की शोध परिकल्पनाएँ निम्नलिखित हैं-

1. विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि- करलिंगर के अनुसार- “सर्वेक्षण अनुसंधान सामाजिक, वैज्ञानिक विश्लेषण की वह शाखा है, जिसके अन्तर्गत व्यापक एवं कम आकार वाली जनसंख्या (अर्थात् समष्टि) का अध्ययन उनमें से चयनित प्रतिदर्शों के आधार पर इस आशय से किया जाता है, ताकि उनमें व्याप्त सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक चरों के घटनाओं, विवरणों तथा पारस्परिक अन्तः सम्बन्धों का ज्ञान उपलब्ध हो सके।”

न्यादर्श:-

“न्यादर्श एक विस्तृत समूह का निम्नतम प्रतिनिधि है।”

प्रतिदर्श या न्यादर्श किसी भी अनुसंधान कार्य की आधारशिला है। ये आधारशिला जितनी सुदृढ़ होगी, अनुसंधान के परिणाम उतने ही विश्वसनीय एवं सार्थक होंगे। सिम्पसन व कोफ्का के अनुसार- “प्रतिदर्श समग्र की इकाइयों का वह अंश होता है, जो पूर्ण समग्र के अध्ययन के लिए चुना जाता है।”

“जनसंख्या (इकाई, वस्तुओं या मनुष्यों का समूह) में किसी चर का विशिष्ट मान ज्ञात करने के लिए उसकी कुछेक इकाइयों को चुना लिया जाता है तो इस चुनने की क्रिया को न्यादर्शन (‘उचसपदह) कहते हैं तथा चुनी हुई इकाइयों के समूह को न्यादर्श (‘उचसम) कहते हैं।”

जनसंख्या-प्रस्तुत शोध में यादृच्छिकी न्यादर्श चयन विधि (तंदकवडै‘उचसपदह) का प्रयोग किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रयागराज जनपद के ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के 50-50 शिक्षक एवं 50-50 शिक्षिकाओं का चयन किया गया है। इस प्रकार कुल 200 शिक्षक-शिक्षिकाओं को न्यादर्श के रूप में चुना गया है।

शोध उपकरण-प्रस्तुत शोध में निम्नलिखित शोध उपकरण का प्रयोग किया गया है-

प्रस्तावित शोध में स्वच्छता के प्रति वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है-

इस प्रश्नावली में विद्यालय एवं विद्यालय परिसर स्वच्छता से सम्बन्धित 50 कथन दिये गये हैं। प्रश्नावली में विद्यालय में जल, सफाई एवं स्वच्छता से सम्बन्धित कथन व छात्र-छात्राओं की व्यक्तिगत व शारीरिक स्वच्छता से सम्बन्धित कथनों का समावेश किया गया है। इसके अतिरिक्त विद्यालय में अवस्थित शौचालयों एवं मूत्रालयों की साफ-सफाई इत्यादि से भी संबंधित कथनों का समावेश किया गया है।

अंकन- प्रश्नावली में दिये गये कथनों से सम्बन्धित उत्तरदाताओं के उत्तर का निम्नवत् अंकन किया गया है।

प्रतिक्रिया	पूर्णतः सहमत	सहमत	तटस्थ	असहमत	पूर्णतः असहमत
धनात्मक कथन	5	4	3	2	1
ऋणात्मक कथन	1	2	3	4	5

इस प्रकार प्रयुक्त प्रश्नावली के लिए पाँच बिंदु मापनी का प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष-

परिकल्पना संख्या 1- विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या -1

क्र०सं०	समूह	कुल संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपातमान	सार्थकता	
					(t)	0.05 स्तर पर	0.01 स्तर पर
1.	वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक	50	171.16	3.50	1.13	सार्थक अन्तर नहीं है।	सार्थक अन्तर नहीं है।
2.	स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक	50	170.54	2.6			

शोध परिकल्पना (1) में विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की अभिवृत्ति में सार्थकता ज्ञात की गयी है। इसके लिए तालिका (1) का निर्माण किया गया है। तालिका के अनुसार दोनों समूहों का मध्यमान क्रमशः 171.16 व 170.54 व मानक विचलन क्रमशः 3.50 व 2.6 प्राप्त हुआ। दोनों समूहों के मध्यमानों में अंतर की सार्थकता ज्ञात करने के लिए क्रांतिक निष्पत्ति (ज) का मान ज्ञात किया जो 1.13 प्राप्त हुआ। जो सार्थकता स्तर 0.05 तथा 0.01 के सार्थक मानों क्रमशः 1.96 तथा 2.58 से कम है। दोनों समूहों के मध्य सार्थक अंतर नहीं प्राप्त होता है।

इस प्रकार शोधकर्ता की परिकल्पना (1) “विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है” स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना संख्या 2- विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति में सार्थकता अंतर नहीं है।

तालिका संख्या -2

क्र०सं०	समूह	कुल संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपातमान	सार्थकता	
					(t)	0.05 स्तर पर	0.01 स्तर पर
1.	ग्रामीण क्षेत्र वित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षिकाएँ	50	170.24	2.65	0.54	सार्थक अन्तर नहीं है।	सार्थक अन्तर नहीं है।
2.	स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षिकाएँ	50	170.28	2.70			

उपर्युक्त परिकल्पना (2) में शोधकर्ता ने “विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर को जानने का प्रयास किया है इसके लिए उपर्युक्त तालिका (2) में दोनों समूहों का मध्यमान क्रमशः 170.24 व 170.28 व मानक विचलन क्रमशः 2.65 व 2.70 अंकित है। दोनों समूहों के मध्य सार्थकता ज्ञात करने के लिए क्रांतिक निष्पत्ति (ज) की गणना की गयी जिसका मान 0.54 प्राप्त हुआ जो सार्थकता स्तर 0.05 व 0.01 के मानों 1.96 तथा 2.58 से कम है जिसका तात्पर्य यह है कि दोनों समूहों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध की परिकल्पना (2) “विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषित व स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षिकाओं की अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।” स्वीकृत की जाती है।

शोध की शैक्षिक उपयोगिता एवं सुझाव-

शोधकर्ता ने प्रस्तुत शोध के आधार पर यह भी सुझाव दिया है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर निर्धारित विद्यालयों की स्वच्छता पर शोध किये जाये और यह जानने का प्रयास किया जाय कि विद्यालयों में शैक्षिक अवस्थापनाओं में आड़े आने वाली समस्यायें कहाँ पर हैं और उनका उन्मूलन किस प्रकार से किया जा सकता है। भावी शोधों में इस प्रस्तुत शोध की सहायता ली जाय ताकि समस्याओं के निराकरण के लिए व विद्यालयों को साधन सम्पन्न बनाने के लिए सबके उत्तरदायित्व तय किये जाय। उच्च शिक्षण संस्थानों में भी स्वच्छता सम्बन्धी समस्याओं पर शोध किये जाय तथा स्वच्छता सम्बन्धी विषयवस्तु को विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित किये जाय। स्वच्छता सम्बन्धी अभियानों एवं कार्यक्रमों में विद्यार्थियों के साथ-साथ शिक्षकों को भी अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया जाय। इसके अतिरिक्त विद्यालय एवं विद्यालय परिसर की स्वच्छता को पवित्र एवं पुनीत कार्य के रूप में अंगीकृत किया जाय ताकि इसके महत्व को आम जनमानस तक पहुँचाया जा सके तभी हम विद्यार्थियों में स्वस्थ जीवन व स्वस्थ शिक्षा का समावेश करके उन्हें स्वस्थ व शिक्षित नागरिक बना पायेंगे।

सन्दर्भ सूची

1. शर्मा, एच०एल० (2003), पर्यावरण के समसामयिक आयाम, राज पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. शर्मा, आर०ए० (2004), पर्यावरण शिक्षा, सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ।
3. शर्मा, सुनील (2006), हमारा पर्यावरण हमारी जागरूकता, प्रखर प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. श्रीवास्तव, पूर्णिमा (2006), इन्वायर्नमेंट एजुकेशन फार कन्जर्वेशन एण्ड सस्टेनेबल डवलपमेंट, पटना, प्थ्रच् पेज सं० 136-140 ।
5. सिंह, बी० (2010), पर्यावरण शिक्षा, लायल बुक डिपो, मेरठ।

भारतीय अर्थव्यवस्था में आवास क्षेत्र का महत्व

किरण कुमारी

एम. फिल. स्कॉलर अर्थशास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, (हरियाणा)

भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। जनसंख्या की दृष्टि से इसका दूसरा स्थान व क्षेत्रफल की दृष्टि से यह 7वें स्थान पर आती है। जनसंख्या आकार का बड़ा होना, देश के लिए एक सकारात्मक बिंदु हो सकता है। देश के नागरिकों को वे सारी सुविधाएं भरपूर मात्रा में मिलनी चाहिए, जिसके द्वारा वह देश की आर्थिक विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके। देश के नागरिकों की मूलभूत आवश्यकताएं जैसे रोटी, कपड़ा और मकान सुव्यवस्थित रूप से मिले, तो वह देश की प्रगति में सुचारू रूप से मदद कर पाएंगे।

देश के नागरिकों के लिए रोटी व कपड़ा के बाद अच्छे आवास यानी मकान की कमी एक मात्र ऐसी कमी है। जिसके कारण देश के नागरिकों का जीवन स्तर ऊँचा नहीं उठ सकता। हाउसिंग एक ऐसा व्यापक क्षेत्र है। जिसकी कोई भी परिभाषा आसानी से नहीं दी जा सकती, क्योंकि इसमें देश के लोग अपने व अपने परिवार के लिए एक सहायक के रूप में कार्य करते हैं।

एक अच्छा आवास देश के सामाजिक, धार्मिक व संस्कृति वातावरण में बदलाव के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है जो एक देश की उन्नति में एक सहायक निर्धारक के रूप में कार्य करता है।

देश की सरकार द्वारा आवास क्षेत्र में निवेश करने से कम आय वाले नागरिकों के जीवन स्तर को भी ऊँचा उठाया जा सकता है। देश के नागरिकों को जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं यदि प्रयाप्त मात्रा में मिलें तो, इससे उनकी कार्य क्षमता में भी वृद्धि होती है और मानव जाति के लिए आवास उन बेसिक आवश्यकताओं में से एक है।

विकासशील देशों के नागरिकों के लिए अच्छे आवास का होना भी, उनके विकास के लिए अहम भूमिका निभाता है।

तालिका 1.1: 12वीं पंचवर्षीय योजना की रिपोर्ट

वर्ग	कमी (लाखों में)	कुल
गरीबी लाइन से नीचे	4.37	10.00
गरीबी लाइन से ऊपर	39.30	90.00
कुल	43.67	100.00

स्त्रोत: 12 वीं पंचवर्षीय योजना की रिपोर्ट (2012-17)

उपयुक्त तालिका में 12वीं पंचवर्षीय की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामिण क्षेत्रों में पाई जाने वाली आवास क्षेत्र की कमी को दिखाया गया है।

राष्ट्रीय आवास बैंक हाऊसिंग फाईनेंस के लिए सबसे अच्छी संस्था एनएचबी को माना जाता है। जो अधिनियम 1987 के तहत 9 जुलाई 1988 को स्थापित हुई थी इसका मुख्य कार्य आवास के लिए फाइनेंस, लोगों को उपलब्ध कराना है और उनसे संबंधित संस्थाओं को भी सहायता प्रदान करता है।

अध्ययन के उद्देश्य:

1. हाऊसिंग फाईनेंस से सम्बंधित नितियों का अध्ययन
2. हाऊसिंग फाईनेंस की समस्याएं

कार्य विधि

किसी भी कार्य को शुरू करने से पहले यह अच्छी तरह से उसकी विधि की जानकारी होना भी अति आवश्यक है क्योंकि विधि एक ऐसी योजना या प्रक्रिया होती है। जिसका इस्तेमाल हम प्रायः जीवन के हर क्षेत्र में करते हैं। विधि की पूर्ण रूप से जानकारी होने पर, उस कार्य को करने में आसानी होती है और समय की भी बचत होती है तथा उस कार्य से सम्बंधित समस्याओं को भी भली-भांति समझा जा सकता है। इस संक्षिप्त शोध को पूरा करने के लिए द्वितीय जिससे एक शोधकर्ता स्वयं न इकट्ठा करके, किसी अन्य संस्था व सरकारी एजेंसियों द्वारा इकट्ठा किया हुआ होता है। शोधकर्ता उस डाटा को वहां से एकत्रित करके अपनी शोधकार्य में इस्तेमाल करता है।

साहित्य समीक्षा

1. D' Souza Renita (2019) ने अपनी एक रिसर्च में बताया कि किसी भी देश में, आवास संबंधित समस्याओं से किस प्रकार छुटकारा या निदान पाया जा सकता है और किस तरह की नीतियों को अपनाकर हम इस समस्या को सूलझा सकते हैं।

2. Sartha Y.P.V Nararian (2018) लेखक ने अपने पत्र में बताया कि एक अच्छे मकान का, लोगों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस लिए देश के नागरिकों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने और देश के विकास व प्रगति के लिए, इस समस्या की ओर भी सरकार को अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। उन्होंने अपने लेख में झूग्गी-झोपडियों व बस्तियों में रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य की ओर भी सरकार का ध्यान केन्द्रित किया।

3. Sidhgva M.S, R.Y. Mohare (2016) लेखक ने अपने लेख में बताया कि देश के समृद्ध विकास में लिए बाजार की गतिविधिया, उत्पन्न, निवेश, मांग व पूर्ति ही काफी नहीं है यदि देश में नागरिकों के लिए एक अच्छे आवास की भी आवश्यकता होती है। इन्होंने अपने लेखन में आवास बाजार के निर्माण की ओर ध्यान केन्द्रित किया और उसके सामने आने वाली समस्याओं की ओर भी सरकार को जागरूक किया और बताया कि ग्रामीण क्षेत्रों में आवास विकास के लिए प्रायः ग्राम पंचायतों और नाबार्ड द्वारा अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

4. Monsod (2011) लेखक ने अपने पेपर में आवास संबंधित परेशानियों की ओर ध्यान देते हुए बताया कि, इन समस्याओं के लिए जिम्मेदार देश में उपलब्ध अनौपचारिक आवास नीतियाँ हैं। सरकार द्वारा इस प्रकार की समस्याओं को सूलझाने के लिए सामान्य दृष्टिकोण ही काफी नहीं। इसके लिए कोई ठोस नीति को अपनाना होगा।

नीति

यदि सरकार द्वारा आवास क्षेत्र में निवेश किया जाता है तो इसका प्रभाव देश की जीडीपी पर पड़ता है। अंतर उद्योगों और आवास बाजार में निवेश करने से संबंधित 2014 में राष्ट्रीय व्यवहारिक आर्थिक अनुसंधान परिषद की एक रिपोर्ट प्राप्त हुई जिसकी कुछ बातें इस प्रकार हैं।

- आवास बाजार 4वें सबसे ज्यादा रोजगार देने वाला क्षेत्र है।
- 99.4 प्रतिशत अनौपचारिक नौकरियाँ आवास क्षेत्र से प्राप्त होती हैं।
- आवास बाजार में निवेश से एक लाख लोगों पर 269 रोजगार के अवसरों को सृजित किया जाता है।

स्वतंत्रता बाद से ही भारत में आवास संबंधित समस्याओं की ओर ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा तथा प्रत्येक वर्ष बनने वाली नीतियों में भी इस समस्या की ओर ध्यान केन्द्रित किया। देश में व्याप्त झूग्गी-झोपडियों के विकास और आवास बाजार की कमियों को दूर करने के लिए 1985 में भी अनेक प्रकार के कार्यक्रम शुरू किए गए।

1. राष्ट्रीय आवास नीति (1988) आवास क्षेत्र 1988 में पहली बार जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में शामिल किया गया था। 1987 में पहला प्रारूप तैयार किया गया था। यह आवास क्षेत्र व उनके अधिकारों के प्रति पहला कदम था। इस नीति के अंतर्गत, आवास बाजार में आने वाली समस्याओं की ओर ज्यादा ध्यान दिया गया था परंतु यह नीति कुशलतापूर्वक अपने कार्य में सफल नहीं हो पाई।
2. जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीनीकरण मिशन (2005) इस नीति को 2005 में शुरू किया गया था और इसकी शुरुआत के लिए विभिन्न राज्य व शहरी निकायों द्वारा हर संभव योगदान दिया गया था। इस नीति के दौरान अलग-अलग राज्यों के लिए अलग-अलग सुविधाएँ जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा, आवास, जल व कम आय वाले क्षेत्रों की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया। नीति के महत्वपूर्ण बिंदु इस प्रकार हैं।
 - नगर निगम के बजट का 25 प्रतिशत शहरी गरीबी की मूलभूत जरूरतों व सुविधाओं के लिए निर्धारित किया जाएगा।
 - इसके अलावा 25 प्रतिशत अलग से झूग्गी-झोपड़ी के विकास के लिए इस्तेमाल किया जाएगा।

इस नीति का प्रमुख कार्य देश के नागरिकों को बेहतर सुविधा व सुरक्षा प्राप्त करवाना था। यह नीति को प्रायः केन्द्र सरकार द्वारा चलाया गया था और इसके शुरुआती दिनों में 500 शहरों को शामिल किया गया था। बड़े-बड़े उद्योगों के लिए विकास, बुजुर्गों के लिए अच्छा व अनुकूल वातावरण पानी की पूर्ति अन्य विषयों को शामिल किया गया था। इस नीति के दौरान राज्यों सरकार द्वारा किए जाने वाले कार्यों को भी सहायता दी गई जैसे वित्तीय स्थितियों में सुधार, मानव सुविधाओं की ज्यादातर पूर्ति और उनके मिलने वाली सुविधाओं पर लागत कम से कम हो।

3. राजीव आवास योजना (2009) इस योजना की शुरुआत 2009 में हुई थी और इस योजना का मुख्य उद्देश्य भारत को झूग्गी-झोपडियों से आजादी दिलाना है। आर्थिक रूप से कमजोर लोग व कम आय वाले लोगों के लिए आवास उपलब्ध कराना है। इस योजना के लिए पहली मंजूरी 2 जून 2011 को मिली थी और इस योजना को पूरे देश में लागू करना था। 2017 में इसे 250 शहरों पर लागू किया गया और इनमें उन शहरों को शामिल किया गया था। जिनकी आबादी एक लाख से ज्यादा थी। इस योजना के दौरान सरकार का अनुमान था कि 3.2 करोड़ भारतीय लोगों की जीवनशैली में सुधार हो सकता है।
4. प्रधानमंत्री आवास योजना (2015) इस योजना का मुख्य कार्यकरण केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के लिए नागरिकों को नकद सब्सिडी के द्वारा सहायता दी जाएगी और इस राशि को राज्य व केन्द्र सरकार दोनों में साझा किया जाएगा। इंद्रा आवास योजना का मुख्य उद्देश्य भी ग्रामीण क्षेत्रों में आवास की समस्या को खत्म करना था। परंतु कई कारणों की वजह से यह योजना सफल नहीं हो पाई और इसे प्रधानमंत्री आवास योजना में ही मिला दिया गया। इस योजना में नागरिकों को मिलने वाली सब्सिडी सीधे उनके खाते में जाएगी। इसका सीधा फायदा गरीब नागरिकों को मिल जाएगा। इस योजना की एक खास बात यह भी है कि इसे स्वच्छ भारत मिशन के साथ भी जोड़ा गया, जिससे देश के हर घर में शौचालय होगा और इसके लिए सरकार द्वारा 12000 रुपये हर घर को दिया जाएगा।

हाऊसिंग फाइनेंस की समस्याएं:

देश में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण बिजली, पानी, भूमि व लोगों के लिए आवास की कमी आदि सुविधाओं की कमी होती जा रही है। प्रायः ये सारी सुविधाएं देश के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करती हैं। परंतु देश में कई तरह की दिक्कतें होने के कारण इस लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थता दिखाई पड़ती है।

- ऋण प्राप्त करने में ग्राहकों को कठिनाई देश के अनौपचारिक क्षेत्रों में काम कर रहे नागरिकों के लिए लोन प्राप्त करने में अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है जो उनको अच्छे आवास प्राप्त करने में हतोत्साहित करती हैं। जिनके कारण उनके जीवन में निराशा व उनका जीवन स्तर प्रायः ऊँचा नहीं उठ पाता है।
- बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण एक अच्छे आवास निर्माण के लिए भूमि का अभाव होता जा रहा है। इन सबके अलावा पंजीकरण की समस्या, आवास फंड की कमी, सुचनाओं की कमी, भूमि अधिग्रहण के लिए बढ़ती हुई लागतें।

देश में बनाई जाने वाली नीतियों का नागरिकों के लिए अच्छे आवास प्रदान कराने में मुख्य स्थान होता है और इन्हीं नीतियों के द्वारा आवास की समस्याओं से निदान पाया जा सकता है। प्रायः यह स्वीकार किया जाता है कि इन समस्याओं को लागू करने के लिए थोड़ा ज्यादा समय लगता है। सरकार द्वारा नागरिकों को बेहतर आवास सुविधा देने के लिए बेहतर भूमि की उपलब्धता की ओर विशेष पहल करनी चाहिए। जिसके द्वारा देश के नागरिकों को अच्छी व सुलभ भूमि प्राप्त हो सके। इसलिए सरकार को इनकी ओर विशेष ध्यान की जरूरत है।

- माइक्रो फाइनेंस की सुविधा इसके लिए केन्द्र व राज्य का समन्वय होना चाहिए ताकि देश नागरिकों को लोन उपलब्ध करवाना असमर्थ होता है। उनको माइक्रो फाइनेंस की सुविधा आसानी से मिल सके और ये नागरिक लोन प्राप्त करके अपने लिए एक बेहतर आवास का निर्माण कर सके।
- 1970 से पहले आवास बाजार के लिए ऋण उपलब्ध करवाने वाली एकमात्र संस्था एलआईसी थी। इसके बाद तो काफी सारी एंजिसिया हुडको, एचडीएफसी अन्य एंजिसियों का विकास हुआ जो आवास संबंधी समस्याओं को दूर करने में सरकार की मदद करती है। जैसे राज्य आवास बोर्ड, वाल्मीकी अम्बेडकर आवास योजना, ग्राम आवास योजना, ऋण की दर कम करना, लोगों को घर बनाने के लिए प्रोत्साहित करना, सरकार द्वारा नीतिगत नियमों को सख्ती से लागू करना।

निष्कर्ष:-

अगर देखा जाए तो आवास क्षेत्र का सीधा संबंध देश के आर्थिक विकास से है यदि नागरिकों का जीवन स्वस्थ व सुरक्षित होगा तो उनकी कार्यक्षमता में भी बढ़ोतरी होगी। हमारा देश एक विकासशील अर्थव्यवस्था है। जिसमें धन सीमित मात्र में होता है जिसकी वजह से आवास क्षेत्र पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाया परंतु सरकार द्वारा किए गए परिणामों के अनुसार आवास क्षेत्र में काफी मात्रा में वृद्धि देखने को मिली है।

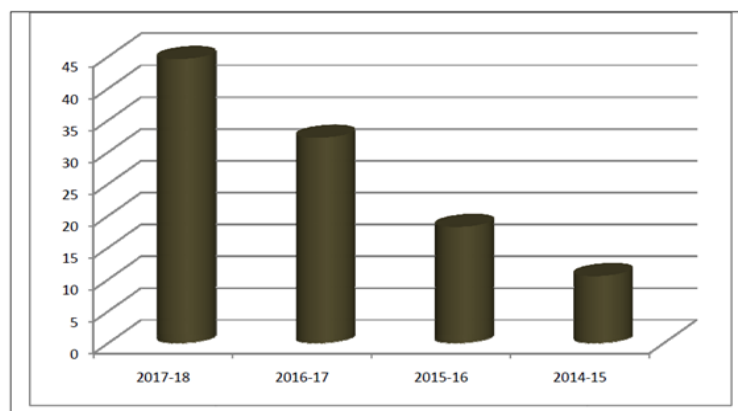
तालिका 1.2: ग्रामीण आवास स्कीम के तहत बनाए गए घर।

वर्ग	बनाए गए घर (आवासों की संख्या लाखों में)
2017-18	44.59
2016-17	32.23
2015-16	18.22
2014-15	10.51

स्रोत: ग्रामीण विकास मंत्रालय

ग्राफ 1.1

ग्रामीण आवास स्कीम के तहत बनाए गए घर।



स्रोत : ग्रामीण विकास मंत्रालय

जब भी सरकार द्वारा किसी अन्य क्षेत्र के लिए योजनाएं बनाई जाती हैं तो आवास बाजार की समस्याओं की ओर भी सरकार का विशेष ध्यान रहता है।

संदर्भ

- Ansar M.I. (2006) The us housing boom and the stock market decline : searching for a ausal nemus. Finance india) 20(2). 513-5
- Arunodayam, D.R. P Thangavel, N.. (2007). A Study of the housing industry with special reference to aty of chennal. The Social Sciences, 2(1) 84-92.
- Batra, vibha (2010). HFCS and the Indian mortgage finance market. Retrieved from <http://www.icra.in>
- Chirman, (2004) Housing finance in slovenia: The key role of the national housingnd. Housing finance international, 19(2),11-16
- Chant.S.(1997).Woman headed housing hold Diversity and dynamics the developing world. Basingstoke Macmillan
- Cooper, A.[2004].The imapct of interest rates and the housing market on the UK economy.Ecenomic Outlook 28,10-18.
- Gupta D.B.(1985).Urban housing India.World Bank staff Working paper no.730,Washing D.C.
- Gupta S.P.(2007) Statistical methods (35h ed.).New DelhiSuitan Ehand & Sons.
- Gytenberg,J., Chan, Eric H.P,& Davis M.R.L(2007) Housing finance agencies in Asia. BIS Working paper no.241.
- Isaac,D (1994) Property finance. London:Macmilian Press.
- Joint centre for housing studies, Harvard University(2005).

भारतीय जनमत निर्माण में प्रेमचन्द की पत्रकारिता का योगदान

अहमद रजा

हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

“मैं कभी पत्रकार नहीं रहा लेकिन परिस्थितियों ने मुझे जबरन बनाया और जो कुछ मैंने साहित्य में कमाया था, जोकि बहुत नहीं था, सब पत्रकारिता में गँवा दिया।”¹ प्रेमचन्द ने अपने इस कथन में जिन परिस्थितियों की तरफ इशारा किया है वह केवल उनकी अभावों और कर्ज के बोझ से दबी हुई जिंदगी ही नहीं थी बल्कि सदियों की गुलामी में पिस रही भारत की दयनीय सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थिति भी थी। देश की इस दयनीय स्थिति के लिए सबसे बड़े जिम्मेदार अंग्रेज थे। इसके अतिरिक्त देश में पनप रही हिंदू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता और जमींदारों की स्वार्थ भावना ने भी देश को खोखला करने में एक नकारात्मक भूमिका का निर्वहन किया था। प्रेमचंद जिस प्रकार साहित्य के माध्यम से ब्रिटिश भारत की दयनीय स्थिति का चित्रण करके लोकमत को संगठित कर रहे थे उसी प्रकार पत्रकारिता के माध्यम से भी जनमत को संगठित करने की कोशिश कर रहे थे। पत्रखपत्रिकाएं जनमत निर्माण में साहित्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होती हैं। यही कारण है कि ब्रिटिश भारत के प्रायः सभी महान साहित्यकार किसी न किसी पत्रकारिता से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य जुड़े रहे हैं। जनमत निर्माण की भावना को लेकर ही साहित्यकार प्रेमचंद पत्रकारिता के क्षेत्र में कदम रखते हैं। ब्रिटिश भारत की प्रायः सभी पत्रखपत्रिकाओं में ब्रिटिश शासन और विभिन्न युगीन समस्याओं का खुलकर विरोध किया गया था। स्वतंत्रता आंदोलन, नारी उत्थान, दलितोद्धार, सांप्रदायिकता का उन्मूलन इत्यादि समस्याएं ब्रिटिश भारत की पत्रकारिता का मुख्य विषय रही हैं। देश को स्वतंत्र कराने और युगीन परिस्थितियों के उन्मूलन में हिंदी पत्रख पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा है।

प्रेमचंद ने अपना पत्रकार जीवन ‘जमाना’ मासिक उर्दू पत्रिका के सहायक संपादक के रूप में शुरू किया। ‘जमाना’ का प्रकाशन कानपुर से होता था जिसके प्रधान संपादक दयानारायण निगम थे। प्रेमचंद और दयानारायण निगम में बड़ी गहरी मित्रता थी। उनको लिखने वालों की तलाश थी और प्रेमचंद को अपने लिए किसी पत्र की, जिसमें वह बंधकर अपने विचारों को जनता के समक्ष प्रस्तुत कर सकते। प्रेमचंद अपना पत्रकार जीवन शुरू करते हुए 1905 ईव में निगम साहब को लिखते हैं, “अधबीच में छोड़ने वाले और होंगे। यहां तो जब एक बार बांह पकड़ी तो जिंदगी पार लगा दी।... एडिटोरियल मैं सब कर लूंगा। खतोख्रकिताबत जो मुआमले की है, मैं कर लूंगा। खास एडिटरी की तवज्जोह के काबिल जो खुतूत होंगे वह खिदमते शरीफ में पेश होंगे। और काम करने का बंदोबस्त होना जरूरी है। लेबिल छपा लेंगे। आने का वक्त आएगा तो मशविरा होता रहेगा। जान गाढ़े में न डालो। हिम्मते मर्दा, मददे खुदा, हिम्मते एडिटर्स मददे दोस्तां। हां, यह ऐलान करना जरूरी होगा की नवाब राय स्टाफ में दाखिल हो गए।”² इस तरह प्रेमचंद ने ‘जमाना’ पत्र के असिस्टेंट एडिटर के रूप में कार्य करना शुरू कर दिया। “गरज यह कि मुंशी जी ने बंधकर ‘जमाना’ में लिखना शुरू कर दिया और छोटी कहानी उन्होंने सबसे पहले 1907 ईव में लिखी, लेकिन उसके पहले छोटेछोटे लेखों और समीक्षाओं का सिलसिला बहुत कायदे से चलता रहा।”³ इसके अतिरिक्त प्रेमचंद ने ‘मर्यादा’, ‘माधुरी’, ‘हंस’ और ‘जागरण’ आदि पत्रखपत्रिकाओं का भी संपादन किया। ‘हंस’ प्रेमचंद का निज साहित्यिक और राजनीतिक मासिक पत्र था। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए ही उन्होंने ‘हंस’ का प्रकाशन किया था। 1930 ईव से 1936 ईव तक का ब्रिटिश भारत अपनी पूरी हकीकत के साथ ‘हंस’ में आज भी जीवित है। प्रेमचंद ने ‘हंस’ को विशुद्ध साहित्यिक पत्र नहीं बना रहने दिया। उसके उद्देश्यों से तो स्पष्ट है कि ‘हंस’ साहित्यिक पत्र तो था लेकिन उसका संपादन रचनात्मक राजनैतिक लेखनी से होता था। बाद के कई वर्षों तक ‘हंस’ विशुद्ध राष्ट्रीय पत्र भी रहा।

ब्रिटिश भारत की प्रधान समस्या देश की पराधीनता थी। प्रेमचंद देश के प्रत्येक समुदाय का सर्वांगीण विकास ‘स्वराज्य’ प्राप्ति के रूप में देख रहे थे। लेकिन प्रेमचंद के स्वराज्य का अर्थ केवल ब्रिटिश मुक्त भारत से नहीं था बल्कि स्वराज्य से उनका तात्पर्य शोषण मुक्त भारत से था। प्रेमचंद की यह विचारधारा तत्कालीन राजनीति में चल रही खींचतान को देखकर ही बनी थी। उस समय देश की स्वतंत्रता के लिए दो विचारधाराएं प्रयासरत थी। प्रथम विचारधारा, जिसका समर्थन गांधी जी और उनके सहयोगी कर रहे थे, शोषण मुक्त और सेकुलर भारत की स्थापना के पक्ष में थे। दूसरी विचारधारा का समर्थन देश के पूंजीपति और जमींदार वर्ग कर रहे थे। देश का यह वर्ग वर्षों पुरानी व्यवस्था को पुनः लागू करने के लिए स्वराज्य की मांग कर रहा था। उनकी विचारधारा गांधी जी और उनके सहयोगी नेताओं की विचारधारा के प्रतिकूल थी। दूसरी विचारधारा का समर्थन करने वालों में कुछ सरकारी नौकर और वकील आदि थे जो ब्रिटिश सरकार के बने रहने में ही अपनी कुशलता समझ रहे थे। यही कारण था कि वे ब्रिटिश सरकार का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से साथ दिया करते थे। प्रेमचंद ने अपनी पत्रकारिता में जहां एक ओर गांधी जी की विचारधारा का समर्थन किया वहीं दूसरी ओर पूंजीवादी व्यवस्था के समर्थकों को अपनी आलोचना का विषय बनाया। देश की स्वाधीनता के लिए भारतीय जनमत को संगठित करना अतिआवश्यक था। इसी संगठन और जनमत निर्माण के लिए प्रेमचंद गांधी जी द्वारा किए जा रहे अहिंसात्मक आंदोलनों को जनखोजन तक पहुंचाने का सफल प्रयास कर रहे थे। गांधी जी के ‘असहयोग आंदोलन’ की महत्ता और उपयोगिता को देखते हुए ‘आज’ साप्ताहिक पत्र में ‘असहयोग आध्यात्मिक आंदोलन है’ नामक शीर्षक में वह लिखते हैं।

“असहयोग का जन्म यद्यपि राजनीतिक परिस्थितियों के अधीन हुआ लेकिन यथार्थ में यह एक आध्यात्मिक आन्दोलन है। किसी जाति का पराधीन होना उसके आध्यात्मिक पतन और अधोगति का प्रमाण है। यही कारण है कि बड़ी-बड़ी बहुसंख्यक जातियाँ छोटी-छोटी जातियों के पैरों तले पड़ी हुई हैं। उन्हें कभी सिर उठाने की हिम्मत नहीं होती। आध्यात्मिक पतन ने उन्हें निर्जीव बना दिया है, उन्हें अब अपने ऊपर लेश मात्र भी विश्वास नहीं रहा।.....सरकार की नीति का हमको जो अनुभव हुआ और हो रहा है उससे भली-ख़ाभाति सिद्ध हो चुका है कि स्वराज्य के बिना हमारे देश का कल्याण नहीं हो सकता। उसकी प्राप्ति का साधन शांतिमय असहयोग है, और आत्मशुद्धि, निर्भयता और सद्ब्यवहार असहयोग के तीन अंग हैं।”⁴ गांधी जी भारत को ब्रिटिश मुक्त और शोषण मुक्त बनाने के लिए देश की जनता को सत्याग्रह और असहयोग आंदोलन से जोड़ने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन देश का पूंजीपति वर्ग अर्थात् दूसरी विचारधारा का समर्थन करने वाले भारतीय शोषक देश को किस तरह अपने स्वार्थों के नीचे तले रौंद रहे थे, प्रेमचंद ने इसका खण्डन अपने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं ('जमाना', 'मर्यादा', 'माधुरी', 'हंस', 'जागरण' इत्यादि) में प्रकाशित लेखों में स्पष्ट रूप से किया है। गांधी जी की तरह प्रेमचंद भी देश की तत्कालीन स्थिति को देखकर स्वराज्य की बागडोर बुरजुवा एवं सामंत वर्ग के हाथों से छीनना चाहते थे तथा साथ ही मध्यम वर्ग की स्वार्थ पूर्ण राजनीति का विरोध भी कर रहे थे। यह ऐसा वर्ग था जो जनता के हित से अधिक अपने स्वार्थों और हितों को प्रमुखता दे रहा था। उनकी मनोवृत्ति यह थी की सुराज्य हो न हो लेकिन स्वराज्य होना चाहिए। ये धन और वैभव के इच्छुक थे तथा शासन और अधिकार की मांग कर रहे थे। यह वर्ग स्वराज्य की मांग केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि को पूरा करने के लिए कर रहा था। इस पूंजीपति वर्ग में देश की गरीब और शोषित जनता के लिए कोई पीड़ा न थी। देश के इस उच्च वर्ग को संबोधित करते हुए फरवरी 1919 ईव को 'जमाना' में प्रकाशित 'दौरे कदीम : दौरे जदीद' (नया जमाना : पुराना जमाना) नामक शीर्षक में लिखते हैं-

‘हमारे स्वराज्य के नेताओं में वकील और जमींदार ही सबसे ज्यादा हैं, हमारी कौंसिलों में भी यही दो समुदाय आगे-खिागे दिखाई पड़ते हैं। मगर कितने अफसोस और शर्म की बात है कि उन दोनों में से एक भी जनता का हमदर्द नहीं।.....कोई कारण नहीं है कि वह दूसरे देश के हाकिमों के मुकाबले में आपकी हुकूमत को ज्यादा पसंद करें। जो रैयत अपने अत्याचारी और लालची जमींदार के मुंह में दबी हुई है, जिन अधिकार संपन्न लोगों के अत्याचार और बेगार से उसका हृदय छलनी हो रहा है, उनको हाकिम के रूप में देखने की कोई इच्छा उसे नहीं हो सकती।”⁵ गांधी जी ने देश की जनता को संगठित करने के लिए जिस असहयोग आंदोलन का सूत्रपात किया था, उस आंदोलन का पूंजीपतियों और सांप्रदायिक संगठनों द्वारा मजाक उड़ाया जा रहा था। गांधी जी पर अनेक झूठे झूठे लांछन बांधे जा रहे थे। ऐसे नाजुक मोड़ पर जब जनता को आपस में बांट कर असहयोग आंदोलन को स्थगित करने का खेल खेला जा रहा था, प्रेमचंद असहयोग आंदोलन की महत्ता और उसकी उपयोगिता पर निरंतर लेख और टिप्पणियाँ लिख रहे थे और जनमत को संगठित करने की कोशिश कर रहे थे। असहयोग आंदोलन का पक्ष लेते हुए प्रेमचंद ब्रिटिश सहयोगी पूंजीपतियों को देशोद्धार हेतु संगठित करने का प्रयास बराबर कर रहे थे। उनके द्वारा कही गई सभी बातें आज भी उनके विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में मौजूद हैं। ब्रिटिश सहयोगी और असहयोग विरोधी विचारधारा से प्रेरित नेताओं को संबोधित करते हुए लिखते हैं-

“आज हमारे असहयोगी नेताओं और अनुयायियों की बड़ी संख्या जेल के अंदर है। सहयोगी समाज इसे उन नेताओं पर व्यंग्य करने का आधार बनाता है। और पुलकित होकर कहता है, इस प्रकार दीपक पर पतंग के समान जलने से क्या फायदा ? उसमें आत्मखसम्मान का वह अस्तित्व नहीं है जो सहयोगियों की इस मनोवृत्ति को ग्रहण कर सकता। वह तो अपने स्वार्थ का भक्त है। अगर वह भी असहयोगियों की भांति आज जेल में नहीं है तो इसका कारण यह नहीं कि वह बड़ा चतुर, बड़ा गंभीर, बड़ा नितिज्ञ है बल्कि वह अपने सिद्धांतों का आदर करना नहीं जानता। पंडित मदन मोहन मालवीय जी सहयोगी हैं लेकिन आत्मखसम्मान की रक्षा करना जानते हैं।....यदि हम पगखपग पर विशेष अधिकारियों के तेवर देखकर चलेंगे तो चाहे हम अपने को जेल से बचा लें, चाहे अपना कुछ स्वार्थ पूरा कर लें पर राष्ट्र का कोई हित नहीं कर सकते।..... कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था है। वहां प्रत्येक पक्ष को अपना मत प्रकट करने और राष्ट्र को अपने मत की ओर झुकाने का समान अधिकार है। लेकिन यदि वह राष्ट्र को अपनी ओर आकर्षित करने में कृतकार्य न हो तो उसे अपनी डेढ़ ईंट की मस्जिद अलग न बनानी चाहिए, और कांग्रेस से नाराज होकर नौकरशाही की खुशामद में दत्त चित्त न हो जाना चाहिए। यदि सहयोगी दल भी कांग्रेस में रहता और कांग्रेस पर अपना प्रभाव डालने का प्रयत्न करता रहता तो हमको उससे कोई शिकायत नहीं थी। लेकिन उसने नौकरशाही पर अवलंबित रहना ज्यादा सुलभ समझा और कांग्रेस का शत्रु हो गया। यही उसकी विश्रुलता है जिसने दो परस्पर विरोधी दलों को आमने-खसामने खड़ा कर दिया, नौकरशाही को तीतर लड़ाने का, आनंद उठाने का अवसर दिया। राष्ट्र के साथ रहकर हानि उठाना, कष्ट झेलना भी एक गौरव की बात है; राष्ट्र से परामुख होकर आनंद भोग करना भी लज्जास्पद है। स्वार्थ की उपासना करने में वह महत्व नहीं जो राष्ट्र के लिए मुसीबत झेलने में है।”⁶ प्रेमचंद जनता को असहयोग के विभिन्न क्षेत्रों से परिचित करा रहे थे। पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति, अदालतें, वकालत, सरकारी नौकरियाँ एवं उपाधियाँ, इत्यादि ऐसी संस्थाएँ थीं जिससे भारतीय आत्मीयता का हास होता जा रहा था। ये कुछ ऐसी संस्थाएँ थीं जो न केवल मानसिक पतन का कारण बन रही थीं अपितु आध्यात्मिक पतन का भी कारण बन रही थीं। यही कारण था कि प्रेमचंद देश की जनता से असहयोग और स्वावलंबन बनने की बात कर रहे थे।

प्रेमचंद अपनी पत्रकारिता में जहां एक तरफ पूंजीपतियों और जमींदारों की निंदा करते हैं वहीं दूसरी तरफ उन्हें देशोद्धार के लिए प्रेरित और करते हैं। अप्रैल 1930 ईव में 'हंस' में प्रकाशित 'स्वराज्य से किसका अहित होगा' नामक लेख में लिखते हैं, “कुछ लोग स्वराज्य आंदोलन से इसलिए घबड़ा रहे हैं कि उनके हितों की हत्या हो जायेगी। और इस भय के कारण या तो दूर से इस संग्राम का तमाशा देख रहे हैं, या जिन्हें अपनी प्रमुखता ज्यादा प्यारी है वे परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सरकार का साथ देने पर आमादा हैं। इनमें अधिकांश हमारे जमींदार, सरकारी नौकर, बड़े-बड़े व्यापारी और रूपये वाले लोग शामिल हैं। उन्हें यह भय है की अगर यह आंदोलन सफल हो गया तो जमींदारी छिन जाएगी, नौकरी से अलग कर दिए जायेंगे, धन जब्त कर लिया जायेगा। इसलिये इस आंदोलन को सर न उठाने दिया जाए। उन्हें ब्रिटिश सरकार के बने रहने में ही अपनी कुशल नजर आती है।.....अगर आपको यह भय है कि आपने जरा सा भी कान खड़े किए और आपकी रियासत जब्त हुई, आप दूध की मक्खी की भांति निकाल कर फेंक दिए गए, तो इस तरह आप कै दिन अपनी खैर मनायेंगे। वही सरकार जिसके दामन में आप मुंह छिपाये हुये हैं, आपको ठुकरा देगी। आपको हम विश्वास दिलाते हैं कि अगर आपने देश का साथ दिया,

तो देश भी आपका साथ देगा और अगर आपने उसके मार्ग में बाधाएं डाली, तो आप चाहें दूसरों के बल पर कुछ दिन और प्रभुता के मजे उड़ा ले, पर आप जनता की नजरों से गिर जायेंगे, और जिनके बल पर आप कूद रहे हैं, वे ही आपको निकाल बाहर करेंगे। जब तक उन्हें मालूम है कि प्रजा पर आपका दबाव है, वे आपको अपने स्वार्थ का यंत्र बनाए हुए हैं। जिस दिन उन्हें यकीन हो जायेगा कि आपके निकल जाने पर कोई एक बूंद आँसू भी न बहाएगा, उसी दिन आपका अंत हो जायेगा, इसलिये आपका भविष्य स्वराज्य के गर्भ में है।”

यही वह स्वार्थ था, जो स्वराज्य प्राप्ति में बाधक सिद्ध हो रहा था। प्रेमचन्द्र देश की तत्कालीन बिगड़ती हुई परिस्थिति को संभालने का प्रयास कर रहे थे। जमींदारों एवं पूँजीपतियों को ब्रिटिश शासन द्वारा कठपुतली की तरह उपयोग किये जाने से अवगत करा रहे थे। प्रेमचंद इस वर्ग से स्वाधीनता आंदोलन का अगुआ और नेता बनने का प्रस्ताव रखते हैं और जनमत को स्वाधीनता की ओर मोड़ते हुए लिखते हैं, “अगर जमींदार अपने अन्याय से अपने को इतना कल्कित न कर लें कि उसका अस्तित्व ही दूसरों की आँखों में खटकता हो, तो वह किसानों का मुखिया, नेता और रक्षक बना हुआ अनंत काल तक जीवन का उपभोग कर सकता है।...जो जमींदार प्रजा को लूटना ही अपना अधिकार समझते हैं, उनसे तो हमें कुछ कहना ही नहीं, लेकिन जो सज्जन हैं; उदार हैं, कर्तव्य परायण हैं, उनसे हम यह निवेदन अवश्य करेंगे कि आप थोड़े से स्वार्थ की रक्षा के लिये स्वराज्य में बाधक न बनें। स्वाधीन बनकर आधी खा लेना गुलामी की पूरी से कहीं अच्छा है।... यह आंदोलन खुद तो आपमें पैदा होना चाहिये था। उसका विरोध आपको शोभा नहीं देता। शोभा तो यह देता है कि आप इस आंदोलन के अगुआ होते और देश आपके पीछे होता।”⁸ प्रेमचंद वर्तमान के आधार पर भविष्यनिर्माण के लिये जनता को संगठित करना चाहते थे। उनके विचार में जनमत के रुख को स्वाधीनता आंदोलन की तरफ मोड़ना स्वराज्य प्राप्ति का सबसे बड़ा अस्त्र था। इसी ‘जनमत निर्माण’ के लिए उन्होंने पत्रकारिता का सहारा लिया था। कहने का आशय यह है कि प्रेमचन्द अपनी पत्रकारिता के माध्यम से “राष्ट्र की वर्तमान परिस्थितियों और समय की माँगों से पूर्णतः अवगत कराना चाहते थे जिससे सब एक प्लेटफार्म पर एकत्र होकर गुलामी तथा देश की बिगड़ी हुई सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का सामना कर सके। अपनी धरती से प्रेम आजादी के लिये तड़प और लगन का वर्णन उनके संपादकीयों में भरा पड़ा है।”⁹

प्रेमचंद युगीन भारत में देश की जनता को एक प्लेटफॉर्म पर लाकर खड़ा करना सबसे बड़ा और मुश्किल कार्य था। देश की भोलीखभाली जनता को धर्म और जाति के नाम पर बांटने का कार्य न केवल ब्रिटिश शासन द्वारा किया जा रहा था बल्कि भारतीय सांप्रदायिक संगठनों द्वारा भी किया जा रहा था। देश में उन दिनों आए दिन दंगे और फसाद हुआ करते थे। हिंदू और मुस्लिम संबंध इतने अधिक नाजुक हो चुके थे जिसका अनुमान लगाना मुश्किल है। कभी मस्जिद और मंदिर को लेकर, कभी गाय और धार्मिक बाह्याडंबरों को लेकर खून की होलियां खेली जा रही थी। प्रेमचंद उन दंगों के पीछे छिपी सांप्रदायिक मनोवृत्ति की साइकोलॉजी को भलीभांति समझ रहे थे। सांप्रदायिकता का संबंध किसी धर्म विशेष से नहीं होता बल्कि यह मुट्ठी भर लोगों के स्वार्थ से संचालित होती है। कहने का अर्थ यह है कि सांप्रदायिकता स्वार्थ के गर्भ से पैदा होती है और धर्म का लिबास पहनकर ईर्ष्या, हिंसा और विद्वेष का वातावरण तैयार करती है। जब यही सांप्रदायिक मनोवृत्ति राजनीति और सत्ताधारी नेताओं का रूप धारण कर लेती है तभी सांप्रदायिक राजनीति जन्म लेती है। सांप्रदायिक मनोवृत्ति से संचालित व्यक्ति की यह मानसिकता होती है की सब कुछ अपने लिए, दूसरों के लिए कुछ भी नहीं। जब किसी भी देश की राजनीति साम्प्रदायिकता को शासन का आधार बना लेती है तो ऐसा देश आपसी द्वेष, हिंसा और नफरतों का घर बन जाता है। स्वतंत्रता पूर्व देश की राजनीतिक स्थिति बिल्कुल ऐसी ही थी। देश में उस समय तीन शक्तियों द्वारा सांप्रदायिकता की भावना को फैलाने का कार्य किया जा रहा था। वह तीन साम्प्रदायिक शक्तियां निम्नलिखित थी।”

1. मुस्लिम लीग
2. हिंदू महासभा
3. अंग्रेज अर्थात् ब्रिटिश सरकार

देश में हो रहे सांप्रदायिक दंगों के कारण देश की जनता स्वराज्य प्राप्ति के मार्ग से विचलित हो रही थी। आवश्यकता दोनों धर्मों के अनुयायियों में समन्वय की भावना को पैदा करने की थी। प्रेमचंद अपने विभिन्न लेखों में जहां एक ओर हिंदू-मुस्लिम एकता की महत्ता, उसकी उपयोगिता को प्रस्तुत करके देश की बिखरी जनता को संगठित कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर हिंदू-मुस्लिम एकता को खण्डित करने वाले विभिन्न सांप्रदायिक समुदायों का ऐतिहासिक प्रमाणों के माध्यम से विरोध भी कर रहे थे। प्रेमचंद ने देश में पनप रही सांप्रदायिकता की आग को बुझाने और हिन्दू-मुस्लिम एकता को स्थापित करने के लिये लगभग सैकड़ों लेख एवं संपादकीय लिखे थे। उन लेखों के कुछ नाम इस प्रकार हैं: ‘मनुष्यता का अकाल’ (जमाना, फरवरी 1924), ‘कर्बला’ (माधुरी, 1 जनवरी 1924 ईव), ‘उर्दू में फिरौनीयत’ (जमाना, दिसंबर 1930 ईव), ‘नवयुग’ (हंस, मार्च 1931 ईव) ‘स्वार्थाधता की पराकाष्ठा’ (हंस, अप्रैल 1931 ईव) ‘हिंदू-मुस्लिम एकता’ (हंस, नवंबर 1931 ईव), ‘सांप्रदायिक मताधिकार की घोषणा’ (जागरण, अगस्त 1931 ईव), ‘अब हमें क्या करना है’ (जागरण, 29 अगस्त 1932 ईव), हिंदू सभा की निष्क्रियता (जागरण, 5 अक्टूबर 1933 ईव), मौलाना शौकत अली की गहरी सूझ (जागरण, 5 अक्टूबर 1932 ईव) ‘मुस्लिम-ख्रिस्त-वदल-ख्रिस्त-सम्मेलन’ (जागरण, 19 अक्टूबर 1932 ईव), ‘एकता सम्मेलन’ (जागरण, 31 अक्टूबर 1932 ईव), ‘आशा का केंद्र’ (जागरण, 7 अक्टूबर 1932 ईव), ‘एकता के विरुद्ध संप्रदायवादियों का शोर गुल’ (जागरण, 28 नवंबर 1932 ईव), ‘एकता’ (जागरण, 28 नवंबर 1932 ईव), ‘समझौता या हार’ (जागरण, 5 दिसंबर 1932 ईव), ‘मुस्लिम जनता में एकता सम्मेलन का समर्थन’ (जागरण, 12 दिसंबर 1932 ईव), ‘पंजाब के हिंदू मुसलमानों में समझौता’ (जागरण, 8 मई 1932 ईव), ‘कानपुर-ख्रिस्त-वदल-ख्रिस्त-रिपोर्ट’ (जागरण, 14 मई 1932), ‘हजरत मुहम्मद की पुण्य स्मृति’ (जागरण, 17 जुलाई 1933 ईव), ‘कुरआन में धार्मिक एक्य का तत्व’ (11 सितंबर 1933 ईव), ‘सांप्रदायिक समस्या का राष्ट्रीय समन्वय’ (जागरण, 18 दिसंबर 1933 ईव), ‘मुस्लिम छात्रों से’ (जागरण, 22 जनवरी 1934 ईव), ‘सांप्रदायिकता और स्वार्थ’ (जागरण, 19 फरवरी 1934 ईव), ‘सांप्रदायिक बंटवारा’ (जागरण, 21 मई 1934 ईव) इत्यादि। इसके अतिरिक्त उनकी विभिन्न कहानियों जैसे: ‘हिंसा परमो धर्मः’ (दिसंबर 1926 ईव), ‘मंदिर’ (1927), ‘शुद्धि’ (मई 1928 ईव), ‘इस्तीफा’ (दिसंबर 1928 ईव), ‘जुलूस’ (मार्च 1930), ‘समर-यात्रा’ (अप्रैल 1930 ईव), ‘शराब की दुकान’ (मई 1930 ईव), ‘सुहाग की साड़ी’ (मई 1930 ईव), ‘अनुभव’ (अक्टूबर 1932 ईव), इत्यादि में भी हिंदू-मुस्लिम एकता को उजागर किया गया है।

1857 ईव में हिंदू-मुसलमानों की अविश्वसनीय एकता को देखकर ब्रिटिश सरकार ने यह अनुमान लगा लिया था कि सांप्रदायिक वातावरण को कघयम किए बगैर भारत में ब्रिटिश शासन का स्थापित रहना संभव नहीं हो सकता। देश में सांप्रदायिक माहौल को कघयम करने और देश की जनता को टुकड़ों में बांटने के लिए अंग्रेजों ने भारतीय इतिहास को सांप्रदायिक रूप में प्रस्तुत करना शुरू किया। अंग्रेज जॉन स्टूअर्ट मिल की पुस्तक “हिस्ट्री ऑफ इंडिया” का प्रचार इसी उद्देश्य से कर रहे थे। इस पुस्तक में भारत को सांप्रदायिक दृष्टि से दिखाया गया है और भारतीय इतिहास को प्राचीन हिंदू काल, मध्यवर्ती मुस्लिम काल और आधुनिक ब्रिटिश काल के रूप में विभाजित किया गया है। बड़ी होशियारी दिखाते हुए आधुनिक काल को पूर्व के अध्यायों की तर्ज पर इसाई काल नहीं कहा गया। इलियट और डॉसन ने इस क्रम को और आगे बढ़ाते हुए भारत के इतिहास के सांप्रदायिक दृष्टिकोण का प्रचार किया। वैसे तो इसकी शुरुआत अंग्रेज शासकों ने की थी, लेकिन धीरे-धीरे स्वार्थी नेताओं की सत्तालोलुप प्रवृत्ति ने इसे एक नए इतिहास के रूप में प्रस्तुत कर दिया। राम पुनियांनी ने अपनी पुस्तक साम्प्रदायिक राजनीतिक : तथ्य एवं मिथक में इस संबंध में लिखा है, ‘‘षमध्ययुगीन इतिहास को विकृतिकरण करके ब्रिटिश इतिहासकारों ने चुने हुए स्रोतों का उपयोग करके केवल संघर्ष को ही उजागर किया है। मिल और मैकाले की परंपरा में इलियट और डॉसन ने भी यही कार्य किया। इलियट ने बड़ी बेबाकी के साथ स्वीकार किया है कि उसकी आठ खण्डों वाली पुस्तक ‘हिस्ट्री आफ इंडिया एज टोल्ड बाई हर ओन हिस्टोरियंस’ का मकसद लोगों को सांप्रदायिक गुटों में बांटना है। ङ्खु.वे अपने मकसद में कामयाब रहे क्योंकि दरबार के इतिहासकारों द्वारा दिया गया विवरण बहुत पुरानी शैली में होता था जिसमें शासक की प्रशंसा की जाती थी और उसके कार्यों को लालच नहीं बल्कि पवित्र मकसद से प्रेरित बताया जाता था। ब्रिटिश इतिहासकारों ने इसका तुरंत प्रयोग किया।’’¹⁰ स्कूलों और कालेजों में पढ़ाई जाने वाली सांप्रदायिक शिक्षा प्रणाली को देखते हुए गांधी जी ने भी एक अवसर पर कहा था, “हमारे देश में साम्प्रदायिक सौहार्द तब तक स्थायी रूप से नहीं लाया जा सकता, जब तक हमारे स्कूलों, कालेजों में इतिहास की पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से इतिहास की बेहद विकृत व्याख्याएं पढ़ाई जाती रहेंगी।’’¹¹ प्रेमचंद ने नवंबर 1931 ईव को ‘हंस’ में प्रकाशित ‘हिंदू-मुस्लिम एकता’ नामक शीर्षक में ब्रिटिश शासन की इस दोगली नीति को देखते हुए लिखा, ‘‘षविजयी जाति पराजितों पर जो सबसे कठोर आघात करती है, वह है उनके इतिहास को विषैला बना देना। प्राचीन हमारे भविष्य का पथ प्रदर्शक हुआ करता है। प्राचीन को दूषित करके, उसमें द्वेष और भेद और कीना भरकर भविष्य को भुलाया जा सकता है। वही भारत में हो रहा है। यह बात हमारे अंदर ठूस दी गई है कि हिंदू और मुसलमान हमेशा से दो विरोधी दलों में विभाजित रहे हैं। हालांकि ऐसा कहना सत्य का गला घोटना है।’’¹²

प्रेमचंद हिंदू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे। उन्होंने तत्कालीन समाज को संगठित करने और दो समुदायों के मध्य बढ़ रही खाई को कम करने के लिए हिंदू-मुस्लिम एकता के इतिहास को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। इतिहास के पृष्ठों में सैकड़ों ऐसी घटनाएं दबी हुई हैं जिसमें हिंदू और मुस्लिम जनता को एक-दूसरे के लिए प्राण न्योछावर करते हुए दिखाया गया है। हिंदू-मुस्लिम एकता को प्रतिष्ठित करने के लिए ही उन्होंने ‘कर्बला’ नामक नाटक लिखा था। यह नाटक मुस्लिम शासक हजरात हुसैन तथा यजीद के मध्य हुई लड़ाई को लेकर लिखा गया था। इस लड़ाई में कुछ हिंदू योद्धाओं ने हजरात हुसैन का साथ देते हुए अपनी जानों को कुर्बान किया था। चूंकि देश में अक्सर दंगे मुहर्रम पर ही हुआ करते थे इसलिए प्रेमचंद को हिंदू-मुस्लिम एकता को स्थापित करने का इससे अच्छा अवसर और नहीं मिल सकता था। देश में बढ़ रही सांप्रदायिकता की आग को बुझाने के लिए ही उन्होंने हजरात हुसैन की करुण कथा को हिंदू-मुस्लिम एकता का आधार बनाया था। तत्कालीन हिंदू नेताओं और लेखकों द्वारा इस नाटक में चित्रित हिंदू पात्रों के समावेश को लेकर आलोचना भी की जा रही थी। तत्कालीन सांप्रदायिक नेताओं और लेखकों के आक्षेप का खण्डन करते हुए 1 जनवरी 1925 ईव को ‘माधुरी’ में प्रकाशित श्कर्बला नामक एक लेख में उन्होंने लिखा-

‘‘षमित्रवर श्रीयुक्त रामचंद्र टंडन ने मेरे ‘कर्बला’ नामी ड्रामा की आलोचना करते हुए यह शंका प्रकट की थी कि इस नाटक में हिंदू पात्र क्यों लाये गये। .. यह ड्रामा ऐतिहासिक है और इतिहास से यह पता चलता है कि कर्बला के संग्राम में कुछ हिंदू योद्धाओं ने भी हजरात हुसैन का पक्ष लेकर प्राणोत्सर्ग किए थे, अतः उन पात्रों का बहिष्कार करना किसी भी युक्तिसंगत न होगा। रही यह बात कि उनके समावेश से हिंदू और मुसलमान दो में से एक को भी प्रसन्नता न होगी, इसके लिए लेखक क्यों कुसूरवार ठहराया जाय? आज हिंदू और मुसलमान दोनों जातियों में वैमनस्य है, इसलिए संभव है कि ऐसे मिश्रित दृश्य रुचिकर न हों, लेकिन जरा गौर से देखिए, तो इस दृश्य में ऐसी कोई बात नहीं है, जिस पर किसी हिंदू या मुसलमान पर आपत्ति हो। हिंदू जाति यदि अपने पुरुखाओं को किसी धर्म संग्राम में आत्मोत्सर्ग करते हुए देखकर प्रसन्न न हो तो, सिवाय इसके और क्या कहा जा सकता है कि हममें वीरखूपूजा की भावना भी नहीं रही, जो किसी के अधःपतन का अंतिम लक्षण है। जब तक हम अर्जुन, प्रताप, शिवाजी आदि वीरों की पूजा और उनकी कीर्ति पर गर्व करते हैं तब तक हमारे पुनरुद्धार की कुछ आशा हो सकती है। जिस दिन हम इतने जाति गौरव शून्य हो जाएंगे कि अपने पूर्वजों की अमर कीर्ति पर आपत्ति करने लगे, उस दिन हमारे लिए कोई आशा न रहेगी। ङ्खु. हमारा तो अनुमान है कि हिंदू इच्छा न रहने पर भी इस बात से प्रसन्न होंगे और उस पर गर्व करेंगे।’’¹³

ब्रिटिश सरकार के शोषण और अत्याचार से पूरा देश पीड़ित तो था ही, स्त्रियां भारतीय पुरुष प्रधान समाज के कारण दोहरे शोषण का शिकार थीं। भारतीय समाज में सदियों से स्त्रियां पारंपरिक रीतिखरिवाजों और अंधविश्वासों के कारण गुलामी की जिंदगी जीने पर मजबूर थी। प्रेमचंद स्त्रीखरिवाजों और उनकी विभिन्न व्यक्तिगत समस्याओं से अच्छी तरह परिचित थे। फरवरी 1932 ईव को ‘हंस’ में प्रकाशित ‘नारी जाति के अधिकार’ नामक लेख में वह लिखते हैं

“हमारे विचार में निम्नलिखित विषयों पर नारियों को असंतोष है और इस असंतोष को देवियों की इच्छानुसार ही शमन करना पड़ेगा।

1. एक विवाह का नियम स्त्रीखरिपुरुष दोनों ही के लिये समान रूप से लागू हो। कोई पुरुष पत्नी के जीवनखरकाल में दूसरा विवाह न कर सके।
2. पुरुष की संपत्ति पर पत्नी का पूरा अधिकार हो। वह उसे रेहनखरवय जो कुछ चाहे कर सके।
3. पिता की संपत्ति पर पुत्रों और पुत्रियों का समान अधिकार हो।
4. तलाक का कानून जारी किया जाए और वह स्त्रीखरिपुरुष दोनों ही के लिये समान हो।

5. तलाक के समय स्त्रीखपुरुष की आधी सम्पत्ति पाये और यदि मौरूसी जायदाद हो, तो उसका एक अंश।¹⁴

तत्कालीन नारीस्त्रिस्थिति पर प्रेमचंद द्वारा लिखे गए लेखों को निम्नलिखित शीर्षकों को देखा जा सकता है: 'मि. हरविलास शारदा का नया कानून' (हंस, जनवरी, 1931 ईव), 'नारीस्त्रिजाति के अधिकार' (हंस, फरवरी 1931 ईव), 'तलाकों की संख्या क्यों बढ़ती है' (हंस, अगस्त 1930 ईव), 'सिनेमा स्टारों के अर्ध नग्न चित्र' (हंस, अगस्त 1932 ईव), 'गाजीपुर के कोखऑपरेटिव सम्मेलन में संतानखनिग्रह' (हंस, अक्टूबर 1932 ईव), 'महिला सभाओं में संतानख निग्रह का प्रस्ताव' (हंस, नवंबर 1932 ईव), 'भारतीय महिलाओं में नवीन जागृति' (हंस, दिसंबर 1932 ईव), 'बालिकाओं का सुकार्य' (हंस, दिसंबर 1932 ईव), 'इंग्लैंड का नैतिक पतन' (हंस, दिसंबर 1932 ईव), 'कायस्थ कॉन्फ्रेंस' (हंस, जनवरी 1933 ईव), 'एक उपयोगी प्रस्ताव' (हंस, जनवरी 1933 ईव), 'सर हरसिंह गौण का तलाक बिल' (हंस, मार्च 1933 ईव), 'लखनऊ की वेश्याओं में नवीन जागृति' (हंस, अप्रैल 1933 ईव), 'एक दुःखी बाप' (हंस, अप्रैल 1933 ईव), 'औरतों का क्रयविक्रय' (हंस, मई 1933 ईव), 'वेश्यावृत्ति' (हंस, जुलाई 1933 ईव), 'अभागिनी विधवा' (हंस, जुलाई 1933 ईव), 'महिला विद्यालयों में बिहारी सतसई' (हंस, सितंबर 1933 ईव), 'प्रयाग में महिला व्यायाम मंदिर' (हंस, सितंबर 1933 ईव), 'विधवाओं के गुजारे का बिल' (हंस, अक्टूबर 1933 ईव), 'महिलाखसम्मेलन में संतान निग्रह' (हंस, नवंबर 1933 ईव), 'कुमारी शिक्षा का आदर्श' (हंस, जनवरी 1934 ईव), 'महिलाओं की शिक्षा पर जवाहर लाल नेहरू' (हंस, जनवरी 1934 ईव), 'रूस का नैतिक उत्थान' (हंस, फरवरी 1934 ईव), 'वैवाहिक लेनखदेन और कानून' (हंस, अप्रैल 1934 ईव), 'संतानखनिग्रह और प्राकृतिक नियम' (हंस, मई 1934 ईव), 'नारियों के साथ अन्याय क्यों' (हंस, मई 1934 ईव) इत्यादि।

प्रेमचंद स्त्रियों का उद्धार भी जनमत को संगठित करने में ही समझ रहे थे। भारतीय समाज में प्रचलित दहेज प्रथा का उन्मूलन उन्होंने जनमत निर्माण में ही देखा था। जनवरी 1933 ईव को 'हंस' में प्रकाशित उनका 'वैवाहिक लेनदेन और कानून' नामक लेख इस बात की पुष्टि करता है। वह लिखते हैं, "जब तक लेनखदेन समाज में घृणा की दृष्टि से न देखा जायेगा और जनमत उसे जघन्य न समझने लगेगा, तब तक यही दशा रहेगी। हमें अपनी सारी शक्ति यह जनमत तैयार करने में लगानी होगी।"¹⁵ तत्कालीन समाज में दलितों को लेकर भी जगहखजगह आंदोलन हो रहे थे। गांधी जी और अम्बेडकर के प्रयासों से दलितों की दयनीय स्थिति में सुधार किया जाने लगा था। जगहखजगह दलितों को मंदिर प्रवेश की अनुमति मिलने लगी थी। गांधी और अम्बेडकर के मध्य दलितोद्धार के संदर्भ में कुछ मतभेद भी थे। अम्बेडकर दलितों के मंदिर प्रवेश को ज्यादा महत्व नहीं दे रहे थे। उनकी मान्यता थी कि जब तक संपूर्ण जातिखव्यवस्था का उन्मूलन न किया जायेगा तबखतक दलितों को नीच समझने की मानसिकता का शमन नहीं किया जा सकता। डॉव अम्बेडकर दलितोद्धार के लिए दलित पृथक निर्वाचन, पृथक समुदाय और पर्याप्त आरक्षण की मांग कर रहे थे। लेकिन गांधी जी अम्बेडकर की इस मांग का विरोध कर रहे थे। गांधी की मान्यता यह थी कि इस तरह की सांप्रदायिक मांगों से देश की बिखरी जनता कभी भी एक प्लेटफॉर्म पर नहीं आ सकती और न ही ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह कर सकती है। प्रेमचंद अपनी पत्रकारिता के माध्यम से गांधी जी की विचारधारा का समर्थन करते हुए तत्कालीन भारतीय समाज से दलितोद्धार की अपील कर रहे थे। 26 दिसंबर 1932 ईव को 'मंदिर प्रवेश ही इस समस्या को हल करेगा' नामक एक संपादकीय में वह लिखते हैं, "हरिजनों की समस्या केवल मंदिर प्रवेश से हल होने वाली नहीं है।...असल समस्या तो आर्थिक है। यदि हम अपने हरिजन भाइयों को उठाना चाहते हैं तो हमें ऐसे साधन पैदा करने होंगे जो उन्हें उठने में मदद दें। विद्यालयों में उनके लिए वजीफे करने चाहिए, नौकरियां देने में उनके साथ थोड़ीखसी रियायत करनी चाहिए। हमारे जमींदारों के हाथ में उनकी दशा सुधारने के बड़ेखबड़े उपादान हैं। उन्हें घर बनाने में काफी जमीन देकर, उनसे बेगार लेना बंद करके, उनसे सज्जनता और भलमनसी का बर्ताव करके वे हरिजनों की बहुत कुछ कठिनाइयां दूर कर सकते हैं। समय तो इस समस्या को आपही हल करेगा, पर हिंदू जाति अपने कर्तव्य से मुंह नहीं मोड़ सकती।"¹⁶

इस प्रकार प्रेमचंद की पत्रकारिता युगीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं के विरुद्ध भारतीय जनमत को संगठित करती हुई दिखाई देती है। किसी भी पराजित और शोषित जाति का उद्धार उस जाति विशेष में जागरूकता की भावना को पैदा करके ही किया जा सकता है। यही कार्य प्रेमचंद अपनी पत्रकारिता के माध्यम से कर रहे थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही उन्होंने पत्रकारिता का सहारा लिया था। देश की जनता में विश्वास पैदा करना, स्वराज्य प्राप्ति के लिये उन्हें संगठित करना तथा इस मार्ग में आने वाली बाधाओं को प्राण देकर सामना करना इत्यादि बातें प्रेमचंद की पत्रकारिता में देखी जा सकती हैं। गरीब मजदूरों एवं किसानों का उत्थान करना और समाज में उन्हें उनका अधिकार दिलाना यही उनकी महत्वाकांक्षा थी। धन एवं यश की लालच से वह कोसों दूर थे। "मेरी आकांक्षाएँ कुछ नहीं हैं। इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यह है कि हम स्वराज संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही। खाने भर को मिल ही जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हवस नहीं। मैं शान्ति से बैठना भी नहीं चाहता। साहित्य और स्वदेश के लिये कुछ न कुछ करते रहना चाहता हूँ।"¹⁷ अतः प्रेमचंद की पत्रकारिता भारतीय जनमत निर्माण का दस्तावेज प्रस्तुत करती है।

सन्दर्भ:

1. कमल किशोर गोयनका, "प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य" (खण्ड-1), "इन्द्रनाथ मदान के दो इण्टरव्यू" शीर्षक, पृष्ठ संख्या : 304.
2. अमृत राय, "चिट्ठी पत्री" (भाग 1) हंस प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1962 ईव, नवीन संस्करण : 1978 ईव, पृष्ठ संख्या : 04.
3. अमृत राय, "कलम का सिपाही" हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 1974, पृष्ठ संख्या : 61.
4. डॉ. कमल किशोर गोयनका, "प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य" (खण्ड 2), प्रथम संस्करण : 1988, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, शीर्षकख 'असहयोग आध्यात्मिक आंदोलन है', पृष्ठ संख्या : 399.
5. प्रेमचंद (सहायक संपा.), 'जमाना' मासिक उर्दू रिसाला, से प्रकाशित, दफ्तर जमाना, चौक कानपुर, फरवरी 1919, 'नया जमाना : पुराना जमाना', (रामबिलास गुप्त, श्रेमचंद के विचारख (भाग दो), में संकलित, प्रकाशन संस्थान- नई दिल्ली, संस्करण : 2010, पृष्ठ संख्या : 246).
6. अमृत राय, "विविध प्रसंग", (भाग दो), हंस प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1962, पृष्ठ संख्या : 37ख39. ('मर्यादा' मासिक पत्र, वैशाख 1979 वि., 'विभाजक रेखा').

7. प्रेमचंद (संपा.) 'हंस', अप्रैल 1930 ईव, 'स्वराज्य से किसका अहित होगा', प्रकाशक : 'दि हंस' लिमिटेड, सरस्वती प्रेस, बनारस कैट, 'हंसवाणी', ('विविध प्रसंग' (भाग 2) में संकलित, पृष्ठ संख्या : 43).
8. वही, (पृष्ठ संख्या : 43).
9. प्रोव सगीर अफराहीम एवं अनुवाद डॉ. शाहिस्ता नगी, 'युग प्रवर्तक प्रेमचंद', प्रकाशन वर्ष 2009, मुस्लिम एजुकेशनल प्रेस, अलीगढ़, पृष्ठ संख्या : 25.
10. राम पुनियानी, 'साम्प्रदायिक राजनीतिक : तथ्य एवं मिथक', अनुवाद- रामकिशन गुप्ता, वाणी प्रकाशन- दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2005, पृष्ठ संख्या : 40.
11. विपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, क. न. पाणिकर, सुचेता महाजन, श्भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, शीर्षक- इतिहास का साम्प्रदायिक इस्तेमाल, पृष्ठ संख्या : 397.
12. प्रेमचंद (संपा.) 'हंस', नवंबर 1931 ईव, 'हिंदू-मुस्लिम एकता', 'हंसवाणी', पृष्ठ संख्या : 63, 'हंसवाणी', ('विविध प्रसंग' (भाग 2) में संकलित, पृष्ठ संख्या : 376).
13. प्रेमचंद (संपादक), 'माधुरी' (मासिक पत्रिका), 1 जनवरी 1925 ईव, 'कर्बला', प्रकाशक : नवल किशोर प्रेस, हजरतगंज लखनऊ, अमीनाबाद चौक. ('विविध प्रसंग' (भाग दो), में संकलित, पृष्ठ संख्या : 357.
14. प्रेमचंद (संपा.), 'हंस', फरवरी 1932 ईव, 'नारी जाति के अधिकार', 'हंसवाणी', ('विविध प्रसंग' (भाग तीन), में संकलित, पृष्ठ संख्या : 246).
15. 'हंस', जनवरी 1933 ईव, 'वैवाहिक लेनदेन और कानून', (वही, पृष्ठ संख्या : 265).
16. 'जागरण', 26 दिसंबर 1932 ईव, 'मंदिर प्रवेश ही इस समस्या को हल करेगा', ('विविध प्रसंग' (भाग 2) में संकलित, पृष्ठ संख्या : 455).
17. कमल किशोर गोयनका, 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', (खण्ड 1), "बनारसी दास चतुर्वेदी का इण्टरव्यू", पृष्ठ संख्या : 298.

उत्तरआधुनिकता और उपभोक्तावाद: मृगतृष्णा या वास्तविक सुख की तलाश

डॉ० रमेश कुमार बर्णवाल

असिस्टेंट प्रोफेसर, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

मनुष्य की चेतना के दो पक्ष हैं- आध्यात्मिक और भौतिकतावादी। जीवन में तनाव तब आता है जब मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना और भौतिकवादी जरूरतों में द्वंद्व या संघर्ष होता है। सामान्यतः जीत भौतिकवादी जरूरतों की होती है और आध्यात्मिक चेतना को हार माननी पड़ती है। दार्शनिक स्तर पर भौतिकतावाद भारत में कोई नई चीज नहीं है। प्राचीन काल में भौतिकतावादी चार्वाक दर्शन ने व्यापक अध्यात्मवादी समाज को गंभीर चुनौती दी थी लेकिन अध्यात्मवादियों द्वारा उसे विकृत रूप में प्रस्तुत कर उसका मजाक उड़ाया गया और उसकी निंदा की गई। इस तरह अध्यात्मवाद को पुनः मजबूती से खड़ा किया गया। लेकिन 19वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति ने अध्यात्मवाद को झकझोर कर रख दिया। आधुनिकतावादी समाज और वैज्ञानिक तर्कपद्धति ने अध्यात्मवाद पर एक निर्णायक विजय प्राप्त कर ली। और आज उत्तर आधुनिकता के वर्तमान दौर में जो व्यापक उपभोक्तावादी समाज बना है उसमें भी आध्यात्मिकता एक परदा भर प्रतीत होती है।

उपभोक्तावादी समाज है क्या और क्या है इसकी आकांक्षाएं? क्या यह कोई तात्कालिक, हवा में निर्मित समाज है या इसकी गहरी जड़ें हैं? क्या अध्यात्मवाद की फिर कोई सुसंगत जगह बन सकती है? यह आलेख इन सभी प्रश्नों के उत्तर तलाश करने की एक कोशिश है।

भारत में आध्यात्मिकता बनाम भौतिकतावाद: प्रत्येक देश की तरह भारत में भी आदिम मनुष्यों का जीवन भौतिकतावादी जरूरतों से संचालित होता था। वे आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, जीव, ईश्वर, ब्रह्मांड, सृष्टि के आध्यात्मिक प्रश्नों से अनजान अपनी भौतिक जरूरतें पूरी करने के लिए संघर्षमय जीवन बिता रहे थे। धीरे-धीरे चेतना के विकास के साथ-साथ उनमें प्रकृति और सृष्टि के प्रति अचरज भरी जिज्ञासा का जन्म हुआ। इसी जिज्ञासा से अनेक रहस्यपूर्ण और धार्मिक अवधारणाओं का जन्म हुआ। ईश्वर और देवी-देवताओं से पहली बार मनुष्य का परिचय हुआ। उनके जीवन में किसी न किसी रूप में योगदान देने वाले अग्नि, जल, वृक्ष, नदी, पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा आदि सभी उनके लिए देवी-देवता बन गए। उन्होंने प्रकृति की सभी वस्तुओं पर अलौकिक और रहस्यमयी शक्तियां आरोपित करके उनकी पूजा शुरू कर दी। उनकी समझ में प्रकृति की सभी घटनाओं में अलौकिक गुण विद्यमान थे। अपनी कल्पना से उन्होंने उन्हें देवी देवता के रूप में साकार कर लिया। इस तरह अपनी बेचौनी भरी जिज्ञासाओं को शांत कर उन्होंने पहली बार मानसिक शांति का अनुभव किया। फिर प्रकृति की शक्ति के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए और उनके प्रकोप से स्वयं को बचाने के लिए उन्होंने देवी देवताओं की पूजा और आराधना की विधियों का भी आविष्कार किया। साथ ही जीवन के विभिन्न अवसरों से लेकर मृत्यु के बाद तक से जुड़े कई विश्वासों और संस्कारों का जन्म हुआ। भारत के आदिम मनुष्यों के बाद सिंधु घाटी की सभ्यता से लेकर ऋग्वैदिक काल तक भारतीय आध्यात्मिक चेतना का यही आरंभिक इतिहास है। ऋग्वेद के समय तक भारत में आध्यात्मिक मनुष्य स्थापित हो चुका था। उपनिषद काल तक आते आते अध्यात्मवाद अपने शिखर पर पहुंच गया। फिर ब्राह्मण ग्रंथों, मनुस्मृति आदि ने कर्मकांडों में वृद्धि कर दी जिसकी प्रतिक्रिया में लोकायत, सांख्य, योग, जैन, बौद्ध जैसे भौतिकतावादी दर्शनों का उदय हुआ।

भारत में अध्यात्म का मूल आत्मा-परमात्मा का संबंध है। विभिन्न देवी देवताओं की भरमार के बीच एक ईश्वर की अवधारणा आने के बाद अध्यात्मवाद को और मजबूती मिली और इसका आरंभ ऋग्वेद में ही हो चुका था जिसमें एक जगह कहा गया है- 'एक अग्नि है जो अनेक स्थानों पर जलती है। एक सूर्य है जो सर्वत्र प्रकाशित है। एक उषा है जो इस सबको प्रकाशमान करती है। वह जो परमेश्वर है, उसमें यह सब है।' यह पूर्ण विकसित संसार परम पुरुष का एक अंग माना गया। 'ब्रह्मांड उस ब्रह्मांडीय पुरुष के विराट स्वरूप का एक अंश मात्र है। आकाश उसका मस्तक है, सूर्य उसकी आंख है, पृथ्वी उसका पैर है, पवन उसका श्वास है और नक्षत्र उसके बाल हैं।'²

उपनिषदों में ब्रह्म की अवधारणा की शक्तिशाली ढंग से स्थापना हुई जो आज भी भारतीय अध्यात्मवाद का आधार है। उपनिषदों में ऋषि याज्ञवल्क्य, श्वेतकेतु, जनक, मैत्रेयी आदि अनेक दार्शनिकों के संसार और उसकी गतिविधियों से जुड़े बुनियादी प्रश्न और उनके समाधान संकलित हैं। मसलन, यह संसार क्या है, किसकी इच्छा से मनुष्य का जीवन चलता है, हम किस आधार पर जीवित हैं, मनुष्य जब सो जाता है तो उसकी बुद्धि कहां चली जाती है और कहां से लौट आती है इत्यादि। उपनिषदों में जहां ब्रह्म को परम शक्ति माना गया है, वहीं ब्रह्म और जीव या परमात्मा और आत्मा में एकता की अभिव्यक्ति भी सशक्त रूप से हुई है, विशेष रूप से मुण्डक उपनिषद और बृहदारण्यक उपनिषद में। यानी आत्मा और ब्रह्म के बीच कोई भेद नहीं है। मनुष्य में बसने वाली आत्मा और समस्त ब्रह्मांड में संचार करने वाली जीवनी शक्ति दोनों एक ही है। मुण्डक उपनिषद में एक सुप्रसिद्ध श्लोक है, जिसमें कहा गया है कि ब्रह्म को जान लेने वाला ब्रह्म हो जाता है।³ छांदोग्य उपनिषद के एक श्लोक में कहा गया है कि "यह सब कुछ परमात्मा ही है, जो ऐसा मानता और समझता है, वह परमात्मा में परम अनुराग, परमात्मा में ही क्रीड़ा, उन्हीं में संयोग का सुख और उन्हीं में आनंद का अनुभव करता हुआ परमात्मरूप हो जाता है।" बाद में गीता के अठारहवें अध्याय में कहा गया-"भक्ति के द्वारा वह इस बात को जान लेता है कि मैं वस्तुतः कौन हूँ और कितना हूँ। तब तत्त्व रूप में

मुझे जान लेने के बाद वह मुझमें प्रवेश कर जाता है।¹⁴ इसकी व्याख्या सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने इस प्रकार की है-“ज्ञाता तथा भक्त परमेश्वर, पूर्ण पुरुष के साथ आत्मज्ञान और आत्मानुभव में एकाकार हो जाता है। ज्ञान और भक्ति दोनों का एक ही लक्ष्य है। ब्रह्म बनने का अर्थ है-परमात्मा से प्रेम करना, उसे पूरी तरह जानना और उसमें प्रवेश कर जाना।¹⁵

जीवात्मा और परमात्मा के इसी संबंध को आगे चलकर आदि शंकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद के दार्शनिक सिद्धांत में स्थापित किया। उन्होंने कहा कि “यदि हम निरपेक्ष परब्रह्म के स्वरूप को जान लें तो समस्त सीमित आकृतियां और सीमाएं अपने आप विलुप्त हो जाती हैं। जगत माया है क्योंकि यह ब्रह्म की अनंत यथार्थता का सत्य नहीं है। उसका आभास है।”¹⁶ उनके अनुसार शरीर तथा उस जैसी अन्य वस्तुएं अविद्या की सृष्टि हैं। वे उतनी ही अस्थायी हैं, जितने पानी के बुलबुले होते हैं। अतः ज्ञान की सहायता से यह जानो कि ‘मैं ही परम ब्रह्म हूँ’ (अहम् ब्रह्मास्मि)। उपनिषदों में यह कहा गया है कि ब्रह्म का ज्ञाता ब्रह्म हो जाता है तो ज्ञाता को अवश्य ब्रह्म के साथ एकात्मरूप होना चाहिए। सब कुछ ब्रह्म ही है (सर्व खल्विदं ब्रह्मः), तो इसके अनुसार जीव तथा जीवात्मा भी और कुछ नहीं, स्वयं ब्रह्म ही है। अतः वह भी ब्रह्म के समान स्वतःप्रकाशित, अनंत और उन्मुक्त है। उसकी सीमाएं उन उपाधियों और परिस्थितियों का परिणाम हैं, जो अविद्या के कारण दिखाई पड़ती हैं। अविद्या को विद्या से दूर कर दो, तुरंत जीव और ब्रह्म के बीच का द्वैत तिरोहित हो जाएगा, जीव का कोई अलग अथवा भिन्न अस्तित्व नहीं रहेगा और वह अपने यथार्थ रूप में अर्थात् ब्रह्म रूप में दृष्टिगत होगा।¹⁷

ऋग्वेद और उपनिषदों में मुख्य रूप से अध्यात्मवाद का दार्शनिक आधार प्रस्तुत किया गया था। लेकिन इनके बाद और इनके साथ-साथ रचे गए ब्राह्मण ग्रंथों और मनुस्मृति में कर्मकांड, सामाजिक नियम और साथ ही वर्णव्यवस्था को विशेष महत्व दिया गया। सतपथ ब्राह्मण में दो तरह के देवता बताए गए। देवता तो देवता हैं ही। ब्राह्मण, जिन्होंने पवित्र मंत्रों को कंठस्थ कर रखा है और जो इन्हें दूसरों को सिखाते हैं, वे भी मनुष्य रूप में देवता हैं। इसी तरह यज्ञ दो तरह के माने गए। अग्नि में जो यज्ञ किए जाते हैं वे देवताओं की पूजा के लिए होते हैं। किंतु जो उपहार और पूजा ब्राह्मणों को भेंट की जाती है, वह मनुष्य रूपी देवताओं के लिए यज्ञ होते हैं। मनुस्मृति में वर्णव्यवस्था की पुरजोर ढंग से स्थापना करते हुए मनु ने घोषणा की थी कि ब्राह्मण चूँकि वेदों का अधिकारी है, अतः उसे समस्त सृष्टि का प्रभु होने का अधिकार है। ब्राह्मण ग्रंथों और मनुस्मृति तक स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म, कर्मफल, मोक्ष जैसी मान्यताओं का पूर्ण विकास हो चुका था।

इन सबकी प्रतिक्रिया में भौतिकवादी दर्शनों का उदय हुआ था। और चूँकि वेदों पर अधिकार के कारण ही ब्राह्मणवाद की स्थापना हुई थी इसलिए वेदों की सत्ता को स्वीकार करने से भी उन्होंने इनकार कर दिया और ब्रह्मांड की उत्पत्ति के संबंध में उपनिषदों की अवधारणा का भी पूरी शक्ति से विरोध किया। भौतिकवादी दर्शनों में लोकायत या चार्वाक दर्शन में अध्यात्मवाद का सबसे उग्र विरोध हुआ। यहां तक कि इसी कारण उसे एक भोगवादी दर्शन के रूप में प्रचारित किया गया और कहा गया कि यह कर्ज लेकर घी पीने का दर्शन है। भारत में 15वीं सदी में भी अध्यात्मवादियों द्वारा लोकायत दर्शन की मान्यताओं का विरोध किया जाना इस बात का संकेत देता है कि समाज में इस दर्शन से बड़ी संख्या में लोग प्रभावित थे जिन्हें ‘सही’ राह पर लाने के लिए अध्यात्मवादियों को इसकी मान्यताओं का विरोध करना पड़ रहा था। लोकायत दर्शन ने आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक, मोक्ष आदि से जुड़ी सभी अध्यात्मवादी मान्यताओं को झूठ का पुलिंदा कहा। उसके अनुसार इस संसार के अलावा कोई दूसरा संसार नहीं है। न तो स्वर्ग है और न नरक है।¹⁸ मोक्ष के बारे में उन्होंने कहा कि मोक्ष मृत्यु के अलावा और कुछ नहीं है। और मृत्यु प्राणों का समाप्त हो जाना ही है। अतः बुद्धिमान लोगों को मोक्ष के लिए कष्ट नहीं उठाने चाहिए। मूर्ख ही तप और व्रत आदि से अपने शरीर को शक्तिहीन और निर्बल बनाते हैं। लोकायत दर्शन में धार्मिक साहित्य को झूठा कहा गया है और इसलिए उसकी उपेक्षा करने को कहा गया है। इसके अनुसार कोई देवी-देवता या अलौकिक शक्ति नहीं है। अमर आत्मा जैसी भी कोई चीज नहीं है। शरीर की मृत्यु होने पर कुछ शेष नहीं रहता।¹⁹ वेदों और उपनिषदों के गंभीर दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रश्नों के इन्होंने यथार्थवादी और भौतिकवादी उत्तर दिए। उनके अनुसार केवल प्रत्यक्ष ज्ञान ही सच्चा ज्ञान प्रदान करता है। धार्मिक उपदेश और पुरोहित वर्ग निरर्थक है। उन्होंने घोषणा की कि जीवन का लक्ष्य अधिकतम आनन्द का उपभोग करना है।

इस तरह हम देखते हैं कि भारत में प्राचीन काल से ही आध्यात्मिकता के साथ-साथ भौतिकतावाद की एक समानांतर दार्शनिक विचारधारा मौजूद रही है। और इसकी समाज में ही नहीं विद्वानों में भी महत्वपूर्ण स्वीकृति रही है। लेकिन भारत आध्यात्मिकता का देश है, यह प्रचारित करते समय पूरे आधुनिक युग में इस पहलू की गंभीर उपेक्षा हुई है। इससे निश्चित ही अंग्रेजों को अपने औपनिवेशिक हितों को पूरा करने में मदद मिली और आधुनिक चेतना से संपन्न लोगों में अपने देश की परंपरा के प्रति विद्रोह की भावना अधिक उत्पन्न हुई और पश्चिमी भौतिकतावाद की तरफ वे अधिक आकर्षित हुए। यह अवश्य है कि आधुनिक युग के पहले आध्यात्मिकता ही वर्चस्व की विचारधारा थी। भक्तिकाल में कबीर जैसे क्रांतिकारी कवि ने भी ‘माया महाठगिनी हम जानी’ कहकर लोगों को इस संसार की माया से मुक्त रहने की सीख दी थी। लेकिन आधुनिक युग में बीसवीं सदी के एकदम प्रारंभ में श्रीधर पाठक जैसे कवियों ने इस जगत को ही सच्चा मानने पर जोर दिया। अपनी ‘जगत सचाई सार’ कविता में वे उपदेशक के ही अंदाज में कहते हैं- “यह जग सच्चा तनिक न कच्चा, समझो बच्चा इसका भेद।” लेकिन उत्तरआधुनिकता के वर्तमान दौर में एक बार फिर पहिया घूम रहा है। एक तरफ जहां भौतिकतावाद और उपभोगवाद बाजार की नई शक्तियों के कारण उफान पर है और आर्थिक मंदी के साथ उसका बुलबुला थोड़ा फूटा भी है, तो साथ-साथ एक नकली आध्यात्मिकता भी समाज में फैलती चली गई है। कथावाचकों और आध्यात्मिक गुरुओं की भरमार हो गई है। और रोचक यह है कि इसमें उत्तरआधुनिकता की नई बाजार प्रणाली ही मददगार है। आज टीवी चैनलों ने आध्यात्मिकता का बाजार और फैलाया है और इस आध्यात्मिकता के उपभोक्ता भी सभी धर्मों में बढ़े हैं।

उत्तरआधुनिकता और बाजार का नवपूंजीवाद- वर्तमान भौतिकतावाद और उपभोगवाद के लिए बाजारवाद को जिम्मेदार माना जाता है। लेकिन हम जानते हैं कि भारत में व्यापारिक पूंजीवाद मध्ययुग में ही आ गया था। तब बाजार की जरूरतों के कारण ही दस्तकारों और शिल्पकारों को विशेष महत्व मिला था और समाज में वे आत्मविश्वास के साथ अपनी आवाज उठाकर खड़े होने लगे थे। जुलाहे समुदाय से आने वाले कबीर को संत के रूप में व्यापक मान्यता मिलना इसी का सबूत है। इसमें उस समय की नई अर्थव्यवस्था की भी भूमिका थी।

फिर आधुनिक युग की औद्योगिक क्रांति जो एक पूंजीवादी सभ्यता विकसित की उसे भी एक व्यापक बाजार की जरूरत थी और भारत ब्रिटेन का उपनिवेश बनने के साथ-साथ उसके उत्पादनों का एक बाजार भी बन गया था। और यह बाजार इस कदर विस्तृत हो गया था कि स्वाधीनता संग्राम के दौरान राष्ट्रभक्तों ने विदेशी सामानों की होली तक जलाई थी और स्वदेशी को अपनाने का प्रण लिया था। तो फिर आज का बाजारवाद और उपभोगवाद किस अर्थ में अलग है? उत्तरआधुनिकता के सिद्धांतकारों ने विस्तार से इसका जवाब दिया है। उसमें के पूंजीवाद को वृद्ध पूंजीवाद कहा गया है। साथ ही इसे नवपूंजीवाद भी कहा गया है।

इसमें उपभोक्ता बनाने के तरीके पूंजीवादी युग के तरीकों से भिन्न हैं। इसने जिस बाजारवाद को जन्म दिया है उसने एक बड़ा उपभोक्तावादी समाज बनाया है। जो वस्तुओं को नहीं खरीदता बल्कि वास्तव में उन संकेतों की खरीददारी करता है जिन्हें बाजार ने बनाया है। ये संकेत आकर्षक विज्ञापनों से बनाए जाते हैं। आज के नवपूंजीवाद और बाजारवाद की सबसे बड़ी शक्ति है विभिन्न जनसंचार माध्यमों में आकर्षक और छलावे विज्ञापनों की शक्ति।

वर्तमान बाजारवाद और उपभोक्तावाद को व्याख्यायित करते हुए बोद्रीयार्द इसके तीन कारण बताते हैं- 1. अमेरिका और पूरे यूरोप में उत्पादन में बेतहाशा बढ़ोतरी हुई है। जब उत्पादन बढ़ जाता है तब चाहे कृत्रिम ढंग से सही, मांग को प्रोत्साहित किया जाता है। और इसके लिए लोगों तक पहुंच बनाने के नए-नए तरीके अपनाए जाते हैं। इससे लोगों में उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ती है। 2. भिन्न दिखने की लालसा। समाज में लोग अपना जीवन पद्धति द्वारा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं। वे बताना चाहते हैं कि उनकी जीवन पद्धति और लोगों से भिन्न है। भिन्न दिखने की यह आकांक्षा उन्हें ज्यादा से ज्यादा उपभोग करने के लिए प्रेरित करती है। और 3. बोद्रीयार्द ने कहा कि वस्तुएं संकेत हैं। लोग वस्तुओं का उपभोग नहीं करते, संकेतों का उपभोग करते हैं। नए जनसंचार माध्यमों में आकर्षक और छलावे विज्ञापनों के कारण अब वस्तुएं आवश्यकताओं को पूरा करने का साधन बनकर नहीं आती बल्कि वे संकेतक बनकर आती हैं। ये संकेत उपभोग के लिए लोगों को प्रेरित करते हैं। अगर वस्तुओं को बाजार में बिकना है तो उन्हें सशक्त संकेत बनना ही पड़ेगा नहीं तो वे बाजार से उठ जाएंगी। इस तरह वस्तुओं का उपयोग मूल्य महत्वपूर्ण नहीं रह जाता बल्कि उनका संकेत मूल्य ही महत्वपूर्ण हो जाता है।¹⁰ बोद्रीयार्द कहते हैं कि उत्तरआधुनिकता का समाज बुनियादी रूप से मास मीडिया या जनसंचार माध्यमों का समाज है। ये जनसंचार माध्यम रियलिटी या यथार्थ की जगह हाइपररियलिटी यानी अतिथार्थ या आभासी यथार्थ का निर्माण करते हैं और अपनी इसे शक्ति के कारण इन्होंने एक नए उपभोक्ता समाज को बनाया है।¹¹ इस नए समाज की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें वर्गों के विभाजन का आधार उत्पादन संबंध नहीं रह गया है जो कि औद्योगिक या आधुनिक समाज की विशेषता थी। बल्कि इसका आधार समाज में उपभोग का स्तर हो गया है। भारत में हम देख सकते हैं कि आर्थिक उदारीकरण और भूमंडलीकरण के बाद उपभोक्ता समाज को बढ़ाने में बाजारवाद की शक्तियां ही सक्रिय नहीं रहीं बल्कि स्वयं सरकारों ने इसके लिए अनुकूल नीतियां और वातावरण तैयार करने को लेकर अभूतपूर्व प्रयास किए हैं। भारत में विदेशी कंपनियों को आमंत्रित करना और यहां के उपभोक्ता बाजार को बढ़ा-चढ़ाकर बताना आज की प्रमुख अर्थनीति हो गई है। लेकिन इस उपभोक्तावादी समाज ने क्या भारत के पारंपरिक समाज में कोई महत्वपूर्ण तोड़-फोड़ की है जिसे युगांतरकारी माना जाए, इसकी परीक्षा करना जरूरी है। क्या भारतीय समाज को बदलने में उपभोक्तावाद की कोई सकारात्मक भूमिका भी मानी जा सकती है या यह एक मृगतृष्णा भर है? पिछले तीन-चार वर्षों में आर्थिक मंदी के कारण नवपूंजीवाद और उपभोक्तावाद का जो बुलबुला फूटा है उसके संदर्भ में यह जानना और जरूरी हो गया है।

उपभोक्तावाद: मृगतृष्णा या सच्चे सुख की तलाश- क्या सुविधाएं या भौतिक साधन खुशी या प्रसन्नता प्रदान कर सकते हैं? क्या उपभोक्तावादी जीवन से सच्चे सुख की तलाश पूरी हो सकती है? अब ये सवाल पूछे जाने का दौर गुजर चुका है और उपभोक्तावाद हमारे समाज की एक प्रमुख प्रवृत्ति बन चुकी है। लेकिन अब भी ये सवाल अपनी जगह हैं।

भारत में भूमंडलीकरण के साथ उपभोक्तावाद का वास्तविक रूप तब सामने आया जब कार, टीवी, फ्रिज जैसी चीजें खरीदने के लिए बैंकों से कर्ज मिलना शुरू हुआ और मध्यवर्ग ही नहीं बल्कि निम्नमध्यवर्ग की दबी हुई इच्छाएं भी पूरी होने लगीं। कर्ज लेकर घी पीने की कहावत अब सही अर्थों में साकार होने लगी। ब्याज चुकाए जाने की चिंता छोड़ लोगों ने किस्तों पर ये चीजें लेनी शुरू कर दीं। और फिर आवश्यकताओं ने अपना पैर पसारना शुरू किया। क्रेडिट कार्ड ने लोगों को जब और जहां भी खरीदारी की सुविधा दे दी, तत्काल पास में पैसे न हों तो भी। लोगों के सपनों को पंख लगने शुरू हुए। पहले मध्यवर्ग के लोग अपनी चीजें पड़ोसियों को दिखाकर यह कहते हुए रोब जमाते थे कि यह इम्पोर्टेड है। लेकिन अब एक-एक कर सभी विदेशी कंपनियां चलकर भारतीय बाजार में आ गईं। और फिर शुरू हुआ ब्रांडों से जुड़ी पहचान का दौर। ब्रांडों के पीछे भागने का दौर। ऐसा नहीं कि पहले ब्रांड नहीं थे। पार्कर पेन, रेमंड सूट जैसी अनेकानेक कंपनियों की साख पहले भी थी। लेकिन उनके प्रति आम लोगों में आग्रह नहीं था लेकिन टीवी चैनलों और टीवी कार्यक्रमों की भरमार के साथ-साथ विज्ञापनों का जो नया युग आया उसने ब्रांडों को आम लोगों में परिचित बना दिया। इसके अलावा नए मध्यवर्ग के उदय और शॉपिंग मॉल तथा स्थानीय बाजारों तक में इन ब्रांडों के शोरूम खुलने से लोगों की इन तक पहुंच बढ़ गई। अब उपभोक्तावाद केवल क्रयशक्ति का मामला रह गया। और वह जादू क्या जो सिर चढ़कर न बोले। कोल्डड्रिंक के एक विज्ञापन में दिखाया गया कि एक आदिवासी इलाके में गरीब बच्चे सचिन तेंदुलकर का मुखौटा लगाए उल्लास के साथ एक खास कंपनी की कोल्डड्रिंक पी रहे हैं। और कुछ अंशों में यह हकीकत भी बन चुका है। आज ये चीजें सामाजिक पहचान से जुड़ चुकी हैं और लोगों की जरूरत बन चुकी हैं।

इन प्रवृत्तियों को देखते हुए ऐसा लगता है कि बीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में महात्मा गांधी द्वारा प्रचारित अपरिग्रह का सिद्धांत समाज में अप्रासंगिक हो चुका है। कबीर ने कहा था, साईं इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाए, आप भूखा ना रहें साधु ना भूखा जाए। लेकिन अब लोगों की आकांक्षाएं इतनी सीमित नहीं रही हैं। शायद तब भी नहीं थीं वरना कबीर को ऐसा क्यों यह कहना पड़ता और क्यों उनका जीवन संत का जीवन कहलाता- ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया। आज समाज का बहुत छोटा सा वर्ग 'संतोष परम सुखम्' को अपने जीवन का आदर्श मानता है और बहुत बड़ा वर्ग क्रय शक्ति न होने के कारण मजबूर है लेकिन उपभोग की इच्छाएं उसके पास हैं। और दुहराने की आवश्यकता नहीं कि उनकी ये इच्छाएं सुखी और ऐश्वर्यभरा जीवन जीने की प्राकृतिक लालसा के साथ-साथ मीडिया द्वारा पैदा की गई लालसा भी है। आज मीडिया समृद्धि के जैसे संकेतों का निर्माण कर रहा है उसमें यही होना स्वाभाविक था। मीडिया में हर साल अमीरों की बढ़ती संख्या का ढिंढोरा पीटा जाना समाज के संकेतक का ही निर्माण है। मुकेश अंबानी का अरबों रुपए का बंगला हमारे समय

का एक मजबूत संकेतक मीडिया द्वारा ही बनाया गया है। संक्षेप में, अपरिग्रह अब समाज का मानक आदर्श नहीं रहा। निम्नमध्यवर्ग के लोगों के साथ यह एक महत्वपूर्ण बात देखी जा सकती है कि वे उपभोग की आकांक्षाओं के साथ-साथ अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाने के लिए भी प्रयत्नरत हैं। वे जानते हैं कि जीवन की सुख-सुविधाएं अच्छी शिक्षा के माध्यम से हासिल की जा सकती हैं। इस तरह हम देखते हैं कि समाज का जीवन अब भौतिकतावादी जीवन बन चुका है। तो क्या अध्यात्मवाद का युग समाप्त हो गया? विडंबना यह है कि जिस मास मीडिया को समाज में उपभोक्तावाद को बढ़ाने का श्रेय जाता है, उसी मास मीडिया ने आध्यात्मिकता का कारोबार भी बढ़ाया है। भौतिकतावाद मुख्यतः नास्तिकता का दर्शन है लेकिन वर्तमान में हम धार्मिकता का एक नया ज्वार भी देख रहे हैं। टीवी चैनलों में कुम्भ मेले का सीधा प्रसारण दिखाया जाता है और हर साल कुम्भ के भीड़ भरे मेले में जाने वालों की संख्या बढ़ती जाती है। कांवडियों की भीड़ भी कम होती नहीं दिखती और उनमें युवाओं की संख्या ही ज्यादा होती है। धार्मिक और आध्यात्मिक कार्यक्रमों वाले टीवी चैनलों की बढ़ती संख्या भी दर्शकों में इनकी व्यापक स्वीकृति का संकेत है।

इस संबंध में हाल में घटी दो प्रमुख घटनाएं प्रतीकात्मक महत्व रखती हैं। 1. पूरी दुनिया के साथ-साथ भारत में भी आर्थिक मंदी का वर्तमान दौर। इसने भौतिकतावादी दर्शन से प्रभावित उपभोक्तावाद के सामने चुनौती पेश की है और बाजारवाद भी फिलहाल सहमा हुआ है। और 2. अध्यात्मगुरु आसाराम बापू की यौन उत्पीड़न मामले में गिरफ्तारी। आसाराम बरसों से करोड़ों लोगों की आस्था का मूर्त रूप बने हुए थे। लोग भगवान की की तरह उनकी तस्वीर घर और दुकानों में लगाया करते थे। यौन उत्पीड़न के अनेक मामलों में आसाराम की संलिप्तता उजागर होने से करोड़ों लोगों की आस्था ठगी सी रह गई। अंत में प्रश्न यह है कि भौतिकतावाद और आध्यात्मिकता दोनों तरफ से निराश मनुष्य क्या करे? जिस तरह ढलकर सूरज फिर अगले दिन निकल आता है, परिदृश्य बता रहे हैं कि भारतीय समाज में ये दोनों ही लंबे समय तक जारी रहने वाले हैं।

संदर्भ

- 1 ऋग्वेद, 8.58.2
- 2 पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतयच्चभव्यम्- ऋग्वेद, 10.90
- 3 ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति:- मुण्डकोपनिषद्
- 4 श्रीमद्भगवद्गीता, 18:55
- 5 भगवद्गीता, राधाकृष्णन, पृ. 428
- 6 वही, पृ. 565
- 7 के. दामोदरन, भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पृ. 259
- 8 वही, पृ. 107
- 9 वही, पृ. 108
- 10 एस. एल. दोषी, (2007) आधुनिकता, उत्तरआधुनिकता एवं नवसमाजशास्त्रीय सिद्धांत, रावत पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ. 217
- 11 वही, पृ. 224

अर्वाचीन कवियित्री पंडिता क्षमाराव का संस्कृत साहित्य में योगदान

डॉ० मीना गुप्ता

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, पी.पी.एन. कालेज, कानपुर

संपूर्ण संस्कृत वाङ्मय सुविख्यात संस्कृत कवियों, ऋषिकाओं, कवियित्रियों के उत्कृष्टतम काव्य -कृतित्व के अवदान से समृद्धि एवं विश्व वाङ्मय के शिखर पर अधिष्ठित हुआ है। वेद कालीन ज्ञान -विज्ञान, सभ्यता संस्कृति, धर्म-दर्शन, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था तथा नैतिकता व शाश्वत जीवन मूल्यों के संस्थापन तथा संरक्षण व संवर्धन में ब्रह्मवादिनी ऋषि काओं रोमशा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, घोषा, वागम्भृणी, गार्गी के अवदान आज भी हमारे लिए प्रेरणास्पद एवं धारण किए जाने योग्य है बृहदारण्यक का याज्ञवल्क्य मैत्रेयी-संवाद जिसमें मैत्रेयी कहती हैं यन्नु म इयम् भगो सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णाक स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति? तथा येनाहं नामृता स्थान किमहं तेन कुर्या यदेव भगवन्वेद तदेवमे ब्रूहि इति। इन दो वाक्यों तथा याज्ञवल्क्य के उपदेशों के आधार पर मैत्रेयी की दार्शनिक उच्चता का मूल्यांकन कर सकते हैं मैत्रेयी की दृष्टि में अर्थ नामक पुरुषार्थ केवल गृहस्थों के लिए उपयोगी हो सकता है किंतु मोक्ष के साधक के लिए यह आवश्यक नहीं है -

मृत्योर्मा ऽमृतं गमय।

जैसा कि हम सब जानते हैं कि संपूर्ण विश्व भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के हास के कारण विभिन्न सामाजिक राजनीतिक व राष्ट्रीय समस्याओं जैसे छुआ-छूत दहेज, अशिक्षा, अंधविश्वास, आतंकवाद, उपनिवेशवाद, जातिवाद, महिला उत्पीड़न, संप्रदायवाद आदि से ग्रस्त है आधुनिक संस्कृत साहित्य में विविध प्रकार के साहित्य का सृजन आज भी हो रहा है जिनमें महाकाव्य, गीतिकाव्य, नाटक, कथा जीवनी, उपन्यास प्रमुख हैं आधुनिक युग में अपनी कृतियों से जिन कवियों ने संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया उनमें क्षमा राव विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं आपको अपनी रचना धर्मिता व पांडित्य के लिए लिए साहित्य चंद्रिका उपाधि से अलंकृत, मण्डित किया गया। पंडित क्षमा राव ने साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। आधुनिक संस्कृत साहित्य के काल को यदि हम देखना चाहे तो उसका निम्न वत विभाजन प्राप्त होता है स्वतंत्रता आंदोलन के पूर्व का काल 1800 से 1900, स्वतंत्रता आंदोलन का काल 1900-1950, स्वातंत्र्योत्तर काल 1950 से 20 वीं शताब्दी का काल।

पंडिता क्षमाराव के जन्म के विषय में हमें यह तथ्य प्राप्त होता है कि वह स्वतंत्रता आंदोलन से पूर्व 4 जुलाई 1890 को पूना में जन्मी थी आपकी माता का नाम ऊषा देवी तथा पिता स्वर्गीय शंकर पांडुरंग संस्कृत के महान विद्वान भाषा शास्त्री थे उन्होंने प्राचीन भारतीय साहित्य व संस्कृति को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाया था तथा अपने जीवन काल में ऋग्वेद वेदांतादि दर्शन तुकाराम के ग्रंथ सहित विभिन्न संस्कृत एवं प्राकृत तथा मराठी भाषा के ग्रंथों का संपादन किया पंडित आपकी उपाधि थी पंडिता क्षमा जी ने अपने पिता की इस अद्वितीय प्रतिभा-संस्कृत ग्रंथ निर्माण को अत्यंत दृढ़ता से संभाला। क्षमा जी ने महामहोपाध्याय भारत रत्न पी वी काणे तथा विद्यालंकार नगप्पशास्त्री से शिक्षा ग्रहण की। पंडिता क्षमा राव की कृतियां आधुनिक बोध से अनुप्राणित थी जिस कारण अपने समकालीन रचनाकारों से वह पृथक् थी इनकी रचनाओं में महाराष्ट्र के संत तुकाराम व ज्ञान देव की अमिट छाप दृष्टिगत होती है और दूसरी तरफ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम भी प्रगति की ओर उन्मुख था अतः राष्ट्रीय चेतना व प्रेरणा का भाव भी उनकी कृतियों में हमें देखने को मिलता है अतः उन्होंने इन भावों को अपनी रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया 1920 से 1930 के बीच सर्वप्रथम उन्होंने अंग्रेजी भाषा में ही ग्रंथों का निर्माण किया परंतु संस्कृत भाषा की गंभीरता, उदात्तता, मृदुता तथा भावाभिव्यंजना की शक्ति को देखते हुए उन्होंने संस्कृत भाषा में उत्कृष्ट साहित्य का सृजन किया 1931 से प्रारम्भ किया तथा महापुरुषों के जीवन चरित्र के माध्यम से गौरवशाली अतीत को स्मरण कराया उनसे प्रेरित होने का पाठ संपूर्ण जगत को दिया संस्कृत समाज को उन्होंने आधुनिक बोध से संपृक्त विभिन्न विधाओं से परिचित कराया तथा अपनी रचनाओं से देश को एकता के सूत्र में आबद्ध करने वाली भाषा संस्कृत के उपासकों में नई जागृति, नई लहर पैदा की। पंडित क्षमा राव ने 1931 में अंग्रेजों द्वारा भारतीय महिलाओं के ऊपर बर्बरता से लाठी से प्रहार करते हुए देखा तभी उनको सत्याग्रह गीता लिखने की प्रेरणा भगवद्गीता तथा महात्मा गांधी से प्राप्त हुई, क्योंकि उस समय कोई भी प्रकाशक ऐसी रचना का प्रकाशन करने का साहस नहीं कर सकता था अतः उन्होंने 1932 में पेरिस में सत्याग्रह गीता को प्रकाशित कराया यह ग्रंथ भी भगवद् गीता के समान ही अट्टारह सर्गों में उपनिबद्ध महाकाव्य है जिसके सर्गों में स्वतंत्रता संग्राम के समय महात्मा गांधी जी के प्रारंभिक जीवन से लेकर गांधी इरविन के समझौते तक का वर्णन है। सत्याग्रह गीता में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति का निदर्शन प्राप्त होता है-

तथापि देशभक्त्याहम् जातास्मि विवशी कृता।

अत एवास्मि गातुमुद्यता मन्दधीरपि।¹

भारतवर्ष में जनता पराधीनता के कारण सर्वत्र दुःख दारिद्र्य शोक आदि से ग्रस्त थी अतः उन्होंने परतंत्रता को मरण से भी अधिक निकृष्ट माना² और उसको दूर करने के लिए राष्ट्रीय एकता तथा संगठन की शक्ति को महत्वपूर्ण माना।³

पंडित क्षमा राव का जीवन अत्यंत कष्टमय था फिर भी उन्होंने संस्कृत जगत को उत्कृष्ट काव्य रत्नों से भर दिया अस्पृश्यता जैसी समस्या के संबंध में उन्होंने वर्णन किया कि अंग्रेजों द्वारा ही अपने ही देश के लोगों को अस्पृश्य कहकर उनका सामाजिक बहिष्कार भारत जैसे देश के लिए कलंक है इसका समूलोच्छेदन हेतु कवियित्री ने प्रयास किया और संपूर्ण देश की जनता को प्रसन्नता व आनंद से विभोर होने की कामना करते हुए लिखा- सत्यविजयतां लोके मुक्ति भवतु भारतम्।

नंदन्तु सुखिनः सर्वे देशजाः विदेशजाश्च।¹

स्वतंत्रता आंदोलन में पुलिस की मार से आहत स्त्री के द्वारा ध्वज को न छोड़ने के कारण को अभिव्यक्त करते हुए कहती हैं -

सा च प्राह पताकेयं नासा ग्रामस्य कीर्तिता।

कथं भद्रे त्यजेयं तां स्वयं ग्रामनिवासिनी।²

उत्तर सत्याग्रह गीता में 1931 से 1944 तक का आंदोलन वर्णित है भारतीय विद्वान भिक्षुनिर्मलानंद के साथ महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन को आग्रह बनाकर काव्य रचा था इस हेतु वह पुरस्कृत भी हुई। विदुषी क्षमा राव ने भारत हिंदू यवन एकता तथा हरिजनों के सामाजिक उन्नयन हेतु भी प्रयास किया, अपने देश हित के लिए क्षमा जी ने स्वार्थ त्याग का उपदेश भी प्रदान किया- स्वार्थ त्यागात् स्वदेशार्थं नान्यच्छ्रेयो हि विद्यते।³ विदेशी वस्त्रों की होली जलाने तथा खादी पहनने तथा घर-घर में चरखे की ध्वनि गुंजायमान हो इस भाव की बहुत ही सुंदर अभिव्यंजना आपने काव्य में की है -

परदेशीय वस्त्राणि निर्दह्य बहवोजनाः। श्वेतखादिधराः संतः सञ्जाता देशसेवकाः॥

गुंजनं तंतु चक्रस्यश्रूयते स्म गृहे-गृहे।⁴

अहिंसा का मार्ग वरण करने के लिए कवियित्री ने हिंसा छोड़ने का भी सभी से आग्रह किया है -हिंसा न कोऽपि कुर्वीत मनो वाक्कायकर्मभिः। अहिंसैव सिद्धिः स्यादित्याह पुनः पुनः॥⁵

समाज में फैली हुई जातिवाद की मान्यता की निंदा करते हुए उन्होंने कहा है कि समाज में ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य समान हैं विकृति तो मनुष्य के अंतःकरण में है समाज में किसी को भी किसी की जाति आदि के आधार पर अवज्ञा का अधिकार नहीं है।

शूद्रां वा ब्राह्मणों वापि क्षत्रियों वा कृषिवलः

देव दृष्ट्या समाः सर्वे विकृतिस्तु नरोद्भवा।

भेदः कृतोमनुष्येण धात्रा समदर्शिका।

शीलं चिह्नं सुजातस्य न जातिर्न च जीविका।⁶

शंकरजीवनम् 17 सर्गों में उपनिबद्ध इस महा काव्य में उन्होंने अपने पिता श्री शंकर पांडुरंग के संपूर्ण जीवन का वर्णन किया है, पंडिताक्षमा ने जीवनी लेखन से संस्कृत साहित्य में नई काव्य विधा का श्रीगणेश किया इस संबंध में अर्वाचीन कवि श्री नृसिंह केलकर ने कहा है कि पिता-पुत्रियों की स्पृहा क्यों नहीं करेंगे वे भी पितृ ऋण को उतारने में पूर्ण रूप से समर्थ होती हैं।

कथं हि न करिष्यन्ति कन्या भ्यः पितरः स्पृहाम्

ऋणम् तत् पैतृकम् पुण्यमयाकुर्युर्तदीह ता॥

पंडिता क्षमा भी काव्य परंपरा को आगे बढ़ाने वाली कवियित्री के रूप में ऋषिकाओं के समान सदैव समादृत रहेंगी आपने कथाओं को भी पद्य में उपनिबद्ध किया है। भारतवर्ष में संस्कृत के उपेक्षित स्थिति के विषय में भी अत्यंत दुःख प्रकट किया है।

जन्मभू सर्व वेदानामिदं भारत मण्डलम् । तथाप्यद्ये अमोघा वागियं लोकैरुपेक्ष्यते॥⁷

1940 में क्षमा राव ने मीरा लहरी की रचना की जिसमें श्री कृष्ण की अनन्य भक्त मीरा का चरित तथा उसके साधना की गाथा है। यह कृति दो खंडों में तथा कुल 135 श्लोकों में उपनिबद्ध है। इसमें मीरा के बचपन तथा उनके मां के साथ किए गए वार्तालाप, श्री कृष्ण के प्रति आसक्ति, विवाह तथा पति के प्रति आदर भाव और आराध्य के प्रति एकांतिक समर्पण, पारिवारिक त्रास, वृंदावन गमन, फिर चित्तौड़ आगमन पति के निधन के उपरांत परिवारी जनों से प्राप्त अत्यंत मर्मन्तक पीड़ा, पुनः भगवान का संकीर्तन ध्यान और परम पद की प्राप्ति इत्यादि का अत्यंत ही सजीव एवं मार्मिक वर्णन हमें मीरा लहरी में देखने को मिलता है इस पीड़ा को कवियित्री ने भी मानो सहा हो। यह गीतिकाव्य है जिसमें शार्दूल विक्रीडित छंद प्रयुक्त हुआ है खंडकाव्य में प्रबंध काव्य जै से छंदों के प्रयोग के अवसर नहीं होते किंतु यहां कवियित्री ने ऐसा ही प्रयोग किया है इसमें भावों की मंजुल छटा द्रष्टव्य होती है शैशवावस्था में विवाह के अनंतर वधु वर यात्रा वर्णन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति निम्न श्लोक में दिखाई देती है -

तस्मिन्नेव वधूवरौ प्रवहणे मालाभिरावेष्टिता, नाद्यापि प्रतिपन्न यौवनदशौ दांपत्य मूढावुभौ।

वृद्धोक्त्या नमिताननौ जनदृशः संतस्तनेत्राम्बुजा -वास्तां मण्डितपुत्रिकायुगलवन्निःशब्दनिश्चेष्टितौ॥⁸

प्रस्तुत श्लोक में मार्ग में माला धारण किए हुए नववरवधू का जो दांपत्य भाव से अनभिज्ञ हैं इनमें बाल्यकाल के कारण यौवन अभी प्रस्फुटित नहीं हुआ है वृद्धों के कठोर वचन को वो नीचे मुख झुका कर के सुनते हैं साथ ही मार्ग के लोगों के अनवरत दर्शन से संतस्त है फिर भी शब्द चेष्टा से रहित होकर के पुत्तलिका के समान वह प्रतीत होते हैं यहां पर साभिप्राय उपमा का प्रयोग हमें दिखाई देता है।

मीरा लहरी का एक अन्य पद्य पदलालित्य, विदग्धता तथा पद विन्यास में लौकिक संस्कृत साहित्य सृजन में माघ कवि के काव्य की स्मृति दिलाने में सक्षम है⁹

शृंगार रस के दोनों पक्षों का वर्णन आपकी रचना में मिलता है।¹⁰

अनुप्रास का बहुत ही सुंदर उदाहरण दृष्टव्य है-

धवल सुधाकर सुधाधाराधवलिताविभावरी¹⁴

ग्राम ज्योति रचना के अंतर्गत क्षमाराव ने तीन कथाओं, रेवा, कटु विपाक, एवं वीरभा का संकलन किया है इनमें ग्रामीण समाज की देशभक्ति एवं वीरता की भावना की ध्वनि गुंजायमान है अनुष्टुप छंद में रची गई इन कथाओं में नारियों के ऊपर लाठी प्रहार तथा अबोध बालकों के साथ निर्दयता पूर्ण व्यवहार का अत्यंत ही हृदयस्पर्शी वर्णन किया गया है।

कथा मुक्तावली में पन्द्रह लघु कथाओं का संग्रह है 15 जो कि उनकी पुत्री लीलावती द्वारा क्षमाराव की मृत्यु के पश्चात् किया गया इन कथाओं में किसी ना किसी नवीन तथ्य का साक्षात् दिग्दर्शन कराया गया है प्रत्येक कथा में किसी न किसी सामाजिक समस्या को उठाया गया है- ग्रामवासियों की व्यथा विधवा जीवन की कठिनाइयां आदि इन कथाओं में नवीन सामाजिक संदर्भ के साथ वर्णित है यह रचना गद्य शैली में लिखी गई है सामासिक पदों का प्रयोग भी वहां देखने को मिलता है। लघुकथाओं के नाम हैं -

प्रेम रसोद्रेक, तापस पारितोषिकम्, परित्यक्ता, मिथ्या ग्रहण, वृत्तशंसिच्छत्रम्, हैम समाधि, मायाजालम्, स्वाधिक व्यामोह, नजमदिलेलः, विधवोद्वाहसंकटम्, क्षणिक विभ्रम, शरदलम्, निशीथ वलिः, मत्स्यजीवीकेवलम्, आत्म निर्वासनम्।

कथापंचकम् में पांच कथाओं का संग्रह है जिसमें बालिकोद्वाह संकटम्, गिरजायाः प्रतिज्ञा, हरि सिंहः, दंतकेयूरः व असूयिनी हैं सभी कथाओं में नारी के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को प्रदर्शित किया गया है सभी कथाएं पद्य में रचित हैं।

आपकी रचनाओं में करुण रस की धारा प्रवाहित होती हुई दृष्टिगत है संत ज्ञानेश्वर की समाधि में स्थित होने पर संत नामदेव इत्यादि का विलाप करुण रस की अभिव्यक्ति का उदाहरण है साथ ही परित्यक्ता आपकी पूर्ण रूप से करुण रस प्रधान कथा है अद्भुत रस के वर्णन में श्री तुकाराम के अंतर्हित काल के समय के पद्य में इसकी अभिव्यक्ति हुई है भावों के अनुरूप आपने छंदों का भी प्रयोग किया है। तीनों महाकाव्य तथा ग्राम ज्योति रचना अनुष्टुप छंद में विरचित हैं। अन्य छंदों का प्रयोग प्रसंगानुसार हुआ है।

विचित्र परिषद् यात्रा में कवियित्री ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय भाषा परिषद् के सम्मेलन में जाते हुए अपनी यात्रा का सरस एवं अत्यंत ही रोचक शैली में वर्णन किया है।¹⁶

विचित्र पदयात्रा मुद्रक एवं प्रकाशक रघुनाथ दिया जी देसाई न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस मुंबई

संस्कृत साहित्य सृजन की सुदीर्घ परंपरा आठवीं व नवीं शताब्दी के पश्चात् हासोन्मुखी रही तत् पश्चात् कुछ काव्य रचनाएं अवश्य हुईं किंतु कोई भी रचनाकार बाल्मीकि, व्यास व कालिदास की श्रेणी में नहीं आ सका, अंग्रेजी शासन की दास्तां के कारण संस्कृत की प्रायः उपेक्षा हुई किंतु पंडिता क्षमाराव ने अपनी समन्वय दृष्टि के कारण काव्य रचना में भी इसी कौशल को अभिव्यक्त किया डॉक्टर कैलाश नाथ द्विवेदी ने अपनी पुस्तक लेखाञ्जलि में लिखा है की एक ओर जहां उन्होंने परंपरा का आश्रय लेकर महाकाव्य, गीतिकाव्य लिखें तो दूसरी ओर विविधता पूर्ण पाश्चात्य विचार और शिल्प को अपनाकर कहानी, जीवनी, निबंध, संस्मरण आदि की भी रचना की।¹⁷ समकालीन तथा पूर्ववर्ती कवि और कवियित्रियों से विषय और विधा की दृष्टि से क्षमाराव अत्यंत अग्रणी हैं उन्होंने लोक कल्याण की अवधारणा से युक्त साहित्य को सृजित करके संस्कृत साहित्यकारों को एक नवीन दिशा एवं पथ दिखाया तथा संस्कृत वाङ्मय और साहित्य की आजीवन सेवा की, उनकी रचनाओं के सम्मान में अवध एकेडमी ने 1938 में उन्हें पंडिता की उपाधि से अलंकृत किया गया। आज भी वह हम सबके लिए वंदनीय व समादृत है।

सन्दर्भ- सूची

1. राव क्षमा सत्याग्रह गीता 1/3, पृष्ठ-1 प्रकाशक न0मा0 त्रिपाठी प्रा0 लिमिटेड मुंबा पुरी 2, तृतीय संस्करण 1957
2. वही सत्याग्रह गीता 1/36 पृष्ठ -8 प्रकाशक न0मा0 त्रिपाठी प्रा0 लिमिटेड मुंबा पुरी 2, तृतीय संस्करण 1957
3. वही सत्याग्रह गीता 6/4 पृष्ठ-37 प्रकाशक न0मा0 त्रिपाठी प्रा0 लिमिटेड मुंबा पुरी 2, तृतीय संस्करण 1957
4. वही सत्याग्रह गीता 18/ 19 प्रकाशक न0मा0 त्रिपाठी प्रा0 लिमिटेड मुंबा पुरी 2, तृतीय संस्करण 1957
5. वही सत्याग्रह गीता 17 /63 प्रकाशक न0मा0 त्रिपाठी प्रा0 लिमिटेड मुंबा पुरी 2, तृतीय संस्करण 1957
6. प्रबंध रत्नाकर पृष्ठ 454 शुक्ल रमेश चंद्र चौ.विद्याभवन वाराणसी 1967
7. वही प्रबन्ध रत्नाकर पृष्ठ - 455
8. वही प्रबन्ध रत्नाकर पृष्ठ- 454/455
9. वही प्रबन्ध रत्नाकर पृष्ठ- 455
10. क्षमा पण्डिता शंकर जीवनम् 6/21
11. क्षमा पण्डिता मीरा लहरी पूर्व खंड -6
12. क्षमा पण्डिता मीरा लहरी पूर्व खंड-46
13. क्षमा पण्डिता मीरा लहरी पूर्व खंड -63
14. क्षमा पण्डिता कथा मुक्तावली पृष्ठ 76
15. क्षमा पण्डिता कथा मुक्तावली, डॉ. त्यागी गायत्री, क्षमाराव की काव्य कला, पृष्ठ -309, संस्कृत कवियित्रियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृष्ठ125/ 126 कैलाश नाथ द्विवेदी
16. विचित्र पदयात्रा मुद्रक एवं प्रकाशक रघुनाथ दिया जी देसाई न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस मुंबई
17. द्विवेदी कैलाश नाथ लेखाञ्जलि पृष्ठ -154-163 कानपुर।

धूमिल का काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' : व्यवस्था विरोध का जीवंत दस्तावेज

डॉ० मलकीयत सिंह

सहायक प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, धर्मशाला

संसद से सड़क तक सुदामा पाण्डे धूमिल का पहला कविता संग्रह 'संसद से सड़क तक' सन् 1972 प्रकाशित हुआ। इस में कविताओं का चयन स्वयं धूमिल ने किया था। इस संग्रह में उन की कुल पच्चीस कविताएँ हैं। संकलित कविताओं के शीर्षक इस प्रकार हैं। 'कविता', 'बीस साल बाद', 'जनतन्त्र के सूर्योदय में', 'अकाल दर्शन', 'बसन्त', 'एकान्त कथा', 'शांति पाठ', 'उस औरत की बगल में लेटकर', 'राजकमल चौधरी के लिए', 'मोचीराम', 'शहर में सूर्यास्त', 'प्रौढ़ शिक्षा', 'मकान', 'एक आदमी', 'शहर का व्याकरण', 'पतझड़', 'कवि 1970', 'नक्कसलवाड़ी', 'शहर', 'शाम और एक बूढ़ा मैं', 'सच्ची बात', 'हत्यारी सम्भावनाओं के नीचे', 'मुनासिब कारवाई', 'भाषा की रात' तथा 'पटकथा'। आकार की दृष्टि से इन सब कविताओं में 'पटकथा' सब से लम्बी कविता है। 'भाषा की रात', 'राजकमल चौधरी के लिए', 'प्रौढ़ शिक्षा', 'कवि 1970' तथा 'मोचीराम' कविता को आकार की दृष्टि से पटकथा के बाद की श्रेणी में रखा जा सकता है। 'संसद से सड़क तक' कविता संग्रह समकालीन कविता में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सम्भवतः इस ने आलोचना का मुख कविता की ओर कर दिया।¹

इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ सोद्देश्य है। यह संग्रह सही अर्थों में स्वतन्त्र भारत की व्यथा कथा है।² यद्यपि इस संग्रह में संसद से सड़क तक शीर्षक की कोई कविता नहीं है। तथापि यह शीर्षक उचित बन पड़ा है। इस संग्रह की लगभग सभी कविताएँ किसी न किसी स्तर पर संसद या सड़क से जुड़ी है। संसद अर्थात् भारतीय राजनीति सड़क अर्थात् भारतीय मामूली आदमी³ इस कविता संग्रह में धूमिल ने संसद और सड़क शब्दों का इक्कट्टा प्रयोग 'भाषा की रात' कविता में किया है:

भाषा उस तिकड़मी दरिन्दे का कौर है
जो सड़क पर और है
संसद में और है
इसलिए बाहर आ
संसद के अधरे से निकल कर सड़क पर आ।⁴

कथ्य अथवा विषय प्रतिपादन की दृष्टि से इस कविता संग्रह में संकलित कविताओं में क्रमशः राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विषमताओं के साथ वर्ग चेतना, नारी स्थान, एवं नक्कसलवाड़ी आन्दोलन की सांकेतिक अभिव्यक्ति हुई है। कवि की राजनीतिक समझ ऐतिहासिक बोध, एवं सामाजिक दायित्व के साथ, वर्ग चेतना की सही पहचान, इन सभी की सपाट एवं संश्लिष्ट अभिव्यक्ति इन की कविताओं में हुई है।⁵

इन की प्रत्येक कविता सोद्देश्य और अर्थपूर्ण है। कविता संग्रह के आमुख पृष्ठ पर इन्होंने कविता को पहले एक सार्थक वक्तव्य माना है। पहली कविता 'कविता' में समकालीन कविता की दुरुहता और सम्प्रेषणहीनता के सम्बन्ध में विचार है जो आम आदमी की पकड़ से दूर थी। धूमिल ने इन्हें 'बैलमुती इबारतें' और 'तस्कर संकेत' कहा है—

नहीं /
अब वहाँ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है
पेशेवर भाषा के तस्कर संकेतों / और बैलमुती इबारतों में अर्थ खोजना व्यर्थ है।⁶

आजादी से लोगों ने बहुत उम्मीदें लगाई थी लेकिन वे सब धराशायी हो गयीं थीं। आम आदमी के लिए आजादी का मतलब कुछ नहीं रह गया था। अपनी असमर्थता तथा लाचारी का आम आदमी के पास कोई जवाब नहीं था। वह व्यवस्था का सताया हुआ भी उसी में जीने को मजबूर था 'बीस साल बाद' कविता में कवि कहता है,

बीस साल बाद में आपने – आप से एक सवाल करता हूँ /
जानवर बनने के लिए कितने सब्र की जरूरत होती है?
और बिना किसी उत्तर के चुपचाप आगे बढ़ जाता हूँ।⁷

आजादी का यहाँ आम नागरिक के लिए कोई अर्थ नहीं था वह मात्र खोखला नारा था,
क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है ?
जिन्हें एक पहिया ढोता है।
या इस का कोई खास मतलब होता है ?”⁸

इ जनतंत्र के सूर्योदय में श्रूमिल ने राजनीतिक षड्यन्त्र पर विचार किया है। हमारे समाज के ठेकेदार जनता का शोषण करने में सिद्धहस्त हो गये हैं। इस में राजनीतिज्ञों की चालबाजियों और हथकंडों का अंकन हुआ है :

सिर कटे मुर्गे की तरह फड़कते हुए जनतंत्र में
सुबह सिर्फ
चमकते हुए रंगों की चालबाजी है।”⁹

इस जनतंत्र में विश्वास योग्य कोई भी नहीं मानवीय सम्बन्धों में पशुता आ गयी :

शहर की समूची पशुता के खिलाफ गलियों में नंगी घूमती हुई /
पागल और के ‘गाधिन पेट’ की तरह /
सड़क के पिछले हिस्से में छाया रहेगा
पीला अंधकार।”¹⁰

यहाँ आन्दोलनों की भाषाएँ भी कुछ सुविधाओं के आगे बदल जाती है:

लेकिन तुम चुप रहोगे और /लज्जा को उस निरर्थ गूंगेपन से सहोगे /यह जानकर कि तुम्हारी मातृभाषा / उस महरी की तरह है,
जो/महाजन के साथ रात भर/सोने के लिए एक साड़ी पर राजी है।”¹¹

‘अकाल दर्शन’ कविता में देश के कर्णधारों से सीधा प्रश्न पूछा गया है कि भूख कौन उपजाता है? नेता इस का कारण जनसंख्या वृद्धि बताता है और अपना पल्लू झाड़ लेता है। लेकिन कवि इस की तुलना उन वायदों से करता है जो नेताओं ने किये हैं:

और सहसा मैंने पाया कि मैं
खुद अपने सवालियों के सामने खड़ा हूँ
और उस मुहावरे को समझ गया हूँ
जो आजादी और गाँधी के नाम पर चल रहा है /
जिस से न भूख मिट रही है, न मौसम बदल रहा है।”¹²

यूँ तो भारत को अन्न उत्पादन में स्वावलंबी माना जाता है लेकिन यह अनाज जाता कहाँ है ? लोक कल्याण के लिए बनायी गयी योजनाएँ और उन का लाभ किन लोगों को मिल रहा है? वह कौन सा प्रजातांत्रिक नुस्खा है जिस के चलते अमीरी – गरीबी की दीवार निरन्तर बढ़ती जा रही है और इस में शोषित जनता; वह तो मानों चेतनाहीन हो गयी है।:

वे चुपचाप सुनते हैं उन की आँखों में विरक्ति है;/
पछतावा है संकोच है / या क्या है कुछ पता नहीं चलता / वे इस – कदर पस्त है ;
कि तटस्थ है।”¹³

बसंत कविता में धूमिल ने मनुष्य के उपयोगितावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। जहाँ किसी को किसी के प्रति सच्ची आत्मीयता नहीं उस का परस्पर मिलना भी तथा वे किसी स्वार्थवश ही सम्बन्ध रखते हैं:

मेरे आस – पास एक अजीब सा स्वाद भरा सखापन है
उधार देने वाले बनिये के नमस्कार की तरह
जिसे मैं मात्र इस लिए सहता हूँ
कि इसी के चलते मौज से रहता हूँ।”¹⁴

लोग सौन्दर्य को भी उपयोगिता की दृष्टि से देखते हैं, जिस वस्तु या सन्दर्भ का उन के लिए कोई महत्त्व नहीं वह उन के लिए त्याज्य है :-

सौन्दर्य में स्वाद का मेल
जब नहीं मिलता

कुत्ते महुये के फूल पर मूतते हैं।”¹⁵

‘एकांत कथा’ कविता आत्माभिव्यक्ति – मूलक प्रतीत होती है परन्तु गहराई से देखने पर यह समष्टि का प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती है। यहाँ व्यक्ति यद्यपि अपने व्यवहार से समाज में अपनी अलग पहचान बनाए हुए है लेकिन अपनी बाह्य शालीनता के बावजूद वह उन तमाम विसंगतियों में हिस्सेदार है जिन्हें वह बाहर देखता है :

जब सड़कों पर होता हूँ / बहसों में होता हूँ ; /

रह - रह कर चहकता हूँ /

लेकिन हर बार वापस घर लौट कर /

कमरे के अपने एकांत में

जूते से निकाले गये पाँव - सा / महकता हूँ¹⁶

‘शांति पाठ’ कविता में देश की आजादी के बाद की नीतियों की असफलता और पड़ोसी देशों की दोस्ती के नाम पर मक्कारी पर व्यंग्य किया है। जहाँ हम अपने देश की आजादी में पड़ोसियों को शरीक कर खुशी मना रहे थे वहीं जवाब में पड़ोसी बारूदी सुरंगें बिछा रहे थे। हमारे शांति के नारे और पंचशील के सिद्धान्त खोखले साबित हुए। देश में बेकारी बढ़ी है, योजनाएँ कागजों तक सीमित रह गयीं। पड़ोसी देश चीन द्वारा इस अन्तर्राष्ट्रीय सीमा रेखा का उल्लंघन करने पर भी भारत की निष्क्रियता उस के मुर्दा होने का संकेत देती है। हमारी विदेश नीति भी वेश्या नीति बन कर रह गयी है कवि कहते हैं-:

जरायमपेशा औरतों की सावधानी और संकटकालीन क्रूरता /

मेरी रक्षा कर रही है।¹⁷

यहाँ जरायमपेशा औरतें वे वेश्याएँ हैं जो गर्भ धारण सावधानी बरतती हैं परन्तु संकट के समय बड़ी क्रूरता के साथ गर्भपात करवाने से नहीं हिचकिचाती। ‘उस औरत की बगल में लेटकर’ कविता में उन्होंने ‘रसोई घर की टूटी पतिलियों के माध्यम से समकालीन जीवन के यथार्थ को महत्व दिया है। मात्र काम - क्रीड़ा को अपर्याप्त माना है:

बक्त को रगड़कर / मिटा देने के लिए सिर्फ उछलते शरीर ही / काफी नहीं है; जबकि हमारा चेहरा / रसोईघर की फूटी पतिलियों के सामने है।¹⁸

‘राजकमल चौधरी के लिए’ राजकमल चौधरी की मृत्यु पर उन्हें श्रद्धांजली स्वरूप लिखी गयी है धूमिल राजकमल की यथार्थवादिता और स्पष्टवादिता का सम्मान करते हैं: ‘उस का मर जाना पतियों के लिए / अपनी पत्नियों की पतिव्रता होने की गारंटी है’।¹⁹

आजादी पर भी व्यंग्य करते हुए कहा गया है कि आजादी को पाकर हमारे सामने कोई उज्ज्वल भविष्य नहीं है वे कहते हैं-

आजादी इस दरिद्र परिवार की बीससाला ‘बिटिया’ / मासिक धर्म में डूबे हुए क्वॉरेपन की आग से / अंधे अतीत और लंगड़े भविष्य की / चिलम भर रही है।²⁰

इस कविता में जहाँ देश की वर्तमान व्यवस्था का चित्रण है। वहीं राजकमल चौधरी की साहसिकता और कविता के प्रति उस के समर्पण भाव को अभिव्यक्त किया गया है। ‘मोचीराम’ इस संग्रह की एक महत्वपूर्ण कविता है। इस में जातीय तथा वर्गीय चेतना के माध्यम से समाज का चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। यह कविता कथ्य एवं शिल्प के धरातल पर समकालीन हिन्दी जगत में ऐतिहासिक स्थान रखती है जहाँ यह कविता कथ्य के बदलाव के स्तर पर नवीन अर्थवत्ता देती है वहीं संदर्भों में एकाएक बदलाव अनायास ही उत्पन्न हो जाता है। यहाँ कविता ‘मोचीराम’ के व्यावसायिक कार्य से प्रारम्भ हो कर धूमिल की रचना प्रक्रिया, सृजनात्मक चेतना और रचनात्मक दायित्व की सांकेतिक अभिव्यक्ति भी देती चलती है। ‘मोचीराम’ रचयिता का अनुभवी पारदर्शी चित्रण है, जो समाज के प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति से भीतरी और बाहरी दोनों धरातलों पर पैनी, सूक्ष्म एवं सक्षिप्त दृष्टि आत्मसात किए हुए हैं। वह प्रत्येक व्यक्ति एवं वर्ग की पहचान उस के बाहरी रूप से न कर के व्यक्ति के अन्तर्मन के अन्तःस्तलों में उतर कर करता हुआ उस के चरित्र की पहचान ‘जूते’ के माध्यम से करता है।²¹

न कोई छोटा है / ने कोई बड़ा है।

मेरे लिए हर आदमी /

एक जोड़ी जूता है जो मेरे सामने मुरम्मत के लिए खड़ा है।²²

इस कविता में उन साहित्यकारों पर भी व्यंग्य किया गया है जो यथार्थ से दूर अनुभवों को ही अपनी लेखनी में ढालते हैं और रचना के दौरान अपने स्वार्थ का ध्यान रखते हैं। ‘शहर में सूर्यास्त’ कविता में भाषा- विवाद तथा देश में व्याप्त चरित्रहीनता के द्वारा जनतंत्र पर व्यंग्य किया गया है तथा इस देश की आजादी से लगाई गई उम्मीदों का मोहभंग भी प्रस्तुत हुआ है। ‘प्रौढ़ शिक्षा’ कविता में किसान वर्ग, मजदूर वर्ग को व्यवस्था के षड्यन्त्र से बचने का आह्वान किया गया है। उस में वोट के नाम पर उन नारों की पोल खोली गयी है जिन के माध्यम से राजनीतिज्ञ अपनी रोटियाँ सेंकते हैं लेकिन मजदूर वर्ग वहीं रह जाता है। मजदूर वर्ग की अनपढ़ता और अज्ञानता का लाभ उठा कर ही यह सुराजिये; नेता लोग उन का शोषण कर रहे हैं। वे कहते हैं -

उन्हें तुम्हारी भूख पर भरोसा था /

सब से पहले उन्होंने भाषा तैयार की जो तुम्हें न्यायालय से लेकर

नींद से पहले की

प्रार्थना तक गलत रास्तों पर डालती थी /

वह सच्च पृथ्वीपुत्र है /

यह संसार का अन्नदाता है

मगर तुम्हारे लिए कहा गया हर वाक्य / एक धोखा

है जो तुम्हें दलदल की ओर ले जाता है।²³

धूमिल ने उन्हें इस शोषक प्रक्रिया से उबारने का संदेश दिया :

इसीलिए मैं फिर कहता हूँ कि हर हाथ में
गीली मिट्टी की तरह हाँ हाँ मत करो
तनो/ अकड़ो
अमरबेल की तरह मत जियो
जड़ पकड़ो।²⁴

‘मकान’ कविता में धूमिल ने स्व- परिवर्तन को प्रस्तुत किया है। आदमी का दायरा जो परिवार तक ही सीमित रह गया है। यह एकांत ही व्यक्ति का आत्मसाक्षात्कार है। ‘एक आदमी’ कविता भी इसी भाव को स्पष्ट करती है ‘शहर का व्याकरण’ कविता आम आदमी के व्यवस्था द्वारा संचालित होने की पीड़ा तथा भय को प्रस्तुत करती है। ‘नगरपालिका’ के माध्यम से यहाँ सीधा व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है :

सचमुच मजबूरी है
मगर जिन्दा रहने के लिए
पालतू होना जरूरी है।²⁵

‘पतझड़’ कविता में कवि युवा पीढ़ी के मोहभंग और बेकारी की समस्या को उठाता है। उन से देश प्रेम की आशा करना तथा उन्हें अतीत की समृद्धता के किस्से सुनाना बेकार है।

‘पतझड़ की प्रक्रिया’ से गुजर रहे हैं

एकाएक- / जंग लगे अचरज से बाहर आ जाता है आदमी का भ्रम और देश - प्रेम । बेकारी की फटी हुई जेब से खिसक कर / गिर पड़ता है।²⁶

यहाँ बौखलाए हुए बेरोजगार के लिए आजादी तथा देश प्रेम का कोई मतलब नहीं :

मैंने रोजगार दफ्तर से गुजरते हुए नौजवान को / यह साफ - साफ कहते हुए सुना - / इस देश की मिट्टी में / अपने जांगर का सुख तलाशना / अंध ी लड़की की आँखों में उस से सहवास का सुख तलाशना है²⁷

‘कवि 1970’ में कवि ने तात्कालिक परिस्थितियों तथा साहित्यिक प्रतिबद्धता पर विचार किया है। यह एक ऐसा काल था जब अराजकता तथा मोहभंग अपने चरम पर था। ऐसे में कवि भी निहत्था है उस की कविता भी इस के खिलाफ खड़े होने में असमर्थ है ‘आदमी गजल नहीं गा रहा है गजल आदमी को गा रही है’²⁸ अर्थात् गजल अब मनोरंजन का साधन नहीं अपितु वह कवि की व्यथा कथा बन कर रह गयी है। अराजकता के दौर में कविता से अतिशय उम्मीदें लगाना भी बेकार है -

कविता में जाने से पहले / में आप से ही पूछता हूँ ।
जब इस से न चोली बन सकती है ! न चोगा; / तब आप कहो /
इस ससुरी कविता को जंगल से जनता तक / ढोने से क्या होगा ?²⁹

कवि के द्वारा आदर्श और यथार्थ की बातें क्या उस के व्यावहारिक पक्ष में ठीक बैठती है ? अपनी स्वयं की स्थिति से भी कवि शर्मिदा है -

में झंपता हूँ
और धूमिल होने से बचने लगता हूँ
याने बाहर की दुर से
और भीतर की बिल - बिल होने से
बचने लगता हूँ³⁰

‘नक्कसलबाड़ी’ कविता में दक्षिण पंथी शक्तियों के विरुद्ध विरोध प्रकट किया गया है। उन की मक्कारी का पर्दाफाश किया गया है। इस में मूल स्वर असहयोग का है। इस घुटन भरे समाज के षड्यन्त्र पूर्ण माहौल में किसी के पास वैचारिक एकता का सवाल ही नहीं उठता भूखा आदमी देश प्रेम की बात नहीं कर सकता । उसका विरोध भी मात्र प्रदर्शन बनकर रह जाएगा। पुराने नारे खोखले पड़ चुके हैं। व्यवस्था तथा शोषण ने गठबन्धन कर लिया है और विपक्ष में सिर्फ कविता बची है । लेकिन इन सब के पीछे भूख की असहनीयता के विस्फोट के प्रति भी कवि सचेत करता है -

“खबरदार ! उस ने तुम्हारे परिवार को / नफरत के उस मुकाम पर ला खड़ा किया है /

कि कल तुम्हारा सब से छोटा लड़का भी / तुम्हारे पड़ोसी का गला / अचानक / अपनी स्लेट से काट सकता है।³¹

भूख की विवशता को लेकर लिखी गयी कविता ‘कुत्ता’ भी मार्मिक बन पड़ी है। जिस ने यहाँ मजदूर वर्ग और साधारण आदमी की लाचारी को कुत्ते में माध्यम से व्यक्त किया है। जिस ने अपनी शख्सीयत, दांत और नख अपनी भूख के कारण गिरवी रख दिये हैं। उस का मालिक उस की इसी विवशता का लाभ उठाकर, उसे पालतू बनाकर अपने हितों की रक्षा करता है। व्यवस्था के विरुद्ध बोलने वाला भी अपने विवशता में अपने दांत और नख ‘गिरवी रख देता है -

मगर भूलो कि इन से बड़ी बी वह बेशर्मी है
जो अन्त में

तुम्हें भी उसी रास्ते पर लाती है

जहाँ भूख उस वहशी को

पालतू बनाती है।³²

शहर, शाम और एक बूढ़ा में कविता में कवि ने जीवन के अन्तिम चरण पर पहुँचे व्यक्ति के आत्मचिन्तन को उभारा है; उसे गहराई से छुआ है। इस भीड़ भरे समाज में हर व्यक्ति अपने स्तर पर अकेला है। उस के सामाजिक बन्धन यद्यपि उसे व्यस्त रखते हैं तथापि कुछ फुर्सत के क्षण उस के जीवन की जटिलता पर विचार कर ही जाते हैं। वह अपने कर्म पर विचार करता है क्या उस ने कोई अस्तित्व स्थापना हेतु बड़ा कार्य किया या मात्र गृहस्थी में फंसा सिगरेट, शराब और नागरिकता के कानूनों को ही निभाया है। जहाँ सूरज नया जन्म लेने के लिए डूब रहा है और शहर अपने जुनून को शीशे की रोशनी में बदल रहा है वहाँ में अकेला अपने अतीत में खोया हूँ। 'सच्ची बात' कविता में कवि ने बाह्य परिवेश और आंतरिक चिन्तन को व्यक्त किया है। हर व्यक्ति के इमान का एक चोर दरवाजा होता है जो वेश्यालय में खुलता है। व्यक्ति उस पर हमेशा पर्दा डाले रहता है। वह उस की किसी को खबर नहीं होने देना चाहता, समाज की नजरों में वह आदर्श बना रहना चाहता है। वह चोर दरवाजे को सार्वजनिक कर भी नहीं सकता है। क्योंकि:

दृष्टियों की धार में बहती नैतिकता का

कितना भद्दा मजाक है

कि हमारे चेहरों पर आँखों के ठीक नीचे ही नाक है।³³

हत्यारी सम्भावनाओं के नीचे श में व्यवस्था को खूनी ठहराया गया है। लोग शोषण को महसूस तो करते हैं पर उस के खिलाफ खड़े होने का साहस नहीं कर पाते। वे हार चुके हैं पूर्णतयः व्यवस्था द्वारा संचालित हैं। 'उन के लिए हर नये दिन का मतलब टूटना है, हारना है।'³⁴

'मुनासिब कारवाई' कवि की एक सशक्त कविता है। इस में व्यवस्था के षड्यन्त्रों पर सीधा व्यंग्य किया गया है। इस के विरोध में आने का आह्वान किया गया है। यह सारा काम समय रहते ही करना होगा। उन की भाषा के खिलाफ उचित शब्द ढूँढने होंगे। इस के बिना विरोध सम्भव नहीं क्योंकि शहर के कोतवाल की नीयत और हथकड़ी का नम्बर एक ही है।" और कविता को 'कांटे' का सही रुख पता करना होगा। यद्यपि इस समय सच्चाई को जानना विरोध में होना है तथापि यह विरोध स्वीकार करना होगा। कविता तुम्हारे सही व्यक्तित्व की खोज कर रही है और तुम्हें समय रहते इस के मर्म को समझना होगा। अन्यथा व्यवस्था तुम्हें अकेला कर के खत्म कर देगी -

कविता, सिर्फ उतनी ही देर सुरक्षित है /

जितनी देर, कीमा होने से पहले,

कसाई के ठीके और तनी हुई गंडास के बीच

बोटी सुरक्षित है।³⁵

भाषा की रात कविता विशुद्ध राजनीतिक कविता है। इस में राजनीतिज्ञों के नारों और विकास योजनाओं को खोखला बताया है। यह भाषा की रात है जिस में लोगों को उल्लू बनाया जा रहा है। उन्होंने तुम्हारी भूख को मिटाने के लिए रोटी की जगह रखा है नारे रखे हैं, झूठे स्वप्न रखे हैं। चुनाव आते ही उन में मौकापरस्ती पूर्ण महानुभूति फिर से जगने लगती है तुम्हारी तुलना में पड़ोसी अधिक गंगा है यही दिलासा दे कर वह तुम्हारी वर्तमान स्थिति को ठीक घोषित कर जाते हैं। लेकिन तुम तो स्वयं अपनी स्थिति से परिचित हो।

इसलिए इस भाषा की रात से निकलकर बाहर आओ छ कवि आह्वान करता है :

इसलिए बाहर आ /

संसद के अंधेरे से निकल कर सड़क पर आ।³⁶

प्रांतवाद और भाषावाद के भेद को मिटा दो तुम एक हो :-

यह साफ - साफ कह दे /

भूख जो कल तक रोशनी थी

आज, नींद से पहले का जागरण है।³⁷

इस संग्रह की सबसे लंबी कविता 'पटकथा' है। जो अपने आप में एक स्वतंत्र कविता संग्रह है। उसके कथ्य पर अगले लेख में विचार किया जाएगा।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि इस साधन संपन्न प्राकृत सौंदर्य से परिपूर्ण देश में व्याप्त भुखमरी, गरीबी, उंच-नीच धार्मिक कट्टरता के पीछे के षड्यन्त्रों को धूमिल ने बखूबी पहचाना है और जंगल के कानून की मानसिकता पर करारा प्रहार किया है छपरदे के पीछे लुटेरी मानसिकता को उजागर किया है तथा क्रांति को भाषा प्रदान की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. काशीनाथ सिंह, आलोचना भी रचना है, पृ ० 17
2. कुमार कृष्ण, दूसरे प्रजातंत्र की तलाश में धूमिल, भूमिका।
3. हुकुमचंद राजपाल, समकालीन बोध और धूमिल का काव्य, पृ 0 30

4. संसद से सड़क तक, पृ 20
5. हुकुमचंद राजपाल समकालीन बोध और धूमिल का काव्य पृ० 30
6. संसद से सड़क तक, पृ 8
7. वही, पृ० 9
8. वही पृ 10
9. वही पृ12
10. वही पृ 12
11. वही पृ 13
12. वही पृ 15
13. वही पृ 17
14. वही पृ 18
15. वही पृ 20
16. वही पृ 22
17. वही पृ 23
18. वही पृ 26
19. वही पृ 29
20. वही पृ 30
21. राकेश कुमार, धूमिल की काव्य चेतना पृ 56
22. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ 36
23. वही पृ 23
24. वही पृ 47
25. वही पृ 57
26. वही पृ 60
27. वही पृ 60
28. वही पृ 61
29. वही पृ 62
30. वही पृ 64
31. वही पृ 69
32. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ 72
33. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ 80
34. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ 86
35. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ 96
36. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ 97
37. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ 97

पटना जिला में अनुसूचित जाति की साक्षरता: एक भौगोलिक मूल्यांकन

डॉ० मनोज कुमार सिन्हा

सह प्राध्यापक, भूगोल विभाग, पटना कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय

शोध सारांश

शिक्षा मानव के व्यक्तित्व विकास का महत्वपूर्ण अंग है एवं साक्षरता इसका एक पहलू है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार- “किसी भी व्यक्ति के द्वारा किसी भी भाषा में किसी साधारण वाक्य अथवा संदेश को पढ़ना, लिखना एवं उसे समझना ही साक्षरता है।” शर्मा एवं मैथानी (1990) के अनुसार “साक्षरता किसी क्षेत्र की सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास का सूचक है।” इसके विपरीत आधुनिक वैज्ञानिक युग में निरक्षरता एक अभिशाप है। प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जाति वर्ग की साक्षरता तथा अध्ययन क्षेत्र (पटना जिला) के पुरुष एवं महिला साक्षरता प्रारूप में परिवर्तन का अध्ययन करना है। शोध- अध्ययन भारत सरकार के जनगणना निदेशालय से प्राप्त द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। अध्ययन क्षेत्र, पटना जिला में बिहार की सर्वाधिक जनसंख्या, प्रशासनिक राजधानी क्षेत्र एवं वृहत्तम नगर समाहित है। वर्ष-2011 की जनगणनानुसार भारत की साक्षरता दर 74 प्रतिशत की तुलना में बिहार प्रदेश की साक्षरता दर मात्र 61.35 प्रतिशत एवं पटना जिला की 70.67 प्रतिशत है। पटना जिला में अनुसूचित जाति की जनसंख्या लगभग 16 प्रतिशत एवं साक्षरता लगभग 53 प्रतिशत है, जबकि इस वर्ग की महिलाओं की साक्षरता दर लगभग 40 प्रतिशत है, जो काफी निराशाजनक है। आजादी के लगभग 60 वर्षों के बाद भी अनुसूचित जाति वर्ग की साक्षरता दर में अपेक्षित सुधार न होना निश्चित रूप से भारत के नीति-निर्धारकों के लिए एक चुनौती है।

शब्द कुंजी: व्यक्तित्व, साक्षरता दर, सांस्कृतिक विकास, निरक्षरता।

सामान्य परिचय

शिक्षा मानव विकास का एक महत्वपूर्ण सूचक है। वर्तमान तकनीकी युग में शिक्षा का महत्व काफी बढ़ गया है। शिक्षा से सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। निरक्षर तथा अनपढ़, व्यक्ति समाज और देश की वास्तविक स्थिति तथा अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों को समझने में असमर्थ होता है। तकनीकी अकुशलता के कारण आधुनिक विकास तथा सेवाओं में उचित योगदान नहीं कर पाता है।

साक्षरता का तात्पर्य व्यक्ति के पढ़ने, लिखने तथा समझने की क्षमता से है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार “साक्षर वह व्यक्ति जिसमें साधारण वाक्य पढ़ने, लिखने तथा समझने की योग्यता हो।” विश्व के प्रायः सभी देशों में साक्षरता की गणना किसी न किसी रूप में की जाती है, किन्तु साक्षरता की परिभाषा तथा आँकड़ा-संग्रहण तकनीकी में अंतर के फलस्वरूप साक्षरता-सूचकांक में भिन्नता पायी जाती है। भारत में 1991 से पूर्व सभी पढ़े-लिखे व्यक्ति को साक्षर माना जाता था किन्तु भारत की जनगणना-1991 में 0-6 उम्र के बच्चों की जनसंख्या को साक्षरता की गणना से अलग रखा गया।

श्री मुंगेरिलाल (1971) ने पिछड़े वर्गों की सामाजिक-आर्थिक अध्ययन हेतु गठित आयोग की रिपोर्ट में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारण उनकी शिक्षा की स्थिति को माना। श्री यादव (1983) ने वर्तमान समय में अनुसूचित जाति के युवा वर्ग का शिक्षा की ओर उन्मुख होना, इनके सामाजिक-आर्थिक व सांस्कृतिक उत्थान हेतु एक शुभ संकेत का परिचायक बताया। श्री प्रकाश (1989) ने अनुसूचित जाति के सामाजिक-आर्थिक पहलू की विशद विवेचना प्रस्तुत किया।

शर्मा एवं मैथानी (1990) के अनुसार “साक्षरता किसी क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक विकास का सूचक है।” कुमारी मोनिका (2018) ने पटना जिला के महादलित की साक्षरता का विस्तृत अध्ययन में पाया कि अभी भी इस वर्ग में शिक्षा के प्रति आकर्षण में कमी है।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है-

1. अनुसूचित जाति की साक्षरता का अध्ययन करना।
2. अनुसूचित जाति की पुरुष एवं महिला साक्षरता का अध्ययन करना।
3. पटना जिला की अनुसूचित जाति की प्रखण्डवार प्रारूप में परिवर्तन का अध्ययन करना।
4. प्रखण्डवार पुरुष एवं महिला साक्षरता में परिवर्तन प्रारूप का अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. पटना जिला में वर्ष-1991 से वर्ष-2011 के मध्य अनुसूचित जाति के पुरुष की तुलना में महिलाओं की साक्षरता कम है।
2. पटना जिला में वर्ष-1991 से वर्ष-2011 के मध्य अनुसूचित जाति की प्रखण्डवार साक्षरता प्रारूप में भिन्नता है।

तालिका-1: पटना जिला: अनुसूचित जाति की जनसंख्या (1991-2011)

वर्ष	कुल	अनुसूचित जाति			प्रतिशत		
		कुल	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष	महिला
1991	3618211	560,094	297,930	262,164	15.48	53.20	46.80
2001	4718,592	729,988	386,991	342,997	15.47	53.02	46.98
2011	5838,465	920,918	482,088	438,830	15.77	52.34	47.66

स्रोत: पटना जिला जनगणना हस्तपुस्तिका-1991, 2001 एवं 2011 से संकलित।

वर्ष 1991 की जनगणनानुसार अनुसूचित जाति की कुल जनसंख्या में पुरुष की जनसंख्या 53.20 प्रतिशत तथा महिला जनसंख्या 46.80 प्रतिशत थी, जो वर्ष-2011 में क्रमशः पुरुष (52.34 प्रतिशत) एवं महिला (47.66 प्रतिशत) हो गयी, अर्थात्, विगत 20 वर्षों में अनुसूचित जाति पुरुष की तुलना में महिला की जनसंख्या में लगभग 0.86 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

अनुसूचित जाति की साक्षरता

वर्ष-2011 की जनगणनानुसार पटना जिला में अनुसूचित जाति की साक्षर जनसंख्या 388136, जो कुल अनुसूचित जाति की जनसंख्या का 52.8 प्रतिशत, पुरुष साक्षर जनसंख्या 241086 (62.1 प्रतिशत) तथा महिला साक्षर जनसंख्या 14705 (37.9 प्रतिशत) है।

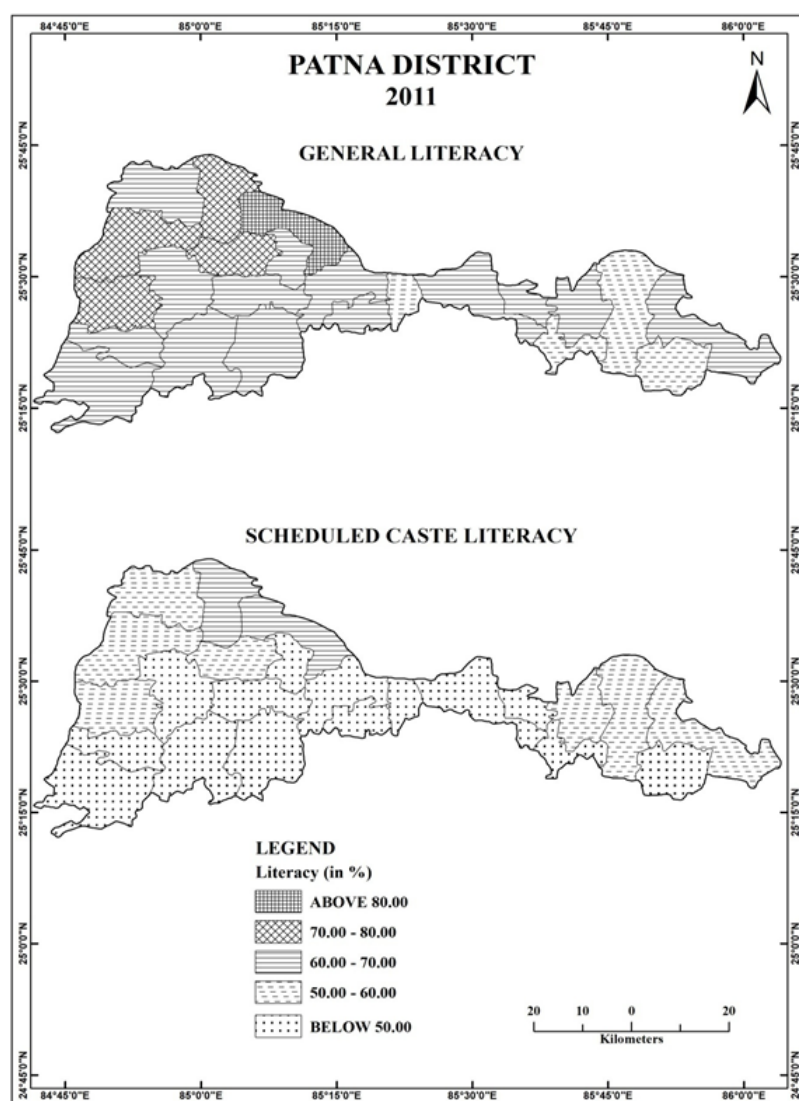
तालिका-2: पटना जिला: अनुसूचित जाति की साक्षरता (1991-2011)

क्र० सं०	सामुदायिक विकास प्रखण्ड	साक्षरता दर (प्रतिशत में)								
		1991			2001			2011		
		कुल	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष	महिला	कुल	पुरुष	महिला
1.	पटना सदर	53.5	71.0	32.2	59.6	69.4	47.8	66.6	73.8	58.4
2.	दानापुर-सह-खगौल	42.3	56.3	26.0	51.1	62.5	38.1	64.4	72.9	55.0
3.	मोकामा	31.3	45.0	15.5	43.1	55.7	28.1	56.5	63.5	37.9
4.	फुलवारीशरीफ	22.4	34.5	8.8	37.2	48.8	24.1	54.4	64.7	38.7
5.	बिक्रम	25.8	41.2	9.0	33.4	47.1	18.3	54.0	63.9	37.3
6.	बिहटा	27.0	41.3	10.6	36.9	50.5	21.5	52.8	64.6	37.6
7.	मनेर	29.3	43.1	13.0	34.8	47.3	20.2	52.3	66.3	37.7
8.	बाढ़	27.1	40.5	10.7	35.7	47.0	22.3	50.8	62.3	36.6
9.	पण्डारक	23.6	34.4	8.0	29.6	42.1	15.3	50.3	64.4	36.8
10.	नौबतपुर	23.0	36.8	7.7	30.5	42.8	16.4	49.1	63.2	36.8
11.	मसौढ़ी	23.0	37.0	7.1	33.1	46.2	18.7	48.7	63.8	36.2
12.	पालीगंज	21.6	35.2	6.2	29.1	42.5	14.1	46.1	62.7	35.4
13.	पुनपुन	22.0	35.5	6.3	30.8	43.2	17.1	45.8	62.4	36.1
14.	बख्तियारपुर	23.5	34.5	10.4	30.3	40.7	17.8	45.3	61.3	35.9
15.	धनरूआ	27.3	36.2	16.6	31.5	45.3	16.1	45.1	65.7	35.6
16.	फतुहा	22.3	34.3	8.1	27.1	37.0	15.7	41.1	59.5	34.3
17.	संपतचक	-	-	-	31.9	44.9	17.3	47.2	63.2	36.5
18.	दुल्हन बाजार	-	-	-	28.0	40.4	14.2	47.0	62.9	37.5
19.	अथमलगोला	-	-	-	31.2	43.0	17.9	46.8	64.6	36.0
20.	घोसवरी	-	-	-	29.9	42.3	14.7	46.6	64.1	37.1
21.	खुसरुपुर	-	-	-	31.7	44.0	17.4	45.7	62.1	35.4
22.	दनियावां	-	-	-	28.9	41.4	14.8	43.9	63.4	35.3
23.	बेलछी	-	-	-	27.4	39.5	12.8	40.3	59.0	33.7
	पटना जिला	30.5	44.4	14.2	38.6	50.6	24.8	52.8	62.1	37.9

- नोट: 1. वर्ष-1991 की जनगणना में पटना जिलान्तर्गत कुल 16 सामुदायिक विकास प्रखण्ड तत्पश्चात् प्रखण्डों की संख्या 23 हो गई।
2. साक्षरता दर की गणना 0-6 उम्र के बच्चों की संख्या को छोड़कर किया गया।

स्रोत:-पटना जिला जनगणना हस्तपुस्तिका-1991, 2001 एवं 2011 से संकलित।

तालिका-2 से स्पष्ट है कि पटना जिला के दो प्रखण्ड पटना सदर एवं दानापुर सह खगौल सर्वाधिक साक्षरता वाले प्रखण्ड हैं जिनकी साक्षरता दर क्रमशः 66.6 प्रतिशत एवं 64.4 प्रतिशत है। अन्य प्रखण्ड जिनकी साक्षरता दर 50 प्रतिशत से अधिक है, वे हैं-मोकामा (56.5 प्रतिशत), फुलवारीशरीफ (54.4 प्रतिशत), बिक्रम (54 प्रतिशत), बिहटा (52.8 प्रतिशत), मनेर (52.3 प्रतिशत), बाढ़ (50.8 प्रतिशत) एवं पण्डारक (50.3 प्रतिशत)। तीन प्रखण्ड में अति निम्न साक्षरता दर, जिनका साक्षरता दर 45 प्रतिशत से कम है, वे हैं-दनियावां (43.9 प्रतिशत), फतुहा (41.1 प्रतिशत) एवं बेलछी (40.3 प्रतिशत)। अन्य प्रखण्डों की साक्षरता दर सामान्य (45 से 50 प्रतिशत के मध्य) है। पुरुष साक्षरता दर की दृष्टि से भी दो प्रखण्ड-पटना सदर एवं दानापुर-सह-खगौल ऐसे प्रखण्ड हैं जहाँ साक्षरता दर 70 प्रतिशत से अधिक क्रमशः 73.8 प्रतिशत एवं 72.9 प्रतिशत है एवं दो प्रखण्डों की साक्षरता दर 60 प्रतिशत से कम है, वे हैं क्रमशः फतुहा (59.5 प्रतिशत) एवं बेलछी (59 प्रतिशत)। अन्य प्रखण्डों की साक्षरता दर 60 प्रतिशत से 70 प्रतिशत के मध्य है। महिला साक्षरता के दृष्टिकोण से पटना जिला की स्थिति चिंताजनक है। पटना महानगर के भाग रहने के कारण पटना सदर एवं दानापुर-सह-खगौल प्रखण्ड की महिला साक्षरता दर 50 प्रतिशत से अधिक क्रमशः 58.4 प्रतिशत तथा 55 प्रतिशत है। अन्य सभी प्रखण्डों की महिला साक्षरता दर 40 प्रतिशत से कम है। फतुहा एवं बेलछी प्रखण्ड में महिला साक्षरता दर अति निम्न क्रमशः 34.3 प्रतिशत एवं 33.7 प्रतिशत है।



मानचित्र-3

वर्ष 2001 की जनगणनानुसार पटना जिला की कुल साक्षरता 62.91 प्रतिशत जो वर्ष 1991 की तुलना में 6.71 प्रतिशत अधिक है, पुरुष साक्षरता का प्रतिशत 73.33 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता 50.83 प्रतिशत है। वर्ष 2001 की जनगणनानुसार पटना जिला में अनुसूचित जाति की साक्षरता दर मात्र 38.6 प्रतिशत जिसमें पुरुष साक्षरता 50.6 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता दर 24.8 प्रतिशत है। वर्ष 2001 में कुल दो ऐसे प्रखण्ड हैं जिनकी साक्षरता दर 50 प्रतिशत से अधिक है, वे हैं पटना सदर (59.6 प्रतिशत) एवं दानापुर-सह-खगौल प्रखण्ड (51.1 प्रतिशत)। कुल सात प्रखण्डों की साक्षरता दर 30 प्रतिशत से कम है, वे हैं-घोसवरी (29.9 प्रतिशत), पण्डारक (29.6 प्रतिशत), पालीगंज (29.1 प्रतिशत), दनियावां (28.9 प्रतिशत), दुल्हन बाजार (28 प्रतिशत), बेलछी (27.4 प्रतिशत) एवं फतुहा (27.1 प्रतिशत)। अन्य प्रखण्डों की साक्षरता दर 30 प्रतिशत से 45 प्रतिशत के मध्य है।

वर्ष 2001 की जनगणनानुसार कुल चार प्रखण्ड में पुरुष साक्षरता 50 प्रतिशत से अधिक है-पटना सदर (69.4 प्रतिशत) दानापुर-सह-खगौल (62.5 प्रतिशत), मोकामा (55.7 प्रतिशत) एवं बिहटा (50.5 प्रतिशत)। पटना सदर प्रखण्ड में वर्ष 1991 की तुलना में वर्ष 2001 में पुरुष साक्षरता में 1.6 प्रतिशत की कमी हुई है, जो महानगरीय क्षेत्र होने के बावजूद चिंतनीय है। बेलछी (39.5 प्रतिशत) एवं फतुहा (37 प्रतिशत) दो ऐसे प्रखण्ड हैं जहाँ अनुसूचित जाति की पुरुष साक्षरता दर अति निम्न अर्थात् 40 प्रतिशत से कम है; शेष प्रखण्डों में पुरुष साक्षरता दर 40 प्रतिशत से 50 प्रतिशत के मध्य है। वर्ष 2001 की जनगणनानुसार जिला के सभी प्रखण्डों की महिला साक्षरता दर कम है। पटना जिला में एकमात्र प्रखण्ड पटना सदर है जिसमें महिला साक्षरता दर 40 प्रतिशत से अधिक (47.8 प्रतिशत) है। अन्य सभी प्रखण्डों में महिला साक्षरता दर 40 प्रतिशत से कम है। 16 प्रखण्ड ऐसे हैं जिनमें महिला साक्षरता 20 प्रतिशत से भी कम है एवं पाँच प्रखण्डों में महिला साक्षरता दर अति निम्न (15 प्रतिशत से कम) है, वे हैं-दनियावां (14.8 प्रतिशत), घोसवरी (14.7 प्रतिशत), दुल्हन बाजार (14.2 प्रतिशत), पालीगंज (14.1 प्रतिशत) एवं बेलछी (12.8 प्रतिशत) एवं धनरूआ एकमात्र ऐसा प्रखण्ड है जहाँ वर्ष 1991 की तुलना में वर्ष 2001 में महिला साक्षरता दर में 0.5 की कमी हुई है।

वर्ष 1991 की जनगणनानुसार पटना जिला में कुल साक्षरता दर (56.2 प्रतिशत) की तुलना में अनुसूचित जाति की साक्षरता दर मात्र 30.5 प्रतिशत है। पटना जिला की कुल पुरुष साक्षरता (68.95 प्रतिशत) एवं महिला साक्षरता (41.24 प्रतिशत) की तुलना में अनुसूचित जाति की पुरुष एवं महिला साक्षरता क्रमशः 44.4 प्रतिशत एवं 14.2 प्रतिशत है। वर्ष 1991 की जनगणनानुसार पटना जिला में कुल 16 सामुदायिक विकास प्रखण्ड हैं जिसकी अनुसूचित जाति साक्षरता को देखने से स्पष्ट होता है एकमात्र प्रखण्ड, पटना सदर हैं जिसकी साक्षरता 53.5 प्रतिशत है, शेष सभी प्रखण्डों की साक्षरता दर 45 प्रतिशत से कम है। वर्ष 1991 में कुल 16 प्रखण्डों में से 13 प्रखण्डों की साक्षरता 30 प्रतिशत से कम है। पुरुष साक्षरता की दृष्टि से पटना सदर की साक्षरता सर्वाधिक 71 प्रतिशत है, दानापुर-सह-खगौल प्रखण्ड की 56.3 प्रतिशत एवं मोकामा प्रखण्ड की 45 प्रतिशत है, शेष सभी प्रखण्डों की साक्षरता 45 प्रतिशत से कम है, तथा तीन प्रखण्ड ऐसे हैं, जिनकी पुरुष साक्षरता 35 प्रतिशत से कम है, वे हैं- बख्तियारपुर (34.5 प्रतिशत), पण्डारक (34.4 प्रतिशत) एवं फतुहा (34.3 प्रतिशत)। वर्ष 1991 में पटना जिला की महिला साक्षरता की दृष्टि से स्थिति काफी चिंताजनक है। पटना सदर एकमात्र प्रखण्ड है जिसमें महिला साक्षरता दर 32.2 प्रतिशत है। कुल 8 प्रखण्डों में महिला साक्षरता की दर 10 प्रतिशत से कम है, जिसमें पुनपुन (6.3 प्रतिशत) एवं पालीगंज (6.2 प्रतिशत) की महिला साक्षरता अति निम्न है।

पुरुष एवं महिला साक्षरता में अंतर

तालिका-3 से स्पष्ट है कि नगरीय जनसंख्या की अधिकता वाले प्रखण्डों की तुलना में ग्रामीण जनसंख्या की अधिकता वाले प्रखण्डों में अनुसूचित जाति के पुरुष-महिला की साक्षरता दर में अंतर अधिक है। पटना सदर एवं दानापुर-सह-खगौल प्रखण्ड के अतिरिक्त लगभग सभी प्रखण्डों में पुरुष-महिला की साक्षरता दर में अंतर विगत दस वर्षों में अपेक्षित सुधार नहीं दिखती है। कुछ ऐसे प्रखण्ड भी हैं, जहाँ विगत दस वर्षों में पुरुष-महिला साक्षरता दर के अंतर में वृद्धि हुई है। पुरुष-महिला साक्षरता दर में अंतर की यह खाई विगत दस वर्षों में सर्वाधिक फतुहा प्रखण्ड (3.9 प्रतिशत), अथमलगौला प्रखण्ड (3.5 प्रतिशत) एवं बख्तियारपुर प्रखण्ड (2.5 प्रतिशत) में बढ़ी है। 1991 की जनगणनानुसार पुरुष-महिला साक्षरता में सर्वाधिक अंतर धनरूआ प्रखण्ड (29.2 प्रतिशत), बिहटा (29 प्रतिशत), बिक्रम (28.8 प्रतिशत) एवं पालीगंज प्रखण्ड (28.4 प्रतिशत) में है। अन्य प्रखण्डों में यह अंतर 21 से 27 प्रतिशत के मध्य है।

तालिका-3: पटना जिला में अनुसूचित जाति की पुरुष एवं महिला साक्षरता में अंतर

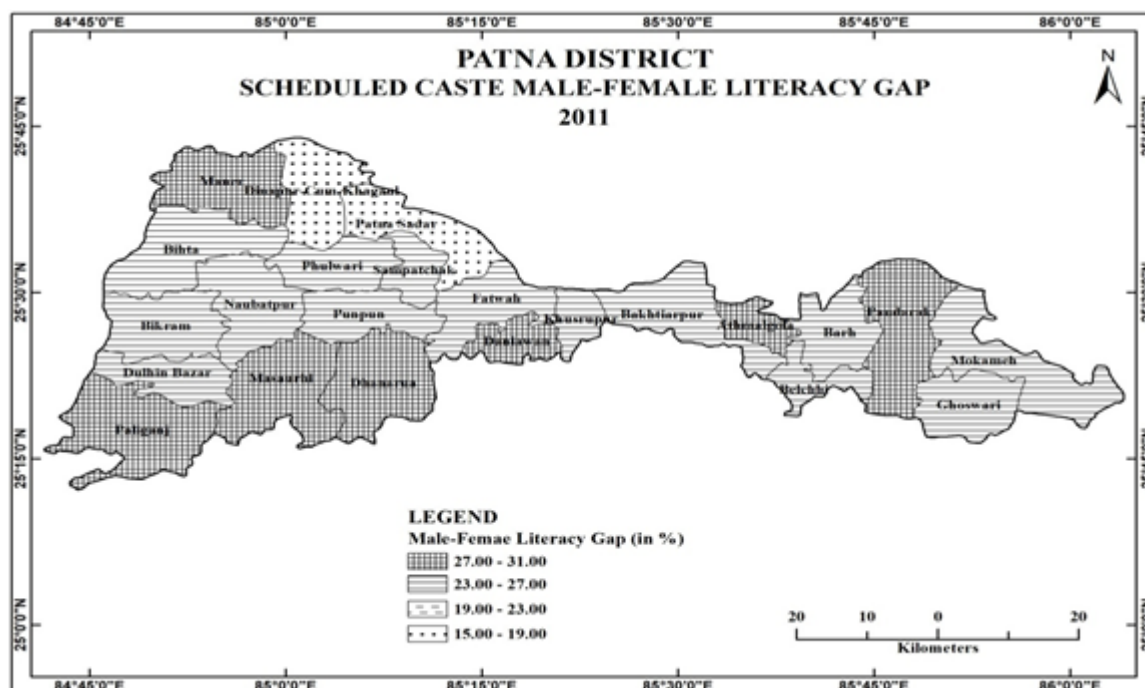
क्रम सं.	सामुदायिक प्रखण्ड	साक्षरता में अंतर	
		वर्ष-1991	वर्ष-2011
1.	पटना सदर	21.6	15.4
2.	दानापुर-सह-खगौल	24.4	17.9
3.	मोकामा	27.6	25.6
4.	फुलवारीशरीफ	24.7	26.0
5.	बिक्रम	28.8	26.6
6.	बिहटा	29.0	27.0
7.	मनेर	27.1	28.6
8.	बाढ़	24.7	25.7
9.	पण्डारक	26.8	27.6
10.	नौबतपुर	26.4	26.4
11.	मसौढ़ी	27.5	27.6
12.	पालीगंज	28.4	27.3
13.	पुनपुन	26.1	26.3

14.	बख्तियारपुर	22.9	25.4
15.	धनरूआ	29.2	30.1
16.	फतुहा	21.3	25.2
17.	संपतचक	27.6	26.7
18.	दुल्हिन बाजार	26.2	25.4
19.	अथमलगोला	25.1	28.6
20.	घोसवरी	27.6	27.0
21.	खुसरूपुर	26.6	26.7
22.	दनियावां	26.6	28.1
23.	बेलछी	26.7	25.3
24.	पटना जिला	25.8	24.2

स्रोत: पटना जिला जनगणना हस्तपुस्तिका 2001 एवं 2011 से संकलित।

वर्ष-2011 की जनगणनानुसार पुरुष-महिला की साक्षरता दर में सबसे कम अंतर पुनः पटना सदर प्रखण्ड (15.4 प्रतिशत) एवं दानापुर-सह-खगौल प्रखण्ड (17.9 प्रतिशत) है। सर्वाधिक अंतर पुनः धनरूआ प्रखण्ड में (30.1 प्रतिशत) है, तत्पश्चात् मनेर एवं अथमलगोला प्रखण्डों में (28.6 प्रतिशत) तथा दनियावां प्रखण्ड में (28.1 प्रतिशत) है। अन्य प्रखण्डों में यह अंतर 25 से 28 प्रतिशत के मध्य है।

अनुसूचित जाति में पुरुष-महिला साक्षरता दर में बड़ा अंतर होने का मुख्य कारण सामाजिक-आर्थिक है। सामान्यतः गरीबी के कारण लड़कियों का विवाह कम उम्र में कर माँ-बाप अपनी जिम्मेवारी का निर्वहन समझते हैं। माता-पिता की अशिक्षा एवं कृषि-प्रधान क्षेत्र होने के कारण कृषि कार्य तथा गृह कार्यों में बच्चों की भागीदारी का दबाव भी लड़कियों को विद्यालय भेजने के प्रति उदासीन बनाता है।



मानचित्र-4

निष्कर्ष:

साक्षरता की दृष्टि से पटना जिला में वर्ष-2011 की जनगणनानुसार अनुसूचित जाति की साक्षरता दर लगभग 53 प्रतिशत, जिसमें पुरुष साक्षरता दर 62 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 37.88 प्रतिशत है।

भारत के संविधान में स्त्री-पुरुष को समानता का दर्जा/अधिकार प्रदत्त करने के लगभग 60 वर्षों से अधिक की अवधि के उपरान्त भी साक्षर पुरुष एवं महिला का अंतर इतना अधिक (24.23 प्रतिशत) होना निश्चय ही चिंताजनक है। अनुसूचित जाति की महिलाओं में शिक्षा की कमी का एक बड़ा कारण आर्थिक एवं सामाजिक है। आर्थिक तंगी के कारण स्त्री-पुरुष साथ मिलकर कार्य करते हैं। कृषि-प्रधान क्षेत्र होने के कारण लड़कियों को माता-पिता के साथ

कृषि-कार्य तथा गृह-कार्यों में भागीदारी निभाने को प्रेरित किया जाता है। कम उम्र में विवाह भी शिक्षा से विमुख कर घर-गृहस्थी संभालने की जिम्मेवारी के दायित्वबोध से साक्षरता दर में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है।

राज्य सरकार की साक्षरता एवं शिक्षा में सुधार हेतु चलाए जा रहे विभिन्न योजनाओं यथा-मध्याह्न भोजन योजना, साईकिल एवं पोशाक योजना, मुफ्त शिक्षा कार्यक्रम आदि के बावजूद भी अनुसूचित जाति की साक्षरता एवं शिक्षा में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है। इसका कारण पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं माता-पिता की जागरूकता में कमी सबसे बड़ी बाधा है। आवश्यकता है वृहत स्तर पर जागरूकता कार्यक्रमों के द्वारा इस वर्ग में शिक्षा के प्रति लगाव पैदा करने तथा उनके बसाव स्थल के नजदीक विद्यालय की स्थापना कर शत- प्रतिशत बच्चों को विद्यालयों तक पहुँचाने की।

संदर्भ सूची:

1. मुंगेरिलाल, श्री (1971): “ए रिपोर्ट ऑफ कमीशन फॉर बैकवर्ड क्लास”, बिहार सरकार, 23 दिसम्बर, 1971.
2. यादव, एस.के. (1983): “हरिजन अवेयरनेस ऑफ एजुकेशनल स्कीम (एनटीसिडेन्ट्स एण्ड कॉन्सेक्यून्सेज)”, द एकेडमिक प्रेस, हरियाणा।
3. प्रकाश, निरूपमा (1989): “शिड्यूलड कॉस्ट्स: सोशियो-इकॉनामिक चेंजेज”, युग पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
4. शर्मा, ए. एवं मैथानी, डी.डी. (1990): “गढ़वाल हिमालय में जनसंख्या की प्रवृत्ति”, उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, गोरखपुर, अंक-26, पृष्ठ-60.
5. कुमारी, मोनिका (2018): “महादलित की सामाजिक-आर्थिक दशा में परिवर्तन: पटना जिला का एक भौगोलिक अध्ययन”, शोध-प्रबंध (अप्रकाशित), भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना-5.

उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों में सामाजिक कौशल का विकास: एक अध्ययन

श्रीमती चेतना योगी

अनुसंधात्री, शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राज.

प्रो० वंदना गोस्वामी

शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राज.

डॉ० सपना शर्मा

शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राज.

साराशः

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में उच्च शिक्षा में अध्ययनरत खिलाड़ी विद्यार्थियों के सामाजिक कौशल का अध्ययन किया गया है। इस शोध प्रपत्र का उद्देश्य उच्च शिक्षा के खिलाड़ियों में सामाजिक कौशल और खिलाड़ी विद्यार्थियों के मध्य (स्तरवार, खेल प्रकृतिवार, लिंगवार,) संबंधों की जांच करना था। जिसके अन्तर्गत न्यादर्श हेतु उच्च शिक्षा के कुल 619 खिलाड़ी विद्यार्थियों को सौउद्देश्य न्यादर्शन विधि द्वारा चयनित किया गया। अनेक शोध संदर्भों के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि अधिकांश अध्ययन लिंगवार, स्तरवार, संकायवार, खेल प्रकृतिवार, विश्वविद्यालय प्रकृतिवार तथा कई व्यवसायिक और अकादमिक पाठ्यक्रम जैसे पृष्ठभूमिक चरोंसे संबंधित थे। अध्ययन हेतु स्वनिर्मित सामाजिक कौशल मापनी का प्रयोग किया गया है। प्रदत्त एकत्रीकरण हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। निष्कर्ष में पाया गया कि उच्च शिक्षा में अध्ययनरत खिलाड़ी विद्यार्थियों के लिंगवार, कक्षास्तर एवं खेल प्रकृतिवार सामाजिक कौशल में महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया जाता है।

सांकेतिक शब्दः खिलाड़ी विद्यार्थी, खेल की प्रकृति, सामाजिक कौशल, उच्च शिक्षा।

परिचयः

गांधीजी के अनुसार “सच्ची शिक्षा वही है जो बालकों को आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक शक्तियों को व्यक्त करने के लिए व्यक्ति को प्रेरित करें।” जैसा कि अरस्तू ने कहा है “स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है।” जब विद्यार्थी स्वयं को (खेलों) शारीरिक शिक्षा से जोड़ता है तो उसमें सक्रियता आती है, और विद्यार्थी जीवन में ज्ञान के विकास में वृद्धि करने के लिए सदैव उत्सुकता बनी रहती है।

खेलों के द्वारा विद्यार्थी जीवन में कई प्रकार के अनुभव एवं ज्ञान की प्राप्ति होती है। शारीरिक शिक्षा वह है, जो विद्यार्थियों को जीवन में पूर्णता प्रदान करने में सहायता करती है। यह व्यक्ति में स्वास्थ्य शक्ति, स्फूर्ति, सजगता तथा शैक्षिक उपलब्धि की बढ़ोतरी में भी सहायता प्रदान करती है।

इस प्रकार राष्ट्रीय खेल नीति 2001 के अनुसार विद्यार्थियों को उनके शैक्षिक जीवन में यही बताया गया कि खेलों को बढ़ावा देना तथा प्रभावशाली युवाओं को प्रोत्साहन देना तथा लोगों को खेलों के प्रति जागरूक बनाना अत्यन्त आवश्यक हैं। वर्तमान समय में सभी राज्यों में खेलों के प्रचार-प्रसार पर सरकार जोर दे रही है। ओलंपिक खेलों में शामिल होने को भी खिलाड़ी अपनी बहुत बड़ी उपलब्धि समझते हैं। ओलंपिक खेल सबसे पुराने खेलों में सबसे महत्वपूर्ण है। इस प्रतिष्ठित खेल प्रतियोगिता का आयोजन प्रत्येक 4 वर्ष में आयोजित किया जाता है। खिलाड़ियों को विजय होने पर न केवल प्रमाण पत्र वरन् स्वर्ण, रजत एवं कांस्य पदकों से सम्मानित किया जाता है वरन् सरकारी नौकरियों में केंद्र व राज्य सरकार द्वारा विशेष आरक्षण भी प्राप्त होता है। विद्यार्थियों में खेलों के प्रति रुझान बढ़ाने एवं प्रतिभाओं को तराफने के उद्देश्य से सरकार द्वारा वर्तमान समय में अनेक स्पोर्ट्स स्कूल (स्पोर्ट्स अकैडमी) भी खोले गये हैं। अभी वर्तमान में राष्ट्रीय खेल विश्वविद्यालय मणीपुर में राष्ट्रीय खेल विश्वविद्यालय अधिनियम, 2018 (2018का संख्या 25) के तहत राष्ट्रीय खेल विश्वविद्यालय (NSU) का गठन किया गया था। खेल विश्वविद्यालय इम्फाल की आधारशिला माननीय प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी द्वारा रखी गई है। यह भारत में स्थापित होने वाला पहला राष्ट्रीय खेल विश्वविद्यालय (NSU) है। उच्च शिक्षा स्तर पर अनेक विषय का अध्ययन करने वाले खिलाड़ियों का खेलों में ही नहीं वरन् अन्य

क्षेत्रों में भी भविष्य उज्ज्वल है। इसीलिए अनेक संस्थाओं ने शारीरिक शिक्षा को अनिवार्य विषय के रूप में रखा है क्योंकि यह वर्तमान समय की मांग है कि स्वस्थ शरीर में सर्वांगीण विकास संभव है।

जीवन में स्वस्थ एवं फिट रहने के साथ साथ सामाजिकरण भी मुख्य कारण के रूप में माना जाता है जो कि विद्यार्थियों को खेल से जुड़े रहने के लिए प्रेरित करता है। इस संबंध में यह माना जाता है कि खेल और सामाजिक कौशल आपस में संबंधित है। विद्यार्थियों की खेलों में भागीदारी जिला स्तर, राज्य, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होती है। विद्यार्थी न केवल अनेक प्रतियोगिताओं में सहभागी होते हैं वरन् इससे उसमें आत्मानुशासन, सहयोग, त्याग, धैर्य, आत्मनियन्त्रण, स्व अभिव्यक्ति और समूह भावना का भी विकास होता है। अपनी भावनाओं को साझा करना भी सीखते हैं। एन. कूल ब्रिज (2017) ने भी युवाओं पर सामाजिक कौशल के प्रभाव पर अध्ययन किया। अध्ययन के परिणाम में पाया कि खेलों में भागीदारी से प्रतिस्पर्धा, निष्पक्षता और ईमानदारी सीखते हैं। खेलों में भागीदारी सामाजिक कौशल के अधिग्रहण में योगदान देती है। नंदिनी माथुर (2019) ने “इफेक्ट ऑफ अर्ली स्पोर्ट्स पार्टिसिपेशन ऑन सेल्फ स्टीम एण्ड हेल्थीनेस” पर अध्ययन किया। अध्ययन का उद्देश्य आत्म सम्मान और स्वास्थ्य पर प्रारंभिक खेल भागीदारी प्रभाव की जांच करना था। परिणाम बताते हैं कि जिन एथलीटों ने शुरुआत से खेलों में भाग लिए उन प्रतिभागियों में अधिक आत्मसम्मान एवं खुशी देखी गई। कौर गगनदीप, प्रीति (2019) ने “अमृतसर शहर के किशोरछात्र छात्राओं के सामाजिक कौशल और अभिभावकों की भागीदारी का अध्ययन” किया। अध्ययन में पाया कि लिंग के संबंध में किशोर छात्र छात्राओं के अभिभावकों की भागीदारी में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया। खेलों के द्वारा जब विद्यार्थी दूसरे बच्चों के सम्पर्क में आते हैं तो उनका सामाजिकरण होता है। अतः वे खेलों के माध्यम से सामाजिक मूल्यों को भी सीखते हैं। जैसे सहिष्णुता, अनुशासन, उत्तरदायित्व, नेतृत्व, नियम, दृढ़ता, निष्ठा परोपकारिता एवं समयबद्धता जैसे गुण स्वतः ही विकसित होने लगते हैं। खेल व्यक्ति का सामाजिकरण है। यह जीवन प्रत्यक्ष विभिन्न रूप में क्रियात्मकता को बनाए रखते हैं।

सामाजिकरण के लिए सामाजिक कौशल की जरूरत होती है। जैसे सामाजिक मानदंडों को अपना बनाना, नियमों के अनुसार चलना, चुनौतियों का सामना करना आदि के रूप में सामाजिक कौशल परिभाषित किया जाता है। सामाजिक कौशल दैनिक जीवन में अंतःक्रिया में सहायक होते हैं। सूचनाओं का आदान-प्रदान, नए मित्र बनाना, दूसरों से मदद मांगना, निर्देशन देना इत्यादि, इस प्रकार सामाजिक कुशलता वह दक्षता है जिससे सामाजिक संदर्भों में प्रभावी ढंग से अंतःक्रिया में व्यवहार किया जा सके। जब व्यक्ति में उत्तम सामाजिक कौशल है तो वह जीवन में सफलता व दूसरों से सम्बन्ध बनाने में सक्षम होता है। सीता कुमारी (2015) ने “ए सिस्टेमेटिक स्टडी ऑफ नीड इम्पोर्टेंस एण्ड एप्लीकेशन ऑफ इमोशनल इंटेलिजेंस इन एथलीट्स” पर अध्ययन किया। अध्ययन में पाया कि बुद्धिमान एथलीट सदैव अपनी भावनाओं को नियंत्रित कर अच्छा प्रदर्शन करते हैं। जैसेफ ए, ड्यूरेक (2011) ने “स्टडी फाईंड्स सोशल-स्किल्स टीचिंग बूस्ट्स एकेडमिक्स” पर अध्ययन किया। अध्ययन में पाया कि एसईएल कार्यक्रम के सामाजिक और भावनात्मक लीमिंग में भाग लेने वाले छात्रों में सामाजिक कौशल के साथ साथ छात्रों के शैक्षणिक योग्यता में सुधार का पाया गया। सामाजिक कौशल व्यक्ति को समाज, संस्कृति के अनुसार व्यवहार करने के लिए अति आवश्यक है। मो. तगी अगदासी (2014) ने “इवोल्यूशन सोशल स्कील ऑफ फीमेल एथलीट एटेन्ड इन सेवरल स्पोर्ट्स” पर अध्ययन किया। अध्ययन का उद्देश्य कई खेलों में भाग लेने वाली महिला एथलीट का सामाजिक कौशल मुल्यांकन करना था परिणाम में पाया कि एथलीटों के पास सामाजिक कौशल अधिक था तथा व्यक्तिगत और टीम खेल एथलीटों के बीच महत्वपूर्ण अंतर था। डेवीस (2010) ने खिलाड़ियों के सामाजिक विकास पर अध्ययन किया परिणाम में पाया कि सामाजिक कौशल, अनुबंध कौशल, प्रबंधन कौशल में एथलीट ने अधिक विशेषज्ञता प्राप्त की, सामाजिक कौशल का प्रभाव व्यक्तिगत की अपेक्षा टीम के खेल पर अधिक पाया गया।

शिक्षा का चाहे कोई भी स्तर हो विद्यार्थी के लिए खेल का महत्व बना रहता है। उच्च शिक्षा के विद्यार्थी अकादमिक एवं व्यवसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत हो सकते हैं किन्तु पाठ्यक्रम की प्रकृति विद्यार्थी की खेल में सहभागिता में बाधक नहीं हो सकती। अभियान्त्रिकी, प्रबंधन, चिकित्सा और शिक्षा जैसे व्यवसायिक पाठ्यक्रम के स्नातकोत्तर एवं स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थी विभिन्न एकल एवं सामूहिक खेलों में सहभागी होते देखे हैं। साथ ही अकादमिक एवं व्यवसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत विद्यार्थी खेलों में रुचि प्रदर्शित करते हैं। उच्च स्तर में विद्यार्थियों की खेलों में सहभागिता न केवल शरीर सौष्ठव निर्माण के लिए करते हैं वरन् निरोग व सदैव स्वस्थ रहने के लिए करते हैं। अतः उच्च शिक्षा स्तर में भी विद्यार्थियों का खेलों के प्रति रुझान उनके व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होता है।

जीवन के सफल निर्वहन के लिए व्यक्ति को अनेक सामाजिक कौशलों को अर्जित करना आवश्यक है। सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति की आवश्यकता, समुदाय के सदस्यों के साथ अन्तःक्रिया करना तथा स्वस्थ सकारात्मक एवं स्वस्थ सम्बन्धों का निर्माण करना है। सामाजिक कौशल समाज के भीतर बातचीत और संचार की सुविधा प्रदान करने वाले कौशल हैं। सामाजिक कौशल अन्य लोगों के साथ अच्छे संबंध स्थापित करने और बनाए रखने और सामाजिक नियमों का पालन करने में मदद करता है। मूल रूप से, सामाजिक कौशल व्यवहार के वह घटक हैं। जो हमें विभिन्न प्रकार के सामाजिक समायोजन करने के लिए अनुकूल होने में मदद करते हैं और हमें समाज में समायोजित होने में सक्षम बनाते हैं।

खेलों को संवेग प्रदर्शन अथवा भाव निष्कासन का साधन माना जाता है अतः प्रश्न यह भी है कि इन विद्यार्थियों की सामाजिक कौशल का विस्तार क्या है? खेल एकल हो या सामूहिक उन्हें खेलने से अधिक लोगों के सम्पर्क में आने से सामाजिक गुणों का विकास की संभावना बढ़ती है। अतः यह विचारणीय है कि खिलाड़ी विद्यार्थियों में सामाजिक कौशल किस हद तक पाया जाता है? खिलाड़ी विद्यार्थियों में स्तरवार शिक्षा के स्तरों के आधार पर उनकी सामाजिक कौशल में क्या अंतर पाया जाता है खिलाड़ी छात्र छात्राएं जो विभिन्न स्तरों पर अध्ययनरत तो क्या लिंग के आधार पर सामाजिक कौशल में क्या अंतर पाया जाता है।

उपरोक्त प्रश्नों के आधार पर यह प्रश्न उभर कर आता है कि उच्च शिक्षा में अध्ययनरत खिलाड़ी विद्यार्थियों में सामाजिक कौशल किस स्तर का है।

अध्ययन के उद्देश्य:

1. उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों में कक्षा स्तरवार सामाजिक कौशल का अध्ययन।
2. उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों में खेल प्रकृतिवार सामाजिक कौशल का अध्ययन।
3. उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों में लिंगवार सामाजिक कौशल का अध्ययन।

परिकल्पना:

1. उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों की स्तरवार सामाजिक कौशल में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता।
2. उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों की खेल प्रकृतिवार सामाजिक कौशल में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता।
3. उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों का लिंगवार सामाजिक कौशल में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता।

तकनीकी शब्दों का परिभाषाकरण:

खिलाड़ी विद्यार्थी: खिलाड़ी विद्यार्थियों से तात्पर्य वे विद्यार्थी जो उच्च शिक्षा में अध्ययनरत हैं तथा जो नियमित (न्यूनतम 70 उपस्थिति दर्ज कराने वाले और एक अथवा अधिक प्रतिस्पर्धा में भाग लिया हो) रूप से एकल व सामूहिक खेलों में सहभागिता रखते हैं।

खेल की प्रकृति: एकल खेल - एकल खेल वे खेल होते हैं जिनमें प्रतिभागी व्यक्तिगत रूप से प्रतिस्पर्द्धा करने के लिए संदर्भित होता है अर्थात् जिस स्पर्द्धा संपादन में समूह की आवश्यकता न पड़े तथा निर्णय स्वयं खिलाड़ी के व्यक्तिगत प्रदर्शन के आधार पर होता है उसे एकल खेल की संज्ञा दी जाती है।

सामूहिक खेल: सामूहिक खेल वे खेल हैं जिसमें दो या अधिक सदस्य एक साथ मिलकर किसी लक्ष्य को हासिल करने का प्रयास करते हैं इस स्पष्टता में जिसका सम्पादन स्वयं एवं पूर्णता तथा परिणाम खिलाड़ियों के ऊपर निर्भर करती है इसी कारण इसे सामूहिक खेल की संज्ञा दी जाती है।

सामाजिक कौशल: हर्सन और बेल्लाक (1977) के अनुसार सामाजिक कौशल से तात्पर्य “सामाजिक सुदृढीकरण के नुकसान से बचने के लिए पारम्परिक संदर्भ में दोनों सकारात्मक और नकारात्मक संवेगों को व्यक्त करने की क्षमता से है।” प्रस्तुत शोध अध्ययन में सामाजिक कौशल से तात्पर्य समाज से प्रभावी ढंग से व्यवहार करने तथा सकारात्मक सम्बन्धों को स्थापित करना है। तथा समाजीकरण का अर्थ है-समाज का सदस्य होना और समाज के नियमों, दृष्टिकोणों और विश्वासों को सीखना।

उच्च शिक्षा: उच्च शिक्षा से तात्पर्य शिक्षा में स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर पर विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययन-अध्यापन कार्य सम्पन्न होते हैं तथा जिसमें अकादमिक तथा व्यावसायिक शिक्षा सम्मिलित है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में उच्च शिक्षा से तात्पर्य अकादमिक एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रम में स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर पर दी जाने वाली शिक्षा से है।

शोध विधि:

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

प्रदत्त संकलन हेतु उपकरण:

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण का चयन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है। विषय वस्तु विश्लेषण का निर्माण किया गया तथा सामाजिक कौशल के मापन हेतु शोधार्थी द्वारा निर्मित सामाजिक कौशल मापनी का प्रयोग किया गया।

जनसंख्या:

प्रयुक्त शोध अध्ययन में राजस्थान के दो मान्य और दो निजी विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत एवं खेलों में सहभागी विद्यार्थियों को जनसंख्या के रूप में लिया गया।

न्यादर्शन:

शोध अध्ययन में राजस्थान के 4 विश्वविद्यालयों दो मान्य और दो निजी का चयन किया गया। इनमें से 619 विद्यार्थियों का उपलब्धता के आधार पर सौदेष्टपूर्ण न्यादर्श द्वारा चयन किया गया।

प्रदत्त का प्रस्तुतिकरण एवं विश्लेषण:

प्रदत्त की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए वर्णनात्मक सांख्यिकी मध्यमान, मानक विचलन, टी-टेस्ट का प्रयोग किया गया।

परिकल्पना (1) उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों में कक्षा स्तरवार सामाजिक कौशल में भिन्नता पायी जाती है।

सारणी 1: खिलाड़ी विद्यार्थियों का कक्षा स्तरवार सामाजिक कौशल

क.सं.	स्तरवार भिन्नता	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	स्वतंत्रता का अंश	टी - मान
1.	स्नातकोत्तर	130	140.21	27.876	617	0.384
2.	स्नातक	489	137.59	26.805		

उपरोक्त सारणी 1 से स्पष्ट होता है कि स्नातकोत्तर स्तर के खिलाड़ी विद्यार्थियों के सामाजिक कौशल संबंधी प्राप्ताकों का मध्यमान 140.21 तथा मानक विचलन 27.876 प्राप्त हुआ है। तथा स्नातक स्तर के खिलाड़ी विद्यार्थियों के सामाजिक कौशल संबंधी प्राप्ताकों का मध्यमान 137.59 तथा मानक विचलन 26.805 प्राप्तांक प्राप्त हुआ है। इन प्राप्ताकों का टी-मान 0.384 है। जो कि टी-मान के 617 स्वतंत्रता का अंश पर .05 सार्थक स्तर पर सारणी का मान 1.96 से कम है। अतः परिकल्पना “उच्च शिक्षा में अध्ययनरत खिलाड़ी विद्यार्थियों के सामाजिक कौशल में कक्षा स्तरवार सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है”, को स्वीकृत किया जाता है।

परिकल्पना (2) उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों में खेल प्रकृतिवार सामाजिक कौशल में भिन्नता पायी जाती है।

सारणी 2: खिलाड़ी विद्यार्थियों का खेल प्रकृतिवार सामाजिक कौशल

क.सं.	खेल प्रकृतिवार भिन्नता	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	स्वतंत्रता का अंश	टी - मान
1.	एकल	178	139.09	25.567	617	0.129
2.	सामूहिक	441	137.75	27.620		

उपरोक्त सारणी 2 से स्पष्ट होता है कि एकल खेलों के खिलाड़ी विद्यार्थियों के सामाजिक कौशल संबंधी प्राप्ताकों का मध्यमान 139.09 तथा मानक विचलन 25.567 प्राप्त हुआ है। तथा सामूहिक खेलों के खिलाड़ी विद्यार्थियों के सामाजिक कौशल संबंधी प्राप्ताकों का मध्यमान तथा 137.75 मानक विचलन 27.620 प्राप्तांक प्राप्त हुआ है। इन प्राप्ताकों का टी-मान 0.129 है। जो कि टी-मान के 617 स्वतंत्रता का अंश पर .05 सार्थक स्तर पर सारणी का मान 1.96 से कम है। अतः परिकल्पना “उच्च शिक्षा में अध्ययनरत खिलाड़ी विद्यार्थियों के सामाजिक कौशल में खेल प्रकृतिवार सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है”, को स्वीकृत किया जाता है।

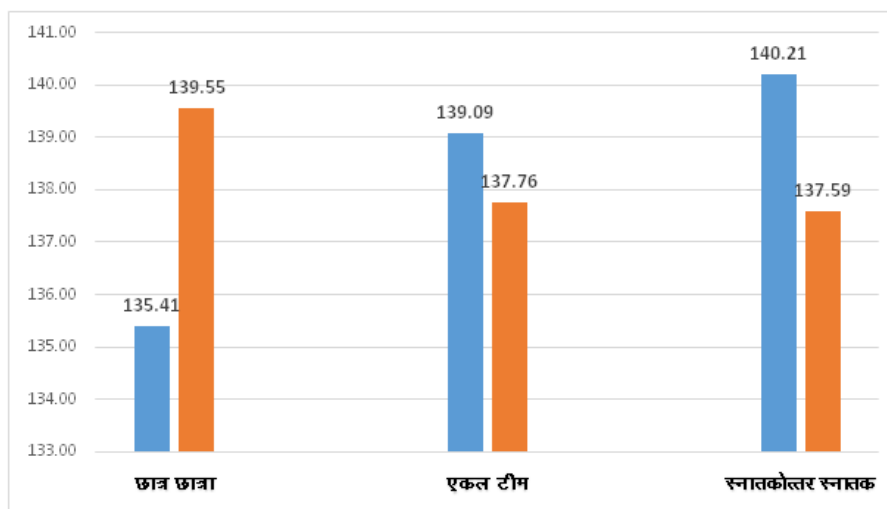
परिकल्पना (3) उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों में लिंगवार सामाजिक कौशल में भिन्नता पायी जाती है।

सारणी 3: खिलाड़ी विद्यार्थियों का लिंगवार सामाजिक कौशल

क.सं.	लिंगवार भिन्नता	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	स्वतंत्रता का अंश	टी - मान
1.	छात्र	211	135.41	27.321	617	0.718
2.	छात्रा	408	139.55	26.805		

उपरोक्त सारणी 3 से स्पष्ट होता है कि छात्र खिलाड़ी विद्यार्थियों के सामाजिक कौशल संबंधी प्राप्ताकों का मध्यमान 135.41 तथा 27.321 मानक विचलन प्राप्त हुआ है। तथा छात्रा खिलाड़ी विद्यार्थियों के सामाजिक कौशल संबंधी प्राप्ताकों का मध्यमान 139.55 तथा मानक विचलन 26.805 प्राप्तांक प्राप्त हुआ है। इन प्राप्ताकों का टी-मान 0.718 है। जो कि टी-मान के 617 स्वतंत्रता का अंश पर .05 सार्थक स्तर पर सारणी का मान 1.96 से कम है। अतः परिकल्पना “उच्च शिक्षा में अध्ययनरत खिलाड़ी विद्यार्थियों के सामाजिक कौशल में लिंगवार सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है”, को स्वीकृत किया जाता है।

समेकन: चित्र.1 उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों के सामाजिक कौशल में भिन्नता



निष्कर्ष: -उपरोक्त रेखाचित्र के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि उच्च शिक्षा के लिंगवार छात्र खिलाड़ी विद्यार्थियों का मध्यमान 135.41 तथा छात्राओं का मध्यमान 139.55 है। यद्यपि दोनों के मध्यमान में अधिक अन्तर नहीं है किन्तु छात्राओं का अधिक मध्यमान इस बात का घोटक है कि उनमें छात्र खिलाड़ी विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक सामाजिक कौशल पाया गया है। उच्च शिक्षा के खेल प्रक्रितिवार खिलाड़ी विद्यार्थियों में एकल खेल में सहभागी विद्यार्थियों का मध्यमान 139.09 एवं सामूहिक खेल का मध्यमान 137.76 है। यद्यपि दोनों के मध्यमान में अधिक अन्तर नहीं है किन्तु एकल में अधिक मध्यमान इस बात का घोटक है कि उनमें सामूहिक खेलों के खिलाड़ी विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक सामाजिक कौशल विकसित हुआ है।

इसी प्रकार उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों में स्तरवार स्नातकोत्तर स्तरीय विद्यार्थियों का मध्यमान 140.21 एवं स्नातक स्तरीय विद्यार्थियों का मध्यमान 137.59 है। यद्यपि दोनों के मध्यमान में अधिक अन्तर नहीं है किन्तु स्नातकोत्तर स्तर के खिलाड़ी विद्यार्थियों का अधिक मध्यमान इस बात की ओर संकेत करता है कि उनमें स्नातकस्तर के खिलाड़ी विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक सामाजिक कौशल विकसित हुआ है। मध्यमानों के प्राप्त आँकड़ों के आधार पर ज्ञात होता है कि सभी चरों में सामाजिक कौशल में भिन्नता पायी जाती है।

उच्च शिक्षा के खिलाड़ी विद्यार्थियों पृष्ठभूमिक चरों से संबंधितमें सामाजिक कौशल में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है। अतः उन सभी विद्यार्थियों में आत्म नियंत्रण अनुशासन शिष्टाचार समय का सदुपयोग नियमितता संबंधी कई गुणों का विकास होता है। खेलों में भागीदारी रखने या खेलों से जुड़े होने से विद्यार्थी स्वस्थ एवं सक्रिय एवं जागरूक बने रहते हैं खेलों के दौरान खिलाड़ी कई जगह टीम या एकल प्रतियोगिताओं में भाग लेने अलग अलग प्रान्तों में जाते हैं तो वहाँ कि सभ्यता व संस्कृति का आदान-प्रदान भी खेलों द्वारा होता है तथा विद्यार्थी खेलों में भागीदारी के दौरान सामाजिकरण या कहें सामाजिक कौशल में निपुण बनते हैं। यही समाजीकरण भविष्य में इनको रिश्ते में, समाज में, तथा व्यवसाय में सक्रियता व समायोजन में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। व्यक्ति अपने भावी जीवन को सुगम तथा जीवन को सक्षम बनाना भी खेलों से सीखता है। खेल वह है जो व्यक्ति को मानसिक रूप से, शारीरिक रूप से सक्रिय बनाए रखते हैं। सामाजिक कौशल एक व्यक्ति को विविध परिस्थितियों में उचित व्यवहार करने में भी सक्षम बनाता है।

संदर्भ:

- जेकिगुला. ए. (2018) एनालिसिस ऑफ़ स्पोर्ट्स एण्ड सोशियल रिलेशन इन नॉन स्पोर्टिव ग्रुप, जनरल ऑफ़ एज्यूकेशन एण्ड ट्रेनिंग स्टडीज, वॉल्यूम 6, इश्यू 8, ISSN 2324-805X, E-ISSN 2324 8068
- अगदासी मोहम्मद तगी (2014) “इवोल्यूशन सोशल स्कूल ऑफ़ फीमेल एथलीट एटडेण्ड इन सेवरल स्पोर्ट्स” इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ ट्यूरिज्म इस्पेटेलिटी एण्ड स्पोर्ट्स, ISSN Outline n° 2312-5179, Vol 2, Issue 14
- चौबै, एस. पाठक, द्विवेदी जितेन्द्र कुमार एवं प्रसाद अम्बिका, (1936) “शारीरिक शिक्षा के मूल आधार”, पृ.सं. 189
- डेविस डेविड, जे. एण्ड ऑल (2010), “द डवलपमेन्ट एण्ड सोशल स्कूल ऑफ़ एक्सपर्ट मेजर जूनियर हॉकी प्लेयर” टेलेट डवलपमेन्ट एण्ड एक्सीलेट जर्नल, वॉल्यूम 2, नं. 1, पृ. 61-62.
- गुप्ता एस.पी. (2008), “सांख्यिकीय विधियाँ” शारदा पुस्तक भवन, पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद।
- कमलेश एम. एल. (2008) “शारीरिक शिक्षा के मूल तत्व”, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली प्रकाशन,
- कुमारी सीता (2015) “इमोशनल इंटेलिजेंस (EI) एण्ड स्पोर्ट्स साइंस ए: सिसटेमेटिक साइंस स्टडी ऑफ़ नीड इम्पोर्टेंस एण्ड एप्लीकेशन ऑफ़ इमोशनल इंटेलिजेंस इन एथलीट्स” इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ एडवांस्ड रिसर्च 2016, वॉल्यूम 4, ईश्यू 1, 531-540-ISSN 2320-5407
- कौल, लोकेष (2003), मेथेडोलोजी ऑफ़ एजुकेशन रिसर्च, दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस।
- कौर गगनदीप, प्रीति (2019) “सामाजिक कौशल और किशोर छात्र छात्राओं के अभिभावकों की भागीदारी” इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ रिसर्च इन सोशल साइंसेज वॉल्यूम, 9 अंक 4, अप्रैल 2019, ISSN, 2249 - 2496
- मंगल, एस. के. भाटिया एस. (1994), “खेल मनोविज्ञान”, पृ.सं. 219
- माथुर नंदिनी, जॉन बी. (2018) “इफ़ेक्ट ऑफ़ अल्टी स्पोर्ट्स पार्टिसिपेशन ऑन सेल्फ़ स्टीम एण्ड हेल्थीनेस” यूनाइटेड स्टेट्स अकेडमी, स्पोर्ट्स जनरल <http://thesportjournal.org/articles.efffect->
- त्रिजपनजस. कूल (2017) “सांशेनल इफ़ेक्ट ऑफ़ स्पोर्ट्स ऑन यंग चिल्ड्रन्स” [http://www.livestrong.com/artical/38085-social-effect-sports-journe-](http://www.livestrong.com/artical/38085-social-effect-sports-journe-children)

गुरु ग्रन्थ साहब में कबीर (भक्ति आन्दोलन के सन्दर्भ में)

डॉ० कुलदीप कौर पाहवा

सह-आचार्य, पंजाबी विभाग, श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज, दिल्ली

सार

भक्ति आन्दोलन मध्यकालीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण पड़ाव था। इस काल में सामाजिक-धार्मिक सुधारकों की धारा द्वारा समाज विभिन्न तरह से भगवान की भक्ति का प्रचार-प्रसार किया गया। यह एक मौन क्रान्ति थी। भारतीय विचारधारा की प्रवृत्ति आरंभ से ही धर्म आधारित रही है पर भक्ति आन्दोलन के अंतर्गत मध्यकाल की जिस पृष्ठभूमि में इस रचना की संरचना हुई वह भारतीय संस्कृति से बिल्कुल भिन्न किस्म के प्रतिमान साबित हुए। इस्लाम धर्म के प्रवेश से बनने शुरू हुए और जिसने अब तक की सभी प्रचलित सांस्कृतिक मान्यताओं को चुनौती दी। इस्लाम धर्म को फैलाने के लिए जिस जोर-जबरदस्ती और कट्टरपंथी नीतियों के प्रतिकर्म के रूप में जहाँ सूफीवाद का जन्म हुआ, जोकि इस्लाम की ही एक सुधारक लहर थी, वहाँ साथ ही हिन्दू धर्म के सुधारकों में भी एक जबर्दस्त हलचल हुई। यह समय हिन्दू और मुसलमानों की संस्कृतियों के टकराव का समय था। इस टकराव का तत्कालीन माध्यम भी धर्म ही बना जिसके फलस्वरूप मध्यकाल कि भक्ति लहर का उत्थान हुआ। इसने अब तक कि सारी मान्यताओं को चुनौती दी और उनके बदल पेश किए। क्योंकि अब तक इस्लाम भी अन्य धर्मों के उलटफेर कि तरह कर्म-कांड के अँधेरे में खो रहा था, इसलिए भक्ति लहर के कवियों को अपने मिशन में काफी सफलता प्राप्त हुई। इन भक्त कवियों में गुरु नानक, कबीर, नामदेव, सूरदास, तुलसीदास और मीरा बाई आदि प्रसिद्ध हैं।

मुख्य शब्द: गुरु-ग्रन्थ साहब, कबीर, भक्ति, आन्दोलन।

भूमिका

भक्ति लहर का आरंभ दक्षिण भारत से हुआ। तमिल के आडवार भक्तों से उस भक्ति लहर का आरंभ माना जाता है जो समय पाकर उत्तर भारत में फैली। आडवार भक्तों का समय छठी से ले कर नौवीं सदी तक माना जाता है। ये साधारण लोग थे जिनमें निम्न समझी जाने वाली जातियों के बंदे भी थे परन्तु बाद में दक्षिण के ब्राह्मण आचार्यों ने इस इस बारे विचार नो अपने गले से लगा लिया। उन्होंने आडवार भक्तों की रचनाओं को 12वीं सदी में संपादित किया, जिसको 'प्रबन्धम' कहा जाता है और जिसकी मान्यता तमिल देव के रूप में है। दक्षिण के ब्राह्मण आचार्यों ने भक्ति को पूरा वैष्णव रंग दे दिया। रामानुजचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, बल्भाचार्य और रामानंद ने राम भक्ति और कृष्ण भक्ति के रूप में लहर को आगे बढ़ाया। धीरे-धीरे यह लहर तमिल प्रदेश से निकलकर महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल, असम की ओर बढ़ी। 15वीं शताब्दी में स्वामी रामानंद इस लहर को लेकर उत्तर की ओर आए। संत कबीर ने अपनी इस रचना में इसका जिक्र किया है:

भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद॥

प्रगट किया कबीर ने सप्त दीप नव खंड॥

यह बात विचार करने योग्य है कि दक्षिण में जिन आडवार संतों ने भक्ति को अपनाया था, वो गैर-ब्राह्मण थे। उत्तर भारत में भी यह लहर पहले जिन वर्गों में स्वीकार कि गई वो गैर-ब्राह्मण थे और उनमेंभी बहुत सारे वो थे जो ब्राह्मणीय व्यवस्था में निम्न जाति माने जाते थे और जिनको किसी भी तरह के सामाजिक क्रिया-कलापों और अनुष्ठानों में भाग लेने की मनाही थी। भक्त नामदेव, कबीर, रविदास, दादू, धन्ना, सदन और सैण जैसे संत दलित वर्गों और पिछड़ी श्रेणियों में ही थे।

गुरु ग्रन्थ साहब में कबीर भक्ति आन्दोलन के सन्दर्भ में:

मध्यकाल में उदय हुई इस भक्ति लहर के प्रसंग में सारे भक्त कवियों के समानांतर गुरु नानक देव ने एक ऐसी विचारधारा का प्रतिपादन किया जिसका असर बहुत गहरा पड़ा। ऐसे समय में गुरु नानक एक ऐसेव्यक्तित्व के तौर पर उभर कर सामने आए जिन्होंने उस समय के समाज में एक क्रांतिशील परिवर्तन पैदा किया। उन्होंने एक ऐसी धार्मिक प्रथा को चलाया जो सामाजिक तौर पर बिल्कुल नई थी पर लोगों के हितों में होने के कारण बहुत जल्दी ही सर्व-प्रमाणित धार्मिक परंपरा बन गई। गुरु नानक देव जी की विचारधारा का विश्लेषण करने वाले बहुत सारे विद्वान यह मानते हैं कि गुरु नानक देव ने जिस धार्मिक परंपरा को चलाया वह एक ऐसी पद्धति थी जो गुरु नानक देव को विरासत में मिली थी। उन्होंने अपनी प्रतिभा के साथ उसका पुनर्निर्माण किया और उस मत को

इस तरह लागू किया जो बिल्कुल अलग था। गुरु नानक देव की महानता इसी में थी कि उन्होंने अलग-अलग विचारधाराओं को एक सूत्र में बाँधकर एक नए मत के रूप में प्रस्तुत किया जोकि बाद में सिक्ख मत के नाम के साथ जाना जाने लगा।

गुरु नानक देव जी मध्यकाल की पूरी भक्ति लहर में ऐसे भक्त कवि थे जिनकी चलाई लहर आदि गुरु के बाद ज्योति मार्ग के रूप में दुसरे उत्तराधि कारि गुरुओं के काल में भी बढ़ती गई। इस सन्दर्भ में सिक्ख धर्म एक बिल्कुल प्रगतिशील और अनोखी विचारधारा वाला मत स्थापित हुआ। इस मत के दस गुरु हुए और दसवें गुरु गोबिंद सिंह ने अपने से पहले सारे गुरुओं द्वारा रचित वाणी, जिस का संकलन गुरु अर्जन देव ने आदि ग्रंथ में किया हुआ था, और बाद में नौवें गुरु तेग बहादुर की वाणी इस ग्रंथ में शामिल की और अपने बाद जिसको गुरु का दर्जा देने के लिए सिक्खों को हिदायत दी:-

सभ सिक्खन को हुक्म है गुरु मान्यो ग्रंथ॥

कबीर एक सीसे मध्ययुगीन चिंतक हैं जिन्होंने भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रभावों को ज्यों का त्यों नहीं स्वीकारा बल्कि इनमें वांछनीयपरिवर्तन करके इनको व्यवहारिक बनाया। मध्यकालीन मूल्यों को कबीर ने आँख मूँदकर स्वीकार नहीं किया बल्कि उनमें बुनियादी परिवर्तन लाकर उस समय के धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक भेद-भाव और कुरीतियों का जमकर विरोध किया। धार्मिक कट्टरता और दलित वर्ग के प्रति तिरस्कार कि भावना को खत्म करने के लिए वो पूरी तरह प्रतिबद्ध थे इसी लिए गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज उनका ये शब्द मानवी-कल्याण और रहस्यवादी भाव का ब्रह्मंडी परिपेक्ष प्रस्तुत करता है:

अव्वल अलह नूर उपाया कुदरत के सब बंदे॥

एक नूर ते सब जग उपजया कौन भले को मंदे॥

लोगा भरम न भूलहो भाई॥

खालिक खलक खलक मह खालिक पूर रहियो सरब ठाई॥

माती एक अनेक भाँति कर साजी साजन हारे॥

न कुछ पोच माटी के भांडे ना कुछ पोच कुंभारे॥

सभ महि सच्चा ऐको सोई तिसका कीचा सभु कुछ होई॥

टुकुमु पछानै सु ऐको जानै बन्दा कहीऐ सोई॥

अलहु अलख ना जाई लखिया गुर मुड़ दीना मीठा॥

कह कबीर मेरी संका नासी सरब निरंजन डीठा॥ गु.ग्रं.सा. पन्ना 1349

इसी तरह भक्त कबीर जी ने सारी मानव जाति को समान माना है और जाति-पाति का आधार जन्म को नहीं बल्कि कर्म को कहा है:

जाति पाति पूछे नहीं कोई॥

हरि को भजे सो हरि का होई॥ गु.ग्रं. स. अंग 1330

गुरु नानक देव जी तरह ही भक्त कबीर ने सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक भेदभावों, आडंबरों और कर्म-कांडों की जमकर बुराई की। उन्होंने जी भरकर जोगियों, ब्राह्मणों, पंडितों और मोलवियों को और उनके अर्थहीन पूजा चिन्हों की दृढ़ता के साथ बदनामी कि और सन्यास कि कर्महीनता का जोरदार शब्दों में विरोध किया। इसी प्रसंग में कबीर वाणी में भक्त नामदेव का भक्त त्रिलोचन के लिए खास संदेश बड़ा सार्थक सिद्ध हुआ है:-

नामा कहै तिलोचना मुख ते राम समालि॥

हाथ पाउ करि काम सभु चीतु निरंजन नालि॥ गु.ग्रं. स. अंग 1375

भक्त कबीर जी का भी यही विचार है:

नगन फिरत जो पाईऐ जोग॥ बण का मिर्ग मुक्त सभु होगु॥

क्या नागे क्या बढे चाम॥ जब नही चीनसि आत्म राम॥

मूंड मूंडाए जौ सिधि पाई॥ मुक्ति भेड ना गईया काई॥

बिंदु राखि जौ तरीऐ भाई॥ खुसरै क्यो न परमगति पाई॥

कहु कबीर सुनहु नर भाई॥ राम नाम बिनु किनि गति पाई॥ गु.ग्रं.स.अंग 324

गुरु वाणीकारों की तरह भक्त कवियों ने भी प्रभु को घट-घट में बसा हुआ बताया है। इसलिए जोग, सन्यास और कर्महीन क्रियाओं को त्यागकर प्रभु कि उपस्थिति को रोम-रोम में अहसास करवाया है। कबीर जी कहते हैं:

लोगा भ्रमि ना भूलहु भाई॥

खालिकु खलक खलक महि खालिकु पूरि रहिओ सर्व ठाई॥ गु.ग्रं. स. अंग 1350

इस प्रकार नाम के बारे में, सतगुरु के बारे में, परमात्मा के बारे में, दलितों के बारे में, स्त्री के बारे में भक्त कवियों के विचार गुरु कवियों के बिल्कुल अनुकूल हैं। इस सन्दर्भ में कबीर जी कहते हैं:-

अंतरि मैलु जे तीर्थ नावै तिसु बैकुंठ ना जाना॥

लोक पतीणे कछू ना होवै नाही रामु अयाना॥ गु.ग्रं. स. अंग 484

इस प्रकार भक्ति लहर के प्रकरण में यह बात स्पष्ट तौर पर उभर कर सामने आती है कि पहले भक्त कवियों जैसे कि नामदेव की विचारधारा से गुरु नानक प्रभावित हुए और उन्होंने प्रभावित भी किया। सिक्खों का “शब्द गुरु” सिक्ख गुरुओं के साथ ही संतों भक्तों का भी आत्मिक प्रकटीकरण है। आज के युग सन्दर्भ में भाईचारे, सदाचार और मानवता की उत्तम और अपने आपमें एक मिसाल गुरु ग्रंथ साहिब जी हैं।

कबीर वाणी चिरंजीवी साहित्यिक, अध्यात्मिक और समाजिक मूल्योंकी धारणी है। यह भक्ति लहर की रचना है और खास तौर पर उत्तर भारत के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक लोक-जीवन की तस्वीर है। कबीर-वाणी उत्तरी भारत कि संत-परंपरा की प्रतिनिधी रचना है। निर्गुण विचारधारा में कबीर वाणी की एक अनोखी भूमिका है। दक्षिणी भारत में पैदा हुआ भक्ति-आन्दोलन कबीर के पास आकर बिल्कुल परंपरागत- अध्यात्मवादी नहीं रह जाता बल्कि एक अध्यात्मवादी-समाजिक लहर बन जाता है। इस लहर के अंतर्गत पहली बार मध्यकाली समाज में जाति-पाति, रंग, नस्ल और वर्ग भेद के प्रश्न एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण से उठाए जाने लगे। उस समय लगभग सारे संत कवियों की रचना का केंद्र-बिंदु आध्यात्मिकता को एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करना बन गया था। फलस्वरूप पूरे उत्तर भारत के जनजीवन में सांस्कृतिक क्रांति के बीज उग गए। यह मध्ययुगीन पुनर्जागरण कबीर और अन्य संत कवियों के यत्नों का ही फल था।

गुरु ग्रंथ साहिब मध्यकालीन भारतीय चिन्तन और संस्कृति की एक प्रमाणिक रचना है। कबीर वाणी का एक बड़ा प्रमाणिक स्रोत गुरु ग्रंथ साहिब है जिसका संपादन सिक्खों के पांचवें गुरु अर्जन देव जी ने सन 1604 ई. में किया। इसमें सिक्ख गुरु साहिबान कि वाणी के बिना संतों, भक्तों, फकीरों और भट्टों की वाणी भी दर्ज है। गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज कबीर वाणी मात्रा में सब भक्तों की वाणी से ज्यादा है। गुणात्मक पक्ष से भी इस वाणी का बहुत महत्व है। गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित कबीर-वाणी समूचे कबीर-साहित्य कि प्रतिनिधी रचना है, जिस में कबीर जी का समुचित अध्यात्मिक चिन्तन, सामाजिक विचारधारा और धार्मिक जीवन दर्शन प्रस्तुत हुआ है। शर्मिक और सांस्कृतिक समन्वय का संदेश गुरु ग्रंथ साहिब के समूचे चिन्तन और विचारधारा का एक विशेष अंग है। कबीर-वाणी भी गुरुमत विचारधारा के इन बुनियादी सिद्धांतों को उभारती है। इस तरह हम कह सकते हैं कि कबीर-वाणी का मध्यकाल के सबसे ज्यादा प्रगतिशील विचारों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले धार्मिक ग्रंथ गुरु ग्रंथ साहिब में पेश किया जाना ही इसी विचारधारा को प्रकट करता है।

ऐसी मौलिक धार्मिक-विचारधारा के धारणी कबीर धर्म के आडंबर पूर्ण स्वरूप को छोड़कर एक ही पूर्ण परमात्मा कि भक्ति पर जोर देते हैं:

ना मैं जोग ध्यान चित लाया॥

बिनु बैराग न छूटिस माया॥

कैसे जीवन्तु होइ हमारा॥

जब ना होइ राम नाम अधारा॥ रहाउ॥

कहु कबीर खोजउ असमान राम समान न देखउ आन॥ गु.ग्रं. स. अंग 329

गुरुमतवाणी में प्रस्तुत आपसी समन्वय का एक बड़ा मजबूत आधार उनकी धर्मनिरपेक्ष चेतना बनती है। धर्म के नाम पर हुए भेदभाव का भक्त कबीर विरोध करते हैं। उनके लिए हिन्दू मुसलमान दोनों बराबर हैं इसलिए उन्होंने दोनों धर्मों के झूठे आडंबरीय स्वरूप का खंडन किया है। वो कहते हैं:

कबीर ठाकुर पूजहि मोलि ले मनहठि तीरथ जाहि॥

देखा देखी स्वांग धरि भूले भटका खाहि॥ गु.ग्रं. स. अंग 1371

या फिर कहते हैं:

कबीर मुल्ला मुनारे क्या चढे साईं न बहरा होये॥

जा कारन तूं बांग देहि ही भीतर जोये॥

गु.ग्रं. स. अंग 1374

इस प्रकार समकालीन समाज में प्रचलित अर्थहीन पुरातन और परंपरागत मूल्यों के स्थान पर कबीर-वाणी में एक नवीन मध्ययुगी चेतना प्रस्तुत हुई जिस अनुसार कोई भी मनुष्य धर्म, रंग, नस्ल, वर्ग और स्थिति के आधार पर अलग नहीं बल्कि एक परमात्मा कि कृति माने जाने लगे ।

निष्कर्ष-

कबीर-वाणी जहाँ एक प्रगतिशील सोच कि धारणी बनकर आपसी समन्वय का संदेश देती है वहाँ काव्य गुणों कि तरफसे भी भरी पूरी रचना है। किसी भी विद्रोही स्वर वाले कवि की सबसे बड़ी काव्य जुगत उसकी समकालीन सामाजिक कुरीतियों पर कड़ा व्यंग होता है। कबीर वाणी में जगह-जगह पर धर्म के ठेकेदारों और नस्ल और जाति के आधार पर भेदभाव करने वालों पर करारा व्यंग किया गया है। पंडितों द्वारा खरीदे हुए ठाकुर की पूजा, माला फेरने, साढ़े तीन गज की धोती पहनने वालों को भक्त नहीं बल्कि बनारस के ठग कहकर और मुल्ला को दिल में भगवान बसने के बावजूद भी कोठे चढ़ कर बांग देने पर भरपूर व्यंग किया है। इसके मुकाबले एक परमात्मा कि भक्ति करने और हर प्रकार के भेदभाव भुला कर मानवजाति को भाईचारे का संदेश दिया है।

नाट्य साहित्य में डॉ. सिद्धनाथ कुमार का योगदान

रोशन कुमार

शोधार्थी, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

डॉ० सिद्धनाथ कुमार हिन्दी के एक सफल कवि एवं रेडियो के नाटककार हैं। उनका जन्म सहनी पट्टी (बक्सर) में 13 अगस्त 1927 ई० में हुआ था। उन्होंने हिन्दी में बी०ए० (आनर्स) किया। फिर एम.ए. की परीक्षा पास कर जैन कॉलेज, सासाराम से हिन्दी विभाग में प्राध्यापक का कार्य करने लगे। जुलाई 1956 ई० से 1959 ई० तक वे आकाशवाणी, पटना के वार्ता-विभाग में सहायक-प्रोड्यूसर के पद पर कार्यरत रहे। तदन्तर, डॉ० कुमार ने राँची विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक पद को सुशोभित किया।

डॉ० कुमार ने आकाशवाणी के पटना केन्द्र में 1952 ई० में नाटक लेखन प्रारम्भ किया। वैसे उन्होंने 1948 ई० से ही नाट्य-लेखन आरम्भ कर दिया था। डॉ० कुमार के प्रकाशित साहित्य की सूची इस प्रकार है -

1. कवि (गीति-नाट्य, सम्प्रति, 'सृष्टि की साँझ' के द्वितीय संस्करण में संकलित कर दिया गया है।)
2. सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य-नाटक
3. टूटा हुआ आदमी (काव्य-संग्रह)
4. रंग और रूप (रेडिया-नाटक-संग्रह)

'सृष्टि की साँझ' और अन्य काव्य नाटक में संकलित 'कवि' (गीति-नाट्य) उनकी प्रथम रचना है, जिसका प्रकाशन 1951 ई० में हुआ था।

'कवि' गीति नाट्य में आज के कवि मानस के अर्न्तद्धों का चित्रण हुआ है। कवि के मानस की कल्पना- रानी चाहती है कि उसे संसार के उत्पीड़न से दूर कल्पना-लोक के स्वर्गिक आनंद-वन में ले जाये। पर जीवन कवि को धरा से बंधे रहने को बाध्य करता है। कवि जब जीवन की यथार्थ को नजदीक से देखता है, तब उसे कल्पना के सुभग पंखों से उड़ने की, उड़कर छायावान में विचरने की चाह मिट जाती है। वह जीवन के दुःख-दैन्य के बीच रहकर चेतना का गीत गाना चाहता है। कल्पना भी सहमत हो जाती है और कवि चल पड़ता है- जागृत-गीत लिखने, जिसकी अग्नि-शिखा में जग का कलुष, वैषम्य और द्वेष जलकर रखा हो जाय और जगत् की नयी रचना हो, जिसमें समता, विश्वास और प्रेम में मनु की संतान सुखद जीवन बिता सके।

इस गीति-नाट्य में कवि प्रमुख पात्र है। कल्पना का मानवीकरण हुआ है। अन्य पात्र मजदूर, किसान, पुरुष, स्त्री- अपनी दुरावस्था की कहानी कहकर कवि को यथार्थ का परिचय देते हैं।

'कवि एक एकांकी हैं, जिसमें तीन दृश्यों की योजना की गयी है। प्रथम दृश्य में कवि-कल्पना की भेंट और वार्तालाप, द्वितीय दृश्य में उनके जीवन का प्रवेश और उसका कवि को यथार्थ-बोध से अवगत करना, तृतीय दृश्य में कवि को जगत् का हाहाकार सुनाई पड़ना, यह कृषक, मजदूर, पुरुष, नारी और बालकों के मुख से सुनना और अंत में, कवि चल पड़ना, जीवन के बीत लिखने, कल्पना के संग।

यह नाट्य पूर्णतः मुक्त छंद है। इसमें गीतों की संख्या चार है, जिसमें तुक की योजना है। संवाद प्रायः लम्बे हैं। इसकी भाषा तत्सम प्रधान है। इसमें सुन्दर बिम्बों का निर्माण हुआ है; यथा -

“संध्या बीती
अनुराग-भरी रजनी भी तो
परिधान समेटे हाथों में
वेणी के फूलों को बिखरा
हो म्लान मुखी,
मन्थर गति से
जाने, किस दिशि को चली गई।”

रंग संकेत सर्वत्र दिये गये हैं। अभिनेयता की दृष्टि से विचार करने पर कवि (गीति-नाट्य) पूर्णतः अभिनेय है। किन्तु साहित्यिक वर्ग के दर्शक ही इससे विशेष रस प्राप्त कर पायेंगे।

नाटककार का उद्देश्य कवियों को जगत् की जागृति का संदेश है।

डॉ० सिद्धनाथ की द्वितीय रचना 'सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य' नाटक है। नाटककार के शब्दों में- “ये काव्य-नाटक रंगमंच के लिए नहीं, रेडियो के लिए लिखे गए हैं और ऑल इण्डिया रेडिया के कई स्टेशनों से कई बार प्रसारित हो चुकी है। इन नाटकों का विश्लेषण रेडियो-नाटक के लिए रंगमंच

की सीमायें टूट जाती हैं। संकलन- त्रय, काल-व्यवधान, दृश्य-नियोजन की कठिनाइयाँ, साज-सज्जा इत्यादि का झंझट समाप्त हो जाता है। पर इन सीमाओं के टूटने के साथ ही रेडियों को ऐसे नाटक प्रस्तुत करने होते हैं, जिनसे सभी वर्ग के श्रोताओं में जिज्ञासा बनी रहे।

‘सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य नाटक में डॉ० कुमार के निम्नलिखित छः काव्य-नाटक संकलित हैं- (क) सृष्टि की सांझ, (ख) लौह-देवता, (ग) संघर्ष, (घ) विकलांगों का देश, (ङ.) बादलों का शाप, (च) कवि।

सृष्टि की सांझ

डॉ० सिद्धनाथ कुमार के इस काव्य-नाटक की समस्या युद्ध की है। युद्ध शांति, न्याय और आदर्श के रक्षार्थ किया जाता है। पर, युद्ध के बाद युद्धों की श्रृंखला क्यों बन जाती है?— इस समस्या पर प्रस्तुत काव्य-नाटक में विचार हुआ है। अपने विचार का प्रस्तुतिकरण डॉ० कुमार ने बहुत सलीके से किया है

तृतीय विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका है। एटम बमों ने वसुंधरा को श्मशान-सा बना दिया है। प्राणियों के नाम पर चार पात्र बचे हैं— सेनानायक, महामात्य, अजय और रेखा। कथानक कल्पना पर आधारित है। इसमें वर्तमान अस्त्र-शस्त्रों की होड़ में संलग्न सभी राष्ट्रों पर प्रकाश डाला गया है। यह एक एकांकी है। इसमें दृश्य भी एक ही है। कथावस्तु जिज्ञासा-मूलक है। संवाद गतिमय है। भाषा तत्सम प्रधान है।

लौह-देवता

वर्तमान युग में मशीन का अत्यधिक विकास हो रहा है, यंत्र का विकास इतना हो रहा है कि कुछ वर्षों में मानो मानव-श्रम की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। फिर भी, आज का मानव भूखा नंगा और महामारी इत्यादि से पीडित है। आखिर क्यों? क्या यह दोष यंत्र का है? यही समस्या इस काव्य-नाटक का विचार बिन्दू है।

‘लौह-देवता’ इस काव्य-नाटक का नायक है। लौह-देवता प्रसन्न होता है और यंत्र-युग का विकास होने लगता है। ट्रैक्टर से लेकर विमान, टेलीफोन, मोबाईल इत्यादि सब कुछ का विकास द्रुत गति से हो रहा है। सम्पूर्ण काव्य-नाटक मुक्त छंद में है। संवाद छोटे-छोटे, गतिमान एवं चुस्त हैं। भाषा तत्सम प्रधान एवं पात्रोचित है।

संघर्ष

संघर्ष की कहानी, छेनी और हथौड़ी के सहारे बेजान पत्थरों में जान डालने वाले मूर्तिकार पंकज की है। साधक पंकज की पारिवारिक दरिद्रता, उसे विक्षुब्ध कर देती है। वह अपनी पत्नी बेला के सपने को भी पूरा करने में असमर्थ है और बीमार पुत्र मोहन की दवा कराने में भी। पंकज अपनी कलाकृतियों का निर्माण कर आर्थिक विपन्नता से उबरने के साथ-साथ अपना नाम अमर करना चाहते हैं। इन्हीं संघर्षों को लेकर डॉ० कुमार इस काव्य-नाटक का ताना-बाना बनाये हैं। अन्त में, पंकज आत्म-संतोष हेतु मूर्ति निर्माण में संलग्न हो जाता है।

संघर्ष का प्रमुख पात्र पंकज है। पंकज के अलावा उसका मन, पत्नी, बेला, पुत्र मोहन अन्य पात्र हैं। संवाद मुक्त छंद है। दो-तीन पृष्ठावलोकन के दृश्यों के संवाद गद्य में लिखे गये हैं। पद्य की तुलना में गद्य संवाद अधिक चुस्त है; जैसे —

मोहन — माँ! माँ!

बेला — क्या है बेटा? प्यास लगी है क्या?

मोहन— हाँ! माँ पानी दे।

बेला — पहले दवा पीले, फिर पानी पीना।

मोहन — नहीं माँ, यह दवा नहीं पीऊँगा, बड़ी कड़वी लगती है।

विकलांगों का देश

डॉ० सिद्धनाथ कुमार ने अपने इस काव्य-नाटक में दर्शाया है कि जिस देश में व्यक्ति का संपूर्ण विकास नहीं होता, उस देश के व्यक्ति विकलांग होते हैं।

विकलांगों के देश में वृद्ध, बालक, युवक सभी विकलांग हैं। युवक योग्य होकर भी बेकार हैं। इस नाटक में दिखाया गया है कि योग्य-युवकों को उनकी क्षमता के अनुरूप विकास करने का मौका नहीं मिल पाता और कुछ लावारिस होकर जाते हैं।

अन्त में डॉ० कुमार कामनाप करते हैं —

“हमे चाहिए मुक्त धरा औ,
हमें मुक्त आकाश चाहिए।
हमें चाहिए देश, जहाँ पर
मुक्त रहे सब प्राणी
मुक्त स्वरो से जागे प्रतिपल

मुक्त हृदय की वाणी,
सीमाओं से हीन जगत में,
हमको मुक्त विकास चाहिए।

इस काव्य-नाटक की रचना मुक्त-छंद से हुई है। यत्र-तत्र गीत भी दिये गये हैं। संवाद की भाषा सरल है।

बादलों का शाप

डॉ. सिद्धनाथ कुमार का काव्य-नाटक 'बादलों का शाप' का प्रतिपाद्य संसार की विषमता के कारणों की खोज है। साधारणतः, लोग इसे विधि की विडम्बना समझते हैं। डॉ० कुमार के अनुसार, संसार की विषमता विधि के लेख नहीं वरन् कुछ लोगों का प्रपंच है, जिन्होंने मनुष्य के सुख-साधनों को कैद कर रखा है। मनुष्य को इस अभिशाप से मुक्त होना है तभी धरा शाप-मुक्त होकर मंगलमय-भविष्य की सृष्टि कर सकेगी। नाटक ने सारे तथ्यों को प्रतीक शैली में प्रस्तुत किया है।

'बादलों का शाप' मुक्त छंद में लिखा गया है। संवाद की भाषा तत्सम-प्रधान है। इस एकांकी में कहीं-कहीं बहुत अच्छे बिम्ब दिये गये हैं; जैसे-

“धरती जब प्रमुदित होती थी,
श्यामल परिधान लपेटे अपने अंगों में
थिरका करती थी,
गाती थी,
जल की फुहार से नहा-नहा
निज मधुमय स्मृति बिखराती थी।”

ऐसे स्थलों पर मानवीकरण द्रष्टव्य है।

अन्त में, नाटककार स्पष्ट उद्घोषणा करता है-

“मानव-निर्मित वैषम्य
न हम सब सह सकते,
उसका प्रतिकार
हमें मिलकर करना होगा।”

रंग और रूप

'रंग और रूप' रेडियो नाटक का एक संकलन है। यह संकलन अप्राप्य है। किन्तु, इसी संकलन से एक रेडियो-नाटक 'वे अब भी क्वारी हैं' का उद्धरण नाटककार ने अपनी पुस्तक 'रेडियो-नाट्य-शिल्प' में प्रस्तुत किया है।

वे अब भी क्वारी हैं -

यह रेडियो-एकांकी एक फैंटेसी है। इसमें डॉ० कुमार ने कल्पना के सहारे कालिदास विरचित 'अभिज्ञान-शाकुंतलम्' की दो उपेक्षित स्त्री-पात्रों के दुःख दर्द की कहानी वर्णित किया है। ये उपेक्षिताएँ शकुंतला की सखियाँ और तपस्विनियाँ- प्रियंवदा और अनसूया-- हैं। इस नाटक के बहाने नाटककार काव्य की उपेक्षिताओं को कल्पना की भावभूमि पर बखूबी उतारने का प्रयत्न किया।

इस रेडियो नामक में पृष्ठावलोकन की शैली में अतीत को रूपायित किया गया है। काल की दूरी तय करने के लिए ध्वनि का सहारा लिया गया है।

सम्पूर्ण एकांकी खड़ी बोली गद्य में है। संवाद छोटे-छोटे, गतिशील एवं चुस्त हैं। भाषा तत्सम-प्रधान एवं पात्रोचित है।

आधार ग्रंथ

सृष्टि की सांझ और अन्य काव्य नाटक

रंग और रूप

वे अब भी क्वारी हैं

भारत में राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम

डॉ० जया भारती

असिस्टेंट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव नगर निगम महिला महाविद्यालय, कानपुर

सारांश (ABSTRACT)—मानव स्वास्थ्य ने न केवल समाज की प्रतिरक्षा को प्रभावित किया, बल्कि सामाजिक संरचनाओं, संस्कृति, राजनीति और अर्थशास्त्र को भी प्रभावित किया। केंद्रीय स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय प्रमुख संचारी रोगों के स्वास्थ्य, रोकथाम और नियंत्रण और पारंपरिक और स्वदेशी दवाओं की प्रणाली को बढ़ावा देने के क्षेत्रों में राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए महत्वपूर्ण और जिम्मेदार है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017, स्वास्थ्य प्रणालियों को उसके सभी आयामों में आकार देने में सरकार की भूमिका को सूचित, स्पष्ट, मजबूत और प्राथमिकता देना है— स्वास्थ्य, संगठन और स्वास्थ्य सेवाओं के वित्तपोषण, बीमारियों की रोकथाम और क्रॉस के माध्यम से अच्छे स्वास्थ्य को बढ़ावा देना। क्षेत्रीय कार्यवाई, प्रौद्योगिकियों तक पहुंच, मानव संसाधन विकसित करना, चिकित्सा बहुलवाद को प्रोत्साहित करना, बेहतर स्वास्थ्य के लिए आवश्यक ज्ञान आधार का निर्माण, वित्तीय सुरक्षा रणनीतियों और स्वास्थ्य के लिए विनियमन और प्रगतिशील आश्वासन। यह नीति देश भर में सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थानों को फिर से उन्मुख करने और मजबूत करने पर जोर देती है, ताकि मुफ्त दवाओं, निदान और अन्य आवश्यक स्वास्थ्य देखभाल के लिए सार्वभौमिक पहुंच प्रदान की जा सके।

राष्ट्रीय कैंसर नियंत्रण कार्यक्रम (National Cancer Control Programme) –स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा कैंसर की प्राथमिक रोकथाम के संबंध में तंबाकू के सेवन के खतरे और गर्भाशय ग्रीवा के कैंसर की रोकथाम के लिए जननांग स्वच्छता की आवश्यकता आदि।

कैंसर एक महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है, जिसके हर साल 8 से 9 लाख मामले सामने आते हैं। किसी भी समय, यह अनुमान लगाया जाता है कि देश में लगभग 25 लाख मामले हैं। हर साल लगभग 4 लाख मौतें कैंसर से होती हैं। देश में 40 फीसदी कैंसर तंबाकू के सेवन से होते हैं। राष्ट्रीय कैंसर रजिस्ट्री कार्यक्रम के तहत जनसंख्या आधारित रजिस्ट्रियों के आंकड़ों से संकेत मिलता है कि पुरुषों में कैंसर के प्रमुख स्थान मौखिक गुहा, फेफड़े, अन्नप्रणाली और पेट के कैंसर हैं और महिलाओं में गर्भाशय ग्रीवा, स्तन और मौखिक गुहा का कैंसर है। भारत में कैंसर से होने वाली मौतों का 50% से अधिक हिस्सा पुरुषों में मौखिक और फेफड़ों और महिलाओं में गर्भाशय ग्रीवा और स्तन कैंसर है।

1. एनसीसीपी का विकास 1975-76 राष्ट्रीय कैंसर नियंत्रण कार्यक्रम प्रमुख कैंसर अस्पताल/संस्थानों को सुसज्जित करने के लिए दी गई प्राथमिकताओं के साथ शुरू किया गया था। कोबाल्ट मशीनों की खरीद के लिए प्रत्येक संस्था को 2.50 लाख रुपये की केंद्रीय सहायता दी गई।
2. 1984-85 रणनीति को संशोधित किया गया और प्राथमिक रोकथाम और कैंसर के मामलों का जल्द पता लगाने पर जोर दिया गया।
3. 1990-91 जिला कैंसर नियंत्रण कार्यक्रम चयनित जिलों (मेडिकल कॉलेज अस्पतालों के पास) में शुरू किया गया था।
4. 2000-01 संशोधित जिला कैंसर नियंत्रण कार्यक्रम शुरू किया गया।
5. 2004 एनसीसीपी का मूल्यांकन राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली द्वारा किया गया था।
6. 2005 मूल्यांकन के बाद कार्यक्रम को और संशोधित किया गया।

बहरेपन की रोकथाम और नियंत्रण के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (एनपीपीसीडी) (National Program for Prevention and Control of Deafness (NPPCD))—बीमारी या चोट आदि के कारण होने वाली सुनवाई हानि को रोकने के लिए।

श्रवण हानि आज मनुष्यों में सबसे आम संवेदी कमी है। डब्ल्यूएचओ के अनुमानों के अनुसार भारत में लगभग 63 मिलियन लोग हैं, जो महत्वपूर्ण श्रवण हानि से पीड़ित हैं; यह भारतीय आबादी में अनुमानित प्रसार 6.3% रखता है। एनएसएसओ के सर्वेक्षण के अनुसार, वर्तमान में प्रति एक लाख की आबादी पर 291 व्यक्ति हैं जो गंभीर से लेकर गंभीर श्रवण हानि (एनएसएसओ, 2001) से पीड़ित हैं। इनमें से एक बड़ा प्रतिशत 0 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों का है। इतनी बड़ी संख्या में श्रवण बाधित युवा भारतीयों के साथ, यह शारीरिक और आर्थिक दोनों तरह से उत्पादकता की एक गंभीर हानि है। हमारी आबादी का एक बड़ा प्रतिशत सुनने की हानि और एकतरफा (एक तरफा) सुनवाई हानि की मामूली डिग्री से ग्रस्त है।

कार्यक्रम के घटक-1) जनशक्ति प्रशिक्षण और विकास – श्रवण बाधित और बहरेपन के मामलों की रोकथाम, शीघ्र पहचान और प्रबंधन के लिए, मेडिकल कॉलेज स्तर के विशेषज्ञों (ईएनटी और ऑडियोलॉजी) से जमीनी स्तर के कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण प्रदान किया जाएगा।

- 2) क्षमता निर्माण – ईएनटी/ऑडियोलॉजी इंफ्रास्ट्रक्चर के संबंध में जिला अस्पताल, सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के लिए।
- 3) सेवा प्रावधान – स्वास्थ्य देखभाल वितरण प्रणाली के विभिन्न स्तरों पर सुनवाई और भाषण बिगड़ा मामलों और पुनर्वास का शीघ्र पता लगाना और प्रबंधन।

4) आईईसी/बीसीसी गतिविधियों के माध्यम से जागरूकता पैदा करना ख श्रवण बाधितों, विशेषकर बच्चों की शीघ्र पहचान के लिए ताकि ऐसे मामलों का समय पर प्रबंधन संभव हो और बहरेपन से जुड़े कलंक को दूर किया जा सके।

जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम (एनएमएचपी) (District Mental Health Program (NMHP)) - निकट भविष्य में सभी के लिए न्यूनतम मानसिक स्वास्थ्य देखभाल की उपलब्धता और पहुंच सुनिश्चित करने के लिए, विशेष रूप से आबादी के सबसे कमजोर और वंचित वर्गों के लिए।

जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम (डीएमएचपी) राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम (एनएमएचपी) के तहत मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं को विकेंद्रीकृत करने और मानसिक स्वास्थ्य को सामान्य स्वास्थ्य सेवा वितरण प्रणाली के साथ एकीकृत करके सामुदायिक स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य सेवा प्रदान करने के लिए शुरू किया गया था। छठहत्तम को वर्ष 1982 में अपनाया गया था। भारत इस कार्यक्रम को अपनाने वाले पहले विकासशील देशों में से एक था। कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे:

1. निकट भविष्य में सभी के लिए विशेष रूप से आबादी के सबसे कमजोर और वंचित वर्गों के लिए न्यूनतम मानसिक स्वास्थ्य देखभाल की उपलब्धता और पहुंच सुनिश्चित करना।
2. सामान्य स्वास्थ्य देखभाल और सामाजिक विकास में मानसिक स्वास्थ्य ज्ञान के अनुप्रयोग को प्रोत्साहित करें
3. मानसिक स्वास्थ्य सेवा विकास में सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देना और समुदाय में स्वयं सहायता की दिशा में प्रयासों को प्रोत्साहित करना।

राष्ट्रीय कुष्ठ उन्मूलन कार्यक्रम (National Leprosy Eradication Program) - कुष्ठ रोग के सभी ज्ञात मामलों में रोग गतिविधि को रोकना।

राष्ट्रीय कुष्ठ नियंत्रण कार्यक्रम (एनएलसीपी) सरकार द्वारा शुरू किया गया था। भारत में 1954-55 में। मल्टी ड्रग थेरेपी (एमडीटी) 1982 से व्यापक रूप से उपयोग में आई, और राष्ट्रीय कुष्ठ उन्मूलन कार्यक्रम 1983 में शुरू किया गया था। एनएलसीपी की रणनीति देश में संक्रमण की मात्रा में कमी के माध्यम से रोग को नियंत्रित करने पर आधारित थी। जनसंख्या और संक्रामक स्रोत में कमी, इस प्रकार रोग संचरण की श्रृंखला को तोड़ना। कार्यक्रम शुरू में स्थानिक जिलों में शुरू किया गया था और 1993-94 से विश्व बैंक सहायक के साथ देश के सभी जिलों में विस्तारित किया गया था। चार अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान सीधे डीजीएचएस के तहत स्थापित किए गए थे, अर्थात् केंद्रीय कुष्ठ प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान संस्थान (CLTRI) चेंगलपटूर, क्षेत्रीय कुष्ठ प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान (RLTRI) रायपुर, गौरीपुर और अस्का में। इसके अलावा, ICMR के तहत आगरा में एक प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किया गया था। देश में बीमारी के बोझ को कम करने में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। भारत ने राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2002 द्वारा एक सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या के रूप में कुष्ठ उन्मूलन के लक्ष्य को हासिल किया, जिसे राष्ट्रीय स्तर पर दिसंबर 2005 में प्रति 10,000 जनसंख्या पर 1 से कम मामले के रूप में परिभाषित किया गया था।

उद्देश्य:

- क) उप-राष्ट्रीय और जिला स्तर पर जनसंख्या 1/10000 से कम प्रसार दर को कम करना।
- बी) राष्ट्रीय स्तर पर नए मामलों में ग्रेड II विकलांगता% <1 को कम करने के लिए
- ग) राष्ट्रीय स्तर पर ग्रेड II विकलांगता के मामलों को कम करने के लिए <1 मामला प्रति मिलियन जनसंख्या पर।
- घ) नए बाल मामलों में शून्य विकलांगता।
- ई) कुष्ठ रोग से प्रभावित व्यक्तियों के खिलाफ शून्य कलंक और भेदभाव।

राष्ट्रीय तंबाकू नियंत्रण कार्यक्रम (National Tobacco Control Program) - युवा लोगों में धूम्रपान की शुरुआत को रोकना, धूम्रपान करने वालों को धूम्रपान छोड़ने के लिए शिक्षित करना, प्रेरित करना और उनकी सहायता करना आदि।

भारत सरकार ने वर्ष 2007-08 में 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान राष्ट्रीय तंबाकू नियंत्रण कार्यक्रम (एनटीसीपी) शुरू किया, जिसका उद्देश्य (i) तंबाकू सेवन के हानिकारक प्रभावों के बारे में जागरूकता पैदा करना, (ii) उत्पादन को कम करना था। और तंबाकू उत्पादों की आपूर्ति, (iii) षसिगरेट और अन्य तंबाकू उत्पाद (विज्ञापन का निषेध और व्यापार और वाणिज्य, उत्पादन, आपूर्ति और वितरण का विनियमन) अधिनियम, 2003- (सीओटीपीए) (iv) के तहत प्रावधानों का प्रभावी कार्यान्वयन सुनिश्चित करें। तंबाकू का उपयोग छोड़ने में लोगों की मदद करना, और (v) तंबाकू नियंत्रण के डब्ल्यूएचओ फ्रेमवर्क कन्वेंशन द्वारा वकालत की गई तंबाकू की रोकथाम और नियंत्रण के लिए रणनीतियों के कार्यान्वयन की सुविधा प्रदान करना। 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 42 जिलों को शामिल करते हुए 21 राज्यों में एनटीसीपी लागू किया गया था। 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान एनटीसीपी द्वारा उत्पन्न गति और वैश्विक वयस्क तंबाकू सर्वेक्षण (जीएटीएस) भारत 2009-2010 के माध्यम से उत्पन्न आधारभूत आंकड़ों को आगे बढ़ाने के लिए, जो तंबाकू के उपयोग के उच्च स्तर के प्रसार को दर्शाता है, इसे 12वें पंचवर्षीय में बढ़ाया गया था। 12वीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक तंबाकू के उपयोग के प्रसार को 5% तक कम करने के लक्ष्य के साथ योजना बनाएं। GATS के दूसरे दौर के अनुसार, तंबाकू उपयोगकर्ताओं की संख्या में लगभग 81 लाख (8.1 मिलियन) की कमी आई है।

एनटीसीपी के लिए मुख्य जोर क्षेत्र निम्नानुसार हैं:

1. स्वास्थ्य और सामाजिक कार्यकर्ताओं, गैर सरकारी संगठनों, स्कूल शिक्षकों और प्रवर्तन अधिकारियों का प्रशिक्षण;
2. सूचना, शिक्षा और संचार (आईईसी) गतिविधियां;
3. स्कूल कार्यक्रम;
4. तंबाकू नियंत्रण कानूनों की निगरानी;
5. ग्राम स्तर की गतिविधियों के लिए पंचायती राज संस्थाओं के साथ समन्वय;
6. जिला स्तर पर औषधीय उपचार सुविधाओं के प्रावधान सहित समाप्ति सुविधाओं की स्थापना और सुदृढ़ीकरण।

बुजुर्गों के लिए स्वास्थ्य देखभाल का राष्ट्रीय कार्यक्रम (एनपीएचसीई) (National Program of Health Care for the Elderly (NPHCE)) - देश की स्वास्थ्य देखभाल वितरण प्रणाली आदि के विभिन्न स्तरों पर बुजुर्ग व्यक्तियों को निवारक, उपचारात्मक और पुनर्वास सेवाएं प्रदान करना।

“वृद्ध व्यक्तियों पर राष्ट्रीय नीति में की गई सिफारिशों के साथ-साथ पिता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के रखरखाव और कल्याण अधिनियम 2007” के तहत राज्य के दायित्व को ध्यान में रखते हुए, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय ने राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू किया। वृद्धजनों की स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न समस्याओं का समाधान करने के लिए 11वीं योजना अवधि में वर्ष 2010 के दौरान बुजुर्गों की स्वास्थ्य देखभाल- (एनपीएचसीई)। उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित रणनीतियों को अपनाया जाएगा:

1. निवारक और प्रोत्साहक देखभाल: नियमित शारीरिक व्यायाम, संतुलित आहार, शाकाहार, तनाव प्रबंधन, धूम्रपान या तंबाकू उत्पादों से बचने और गिरने की रोकथाम आदि जैसी निवारक और प्रोत्साहन स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं घरेलू यात्राओं के माध्यम से स्वास्थ्य प्रथाओं तक पहुंच का विस्तार करके प्रदान की जाती हैं। प्रशिक्षित स्वास्थ्य कर्मियों द्वारा। वे वृद्ध व्यक्तियों की देखभाल के साथ-साथ उनके परिवार के सदस्यों को स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करेंगे। इसके अलावा, पीएचसी में साप्ताहिक क्लिनिक का आयोजन करके किसी भी बीमारी या बीमारी के लिए वृद्ध व्यक्तियों की नियमित निगरानी और मूल्यांकन किया जाता है।
2. बीमारी का प्रबंधन: राज्य सरकारों को केंद्रीय सहायता प्रदान करके पुरानी और अक्षम करने वाली बीमारियों के प्रबंधन के लिए पीएचसी, सीएचसी, जिला अस्पतालों और क्षेत्रीय जराचिकित्सा केंद्रों में समर्पित आउटडोर और इनडोर रोगी सेवाओं का विकास किया जाएगा।
3. वृद्धावस्था सेवाओं के लिए स्वास्थ्य जनशक्ति विकास: वृद्धावस्था चिकित्सा में प्रशिक्षित चिकित्सा और पैरा-मेडिकल पेशेवरों की कमी को दूर करने के लिए, चिकित्सा महाविद्यालयों और क्षेत्रीय संस्थानों की मदद से तैयार किए गए मानक प्रशिक्षण मॉड्यूल का उपयोग करके स्वास्थ्य जनशक्ति को सेवा प्रशिक्षण दिया जाएगा। वृद्धावस्था चिकित्सा में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम क्षेत्रीय जराचिकित्सा केंद्रों में शुरू किए जाएंगे, जिसके लिए इन संस्थानों को अतिरिक्त शिक्षण और सहायक संकाय प्रदान किए जाते हैं।
4. चिकित्सा पुनर्वास और चिकित्सीय हस्तक्षेप: सीएचसी, जिला अस्पताल और क्षेत्रीय जराचिकित्सा केंद्र स्तरों पर फिजियोथेरेपी इकाई के माध्यम से चिकित्सीय अभ्यास, दैनिक जीवन की गतिविधियों में प्रशिक्षण (एडीएल) और दर्द और सूजन के उपचार जैसे चिकित्सीय तौर-तरीकों की व्यवस्था करके जिसके लिए आवश्यक बुनियादी ढांचा, दवा और उपकरण इन चिन्हित इकाइयों को प्रदान किया जाता है।

राष्ट्रीय वेक्टर जनित रोग नियंत्रण कार्यक्रम (National Vector Borne Disease Control Program) - वेक्टर जनित रोगों की रोकथाम और नियंत्रण के लिए - राष्ट्रीय वेक्टर जनित रोग नियंत्रण कार्यक्रम (एनवीबीडीसीपी) मलेरिया और अन्य वेक्टर जनित रोगों की रोकथाम और नियंत्रण के लिए एक छाता कार्यक्रम है, जैसे कि लिम्फेटिक फाइलेरिया, काला-अजार, जापानी एन्सेफलाइटिस, चिकनगुनिया और डेंगू के कमजोर समूहों पर विशेष ध्यान देने के साथ। समाज अर्थात् बच्चे, महिलाएं, अनुसूचित जाति (एससी) और अनुसूचित जनजाति (एसटी)। कार्यक्रम के तहत, यह सुनिश्चित किया जाता है कि वंचित और हाशिए के वर्ग सेवाओं के वितरण से लाभान्वित हों ताकि वांछित राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति और ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

1. स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के तहत एनवीबीडीसीपी का निदेशालय, सभी स्तरों पर एनवीबीडीसीपी कार्यक्रम की योजना, समन्वय, कार्यान्वयन, निगरानी और मूल्यांकन के लिए जिम्मेदार नोडल एजेंसी है।
2. उपरोक्त छह वेक्टर जनित रोगों से संबंधित सभी आईईसी और बीसीसी सामग्री के लिए एक केंद्रीय संसाधन केंद्र प्रदान करने के अपने प्रयास में, एनवीबीडीसीपी निदेशालय ने इस वेब-आधारित भंडार के निर्माण की परिकल्पना की। भंडार में राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर एनवीबीडीसीपी कार्यक्रम के तहत विकसित आईईसी और बीसीसी सामग्री शामिल है।

सन्दर्भ (REFERENCES)

1. https://hi.nhp.gov.in/national-program-of-health-care-for-the-elderly-n_pg
2. <https://www.jagranjosh.com/general-knowledge/national-health-programmes-in-india-1322806022-1>
3. Indian Council For Market Research: Evaluation of District Mental Health Programme: Final Report Submitted to Ministry of Health and Family Welfare
4. Murthy RS. The National mental health programme: Progress and problem; mental health, an Indian perspective, 1946-2003. In: Agarwal SP, editor. *Directorate General of Health Services*. New Delhi: MOHFW; 2003.

बिहार में सुशासन और जल जीवन हरियाली: एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० तेलानी मीना होरो

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, मगध महिला महाविद्यालय, पटना विश्वविद्यालय, पटना।

शोध आलेख का सार:

शासन का सुन्दर, स्वच्छ, पारदर्शी तथा जन हितकारी रूप ही सुशासन है। समाज, राजनीति, अर्थ तथा सांस्कृतिक जीवन में व्याप्त विषमताओं की समाप्ति, जटिलताओं का सरलीकरण तथा वैयक्तिक स्तर पर सुखद अनुभूति प्रदान करने से सुशासन सम्बन्धित है। सैद्धान्तिक रूप में सुशासन एक अवधारणा है, जो शासन को व्यावहारिक, विस्तृत तथा प्रभावकारी बनाता है। पिछले 15 वर्षों से बिहार में सत्ता परिवर्तन के साथ ही सुशासन शब्द का प्रयोग बहुत ही तेजी से प्रचलन में आया। कभी संकटग्रस्त कहे जाने वाले बिहार राज्य में एक और शब्द 'नया बिहार' को भी खूब प्रचारित किया गया। 'नया बिहार' की शब्दावली को इजाद करते हुए शासन प्रणाली को अत्यधिक विकेंद्रीकृत व जनअभिमुखी बनाने का प्रयास किया गया है। इसके लिए बिहार सरकार ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाये, जैसे-सूचना के अधिकार कानून को अधिनियमित एवं क्रियान्वित करना; ई-प्रशासन, लोक सेवा अधिकार कानून, अति पिछड़ा वर्ग आयोग, किसान आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, महादलित आयोग, बड़ी संख्या में शिक्षकों की बहाली, बिहार विशेष न्यायालय अधिनियम तथा पंचायती राज में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण इत्यादि। इन प्रयासों से पूर्व की तुलना में प्रशासन स्वच्छ और पारदर्शी हुआ और आम लोगों में शासन के प्रति विश्वास बढ़ा।

मूल शब्द: सुशासन, स्वच्छ, पारदर्शी, लोक कल्याणकारी, सम्पोषित विकास, ई-शासन, कानून का शासन, मितव्ययी प्रशासन, उत्तरदायित्व।

प्रस्तावना:

प्रारम्भ में शासन का एकमात्र कार्य कानून व व्यवस्था को स्थापित करना था, जिसे व्यक्तिवादी विचारकों ने सुशासन कहा था। व्यक्तिवादी विचारक हर्बर्ट स्पेंसर ने तो उस शासन को सर्वोत्तम शासन कहा, जो कम-से-कम कार्य करता हो। लोक कल्याणकारी राज्य के समर्थक जन कल्याण को प्रभावी रूप में सम्पन्न करने वाली शासन को ही सुशासन का नाम दिया। आधुनिक उदारवाद का एक रूप नव-उदारवाद के समर्थकों ने परम्परागत उदारवादियों के समान सीमित शासन को उत्तम शासन माना है।

अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा शासन तथा सुशासन विषयक विचार दिए गए हैं। विश्व बैंक द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार "विकास हेतु देश के आर्थिक एवं सामाजिक साधन स्रोत के प्रबन्धन में राज्य द्वारा शक्ति के प्रयोग के तरीकों को ही शासन अथवा प्रशासन कहा जाता है। विश्व बैंक ने इसके साथ यह भी प्रतिपादित किया है कि किसी भी देश के 'सम्यक् एवं सम्पोषित विकास' के लिए सुशासन आवश्यक है। इस संस्था ने शासन के प्रमुख आयामों में राजनीतिक शासन पद्धति, आर्थिक व सामाजिक प्रणाली का प्रबन्धन तथा विकास हेतु सरकार-प्रायोजित नीति-निर्धारण व क्रियान्वयन महत्वपूर्ण है। एक अन्य महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय संस्था 'आर्थिक सहयोग एवं विकास के लिए संगठन' (Organisation for Economic Co-operation and Development, OECD) ने किसी देश के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए साधनों के प्रबन्धन में राजनीतिक सत्ता का प्रयोग तथा नियंत्रण को ही शासन तथा समुचित व व्यापक रूप में उसके क्रियान्वयन को सुशासन कहा है। वैश्विक शासन से सम्बन्धित आयोग ने 1995 ई. में शासन को परिभाषित करते हुए कहा कि "सरकारी एवं निजी संस्थाओं द्वारा व्यक्तियों को प्रभावित करने वाले कार्यों के प्रबन्धन का समग्र रूप ही प्रशासन है। यह एक सतत् प्रक्रिया है, जिसमें परस्पर विरोध एवं बहुल हितों का समन्वय होता है तथा इसके लिए सरकार द्वारा निर्णय लिए जाते हैं।" यह उल्लेखनीय है कि उक्त आयोग ने शासन के कार्यों का सम्पादन औपचारिक-अनौपचारिक दोनों रूपों में स्वीकार किया है।

शासन व सुशासन पर एक महत्वपूर्ण सम्मेलन हुआ, जिसके द्वारा उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, सहभागिता, विधि का शासन तथा सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं की सहभागिता जैसे प्रशासन के सम्मिलित रूप को ही सुशासन माना गया। दक्षिण एशिया में मानव विकास से सम्बन्धित प्रतिवेदन प्रस्तुत किए गए तथा सुशासन पर व्यापक विचार-विमर्श किया गया। सुशासन के लिए राजनीति व प्रशासन के अन्तर्गत विधि का शासन, उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष बहुदलीय निर्वाचन, कठोर व कम लचीला संविधान तथा शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त के प्रयोग को महत्वपूर्ण माना गया। सुशासन हेतु आर्थिक शासन के अन्तर्गत वृहद् आर्थिक स्थायित्व, सम्पत्ति के अधिकारों की प्रत्याभूति, स्थिर बाजार-व्यवस्था, मानव निवेश, प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा तथा प्रगतिशील वित्तीय प्रणाली का अनुप्रयोग होता है। इनके अतिरिक्त सम्मेलन में नागरिक शासन को सुशासन के लिए अनिवार्य माना गया, जिसमें एक ओर नागरिकों को भौतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं मानवीय अधिकारों की प्राप्ति होती है तो दूसरी ओर महिलाओं, निर्धनों, प्रजातीय एवं धार्मिक अल्पसंख्यकों का सशक्तिकरण होता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम (United Nations Development Programme, UNDP) ने 1997 ई. में सुशासन की स्थापना जैसे अवधारणा को बहुआयामी माना है। यू. एन. डी. पी. के अनुसार किसी देश के अन्तर्गत मामलों के प्रत्येक स्तर पर आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक सत्ता का प्रबन्धन ही शासन है, जिनमें जन-सहभागिता, विधि का शासन, पारदर्शिता, प्रभावशीलता औचित्य तथा जन-चेतना महत्वपूर्ण हैं। दूसरे शब्दों में, इन सबका प्रभावी प्रयोग ही सुशासन है। संयुक्त राष्ट्र संघ का एक विशिष्ट अभिकरण यूनेस्को ने भी 1997 ई. में सुशासन को परिभाषित करते हुए कहा है कि “किसी भी समाज के घनात्मक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास में नागरिकों की सहभागिता ही सुशासन है।”

सुशासन के लिए ‘स्मार्ट शासन’ (SMART= Simple, Moral, Accountable, Responsive, Transparant Governance) का प्रतिमान आवश्यक प्रतीत होता है। स्मार्ट शासन (SMART Governance) के द्वारा साधारण व सर्वसुलभ व्यवस्था को स्थापित करने पर बल दिया जाता है। नैतिकता के लिए कार्य किया जाता है; व्यवस्था को उत्तरदायी बनाया जाता है; हर स्तर पर प्रभावशीलता व उत्तरदायित्व को सुनिश्चित की जाती है; प्रशासन के सभी स्तरों पर पारदर्शिता को आधार बनाकर शासन किया जाता है। स्मार्ट शासन यानी सुशासन का प्रभाव राजनीति, प्रशासन, अर्थव्यवस्था तथा समाज-व्यवस्था में दृष्टिगोचर होती है।

सुशासन के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के द्वारा जिन प्रतिरूपों को प्रस्तुत किया गया है अथवा विद्वानों ने जो विचार दिये हैं, उनको आधार बनाकर सुशासन की कई विशेषताएँ बताई जा सकती हैं :

1. सुशासन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता प्रभावी एवं कुशल प्रशासन को स्थापित करना है; इसके लिए प्रशासन का विशेषीकरण, मानवीकरण तथा परिस्थिति के अनुरूप अन्य प्रकार के सुधार तथा नवीनीकरण आवश्यक है।
2. सुशासन के लिए सरकारी संस्थाओं की वैधता को महत्वपूर्ण माना जाता है। सरकारी संस्थाओं की वैधता का तात्पर्य यह है कि सरकारी संस्थाएँ ‘कानून का शासन’ (Rule of Law) के अनुसार कार्य करें।
3. सुशासन का सम्बन्ध प्रशासन को उत्तरदायित्व से ओत-प्रोत बनाना है। संविधान, जनता, सामाजिक न्याय तथा अनेकानेक लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति प्रशासनिक प्रतिबद्धता को सुनिश्चित करना भी सुशासन से सम्बन्धित है।
4. सुशासन का सम्बन्ध नागरिक जीवन को उच्चस्तरीय बनाने से है। नागरिक जीवन को उच्चस्तरीय बनाने के लिए शासन विविध रूप में व्यापकता एवं सूक्ष्मता के साथ कार्यों को प्रभावी बनाती है। उसके द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि व्यक्ति समाज में अपनी स्वतंत्र, सकारात्मक, संतुलित, समन्वित एवं सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करें; वह निरोग रहे; भयमुक्त रहे तथा स्वच्छ पर्यावरण में गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत करें।
5. नागरिक शासन, समाज को व्यवस्थित बनाए रखने तथा उसके संतुलित विकास हेतु कानून व व्यवस्था की स्थापना के दिशा में भी सक्रिय होता है। इसके द्वारा न केवल कानून के शासन को लागू किया जाता है, बल्कि बिना किसी के दबाव सबको समान कानूनी संरक्षण भी प्रदान किया जाता है।
6. सुशासन का उद्देश्य लोक कल्याणकारी कार्यों को त्वरित रूप में सम्पन्न करना तथा जनता को संतुष्ट करना है। इसलिए यह राजनीतिक सहभागिता की अपेक्षा रखता है। सकारात्मक राजनीतिक सहभागिता को कायम करने के लिए सुशासन लोगों को ‘सूचना का अधिकार’ (Right to Information) भी सुलभ कराता है।
7. सुशासन का सम्बन्ध ‘मितव्ययी प्रशासन’ को कायम करना है। मितव्ययी प्रशासन का तात्पर्य प्रशासनिक खर्चों में कमी लाना होता है, परन्तु इसके द्वारा जन सेवाओं को प्रभावी बनाने में अधिक खर्च किया जाता है। स्पष्टतः मितव्ययिता के सन्दर्भ में सुशासन को ‘परिणाम-उन्मुख शासन’ (Result Oriented Governance) कहा जा सकता है।
8. सुशासन संसाधनों के अधिकतम प्रयोग से सम्बन्धित है, लेकिन वह पर्यावरण के दोहन को कम-से-कम करना चाहता है। स्पष्टतः सुशासन पर्यावरणीय दृष्टिकोण का दूसरा नाम है। इसलिए इसे ‘पर्यावरण-उन्मुख शासन’ (Environment Oriented Governance) भी कहा जा सकता है। इससे सामाजिक विज्ञान में पर्यावरणवाद की अवधारणा (Concept of Environmentalism) का विकास हुआ है।
9. सुशासन मानवीय जीवन के सभी पक्ष को उच्चतर बनाने से सम्बन्धित है, इसलिए यह लोक सेवा में ही नहीं, बल्कि मानवीय जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करना चाहता है; नौकरशाही के प्रभाव को कम करना चाहता है, अर्थात् नवीन लोक-प्रबन्ध (NPM) विनौकरशाहीकरण (Debureaucratisation) का समर्थन करता है तथा प्रशासनिक व्यवस्था की संरचना, प्रक्रिया, उद्देश्य तथा अन्य स्तरों में सुधार से सम्बन्धित है।
10. सुशासन सार्वजनिक सेवाओं को प्रभावी बनाना चाहता है, इसलिए यह विज्ञान व तकनीक को प्रशासन में व्यापक प्रयोग का समर्थक है। स्पष्टतः सुशासन को ई. शासन (E-Governance) से सम्बद्ध किया जा सकता है।
11. सुशासन सामाजिकता, मानवीयता तथा नैतिकता के हर एक उस पक्ष को स्वीकार करता है, जिनसे प्रशासन को प्रभावी बनाया जा सकता है तथा जनता को संतुष्ट किया जा सकता है। इसके सन्दर्भ में सुशासन प्रशासनिक सुधार तथा प्रशासनिक विकास ही नहीं, अन्य सभी प्रकार के आधुनिकीकरण से सम्बन्धित है। स्पष्टतः 3E + 1 = 4E (Efficiencies, Effectiveness, Economy and Ethics) का समर्थन करता है।

बिहार के सन्दर्भ में 1990 का मानव विकास रिपोर्ट ने बिहार की तुलना विश्व के छः सर्वाधिक पिछड़े तथा अल्पविकसित देशों से की, जो सभी देश अफ्रीका, महादेश में हैं। देश की सामाजिक-आर्थिक सूची में सबसे निचले पायदान पर मौजूद बिहार में प्रति व्यक्ति वार्षिक औसत आय 3650 रुपये था, जो देश में न्यूनतम स्तर पर थी। राज्य की 42 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही थी। बाढ़ और सुखाड़ की विभिधिका से त्रस्त इस राज्य में बुनियादी ढाँचे और स्वास्थ्य सेवाओं का हाल बहुत की दयनीय स्थिति में था। 1990 से 2005 के वर्षों में बिहार में जो सामाजिक विषमता थी, उसमें सुधार आया और लोग सामाजिक और राजनीतिक रूप से जागरूक हुए। परन्तु आर्थिक बदहाली पूर्व की भाँति बनी हुई थी। इस बदहाली के पीछे तात्कालीन राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था जिम्मेदार थी।

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। अंधकार के बाद घोर अंधकार और फिर सबेरा तो होना ही है। वर्तमान बिहार इसका एक सबसे अच्छा उदाहरण है। यह जातिवाद का अखाड़ा, विकास से परहेज तथा जिसकी लाठी उसकी भैंस का पर्याय बन चुका था। बिहार एक नई दिशा की तलाश में कराह रहा था। आजादी के बाद चाहे पंजाब की हरित क्रांति हो या फिर गुजरात और महाराष्ट्र जैसे राज्यों का औद्योगिक विकास बिहार मुख्य गवाह बनकर देखता रहा। बिहार की राजनीति विकास के नाम पर करना तात्कालीन सरकार के लिए बेईमानी था। नकारात्मक राजनीति का घड़ा लबालब भर चुका था और सकारात्मक राजनीति के लिए जाति रहित विकास का दरवाजा पूर्णतया खुला हुआ था। ऐसा अनुकूल अवसर बिहार की राजनीति के चाणक्य कहे जाने वाले नीतीश कुमार को प्राप्त हुआ। वर्ष 2005 में बीजेपी के साथ मिलकर शासन की नींव रखी। अपने शासन काल में उन्होंने लोक हित में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए, जो व्यवहारिक धरातल पर स्पष्ट रूप से दिखने लगा।

बिहार में सत्ता परिवर्तन के साथ ही पिछले 15 वर्षों से सुशासन शब्द का प्रयोग बहुत ही तेजी से प्रचलन में आया है। कभी संकटग्रस्त कहे जाने वाले बिहार राज्य में एक और शब्द 'नया बिहार' को भी खूब प्रचारित किया गया। 'नया बिहार' की शब्दावली को इजाद करते हुए शासन प्रणाली को अत्यधिक विकेंद्रीकृत व जनअभिमुखी बनाने का प्रयास किया गया है। इसके लिए बिहार सरकार ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाये, जैसे-सूचना के अधिकार कानून को अधिनियमित एवं क्रियान्वित करना; ई-प्रशासन, लोक सेवा अधिकार कानून, अति पिछड़ा वर्ग आयोग, किसान आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, महादलित आयोग, बड़ी संख्या में शिक्षकों की बहाली, बिहार विशेष न्यायालय अधिनियम तथा पंचायती राज में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण इत्यादि। इन प्रयासों से पूर्व की तुलना में प्रशासन स्वच्छ और पारदर्शी हुआ और आम लोगों में शासन के प्रति विश्वास बढ़ा। इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए बिहार सरकार ने पर्यावरण से संबंधित एक नयी योजना की शुरुआत की है।

बिहार सरकार ने पर्यावरण में आ रहे बदलाव को देखते हुए गाँधी जयंती की 150 वीं वर्षगांठ पर राज्य में जल-जीवन-हरियाली योजना (Jal Jivan Hariyali Yojana in Bihar) की शुरुआत की। राजस्व और भूमि सुधार विभाग राज्य के सभी सार्वजनिक जल निकायों जैसे तालाबों, आहर-पाइन और कुओं की पहचान करके उनकी पूरी रिपोर्ट ड्रोन या हेलीकॉप्टर के माध्यम से तैयार करके सरकार को उपलब्ध करायी, जिसपर आगे की रणनीति तैयार कर, योजना को अमली जामा पहनाया जाएगा। जल-जीवन हरियाली अभियान (Jal Jeevan Hariyali Campaign) को लेकर राज्य सरकार ने लोगों में जागरूकता पहले से ही शुरू कर दी थी। जल-जीवन हरियाली योजना के अंतर्गत सरकार तालाबों, आहर-पाइन की उड़ाही, पौधे लगाना, रेन वाटर हार्वेस्टिंग और जहां सूखा पड़ता है वहाँ पर नदियों का पानी पहुंचाना जैसे काम एक साथ करेगी और सरकार इस योजना की मदद से आने वाले समय में लोगों को ज्यादा से ज्यादा सोलर लाइट इस्तेमाल करने के लिए भी प्रोत्साहित करेगी। हाल ही में केन्द्र सरकार द्वारा शुरू किए गए प्रधानमंत्री जल जीवन अभियान के जैसे ही बिहार जल-जीवन हरियाली अभियान है। जिसके लिए केन्द्रीय सरकार ने अलग से जल शक्ति मंत्रालय भी बनाया है, जो पीएम जल जीवन अभियान के लिए वित्त का आवंटन और पूरी देख-रेख करेगा। बिहार कई दशकों से बाढ़ और सूखे का मार झेलते रहा है, जिसके लिए भविष्य में कुछ ठोस कदम उठाना जरूरी है। इसके लिए राज्य सरकार सर्वप्रथम पूरे प्रदेश के हर जिले की सैटेलाइट मैपिंग करेगी और राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग द्वारा पहचान किए गए तालाबों, आहर-पाइन और कुओं जिन पर अवैध कब्जा है उनको अतिक्रमण से मुक्त कराएगी। सड़कों के किनारे कई लाइन में पेड़ लगाये जाएंगे और बांधों, सार्वजनिक जगहों और निजी जगहों पर भी वृक्षारोपण किया जायेगा। सोलर लाइट को बढ़ावा देने के लिए सरकारी इमारतों पर सोलर पैनल लगाये जायेंगे, साथ ही साथ दो नये सोलर प्लांट भी लगाये जायेंगे। पेड़-पौधों को नुकसान पहुंचाने वाले लोगों पर कानूनी कारवाई की जाएगी। वर्षा के जल संचयन के लिए जगह-जगह पर वाटर हार्वेस्टिंग प्लांट बनाये जायेंगे और लोगों को भी इस अभियान का हिस्सा बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। ऊर्जा क्षेत्र सीमित हैं, इसलिए वैकल्पिक स्रोतों और पर्यावरण के अनुकूल ऊर्जा ई-रिक्शा जैसे वाहन और सीएनजी चालित वाहन को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। पर्यावरण प्रदूषण कम करने के लिए खेतों में पुआल जलाने से रोकने के लिए सरकार ने किसानों को जागरूक किया है। किसानों को पुआल प्रबंधन कृषि यंत्रों पर 75 से 80 प्रतिशत तक अनुदान का प्रावधान किया है। मुख्यमंत्री ने यह भी कहा कि राज्य में वर्षा हर साल कम होती जा रही है या फिर वर्षा कहीं पर ज्यादा हो रही है और कहीं पर कम, भूजल स्तर नीचे जा रहा है, इसीलिए बिहार राज्य में जल-जीवन-हरियाली अभियान चलाना जरूरी हो गया है सरकार प्रदेश का हरित आवरण क्षेत्र 17 प्रतिशत या इससे ज्यादा करने के लक्ष्य पर भी काम करेगी।

एक पेड़ साल में 20 किलो धूल सोखता है। 700 किलो ऑक्सीजन छोड़ता है तो 20 हजार किलो कार्बन डाइऑक्साइड सोखता है। गर्मियों में एक पेड़ के पास सामान्य से लगभग 4 डिग्री कम तापमान रहता है। इस तरह घर के पास 10 पेड़ लगे हों तो आदमी की उम्र 7 साल तक बढ़ जाएगी। सरकार का कहना है कि पर्यावरण संतुलन, पर्याप्त जल और हरित आवरण बढ़ाने के लिए राज्य में जल-जीवन-हरियाली अभियान शुरू किया गया है। वर्ष 2022 तक सरकार 'जल जीवन हरियाली योजना' के तहत 24 हजार 524 करोड़ रुपये खर्च करने का लक्ष्य रखा है। यह बात राज्य के ग्रामीण विकास मंत्री श्रवण कुमार ने विधान परिषद में जल जीवन हरियाली पर आयोजित वाद-विवाद में सरकार की ओर से पक्ष रखा। मंत्री ने कहा कि 26 अक्टूबर, 2019 को जल जीवन हरियाली के तहत ग्रामीण विकास विभाग की 26039 सहित अन्य विभागों की 32 हजार योजनाओं का मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के द्वारा उद्घाटन व शिलान्यास किया जाएगा। इस पर 1359 करोड़ खर्च का अनुमान है। मिशन मोड में इसे पूरा करने के लिए जल जीवन हरियाली मिशन का गठन किया गया है। यह योजना सभी प्रखंडों व पंचायतों के लिए है। मनरेगा के तहत पिछले दो वर्षों में अभियान चला कर 1 करोड़ पौधे लगाए गये हैं। पर्यावरण, वन व जलवायु परिवर्तन विभाग के साथ मिल कर 2019-20 में लगभग 1 करोड़ 25 लाख पौधे लगाने का लक्ष्य है। स्वच्छ व संतुलित पर्यावरण के लिए पृथ्वी पर 33 प्रतिशत हरियाली जरूरी है। जल जीवन हरियाली योजना की सफलता के लिए ग्रामीण विकास, पर्यावरण वन व जलवायु परिवर्तन, राजस्व व भूमि सुधार, लघु जल संसाधन, नगर विकास, पीएसईडी, कृषि, भवन, जल संसाधन, पशुपालन, शिक्षा, स्वास्थ्य, पंचायती राज, ऊर्जा, व सूचना व जनसंपर्क सहित 15 विभाग शामिल हैं। इस अभियान की मॉनीटरिंग और परामर्श के लिए राज्य स्तर पर संसदीय कार्य मंत्री की अध्यक्षता में एक परामर्शदात्री समिति गठित है। इसमें विधान सभा अध्यक्ष द्वारा नामित 15 व विधान परिषद के सभापति द्वारा मनोनीत 5 सदस्य भी शामिल होंगे। जिला स्तर पर जिले के प्रभारी मंत्री

की अध्यक्षता में समिति का गठन किया जाएगा। इस अभियान पर वर्षवार खर्च 2019-20 में 5870 करोड़ रुपये, 2020-21 में 9874 करोड़ तथा 2021-22 में 8780 करोड़ रुपये लक्षित है। अब यह भविष्य का विषय है कि जन जीवन हरियाली योजना से बिहार को पर्यावरण संरक्षण की दिशा में कितनी सफलता प्राप्त होगी।

परिकल्पना:

किसी भी शोध कार्य में परिकल्पना का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इस शोध कार्य में निम्नलिखित परिकल्पना प्रस्तावित है:

1. सुशासन शासन का सर्वोत्तम स्वरूप है, इसके माध्यम से प्रशासन को स्वच्छ, पारदर्शी, उत्तरदायी बनाया जा सकता है।
2. पिछले 15 वर्षों में बिहार में प्रशासन की कार्यप्रणाली में सकारात्मक बदलाव दिखे हैं, जो सुशासन की ओर अग्रसर है।
3. बिहार में पर्यावरण के संरक्षण हेतु जो कदम उठाये जा रहे हैं, वह देश ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के प्राणी जगत के लिए एक सकारात्मक संदेश है।

शोध आलेख का उद्देश्य:

- प्रस्तावित शोध का उद्देश्य सुशासन के परिप्रेक्ष्य में बिहार के शासन प्रणाली का अध्ययन करना।
- बिहार सरकार द्वारा किये गये कार्यों का अध्ययन कर पता लगाना कि बिहार सुशासन के मार्ग पर अग्रसर है या नहीं।
- बिहार में जितने भी योजनाओं का क्रियान्वयन हुआ है, उससे पर्यावरण पर कितना दुष्प्रभाव पड़ा है और इसके रोकथाम के लिए सरकार द्वारा किस प्रकार के कदम उठाए जा रहे हैं।

अध्ययन विधि:

प्रस्तुत शोध-आलेख के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक, वर्णात्मक एवं समीक्षात्मक पद्धति के अतिरिक्त अन्य आवश्यक पद्धतियों का सहारा लिया गया है। प्रस्तुत शोध की अध्ययन पद्धति में विश्लेषण हेतु इतिहास से आधारभूत सामग्री प्राप्त किया गया है तथा इस की वैज्ञानिक योजना स्वीकार्य है। इस शोध कार्य हेतु बिहार के अनेक संबंधित विभागों के अभिलेखों, राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय पुस्तकालयों, इंटरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध आँकड़े, समाचार पत्र-पत्रिकाएँ एवं अन्य प्रासंगिक सामग्रियों का अध्ययन में सहारा लिया गया है।

निष्कर्ष:

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि सुशासन शासन का सुन्दर रूप है; यह लगभग ई-शासन का पर्यायवाची है; यह पर्यावरणीय शासन का प्रतिरूप है; यह परिणाम-उन्मुख प्रशासन है; यह सम्प्लोषित विकास का सरकारी प्रयास है; यह एन. पी. ए., पी. सी. ए., एन. पी. एम. तथा एन. सी. पी. से सम्बद्ध है। दूसरे शब्दों में, सुशासन व्यापक, मूल्य-सम्बन्धी, लोकतांत्रिक व्यवस्था है। यह अवधारणा के रूप में महत्वपूर्ण व विशुद्ध लोकतांत्रिक प्रतीत होता है, परन्तु उत्तर-आधुनिकतावाद एवं वैश्वीकरण के प्रभाव में इसका अनुप्रयोग सीमित व संदिग्ध है। आज सुशासन, ई-शासन बनकर सबसे नहीं, कुछ लोगों से सम्बन्धित रह गया है, जो वैज्ञानिक तथा मानवतावादी दृष्टिकोण के अनुसार आलोचनीय है। जहाँ तक बिहार में जल-जीवन हरियाली योजना का सवाल है तो यह योजना अभी अपने शैशव काल में है। फिर भी जिस गति से इस योजना पर काम हो रहा है, उससे प्रतीत होता है कि आने वाले भविष्य में आशानुरूप इसमें सफलता प्राप्त हो सकती है।

सन्दर्भ सूची:

1. बोवार्ड, टॉनी एण्ड लौफलर, 2002, "मूविंग फ्रॉम एक्सेलेन्ट मॉडल्स ऑफ लोकल सर्विस डिलिवरी टू बेंचमार्किंग गुड लोकल गवर्नेंस, इंटरनेशनल रिव्यू ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव साइंसेज वॉल्यूम-67।
2. जेसाट, जेमिल, 2004 "गवर्नेंस इन ए ग्लोबलाइजिंग वर्ल्ड, इंटरनेशनल जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वॉल्यूम 27, नं. 13 व 14।
3. साहनी प्रदीप एण्ड उमा मेडूरी (ई.डी.एस.), 2003, "गवर्नेंस फ्रॉम डेवलपमेन्ट: इशूज एंड स्ट्रेटजी, प्रेन्टिस हॉल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली।
4. सोभान, रहमान, (ई.डी.), 1998, टूवार्ड्स ए थियरी ऑफ गवर्नेन्स एण्ड डेवलपमेन्ट: लर्निंग फ्रॉम ईस्ट एशिया, द बांग्लादेश यूनिवर्सिटी प्रेस, ढाका।
5. यू.एन.डी.पी. ह्यूमन डेवलपमेन्ट रिपोर्ट, "मेकिंग न्यू टेक्नोलॉजीज वर्क ह्यूमन डेवलपमेन्ट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू यार्क।
6. वर्ल्ड बैंक रिपोर्ट, 1992, गवर्नेंस एण्ड डेवलपमेन्ट, वाशिंगटन।
7. अरूण सिन्हा, "नीतीश कुमार एण्ड द राईज ऑफ बिहार", 2011।
8. चक्रपाणि हिमांशु (2010)- "सुशासन के चार साल : बिहार बेहाल", इंडिया न्यूज, 2-8 जनवरी।
9. जानकी सिंह नंदन, बिहार विधान सभा वाद-वृत्त राज्य में बाढ़ और सूखा से उत्पन्न स्थिति 11 सितंबर 1956 पृ० 46।
10. दिनेश कुमार मिश्रा, 'लीविंग विद फ्लड्स' इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली जुलाई 21, 2001 पृ० 593।

वैदिक संस्कृति व धर्म के पुनरुत्थान में गुप्त शासकों का योगदान

डॉ० ईशा शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद

भारत की धार्मिक परम्परा के इतिहास का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि अतीत के सैकड़ों वर्षों तक मानवतावादी सार्वभौम वैदिक धर्म का भारत पर एकाधिकार रहा किन्तु एक समय आया जबकि पशु हिंसा व कर्मकाण्डों के प्रतिबन्धों ने उसकी सर्वमान्यता को संकीर्ण बना दिया। राजाओं और पुरोहितों की बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाओं के साथ ही यज्ञोपासना की प्रबल अभिवृद्धि हुई। नए आडंबर युक्त राजयज्ञों का विकास हुआ। उत्तर वैदिक साहित्य का एक बड़ा हिस्सा इनके विधिवत संपादन के निर्देशों से भरा पड़ा है। वाजपेय (शक्ति पान) यज्ञ सत्रह दिनों से लेकर एक साल तक चलता था। राजसूय और अश्वमेध भी अत्यन्त महत्वपूर्ण व जटिल यज्ञ थे जिनमें असंख्य पशुओं (अश्व, सांडों व बंध्या गायों) की बलि दी जाती थी। इन विस्तृत यज्ञ कर्मों ने ऋग्वैदिक देवताओं की स्थिति कमजोर कर दी। इस प्रकार के कर्मकाण्डों से पशुधन का जो ह्रास हुआ उसने कृषि अर्थव्यवस्था को भी प्रभावित किया।

उपनिषदों में पहली बार इस अति कर्मकांडी उत्तर वैदिक धर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया देखी जा सकती है। उपनिषदों ने यज्ञ के स्थान पर ज्ञानकाण्ड की स्थापना कर वैदिक धर्म को संकीर्णता से उभारने का प्रयत्न किया। उपनिषदों में हमें आत्मा के एक के बाद दूसरे जीवन में प्रवेश करने से संबंधित विश्वास का प्रथम स्पष्ट प्रतिपादन देखने को मिलता है। इसी से कर्म के सिद्धांत का जन्म हुआ। किन्तु उपनिषदों का शुष्क व जटिल ब्रह्मवाद जन सामान्य की ग्रहणशीलता के अनुरूप सिद्ध न हुआ। वेदों और उपनिषदों की धार्मिक चेतना में समन्वय स्थापित कर बुद्ध ने उसे नया लोकानुग्राही रूप दिया और जनता ने उसे अपनाया भी किन्तु बौद्धधर्म के वैराग्य तथा संसार त्याग के विचार साथ ही बौद्ध संघारामों व उपाश्रयों के वैभव सम्पन्न जीवन ने जनसामान्य को उसके प्रति उदासीन बना दिया। इस उदासीनता के अन्य कारण भी थे।

तत्कालीन भारत में प्रचलित जैन व बौद्ध दोनों धर्मों की लगभग एक सी स्थिति थी। उनके गृहत्याग, वैराग्य, अरण्यवास व मठाश्रय ने समाज को दायित्वहीन, निष्क्रिय बना दिया परन्तु वे भीतर से अपनी निष्ठा के प्रति स्वयं ही शंकालु थे। ठीक इसी समय, पौराणिक धर्म का उदय हुआ, जोकि वैदिक धर्म का ही पुनः संस्करण था। पुराणों के इस नए धार्मिक जागरण ने समाज को एक नई दिशा और प्रेरणा दी। यह प्रेरणा थी स्वाभिमान की, आत्मगौरव की। पुराणों ने क्षत्रियों को देशरक्षा और सामाजिक संगठन की ओर प्रवृत्त एवं उद्बुद्ध किया। वैश्यों व शूद्रों को उद्योग, व्यवसायों व आर्थिक उन्नति के कार्यों में लगने के लिये प्रेरित किया। ब्राह्मणों के धर्माध्यक्ष होने के मिथ्याडम्बर के भ्रम को दूर किया। पुराणों की ये मान्यताएं परम्परा पर आधारित होने के कारण परम्परावादी भारतीय समाज को प्रभावित करने में प्रबल कारगर सिद्ध हुईं।¹ निष्क्रिय समाज अपनी परम्पराओं को विस्मृत कर बैठा था ऐसे में पुराणों की कथाओं व वृत्तों ने समाज को पतन से बचाकर गौरवशाली अतीत की रक्षा के लिए सचेत किया।

राष्ट्रीय उत्थान एवं सांस्कृतिक जागरण के लिए पौराणिक भागवत धर्म के इस पुनरभ्युदय में गुप्त शासकों का योगदान स्मरणीय है। यद्यपि गुप्तों से पूर्व भी शुंगों व सातवाहनों ने राष्ट्र के अभ्युत्थान के लिए इस सार्वभौम भागवत धर्म को महत्व दिया और इसे राजधर्म के रूप में घोषित किया। सांस्कृतिक समन्वय का जो अभियान इस काल में आरम्भ हुआ गुप्तों के द्वारा यह धार्मिक नवोत्थान भारत में विशाल क्षेत्र पर प्रतिष्ठित हुआ। गुप्त राजाओं द्वारा स्थापित किये गए विस्तृत साम्राज्य में रहने वाले हिन्दुओं के अतिरिक्त अन्य जातियों जैसे शक, यवन, यूनानी आदि के माध्यम से भारत के द्वीपान्तरों में भी मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुए तथा धर्म के इस रूप का भी प्रसार हुआ।

वैदिक काल में भारतीय धर्म का स्वरूप विभिन्न रूपों में प्रस्तुत हुआ। आर्यों ने प्रकृति के अंगों – जल, वायु, अग्नि, अंतरिक्ष व पृथ्वी के रूप में देवत्व के दर्शन किए। सूर्य जगत् की आत्मा बन गए।² प्रकृति के इन देवताओं के साथ ऋग्वेद में 'विष्णु' शब्द का प्रयोग भी अनेकों बार प्राप्त होता है। ऋग्वेद के वरुण स्रोतों में तथा विष्णु सूक्त में 'विष्णु' की चर्चा की गई है³ जिसमें विष्णु को संसार का संरक्षक कहा गया है।⁴ वेद, उपनिषद, पुराण, संहिता, काव्य सभी जगह विष्णु शब्द का विपुल व्यवहार देखने को मिलता है। कुछ विद्वान विष्णु की तुलना वैदिक साहित्य में वर्णित 'इन्द्र' से कुछ 'आदित्य' से करते हैं। और्णबाह आचार्य आदि भाष्यकारों ने भी विष्णु को सूर्य कहा। इस प्रकार आर्यों के काल में भी विष्णु के नाम का उल्लेख इन्द्र, रुद्र, सोम और मरुत के साथ प्राप्त होता है। वैष्णव धर्म के विकास के सम्बन्ध में हुए अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि इस धर्म के मूल में नारायण नामक एक अवैदिक देवता थे जिनको शतपथ ब्राह्मण के काल में वैदिक देवताओं के मध्य प्रमुख स्थान प्राप्त हो चुका था। उन्हें 'भगवत' कहा जाने लगा। उन्हें मानने वाले 'भागवत' कहलाने लगे। नारायण के साथ विष्णु और कालान्तर में वासुदेव की उपासना भी की जाने लगी। 'नारायण और विष्णु की तरह वासुदेव भी वैदिक देवता न थे वरन् वे मात्र एक वीर थे जिनकी पूजा मथुरा के आसपास रहने वाले वृष्णि लोगों के बीच प्रचलित थी।'⁵ पाणिनि की अष्टाध्यायी में स्पष्ट रूप से वासुदेव के उपासकों को 'वासुदेवक' कहा गया है।

उत्तर वैदिक काल व उसके बाद इन देवताओं का महत्व भिन्न भिन्न कालों में घटता बढ़ता दिखलाई देता है। लेकिन विष्णु की स्तुति व महत्व पुराणों व महाकाव्यों के माध्यम से इतनी बढ़ गई कि वे उपासकों के इष्टदेव के रूप में उभर कर सामने आए। धर्म के इस नए रूप ने वैष्णव धर्म का नाम ग्रहण कर लिया। धीरे धीरे विष्णु के व्यक्तित्व विकास में वासुदेव, नारायण, गोपाल – कृष्ण समाहित हो गए। महाकाव्य काल में ब्रह्मा सृष्टि का सर्जन कर्ता और विष्णु सृष्टि का पालन कर्ता तथा शिव संहारक के रूप में पूजे जाने लगे।⁶ विष्णु के अनेक अवतारों का विकास हुआ तथा राम को भी विष्णु का अवतार कहा गया।

गुप्तकाल के आते आते वैष्णव धर्म की महत्ता इतनी अधिक बढ़ गई कि गुप्त नरेशों ने वैष्णव धर्म को स्वीकार किया और इसे राज्याश्रय प्रदान किया। यही कारण है कि वे अपने अभिलेखों⁷ तथा मुद्राओं⁸ में अपने को परम भागवत कहते हुए पाए जाते हैं। विष्णु की उपासना के साथ उसकी प्रतिमाओं का भी निर्माण प्रारम्भ हुआ। इन देवी देवताओं की प्रतिमा के लिए देवालियों और मंदिरों का निर्माण भी प्रारम्भ हुआ।

डा. परमेश्वरी लाल गुप्त का मत है कि प्रारम्भ में विष्णु के चार अवतारों की कल्पना की गई जिसमें वराह, नृसिंह, वामन, वासुदेव कृष्ण को स्थान मिला, बाद में इनकी संख्या अनेक पुराणों के आधार पर दस हो गई। इन पुराणों में वराह पुराण, अग्नि पुराण, वायु पुराण, मत्स्य पुराण आदि उल्लेखनीय हैं।⁹ गुप्तकालीन अभिलेखों व पुरातात्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि गुप्त काल में भी दस अवतारों से संबंधित प्रतिमाओं का निर्माण होता था। वामन, मत्स्य, कूर्म वराह एवं नृसिंह आदि विष्णु-अवतारों की प्रतिमाएं भरतपुर राज्य के कमन नामक स्थान से प्राप्त हुई हैं।¹⁰ उदयगिरि नामक स्थान में वराह अवतार की विष्णु प्रतिमा का चिह्न गुफा नं. 5 में हुआ था तथा सागर के एरण नामक स्थान में पशु रूप में वराह की एक विशाल मूर्ति मिली है। विदिशा के बडोह पठारी नामक स्थान में पशु रूप में वराह भगवान की मूर्ति मिली है। उसके सारे शरीर में देवी-देवता, ऋषि-मुनि आदि का अंकन है। यह प्रतिमा भी गुप्तकाल की है यहीं विष्णु मंदिर के सामने निर्मित किया गया गरुडध्वज भी प्राप्त हुआ है। विष्णु के राम अवतार का उल्लेख गढ़वा के अभिलेख में चित्रकूट स्वामिन् के रूप में हुआ है तो साथ ही देवगढ़ के दशावतार मंदिर व नचना के मंदिर में राम से संबंधित अनेक प्रतिमाओं का निर्माण हुआ है। स्कंदगुप्त के बिहार अभिलेख¹¹ में विष्णु को इन्द्र का अनुज कहा गया है जो वामन अवतार का द्योतक है। इसी प्रकार विष्णु के नृसिंह अवतार से संबंधित विष्णु प्रतिमा उदयगिरि नामक स्थान की गुफा नं. 12 से प्राप्त हुई है जो गुप्तकालीन है। एरण में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने विष्णु मंदिर का निर्माण करवाया था जिसमें एक ओर नृसिंह व दूसरी ओर वराह के मंदिर का निर्माण हुआ है। मध्यप्रदेश के कई प्राचीन नगरों पशवती (पावापुर), लुम्बवन(तुमैन), उच्चकल्प(सतना), श्रीपुर(सिरपुर) का शेषशायी विष्णु भी उल्लेखनीय है। विष्णु की मूर्तियां जो इस काल में द्विभुजी, चतुर्भुजी, अष्टभुजी, गदा और चक्रधर रूप में प्राप्त हुई हैं वे मूर्तिकला के क्रमिक विकास को तो दर्शाती ही हैं साथ ही वैष्णव धर्म के विस्तृत स्वरूप को भी परिलक्षित करती हैं।

गुप्तकाल में चतुर्व्यूह से संबंधित विष्णु प्रतिमा का भी निर्माण हुआ। विष्णु के वाहन गरुड का मानव रूप में स्वतंत्र मूर्तन भी हुआ। एरण के ध्वज स्तम्भ में मानवरूपी गरुड दोनों हाथों में सर्प पकड़े हुए दृष्टिगोचर होता है। विष्णु व शिव का मिला हुआ रूप भी मूर्तियों में प्राप्त होता है इसी प्रकार की हरिहर मूर्ति मुण्डेश्वरी (जि. शाहबाद) से प्राप्त हुई थी जो पटना संग्रहालय में सुरक्षित है।

गुप्त अभिलेखों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि स्कन्दगुप्त के शासनकाल में विष्णु प्रतिमा का निर्माण हुआ जिसकी चर्चा भीतरी अभिलेख में है।¹² गढ़वा अभिलेख में विष्णु के एक मंदिर के निर्माण का उल्लेख है। विष्णु के साथ साथ अन्य देवी-देवताओं के भी मूर्तन-विधान की व्यवस्थित रूपरेखा गुप्तकाल में लिपिबद्ध की गई। वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता तथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण इस विषय के अबतक ज्ञात प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। उनमें देवताओं के स्वरूप, उनके आयुध और वाहनों का विशद उल्लेख है। इन देवी देवताओं में शिव, गणेश, पार्वती, महिषासुरमर्दिनी, कार्तिकेय, सूर्य व अग्नि प्रमुख हैं। वैदिककालीन ये देव (सूर्य व अग्नि) गुप्तकाल में मूर्तरूप में स्थापित किए जाने लगे। पटना संग्रहालय में अग्नि की एक सुन्दर गुप्तकालीन मूर्ति उपलब्ध है।

गुप्तकाल में यद्यपि देवियों का मूर्तन कम हुआ है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि गुप्तकाल में देवियां उपेक्षित हो गईं। उनका अंकन इस काल में एक नये धरातल पर हुआ। उनकी कल्पना उपास्य देवताओं की शक्ति के रूप में की गई और सात शक्तियों की कल्पना कर उन्हें सप्तमातृका के नाम से सामूहिक रूप से प्रतिष्ठित किया गया। उनका अंतर उनके आयुधों और वाहनों से प्रकट होता है जो प्रायः वे ही हैं जो उनसे सम्बंधित देवताओं के हैं। इनका एक गुप्तकालीन पूर्ण सेट पटना संग्रहालय में है जो सरायकेला से प्राप्त हुआ था।¹³ इनके अतिरिक्त मकरवाहिनी गंगा और कच्छपवाहिनी यमुना की कल्पना सर्वप्रथम गुप्तकाल में ही प्राप्त होती है।

गुप्त राजाओं ने जहां वैदिक धर्म का एक नवीन रूप में पुनरुत्थान किया वहीं इस धर्म को और अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए मंदिरों में स्थायी निधि की व्यवस्था भी की। इस संचित राशि से मंदिरों में दैनिक पूजा, श्रंगार, भोग, सामूहिक उत्सव, नृत्य प्रदर्शन व रथयात्रा आदि व्यवस्थाएं सम्पन्न होती थीं। मंदिरों में पूजा कार्य की स्थिरता व लोकप्रियता के लिए नियमित पुजारी या मठाधीश नियुक्त किये जाते थे। इन मठाधीशों को गांव दान में देने की चर्चा भी अभिलेखों से प्राप्त होती है।

गुप्तों की वैष्णवपरक नीति से समाज का बड़ा भाग वैष्णव धर्म से अनुप्राणित हो उठा। वर्णाश्रम धर्म की नींव मजबूत हुई जो स्वस्थ समाज का आधार थी। वैष्णव धर्म में शक्ति का विशेष महत्व होने के कारण नारियों को लक्ष्मी स्वरूप समझा गया अतः शक्ति उपासना का संचार हुआ। बौद्धकाल में समाज में जो निष्क्रियता व त्याग आदि की भावनाएं बढ़ने लगीं थीं वैदिक धर्म के इस नवीन स्वरूप वैष्णव धर्म ने इन पर रोक लगा दी। वैष्णव धर्म की प्रमुखता के कारण विभिन्न साहित्यकारों ने इससे संबंधित कृतियों की रचना की। कालिदास जैसे उच्चकोटि के महाकवि इसी काल में हुए और बौद्ध व जैन धर्म के विभिन्न दार्शनिकों ने भी संस्कृत साहित्य के अनुकरण पर दार्शनिक ग्रन्थों का निर्माण किया। इस तरह सम्पूर्ण समाज में शिक्षा का विकास हुआ। संस्कृत भाषा और साहित्य ऐसे शिखर पर जा पहुंचा जिसे 'क्लासिकी उत्कृष्टता' की संज्ञा दी गई है।

गुप्त शासकों के अनवरत प्रयासों से वैदिक धर्म व संस्कृति का पुनरुत्थान हुआ तथा जावा, सुमात्रा, बाली, बोर्नियो, कम्बोडिया, स्याम, मलाया एवं चम्पा आदि द्वीपों में भारतीय सभ्यता व संस्कृति का खूब प्रचार व प्रसार हुआ। इतिहासकार टालमी ने भी भारतीयों के पूर्वी द्वीप समूह में जाने का उल्लेख किया है। इन द्वीपों में राजाओं व नगरों के नाम भारतीय अनुकरण पर रखे गए। भारतीय भाषा संस्कृत एवं भारतीय परम्पराओं का भी यहां प्रचार हो चुका था। संस्कृत

में लिखे गये अनेक अभिलेख, ग्रंथ, रामायण और महाभारत भी यहां प्राप्त हुए हैं। भारतीय मंदिरों के अनुकरण पर ही वास्तु शैली, पौराणिक विषय वस्तु, राम व कृष्ण की लीलाओं का अंकन यहां के मंदिरों पर किया गया। इन द्वीपों में शिव व वैष्णव धर्म के साथ साथ बौद्ध धर्म का भी प्रसार हुआ। जावा में बोरोबुदुर नामक एक विशाल बौद्ध मंदिर का निर्माण भी किया गया।

फाहियान के यात्रा विवरण से ज्ञात होता है कि गुप्त काल में भारतीय संस्कृति मध्य एशिया तक पहुंच चुकी थी। चीन से भी भारत का निकट संबंध स्थापित हो चुका था। अतः कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति व धर्म के संवाहक के रूप में गुप्त शासकों का योगदान भारतीय इतिहास में अमिट रहेगा।

संदर्भ:

01. भारतीय संस्कृति व कला - वाचस्पति गैरोला, पृ. 401
02. ऋग्वेद 6.7.14, 1.114.1
03. प्राचीन भारत का इतिहास - विमल चन्द्र पाण्डेय, पृ. 125
04. ऋग्वेद 1.155.6
05. गुप्त, डा. परमेश्वरी लाल - गुप्तसाम्राज्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1970, पृ.482
06. महाभारत 5.70.3
07. प्राचीन भारत का इतिहास - विमल चन्द्र पाण्डेय
08. गुप्तकालीन मुद्राएं - अल्लेकर, पृ. 87, 154,176
09. वराह पुराण 4/2, अग्नि पुराण 49/5-17, वायु पुराण 98/71, मत्स्य पुराण 47/46-50
10. गुप्त लेक्चरस् - बैनर्जी, पृ. 113
11. कार्पस ईस्क्रिप्शंस इंडिकेरम भाग तीन, पृ. 268
12. गुप्त साम्राज्य - डा. परमेश्वरी लाल गुप्त, पृ. 33, 34
13. वही, पृ. 573

पारंपरिक और आधुनिक योग का स्वरूप: एक दार्शनिक विश्लेषण

प्रिया कुमारी तिवारी

शोधछात्रा, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सारांश:

भारतीय परंपरा में योग शास्त्रीय और साधना पद्धति के रूप में आस्तिक और नास्तिक दार्शनिक संप्रदायों में समान रूप से जीवन मूल्य के रूप में स्थापित है। दोनों-पद्धतियों में समान रूप से इनका उद्देश्य है परमतत्त्व से साक्षात्कार जो आस्तिक परंपरा में ईश्वर से साक्षात्कार तो नास्तिक में आत्मतत्त्व से। अष्टांग योग की पद्धति दोनों ही परंपराओं के मूल में है जो मन और शरीर के अनुशासन से आत्मतत्त्व का अनुसंधान करती है। यहाँ स्व को विश्व में तो विश्व को स्व में अनुभूति का प्रयास होता है जिसके बाद लोककल्याण में शुभ संकल्प से व्यक्ति प्रवृत्त हो जाता है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में योग की यह अवधारणा लुप्त प्राय है और योग मूलतः चिकित्सकीय व्यायाम और शारीरिक सुडौलपन तक सीमित हो कर रह गया है। परंतु आज भी योग का लक्ष्य मन-चित की वृत्तियों का निरोध ही होना चाहिए, इसी से विश्व कल्याण संभव है।

आलेख:

भारतीय दर्शन परंपरा में 'योग' का स्थान विशिष्ट है। मुख्य रूप से योग यहाँ दो भागों स्पष्टतः परिलक्षित होता है, पहला शास्त्रीय परंपरा और दूसरा साधना पद्धति। इन दोनों ही रूपों में योग एक जीवनमूल्य है जो अनुभासन, समन्वय और संचेतन के आधार पर जीवन की दशा और दिशा तय करता है। शास्त्रीय परंपरा में योग, महर्षि पतंजली द्वारा विकसित दर्शन प्रणाली है जिसे 'योग दर्शन' के रूप में जाना जाता है। यद्यपि कि योग का वास्तविक स्वरूप इससे प्राचीन रहा है, क्योंकि यह माना गया है कि "हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः" परंतु पतंजलि ने इसे एक जगह व्यवस्थित कर सुचिंतित प्रणाली के रूप में सांख्य दर्शन के क्रियात्मक और व्यावहारिक पद्धति के रूप में स्थापित किया। इसलिए भगवद्गीता और श्वेताश्वर उपनिषद में यह माना गया है कि 'सांख्य' ज्ञान के मार्ग से मोक्ष प्राप्त करने का नाम है और 'योग' क्रियात्मक प्रचलन अथवा अनासक्ति भाव से कर्म करने के मार्ग से मोक्ष प्राप्त करने का नाम है।¹ अतः शास्त्रीय परंपरा दर्शन के इस विचार का अनुसरण करती है और परम साध्य की ओर अग्रसर होती है।

एक साधना पद्धति और जीवन प्रणाली के रूप 'योग' शास्त्रीय परंपरा से प्राचीन रहा है और जीवन मूल्य के रूप में स्थापित रहा है, जिसका प्रबल प्रमाण है इसका दर्शन को नास्तिक परंपराओं से जुड़ा रहना। योग का यह स्वरूप बौद्ध और जैन साधन पद्धतियों में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

अपने सामान्य अर्थ में 'योग' संयोग, मिलन या मेल के अर्थ में प्रयुक्त होता है। व्युत्पत्ति के आधार पर 'योग' शब्द 'युग' धातु से बना है युग धातु भी दो प्रकार के हैं (1) जोड़ने या संयोजित करने (2) समाधि को संकेतित करता है। डॉ० कामख्या कुमार का मानना है कि योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के युजिर् धातु से हुई है जिसका अर्थ है, सम्मिलित होना, एक होना। इस एकीकरण का अर्थ जीवात्मा तथा परमात्मा का एकीकरण अथवा मनुष्य के व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक पदों के एकीकरण को लिया जा सकता है।²

वेदों में योग शास्त्रीय और साधना प्रणाली के रूप में स्थापित है। उपनिषदों में इसका स्वरूप और व्यापक हो जाता है जहाँ योग शब्द ध्यान, तप और समाधि के रूप में प्रयुक्त होता है तो उसके आध्यात्मिक अर्थ को भी प्रकाशित करता है। इसलिए उपनिषदों में योग को 'ब्रह्म' के साथ साक्षात्कार करने वाली क्रिया भी कहा गया है।³ योग के सिद्धांतों की मीमांसा उपनिषदों में व्यवस्थित जीवन प्रणाली के रूप में मिलती है जो विश्व कल्याण के धारणा से संबद्ध होती थी।

गीता में योग की अलग-अलग व्याख्या मिलती है जो ज्ञानयोग, भक्ति योग और कर्मयोग पर आधारित है। गीता की योग पर कुछ मान्यताएँ निम्न हैं-

1. तस्मादयोगस्य युज्यस्वः योगः कर्मसु कौशलम् अर्थात् कर्म करने की कुशलता या कर्मबंधन से छूटने का उपाय योग है।⁴
2. दुःख का जो संयोगो उससे वियोग हो जाए यही योग है।⁵
3. 'समत्वं योगमुच्यते' अर्थात् किए गए कर्म के फल में समभाव रहने का नाम समत्व है।⁶

मुख्य रूप से गीता में योग की यह संपूर्ण धारणा 'समत्व योग' के अंतर्गत आती है, जिसका आधार है, समर्पण। यह समर्पण तभी संभव है जब चित की संपूर्ण वृत्तियों का निरोध हो जाय और 'चित की वृत्तियों का निरोध हो जाना ही योग है।'⁸ अपने सभी परंपरा में योग इसी लक्ष्य की ओर अग्रसर होता

है। महर्षि पतंजलि ने इसके लिए अनेक आयामों को स्पष्ट किया है। इनका मानना है कि आत्म साक्षात्कार के द्वारा चितवृत्तियों को अवरूद्ध किया जा सकता है। परंतु इसके लिए कुछ साधन अपनाने होते हैं। ये निम्न हैं-

1. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से बने अन्नमय आवरण को हटाना।
2. प्राणमय आवरण जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध से बना है उसको हटाना।
3. मनोमय आवरण- इसमें मोह, मद, सुख-दुःख एवं भय के आवरण को हटाना।
4. इसके बाद सत, रज और तम तीन उपादानों से बना विज्ञानमय आवरण को हटाया जाता है।

योग में मोक्ष का मार्ग आवरण के निवृत्ति से होकर जाता है। इसके लिए योग साधना की विधि को स्पष्ट करता है जिसे अष्टांग योग या राजयोग की संज्ञा दी जाती है ये हैं- यम, नियम, शासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि⁹

इसमें यम, मन और वाणी का संयम है जो पाँच प्रकार के हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।¹⁰ नियम जो भावात्मक सद्गुणों का अभ्यास है, आंतरिक अनुशासन का नियमन करता है, इसके भी पाँच प्रकार हैं, शौच, संतोष, तप, स्वध्याय और ईश्वर प्राणिधान¹¹ इसके बाद शरीर के साधन के लिए आसन की सिद्धि आवश्यक है। यहीं से योग का साधन प्रारंभ होता है। योग साधन के लिए चित की पांच वृत्तियाँ मानी गई हैं-स्मृति, निन्द्रा, विकल्प, विपर्यय और प्रमाण। इनके लिए योग में एक विधि विकसित की गई जिसे निरोध -

1. स्मृति के लिए-आसन एवं प्राणायाम
2. निन्द्रा के लिए-प्रत्याहार धारणा
3. विकल्प के लिए- ध्यान
4. विपर्यय के लिए-समाधि
5. प्रमाण के लिए-वृत्ति का निरोध स्वतः ही हो जाता है।

पंचआवरण-अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विभानमय और आनंदमय का पृथक्करण भी इसी से संभव होता है। साथ ही अवस्थाओं में प्राणायाम से जाग्रत अवस्था का, प्रत्याहार से स्वप्नावस्था का, धारणा से सुषुप्ति, ध्यान से मुर्च्छा और समाधि से मृत्यु की अवस्था को जानकार आत्मीय चौतन्य की दशा की ओर मुड़ा जाता है।

योग की यह पारंपरिक साधना साधरण जीवन में कुछ कठीन सा प्रतीत होती है। इसलिए योग द्वारा मध्यम मार्ग का अनुसरण कर यम, नियम साधनों को अपनाते हुए 'युक्ताहार विहारस्य युक्तस्वेष्टस्य कर्म की धारणा को अपनाया गया। जहाँ किसी भी अति का निषेध किया गया। जैसे गृहस्थ को न ही भूखा रहना है और न ही अत्यधिक भोजन करना चाहिए आदि-आदि। इसका प्रभाव यह होगा कि मन और शरीर के संयमना का अनुशासन विकसित हो जाएगा। फलतः सद्गुण और शुभ संकल्प का आविर्भाव होगा और उसके कर्म सम्यक संकल्प से युक्त होंगे। दर्शन के नास्तिक परंपरा में योग साधना पद्धति और जीवन मूल्य के रूप में विकसित हुआ, वहाँ भी योग का संदर्भ यही रहा। जैन दर्शन में सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र को मोक्ष मार्ग के रूप में स्वीकार किया गया है¹² और यहाँ मोक्ष है जीव का अनंतचतुष्टय से युक्त हो जाना। बौद्ध दर्शन का अष्टांगिक मार्ग और त्रिरत्न की अवधारणा भी इसी पथ का प्रदर्शन करती है।

अतः इन दोनों ही पद्धतियों में योग मूल रूप से वह अनुशासन है जो मन और शरीर का संयमन करता है तो जीव को आत्मा का, तो आत्मा का परमतत्व से साक्षात्कार की ओर बढ़ जाता है। यह स्व का संपूर्ण में विलयन है तो संपूर्ण का स्व में अनुभूति भी।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में योग अपने इस स्वरूप से विचलन कर गया है। यह केवल शारीरिक और मानसिक व्यायाम के रूप में स्थापित हो गया है। योग के आशिक स्वरूप का आत्मसातीकरण उसे इसके मूल लक्ष्य से हटा दिया है। योग में मन और शरीर के अनुशासन से प्रारंभ माना जाता है, जिसमें 'यम' और 'नियम' की धारणा प्रमुख रही है। वर्तमान में यम और नियम के उस अवधारणा का लोप कर दिया गया है। परिणामतः योग की साधना से अभिष्ट की सिद्धि नहीं हो पाती है।

अतः आज के समय में योग का व्यवसायीकरण हो गया है जिसका प्रभाव रहा कि अष्टांग योग की पद्धति को विकृत कर दिया गया। मुख्यतः यह धारणा आज के परिप्रेक्ष्य के अनुकूल भी रही है। इसलिए आज योग का जो स्वरूप है उसका लक्ष्य मानसिक और शारीरिक व्याधियों से मुक्ति का है, चित वृत्तियों के निरोध का नहीं। बाजारवादी व्यवस्था में यह मान्यता है कि चितवृत्तियों का निरोध नहीं बल्कि नियंत्रित विस्तार होना चाहिए। इसलिए आधुनिक समय में योग की यह धारणा आध्यात्मिक मूल्य नहीं बल्कि नैतिक और मनोवैज्ञानिक रूप में अधिक मान्य है। नैतिक रूप में चरित्र के सद्गुणों का विकास जो मनोवैज्ञानिक रूप में मानसिक विचलन को नियंत्रित कर मनोदृढ़ता प्रदान करता है। इससे शरीर में अंतस्त्रावी ग्रंथियों का नियंत्रण होता है और मस्तिष्क तथा शारीरिक रूग्णता से भी मुक्ति मिलती है। योग का चिकित्सकीय आयाम आज का प्रमुख उद्देश्य हो गया है। अतः स्वास्थ्य के प्रति उभरती चेतना ने योग को विश्वव्यापी बना दिया। भागदौड़ और तनावग्रस्त अव्यवस्थित दिनचर्या से जीवन में विकृतियों से मुक्ति के लिए 'योग' रामबाण औषधि के रूप में सामने आया है। वैज्ञानिक अध्ययन गुणवत्तापूर्ण जीवन के लिए योग को अपरिहार्य मान रहे। परंतु जहाँ तक रोगों से मुक्ति का प्रश्न है इस पर वैज्ञानिक अनुसंधान की आवश्यकता है, क्योंकि क्लिनिकल परीक्षण का पर्याप्त स्रोत अभी नहीं है। अतः आज चिकित्सकीय परिप्रेक्ष्य में योग, व्यायाम की कोटि से बाहर नहीं आ पाया है।

निष्कर्ष: अतः वर्तमान भौतिक युग में योग के शास्त्रीय पद्धति और प्राचीन विरासत से प्राप्त लक्ष्यों के प्रति आशंकाएं स्पष्ट हैं। योग साधना पद्धति और जीवन मूल्य के रूप में प्राचीन भारतीय संस्कृति और दर्शन के गौरव का प्रतीक बन चुका है, लेकिन इस बात को लेकर कोई स्पष्टता नहीं है कि आधुनिक जीवन में इसका लक्ष्य या उद्देश्य क्या हो सकता है। आध्यात्मिक उत्थान, चितवृत्ति निरोध या शारीरिक व्यायाम।

संदर्भ ग्रंथ:

1. बृहद योगियाज्ञवल्क्य स्मृति, 12.5
2. मारकोस द नौस्टिक (इरोनयस 1:13.3)
3. कुमार कामाख्या, योग महाविज्ञान, स्टैंडर्ड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ० 44-45
4. छोंदोग्य उपनिषद्, 7/6/1
5. गीता 2/18
6. वही, 6/23
7. वही, 2/48
8. योगसूत्र 1/2
9. वही, 2/29
10. वही, 2/30
11. वही 2/38
12. तत्त्वार्थ सुत्र 1.1

दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत विद्यार्थियों का एम० लर्निंग के प्रति अभिमत का अध्ययन

प्रियंका रावल

व्याख्याता, विद्या भवन गो. से. शिक्षक महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)

शोध सारांश

यदि हम कल के तरीके से आज के विद्यार्थियों को पढ़ाएंगे तो हम उनसे, उनके आज एवं आने वाले कल को उनसे लूट लेंगे। -जॉन डीवी

इंटरनेट एक बहुत अधिक शक्तिशाली संसाधन है जिसके अंतर्गत एम. लर्निंग एक नवीन चरण है, इसका प्रयोग वर्तमान में बहुतायत से हो रहा है जिसकी वर्तमान परिस्थितियों में प्रयोग की स्थिति को देखने के फलस्वरूप 'दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत विद्यार्थियों का एम. लर्निंग के प्रति अभिमत का अध्ययन' विषय पर शोध अध्ययन किया गया। शोध के प्रमुख उद्देश्यों के अंतर्गत दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत विद्यार्थियों द्वारा एम. लर्निंग के प्रयोग का अध्ययन, एम. लर्निंग से सीखने में होने वाली सुविधाओं का अध्ययन तथा दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत विद्यार्थियों को एम. लर्निंग में होने वाले कठिनाइयों का अध्ययन करना था। शोध से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने से ज्ञात हुआ कि दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत बी.ए. के ज्यादातर विद्यार्थी गूगल सर्च इंजन, यूट्यूब तथा फेसबुक का प्रयोग अपने शिक्षण कार्य में करते हैं। एम. लर्निंग के माध्यम से सुविधाओं के अंतर्गत सीखने में सहायता प्राप्त होती है। उन्हें विषय वस्तु (शिक्षण सामग्री) आसानी से उपलब्ध होती है। विषय वस्तु का संप्रत्यय स्पष्ट होता है। वे किसी भी समय, किसी भी स्थान से सीख सकते हैं तथा किसी भी विषय वस्तु को वे पुनः पढ़ सकते हैं। एम. लर्निंग से होने वाली कठिनाइयों के अंतर्गत मोबाईल पर नेटवर्क से संबंधी समस्या होती है, शिक्षण सामग्री मोबाईल में आसानी से सेव नहीं होती है, मोबाईल में यूट्यूब पर डाउनलोड किए गए वीडियो को यूट्यूब के अलावा कहीं ओर पुनः नहीं देख पाते हैं, मोबाईल से सीखना कक्षा-कक्ष में सीखने के समान नहीं है तथा बिना नेटवर्क के मोबाईल पर शिक्षण संभव नहीं है।

Keyword: दूरस्थ शिक्षा, एम. लर्निंग एवं अभिमत।

प्रस्तावना

“यह अच्छी तरह स्वीकार किया गया है कि सूचना और संचार प्रौद्योगिकी में विद्यार्थियों के, शिक्षकों के एवं अन्य के शिक्षण पर प्रभाव डालने की अपार क्षमता होती है और वह हमारे देश में शैक्षिक व्यवस्था के सामने आने वाली चुनौतियों में से कुछ को कम करने के नए और अधिक प्रभावी रास्ते उपलब्ध कराती है।” -सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी

शिक्षा जगत में दिन-दिन नए परिवर्तन होते रहे हैं। जैसे शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन, शिक्षा पद्धति में परिवर्तन, शिक्षा के उद्देश्य में परिवर्तन, शिक्षा के पाठ्यक्रम में एवं पाठ्यचर्या में परिवर्तन तथा शिक्षा की प्रणाली में परिवर्तन। इन्हीं परिवर्तनों की कड़ी में आईसीटी का प्रयोग शिक्षा जगत में बड़ा परिवर्तन है जिसके माध्यम से शिक्षण कार्य को एक नई दिशा प्राप्त हुई है।

शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन के अंतर्गत दूरस्थ शिक्षा (Distance Education) की व्यवस्था ने जन्म लिया जिसमें विद्यार्थी को नियमित तौर पर किसी संस्थान में जाकर पढ़ाई करने की जरूरत नहीं होती। अध्यापन तथा शिक्षण के तौर-तरीकों तथा समय-निर्धारण के साथ-साथ गुणवत्ता संबंधी अपेक्षाओं से समझौता किए बिना प्रवेश-मानदंडों के संबंध में भी उदार है। सभी पाठ्यक्रमों के लिए कक्षाओं की संख्या तय होती है और देश भर के कई केन्द्रों पर उनकी पढ़ाई होती है। सूचना क्रांति और इंटरनेट के कारण दूरस्थ शिक्षा और आसान एवं प्रासंगिक हो गयी है। विजुअल क्लासरूम लर्निंग, इंटरैक्टिव ऑनसाइट लर्निंग और वीडियो कांफ्रेंसिंग के जरिए विद्यार्थी देश के किसी भी राज्य में रहकर घर बैठे पढ़ाई कर सकते हैं।

वर्तमान में आईसीटी की क्रांति के पश्चात शिक्षण कार्य को एक नई दिशा प्राप्त हुई है जिसमें एम. लर्निंग (मोबाईल फोन से सीखना) का एक महत्वपूर्ण स्थान है। एम. लर्निंग, एम. और लर्निंग दो शब्दों के योग से बना है जहाँ एम. शब्द मोबाईल फोन का सूचक है वही लर्निंग का आशय सीखने से है। ऐसे में मोबाईल फोन से दी अथवा ली जाने वाली किसी प्रकार की शिक्षा को एम. लर्निंग कहा जाता है। इसमें शिक्षा का माध्यम सिर्फ किताब ना होकर पिक्चर, वीडियो, आवाज या फिर टेक्स्ट भी हो सकते हैं। एम. लर्निंग शैक्षिक सामग्री को प्राप्त करने या प्रदान करने की क्षमता है।

शोधार्थी को एम. लर्निंग के प्रति दूरस्थ शिक्षा से जुड़े विद्यार्थियों के अभिमत जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। अतः शोधार्थी के मस्तिष्क में निम्नलिखित शोध प्रश्नों ने जन्म लिया-

शोध प्रश्न

1. क्या दूरस्थ शिक्षा में मोबाईल से सीखा जाता है?
2. क्या दूरस्थ शिक्षा में मोबाईल से समस्त विषयों का अध्ययन किया जा सकता है?
3. क्या मोबाईल सीखने में सहयोगी है?
4. दूरस्थ शिक्षा में मोबाईल से कैसे सीखा जाता है?

शोध समस्या

“दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत विद्यार्थियों का एम. लर्निंग के प्रति अभिमत का अध्ययन।”

शोध उद्देश्य

1. दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत विद्यार्थियों द्वारा एम. लर्निंग के प्रयोग का अध्ययन करना।
2. दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत विद्यार्थियों का एम. लर्निंग से सीखने में सुविधाओं का अध्ययन करना।
3. दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत विद्यार्थियों का एम. लर्निंग से सीखने में कठिनाइयों का अध्ययन करना।

पारिभाषिक शब्दावली

दूरस्थ शिक्षा: शिक्षा की वह प्रणाली है, जिसमें शिक्षक तथा विद्यार्थी को स्थान-विशेष अथवा समय-विशेष पर मौजूद होने की आवश्यकता नहीं होती। विद्यार्थी को नियमित तौर पर किसी संस्थान में जाकर पढ़ाई करने की भी जरूरत नहीं होती।

एम. लर्निंग: मोबाईल फोन से दी अथवा ली जाने वाली किसी प्रकार की शिक्षा को एम. लर्निंग कहा जाता है। इसमें शिक्षा का माध्यम सिर्फ किताब ना होकर पिक्चर, वीडियो, आवाज या फिर टेक्स्ट भी हो सकते हैं। एम. लर्निंग शैक्षिक सामग्री को प्राप्त करने या प्रदान करने की क्षमता है।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध कार्य की आवश्यकता/प्रकृति के आधार पर शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण शोध विधि का उपयोग किया गया।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोध कार्य में न्यादर्श का चयन सौउद्देश्य प्रतिचयन विधि से किया गया जो निम्नानुसार है-

तालिका - 1

क्र.सं.	जिला	कक्षा	विद्यार्थी	कुल योग
1.	उदयपुर	बी.ए.	50	50
2.	बांसवाड़ा	बी.ए.	50	50
3.	डूंगरपुर	बी.ए.	50	50
4.	चित्तोड़गढ़	बी.ए.	50	50
कुल योग				200

परिसीमन

शोध की विस्तृत प्रकृति को देखते हुए इसके सीमांकन की आवश्यकता प्रतीत हुई अतः शोध कार्य का सीमांकन निम्न प्रकार से किया गया।

1. प्रस्तुत शोध कार्य को उदयपुर संभाग के चार जिलों (उदयपुर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर एवं चित्तोड़गढ़) तक सिमित किया गया।
2. प्रस्तुत शोध कार्य को वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा तक सिमित किया गया।
3. प्रस्तुत शोध कार्य को दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत बी.ए. में अध्ययनरत विद्यार्थियों तक सिमित किया गया।

उपकरण

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु शोधार्थी द्वारा निम्नांकित स्वनिर्मित उपकरण का उपयोग किया गया-

- दूरस्थ शिक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों हेतु अभिमतावाली

सांख्यिकी तकनीकी

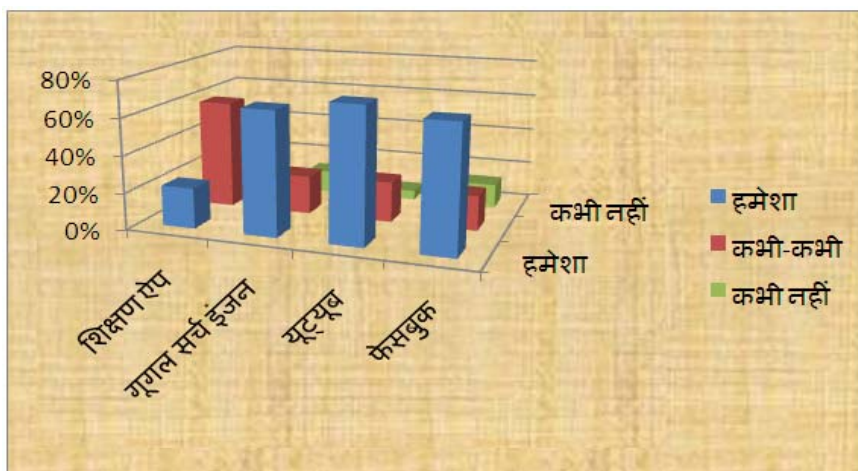
प्रस्तुत शोध कार्य में संकलित दत्तों के विश्लेषण के लिए सांख्यिकीय तकनीक के अंतर्गत ‘प्रतिशत तकनीक’ का उपयोग किया गया।

शोध परिणामों का विश्लेषण, व्याख्या एवं निष्कर्ष

1. दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत विद्यार्थियों द्वारा एम. लर्निंग के प्रयोग का अध्ययन।

तालिका-2

क्र. सं.	एम. लर्निंग	प्रयोग		
		हमेशा	कभी-कभी	कभी नहीं
1.	शिक्षण ऐप	22%	59%	19%
2.	गूगल सर्च इंजन	67%	21%	12%
3.	यूट्यूब	73%	22%	05%
4.	फेसबुक	68%	19%	13%



आरेख - 1: दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत विद्यार्थियों द्वारा एम. लर्निंग का प्रयोग

व्याख्या : तालिका संख्या - 2 एवं आरेख संख्या 1 के अनुसार बी.ए. के विद्यार्थियों द्वारा एम. लर्निंग के प्रयोग के अंतर्गत पाया गया कि-

- 22 प्रतिशत विद्यार्थी शिक्षण ऐप का प्रयोग हमेशा करते हैं जबकि 59 प्रतिशत विद्यार्थी शिक्षण ऐप का प्रयोग कभी-कभी करते हैं तथा 19 प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे हैं जो शिक्षण ऐप का प्रयोग कभी नहीं करते हैं।
- 67 प्रतिशत विद्यार्थी गूगल सर्च इंजन का प्रयोग हमेशा करते हैं जबकि 21 प्रतिशत विद्यार्थी गूगल सर्च इंजन का प्रयोग कभी-कभी करते हैं तथा 12 प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे हैं जो गूगल सर्च इंजन का प्रयोग कभी नहीं करते हैं।
- 73 प्रतिशत विद्यार्थी यूट्यूब का प्रयोग हमेशा करते हैं जबकि 22 प्रतिशत विद्यार्थी यूट्यूब का प्रयोग कभी-कभी करते हैं तथा 5 प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे हैं जो यूट्यूब का प्रयोग कभी नहीं करते हैं।
- 68 प्रतिशत विद्यार्थी फेसबुक का प्रयोग हमेशा करते हैं जबकि 19 प्रतिशत विद्यार्थी फेसबुक का प्रयोग कभी-कभी करते हैं तथा 6 प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे हैं जो फेसबुक का प्रयोग कभी नहीं करते हैं।

निष्कर्ष : निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत बी.ए. के ज्यादातर विद्यार्थी एम. लर्निंग के अंतर्गत गूगल सर्च इंजन, यूट्यूब तथा फेसबुक का प्रयोग अपने शिक्षण कार्य में करते हैं।

2. दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत विद्यार्थियों को एम. लर्निंग से प्राप्त सुविधाएँ

तालिका-3

क्र. सं.	अभिमत	हाँ	नहीं	अनिश्चित
1.	क्या सीखने में मोबाईल से सहायता प्राप्त होती है?	74%	07%	19%
2.	क्या मोबाईल पर विषय वस्तु (शिक्षण सामग्री) आसानी से उपलब्ध होती है?	71%	11%	18%
3.	क्या मोबाईल से सीखने से ज्ञान में वृद्धि होती है?	80%	4%	16%
4.	क्या मोबाईल द्वारा सीखने से विषय वस्तु का संप्रत्यय स्पष्ट होता है?	69%	11%	20%
5.	क्या आप मोबाईल से किसी भी समय सीख सकते हैं?	83%	4%	13%
6.	क्या आप मोबाईल से किसी भी स्थान से सीख सकते हैं?	83%	4%	13%
7.	क्या आप मोबाईल से किसी भी विषय वस्तु को पुनः पढ़ सकते हैं?	79%	4%	17%

व्याख्या : तालिका संख्या - 3 के अनुसार बी.ए. के विद्यार्थियों को एम. लर्निंग से प्राप्त सुविधाओं के अंतर्गत पाया गया कि-

- 74 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि उन्हें सीखने में मोबाईल से सहायता प्राप्त होती है जबकि 07 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि उन्हें सीखने में मोबाईल से सहायता प्राप्त नहीं होती है तथा 19 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।
- 71 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि उन्हें मोबाईल पर विषय वस्तु (शिक्षण सामग्री) आसानी से उपलब्ध होती है जबकि 11 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि उन्हें मोबाईल पर विषय वस्तु (शिक्षण सामग्री) आसानी से उपलब्ध नहीं होती है तथा 18 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।
- 80 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि मोबाईल से सीखने से उनके ज्ञान में वृद्धि होती है जबकि 04 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि मोबाईल से सीखने से उनके ज्ञान में वृद्धि नहीं होती है तथा 16 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।
- 69 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि मोबाईल द्वारा सीखने से विषय वस्तु का संप्रत्यय स्पष्ट होता है जबकि 11 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि मोबाईल द्वारा सीखने से विषय वस्तु का संप्रत्यय स्पष्ट नहीं होता है तथा 20 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।
- 83 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि वे मोबाईल से किसी भी समय सीख सकते हैं जबकि 04 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि वे मोबाईल से किसी भी समय नहीं सीख सकते हैं तथा 13 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।
- 83 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि वे मोबाईल से किसी भी स्थान से सीख सकते हैं जबकि 04 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि वे मोबाईल से किसी भी स्थान से नहीं सीख सकते हैं तथा 13 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।
- 79 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि वे मोबाईल से किसी भी विषय वस्तु को पुनः पढ़ सकते हैं जबकि 04 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि वे मोबाईल से किसी भी विषय वस्तु को पुनः नहीं पढ़ सकते हैं तथा 17 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।

निष्कर्ष : निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत बी.ए. के विद्यार्थियों को एम. लर्निंग के माध्यम से सुविधाओं के अंतर्गत सीखने में सहायता प्राप्त होती है। उन्हें विषय वस्तु (शिक्षण सामग्री) आसानी से उपलब्ध होती है। उनके ज्ञान में वृद्धि होती है। विषय वस्तु का संप्रत्यय स्पष्ट होता है। वे किसी भी समय, किसी भी स्थान से सीख सकते हैं तथा किसी भी विषय वस्तु को वे पुनः पढ़ सकते हैं।

3. दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत विद्यार्थियों को एम. लर्निंग में होने वाली कठिनाइयां

तालिका-4

क्र. सं.	अभिमत	हाँ	नहीं	अनिश्चित
1.	क्या आपको मोबाईल से सीखने में कठिनाई होती है?	07%	74%	19%
2.	क्या मोबाईल पर नेटवर्क से संबंधी समस्या होती है?	47%	39%	14%
3.	क्या मोबाईल से प्रत्येक विषय का शिक्षण संभव नहीं है?	24%	40%	16%
4.	क्या शिक्षण सामग्री मोबाईल में आसानी से सेव हो जाती है?	21%	59%	20%
5.	क्या मोबाईल से सीखना कक्षा-कक्ष में सीखने के समान नहीं है?	64%	23%	13%
6.	क्या आप मोबाईल पर डाउनलोड किए गए वीडियो को बिना नेट के पुनः देख पाते हैं?	18%	63%	19%
7.	क्या यूट्यूब पर शिक्षण वीडियो आसानी से डाउनलोड हो जाते हैं?	21%	59%	20%
8.	क्या बिना नेटवर्क के मोबाईल पर शिक्षण संभव है?	07%	74%	19%

व्याख्या: तालिका संख्या - 4 के अनुसार बी.ए. के विद्यार्थियों को एम. लर्निंग में होने वाली कठिनाइयों के अंतर्गत पाया गया कि-

- 07 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि उन्हें मोबाईल से सीखने में कठिनाई होती है जबकि 74 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि उन्हें मोबाईल से सीखने में कठिनाई नहीं होती है तथा 19 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।
- 47 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि मोबाईल पर नेटवर्क से संबंधी समस्या होती है जबकि 39 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि मोबाईल पर नेटवर्क से संबंधी समस्या नहीं होती है तथा 14 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।
- 24 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि मोबाईल से प्रत्येक विषय का शिक्षण संभव नहीं है जबकि 40 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि मोबाईल से प्रत्येक विषय का शिक्षण संभव है तथा 16 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।
- 21 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि शिक्षण सामग्री मोबाईल में आसानी से सेव हो जाती है जबकि 59 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि शिक्षण सामग्री मोबाईल में आसानी से सेव नहीं होती है तथा 20 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।
- 64 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि मोबाईल से सीखना कक्षा-कक्ष में सीखने के समान नहीं है जबकि 23 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि मोबाईल से सीखना कक्षा-कक्ष में सीखने के समान है तथा 13 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।

- 18 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि मोबाईल पर डाउनलोड किए गए वीडियो को बिना नेट के पुनः देख पाते हैं जबकि 63 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि मोबाईल पर डाउनलोड किए गए वीडियो को बिना नेट के पुनः नहीं देख पाते हैं तथा 19 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।
- 21 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि यूट्यूब पर शिक्षण वीडियो आसानी से डाउनलोड हो जाते हैं जबकि 59 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि यूट्यूब पर शिक्षण वीडियो आसानी से डाउनलोड नहीं होते हैं तथा 20 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।
- 07 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि बिना नेटवर्क के मोबाईल पर शिक्षण संभव है जबकि 74 प्रतिशत विद्यार्थियों का अभिमत है कि बिना नेटवर्क के मोबाईल पर शिक्षण संभव नहीं है तथा 19 प्रतिशत विद्यार्थी अनिश्चित है।

निष्कर्ष : निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि दूरस्थ शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत बी.ए. के विद्यार्थियों को एम. लर्निंग से होने वाली कठिनाइयों के अंतर्गत मोबाईल पर नेटवर्क से संबंधी समस्या होती है, शिक्षण सामग्री मोबाईल में आसानी से सेव नहीं होती है, मोबाईल पर डाउनलोड किए गए वीडियो को बिना नेट के पुनः नहीं देख पाते हैं, मोबाईल से सीखना कक्षा-कक्ष में सीखने के समान नहीं है तथा बिना नेटवर्क के मोबाईल पर शिक्षण संभव नहीं है।

शैक्षिक निहितार्थ

- शिक्षा में आईसीटी के प्रयोग (एम. लर्निंग) को सकारात्मक रूप में शामिल किया जाएगा।
- आईसीटी के अंतर्गत एम. लर्निंग को एक नवीन चरण का स्थान प्राप्त होगा।
- शिक्षक स्वयं एम. लर्निंग का प्रयोग कर अपने ज्ञान में वृद्धि करेगा।
- शिक्षक एम. लर्निंग के माध्यम से विद्यार्थियों को अध्यापन करवाएगा।
- विद्यार्थी एम. लर्निंग का प्रयोग कर अपने ज्ञान में वृद्धि करेगा।
- विद्यार्थी एम. लर्निंग का सकारात्मक प्रयोग करेगा।
- विद्यार्थी मोबाईल पर उपलब्ध शिक्षण ऐप का प्रयोग करेगा।
- विद्यार्थी शिक्षण वीडियो के माध्यम से विषय के संप्रत्यय को आसानी से स्पष्ट कर सकेगा।

संदर्भ

- मुकजी, डॉ. रवीन्द्र नाथ. 2014. सामाजिक शोध व सांख्यिकी, विवेक प्रकाशन दिल्ली, ISBN: 81-7004-211-9
- शर्मा, आर.ए. 2011. शिक्षा अनुसंधान, विनय रखेजा मेरठ, ISBN: 978-93-81466-59-9
- कपिल, एच. के. 2011. सांख्यिकी के मूल तत्त्व, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, ISBN: 81-7457
- Aubusson, P., Schuck, S., & Burden, K. (2009). Mobile Learning for Teachers Professional Learning: Benefits, Obstacles and Issues. ALT-J, Research in Learning Technology, 17(3), 233-247.
- Bates, C.C., & Martain, A., (2013). Using Mobile Technology to Support Literacy Coaching Practices. Journal of Digital Learning in Teacher Education, 30(2), 60-66.
- Chen, C. (2010). The Implementation and Evolution of a Mobile, Self and Peer Assessment System. Computers & Education. 55(1), 229-236.
- Kearney, M., Schuck, S., Burden, K., & Aubusson, P. (2012). Viewing Mobile Learning from a Pedagogical Perspective. Research in Learning Technology, 20(1), 1-17.
- Schuck, S., Aubusson, P., Kearney, M., & Burden, K., (2013). Mobile Learning Teacher Education : A Study of a Professional Learning Community Teacher Development, 17(1).1-18.
- Thomas, K., & O., Bannon, B. (2013). Cell Phones in The Classroom : Preservice Teachers' Perceptions. Journal of Digital Learning in Teacher education, 30(10) 11-20.

भारतीय अमूर्त चित्रकला के अग्रदूत डॉ० गगनेन्द्रनाथ ठाकुर (पाश्चात्य घनवादी कला के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ० मंजू सिंह

अध्यक्ष, एसोसिएट प्रोफेसर, ललित कला विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली

20 वीं शताब्दी का प्रारम्भ भारतीय कला के लिए ही नहीं बल्कि राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। कई भारतीय कलाकारों और विद्वानों का विदेशों में जाना और वहां के विविध ज्ञान के दोनों से अवगत होना विदेशों से भी विलियम राथेन्स्टीन, काउण्ट ओकाकुरा, स्टेला क्रैमरिश जैसे विद्वानों का भारत आना; आधुनिक पाश्चात्य कला के पूर्व की कला, आदिम कला और लोक कला तत्वों से प्रेरणा लेना और कला सृजन के नवीन स्रोतों व आयामों को खोजने के कारण यथार्थवादी त्रिआयामी परिप्रेक्ष्य को छोड़कर विविध आयाम निर्मित करने वाली विधाओं का प्रयोग, व्यक्तिगत कल्पना और फैंटेसी की अभिव्यंजना हेतु किया जाने लगा। इन नवीन प्रवृत्तियों के झोंके सर्वप्रथम टैगोर जी ने ही महसूस किये।

उनके घनवादी चित्रों से पूर्व के सृजन का सिंहावलोकन किया जाए तो स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ से उन्होंने अधिकतर कार्य स्याही में किया है और छाया प्रकाश की क्रीड़ा में उन्हें विशेष रुचि थी। उनके प्रारम्भिक चित्रों में महत्वपूर्ण स्याही और तूलिका से चित्रित व्यक्ति चित्र थे। और उनके बाद 1911 के आसपास रवींद्रनाथ टैगोर की पुस्तक 'श्रीजीवन स्मृति' पर आधारित चित्र हैं। काली स्याही और जल रंगों में बोल्ड तूलिका आघातों द्वारा चित्रांकन में मानस पर अंकित स्मृतियों के अनुरूप शैली बन गई है।

सन 1912 के बाद तीर्थयात्री क्रमचित्रों (series) और रात्रि दृश्य चित्रों में तूलिका के छोटे-छोटे आघातों द्वारा प्रभाववादी शैली का प्रभाव कम दिखाई देता है। इस समय उन्होंने कुछ चित्र चमकदार रंगों और छोटे छोटे उनका घातों में शपाटी इन द गार्डेन जैसे भी बनाये। वे जिस नवीन शैली से अवगत होते थे उसे अपनी अभिव्यंजना की आवश्यकतानुसार अपने प्रयोगों में समाहित कर लेते थे। इसके बाद उन्होंने काली स्याही और गहरे रंगों में 'तीर्थयात्री' क्रम चित्र बनाये जिनमें मंदिरों के गर्भ ग्रह से आते हुए प्रकाश के प्रभावों का दैवीय शक्ति और आलौकिकता के रूप में प्रयोग कर छाया प्रकाश का रहस्यमय मायाजाल बुना है। इन प्रभावों की परिशाति बाद में रहस्यमय प्रकोष्ठों (1915-20) से है के चित्रों में होती है। घनवादी चित्रों में भी ठोसत्व के बदले छाया-प्रकाश की पारदर्शी परतों की क्रीड़ा अधिक लगती है।

गगनेन्द्रनाथ के घनवादी चित्रण में (1915-19) के मध्य विचित्र क्लब की गतिविधियों की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जा सकती है। इस क्लब में होने वाली नाटकों के लिए मंच सज्जा और उनके प्रारंभिक स्केच बनाते हुए उनका ध्यान प्रकाश की कर्णवत किरणों और उनके परस्पर बंधन (intersection) पर गया जिनका प्रयोग उन्होंने 'रहस्यमय घर' क्रम चित्रों में किया था। यहां भी उन्होंने पश्चिम में मंच सज्जा पर हो रहे नवीन प्रयोगों का अध्ययन किया जो उस समय गार्डेन क्रेग रुसी मंच सज्जाकार द्वारा किए जा रहे थे। इसके अतिरिक्त घनवादी फ्यूचरिस्ट एवं कंस्ट्रक्टिविस्ट कल्पना का भी देव किया।¹ वे इन आधुनिकतम प्रवृत्तियों का ज्ञान नवीनतम पुस्तकों द्वारा ही प्राप्त करते थे जो उनका प्रिय शौक था।² कहा जाता है कि डॉक्टर स्टेला क्रैमरिश उनके व्यक्तिगत पुस्तक संग्रह में कला की नवीनतम पुस्तकें देखकर आश्चर्यचकित रह गई।³

पुस्तकों एवं पत्रिका के अतिरिक्त कला प्रदर्शनियों से भी वे आधुनिक कला प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख हुए। सन 1914 में पैविलियन मोर्सन, पेरिस में भारतीय चित्रों की एक प्रदर्शनी लगी जिसमें गगन बाबू के छः चित्र प्रदर्शित थे, और उन्हें यूरोप के कला आलोचकों की प्रशंसा भी मिली। ओ. सी. गांगुली का मानना है कि इस प्रशंसा के कारण ही गगनेन्द्र नाथ का ध्यान घनवाद की ओर गया।⁴ उनके घनवादी प्रयोगों के बारे में सबसे पहले जुलाई 1922 की शुरुआत में डा. स्टेला क्रैमरिश ने लिखा-घनवाद के स्थिर संयोजन के सिद्धांत से अभिव्यंजनात्मक प्रेरणा में रूपांतरण कलाकार का भारतीय कला और घनवाद दोनों का ही योगदान है।⁵ और उनको 'एक इन्डियन क्यूबिस्ट' कहा। इस लेख के साथ उनके सात घनवादी चित्र भी छपे थे। गगनेन्द्रनाथ ने अपने यह पहले घनवादी प्रयोग पुस्तकों एवं पत्रिकाओं में छपे हुए चित्रों से प्रेरित होकर किये होंगे। हो सकता है कि उन्होंने एल्बर्ट ग्लीजेज और जीन मेट्टिजंगर द्वारा लिखित और सन 1912 में फ्रेंच और अगले वर्ष इंग्लिश में प्रकाशित पुस्तक 'शड्यू क्यूबिज्म' और 1913 में प्रकाशित एपोलोनेयर्स की बहु चर्चित पुस्तक 'लेस पेन्टर्स क्यूबिस्ट्स' देखी होगी। यह सम्भावना और दृढ़ हो जाती है जब उनके 'रूपम' में छपे चित्र का एल्बर्ट ग्लीजेज और मेट्टिजंगर के चित्रों से साम्य दिखाई देता है।

सन 1923 में बर्लिन में भारतीय आधुनिक चित्रकला की एक प्रदर्शनी लगी जिसमें गगन बाबू की कृतियों को घनवादी कहा गया और लियोनेल फैनिंगर व फ्रैंज मार्क से तुलना की गई।⁶ विनय कुमार सरकार ने भी इन्हें प्रथम बार 'फ्यूचरिज्म' से जोड़ा।⁷ वास्तव में गगनेन्द्रनाथ टैगोर के चित्र ठोस घनों पर आधारित न होकर पारदर्शी तलों के परस्पर अच्छादित (overlapping) और अंतर्वेधित (interseeting) तलों के हैं और सुकोमल आभामय व रहस्यमय कल्पना का आभास देने के कारण उनके अंतर्मुखी स्वभाव व रोमांटिक संवेदना से प्रेरित लगते हैं।

आज घनवादी आंदोलन लगभग एक शती पुराना हो गया है और आसानी से उसका पुनः परीक्षण किया जा सकता है। इस कला आंदोलन ने रेनेसां काल से चले आ रहे एक स्थिर दृष्टि बिंदु से देखे गए भ्रमपूर्ण त्रिआयामी परिप्रेक्ष्य की संकल्पना को पूर्ण रूप से भंग किया था। इसकी पृष्ठभूमि में 19वीं शती की कला यात्रा में निहित विचारधाराओं के अतिरिक्त दृष्टि विज्ञान संबंधी खोजों की हम एक साथ और क्रमानुसार देखते हैं; मनोविज्ञान का विकास हम अपने

प्रत्यक्ष बोध, अंतर्मन और अचेतन के बिम्बों के अनुरूप सोचते और समझते हैं; नृ विज्ञान का विस्तार कि विभिन्न देशों व काल के ज्ञान विज्ञान एक दूसरे से निकटता से संबंधित हैं; और पौर्वोत्प, आदिम व लोककला की विशेषताओं से स्पष्ट होता है कि कला रूप पूर्णता चाक्षुक बिम्बों पर आधारित नहीं होते हैं का आधार था।

सेजाँ और पिकासो ने सर्वप्रथम स्पष्ट किया कि हम स्थिर दृष्टि से नहीं देखते हैं, बल्कि हमारा मानस भी उसे ग्रहण करता है, इसी से उन्होंने दृश्य रूपों का सलीकरण, ज्यामितिकरण और अमूर्तिकरण किया और बहु परिप्रेक्ष्य और बहु-दृष्टि बिंदुओं को एक ही बिम्ब में समाहित करने का प्रयास किया। कलाकार केवल शिल्पकार ही न रहकर विचारक, वक्ता और भविष्य दृष्टा बन गया। कला रूप मानसिक और बौद्धिक होकर, दृश्य रूपों से स्वतंत्र, कलाकार की व्यक्तिगत कल्पना और फैंटेसी से उपजे, अपने रूप, माध्यम एवं अभिव्यंजना में समाज का अविच्छिन्न अंग हो गए।

घनवाद की उपरोक्त सूक्ष्म विवेचना के आधार पर यह देखना है कि गगनेंद्र नाथ ने इस विधा को अपने घनवादी चित्रों में किस दृष्टि से प्रयुक्त किया। रूपम 1922 में छपे उनके प्रारंभिक चित्र ज्यामितीय तलों के सपाट संयोजन लगते हैं। उनमें पिकासो एवं ब्राक के प्रारंभिक चित्रों के सामान प्लास्टिक नुमा और आंतरिक गत्यात्मकता (dynamism) का अभाव है। जहां “पिकासो ने अपने कला रूपों को एक बौद्धिक अस्तित्व, भौतिक अविष्करण, परिप्रेक्ष्य की स्वतंत्रता, परिवर्तनशीलता और विशुद्ध चाक्षुक संवेदना में स्पर्शनीय संवेदना जोड़ी”⁸ वहाँ ब्राक ने आयामी संवेदना पर अधिक बल देते हुए “चाहे वह चेहरा, फूल या पूर्ण आकृति चित्रित करता था संपूर्ण बिम्ब निरंतर स्पर्दित होता लगता था।”⁹ टैगोर के प्रारंभिक चित्रों में यह विशेषताएं नहीं दिखाई देती हैं। काली व सफेद स्याही में बने त्रिकोणों पर संयोजनों में मध्यम तानों के प्रयोग की समस्या को कलाकार सुलझा नहीं पाए हैं। इसी से इनमें आंतरिक गहनता और गतिमयता नहीं है। स्टेला क्रैमरिश ने अपने लेख में¹⁰ इन चित्रों की तुलना एल्बर्ट ग्लीजेज और जीन मेट्जिंगर के चित्रों से की थी। हालांकि यह दोनों कलाकार घनवाद आंदोलन से सीधे जुड़े थे, किंतु उनकी कला में पिकासो, ब्राक और जुआन ग्रेस के समान गहन सोच और बुद्धिवाद नहीं था”¹¹ उन्होंने आकृतियों और उनके चारों ओर के आयाम को छाया-प्रकाश के ज्यामितीय तलों में केवल संकलित किया गया था। टैगोर के ‘ड्रीमलैंड’ क्रम चित्र (1920-25) अपनी पूर्णता में एन. गोन्कारोवा के स्टेज सज्जा से संबंधित चित्रों और ब्राक की ‘स्टिल लाइफ विद वायलिन एंड पिचर’ के काफी निकट है। अब तक उन्होंने घनवाद के सिद्धांतों को ग्रहण कर लिया था।

सन 1925 तक गगन बाबू ने घनवादी विधा में एक अपनी शैली विकसित कर ली थी, जिसमें संगीत मयता का धीमा आरोह-अवरोह, गति व रहस्यमयता है। यह विशेषता इस समय के अमूर्त प्रयोगों और ‘सात भाई चम्पा’ और ‘हिमालय का संगीत’ चित्रों में उभरकर आयी है। यह दिलाने के घनवादी प्रयोगों जिनको एपोलोनियर ने ऑर्फिज्म (orphism) नाम दिया था के सबसे करीब है। एपोलोनियर ने घनवाद को चार श्रेणी में बाँटा था और ऑर्फिज्म को सबसे अग्रवर्ती माना था। उन्होंने लिखा है यह चित्रण की सबसे नई विधा है जिसमें दृश्य यथार्थ से संगतियां न लेकर पूर्ण रूप से कलाकार द्वारा बनाई गई है, और एक शक्तिपूर्ण उपस्थिति द्वारा संपन्न है। इसने समकालिकता के विचार का विस्तार किया, जिसमें वस्तुओं या दृश्यों के विविध दृष्टि बिंदुओं का एक ही बिम्ब में सम्मिलन किया जा सके। इसके चित्रकार विशेषकर दिलाने के जीवन के उस दर्शन से अनुप्राणीत थे जो अधिक आंतरिक, अधिक लोकप्रिय और अधिक कर्तव्यमय था।”¹²

इस दृष्टि से टैगोर के सबसे सफल घनवादी प्रयोग बंगाली लोक कला ‘सात भाई चंपा’ पर आधारित लगते हैं, जो दिलाने के ‘एफिल टॉवर सीरीज’ चित्रों की सबसे निकट आते हैं। जिस प्रकार दिलाने ने एफिल टावर की ऊंचाई पेंडों, बहु-मंजिला इमारतों और बादलों के तलों के मध्य तीव्रता से आकाश की ओर जाते हुए चित्रित की है, उसी प्रकार टैगोर ने बंगाल की इस लोक कला से जुड़ी फैंटेसी का चित्रण किया है। दोनों ही चित्रों में संयोजन नीचे की ओर घना और वास्तु-शिल्पीय रूपों के तलों में हैं। उनकी प्रवृत्ति अमूर्तन की ओर थी गगनेंद्र नाथ टैगोर का योगदान घनवादी प्रयोग कला जगत में अविस्मरणीय है।



चित्र संख्या-1 (रात्रि में शहर)



चित्र संख्या-2 (मंदिर)

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. डॉ. रतन परिमू; द पेन्टिंग्स ऑफ द प्री टैगोर्स; पृष्ठ 120
2. दिनेश चंद्र सेन; गगनेंद्र नाथ टैगोर सेन्टीनरी वॉल्यूम; इ. सो. ऑ. ओ. आ; पृष्ठ 08
3. ओ. सी. गांगुली; गगनेंद्र नाथ टैगोर सेन्टीनरी वॉल्यूम; पृष्ठ 22
4. रुपम संख्या 10; अप्रैल 1922: पृष्ठ 70
5. रुपम संख्या 15-16; जुलाई-दिसम्बर 1930
6. विनय कुमार सरकार; रुपम संख्या 26; अप्रैल सन 1936
7. मेट्जिंगर; जॉन गोल्डिंग द्वारा उद्धृत ; क्यूबिज्म पृष्ठ 28
8. स्टेला क्रैमरिश; रुपम संख्या 11; पृष्ठ 70
9. जॉन गोल्डिंग, 'क्यूबिज्म'; पृष्ठ 28 और कॉन्सेप्ट्स ऑफ मॉडर्न आर्ट; पृष्ठ 73
10. जॉन गोल्डिंग, 'क्यूबिज्म'; पृष्ठ 36

कला शिक्षा के कुछ मूलभूत प्रश्न

आकांक्षा वर्मा

पी०एच०डी० शोधार्थी, राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (२०१०)

डॉ० शकुन्तला मिश्र

राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (२०१०)

शिक्षा का उद्देश्य केवल किताबी ज्ञान नहीं है अपितु शिक्षा का उद्देश्य किसी के भी जीवन को सुधारना व जीवन को स्वयं के प्राप्त ज्ञान से जीने को पैदा करना होता है। मनुष्य शिक्षा के माध्यम से स्वयं को व अपने आने वाले भविष्य को मानसिक व आर्थिक दोनों माध्यमों से कुशलतापूर्वक कर सके। यह उसका एक महत्वपूर्ण कार्य होना चाहिए। इसी के साथ वह अपने परिवार के अन्य लोगों अपने जीवनसाथी, अपने बच्चों, अपने परिवार के अन्य छोटे-बड़े सदस्यों को शिक्षा के प्रकाश के ओर ले जा सके यह शिक्षा को उद्देश्य एक अच्छे समाज का प्रतिनिधित्व करता है। और आज के समय में ये काफी सीमा तक सफल भी हुआ है किन्तु शिक्षा के इस पूर्णक्रम में कला का भी अप्रीतम योगदान होना चाहिए और पाठ्यक्रम में इसका स्थान निश्चित होना चाहिए जिससे बौद्धिक, भावनात्मक, वैयक्तिक, अध्यात्मिक व सृजनात्मक स्तर पर विकास में मनुष्य को सहयोग दे सके।

आजकल कला-शिक्षा का ढांचा न तो उपयुक्त है, न समयोचित, न उद्देश्यपूर्ण और न ही वृत्तिमूलक। कला का स्थान मात्र एक कौशल के रूप में देखा जाता है। कला में व्यवसायिक शिक्षा या तो नकार दी जाती है या उसको वही पुराने तरीकों से पुनः दिखाया जाता है अतः हमारे कला समाज को चाहिए कि कला शिक्षा को दोबारा व्यवस्थित किया जाये। भारतवर्ष में कला अध्ययन को तीन भागों में बांटा गया है-

प्रथम- डिग्री कालेज से सम्बन्धित जिनमें बी०ए०, एम०ए० शिक्षा आ जाती है।

द्वितीय- ललित कला महाविद्यालय (बी०एफ०ए०, एम०एफ०ए०) जो कि कला के प्रोफेशनल कोर्सेस में आ जाता है।

तृतीय- स्वतंत्र रूप से कला का अध्ययन करना।

प्रथम स्तर पर सरकार व शिक्षा प्रशासन द्वारा शिक्षकों की नियुक्ति तो करायी जाती है। किन्तु कला शिक्षा के साथ कभी न्याय होता नहीं नजर आता है। नियुक्ति हो जाने के बाद सालों-साल तक उनके कला ज्ञान को आगे बढ़ाने को कोई सफल प्रयास नहीं किया जाता है। कई बार तो कला विधार्थियों को ललित कला अकादमी के बारे में भी जानकारी नहीं होती। कभी भी डिग्री कालेज के शिक्षकों ने प्रयास करने की कोशिश नहीं की कि विधार्थियों को चित्रकला प्रदर्शनी, त्रिनासे, कला मेला या अपने कालेज में दूसरे कलाकारों को बुलाकर डिमॉस्ट्रेशन या तकनीक के विषय में लेक्चर दिलवाना ये कार्यक्रम में अपनी रुचि नहीं दिखायी है।

हां सत्य है कि डिग्री कॉलेज में विधार्थियों को सिर्फ कला विषय ही नहीं पढ़ना होता है उनकी डिग्री कोर्स में अन्य विषयों को भी शामिल कराया जाता है किन्तु यहां कला विषय में विधार्थियों को प्रोत्साहित करने का काम तो शिक्षक और सरकार द्वारा कार्यक्रम से ही सम्भव हो सकेगा जिससे विधार्थी कला के प्रति जागरूक हो और हमारी कला शिक्षा में भी ज्यादा से ज्यादा बड़े स्तर पर विकास हो सके। इसमें सर्वप्रथम सरकार की कला शिक्षा के प्रति दृष्टिगत नजरिये की गलती कही जाये या शिक्षकों व विधार्थियों का कला शिक्षा में रुचि न लेने को ? सरकार यू०जी०सी० को भी कला शिक्षा के प्रति अन्य विषयों की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिए। संस्कृति व परम्परागत कलाओं को जीवित रखने के प्रयास को लाभ-हानि से नहीं जोड़ा जाना चाहिए।

दूसरे स्तर पर कला शिक्षा का एक महत्वपूर्ण माध्यम हमारे ललित कला महाविद्यालय हैं। जिसमें आज के समय में 4 वर्षों के लिए स्नातक में व यदि विधार्थी की इस क्षेत्र में है तो ज्यादातर विधार्थी 2 वर्षों के लिए परास्नातक से जुड़ते हैं। जिसमें पूर्णतः प्रयोगात्मक विषयों पर ही कार्य किया जाता है। जिसमें आज का विद्यार्थी कुछ वर्षों डिग्री के पश्चात् ही स्वयं कलाकार की उपाधि देना प्रारम्भ कर देता है। विधार्थी सृजनात्मक की तरफ ध्यान के अलावा अन्य हर कार्य पर ध्यान देने में लगा रहता है जैसे कि वह जल्द से जल्द बड़ा कलाकार कैसे बन जाये या किस तरह आर्थिक धनोपार्जन में वह अपने आप को व्यस्त कर ले। कला महाविद्यालय में शोधात्मक सोच की आवश्यकता होना जरूरी है जिससे वह नये सृजनात्मक कार्यों को जन्म दे सके। और देश में ही नहीं अपितु अन्य देशों में अपने कृतियों का प्रदर्शन नई तकनीकों व नये विषयों से कर सके।

इन दोनों श्रेणियों के साथ ही एक तीसरा स्तर है जिसमें कलाकार स्वतंत्र है इसे नाम दिया गया है स्वतंत्र कलाकार(Freelance Artist) जो कि किसी भी उम्र का हो उसको अपनी कृति और सृजनात्मक अभिव्यक्ति से ही जीवन का आनंद प्राप्त होता है। स्वतंत्र कलाकारों के कार्य का मूल्यांकन कोई कला शिक्षक नहीं अपितु आत्म अनुशासन व स्वयं के अनुभव, अभिव्यक्ति ही होती है। उनके लिए कला का परम्परागत स्वरूप व लोक कलायें प्रेरणा का सागर

हैं। वह अपनी आंतरिक भावनाओं को अपनी कृतियों के माध्यम से निकाला है व उसे समाज के सामने पत्र-पत्रिकाओं, टेलीविजन, प्रदर्शनी व आज के समय चल रहे सोशल मीडिया ने बहुत सहायता की है। जिससे कलाकार अपनी अभिव्यक्ति दर्शा पाता है साथ ही स्वतंत्र कलाकारों के लिए विशेष रूप से सरकार की तरफ से चले आ रहे ललित कला अकादमियों ने हमेशा ही सहारे का काम किया है। राज्य स्तरीय अकादमी क्षेत्रीय अकादमी व प्राइवेट गैलरी भी समय पर कलाकारों के आर्थिक सहायता प्रदान करती रहती है। किन्तु वर्तमान में कलाकारों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ रही है और इस स्थिति में कलाकारों को अधिक उचित स्टूडियो व आर्थिक सहायता की आवश्यकता जिससे वह स्थान व धन की फिक्र किये बिना अपने सृजनात्मक कार्य को पूर्ण कर सकें। देश व अन्य स्थानों पर भी अकादमी की ब्रांच की स्थापना होना प्रगति का स्रोत बन सकता है जिससे देश के कोने-कोने से हमारी क्षेत्रीय संस्कृति का ज्ञान भी बड़े स्तर पर निखर कर सामने आ पायेगा।

दृश्यकला शिक्षा का स्वरूप एक गम्भीर सोचने का विषय है। मूर्तिकला, ग्राफिक्स, चित्रकला, फोटोग्राफी, नाट्यकला सभी दृश्य कलायें अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से काफी अच्छी हालत में नहीं है। इसका कारण एक यह भी है कि कला विषय को समाज से बहुत आवश्यक विषय के तौर पर नहीं देखा जाता है इसको बड़े बच्चों के शौक को पूरा करने का विषय समझा जाता है जिसे पूरा किया जाये या न किया जाये किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता और यदि डिग्री लेने के विषय में बात की जाये तो आर्ट्स कालेज व डिग्री कालेज की दूरियों को मिटाना ज्ञान के आदान-प्रदान की परम्परा डालनी होगी जिससे प्रयोगात्मक व शोधात्मक दोनों के मेल से एक संतुलित कलाकार व्यक्तित्व विकसित हो सके। देश में डिग्री कालेजों की संख्या ज्यादा है बजाय आर्ट्स कालेज के यदि कुछ सीमित कॉलेजों में ही सिर्फ कला का ज्ञान दिया तो विधार्थी कला के लिए कहीं और भटकने की संभावना कम हो जायेगी। और अच्छे कलाकारों की उत्पत्ति भी हो सकेगी।

आधुनिक युग में युवा पीढ़ी को ध्यान में रखकर यदि हमने कला शिक्षा को नये सिरे डिजाइन नहीं किया तो एक दिन ऐसा भी आयेगा कि जब उत्पादन व उत्पादक ही दिखायी पड़ेंगे। सृजनात्मकता को जिन्दा रखने के लिए सरकारी शिक्षा पद्धति से कला शिक्षा का सुधार, विकास के लिये बहुत आवश्यक है।

हमारा भारत वर्ष प्राचीन समय से ही कलात्मक व सांस्कृतिक विचार धारा का धनी रहा है किन्तु समय के साथ बदलते-2 आधुनिक समय में इसके स्वरूप में बदलाव आता रहा और कहीं न कहीं प्राचीन सभ्यता आज के समय में उतनी सम्पन्न नहीं रह गयी है जैसी पहले हुआ करती थी। इसको विषेश कारण यह भी हो सकता है कि यह सामान्य लोगों में सामान्य जीवन में उतना प्रवेश नहीं कर पाई। इसके सिर्फ सजावट की वस्तु को नजर से ही देखा गया। किन्तु अब समय आ गया है कि इसे एक अच्छा मंच दिया जाये जिससे हमारी संस्कृति आधुनिक रूप में लोगों के सामने अपनी जगह बना पाये। भारत में जीवन का विकास निरन्तर हो रहा है। प्रारम्भ में कम्प्यूटर का प्रचलन था और अब यह लैपटॉप, टैबलेट, माइक्रोचिप्स तक इसका विकास हो चुका है। बायोकेमिस्ट्री से लेकर अणु-परमाणु तक ज्ञान-विज्ञान भौतिक शास्त्र सभी विषय शोध के बल पर आज समाज में नई ऊचाइयों को हासिल कर रहे हैं किन्तु कला शिक्षा को दशा ज्यादा बदलती नजर नहीं आ रही है। न ही शोध पर ध्यान दिया जाता है और न प्रयोगशालाओं का महत्व, न ही उचित वर्कशाप हे और न ही कला विधिकायें जहां आप अपने आज के समाज में स्थापित करने के लिये संघर्ष कर सकें। एक कला विद्यार्थी को इन सबकी कितनी आवश्यकता है यह समाप्त को समझने में काफी समय लग रहा है।

कला शिक्षा को समाज में अधिक रुचिकर बनाने के लिये आज के समय की जरूरत के अनुसार आडोविजुअल उपकरणों का, नई तकनीकें जैसे स्लाइड्स, प्रिन्ट आधुनिक संग्रहालय उपलब्ध होना चाहिये। इंटरनेट पर आज हर प्रकार से व्यक्ति को नई-नई सूचनायें प्राप्त होती रहती हैं। और अब इन दिनों ऑनलाइन प्रदर्शनी का प्रचलन काफी तेजी से आगे बढ़ रहा है जिससे कलाकार कम से कम समय में ही एक स्थान से दूसरे स्थानों, देश-विदेशों में अपनी कला का प्रदर्शन बढ़ी ही कुशलतापूर्वक कर लेता है। अब एक कला प्रेमी को यह चाहिये की वह अपने आज को अभिलेख और इन कार्यक्रमों में सम्मिलित होता रहे। जिससे वे आधुनिक समाज के साथ कदम से कदम मिला कर चल सकें।

आज का समय इतना प्रभावशाली हो गया है कि अब कहीं भी प्रदर्शनी या कोई कार्यक्रम हो संचार के माध्यम बहुत आसानी से पता चल जाता है। जर्मनी की हो या इटली की, अमेरिका की हो या लंदन की या बंगलादेश की हो या भारत की प्रदर्शनी पूरे विश्व में संचार का माध्यम काफी तेजी से आगे बढ़ गया है। कला शिक्षा की बात का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिये और कला प्रेमियों के लिये नये रास्ते निकालने चाहिये। प्रारम्भिक पारस्परिक सभ्यता को आज के समय के साथ लेकर यदि चला जाये तो कला शिक्षा का नया रूप सामने आ सकता है जिससे हमारी संस्कृति भी जिन्दा रहेगी और वह आधुनिकता को भी समझ पायेगी।

साहित्य में दलित चिंतन का स्वर

डॉ० मनीषा सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी राजकीय महाविद्यालय, प्रयागराज

‘दलित चेतना’ साहित्य में किस तरह व्याख्यायित होती है और उसका महत्त्व क्या है यह जानने से पहले यह जान लेना बहुत जरूरी है कि हम ‘दलित’ शब्द को और ‘दलित चेतना’ का क्या अर्थ निकालते हैं या हमारा इनसे क्या आशय है। इन शब्दों को गहराई से जाने बिना इनके बारे में बातें करना निरर्थक है।

‘दलित’ शब्द का अर्थ होता है ‘दबा होना’ अर्थात् ऐसे लोग जो दबे पड़े हैं हमारे समाज की सड़ी-गली मान्यताओं, परम्पराओं के नीचे। जिनकी उपेक्षा की जाती है, जिनको सामाजिक, धार्मिक आर्थिक अधिकारों से वंचित रखा गया है, जिनका उत्पीड़न होता है। वे दबाए हुए लोग दलित कहलाए। इन्हें युगों से स्थिर धर्म और वर्णव्यवस्था के नीचे और दबा दिया गया और सबसे नीचले पायदान पर खड़ा कर दिया गया।

रत्नकुमार संभारिया के अनुसार “दलित का मौलिक अर्थ है ‘दलित, उत्पीड़न, शोषण, कुचला चीथा हुआ। वह वंचित दलित सर्वहारा जो दलित्व भोग रहा है..... जिसके अंतर्स में ‘स्व’ के प्रति चेतना जागृत नहीं हुई है।”

ओम प्रकाश वाल्मीकी दलित शब्द को ‘संघर्ष का प्रतीक’ के रूप में स्वीकारते हैं “हम इसे दल के साथ जोड़ते हैं जो सामुहिक तौर पर कार्य करता है, जीवन को सामाजिक तरीके से जीता है और समाज से अलगाव दूर करता है। इसी के आधार पर हमने ‘दलित’ शब्द स्वीकार किया है।”

जीवन के प्रत्येक क्षण में जिनके लिए संघर्ष हो, जहाँ अपमान की दारुण और भयावह भट्टी उनको निरन्तर जलाती हो, वे लोग जिन्हें ‘दलित’ कहा गया उनके अन्तर्स में सदियों की पीड़ा को भोगते हुए विद्रोह की आग फूट पड़ी। उन्होंने अनुभव किया कि वे भी मनुष्य हैं। उन्हें भी मनुष्य की तरह जीने का अधिकार है परन्तु उनका जीवन उस स्तर का नहीं है जैसा कि अन्य का। दूसरों की अपेक्षा में वे नारकीय स्थिति को भोगने को विवश हैं। अन्ततः उन्होंने धर्म के उन बन्धनों को मानने से इन्कार कर दिया जो उन्हें नारकीय जिन्दगी की तरफ ढकेलती है।

प्रेमचन्द ने ‘कर्मभूमि’ में ‘चौधरी’ के द्वारा इस कर्मफल के सिद्धान्त का खण्डन किया है “यह सब मन को समझाने की बातें हैं बेटा, जिससे गरीबों को अपनी दशा पर सन्तोष रहे। और अमीरों के रास रंग से किसी प्रकार की बाधा न पड़े। लोग समझते हैं कि भगवान ने हमको गरीब बना दिया। आदमी का क्या दोष पर यह कोई न्याय नहीं है कि हमारे बाल-बच्चे तक काम में लगे रहे और पेटभर भोजन तक न मिले और एक-एक अफसर को दस-दस हजार की तलब मिले।” पंक्तियों में प्रेमचन्द ने दो ठूक शब्दों में कर्मफल सिद्धान्त के नाम पर होने वाले शोषण पर से परदा उठाया है। उन्होंने माना कि समाज का वह तबका जो सबसे नीचले पायदान पर है उसका कारण धार्मिक प्रथाएं उतनी नहीं हैं जितनी कि आर्थिक विसंगति या उनकी गरीबी है। वे मानते हैं कि वे लोग यदि मन्दिर में प्रवेश कर भी ले तो क्या इससे उनकी सारी कठिनाईयाँ दूर हो जाएंगी? नहीं जब तक कि वो आर्थिक रूप से सबल नहीं बनते। उनके उपन्यासों या कहानियों में जहाँ कहीं भी दलित वर्ग के पात्रों के अस्तित्व का प्रश्न होता है प्रेमचन्द उनके साथ होते हैं। वे उनको अपने हक के लिए लड़ने को प्रोत्साहित करते हैं “हमने आरजू भिन्नतों से काम निकालना चाहा था पर मालूम हुआ सीधी अंगुली से घी नहीं निकलता। हम जितना दबेंगे, यह बड़े आदमी हमें उतना ही दबाएंगे, आज तुम्हें तय करना है कि तु अपने हक के लिए लड़ने को तैयार हो या नहीं।”

अपने हक के लिए आवाज उठाने की कसमसाहट दलित लोगों में व्यक्त होने लगी। उन्होंने यह पाया कि उनके पास भरपेट खाने के लिए भोजन, तन को पूरी तरह ढकने के लिए वस्त्र नहीं है और घर के नाम पर टूटी-फूटी दीवारें हैं। इस रूप में उनके पास जीने की बुनियादी वस्तुएं भी नहीं हैं। वे अन्य की अपेक्षा में अत्यन्त पिछड़े हैं, जिन वस्तुओं पर उनका भी अधिकार होना चाहिए वह भी उनके पास नहीं है उन्होंने इन्हें प्राप्त करने के लिए संघर्ष प्रारम्भ किया। इस रूप में उनमें जागृति आई, उन्हें आत्मबोध हुआ। वह चेतना उद्भाषित हुई जिसे दलित चेतना कहा गया। इस जन जागृति की तरफ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इंगित करते हुए कहा था “इस देश में बहुत से साधुमना व्यक्ति हैं जो समझते हैं कि वेद पढ़ा देने या जनेऊ पहना देने से इन जातियों का ‘उद्धार’ हो जाएगा। बहुत से लोग इनका छुआ अन्न ग्रहण कर लेने के कारण अपने को बड़ा सुधारक समझते हैं। यह मनोवृत्ति उचित नहीं। जन जागृति जिस दिन सचमुच होगी, उस दिन ऊँची मर्यादा वाले इनका ‘उद्धार’ नहीं करेंगे, ये स्वयं अपनी मर्यादा उच्च बनाएंगे वह एक अपूर्व समय होगा जब शताब्दियों से पद्दलित, निर्वाक, निरन्न जनता समुद्र की लहरियों के फूटकार के समान गर्जन से अपना अधिकार मांगेगी।”

यह जन जागृति जो दिखलाई पड़ रही है वह गर्जना के साथ ही अधिकारों की मांग कर रही है। उन्होंने अपने बारे में वृहद स्तर पर सोचना प्रारम्भ किया। उन्होंने अपने चिंतन को लेखन की तरफ मोड़ा और उनके द्वारा शब्दबद्ध जीवन का अनुभव ‘दलित साहित्य’ के रूप में परिगणित होने लगा। अपमान, शोषण, गरीबी से भरी अपनी जिन्दगी के कड़वे सच की अभिव्यक्ति हुई साहित्य में। ‘दलित साहित्य’ के लिए यह मान्यता है कि उसमें विद्रोह का भाव है साथ ही वह उस असीमित दुःख शोषण की अभिव्यक्ति है जिन्हें बहुसंख्यक जनता ने जीया है। इस साहित्य का अध्ययन हमें उस यातना; उस पीड़ा का अनुभव कराने में मददगार होता है। शरण कुमार लिंबाले का कथन इस बात का समर्थन करता है “हमारी यातना, वेदना, और व्यथा से समाज जुड़ जाए, इसीलिए

तो हम लिख रहे हैं। हम इस साहित्य की ओर प्रबोधन (सुधार) के माध्यम के रूप में ही देखते हैं।⁶

साहित्य की विस्फोटकता के लिए वे पाठकों के 'अनुभव' और 'समझ' को उत्तरदायी मानते हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में 'उद्धार' शब्द को स्वीकार नहीं किया है। ओम प्रकाश वाल्मीकी के लिए 'उद्धार' उसका होता है जो अक्षम हो, शक्तिहीन हो तथा उद्धार करने वाला शक्तिशाली हो और इस बात को वे सिरे से नकार देते हैं। उन्होंने बराबरी का, समानता का अधिकार मांगा है। प्रवीण गढ़व की कविता में यह मांग स्पष्ट रूप से सुनी जा सकती है।

नही चाहिए हमें तुम्हारी करूणा का पानी

अधिकार चाहिए/अस्मिता चाहिए

दलित चेतना के मूल बिंदु के रूप में डॉ. अम्बेडकर परिलक्षित होते हैं। जिन्होंने दलित शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई और उस आवाज की गुंज से शोषित जन में मुक्ति की आकांक्षा उत्पन्न हुई। उनका प्रभाव, तात्पर्य उने विचारों के प्रभाव से है दलित साहित्य पर पूर्ण रूप से पड़ा। गाँधी जी ने जाति-पाति के बन्धनों से मुक्त समाज की कल्पनायें इनके उत्थान को मूल माना है। इनके साथ ही महात्मा ज्योतिबा फुले जैसे लोगो ने भी दलित चेतना का आगाज किया था।

दलित साहित्य में जाति के बन्धनों को तोड़ने की कोशिश है। एक जाति केनीचे दूसरी जाति, दूसरी के नीचे तीसरी प्रत्येक जाति का अपने से नीचे एक जाति के दूढ़ने को लेकर भी विरोध के स्वर दिखलाई पड़ते हैं कृतियों में।

माँ! ये मेहरिये बहुत फूल गए हैं

माँ! ये सुतरिये बहुत अधा गए हैं

वह तो काषी के बामन-बनिया की तरह

अपने पड़ोस में भी मुझे रहने नहीं देता.....⁸

आपस में फैल रहे हैं विद्वेष ईर्ष्या की भावना की ओर इस कारण इंगित किया गया है कि आपसी वैमनष्य से स्वयं अपना ही विकास अवरूद्ध होता है। अतः उसे दूर करने का प्रयास नितान्त आवश्यक है। ओमप्रकाश वाल्मीकी की कविता संग्रह 'सदियों का सन्तोष' 'बस्स बहुत हो चुका' 'अब और नहीं', नीरव पटेल की कविता "माँ! मैं भला कि मेरा भाई ?" प्रवीण गढ़वी की 'सूर्यादय की प्रतीक्षा' कविता संग्रह:- जैसे कवियों की कविताएं पूरी आक्रामकता से समाज की धर्म और वर्ण व्यवस्था पर चोट करती हैं। उनमें उच्च वर्ग और ब्राह्मणवादी व्यवस्था से तीखे प्रश्नों के जवाब मांगे गए हैं:-

तुर्की अरबी और ईरानी शब्दों को

अपनी भाषा में मिला लिया

हमें क्यों नहीं मिला पाए?

x x x x x

पानी के लिए तरसते रहना

धर खेत के लिए भटकना

सिर्फ हमारे हिस्से में ही क्यों आया ?

दलित चेतना जहाँ सबसे अधिक मुखरित हुई है वह विधा है 'आत्मकथा' या 'दलित आत्मकथा'। शरण कुमार लिंबाले की 'अक्करमाशी' दयापवार की 'अछूत' ओमप्रकाश वाल्मीकी की 'जूठन' लक्ष्मण गायकवाड़ की 'उठाईगीर', मोहनदास नेमिषराय की 'अपने-अपने पिंजरे', बेबी कांबले की 'हमारा जीवन' आदि कुछ ऐसी ही आत्मकथाएं हैं जिनके लेखकों ने अपनी पिछली जिन्दगी को पूरी सच्चाई के साथ और भावजनक तथा भाषाई आक्रामकता के साथ व्यक्त किया। वाल्मीकी जी के अनुसार हम लालित्यपूर्ण भाषा में अपनी अनुभूतियों अपनी पीड़ा को व्यक्त नहीं कर सकते। ये आत्मकथाएं वर्षों से चुप रहकर सब सहन करने वाले लोगों का जीवन बयान करती हैं उस जीवन का प्रतिबिंब दर्शाती हैं। "आत्मकथा का अर्थ जो जीवन जीया है, भोगा है और देखा है इतने तक सीमित वही है: अपितु जो जीवन यादों में समाया हुआ है वही आत्मकथा है। ये यादें सच्ची घटनाओं से जुड़ी रहती हैं। कागज पर शब्दों का रूप लेकर ये यादें प्रतिभा के पैरों चली आती हैं।" इस प्रकार आत्मकथाएं स्मृतियों को आधार पर निर्मित होती हैं। शरण कुमार लिंबाले ने जब 'अक्करमाशी' में अपना पिछला जीवन उतारा तो उपरोक्त बातें उनके लेखन में सहायक बनीं। उन्होंने आत्मकथा में दिखलाया कि किस तरह गाँव जाति व्यवस्था के कठोर बन्धनों से जकड़ा था। रास्ते पर चुपचाप एक किनारे से चलते जिससे वे किसी को छुन पाए उनकी बस्ती में किस तरह शराब का चोरी-चोरी कारोबार होता है। कैसे स्कूल जाने पर उन्हें दलित होने के कारण पीछे बैठाया जाता है और पिता का नाम न मालूम होने के कारण सारे बच्चे उनका अपमान करते सबका उन्होंने खुले रूप में वर्णन किया है। कही भी कुछ भी ढका नहीं रखा उन्होंने। उन्होंने अपनी बस्ती का चित्रण करते हुए लिखा "एक-एक निवाला खाकर लोटा लोटा पानी पीकर जीने वाली इस बस्ती के लोग धोर दरिद्रता की जिंदगी जीते हुए समय से पहले ही बुढ़िया गए थे, उने हाथ पैर ही पेट था। रोज कमाओं, रोज खाओ।"¹⁰ उन्होंने गाँवों के जातिवादी संस्कारों को तो दिखलाया ही तथा शहरों में रहने वाले लोगों की सोच की भी विवेचित किया। यहाँ की संकीर्ण मानसिकता को भी उजागर किया जो शिक्षित होने के बाद भी जड़े जमाए बैठी हैं लोगों के भीतर। उन्हें शहर में अच्छी जगह मकान नहीं मिलता। सभी लोग मुसलमान तथा महारों को घर देने को तैयार नहीं होते। और उन्हें मजबूरी में एक ऐसी बस्ती में घर लेना पड़ता है जहाँ वे नहीं रहना चाहते।

दया पवार की 'अछूत' इस आत्मकथा में भी अभावग्रस्त जीवन का मार्मिक वर्णन है। चाचा-चाची के साथ रहने, दलित हास्टल का चित्र, हास्टल में अपनी माँ को काम करते देखना साथ ही वैवाहिक जीवन में आने वाली मुश्किलों का जो वर्णन उन्होंने किया वह समाज के उच्च वर्ग की विलासिता के पीछे छुपा दिये गए निम्न वर्गीय लोगों की भुख, पीड़ा, शोषित व्यक्तित्व के सच को खोलकर रखती है।

इसी प्रकार अन्य आत्मकथाएं भी ऊँची जाति वाले लोगों द्वारा किये गए शोषण को बयान करती हैं। वह परिवर्तन के लिए संघर्ष करती हैं। उनमें वर्णव्यवस्था, धर्मव्यवस्था के कारण कई स्तरों में बँटे समाज को एक साथ लाने की कोशिश दिखलाई पड़ती है। इन आत्मकथाओं में इनके लेखकों की छटपटाहट दिखाई देती है अपनी अस्मिता की तलाश की। इनके माध्यम से अपनी समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं वह चाहते हैं कि उच्च वर्ग वालों को यह अहसास हो कि उन्होंने समाज के एक अन्य हिस्से के साथ कितना भयानक व्यवहार किया। “दलित आत्मकथाओं में हमारे समाज के बड़े हिस्से का अंतर्दाह और चीत्कार हैं, जिसे आज नहीं तो कल हमें सुनना पड़ेगा।”² सवर्ण कहलाने वाली जातियाँ जब तक इनकों बढ़ने का रास्ता नहीं तब तक समाज का समग्र विकास नहीं हो सकता। या तो वे स्वयं ही उन्हें रास्ता दे या जन जागृति की तेज फूत्कारों को सहने के लिए स्वयं को सक्षम बना ले।

‘दलित चेतना’ के उदय के आरम्भिक दौर में इन रचनाओं की उद्भावना हुई इस कारण उनमें वह आक्रामकता दलित साहित्यकारों को दिखलाई नहीं पड़ती। इस कारण वहाँ साहित्य के दो विचारधाराओं में अलगाव दिखलाई पड़ता है।

कैवल भारती मानते हैं कि “भारतीय समाज का सत्य वर्ग नहीं वर्ण” और प्रेमचन्द अपनी रचनाओं में वर्ण व्यवस्था पर चोट नहीं करते। “एक और दलितों से सहानुभूति, दूसरी ओर वर्णव्यवस्था पर विष्वास’ वे अभी रचनाओं में देखते हैं। खांडेकर भारतीय साहित्य परम्परा को दलित साहित्य की अपेक्षा में ‘नकली और द्रोही’ पाते हैं साथ ही उनका यह भी मानना है कि जिस चेतना की बात इस साहित्य में की जाती है, जिस तरह की अभिव्यक्ति उनकी हुई, वह ‘अहसास’ के स्तर तक नहीं पहुँची।

इन साहित्यकारों का मानना है कि दलित चेतना को गैर दलित साहित्यकार पूर्णतः स्पष्ट रूप में व्यक्त नहीं कर सकते क्योंकि उस जीवन को जिनका वे अंकन करते हैं उसे उन्होंने जीया नहीं है। उनकी अभिव्यक्तियों में सहानुभूति है, दया तथा ‘उद्धार’ की भावना लेकर चलती है। जबकि उनके द्वारा लिखा गया या शब्दबद्ध अनुभव उनके द्वारा भोगा होता है अतः वे उसे यथार्थवादी रंग से पूर्ण सच्चाई के साथ लेकर सकते हैं।

वहीं जिन्हें गैर दलित लेखक माना जाता है उनकी मान्यता है कि “‘दलित बुद्धिजीवियों को यह समझना होगा कि उदार गैर दलित लेखक अपने इर्द गिर्द के सरोकारों तथा संस्कारों के विरुद्ध लड़ते हैं जो एक कठिन एवं दीर्घगामी लड़ाई है क्योंकि संस्कार धीरे-धीरे बदलते हैं।”¹⁴

अन्ततः कहा जा सकता है कि दलित चेतना पर साहित्य में बहुत कुछ लिखा गया जिसका उद्देश्य था समाज की आँखें खोलना और उस बहुसंख्यक जनता से जोड़ना जो वर्णव्यवस्था के मकड़जाल में जकड़ी हुई है और यातना की भट्टी में जल रही है। वे प्रश्न तथा हक की लड़ाई जो दलितों ने प्रारम्भ किया उसकी आवाज को लेखबद्ध कर ब्राह्मणवादी सवर्ण जातियों तक पहुँचना।

1. पाखी, अंक 2/नवम्बर 2009, (लेख) रत्नकुमार संभारिया
2. आजकल, मई 2008, (साक्षात्कार) ओमप्रकाश वाल्मीकी
3. कर्मभूमि, प्रेमचन्द, पृ. 87
4. कर्मभूमि, प्रेमचन्द, पृ. 147
5. अशोक के फूल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 26
6. अक्करमाशी, शरण कुमार लिबाले, पृ. 12
7. ‘सूर्योदय की प्रतीक्षा’, प्रवीण गढ़वी, पृ. 33-34
8. माँ! मैं बड़ा कि मेरा भाई? नीरव पटेल
9. ‘सूर्योदय की प्रतीक्षा’, प्रवीण गढ़वी, पृ. 53
10. अक्करमाशी, शरण कुमार लिबाले, पृ. 15
11. अक्करमाशी, शरण कुमार लिबाले, पृ. 76
12. आजकल, जनवरी 2009, व. सं. योगेन्द्र दत्तशर्मा पृ. 48
13. 8 जनवरी 1934 प्रेमचन्द का आलेख
14. आलोचना, अंक 9/2002/अप्रैल जून 1 सं. नामवर सिंह

संस्थानों में विकलांग व्यक्तियों को 'समावेश' के संचार में बाधाएं : एक सामान्य परिप्रेक्ष्य

शिवानी

एमएससी गृह विज्ञान, विभाग होम साइंस, केयूके, हरियाणा

सारांश

'आदर्श' का आकार और कार्य करने वाले कार्य को करने में सक्षम नहीं होने की स्थिति को 'विकलांगता' कहा जा सकता है। इस अर्थ में, हम सभी किसी न किसी तरह से 'अक्षम' हैं। किसी के पास किसी विशेष कार्य को करने की क्षमता नहीं हो सकती है जिसे दूसरा आसानी से कर पाता है। कोविड-19 महामारी के समय ने शिक्षण के डिजिटल मोड के माध्यम से अपनी सेवा प्रदान करने के मामले में दुनिया भर के शिक्षकों की क्षमताओं का परीक्षण किया है। उस अवधि की शुरुआत में सभी स्तरों पर शिक्षण में शामिल शिक्षकों के लिए कई सम्मेलन, कार्यशालाएं और प्रशिक्षण कार्यक्रम ऑनलाइन आयोजित किए गए ताकि उन्हें डिजिटल शिक्षण-शिक्षण प्रणाली की कला में कुशल बनाया जा सके। स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को भौतिक से डिजिटल या ऑनलाइन प्रणाली में तत्काल वृद्धि की कमी का सामना करना पड़ा। आज के समय में भी कई ऐसे हैं जो इन टूल्स और प्लेटफॉर्म को ठीक से एक्सेस नहीं कर पा रहे हैं। शिक्षण-अधिगम वातावरण की नई प्रणाली को समझने में शिक्षकों, परामर्शदाताओं और प्रोफेसर्स की क्षमता के बारे में सवाल उठता है। यदि हम स्थिति को एक अनिवार्य कारक के रूप में लेते हैं जिसके कारण बुद्धिमान मस्तिष्क के बीच शिक्षण विधियों के नए सामान्य का सामना करने में कठिनाई होती है, तो अभ्यास के माध्यम से कुशल होने की प्रक्रिया को एक उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है कि कैसे विविध हो सकते हैं शामिल करने का मामला। समावेश कभी भी बाधाओं को पार किए बिना नहीं होता है। किसी व्यक्ति के वातावरण में हमेशा ऐसे कारक होते हैं जो उपस्थिति या अनुपस्थिति के प्रदर्शन के माध्यम से प्रदर्शन को सीमित करते हैं और विकलांगता पैदा करते हैं। विकलांग लोगों के मामले में यह सिर्फ एक स्तर अधिक है। उनके लिए, जो कुछ भी वे करने में असमर्थ हैं, वह उस चरण के समान है जब हमें चल रही महामारी के दौरान नए सामान्य के अनुकूल होना था। यह उतना ही सरल हो सकता है जितना कि कार्यस्थल पर लगातार मास्क पहनना खुली हवा में मुक्त श्वास को प्रतिबंधित करना। इस प्रकार, यह दृष्टिकोण है कि सामान्य रूप से समाज में और विशेष रूप से उच्च शिक्षा संस्थानों (एचईआई) में विकलांग व्यक्तियों के स्वागत के संबंध में मायने रखता है। कक्षा शिक्षण के ताने-बाने में विभिन्न विकलांग व्यक्तियों को शामिल करने और आत्मसात करने के रास्ते में कई बाधाएं मौजूद हैं। छवि एक संचार नेटवर्क की है जहां एक संदेश को प्रभावी प्रतिक्रिया निकालने के लिए प्रेषक से रिसीवर तक बिना किसी बाधा के प्रवाहित होने की आवश्यकता होती है। वर्तमान पेपर का उद्देश्य उच्च शिक्षा संस्थानों की कक्षाओं के क्षेत्र में विकलांग व्यक्तियों (पीडब्ल्यूडी) को शामिल करने के मार्ग में संचार की बाधाओं का अध्ययन करना है।

कीवर्ड: एचईआई, समावेश, संचार बाधाएं।

परिचय:

एक हिस्सा बनने के लिए, और अलग खड़े न हों

सदस्य बनने के लिए। और अलग नहीं होना चाहिए

दोस्त बनाने के लिए, सिर्फ साथी ही नहीं

जरूरत महसूस करने के लिए, न कि केवल एक व्यक्ति बनने के लिए

जरूरतों के साथ

एक भागीदार बनने के लिए, और न सिर्फ एक

दर्शक

जिम्मेदारियाँ निभाने के लिए, न कि केवल आनंद लेने के लिए

अधिकार

अवसर पाने के लिए, और न सिर्फ

एहसान

सम्मिलित होना है। (भाटिया, 2018)

उपरोक्त विद्या की उप निदेशक दीप्ति भाटिया की एक अद्भुत कविता है सागर, चेन्नई स्थित एक संगठन है जो कई विकलांग व्यक्तियों के साथ काम करता है। कवि स्वयं जन्मजात दृष्टि दोष का रोगी है और समावेश और समानता के बारे में सकारात्मकता फैलाता है। यदि कविता का बारीकी से विश्लेषण किया जाए, तो यह देखा जा सकता है कि यह शक्ति के शब्द को फैलाती है। एक तथाकथित विकलांग व्यक्ति की कलम की पंक्तियाँ उसके अस्तित्व का पूर्ण आनंद लेने में असमर्थता की घोषणा नहीं करती हैं। दूसरी ओर, कविता समावेश के संदेश को अनोखे तरीके से संप्रेषित करती है। यह श्रविकलांग कहें जाने वाले सामाजिक निर्माण की सचेत स्वीकृति से पीड़ित किसी भी आत्मा के शब्दों को बयां करता है। यह विकलांगों को शामिल करने और बाहर न करने की बात करता है, यह उस प्राकृतिक अपनेपन की बात करता है जो हर इंसान उस समाज के संबंध में महसूस करता है जिसमें वह पनपता है, यह दोस्तों के साथ अकेलेपन को दूर करने की इच्छा के बारे में बात करता है, यह इच्छा के बारे में बात करता है समाज के लिए कुछ आवश्यक हो, यह मानव संस्कृति के क्षेत्र में अर्थ और प्रतिनिधित्व के निर्माण में भागीदार होने की बात करता है, यह मानव जाति के इतिहास में कुछ योगदान के साथ एक जिम्मेदार व्यक्ति होने की इच्छा के बारे में बात करता है। अंतिम लेकिन कम से कम कविता किसी की भी मजबूत भावना को कायम नहीं रखती है जो जीवन की शाश्वत लड़ाई में विश्वास करता है और जीवन को केवल प्रदान किए जाने के रूप में स्वीकार नहीं करता है।

ऊपर उद्धृत कविता में बोलने वाले कवि की आवाज उस व्यक्ति की नहीं है जो केवल शारीरिक या मानसिक रूप से विकलांग होने के कारण हाशिये पर रहना स्वीकार करता है। कविता एक संभावित मांग देती है जो मानव अस्तित्व के संबंध में वैध और वैध है। अस्तित्व के तथाकथित सक्षम क्षेत्र में आत्मसात होने की इच्छा रखने वाले किसी भी प्रकार की विकलांगता वाले किसी भी व्यक्ति के लिए अंतिम शब्द 'शामिल होना है' (भाटिया, 2018)।

विचार - विमर्श:

स्वामी विवेकानंद, शायद दुनिया के अब तक के सबसे महान प्रेरक कहते हैं, 'शिक्षा मनुष्य में पहले से मौजूद पूर्णता की अभिव्यक्ति है' (विवेकानंद, 1894/2016) विश्व इतिहास में श्री रामकृष्ण परमहंस के इस शिष्य के योगदान को जानता है। मानवता का विकास। जहां तक पेपर के विषय का संबंध है, स्वामीजी द्वारा शिक्षा पर प्रसिद्ध अवलोकन गहन रुचि का है। यदि यह मान लिया जाए कि शिक्षा मनुष्यों में पूर्व-व्यवस्थित है और यह उस भव्यता का प्रकटीकरण है जो विभिन्न स्रोतों से सीखने के हमारे अथक प्रयास से उत्पन्न हुई है, तो विकलांगों के लिए समावेश और समानता के बिंदु पर अलग से विचार करने की आवश्यकता मजबूत नहीं है। क्योंकि वे पहले से ही उत्कृष्टता के ऐसे गुण के साथ प्रकट होते हैं, जिस पर यद्यपि सक्षम वर्ग द्वारा ध्यान नहीं दिया जाता है, फिर भी वे कई तरह से स्वयं को विकसित कर लेते हैं। शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग लोगों की सफलता की कहानियां हमें यह बताएंगी। इसलिए, उन लोगों के समूह को शामिल करने के बिंदु पर अलग से विचार करना, जिन्हें हम लंबे समय तक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक या संवेदी हानि वाले व्यक्ति मानते हैं, जो बाधाओं के साथ बातचीत में, दूसरों के साथ समान रूप से समाज में उनकी पूर्ण और प्रभावी भागीदारी में बाधा डालते हैं। (विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016) अपने आप में एक ऐसी अक्षमता है जिससे तथाकथित 'समाज' ग्रस्त है।

इसलिए, हमें शिक्षा से सरोकार नहीं रखना है, जैसा कि मैंने पहले ही बताया है कि विभिन्न तरीकों से खुद को प्रकट करता है कि हम हमेशा पहचानने के लिए एक बिंदु पर नहीं होते हैं। पीडब्ल्यूडी को शामिल करने का सवाल तब शिक्षा प्रणाली के संबंध में है जिसे दुनिया भर के विभिन्न देशों ने अपने तरीके से बनाया है। इसके अलावा, शायद इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि दुनिया भर में मौजूद शिक्षा प्रणालियों की विविधता शक्तिशाली और प्रभावशाली लोगों की रचना है जो निर्णय लेते हैं। यह साहसिक दावा इस तथ्य से सिद्ध होता है कि चल रही महामारी के दौरान सबसे बुरी तरह प्रभावित क्षेत्र शिक्षा क्षेत्र है। हो सकता है कि हमें अभी इसका एहसास न हुआ हो, लेकिन हमें यकीन है कि देर-सबेर हम इसका अनुभव करेंगे। इसलिए समावेश की आवश्यकता आती है क्योंकि विकलांगता एक सामाजिक निर्माण से ज्यादा कुछ नहीं है। जब मैं अपने विश्वविद्यालय में एक छात्र था, मैं किसी विभाग के एक वरिष्ठ को व्हीलचेयर पर बैठे एक कक्षा से दूसरी कक्षा में घूमता देखता था। लिफ्ट में आवश्यक धक्का देने के लिए व्यक्ति किसी तरह की आत्मा की प्रतीक्षा कर रहा था जो उसे पहली मंजिल से भूतल तक नीचे लाएगा। फिर से, मैंने देखा है कि वही व्यक्ति विश्वविद्यालय परिसर में सत्ता में एक विशेष राजनीतिक दल का झंडा लिए हुए है, जो विपक्षी दल के साथ झड़पों के बीच आगे बढ़ रहा है। इस व्यक्तिगत अनुभव का समावेश इसलिए है क्योंकि मैंने विकलांगता के दर्द का भी अनुभव किया है। उस लड़के की दृष्टि ने मुझे उस शारीरिक सीमा का एहसास कराया जिससे वह अभी भी पीड़ित है और दूसरी ओर मैं उस लड़के को सत्ता संघर्ष में भाग लेते देख दंग रह गया, इस तथ्य के बावजूद कि वह भाग नहीं पाएगा यदि उस पर हमला किया गया था। ऐसे छात्र पूरे भारत और दुनिया भर में एचईआई में प्रचुर मात्रा में हैं। उनके इस्पात को पहचानना समय की मांग है।

किसी भी रूप में संचार किसी भी प्रकार के समावेशन का सबसे अच्छा तरीका है क्योंकि इसमें रिसीवर शामिल होता है और प्रतिक्रिया की आशंका से रिसीवर को अस्तित्व देता है। विकलांग व्यक्तियों का अधिकार अधिनियम (2016) 'समावेशी शिक्षा' को शिक्षा की एक प्रणाली के रूप में परिभाषित करता है जिसमें विकलांग और बिना विकलांग छात्र एक साथ सीखते हैं और शिक्षण और सीखने की प्रणाली को विभिन्न प्रकार के छात्रों की सीखने की जरूरतों को पूरा करने के लिए उपयुक्त रूप से अनुकूलित किया जाता है। निःशक्तता। अधिनियम आगे 'बाधा' को 'संचार, सांस्कृतिक, आर्थिक, पर्यावरण, संस्थागत, राजनीतिक, सामाजिक, मनोवृत्ति या संरचनात्मक कारकों सहित किसी भी कारक के रूप में वर्णित करता है जो समाज में विकलांग व्यक्तियों की पूर्ण और प्रभावी भागीदारी को बाधित करता है।' हम यह भी जानते हैं कि यह अधिनियम देश में समावेशी शिक्षा के वातावरण के निर्माण की दिशा में शिक्षण संस्थानों के विभिन्न कर्तव्यों पर प्रकाश डालता है। इस प्रकार, मामले की जड़ एक उपयुक्त माध्यम की तलाश में निहित है जो उच्च शिक्षा संस्थानों में समानता और समावेश को संप्रेषित करने के महत्व को सुगम बनाए। इसके लिए संचार अध्ययन की दुनिया में थोड़ा विचलन की आवश्यकता है। 'संचार की सामाजिक

प्रक्रिया को समझने के लिए दुनिया भर के शोधकर्ताओं और विद्वानों ने संचार के कई मॉडलों को आगे बढ़ाया है। कई प्रसिद्ध लोगों में से रैखिक, अंतःक्रियात्मक और लेन-देन संबंधी हैं। मॉडलों का महत्व इस तथ्य में निहित है कि वे समाज में स्थापित किसी भी प्रकार के संचार की अवधारणा की हमारी समझ को सरल बनाते हैं और हमें उसी की एक मौखिक और दृश्य तस्वीर देते हैं। यद्यपि तीनों मॉडल अपनी संरचना और कार्य में भिन्न हैं, फिर भी वे कुछ सामान्य विशेषताओं को साझा करते हैं। इन सभी में सबसे महत्वपूर्ण तीन बहुत महत्वपूर्ण तत्वों का अस्तित्व है: प्रेषक, प्राप्तकर्ता और संदेश। प्रत्येक मॉडल की अपनी विशेषता होती है। रैखिक मॉडल, जो बीसवीं शताब्दी के मध्य में बहुत लोकप्रिय था, ने रैखिक होने की अपनी विशेषता के लिए अपना प्रभाव खो दिया। यहां, व्यक्ति या तो प्रेषक या रिसीवर हो सकता है लेकिन दोनों नहीं। इस प्रकार, मॉडल में संदेश का एकतरफा प्रवाह शामिल था जहां रिसीवर केवल एक निष्क्रिय भागीदार बना रहा। चौनल कभी एक से अधिक नहीं हुआ। अगला मॉडल इंटरैक्शनल मॉडल है जहां संचार का एक अधिक गतिशील दृष्टिकोण है क्योंकि इसमें क्रमशः संचार और प्रतिक्रिया के दो चौनल शामिल हैं। इस मॉडल के बारे में एक महत्वपूर्ण समझ यह है कि इसमें अनुभव का क्षेत्र शामिल है जो उस तरीके को संदर्भित करता है जिसमें पर्यावरण, विशेष रूप से सांस्कृतिक अनुभव बातचीत को प्रभावित करता है। हालाँकि, इस मॉडल का तात्पर्य है कि लोग, इस तथ्य के बावजूद कि वे प्रेषक और प्राप्तकर्ता दोनों हो सकते हैं, एक साथ ऐसा नहीं कर सकते। तीसरा, ट्रांजेक्शनल मॉडल तीनों में सबसे अधिक गतिशील है क्योंकि मॉडल संचार को एक लेन-देन के रूप में चित्रित करता है, एक सहकारी कार्रवाई के रूप में जहां दोनों प्रतिभागी प्रक्रिया के लिए समान और प्रभावी योगदान के साथ प्रतिनिधित्व के लिए अर्थ बनाते हैं। संचारकों ने अनुभव के क्षेत्र को साझा किया है और संचार की प्रक्रिया की ओर निर्देशित हर कारक में एक प्रभाव है। अर्थ के प्रभाव को दोनों पक्षों से प्रभावी बनाया जाता है और स्वाभाविक रूप से संचार प्रक्रिया अधिक से अधिक समावेशी हो जाती है। यदि एचईआई में पीडब्ल्यूडी को शामिल करने को समझने में लेन-देन मॉडल को ध्यान में रखा जाता है, तो समानता को सबसे अच्छी तरह से समझा जा सकता है। PwD में मौजूद संज्ञानात्मक बाधाओं और कई अन्य मनोवैज्ञानिक अवरोधों जैसे भय, निराशा, हीन भावना आदि के अस्तित्व को ध्यान में रखते हुए, कक्षा के वातावरण में ट्रांजेक्शनल मॉडल में प्रेषक, जो शिक्षक या प्रशिक्षक है संदेश के प्रवाह की गतिशील प्रक्रिया के बीच किसी भी बाधा को आने से रोकने की कोशिश में पहला होना चाहिए। विभिन्न कारकों से उत्पन्न होने वाले ऐसे किसी भी अवरोध को 'शोर' माना जाएगा जो समावेशन को संप्रेषित करने की प्रक्रिया को बाधित करता है। इस प्रकार, संचार के रेखीय से लेन-देन मॉडल का विकास किसी भी शैक्षिक क्षेत्र में समावेशी शिक्षा की आवश्यकता को समझने के विकास को समझने के समान है। निःशक्त व्यक्ति, जो कक्षा में रिसीवर भी है, को भी एक संचारक का दर्जा दिया जाता है जो कक्षा में संचार की प्रक्रिया को समान रूप से प्रभावित करता है। यह वातावरण, यदि बनाया गया है, तो 'समावेशी शिक्षा' के लिए आदर्श कक्षा नहीं तो प्रभावी हो सकता है।

संचार जैसी जटिल गतिविधि, यदि ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जो प्रक्रिया के सुचारू संचालन के विपरीत होती हैं, तो निश्चित रूप से असफलताओं का सामना करना पड़ता है। उन्हें बाधाओं के रूप में संदर्भित किया जाता है क्योंकि वे बातचीत की प्रगति में बाधा उत्पन्न करते हैं। इन बाधाओं की पहचान महत्वपूर्ण है।' (कौल, 2015)। यदि समावेशन की पूरी प्रक्रिया को एक संचार नेटवर्क के रूप में महसूस किया जाता है जहां लक्षित दर्शक या प्राप्तकर्ता विकलांग व्यक्ति हैं, तो बाधाएं मौजूद हैं। बाधाएं स्वैच्छिक या अनैच्छिक हो सकती हैं जो उन स्थितियों पर निर्भर करती हैं जिनसे वे उत्पन्न होती हैं। हालांकि, एचईआई की कक्षाओं में इस तरह की बाधाओं की प्राप्ति विशिष्ट है और ज्यादातर प्रेषक और रिसीवर दोनों से संबंधित है, बल्कि संचारकों से।

सबसे आम प्रकार की बाधाएं मनोवृत्ति संबंधी बाधाएं हैं जो बदले में अन्य बाधाओं को जन्म देती हैं। इस मामले का सबसे अच्छा एहसास तब होता है जब हम किसी विकलांग छात्र के बारे में सोचते हैं जो किसी भी विकलांगता से पीड़ित छात्रों के साथ किसी उच्च शिक्षा संस्थान की कक्षा में प्रवेश नहीं करता है। कुछ सामान्य अभिव्यक्तियों में विकलांग लोगों को हाशिए पर, जरूरतमंद, गरीबी से त्रस्त, अस्वस्थ और कमजोर के रूप में रूढ़िबद्ध करना शामिल है; कलंक और भेदभाव कुछ अन्य बाधाएं हैं जो लेन-देन संबंधी संचार की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती हैं जो समावेश के बुनियादी ढांचे के निर्माण में अनिवार्य है। इसलिए मनोवृत्ति संबंधी बाधाएं हमारी अक्षमता को समझने में बाधा के रूप में खड़ी हैं क्योंकि कार्यात्मक घाटे से ज्यादा कुछ नहीं है जिसे विभिन्न चिकित्सा और मानवीय तरीकों से संबोधित किया जा सकता है। संचार बाधाएं पीडब्ल्यूडी के साथ आम हैं जिनके पास बोलने, सुनने, पढ़ने, लिखने आदि को प्रभावित करने वाली अक्षमताएं हैं। वे ज्यादातर संचार नेटवर्क में सक्रिय भागीदार बनने में असमर्थ होते हैं क्योंकि उन्हें अपनी इंद्रियों की समस्या होती है। उनके लिए, उन्हें संबोधित करने वाले प्रेषक से थोड़ा धैर्य और बहुत सारी योजना की अपेक्षा की जाती है। प्रेषक, जो कि प्रशिक्षक है, कम निर्णय लेने वाला और अधिक चौकस होने का प्रयास कर सकता है। एनकोडर भौतिक शोर को दूर करने का प्रयास कर सकता है, सरल भाषा का उपयोग कर सकता है और सबसे बढ़कर खुले दिमाग से संदेश तैयार कर सकता है। वीडियो का समावेश जिसमें कैप्शनिंग और मौखिक संचार शामिल है जिसमें मैन्युअल व्याख्या शामिल है, सुनने में अक्षम लोगों को संबोधित करने के तरीके हैं। कई उच्च शिक्षा संस्थानों में भौतिक बाधाएं भी मौजूद हैं और इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। उनमें ऐसे कदम और प्रतिबंध शामिल हो सकते हैं जो विकलांग व्यक्ति की गतिशीलता को अवरुद्ध करते हैं। इसलिए, भौतिक बुनियादी ढांचे को उस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए तैयार किया जाना चाहिए जिसमें विकलांग व्यक्ति को कदम उठाने का सामना करना पड़ सकता है। कोविड -19 महामारी के दौरान नई सामान्य स्थिति में ऑनलाइन सीखने की प्रणाली ने कई लोगों को कुछ समय के लिए अक्षम कर दिया जो तकनीक-प्रेमी नहीं थे। उन्होंने पूरी व्यवस्था को अपने आप समझने और आत्मसात करने में समय लिया। समस्या शिक्षकों और छात्रों दोनों के साथ थी। इसी प्रकार विकलांग व्यक्तियों को उच्च शिक्षा संस्थानों में आने का रास्ता दिया जाना चाहिए। समझ का एक छोटा सा काम हेलेन केलर की तरह एक बड़ी सफलता की कहानी बना सकता है।

जैसा कि इस लेख में पहले ही बताया जा चुका है, शैक्षिक नीतियों का क्रियान्वयन सत्ता में बैठे व्यक्तियों के हाथों में होता है। वे कक्षाओं में संचार नेटवर्क को प्रभावित करते हैं, भले ही वे इसमें भाग लेने के लिए कभी नहीं आते। इसलिए, किसी राष्ट्र की शिक्षा को आकार देने वाली नीतियों के संबंध में हमेशा एक संभावित बाधाएं होती हैं। प्रदर्शन संबंधी मुद्दों में संदेह के कारण विकलांग व्यक्तियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण की कमी के कारण बाधाएं उत्पन्न होती हैं। इस तरह की अनिवार्यता के लिए उचित आवास और समावेश से इनकार करना कल्याण की प्रक्रिया को बाधित करता है। शायद सभी बाधाओं में

सबसे बड़ी सामाजिक बाधाओं की कई अभिव्यक्तियाँ हैं जो उन परिस्थितियों के अनुभव से संबंधित हैं जिनमें विकलांग व्यक्ति पैदा होते हैं, बढ़ते हैं, सीखते हैं और काम करने के बारे में सोचते हैं। भेदभाव और धमकाए जाने का डर, असफल कहलाए जाने, हाशिए पर रहने की मुहर लगने, कम कमाई की निष्क्रिय स्थिति में रहने आदि जैसी सामाजिक बाधाएं उच्च शिक्षा संस्थानों में पीडब्ल्यूडी को शामिल करने की प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं।

‘किसी व्यक्ति के वातावरण में कारक जो उनकी अनुपस्थिति या उपस्थिति के माध्यम से कार्य को सीमित करते हैं और विकलांगता पैदा करते हैं। इनमें ऐसे पहलू शामिल हैं:

- एक भौतिक वातावरण जो सुलभ नहीं है,
- प्रासंगिक सहायक तकनीक की कमी (सहायक, अनुकूली और पुनर्वास उपकरण),
- विकलांगता के प्रति लोगों का नकारात्मक दृष्टिकोण,
- सेवाएं, प्रणालियां और नीतियां जो या तो अस्तित्वहीन हैं या जो जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वास्थ्य की स्थिति वाले सभी लोगों की भागीदारी में बाधा डालती हैं।’ (डब्ल्यूएचओ, 2001)।

निष्कर्ष:

भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में समावेशी शिक्षा को महत्व दिया गया है। ‘भूमिकाओं और कर्तव्यों के बारे में जागरूक जागरूकता विकसित करने और सामुदायिक भागीदारी को शामिल करने का प्रयास किया गया है जो भाषा और अक्षमता के आधार पर छात्रों के बहिष्कार को कम करेगा’ (डॉ. अनुजा, 2020)। इसलिए, सीखने के क्षेत्र में पीडब्ल्यूडी को शामिल करने के संचार को सीमित करने वाली बाधाओं को दूर करने की दिशा में एक दृष्टिकोण समय की आवश्यकता है। सुधा की सफलता की कहानियों से निकल सकती है ताकत चंद्रन, प्रसिद्ध भारतीय अभिनेत्री और एक कृत्रिम पैर के साथ नर्तक, रवींद्र जैन, दृष्टिबाधित भारतीय गायक, एच रामकृष्णन, एसएस संगीत टेलीविजन चैनल के सीईओ, सतेंद्र सिंह, पोलियो से अनुबंधित प्रशंसित डॉक्टर, एच बोनिफेस प्रभु, एक प्रमुख क्वाड्रिप्लेजिक टेनिस खिलाड़ी और दुनिया भर में और अधिक जिन्होंने यह साबित किया है कि विकलांगता सिर्फ मन की एक अवस्था है और इसलिए इसे एक मुस्कान के साथ बदला जा सकता है। अंत में, मुझे याद है कि मेरी माँ ने बचपन में मुझसे कहा था कि कभी भी अंधे को अंध मत कहो, लंगड़े को लंगड़ा मत कहो, और किसी की कमजोरी के लिए कभी किसी को चोट मत पहुँचाओ। इस लेख को समाप्त करने के कारण कारण विकसित होता रहता है।

संदर्भ

- भाटिया, डी. (2018)। एक हिस्सा बनने के लिए, और अलग खड़े नहीं होना। <https://www.patientsengage.com/personal-voices/be-part-not-stand-apart>
- डॉ अनुजा । (2020)। NEP 2020: शिक्षा को और अधिक समावेशी बनाना। टाइम्स ऑफ इंडिया । विश्व स्वास्थ्य संगठन, कामकाज, विकलांगता और स्वास्थ्य का अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण। जिनेवा: 2001, डब्ल्यूएचओ। पी। 214.
- कौल, ए. (2015)। प्रभावी व्यापार संचार । पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड।
- विवेकानंद, एस. (2016) व्हाट वी बिलीव इन. स्वामी विवेकानंद का पूर्ण कार्य (खंड 4)। अद्वैत: आश्रम। संदर्भ में पंक्ति 3 मार्च, 1894 को शिकागो से स्वामी विवेकानंद द्वारा ‘किडी’ को लिखे गए एक पत्र में आती है।
- विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016, 2016 के अधिनियम संख्या 49। विश्व स्वास्थ्य संगठन, कामकाज, विकलांगता और स्वास्थ्य का अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण। जिनेवा: 2001, डब्ल्यूएचओ। पी। 214.

विश्व भाषा हिन्दी के विविध आयाम

डॉ० अनु शर्मा

836, सैक्टर-19, पार्ट-2, हुड्डा, कैथल

जब हम विश्व के रंगमंच पर खड़े होकर विहंगम दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि विगत कुछ वर्षों से हिन्दी का वैश्विक मंच विशाल से विशालतर होता जा रहा है। राष्ट्र-संघ में हिन्दी की स्थापना का प्रयास, विश्व हिन्दी सम्मेलनों का आयोजन आदि ऐसे उपक्रम हैं जिससे हिन्दी की वैश्विक क्षमता सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। अब हिन्दी एकदेशीय नहीं अपितु बहुदेशीय भाषा का रूप ले चुकी है। हिन्दी बोलने वालों की दृष्टि से हिन्दी संसार की तृतीय बड़ी भाषा है। इस समय भारत के बाहर शताधिक विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों में हिन्दी का पठन-पाठन इस बात का द्योतक है कि हिन्दी मात्र साहित्य की चीज नहीं वरन् वह हृदयोंको जोड़ने वाली भाषा है।¹ वर्तमान समय में हिन्दी को लेखन एवं प्रचार-प्रसार प्रायः दो रूपों में हो रहा है। प्रथम के अन्तर्गत वे देश आते हैं, जहाँ के लोग हिन्दी को एक विश्व भाषा के रूप में 'स्वात सुखाय' सीखने, पढ़ते-पढ़ाते हैं। इसके अन्तर्गत रूस, अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड, इटली, बेल्जियम, फ्रांस, चौकोस्लोवाकिया, रूमानिया, चीन, जापान, नार्वे, स्वीडन, पोलैण्ड, आस्ट्रेलिया, मैक्सिको आदि देश आते हैं। दूसरे के अंतर्गत वे देश आते हैं जहाँ भारत से जाने वाले प्रवासी भारतीय और भारतवंशी लोग बड़ी संख्या में निवास करते हैं, जिनकी मातृभाषा हिन्दी है। भारतवंशी लोग मॉरिशस, फिजी, गुयाना, सूरीनाम, कीनिया, ट्रिनीटाड-टुबैगो, बर्मा, थाईलैण्ड, नेपाल, श्रीलंका, मलेशिया, दक्षिणी अफ्रीका आदि देशों में रह रहे हैं। इन दोनों प्रकार के देशों में हिन्दी का रचना-संसार बहुत ही विपुल एवं समृद्ध है। वस्तुतः विश्व भाषा हिन्दी भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को लक्ष्य करके प्रसारित हो रही है। विदेशों में हिन्दी का प्रचार-प्रसार आकाशवाणी, दूरदर्शन, पत्र-पत्रिका, कम्प्यूटर आदि के माध्यम से हो रहा है।

विश्वभाषा हिन्दी बनाम साहित्य-सृजन

हिन्दी-साहित्य सृजन के क्षेत्र में मॉरिशस का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी में इनका कृतित्व उल्लेखनीय है। यहाँ के लेखकों की लगभग दो सौ कृतियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें साहित्य, इतिहास, संस्कृति, धर्म विषयक आदि सभी प्रकार की रचनाएँ हैं। मधुकर, इस देश के बहुचर्चित कवि हैं। उनकी कविताओं का पहला संग्रह 'मधुपर्क' है। इस कवि के लगभग बीस कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। मुनीश्वरलाल चिंतामणि भी इस देश के प्रसिद्ध कवि हैं। उनका 'शांतिनिकेतन की ओर' काव्य-संग्रह उल्लेखनीय है। सोमदत्त बखौरी मुक्त छंद के प्रौढ़तम कवि हैं। उनके दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनके शीर्षक हैं- 'आकाश गंगा' और 'तरंगिनी'। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में अभिमन्यु अनंत का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके ग्यारह उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। विष्णुदत्त मधुचन्द्र का 'फट गई धरती' चर्चित उपन्यास है। मॉरिशस के कहानीकारों में दीपचंद बिहारी, बृजलाल रामदीन, प्रेमचंद मूली, भानुमति नागदान आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस देश के नाटककारों में जयनारायण राय का नाम उल्लेखनीय है। उनके चर्चित नाटक का शीर्षक 'जीवन संगिनी' है।²

फीजी का भी हिन्दी साहित्य-सृजन में महत्वपूर्ण स्थान है। जोगिन्द्र सिंह कँवल फीजी के चर्चित उपन्यासकार हैं। उनके चर्चित उपन्यासों के शीर्षक हैं - 'धरती मेरी माता', 'सवेरा'। श्री बेनीलाल मोरिस की पुस्तक 'गली गली सीता रोए' फीजी लोक साहित्य की चर्चित रचना है। इंग्लैंड में भी अनेक हिन्दी साहित्य सेवाएँ हैं। जिनमें प्रमुख हैं- दिव्या माथुर, गौतम सचदेव, उषा राजे सक्सेना, मोहन राणा, सत्येन्द्र श्रीवास्तव, उषा वर्मा, राकेश माथुर, के.जी. खंडेलवाल। इन लेखकों ने कविता, कहानी, उपन्यास नाटक आदि विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। नेपाल का भी साहित्य-सृजन में महत्वपूर्ण स्थान है। जगत् ज्योतिर्मल्ल एवं जयस्थिति मल्ल ने हिन्दी-भजनों व नाटकों का सृजन किया है। मानवीर कछिपति ने एक हिन्दी नाटक की रचना की जिसका शीर्षक है- 'श्रीकृष्णचरित्र प्यास'। मल्लकाल ने भी अनेक नाटक लिखे हैं, जिनके संवाद हिन्दी में हैं। आशु कवि शंभु प्रसाद दुंगेल मोतीराम भट्ट, गिरीश वल्लभ जोशी, रघुनाथ भाट, उदयानंद अर्ज्यात आदि की गणना हिन्दी-कवियों में की जाती है। भवानी भिक्षु एक अच्छे उपन्यासकार हैं। सरदार रुद्राज पांडेय, लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा, सूर्य विक्रम झबाली, सिद्धीचरण केदारनाथ 'व्यथित' आदि लेखकों ने हिन्दी में अनेक रचनाएँ लिखी हैं। शुभ प्रसाद ने 'प्रेमकांता' उपन्यास लिखा है जो बारह भागों में प्रकाशित है। गिरीश वल्लभ हिन्दी में जोशी ने 'गिरीशवाणी' उपन्यास लिखा है। हिन्दी-रचनाकारों में मोहनराज शर्मा, चेतन कार्की, दुर्गाप्रसाद, ध्रुवचंद गौतम आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।³

विश्वभाषा हिन्दी बनाम पत्र-पत्रिकाएँ

हिन्दी पत्रकारिता की दृष्टि से मॉरिशस में सर्वप्रथम 15 मार्च, 1909 को 'हिन्दुस्तानी' साहित्यिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ, जो हिन्दी, अंग्रेजी व गुजराती में एक साथ प्रकाशित होता था। इस देश के प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. मणिलाल ने 'मॉरिशस आर्य पत्रिका' का संपादन किया। सन् 1920 में इंडो मॉरिशस संघ के तत्वावधान में 'मॉरिशस इंडियन टाइम्स' का प्रकाशन हुआ। सन् 1924 में गजाधर राजकुमार के संपादकत्व में 'मॉरिशस मित्र' नामक पत्र का प्रकाशन हुआ। पं. काशीनाथ किष्टो ने 'आर्यवीर' पत्र का प्रकाशन किया। इस देश में 'इंडियन कल्चर रिव्यू', 'वसंत' आदि पत्रों का भी प्रकाशन हुआ। 'आर्योदय', 'जमाना', 'अनुराग', 'आभा', 'दर्पण', 'रणभेरी' आदि पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी इस देश में हुआ है। फिजी में भी अनेक हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं, जिनके शीर्षक हैं- 'भारत पुत्र', 'बुद्धिवाणी', 'वैदिक संदेश', 'सनातन धर्म', 'शांतिदूत', 'मजदूर', 'जागृति', 'झंकार', 'जय फिच्ची' आदि। सूरीनाम में

भी अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं जिनके शीर्षक हैं- 'आर्यदिवाकर', 'सरस्वती', 'भारतोदय', 'वैदिक संदेश', 'प्रेम संदेश', 'शांतिदूत' आदि। गुयाना में 'आर्य-ज्योति', 'ज्ञानदा' आदि पत्रों का प्रकाशन हुआ। ट्रिनिडाड-टुबैगो में 'ज्योति' नामक पत्र का प्रकाशन हुआ। दक्षिणी अफ्रीका में भवानीप्रसाद के संपादकत्व में 'हिन्दी' नामक पत्र का प्रकाशन हुआ। बर्मा के श्यामचरण मिश्र के संपादकत्व में 'प्रवासी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन हिन्दी में हुआ। 'ब्रह्मभूमि', 'आर्य युवक जागृति' आदि पत्रों का प्रकाशन भी हुआ। नेपाल के काठमांडु से 'नेपाली' हिन्दी दैनिक का प्रकाशन हुआ। इस देश में 'साहित्य-लोक', 'आरोहण' आदि पत्रों का भी प्रकाशन हुआ है। इंग्लैंड विश्व का पहला राष्ट्र है, जहाँ से सर्वप्रथम 1883 में कालाकांकर नरेश के सम्पादकत्व में 'हिन्दोस्थान' पत्र का प्रकाशन हुआ।¹⁴ 'अमरदीप', 'प्रवासिनी' आदि हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ भी इस देश की धरोहर हैं। कनाडा में भारतीयों का बोलबाला है। 'विश्वभारती', 'जीवन ज्योति' आदि इस देश की चर्चित हिन्दी पत्रिकाएँ हैं। रूस से भी कई पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं, जिनके शीर्षक हैं- 'सोवियत संघ', 'सोवियत नारी' आदि। जापान का प्रथम हिन्दी-पत्र 'ज्वालामुखी' है, जिसका प्रकाशन टोकियो से होता है। 'अंक' व 'सर्वोदय' पत्र भी उल्लेखनीय हैं।¹⁵

विश्वभाषा हिन्दी बनाम हिन्दी-शिक्षण

बड़े हर्ष की बात यह है कि विश्व के लगभग 120 विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन हेतु केन्द्र खुले हुए हैं। अकेले अमेरिका में बीस केन्द्रों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड देशों में भारत-मूल के निवासियों की उल्लेखनीय संख्या होने के कारण वहाँ हिन्दी के अनेक प्रशिक्षण केन्द्र खुले हुए हैं। विश्व के प्रमुख देशों में हमारे देश के दूतावास हैं जो हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपनी उल्लेखनीय भूमिका निभा रहे हैं। शैक्षणिक हिन्दी का वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय प्रसार यूरोप और एशिया के कुछ देशों में हुआ है। पूर्वी और पश्चिमी यूरोप में कुल मिलाकर तीन दर्जन विश्वविद्यालयों और संस्थानों में हिन्दी-शिक्षण की व्यवस्था है। कनाडा के लगभग दो दर्जन विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। एशिया में नेपाल ही एक ऐसा देश है, जहाँ हिन्दी को उच्चतम शिक्षा तक स्थान मिला है।¹⁶ श्रीलंका के कोलम्बो विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग खुला हुआ है। जापान में भी लगभग छह विश्वविद्यालयों और संस्थाओं में हिन्दी के पाठ्यक्रम चलते हैं, जिनमें हिन्दी की उच्च शिक्षा की व्यवस्था है। जापान के टोक्यो और ओशाका के विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में हिन्दी के चार वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम की व्यवस्था है। विदेशों के अनेक विश्वविद्यालयों और संस्थानों में हिन्दी-उर्दू के सम्मिलित विभाग हैं।

विश्वभाषा हिन्दी बनाम अनुवाद

यूरोप, अमेरिका और एशिया के अनेक देशों में हिन्दी की अनेक कृतियों के अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन और रूसी में अनुवाद हुए हैं, जिससे हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ी है।¹⁷ इन भाषाओं में हिन्दी के द्विभाषी कोश, व्याकरण, इतिहास और समीक्षा सम्बन्धी महत्वपूर्ण शोधपरक और परिचयात्मक प्रकाशन भी हुए हैं। जापान के प्रोफेसर दोई ने प्रेमचंद के 'गोदान' उपन्यास का जापानी भाषा में अनुवाद किया है जिसकी लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं। निराला, पंत, दिनकर और अज्ञेय की कविताओं के अनुवाद जापानी भाषा में हुए हैं। चीन में रामायण की अनुदित कहानियाँ बहुत लोकप्रिय हैं। चीन के प्रोफेसर जिन डिंगहेन ने 'रामचरित मानस' का चीनी भाषा में पद्यानुवाद किया है, जिसकी लाखों प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गईं। चीन के प्रोफेसर ल्यूकोनान ने फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' का चीनी भाषा में अनुवाद किया है, जिसकी हजारों प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गईं। चीन की लेखिका डॉ. श्रीमती उषा शर्मा ने चीनी लोककथाओं का हिन्दी में अनुवाद किया है। रूस के प्रोफेसर योगेन्द्र नागपाल ने 693 पृष्ठों का 'हिन्दी व्याकरण' प्रस्तुत किया है जो हिन्दी-शिक्षण में पूर्णतः सक्षम है। सन् 1948 में सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी द्वारा तुलसीकृत 'रामचरित मानस' का रूसी भाषा में छंदोबद्ध अनुवाद प्रकाशित हुआ है, जिससे हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ी है।¹⁸ अमेरिका के प्रोफेसर माइकेल सी. शेपिरो ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा है। अमेरिका में हिन्दी के भक्ति-साहित्य पर, तुलसी, मीरा, कबीर, विद्यापति, जायसी पर अनेक पुस्तकें अंग्रेजी में प्रकाशित हुई हैं। सूरदास के 'सूरसागर' के अंग्रेजी अनुवाद की परियोजना चल रही है। अमेरिका के प्रोफेसर के. शोमर राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि की लोककथाएँ एकत्र करके उनका अनुवाद अंग्रेजी में कर रहे हैं।¹⁹

विश्वभाषा हिन्दी बनाम कम्प्यूटर

सुप्रसिद्ध विदूषी डॉ. सरोज गुप्ता के मतानुसार आज लगभग दो सौ से अधिक कम्प्यूटर भाषाएँ प्रचलन में हैं। इसकी अपनी नियमावली है, जिसके द्वारा मुद्रण, टंकण, कोश निर्माण, भाषा प्रशिक्षण, सूचना संचयन, संपादन, मशीनी अनुवाद, पाठ-बोधन, स्पीच टू टैक्स्ट सिस्टम इत्यादि कार्य संपादित होते हैं। इंटरनेट, वेब डिजाइनिंग, रोबोटिक्स, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आदि क्षेत्रों के लिए अनेक कम्प्यूटर भाषाएँ प्रचलित हैं।¹⁰ विश्व के प्रथम हिन्दी पोर्टल का विकास वेब दुनिया 'डॉट कॉम' (इंडिया लिमिटेड) को है। इस पोर्टल के जनक विनय छजलानी हैं। छजलानी ने प्रवासी हिन्दी भाषा-परिवारों की जरूरतों को पूर्ण करते हुए इंटरनेट पर हिन्दी का प्रयास किया। यह वेबसाइट अत्यंत लोकप्रिय हुई और यहाँ से देवनागरी लिपि की शक्ति और संभावनाएँ उजागर हो गईं।¹¹ कम्प्यूटर पर नागरी लिपि में कार्य करने हेतु सॉफ्टवेयर आई.बी.एम. पी.सी. कम्प्यूटर पर द्विभाषिक शब्द-संसाधन के लिए पर्याप्त शब्द-संसाधन पैकेज भी बाजार में सुलभ हैं, जिनके विभिन्न सुविधाएँ निहित हैं- 1. देवनागरी-सी बेसिक कम्पाइलर 2. द्विभाषिक डाटाबेस प्रबंधन-प्रणाली देवबेस 3. फैंक्ट बहुभाषी व्यापार एकाउंटिंग सॉफ्टवेयर 4. सुलिपि डी.बेस 5. आई.बी.एम. हिन्दी पी.सी. डॉस 6. श्री लिपि 7. अक्षर विंडोज आदि। हिन्दी के विकास में अनुवादक सॉफ्टवेयर भी महत्वपूर्ण प्रतीत हो रहा है। यह सॉफ्टवेयर अंग्रेजी के मूल पाठ को हिन्दी में अनुवाद कर व्याकरण की अनुपालना करता है। इससे हिन्दी को वैश्विक स्वरूप मिलता है। कृत्रिम बुद्धियुक्त यह सॉफ्टवेयर वैज्ञानिक भाषा से, प्रशासनिक भाषा से अनुवाद कर सकता है। कम्प्यूटर द्वारा हिन्दी के नए शब्दों और प्रयोगों को अप-टू-डेट किया जा सकता है। कम्प्यूटर के हिन्दी अक्षर बेहद आकर्षक हैं। आज कामकाजी हिन्दी का प्रयोग प्रशासन में होने लगा है। प्रत्येक दफ्तर, शिक्षा संस्थान, उद्योग व्यापार जगत्, बैंक, बीमा, रेल-बस, आरक्षण, तालिका निर्माण, चिकित्सा क्षेत्र, अनुसंधान क्षेत्र, टी.वी. से लेकर इंटरनेट तक अनेक सुविधाएँ कम्प्यूटर के द्वारा प्राप्त हैं। जहाँ-जहाँ कम्प्यूटर का प्रयोग होगा, हिन्दी देवनागरी लिपि का प्रचार-प्रसार स्वतः होता जाएगा। पश्चिमी देश लिपि की वैज्ञानिकता से प्रभावित होंगे और व्यवहार में हिन्दी का प्रयोग स्वतः ही विदेशों में भी होगा।¹²

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है। आशा की जा सकती है कि हिन्दी भाषा और साहित्य स्वयं अपने बल पर समृद्धि और गौरव अर्जित करेगी। वैश्विक परिदृश्य में भारत में अवस्थित कम्पनियाँ अपने कर्मचारियों को हिन्दी सीखने के लिए आग्रह कर रही हैं। इससे हिन्दी के वैश्विक स्वरूप में इजाफा होगा।

संदर्भ

1. सिद्धेश्वर प्रसाद, 'विश्व हिन्दी', पृ. 173
2. वही, पृ. 179
3. वही, पृ. 291-92
4. वही, पृ. 174
5. वही, पृ. 197
6. वही, पृ. 197
7. वही, पृ. 198
8. रामकुमार गुप्त, साहित्य, भक्ति और दर्शन का वैभव, पृ. 1231
9. वही, पृ. 1233
10. वही, पृ. 1254
11. वही, पृ. 1255
12. वही, पृ. 1260

कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो का ग्रामीणों पर प्रभाव

हर्षवर्धन पाण्डे

शोधार्थी, कुमाऊं विश्वविद्यालय

शोध सार

आज मानव ने विभिन्न प्रकार की संचार तकनीकों द्वारा संदेशों को अत्यंत व्यापक क्षेत्र में पहुंचा देने की क्षमता हासिल कर ली है। वर्तमान में संदेश संप्रेषण के क्षेत्र में बेहतर तकनीक आ जाने के कारण संचार के माध्यमों और उसके विभिन्न प्रकार के दायित्वों एवं भूमिकाओं में भी लगातार विस्तार हो रहा है। अब ये माध्यम एक तरफ जहां अपनी पारंपरिक भूमिकाओं को और प्रभावी ढंग से निभा रहे हैं वहीं नए कार्य दायित्व में भी अपनी बेहतर भागीदारी कर रहे हैं। संचार के इन्हीं प्रभावी माध्यमों में एक है रेडियो। रेडियो सामाजिक संपर्क का महत्वपूर्ण स्रोत आज के दौर में भी बना हुआ है। मनोरंजन के तमाम साधनों के बीच रेडियो आज भी अपनी विश्वसनीयता के साथ कई दिलों पर राज कर रहा है। रेडियो ने लोगों की शिक्षित और जागरूक करने के साथ-साथ आपदा राहत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इधर पिछले कुछ समय से ग्रामीण इलाकों में सामुदायिक रेडियो के विस्तार में इजाफा हुआ है। इन केन्द्रों में स्थानीय लोग रेडियो स्टेशन का सञ्चालन करने के साथ ही अपने कार्यक्रमों का निर्माण भी करते हैं। सामुदायिक रेडियो द्वारा सामुदायिक विकास, लोक संगीत, लोक गीत, शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य जैसे विषयों पर कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। बात जब उत्तराखंड के कुमाऊं मंडल की आती है तो कुमाऊं वाणी का जिक्र हुए बिना नहीं रहा जा सकता। मुक्तेश्वर में टेरी जैसे संस्थान द्वारा स्थापित यह स्टेशन लम्बे समय से ग्रामीणों को न केवल जागरूक करने का कार्य कर रहा है बल्कि इसके माध्यम से कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, सामुदायिक विकास, संस्कृति, लोकगीत जैसे कार्यक्रमों को प्रसारित कर जन जागरूकता की अलख जगाई जा रही है।

बीज शब्द : कुमाऊं वाणी, कृषि, आपदा, शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, लोक संस्कृति, बोली, सामुदायिक रेडियो, ग्रामीण, विकास, प्रभाव

प्रस्तावना

संचार के बिना मानव जीवन की कल्पना तक नहीं की जा सकती। रेडियो ने अपने विकास से लेकर वर्तमान समय तक कई आयामों को छुआ और महसूस किया है। रेडियो प्रचार और प्रसार का सशक्त माध्यम आज भी बना हुआ है। मनोरंजन, ज्ञान और सूचना का सबसे पुराना एवं पहला लोकप्रिय श्रव्य माध्यम रेडियो रहा है। लेनिन के शब्दों में कहें तो रेडियो बिना कागज और बिना दूरी का समाचार पत्र है। वहीं ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध पूर्व प्रधानमंत्री सर विन्स्टल चर्चिल ने तो रेडियो का बखाना जनता और समाज के सजग प्रहरी के रूप में किया है। आज सूचना क्रांति का दौर है और रेडियो एक ऐसा माध्यम है जो आम आदमी की पहुंच में है और जनसाधारण को जागरूक करने का कार्य कर रहा है। देश भर में बिछे रेडियो चौनलों के जाल के बावजूद लगातार यह महसूस किया जाता रहा कि कुछ है जो छूट रहा है, छोटे समुदायों के प्रसारण हितों और अधिकारों का पूर्णतया संरक्षण नहीं हो पा रहा है। संभवतः इसीलिए भारत में सामुदायिक रेडियो को वैधानिक मान्यता मिलते ही कई समुदायों का ध्यान इस ओर गया है। सामुदायिक रेडियो को किसी एक परिभाषा में बांधना संभव नहीं है। प्रत्येक देश के संस्कृति संबंधी कानूनों में अन्तर होने के कारण देश और काल के साथ इसकी परिभाषा बदल जाती है लेकिन किसी छोटे समुदाय द्वारा संचालित कम लागत वाला रेडियो स्टेशन जो समुदाय के हितों, उसकी पसंद और समुदाय के विकास को दृष्टिगत रखते हुए गैर व्यावसायिक प्रसारण करता है, सामुदायिक रेडियो केन्द्र कहलाता है। कम्युनिटी रेडियो का सीधा अर्थ है कि यह स्थानीय स्तर पर किसी क्षेत्र की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करता है। ऐसे समुदाय या क्षेत्र की अपेक्षा सामान्यतया किसी बड़े लोकप्रिय रेडियो प्रसारण द्वारा की जाती है। वहां पर सामुदायिक रेडियो इस उपेक्षित क्षेत्र के श्रोताओं को स्थानीय भाषा और बोलियों में उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। अमेरिका, कनाडा तथा आस्ट्रेलिया में सामुदायिक रेडियो गैर खव्यवसायिक तथा बिना लाभ के उद्देश्यों के लिए आरम्भ किये गए।

भारत में हवाई तरंगों की यह आंधी एक सशक्त स्वर के रूप में उस समय उभरकर सामने आई, जब एफएम रेडियो की यह क्रांति महानगरों से आगे बढ़कर अनवरत बजने वाले फिल्मी गीतों और अक्सर होने वाली बकवास और गपशप के साथ लोगों की मीडिया उपभोग की आदतों पर दस्तक देने लगी। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में मीडिया उद्योगों के उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं ने विषयवस्तु के समांगीकरण, सत्ता और नियंत्रण के केंद्रीकरण और गरीबों के जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों को हाशिए पर लाने के प्रयासों को बढ़ाने और मुख्यधारा के मीडिया को डिस्फ्रेंचाइज करने से संबंधित सरोकारों को बढ़ा दिया। फरवरी, 1995 में भारत के उच्चतम न्यायालय ने एक ऐतिहासिक निर्णय में यह व्यवस्था दी थी कि हवाई लहरें सार्वजनिक संपत्ति हैं और इनका उपयोग आम लोगों की भलाई के लिए होना चाहिए। इस निर्णय में यह भी कहा गया था कि प्रसारण मीडिया को समग्र रूप में अभिव्यक्ति और भाषण की स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करना चाहिए इसलिए आवश्यक है कि प्रसारण मीडिया को सरकारी एकाधिकार से मुक्त होना चाहिए और इसके विषय का नियंत्रण सार्वजनिक निकाय के विनियमों के अधीन होना चाहिए। इस निर्णय के बाद ही भारतीय सामुदायिक रेडियो के प्रचारकों ने स्थानीय लोगों द्वारा खास तौर पर ग्रामीण इलाकों में स्वाधिकृत और चलाए जाने वाले लाभकारी रेडियो स्टेशनों के नए रूप के निर्माण के लिए लगभग एक दशक तक संघर्ष

किया, ताकि हाशिए पर आए समुदायों के सामाजिक परिवर्तन, सामंजस्य और समावेश के लिए तथा रचनात्मक व सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए अवसर जुटाए जा सकें। जब 1999 में एफएम रेडियो की फ्रीक्वेंसी को सबसे ऊंची बोली बोलने वालों को नीलाम करने से संबंधित हवाई तरंगों का एकाधिकार समाप्त करने की नीति कार्यान्वित की गई तो इस अभियान के प्रचारकों को उच्चतम न्यायालय के निर्णय की भारत सरकार की ओरवेलियन व्याख्या पर ही संतोष करना पड़ा। इस प्रक्रिया के माध्यम से सरकार ने हवाई तरंगों को भारत के शहरी परिदृश्य में व्यवसायिक खिलाड़ियों के लिए बेहद सरल और संभव बना दिया। सामाजिक क्षेत्र में सामुदायिक रेडियो के प्रसारण के लिए इस तरह की वकालत के सघन प्रयासों की परिणति 2006 में केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा समावेशी सामुदायिक रेडियो नीति के अनुमोदन के रूप में हुई।

जैसे ही हवाई तरंगों सरकारी नियंत्रण से मुक्त हुई, वैसे ही भारत के रेडियो में अनेक प्रकार के परिवर्तन होने लगे परंतु सामाजिक क्षेत्र सूना ही रह गया और अपने रेडियो का सपना देखने वाले ग्रामीण क्षेत्र की आवाज को सुनने में किसी को दिलचस्पी न रही। 2003 में सामुदायिक रेडियो का सीमित कैप्स अवतार सामने आया। इसके कारण प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थाओं ने एफएम ट्रांसमीटर लगाना और रेडियो स्टेशन चलाना शुरू कर दिया। इस निर्णय के कारण राज्य की चौधराहट कुछ हद तक कम हुई और रेडियो पर मार्केटिंग शुरू हुई लेकिन शहरी और शिक्षित भद्रलोक के लिए ऐसे इलाके में जहां मीडिया पहले से ही जमा हुआ हो, प्रसारण क्षेत्र के खुलने से सामुदायिक रेडियो अभियान की मूल भावना को ही क्षति पहुंची। यूपीए की तत्कालीन केंद्र सरकार ने सूचना अधिकार अधिनियम और महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी (मनरेगा) अधिनियम जैसी गरीब समर्थक नीतियों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को दर्शाने के लिए सामुदायिक रेडियो की वास्तविक मांग को अंततः मान लिया। 2006 से नई विस्तारित नीति के कारण पहले से भली-भांति सामुदायिक विकास कार्यों में संलग्न गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) को रेडियो स्टेशन स्थापित करने की अनुमति दे दी गई। सामुदायिक रेडियो केंद्र के 12 किलोमीटर दायरे में बंध होने के साथ यह शर्त भी जुड़ी रहती है उसके 50 फीसदी कार्यक्रमों में स्थानीयता का समावेश रहे और जहाँ तक संभव हो वे स्थानीय भाषा में हों। सामुदायिक रेडियो पर प्रायोजित कार्यक्रमों की अनुमति नहीं है लेकिन राज्य या केंद्र सरकार से प्रायोजित कार्यक्रम प्राप्त होने पर इन्हें प्रसारित किया जा सकता है। ऐसे रेडियो केन्द्र द्वारा कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज कल्याण, सामुदायिक विकास, संस्कृति संबंधी कार्यक्रमों के प्रसारण के साथ-साथ समुदाय के लिए तात्कालिक प्रासंगिकता के कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा सकता है। सामुदायिक केन्द्र का उद्देश्य समुदाय के सदस्यों को शामिल कर समुदाय के लिए कार्य करना है।

कुमाऊं का पहला सामुदायिक रेडियो मुक्तेश्वर में 11 मार्च 2010 में शुरू किया गया। टेरी संस्था द्वारा स्थापित सामुदायिक रेडियो कुमाऊं वाणी का उदघाटन तत्कालीन राज्यपाल मारग्रेट अल्वा ने किया था। इस रेडियो स्टेशन ने कुमाऊं की भाषा को एक नयी दिशा दी है। कुमाऊं वाणी के प्रबंधक मोहन कार्की ने बताया कि इस स्टेशन कार्यक्रम कुमाऊं की मे तैयार किए जाते हैं, साथ ही रेडियो जाँकी भी क्षेत्रीय बोली का ही प्रयोग करते हैं। वर्ष 2014 में छोटे किसानों के लिए चलने वाले कार्यक्रम “बाजार लाये बौछार” को सामुदायिक सहभागिता के लिए नेशनल अवार्ड से नवाजा गया था। साल 2013 में जन सहभागिता को आधार बनाकर कुमाऊं की बेहतरी के विकास कार्यक्रमों में मजबूती देने के लिए डेवलपमेंट एम्पावरमेंट फाउंडेशन की ओर से भी इसे मंथन अवार्ड दिया गया। कुमाऊं वाणी को 90.4 मेगाहर्ट्ज पर सुना जा सकता है। कुमाऊं वाणी का अपना एक स्लोगन है आपुण रेडियो आपुण बात और इसी को चरितार्थ करते हुए रेडियो आज युवाओं, बुजुर्गों और महिलाओं का सुख-दुख का साथी बन गया है। स्थानीय भाषा में पहाड़ के रेडियो जाकी हर दिन ग्रामीणों की समस्याओं और मुद्दों पर चर्चा करते हैं। नैनीताल जिले के मुक्तेश्वर के पास स्थित इस रेडियो स्टेशन पर कुमाऊं की बोली में गीत संगीत और उपयोगी सभी कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। कुमाऊं वाणी पर खेती, बागवानी, मौसम, आपदा, शिक्षा, स्वास्थ्य और महिला सशक्तिकरण पर फोकस किया जाता है। इसी काम की वजह से इस रेडियो स्टेशन ने 9 सालों में अपनी एक खास पहचान बनाई है। कुमाऊं वाणी का दायरा केवल कुमाऊं क्षेत्र में नहीं है, बल्कि इसके श्रोता गढ़वाल क्षेत्र में भी हैं। सामुदायिक रेडियो 10 किमी एरियल दूरी और 90.4 मेगाहर्ट्स पर सुनाई देता है। कुमाऊं और गढ़वाल के करीब 550 गांव इसके दायरे में आते हैं। अल्मोड़ा, चम्पावत, गरुड़, रानीखेत, ग्वालदम, कौसानी सहित गढ़वाल मंडल के कुछ गाँवों के करीब 4 लाख लोगों तक इसकी पहुंच है। भले ही स्वयंसेवी संस्था टेरी संचालित कर रही हो, लेकिन इसे चलाया स्थानीय लोगों ने है। कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने से लेकर उसे प्रसारित करने तक की जिम्मेदारी स्थानीय लोगों की टीम पर है। कार्यक्रम ऐसे तय किए गए हैं, जो हर वर्ग के लिए हैं और सीधे स्थानीय लोगों को लाभ देते हैं। स्थानीय कुमाऊं की भाषा में प्रसारित रेडियो कार्यक्रम क्षेत्र के लोगों की रोजमर्रा के जीवन का एक हिस्सा बन गया है। प्रारंभ में यह केवल 1 घंटे प्रसारण करता था लेकिन अब यह रोजाना सुबह 8 बजे से 1 बजे दिन तक लाइव प्रसारण कर रहा है। इसके बाद 1 बजे से 5 बजे तक रिपीट प्रसारण कर रहा है। क्षेत्र की संस्कृति और परंपरा पर आधारित कार्यक्रमों को प्रसारित करके इस रेडियो स्टेशन ने ग्रामीण समुदायों और उनकी परंपराओं के बीच की कड़ी को फिर से स्थापित किया है। यही नहीं सरकार प्रायोजित योजनाओं और अन्य प्रासंगिक मुद्दों पर सटीक और समुचित जानकारी प्रदान करके इसने सरकार और दूरस्थ समुदायों के बीच की खाई को पाटने का भी सराहनीय प्रयास किया है। स्थानीय भाषा में कार्यक्रम के प्रसारण की वजह से लोग खुद को इससे जुड़ा हुआ महसूस करने लगे हैं। कुमाऊं वाणी ने भी आम लोगों को हर स्तर पर जोड़ने का काम किया। ग्रामीण जन इसके कार्यक्रमों में भाग ले सकते हैं, सवाल पूछ सकते हैं और अपने अनुभवों के आधार पर टिप्पणियों को साझा कर सकते हैं, साथ ही उन्हें क्षेत्र के महत्वपूर्ण संगठनों के साथ सरकारी, गैर-सरकारी और अन्य हितधारकों को सुनने और अनुभवों का लाभ उठाने का भी अवसर मिलता रहा है।

साहित्य पुनरावलोकन

- मधु पट्टनशेट्टी व डी ए नित्यया ने धारवाड़ स्थित कृषि सामुदायिक रेडियो के कार्यक्रमों का अंतर्वस्तु विश्लेषण किया है जिसमें 90.4 एफ. एम पर कृषि विकास को समर्पित कृषि सामुदायिक रेडियो का प्रसारण किया जा रहा है। इस अध्ययन निष्कर्ष के अनुसार रेडियो द्वारा सप्ताह में 21 घंटे का प्रसारण किया जाता है, जिसमें कृषि कार्यक्रम का प्रसारण 58.97 प्रतिशत, महिला व बाल विकास पर 6.19 प्रतिशत प्रसारण किया जाता है।

- उत्तराखंड के गढ़वाल मंडल परिक्षेत्र में रेडियो पर किए गए डॉ बर्त्वाल के 300 उत्तरदाताओं पर किए गए शोध से यह सामने आया कि करीब 90 प्रतिशत लोग रेडियो सुनना पसंद करते हैं और मात्र 10 प्रतिशत लोग ही ऐसे हैं जो रेडियो सुनना पसंद नहीं करते। 68 प्रतिशत जनसामान्य, 58 प्रतिशत जनप्रतिनिधि और 58 प्रतिशत अधिकारी कर्मचारियों का मानना है कि रेडियो लोगों के विचारों को प्रभावित करते हैं जबकि करीब 11 प्रतिशत जनसामान्य और 8 प्रतिशत जनप्रतिनिधियों ने स्पष्ट किया कि रेडियो लोगों के विचारों को प्रभावित नहीं करता। करीब 70 प्रतिशत लोगों का मानना है कि वे रेडियो से प्राप्त सूचनाओं को सत्य मानकर अमल में लाते हैं जबकि करीब 20 प्रतिशत मतदाताओं ने रेडियो के प्रति अविश्वसनीयता प्रकट की।
- किशोर, देवेश ने प्रज्ञान जर्नल में जून 2012, वाल्यूम 10 में प्रकाशित अपने शोध पत्र में दिल्ली एनसीआर के चार सामुदायिक रेडियो केन्द्रों डीयू, आईआईएमसी, जिम्स, जामिया को शामिल किया और पाया कि इन सभी सामुदायिक रेडियो स्टेशनों की प्रमुख वरीयता मनोरंजन, स्वास्थ्य, आर्थिक विकास और जन जागरूकता है जिसके प्रसार में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

उपकल्पना

1. मुक्तेश्वर से सटे ग्रामीण इलाकों में कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो मनोरंजन का साधन है।
2. कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के कार्यक्रम हर उम्र के पुरुषों, महिलाओं, बच्चों द्वारा सुने जाते हैं।
3. कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो में ग्रामीण विकास से जुड़े कार्यक्रम अधिक लोकप्रिय हैं।
4. कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो स्टेशन ने ग्रामीणों के जीवन स्तर में बदलाव लाने का काम किया है।
5. कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो पर प्रसारित होने वाले शिक्षापरक और जागरूकता बढ़ाने वाले कार्यक्रमों से ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की राह आसान हुई है।
6. कुमाऊं वाणी रेडियो प्रसारणों द्वारा ग्रामीण समाज में जाति, भाषा, धर्म और संप्रदाय संबंधी दूरियां कम हो रही हैं।
7. कुमाऊं वाणी समुदाय विशेष से संबंधित होने और सस्ता, सुलभ और चलित होने से ग्रामीण क्षेत्र में सामुदायिक रेडियो की लोकप्रियता बढ़ रही है।
8. कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो पर प्रसारित होने वाले कृषि आधारित कार्यक्रमों से किसानों को खेती करने के नए तरीकों की जानकारी प्राप्त हो रही है।

शोध के उद्देश्य

1. कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के ग्रामीणों पर पड़ने वाले प्रभाव को समझना।
2. कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के कार्यक्रमों के बारे में ग्रामीणों के सुझाव को जानना।
3. कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के माध्यम से ग्रामीणों के जीवन में आ रहे बदलावों को समझना।
4. कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के कार्यक्रमों के बारे में ग्रामीणों की राय को जानना।
5. ग्रामीण पृष्ठभूमि में कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो की भूमिका का अध्ययन करना।
6. कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के विकासपरक कार्यक्रमों का अध्ययन करना।
7. विकास संचार के तत्वों शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, खेती-किसानी व स्थानीय संस्कृति का कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के जरिए अध्ययन करना।
8. कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो पर विकासपरक कार्यक्रम के जरिए लोगों की चेतनाशीलता का अध्ययन करना।

न्यादर्श का चयन

प्रस्तुत शोध कार्य के लिए निदर्शन के रूप में मुक्तेश्वर से सटे गजार, सूपी, नथ्वाखान, दाड़िमा गाँवों के 18 से 65 आयु वर्ग के 200 उत्तरदाताओं (प्रत्येक गाँव से 25 पुरुष और 25 महिला कुल 50) का चयन दैव निदर्शन पद्धति के आधार पर किया गया है। इन सभी ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं जाकर उत्तरदाताओं से संपर्क साधकर तथ्य संकलन किया गया और उत्तरदाताओं की व्यक्तिगत जानकारी के साथ सामुदायिक रेडियो सम्बन्धित तथ्यों के बारे में जानकारी ली गई। इस तरह इस शोध में सभी उत्तरदाता साधारण रैंडम सैंपलिंग के द्वारा शामिल किए गए हैं, जिनका चयन सुविधापूर्ण नमूना चयन विधि के अंतर्गत किया गया है। प्रश्नावली में रखे गए सभी प्रश्न सामुदायिक रेडियो से जुड़े हुए हैं।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध के लिए शोधार्थी ने स्वयं अध्ययन क्षेत्र में जाकर सर्वेक्षण कर ग्रामीण श्रोताओं से बातचीत की। प्रस्तुत शोध में वर्णात्मक अध्ययन का प्रयोग किया गया है। सभी आंकड़े व्यक्तिगत इंटरव्यू और अवलोकन के माध्यम से लिए गए हैं, जिसमें सर्वेक्षण के अंतर्गत प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत प्रश्नावली, अवलोकन, साक्षात्कार का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोत के तहत आनलाइन वेबसाइट, पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं, दैनिक समाचार पत्रों, पत्रिकाओं आदि के माध्यम से आंकड़े संकलित किए गए हैं।

प्रदत्त का संकलन, विश्लेषण और व्याख्या

- 93 फीसदी ग्रामीण कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो नियमित सुनते हैं, वहीं 7 फीसदी लोग अनियमित सुनते हैं।
- 90 फीसदी ग्रामीण कुमाऊं वाणी सुनने के लिए रेडियो सेट्स का प्रयोग करते हैं, वहीं 10 फीसदी ग्रामीण आनलाइन माध्यमों के माध्यम से इसे सुनते हैं।
- 42 फीसदी ग्रामीण कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के कार्यक्रम दोपहर में सुनते हैं वहीं 30 फीसदी ग्रामीण सुबह और 28 फीसदी ग्रामीण शाम को सुनते हैं।
- 39 फीसदी ग्रामीण पूरे दिन में 2 से 4 घंटे कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो सुनते हैं वहीं 22 फीसदी 1 से 2 घंटे, 30 फीसदी 4 से 5 घंटे और मात्र 9 फीसदी ग्रामीण ऐसे हैं जो पूरे दिन 5 घंटे कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो सुनना पसंद करते हैं।
- 48 फीसदी ग्रामीण ऐसे हैं जो खेतों में काम करते हुए कुमाऊं वाणी सुनते हैं वहीं 32 फीसदी लोग घरों में काम करते समय इसे सुनते हैं वहीं 20 फीसदी ग्रामीण ऐसे मिले जो फुर्सत के पलों में कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो को सुनते हैं।
- कुमाऊं वाणी के महकता आँचल, बुरांश, बाजार लाये बौछार, माती उगले सोना, अजब खेल गजब गणित जैसे कार्यक्रम ग्रामीणों के पसंदीदा कार्यक्रमों में शामिल हैं।
- कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो स्थानीय स्तर पर सूचनाओं के प्रसार का बेहतर साधन है इस प्रश्न के उत्तर में 50 फीसदी ग्रामीण पूर्णतया सहमत नजर आते हैं वहीं 22 फीसदी सहमत, 5 फीसदी अनिश्चित, 13 फीसदी असहमत और 10 फीसदी असहमत नजर आते हैं।
- कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो ग्रामीण जनमानस की समस्याओं को कारगर तरीकों से उठा रहा है इस प्रश्न के उत्तर में 42 फीसदी ग्रामीण पूर्णतया सहमत नजर आते हैं वहीं 28 फीसदी सहमत, 11 फीसदी अनिश्चित, 10 फीसदी असहमत और 9 फीसदी असहमत नजर आते हैं।
- कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के माध्यम से तमाम सरकारी योजनाओं की जानकारी ग्रामीणों को समय से मिल रही है इस प्रश्न के उत्तर में 33 फीसदी ग्रामीण पूर्णतया सहमत नजर आते हैं वहीं 27 फीसदी सहमत, 17 फीसदी अनिश्चित, 13 फीसदी असहमत और 10 फीसदी असहमत नजर आते हैं।
- कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो ने ग्रामीणों की जीवन शैली को प्रभावित किया है इस प्रश्न के उत्तर में 34 फीसदी ग्रामीण पूर्णतया सहमत नजर आते हैं वहीं 23 फीसदी सहमत, 22 फीसदी अनिश्चित, 11 फीसदी असहमत और 10 फीसदी असहमत नजर आते हैं।
- कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के माध्यम से ग्रामीणों को हर दिन नई जानकारी मिलती है इस प्रश्न के उत्तर में 46 फीसदी ग्रामीण पूर्णतया सहमत नजर आते हैं वहीं 20 फीसदी सहमत, 10 फीसदी अनिश्चित, 10 फीसदी असहमत और 14 फीसदी असहमत नजर आते हैं।
- कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के द्वारा प्रसारित कृषि, लोग संगीत, खास मुलाकात, स्वास्थ्य, फोन इन कार्यक्रम, फरमाइशी गीतों के कार्यक्रम हर वर्ग के ग्रामीणों द्वारा पसंद किये जा रहे हैं।
- स्थानीय पहाड़ी बोली, रीति रिवाज, लोक गीतों को सहेजने में कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो सार्थक साबित हो सकता है 90 फीसदी उत्तरदाता इस कथन से सहमत हैं वहीं 10 फीसदी इससे असहमत नजर आते हैं।
- उत्तराखंड के पहाड़ी इलाकों में अक्सर नेटवर्क कनेक्टिविटी की बड़ी समस्या रही है लेकिन कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो का प्रसारण गाँवों में सभी जगह स्पष्ट सुनाई देता है।
- मुक्तेश्वर के आस पास स्थित ग्रामीण इलाकों में रहने वाले ग्रामीणों को कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के माध्यम से विभिन्न कार्यक्रमों में सहभागिता का मौका मिल रहा है। 100 फीसदी उत्तरदाता इस कथन से सहमत नजर आते हैं।
- कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के सुझावों पर ग्रामीण श्रोताओं का कहना था एक दशक से भी अधिक समय बीतने के बाद अब यहाँ प्रसारण का समय भी बढ़ना चाहिए साथ ही रिकार्डेड प्रसारणों के बजाय लाइव प्रसारणों पर अब अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।
- कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो पर स्थानीय समाचारों के प्रसारण की अनुमति मिलनी चाहिए। इससे 75 फीसदी ग्रामीण सहमत नजर आते हैं वहीं 25 फीसदी ग्रामीण इस कथन से असहमत हैं।

निष्कर्ष

आज भी भारत गाँवों में बसता है और भारतीय ग्रामीणों की प्रसारण आवश्यकताओं की पूर्ति बड़े प्रसारक नहीं कर सकते। जिस देश में बहुत कम दूरियों पर लोगों की जरूरतें, भाषा और संस्कृति बदल जाती हैं वहाँ यह संभव भी नहीं है। सामुदायिक रेडियो, सामुदायिक कल्याण, पर्यावरण जागरूकता, विविधता में एकता और समग्र विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। यही नहीं कुछ और स्वतंत्रता मिलने पर यह छोटे-छोटे केन्द्र प्रजातंत्र को उसका सही अर्थ प्रदान कर सकते हैं। कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के द्वारा प्रसारित कृषि, लोग संगीत, खास मुलाकात, स्वास्थ्य, फोन इन कार्यक्रम, फरमाइशी गीतों के कार्यक्रम हर वर्ग के ग्रामीणों द्वारा पसंद किये जा रहे हैं। कुमाऊं वाणी के महकता आँचल, बुरांश, बाजार लाये बौछार, माती उगले सोना, अजब खेल गजब गणित जैसे कार्यक्रम ग्रामीणों के पसंदीदा कार्यक्रमों में शामिल हैं। 90 फीसदी ग्रामीण कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो नियमित सुनते हैं। कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो ग्रामीण जनमानस की समस्याओं को कारगर तरीकों से उठा रहा है। कुमाऊं वाणी सामुदायिक रेडियो के माध्यम से तमाम सरकारी योजनाओं की जानकारी ग्रामीणों को समय से मिल रही है, साथ ही किसान इस सामुदायिक केंद्र से बड़े पैमाने पर लाभान्वित हो रहे हैं। उत्तराखंड पूरा पहाड़ी क्षेत्र है जहाँ बहुत विषम भौगोलिक परिस्थितियाँ हैं। जहाँ पूरे प्रदेश में पलायन एक बड़ी समस्या है वहीं जंगली जानवरों से यहाँ के किसानों को

बड़े पैमाने पर नुकसान उठाना पड़ता है। ऐसे में सामुदायिक केंद्र इन समस्याओं के समाधान की दिशा में काम कर सकता है। कुमाऊँनी भाषा में प्रसारण होने के चलते गाँवों की बड़ी आबादी इसके कार्यक्रम आसानी से समझ सकती है। लम्बे समय से स्थानीय कुमाऊँनी भाषा में प्रसारित सभी रेडियो कार्यक्रम यहाँ निवास करने वाले ग्रामीणों की रोजमर्रा के जीवन का एक हिस्सा बन गया है। क्षेत्र की संस्कृति और परंपरा पर आधारित कार्यक्रमों को प्रसारित करके इस सामुदायिक रेडियो स्टेशन ने ग्रामीण समुदायों और उनकी परंपराओं के बीच की कड़ी को फिर से स्थापित किया है। यही नहीं सरकार प्रायोजित योजनाओं और अन्य प्रासंगिक मुद्दों पर सटीक और समुचित जानकारी प्रदान करके इसने सरकार और दूरस्थ समुदायों के बीच की खाई को पाटने का भी काम हुआ है।

स्थानीय भाषा में कार्यक्रम के प्रसारण की वजह से लोग खुद को इससे जुड़ा हुआ महसूस करने लगे हैं। कुमाऊँ वाणी ने भी समाज के हर वर्ग के लोगों को हर स्तर पर इससे जोड़ने का काम किया है। लोग इसके कार्यक्रम में भाग ले रहे हैं, सीधे सवाल पूछ रहे हैं और अपने अनुभवों के आधार पर टिप्पणियों को साझा कर रहे हैं। अपनी फरमाइश देकर लोकगीत भी सुन रहे हैं साथ ही, उन्हें क्षेत्र के महत्वपूर्ण संगठनों के साथ सरकारी, गैर-सरकारी और अन्य हितधारकों को सुनने और अनुभवों का लाभ उठाने का भी अवसर भी पा रहे हैं। आज भी यह सामुदायिक रेडियो सांस्कृतिक आदान-प्रदान और समुदायों को प्रासंगिक सरकारी और गैर-सरकारी सूचनाओं से अपडेट रखने के अलावा विशिष्ट लाभार्थियों को योजनाओं से जोड़ने वाले सामाजिक अभियानों को सफलतापूर्वक चला रहा है। इसका एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण वर्ष 2016 में कुमाऊँ वाणी द्वारा महिलाओं के स्वास्थ्य और पोषण पर शुरू किया गया एक कार्यक्रम महकता आँचल था जिसने महिलाओं में स्वास्थ्य के बारे में न केवल जागरूकता पैदा की, बल्कि उन्हें स्वास्थ्य के मुद्दों पर बात करने के लिए प्रोत्साहित भी किया, जिन पर कोई बात ही नहीं करना चाहता था। कार्यक्रम से जुड़ने के बाद किशोरियाँ और महिलाएं अपने परिवार के सदस्यों के साथ उन मुद्दों पर भी चर्चा करने लगीं, जिन पर पहले बात करने से भी हिचकिचाती थीं। यौन संबंधी रोग, प्रजनन और मासिक धर्म जैसी स्वास्थ्य समस्याओं पर कुमाऊँ वाणी के मंच पर महिलाओं द्वारा स्वतंत्र रूप से चर्चा की जाने लगी। नैनीताल और अल्मोड़ा जिले के सरकारी अस्पताल के कई चिकित्सकों और गैर-सरकारी स्वास्थ्य संस्थानों से जुड़े विशेषज्ञों के पैनल ने इस पहल से जुड़े और भविष्य के स्वास्थ्य कार्यक्रमों में भी बढ़चढ़ कर योगदान दिया। दूसरी ओर आशा कार्यकर्ताओं ने भी जमीनी स्तर पर कार्यक्रम में प्रभावी बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसने एक बार फिर इस तथ्य को साबित कर दिया है कि सामुदायिक रेडियो सामाजिक, ग्रामीण विकास और आर्थिक विकास की दिशा में काम करने के लिए समाज के सभी हितधारकों को एक साथ एक मंच पर जोड़ने में महत्वपूर्ण कड़ी साबित हो सकता है।

सुझाव

1. कुमाऊँनी भाषा के संरक्षण और संवर्धन में कुमाऊँ वाणी सामुदायिक रेडियो स्टेशन कारगर भूमिका निभा सकता है। अतः सरकारों को चाहिए उत्तराखंड की संस्कृति के संरक्षण के लिए इस तरह के सामुदायिक केंद्रों को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिए जाने की जरूरत है।
2. उत्तराखंड आपदाओं की दृष्टि से बहुत संवेदनशील राज्य है। इस लिहाज से आपदाओं के आने पर कुमाऊँ वाणी जैसे सामुदायिक केंद्रों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि इसके माध्यम से सूचनाएं बड़े स्तर पर विभिन्न समूहों में आसानी से पहुंचाई जा सकती हैं।
3. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार के द्वारा शुरूवात में सामुदायिक रेडियो स्टेशनों के लिए 5 मिनट प्रति घंटे की दर से विज्ञापनों के लिए एयर टाइम की अनुमति मिली जिसे 7 मिनट करने की मांग आये दिन उठ रही है जबकि टी वी चैनलों के लिए 12 मिनट के एयर टाइम की अनुमति मिली हुई है। 7 मिनट का एयर टाइम भविष्य में अगर मिल भी जाता है तो ये नाकाफी होगा क्योंकि विज्ञापनों की सशक्त नीति के अभाव में सामुदायिक रेडियो का चल पाना मुश्किल है। कुमाऊँ वाणी के पास टेरी जैसी संस्था की इमदाद है लिहाजा इस केंद्र से प्रसारण नियमित चल रहा है लेकिन देश के तमाम सामुदायिक रेडियो स्टेशन संसाधनों की कमी से जूझ रहे हैं। ऐसे में कमाई के साधन जुटा पाने की बड़ी चुनौतियाँ इनके सामने खड़ी है। सरल नीतियों को बनाये जाने की आवश्यकता आज सरकार को है जिससे अधिक से अधिक विज्ञापन इन सामुदायिक रेडियो केंद्रों को मिल सकें।
4. कुमाऊँ वाणी सामुदायिक रेडियो कुमाऊँ के साथ ही गढ़वाल में भी सुना जा रहा है। इसकी पहुँच को देखते हुए सरकार को चाहिए इस तरह के सामुदायिक रेडियो केंद्रों को अधिकाधिक बढ़ावा दिया जाए।
5. सामुदायिक रेडियो केंद्रों के विस्तार, कारगर विज्ञापन नीति न होने में सबसे बड़ी बाधा नौकरशाही की भी है। देश की राजधानी और मंत्रालय में बैठने वाले नौकरशाहों के पास सामुदायिक रेडियो के विस्तार और पहुँच का न तो कोई विजन है और न ही रेडियो जैसे माध्यम की व्यापक पहुँच और तमाम सरकारी योजनाओं के प्रचार प्रसार में सामुदायिक रेडियो की भूमिका को वह समझ पाए हैं। अगर ऐसा होता तो आज भारत में सामुदायिक रेडियो केंद्रों की संख्या लाखों में होती।
6. भारत की बड़ी आबादी गाँवों में रहती है। कुमाऊँ वाणी सामुदायिक रेडियो ने खेती किसानों से जुड़े कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण काश्तकारों के बीच एक अलग पहचान बनायी है। लम्बे समय से देश में खेती घाटे का सौदा बनी हुई है और देश के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी किसानों की आय बढ़ाने की बात दोहराते आये हैं। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में देश के कृषि में पिछड़ेपन को दूर करने में सामुदायिक रेडियो स्टेशन कारगर साबित हो सकते हैं।

संदर्भ सूची

- Frasher and Estrada Restrepo Sonia, Community Radio Handbook, UNESCO, 2011
- मैक्लीश, राबर्ट, रेडियो प्रोडक्शन टेक्नीक्स, फोकल प्रेस, फोर्थ एडिशन
- माईकल, ए हिस्ट्री आफ बर्लियाँ कम्युनिटी रेडियो, सितम्बर 1990

- क्रेक, डान, कम्युनिटी रेडियो, द नेशन, जून 2005
- जे सी वाकर, रेवेल्स आफ द एयर परसेंट एन अल्टरनेटिव हिस्ट्री आफ रेडियो, जिरार्ड ब्लूस, अ पैशन फार रेडियो: रेडियो वेब्स एंड कम्युनिटी, नई दिल्ली, 2002
- यूनेस्को, भारत में सामुदायिक रेडियो आन्दोलन, 2003
- ग्रामवाणी, सामुदायिक रेडियो: सामुदायिक रेडियो सामुदायिक रेडियो स्टेशन की स्थापना, वायस आफ बिहार, 2007
- नंदा, वर्तिका, सामुदायिक रेडियो के बीच विकास की गूँज, कम्युनिकेशन टुडे, जनवारी, जून 2005, पेज 61-65
- Kishore, Devesh, An Analytical Programme content study of Community Radio functioning in National Capital Territory of Delhi, Pragyaan Journal, June 2012
- <https://www.pravakta.com/the-role-of-community-radio-has-increased-in-the-development-of-the-village/>
- <https://www.hindikunj.com/2019/12/samudayik-radio.html>
- <http://www.defindia.org>
- <http://lokbharat.in/community-radio-has-a-big-role-in-village-development/>
- https://asbmassindia.blogspot.com/2011/12/blog-post_4039.html
- <http://www.amarujala.com/uttarakhand/nainital/Nainital-84491-116>
- <https://www.teriin.org/>
- Kumar J, Keval, Mass Communication in india, Jaico Publication House, Mumbai, 2011
- Gupta, V. S, Communication & Development, Cocept Publishing
- Ravindra R.K, Hand Book of Radio TV & Broadcast Journalism
- <http://www.thehoot.org/statistics/radio-5844>.
- Kuewumi, J.B, Radio: How it Impacts the Listener Personally. Babcock University Mass Communication J., 2(1): 138-149, 2009
- Melkote, Communication For Development in the world, Sage Publication, New Delhi
- http://krishi.icar.gov.in/jspui/bitstream/123456789/45274/1/community_20radio.pdf
- K Malik, Kanchan, Pavrala Vinod, The Struggle for community radio in India, Sage Publication Delhi, 2007
- सिंह, डॉ महावीर, कठेरिया, धरवेश, रेडियो माध्यम और तकनीकी, शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली
- मीडिया मीमांसा- जुलाई- सितंबर 2010
- भानावत, डॉ संजीव, संचार शोध प्रविधियां, जयपुर
- जैन सी.एम, टी.कंगन, एस भानावत: मीडिया एंड रूरल डेवलपमेंट, यूनिवर्सिटी बुक हाउस प्राइवेट लिमिटेड, जयपुर
- कुलश्रेष्ठ, प्रोफेसर विजय, रेडियो पत्रकारिता, साहिल प्रकाशन, जयपुर, 2017
- पंत, एन सी, पत्रकारिता एवं जनसंचार, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
- राजगढ़िया विष्णु, जनसंचार सिद्धांत व अनुप्रयोग, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दरियागंज, नई दिल्ली, 2008
- सिंघल ए और रोजर्स ई: इंडियाज कम्यूनिकेशन रिवाल्यूशन, फ्राम बुलक कार्टस टू साइबर मार्स, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली
- कौशल, शर्मा, रेडियो प्रसारण, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
- मिश्र, राजेंद्र, मिश्र ईशिता, दृश्य-श्रव्य माध्यम, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
- हरिमोहन, रेडियो और दूरदर्शन पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
- शर्मा, राकेश, संचार एवं सामाजिक परिवर्तन, आदित्य पब्लिशर्स, मध्यप्रदेश
- परमार, श्याम, ट्रेडिशनल फोक मीडिया इन इंडिया, रिसर्च प्रेस, नई दिल्ली
- घोष सुबीर, मास मीडिया, कोलकाता, प्रोफाइल पब्लिशर्स
- पतंजलि प्रेमचंद, मीडिया के 50 वर्ष, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- जोशी रामशरण, मीडिया विमर्श, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
- www.mib.nic.in
- www.allindiaradio.gov.in
- www.communityradioindia.org
- www.rtrd.nic.in
- www.edaa.in

हिंदी के विकास में बुन्देलखंडी साहित्य का योगदान

क्रमांक शुक्ला

प्रवक्ता हिंदी, बेनी माधव तिवारी इंटर कॉलेज आटा जालौन

भारत की विभिन्न विविधताओं में भाषा की विविधता अद्भुत और ध्यान खींचने वाली है। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक अलग-अलग भाषाएँ लोगों द्वारा प्रयोग में लाई जाती हैं। दिलचस्प यह है कि इन भाषाओं की पृष्ठभूमि प्राचीन है। भाषाओं का विकास कई वर्षों तक होता रहता है। जिन भाषाओं ने आधुनिक समय और तकनीक में अपने को समायोजित किया है, वे काफी फलफूल रही हैं जबकि कुछ भाषाएँ समय के साथ दम तोड़ चुकी हैं। भाषाओं के इतिहास में बहुत सावधानी से अध्ययन की जरूरत होती है। भारत जैसे देश में समय की जरूरत के अनुसार अंग्रेजी का जोर अवश्य बढ़ रहा है। विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिंग आदि ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ अंग्रेजी भाषा का प्रभाव है। लेकिन इसके बावजूद दर्शन और साहित्य के अंतर्गत हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं का भारत में काफी प्रभाव है। प्राचीन से लेकर आधुनिक साहित्यों में देशीय भाषाओं ने अपना महत्त्व अभी तक बनाकर रखा है। भारत में प्राप्त होने वाले प्राचीन से लेकर आधुनिक साहित्य में तमाम भाषाओं का योगदान तो है ही साथ ही चिंतन की शैली भी काफी उत्कृष्ट है।

कवि कालिदास ने बुन्देलखंड को भारत के मध्य भाग में स्थिति देश माना है। इसके नगरों और ग्रामों के लोग बुन्देली बोलते थे। छत्रसाल राजा के एक समकालीन कवि ने लिखा है-

“इत जमुना, उत नमदा इत चम्बल उत टोंस
छत्रसाल सौ लरन कौ रहौ न काउ होश”

अर्थात् छत्रसाल राजा ने इतने पराक्रम से युद्ध किये कि उन्होंने जमुना, नर्मदा और चंबल की जगहों को मिला लिया। वे इतना युद्धरत रहे कि उनको होश तक न रहा। अतः समझा जा सकता है कि बुन्देली भाषा अपने स्थान के अनुसार मध्य भारत में फैली हुई थी और है। इसमें शौर्य, वीरता, प्रेम, श्रृंगार, प्रकृति वर्णन आदि की कविताओं की भी अपनी जगह है।

भारोपीय भाषा परिवार में भाषाओं का महान परिवार है जहाँ ढेरों भाषाओं में से कई भाषाओं ने जन्म लिया है। शौरसेनी व अपभ्रंश से विकसित हुई कई भाषाएँ हैं। हिंदी इनमें से एक है। हिंदी की विभिन्न बोलियों की कई शाखाएँ अन्य स्थानों पर मौजूद हैं। हिंदी की शाखाएँ, पश्चिमी हिंदी, बिहारी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, पहाड़ी हिंदी और पूर्वी हिंदी के भागों में फैली हुई हैं। पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत ही बुन्देली भाषा शामिल है। बुन्देलखंड में बोली जाने के कारण बुन्देली नाम पड़ा है। बुन्देली भाषा की अपनी उपबोलियाँ भी हैं। पर कई भाषा विद्वान बुन्देली को स्वतंत्र भाषा न मानकर ब्रज से जोड़ते हैं अथवा कन्नौजी की ही एक शाखा मानते हैं। पर वास्तव में क्या ऐसा है? इस सवाल के जवाब के लिए हिंदी भाषा के साहित्य इतिहास पर एक निगाह डालना ठीक रहेगा।

बुन्देलखंड के प्रसिद्ध साहित्य रचनाकार और उनका हिंदी साहित्य में योगदान एक महत्वपूर्ण विषय है। इस विषय की रोचक जानकारी हिंदी साहित्य की पुस्तकों में उपलब्ध है। पर गौरीशंकर द्विवेदी द्वारा रचित पुस्तक ‘बुन्देल-वैभव’ पुस्तक है एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इसे लेखक ने काफी शोध के उपरांत लिखा है। पुस्तक में जगह-जगह लेखक ने उन कवियों को बड़े सम्मान से उल्लेखित किया है जो बुन्देली भाषा प्रदेश में हुए। परन्तु जिन्होंने अपनी रचनाएँ ब्रज अथवा अवधी भाषा में लिखीं। उदहारण के लिए, केशवदास और तुलसीदास का नाम लिया जा सकता है। पुस्तक में लेखक ने स्वयं घोषणा की है कि उन्होंने दो हजार कवियों का उल्लेख किया है।¹ इस संख्या से अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं कि बुन्देली साहित्य ने हिंदी साहित्य में कितना बड़ा योगदान दिया है। इतना ही नहीं लेखक ने इन कवियों को काल क्रमानुसार निम्न भागों में विभक्त किया है-

1. कवीन्द्र केशव काल
2. लाल-काल
3. पद्माकर काल
4. मैथिलीशरण गुप्त काल²

सबसे पहले लेखक ने तुलसीदास को जगह दी है और उनका संबंध बुन्देलखंड से जोड़ा है। उनके बाईस ग्रंथों की सूची भी दी है पर इनमें कौन सा बुन्देली भाषा में यह नहीं बताया। इसके बाद लेखक ने अन्य कवियों का विस्तृत वर्णन किया है। लेखक के अनुसार बुन्देल भूमि ने अनेकों महान हिंदी साहित्यकारों को जन्म दिया है। केशव काल में दो कवियों के लिखे उदहारण लिए जा सकते हैं जिन्होंने साहित्य में अपना नाम दर्ज किया है। पहले रहीम द्वारा रचित ‘रहीम सतसई से एक उदहारण है-

“तरुवर फल नहीं खात है, सरवर पियहीं न पानी
कही रहीम परकाज हित, संपत्ति सुचही सुजान”³

बिहारीदास नामक कवि ने बुंदेलखंड से जोड़ते हुए कुछ यूँ अपना परिचय दिया है-

“जनम ग्वालियर जानिए, खंड बुन्देल बाल
तरुनाई आई सुखद मथुरा बस ससुराल पेज”

इसी पुस्तक में प्रवीणराय पातुर और केशवपुत्र वधू नामक दो स्त्रियों का संबंध भी बुंदेलखंड से जोड़ा गया है। इन स्त्रियों अपनी रचनाओं से हिंदी साहित्य में स्त्री पलड़े को हल्का नहीं होने दिया है। प्रवीणराय पातुर ओरछा के राजा के यहाँ वारांगना स्त्री थीं। इनकी शिक्षा दीक्षा केशवदास जैसे कवि के सौजन्य से हुई। कहा जाता है कि केशवदास ने इन्हें काव्य शिक्षा देने के लिए ‘कविप्रिया’ नामक रचना की। प्रवीण स्वयं भी साहस से भरी हुई स्त्री थीं जिसने काव्य कला और चतुरता से शाह अकबर से अपनी बात मनवा ली थी। उनका लिखा स्त्री की यौनिकता को उभारता है। यहाँ मध्यकाल की भक्ति पवित्रता का आग्रह नहीं है बल्कि स्त्री देह का स्व वर्णन है-

“सीतल सरिर ढार, मंजप कै घन सार
अमल अंगोछे आछे मन में सुधारि हौ
देहौ न अलक एक लगन पलक पर
मिली अभिराम आछी तपन उतारी हौ
कहत प्रवीन राई अपनी ठौर पाय
सुन बाम नैन या बचन प्रतिपारी हौ”

यह लिखा इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि हिंदी साहित्य के इतिहास में मीराबाई जैसी भक्त लेखिका के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों का समुचित संज्ञान ही नहीं लिया गया। प्रवीण राय ने शृंगार रस से जुड़ा लेखन किया है। उनके लेखन को न जाने क्यों हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने पुरुष का लेखन समझ लिया? जब पता चला कि ये तो स्त्री थीं तो भी इनका संज्ञान नहीं लिया। इसी प्रकार बुंदेलखंड से संबंधित एक अन्य लेखिका ‘केशवपुत्र वधू’ थीं। इनका लिखा एक ही सवैया मिलता है। हालाँकि स्त्री साहित्य के लिहाज से यह एक पद भी अपना महत्व रखता है।

साहित्य के भीतर कई धाराएं बह रही हैं। जो लिखना जानते थे वे लिखकर अमर हो गए और जो नहीं लिखना जानते थे, उन्होंने लोकगीतों की रचना की। स्त्रियों, दलितों और आदिवासी समाजों में लोकगीतों का प्रचलन आज भी मुखर है। गाँवों में स्त्रियों द्वारा विवाह गीत गाना हो या पुरुष टोलियों द्वारा ‘बिरह-गान’ दिखाई देता है। आदिवासी समाजों ने भी कुछ इसी तरह अपने लोकमन में कई विविध कहानियों का अभी तक सहेज कर रखा है। बुंदेली भाषा के बारे में कहा जाता है कि इसमें लोकगीतों और कथाओं का अनुपम भण्डार है। कहा जाता है कि लोक के अध्ययन के लिए लोकगीतों और कथाओं का अध्ययन जरूरी होता है। बुंदेलखंड के ग्राम जीवन में ग्राम गीतों में ढेरों विषयों के साथ गीत गाए जाते हैं। ये गीत अक्सर ऋतुओं से संबंधित होते हैं। इसके अलावा देव वंदना आधारित गीतों की भी बहुतायत है। उदहारण के लिए कृष्ण से जुड़ा यह निम्न गीत ‘कार्तिक गीत’ नाम से पुकारा जाता है-

“एक बेर तुम हो जइयो मुरारी
दरसन को तरसे ब्रज नारी
बारे की खबर नइयां तुम को नन्द पिता जसुदा महतारी
सोरा साठ आठ पटरानी जिनके की मैं गुबरारी
गिरी गोवर्धन नख पै धरके आन करो बृज की रखवारी”⁸

एक अन्य फागुन गीत का उदहारण यहाँ लिया जा सकता है-

“आग लगी दरयाब में धुआं न परगट होए
कि दिल हमसे जाने आपनो जापर बीती होय
काऊ को लगन कोऊ को जाए”

लोक कवि ‘ईसुरी के फाग’ बुन्देली जन जीवन में बहुत प्रसिद्ध हैं। इसके बगैर ऋतुओं से जुड़े लोकगीत अधूरे ही माने जाते हैं। फागुन में टोलियों में प्रेम, विरह और शृंगार में डूबोकर इन गीतों को गाया जाता है-

“अखियाँ जब काऊ से लगतीं
तब सब रातन जगतीं
झपको पर नींद न आए
कब उनीन्दों भगतीं
बिन देखे जे दरद मिलतीं
पके खता सों दगतीं”¹⁰

प्रेम में डूबी अंखियों का साहित्य में बहुत तरह-तरह से वर्णन किया गया है। प्रेमी और प्रेमिका के नयनों के मिलन पर प्रबंध तक लिख दिए गए हैं। प्रेम रस में डूबे नेत्र जैसे ही अपने प्रिय को देखते हैं वे जीवन से संतुष्ट हो पड़ते हैं। देखने का भी एक सुख होता है। लोकगीत रचनाकार ईसुरी के इस लोकगीत को अध्यात्म की दृष्टि से भी देखा जा सकता है। अंखियों को प्रेमी के दर्शन नहीं होने के चलते उनमें फोड़ा हो जाने जैसा दर्द है। इस टोली के गा लेने के बाद दूसरी टोली इसके जवाब में गाती है-

“देखो रजउ खा पटियाँ पार
सिर सर्वहार उधार
भौतिन माँग भरी सेंदुर सों
बेंदा लेत बदारे
ठांडी हतीं टिकी चौखट सों
सेजई अपने द्वार
काम समर से सिर काटन सों
खौंस दो तरवारे”¹

प्रेमी द्वारा प्रेमिका के रूप का वर्णन है। प्रेमिका को खड़ी देखा। उसने अपनी माँग को सजाया हुआ हुआ था। माथे पर झूलता टीका हिल रहा था। सिर के बाल दो भागों में बंटे हुए थे जैसे दो तलवारे। यहाँ देखा जा सकता है कि आधुनिक समाज में जहाँ पुरुष और स्त्री को एक साथ देखकर तथाकथित धर्मरक्षक उन्हें झूठी नैतिकता और नियम बनाए रखने को कहते हैं तो वहीं यह बुंदेलखंड में फागुन में गाया जाने वाला गीत प्रेम से भीगा हुआ है। यहाँ स्त्री पुरुष प्रेम का स्वतंत्र प्रदर्शन भी है।

वसंत की ऋतु जहाँ प्रेम, श्रृंगार और रंगों में भीग जाती है वहीं ग्रीष्म ऋतु अपने संग मानव जीवन का नया रंग लेकर आती है। देवर जब अपनी भाभी से उसके पति का नाम पूछकर उसे तंग करता है तब भावज कहती है-

“ढावन सूख चुनरिया
उर वन सूख कचनार
गौरी धन सूख मायक
काऊ हीन पुरुख की नार”²

ग्रीष्म ऋतु में जहाँ एक ओर धूप के प्रकोप से धरती, अन्न और जीव सब प्यासे हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार स्त्री की दशा भी अपने प्रिय के लिए ऐसी हो जाती है। ग्रीष्म के बाद आई वर्षा ऋतु में कजरारे काले बादलों को लोकगीतों में स्थान दिया गया है। इस संदर्भ में बुंदेल लोकगीतों में बहुत जीवन्तता दिखाई देती है। सरल शब्दों में ही जीवन के अंगों को छुआ गया है-

“ओ कजरारे बदरा सुनियो मो संदेस
मो दुखिया के छाये हैं सजना काऊ देस
करौ रूप डरावनो अपनों होई दिखाव
जो डर सैंया आ मिलें ऐसो रचो उपाव”³

‘परदेस’ की अवधारणा भारतीय ग्रामीण समाज के पलायन का मार्मिक सच लिए हुए है। यहाँ स्त्रियों ने परदेस गए अपने पति की याद में विरह का संसार रचा है। पर बहुत से साहित्यकारों ने राजा और उनके युद्ध को अपने साहित्य में जगह दी। दरबारी साहित्यकारों ने राजा के प्रेम को मुख्य विषय बनाया। पर लोकगीतों इन्हें ऐसे नहीं अपनाते। लोकगीतों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर पता चलता है कि इसमें आर्थिक कारण बहुत महत्वपूर्ण है। यहाँ साधारण स्त्री पुरुष ही मुख्य किरदार हैं। आर्थिक तंगी के चलते काम की तलाश में लोगों को अपने गांवों को छोड़कर बड़े महानगरों का रुख करना होता था। जिसके चलते बहुत लंबे समय तक अपने घर परिवार से दूर रहा करते थे। समाज में फैली असामनता जैसी आज है उसके बीज इन्हीं लोकगीतों में देखे जा सकते हैं। ये लोकगीतों स्त्रियों द्वारा गाए जाते हैं जिनमें वे अपने मन, तन और घर के दुखों को गा रही हैं। बुंदेलखंड के क्षेत्र में जिन लोकगीतों को गाया जाता है वे भी इस दर्द से परे नहीं हैं। लोक में चकवा और चकई की प्रेम और विरह कथा प्रसिद्ध है। जब वह एक स्त्री को विरह में तड़पता देखता है तो वह उसकी पीड़ा को समझते हुए कहता है-

“आउन सावन दौ धन
गवां दौ मोय गीत
तोय झुलाऊँ पिया संग
जो मैं सांचो मीत”⁴

ठीक इसी प्रकार अन्य ऋतुओं के आने पर भी बुंदेली लोकगीत सुनने को मिलते हैं। इसी प्रकार, पूजा, विवाह, विदाई, मिलन और अन्य पर्वों पर बने लोकगीत सुनने को मिलते हैं। इन गीतों को साहित्य के भीतर एक प्रमुख धारा मानना चाहिए। इसके साथ ही लोककथा में आल्हा और ऊदल की वीर कथाओं को कैसे भुलाया जा सकता है। लोक में कहा जाता है कि इसके रचनाकार जगनिक हुए थे जो चंद बरदाई के समकालीन थे।⁵ इसमें आल्हा और ऊदल की बावन वीर कहानियों का अद्भुत वर्णन है। “अनुमान है कि मूलग्रंथ बहुत बड़ा रहा होगा। 1865 ई। में फर्रूखाबाद के कलक्टर सर चार्ल्स इलियट ने शआल्ह खण्ड नाम से इसका संग्रह कराया जिसमें कन्नौजी भाषा की बहुलता है। आल्ह खण्ड जन समूह की निधि है। रचना काल से लेकर आज तक इसने भारतीयों के हृदय में साहस और त्याग का मंत्र फूँका है।”⁶

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य में बुंदेलखंड और इस क्षेत्र के साहित्य का काफी बड़ा योगदान है। पहला तो इस क्षेत्र से आने वाले रचनाकारों ने अपने-अपने लेखन से हिंदी साहित्य को प्रचुर किया है साथ ही इस क्षेत्र के लोक साहित्य ने भी अपना आज भी एक जीवंत भाग संभाल कर रखा है। यह एक अनोखी ही बात है कि साहित्य का क्षेत्र अब अपनी उदार विशालता से लिखित और मौखिक साहित्य को समेट रहा है। यह संकेत एक बेहतर और संतुलित साहित्य की ओर इशारा है। वरना तो हम पाते हैं कि हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध इतिहास पुस्तकों में महज एक वर्ग और लिंग का ही इतिहास प्रमुखता से समेटा गया है। जबकि अहिन्दी क्षेत्रों में भी पर्याप्त हिंदी लेखन हुआ है। बुंदेलखंड के लोकजीवन से उपजे गीतों और कथाओं ने हिंदी साहित्य को अपना श्रेष्ठतम प्रदान किया है।

संदर्भ देखें:

1. रामचरण मित्र हयारण, बुंदेलखंड की संस्कृति और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 269
2. वही.
3. गौरीशंकर द्विवेदी, बुन्देल-वैभव, रामेश्वरप्रसाद द्विवेदी 'रमेश' बुंदेलखंड, संवत् 1990, पृ. 97
4. वही, पृ. 98
5. वही, पृ. 197
6. वही, पृ. 219
7. जगदीश्वर चतुर्वेदी/सुधा सिंह (संपादन/संकलन), स्त्री काव्य धारा, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, पृ. 66
8. गौरीशंकर द्विवेदी, बुन्देल-वैभव, रामेश्वरप्रसाद द्विवेदी 'रमेश' बुंदेलखंड, संवत् 1990, पृ. 75
9. वही.
10. वही, पृ. 286
11. वही.
12. वही, पृ. 289
13. वही, पृ. 292
14. वही, पृ. 293
15. वही, पृ. 52
16. <http://bundelkhand2bali.blogspot.com/2017/09/story-of-two-brave-hearts-aalha-udal.html>

डॉ० संतोष कुमार तिवारी की लघु कथाओं का सौंदर्य

अंजना गुप्ता

(शोधार्थी) अवधेश प्रताप विश्व विद्यालय, रीवा (मध्य प्रदेश) भारत

विनोद कुमार जयसवाल

(शोध निर्देशक), पं. एस. एन. शुक्ला विश्वविद्यालय, शहडोल (मध्य प्रदेश) भारत

स्वतंत्रता के पश्चात् जिस प्रकार देश एवं समाज में एक बदलाव का युग शुरू हुआ उसी प्रकार साहित्य में भी नए-नए प्रयोग देखने को मिले। काव्य के क्षेत्र में कविता के स्थान पर नई कविता का दौर शुरू हुआ। गद्य के क्षेत्र में भी नई-नई विधाएँ अस्तित्व में आईं। जैसे रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्टाज, डायरी यात्रा-वर्णन आदि इसी क्रम में लघुकथा, गद्य रूप भी तेजी के साथ लोकप्रिय हो गयी। कोई भी पत्र-पत्रिकाएँ ऐसी नहीं हैं जिसमें लघुकथा न हो। कोई भी पाठक सर्वप्रथम पत्र या पत्रिका में लघुकथा को ही ढूँढता है। कुल मिलाकर देखे तो लघुकथा गद्य की सबसे लोकप्रिय विधा बन चुकी है। पिछले कई दशकों से हिन्दी में लघुकथाओं का सैलाब-सा आ गया है। वस्तुतः आज लघुकथा प्रतीक विधा बन चुकी है। डॉ. संतोष कुमार तिवारी भी लघुकथा से अछूते नहीं रह पाए। उनका 'पुनर्विचार' लघु कथा संग्रह में लगभग सौ से अधिक लघुकथाएँ हैं।

डॉ. संतोष कुमार तिवारी की लघुकथाएँ 'पुनर्विचार' संकलन में संकलित हैं। इसमें 107 लघुकथाएँ हैं। ये लघुकथाएँ विभिन्न विषयों से संबंधित हैं। जिसमें प्रमुख रूप से -

- (1) जीवन यथार्थ संबंधी
- (2) सामयिक संदर्भ संबंधी
- (3) मानवीय दृष्टिकोण संबंधी
- (4) नारी संघर्ष
- (5) शैक्षिक
- (6) राजनीतिक
- (7) प्रतीकात्मक मंतव्य
- (8) मनोवैज्ञानिक
- (9) साहित्यिक

नारी विषयक - डॉ. तिवारी जी की 'विकास' लघुकथा नारी के शैक्षिक और सांस्कृतिक उन्नयन की बात कहती है - 'पकड़-1' लघुकथा में पुरुष की बीमार मानसिकता और औरत की तीखी परख दृष्टि का वर्णन है। 'प्रदर्शन' लघुकथा में स्त्री के मिथ्या प्रदर्शन, अव्यावहारिक और अकर्मण्य बोध का चित्रण है। 'एक्टर' लघुकथा में स्त्री की वेदना और सहनशीलता का वर्णन है - इसी तरह 'अंतराल' लघुकथा में जीवन यथार्थ और अभिनय के बीच गहरे अन्तर और अन्तराल का यथार्थ रूप है। 'समझायश' लघुकथा में नारी चेतना, नारी मुक्ति के आदर्श और यथार्थ का वर्णन है।

राजनीतिक - डॉ. संतोष कुमार तिवारी ने 'हश्र' लघुकथा में राजनेताओं की चाटुकारिता का स्पष्ट वर्णन किया है - "एक विधायक की कुतिया ने पाँच पिल्ले दिये। उनमें से चार को विभिन्न उच्च श्रेणी अधिकारी अपने घर ले गए। वे जब भी उन कुत्तों को मांस का टुकड़ा देते या दूध-ब्रेड आदि खिलाते, उन्हें लगता जैसे वे विधायक महोदय की ही सेवा कर रहे हैं। जब विधायक महोदय उनके घर आते तो उन्हें दिखा-दिखा कर कुत्तों पर प्यार भरा हाथ फेरा जाता, दूध की जगह मलाई खिलाई जाती। वे उन कुत्तों को अक्सर 'जागिंग' के लिए ले जाते और महसूस करते कि कोई विशिष्ट प्रतिनिधि उनके साथ है। यदि कुत्ता किसी को काट लेता तो वे कहते - 'यह तो विधायक का कुत्ता है, तुम्हारे सामने दुम थोड़े ही हिलाएगा, वह तो काटेगा ही।' "

संबंधित अधिकारी कुत्ते पर किये गये खर्च को 'इनवेस्टमेंट' मानते क्योंकि विधायक की कृपा से ही वे एक स्थान पर लगभग पन्द्रह वर्षों से स्थायी वाशिंदा बन गये। सुंदर मकान बनवा लिया। जब भी कोई व्यक्ति विधायक से कहता - 'आपको कुत्ते पालने का बड़ा शौक है' वे हँसकर उत्तर देते - 'कुछ तो वास्तव में मैंने पाले थे और कुछ उच्च श्रेणी के अपने-अपने दुम हिलाने लगे हैं।' विधायक के एक मुँह लगे दोस्त ने कहा - 'आज की राजनीति में कतिपय अधिकारियों और बुद्धिजीवियों का यही श्रम होता है।' "

‘समानधर्मा’ लघुकथा में राजनीतिज्ञों का संस्कृति पर प्रहार कर वर्णन और भ्रष्ट आचरण का चित्र है। ‘राजनीतिक संवेदना’ लघुकथा में राजनेताओं की श्मशान घाट की राजनीति पर मर्मांतक चोट है। ‘वाटर प्रूफ’ लघुकथा में चुनावी हथकण्डों का उदाहरण है।

‘प्रतिबद्धता’ लघुकथा में सत्ता की अत्याचारिता पर प्रहार करता है – “विपक्ष के एक नेता ने शहर के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति से शिकायती लहजे में कहा – “सरकार ने एक गरीब आदमी की जमीन हड़प ली। उसे नीलाम करा दिया और बहुत थोड़ी सी राशि उसे मुआवजे की दी।” दूसरे व्यक्ति ने सहानुभूति के स्वर में कहा – ‘गरीबी बहुत बड़ा अभिशाप है। सत्ता-व्यवस्था कुछ देखना ही नहीं चाहती।’ नेता ने पुनः बयान जारी रखा – ‘इतिफाक से यदि वह मर गया तो मैं प्रदर्शन करूँगा, जुलूस निकालूँगा, शहर बंद करूँगा। शासन की ईंट से ईंट बजा दूँगा। कलेक्टर तथा एस.पी. को लेने के देने पड़ जायेंगे।’ उनके आवेश मेरे शब्दों के मूलभाव को इस बार लोगों ने ताड़ लिया। एक ने दो-टूक लहजे में तीखा व्यंग्य किया – ‘आपको जमीन दिलाकर उसे सुखी बनाना है या उसके मरने की कामना करते हुए बड़े जुलूस की तैयारी करना है।’ दूसरे ने नहले पर दहला जमाया – “चुनावनजदीक हैं। इस बार ये भी उम्मीदवार होंगे। उस गरीब की जमीन के बहाने अपनी जमीन तैयार कर रहे हैं। राजनीतिक रोटी सेंकना इन राजनेताओं का धर्म है। यह ओढ़ी हुई प्रतिबद्धता तो महज दिखावा है।”

नेताजी यह सुनते ही उखड़ गये। जाते-जाते बस इतना ही बोले – ‘आप लोग भी इस अत्याचारी सत्तापक्ष के साथ हैं।’ इसी तरह डॉ. तिवारी जी ने ‘स्कोप’ लघुकथा में नेताओं और पुलिस की मिली भगत की स्थिति को दर्शाया है एवं ‘अजातशत्रु’ लघुकथा में राजनीतिज्ञों की दृष्टि का कपटपूर्ण वर्णन है।

साहित्यिक – डॉ. संतोष कुमार तिवारी के ‘तर्पण’ लघुकथा में साहित्य और साहित्यकार की स्थिति का वर्णन करते हैं। उनकी ‘पुनर्विचार’ लघुकथा कला और जीवन के यथार्थ समन्वय पर पुनर्विचार करती है – “पिता ने अपने युवा पुत्र से कहा – ‘तुम्हारा मन हमेशा नाटकों के मंचन में लगा रहता है। आखिर यह अभिनय कब तक करते रहोगे? तुम्हें कोई अच्छी नौकरी तलाशना चाहिए।’ लड़के ने जवाब दिया – ‘पिताजी ! मैं आगे चलकर नाट्य-निर्देशक बनूँगा। कला की साधना ही मेरा क्षेत्र है। इसके लिए मैं हर कीमत चुकाने तैयार हूँ।’

पिता ने एक गंभीर बुजुर्ग की तरह समझाया – ‘कला की साधना उच्चतर मूल्यों का प्रतीक है। वह मनुष्य की संवेदनशीलता को बरकरार रखने की एक सार्थक पहल है, किन्तु वास्तविक जिन्दगी के रंगमंच पर कोई अभिनय या रिहर्सल ऐसी नहीं होना चाहिए जो हमें जन सामान्य के बीच हमेशा के लिए नीचे गिरा दें।’ लड़के ने बीच में रोककर कहा – ‘आपका आशय समझा नहीं, पहलियाँ मत बुझाइये।’ पिता ने उसी लहजे में संकेत दिया – ‘कला की ऊँचाइयों को छू लेने में वर्षों लग जाते हैं लेकिन किसी को वासना की अग्नि में या क्रोध की अग्नि में जाने के लिए चंद लम्हें काफी होते हैं। घटनाएँ समाने हैं।’ इतना सुनकर लड़के ने कला और जीवन के वास्तविक तालमेल पर पुनर्विचार करना जरूरी समझा।”

‘ईमानदारी’ लघुकथा लखेक और सम्पादक की निष्ठा पर व्यंग्य है। लघुकथा ‘छुटकारा’ शोध की स्थिति और गाइड की मनोदशा पर व्यंग्य है – “एक रिसर्च स्कालर ने मुझे बताया कि उसके गाइड ने अब तक तीन वर्षों में एक हजार रुपये का नाशता कर लिया है और अध्याय एक भी नहीं लिखा गया। उसने निराश होकर विश्वविद्यालय के अध्यक्ष से मिलकर विषय में किञ्चित्परिवर्तन करते हुए एक नया गाइड तलाश लिया।

शोध-छात्र ने महसूस किया कि पुराने गाइड की बड़ी तौहीन हुई है क्योंकि उपर्युक्त परिवर्तन से उनकी अक्षमता सिद्ध होती है। उसने डरते-डरते एक दिन घर जाकर पुराने गाइड को उक्त परिवर्तन की सूचना दी। वे बोले – “आपने बहुत अनछा किया क्योंकि मुझे समय ही नहीं मिलता। मैं कॉलेज से किताबें निकाल दूँगा। आओ थोड़ा बस स्टैण्ड तक चलें वहीं चाय-नाश्ता कर लेंगे।”

उन्होंने जी खोलकर दस रुपये का नाश्ता किया और तम्बाखू के दो पान कागज में लपेट लिए। छात्र तुरन्त भाग खड़ा हुआ वरना वे बच्चों के लिए भी मिष्ठान बँधवा लेते। दरअसल गाइड और प्रेतछाया में कोई अन्तर नहीं रह गया, वह रास्ते भर सोचता रहा।”

‘सोच समझ’ लघुकथा में सोच के स्तरीकरण पर व्यंग्य है। लघुकथा ‘ठिठोली’ में कार्यक्रम आयोजन की गरिमा और संयोजकत्व पर व्यंग्य है। ‘साहित्य प्रेम’ लघुकथा साहित्यिक गोष्ठी की बहुउद्देश्यीय दृष्टि पर तीखा प्रहार है। ‘लेखक’ लघुकथा में लेखक के व्यावसायीकरण की सत्यता का चित्रण है। ‘साहित्य का कटपीस’ लघुकथा साहित्य की यथार्थ दयनीय स्थिति का चित्र है – “नगर के एक व्यापारी की सामाजिकता, सांस्कृतिक चेतना और उनका साहित्य-प्रेम बहुत अच्छे संदर्भों में जाना जाता है। वे कर्मठ समाज-सेवी हैं, लोगों के सुख-दुःख में शरीक होते हैं और अपनी जिंदादिली तथा हाजिर जवाबी से सबको मोह लेते हैं। मैं भी उनके इन गुणों का कायल हूँ। एक दिन वे मुझसे साहित्य के बारे में चर्चा कर रहे थे – वाह! यशपाल का ‘झूठा-सच’ लाजवाब उपन्यास है ? कई पीढ़ियाँ एक साथ आमने-सामने आई हैं ? ‘दिव्या’ भी पढ़ा होगा आपने। वह तो अद्वितीय ऐतिहासिक उपन्यास है।’ इतने में टूट आया – “क्यों ‘पोस्टमैन’ के कितने पीपे भिजवा दें ?” सनफ्लावर के पच्चीस पीपे पहुँच गये न ?” वे अपनी तुरन्त-बुद्धि का परिचय देते हुए जोड़-तोड़ करके उत्तर देते। उन्होंने फिर मेरी तरफ मुखातिब होकर कहा – “कल कवि-सम्मेलन सुना, नीरज के गीत चाहे श्रृंगार के हों या दार्शनिक धरातल के – क्या बुलंदी पर हैं कि बस सुनते ही रहो।” इतने में फोन आया – “फल्ली का तेल क्या भाव है ? डालडा किस रेट पर और कितने पीपे तुरन्त भिजवा सकते हो।” उन्होंने फोन पर ही ग्राहक को जल्दी पटा लिया। इसके बाद उन्होंने फिर ईसुरी की फागों का जिक्र छोड़ा और बुंदेली साहित्य की महत्त्व पर कुछ वाक्य कहे। इतने में एक व्यक्ति पर्ची लेकर आया। उन्होंने रुपये गिने और मुनीम को लिखने का आदेश दिया। चाय और पान ले आने के लिए नौकर भेजा और फिर शुरू हो गये – “परसाई तो व्यंग्य सम्राट हैं। शरद जोशी और नरेन्द्र कोहली में वो बात कहाँ ? प्रतिबद्ध लेखन की बात ही कुछ और है। उसी समय एक स्कूल का लिपिक आया और वे अध्यक्ष के नाते शिक्षकों की वेतन-राशि पर हस्ताक्षर करने लगे। बैंक का चपरासी आया और वे मीटिंग की सूचना पर हस्ताक्षर करने लगे। शायद अब उन्होंने काफी चर्चा कर ली थी, साहित्य की विविध विधाओं पर, अतः वे पूछने लगे – “अब आजकल आप कौन-सी किताब लिख रहे हैं ? समीक्षा छोड़िए, गरिष्ठ होती है, कुछ हल्का-फुल्का लिखिए ताकि हम सब पढ़ सकें।” इतने में हाथठेले वाला आया और वे पैसे चुकाने लगे। फोन, बही-खाता, तेल का भाव, माल की लदान, संस्थाओं का संचालन, पैसों का तकाजा, मुनीम का लेखा-जोखा, मित्रों की आवभगत, नेतागिरी और बीच-बीच में साहित्य पर स्फुट चर्चा – कुल मिलाकर एक घंटे में मुझे उस व्यापारी की साहित्यिकता ने अभिभूत कर दिया। मालूम नहीं, ये तेल है या कि तेल की धार ! साहित्य का प्रेम है या साहित्य का सेंटीमीटर कटपीस !”

लघु कथाओं में युगबोध और जीवन दृष्टि: डॉ. संतोष कुमार तिवारी जी की लघुकथाओं में घटनाओं एवं स्थितियों का आकलन नहीं है वरन् उनकी लघुकथाओं में विचारों का अंकन है। 'कामायनी' में जिस प्रकार प्रसाद जी ने कहा था - "बन जाते सिद्धान्त प्रथम फिर पुष्टि हुआ करती है।" ठीक इसी के अनुरूप डॉ. तिवारी जी की लघुकथाओं में यह बात देखने को मिलती है। उन्होंने अपने जीवन में अनुभवों से जो कुछ सिद्धान्त अर्जित किये हैं उसी को वे अपनी लघुकथाओं में अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। डॉ. तिवारी जी की अधिकांश लघुकथाएँ पात्रों के साथ घटती हैं और संवाद भी उनके बीच चलते हैं। उनके लघुकथाओं के अधिकांश पात्र बौद्धिक वर्ग के हैं। साहित्यकार, शोध निर्देशक, शोध छात्र, विधायक, उच्च श्रेणी के अधिकारी, महाविद्यालय के प्राचार्य, प्राध्यापक, शिशु मंदिर के आचार्य, जिलाधीश, वकील, लेखक, राष्ट्रपति पुरस्कार विजेता शिक्षक आदि। निस्संदेह लेखक ने अपनी लघुकथाओं में उन्हीं को घटनाओं की बागडोर सौंपी है जो घटनाओं को नियंत्रित कर उन्हें उन निष्कर्षों तक ले जा सकें। जो निष्कर्ष लेखक को व्याकुल कर रहे हैं।

आज के तथाकथित बौद्धिक वर्ग के मूल्यों की जो दुरंगापन है, आचार और व्यवहार में जो फांक है, कथनी और करनी में जो भेद है वह डॉ. संतोष कुमार तिवारी की दृष्टि से बच नहीं पाता। वास्तव में डॉ. संतोष तिवारी की लघुकथाएँ हमारे बौद्धिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में व्याप्त प्रदूषण को उद्घाटित करने का संकल्प लेकर चलती हैं।

जीवन का यथार्थ, मानवीय दृष्टि, सामयिक, राजनीतिक शैक्षिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक आदि पक्षों पर वे पूर्ण परिपक्वस्था में अपना चिन्तन प्रस्तुत करते हैं। वर्तमान की सार्वजनिक विवशता और रोषमय जीवन शैली मुखरित हुई है। उनकी लघुकथा व्यंग्य के ही इर्द-गिर्द घूमती है। वरन् यह उनके व्यंग्य का एक आवश्यक अंश लेकर प्रस्तुत होती है। उनकी भाषा और शैली विषय आधारित है, जिसमें अनुभव और अनुभूति का स्थान अधिक है। वे समय के साथ विद्रूपित होते जीवन सत्य का आंशिक चित्रण करती हैं। मानवीय जीवन और परिवेश के समग्र घटकों को अपनी आवेग शैली से आक्रोश और आघात के साथ प्रस्तुत करते हुए वे समकालीन परिप्रेक्ष्य का सार्थक निरूपण करते हैं। जीवन की भौतिकवादी दृष्टि से जीवन क्षेत्रों की शैली परिवर्तित होती है, मानवीयता के स्थान पर यान्त्रिकी भाव बोध पनपा है, मानव की दृष्टि वाणिज्य और व्यापार के मूल्यों पर टिकी है, संबंधों में स्वार्थ के तन्तु अधिक हैं। अतः डॉ. तिवारी लघुकथाएँ समय के प्रासंगिक धरातलों को सार्थक अभिव्यक्ति देती हैं।

मानव की पीड़ित पक्ष को, वेदना की गाथा को अपने विषय और शैली गाम्भीर्य के साथ प्रस्तुत करने में लघुकथा समक्ष है। लघुकथा अपने स्वतंत्र अस्तित्व के साथ प्रगति पथ पर बढ़ रही हैं उनका संक्षिप्त स्वरूप विचार और भाव प्रधानता के साथ मर्म को आन्दोलित करने की सामर्थ्य रखता है।

'पुनर्विचार' की लघुकथाएँ सत्य का निर्विवाद रूप है वे अपने समकालीन व सामाजिक दायित्व का निर्वहन करने में समर्पित और उपयुक्त विधान लिए हैं। अपनी संक्षिप्तता, सांकेतिकता और मर्म भेदी विचार दृष्टि से वे अस्त-व्यस्त जीवन की विभिन्न रेखाओं का प्रौढ़ अंकन करके मानवीय पक्ष में निहित अभीष्ट की सिद्धि का साधन है। जीवन का स्थितियों पर कटाक्ष करती ये रचनाएँ सृजनशक्ति की जीवंत कण बंध है जिनमें विराट मानव का सत्य और यथार्थ परिदृश्य समेटकर समा गया है। लघुकथा गद्य का एक संक्षिप्त रचनात्मक जीवन बोध है। जो विविध आयामी, बहुतलीय और जिजीविषा सम्पन्न है। डॉ. तिवारी की लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्ति व्यंग्य की पैनी धार से अर्थग्राहिणी क्षमता साथ निज आक्रोश को गतिशील और प्रसारित भी करती है। उनमें एक प्रौढ़ चिन्तनकी क्रांति और परिवर्तन की गतिज ऊर्जा भी हैं।

लघुकथाओं के बारे में तीन बातें और कही जाती हैं - काव्य में जो मुक्तक का स्वरूप है वही कथासाहित्य में लघुकथा का। दूसरी बात यह है कि रचनाकार अपनी लघुकथा में अदृश्य रहता है, वहाँ सीधा कथ्य है और पाठक। तीसरी बात यह है कि लघुकथाओं की प्रकृति और उसकी तासीर को विवेचित-विश्लेषित करने वाली समीक्षा की सतर्क निगाह दिखलाई नहीं देती इसलिए निश्चित मानदंडों का निर्धारण नहीं हुआ है।

डॉ. तिवारी का लघुकथा संग्रह 'पुनर्विचार' व्यंग्य की तीखी शैली लेकर स्थापित हुआ है। उनके व्यंग्य की समानधर्मी मारक क्षमता इन लघुकथाओं में विद्यमान है। उनके शैली विचार का केन्द्रीयकरण करती हुई यथार्थ के निकट ले जाकर गहन अनुभूति करवाती है। जिसमें हास्य कम आक्रोश का स्वर अधिक है। उनकी इसी विशिष्टता को ध्यान में रखते हुए डॉ. प्रेमशंकर ने उनकी तुलना खलीज जिब्रान से की है। उनकी लघुकथाएँ व्यंग्य लेखन की ही एक शैली है। उन्हें व्यंग्य लघुकथाएँ भी कहा जा सकता है। उनका व्यंग्य जिस मारक क्षमता के साथ मानसिक विद्रूपण पर प्रहार करता है वही प्रेरणा उन्हें लघु की व्यंग्य दृष्टि तक ले गई। उनकी अनुभूति प्रतीक और बिम्ब के साथ उस विकृति को उजागर करती है। उनकी आरम्भिक शैली व्यंग्य ही है जो उनके विषय का अंग भी है। वही आगे चलकर लघुकथा में आ गई है।

वस्तुतः डॉ. तिवारी जी रचना में भाषायी कौशल पर अधिक ध्यान देते हैं। आज अवमूल्यित हो रही भाषा से वे अत्यन्त क्षुब्ध हैं। इस संदर्भ में उनका मत है कि - "आज का साहित्य जिस भाषा में लिखा जा रहा है वह जनभाषा नहीं है। रचना जनवाद का जामा पहनकर जरूर आती है पर लोकभाषा में नहीं। अशिक्षित के बीच यह भाषायी दीवार दिन प्रतिदिन और बड़ी होती जा रही है क्या इसी बूते पर हिन्दुस्तान का सामायिक ढाँचा बदल जायेगा ? यह तथ्य नजर अंदाज नहीं किया जा सकता कि जो रचना जनभाषा में मानव हृदय की बात कहती है उसका सामाजिक प्रभाव अक्षुण्ण होता है कबीर और तुलसी इसके प्रमाण हैं। तुलसी का सरकारीकरण बाद में हुआ है, जनपदीकरण पहले। वे पाठ्यक्रमों में बहुत बाद में पंजीकृत हुये हैं, किन्तु जनमानस पर सदियों से छाये रहे हैं। वे शोधकर्ताओं तक निरंतर पठन-पाठन के विषय बने हुए हैं और अशिक्षित जनता के बीच भी उतने ही समादृत हैं।"

अतः इस कथन से डॉ. तिवारी का अभिमत स्पष्ट हो जाता है कि - "वे शब्दों के संस्कारशील, विवेकशील, विश्वासी, अनुरागी शब्द विन्यास पर जोर देते हैं, जो शब्द प्रयोग गतिशील अर्थों की छटाओं को वहन करते हुए प्रेम और मैत्रीपूर्ण वातावरण बनाते हों वे ही प्रज्ञाशिखर की सीढ़ियाँ बनते हैं और शब्दयोग को सार्थकता प्रदान करते हैं।"

संदर्भ

- पुनर्विचार (लघुकथा: एक दृष्टि) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- उत्तरशती के प्रखर समीक्षक डॉ. संतोष कुमार तिवारी – डॉ. अनीता,
- डॉ. संतोष कुमार तिवारी परिदृश्य और दृष्टि अभिनंदन ग्रंथ – डॉ. विनोद कुमार जायसवाल
- एवं डॉ. आनंद प्रकाश
- पुनर्विचार (गर्व-1) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (मूल्य) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (उपदेश) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (प्रतिष्ठा) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (संस्कार) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (अवमूल्यन) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी, पुनर्विचार (समायोजन) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (अंतर-2) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (समीकरण-2) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (एक भूल) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (चयन) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (पछतावा) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (विकास) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (पकड़-1) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (एक्टर) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (पुरस्कार) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (पाठ्यक्रम) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (पदोन्नति) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (हथ्र) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (प्रतिबद्धता) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (स्नेह-वर्तिका) डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (जोत) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (पकड़-2) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (पिता और पत्रकार) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (पुनर्विचार) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (छुटकारा) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (साहित्य का कटपीस) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (संवाद) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी,
- पुनर्विचार (लघुकथा: एक दृष्टि) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी
- पुनर्विचार (लघुकथा: एक दृष्टि) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी
- पुनर्विचार (स्वार्थ) – डॉ. संतोष कुमार तिवारी
- अज्ञेय से अरूण कमल तक भाग-1 – डॉ. संतोष कुमार तिवारी

1818 की ब्रिटिश संधि व बीकानेर रियासत

पार्वती गोदारा

वरिष्ठ शोधार्थी, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

रियासत कालीन बीकानेर राज्य की सैनिक व्यवस्था अन्य राजपूत राज्यों की तरह जागीर पद्धति पर ही आधारित थी संपूर्ण राज्य का 80% भाग जागीरों में बंटा हुआ था राज्य का शासक स्वयं पूरे राज्य का शासन अधिक कुशलता पूर्वक नहीं कर सकता था। इसलिए रियासतकालीन शासकों ने शासन संचालन में सहयोगी सामंतों का सहयोग लिया। इन सामंतों ने शासक को सहयोग करते हुए राज्य के नवनिर्माण में अपना योगदान दिया सहयोगी के रूप में नियुक्त यह सामंत अपने-अपने क्षेत्रों में शक्तिशाली बनते गए। इस कारण शासक और इन सामंतों के बीच एक स्थाई तनाव रहने लगा, ये सामंत अपने अपने अधिकार क्षेत्र में सर्वेसर्वा कहलाने लगे। यद्यपि शासक को अधिपति मानते हुए हर समय सैनिक सहयोग के लिए तैयार रहते थे।

रियासत कालीन बीकानेर राज्य का सामंत वर्ग मुख्य रूप से तीन भागों में बंटा हुआ था। इसमें प्रथम वर्ग, राव बीका के वंशज थे, जो राव बिका की खांप कहलाए। दूसरा सामन्त वर्ग राव बीका के भाई व चाचा के वंशज थे जो राव बीका के साथ उसके सहयोगी बनकर आए थे। तीसरे वे सामंत थे जो बाद में आकर यहां बसे तथा स्थानीय जातियों के मुखिया कहलाए।

राजा रायसिंह के शासनकाल में मुगल प्रभाव के कारण राज्य का शासक वर्ग शक्तिशाली बनता गया और आगे चलकर सामंतों की स्थिति कमजोर होती गई। अब राज्य के शासक इन सामंतों को अपना सहयोगी ने मानकर अपने अधीनस्थ समझने लगे। राजा रायसिंह ने राज्य में पट्टा प्रणाली प्रारंभ कर इसे एक नया रूप प्रदान कर दिया। राज्य के शासकों को प्रारंभ से लेकर अंत तक अपने पड़ोसी राज्यों की विस्तारवादी नीतियों के कारण अनेक आक्रमणों का सामना करना पड़ा। जब मुगल साम्राज्य पतनोन्मुख हुआ तो पड़ोसी राज्यों ने बीकानेर राज्य की कमजोरी का लाभ उठाते हुए राज्य के लिए अनेक समस्याएं खड़ी कीं। जब राज्य के सामंत वर्ग ने भी आंतरिक विद्रोह द्वारा शासकों को परेशान करना प्रारंभ कर दिया तो राज्य के पास मराठों या अंग्रेजों की छत्रछाया में जाने का ही विकल्प रह गया था। मराठों के जलाभाव के कारण बीकानेर क्षेत्र में प्रवेश करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ और बीकानेर राज्य मराठों की लूटमार से बचा रहा। इन सभी विषम परिस्थितियों से विवश होकर महाराजा सूरत सिंह ने अंग्रेजों से संधि करने की सोची।

अंग्रेजों के साथ संधि एवं उसका बीकानेर राज्य पर प्रभाव

1808ई. में काबुल जाते हुए अंग्रेज अधिकारी एलफिंस्टन जब बीकानेर में ठहरा तो महाराजा को अंग्रेजों से मित्रता करने का उचित अवसर मिला। चूँकि उस समय अंग्रेजों के नीति यमुना के पश्चिम की ओर स्थिति इलाकों के राजाओं से सभी प्रकार के संबंध हटा लेने की थी जिसके फलस्वरूप एलफिंस्टन ने महाराजा से मित्रता के चिह्न स्वरूप किले की चाबियां लेने से इनकार दिया।

इसी समय भट्टियों के निरंतर हमलों तथा जागीरदारों के लगातार विद्रोह के कारण राज्य की स्थिति और अधिक खराब हो गई। इसी तरह सिधमुख एवं भूकरका को भी वंश करना पड़ा। तथा चूरु को विद्रोह के कारण तीन बार घेरना पड़ा। अतः महाराजा ने मेहता अबिरचंद को पुनः अंग्रेजों से संधि करने का प्रस्ताव देने हेतु भेजने का विचार किया लेकिन उनके बीमार होने के कारण इस कार्य हेतु काशीनाथ ओझा को सन 1817 में चार्ल्स मेटकॉफ के पास दिल्ली भेजा। 9 मार्च 1818 को बीकानेर राज्य के साथ अंग्रेजों ने संधि की तथा अंग्रेजों की ओर से चार्ल्स टी. मेटकॉफ एवं बीकानेर राज्य की ओर से काशीनाथ ओझा ने इस संधि पर हस्ताक्षर किए।

इस समय अंग्रेज भारतीय राजाओं के केवल बाह्य सम्बन्धों पर पूर्ण नियंत्रण करने को लालायित थे और वे राज्यों के आंतरिक प्रशासन में हस्तक्षेप का कोई अधिकार लेना नहीं चाहते थे। इसी कारण अंग्रेज महाराजा सूरत सिंह द्वारा सन्धि की प्रार्थना को मानने में इतनी जल्दी तैयार हो गए। अतः 21 मार्च 1818 को लार्ड हेस्टिंग्स ने घाघरा नदी के पतरास घाट के निकट डेरे में इस संधि की पुष्टि की तथा पहली बार बीकानेर राज्य एवं अंग्रेज सरकार के मध्य सम्बन्ध स्थापित हुए।

सन्धि की धाराएं

आर्टिकल-1

ओनरेबल कम्पनी तथा महाराजा सूरत सिंह व उनके उत्तराधिकारियों के बीच यह सन्धि लागू मानी जायेगी। इसमें आपसी मित्रता, सदभावना एवं एक-दूसरे के लाभ को अहम माना गया है तथा एक का मित्र दूसरे का मित्र व एक का दुश्मन दूसरे का दुश्मन माना जायेगा।

आर्टिकल-2

ब्रिटिश सरकार का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह बीकानेर राज्य की एवं उसकी सीमाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करें।

आर्टिकल-3

महाराजा सूरत सिंह एवं उनके उत्तराधिकारी ब्रिटिश सरकार के साथ हमेशा सहयोग की भावना दर्शाएंगे एवं प्रभुता स्वीकार करेंगे तथा अन्य किसी राज्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे।

आर्टिकल-4

महाराजा एवं उनके उत्तराधिकारी किसी प्रकार की सन्धि-वार्ता या पहल दूसरे राज्यों के साथ नहीं कर सकते तथा इसके लिए उनको ब्रिटिश हुकूमत को पूर्व जानकारी देनी होगी वह आज्ञा लेनी होगी। हालांकि मित्रवत पत्राचार एवं सहसंबंध जारी रख सकते हैं।

आर्टिकल-5

महाराजा या उनके उत्तराधिकारी किसी संघर्ष की स्थिति में नहीं पड़ेंगे यदि दुर्भाग्यवश ऐसा होता है तो उसके निपटारे हेतु ब्रिटिश सरकार की ही बात माननी होगी।

आर्टिकल-6

बीकानेर राज्य के कुछ व्यक्तियों एवं अराजक तत्वों ने लूटमार एवं डकैती का मार्ग तैयार कर लिया है और कई लोगों का माल लोड कर दोनों पक्षों की शांतिप्रिय प्रजा को कष्ट पहुंचाया है इसलिए अंग्रेजी राज्य की सीमा के अंतर्गत है रहने वाले प्रदा की अब तक लूटी गई सारी संपत्ति दिलाने एवं भविष्य में अपने राज्य के लुटेरों एवं डाकुओं का पूर्णतया दमन करने का महाराजा इकरार करते हैं।

यदि महाराजा उनका दमन करने में समर्थ नहीं हो तो महाराजा के निवेदन पर अंग्रेज सरकार उन्हें सहायता देगी परंतु इस स्थिति में महाराजा को सैनिक कार्रवाई का सारा खर्च देना पड़ेगा। अंग्रेजी सेना का खर्च वहन न करने की दशा में राज्य का कुछ क्षेत्र ब्रिटिश सरकार के पास तब तक रहन पर रहेगा जब तक कि उस खर्च की भरपाई ना हो जाए।

आर्टिकल-7

यदि कोई सामंत, ठाकुर या जागीरदार महाराजा के विरुद्ध विद्रोह करते हैं तो महाराजा की विनती पर ब्रिटिश सरकार उनका दमन करेगी लेकिन इस सैनिक कार्यवाही का खर्च महाराजा को देना होगा अन्यथा कुछ क्षेत्र गिरवी रखना होगा जब तक की उस खर्च की भरपाई ना हो जाये।

आर्टिकल-8

ब्रिटिश सरकार को आवश्यकता पड़ने पर महाराजा बीकानेर अपनी उपलब्ध सैनिक सहायता प्रदान करेंगे।

आर्टिकल-10

ब्रिटिश सरकार चाहती है कि बीकानेर में भटनेर का मार्ग का पूर्ण रूप से सुरक्षित एवं सुगम बनाया जाए ताकि काबुल, खुरासान आदि से व्यापार विनिमय सुगम हो सके। महाराजा स्वयं रुचि लेकर यह सुनिश्चित करें कि व्यापारी वर्ग इन मार्गों में सुरक्षित आवागमन कर सकें इसके अलावा शहदारी कर की दर जो निर्धारित हैं वह बढ़ाई नहीं जायेगी।

आर्टिकल-11

यह संधि जिसमें 11 अनुच्छेद है इस पर मिस्टर सी.टी. मेटकॉफ तथा ओझा काशीनाथ की मुहर व हस्ताक्षर हुए। श्रीमान गवर्नर जनरल तथा राजराजेश्वर महाराजा श्रीमान सूरतसिंह बहादुर की तस्दीक की हुई इसकी नकलें आज की तारीख से इक्कीस दिन में आपस में अदला-बदली की जावेगी। तारीख 9 मार्च 1818 ई. सन (फाल्गुन सुदी 2 वी.स. 1874) को दिल्ली में लिखा गया।

गवर्नर जनरल की छोटी मुहर

(हस्ताक्षर) सी.टी. मेटकोफ (मुहर)

(हस्ताक्षर) ओझा काशीनाथ (मुहर)

(हस्ताक्षर) हेस्टिंग्स (मुहर)

इस अहदनामे की श्रीमान गवर्नर जनरल से घाघरा नदी पर पतरास घाट के निकट के डेरे में तारीख 21 मार्च 1818 ई. को तस्दीक हुई।

हस्ताक्षर जे.एडम

गवर्नर जनरल का सेक्रेटरी

सन्धि का प्रभाव

इस संधि से यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार का बीकानेर के शासकों के साथ संबंध निरंतर मैत्री पारस्परिक, मेल मिलाप एवं हितों की एकता पर आधारित था लेकिन संधि से बीकानेर शासक अधीनता में बंध गया और अंग्रेज सरकार की सर्वोच्चता स्वीकार कर ली।

यह संधि जैसलमेर रियासत को छोड़कर बाकी राजपूताना की अन्य रियासतों से की गई संधियों से केवल एक विशेष बात में अलग थी की बीकानेर के शासकों को अंग्रेज सरकार को कोई कर नहीं चुकाना पड़ा क्योंकि बीकानेर रियासत मराठों को कोई ऐसा कर नहीं दे रहे थे।

संधि के बाद की अवधि में बीकानेर के महाराजा को अंग्रेज अधिकारियों से जो खरीदते मिले उनसे पता चलता है कि संधि ने अधीनता का रूप धारण कर लिया। मेजर जनरल सर डेविड ऑक्टरलोनी ने महाराजा सूरतसिंह को 16 नवम्बर 1820 को कैप्टन कोलविन की मदद के लिए लिखा जो चितरांग नहर का निरीक्षण करने जा रहा था। इसी प्रकार अंग्रेज सरकार ने भटनेर के किलेदार द्वारा बंजर भूमि में गेहूँ बोने पर नाराजगी जताई तथा 7700 रुपये चुकाने

पर जोर दिया। इसी प्रकार भाटी जालिम सिंह द्वारा की गई डकैती की जांच महाराजा बीकानेर को करने के लिए अंग्रेज अधिकारियों ने लिखा। नकली हुडिया जारी करने धन संग्रह की अपराध में अजमेर के सेठ हजारीमल के मुनीम गुलाब दास को बंदी बनाने के लिए सर चार्ल्स इलियट ने महाराजा को खरीता भेजा।

24 जनवरी 1825 को सुरजा डाकू को पकड़ने हेतु बीकानेर भेजी गई अंग्रेजी सेना का खर्चा महाराजा को भरना पड़ा जबकि रियासत द्वारा अंग्रेज सरकार से इस सैनिक सहायता का निवेदन नहीं किया गया था।

इन सब कार्यवाहीयों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अंग्रेजों ने हमेशा यही चाहा कि रियासतों के शासक अधीनता की स्थिति में हो जाए। ऐसी ही स्थिति अंग्रेजी सरकार ने महाराजा रतन सिंह के साथ भी बनाए रखी।

मई 1825 में दिल्ली स्थित ब्रिटिश रेजिडेंट के पत्र के साथ गवर्नर जनरल का भलाई संदेश (खरीता) द्वारा बीकानेर महाराजा को सूचना दी गई थी कि जोधपुर के धोकलसिंह द्वारा एतराजपूर्ण व्यवहार करने के कारण बीकानेर राज्य उससे किसी भी प्रकार का संबंध न रखे। इसके लिए बीकानेर इलाके में धौकल सिंह के प्रवेश पर रोक हेतु महाराजा ने अपनी सरदारों को सावधान किया।

बीकानेर सेना का जैसलमेर अभियान अंग्रेज सरकार द्वारा पसंद नहीं किया गया क्योंकि यह संधि की धारा 5 का उल्लंघन था जिसमें स्पष्ट लिखा था कि देव योग से अगर कोई झगड़ा हो जाता है तभी अंग्रेज सरकार के समक्ष रखा जाए। लेकिन बाद में मध्यस्थता करने को कहा गया एवं अंग्रेजों ने इसे मान्यता प्रदान की। उस समय अंग्रेजों ने बीकानेर राज्य द्वारा संधि की धारा 5 का उल्लंघन सहन करने के कारण अंग्रेज अफसरों की बीकानेर रियासत से संबंध न बिगाड़ने की इच्छा थी, साथ ही उनकी मूल प्रकृति यह थी कि मराठों के बढ़ते हुए प्रभाव एवं पिंडारियों की लूट की प्रकृति को रोका जाए।

जब भावलपुर के खान ने फुलड़ा, बल्लर, मरोठ और मौजगढ़ पर अधिकार कर लिया तो बीकानेर महाराजा रतन सिंह ने अंग्रेजों से खान के विरुद्ध सहायता मांगते हुए उक्त भूमि पर राज्य का दावा किया लेकिन सर एडवर्ड कॉल ब्रुक ने अपने 16 अप्रैल के खरीते द्वारा महाराजा बीकानेर के दावे को अस्वीकृत कर दिया जिसके कारण उक्त इलाका सिंध में ही रहा। सिंध के उक्त इलाकों में महाराजा द्वारा हस्तक्षेप न करने को कहा गया।

बीकानेर रियासत के एक विद्रोही सरदार के मामले में अंग्रेज रेजिडेंट द्वारा नसीराबाद से सेना भेजने की कार्रवाई का अंग्रेज सरकार ने विरोध किया तथा संधि की धारा 6 एवं 7 का उल्लंघन बताया है। अतः अंग्रेज सरकार ने अजमेर रेजिडेंट को सावधान करते हुए लिखा कि सरकार के स्पष्ट आदेश के बिना किसी भी रियासत की आंतरिक गड़बड़ी का दमन करने के लिए सेना न भेजी जाए।

इससे बीकानेर दरबार के प्रति अंग्रेज सरकार के दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन का पता चलता है। अंग्रेजों से बीकानेर रियासत द्वारा की गई सन्धि का उद्देश्य अपने विद्रोही ठाकुरों के विरुद्ध अंग्रेजी सहायता लेना था। मुख्यतः इसी लाभ की भावना ने रियासत को अंग्रेजों के साथ मेल करने के लिए प्रेरित किया।

इस प्रकार सन्धि की धाराओं का विवेचन करने पर अंग्रेज सरकार का भारतीय रियासतों के प्रति दृष्टिकोण ब्रिटिश सुरक्षा, ब्रिटिश उन्नति एवं ब्रिटिश साम्राज्य का रहा है। प्रारम्भ में ब्रिटिश सरकार ने हस्तक्षेप न करने का भाव दिखाते हुए भी विजयी नीति का अनुसरण किया जिसके तहत भारतीय रियासतों से समानता एवं स्वतंत्रता के आधार पर समझौते किये गए परन्तु इसका मूल उद्देश्य अपरिवर्तित ही रहा।

एल्फिंस्टन के अनुसार भारतीय रियासतों को इसलिए सहन करना पड़ा क्योंकि वे अंग्रेजों के लिए शरणस्थली थी जिनकी षडयंत्र, लूटमार एवं युद्ध की प्रकृति उन्हें ब्रिटिश भारत में शांतिपूर्ण नागरिकों के रूप में नहीं रहने देती थी। आरंभ में इनका लक्ष्य अपने समुद्रिक व्यापार के हितों की सुरक्षा करना था और बाद में भारत में अपने प्रतिद्वंद्वियों के प्रभाव तथा शक्ति का मुकाबला करना था। उनकी यह नीति भारत में अंग्रेजों से प्रतिस्पर्धा रखने वाले यूरोपियन तत्वों जैसे डच, पुर्तगाली एवं फ्रांसीसी के विरुद्ध अपने बचाव के लिए थी।

सन 1813 से 1857 के बीच अंग्रेजों ने हस्तक्षेप न करने की नीति पूर्णता छोड़ दी एवं रियासतों के प्रति अधीनता की नीति का अनुसरण किया। इस नीति के अनुसार ब्रिटिश सत्ता के लिए खतरा बनने वाले भारतीय शासकों को इतने दुर्बल किए जाने थे कि उन्हें अपनी सुरक्षा के लिए ब्रिटिश सहायता पर निर्भर होना पड़े। भारतीय राजाओं के अनेक निजी मामलों में हस्तक्षेप हेतु नियुक्त ब्रिटिश रेजिडेंटों ने तानाशाहों के अधिकार प्राप्त कर लिए।

इस प्रकार सन 1818 की संधि ब्रिटिश सरकार द्वारा केवल अपने व्यापार, साम्राज्य एवं अन्य हितों को पूर्ण करने हेतु की गई थी। इसमें पारस्परिक मित्रता, मेल तथा ऐक्य की भावना कहीं भी नहीं दिखती है।

बीकानेर महाराजा सरदार सिंह की 1857 के विद्रोह में भूमिका

राजस्थान का अतीत बड़ा ही समृद्ध रहा है किंतु इसके इतिहास लेखन की परंपरा अधिक समृद्ध नहीं कही जा सकती हैं। व्यापक शोध के अभाव में यहां का आधुनिक इतिहास अभी भी अनेक अंशों से पूर्ण नहीं है।

सन 1857 की क्रांति जैसी महत्वपूर्ण घटना के विषय में आज भी स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता है कि यह क्रांति मात्र सैनिक विद्रोह था या भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि जिस समय सन 1857 के विद्रोह की लपटें भारत के विभिन्न भागों से उठ रही थी, ठीक उसी समय बीकानेर की उत्तरी सीमा पर सिरसा, हिसार व हांसी जिलों पर विद्रोहियों के कब्जा हो चुका था। इस समय राजपूताने की रियासतों में बीकानेर ही एक ऐसी रियासत थी जिसके राजा (महाराजा सरदारसिंह) ने व्यक्तिगत रूप से विद्रोह को दबाने में भाग लिया। इस अवसर पर बीकानेर की सेना का विद्रोहियों से छः बार मुकाबला हुआ और प्रत्येक बार विद्रोही पराजित हुए। इसके उपलक्ष्य में गवर्नर जनरल के एजेंट ने जयपुर सहित राजपूताने के सभी राजाओं से बीकानेर महाराजा सरदारसिंह की स्वामिभक्ति एवं सेवायें श्रेष्ठ मानी। अंग्रेज एजेंट के मतानुसार उक्त सेवाओं के कारण बीकानेर महाराजा को उसी श्रेणी में रखना उचित था जिसमें रीवा एवं चरखारी के महाराजा थे।

महाराजा सरदारसिंह की इसी स्वामिभक्ति के कारण उन्हें खिल्लत व जागीर के रूप में हिसार जिले के 45 गाँव जिनका राजस्व 14291/- रु. थे, दिए गये। इसके अलावा महारानी विक्टोरिया द्वारा महाराजा की प्रशंसा का संदेश चार्ल्स वुड ने अपने 15 दिसंबर 1859 के पत्र के द्वारा भिजवाया।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महाराजा सरदार सिंह की सहानुभूति अंग्रेज सरकार के प्रति थी। इसका कारण महाराजा का अपना व्यक्तिगत स्वार्थ एवं अंग्रेजों की सर्वोच्चता कब है दोनों ही हो सकते हैं परंतु कुछ ऐसे तथ्य भी हैं जिनसे यह शंका होना स्वाभाविक है कि क्या महाराजा सरदार जी हैं का कोई आंतरिक गठबंधन विद्रोही नेताओं के साथ भी था इस तथ्य की जानकारी राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली में मिले पत्र से मिलती है जिसे राजपूताने के गवर्नर जनरल के एजेंट सैंड पी लॉरेंस ने इंग्लैंड स्थित भारत सचिव को लिखा था।

इस पत्र में लिखा है कि बीकानेर महाराजा सरदार सिंह ने क्रांति के प्रमुख सेनानी नाना साहिब को आवश्यक सहायता का आश्वासन दिया और पहले भी महाराजा द्वारा नाना साहिब की मदद की गई थी इसके साथ ही लिखा है की क्रांति का दूसरा प्रमुख नेता तात्या टोपे भी उस समय बीकानेर रियासत में ही था जिसकी महाराजा ने 10 सवार देकर मदद की।

उक्त पत्र का महत्व इसलिए भी है कि यह खबर बीकानेरी स्थित अंग्रेज रेजिडेंट ने अजमेर स्थित राजपूताने के गवर्नर जनरल के एजेंट लॉरेंस को भेजी थी।

अंग्रेज सरकार ने महाराजा सरदार सिंह से इस संबंध में जवाब तलब किया था एवं महाराज ने इस खबर का खंडन करते हुए बीकानेर स्थित रेजिडेंट को बीकानेर से तुरंत बदलने की मांग की परंतु महाराजा के खंडन मात्र से यह मानना उचित प्रतीत नहीं होता कि उनका संबंध विद्रोहियों के साथ किसी भी रूप में नहीं था इसकी पुष्टि एक अन्य तथ्य से भी होती है जिसके द्वारा महाराजा की सहानुभूति विद्रोहियों के प्रति प्रकट होती है सन 18 सो 57 की क्रांति के समय में ही जब विद्रोही नेता तात्या टोपे अपने अंतिम दिनों में नीमकाथाना होते हुए सीकर पहुंचा था जाओ उसे हार का सामना करना पड़ा उस समय तात्या टोपे के 600 साथियों ने बीकानेर रियासत में आकर शरण ली।

अंग्रेज सरकार ने बीकानेर महाराजा से उन्हें प्राप्त करने की कोशिश की किंतु महाराजा ने उन्हें अंग्रेजों को कंपनी की बजाय अपने प्रभाव से क्षमा प्रदान करवा दी। परन्तु इसमें यह शर्त अवश्य रखी गई कि यदि बाद में उनमें से किसी पर हत्या का आरोप लगता है तो आवश्यकतानुसार उसे सजा के लिए प्रस्तुत किया जायेगा।

इस तथ्य के संबंध में महत्वपूर्ण बात यह है कि बीकानेर महाराजा की अंग्रेजों के प्रति स्वामी भक्ति किसी से छिपी नहीं थी तो यह विद्रोही अपने जीवन को जोखिम में डालने के लिए बीकानेर रियासत में ही क्यों आए और जब वे बीकानेर आ गई तो महाराजा द्वारा इन विद्रोहियों को अपने यहां शरण देना जो कि अंग्रेज सरकार की दृष्टि से अपराध माना जाता था यह सभी प्रश्न ऐसे हैं जिससे उपरोक्त संघ का को बल मिलता है इसके अतिरिक्त महाराजा सरदार सिंह ने हंसी हिसार में व्यक्तिगत रूप से भाग लेकर 18 सो 57 के विद्रोह को दबाया था इस कारण से महाराजा की अंग्रेजों के प्रति स्वामी भक्ति को बढ़ा चढ़ा कर बताया जाता रहा है किंतु इसमें भी उनकी अधिक मनसा यह रही होगी कि कहीं विद्रोह की यह आग अपनी रियासत में न फैल जायेअतः उन्होंने इसे अपनी सीमा पर ही दबा देना श्रेष्ठ माना। इन सभी तथ्यों से स्पष्ट है कि महाराजा की भूमिका शोध अध्ययताओं के लिये रहस्यमय बन गई है, जिस पर ओर शोध की आवश्यकता प्रतीत होती है।

सन्दर्भ

1. दशरथ शर्मा: राजपूताना में मानसबदारी प्रथा, शोध पत्र, राजस्थान हिस्ट्री कॉंग्रेस, बीकानेर सेशन, 1971
2. कर्नल टोड : एनल्स एण्ड एंटीक्विटीज ऑफ राजपूताना, भाग-2
3. अर्सकिन: गजेटियर ऑफ राजपूताना भाग-3, पृष्ठ - 312-24
4. दयालदास की ख्यात: भाग-2, पृष्ठ 101
5. पाऊलेट- गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट
6. लार्ड हेस्टिंग्स का एक दिसंबर सन 1815 का स्मरणार्थ लेख
7. एचिसन: ट्रीटीज एंज्मेंट्स एंड सनदज
8. ली वारनर: नेटिव स्टेट्स ऑफ इंडिया
9. थोमसन - दी मेकिंग ऑफ दी इंडियन प्रिंसेस
10. के. एन. चोपड़ा- लॉ रिलेटिंग टू दी प्रोटेक्सन ऑफ दी एड्मिनिस्ट्रेशन ऑफ स्टेट्स इन इंडिया

आधुनिक चित्रकला में कोलाज चित्रण

डा० ईश्वर चन्द गुप्ता

एसोसियेट प्रोफेसर, धर्म समाज कालेज, अलीगढ़

सारांश:-

आधुनिक चित्रकला में 20वीं सदी का प्रारम्भ एक रचनात्मक क्रान्ति का उदय हुआ। इस समय कला बहुआयामी हो गयी और कलाकार अभिव्यक्ति के लिए नित नये प्रयोग करने लगा इन प्रयोगों के फलस्वरूप 'कोलाज चित्र विधा' एक समर्थ माध्यम के रूप में उभर कर आया, जिसे समकालीन कलाकारों ने अपनाया। कलाकार अपने प्रयोगों से उन्हें जो माध्यम सही लगता है वे उसे अपनाते जाते हैं, कला जगत में नवीन परिवर्तन के रूप में कोलाज का प्रयोग हुआ।

आधुनिक कला में कोलाज माध्यम ने विश्वभर में क्रान्ति ला दी और कई आधुनिक भारतीय चित्रकारों ने कोलाज तत्व से प्रभावित होकर अपने चित्रों में अभिव्यक्त किया है।



मुख्य शब्द:- कोलाज चित्र विधा, आधुनिक समकालीन कला।

प्रस्तावना:- कोलाज शब्द की उत्पत्ति फ्रांसीसी भाषा “कोलर शब्द” से हुई है। क्योंकि कोलाज का इतिहास फ्रांस से जुड़ा हुआ है। कला जगत में कोलाज ऐसा परिभाषित शब्द है जिसे प्रत्यक्ष वस्तुओं को चित्र भूमि पर चिपकाकर बनायी कलाकृति जिसमें विविध चीजें जैसे कागज, मैगजीन, फोटोग्राफ, सिरैमिक टाइल आदि वस्तुओं से नवीन कृति का निर्माण करना कोलाज कला कहलाता है।

कोलाज कला की तकनीक अति प्राचीन है, लेकिन इस तकनीक ने 20वीं शताब्दी की शुरुआत में नवीनता इस कला ने अपनी पहचान बनायी। कोलाज का इतिहास देखा जाये तो हमें पता चलता है कि प्रसिद्ध धनवादी चित्रकार जार्ज ब्राक और पाब्लो पिकासो ने 20वीं शताब्दी में ही कोलाज का शुरुआत कर दी थी कुछ समय बाद विभिन्न कलाकारों ने अपनी कल्पनाओं के आधार पर इस कला को उच्च स्थान पर लेकर आये, पिकासो और ब्राक ने 1912 में उन्होंने चित्र फलकों पर असली वस्तुओं के टुकड़े (FRAGMENTS OF REAL OBJECT) जैसे अखबार की कटिंग लेबिल, कागज के डिब्बों के टुकड़े, सुतली, तार आदि चिपकाने लगे जिन्हें पेपीकोली Papier Colle या कोलाज Collage के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार उन्होंने संश्लेषात्मक धनवाद की शुरुआत की कोलाज आधुनिक कला का एक विशिष्ट बन गया।²

चित्रों के संयोजन में अनेकों प्रकार के बाहरी वस्तुओं के छोटे-छोटे टुकड़े लाकर एक लयवद् कर दिये जाने लगे। स्टिल लाइफ के चित्रों में फल की तश्तरी, खाने का मेज अखबार, बाजा आदि वस्तुओं को चिपकाकर Collage तैयार करने शुरू किये।

यूरोप के धनवादी कलाकारों ने अपनी शैली में नवीनता लाने के लिए अखबार के टुकड़े को कैनवास पर चिपकाकर चित्र तैयार किये और अनेक कलाकारों का इस शैली में मार्ग प्रशस्त करके अपनी कलाकृतियों को सृजन का आधार बनाया और नवीन रूप में प्रस्तुत किये।

आधुनिक कलाकारों ने भी इस तकनीक को अपनाया है और कैनवास पर विभिन्न आकारों के टुकड़ों को चिपकाकर चित्रों का अंकन कर अपनी कलाकृतियों में नवीनता ला रहे हैं। भारतीय चित्रकला के इतिहास में कोलाज कला का प्रभाव हमें लोक रूपों में दिखाई देते हैं।

समकालीन भारतीय कला की बात करें तो भारतीय कलाकार इसमें पीछे नहीं रहे उन्होंने भी इस कला में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है और दे रही है। भारत में सर्वप्रथम इसका उदाहरण शान्ति निकेतन के विनोद बिहारी मुखर्जी ने अपने पेपर कोलाज का अनुष्ठान प्रदर्शन करके कोलाज की दुनिया में एक क्रान्ति ला दी। विनोद बिहारी मुखर्जी एक ऐसा नाम जिसे कभी पहचान की जरूरत नहीं पड़ी। विनोद बिहारी जी एक ऐसे सुप्रसिद्ध कलाकार थे जिनके आगे दृष्टिहीनता भी उनकी कला सृजनता में बाधा नहीं बन सकी। एक आँख से दूर का देखने की समस्या से पीड़ित मुखर्जी को 1957 में पूरी तरह दिखना बंद

हो गया था। दृश्य कला को छोड़ने की बजाय उन्होंने अपने कार्य को और विस्तार दिया और उन्होंने सिर्फ चित्र बनाना जारी रखे बल्कि स्पर्शनीय माध्यमों में संभावनाएँ तलाशी और कोलाज चित्रों का निर्माण किया। 1950 से 1960 तक के कोलाज चित्रों की प्रदर्शनी लंदन में 2020 में प्रदर्शित की गयी और प्रशंसा भी हुई।



इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए भारतीय कोलाजिस्ट बलराज पनेसर कोलाज में दृश्य चित्रों में अपनी खुद की शैली विकसित की जिसे अक्सर यथार्थवाद के रूप में विख्यात है।³

बलराज पनेसर ने अपने संसार से संबंधित चित्रों को कागज की कतरनों से सजाया है।

वही मध्य प्रदेश के अमृतलाल बेगड ने नर्मदा मेरी प्रेरणा स्रोत श्रृंखला पर उन्होंने जल रंग छोड़कर कोलाज चित्रों की रचना की जो धार्मिक भावना से प्रेरित होकर आन्तरिक सौन्दर्य को रूपायित किया है। शान्ति निकेतन के आचार्य नन्द लाल वसु के शिष्यत्व में से एक हैं। उन्होंने 1977 के बाद कोलाज चित्रों की रचना आरम्भ की उनके चित्रों में केवल पेपर कोलाज माध्यम चित्रण किये हैं। कागज को विशेष रूप में प्रयोग करते हुए जैसे- जलरंग चित्रों के सादृश्य लगता है। नर्मदा के प्राकृतिक दृश्यों के मनोहारी रूप प्रस्तुत किया है। उनका मानना है कि कोलाज बनाना मुझे बिना तैरना जाने पानी में कुदने जैसा लगता है। पता नहीं, पार हो पाऊँगा या नहीं।⁴

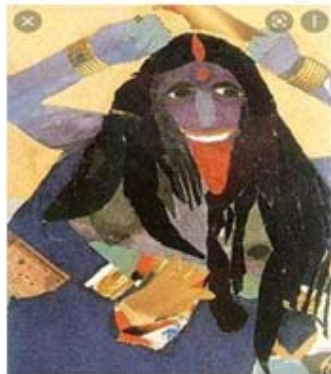


भारत के पिकासो कहे जाने वाले प्रसिद्ध चित्रकार रंगो के जादूगर एम0 एफ0 हुसैन ने अपने प्रारम्भिक दौर में दृश्य चित्र के साथ-साथ कोलाज चित्रण भी बनाये थे। जो आज भी उनके चित्रों के रंगों के प्रभाव दिखाई देता है।

मनः स्थिति के प्रसिद्ध चित्रकार उन्होने इतिहास लोक कथा पुराण प्राचीन भारतीय संस्कृति और विविध धर्मों के प्रसंगों को अपने चित्रों को आधार बनाने वाले प्रसिद्ध चित्रकार “सतीस गुजराल” ने सबसे अधिक कोलाज ग्यूरल्स में कार्य किया यू कहे कि कोलाज चित्रण उनका सबसे प्रिय माध्यम है जो दिल्ली की विभिन्न सरकारी विभागों एवं इमारतों में देखे जा सकते हैं।



शकीला शेक एक ऐसी भारतीय महिला का नाम है जो किसी परिचय की मोहताज नहीं हैं। आज अपनी मेहनत और लगन के कारण अपनी अलग पहचान बनायी हैं अपनी गृहस्थ जीवन छोड़कर कलाकार बनने का सफर अत्यन्त किसी सपने से कम नहीं है पश्चिम में बंगाल की एक गरीब परिवार से सम्बन्ध रखने वाली अशिक्षित महिला कोलाज चित्रकार के रूप में पहचान बनाई आज वह विश्व के प्रसिद्ध कलाकारों की श्रेणी में जानी जाती है जीवन में कभी हार नहीं मानी नतीजा आज दुनिया के सामने है।



शकीला शेख कागज के टुकड़ों, अखबार के पन्नों, कार्डबोर्ड, से खेलना जानती है बिना कैंची के वे कागजों को आकार रूप रंग देती उनका बचपन कोलकत्ता की सड़को पर गुमनामी में ही बीता है इनकी प्रतिभा को वलदेव राज पनेसर ने देखा और प्रोत्साहित किया। 1990 में शकीला की कोलाज कला की पहली एकल प्रदर्शनी लगी इसमें उन्होंने लगभग 70000/- रुपये की अपनी कलाकृति की बिक्री हुयी। उस समय यह बहुत बड़ी राशि थी उनके सपने की उड़ान मिल चुकी थी। इसके बाद उन्होंने कभी भी पीछे मुड़कर नहीं देखा आज उन्हें अपने कला के लिए कई पुरस्कार भी प्राप्त हुए उनके चित्र विदेशों में खूब सराहे गये।

शकीला एक जीवन्त उदाहरण है दूरिदृता, बेकारी, अशिक्षा से अपनी जिसने कोलाज कला में अपनी अभिव्यक्ति पाई है। उनके कोलाज कागजों और अनुरूप रंगों के चुनाव से एक खास चमक व परिपक्वता दर्शाते हैं। जैसे- बाजार का दृश्य, माँ काली, रास्ते में चलते लोग आदि। तकनीकी ज्ञान के न होने पर भी उनके चित्रों में संतुलन, विषय के अनुरूप परिवेश का गठन और संयोजन अपने में लालित्यपूर्ण है। दूसरे शब्दों में शकीला के अन्दर की आक्रामकता उनके कोलाज से साफ साफ झलकती है।

यतीन्द्र महोबे मध्य प्रदेश के एक छोटे से शहर नरसिंहपुर में अपनी कर्मस्थली बनाया है उनकी कोलाज का रूप अलग झलकता है वे जीवन के विविध रूपों का चयन कर कोलाज चित्रों का निर्माण रंग बिरंगे पेपर के टुकड़ों से किया है उनका मानना है कि कोलाज चित्रांकन करते समय कलाकार को अपने धैर्य का परिचय देना होता है चूँकि कागज के छोटे छोटे टुकड़ों को चिपकाना होता है जिसमें वक्त अन्य माध्यमों की अपेक्षा ज्यादा लगता है। मैंने अपनी कलाकृतियों में सिर्फ रंगीन पत्रिकाओं में बारीक टूकाड़ों का प्रयोग किया है इन चित्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो ये चित्र तैल या पोस्टर रंग से निर्मित किये गये हो ऐसा लगता है कि ब्रश से बड़े-बड़े तुलिका स्ट्रोक लगा हो यही इनकी प्रमुख विशेषता है ये प्रभाव दर्शकों को अपनी और बरबस खींच लेती है।



भारतीय आधुनिक कला क्षेत्र में कलाकारों की एक लम्बी श्रृंखला है जो समकालीन कलाकार के रूप में स्थापित है और उन्होंने सम्पूर्ण कलायात्रा में कोलाज कला से प्रभावित होकर अपनी कलाकृतियों में समाहित किया है और कर रहे हैं।

कोलाज चित्रण प्रयुक्त सामग्री के अनुरूप कोलाज चित्रण विविध रूपों का अंकन अपने विविधता के साथ सामने आता है जिन्हें भिन्न भिन्न कलाकारों में अपनी सुविधानुसार विभिन्न माध्यमों से नवीन कृति का सृजन कर रहे हैं। जिसे समयानुसार विभिन्न नामों से जाना जाता है- पेपर कोलाज, केनवास कोलाज, वुड कोलाज, डिजिटल कोलाज, मिश्रित माध्यम कोलाज आदि नवीन सृजन किये जा रहे हैं।

निष्कर्ष:- कला क्षेत्र में कोलाज एक महत्वपूर्ण कला है जिसे दृश्यों के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है और यही हमारे समाज को एक नई क्रान्ति प्रदान करती है। कोलाज तकनीक पर आधारित नये नये प्रयोग समकालीन कलाकारों को अभूतपूर्व सफलता की ओर ले जा रहे हैं। कोलाज कला अपने आप में एक भिन्न विद्या है जो सौन्दर्यात्मक दृष्टि से परिपूर्ण है आने वाले समय में युवा कलाकारों को अपनी रचनात्मकता प्रदर्शित करने में सहायक होगी यह कला श्रम साध्य जरूर है लेकिन रोजगार और कौशल के अवसर भी प्राप्त हो रहे हैं।

इस तरह हम कह सकते हैं कि भारत की समकालीन कला में कोलाज कलाओं का योगदान अविस्मरणीय है। कोलाज कला समकालीन कलाकारों को अभूतपूर्व सफलता की ओर ले जा रहे हैं।

सन्दर्भ

1. New in hindi.in (hiquora.com)
2. मॉडर्न आर्ट लेखक राजेन्द्र वाजपेयी प्रकाशन सम्मिट पब्लिकेशन कानपुर पृष्ठ न0 124
3. himoob.in
4. कलावार्ता अंक 109-110 प्रकाशन उस्ताद अलाउद्दीन खॉं संगीत एवं कला अकादमी भोपाल पृष्ठ न0 108
5. 'क' कला पत्रिका अंक 4-2003 प्रकाशन अनुराधा, दिल्ली पृष्ठ न0 29
6. www.archanarana.com

ग्रामीण विकास में स्वयं सहायता समूह माइक्रोफाइनेंस : महिला सशक्तिकरण की सर्वोच्च विधि

डॉ० गालिब ईमाम

माइक्रोफाइनेंस की शुरुआत 1970 के दशक में सर्वप्रथम बांग्लादेश के एक प्रख्यात अर्थशास्त्री मुहम्मद यूनुस के द्वारा किया गया था जब उन्होंने मात्र तीन सौ पचास रुपया (350/-) लोन की बदौलत लगभग 6000 महिलाओं को जो भिखारियों की जिन्दगी जी रही थी, उन्हें स्वरोजगारी बनाया। मुहम्मद यूनुस माइक्रोफाइनेंस और माइक्रो फ्रेनचाइजी की दुनिया के सुपर स्टार कहे जाते हैं। मुहम्मद यूनुस को 2006 का नोबेल शांति पुरस्कार बांग्लादेश के ग्रामीण बैंक के साथ संयुक्त रूप से मिला था।

मुहम्मद यूनुस द्वारा बांग्लादेश में चलाये जा रहे अभियान से प्रेरित होकर भारत में स्वयं सहायता समूह (बिहार में जीविका) के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को भारी संख्या में आर्थिक रूप से सुदृढ़ किया गया है। माइक्रोफाइनेंस 1990 के दशक की महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। इसके अन्तर्गत वैसी महिलाओं को जो बैंकों से ऋण लेने में असमर्थ थी उन्हें अत्यंत कम दर पर ऋण मुहैया कराकर छोटे एवं लघु कारोबार हेतु धन उपलब्ध कराना है। समूह की महिलाएँ वस्तुतः एक दूसरे की गारंटी पर ऋण प्राप्त करती हैं। समूह की बैठकों में महिलाएँ शिक्षित होती हैं तथा एक दूसरे के हुनर से भी परिचित होती हैं। माइक्रोफाइनेंस के माध्यम से ग्रामीण गरीबी उन्मूलन एवं महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका के रूप में देखा जा रहा है। समूह बचत एवं ऋण के माध्यम से उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ कि अधिकांश आबादी (लगभग 70%) गाँव में रहती है। इनका मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन है। ग्रामीण भारत की अधिकांश जनसंख्या (लगभग 37%) गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करती है। अगर भारतीय किसानों की बात की जाय तो एक तरफ कृषक को अन्न दाता (Grain Giver-Farmer) कहा जाता है और कहा जाता है कि किसान की सेवा ईश्वर की सेवा है अर्थात् "To serve the Farmer, is to serve the God."

वहीं दूसरी तरफ किसानों की दयनीय स्थिति तथा उनके द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं की दर को देखें तो वास्तविकता सामने आती है कि आज आजादी के लगभग 72 वर्षों के बाद भी भारत में कृषकों की स्थिति ज्यादा संतोषजनक नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े कृषक, जमीन्दार स्थानीय महाजन और दुकानदार और शहरी क्षेत्रों के मलिन बस्तियों में महाजन, व्यापारी व स्वर्णकार आदि शताब्दियों से समाज के कमजोर एवं साधनविहीन लोगों को ऋण प्रदान करते आए हैं। प्रायः उपभोक्ता प्रकृति के ये ऋण बीमारी, विवाह, जन्म-मृत्यु समारोह, दैनिक उपभोग की वस्तुओं का क्रय करने व फसलों की आवश्यकताओं (जैसे खाद्य बीज आदि के लिए ये ग्रामीण जनता) कृषक अपनी खेत को गिरवी रखकर ऋण लेते हैं। इन ऋणों पर ब्याज दर 40 से 50 प्रतिशत तक ऊँची होती है। शराबी और जुआरी 100 प्रतिशत तक ऊँची ब्याज पर ऋण लेते हैं। इस प्रकार के ऋणों का बोझ इस सीमा तक ऊँचा होता है कि ऋण लेने वाला ऋण नहीं चुका पाता है और उसके जमीन पर ऋण दाता कब्जा कर लेते हैं। शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में सोने-चाँदी के आभूषण गिरवी रखकर लिए गये ऋणों को समय पर न चुकाने पर ये आभूषण भी डूब जाते हैं। आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों की आर्थिक शोषण की यह गाथा कितनी पुरानी है यह निर्णय कर पाना तो कठिन है लेकिन इसका उल्लेख भारतीय साहित्य तथा सरकारी रिपोर्टों में मिलता है। कृषि पर शाही आयोग ने लिखा था कि भारतीय कृषक ऋण में पलता है और ऋण में ही मर जाता है। हिन्दी साहित्य के सुविख्यात महाकवि प्रेमचन्द्र की कहानी 'सवा सेर गेंहु' में बताया गया है कि किसान मजदूर अपने जीवन काल में उधार लिए गये 'सवा सेर गेंहु' का कर्ज नहीं उतार पाता और उसके पुत्र का आधा जीवन उसी कर्ज को चुकाते-चुकाते बीत जाता है। भारत के संदर्भ में सूक्ष्म वित्त संस्थाओं की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण है। ग्रामीण विकास की बात की जाय तो सूक्ष्म वित्त संस्थाएँ इसकी नींव हैं।

21वीं सदी का पहला दशक भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस अवधि में भारत एक बड़ी आर्थिक ताकत के रूप में उभरा है। भारत की आर्थिक ताकत होने की पुष्टि इसके वैश्विक मंदी वर्ष 2009 से बेहतरीन ढंग से निपटने से भी होती है। भारत ने वैश्विक मंदी के दौरान भी वर्ष 2008-09 में 6.7 प्रतिशत तथा 2009-10 में 7.4 प्रतिशत की उल्लेखनीय सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर अर्जित की। इन सबके बावजूद आर्थिक उदारीकरण के वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि की भूमिका घटकर लगभग 18 प्रतिशत रह गई है। हमारी दो-तिहाई आबादी का गाँवों में निवास करना कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के महत्व को दर्शाता है।

गाँवों की आर्थिक स्थिति को दूर करने में गत दो दशक से साख क्षेत्र में सूक्ष्म वित्त (Micro Finance) संस्थाएँ चर्चा में हैं। सूक्ष्म वित्त एक प्रकार से सूक्ष्म ऋण है इसमें छोटी-छोटी राशि ऋण के रूप में गरीब लोगों और ऋण तक पहुँच नहीं रखने वाले व्यक्तियों को उपलब्ध कराई जाती है। सूक्ष्म वित्त में ऐसे व्यक्ति सम्मिलित होते हैं जिनके पास बैंकों में ऋण के बदले जमानत रखने के लिए कुछ भी नहीं होता है। भारत में सूक्ष्म वित्त की शुरुआत नब्बे के दशक के मध्य में हुई। इस दौरान भारतीय रिजर्व बैंक ने सूक्ष्म वित्त से जुड़ी स्वयं सहायता समूह (SHGs) माइक्रोफाइनेंस इंस्टीट्यूट और स्वरोजगार महिला संघ (SEWA), जीविका आदि को विविध बैंकों से वैधानिक रूप से ऋण मुहैया कराना शुरू किया। केन्द्र सरकार ने सूक्ष्म वित्त को अधिक पारदर्शी और इसके कुशल प्रबंध के लिए 20 मार्च 2007 को लोकसभा में सूक्ष्म वित्त क्षेत्र (Micro Finance Sector) बिल पेश किया। भारत सरकार प्रत्येक वर्ष वित्तीय समावेशन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म वित्त के माध्यम से स्वयं सहायता समूहों के गठन तथा उनकी बैंकों से सहसम्बद्धता का लक्ष्य निर्धारित करती है ताकि ग्रामीण विकास की अवधारणा को सशक्त किया जा सके।

इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि गरीब वर्ग व विशेष रूप से महिलाओं को ऋण उपलब्ध कराने, उनको गरीबी के मकड़जाल से बाहर निकालने के दृष्टिकोण से लघु वित्त संस्थाओं का योगदान महत्वपूर्ण है। सूक्ष्म वित्त का प्रावधान होने से गरीब वर्ग को साहूकारों व महाजनों के ऋण-जाल से मुक्त होने के साथ ही शारीरिक शोषण, मानसिक यंत्रणा व सामाजिक उत्पीड़न के दंश से भी कुछ हद तक विमुक्ति मिल रही है। इस संदर्भ में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि लघु वित्त या सूक्ष्म वित्त गरीब वर्ग के हाथों में एक 'दुधारी तलवार' है जिसका उपयोग उत्पादक व प्रभावी ढंग से करने पर वह वरदान साबित हो सकती है। अतः यह आवश्यकता है कि गरीब वर्गों के लिए प्रारम्भ की गई 'सूक्ष्म वित्त प्रणाली' को अधिक सार्थक व प्रभावी बनाया जाए।

देश के वर्तमान आर्थिक परिप्रेक्ष्य व महिला सशक्तिकरण के युग में स्वयं सहायता समूह की असीम भूमिका है। स्वयं सहायता समूह महिलाओं को सशक्त करने एवं उनमें आत्म विश्वास को बढ़ावा देने के लिए एक सशक्त माध्यम है। आज देश के लगभग हर कोने में स्वयं सहायता समूह बनाने में जोर दिया जा रहा है। महिलाओं के स्वयं सहायता समूह के निर्माण को बढ़ावा देने हेतु सरकारी व गैर सरकारी दोनों स्तर पर प्रयास जोर-शोर से किया जा रहा है। आज जितने भी सरकारी कल्याणकारी कार्यक्रम हैं उनके लाभान्वितों में स्वयं सहायता समूहों को ही प्राथमिकता दी जा रही है या फिर यह कहा जाये कि सरकारी कल्याणकारी योजनाओं का लाभ निर्धन व जरूरतमंद महिलाओं तक पहुँचाने के लिए स्वयं सहायता समूहों का निर्माण आवश्यक हो गया है। स्वयं सहायता समूह 'बचत व साख' के सिद्धान्त पर आधारित है और ये दोनों ही सिद्धान्त महिला सशक्तिकरण के मार्ग को प्रशस्त करते हैं। ये तथ्य निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट है-

- नियमित बचत द्वारा प्रत्येक सदस्य के आर्थिक स्तर में सुधार होता है और इस प्रकार स्वावलंबी बनाने की उनकी राह खुल जाती है। वस्तुतः बचत ही विकास का पहला कदम है।
- थोड़े-थोड़े पैसे जो घर के अनावश्यक कार्यों में व्यय हो जाते हैं उन पैसे का समूह में बचत करने से सदस्यों की छोटी-मोटी जरूरतें आसानी से पूरी हो जाती हैं। अपनी छोटी-मोटी जरूरतों के आपस में ही पूरी हो जाने की वजह से महिलाएँ अपने आपको सशक्त अनुभव करती हैं क्योंकि उन्हें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इधर-उधर भटकना नहीं पड़ता है तथा दुसरे का मुँह नहीं ताकना पड़ता है। साथ ही इससे महिलायें ऋण हेतु बैंकों की औपचारिकताओं की लंबी प्रक्रिया से बच जाती हैं।
- समूह का जिस भी बैंक में अपना खाता खोला जाता है उस बैंक से खाता खुलने के छः महीने बाद समूह को नाममात्र की व्याज पर ऋण मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। यह ऋण कोई भी स्वरोजगार शुरू करने के लिए हो सकता है। अगर ऋण की वापसी समय पर हो जाती है तो समूह को आगे भी बैंक से ऋण आसानी से प्राप्त होते हैं। वर्तमान में तो ऐसे ऋण को बैंकों द्वारा काफी प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह ऋण महिला सशक्तिकरण का काफी सशक्त माध्यम है क्योंकि यह सर्वविदित है कि सशक्तिकरण की दिशा में आर्थिक सशक्तिकरण सबसे पहला कदम है। आर्थिक रूप से सशक्त व आत्मनिर्भर महिला ही अन्य चुनौतियों व परेशानियों का सामना सफलतापूर्वक कर सकती है। अन्यथा ये सारी बातें निरर्थक हो जाती हैं।
- सिर्फ आर्थिक ही नहीं वरन् सामाजिक समस्याओं के निराकरण में भी समूह द्वारा मार्गदर्शन दिया जाता है। समूह की अपनी नियमित बैठकें होती हैं और इन बैठकों में महिलाएँ सिर्फ आर्थिक ही नहीं वरन् अपनी घरेलू व्यक्तिगत समस्याओं की भी चर्चा करती हैं। किसी भी व्यक्तिगत समस्या का समाधान सारी सदस्य महिलायें मिलकर करती हैं। इससे महिलायें अपने आपको काफी सशक्त व सुरक्षित अनुभव करती हैं।
- विशेषज्ञों/सरकारी विभागों से साक्षरता, परिवार नियोजन तथा स्वास्थ्य संबंधी जानकारीयों समूह को समय-समय पर प्राप्त होती रहती हैं। इससे सदस्य महिलाएँ अपने कार्यों को अधिक सुचारू तरीके से संपादित कर पाती हैं जिससे उन्हें आत्मिक बल प्राप्त होता है।
- समूह से सहयोग की भावना, आपसी विश्वास, क्षमता तथा आत्मनिर्भरता का विकास होता है।
- स्वरोजगार द्वारा उत्पादित वस्तुओं की सामूहिक खरीद एवं बिक्री से समूह की महिलाओं को काफी लाभ प्राप्त होता है। इन्हें अपनी मेहनत और लगायी गई पूँजी का वास्तविक मूल्य मिल पाता है तथा मध्यस्थ या दलाल इनका अनुचित लाभ नहीं उठा पाते हैं।
- स्वयं के विकास के साथ-साथ बाद में सहभागिता द्वारा गाँव का भी विकास होता है। इस प्रकार समूह से सिर्फ समूह की सदस्य महिलायें ही नहीं वरन् पूरे गाँव की महिलायें लाभान्वित होती हैं अर्थात् समूह के साथ-साथ पूरे गाँव की महिलाओं का सशक्तिकरण होता है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि स्वयं सहायता समूह महिलाओं के सशक्तिकरण का अत्यंत सशक्त व उपयोगी साधन है। देखने पर यह साफ पता चलता है कि समूह की महिलायें अन्य महिलाओं की अपेक्षा अपने अधिकारों के प्रति ज्यादा जागरूक होती हैं। अतः आज का अत्यंत आवश्यक है कि ज्यादा से ज्यादा स्वयं सहायता समूह बनवाने पर जोर दिया जाए ताकि महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य को शत-प्रतिशत हासिल किया जा सके।

सन्दर्भ

1. एस०बी० बर्मा (2011), ग्रामीण महिला उत्थान, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
2. योजना, अक्टूबर 2018, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
3. कुरुक्षेत्र, सितम्बर 2010, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार
4. A. Abdul Raheem, *Women Empowerment through self-help group (SHGs)*
5. NABARD : *Status of Microfinance in India, 2017-18*
6. Arjun Yallappa Pangannavar, *Self-help group (SHGs) and Women Empowerment in India*
7. Prabhu Ghate, *Microfinance in India : A State of the sector Report, 2007*

साहित्य की जनवादी धारा और मुक्तिबोध

डॉ० अंबुजा एन् मलखेडकर

प्रध्यापिका, अलशारे महिला महाविद्यालय, कलबुर्गी, कर्नाटक

जनवादी साहित्य की धारणा वहाँ से शुरू होती है, जहाँ साहित्य में जनवादी शक्तियों के प्रतिरोध का चित्रण मिलता है। यह प्रतिरोध मुख्यतः सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्तरों पर दिखाई पड़ता है। दरअसल जगत और जीवन के अन्तर्विरोधों का विकास इन्हीं स्तरों पर होता है। यही कारण है कि साहित्य और कला के अन्य क्षेत्रों में उसकी अभिव्यक्ति उसी रूप में होती है। यह सच है कि ऐसे साहित्य की रचना प्रायः हर युग में हुई है। इसके प्रमाण उस युग के व्यापक जन समुदाय के उत्पीड़न और संघर्ष की गाथाएँ हैं।

पूर्ववर्ती युगों के सिद्धों, कबीर आदि निर्गुण संत कवियों, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके सहयोगी लेखकों, महावीर प्रसाद द्विवेदी, निराला, प्रेमचन्द आदि की रचनाओं में जाति-पाँति, छुआछूत, धार्मिक अंधविश्वास की आलोचना तथा स्वतंत्रता से पूर्व और बाद के हिन्दुस्तान के सामान्य-जन-समुदाय, खासकर किसानों और मजदूरों के देशी-विदेशी सामन्तों एवं महाजनों के द्वारा किए जा रहे शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ उनके संगठित प्रयासों का चित्रण इस बात का सबूत है कि ये लेखक समय की सामाजिक-आर्थिक विसंगतियों को बड़ी शिद्धत से महसूस कर रहे थे तथा रचनाओं के द्वारा खुलकर उनके प्रति अपना विरोध प्रकट कर रहे थे। उसी अर्थ में उनकी रचनाएँ युगीन-चेतना-बोध से संपृक्त थीं। और, यही कारण है कि इनकी रचनाओं से हिन्दी-साहित्य की जनवादी धारा के विकास की सही दिशा को रेखांकित करने में बहुत हद तक मदद मिलती है।

मुक्तिबोध इसी परम्परा को अपनी रचनाओं के द्वारा विकास प्रदान कर रहे थे। वे जिस समय 'वसुधा' और 'नया खून' आदि पत्रों में लिख रहे थे, उस समय हिन्दी में प्रगतिवादी रचनाओं का दौर था। उस दौर की रचना प्रवृत्तियों से बहुत दूर तक सहमत होते हुए भी मुक्तिबोध प्रगतिवादी आलोचना के कायल नहीं थे। उनके अनुसार प्रगतिवादी तथा आदर्शवादी समालोचक पूरी नयी काव्य-शैली के विरोधी थे। उसका एक कारण तो यह है कि मुक्तिबोध नयी कविता के क्षेत्र में स्वयं कार्य कर रहे थे उनके अन्तर्विरोधों से भी पूरी तरह परिचित थे। लेकिन नयी कविता के बिम्ब, प्रतीक और नयी काव्य-शैली के कारण ही उसे प्रगतिवादी आलोचकों द्वारा खारिज किये जाने के विरोधी थे। उन्होंने अपने लम्बे निबन्ध 'समीक्षा की समस्याएँ' में प्रगतिवादी आलोचकों के द्वारा नयी कविता के प्रति बरती जा रही उदासीनता और उपेक्षाभाव को आड़े हाथों लिया और स्पष्ट शब्दों में लिखा "नयी काव्य-प्रवृत्तियों के आधारभूत मानव-जीवन के प्रति उन्हें कोई अनुराग न था। इसलिए उन प्रवृत्तियों के विशेष संदर्भ भी वे न समझ सके। अतएव उन प्रवृत्तियों को गलत सन्दर्भ में देखा गया। निराला की सघन बिम्ब-व्यवस्था और महादेवी की सघन प्रतीक व्यवस्था उन्हें समझ में आ सकती थी, किन्तु नयी कविता की नहीं।" हालांकि मुक्तिबोध ने दूसरी जगह स्वयं यह स्वीकार भी किया है कि—"नयी कविता की भी विरोधी आलोचना हो सकती है और खूब हो सकती है। लेकिन कब! जीवन यथार्थ के प्रति संवेदनशील होकर ही उसमें संवेदनात्मक सूक्ष्म दृष्टि रखकर ही वह हो सकती है, अन्यथा नहीं।"

इसलिए यह धारणा नहीं बनायी जा सकती कि मुक्तिबोध का दृष्टिकोण आलोचना-विरोधी था, क्योंकि मुक्तिबोध एक ओर जहाँ आलोचना के द्वारा रचना-विरोधी दृष्टिकोण अपनाये जाने के कारण उसका विरोध करते हैं वहीं दूसरी ओर वे आलोचना की आवश्यकता को भी स्वीकार करते हैं। पिछले दिनों हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में जिस नयी समीक्षा की चर्चा जोर-शोर से की गई वहीं आश्चर्य इस बात का है कि उसकी ओर कई मार्क्सवादी आलोचकों का झुकाव भी देखा गया। मुक्तिबोध ने बहुत पहले अपने 'नवीन समीक्षा के आधार' शीर्षक लेख में साहित्य-समीक्षा के लिए 'ज्ञानात्मक संवेदन' और 'संवेदनात्मक ज्ञान' पर जोर देते हुए वस्तु की आलोचना को रूपवादी आलोचना से अधिक मूलभूत बताया है। यहाँ तक कि मुक्तिबोध ने हासकालीन जीवन-मूल्यों की वकालत करने वाली आलोचना को भी रूपवादी आलोचना ही माना है। अगर देखा जाय तो मुक्तिबोध इस प्रसंग में भी उतने ही विचारणीय है, जितने तत्कालीन प्रसंग में; क्योंकि आज जबकि साहित्य और कला के क्षेत्र में वस्तु और रूप को समान महत्व देने की बात की जा रही है, यह तथ्यात्मक है कि रूपवादी आलोचना से वस्तुगत आलोचना महत्वपूर्ण ठहरती है। इस प्रसंग में माओत्सेतुंग के विचार उल्लेखनीय हैं—"सभी वर्ग-समाजों में हर वर्ग के खुद अपने राजनीतिक और कलात्मक मापदण्ड होते हैं। लेकिन सभी वर्ग-समाजों में सभी वर्ग हमेशा राजनीतिक मानदण्ड को प्रमुख स्थान देते हैं और कलात्मक मानदण्ड को गौण।"

मुक्तिबोध के रूपवादी आलोचना-विरोधी दृष्टिकोण के चलते ही नामवर सिंह 'कविता के नये प्रतिमान' के द्वितीय संस्करण की भूमिका में कहते हैं कि 'रूपवादी आलोचना के तत्वों का उपयोग मार्क्सवादी आलोचना को विस्तृत और समृद्ध करने के लिए हो सकता है; वहाँ वे मुक्तिबोध के 'नवीन समीक्षा के आधार', की बजाय 'समीक्षा की समस्याएँ' शीर्षक लेख का हवाला देते हुए लिखते हैं—"मार्क्सवादी आलोचकों की इसी जड़ता पर कशाघात करने के लिए मुक्तिबोध को 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध' में 'समीक्षा की समस्याएँ' शीर्षक 65, पृष्ठों का भावावेशपूर्ण निबन्ध लिखना पड़ा।" यद्यपि इस निबन्ध में भी मुक्तिबोध ने रूपवादी आलोचना की वकालत कहीं नहीं की है। अतः ऐसा कहकर नामवर सिंह अन्ततः अपनी आलोचना के रूपवादी होने की धारणा को ही सुदृढ़ करते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि कुछ अन्य मार्क्सवादी आलोचक भी मुक्तिबोध के उक्त निबन्ध में व्यक्त किये गये आलोचना-विरोधी विचारों से क्षुब्ध दिखाई पड़ते हैं, लेकिन उन्हें शायद यह भ्रम है कि मुक्तिबोध आलोचना के खिलाफ थे। यह सही है कि आलोचना जहाँ रचना-विरोधी रूप अख्तियार करने लगती है, वहाँ रचनाशीलता का विकास बाधित होने लगता है। आलोचना का रचना के साथ स्वस्थ संवाद नहीं होने तथा उनके प्रति अराजकतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाना कभी भी स्वस्थ और जनवादी साहित्य के सृजन की दृष्टि से उपयोगी नहीं होगा। इसलिए मुक्तिबोध सृजनशील आलोचना को रचना से भी ज्यादा महत्व देते हैं। मुक्तिबोध जिस प्रकार की आलोचना के पक्षधर थे, उनके उदाहरण उनकी पुस्तकों—‘नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध’ और नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र के अधिकांश निबन्धों में उपलब्ध होते हैं। अपनी पहली पुस्तक में संगृहीत ‘शमशेर मेरी दृष्टि में’ और ‘सुमित्रानन्दन पन्त—एक विश्लेषण’ जैसे व्यक्ति रचनाकारों पर लिखे निबन्धों में उन्होंने एक संतुलित सृजनशील आलोचक के दायित्व का परिचय दिया है। अपनी पुस्तक ‘कामायानी : एक पुनर्विचार’ के अन्तर्गत भी उनकी दृष्टि प्रसाद की व्यक्ति-चेतना और रोमानी भाव दृष्टि पर केन्द्रित रही है, जिसके परिणामस्वरूप वे उसका सही और वैज्ञानिक विवेचन कर सके हैं। उन्होंने कामायनी के कलात्मक मूल्य को तो स्वीकार किया है, लेकिन उसमें भविष्योन्मुख मानव-यथार्थ के अभाव की ओर भी संकेत किया है।

चूँकि मुक्तिबोध आलोचक के अतिरिक्त एक सजग और प्रखर रचनाकार भी थे और कहना चाहिए कि वे एक चिन्तक रचनाकार थे; इसलिए उनकी रचनाओं में रचनाकार-आलोचक का दृष्टिकोण प्रमुख है। मुक्तिबोध रचना-प्रक्रिया के दौरान जिस प्रकार की सजगता की आवश्यकता पर जोर देते हैं, उससे कमजोर इस बात पर नहीं देते कि “काव्य-साधना या कला-साधना का अधिकतर भाग, काव्य-रचना के क्षणों से बहुत बाहर होता है। इसलिए कलाकार के लिए यह आवश्यक है कि वह ज्ञानात्मक आधार का अधिकाधिक विस्तार करे।”⁵ यहाँ मुक्तिबोध रचनाकार के अनुभव-क्षेत्र के विस्तार की बात करते हैं।

दूसरी ओर, मुक्तिबोध काव्य-रचना के दौरान वस्तु-सत्यों और भाव-सत्यों के आधार पर निरन्तर संशोधन-सम्पादन की आवश्यकता बतलाते हैं। इसी क्रम में रचनाकार आत्मालोचना भी करता है। मुक्तिबोध ने इसे ही कला के तीसरे क्षण में भाषा और भाव के बीच का द्वन्द्व कहा है, जो संशोधन-सम्पादन की आवश्यक प्रक्रिया है।

इसलिए मुक्तिबोध काव्य को एक सांस्कृतिक प्रक्रिया भी मानते हैं और इस अर्थ में लेखक के दायित्व को बहुत व्यापक आधार-प्रदान करते हैं। यदि मुक्तिबोध की काव्य-प्रक्रिया और रचना-कार्य के प्रसंग में उनके उद्देश्यों पर विचार किया जाय तो मुक्तिबोध को अपने कई निबन्धों में ‘रचना क्यों’ और ‘रचना किसके लिए’ जैसे अहम सवालों पर विचार करते हुए और उनसे जुड़ते हुए देखा जा सकता है। उनकी ‘नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र’ नामक पुस्तक में संकलित यह प्रश्न है कि आखिर रचना क्यों, ‘साहित्य के दृष्टिकोण’ और ‘जनता का साहित्य किसे कहते हैं’ आदि निबन्धों में इन प्रश्नों पर विचार किया गया है। ‘जनता का साहित्य किसे कहते हैं’ उनका इस दृष्टिकोण से लिखा गया सबसे महत्वपूर्ण लेख है। इसमें मुक्तिबोध ने जनता के साहित्य के प्रसंग में उठाये जाने वाले कुछ प्रश्नों पर विचार करते हुए निष्कर्षित: यह स्थापित किया है कि “जनता के साहित्य से अर्थ है ऐसा साहित्य जो जनता के जीवन-मूल्यों को जनता के जीवनादर्शों को प्रतिष्ठापित करता हो, उसे अपने मुक्तिपथ पर अग्रसर करता हो। इस मुक्तिपथ का अर्थ राजनैतिक मुक्ति से लगाकर अज्ञान से मुक्ति तक है। अतः इसमें प्रत्येक प्रकार का साहित्य सम्मिलित है, बशर्ते कि वह सचमुच उसे मुक्तिपथ पर अग्रसर करे।”⁶

मुक्तिबोध ने समय-समय पर लिखे अपने निबन्धों और डायरी के पन्नों में जो विचार व्यक्त किये हैं, उनसे समझा जा सकता है कि मुक्तिबोध साम्राज्यवादी, सामंती और पूंजीवादी षड्यन्त्रों से अच्छी तरह अवगत थे। दमन और शोषण-उत्पीड़नकारी शक्तियों के खिलाफ संघर्ष करने वाली क्रान्तिकारी शक्तियों के प्रति वे कितनी हद तक आस्थावान थे, यह उनकी रचनाओं में साफ-साफ देखा जा सकता है। उन्होंने ‘एक साहित्यिक की डायरी’ में एक जगह लिखा है, “क्या लेखक के लिए परम आवश्यक नहीं कि वह विश्व-जनता के अभ्युत्थान को देखे और समाज का उत्पीड़न करने वाली शक्तियों से सचेत हो और उसके प्रति विद्रोह करने वाली ताकतों से सक्रिय सहानुभूति रखे?”⁷ कहने की आवश्यकता नहीं कि मुक्तिबोध उन सभी परिस्थितियों से परिचित थे, जो समाजवादी सामन्ती और पूंजीवादी शक्तियों की उपज है। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्तरों पर उन शक्तियों की सक्रियता के कारण इस वर्ग समाज में जो अन्तर्विरोध उभर कर सामने आते रहते हैं उनके बुनियादी कारणों की परख मुक्तिबोध को थी। उनका यह कहना कि “जब तक समाज पर धन का शासन रहेगा तब तक यह चारित्रिक संकट अधिक से अधिक असन्तोष और अव्यवस्था उत्पन्न करेगा।”⁸

ऊपर की चर्चा से स्पष्ट है कि मुक्तिबोध ने साहित्य के विभिन्न प्रश्नों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है और इस रूप में उनकी जो वैचारिक परिणतियाँ सामने आयी हैं, उनमें अधिकांशतः मार्क्सवाद की वैज्ञानिक विचारधारा के अनुकूल ठहरती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि रचना-प्रक्रिया से लेकर इतिहास के अद्यतन विश्लेषण तक के सम्बन्ध में उनके विचार काफी स्पष्ट और प्रासंगिक रहे हैं। यही कारण है कि मुक्तिबोध की कविताओं में भी ऐतिहासिक चेतना-बोध का अबाधक्रम सहज ही लक्षित किया जा सकता है। प्रायः मुक्तिबोध के काव्य में प्रयुक्त बिम्ब, प्रतीक और फैंटेसी की बहुलता के चलते संप्रेषणीयता के अभाव की चर्चा की जा सकती है।

इस सम्बन्ध में मुक्तिबोध ने समय-समय पर अपने आलोचकों को उत्तर भी दिये हैं। अतः इन प्रसंगों को ज्यादा तूल न देकर मुक्तिबोध द्वारा काव्य-रचना के माध्यम से किये गये सांस्कृतिक प्रयत्न को रेखांकित करना आवश्यक होगा। कविता मुक्तिबोध के अनुसार ‘जन-चरित्र’ है और चूँकि वह लगातार नये अनुभवों और सन्दर्भों से जुड़ती है, इसलिए कविता अपने विभिन्न प्रासंगिक रूपों में दिखाई पड़ती है। मुक्तिबोध का ‘पोस्टर ही कविता है’ कहना इसी प्रसंग में सार्थक माना जा सकता है। वे चूँकि इस तथ्य को गहराई से अनुभव करते हैं, अतः वे मजदूरों के लाल-लाल धक्के हुए हड़ताली पोस्टरों को उनके संघर्षों के लिए आवश्यक उपकरण के रूप में अहमियत देते हैं और हड़ताल पर लिखी गई किसी कलात्मक कविता या बनाई गयी तस्वीर से ज्यादा इसे जरूरी समझते हैं।

क्योंकि फौरी जरूरत के मुताबिक कविता या तस्वीर से पोस्टर ज्यादा कारगर होते हैं। यहाँ हम मुक्तिबोध के अनुभव के दायरे को अपने आस-पास के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवेश में फैलते हुए देखते हैं। इसलिए मुक्तिबोध की कविता यहाँ खत्म नहीं होती, बल्कि वह यहाँ से शुरू होती है।

उनकी 'ओ काव्यात्मन् फणिधर', 'चंबल की घाटी में', 'अंधेरे में', 'चकमक की चिनगारियाँ', और एक 'स्वप्न-कथा' शीर्षक लम्बी कविताओं में जो राजनीतिक और सामाजिक अन्तर्विरोध दिखलायी पड़ते हैं, वे मुक्तिबोध की रचना-दृष्टि के परिणाम हैं। अभिव्यक्ति के जिस खतरे की ओर मुक्तिबोध संकेत करते हैं, व्यापक जन-समुदाय के हित में लिखने वाले लेखकों के सामने बराबर मौजूद रहते हैं। इसलिए इन खतरों को उठाये बिना रचनाकार के दायित्वों का निर्वाह नहीं किया जा सकता, इसे मुक्तिबोध जानते थे। उनकी यह उद्घोषणा कि—

अभिव्यक्ति के सारे खतरे

उठाने ही होंगे

तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब। (अंधेरे में)

उनके रचना-संकल्प को सूचित करती हैं। इस पंक्ति में जो ऊर्जा निहित है वह निश्चित रूप से मुक्तिबोध की निजी अभिव्यक्ति-क्षमता की उपज है। दूसरे मठ और गढ़ को तोड़ने की बात से जिस अर्थ में व्यंजना होती है, उसका सम्बन्ध इस तथ्य से है, जिसके तहत किसी भी समय का सही और जनवादी रचनाकार सत्ता और व्यवस्था के द्वारा स्थापित और पोषित बुर्जुआ मूल्य और संस्कृति-विरोध का ऐतिहासिक निर्णय लेता है और अभिव्यक्ति के खतरे उठाकर भी सत्ता और प्रतिष्ठान के साथ प्रतिक्रियावादी शक्तियों की साँठ-गाँठ से चल रही साजिशों का पर्दाफाश करता है।

मुक्तिबोध भारतीय जनवादी काव्य-धारा के एक प्रखर चिन्तक कवि थे, यह तथ्य उनकी अधिकांश कविताओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है। जिस रचना-दृष्टि और वस्तुगत यथार्थ के मेल से उनका काव्य-संसार निर्मित हुआ है, उनका अगर समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाए तो वह ज्यादा दिलचस्प होगा, कारण कि मुक्तिबोध के काव्य-व्यक्तित्व का निर्माण भी वैसे ही परिवेश में हुआ है, जिसमें उसका विकास अनवरत रूप से होता परिलक्षित किया जा सकता है।

इस तरह मुक्तिबोध की अधिकांश कविताओं में जनवादी चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति हुई। वैसे मुक्तिबोध की कहानियाँ भी उनकी कविताओं की पूरक रचना के रूप में विस्तृत चर्चा की मांग करती हैं, जो यहाँ संभव नहीं है। फिर भी ऊपर के विवेचन से जो तथ्य सामने आता है वह यह है कि मुक्तिबोध सच्चे अर्थों में एक जनवादी रचनाकार हैं।

संदर्भ

1. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, पृ० 129.
2. नयी कविता का आत्म संघर्ष, पृ० 132.
3. येनान कला साहित्य-गोष्ठी में भाषण, पृ० 12.
4. कविता के नये प्रतिमान, पृ० 12.
5. एक साहित्यिक की डायरी, पृ० 131.
6. नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, पृ० 79.
7. एक साहित्यिक की डायरी, पृ० 132.
8. एक साहित्यिक की डायरी, पृ० 35.

आधुनिक संदर्भ में वाल्मीकीय रामायण एवं श्रीराम के आदर्शों की प्रासंगिकता

डॉ० श्रीधर हेगडे

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग, मंगलूर विश्वविद्यालय की इकाई, फील्ड मार्बल के. एम. कार्य्या कालेज
मडिकेरी-571201 कोडगु, कर्नाटक

वाल्मीकीय रामायण प्राचीन रचना है। इसमें धार्मिकता, अस्मिता, प्रभु भक्ति, उदात्त आदर्श तथा नैतिक आदर्शों का वर्णन मिलता है। वाल्मीकि ने इसमें मर्यादापुरुषोत्तम राम के जीवन का काव्यमय वर्णन किया है, जो आज भी उपयोगी एवं प्रासंगिक है। एक पत्नीव्रत, भातृप्रेम, त्याग, आज्ञा पालन, सत्यवादिता, मर्यादानुसार आचरण, प्रतिज्ञा पालन, दीन दुर्बल तथा आश्रित संरक्षण आदि गुणों के चित्रण से राम का संपूर्ण जीवन ही आज जगत के लिए परम आदर्श, उपकारी एवं प्रासंगिक बन गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में राम किस प्रकार सगुणों एवं सतप्रवृत्तियों से संपन्न थे, किस प्रकार उनके आचार व्यवहार से लोगों के सामने आदर्शों की सृष्टि हुई, इन सभी विषयों का विवेचन राम की प्रासंगिकता के संदर्भ में दृष्टिपात किया गया है।

रामायण के बारे में यह परिभाषा उल्लेखनीय है,

“महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचा संस्कृत का एक महाकाव्य जिसमें 24,000 श्लोक और सात कांड हैं। इसमें श्रीराम का आख्यान है। इसे आदिकाव्य भी कहते हैं।”

दशरथ को राम पर विशेष अनुराग था। इसका कारण यही था कि राम अत्यंत रूपवान, महाशक्तिशाली एवं दुर्गुण रहित थे। वे ,

सानिक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजकः।

दीनानुमंपी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवासशुचिः ॥ (2)

अर्थात्, दयालु, क्रोध को वश में रखनेवाले, ब्राह्मणों को सम्मान करनेवाले, दीनों पर दया करनेवाले धर्म को जाननेवाले, जितेंद्रिय तथा पवित्र थे। इन्हीं गुणों को देखकर दशरथ ने राम को युवराज पद पर अभिषेक करने का निर्णय करता है। राम के आदर्श गुणों का परचय लोगों को हो गया था। युवराज अभिषेक का समाचार मिलने पर लोगों ने कहा कि आप के पुत्र में प्रजा के कल्याणकारक बहुत गुण हैं। इस संदर्भ में राजा और जनता की बातों से पता चलता है कि राजा और विधायक में किन-किन आदर्श गुण होना अपेक्षित है। यह बात आज के समकालीन संदर्भ को भी लागू होती है तथा प्रासंगिक लगती है। राम धर्मज्ञ, सत्यवादी शीलयुक्त, ईर्ष्या रहित, शांत, दुःखियों को सांत्वना देनेवाले, मधुरभाषी, कृतज्ञ एवं जितेंद्रिय हैं। उनका क्रोध अथा प्रसन्नता कभी निरर्थक नहीं होती है। वे मारने योग्य को मारते ही हैं और अवध्य पर कभी क्रोध नहीं करते।

महर्षि वाल्मीकि ने राम के चरित्र के अन्यान्य आदर्शों को अनेक जगहों पर प्रकट किया है जो इस तरह हैं:

गुरुजनों के प्रति श्रद्धा :

श्रीराम गुरुओं का आदर करते थे। जब विश्वामित्र ने अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम को लेने आते हैं तो पिता के आदेशानुसार गुरु के पीछे पीछे चलने हैं। रोज गुरु की वंदना करते हैं। जहाँ गुरु प्रणाम करने का संकेत करते हैं, वे अत्यंत विनम्रता से उसका पालन करते हैं। सिद्धाश्रम पर उनकी गुरु भक्ति का दर्शन होते हैं। वे निरंतर छः दिन और रात जागते रहकर तपोवन की रक्षा करते हैं और राक्षसों का नाश कर गुरु के यज्ञ को सफल बनाते हैं।

“ पित्रा नियुक्ता भगवन प्रवेश्यामस्तपोवनम् ।

धर्ममेव चरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः ॥ [3]

मल्लब, वनवास के समय राम लक्ष्मण और सीता सहित ऋषि भरद्वाज के आश्रम में पहुँचते हैं और विनय पूर्वक कहते हैं कि भगवन! हम लोग पिता जी के आदेशानुसार तपोवन में प्रवेश करेंगे और फल फूल खाते हुए धर्म का आचरण करेंगे। इसी तरह सुतीक्ष्ण के आश्रम में जा कर श्रीराम ने विनयपूर्वक कहा भगवन! मेरा नाम राम है। मैं आपके दर्शन करने आया हूँ। महर्षि अगस्त्य के आश्रम में जा कर श्रीराम ने ऋषिचरणों को छू कर प्रणाम किया। ऋषि अगस्त्य ने प्रसन्न हो कर राम को अनेक दिव्यास्त्र प्रदान किये। तब राम ने कहा कि मैं अपने को धन्य एवं अनुगृहीत समझता हूँ कि आप मुझसे संतुष्ट हैं जैसे, गृहीत्वा तस्तदा रामः प्रत्युवाच महामुनिम् ।

धन्योऽस्म्यनिगृहीतो ऽस्मि यस्य मे परितुष्यति ॥[4]

इस प्रकार राम गुरु के आज्ञा के बिना कोई कार्य नहीं करते। मिथिला में भी जनक की सभा में शिव-धनुष का स्पर्श करने के लिए गुरु से आज्ञा मांगते हैं। इस तरह से राम के आदर्श चरित्र आज भी गुरुजनों के प्रति श्रद्धा के संदर्भ में प्रासंगिक है।

पितृभक्ति :

वाल्मीकि ने राम को पिता की सेवा में दृढचित्त रहनेवाला एवं उनकी प्रसन्नता को बढ़ानेवाला कहा है। राम का आदर्श श्रद्धा तथा विनम्रता के रूप में भी प्रकट हुआ है। वे जब भी पिता के पास जाते हैं तो हाथ जोड़ कर एवं चरणों में झुककर प्रणाम करते हैं। राम वनवास का आदेश पा कर भी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होते, बल्कि माता कैकेयी को कहते हैं कि-

तद ब्रूहि वचनं देवी राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम् ।

करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥^[5]

अर्थात्, हे देवी महाराज दशरथ मेरे पिताजी को जो भी अभीष्ट है वह मुझ से कहिए। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उनकी आज्ञा का पालन करूंगा। हे माता! सदा स्मरण रहे, राम दो प्रकार की बात नहीं करता अर्थात् राम जो कहता है वही करता है। इस के बाद कैकेयी की बात सुनने के पश्चात् महाराजा की आज्ञा का पालन करने हेतु मैं जटा और वल्कल को धारण कर नगर छोड़कर वन चला जाता है। राम के लिए पिता का आदेश पालन ही परम आदर्श था। राम के अनुसार पिता की सेवा एवं आज्ञा कापालन करने से बढ़ कर दुनिया में कोई धर्माचरण नहीं है। वनवास में भी राम पिता जी को नमस्कार करना नहीं भूलते। इतना ही नहीं वे सुमंत्र से कहते हैं “मेरी ओर से पिता के चरणों में प्रणाम करना। राम किसी संदर्भ में पिता के चरित्र पर असत्यवादी होने का आक्षेप सहन नहीं कर सकते हैं। वे वनवास जाते समय माता कौशल्या से कहते हैं कि तुम दुःखी हो कर मेरे पिता की ओर मत देखना। बाद में पिता की मृत्यु उन्हें विहल कर देती है। उनके मन में इस बात का दुःख है कि उन्होंने स्वयं पिता का दाह संस्कार नहीं किया। वे रोते हुए पिता को अंजली देते हैं एवं पिंडदान करते हैं। अतः वाल्मीकि ने राम की पिता के प्रति निष्कल भक्ति का अंकन किया है।

मातृभक्ति :

श्रीराम का माताओं के प्रति भक्तिभाव है। राम अपने राज्याभिषेक की सूचना सर्वप्रथम माता कौशल्या को ही देते हैं, जैसे,

“ अम्बपित्रा नियुक्ताऽस्मि प्रजापालनकर्मणि ।

भविता श्वोऽभिषेकोऽयं तथा शासनं पितुः ॥^[6]

अर्थात्, हे माता पिता जी ने मुझे प्रजापालन की आज्ञा दी है। अतः मुझे कल ही पिता की आज्ञा से राज्यभार ग्रहण करना होगा। तदुपरान्त राज्याभिषेक स्थगित हो जाने पर अशुभ समाचार भी प्रथमतः अपनी माता को देने जाते हैं। वनवास के लिए जाते समय वे अत्यधिक दुःखी होते हैं, क्योंकि उनके लिए पिता जी से माता अधिक पूज्य हैं। इस तरह के आदर्श आचरण से रामायण में श्रीराम की भक्तिभावना दर्शित है।

भातृस्नेह :

अपने भाइयों के प्रति राम का स्नेह अत्यन्त है। राम के राज्याभिषेक की घोषणा होने पर वे लक्ष्मण से कहते हैं,

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रसाधि त्वं वसुन्धराम ।

द्वितीयं मेऽन्ततात्मायं श्रीरूपस्थिता ॥

सौमित्रे भुक्त्व भोगास्त्विमिष्टान् राज्यफलानि च ।

जीवितं च हि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये ॥^[7]

अर्थात्, हे लक्ष्मण! तुम मेरे साथ इस पृथ्वी का शासन करो। तुम मेरी दूसरी आत्मा के समान हो। अतः यह लक्ष्मी तुम्हें प्राप्त हुई है। तुम अभीष्ट भोगों तथा राज्यफल को भोगो। मेरा जीवन और राज्य सब कुछ तुम्हारे लिए है।

आज के जमाने में भला कोई इस तरह कहनेवाले हैं क्या? यहाँ हम देख सकते हैं कि राम का आदर्श। इतना ही नहीं आगे राम कहते हैं, तुम मेरे स्नेही, धर्म में रत, सदैव सन्मार्ग पर चलने वाले हो तुम मुझे प्राणों के समान प्रिय हो, मेरे अनुवर्ति, मेरे भाई एवं मित्र भी हो। बाद में युद्धभूमि में लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर राम विलापकरते हुए कहते हैं, इस मृत्यु लोक में दूँढने पर सीता जैसी रानीनारी तो मिल सकती है, लेकिन राम जैसा भाई नहीं मिल सकता। इस प्रकार से अन्यान्य परिस्थितियों में भी राम का अनुज प्रेम प्रकट होता है। राम को भरत जैसा भाई भी है जिसे राज्य देने के लिए कैकेयी ने राम को वनवास दिलाया और शत्रुघ्न जैसा तटस्थ भाई भी है। फिर भी इन भाइयों ने स्नेह नहीं छोड़ा। आज के समकालीन संदर्भ में भी इस प्रकार का आदर्श चरित्र प्रासंगिक है।

मैत्री भाव :

वाल्मीकीय रामायण में मित्रता के महत्व को विविध पात्रों के मुख से स्पष्ट कर दिया गया है। रामायण में राम और सुग्रीव की मित्रता का वर्णन विस्तार से मिलता है। मित्रता में दोनों की समावस्था इस मैत्री को दृढ करती है।

“ त्वं वयस्योऽसि मे हृद्यो ह्येकं दुःखं सुखं च नौ । सुग्रीवं राघवो वाक्यमितुवाच प्रहृष्टवत् ॥^[8]

अर्थात्, रामचंद्र ने सुग्रीव से कहा कि आप मेरे मित्र हैं, हृदय के प्यारे सखा हैं। आज से हम दोनों का सुख-दुःख समान है।

इस प्रकार राम कहकर आगे भी कहता है कि मैं जानता हूँ कि मित्रता का फल उपकार होता है। अतः मैं तुम्हारी भार्या का अपहरण करने वाले बाली का वध अवश्य करूँगा। तब सुग्रीव भी प्रसन्न होता है। वह भी अपनी मित्रता को निभाता है। वह कहता है कि तुम्हारे जैसे मित्र का मिलना दुर्लभ है वह

भी ऐसी विपत्ती के समय में मैं भी आपका कार्य करने के लिए तैयार हूँ। इस प्रकार वाल्मीकि ने राम-सुग्रीव की पारस्परिक मित्रता वर्णन प्रस्तुत किया है। शरणागत के संरक्षक :

महर्षि वाल्मीकि ने राम को शरणागत रक्षक कहा है। जब रावण का भाई विभीषण राम की शरण में आता है तो राम कहते हैं कि जो मित्र भाव से आया है उसका त्याग कभी नहीं करना चाहिए। भले ही उसमें दोष भी हो, क्योंकि शिष्ट जनों का यही अनिन्दित कर्तव्य है। वे कहते हैं कि शरण में आए हुए की रक्षा न करना महान दोष है। शरणागत की रक्षा न करना दुःखों का मूल है, अपयश का कारण है और शक्ति तथा पराक्रम का नाशक है। वास्तव में राम का व्रत भी यही। वे कहते हैं कि जो मेरी शरण में आकर कह दे कि मैं आपकी शरण में हूँ, मैं उसे प्राण मात्र से अभयदान प्रदान कर देता हूँ। इस तरह से राम ने अपनी मित्रता का भाव प्रकट किया है। इससे स्पष्ट होता है कि राम शरणागत के संरक्षक है।

आदर्श राजा :

श्रीराम के वनवास के बाद अयोध्या का राज्यभार स्वयं वहन कर एक आदर्श राजा सिद्ध हुए। राम राज्य में न तो विधवाओं का करुण क्रंदन था, न सर्पों का भय था। रामराज्य में किसी प्रकार की लूट-मार आदि अप्रिय घटनाएँ नहीं थीं। सभी अपने कर्तव्य के अनुसार धर्म कार्य में तत्पर रहते थे। रामराज्य में वृक्ष हमेशा फूलने और फलते रहते थे। वर्षादि ठीक समय पर होती थी। कोई भी लालची तथा लोभी न था। सारी प्रजा सत्यपरायण थी। इतना ही सब लोग शुभ लक्षणों से युक्त और धर्मपरायण थे। इसी तरह का रामराज्य की कल्पना महात्मा गाँधी जी ने भी की थी। इससे राम के आदर्शों का प्रभाव लोगों पर भी पड़ कर वे भी उन्हीं का अनुकरण और अनुसरण करते थे। निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि वाल्मीकीय रामायण में राम एक सत्यवादी, धर्मज्ञ, जितेंद्रिय और शान्त स्वभाव के पुरुष है। अतः राम की प्रासंगिकता आज भी है। राम के आदर्श का प्रचार-प्रसार की आवश्यकता भी है। हमारे और देश के विकास के लिए महाप्रतापी, दृढसंकल्पी, तेजस्वी, महान, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के आदर्शों को आत्मसाथ करना अत्यंत आवश्यक है।

सन्दर्भ

1. भारत भारती कोश, वेद प्रकाश सोनी। पृ. 191
2. वाल्मीकीय रामायण, अयोध्या कांड, श्लोक 10
3. वाल्मीकीय रामायण अयोध्या कांड, सर्ग 6, श्लोक 9
4. वाल्मीकीय रामायण, अरण्य कांड, सर्ग 6, श्लोक 20
5. वाल्मीकीय रामायण अयोध्या कांड, सर्ग 16, श्लोक 17
6. वाल्मीकीय रामायण अयोध्या कांड, सर्ग 4, श्लोक 25
7. वाल्मीकीय रामायण अयोध्या कांड, सर्ग 4, श्लोक 29-30
8. वाल्मीकीय रामायण, किष्किंधा कांड, सर्ग 4, श्लोक 13

श्रम संघ के प्रगति का काल (1924 से 1939 तक)

डॉ० सीमा पटेल

शोध निर्देशक, एसोसिएट प्राफेसर, इतिहास विभाग, सरदार वल्लभ भाई पटेल कॉलेज, भभुआ वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

नीतू कुमारी

शोधकर्त्री, इतिहास विभाग, सरदार वल्लभ भाई पटेल कॉलेज, भभुआ वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

भारतीय मजदूर वर्ग के आंदोलन में सन् 1926 से 1929 समय बहुत महत्वपूर्ण है।

संपूर्ण देश के राजनीतिक और आर्थिक जीवन में एक झंझावाती उथल-पुथल आसन था। भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन भी मजबूत नींव रखना और अग्रगति के लिए तैयार खड़ा था। इसलिए इस दौर के मजदूर आंदोलन पर कम्युनिस्ट विचार का काफी दृढ़ प्रभाव दिखाई पड़ता है। इन वर्षों के दौरान बड़ी-बड़ी हड़ताले हुईं। यद्यपि सरकार ने इस संघर्षों पर 'कम्युनिस्ट षड्यंत्र' का आरोप लगाने का प्रयास किया लेकिन कम्युनिस्टों के नेतृत्व में हुई बहुत सी हड़तालों, मजदूर वर्ग की समस्याओं का दमन करने और उनके अंदर सुलग रहे असंतोष की तीखी अभिव्यक्ति थी। राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर पर गतिविधियों और संघर्षों के बढ़ते स्तर के साथ-साथ संघर्ष के दौरान मजदूर वर्ग का वर्गीय दृष्टिकोण भी विकसित हुआ।

सन् 1929 में सरकार ने 'कम्युनिस्टों से खतरे' का हौवा खड़ा 'करके मजदूर वर्ग के जुझारू संघर्षों पर क्रूर दमन कर उनको उखाड़ फेंकने का प्रयास किया। सरकार ने उनके खिलाफ जनता को भड़काने की भी कार्यनीति अपनाई। तेजी से बढ़ रहे मजदूर वर्ग आंदोलन को राज्य के नियंत्रण में रखने के लिए एक तरफ सरकार ने 'इंडियन ट्रेड यूनियन ऐक्ट, 1926 (भारतीय ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926)' लागू किया तो दूसरी तरफ 'ट्रेड डिस्प्यूट ऐक्ट' (औद्योगिक विवाद अधिनियम) और 'पब्लिक सेफ्टी ऐक्ट' (जन सुरक्षा अधिनियम) के जरिए अपने दमनकारी इरादों को अंजाम दिया। इन कानूनों के सुनियोजित सामंजस्य से मजदूर वर्ग और जनता के जुझारू संघर्षों को समाप्त करने के लिए सरकार ने बड़ी सावधानी से कुचक्र बुना और 'कम्युनिस्ट खतरे' को समाप्त करने, इससे भारत को मुक्त कराने के लिए 'मेरठ षड्यंत्र केस' शुरू किया।

राजनीतिक संघर्ष में नया विश्वास

विगत कई वर्षों से संघर्ष न करने की जो नीति अपनाई जा रही थी उसके परिणामस्वरूप साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों में विघटन, विचलन और व्यापक हताशा व्याप्त हो गई। इसके अतिरिक्त सांप्रदायिक हिंसा के अंकुरण से इन शक्तियों का और भी पतन हुआ। साम्राज्यवादियों ने राष्ट्रीय आंदोलन की इन कमजोरियों पर बड़ी तेजी से गिरफ्त हासिल की और बहुत शीघ्र अपनी आर्थिक और प्रशासनिक नीतियों को पुनर्सुयोजित किया। अपनी दमनकारी नीतियों को क्रमिक चरणों में सधे हुए तरीके से लागू किया।

सन् 1927 का मुद्रा बिल (करेंसी बिल) भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए करारा झटका था। हिल्टन यंग करेंसी कमीशन 1925-26 ने रूपए के अवमूल्यन की सिफारिश की और एक रूपया की कीमत 1 शिलिंग 6 पेंस के बराबर निर्धारित की। इंडियन स्टील प्रोटेक्शन बिल 1924 के संशोधन के द्वारा 1927 में सरकार ने ब्रिटिश स्टील के लिए लाभकारी दरें तय की। इस प्रकार सरकार की राजकोषीय नीति का इस प्रकार परिवर्तन किया गया की बीस के दशक के प्रारंभ में भारत में औद्योगिकरण के लिए स्वीकृत शुल्क व्यवस्था को बदल दिया गया और फिर साम्राज्यवाद की प्राथमिकता वाला युग आ गया।

इस नए आर्थिक हमले से सामंजस्य स्थापित कर नवंबर 1927 में ब्रिटिश मंत्रिमंडल ने लंदन में साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की।

इस कमीशन को संसदीय लोकतंत्र के लिए भारतीयों की योग्यता की जाँच और कुछ प्रशासनिक सुधारों की सिफारिश करनी थी। ब्रिटिश राजनेता, सर जान साइमन के नेतृत्व वाले इस कमीशन में कोई भी भारतीय प्रतिनिधि नहीं था।

साम्राज्यवादियों की आशा के विपरीत, इस घोषणा ने राष्ट्रीय आंदोलन को नई गति प्रदान कर दी और साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों को पुनः एकताबद्ध करने में मदद की। कुछ समय के लिए भारतीय पूँजीपति वर्ग ने साम्राज्यवादियों के साथ किसी भी प्रकार के तालमेल की आशा छोड़ दी और जनआंदोलन की ताकतों को काम में लगाने के लिए बाध्य हुआ। लेकिन मजदूर वर्ग और जनता में विकसित हुई नई चेतना और साम्राज्यवादियों के साथ-साथ भारतीय

शोषकों के खिलाफ एक स्वतंत्र राजनीतिक संघर्ष संचालित करने की तैयारी से भारतीय पूँजीपतियों के लिए स्थिति कुछ ज्यादा कठिन थी। जनता के बढ़ते असंतोष और संघर्ष के नए चरित्र ने डावांडोल पूँजीवादी नेतृत्व में घबराहट पैदा कर दी और बाद के राजनीतिक आंदोलन में इस दुविधा ने काफी मुसीबत खड़ी कर दी।

काँग्रेस ने कमीशन (आयोग) को खारिज कर दिया और इसकी कार्रवाई का बहिष्कार करने का निर्णय लिया। सन् 1927 के मद्रास अधिवेशन में प्रस्ताव स्वीकार कर काँग्रेस ने स्वराज के वास्ते भारतीयों की योग्यता का परीक्षण करने वाले कमीशन (आयोग) का हिस्सा बनने से इंकार कर दिया जिसमें कोई भारतीयों का प्रतिनिधि भी नहीं था। काँग्रेस ने इस घटना को राष्ट्रीय अपमान कहा। लिबरल फेडरेशन और मुस्लिम लीग ने भी कमीशन (आयोग) का बहिष्कार किया।

पूरे देश भर में साइमन कमीशन के खिलाफ प्रदर्शन हुए और 3 फरवरी 1928 को जब साइमन कमीशन ने मुंबई में भारतभूमि पर पैर रखा, 'साइमन वापस जाओ' के नारों के साथ हजारों जनता ने आक्रोश पूर्ण प्रदर्शन किया।

जनता की यह एकता किसी राजनीतिक कार्यक्रम पर आधारित नहीं थी बल्कि इस साझा साम्राज्यवाद विरोधी नारे ने जनता को एकताबद्ध कर दिया। इस राष्ट्रीय राजनीतिक संघर्ष की लहर में भारी संख्या में मजदूर वर्ग की भागीदारी एक महत्वपूर्ण विकास था। स्वतंत्र राजनीतिक शक्ति के रूप में मजदूर वर्ग के उदय से भारत के राष्ट्रीय संघर्ष में एक नई गतिशीलता को बढ़ावा मिला। अभी तक मजदूर वर्ग राजनीतिक संघर्ष में नेतृत्वकारी भूमिका में आने योग्य नहीं था। लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी साहसिक भागीदारी, अनेक आर्थिक संघर्षों का संचालन, और जुझारू ट्रेड यूनियनों ने मजदूर वर्ग को अपना राष्ट्रीय नेतृत्व विकसित करने का अवसर दिया। मजदूर वर्ग की इस राजनीतिक पहलकदमी ने समाजवाद को मजदूर वर्ग का दर्शन और उसे भारत की एक राजनीतिक शक्ति के रूप में स्थापित किया।

इन क्रांतिकारी और वामपंथी शक्तियों की पहलकदमी का प्रभाव काँग्रेस पर भी पड़ा। काँग्रेस के मद्रास अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्ताविक और सुभाषचंद्र बोस के समर्थकों द्वारा समर्थित की 'राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य पूर्ण स्वतंत्रता' का प्रस्ताव अप्रत्याशित रूप से निर्विरोध स्वीकार हो गया। वास्तव में यह प्रस्ताव गाँधीजी की अनुपस्थिति में पारित हुआ। जिन्होंने बाद में इसका खंडन किया और 'जल्दबाजी में स्वीकृत और विचारहीनता में पारित' प्रस्ताव कहा। 'इस अधिवेशन को काँग्रेस ने, हाल ही में स्थापित इंटरनेशनल लीग अगेस्ट इंपीरियलिज्म (साम्राज्यवाद विरोधी अंतराष्ट्रीय लीग) से संबंध करने का भी निर्णय लिया। इस अधिवेशन ने जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस दोनों को काँग्रेस का महासचिव चुना। यह दोनों युवकों और वामपंथ के प्रतीक थे।

1928 की घटनाओं ने इसकी पुष्टि की कि काँग्रेस में वामपंथ की विजय सत्यता से ज्यादा दिखावटी थी। मजदूर वर्ग द्वारा जुझारू हड़तालों से उत्पन्न तूफानी स्थिति, साइमन कमीशन के खिलाफ जनता के प्रदर्शनों, युवाओं और छात्रों के जुझारू आंदोलनों ने काँग्रेस के बुजुर्ग नेताओं के छक्के छुड़ा दिए। इसलिए पूर्ण स्वतंत्रता की माँग को दरकिनार कर काँग्रेस द्वारा सर्वदलीय सम्मेलन और लिबरल फेडरेशन और मुस्लिम लीग की बैठक लखनऊ में अगस्त 1928 को हुई इसमें मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति को 'एक जिम्मेदार सरकार बनाने के लिए मसौदा संविधान लिखने की जिम्मेदारी दी गई।

अनुभवी काँग्रेसियों, नरमपंथियों और बाहर के प्रतिक्रियावादियों से समझौते के बाद बनी यह कमेटी, युवकों की पूर्ण स्वतंत्रता की माँग को पूर्णतः नकार नहीं सकी। इसलिए बड़ी चालाकी से रिपोर्ट में पूर्ण स्वतंत्रता को 'साम्राज्य के आधीन स्वतंत्र राज्य' के रूप में व्याख्यायित किया गया।

इस रिपोर्ट की संकीर्णता और आंतरिक विसंगतियों के कारण शीघ्र ही सर्वदलीय कमेटी का खुद ही पतन हो गया। सर्वदलीय कमेटी की रिपोर्ट पर बहस करने के लिए दिसंबर 1928 को कोलकत्ता में हुई बैठक में हिंदू, मुस्लिम और सिख सांप्रदायिकतावादियों के बीच खुलकर संघर्ष हुआ। जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम सांप्रदायिकतावादी और सिक्ख सांप्रदायिकतावादियों ने बैठक का बहिष्कार किया।

भयावह संकट उत्पन्न हो गया था। 'साम्राज्य के आधीन स्वतंत्र राज्य (डामिनियन स्टेट्स) की बात पर तीखा विरोध हुआ। काँग्रेस के अंदर मौजूद वामपंथियों ने मद्रास अधिवेशन में स्वीकृत पूर्ण स्वतंत्रता' के नारे को लागू करने पर दबाव बनाया। इस अवसर पर छह वर्ष की राजनीतिक निष्क्रियता से गाँधीजी फिर काँग्रेस को गंभीर संकट और आंतरिक कलह से उबारने के लिए सामने आए। रजनी पाम दत्त के शब्दों में, 'पूँजीपतियों की समस्त आशाएँ (कुछ लोग इसे साम्राज्यवादियों की आशा भी कह सकते हैं) गाँधीजी पर टिकी थी। गाँधीजी जनआंदोलनों की लहरों पर सवार होकर उन्हें एक सफलतापूर्वक समझौते तक ले जा सकते थे और दूसरी तरफ भारत को क्रांति से बचा सकते थे।

गाँधीजी ने दिसंबर 1928 में काँग्रेस के कोलकत्ता सम्मेलन में भागीदारी की और उसकी रिपोर्ट को पारित करवाने के लिए कठोर परिश्रम किया। यह रिपोर्ट अल्प बहुमत से इस आश्वासन के साथ पारित हुई कि 31 दिसंबर 1928 तक सरकार द्वारा यह रिपोर्ट स्वीकार न की गई तो काँग्रेस अपने अहिंसक, असहयोग आंदोलन के फैसले को लागू करेगी और इस बार जनता से कर न अदा करने का आह्वान किया जाएगा।

इस प्रकार उन्होंने पूरा एक वर्ष बरबाद कर दिया और निर्णय तब किया जब जनता का व्यापक असंतोष पूरे उभार पर था।

एक वर्ष बाद दिसंबर 1929 में काँग्रेस की बैठक लाहौर में हुई। ऐसी परिस्थिति में जब जनता में व्यापक असंतोष सुलग रहा था। लाहौर अधिवेशन ने काँग्रेस के धर्म सार के रूप में पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा की और काँग्रेस कमेटी को नागरिक अवज्ञा कार्यक्रम की शुरुआत करने और जहाँ उचित समझे, कर न अदा करने का कार्यक्रम भी लागू करने को कहा।

गाँधीजी ने शक्ति संतुलन को समझा और घटना परिवर्तन को आत्मसात किया। इसलिए उन्होंने काँग्रेस का अध्यक्ष बनने से मना कर दिया और इस शोभायमान पद के लिए जवाहरलाल नेहरू को मनोनीत कर दिया।

31 दिसंबर 1929 की मध्यरात्रि, जब नया वर्ष प्रारंभ हो रहा था, नेहरू ने भारतीय स्वतंत्रता का झंडा लहराया और 26 जनवरी 1930 को जब पूरे देश में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया था तब पूर्ण स्वतंत्रता के लिए शपथ की घोषणा की गई 'अगर हम ऐसे ही और बैठे रहे तो यह जनता और भगवान के खिलाफ अपराध होगा।

नई आशाएँ और अभिलाषाएँ उछाल मार रही थीं। जनता पूर्ण स्वतंत्रता के लिए दृढ़ संकल्पित थी।

भारतीय ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926 (इंडियन ट्रेड यूनियन ऐक्ट 1926)

साम्राज्यवादी शासक ट्रेड यूनियन गतिविधियों को प्रोत्साहन देने और ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं की रक्षा करने के लिए किसी कानून को बनाने और उसकी वैधानिक मान्यता देने की आवश्यकता नहीं महसूस करते थे। यद्यपि विश्व युद्ध की समाप्ति के ठीक बाद ही भारत में संगठित ट्रेड यूनियन आंदोलन ने स्वरूप ग्रहण कर लिया था फिर भी भारतीय ट्रेड यूनियन अधिनियम 1926 में ही पारित हुआ। लेकिन यह अधिनियम इस प्रकार से बनाया गया कि ट्रेड यूनियनों को खुद इससे रक्षा करनी पड़ी। यद्यपि भारतीय दंड संहिता 1913 में संशोधन कर ट्रेड यूनियनों को वस्तुतः गैरकानूनी संगठन के रूप में वर्गीकृत कर दिया गया था। सन् 1921 में बी. पी. वाडिया के कानूनी अभियोजन के समय से ही ट्रेड यूनियनों के संबंध में कानून बनाने की माँग उठ रही थी। लंबे समय से ट्रेड यूनियन कार्यवाहियों के बारे में ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं की रक्षा के लिए कोई कानून नहीं था। बी.पी. वाडिया के अभियोजन के बाद ए.आई.टी.यू.सी. ने लंदन की वर्कर्स वेलफेयर लीग के माध्यम से ब्रिटिश सरकार से उस विषय पर विचार विमर्श का प्रयास किया। तदनुसार ब्रिटिश ट्रेड यूनियन काँग्रेस का एक प्रतिनिधि मंडल सपरूजी सकलतवाला के नेतृत्व में भारत राज्य के सचिव मि. मांटैग्यू से 22 मार्च 1921 को मिला। प्रतिनिधि मंडल ने मि. मांटैग्यू को यह समझाने का प्रयास किया कि भारतीय ट्रेड यूनियन आंदोलन के शैशव काल में सरकार को उन लोगों की मदद करनी चाहिए जो लोग मजदूरों को संगठित करने के लिए समर्पित होने का कानूनी अधिकार है और उनके इस अधिकार को सरकारी शक्ति और प्रभाव से सुरक्षा प्रदान की जाना चाहिए।

भारत सरकार ने सन् 1921 में एक सर्कुलर जारी कर इस बारे में अपना रुख स्पष्ट किया। सर्कुलर में ट्रेड यूनियन के उद्देश्य और संविधान तय करने की आवश्यकता बताई गई, वहीं ट्रेड यूनियन आंदोलन को 'सही' और 'विवेकपूर्ण' दिशा में चलाने पर बल दिया गया। लेकिन 1921-22 के दौरान आंदोलन की घोषणा हो जाने से सरकार ने इस मामले को आगे बढ़ाने में कोई रुचि नहीं दिखाई।

सन् 1921 में लेजिस्लेटिव असेंबली के नामित सदस्य एन.एम. जोशी ने विधानसभा (असेंबली) में ट्रेड यूनियनों के पंजीकरण और वास्तविक ट्रेड यूनियन गतिविधियों के लिए ट्रेड यूनियन पदाधिकारियों की नागरिक और अपराधिक मामलों के दायित्वों से सुरक्षा संबंधी प्रस्ताव पेश किया। साम्राज्यवादी शासकों ने इस प्रस्ताव का कड़ा विरोध किया क्योंकि उनके लिए ट्रेड यूनियन गतिविधियों का मतलब कानून और व्यवस्था से अधिक कुछ नहीं था। उनके कहने का आशय था कि मिस्टर जोशी हिंसक गतिविधियों के लिए सुरक्षा पाने का प्रयास कर रहे हैं, इसलिए यह प्रस्ताव एक खतरनाक चाल है।

इसके बाद सर थामस हालैंड ने केवल ट्रेड यूनियनों का पंजीकरण करने और ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं को कोई कानूनी सुरक्षा न प्रदान करने संबंधी संशोधित प्रस्ताव पेश किया। विधानसभा ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस बुनियादी संशोधन से जोशी के प्रस्ताव के दोनो उद्देश्य मात खा गए।

भारतीय ट्रेड यूनियन ऐक्ट 1926 के नियमानुसार यूनियनों का पंजीकरण, उसका संविधान और लेखा परीक्षक द्वारा जाँचा हुआ खाता अनिवार्य है। इस ऐक्ट के नियमानुसार ट्रेड यूनियन की कार्यकारिणी के 50 प्रतिशत सदस्य उसी उद्योग में कार्यरत होने चाहिए और बाहर के सदस्यों का प्रतिशत पचास से अधिक नहीं होना चाहिए। इस ऐक्ट ने यूनियन कोष के खर्च को सख्ती से वैध उद्देश्यों तक सीमित कर दिया और नागरिक और राजनीतिक कार्यों के लिए कोष के प्रयोग पर पाबंदी लगा दी।

भारतीय ट्रेड यूनियन ऐक्ट 1926 और उसी दौरान इंग्लैंड में प्रचलित ट्रेड यूनियन ऐक्ट में बहुत अंतर था। भारत का ऐक्ट पंजीकृत और गैर पंजीकृत यूनियनों में फर्क करता था पर ग्रेट ब्रिटेन में इस प्रकार का अंतर नहीं था। ट्रेड यूनियन गतिविधियों पर कठोर प्रतिबंध लगाना, उनके कोष पर आपत्ति उठाना और ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं को यूनियन गतिविधियों के लिए नागरिक और अपराधमूलक जिम्मेदारी से सुरक्षा प्रदान करने से इंकार करना सरकार द्वारा भारतीय ट्रेड यूनियन आंदोलन के प्रति औपनिवेशिक रुख का परिचायक है। पंजीकृत ट्रेड यूनियन के कोष के संबंध में इन औपनिवेशिक प्रतिबंधों के साथ-साथ, भारतीय दंड संहिता की धारा 120बी का लागू करना वास्तव में गैर पंजीकृत यूनियनों की सामूहिक कार्यवाहियों को गैर कानूनी घोषित करना था। भारत में रॉयल कमीशन आन लेबर' द्वारा, गैर पंजीकृत यूनियनों के सदस्यों और पदाधिकारियों पर सरकार द्वारा कानूनी कार्यवाहियों के अनेक साक्ष्य एकत्र किए गए।

इस ऐक्ट के आपेक्षित लक्ष्यों के खिलाफ भारतीय ट्रेड यूनियनों ने भारी प्रतिरोध की आवाज बुलंद की।

सन् 1927 में ए.आई.टी.यू.सी के सातवें दिल्ली अधिवेशन में इस ऐक्ट का कड़ा विरोध हुआ। विशेष रूप से यूनियन फंड के प्रयोग पर लगाए गए प्रतिबंधों का विरोध हुआ। अधिवेशन में, इंग्लैंड की तरह भारतीय ट्रेड यूनियनों के फंड पर से सरकारी प्रतिबंधों को समाप्त करने की माँग की गई।

सन् 1928 में एन.एम.जोशी ने लेजिस्लेटिव असेंबली में गैर पंजीकृत यूनियनों को कानूनी सुविधाएँ प्रदान करने के लिए एक बिल पेश किया लेकिन बिल पारित नहीं हो सका। इसके साथ ही साथ उद्योग मंत्री सर थामस हालैंड ने ऐक्ट के बारे में उठी आपत्तियों की सरकारी व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा कि इस ऐक्ट का उद्देश्य ट्रेड यूनियनों को 'स्वस्थ दिशा' में विकसित करना है।

ऐक्ट के नियमों और सरकारी प्रवक्ता की अभिव्यक्ति से यह बिलकुल साफ हो गया कि सरकार ट्रेड यूनियनों को सरकारी निर्धारित लाइन के अनुरूप विकसित करना चाहती थी। इस ऐक्ट के तीन वर्ष बाद ट्रेड डिस्प्यूट ऐक्ट पारित होने पर सरकार द्वारा ट्रेड यूनियनों पर कठोर नियंत्रण कायम करने की मंशा स्पष्ट रूप से सामने आ गई।

तत्कालीन मजदूर नेता, पंजीकृत और गैर पंजीकृत ट्रेड यूनियनों के बीच विभेदीकरण और खास तौर पर गैर पंजीकृत यूनियनों को वस्तुतः गैर कानूनी करार देने के सख्त खिलाफ थे। उनकी भावना थी कि भारतीय ट्रेड यूनियन आंदोलन की आरंभिक अवस्था में गैर पंजीकृत यूनियनों का होना स्वाभाविक था और इसलिए ऐसी यूनियनों को भी कानूनी सुरक्षा प्रदान करना सरकार की जिम्मेदारी है। दो मजदूर नेताओं (एन.एम.जोशी और लाला लाजपत राय) ने लेजिस्लेटिव असेंबली में इसका प्रबलतापूर्वक समर्थन किया।

रायल कमीशन आन लेबर इन इंडिया 1931 ने भी अपनी रिपोर्ट में सरकार द्वारा ट्रेड यूनियन गतिविधियों को 'सही' और 'विवेकपूर्ण' लाइन पर चलाने के लिए, इस घोषित नीति को सही ठहराया और आगे कहा कि ट्रेड यूनियन आंदोलन के हित में ऐसा ऐक्ट बहुत पहले ही लागू होना चाहिए था।

भारत में जब ट्रेड यूनियनों का गठन प्रारंभ हुआ और देश के विभिन्न भागों में आंदोलन फूट पड़ा तब घबराहट और दुश्चिन्ता से घिरी साम्राज्यवादी सरकार ने ट्रेड यूनियन आंदोलन को अर्थवाद की सीमाओं में बांधकर रखने और इसे राजनीतिक स्वरूप ग्रहण करने से रोकने के लिए चारों तरफ से घेरा डालने और शिकंजा कसने की कार्यनीति अपनाई। आतंकित साम्राज्यवादी इस कोशिश में थे कि मजदूर वर्ग राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में किसी भी प्रकार शामिल न हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार ने ट्रेड यूनियन ऐक्ट में अनेक प्रतिबंधों के साथ, खास तौर पर यूनियन कोष को राजनीतिक इस्तेमाल से रोकने के लिए नियम बनाएँ इन प्रावधानों के लागू करने से भारतीय ट्रेड यूनियन आंदोलन के स्वतंत्र विकास में साम्राज्यवाद का गंगा हस्तक्षेप दिखाई दिया।

संदर्भ सूची:

1. आर.पी. दत्त, इंडिया टुडे, पृ. 295
2. बांबे लेबर गजेट, फरवरी 1922, पृ. 40-44
3. रिपोर्ट ऑफ दि रॉयल कमीशन आन लेबर इन इंडिया, 1931, पृ. 198
4. वहीं, पृ. 203
5. आर.के. मुखर्जी, द इंडियन वर्किंग क्लास, पृ. 144-45

बसौली लघु चित्रों में सांस्कृतिक प्रभाव

डॉ० पुनीता शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, चित्रकला विभाग, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स, कॉलेज, मुरादाबाद। (30प्र0)

बसौली चित्रकला के इतिहास के सम्बन्ध में सर्वप्रथम प्रमाणिक उल्लेख भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित एक वार्षिक सरकारी विज्ञप्ति (रिपोर्ट) में सन् 1921 में प्रकाशित हुआ था, जिसमें उसे मुगल शैली के पूर्वाङ्क विकसित हुई कला के अन्तर्गत रखा गया है। सन् 1930 में जे०सी० ने पंजाब की पहाड़ी रियासत का भ्रमण किया तथा चम्बा, मण्डी और सुकेत² में बसौली से मिलते-जुलते चित्रों का दृश्यावलोकन किया अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बसौली चित्रशैली अपनी समीपवर्ती रियासतों में मान्य एवं प्रचलित चित्रण शैली थी।

श्री एम०एस० रन्धावा को सन् 1950-55 के मध्य की यात्राओं में बसौली चित्रशैली के अनेक चित्र हरिपुर- गुलेर, लम्बा ग्राम, नादौन, नूरपुर, कुल्लू के राजाओं के संग्रहों में प्राप्त हुए हैं।³ इन चित्रों से स्पष्ट होता है कि बसौली चित्रशैली काँगड़ा कला के परिपक्व होने से पूर्व पंजाब एवं जम्मू की पहाड़ी रियासतों में लोककला की परम्परा लिए हुए मुगल शैली की तकनीक के समन्वय के साथ प्रचलित रही।

बसौली चित्रशैली के इतिहास एवं तवारीख-ए-राजपूताना के लेखक ठाकुर काहन सिंह बलौरिया का कथन है कि राजाओं के महल भित्ति चित्रों से सुसज्जित थे। जिनमें नायिका तथा अन्य श्रृंगारिक विषयवस्तु को लेकर चित्र अंकित हुए थे।⁴ बसौली महापतियों का इतिहास पौराणिक कथाओं में विलीन हो गया। बसौली राज्य के संस्थापक भोजपाल (765ई०), जो कुल्लू के नरेश के पुत्र थे, उन्होंने राणा बिल्लों को पराजित कर बलौर राज्य की स्थापना की। उसने बलौर अथवा बल्लपुरा को अपनी राजधानी बनाया, जो भीती⁵ तरंगिणी के तट पर स्थित है। बसौली के नरेशों को उनकी प्राचीन राजधानी के नाम पर बलौरिया कहा गया।⁶

सोलहवीं शताब्दी में कृष्णपाल बसौली का ऐसा शासक रहा, जिसके मुगल शासकों से भी सम्पर्क बने। उसके पौत्र भूपतपाल का बसौली में एक चित्र उपलब्ध है। भूपतपाल की मृत्योपरान्त उसका सात साल का पुत्र संग्रामपाल राजसिंहासन पर आसीन हुआ। जब वह बारह वर्ष का था, तब सौन्दर्योपासक सम्राट शाहजहाँ ने उसकी सुन्दरता के कारण उसे अपने राज्य में संरक्षण दिया। इस घटना से बसौली राज्य का मुख्य दरबार से गूढ़ सम्बन्ध हो गया और मुगल दरबार के अनेक चित्रे बसौली में चले गये।

संग्रामपाल की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हिन्दलपाल राज्य गद्दी पर बैठा। उसके पश्चात् उनका पुत्र कृपालपाल (सन् 1678-93 ई०) बसौली कलम का संरक्षक एवं प्रवर्तक माना गया। उसी के पोषण में बसौली कलम विकसित होकर एक विशिष्ट शिल्प के रूप में विकसित हुई। बसौली में पाल- वंशीय राजाओं के संरक्षण के पहाड़ी कलम विकसित हुई। भूपतपाल ने राजमहल का भी निर्माण कराया तथा उसके उत्तराधिकारियों- संग्रामपाल, हिन्दपाल, कृपालपाल, धीरजपाल, मेदिनीपाल, अमृतपाल और महेन्द्रपाल ने भी समय-समय तक भवनों का निर्माण कराया, जिनकी भित्ति पर सुन्दर नक्काशी थी तथा शिल्पकला की दृष्टि से जो निखरे हुए थे। पहाड़ी राज्यों, विशेषकर काँगड़ा के अवसान के कारण बसौली शैली का प्रभाव भी प्रायः लुप्त हुआ माना जाता है।

17वीं तथा 18वीं शताब्दी में एकमात्र व्यापारिक मार्ग के कारण बसौली अत्याधिक सम्पन्न था। कहा जाता है कि कश्मीरी परमीना से जुलाहों के 700 परिवारों ने अपने व्यापार को विकसित किया। बलौरिया के काहनसिंह (बसौली के इतिहासकार) के अनुसार बसौली नगर के पहले रावी तरंगिणी के दाहिने तट से लगा हुआ था और कुछ वर्ष पूर्व तक इसके भग्नावशेष दृष्टिगोचर होते थे। वर्तमान बसौली रावी नदी के तट पर 2170 फुट की ऊँचाई पर छः मील तक दक्षिण पश्चिम की ओर उपजाऊ भूमि पर स्थित है।

मुगल साम्राज्य की कट्टर एवं आतंकवादी नीतियों से चित्रकारों को राज्याश्रयों से इधर-उधर भागना पड़ा। सुरक्षित स्थानों की खोज करते हुए वह पहाड़ी क्षेत्रों में जा बसे। हिमाचल के प्राकृतिक सौन्दर्य ने उन्हें मोह लिया। पर्वतमालाओं के पीछे एकान्त एवं एश्वर्य से भरे पठान के रंगीन आँचल ने सृजन हेतु कलाकारों को सुरक्षित स्थान प्रदान किया। इन चित्रकारों के आवास से पूर्व चित्र-परम्परा अपने यौवन पर थी किन्तु पहाड़ी एवं मुगल शैली के सुन्दर समन्वय ने इसे मौलिक चित्रशैली की वाणी दी, अनुरूप आश्रयदाता तथा समृद्ध एवं सुसंस्कृत पहाड़ी परम्परा प्रदान की। मैदानी भागों से आये चित्रकारों ने प्रकृति का पूर्ण रसपान कर वहाँ के जीवन में अपने को समाहित कर लिया। उन्होंने पहाड़ी आँचल को वृन्दावन बनाया। पहाड़ी सुन्दरियों को गोपी व राधा की कल्पना में साकार कर लिया एवं नायक कृष्ण का आवाहन स्वतः ही मूर्त रूप में उठा।⁷ इस प्रकार एक समन्वित शैली का जन्म हुआ। हिमाचल और कश्मीर के पहाड़ी सौन्दर्य ने मैदानी शुष्कता को दूर फेंक, अपूर्व सौन्दर्य के पुष्प विकसित किये।

राजपूत चित्रकला के सदृश्य बसौली चित्रों में वैष्णव धर्म ही मुख्य विचार धारा है। सोलहवीं शताब्दी के सन्तों एवं आध्यात्मिक विद्वानों के भक्तिभाव से पूर्ण काव्य सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दी में चित्रित किये गये हैं। बसौली चित्रों में हिन्दू धर्म के विचारों एवं पौराणिक कथाओं को दर्शाया गया है। विष्णु एवं उनके दशावतारों के अनेक चित्र अंकित हैं। रामायण के चित्रों की दो शृंखलायें हैं जिनमें से एक बसौली में तथा दूसरी जम्मू में निर्मित की गयी है। रसमंजरी

का चित्रण काव्य को चित्र का मूलाधार मानकर हुआ है। इसके अतिरिक्त स्थानीय संस्कृति भी चित्रों में दृष्टिगोचर होती है।⁷

भानुदत्त एवं श्रृंगारिक संस्कृत काव्य 'रसमंजरी' में राधाकृष्ण के माध्यम से श्रृंगारिक भावों की पूर्ति हुई है। बारहवीं शताब्दी में जयदेव कृत 'गीतगोविन्द' प्रेमकाव्य रचना में श्रीकृष्ण के सुन्दर चित्र बनाये गये हैं। सन् 1730 में बसौली में सर्वप्रथम गीत गोविन्द काव्य पर एक श्रृंखला चित्रित की गयी। गीतगोविन्द सम्बन्धी चित्रों में प्रकृति का सूक्ष्म एवं मुखर अंकन किया गया है। इसके अतिरिक्त बसौली चित्रशैली के मुख्य विषय भागवतपुराण, रागमाला, बारहमासा, रसिकप्रिया तथा महाभारत रहे हैं। राममाला तथा बारहमासा चित्रों में कृष्ण और राधा को नायक- नायिका के रूप में अंकित किया गया है। कृष्ण का चित्रण पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार है किन्तु इनका श्रृंगार भाव रीतियुगीन कलाकारों की सखियों के अनुसार था। अतः दोनों कालों के सन्धियुग में इस रचना की बनी चित्रावलियाँ शैली की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण थीं।⁸ भागवतपुराण में कृष्णलीला के चित्र उपलब्ध होते हैं।

बसौली शैली में चित्रित राममाला के चित्रों में संयोजन की सरलता एवं रंगों का सौजन्य है जिसके कारण यह चित्र बसौली के अन्य चित्रों से प्रथक् लगते हैं। बसौली चित्रण शैली के विधान की विशेषता उसके चक्षु-चित्रण में है। इस शैली के सम्पूर्ण चित्रों का केन्द्रबिन्दु उसके पद्माकार, कर्णस्पर्शी और रसभावपूरित नयनों में है। इन चित्रों की दूसरी विशेषता मुद्रायें हैं। बसौली के चित्रकारों ने अजन्ता से प्रभावित होकर हस्त मुद्राओं का सफल चित्रण किया है, अतः यह हस्त-मुद्रायें बसौली के चित्रों में भावाभिव्यंजना का सफल माध्यम है।⁹ हस्त मुद्रा के प्रसंग में श्री अरविन्द ने प्रकाश डाला है- हाथों की यह भावमुद्रा चेहरों और आँखों के संकेत को जिस ढंग से सूक्ष्मतापूर्वक दोहराती या परिपूर्ण बनाती है, वह सदा ही एक अन्यतम प्रमुख वस्तु होती है जो दृष्टि को आकर्षित करती है।¹⁰ इस शैली के चित्रों से प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण शैली बल एवं ओज की परिचायक है। रेखायें आकृति के भावों को व्यक्त करती हैं। इस शैली के चित्रों में कमल के समान बड़े तथा लुभावने नेत्र हैं एवं ठोड़ी कुछ गोलाकार- सी है।

बसौली चित्रशैली में नारी अपने तन को चोली, घाघरा, दुपट्टा आदि झीने वस्त्रों से ढके हुए है। नारियों के केशों के सम्बन्ध में विशेषता, स्पष्टरूपेण अंकित की गयी है। इन चित्रों में केश अधिकांशतः खुले हुए हैं, वेणी अथवा जूड़े में बंधे हुए नहीं हैं। पुरुषों को (औरंगजेब कालीन मुगलढंग का) घेरदार जामा तथा पीछे को झुकी पगड़ी पहने दर्शाया गया है।

बसौली चित्रशैली की विशेषताओं (रेखा, रंग भाव की प्रबलता आदि) के सम्बन्ध में शान्तिस्वरूप ने अपनी पुस्तक में भी लिखा है।¹¹ रंगों के उपयोग द्वारा कलाकारों की दक्षता का आभास होता है। बसौली शैली में आकृतियों को प्रचुर मात्रा में आभूषण धारण किये चित्रित किया गया है। आभूषणों में काले कुन्दनों का चित्रण हुआ है। यह परम्परा अपभ्रंश तथा राजस्थानी शैली का प्रभाव लिये है।

बसौली शैली के चित्रांकन से ज्ञात होता है कि प्रकृति का सौन्दर्य तथा प्रतीक दोनों ही रूपों में अंकन किया गया है, जो विषयानुकूल है। नायक नायिकाओं से सम्बन्धित विषयों में कपोत- युग्म तथा शुक, विरहिणी नायिका के साथ मंजनू वृक्ष तथा नवयौवना के साथ पके फलों से युक्त आमवृक्ष का अंकन हुआ है। 'गीतगोविन्द' के चित्रों में नुकीले वृक्षों का अंकन इच्छा के प्रतीक रूप में हुआ है। लाल रंग प्रेम के देवता का तथा नीला रंग कृष्ण एवं वर्षा के बादलों का प्रतीक है। इस चित्रावली में पीले, लाल, नीले रंगों का प्राथमिक विरोधी प्रयोग आनन्ददायक और सुन्दर है। इसी प्रकार का वर्णन कृष्ण चौतन्य ने अजन्ता चित्रों में रेखा और रंग दोनों के द्वारा आकृति निरूपण में किया है।¹² अजन्ता की भाँति पहाड़ी चित्रों में भी रेखा व रंग द्वारा आकृति को विभिन्न रूपों में अंकित किया गया है।

बसौली शैली के चित्रों में शक्तिशाली प्राथमिक विरोधी रंगों के प्रयोग के साथ सुनहरे, रूपहले रंगों का प्रयोग नारी के आभूषणों, कपड़ों व कशीदाकारी में किया गया है। इस चित्रशैली की विशेषता है- चित्रों में अलंकृत हाशिये और लेख, चमकदार भावपूर्ण रंग, प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण/क्षितिज, वर्षा, बादल, पशु-पक्षी, वृक्ष नदी, झील, तालाब, नारी चित्रण- पहनावा, आभूषण तथा आकृति चित्रण में लावण्य की शोभा, भवन तथा नायक नायिका के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के वृक्षों को विशेष भावपूर्ण आकृतियों में अंकित किया गया है। बसौली के आरम्भिक चित्रों में यद्यपि लोकशैली के तत्व विद्यमान हैं, किन्तु वेशभूषा के दृष्टिकोण से यह दरबारी चित्रों के निकट हैं।

बसौली के चित्रकारों में देवीदास, रांझा मानकू, नलगढ़, के हरीसिंह तथा नरसिंह विख्यात हैं। गुलाम मुहम्मद के पिता एवं पितामह भी बसौली के चित्रकारों में अग्रणी रहे हैं। मानकू चित्रकार ने भक्ति-संगीत-साहित्य की उच्च भावना से गीतगोविन्द को चित्रित किया। बसौली के चित्रकारों ने रंगों का मौलिक एवं सजीव प्रयोग ही नहीं किया बल्कि स्त्री और पुरुष मुखाकृतियों को नवीन रूप भी प्रदान किया। बसौली चित्रों में मानवाकृतियों की मुखाकृति विशिष्ट प्रकार की है। चित्रों में आकृतियों को अलंकरणों से सुसज्जित किया गया है। रत्नों से जड़ित मुकुट, कण्ठाभूषण (हार) कंगन एवं बाजूबन्द सौन्दर्यता से चित्रित किये गये हैं। चित्रकारों ने बसौली शैली को अपने युग की प्रभावशाली एवम् अत्यन्त लोकप्रिय शैली बना दिया।

बसौली चित्रण अपने युग की प्रभावशाली एवं विख्यात चित्रशैली है। इसका प्रचार पंजाब, गढ़वाल, तिब्बत, नेपाल आदि देशों में हुआ। बसौली चित्रशैली पहाड़ी चित्रकला की एक प्रमुख धारा के रूप में विकसित हुई, इसका काँगड़ा चित्रणशैली से निकट का सम्बन्ध रहा, आपसी समानतायें भी प्राप्त हुई, किन्तु फिर भी अपनी विशेष विधा के कारण इसके अधिकांश चित्र पहचाने जा सकते हैं। इसके रंग विधान में अपूर्वता, चित्रों में भारतीय संस्कृति और धार्मिक मान्यताओं को बहुत निष्ठा के साथ निर्वाह किया गया। बसौली शैली को राज्याश्रय प्राप्त होते हुए भी चित्रण- प्रक्रिया में राज्य के संरक्षकों का कोई हस्तक्षेप नहीं उपलब्ध होता था। चित्रकारों ने पूर्णतः स्वतन्त्र स्थिति में ही सम्पूर्ण चित्रण सामाजिक मनोविकारों के अनुरूप किया है।

संदर्भ:

1. M.S. Randhawa , Basohli Painting, P-11
2. J.C. French, Himalayan Art, P-45
3. M.S. Randhawa, Basohli Painting, P-12
4. The Modern Review, Oct, 1960, P-312
5. M.S. Randhawa, Basohli Painting, P-17
6. Karl Khandalwala, Pahari Miniature Painting P-17
7. Treasure of Asia, Painting of India, P-154
8. Meera Nand Shastri, Indian Pictorial Art Age Developed in book illustrations, P-33
9. वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, पृ0 88
10. श्री अरविन्द, भारतीय संस्कृति के आधार, पृ0 259
11. .Shanti Swarup, 5000 Years of Arts and Crafts in India and Pakistan, P-161
12. Krishna Chatanya, A History : of Indian Painting, P-28

भारत में केन्द्र-राज्य सम्बन्ध: एक अध्ययन

डॉ० अफताब आलम

सह प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, एन.एल.एस. कॉलेज, जैतपुर दाऊदपुर, सारण, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

शोध आलेख का सार तत्व:

भारत में संघात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है, जहाँ केन्द्र तथा राज्यों की सरकारें हैं। चूँकि भारत में केन्द्र तथा राज्यों की सरकारें होती हैं, इसलिए उनके बीच शक्तियों का विभाजन है। इनके बीच शक्तियों के विभाजन के लिए तीन सूचियाँ बनाई गई हैं तथा अन्य प्रावधान भी किये गये हैं। भारतीय संविधान के 11वें भाग में अनुच्छेद-245, 263 तक तथा 12वें भाग में भी केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का विवेचन है, जिनमें विधायी सम्बन्ध प्रशासनिक तथा वित्तीय सम्बन्ध महत्वपूर्ण सम्बन्ध हैं। भारत में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के अवलोकन से संवैधानिक संरचना के मौलिक उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त होती है।

मूल शब्द: संसद, राज्य सूची, समवर्ती सूची, प्रशासन, संवैधानिक तंत्र, व्यवस्थापिका, दण्ड विधान, बहुमत, स्थानीय स्वशासन।

प्रस्तावना:

केन्द्र तथा राज्य सरकारों के विधायी सम्बन्धों का विवरण संविधान के 11वें भाग के पहले अध्याय में किया गया है। इसके लिए संविधान में तीन सूचियों की व्यवस्था की गयी है: (i) संघ सूची: संघ सूची में 97 विषय सम्मिलित किये गए, जो वर्तमान में 99 हो गए हैं।¹ इस सूची में रक्षा, विदेशी मामले, व्यापार, मुद्रा, विदेशी विनिमय, डाक, तार, रेलवे, बीमा आदि राष्ट्रीय महत्व के विषयों को स्थान दिया गया है। राष्ट्रीय महत्व के विषयों के सम्बन्ध में बनने वाले कानूनों में एकरूपता होना आवश्यक है। इसलिए इन विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केवल संसद को ही दिया गया है। (ii) राज्य सूची: राज्य सूची में मूल संविधान के अनुसार 66 विषय थे, लेकिन 42वें संविधान संशोधन (1976 ई.) से इनकी संख्या घटकर 62 रह गये हैं।² इस सूची में पुलिस, न्याय, कृषि, सिंचाई, सड़कें, सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन आदि क्षेत्रीय महत्व के विषयों को स्थान दिया गया है। 42वें संशोधन से शिक्षा, वन, जंगली जानवरों एवं पक्षियों की रक्षा तथा नाप-तौल राज्य सूची से निकालकर समवर्ती सूची में सम्मिलित कर दिये गये हैं। क्षेत्रीय महत्व के विषय होने के कारण राज्य-सूची से निकालकर समवर्ती सूची में सम्मिलित कर दिये गये हैं। क्षेत्रीय महत्व के विषय होने के कारण राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राज्य व्यवस्थापिका को प्राप्त है। (iii) समवर्ती सूची: समवर्ती सूची में 47 विषय सम्मिलित थे, जिनकी संख्या वर्तमान में 52 हो गई है।³ इस सूची में दण्ड-विधान, समाचार-पत्र, प्रेस, श्रम, विवाह, तलाक आदि विषयों को स्थान दिया गया है। इन विषयों के सम्बन्ध में कानून में एकरूपता उपयोगी तो है, किन्तु आवश्यक नहीं। अतः संसद एवं राज्य विधानमंडल दोनों ही इनके सन्दर्भ में कानून बना सकते हैं, परन्तु संसद एवं राज्य व्यवस्थापिका द्वारा बनाये गये कानूनों में विरोधाभास होने पर संसद द्वारा बनाये गये कानून को लागू किया जाता है और राज्य विधानमंडल के कानून को रद्द कर दिया जाता है। (iv) अवशिष्ट शक्तियाँ: संविधान के अनुसार, 'समवर्ती सूची' तथा 'राज्य सूची' में उल्लिखित न किये गये विषयों पर संसद को कानून-निर्माण अनन्य शक्ति प्राप्त है। ऐसी शक्तियों को 'अवशिष्ट शक्तियाँ' कहते हैं, जिन पर संघीय विधायिका को संविधान द्वारा विधि बनाने की अनन्य शक्तियाँ प्राप्त हैं।⁴

राष्ट्रीय हित में राज्य-सूची के विषयों पर संसद की कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गयी है। (i) संविधान के अनुसार, यदि राज्य सभा उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से यह प्रस्ताव पास कर दें कि राज्य सूची में उल्लिखित कोई विषय राष्ट्रीय महत्व का है, तो संसद को उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। ऐसे कानून की अवधि अधिक-से-अधिक दो वर्ष (एक वर्ष + एक वर्ष) हो सकती है।⁵ (ii) संविधान के आपातकाल उद्घोषणा की स्थिति में संसद को राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है।⁶ ऐसा कानून आपातकाल उद्घोषणा की समाप्ति के बाद 6 माह तक लागू रह सकता है। (iii) संविधान के अनुसार, यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमंडल प्रस्ताव पारित करके संसद से यह प्रार्थना करें कि संसद उनके लिए राज्य सूची के किन्हीं विषयों पर कानून बनाये तो संसद को यह शक्ति प्राप्त हो जायेगी कि वह उस विषय पर कानून बना सके।⁷ (iv) किसी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते को लागू करने के लिए संसद देश अथवा किसी भाग के लिए कोई कानून बना सकती है। इस उपबन्ध के अनुसार संसद को राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बनाने का अधिकार होगा।⁸ (v) विधि निर्माण के क्षेत्र में संसद को राज्यों पर महत्ता प्रदान की गयी है। संसद द्वारा बनाये कानून तथा राज्य विधानमंडल द्वारा बनाये गये कानून में यदि कोई विरोध उत्पन्न होता है, तो ऐसी दशा में संसद के बनाये कानून को प्राथमिकता मिलेगी और राज्य का कानून जहाँ तक संसद के बनाये कानून को प्राथमिकता मिलेगी और राज्य का कानून जहाँ तक वह संसद के कानून से टकराता है, लागू नहीं होगा।⁹ (vi) संविधान के अनुच्छेद-356 के अनुसार यदि किसी राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाये अथवा संवैधानिक तन्त्र विफल हो जाये तो राष्ट्रपति राज्य विधानमंडल के सभी अधिकार भारतीय संसद को प्रदान कर सकता है।¹⁰ (vii) कुछ विधेयकों को प्रस्तावित करने के लिए केन्द्र का अनुमोदन भी आवश्यक है। उपर्युक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त भी राज्य व्यवस्थापिकाओं की राज्य सूची के विषयों पर कानून निर्माण की शक्ति भी सीमित है। संविधान में ऐसे प्रावधान हैं, जिनको राज्य विधानमंडल में प्रस्तावित किये जाने के पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व-स्वीकृति आवश्यक है।¹¹

उदाहरण के लिए, वैसे विधेयक जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की दृष्टि से उस राज्य के अन्दर या बाहर, वाणिज्य पर कोई प्रतिबन्ध लगाये जाने हों। संविधान के प्रावधान के अनुसार, राज्य सूची के ही कुछ विषयों पर राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा पारित विधेयक उस दशा में अमान्य होंगे, यदि उन्हें राष्ट्रपति के विचारार्थ रोक रखा हो और उन पर राष्ट्रपति की स्वीकृति न प्राप्त कर ली गयी हो।¹² उदाहरण के लिए, किसी राज्य द्वारा सम्पत्ति के अधिग्रहण के लिए बनाये गये कानूनों के प्रतिकूल हों या उन पर जिनके द्वारा ऐसी वस्तुओं को खरीद और बिक्री पर कर लगाया जाना हो, जिन्हें संसद ने समाज के जीवन के लिए आवश्यक घोषित किया है, राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है। संविधान के प्रावधान के अन्तर्गत राज्यपाल किसी भी विधेयक के बारे में अपनी सहमति से इनकार कर सकता है और उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है। राष्ट्रपति बिना कोई कारण बताये विधेयकों को अस्वीकृत कर सकता है।¹³

भारतीय संविधान के माध्यम से भारत में एक संघात्मक शासन की स्थापना की गयी है, जिसके अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्य दोनों सरकारों का अस्तित्व पृथक्-पृथक् है। संविधान के 11वें भाग, अनुच्छेद 245-263 तक केन्द्र राज्य सम्बन्धों के सम्बन्ध में प्रावधान है, जिनमें प्रशासकीय सम्बन्ध को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के प्रशासकीय सम्बन्धों का उल्लेख संविधान के ग्यारहवें भाग, अध्याय-2, अनुच्छेद-256 से 263 तक में दिया गया है। भारतीय संविधान द्वारा संघ तथा राज्यों की विधि निर्माण सम्बन्धी शक्तियों का वर्णन तो कर दिया गया है, किन्तु वह प्रदेश, जिसमें कि संघीय कानून लागू किया जाता है तथा राज्यों में विभाजित हुआ है। यह उल्लेखनीय है कि केन्द्र के कानूनों को राज्यों में ही लागू करने का प्रावधान है। इसके लिए यह आवश्यक है कि केन्द्रीय सरकार को अपने कानूनों को लागू करने के लिए पर्याप्त मात्रा में प्रशासकीय तथा कार्यपालिका शक्तियाँ प्राप्त हों।

केन्द्र सरकार तथा राज्यों की सरकारों के बीच राज्यपाल, लोक सेवा, आर्थिक नियोजन, कानून व्यवस्था से सम्बन्धित विषयों पर प्रशासनिक विवाद उत्पन्न होते रहते हैं यहाँ आवश्यकता इस बात कि है कि राज्यपाल केन्द्रीय सरकार में सत्तारूढ़ दल के नेतृत्व में कार्य न करें, बल्कि निष्पक्ष रूप में अपने कार्यों को सम्पन्न किया जाय; कानून और व्यवस्था के सम्बन्ध में केन्द्र तथा राज्य सरकार मिल-जुलकर कार्य करें; योजना सम्बन्धी कार्यों में केन्द्रीय सरकार अपनी वर्चस्व को स्थापित न करें, बल्कि आर्थिक नियोजन को निष्पक्ष एवं वैज्ञानिक स्वरूप दें। यदि ऐसा किया जाता है तो केन्द्र तथा राज्यों के बीच प्रशासनिक सम्बन्ध महत्वपूर्ण रूप में कायम रहेगा।

भारत में संघीय व्यवस्था में वित्तीय सम्बन्धों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है तथा यह सन् 1935 के भारत सरकार अधिनियम के आधार पर निर्मित है। वस्तुतः केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच का वित्तीय सम्बन्ध सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। यही कारण है कि संविधान निर्माताओं ने केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों को महत्वपूर्ण माना। यहाँ वित्तीय साधनों का अर्थ है कि संघ और राज्यों के पास राजस्व की शक्ति का होना। संविधान में वित्तीय साधनों का बँटवारा संघ और राज्यों में किया गया है। 101वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारतीय अप्रत्यक्ष कर-व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन कर दिया गया है। अब केन्द्र और राज्य सरकारों के कई प्रत्यक्ष कर जी.एस.टी. के अन्तर्गत आ गये हैं, हालांकि कुछ करों के इसके क्षेत्र के बाहर भी रखा गया है। केन्द्र और राज्य के वित्तीय सम्बन्धों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

संघ द्वारा कुछ कर लगाये जाते हैं, परन्तु राज्य सरकारों द्वारा इकट्ठे किये जाते हैं। इस प्रकार के कर भारत की संचित निधि में जमा नहीं होते हैं। ऐसे करों में अग्रलिखित प्रमुख हैं: स्टाम्प कर और एक्साइज कर। ऐसे कर औषधि और श्रृंगार प्रसाधनों पर लगाये जाते हैं जिनके क्षेत्र के अन्तर्गत ये लागू होते हैं। संघ शासित क्षेत्रों में ये कर उन राज्यों द्वारा वसूल किये जाते हैं जिनके क्षेत्र के अन्तर्गत ये लागू होते हैं। संघ शासित क्षेत्रों में इस प्रकार के कर संघ सरकार द्वारा वसूल भी किये जाते हैं।¹⁴ वैसे कर जो संघ द्वारा आरोपित और वसूल किये जाते हैं, किन्तु राज्यों को प्रदान कर दिये जाते हैं, कर और चुंगी जो भारत जाती है। ऐसे कर अग्रलिखित हैं: (i) रेलवे, समुद्र या वायु-मार्ग द्वारा ले जाये जाने वाला सामान व यात्रियों पर सीमान्त कर; (ii) रेल-भाड़े पर कर; (iii) बाजार पर कर; (iv) कृषि भूमि के अतिरिक्त सम्पत्ति उत्तराधिकारी पर कर; (v) कृषि भूमि के अतिरिक्त अचल भू-सम्पत्ति कर; (vi) समाचार-पत्रों की बिक्री व खरीद व उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर; (vii) समाचार-पत्रों के अतिरिक्त अन्य समान की बिक्री-खरीद पर कर, जहाँ ऐसी बिक्री होती है (अन्तर्राज्यीय व्यापार व वाणिज्य के क्षेत्र में)।¹⁵ कुछ कर ऐसे कर भी हैं जो कि भारत सरकार द्वारा आरोपित तथा संग्रह किये जाते हैं, किन्तु राज्यों की उमें भागीदारी होती है। ऐसे कर अग्रलिखित हैं: (i) ऐसे कर कृषि आय को छोड़कर अन्य आय पर कर भारत सरकार द्वारा लगाया और इकट्ठा किया जाता है, किन्तु राज्य भी कुछ प्रतिशत के आधार पर इसमें भागीदार होते हैं। (ii) औषधि व श्रृंगार प्रसाधनों को छोड़कर जो संघ सूची में दिये हुए हैं, एक्साइज ड्यूटी भारत सरकार द्वारा लगायी और एकत्र की जाती है, किन्तु संसद द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार बनाये सिद्धान्त के आधार पर इसका कुछ भाग राज्यों में बँटता है। वस्तु एवं सेवा कर (GST-Goods - Service Tax) आने के बाद अनुच्छेद-366 को संशोधित कर इसमें अल्कोहल, मानव उपयोग हेतु शराब पर जी.एस.टी. नहीं लगेगी। यह उल्लेखनीय है कि जी.एस.टी. से अग्रलिखित पाँच पदार्थों को अस्थायी रूप में अलग रखा गया है- (i) पेट्रोल, (ii) हाई स्पीड डीजल, (iii) प्राकृतिक गैस, (iv) टरबाइन इंजन और (v) पेट्रोलियम क्रूड के तहत केन्द्र सरकार अनुदान के रूप में राज्य सरकारों को सहायता प्रदान करती है। ये अनुदान निम्न चार वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं: (i) सरकार कुछ राज्यों को शुल्क व करों की आय में भाग देकर अनुदान के रूप में कुछ धनराशि देती है। संविधान में यह उल्लेख किया गया है कि संघ सरकार असम, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल तथा बिहार को पटसन तथा उसके द्वारा बनी हुई वस्तुओं के निर्यात कर में से प्रति वर्ष कुछ धन अनुदान के रूप में दे दिया करेगी। (ii) पीड़ितों की सहायता एवं निर्वासितों की पुनर्स्थापना आदि खर्चों को पूरा करने के लिए वह राज्यों की सरकार को अनुदान दे सकती है। (iii) संघ सरकार यदि परिगणित जनजातियों की उन्नति तथा उनके क्षेत्रों में प्रशासन के स्तर को ऊँचा करने की योजनाओं से सहमत हो तो इन्हें कार्यान्वित करने के लिए अनुदान दे सकती है। (iv) संघ सरकार राज्यों को आर्थिक संकट का सामना करने के लिए अनुदान दे सकती है।¹⁶ यह उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद-279(a) में संशोधन कर जी.एस.टी. परिषद् का गठन किया गया है। यह केन्द्र तथा राज्य सरकारों का संयुक्त मंच होगा। इसकी अध्यक्षता, वित्त मंत्री द्वारा किया जायेगा। अनुच्छेद-279(a)(4) के तहत यह परिषद् जी. एस.टी. से सम्बन्धित मुद्दे पर केन्द्र और राज्यों के लिए अनुशंसाएँ करेगी। भारत सरकार संसदीय विधि के अनुसार किसी राज्य को ऋण दे सकती है तथा राज्य के द्वारा भारत के क्षेत्र के अन्दर लिये जाने वाले ऋण की गारन्टी दे सकती है। संघ सरकार के द्वारा राज्यों को ऋण भारत की संचित निधि से दिया

जायेगा।¹⁷ किसी राज्य पर केन्द्र का पुराना ऋण बाकी रहने की दशा में राज्य सरकार, केन्द्र सरकार के व्यय मद में (i) थल, जल तथा वायु सेना पर व्यय; (ii) संघीय ऋण पर ब्याज; (iii) डाकखाना, तारघर और टेलीफोन, (iv) शासन-सम्बन्धी व्यय; (v) अनुवृत्ति आदि; (vi) ऋण का भुगतान; (vii) राज्यों की आर्थिक सहायता; (viii) विकास की याजनाएँ तथा (ix) रेल आदि प्रमुख हैं। राज्य सरकार के व्यय मद में (i) आरक्षी विभाग तथा कारावास; (ii) राज्य के सार्वजनिक ऋण पर ब्याज; (iii) शिक्षा का प्रसार; (iv) कृषि की उन्नति, (v) सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा, (vi) स्थानीय स्वराज्य तथा (vii) अस्पताल आदि प्रमुख हैं।¹⁸ यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जी.एस.टी. में तीन तरह के कर हैं- प्रथम में केन्द्र द्वारा राजस्व संग्रह होगा; द्वितीय में राज्य बिक्री हेतु राज्यों द्वारा राजस्व संग्रह होगा तथा तृतीय में अन्तर्राज्यीय बिक्री हेतु केन्द्र द्वारा राजस्व एकत्र किया जायेगा।¹⁹

अध्ययन का उद्देश्य:

प्रस्तुत शोध आलेख का विषय “केन्द्र-राज्य सम्बन्ध: एक अध्ययन” है। भारत का संविधान अपने स्वरूप में संघीय है तथा समस्त शक्तियाँ (विधायी, कार्यपालिका और वित्तीय) केन्द्र एवं राज्यों के मध्य विभाजित हैं। न्यायिक व्यवस्था के एकात्मक होने के कारण न्यायिक शक्तियों का बँटवारा नहीं किया गया है। केन्द्र एवं राज्यों के संबंधों का अध्ययन तीन दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। हालांकि केन्द्र-राज्य संबंध में कुछ विषयों पर तनाव भी देखा जा सकता है। इन्हीं बातों का स्पष्टीकरण प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य है।

परिकल्पना:

भारत में स्वतंत्रता उपरांत केंद्र-राज्य संबंध का मसला अत्यधिक संवेदनशील मामला रहा है। विषय चाहे अलग भाषाओं की पहचान, असमान विकास, राज्यों के गठन का हो, पुनर्गठन का हो या फिर विशेष राज्य का दर्जा देने से जुड़ा हो। ये सब केंद्र-राज्य संबंधों की सीमा में आते हैं। इनके अलावा देश में शिक्षा, व्यापार जैसे विषयों पर नीति निर्माण के सवाल उठने पर भी उसके केन्द्र में है केंद्र और राज्य के बीच में इनको लेकर क्या आपसी समझ है, यही महत्वपूर्ण होता है। इसी परिप्रेक्ष्य में एक प्रभावी संघवादी शासन की भारत में अपेक्षा व परिकल्पना की जाती है।

शोध की पद्धति:

प्रस्तुत शोध आलेख की पद्धति ऐतिहासिक, वस्तु विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक है।

साहित्य सर्वेक्षण:

प्रस्तुत शोध आलेख में केन्द्र-राज्य संबंध से अभिप्राय है कि किसी लोकतांत्रिक राष्ट्रीय राज्य में संघवादी केन्द्र और उसकी इकाईयों के बीच के आपसी संबंध। दुनियाभर में लोकतंत्र के उदय के साथ राजनीति में केन्द्र-राज्य संबंधों को एक नई परिभाषा मिली। भारत में आजादी के बाद से केन्द्र-राज्य संबंध का मसला अत्यधिक संवेदनशील मामला रहा है। उक्त शोध आलेख के अध्ययन हेतु निम्नलिखित महत्वपूर्ण साहित्य का अध्ययन किया गया है:

1. मनोज सिन्हा: समकालीन भारत: एक परिचय, आरियंट ब्लैकस्वान प्रा. लिमिटेड, हैदराबाद (2012)
2. पुखराज जैन: भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
3. एम. लक्ष्मीकांत: भारत की राजव्यवस्था, मैकग्राहिल एजुकेशन प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली (2017)
4. हरिश्चन्द्र शर्मा: भारत में राज्यों की राजनीति, कॉलेज बुक डिपो, राजस्थान
5. वीरकेश्वर प्रसाद: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली (2016)

निष्कर्ष:

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भारत में केन्द्र-राज्य के तीनों प्रकार के सम्बन्ध महत्वपूर्ण, सम्बद्ध तथा परस्पर निर्भर हैं। भारत एक संघात्मक व्यवस्था है, जहाँ केन्द्रीय और राज्य सरकारों का अस्तित्व है। संविधान में बेहतर शासन व्यवस्था को बनाये रखने के लिए तीन भागों में विभाजित किया गया है। चूँकि यहाँ केन्द्र और राज्य सरकारों का अस्तित्व है इसलिए कुछ मतभेदों का बना रहना भी स्वाभाविक है। अतः इस दिशा में कोशिश होना चाहिए ताकि केन्द्र शक्तिशाली बना रहे तथा राज्यों में भी असंतोष न हो सके। सरकारिया आयोग ने भी सुदृढ़ केन्द्र की अवधारण पर जोर दिया है। भारत जैसे विशाल देश जहाँ विभिन्न धर्म, संस्कृति, भाषा आदि हैं इसलिए केन्द्र का अधिक शक्तिशाली होना भी आवश्यक है। फिर भी राष्ट्र हित में संघ में केन्द्र को दुर्बल बनाते हुए राज्यों की स्वायत्तता की बात स्वीकारी नहीं जा सकती।

सन्दर्भ-सूची

1. डॉ. अशोक कुमार, लोक प्रशासन, प्रतियोगिता सन्दर्भ प्रकाशन, पृष्ठ-345
2. तथैव
3. तथैव
4. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-248
5. तथैव, पृष्ठ-249
6. तथैव, पृष्ठ-250

7. तथैव, पृष्ठ-252
8. तथैव, पृष्ठ-253
9. तथैव, पृष्ठ-254
10. तथैव, पृष्ठ-356
11. तथैव, पृष्ठ-304(ख)
12. तथैव, पृष्ठ-201
13. तथैव, पृष्ठ-200
14. तथैव, पृष्ठ-268
15. तथैव, पृष्ठ-269
16. तथैव, पृष्ठ-275
17. तथैव, पृष्ठ-293
18. डॉ. अशोक कुमार, लोक प्रशासन, पृष्ठ-352
19. डॉ. मदोदर राव, भारतीय राज व्यवस्था, पृष्ठ-278

भारतीय विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता: एक अवलोकन

प्रो० (डॉ०) पूनम

विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, जे.पी.यू., छपरा (बिहार)

शोध आलेख का सार तत्व:

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वरूप में परिवर्तन लाने वाले संगठनों में संयुक्त राष्ट्र संघ के बाद गुटनिरपेक्ष आन्दोलन सबसे बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है। इस आंदोलन की उत्पत्ति के पीछे उद्देश्य यह था कि दुनिया के दो शक्तिशाली सैनिक गुटों (अमरीकी पूँजीवादी गुट व रूसी साम्यवादी गुट) से अलग रहकर नवोदित राष्ट्रों की स्वाधीनता की रक्षा करना और युद्ध की सम्भावनाओं को रोकना था। यह नवोदित राष्ट्र अपने आपको किसी गुट के साथ सम्बद्ध नहीं करना चाहते थे और उनका विश्वास था कि दुनिया को अविकसित अथवा विकासशील राष्ट्रों का हित गुटीय स्पर्धा के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में निहित है। स्वतन्त्र भारत ने इस नीति का पालन करना शुरू कर दिया, उसके बाद एशिया एवं अफ्रीका के अनेक देशों ने भी इस नीति में अपनी आस्था व्यक्त किया है, तभी तो आज 120 सदस्य देशों की संख्या हो गई है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से सन्यास न लेने का होकर अमरीकी व रूसी गुटों से अलग रहकर राज्यों के मध्य शान्ति पूर्ण सहअस्तित्व की नीति का पालन करते हुए सक्रिय अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भाग ले सकते थे। चाहे समस्याएँ गुटीय राष्ट्रों से अथवा किसी भी अन्य संगठनों से सम्बन्धित हों अथवा गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों से सम्बन्धित हों। भारत के प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू, मिश्र के राष्ट्रपति कर्नल नासिर और यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के जनक थे। इन तीनों राजनेताओं ने मिलकर ही विश्व में इस तीसरी शक्ति की अवधारणा को गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के रूप में साकार रूप प्रदान किया।

मूल शब्द: गुटनिरपेक्ष, साम्यवाद, उपनिवेशवाद, अंतर्राष्ट्रीयतावाद, निःशस्त्रीकरण, साम्राज्यवाद, राजनायिक सम्बन्ध।

प्रस्तावना:

भारत प्रारम्भ से ही गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के संस्थापक सदस्य देश रहा है। इस आन्दोलन के समस्त शिखर सम्मेलनों और अन्य बैठकों में हिस्सा लिया और दुनिया की समस्याओं के निदान के लिए मिलकर कार्य किया। सितम्बर, 1961 में बेलग्रेड (यूगोस्लाविया) में प्रथम सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें भारत के प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने हिस्सा लिया। इस प्रथम सम्मेलन में ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर दुनिया का ध्यान खींचा गया जिनसे विश्व युद्ध भड़क सकता था। ये समस्याएँ थीं- बर्लिन की समस्या, कोरिया की समस्या, वियतनाम संघर्ष, कागो की समस्या। भारत ने इन तीनों ही विवादों के शान्तिपूर्ण हल के लिए गुटनिरपेक्ष देशों ने दुनिया के समस्त राष्ट्रों से अपील किया। साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद को विश्व शान्ति के लिए हानिकारक घोषित किया तथा माँग किया कि प्रत्येक देश को अपनी इच्छानुसार अपने शासन का स्वरूप निर्धारण और संचार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। जाति, धर्म, रंगभेद, नस्ल के आधार पर सभी प्रकार के भेदभावों की भर्त्सना की गई और राष्ट्रों के मध्य शान्ति, सहअस्तित्व के सिद्धान्त का पालन करने की आशा व्यक्त की गई।¹

गुटनिरपेक्ष देशों का द्वितीय शिखर सम्मेलन सन् 1964 में काहिरा (मिश्र) में आयोजित हुआ। इसमें राजनीतिक कार्यक्रम के साथ आर्थिक सहयोग बढ़ाने की बात की गई। निःशस्त्रीकरण की माँग, दक्षिण रोडेशिया में रंगभेद नीति का विरोध और विश्व में सभी प्रकार के उपनिवेशों के अन्त की माँग से सम्बन्धित प्रस्ताव पारित किए गए। तृतीय शिखर सम्मेलन लुसाका (जीम्बिया) में सम्पन्न हुआ, जिसमें इजरायल द्वारा अरब पर हमले की निन्दा, वियतनाम से अमरीकी फौजें हटाने की माँग, कम्बोडिया में बाहरी हस्तक्षेप का विरोध, दक्षिण अफ्रीका में स्वाधीनता संघर्ष का समर्थन आदि घोषणाएँ की गईं। चौथा शिखर सम्मेलन अल्जीरिया की राजधानी अल्जीयर्स में सितम्बर, 1973 में आयोजित हुआ। इसी सम्मेलन में नेपाल की महाराजा वीरेन्द्र ने नेपाल के लिए एक शान्ति क्षेत्र प्रस्ताव की योजना प्रस्तुत किया। इस सम्मेलन में विश्व की राजनीतिक व आर्थिक समस्याओं पर चर्चा हुई और निर्गुट देशों के मध्य आर्थिक, व्यापारिक व तकनीकी सहयोग बढ़ाने की सिफारिश की गई।²

पांचवाँ शिखर सम्मेलन कोलम्बो (श्रीलंका) में अगस्त 1976 में एवं छठा सम्मेलन हवाना (क्यूबा) में आयोजित किया गया। इन सम्मेलनों में पुरानी माँगों के अतिरिक्त नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था विकसित करने एवं डियागो-गार्सिया (हिन्द महासागर) से नौ सैनिक अड्डे हटाने की माँग की गई। तेल निर्यातक देशों से अपील की गई कि वे दक्षिण अफ्रीका को तेल सप्लाई बिल्कुल न करें।

गुटनिरपेक्ष देशों का सातवाँ शिखर सम्मेलन (6 से 13 मार्च 1983) को नई दिल्ली में श्रीमती इन्दिरा गाँधी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में 101 सदस्य देशों से 93 देशों ने भाग लिया। सम्मेलन की समाप्ति पर जो घोषणाएँ की गईं उन्हें राजनीतिक और आर्थिक घोषणाओं की नई दिल्ली संदेश

की संज्ञा दी गई।³ ईरान-ईराक युद्ध बंद करने के प्रयास के साथ पश्चिमी एशिया में शान्ति स्थापित करने के शान्तिपूर्ण उपाय सुझाये गए। आर्थिक उपायों में गुटनिरपेक्ष देशों के आर्थिक विकास के लिए पूँजी निवेश, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा एवं वित्तीय प्रणाली में सुधार पर बल दिया गया। दक्षिण अफ्रीका में अश्वेत लोगों के शोषण व उनके प्रति असमानता के व्यवहार व उनके अधिकारों के हनन की भर्त्सना की गई। यूरोप में बढ़ती हथियारों की होड़ तनाव व विभिन्न गुटों के बीच टकराव की नीति पर चिन्ता व्यक्त की गई। दक्षिण अमरीका के देशों में उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद व नव-उपनिवेशवाद के खिलाफ संचालित संघर्ष का समर्थन किया गया। इन सभी प्रस्तावों के पारित होने में भारत ने ही जोरदार समर्थन किया।

उपर्युक्त सम्मेलनों के बाद निर्गुट देशों के अन्य शिखर सम्मेलन हरारे (जिम्बावे) आठवाँ, सितम्बर, 1986; बेलग्रेड (यूगोस्लाविया) नवाँ, सितम्बर 1989; जकार्ता (इण्डोनेशिया) दसवाँ सितम्बर, 1992; कार्टागिना (कोलम्बिया) ग्यारहवाँ अक्टूबर 1995 और डरबन (दक्षिण अफ्रीका) बारहवाँ आयोजित किए गए, जिनमें राजनीतिक प्रस्तावों पर चर्चाएँ हुईं। विकासशील देशों में गरीबी, भूखमरी, निरक्षरता के उन्मूलन और आर्थिक समस्याओं के निराकरण के उपाय खोजने पर चर्चाएँ प्रारम्भ हुईं। मादक द्रव्यों के सेवन व तस्करी रोकने, पर्यावरण को दूषित होने से बचाने, परमाणु हथियारों के जखीरे को नष्ट करने, रसायनिक एवं जैविक हथियारों पर नियन्त्रण करने, निर्गुट देशों में पारस्परिक आर्थिक सहयोग बढ़ाने विकसित विकासशील देशों के मध्य अन्तर कम करने एवं धनी देशों द्वारा निर्धन देशों के विकास में सहयोग करने एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से सम्बन्धित प्रस्ताव पारित किए गए। यह भी स्पष्ट है कि विश्व में साम्यवाद के अवसान एवं शीतयुद्ध की समाप्ति के कारण सदस्य राष्ट्रों की इसके कार्यक्रमों में रुचि घटती गई।⁴ फलतः इस आन्दोलन की घोषणाएँ महज दिखावा मात्र साबित होने लगीं। निर्गुट देशों में भी इसकी प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न लगने लगा। तभी तो लीबियाई नेता कर्नल गद्दाफी ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय छलावा मात्र बताया तथा यह भी कहा कि गुटनिरपेक्ष अब अपनी उपयोगिता खो बैठा है।

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का तेरहवाँ शिखर सम्मेलन (24-25 जनवरी) 2003 ई. में मलेशिया की राजधानी कुआलालम्पुर में सम्पन्न हुआ, जिसमें 116 सदस्य राष्ट्रों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में दक्षिण एशिया की दो नाभिकीय शक्तियों (भारत-पाकिस्तान) के बीच कटुता का भाव देखने को मिला, क्योंकि पाकिस्तान के राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की सार्थकता को कश्मीर मुद्दे से जोड़ते हुए सुझाव दिया था कि इस महत्वपूर्ण संगठन को एक केन्द्रीय भूमिका निभानी चाहिए और कश्मीर सहित विश्व के अन्य क्षेत्रों में चल रहे संघर्षों के समाधान के प्रतीक के रूप में कार्य को तत्पर रहना चाहिए। मुशर्रफ के इस वक्तव्य को भारतीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने हास्यास्पद बताते हुए इसका कड़ा विरोध किया। कुआलालम्पुर में निर्गुट राष्ट्रों के इस सम्मेलन में निम्नलिखित बिन्दुओं पर चर्चा हुई-

1. आतंकवाद की समाप्ति के लिए प्रयास, 2. क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देना, 3. प्रदूषण को कम कर पर्यावरण की रक्षा करना, 4. संयुक्त राष्ट्र संघ को शक्तिशाली बनाना, सदस्य राष्ट्रों की समस्याओं का बातचीत से हल ढूँढना एवं निःशस्त्रीकरण की प्रक्रिया को तीव्र करना।⁵

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का चौदहवाँ शिखर सम्मेलन (16-17 सितम्बर, 2006) क्यूबा की राजधानी हवाना में सम्पन्न हुआ, जिसमें 118 सदस्य राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। निर्गुट राष्ट्रों के इस शिखर सम्मेलन में शामिल हुए दुनिया के एक सौ से अधिक विकासशील देशों ने एक ओर जहाँ आतंकवाद की कड़े शब्दों में भर्त्सना की, वहीं दूसरी ओर ईरान के विवादस्पद परमाणु कार्यक्रम का भी समर्थन किया। नाम (NAM) के चौदहवाँ शिखर सम्मेलन में जहाँ लेबनान और फिलीस्तीन के खिलाफ इजराइल हमले की निन्दा की गई, वहीं ईरान पर अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा बनाये जा रहे दबाव की भी भर्त्सना की गई, क्योंकि नाम के सदस्य राष्ट्रों का साफ कहना था कि ईरान को शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए परमाणु ऊर्जा उत्पादन का पूरा अधिकार है। इस सम्मेलन के दौरान भारतीय प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह एवं पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल परवेज मुशर्रफ के बीच आपसी मुलाकात हुई, जिसमें आतंकवाद के खिलाफ दोनों राष्ट्र सहमत हुए और मुशर्रफ ने कहा कि सीमा पार से आतंकवाद को रोकने के लिए दोनों राष्ट्र ठोस कदम उठावेंगे। इस शिखर सम्मेलन की समाप्ति पर संयुक्त घोषणा-पत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमें सभी देशों से आतंकियों को राजनीतिक, राजनायिक, नैतिक एवं भौतिक समर्थन नहीं देने का आग्रह करते हुए इस सन्दर्भ में अपना वैश्विक दायित्व निभाने की अपील की गयी।⁶

गुटनिरपेक्ष देशों का 15वाँ शिखर सम्मेलन मिश्र के शहर अर्म-अल-शेख में दिनांक- 05-16 जुलाई, 2009 को सम्पन्न हुआ। इसमें 188 सदस्य देशों के शीर्ष नेताओं/प्रतिनिधियों ने भाग लिया तथा 15 पर्यवेक्षक देशों ने भाग लिया। यह सम्मेलन पिछले सम्मेलनों से दो अर्थों में भिन्न था। प्रथम सम्मेलन में भाग लेने वाले शीर्ष नेताओं ने गत सम्मेलनों की तरह लम्बे और आदर्शवादी भाषणों के स्थान पर छोटी सी सटीक वक्तव्यों के माध्यम से यह सन्देश देने का प्रयास किया कि गुटनिरपेक्ष देश शान्ति और विकास के लिए एकजुटता दिखायें, साथ ही इसमें किसी प्रकार के द्विपक्षीय मुद्दों को भी नहीं उठाया गया। इस सम्मेलन के अन्त में जो घोषणा-पत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमें सटीकता के साथ वर्तमान वैश्विक मुद्दों के सम्बन्ध में सामूहिक कार्यवाही की आवश्यकता पर बल दिया गया। भारतीय प्रधानमंत्री ने जलवायु परिवर्तन के सम्बन्ध में दिसम्बर, 2009 में कोपेनहेगन में सम्पन्न सम्मेलन का भी जिक्र किया। उन्होंने कहा कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इस सम्मेलन का परिणाम गरीब देशों के लिए सन्तुलित व समानतापूर्ण हो। प्रधानमंत्री ने संयुक्त राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं को ध्यान में रखने, फिलीस्तीन समस्या के समाधान करने तथा आतंकवाद के विषय में एक व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि को स्वीकार करने की बात उठाई। भारत गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का एक संस्थापक सदस्य देश है तथा इसके महत्व का आकलन इसी बात से लगाया जा सकता है कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के अन्तिम घोषणा-पत्र में भारतीय प्रधानमंत्री द्वारा उठाये गये मुद्दों को प्रमुखता से शामिल किया गया।⁷

सोलहवाँ गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन, तेहरान (ईरान) में 26 से 31 अगस्त, 2012 को सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में 120 देशों के नेता सम्मिलित हुए, जिनमें 24 देशों के राष्ट्रपति, देशों के राजा, आठ देशों के प्रधानमंत्री तथा 50 देशों के विदेशमंत्री भी शामिल हुए। इसमें आर्थिक गतिविधियों में परस्पर सहयोग की चर्चा की गई।⁸

सतरहवाँ गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन वेनेजुएला के पोरलामार शहर में 17-18 सितम्बर, 2016 को आयोजित किया गया।⁹ यह नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद प्रथम शिखर सम्मेलन है। इस सम्मेलन में भारत की ओर से उप राष्ट्रपति हामिद अंसारी ने भाग लिया। इसमें भारत के विश्व शांति हेतु आतंकवाद पर विश्व जनमत कायम करने की बात की।

निष्कर्ष:

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन जो 25 देशों द्वारा प्रारम्भ किया गया था, वर्तमान में अब इसकी सदस्य संख्या बढ़कर 120 हो चुकी है। सदस्यों की संख्या में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ इस आन्दोलन के कार्य क्षेत्र का भी काफी विस्तार हुआ है। इस आन्दोलन ने विश्व राजनीति में अनेक संघर्षों को टालने, शीत युद्ध को शस्त्र युद्ध में परिणित होने से रोकने, निःशस्त्रीकरण और विश्वशान्ति को बढ़ावा देने, विकासशील राष्ट्रों के मध्य आर्थिक सहयोग की बुनियाद खड़ी करने और नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को स्थापित करने में भारी योगदान दिया है। भारत का इन सभी कार्यक्रमों में योगदान रहा है। वर्तमान समय में गुटनिरपेक्षता की प्रासंगिकता का प्रश्न चिन्ह लग गया है, क्योंकि इस अवधारणा की सार्थकता द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शीत युद्ध के वातावरण में तो थी, लेकिन पिछले 27-28 वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में व्यापक परिवर्तनों के कारण इसकी महत्ता धूमिल पड़ती जा रही है। शीत युद्ध, सोवियत संघ का विघटन, पूर्वी यूरोप से साम्यवाद का अवसान एवं वारसा पैकट की समाप्ति, नाटो की भूमिका में परिवर्तन, जर्मनी का एकीकरण और दुनिया से द्विगुटीय राजनीति की समाप्ति आदि के अनेक कारण हैं, जिनसे गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अप्रासंगिक हो गया है। लीबिया के नेता कर्नल गद्दाफी ने इस निर्गुट आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय भ्रम का मजाकिया आन्दोलन कहकर खिल्ली उड़ाई है। अधिकांश सदस्य देश इसे गम्भीरता से महत्व नहीं दे रहे हैं। अब इस आन्दोलन की अपेक्षा 'दक्षेस' जैसा संगठन अधिक महत्वपूर्ण साबित हो रहे हैं। इसके बाद भी भारत इस संगठन के प्रति अपनी वचनबद्धता और प्रतिबद्धता को महत्व देता रहा है और बहुत हद तक मोदी की भी यही रणनीति रही है।

सन्दर्भ सूची

1. बी.एल. फाड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 1998, पृष्ठ-220
2. तथैव, पृष्ठ-211
3. तथैव, पृष्ठ-214
4. तथैव, पृष्ठ-168
5. सिंघल, एस.पी., अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पृष्ठ 462
6. तथैव, पृष्ठ-463
7. तथैव, पृष्ठ 463
8. तथैव, पृष्ठ 463
9. हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, पटना 18 सितम्बर, 2016

भारत में सामाजिक कल्याण कार्यक्रम: बदलते परिदृश्य, उभरती समस्याएं और लक्षित समूह

Social Welfare Programme in India: The Changing Scenario, Emerging Problems and the Targeted Groups

अम्बुज मिश्र

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, का0हि0वि0वि, वाराणसी।

सारांश:-

कल्याणकारी राज्य की अवधारणा वर्तमान समय में एक सर्वव्यापी अनिवार्यता रही है। वैश्वीकृत विश्व व्यवस्था के उदय के कारण कल्याणकारी राज्य के पीछे हटने की आशंकाएँ थीं। लेकिन सभी चुनौतियों के बावजूद कल्याणकारी राज्य का बढ़ता महत्व बेरोकटोक प्रबल होता दिख रहा है। सरकारों के विभिन्न रूपों, संवैधानिक और संस्थागत संरचनाओं और नेतृत्व शैलियों के बावजूद, हर राष्ट्र-राज्य की कल्याणकारी प्रवृत्ति बहुत स्पष्ट रही है। यह काफी हद तक इसलिए है क्योंकि दुनिया भर के समाज आर्थिक असमानता को कम करने में लगे हुए हैं। इसलिए, समाज के कमजोर और हाशिए के वर्गों के अस्तित्व के लिए संसाधनों के सुधारात्मक पुनर्वितरण के कुछ रूप अनिवार्य हो जाते हैं।

बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में देश के सामाजिक-आर्थिक स्थिति में तेजी से परिवर्तन हुए, विशेषकर नई आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप यह अधिक स्पष्ट रूप में दिखाई पड़े। उदारीकरण की अवधारणा शहरी क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था में नई प्रवृत्तियों में परिलक्षित होती है। हालांकि ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्रों में इतने अनुकूल परिणाम देखने को नहीं मिले थे हालांकि बाजार के अनुकूल अर्थव्यवस्था के प्रभाव ने धरातल पर कुछ प्रभाव जरूर परिलक्षित हुए। ग्रामीण गरीब जो कम संपत्ति और अकुशल थे वे अर्थव्यवस्था में हुए आमूल-चूल परिवर्तनों से लाभ नहीं उठा पाने में सफल नहीं हो पाए थे। यह एक बढ़ती हुई मान्यता है कि आर्थिक विकास, हालांकि कई सामाजिक समस्याओं से निपटने के लिए आवश्यक है अधिकांशतः जानबूझकर सामाजिक योजना के अभाव में तीव्र सामाजिक समस्याओं के साथ होता है। इसलिए समग्र विकास की रणनीति में उन सामाजिक कल्याण गतिविधियों को एक अनिवार्य घटक के रूप में शामिल किया जाना चाहिए जो यह सुनिश्चित करने में मदद करती हैं कि राष्ट्रीय योजनाएं और नीतियां लोगों की जरूरतों और आकांक्षाओं के लिए पूरी तरह उत्तरदायी हों। जबकि उपचारात्मक उपाय अभी भी आवश्यक हैं विकासात्मक और निवारक को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। भारत सरकार और राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है किन्तु हमने इस शोध पत्र में कुछ प्रोग्राम को चयनित किया गया है-

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम:-

ग्रामीण विकास मंत्रालय की एक केंद्र प्रायोजित योजना है। एनएसएपी एक सामाजिक सुरक्षा/सामाजिक कल्याण कार्यक्रम है जो वृद्ध, विधवाओं, विकलांग व्यक्तियों और गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों से संबंधित प्राथमिक रोटी विजेता की मृत्यु पर शोक संतप्त परिवारों पर लागू होता है। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना के अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे बूढ़ों के परिवारों के व्यक्तियों को वृद्धावस्था पेंशन प्रदान की जाती है। रुपये की केंद्रीय सहायता 200/-प्रति माह 60-79 वर्ष की आयु के व्यक्तियों को प्रदान किया जाता है। यह योजना राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा कार्यान्वित की जाती है, लाभार्थियों की पहचान, योजनाओं के तहत लाभ की स्वीकृति और वितरण राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा किया जाता है, केंद्रीय सहायता के अलावा एक टॉप-अप भी राज्य द्वारा प्रदान किया जाता है। निम्नलिखित विवरण के अनुसार सरकारें/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन:-

अन्नपूर्णा योजना:-

खाद्य और सार्वजनिक वितरण विभाग अन्नपूर्णा योजना के तहत ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा अनुमानित आवश्यकताओं के अनुसार खाद्यान्न आवंटित करता है, जिसमें गरीब वरिष्ठ नागरिकों, जिन्हें IGNOAPS के तहत पेंशन नहीं मिल रही है, उन्हें प्रति व्यक्ति प्रति माह 10 किलोग्राम खाद्यान्न मुफ्त प्रदान किया जाता है। खाद्य और सार्वजनिक वितरण विभाग अंत्योदय अन्न योजना को लागू करता है, जिसके तहत अत्यधिक सस्ती वाली लागत पर चावल और गेहूं विधवाओं/शारीरिक रूप से बीमार/विकलांग व्यक्तियों/वरिष्ठ नागरिकों के नेतृत्व वाले परिवारों को दिया जाता है, जिनके पास रखरखाव या सामाजिक समर्थन का कोई सुनिश्चित साधन नहीं है।

प्रधानमंत्री वय वंदना योजना (PMvvy):-

यह योजना वित्त मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण में है। इस योजना का उद्देश्य अनिश्चित बाजार की स्थिति के कारण 60 वर्ष और उससे अधिक आयु के बुजुर्गों को उनकी ब्याज आय में भविष्य में गिरावट से बचाना है। साथ ही वृद्धावस्था में सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना। यह योजना भारतीय जीवन बीमा निगम के माध्यम से क्रियान्वित की जा रही है। यह योजना 10 वर्षों के लिए मासिक देय 8: प्रति वर्ष का सुनिश्चित रिटर्न प्रदान करती है। डिफरेंशियल रिटर्न, यानी, एलआईसी द्वारा उत्पन्न रिटर्न और 8: प्रति वर्ष के सुनिश्चित रिटर्न के बीच का अंतर भारत सरकार द्वारा वार्षिक आधार पर सब्सिडी के रूप में वहन किया जाएगा। यह योजना एक वर्ष की अवधि के लिए अर्थात् 4 मई 2017 से 3 मई 2018 तक सदस्यता के लिए खुली थी। बजट घोषणा 2018-19 के अनुसरण में, कैबिनेट ने 2 मई, 2018 को आयोजित अपनी बैठक में 31 मार्च 2020 तक प्रधान मंत्री वय वंदना योजना के विस्तार और अधिकतम खरीद की सीमा को मंजूरी दे दी है। रुपये की कीमत योजना के तहत प्रति परिवार 7.5 लाख रुपये को भी बढ़ाकर रुपये कर दिया गया है। 15 लाख प्रति वरिष्ठ नागरिक। रु. 17,704.65 30.06.2018 को पीएमवीवीवाई के तहत करोड़ों को लाभान्वित किया जा रहा है।

बुजुर्गों की स्वास्थ्य देखभाल के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम:-

स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार वित्तीय वर्ष से बुजुर्गों की स्वास्थ्य देखभाल के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम को लागू कर रही है। 2010-11 समर्पित आउटरीच सेवाओं सहित प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयक स्वास्थ्य देखभाल में राज्य स्वास्थ्य देखभाल वितरण प्रणाली के विभिन्न स्तरों पर बुजुर्ग लोगों को स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं सम्मिलित है। बुजुर्गों की स्वास्थ्य देखभाल के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम में देश में बुजुर्ग लोगों को स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएं प्रदान करने के लिए निम्नलिखित प्रावधानों के साथ दो घटक हैं: -

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन-

कार्यक्रम की जिला और उससे नीचे की गतिविधियों को गैर-संचारी रोगों फ्लेक्सिबल पूल के तहत कवर किया जा रहा है एनएचएम के कार्यक्रमों में निम्न बातें सम्मिलित किए गए हैं-

- जिला अस्पतालों में जराचिकित्सा ओपीडी और 10 बिस्तरों वाला जराचिकित्सा वार्ड।
- सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों (सीएचसी) में द्वि-साप्ताहिक जराचिकित्सा क्लिनिक।
- प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (पीएचसी) में साप्ताहिक जराचिकित्सा क्लिनिक।
- उपकेन्द्रों पर सहायक उपकरणों और उपकरणों का प्रावधान।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (RSBY)

यह एक केंद्र प्रायोजित योजना है जिसे 2008 से असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 के तहत श्रम और रोजगार मंत्रालय द्वारा लागू किया गया था, ताकि लोगों को स्वास्थ्य बीमा कवरेज प्रदान किया जा सके। बीपीएल परिवार और 11 अन्य श्रेणी के असंगठित कामगार। योजना को 2015 में स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय में स्थानांतरित कर दिया गया है। योजना में नामांकित प्रत्येक परिवार 30,000/-रुपये तक के अस्पताल में भर्ती होने के लाभों का हकदार है। सरकारी हॉस्पिटल के साथ ही सूचीबद्ध निजी अस्पताल को इसके अंतर्गत सम्मिलित कर लिया गया है।

लक्षित समूह:- विकलांग व्यक्ति-

ये वे व्यक्ति हैं जो 4 व्यापक प्रकार की अक्षमताओं से पीड़ित हैं अर्थात्- दृश्य, गतिमान, श्रवण और वाक् और मानसिक। विकलांग व्यक्तियों की संख्या का अनुमान परिभाषा के आधार पर भिन्न होता है। 1981 और अब 2001 को छोड़कर किसी भी जनगणना में स्वतंत्रता के बाद से विकलांग व्यक्तियों की जनसंख्या की गणना नहीं की गई है। नतीजतन, किसी को राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के समसामयिक नमूना सर्वेक्षणों पर निर्भर रहना पड़ता है। NSSO ने 1981 में तीन प्रकार की अक्षमताओं यानी दृश्य, संचार और लोकोमोटर को कवर करते हुए एक देशव्यापी सर्वेक्षण किया। इसने लगभग 136.74 लाख व्यक्तियों या कुल आबादी के 1.8: लोगों को किसी न किसी विकलांगता से पीड़ित के रूप में पहचाना। वर्ष 1991 में, NSSO ने दृश्य, श्रवण, वाक् और चलन अक्षमताओं को कवर करते हुए एक और सर्वेक्षण किया। इसने 163.62 लाख व्यक्तियों की पहचान इनमें से किसी एक या अन्य अक्षमताओं से पीड़ित के रूप में की, जो कुल जनसंख्या के 1.9 प्रतिशत थे। यह देखा गया कि पूरे देश में ग्रामीण क्षेत्रों में शारीरिक अक्षमता की व्यापकता प्रति 1000 व्यक्तियों पर 20 और शहरी क्षेत्रों में 16 थी। दो लिंगों के बीच, महिलाओं की तुलना में पुरुषों में प्रचलन मामूली रूप से अधिक है। विकलांग आबादी के 2001 की जनगणना के आंकड़े उपलब्ध होने तक, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय ने 2001 में देश में विकलांग जनसंख्या 420.22 लाख या कुल जनसंख्या का 4.1: अनुमानित है (इसमें मानसिक रूप से विकलांगों का लगभग 2: भी शामिल है) का औसत 2: मानते हुए मानसिक रूप से विकलांगों के अलावा एक या अधिक विकलांगों से पीड़ित कुल जनसंख्या, विकलांगों की जनसंख्या 205.4 लाख है। 1981 और 1991 के दो एनएसएसओ सर्वेक्षणों और 2001 के अनुमानित आंकड़ों द्वारा दी गई विभिन्न अक्षमताओं का परिमाण और आकार नीचे दी गई तालिका में दिया गया है-

शारीरिक रूप से अक्षम व्यक्तियों की अनुमानित संख्या (मानसिक मंदता को छोड़कर)

Type of Disability	1981*	%	1991**	%	2000***	%
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
Locomotor	54.27	39.7	80.44	49.2	101.00	49.2
Visual	34.74	25.4	36.26	22.2	45.6	22.2
Hearing	30.19	22.1	29.4	17.8	36.6	17.8
Speech	17.54	12.8	17.68	10.8	22.2	10.8
Total	136.74	100.00	163.62	100.00	205.4	100.0
Disabled (with more than one of the 4 disabilities mentioned above.		14.54		12.36		12.4

स्रोत: नेशनल सैम्पल सर्वे

(जनसंख्या लाख में)

अन्य वंचित समूह:-

दशकों से आर्थिक विकास की गति ने जीवन स्तर, पोषण और स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्धि की है। कच्चे मृत्यु दर (सीडीआर) में 1951 में 25.1 से 1991 में 9.8 तक गिरावट के संदर्भ में बदलते जनसांख्यिकीय परिदृश्य और आयु संरचना पर इसका प्रभाव पड़ा है। 1990 के दशक में सीडीआर में और गिरावट देखी गई। आने वाले दशकों में, देश को 60 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों के अनुपात और संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि का सामना करना पड़ेगा। इसका मतलब यह होगा कि बुजुर्गों का एक बड़ा वर्ग बेसहारा छोड़ दिया जाएगा, संयुक्त परिवार प्रणाली के टूटने, ग्रामीण-शहरी प्रवास, सामान्य गरीबी और राज्य समर्थित सामाजिक सुरक्षा प्रणाली की अनुपस्थिति के कारण खुद को बचाने के लिए। अन्य वंचित समूहों जैसे संकटग्रस्त बच्चों, निराश्रित, परित्यक्त बच्चों और अनाथ बच्चों के मामले में, वहाँ कोई सटीक अनुमान नहीं हैं। निम्न तालिका के आधार पर जनसंख्या के आकार को दर्शाती है विभिन्न शोध अध्ययन। जबकि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय को विकलांगों, स्ट्रीट चिल्ड्रेन, किशोर अपराधियों, महिला यौनकर्मियों, ड्रग एडिक्ट्स, भिखारियों और वृद्धों की देखभाल करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है, श्रम मंत्रालय बच्चे की देखभाल करता है। श्रमिक, महिला और बाल विकास विभाग बाल यौनकर्मियों की देखभाल करता है, और शहरी मामलों का मंत्रालय सामाजिक न्याय और अधिकारिता के नोडल मंत्रालय के साथ स्ट्रीट चिल्ड्रेन की जिम्मेदारी साझा करता है। संकटग्रस्त व्यक्तियों के हितों की रक्षा और विभिन्न सामाजिक समस्याओं/बुराइयों से निपटने के लिए ढेर सारे सामाजिक कानून मौजूद हैं। हालांकि, इन कानूनों के बारे में जागरूकता और प्रवर्तन दोनों ही बहुत खराब हैं। मौजूदा कानूनों को लागू करने और जनता के लिए शिक्षा का काम शुरू करने के लिए मशीनरी को मजबूत करने के लिए जोरदार प्रयास की जरूरत है। इन कानूनों के बारे में जनता को भी जागरूक करना होगा।

भौतिक असमानताओं के घोर अन्याय को शांत करने के लिए राज्य के ऐसे सुधारात्मक उपाय न केवल कमजोर और गरीबी से त्रस्त लोगों के हित के लिए बल्कि सामाजिक और राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए भी आवश्यक हैं। चूंकि भारत में अभी भी कमजोर और हाशिए पर रहने वाले लोग आबादी का एक बड़ा हिस्सा निवास करता है इसलिए राज्य के प्रति उनकी नाराजगी आधुनिक राष्ट्र-राज्यों के लिए वैधता का संकट पैदा कर सकती है। भारत जैसे कामकाजी लोकतंत्रों में राज्य की लोकप्रिय वैधता और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। चूंकि चुनावी समर्थन लोकतांत्रिक राज्यों में राजनीतिक शासन की पहचान है, असमान आर्थिक ढांचे का खामियाजा भुगतने वाले लोगों के प्रमुख वर्गों का विश्वास महत्वपूर्ण बना हुआ है। इसलिए, भारत में कल्याणकारी राज्य की अनिवार्यता हमेशा विभिन्न बिंदुओं पर सत्ता में राजनीतिक दलों की परवाह किए बिना मुक्त रही है। कल्याणकारी राज्य के महत्व ने एक बार फिर से चल रही महामारी के मद्देनजर भारत में इसकी अपरिहार्य आवश्यकता को प्रबल कर दिया है। एक ऐसी स्थिति सामने आई है जिसमें कोविड-19 के अचानक हुए हमले के कारण जीवन और आजीविका का संकट पहले जैसा कभी नहीं हुआ। इसलिए, लोगों के रोजमर्रा के जीवन को प्रभावित करने वाले इस तरह के भारी स्वास्थ्य संकट के बीच राज्य की सुधारात्मक और देखभाल करने वाली भूमिका निर्विवाद हो गई। यह सच है कि कुख्यात वायरस का हानिकारक प्रभाव व्यापक है और इसने सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की परवाह किए बिना सभी लोगों के जीवन को खतरे में डाल दिया है। लेकिन, महामारी के दौरान बड़ी पीड़ा निश्चित रूप से गरीबों और हाशिए के लोगों द्वारा झेली जा रही है भौतिक असमानताओं के कच्चे अन्याय को शांत करने के लिए राज्य के ऐसे सुधारात्मक उपाय न केवल कमजोर और गरीबी से त्रस्त लोगों के हित के लिए आवश्यक हैं, बल्कि यह सुनिश्चित करने के लिए भी हैं। सामाजिक और राजनीतिक स्थिरता। चूंकि कमजोर और हाशिए पर रहने वाले लोग आबादी का एक बड़ा हिस्सा हैं, इसलिए राज्य के प्रति उनकी नाराजगी और नाराजगी आधुनिक राष्ट्र-राज्यों के लिए वैधता का संकट पैदा कर सकती है।

भारत जैसे कामकाजी लोकतंत्रों में राज्य की लोकप्रिय वैधता और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। चूंकि चुनावी समर्थन लोकतांत्रिक राज्यों में राजनीतिक शासन की पहचान है, असमान आर्थिक ढांचे का खामियाजा भुगतने वाले लोगों के प्रमुख वर्गों का विश्वास महत्वपूर्ण बना हुआ है। इसलिए, भारत में कल्याणकारी

राज्य की अनिवार्यता हमेशा विभिन्न बिंदुओं पर सत्ता में राजनीतिक दलों की परवाह किए बिना मुक्त रही है। कल्याणकारी राज्य के महत्व ने एक बार फिर से चल रही महामारी के मद्देनजर भारत में इसकी अपरिहार्य आवश्यकता को प्रबल कर दिया है। एक ऐसी स्थिति सामने आई है जिसमें कोविड-19 के अचानक हुए हमले के कारण जीवन और आजीविका का संकट पहले जैसा कभी नहीं हुआ। इसलिए, लोगों के रोजमर्रा के जीवन को प्रभावित करने वाले इस तरह के भारी स्वास्थ्य संकट के बीच राज्य की सुधारात्मक और देखभाल करने वाली भूमिका निर्विवाद हो गई। यह सच है कि कुख्यात वायरस का हानिकारक प्रभाव व्यापक है और इसने सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की परवाह किए बिना सभी लोगों के जीवन को खतरे में डाल दिया है। लेकिन, महामारी के दौरान बड़ी पीड़ा निश्चित रूप से गरीबों और हाशिए पर पड़े लोगों द्वारा झेली जा रही है।

लक्षित समूहों में व्याप्त अशिक्षा -

अशिक्षा अन्धकार का पर्याय है, अशिक्षा के कारण ग्रामीण लोग, चल रही सरकारी योजनाओं, कार्यक्रमों आदि के बारे में नहीं जान पाते हैं तथा अपने हक से वंचित रह जाते हैं। इसलिए सरकार द्वारा इस समस्या के निवारण के लिए 'सर्वशिक्षा अभियान' नामक फ्लैगशिप प्रोग्राम (अग्रगामी कार्यक्रम) चलाया जा रहा है जिससे ग्रामीण जीवन में व्याप्त अशिक्षा के अंधकार को मिटाया जा सके। इस प्रकार ग्रामीणों को शिक्षित करके उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया जा सकता है।

गांवों में व्याप्त बेरोजगारी की समस्या-

बेरोजगारी युवाओं की गम्भीर समस्या है। विशेषकर गांव के बेरोजगार युवा, काम की तलाश में, शहर की ओर रुख करते हैं जिससे स्थानान्तरण की समस्या भी उत्पन्न होती है, साथ ही साथ इसका ग्रामीण युवाओं के जीवन एवं कृषि के विकास पर भी बुरा असर पड़ता है। बेरोजगारी के इस दंश से निजात दिलाने हेतु सरकार द्वारा 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी योजना' (मनरेगा) नामक फ्लैगशिप प्रोग्राम चलाया जा रहा है जो कि मानवीय इतिहास की सबसे बड़ी और महत्वाकांक्षी योजना है जिसका ग्रामीण जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं-

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ दिमाग का निवास होता है। अपर्याप्त चिकित्सीय सुविधा के कारण ग्रामीण लोगों को उचित चिकित्सीय उपचार उपलब्ध नहीं हो पाता है। अधिकांश ग्रामीण महिलाएं उचित इलाज के अभाव में प्रसवपीड़ा के दौरान दम तोड़ देती हैं। खराब आर्थिक स्थिति के कारण ग्रामीण लोग, दवाएं एवं अन्य स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं से मरहूम रह जाते हैं। इस समस्या के निदान हेतु सरकार द्वारा विभिन्न कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। National Rural Health Mission (NRHM) नामक कल्याणकारी प्रोग्राम सरकार द्वारा उठाया गया एक अहम कदम है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीणों को Accessible, Affordable, Accountable, effective और reliable प्राथमिक चिकित्सा उपलब्ध कराना है। ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक स्कूलों में पढ़ रहे बच्चों की नामांकन संख्या में वृद्धि तथा उनके पोषण हेतु 'Mid Day Meal' (MDMS) नामक फ्लैगशिप प्रोग्राम सरकार द्वारा चलाया जा रहा है जिसके सकारात्मक परिणाम आये हैं यद्यपि पूर्णरूपेण उद्देश्य की प्राप्ति अभी नहीं हो पायी है।

बुनियादी ढांचे का अभाव-

वंचित समूहों के निवास स्थल पर बुनियादी ढाँचे यथा-सड़क, संचार साधनों, विद्युतीकरण, सिंचाई की उचित व्यवस्था आवास आदि का सुदृढ़ होना अत्यन्त आवश्यक है। इन बुनियादी ढाँचों के सुदृढ़ीकरण के बगैर विकास की बात मात्र एक छलावा और दिखावा है। सरकार ने इस दिशा में कदम उठाया है और अनेक प्रकार के कार्यक्रमों को इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु चलाया जा रहा है। Prime Minister's Gram Sadak Yojana (PMGSY) नामक योजना के माध्यम से गाँवों को सड़कों से जोड़ा जा रहा है। जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापार, कृषियन्त्रों को लाने में सुविधा तथा आम लोगों को आवागमन की सुविधा मिली है, इस कार्यक्रम का ग्रामीण विकास पर सकारात्मक एवं व्यापक प्रभाव पड़ा है।

'Deen Dayal Upadhyaya Gram Jyoti Yojana (DDUGJY) नामक प्रोग्राम (2015 से पहले इसे RGGVY के नाम से जाना जाता था) के माध्यम से गाँवों का विद्युतीकरण किया जा रहा है, जिससे अन्य अद्यतन (latest) तकनीकों का प्रयोग सम्भव हुआ है। इन तकनीकों के प्रयोग से उत्पादन में भी वृद्धि सम्भव हुआ है। गाँवों में वर्षा जल के संरक्षण आदि हेतु 'Water And sanitation mission नामक फ्लैगशिप प्रोग्राम सरकार द्वारा चलाया जा रहा है जिसका उद्देश्य गाँवों का समग्र विकास करना है।

कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की समस्या-

सरकार द्वारा चलाये जा रहे फ्लैगशिप कार्यक्रम तभी ग्रामीण विकास को उद्वेलित कर सकते हैं, जब उनका उचित ढंग से क्रियान्वयन हो; क्योंकि इसके अभाव में सभी कार्यक्रम निष्फल और अप्रभावी हैं। कार्यक्रमों के उचित क्रियान्वयन में आने वाली प्रमुख समस्याएँ- राजनीतिक हस्तक्षेप, भ्रष्टाचार, लोगों में जागरूकता का अभाव, आम जन की उचित भागीदारी न होना, क्रियान्वयन की दोषपूर्ण प्रक्रिया है जिसके समाधान के बगैर ग्रामीण विकास के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कार्यक्रमों के अमल में राजनीतिक उठापटक एवं लालफीताशाही नहीं होना चाहिए, साथ ही साथ केन्द्र तथा राज्य स्तर के राजनीतिज्ञों तथा अधिकारियों को अपनी स्थिति, शिक्षा अथवा प्रशिक्षण के आधार में ग्रामीण जन की क्षमता और अनुभव की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। आम व्यक्ति की समझ, क्षमता तथा भागीदारी की इच्छा पर विश्वास किया जाना चाहिए। इस दिशा में सरकार द्वारा प्रयास किये जा रहे हैं। सामाजिक अंकुश आदि के माध्यम से इन समस्याओं पर नकेल कसने की कोशिश सरकार द्वारा की जा रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. Koenig, Michael A. And M.E. Khan (eds.), (1999), Improving Quality of Care in India's Family Welfare Programme: The Challenge Ahead, New York, Population Council.
2. Heise, Lori, Jacqueline Pitanguy, And Adrienne Germain. (1994), Violence Against Women: The Hidden Health Burden, Washington D.C., The World Bank.
3. International Institute for Population Sciences (1995), National Family Health Survey (MCH And Family Planning), India 1992-93. Bombay: IIPS.
4. United Nations Development Program (UNDP) (2000), Human Development Report 2000, New York, Oxford University Press.
5. Nebel, Jacob M. & Stefánsson, H. Orri (forthcoming), Calibration Dilemmas in the Ethics of Distribution. _Economics And Philosophy
6. Mays, Jennifer M. (March 1, 2006), Feminist Disability Theory: Domestic Violence Against Women with A Disability, *Disability & Society* 21, no. 2.
7. Walker, Robert (1 November 2004), *Social Security And Welfare: Concepts And Comparisons: Concepts And Comparisons*, U.K., McGraw-Hill Education.
8. Joe; Fording, Richard C. (2003), Schram, Sanford F. (ed.), *Race And the politics of welfare reform*, Ann Arbor, Mich., Univ. of Michigan Press.
9. Andersen, H (2008), Social Justice, Legitimacy And the Welfare State, *Housing Studies*, 23(4), 675-680.
10. Betei He, A. (1964), Family And Social Change in India And other South Asian Countries, *Economic Weekly*, XVI, Nos. 5, 6 And 7, Annual Number. February 1964.
11. D.S.W. (1969). Department of Social Welfare. Government of India. (Report of the Gommittee on Untouchability, Economic And Educational Development of the Scheduled Gastes And Gonected Documents. Delhi)

निराला के काव्य में प्रगति चेतना का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० नगीना बानों

असि० प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, शिवा पी०जी० कॉलेज, लखनऊ

साहित्य मानव जीवन की संगतियों व विसंगतियों को व्यक्त करने वाला साधन है। इसमें मानव जीवन की अनेक प्रकार की भाव-भावनाएं एवं चिंतन-परंपरा शामिल रहती हैं। इन्हीं परंपराओं के साथ मानव-जीवन को इस सांसारिक-जीवन को जीते हुए प्रगति के पथ पर अग्रसर करने की भावना भी साहित्य में निहित होती है। साहित्य में निहित ऐसी आकांक्षा ही प्रगतिशीलता कहलाती है।

किसी समाज की प्रगतिशीलता जांचनी हो तो आधुनिक बोध के साथ संवेदना का पैमाना भी देखना चाहिए। इन्हीं बिंदुओं से समाज की प्रगतिशीलता और उसकी साहित्य में अभिव्यक्ति की परख होती है। निराला के साहित्य में हम इन्हीं प्रकार के प्रगतिशील मूल्यों तथ्यों व अभिव्यक्तियों के बारे में विश्लेषण करेंगे।

हिंदी साहित्य में कबीर के बाद निराला को दूसरा अवधूत कवि माना जाता है। कहा जाता है निराला ने समाज को अपनी तान पर रखा। समाज के इशारे पर चलने की बजाए खुद से समाज के लिए एक मापदंड निर्धारित किया। जिसका अन्य कवियों ने अनुसरण भी किया। जीवन को तंगहाली में हंसी के साथ एक कद्दावर आदमी की तरह गुजार देना भला कोई निराला से सीखे। निराला की ऐसी फकीराना सोच की वजह से मैं उनका मुरीद बन गया।

तीन साल की उम्र में मां को खोने के बाद पिता की रहगुजर में जीवन गुजारने की वजह से निराला एक साहसी कवि बन गए थे। अभाव के बीच निराला ने हाई स्कूल की पढ़ाई करने के बाद घर में अंग्रेजी और संस्कृति का अध्ययन किया। उनको रामचरित मानस काफी प्रिय था। अवधि भाषा में लिखी महाकवि तुलसीदास की यह कृति हिंदी साहित्य का एक विपुल भंडार है। निराला पर रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद और रवींद्रनाथ टैगोर का भी गहरा प्रभाव पड़ा। निराला भाव से स्वतंत्र कवि थे। वह पढ़ने लिखने की बजाय खेल-कूद और अल्हड़ फकीराना मस्ती में ज्यादा लगाव रखते थे। निराला को हिंदी सीखने की ललक उनकी पत्नी ने ही दी। पत्नी का हालांकि उन्हें सुख नहीं मिला। बाद में उनकी विधवा बेटी का भी देहांत हो गया।

निराला का जीवन संघर्षों की एक जीती जागती मिसाल है। उनके जीवन में विपत्तियां हमेशा उन्हें परेशान करती रहीं। कभी असमय मृत्यु तो कभी आर्थिक विषमताएं और पैसों का अभाव। उन्हें हर तरफ से परेशानी ही मिली लेकिन उन्होंने इसके बाद भी अपनी कविताओं में ओज और उमंग को कम नहीं होने दिया। इसी वजह से मैं इस महाकवि को पसंद करता हूँ। हमेशा हंसते हुए जीवन के करारे प्रहारों का सामना करना कोई इस कवि से सीख सकता है। निराला मूलतः साहित्यकार के साथ एक बड़े दार्शनिक भी थे। उनकी दार्शनिकता कहानियां, उपन्यास और निबंध की रचना की पर उनकी ओजस्वी धारा उनके काव्य में ही झलकी। उनकी कविताओं ने ही उन्हें जग में आलोकित किया।

निराला की कविताओं में कहीं प्रेम के सघन वन से गुजरते हैं तो कहीं आध्यात्मिकता में खो जाते हैं। आम आदमी या यूँ कहें कि गरीब आदमी के प्रति सहानुभूति व संवेदना उनके काव्य में कूट-कूट कर भरी है। देशप्रेम भी उनकी रचनाओं में झलकता है। सामाजिक परंपराओं का विरोध और प्रकृति से प्यार जैसे उनका मुख्य काव्य धर्म हो। इलाहाबाद में पत्थर तोड़ती महिला पर उन्होंने जो कलम चलाई है वह हिंदी साहित्य की एक शाश्वत कविता की संज्ञा पा चुकी है।

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर
कोई न छायादार पेड़
वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन, भर बंधा यौवन
नत नयन प्रिय, कर्म-रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार
सामने तरु-मालिका अट्टालिका प्राकार

सर्वहारा वर्ग से उनकी सहानुभूति गहरी है। वह गरीबी देखकर भाव विव्वल हो उठते थे। एक बार की बात है पूस के महीने में वह कहीं जा रहे थे कि रास्ते में उन्हें एक बूढ़ी औरत कांपते हुए मिली। उसने निराला को बेटा कहकर पुकारा, फिर क्या था निराला ने भी उसे अपनी मां समझ अपने तन पर ओढ़ी शाल उन्हें झट से दे दी। उन्होंने भिखारी शब्द का अंकन अपनी काफी मर्मस्पर्शी कविता में किया है। जो इस प्रकार है-

पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकड़िया टेक
मुट्ठी भर दाने को,
भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली को फैलाता
दो टूक कलेजे के करता पछताता

राम की शक्ति पूजाशू कविता निराला के ओज का साक्षात् प्रमाण है। इस कविता के पाठ से निराशा में मुरझाए लोगों के जीवन में आशा का संचार होता है। इसमें उन्होंने राम के उदात्त चरित्र की व्याख्या करते हुए उन्हें एक आदर्श राजा के रूप में स्थापित किया है। इसमें उनकी कुछ पंक्तियां साहस की साक्षात् प्रस्तुति हैं। उन्होंने लिखा है-

होगी जय, होगी जय
हे पुरुषोत्तम नवीन
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन।

साहित्य मानव चेतना के एक विशिष्ट उपलब्धि है और सामाजिक सदर्थों से जुड़ा होता है। साहित्य के इस प्रकृति को देखकर ही शायद हमारे प्राचीन विद्वान नाटक के प्रेक्षक को 'सामाजिक' कहा गया होगा। "साहित्य में मनुष्य का जीवन का प्रवाह प्रतिलक्षित होता है। साहित्य स्वयं इस प्रवाह और मनुष्य की क्रमशः विस्तारित होती हुई चेतना का परिणाम है। कई अर्थों में वह इस प्रवाह की दिशा और गति को भी प्रभावित करता है। साहित्य में नीहित स्थितियों की व्याख्या और मूल्यांकन केवल सौंदर्य और रसानुभूति के क्षेत्र तक सीमित नहीं होते, उनका सामाजिक अर्थ और प्रभाव बड़ा व्यापक होता है। साहित्य मनुष्य की स्वयं चेतना और जीवन-चेतना में जन्म लेता है।"¹

फ्रंचेस्का आर्सिनी ने निराला के विषय में लिखा है, " 'छायावाद' के सबसे अधिक प्रयोगात्मक और विस्तृत कवि, और मौलिक रेखाचित्रों, कहानियों, तथा लघु उपन्यासों के लेखक 'निराला' को अब इस शताब्दी के सबसे अग्रणी हिंदी साहित्यकारों में गिना जाता है।"² आधुनिक काल में साहित्य के सर्वाधिक विस्तृत चेतना संपन्न साहित्यकार निराला जी हैं।

निराला साहित्य सामाजिक प्रश्नों से हमेशा दो-चार करता रहा है। इसी कारण आधुनिक साहित्य के सर्वाधिक विवादित, संघर्ष के प्रतीक और वर्तमान के लिए सर्वाधिक प्रासंगिक कविताकार और गद्यकार निराला जी ही हैं। भारतेंदु के साहित्य में जिस जनवाद का बीज दिखाई पड़ता है वह निराला में विशाल वृक्ष बन जाता है। निराला का जीवन संघर्ष दोहरे स्तर पर रहा है- सामाजिक और व्यक्तिगत दोनों रूपों से। 'दुःख ही जीवन की कथा रही' पंक्ति निराला के सम्पूर्ण जीवन-संघर्ष का निचोड़ है। निराला जी के साहित्यिक-चिंतन का दायरा अतिविस्तृत था। छायावादी काल के अंतर्गत जहाँ छायावादी-भावबोध से युक्त कविताये लिखे वही 'बादल-राग' जैसा यथार्थवादी काव्य भी लिखे। प्रगतिवादी भले ही चिल्लाये कि वे प्रगतिशील विचारधारा के हैं परन्तु निराला जैसी खरी प्रगतिशीलता उनमें नहीं है।

निराला की प्रगतिशीलता मार्क्स के पढ़कर नहीं विकसित हुई है वह सौ आने हिंदी समाज से उनके जुड़ाव और व्यक्तिगत संघर्ष से अनुप्राणित है न कि पन्त जैसे सैद्धांतिक अनुवाद मात्र। इसीलिए उनके साहित्य में स्वाभाविक व्यंग्य का तीखापन है। "प्रगतिशील चेतना से व्याप्त उनका कथा साहित्य एक ओर जहाँ उन्हें सामाजिक भूमिकाओं की सतहों को भेदने वाली दृष्टि देता है। वहीं अन्य काव्यरूपों में उनके प्रखर पांडित्य, कलामर्मज्ञता तथा गहरी सूझ-बूझ का पता चलता है। निराला की बौद्धिकता अतिशयता थी। प्रखर कल्पना शक्ति को उन्होंने बौद्धिकता का सबल आधार दिया था।"³

निराला साहित्य सामाजिक चेतना से संपन्न है। उनके साहित्य में सामाजिक विसंगतियों से हमेशा संघर्ष किया है। सही मायने में निराला साहित्य नवजागरण का प्रतीक है। कबीर के बाद अगर किसी साहित्य में प्रतिरोध का स्वर विद्यमान दिखाई पड़ता है तो निराला के ही साहित्य में। निराला की सबसे बड़ी विशेषता लेखन और जीवन के प्रति अद्वैत स्थापित करना है। निराला ने केवल लिखा ही नहीं है बल्कि उसको जिया भी है। इसी से डॉ. शिवगोपाल मिश्र बताते हैं, "कान्यकुब्ज कुल में मांसाहार तथा शराब पीना वैध है। निराला खुलकर मांस तथा मद्य का प्रयोग करते। जो लोग चिढ़ते उन्हें चिढ़ाने के लिए मांस-मद्य का प्रयोग अवश्य करते।"⁴

निराला ने सामाजिक विसंगतियों पर जमकर प्रहार किया है। सामाजिक शोषण का पर्दाफाश करने में कोई कसर नहीं छोड़ा है। 'तोड़ती पत्थर' नामक कविता में सत्ताधारी वर्ग और सामान्य श्रमशील जनता का प्रतीक महिला का खींचा गया चित्र अत्यंत ही प्रभावशाली है और समाज के यथार्थ स्थिति को सामने रख देती है-

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भरा बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत-मन,

गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार
सामने तरु मलिका अट्टालिका, प्राकार।¹⁵

निराला इसी तरह अपनी प्रसिद्ध लम्बी कविता 'कुङ्कुमुता' में पूँजीवादी शोषक और सर्वहारा सामान्य जन के शोषित चरित्र का उद्घाटन करते हैं-

अबे, सुन, बे, गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतराता है केपिटलिस्ट!
कितनों को तूने बनाया है गुलाम।¹⁶

निराला ने सामाजिक शासकों के चरित्र का पर्दाफाश करने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं। वे लिखते हैं- "समाज जब तक गतिशील है सृष्टि के नियमों में बंधा हुआ है, तब तक वह निष्कलुष नहीं, कारण वही सृष्टि सदोष है। परंतु चूँकि समाज निर्मलत्व की ओर गतिशील है, इसीलिए उसके अंगों से हर तरह की कलुष निकालने की चेष्टाएँ की गई। इसीलिए समाज शासकों ने अनेकानेक विधानों द्वारा उसे बचाने का प्रयत्न किया।"

"साहित्य समाज के दर्पण मात्र नहीं होता। उसमें समाज की परंपरा, जीवन दृष्टि और दर्शन, तथा समसामयिक यथार्थ और विसंगतियों के चित्रण के साथ भविष्य का पूर्वाभास और दिशा संकेत भी होता है।"¹⁸ निराला ने परंपरा का अनुकरण किया पर अंधानुकरण नहीं। अंधानुकरण इसलिए नहीं कि उन्होंने विसंगतियों का पहचाना है और उसको दूर करने का मार्ग भी चेताया है। चेतनाशील रचनाकार की गतिमयता इसी में है कि वह समाज को गतिशील करे, न कि उसी चौराहे पर छोड़ दे जहाँ उसको रास्ता न मिले। निराला ने 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' के माध्यम से मिथकीय चेतना का नवसंदर्भ और नवदृष्टि देकर आधुनिक दर्शन की पीठिका तैयार की और समाज की चेतना को गतिशील किया।

निराला समाज के रुढ़िवादी मानसिकता के जर्जर मनोवृत्ति से परिचित थे। भारतीय जनमानस के वर्णवादी कमजोरी की ओर इशारा करते हैं, "ब्राह्मणों को तो गालियाँ सभी देते हैं, पर ब्राह्मण बनने का इरादा कोई भी नवीन संगठित जाति नहीं छोड़ती। इस तरह ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा बढ़ती ही जाती है। लोगों में जैसे ब्राह्मणत्व का लालच बढ़ गया हो।"¹⁹ ग्रामीण जीवन की रुढ़ियों एवं परंपरा की संकुचित नजरिए को ये बिल्लेसुर बकरिहा में चुनौती देते हैं। और इस मनोवृत्ति को तोड़ते भी हैं। जो काम कान्यकुब्जों ब्राह्मणों के लिए निषिद्ध और घृणित था।

उसे बिल्लेसुर से वे गाँव के लोगों की संकुचित जीवन-प्रणाली को मिटाना चाहते हैं जो कि मानवीयता पूर्ण निराला की मूल्य दृष्टि को बताती है। जाति-पाँति संबंधी व्यवस्था को वे अपने उपन्यास कुल्ली में कुल्लीभाट के द्वारा व्यक्त करते हैं। जिसमें कुल्ली निम्न वर्ग के लड़कों को शिक्षा देने का कार्य शुरू करता है। उस दृश्य का वर्णन करते हुए निराला कहते हैं, "गड़हे किनारे ऊँची जगह पर मकान के सामने एक चौकोर जगह है, कुछ पेड़ हैं...। उस पर अछूत लड़के श्रद्धा की मूर्ति बने बैठे हैं... ये पुष्ट दर पुष्ट से सम्मान देकर नतमस्तक ही संसार से चले गए हैं। संसार की सभ्यता में इनका स्थान नहीं है। ये नहीं कह सकते, हमारे पूर्व कश्यप, भारद्वाज, कपिल, कणाद थे, रामायण महाभारत इनकी कृतियाँ हैं य अर्थशास्त्र, कामसूत्र इन्होंने लिखे हैं य अशोक, विक्रमादित्य, हर्षवर्धन, पृथ्वीराज इनके वंश हैं। फिर भी ये थे और हैं... समाज का सारा विरोध सहकर कुल्ली ने जो किया है वही निराला की दृष्टि में उन्हें एक तेजस्वी नायक का गौरव देता है।"¹⁰

निराला ने शोषित और अधिकार वंचित आधी आबादी के समाज के संघर्ष को भी अपने उपन्यासों में वाणी दी है। उनकी उपन्यासों के विषय में रामखेलावन चौधरी ने लिखा है, "निराला के तीनों उपन्यासों की कथाएँ नारी जीवन के संघर्ष से संबंध रखती हैं। अप्सरा में वेश्या पुत्री कनक को अपने जन्म से संबंधित परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ता है... अलका में निराश्रिता शोभा गाँव में जमींदार के कुचक्र का शिकार हो जाती है... निरुपमा में एक कोमलांगी सुशिक्षिका और सच्चरित्रा बंगाली बाला की कथा है, जो घर के भीतर ही अपने मामा और भाई के कुचक्र एवं षड्यंत्र का शिकार हो जाती है... उपर्युक्त घटनाओं पर दृष्टिपात करने से निराला पर दो प्रभाव स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं- एक है बंगला के यशस्वी लेखक शरतचंद्र जी का और दूसरा है हिंदी के उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी का।"¹¹

'ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत' की स्थिति में रहने वाले निराला जी को सामाजिक बन्धन स्वीकार नहीं था। इसी कारण उनको ब्राह्मण समाज के दंश को झेलना पड़ा। इसी को देखते हुए उनके विषय में लिखा गया है, "वे अपने को आउटड्रॉप समझते थे। मैं बाहर कर दिया गया हूँ, भीतर भर दिया हूँ, वे चाहते तो बड़े मजे से पुरोहित वर्ग का अंग बनकर या शासक वर्ग की सेवा करते हुए सुख के साथ जी सकते थे। लेकिन उन्होंने जो रास्ता चुना, वह उन्हें इसी दशा तक पहुँचा सकता था 'ब्राह्मण समाज ज्यों अछूत'।"¹²

निराला ने समाज में व्याप्त जाति-प्रथा के सन्दर्भ में अपने निबंध 'वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति' शीर्षक में लिखा हैरू "ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने घर में ऐंठने के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य रह गये। बाहरी प्रतिधातों ने भारतवर्ष के उस समाज-शरीर को, उसके उस व्यक्तित्व को, समूल नष्ट कर दिया। ब्रह्म दृष्टि से उसका अस्तित्व ही न रह गया। भारतवर्ष की तमाम सामाजिक शक्तियों का यह एकीकरण-काल शूद्रों और अन्त्यजों के उठने का प्रभातकाल है। प्रकृति की यह कैसी विचित्र क्रिया है, जिसने युगों तक शूद्रों से अपर तीन वर्गों की सेवा करायी और इस तरह उनमें एक अदम्य शक्ति का प्रवाह भरा, और अब अनेकानेक विवर्तनों से गुजरती हुई, उठने के लिए उन्हें एक विचित्र ढंग से मौका दिया है, भारतवर्ष का यह युग शूद्र-शक्ति के उत्थान का युग है। और देश का पुनरुद्धार उन्हीं के जागरण की प्रतीक्षा कर रहा है।"¹³

निराला का साहित्य जीवित और जीवंत साहित्य है। निराला का साहित्य प्रेमचंद की इस उक्ति पर बिलकुल खरा उतरता है- "हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का

सार हो, सृजन का आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो- जो हममें गति और बेचौनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।”¹⁴ निराला का पूरा साहित्य मानवता की चेतना से अनुप्राणित है। उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि उनकी कविता में क्रांतिधर्मिता के साथ प्रगतिशील चेतना विद्यमान है।

संदर्भ सूची-

1. परंपरा, इतिहास बोध और संस्कृति, श्याम चरण दुबे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., 2014, पृ. सं. - 150
2. हिंदी का लोकवृत्त, फ्रंचेस्का आर्सिनी, अनु. नीलाभ, वाणी प्रकाशन, 2011, पृ. सं. - 175
3. प्रसाद निराला और पंत (छायावदा और उसकी वृहत्रयी), विजय बहादुर सिंह, स्वराज प्रकाशन दिल्ली, संस्करण - 2002, पृ. सं. - 12
4. ऐसे थे हमारे निराला, डॉ. शिवगोपाल मिश्र, तक्षशिला प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2002, पृ. सं. - 75
5. रागविराग, सं. रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012, पृ. सं. - 118
6. रागविराग, सं. रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012, पृ. सं. - 145
7. निराला संचयिता, सं. रमेश चंद्र शाह, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2001, पृ.सं.-324
8. परंपरा, इतिहास बोध और संस्कृति, श्याम चरण दुबे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. - 2014, पृ. सं. -155
9. निराला संचयिता, सं. रमेश चंद्र शाह, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2001, पृ. सं. - 319
10. निराला एक पुनर्मूल्यांकन, सं. ए. अरविंदाक्षन, आधार प्रकाशन पंचकूला हरियाणा, प्रथम संस्करण - 2006, पृ.सं.- 17
11. कथा-शिल्पी: निराला, डॉ. बलदेव प्रसाद मेहरोत्रा, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1984, पृ. सं. - 54
12. निराला एक पुनर्मूल्यांकन, सं. ए. अरविंदाक्षन, आधार प्रकाशन पंचकूला हरियाणा, प्रथम संस्करण - 2006, पृ. सं. -152
13. निराला रचनावली: सं. नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, 2006, पृ. सं. - 16
14. प्रेमचंद, कुछ विचार - प्रेमचंद, लोकभारती संस्करणरू 2013, पुनर्मुद्रण: 2015 पृ. सं. - 24-25

हिंदी के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान

डॉ० ज्ञानोबा गादगे

अतिथि प्राध्यापक, सरकारी महिला प्रथम श्रेणी महाविद्यालय, गुलबर्गा

हिंदी पत्रकारिता का प्रश्न राष्ट्रभाषा और खड़ी बोली के विकास से भी संबंधित रहा है। हिंदी भाषा विकास की पूरी प्रक्रिया हिंदी पत्रकारिता के भाषा विश्लेषण के माध्यम से समझी जा सकती है। इस विकास में भाषा के प्रति जागरूक पत्रकारों का अपना-अपना योगदान हिंदी को मिलता रहा है। ये पत्रकार हिंदी भाषी भी थे और हिंदीतर भाषा-भाषी भी। इनमें से कई बोली क्षेत्रों के थे, कुछ पहले साहित्यकार थे बाद में पत्रकार बने, तो कुछ ने पत्रकारिता से शुरू करके साहित्य जगत में अपना स्थान बनाया। इन सभी ने अखिल भारतीय स्तर पर बोली और समझी जाने वाली भाषा हिंदी के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित किया। इनके लिए हिंदी और राष्ट्रीयता एक दूसरे के पर्याय थे। क्योंकि ये पत्रकार भिन्न भाषा परिवेशों के थे इसलिए हिंदी पत्रकारिता में शैली वैविध्य अपनी चरम अवस्था में दिखाई देता है।

हिंदी पत्रकारिता का यह सौभाग्य रहा कि समय और समाज के प्रति जागरूक पत्रकारों ने निश्चित लक्ष्य के लिए इससे अपने को जोड़ा। वे लक्ष्य थे राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक उत्थान और लोकजागरण। तब पत्रकारिता एक मिशन थी, राष्ट्रीय महत्व के उद्देश्य पत्रकारिता की कसौटी थे और पत्रकार एक निडर व्यक्तित्व लेकर खुद भी आगे बढ़ता था और दूसरों को प्रेरित करता था। हिंदी के इन पत्रकारों ने न तो ब्रिटिश साम्राज्य के सामने घुटने टेके और न ही अपने आदर्शों से च्युत हुए इसीलिए समाज में इन पत्रकारों को अथाह सम्मान मिला।

हिंदी पत्रकारिता के विकासक्रम में कुछ पत्रकार प्रकाशस्तंभ बने जिन्होंने अपने समय में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और अनेक युवकों को लक्ष्यवेधी पत्रकारिता के लिए तैयार किया। वास्तव में वह पूरा शुरुआती समय हिंदी पत्रकारिता का स्वर्णयुग कहा जा सकता है। हिन्दी के गौरव को स्थापित करने, हिंदी साहित्य को बहुमुखी बनाने, भारतीय भाषाओं की रचनाओं को हिंदी में लाने, हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के महत्व पर टिप्पणी करने तथा इन सबके साथ सामाजिक उत्थान का निरंतर प्रयत्न करने में ये सभी पत्रकार अपने-अपने समय में अग्रणी रहे।

‘हिंदी प्रदीप’ के संपादक बालकृष्ण भट्ट केवल पत्रकार ही नहीं, उद्भट साहित्यकार भी थे। विभिन्न विधाओं में उन्होंने रचनाएं की जिन्हें पढ़ने पर यह पता चलता है कि भट्ट जी की शैली में कितना ओज और प्रभाव था। सरल और मुहावरेदार हिंदी लिखना उन्हीं से आगे अपने वाले पत्रकारों ने सीखा। हिंदी पत्रकारिता बालकृष्ण भट्ट की कई कारणों से ऋणी है। एक तो उन्होंने निर्भीक पत्रकारिता को जन्म दिया, दूसरे गंभीर लेखन में भी सहजता बनाए रखने की शैली निर्मित की, तीसरे हिंदी साहित्य की समीक्षा को उन्होंने प्रशस्त किया और चौथे हिंदी पत्रकारिता पर ब्रिटिश साम्राज्य के किसी भी प्रकार के अत्याचार का उन्होंने खुलकर विरोध किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र (कविवचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन, हरिश्चंद्र चंद्रिका, बालाबोधिनी) हिंदी पत्रकारिता के ही नहीं, आधुनिक हिंदी के भी जन्मदाता माने जाते हैं। भारतेंदु ने अपने पत्रों और नाटकों के द्वारा आधुनिक हिंदी गद्य को इस तरह विकसित करने का प्रयास किया कि वह जनसाधारण तक पहुंच सके। संस्कृत और उर्दू-दोनों की अतिवादिता से हिंदी को बचाते हुए उन्होंने बोलचाल की हिंदी को ही साहित्यिकता प्रदान करके ऐसी शैली ईजाद की जो वास्तव में हिंदी की केंद्रीय शैली थी और जिसे बाद में गांधी और प्रेमचंद ने ‘हिंदुस्तानी’ कहकर अखिल भारतीय व्यवहार की मान्यता प्रदान की। भारतेंदु के लिए स्वभाषा की उन्नति ही सभी प्रकार की उन्नतियों का मूलधार थी। ‘बालाबोधिनी’ महिलाओं पर केंद्रित हिंदी की पहली पत्रिका है। इसमें महिलाओं ने लिखा और भारतेंदु की प्रेरणा से अनेक महिलाएं हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में आईं। ज्ञान विज्ञान की दिशा में हिंदी पत्रकारिता को समृद्ध करने का कार्य भी भारतेंदु ने ही पहली बार किया। इतिहास, विज्ञान और समाजोपयोगी सामयिक विषयों पर उनकी पत्रिकाओं में उत्कृष्ट सामग्री छपती थी।

प्रताप नारायण मिश्र (ब्राह्मण) आधुनिक हिंदी के सचेतन पत्रकार माने जा सकते हैं। उन्होंने हिंदी गद्य और पद्य दोनों को नया संस्कार दिया। इनके समय तक प्रचलित हिंदी या तो अरबी-फारसी निष्ठ थी, या संस्कृतनिष्ठ, अथवा उसमें भारतेंदु की तरह बोलियों का असंतुलित मिश्रण था। मिश्र जी ने ठोस हिंदी गद्य को जन्म दिया। देशज, उर्दू और संस्कृत का जितना सुंदर मिश्रित प्रयोग मिश्र जी में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। वे हिंदी की प्रकृति को एक विशिष्ट शैली में ढालने वाले पहले पत्रकार थे।

महामना मदनमोहन मालवीय (हिंदोस्थान, अभ्युदय, मर्यादा) का हिंदी के प्रति दृष्टिकोण दृढ़ था। वे हिंदी के कट्टर समर्थक थे। अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना उन्होंने अपने इसी हिंदी प्रेम के कारण की थी। वे समय-समय पर अनेक पत्रों से संबद्ध हुए। हिंदी के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत साफ था कि हिंदी भाषा और नागरी अक्षर के द्वारा ही राष्ट्रीय एकता सिद्ध हो सकती है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी हिंदू विश्वविद्यालय और हिंदी प्रकाशन मंडल की स्थापना करके उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के उत्थान का रास्ता ही भारत के उत्थान का एक मात्र रास्ता है। मालवीय जी वाणी के धनी थे, जितना प्रभावशाली बोलते थे, उतना ही प्रभावशाली लिखते थे। हिंदी भाषा का ओज उनकी पत्रकारिता से प्रकाशित होता है।

मेहता लज्जाराम शर्मा (सर्वहित, वेंकटेश्वर) गुजराती भाषी थे, लेकिन हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया था। उनका दृढ़ विश्वास था कि 'एक-न-एक दिन पूरे भारत में हिंदी का डंका बजेगा, प्रांतीय भाषाएं हिंदी की आरती उतारेंगी, बहन उर्दू इसकी बलैया लेगी तथा अंग्रेजी हतप्रभ होकर हिंदी के गले में फूलों की माला पहनाएगी।'

हिंदी और उर्दू, दोनों भाषाओं की पत्रकारिता को प्रतिष्ठित करने वाले बाबू बालमुकुंद गुप्त (अखबारे-चुरार, हिंदी बंगवासी, भारतमित्र) ने पत्रकारिता को साहित्य निर्माण और भाषा चिंतन का भी माध्यम बनाया। गुप्त जी ने 'भारत मित्र' में महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' में प्रयुक्त 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर जो लेखमाला लिखी, वह पर्याप्त चर्चा का विषय बनी। इसी तरह उन्होंने 'वेंकटेश्वर समाचार' के मेहता लज्जाराम शर्मा द्वारा प्रयुक्त 'शेष शब्द पर भी खुली चर्चा की। उनकी ये चर्चाएं उनकी भाषाई चेतना को व्यक्त करने वाली हैं। वे मूलतः उर्दू के पत्रकार थे इसलिए जब हिंदी की सहज चपलता में व्यवधान होता देखते थे तो विचलित हो जाते थे। उनकी व्यंग्योक्तियां अत्यंत प्रखर होती थीं। इससे हिंदी पत्रकारिता को नई शैली भी मिली और निर्भीकता, दृढ़ता और ओजस्विता के साथ विनोदप्रियता का अद्भुत सम्मिश्रण भी। वे वास्तव में राष्ट्रव्यापी साहित्यिक विवादों के जनक और व्यंग्यात्मक शैली के अग्रदूत पत्रकार थे। उर्दू भाषा के साथ वे हिंदी की हिमायत करते थे। उर्दू और हिंदी के विवाद में उन्होंने हमेशा हिंदी का पक्ष लिया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (सरस्वती) हिंदी पत्रकारिता के शलाक पुरुष हैं। हिंदी के प्रति उनकी धारणा दृढ़ थी। वे उसे सुगठित, सुव्यवस्थित और सर्वमान्य स्वरूप प्रदान करना चाहते थे। 'सरस्वती के माध्यम से हिंदी को नई गति और शक्ति देने का जो कार्य द्विवेदी जी ने किया, उसका कोई सानी नहीं है। अपनी दृढ़ता के चलते ही उन्होंने अनेक पत्रकारों और साहित्यकारों को खड़ी बोली हिंदी में लिखने के लिए प्रेरित किया और 'सरस्वती' में छापकर उन्हें स्थापित किया। द्विवेदी जी ने हिंदी भाषा के परिष्कार का अनथक प्रयत्न किया और हिंदी में लेखकों तथा कवियों की एक पीढ़ी तैयार की। उनका यह दृढ़ मत था कि गद्य और पद्य की भाषा पृथक-पृथक नहीं होनी चाहिए।

माधव राव सप्रे (छत्तीसगढ़ मित्र, कर्मवीर) राष्ट्रीयता की प्रतिमूर्ति थे। उनकी हिंदी निष्ठा अपराजेय थी। उनका कहना था, 'मैं महाराष्ट्रीय हूं, परंतु हिंदी के विषय में मुझे उतना ही अभिमान है जितना किसी भी हिंदी भाषी को हो सकता है। मैं चाहता हूं कि इस राष्ट्रभाषा के सामने भारतवर्ष का प्रत्येक व्यक्ति इस बात को भूल जाए कि मैं महाराष्ट्रीय हूं, बंगाली हूं, गुजराती हूं या मदरासी हूं।

हिंदी के मूर्धन्य कथाकार प्रेमचंद का एक प्रेरक स्वरूप उनके जागरूक पत्रकार का भी है। 'माधुरी', 'जागरण' और 'हंस' का संपादन करके उन्होंने अपनी इस प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण पेश किया और हिंदुस्तानी शैली को सर्वग्राह्य तथा लोकप्रिय बनाने का महत्व कार्य किया।

हिंदी के मासिक पत्रों के संपादन में जो ख्याति महावीर प्रसाद द्विवेदी और प्रेमचंद की है वैसी ही ख्याति दैनिक पत्रों के संपादन में बाबूराव विष्णुराव पराड़कर (आज) की है। दैनिक हिंदी पत्रकारिता के वे आदि-पुरुष कहे जा सकते हैं। उन्होंने हिंदी भाषा का मानकीकरण ही नहीं, आधुनिकीकरण भी किया और हिंदी की पारिभाषिक शब्द संपदा की अभिवृद्धि की।

माखनलाल चतुर्वेदी (कर्मवीर, प्रभा, प्रताप) साहित्य, समाज और राजनीति, तीनों को अपनी पत्रकारिता में समेटकर चलते थे। उनकी साहित्य साधना भी अद्भुत थी। उनके भाषण और लेखन में इतना ओज था कि वे भावों को जिस तरह चाहते, प्रकट कर लेते थे। उनका यह स्वरूप भी उनके पत्रों के लिए वरदान साबित हुआ। उनका लेखन हिंदी भाषा के प्रांजल प्रयोग का उदाहरण है। उनका यह कहना था कि 'ऐसा लिखो जिसमें अनहोनापन हो, ऐसा बोलो जिस पर दुहराहट के दाग न पड़े हो।'

अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी (अभ्युदय, प्रताप) ने हिंदी पत्रकारिता में बलिदान और आचरण का अमर संदेश प्रसारित किया और हिंदी भाषा को ओजस्वी लेखन का मुहावरा प्रदान किया। इसी प्रकार शिवपूजन सहाय (मारवाड़ी सुधार, मतवाला, माधुरी) अकेले ऐसे पत्रकार हैं जिनका हिंदी की विविध शैलियों पर समान अधिकार था।

संदर्भ सूची:

- आज की हिन्दी और अनुवाद की समस्याएँ, रायवरपू श्री सरजू
- आज की हिन्दी पत्रकारिता, सुरेश निर्मल

वैश्वीकरण के दौर में परंपरागत लोक कलाओं का बदलता स्वरूप: एक अध्ययन

डॉ० रश्मि शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, डिपार्टमेंट ऑफ ड्राइंग एंड पेंटिंग, के.आर. गर्ल्स डिग्री कॉलेज, मथुरा.

सारांश

लोक कला जनसाधारण की सहज अभिव्यक्ति का ही एक स्वरूप है। यह मानव सभ्यता के धार्मिक विश्वासों और आस्थाओं के साथ प्रारंभ हुई और उसके साथ ही चलती चली आ रही है।

वैश्वीकरण एक बहुआयामी वैश्विक घटना है। दुनिया भर के लोग अब अपने दैनिक जीवन के हर पहलू में वैश्वीकरण की स्पष्ट उपस्थिति और इसके द्वारा लाए गए गहन परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से महसूस करते हैं। कुछ के लिए यह संक्रमण अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुआ है, जबकि अन्य के लिए वैश्वीकरण 21वीं सदी में पश्चिमी साम्राज्यवाद का नया रूप है, जिसने एक राष्ट्र की स्वदेशी सांस्कृतिक पहचान को नष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वैश्वीकरण ने दुनिया भर के स्वदेशी लोगों के जीवन और संस्कृतियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। आदिवासियों की समृद्ध पारंपरिक विरासत, उनकी विशिष्ट आदिवासी कला और हस्तशिल्प, पारंपरिक सांस्कृतिक प्रथाएं, उनकी अनूठी नृत्य-रूप और संगीत शैली- वर्तमान में वैश्वीकरण के कारण विलुप्त होने के कगार पर हैं। अधिकांश पारंपरिक लोक कलाकार विकासशील देशों से आते हैं, जहां औसत लोग प्रतिदिन 3.10 डॉलर से कम कमाते हैं, और जहां राजनीतिक, सामाजिक और पर्यावरणीय कठिनाइयां रोजमर्रा की जिंदगी को चुनौतीपूर्ण बनाती हैं।

वैश्वीकरण की गतिशील ताकतों ने अनजाने में भारतीय स्वदेशी समुदायों के लिए एक अस्तित्वगत संकट पैदा कर दिया है, जो अब इस क्रूर प्रतिस्पर्धी माहौल में पनपने के लिए अपनी पारंपरिक प्रथाओं और प्रदर्शनों को बदलने के लिए काफी हद तक मजबूर हैं।

मूल शब्द: वैश्वीकरण, लोक कला, स्वरूप, लोक चित्र, बाजार

परिचय

पुस्तकीय ज्ञान से भिन्नत व्यवहारिक ज्ञान पर आधारित सामान्य जनसमुदाय की अनुभूति की विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति ही लोक कला है। लोक कला की उत्पत्ति धार्मिक भावनाओं, अन्धविश्वासों, भय निवारण, अलंकरण प्रवृत्ति एवं जातिगत भावनाओं की रक्षा के विचार से हुई है। जैसे-जैसे मानव सभ्यता का विकास होता गया, लोक कलाएं भी विकसित होती गईं। शैलेन्द्रनाथ सामंत के अनुसार लोक कला, जन सामान्य विशेषकर ग्रामीण जनो की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। इसे कुछ विद्वानों ने कृषकों की कला भी माना है।

लोक कलाएं सौंदर्य दृष्टि के साथ मंगल का बड़ा गहरा भाव भी अपने में समेटे रखती हैं। यही लोककलाओं का सबसे महत्वपूर्ण तत्व भी है। भारत में सांस्कृतिक कलाओं का लोककला से बड़ा गहरा रिश्ता है; जो लोककथाओं, लोकगाथाओं, लोकनाट्यों, लोकगीतों, लोकनृत्यों, लोक वाद्यों, लोक संगीत, लोकचित्रों और मिथकों के रूप में युगों युगों से चली आ रही हैं। समय के साथ परम्परागत रीति रिवाजों में परिवर्तन के साथ इसका स्वरूप भी क्रमशः बदलता जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि जब कोई व्यक्ति विकास की चरम अवस्था में पहुंच जाता है, तो वह फिर से अपनी जड़ की ओर लौटने लगता है। संचार की आधुनिक तकनीक जिसने लोक कलाओं को विलुप्त होने के कगार पर धकेल दिया है और बाजारवाद के इस युग ने लोक कलाओं और लोक परंपराओं को एक बार फिर से अपनी जरूरत के लिए आगे बढ़ने का मौका दिया है।

समकालीन कला में लोक तत्वों का प्रतिनिधित्व

इस संसार की सृष्टि की रचना ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है। एक तरह से हर इंसान एक कलाकार है। कला रूप उसके मन में सुप्त अवस्था में रहता है, अवसर मिलते ही वह कला उससे अनायास निकलकर आकार ले लेती है।

भारतीय संदर्भ में, अधिकांश लोक कलाएँ जीवन के विभिन्न अनुष्ठानों, त्योहारों आदि से जुड़ी हुई हैं। इस अवसर पर, मांगलिक प्रतीकों को जमीन में या दीवारों पर चित्रित किया जाता है। जिसके लिए चावल, गेहूं का आटा, सूखे रंग की हल्दी आदि का चूर्ण काम करते हैं। उपनयन और विवाह समारोहों के समय, महिलाएं इस सामग्री से दीवारों पर फूल, पत्ते, बेल आदि का निशान लगाती हैं। इस अवसर पर शंख, आम्रपात्र, कलश, सूर्य, चंद्रमा, स्वस्तिक, मछली, हाथी आदि के मांगलिक प्रतीकों की नक्काशी की जाती है।

प्रचलित मान्यताओं और मान्यताओं के अनुसार अपने जीवन को सुखी और शांतिपूर्ण बनाने के लिए दिव्य भक्ति से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए ऐसा किया जाता है।

भारत की भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थितियाँ अन्य देशों से भिन्न हैं। इसलिए भारतीय संस्कृति अन्य देशों की संस्कृति से भिन्न है। जहाँ भारतीय संस्कृति, धर्म, आत्मा, अध्यात्म को साहित्य में शामिल किया गया है। वहीं ललित कलाओं में मौजूद तत्व इसे एक विशिष्टता प्रदान करते हैं। पुराणों में 64 कलाओं को माना गया है। इनमें चित्रकला का अपना विशेष स्थान है। चित्रकला में कई अलग-अलग शैलियाँ शामिल हैं। जिसमें विभिन्न प्रांतों की लोक कला शैलियाँ दर्शनीय हैं। इन लोक कला शैलियों में रंगोली बनाने की परंपरा भी प्रचलित है। लोक कला की आत्मा लोक तत्व है। समाज में विकसित प्रत्येक लोक कला में कुछ न कुछ लोक तत्व अवश्य मिलता है। सार्वजनिक जीवन द्वारा स्वीकार किए जाने वाले पारंपरिक तत्व लोक तत्व कहलाते हैं।

लोक कला एक ऐसी ही प्रवृत्ति है जिसमें प्राचीन काल की भाँति आज भी लोक कलाएँ समकालीन लोक कला में खड़ी पाई जाती हैं। वर्तमान समय में लोक कला में काफी परिवर्तन देखने को मिलता है। भविष्य में इस तरह के और बदलाव देखने को मिलेंगे।

आज विश्व में भारतीय संस्कृति को एक अलग पहचान मिली है। चाहे बिहार की मधुवाणी हो या बंगाल की पटुआ कला, राजस्थान मोडना कला, भारत के प्रत्येक सांस्कृतिक क्षेत्र की अपनी विशेष आदिवासी और लोक कलाएँ हैं, इस कारण लोक कलाएँ समकालीन रूप में विकसित हो रही हैं। समकालीन कला में इन तत्वों का प्रभाव को जोड़ना आधुनिक रूप के साथ साक्षात्कार आयोजित कर रहा है।

समकालीन कला में लोक तत्वों के प्रतिनिधित्व की बात करें तो आधुनिक भारतीय चित्रकला का भविष्य अंधकारमय है। कई आधुनिक चित्रकारों ने फिर से भारतीय चित्रकला के मूल स्वरूप में लौटने की कोशिश की। इसका श्रेय यमनी राय को जाता है। यामिनी राय ने अपनी कृतियों में स्थान न देकर भारतीय कला के बढ़ते पाश्चात्य प्रभाव को विशेष महत्व दिया। अपनी पढ़ाई के दौरान बंगाल के पाटू कलाकारों की कला से प्रभावित होकर उन्होंने एक नया प्रयोग किया।

यमनी राय द्वारा किए गए पारंपरिक भारतीय कला के प्रयोगों की सफलता के परिणामस्वरूप, कई आधुनिक कलाकारों ने अपने चित्रों में विभिन्न प्रयोग किये। आज कई कलाकार समकालीन कला में इस ओर बढ़ रहे हैं। जिसमें के.जी. सुब्रमण्यम, जे. स्वामीनाथन, मकवूल फिदा हुसैन, सतीश गुजराल, चिंतन उपाध्याय, मनजीत बाबा, ए. रामचंद्रन, देवयानी कृष्णा, वासुदेव आदि प्रमुख हैं। पानी और बूंद की तरह आज पूरी दुनिया में लोक कला के प्रति लोगों की रुचि और जागरूकता बढ़ती जा रही है। यह इसकी समृद्धि का प्रतीक है।

अंतर्राष्ट्रीय लोक कला बाजार में लोकसंस्कृति का संयोजन

आज जब कला को उपभोग की वस्तु बनाकर खरीदा-बेचा जा रहा है, अंतर्राष्ट्रीय लोक कला बाजार (IFAM) सांस्कृतिक वस्तुओं की बिक्री और बाजार प्रभाव की जांच करने के लिए दुनिया भर के समुदायों को एक बड़ा मंच प्रदान करता है।

हस्तशिल्प और अन्य कलाकृतियों के व्यापार के लिए आज अंतर्राष्ट्रीय लोक कला बाजार (IFAM) महत्वपूर्ण काम कर रहा है। IFAM एक गैर-लाभकारी संगठन है जो सांता फे, डलास, और आर्लिंगटन में वार्षिक मेलों का समन्वय करता है। 2017 की रिपोर्ट के अनुसार IFAM के बाजार में 53 देशों के 154 कलाकारों द्वारा केवल 2.5 दिनों में \$ 3.1 मिलियन से अधिक का व्यापार किया गया था। लोक कला बाजार केवल कपड़ा, गहने, सिरेमिक, गलीचे और दो आयामी कला तक सीमित नहीं है। इस बाजार का पिछले पंद्रह वर्षों में एक उल्लेखनीय अंतरराष्ट्रीय प्रभाव और सफल विकास हुआ है।

रचनात्मक वस्तुओं में व्यापार

रचनात्मक वस्तुओं के लिए वैश्विक बाजार का आकार 2002 के \$ 208 बिलियन से 2015 तक दुगुना होकर \$ 509 बिलियन तक पहुँच गया है।

	Contemporary Art	S&P 500	Global Equities	US Corporate Bonds	US Housing	Gold
Contemporary Art	1.00					
S&P 500	(0.06)	1.00				
Global Equities	(0.01)	0.95	1.00			
US Corporate Bonds	(0.29)	0.35	0.34	1.00		
US Housing	(0.08)	0.28	0.32	0.10	1.00	
Gold	0.20	(0.10)	0.10	0.39	(0.23)	1.00

Fig- Correlation Factor in Contemporary Art Market and Select Asset Classes 1995-2000

हस्तशिल्प उत्पादन कई विकासशील देशों में रोजगार और निर्यात अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा है। वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण हालांकि, उत्पाद बन रहे हैं। इसके साथ ही वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा भी बढ़ रही, विशेष रूप से चीन और अन्य एशियाई देशों में। लोक कला उत्पादों पर फैशन,

उपभोक्ता खरीद पैटर्न, और बाजारों की आर्थिक स्थितियों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। बार-बार बदलते बाजार के रुझानों के साथ सामंजस्य बनाए रखना, हस्तशिल्प निर्माताओं के लिए एक बड़ी चुनौती है। वैश्वीकरण की प्रगति ने इस चुनौती को तेज कर दिया है और हर जगह कारीगर समुदायों, निर्यातकों और कई पर्यवेक्षकों में काम और अस्तित्व की अनिश्चित प्रकृति को लेकर डर बढ़ा है। फिर भी भूमंडलीकरण से हस्तकला और शिल्प सामान के लिए दुनिया भर में बढ़ते बाजारों के साथ अमेरिका और यूरोप में कई नए अवसर भी पैदा हुए हैं।

भारत ने वैश्वीकरण के प्रभाव में, आर्थिक सुधार करते हुए बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए अपने दरवाजे खोल दिए हैं। भारतीय हस्तशिल्प, जो हमारी अर्थव्यवस्था के विकेंद्रीकृत क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, इसका निर्यात एक सराहनीय उच्च स्तर पर पहुंच गया है। भारतीय संस्कृति और परंपरा से जुड़े भारतीय लोक कला और शिल्प की पश्चिमी उपभोक्ताओं के बीच ऊँची मांग है।

दुनिया की संस्कृतियों के बीच की सीमाएं अब खत्म और अप्रासंगिक हो रही हैं। लेकिन इन सबके बावजूद, कई लोगों की चिंता यह भी है कि, “क्या ‘स्थानीय’ अपनी स्थानीयता को बनाए रखकर ‘वैश्विक’ के साथ मिल सकता है”? भारतीय हस्तशिल्प उद्योग के ग्रामीण कारीगर इस बात से चिंतित रहते हैं कि, मुक्त व्यापार और बड़े पैमाने पर दुनिया के अन्य हिस्सों में बने उत्पादों के बीच भारतीय अपने उत्पादों की कीमत कैसे तय करेंगे।

वैश्वीकरण को वैश्विक बाजार में हस्तशिल्प के लिए बढ़ते अवसरों के रूप में देखा जाता है। भारतीय हस्तशिल्प निर्यात जो पचास के दशक के मध्य में केवल 10 करोड़ था, 1990-91 में 1220 करोड़ रुपये को पार कर गया। पुनः यह 1998-99 में बढ़कर 7157.64 करोड़ रुपये और 2000-01 में 9270.50 करोड़ रुपये हो गया। 2005-06 में भारतीय हस्तशिल्प का निर्यात 17,276.71 करोड़ रुपये तक पहुंच गया था। \$ 67.4 बिलियन की कुल बिक्री के साल 2018 में कला बाजार पिछले आधे दशक का सबसे बड़ा वर्ष था। जो 2019 में कुल \$64.1 बिलियन की बिक्री के साथ 5% तक सिकुड़ गया।

कला बाजार का आकार और निवेश

\$60 बिलियन के वार्षिक लेनदेन और \$1.7 ट्रिलियन के कुल अनुमानित वैश्विक मूल्य की कला और हस्तशिल्प सम्पदा वाले क्षेत्र में निवेशक बड़ी संभावनाएं देखते हैं। कला बाजार की अन्य उभरते बाजारों के साथ तुलना होने लगी है, जिनमें से सैकड़ों या हजारों संस्थानों की भागीदारी है।

पर्यटन के युग में शिल्प

पर्यटन, यदि संवेदनशील रूप से प्रबंधित किया जाता है, तो आर्थिक और सांस्कृतिक जागरूकता और प्रतिबद्धता के लिए एक जादुई उत्प्रेरक हो सकता है। पर्यटन से न केवल आय होती है, बल्कि देश की पहचान भी बनती है। थाईलैंड और भारत दो ऐसे एशियाई देश हैं, जिनकी गिनती दुनिया के शीर्ष 10 स्थलों में होती है। भारत आने वाले पर्यटकों की संख्या में हर साल करीब 15 फीसदी का इजाफा होता है।

आज पर्यटन का स्वरूप बदल गया है। अब पर्यटन का उद्देश्य संस्कृति और वास्तुकला को देखने के बजाय, मनोरंजन और आराम करना है। यात्रियों का यह नया वर्ग, अक्सर अपने यात्रा अनुभव के स्मृति चिन्ह के रूप में पारंपरिक शिल्प या अन्य स्मृति चिन्ह खरीदता है।

भारत में 20 लाख से भी ज्यादा शिल्पकार हैं, जिनके विविध प्रकार के शिल्प देखे जा सकते हैं। पर्यटन में शिल्प का अर्थ पर्यटकों को मात्रा में वस्तुएँ बेचना नहीं है। इसका मतलब है कि होटल, गेस्ट हाउस, रेस्तरां और सुलभ प्राकृतिक स्थानों जैसे पर्यटन स्थलों में ऐसी स्थितियाँ पैदा करना, जहां शिल्प बेचे जा सकते हैं। इन स्थानों को विकसित और सुशोभित करने के लिए सभी प्रकार के शिल्प-स्थापत्य, कार्यात्मक, आलंकारिक साधनों का उपयोग किया जा सकता है। इस तरह स्थानीय शिल्प कौशल को स्थायी रूप से बढ़ावा दिया जा सकता है।

शिल्प विकास में नए रुझान

भारत एक तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था वाला देश है और इसे वैश्विक बाजार में अपने शिल्प के लिए एक प्रमुख स्थान प्राप्त करने की आवश्यकता है। आर्थिक विकास की इस प्रक्रिया में कारीगर समुदाय को अपने शिल्प को बचाए रखने के लिए नए तरीके खोजने की आवश्यकता है। वे रचनात्मक व्यक्ति हैं और उन्होंने वर्षों में कई बदलावों के लिए खुद को अनुकूलित किया है।

वैश्विक बाजार में लोक शिल्प की प्रस्तुति और पैकेजिंग

यह भारतीय शिल्प प्रणाली की सबसे कमजोर कड़ी है। पर्यटकों के लिए विशेष रूप से बनाए गए उत्पादों की पैकेजिंग बहुत टिकाऊ नहीं होती है। इस पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। कई प्राकृतिक सामग्रियाँ हैं, जिनका उपयोग पैकेजिंग के लिए उचित रूप से किया जा सकता है। इसी तरह, हमारे सौंदर्य बोध और उत्साह के बावजूद, पर्यटन केंद्रों में दुकान का प्रदर्शन और ग्राहक सेवा आमतौर पर आकर्षक नहीं होती है।

सूचना पोस्टर और लेबलिंग भी उत्पादों को बेचने में मदद करते हैं। खरीदार को इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि क्या उत्पाद हस्तनिर्मित हैं, प्राकृतिक रेशों से बने हैं, सांस्कृतिक परंपरा का हिस्सा हैं या आदिवासी महिलाओं द्वारा निर्मित हैं। यह जानकारी आज के पर्यावरण के प्रति जागरूक पर्यटकों के लिए उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी उत्पाद के लिए। देश और विदेश में आदिवासी शिल्प की मांग पिछले दो दशकों में काफी बढ़ गई है। भारत सरकार ने 1988 में ट्राइबल कोऑपरेटिव मार्केटिंग डेवलपमेंट फेडरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड की भी स्थापना की है।

इस माध्यम से देश-विदेश में आदिवासी कला और शिल्प की बिक्री हो रही है, लेकिन इसके माध्यम से आदिवासी कलाओं के विकास के लिए उनमें प्रशिक्षण और डिजाइन प्रचार कार्यशालाएं भी आयोजित की जा रही हैं। यद्यपि TRIFAD की स्थापना 1988 में हुई थी, लेकिन व्यवस्थित तरीके से आदिवासी कला को बढ़ावा देने का काम 1999 से शुरू हुआ जब आदिवासी कला की बिक्री के लिए ट्राइब्स के नाम से दिल्ली में एक विशेष शोरूम खोला गया।

TRIFAD ने एक ओर आदिवासी शिल्पकारों द्वारा बनाई गई कलाकृतियों की बिक्री में मदद की और दूसरी ओर उन्हें बाजार के अनुसार शिल्प का उत्पादन करने के लिए प्रशिक्षण देना शुरू किया। इस तरह ट्राइफैड के माध्यम से कई आदिवासी कलाकार देश-विदेश में अपनी पहचान बनाने में सफल रहे।

भारत के लगभग हर राज्य का 'राज्य हस्तशिल्प और हथकरघा निगम' भी अपने राज्य के आदिवासी शिल्पकारों द्वारा बनाए गए उत्पादों का विपणन अपने एम्पोरियम के माध्यम से करता है। इनमें छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश राज्यों के निगम अग्रणी हैं। इनके अलावा अनेक स्वयंसेवी संस्थाएं, कला दीर्घाएं, निजी शोरूम, निर्यातक भारतीय जनजातीय कला-शिल्प का विपणन कर रहे हैं।

उपरोक्त सभी प्रयासों के परिणामस्वरूप, अधिक से अधिक आदिवासी कला रूपों का व्यवसायीकरण हो रहा है और आदिवासी युवा पीढ़ी इस ओर आकर्षित हो रही है और शिल्प कार्य को आजीविका के मुख्य या वैकल्पिक साधन के रूप में अपना रही है। आदिवासी महिलाओं के सशक्तिकरण और आर्थिक स्वतंत्रता में जनजातीय शिल्प भी बड़ी भूमिका निभा रहे हैं।

निष्कर्ष

लोक कला एक परंपरा है जो सदियों से चली आ रही है, जिसके माध्यम से अपने परिवार और समाज के लिए उत्पन्न कल्याणकारी भावनाओं का स्पंदनशील मौन प्रदर्शन होता है। लोक कला के चित्रों में परंपरा और विश्वास का अनूठा मेल है, जिनमें लोककथाओं की परंपरा का स्थायित्व और ईश्वर की उपस्थिति का प्रमाण मिलता है। चित्रकला के चित्रण और पूजा से प्राप्त आत्मसंतुष्टि से आत्मविश्वास मिलता है, जो सफलता की पहली सीढ़ी है। लोक चित्रों, कहानियों, नृत्य गीतों की रचना ईश्वर के अस्तित्व को जड़ चेतना में स्वीकार करने के बाद ही संभव है।

लोक कला इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है कि, कैसे परंपराएं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित की जाती हैं। प्रत्येक लोक कला, धार्मिक, सामाजिक, नैतिक और पारंपरिक अभिव्यक्तियों का एक दृश्य रूप है। अमीर हो या गरीब, लोक कला और लोक चित्र सभी के घरों की जमीन और दीवार को समान रूप से सजाते हैं।

पिचले कुछ वर्षों में आदिवासी कला परिदृश्य में भी अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। बढ़ती हुई शहरीकरण एवं व्यवसायीकरण की प्रक्रिया से न केवल परम्परागत सामाजिक-आर्थिक ढांचा टूटा है, बल्कि कई समस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं। आदिवासी कलाओं का एक बहुत बड़ा बाजार देशी-विदेशी शहरों में बना है, अनेक बिचौलिए, डिजाइनर और व्यापारी अस्तित्व में आए हैं। जिनसे इन कलाओं पर बाजार का दबाव एवं बाहरी हस्तक्षेप निरंतर बढ़ता जा रहा है। ऐसे में देशज कला परम्पराएं, ओजविहीनता की ओर अग्रसर प्रतीत होने लगी हैं। अब समूह से व्यक्ति का उदय हो रहा है। सामूहिक चेतना व्यक्तिगत स्तर पर मान्य होने लगी है।

वैश्वीकरण के दौर में दुनिया में जिस तेजी से डिजिटलीकरण बढ़ा, उसी तेजी से हस्तशिल्प और कला का बाजारीकरण भी हुआ। अब सांस्कृतिक कार्यक्रम, बिजनेस ईवेन्ट में बदल गए हैं। आज कलाकार अपनी निजता और स्वायत्तता को बेचे बिना जीवन यापन नहीं कर सकता। लोक कलाकारों को बड़ी चमक-दमक के साथ पेश किया जा रहा है। पश्चिम के धनी देशों के लिए पूरब के विकासशील देश बाजार बने हुये हैं। जहां वह चीजों को अच्छी पैकिंग के साथ बेचने में सफल हो रहे हैं। बेंजामिन गिंसबर्ग का कहना है कि "पश्चिमी सरकारों ने बाजार कि कार्यप्रणाली का इस्तेमाल लोकप्रिय परिप्रेक्ष्यों और भावनाओं को नियंत्रित करने में किया। 'विचारों का बाजार', जो उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के दौरान बना था, वस्तुतः उच्च वर्गों के विश्वासों और विचारों का प्रचार और निचले वर्गों कि विचारधारात्मक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता को दबाने का काम करता है। इस बाजार के निर्माण के जरिये पश्चिमी सरकारों ने सामाजिक- आर्थिक स्थिति और विचारधारात्मक शक्ति के बीच मजबूत और स्थायी कड़ियाँ निर्मित करके उच्च वर्गों को इस बात कि इजाजत दी है कि, वे अपने बीच से ही किसी अन्य के भरण-पोषण के लिए एक दूसरे का इस्तेमाल करें। खास तौर पर तौर पर अमेरिका में विचारों के बाजार पर छाई उच्च और उच्च-मध्यवर्गों की क्षमता ने इन तबकों को समूचे समाज के राजनीतिक यथार्थबोध को और राजनीतिक तथा सामाजिक, सांस्कृतिक संभावनाओं को अपने तरीके से गढ़ने का अधिकार दे दिया है।

परन्तु भारतीय परिप्रेक्ष्य में अन्य व्यापारों की तरह ही वे लोककला, उसके संस्कारों और हमारी लोक संस्कृति को एक उत्पाद की तरह खरीदते-बेचते हैं। हम उनके इशारे पर नाचते हैं। लोककला को संरक्षण देना एक किस्म का चमकीला आवरण बन कर रह गया है। उधर लगातार बाजारू नाटकीयता, अपनी छाप लोक पर डाल कर जीवन-मूल्यों में एक भ्रम पैदा कर रही है। यह भ्रम इतना भयानक है कि इसके नशे में एक पूरी पीढ़ी निरापद विचारशून्यता में जी रही है। बाजार के प्रभाव में हमारा कोई भी जनपक्षधर मूल्य नहीं। बाजार दर्शकों को उनके मतलब की चीजें न दिखाकर अपने प्रायोजक के प्रयोजन की सामग्री लगातार परोसते हैं।

कला बाजार का विश्लेषण करने से पता चलता है कि, लगभग सभी बाजार उपभोक्ताओं (कलेक्टरों, डीलरों, नीलामी घरों, निवेशकों, और संग्रहालय) को व्यवस्थित रूप से अलग-अलग सांस्कृतिक प्रणालियों का सामना करना पड़ता है। संक्षेप में, कला बाजार में उपभोक्ता व्यवहार पर स्थानीय सुविधाओं और बाजार के अवसरों का जटिल प्रभाव शामिल है।

वर्तमान में आधुनिक कलाकार स्टूडियो में बैठकर स्वान्तः सुखाय को महत्व देते हुए अमूर्त चित्रण करते हैं, जिससे चित्रकार आकृति और रंग संयोजन में उलझकर रह जाता है। कभी-कभी इनकी बनाई कृतियां दर्शकों की समझ से परे होती हैं। इससे आन्तरिक ज्ञान स्तर कुठित होने की सम्भावना रहती है। चित्रकार स्टूडियो में बैठ कार्य करता रहता है और प्रकृति (पर्यावरण) अपनी जगह अलग संकुचित होती रहती है। अतः उसे स्टूडियो से बाहर निकलना पड़ेगा। जब वह प्रकृति की ओर उन्मुख होगा, तभी पूर्ण ऊर्जा के साथ कला सृजन के सौन्दर्य से अवगत होगा। यह खूबी दृश्य चित्रण जैसी पारम्परिक कला से ही सम्भव है।

सन्दर्भ

1. “भारतीय संस्कृति में लोक जीवन की अभिव्यक्ति”, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, एम.ए., सम्मेलन पत्रिका ‘लोक संस्कृति’, अंक, पृष्ठ-२४. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग. 1973.
2. वाष्णेय, महेश चन्द्र, “ब्रज लोक चित्रकला आधुनिक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में 2003, शोध ग्रन्थ ।
3. कृ. शशि, “भारतीय धरातलीय लोककला का सांस्कृतिक महत्व: उत्तर प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में” शोध ग्रन्थ, 2002
4. सिंह, प्रदीप कुमार, “उत्तर प्रदेश में लोक भित्ति चित्रांकन परम्परा का एक अध्ययन”, शोध प्रबन्ध, 2011
5. वाजपेयी, कृष्ण दत्त, “ब्रज का इतिहास”, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1966
6. मित्तल प्रभुदयाल, “ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास”, राजकमल, दिल्ली 1979
7. गैरोला, वाचस्पति, “भारतीय चित्रकला”. मित्र प्रकाश, इलाहाबाद 1963
8. गुप्ता, जगदीश, “भारतीय कला के पद चिन्ह” नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली 1961
9. मुखर्जी, राधा कमल, “भारतीय कला का विकास”, सरस्वती प्रेस, वाराणसी 1964
10. मधुकर गोपाल, “भारतीय चित्रकला”, साहित्य संगम, इलाहाबाद, 1989
11. अग्रवाल, गिरिराज किशोर, “कला समीक्षा”, देवत्रय प्रकाशन, अलीगढ़, 1970
12. चौ. हरिहर सिंह, “हमारे पर्व और त्यौहार”, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1979
13. गुप्ता, जगदीश, “प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला”, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, 1961
14. Deloitte, ArtTactic: *Deloitte Art and Finance Report 2019*. Estimated based on surveys of wealth allocation to art and estimates of total wealth held by individuals. Estimated value of artwork held by individuals.
15. Preqin Website, McKinsey & Company: *Private Markets Come of Age: McKinsey Global Private Markets Review 2019*. Private market assets under management investing in debt.
16. Forbes Website, Deloitte and Credit Suisse: *Collectibles: An integral part of wealth*. Collectibles reflects

ब्रिटिश आर्थिक नीतियों का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

राजेश कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय दूबलधन (झज्जर)।

भारत में प्रारंभिक आक्रमणकारियों और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों में मुख्य अंतर यह था कि अंग्रेजों के अतिरिक्त किसी अन्य प्रारंभिक आक्रमणकारी ने न ही भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना में परिवर्तन किया और न ही धन की निरंतर निकासी का सिद्धांत अपनाया। भारत में ब्रिटिश शासन के फलस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था, उपनिवेशी अर्थव्यवस्था में रूपांतरित हो गयी तथा भारतीय अर्थव्यवस्था की सभी नीतियां एवं कार्यक्रम उपनिवेशी हितों के अनुरूप बनने लगे।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर ब्रिटिश शासन के विस्तृत प्रभावों की विवेचना :-

अनौद्योगीकरण - भारतीय हस्तशिल्प का हास -

1818 के चार्टर एक्ट द्वारा ब्रिटिश नागरिकों को भारत से व्यापार करने की छूट मिलने के फलस्वरूप भारतीय बाजार सस्ते एवं मशीन निर्मित आयात से भर गया। दूसरी ओर भारतीय उत्पादों के लिये यूरोपीय बाजारों में प्रवेश करना अत्यंत कठिन हो गया। 1820 के पश्चात तो यूरोपीय बाजार भारतीय उत्पादों के लिये लगभग बंद ही हो गये। भारत में रेलवे के विकास ने यूरोपीय उत्पादों को भारत के दूरदराज के क्षेत्रों तक पहुंचने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

भारत में परंपरागत हस्तशिल्प उद्योग का हास इसलिये नहीं हुआ कि यहां औद्योगीकरण या औद्योगिक क्रांति हुयी। बल्कि यह हास अंग्रेजी माल के भारतीय बाजारों में भर जाने से हुआ क्योंकि भारतीय हस्तशिल्प, अंग्रेजों के सस्ते माल का मुकाबला नहीं कर सका। लेकिन इस अवधि में यूरोप के अन्य देशों के परंपरागत हस्तशिल्प उद्योग में भी गिरावट आयी, पर इसका कारण वहां कारखानों का विकसित होना था। यह वह समय था जहां एक ओर भारतीय हस्तशिल्प उद्योग तेजी से पतन की ओर अग्रसर था तथा वह अपनी मृत्यु के कगार पर पहुंच गया था, वहीं दूसरी ओर इस काल में इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति तेजी से अपने पैर जमा रही थी तथा देश का तेजी से औद्योगिकीकरण हो रहा था। इस समय भारतीय शिल्पकार एवं दस्तकार पर्याप्त संरक्षण के अभाव में विषम परिस्थितियों के दौर से गुजर रहे थे, वहीं नये पाश्चात्य अनुप्रयोगों तथा तकनीक ने उनके संकट को और गंभीर बना दिया।

अनौद्योगीकरण का एक और नकारात्मक प्रभाव था, भारत के अनेक शहरों का पतन तथा भारतीय शिल्पियों का गांवों की ओर पलायन। अंग्रेजों की शोषणकारी तथा भेदभावमूलक नीतियों के कारण बहुत से भारतीय दस्तकारों ने अपने परंपरागत व्यवसाय को त्याग दिया तथा वे गांवों में जाकर खेती करने लगे। उदाहरणार्थ- बंगाल में कंपनी शासन के दौरान दस्तकारों एवं शिल्पकारों को बहुत कम दरों पर काम करने तथा अपने उत्पाद अत्यंत कम मूल्यों पर बेचने हेतु विवश किया गया। इससे भूमि पर दबाव बढ़ा। अंग्रेज सरकार की कृषि विरोधी नीतियों के कारण यह क्षेत्र पहले से ही संकटग्रस्त था और भूमि पर दबाव बढ़ने के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था बिल्कुल चरमरा गयी।

भारत एक सम्पूर्ण निर्यातक देश से सम्पूर्ण आयातक देश बन गया।

कृषकों की बढ़ती हुयी दरिद्रता

ब्रिटिश सरकार की रुचि केवल लगान में वृद्धि करने तथा उसका अधिकाधिक हिस्सा प्राप्त करने में थी। इसी लालच की वजह से अंग्रेजों ने देश के कई हिस्सों में भूमि की स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था लागू कर दी। इस व्यवस्था में सरकार की मांग तो स्थिर थी किंतु लगान जो जमींदार, किसान से लेता था वह परिवर्तशील था। अतएव कालांतर में लगान की दरों में अत्यधिक वृद्धि कर दी गयी। लगान अदा न करने पर किसानों को उनकी भूमि से बेदखल कर दिया जाता था। इससे किसान भूमि पर अपने पुरतैनी अधिकारों से हाथ धो बैठते थे। सरकार द्वारा जमीन की उर्वरता बढ़ाने के लिये अत्यंत कम धन खर्च किया जाता था। जमींदार जिन्हें किसानों को भूमि से बेदखल करने का अधिकार था, अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते थे तथा लगान में अपने हिस्से को बढ़ाने के लिये किसानों को बेगार (बलपूर्वक कार्य) करने हेतु विवश करते थे। कृषि में अधिक धन लगाने हेतु सरकार की ओर से कृषकों को किसी तरह का प्रोत्साहन भी नहीं दिया जाता था। कृषकों पर लगान का बोझ अधिक हो जाने पर वे सूदखोरों से ऋण लेने पर बाध्य हो जाते थे। सूदखोर जो अधिकांशतया गांव के अनाज व्यापारी होते थे, काफी ऊंची दरों पर किसानों को ऋण देते थे तथा ऋण चुकाने हेतु उन्हें अपने उत्पाद (अनाज) को निम्न दरों पर बेचने हेतु मजबूर करते थे। इन शक्तिशाली सूदखोरों के प्रशासन एवं न्यायालय से अच्छे संबंध होते थे, जिसका उपयोग वे अपने विरुद्ध होने वाले मुकदमों के लिये करते थे।

इस प्रकार किसानों के ऊपर सरकार, जमींदार एवं सूदखोरों का तिहरा बोझ होता था। अकाल एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं के समय कृषकों की समस्याएं और भी बढ़ जाती थीं। अतः ब्रिटिश शासन की नीतियों से भारतीय कृषि पर अत्यंत नकारात्मक प्रभाव पड़ा तथा कृषकों की दरिद्रता अत्यंत बढ़ गयी।

पुराने जमींदारों की तबाही तथा नयी जमींदारी व्यवस्था का उदय

वर्ष 1815 के अंत तक बंगाल की कुल भूमि का लगभग 50 प्रतिशत दूसरे हाथों में स्थानांतरित किया जा चुका था। इन नये हाथों में भूमि के जाने से जमींदारों के एक नये वर्ग का उदय हुआ तथा नये भू-संबंधों का विकास हुआ। जमींदारों के इस नये वर्ग के पास सीमित शक्तियाँ एवं अत्यल्प संसाधन थे तथा भूमि पर कब्जे के कारण यह वर्ग अस्तित्व में आया था। लगान व्यवस्था में बिचौलियों के बढ़ने से प्रत्यक्ष जमींदारी का लोप हो गया तथा किसानों पर बोझ और ज्यादा बढ़ गया। भूमि की मांग बढ़ने से इसकी कीमतों में वृद्धि हुयी तथा किसानों की क्रय शक्ति से यह और दूर होने लगी। जमींदारों एवं किसानों के मध्य कोई परंपरागत समझौता न होने से इन जमींदारों ने कृषि के विकास के लिये न किसी प्रकार का निवेश किया न ही इस कार्य में कोई रुचि ली। इन जमींदारों का हित ब्रिटिश शासन के चलते रहने में ही था और इसीलिये इन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में अंग्रेजों का साथ दिया।

कृषि में स्थिरता एवं उसकी बर्बादी

कृषकों के पास न ही कृषि के साधन थे और न ही कृषि में निवेश करने के लिये धन। जमींदारों का गांवों से कोई संबंध नहीं था तथा सरकार द्वारा कृषि तकनीक एवं कृषि से संबंधित शिक्षा पर व्यय किया जाने वाला धन अत्यल्प था। इन सभी कारणों से भारतीय कृषि का धीरे-धीरे पतन होने लगा तथा उसकी उत्पादकता बहुत कम हो गयी।

भारतीय कृषि का वाणिज्यीकरण

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय कृषि में एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ, वह था कृषि का वाणिज्यीकरण। इस समय तक कृषि जीवनयापन का एक मार्ग थी न कि व्यापारिक प्रयत्न। अब कृषि पर वाणिज्यिक प्रभाव आने लगा। अब कुछ विशेष फसलों का उत्पादन राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय बाजार के लिये होने लगा न कि ग्रामीण उपयोग के लिए। मूंगफली, गन्ना, पटसन, कपास, तिलहन, तम्बाकू, मसालों, फलों तथा सब्जियों जैसी वाणिज्यिक फसलों का उत्पादन बढ़ गया क्योंकि ये फसलें अब अन्न के स्थान पर अधिक लाभदायक सिद्ध होने लगीं थीं। संभवतः बागान उद्योगों चाय, काफी, रबर एवं नील इत्यादि में तो कृषि का वाणिज्यीकरण अपने चरमोत्कर्ष में पहुंच गया। इन बागान उद्योगों का स्वामित्व-लगभग यूरोपियों के हाथों में था तथा इनके उत्पाद मुख्यतः अंतरराष्ट्रीय बाजार में बेचने के उद्देश्य से ही तैयार किये जाते थे।

वाणिज्यीकरण और विशेषीकरण की इस प्रक्रिया को कई कारणों ने प्रोत्साहित किया। जैसे मुद्रा अर्थव्यवस्था का प्रसार, रूढ़ि और परंपरा के स्थान पर संविदा और प्रतियोगिता, एकीकृत राष्ट्रीय बाजार का अभ्युदय, देशी एवं विदेशी व्यापार में वृद्धि, रेलवे एवं सड़क संचार साधनों से राष्ट्रीय मंदी का विकास एवं अंग्रेजी पूंजी के आगमन से विदेशी व्यापार में वृद्धि इत्यादि।

भारतीय कृषकों के लिये कृषि का वाणिज्यीकरण एक विवशता थी। भूमि कर अत्याधिक होने से उसे अदा कर पाने में वह असमर्थ था। फलतः उसे साहूकारों से ऋण लेना पड़ता था, जिनकी ब्याज दरें काफी अधिक होती थीं। इस ब्याज की चुकाने के लिये उसे अपने उत्पाद को काफी कम मूल्य पर बेचना पड़ता था। कई बार तो उसे अपने ही अनाज को साहूकार के यहां बेचकर दुबारा जरूरत पड़ने पर दुगने मूल्य पर उसे खरीदना पड़ जाता था। कृषि का वाणिज्यीकरण होने से भारतीय कृषि मूल्यों पर विदेशी उतार-चढ़ाव का प्रभाव भी पड़ने लगा। उदाहरणार्थ 1860 के पश्चात कपास के मूल्यों में जो वृद्धि हुयी उससे बिचौलियों को काफी लाभ प्राप्त हुआ, जबकि कृषकों को इसका कोई लाभ नहीं मिला। इसी प्रकार 1866 में जब मंदी आयी तो इसकी मार किसानों पर पड़ी, जिसके फलस्वरूप गांवों में किसान ऋण के बोझ में और दब गये, उनकी जमीनें नीलाम हो गयीं, उन्हें अकाल का सामना करना पड़ा तथा दक्षिण भारत में व्यापक पैमाने पर किसान आंदोलन हुये। इस प्रकार कृषि के वाणिज्यीकरण से न तो कृषकों को कोई लाभ हुआ और न ही कृषि उत्पादन में कोई वृद्धि हुयी।

अकाल एवं गरीबी

प्राकृतिक विपदाओं जैसे- सूखा, बाढ़, अनावृष्टि इत्यादि ने भी किसानों को दरिद्र बनाया। अकाल के दिनों में चारे के अभाव में कई बार अनेक पशु मर जाते थे। संकट के समय उनके पास धन की भी कभी होती थी। पशुओं एवं अन्य संसाधनों के अभाव में कई बार वे खेती भी नहीं कर पाते थे। 1850 से 1900 के बीच अनुमानतः 2 करोड़ 80 लाख लोग केवल सूखे के कारण ही काल के ग्रास बन गये।

आधुनिक उद्योगों का विकास

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में बड़े पैमाने पर आधुनिक उद्योगों की स्थापना की गयी, जिसके फलस्वरूप देश में मशीनी युग प्रारंभ हुआ। भारत में पहली सूती वस्त्र मिल 1853 में कावसजी नानाभाई ने बंबई में स्थापित की। इसी प्रकार भारत की पहली जूट मिल 1855 में रिशरा (बंगाल) में स्थापित की गयी। लेकिन इस समय तक अधिकांश आधुनिक उद्योगों का स्वामित्व एवं प्रबंधन विदेशियों के हाथों में ही था। भारत में मुनाफे की व्यापक संभावनाएं, सस्ते श्रम की उपलब्धता, कच्चे एवं तैयार माल की उपलब्धता, भारत एवं उसके पड़ोसी देशों के बाजारों की उपलब्धता, पूंजी निवेश की अनुकूल दशायाँ, नौकरशाही द्वारा उद्योगपतियों को समर्थन देने की दृढ़ इच्छाशक्ति तथा कुछ वस्तुओं जैसे चाय, जूट एवं मैंगनीज के आयात के लाभप्रद अवसरों के कारण भारत में तेजी से विदेशी पूंजी का प्रवाह हुआ।

भारत में देशी स्वामित्व वाले मुख्य क्षेत्र थे- सूती वस्त्र एवं जूट मिलें, जो 19 शताब्दी में अस्तित्व में आयीं, जबकि 20वीं शताब्दी में चीनी, सीमेंट इत्यादि क्षेत्रों में भारतीय स्वामित्व वाले उद्योग स्थापित किये गये। लेकिन इस अवधि में भारतीय स्वामित्व वाले उद्योगों के समक्ष अनेक समस्यायें थीं, जैसे- साख की समस्या, सरकार द्वारा प्रशुल्क संरक्षण का अभाव, विदेशी उद्योगों से असमान प्रतिस्पर्धा तथा ब्रिटिश उद्योगपतियों का दृढ़ विरोध जो कि वित्तीय संरचना के क्षेत्र में अत्यधिक समृद्ध थे।

उपनिवेशी कारकों ने भी कुछ संरचनात्मक एवं संस्थात्मक परिवर्तन किये। भारत में औद्योगीकरण की इस प्रक्रिया में कुछ प्रमुख उद्योगों का तेजी से विकास हुआ, लेकिन कुछ अन्य क्षेत्र उपेक्षित रह गये। इसी प्रकार उद्योगों की स्थापना में भी देश के कुछ प्रमुख क्षेत्रों को ज्यादा महत्व दिया गया, जबकि अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा की गयी। इससे क्षेत्रीय असमानता में वृद्धि हुयी। क्षेत्रीय असमानता के कारण राष्ट्रीय अखंडता को धक्का लगा। तकनीकी शिक्षा को संरक्षण न दिये जाने के कारण उद्योगों को तकनीकी रूप से दक्ष मानवशक्ति के अभाव का सामना करना पड़ा। सामाजिक तौर पर, एक औद्योगिक पूंजीवादी वर्ग तथा एक श्रमिक वर्ग का अभ्युदय इस चरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी।

राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का उदय

भारतीय व्यापारियों, बैंकरों तथा साहूकारों ने भारत में छोटे सहयोगी के रूप में अंग्रेजी व्यापारियों के वित्त से काफी धन कमाया था। अंग्रेजों की शोषण की नीति में उनकी भूमिका ठीक बैठती थी। भारतीय साहूकारों ने ऋण के बोझ से दबे किसानों को ऋण दिये और सरकार के भूराजस्व संग्रहण में सहायता की। इसी प्रकार भारतीय व्यापारियों ने अंग्रेजी माल को भारत के दूरदराज के क्षेत्रों में पहुंचाया तथा भारतीय कृषि उत्पादों के निर्यात के आंदोलन में मदद की। किंतु इस साम्राज्यीय व्यवस्था से स्वस्थ और स्वतंत्र औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग के विकास में रुकावट आयी तथा इसका विकास जापान तथा जर्मनी जैसे स्वतंत्र देशों से भिन्न था।

आर्थिक निकास

भारतीय उत्पाद का वह हिस्सा, जो जनता के उपभोग के लिये उपलब्ध नहीं था तथा राजनीतिक कारणों से जिसका प्रवाह इंग्लैण्ड की ओर हो रहा था, जिसके बदले में भारत को कुछ नहीं प्राप्त होता था, उसे आर्थिक निकास की संज्ञा दी गयी। दादा भाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक “पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया” में सर्वप्रथम आर्थिक निकास की अवधारणा प्रस्तुत की। आर्थिक निकास के प्रमुख तत्व थे, अंग्रेज प्रशासनिक एवं सैनिक अधिकारियों के वेतन एवं भत्ते, भारत द्वारा विदेशों से लिये गये ऋणों के ब्याज, नागरिक एवं सैन्य विभाग के लिये ब्रिटेन के भंडारों से खरीदी गयी वस्तुयें, नौवहन कंपनियों को की गयी अदायगी तथा विदेशी बैंकों तथा बीमा लाभांश। भारतीय धन के इंग्लैण्ड को निकास से देश में पूंजी का निर्माण एवं संग्रहण नहीं हो सका, जबकि इसी धन से इंग्लैण्ड में औद्योगिक विकास के साधन तथा गति बहुत बढ़ गयी। ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को इस धन से जो लाभांश प्राप्त होता था, उसे पुनः पूंजी के रूप में भारत में लगा दिया जाता था और इस प्रकार भारत का शोषण निरंतर बढ़ता जाता था। इस धन के निकास से भारत में रोजगार तथा आय की संभावनाओं पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की राष्ट्रवादी आलोचना

19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बुद्धिजीवियों ने ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियों का समर्थन किया क्योंकि उनका मानना था कि अंग्रेज सरकार अत्याधुनिक तकनीक एवं पूंजीवादी आर्थिक संगठन द्वारा देश का आधुनिकीकरण कर रही है। लेकिन 1860 के पश्चात भारतीयों में राजनीतिक चेतना का तेजी से प्रसार हुआ। भारत के कुछ राष्ट्रवादी नेताओं ने भी इसी समय साम्राज्यवादी सरकार की आर्थिक शोषण की नीतियों को सार्वजनिक किया तथा लोगों के सामने यह स्पष्ट किया कि अंग्रेज सरकार एक सुविचारित योजना के तहत भारत को लूटने की प्रक्रिया में संलग्न है।

इन राष्ट्रवादी आर्थिक विश्लेषकों में दादाभाई नौरोजी “ग्रांड ओल्ड मैन आफ इंडिया” का नाम सबसे प्रमुख है। सर्वप्रथम इन्होंने ही ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियों का विश्लेषण किया तथा अपनी पुस्तक पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया में धन के निकास का सिद्धांत प्रस्तुत किया। दादा भाई नौरोजी के अतिरिक्त जस्टिस महादेव गोविंद रानाडे, रोमेश चंद्र दत्त “द इकॉनॉमिक हिस्ट्री आफ इंडिया” गोपाल कृष्ण गोखले, जी सुब्रह्मण्यम अय्यर तथा पृथ्वीशचंद्र राय भी भारत के प्रमुख आर्थिक विश्लेषकों में से थे। इन राष्ट्रवादी आर्थिक विश्लेषकों ने अपने अध्ययनों से यह सिद्ध किया कि किस प्रकार अनाज एवं कच्चे माल के रूप में भारत का धन इंग्लैण्ड भेजा जाता है, और फिर किस प्रकार वह विनिर्मित उत्पादों का रूप लेकर भारतीय बाजार पर कब्जा करता है। इनके अनुसार भारतीय धन इंग्लैण्ड पहुंचकर वापस भारत आता है तथा पुनः उसे यहां पूंजी के रूप में लगा दिया जाता है। इस प्रकार देश के शोषण का दुष्चक्र बन चुका है। इन प्रारंभिक राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों ने सरकार के इस अन्यायपूर्ण शोषण के विरुद्ध भारतीय बुद्धिजीवियों को संगठित करने का प्रयास किया तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को उपनिवेशी दासता से विमुक्त करने की मांग उठायी। इन्होंने सरकार से मांग की कि भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप भारतीय हितों के अनुरूप तय किया जाये, जिससे देश का समग्र एवं आधुनिक ढंग से विकास हो सके। इन राष्ट्रवादियों का मत था कि भारतीय अर्थव्यवस्था की स्वतंत्र रूप से विकसित किया जाना चाहिए।

इन प्रारंभिक राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार, ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों के कारण भारत निर्धन से और निर्धन बनता जा रहा है। भारत की निर्धनता मानव निर्मित है तथा इसका स्पष्टीकरण करके इसे दूर किया जा सकता है। इस निर्धनता के कारण पूंजी का संचय एवं निर्माण नहीं हो रहा है तथा लोगों का जीवन स्तर बहुत निम्न हो गया है। इस प्रकार इन्होंने निर्धनता को एक राष्ट्रीय मुद्दा बना दिया। इससे समाज के सभी वर्ग के लोगों को यह सोचने पर विवश होना पड़ा कि उनकी समस्त आर्थिक समस्यायें उपनिवेशी शासन की देन हैं।

भारत के इन प्रारंभिक राष्ट्रवादी चिंतकों ने भारत के औद्योगिकीकरण और विकास का भी तुलनात्मक अध्ययन किया। तत्पश्चात उन्होंने स्पष्ट किया कि भारत का औद्योगीकरण भारतीय धन पर ही आधारित है न कि ब्रिटेन के धन पर। इसकी व्याख्या करते हुये उन्होंने बताया कि जो धन भारत से बाहर जाता है, उसी धन को ब्रिटिश उद्योगपति पुनः यहां लगा देते हैं और उसी से मुनाफा कमाते हैं। इस प्रकार भारत का जो तथाकथित औद्योगीकरण हो रहा है, उसका आधार भारतीय धन एवं संसाधन ही हैं न कि विदेशी धन। इस प्रक्रिया में भारत का धन निरंतर इंग्लैण्ड की ओर प्रवाहित हो रहा है तथा इससे भारतीय अर्थव्यवस्था पर इंग्लैण्ड की पकड़ दिनोंदिन मजबूत होती जा रही है। इन आलोचकों के अनुसार भारत में विदेशी पूंजी निवेश के प्रभाव अत्यंत घातक हैं क्योंकि इससे राजनीतिक वशीकरण तथा विदेशी निवेशकों के हितों का पक्षपोषण होता है तथा भारत में विदेशी शासन की निरंतरता को गति मिलती है।

इन राष्ट्रवादी आलोचकों ने ब्रिटिश सरकार के इस वक्तव्य का तर्कपूर्ण खंडन किया कि भारत में विदेशी व्यापार के विकास एवं रेलवे की स्थापना से देश की प्रगति हुयी है। उन्होंने तर्क दिया कि भारत का विदेशी व्यापार देश के बिल्कुल प्रतिकूल है। इस व्यापार ने भारत को कृषिगत वस्तुओं एवं कच्चे माल का निर्यातक तथा तैयार माल का आयातक बना दिया है। इन आलोचकों ने तर्क दिया कि अंग्रेजों ने रेलवे का विकास अपने वाणिज्यिक हितों को पूरा करने के उद्देश्य से किया है न कि भारत की प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिये। रेलवे के विकास से भारत की औद्योगिक जरूरतों में समन्वय भी नहीं हो पा रहा है। अंग्रेजों द्वारा रेलवे के विकास का उद्देश्य, भारत के दूर-दराज के क्षेत्रों से कच्चे माल का दोहन एवं विनिर्मित सामान को उन क्षेत्रों में पहुंचाने की अभिलाषा है। इससे भी अधिक इस्पात उद्योग को बढ़ाने एवं मशीनीकरण करने का कार्य भी उपनिवेशी हितों को ध्यान में रखकर किया गया है। राष्ट्रवादी आलोचकों ने अंग्रेजों पर आरोप लगाया कि उनके द्वारा अपनायी गयी नीतियां तथा इससे अपरिपक्व, असमान एवं भेदभावपूर्ण प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हो रही है। वित्तीय क्षेत्र में दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि कर के अत्यधिक बोझ से गरीब दबा हुआ है तथा ब्रिटिश पूंजीपति एवं नौकरशाह मालामाल हो रहे हैं। उन्होंने भूराजस्व में कमी करने, नमक कर का उन्मूलन करने, उच्च मध्यवर्गीय लोगों पर आयकर लगाने तथा इस वर्ग द्वारा उपभोग की जा रही वस्तुओं पर उत्पाद कर आरोपित करने की मांग सरकार से की। इन आलोचकों ने तर्क दिया कि सरकारी व्यय का उद्देश्य उपनिवेशी हितों की पूर्ति करना है, जबकि विकास एवं कल्याण जैसे मुद्दे बिल्कुल उपेक्षित कर दिये गये हैं। इन विद्वानों ने विदेशी पूंजी के दुरुपयोग और कम उपयोग की ओर संकेत किया और यह स्पष्ट किया कि उपनिवेशी शासन जानबूझकर देश को कम विकास की ओर ले जा रहा है।

निष्कर्ष:-

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रिटिश भू राजस्व की नई नीति के ग्रामीण जनजीवन पर अनिष्टकारक परिणाम हुए। किसानों को लगान अदा करने हेतु अपने खेत साहूकार के पास गिरवी रखकर ऋण लेना पड़ता था। इसके फलस्वरूप किसान ऋण के बोझ से लदते गए ऋण न चुकाने पर उन्हें अपने खेत बेचने पड़ते थे। शासन, जमींदार, साहूकार, व्यापारी आदि सभी किसानों का शोषण करते थे। भारतीय हस्तशिल्प उद्योगों पर भी उसके प्रतिकूल प्रभाव पड़े, जो अठारहवीं सदी के मध्य में ब्रिटिश राज के आरंभ के समय दुनिया के पूरे तैयार मालों के लगभग एक-चौथाई भाग की आपूर्ति किया करते थे और ये यूरोप के व्यापार में निर्यात के प्रमुख घटक थे। औद्योगिक क्रांति के बाद निर्यात की यह माँग न केवल धीरे-धीरे कम हो गई बल्कि उपनिवेशी शासन ने ब्रिटेन के तैयार मालों के लिए भारतीय बाजारों को खोल दिया। इसका परिणाम “वि-उद्योगीकरण” अर्थात् देसी हस्तशिल्प उद्योगों का विनाश था, जिससे द्वितीयक उद्योगों पर निर्भर व्यक्तियों की संख्या घटी। इस प्रकार सभी संभव तरीकों से भारत का आर्थिक शोषण किया गया। जो भारत ब्रिटिशों के आने से पहले एक समृद्ध देश था, वह एक निर्धन देश बनता जा रहा था।

संदर्भ ग्रन्थ

- पांडेय धनपति, 2017, भारत का आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।
- नैरोजी दादाभाई, 1901, पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया, लन्दन।
- मुखर्जी आर के, 1948, दी इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया(1600-1800), लंदन।
- भट्टाचार्य सव्यसाची, 2015, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास(1850-1947), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- चंद्रा विपिन, 2009, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली।
- सरकार सुमितए, 2018(16वा संस्करण), आधुनिक भारत (1885-1947), राजकमल प्रकाशन दिल्ली।
- पांडेय श्रीधर 2017, भारत का आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।
- खत्री कुमार हरीश, आधुनिक भारत का इतिहास(आर्थिक एवं राजनैतिक), कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल।
- ग्रोवर बी. एल, मेहता अलका, यशपाल, 31वां संस्करण 2011, आधुनिक भारत का इतिहास: एक नवीन मूल्यांकन, एस चांद पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- बंदोपाध्याय शेखर, दूसरा संस्करण 2015, प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद, ओरियंट ब्लैकस्वान पब्लिकेशंस, हैदराबाद।

समकालीन हिन्दी की महिला उपन्यासकार और स्त्री-विमर्श

डॉ० अवधेश कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

‘विमर्श’ से तात्पर्य ‘विचार’ से है। अतः जो विषय समाज में हाशिये पर रहे उनके संबंध में गहन अध्ययन कर सोच-विचार करना अथवा चिंतन-मनन करना ही विमर्श है। साहित्य में विमर्श का उभार नब्बे के बाद हुआ। इसके अंतर्गत उन विषयों को उठाया गया जो समाज में हाशिये पर थे। इन्हीं विषयों पर विचार-विमर्श करके मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया गया। इन विमर्शों में दलित, आदिवासी तथा स्त्री विमर्श आदि मुख्य रूप से उभरे। साहित्य में इन सभी विमर्शों को केंद्र में लाने का श्रेय राजेन्द्र यादव को जाता है। राजेन्द्र यादव ने अपनी पत्रिका ‘हंस’ के माध्यम से इन समाजों की समस्याओं और उनके समाधान पर चर्चा करके समाज के सम्मुख लाने की पहले की। विमर्श को परिभाषित करते हुए, भोलानाथ तिवारी ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है कि “तबादला-ए-ख्याल, परामर्श, मशविरा, राय-बात, विचार-विनिमय, विचार-विमर्श, सोच-विचार।”¹ वहीं रामचंद्र वर्मा ने ‘मानक हिन्दी कोश’ में विमर्श का अर्थ इस प्रकार बताया है कि, “सोच-विचार कर तथ्य या वास्तविकता का पता लगाना, किसी बात या विषय पर कुछ सोचना-समझना, विचार करना, गुण-दोष आदि की आलोचना या मीमांसा करना, जांच और परखना, किसी से परामर्श या सलाह करना।”² निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सोचना विचारना ही विमर्श है। इसके अंतर्गत सोच-विचार करके परामर्श देना अपेक्षित है। यह आधुनिक काल की देन है। आधुनिक विचारधारा ने ‘स्व’ के बारे में सोचने पर बल दिया है। इसी प्रक्रिया के तहत स्त्री ने अपने अधिकारों व अपनी अस्मिता के बारे में सोचना आरंभ किया था। जिसके चलते स्त्री विमर्श में नई संकल्पनाओं का समावेश हुआ।

यह कहना गलत न होगा कि, ‘स्त्री विमर्श’ आधुनिकता की देन है। आधुनिकता के आगमन से स्त्री-विमर्श ने जो अंगड़ाई ली, उससे स्त्रियों के जीवन में एक बड़ा बदलाव होने की संभावना दिखाई दी। अतः आधुनिकता एक ऐसी विचारधारा है जिसने स्त्रियों को अपने हित-अहित के बारे में जागरूक किया। आधुनिकता ने ही उसको अपने अधिकार एवं समाज में उसकी क्या जगह हो उसके बारे में जागृत किया। आधुनिकता ने स्त्री के जीवन और चिंतन को विशेष रूप से प्रभावित किया है। इसी युग में स्त्री ने अपनी सदियों की खामोशी को तोड़ा। अतः समाज में प्रचलित पितृसत्ता का हास आधुनिकता अथवा उत्तर-आधुनिकता की पहचान है। “स्त्री-विमर्श केवल स्त्री की मुक्ति की या बराबरी का आख्यान नहीं है बल्कि अत्यंत गहन अर्थ वाला यह शब्द नारी मुक्ति के साथ-साथ नारी की अस्मिता, चेतना व स्वाभिमान को भी अपने में समेट लेता है। स्त्री को अपने शरीर, अपने अस्तित्व या जीवन के स्वस्थ पक्ष को ग्रहण करके आत्मनिर्णय की ताकत प्रदान करना स्त्री विमर्श का प्रमुख लक्ष्य है।”³ इस प्रकार देखा जा सकता है कि स्त्री विमर्श का असल अर्थ ही ‘आत्मनिर्भर’ होने से है। स्त्री को पितृसत्तात्मक समाज से मुक्ति उसके आत्मनिर्भर होने के बाद ही मिलेगी। उसे अपनी अस्तित्व व अस्मिता को बचाए रखना है तो से आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना होगा तभी वह मजबूत भी होगी।

आधुनिकता ने स्त्री के भीतर इस विचार का जन्म किया कि वह अपने अस्तित्व को पहचान और समाज में उससे बनाए रखे। इस चिंगारी को भुनाने का कार्य आधुनिकता ने किया। अस्तित्व का अर्थ है ‘पहचान’ स्त्री को समाज में अपनी पहचान स्थापित करने के लिए स्वयं ही संघर्ष करना होगा। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पनपा आधुनिक सामाजिक मूल्य ही ‘अस्तित्ववाद’। यह मानव के अस्तित्व पर आधारित सिद्धांत है। डॉ० विनय कुमार पाठक के शब्दों में “मानव के क्षरण को रोकने और खोई हुई सत्ता को पुनर्स्थापित करने की चिंता ने अस्तित्ववाद को जन्म दिया। अस्तित्ववादी मानते हैं कि अपने इस संकट के लिए मनुष्य खुद जिम्मेदार है। उसने स्वार्थ के लिए मानवीयता की उपेक्षा की और युद्ध को आमंत्रित करके व्यक्तित्व का विखंडन किया। दूसरों को फँसाने के लिए उसने मकड़जाल बनाया और जब स्वतः फँसने लगा तब इससे उभरने के लिए छटपटाने लगा। मनुष्य की कोख से ही अस्तित्ववाद का जन्म हुआ।”⁴ लगातार हो रहे शोषण से मनुष्य अपना वजूद समाज में लगभग खो चुका था, खास कर स्त्रियों के वजूद को अत्यंत क्षति पहुंची थी। उसी वजूद को सत्ता में लाने के लिए व्यक्ति के अन्तर्मन में एक खलबली हुई जिसने अस्तित्ववाद को जन्म दिया। अतः अस्तित्व का जन्म मनुष्य के भीतर से ही पनपा है। सदियों से शोषण झेलती स्त्री ने अब अपनी चुप्पी को तोड़ दिया है। अपने साथ किए जा रहे शोषण पर खुलकर बोलने लगी है। पितृसत्ता द्वारा जो जाल उसके लिए बुना जाता रहा है, उसका भंडाफोड़ उसने किया है। स्त्री के अनछुए पहलुओं पर विचार करते हुए साहित्यिक जगत में स्त्री-विमर्श उभरकर आया है। स्त्री विमर्श ऐसी अवधारणा है जिसने स्त्री को घर-परिवार से लड़ने तथा अपनी अस्मिता, अधिकारों के लिए संघर्ष करने पर जोर देती है। इसने वर्चस्वादी व्यसथा के खिलाफ आक्रोश अथवा विद्रोह करना शुरू कर दिया है। यह स्त्री को गरिमामयी सशक्त छवि प्रदान करती है। कहा जा सकता है कि, स्त्री विमर्श खुद को देखने परखने का पर्याय है।

समकालीन परिदृश्य में हिन्दी उपन्यासों में स्त्री विमर्श का गहरा प्रभाव दिखाई देने लगा है। नब्बे के दशक में भूमंडलीकरण का प्रभाव पड़ने से समाज में बड़े स्तर पर परिवर्तन होता दिखाई देता है। इसका एक अच्छा उदाहरण स्त्री-विमर्श को लेकर भी है कि जहां स्त्री समाज से गायब सी थी आज स्त्री

उसी स्त्री को केंद्र में रखकर साहित्य लिखा जा रहा है। स्त्री लेखिकाओं ने स्वानुभूति के आधार पर साहित्य लेखन आरंभ किया। स्त्री लेखिकाएँ सिर्फ लेखन ही नहीं कर रही थीं बल्कि एक जिम्मेदारी उठा रही थीं। वह सिर्फ दृष्टा ही नहीं, भोक्ता भी होती हैं। वर्तमान समय में स्त्रियों ने लिखना आरंभ किया है। उनके लिखने के कारण स्त्री अभिव्यक्ति अब अधिक गति से मुखर होकर बाहर आ रही है। इस संदर्भ में डॉ. रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं, “स्त्री लेखन स्त्री की आकांक्षाओं का दर्पण है। यह स्त्री की मानवीय इयत्ता को पाने और जीने का स्वप्न है, मुक्ति की राहों के अन्वेषण का संघर्ष है और उन राहों पर अविराम चलने की संकल्प दृढ़ता भी।”⁵ अतः स्त्री ने जब से स्वयं लिखना आरंभ किया है, तब से ही उसने अपना नया धर्म निर्धारित किया है। अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने की दिशा में स्त्री आगे बढ़ी है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास विधा के माध्यम से विचारों की अभिव्यक्ति समाज के सामने उद्घृत करने में स्त्री लेखिकाओं ने मुख्य भूमिका निभाई है। स्त्री प्रश्नों से जूझने वाली स्त्री लेखिकाएँ हैं— नासिरा शर्मा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, मृदुला गर्ग, चित्रा मुदगल, मृणाल पाण्डेय, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, कृष्ण सोबती आदि। नब्बे के बाद भूमंडलीकरण और उदारीकरण के साथ ही स्त्री सशक्तिकरण का प्रभाव तमाम क्षेत्रों में पड़ने के साथ-साथ स्त्री लेखन के क्षेत्र में भी दिखाई दिया।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में महिला लेखिकाओं ने ‘स्व’ के प्रति सजगता और अपने अधिकारों एवं अस्तित्व के प्रति अत्यंत गंभीरता दिखाई है। मन्नू भण्डारी कृत उपन्यास ‘आपका बंटी’ में इसका अच्छा उदाहरण देखने को मिलता है, जहां उपन्यास की पात्र शकुन वकील के सामने जोर देकर अपने पति का विरोध जताते हुए कहती है, “अजय को उसे दिखा ही देना है कि वह अगर नई जिंदगी की शुरुआत कर सकता है तो वह भी कर सकती है।”⁶ मन्नू भण्डारी अपने उपन्यास में यह दिखाने का प्रयास करती हैं कि जब पति अपनी पत्नी का त्याग कर देता है और अपनी इच्छानुसार दूसरी स्त्री से शादी करने का अधिकार रखता है तो स्त्री से उसका यह अधिकार कैसे समाज छीन सकता है। यह सवाल उठाते हुये लेखिका ने उपन्यास की पात्र शकुन में इस चेतना का प्रबल रूप प्रकट किया है। वह भी पुरुष की तरह ही अपनी निजी जिंदगी में फैसले लेने की पूर्ण अधिकारी है। उसकी जिंदगी पर भी किसी अन्य का अधिकार नहीं। स्त्री भावनात्मक स्तर पर अपने रिश्तों की नींव खड़ी करती है और पूरी जिंदगी अपने रिश्तों को पूरी ईमानदारी से निभाने की ओर अग्रसर होती चलती है। परंतु पुरुष अपने पुरुषत्व के अंह में अक्सर स्त्री का त्याग कर देता है। ऐसी ही एक घटना प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास ‘आओ पेपे घर चले’ में उद्घृत की है। उपन्यास में मिस्टर डी. हैं। पेशे से डॉक्टर हैं। वह क्लीनिक चलाते हैं। क्लीनिक पर काम करने वाली क्लारा ब्राउन को पसंद करने लगते हैं। जिसके चलते उन्हें अपनी पत्नी मिसेज डी. से नफरत होने लगती है। मि. डी. का आपनी पत्नी के प्रति ऐसा बेअदबी रवैया देखते हुए प्रभा खेतान परेशान हो जाती हैं। वह अपनी दोस्त आइलीन से इस घटना के बारे में चर्चा करती हैं। जिसके प्रति-उत्तर में आइलीन कहती है, “औरत जब अपना दिल एक खूँटे से बांध देती है, तब सारी जिंदगी रोती है, सारी जिंदगी।”⁷ इस तरह लेखिका ने स्त्रियों को भावनात्मक स्तर पर ना जुड़ने की सलाह दे डाली है। वह स्वीकारती हैं कि जब-जब स्त्री इस तरह जुड़ेगी उसे इस पितृसत्तात्मक समाज में इसी तरह के धोकों का सामना करना पड़ेगा। स्त्री की इसी स्थिति को बताते हुए आइलीन कहती है कि, “कहाँ नहीं रोती वे? दुनिया में ऐसा कोई कोना बताओं, जहाँ औरत की आँख से आँसू न गिरे?”⁸ विश्व में हर हिस्से में स्त्रियों की स्थिति एक जैसी है। वह किसी भी धर्म की हो अथवा जाति की, किसी भी शहर की हो या गाँव की। वह हर जगह रोती है। पितृसत्तात्मक समाज से हर जगह छली जाती है।

भारतीय समाज स्त्री को घर की चार-दिवारी की कैद में रखने का हिमायती रहा। इस समाज में स्त्री को चूल्हे चौके में कौशल व परिपूर्ण बनाया जाता है। उसे शिक्षा के क्षेत्र में भी ‘होम साइंस’ जैसे सबजेक्ट लेने को कहा जाता है। जिसके द्वारा वहाँ भी वह रसोई से जुड़ी रहे। ऐसे ही स्त्री का शोषण सबसे पहले घर से शुरू होता है। इस संदर्भ में सिमोन ने कहा भी है कि, ‘स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बनाई जाती है’। समाज की इस कड़वी सच्चाई को मृदुला गर्ग अपने उपन्यास ‘कठगुलाब’ में व्यक्त करती हैं। वह मानती है कि स्त्री को इस समाज में रहना है तो उसे शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही स्तर पर मजबूत रहना होगा। उसे हर चीज का चुनाव इस समाज को ध्यान में रख कर करना होगा तभी वह भी पुरुषों की तरह मजबूती से अपने कदम इस धरती पर जमाने में सफल होंगी। स्त्री-विमर्श से प्रभावित स्त्री को ‘होम साइंस’ जैसे सबजेक्ट से ज्यादा कराटे सीखने की आवश्यकता अधिक प्रासंगिक लगती है। असीमा अपनी मित्र स्मिता को ‘होम साइंस’ पढ़ते देखती है तो उसे वह समझाती है कि, “बेवकूफ है, मुझे देख, मैंने अपनी नौकरी के पहले चार महीनों की तनख्वाह कराटे सीखने में खर्च की है। मर्दों की दुनिया में रहने के लिए होम साइंस नहीं, कराटे की जरूरत है।”⁹ असीमा स्मिता को समयानुरूप ढलने के लिए सावधान करती है। असीमा पितृसत्ता पर कटाक्ष करती है कि यह ऐसी व्यवस्था है, जो स्त्री को स्वयं से आगे बढ़ते देखना कभी पसंद नहीं करती। असीमा और स्मिता एक संस्था खोलती हैं। जिसका नाम वह ‘कुटुंब’ रखती हैं। इस संस्था के निर्माण में कोई भी पुरुष साथी उनका साथ नहीं देता। पुरुषों की इस मानसिकता पर असीमा कहती है कि, “इस देश में औरत या तो माँ है या पैर की जूती। इनसे काम करवाने के लिए इनकी अम्मा बनना जरूरी है क्या?”¹⁰ अतः उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने इतनी तीखी भाषा का प्रयोग करते हुए पितृसत्ता पर करारा व्यंग किया है। वह प्रश्न खड़ा करती हैं कि पुरुषों से काम कारवाने के लिए उनकी माँ ही क्यों बना जाए क्या बिना माँ बने वह साथ में काम नहीं करा सकते? वह कहती है कि यह समाज स्त्री के मातृत्व को ही उसके जीवन की उपलब्धि समझता है।

आज की स्त्री आधुनिक स्त्री है। उसने अपने लिए लड़ना शुरू कर दिया है। वह घुट कर रहना नहीं चाहती। वह आँसू बहाने से बचती है और संघर्ष करने पर बल देती है। ऐसी है संघर्षशील स्त्री को प्रभा खेतान अपने ‘छिन्नमस्ता’ में चित्रित करती हैं। अपने पक्षों को समाज के सामने बेहद मजबूती और तथ्यों के साथ रखने का प्रयास करती है उपन्यास की मुख्य नायिका प्रिया। प्रिया कहती है कि इस पुरुषवादी समाज को वह स्त्री कतई पसंद नहीं पुरुषों द्वारा बनाई गई इस व्यवस्था का विरोध करे। वहीं कोई पुरुष स्त्री से सहानुभूति जतलाते हुए उस व्यवस्था का विरोध करे तो उसकी तारीफों के पुल बांध दिए जाते हैं। उसे क्रांतिकारी होने का तमगा पहना दिया जाता है। समाज के इसी दोहरे मानदंड को घेरते हुए प्रिया कहती है, “व्यवस्था को तोड़ने वाली औरत को जहाँ समाज सौ कोड़े लगाता है, वहीं पुरुष को मंच पर क्रांतिकारी कहकर बैठता है। औरत हर तरह मरती है। लेकिन रोती हुई औरत मुझे अच्छी नहीं लगती। मुझे औरत की इस निष्क्रियता पर झुंझलाहट होती है। यह क्या घुट-घुटकर मारना?”¹¹ अतः स्त्री-विमर्श के प्रभाव से स्त्री का दबंग चरित्र उभरता हुआ दिखाई देता है। स्त्री-विमर्श की जड़ें लगातार समाज में फेल रही हैं। स्त्री जागरूक भी हो रही है उसके बावजूद भारतीय कट्टरपंथी समाज स्त्री चेतना को बर्दाश्त नहीं कर पाता। स्त्री को अपने अस्तित्व अथवा अस्मिता के लिए संघर्ष करते हुए देखना पुरुषवादी समाज से हजम नहीं होता। वह यह सब देखकर

परेशान होता है। 'आँवा' की हर्षा समाज की इस मानसिकता को उजागर करते हुए नमिता से कहती है, "बीता कल, दुः स्वप्न-सा द्वंद्व से छिपक नहीं रहा, जो कुछ देख रही हूँ, उसकी नग्नता झिल नहीं रही। विचित्र है। स्त्री चेतना सिर उठाते ही साँप का फन हो उठती है उनके लिए, जो अपनी लाठी की हुकूमत निरापद बनाने के लिए बलि की परंपरा में बीसवीं सदी के अंत में भी विश्वास करते हैं।"¹² अतः कहा जा सकता है आधुनिक समय में स्त्री-विमर्श का परचम लहराने वाला यह समाज अपनी घिनौनी मानसिकता से नहीं उभरा है। वह आज भी स्त्री को स्वतंत्र रूप से घूमते-फिरते नहीं देख सकता। चेतना सम्पन्न स्त्री को वह साँप की भाँति कुचल देना चाहते हैं।

समाज में जागृत स्त्री के प्रति समाज का रवैय भले दकियानूसी रहे उसके बावजूद आधुनिक विचारों से परिपूर्ण स्त्री पर इस दकियानूसी मानसिकता का कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता। वह अपनी जिंदगी के महत्वपूर्ण फैसले लेने के लिए पूरी तरह खुद को स्वतंत्र रखती है। ऐसी ही खुद स्त्री है 'आँवा' उपन्यास की नमिता। नमिता के पिता जी की मृत्यु होने के पश्चात वह निडरता से कहती है कि पिता जी को मुखाग्नि वही देगी। सदियों से चली आ रही इस परंपरा को जहाँ घर का लड़का पूरा करता है वहीं इस परंपरा का खंडन करते हुए नमिता आगे आती है। जिसका सब विरोध करते हैं उसके बावजूद वह अपना पक्ष पूरी दृढ़ता और निडरता के साथ रखते हुए कहती है कि, "क्रिया-कर्म मैं करूँगी पंडित जी, मुखाग्नि भी मैं ही दूँगी। मैं पंडित जी की बेटी हूँ। छुनु बच्चा है। बच्चे के हाथ से क्रिया-कर्म करवाना उचित नहीं।"¹³ समाज का विरोध करते हुए नमिता अपने पिता को अग्नि देकर ही रहती है। नमिता में आया यह बदलाव स्त्री विमर्श का ही परिचायक है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन समय में स्त्री आधुनिक विचारधारा को अपनाए हुए है। इसने समाज से लड़ना शुरू कर दिया। अपने अधिकारों को पहचानना शुरू कर दिया है। घर व समाज से संघर्ष करते हुए अपने अधिकारों को प्राप्त भी कर रही है। वह सदियों से जो अत्याचार पुरुषों द्वारा झेलती आ रही थी उसका खुलकर विरोध करने लगी है। वैचारिक स्तर पर पति से मतभेद होने पर वह यह क्षमता भी रखती है कि उसके बिना भी जिंदगी जी जा सकती है। वह जबरदस्ती के रिश्तों में घुट कर ना रहकर खुले आसमान में उड़ने की चाह रखती है। वह रूढ़ियों का विरोध करती हुई दिखाई देती है। उसने चुपचाप सब सहने की जगह गलत को गलत और सही को सही बोलने का साहस जुटाया है। स्त्री लेखिकाओं द्वारा लिखे गए इन उपन्यासों में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ती स्पष्ट रूप में दिखाई देती है। अतः कहा जा सकता है कि स्त्री विमर्श ने पितृसत्तात्मक समाज से लड़ने का बल प्रदान किया है।

संदर्भ सूची:

1. तिवारी, डॉ. भोलानाथ- (संपा.) : हिन्दी पर्यायवाची कोश, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, पृ. 572
2. वर्मा, रामचंद्र- (संपा.), (1966) : मानक हिन्दी कोश (भाग-पाँच), प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पृ. 77
3. आजकल पत्रिका- (मई-2008) : नई दिल्ली, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, पृ. 83
4. पाठक, डॉ. विनय कुमार- (2005) : हिन्दी साहित्य कि वैचारिक पृष्ठभूमि, नई दिल्ली, भावना प्रकाशन, पृ. 80
5. अग्रवाल, डॉ. रोहिणी- (2019) : स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ. 5
6. भण्डारी, मन्मू- (1971) : आपका बंटी, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. पृ. 42
7. खेतान, प्रभा- (1990) : आओ पेपे घर चले, नई दिल्ली, सरस्वती विहार प्रकाशन, पृ.35
8. वही-
9. गर्ग, मृदुला- (2004) : कठगुलाब, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.17
10. वही, पृ. 239
11. खेतान, प्रभा- (1997) : छिन्नमस्ता, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ.187
12. मुद्गल चित्रा- (2005) : आँवा, नई दिल्ली, सामयिक प्रकाशन. पृ.161
13. वही- पृ.399

भारतीय नारी के उत्थान में गांधी जी का योगदान

प्रदीप कुमार

शोधार्थी, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

1917 में भारत के राजनीतिक मंच पर महात्मा गांधी जी के प्रवेश के साथ स्वतन्त्रता संग्राम का आगे का सारा इतिहास बदल जाता है। सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के जो प्रयोग इन्होंने दक्षिण अफ्रीका में आजमाए थे, उनके आधार पर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में समय-समय पर 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन के' के प्रयोगों और उनके प्रभावों की कहानी विश्व इतिहास में अपने ढंग की बेजोड़ है। यही से कांग्रेस द्वारा लड़ी जा रही लड़ाई जन-जन की भागीदारी लेकर जन-विद्रोह में परिणित हो गयी। अभी तक कांग्रेस में प्रायः विशिष्ट वर्ग के पढ़े लिखे, वह भी अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग ही अधिक थे। अब उसमें छोटे-बड़े गरीब अमीर, स्त्री पुरुष, छात्र-छात्राएं, शिक्षित अशिक्षित, मजदूर से लेकर अध्यापक, डाक्टर, समाजसेवी सभी शामिल हो गए।

महात्मा गांधी का अविर्भाव एक ऐसे समय में हुआ जब भारत पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क में आ चुका था। इस सम्पर्क के परिणामस्वरूप जो नवीन परिवर्तन दृष्टिगत हुए गांधी जी भी उससे अछूते न रह सके। भारतीय परम्परा व हिन्दू धर्म में जन्म गांधी जी की अंग्रेजी शिक्षा व पाश्चात्य दर्शन के प्रभाव के कारण धार्मिकता व बौद्धिकता के अनुपम सम्मिश्रण थे। एक तरफ तो वे अन्तःकरण की पुकार की सभी कृत्यों का स्त्रोत मानते थे, तो दूसरी तरफ वो कहते थे कि हम ऐसी प्रत्येक वस्तु को तर्क की कसौटी पर परखना चाहिए जो उनके द्वारा परखी जाने योग्य है। जो वस्तु खरी न उतरे, वह चाहे कितनी भी प्राचीनता के आवरण में हो, उसका बहिष्कार कर देना चाहिए इन्हीं विचारों के प्रभाव के परिणामस्वरूप ही गांधी जी स्त्री एवं पुरुष के अधिकारों के समर्थक थे। इन्होंने नारी को पुरुष अर्धांग ही नहीं माना है, वरन इससे भी बढ़कर उन्होंने नारी को पुरुष की जननी निर्माता एवं मूकदर्शक माना। गांधी जी ने नारी को सृष्टि की सबसे उत्तम रचना माना है। वह उदारवादी विचाराधारा के थे। उन्होंने प्राकृतिकवित्तियों के इस विचार को स्वीकार किया है कि प्रकृति ने भिन्न प्रकार की शक्तियों व क्षमताओं से विभूषित किया है। गांधी जी के अनुसार इस प्रकृति प्रदत्त भिन्नता होते हुए भी, स्त्री एवं पुरुष का दर्जा बराबर है। वे एक दूसरे के पूरक हैं दोनों एक दूसरे मदद करते हैं और एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं है। यदि दोनों में से किसी एक को भी हीन भावना से देखा गया तो इसमें दोनों की ही हानि है।¹

नारी जाति के शोषण के कारण तत्कालीन स्वरूप को देखकर गांधी जी अत्यधिक दुखी हुए। इसीलिए उन्होंने नारी जाति को उसके प्राचीन गौरव के अनुकूल सम्मानजक स्थान दिलाने का प्रयत्न किया। प्राचीन धर्मशास्त्रों के अनुसार “दस उपध्याय के बराबर एक शिक्षक, सौ शिक्षकों के बराबर, एक पिता: एवं हजार पिताओं से भी बढ़कर एक माता है। प्रारम्भिक वैदिक युग का साहित्य एवं पुरुष की समानता के आदर्श को प्रकट करता है। किसी कन्या के जन्म लेने पर भी यही कामना की जाती थी कि वह एक श्रेष्ठ पण्डित (विद्वान) बने।²

गांधी जी नारी-जाति को किन्हीं भी अर्थों में पुरुष से हेय नहीं मानते थे। वह उसके त्यागमय जीवन के प्रशंसक थे। यही कारण है कि उन्हें यह स्वीकार करने में किंचित मात्र भी हिचक नहीं हुई कि स्त्री के त्याग के बिना पुरुष का सुख पाने का ध्येय अधूरा रह जायेगा। स्त्री त्याग की साक्षात् मूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी कार्य में जी जान से लग जाती है तो वह पहाड़ भी हिला देती है।³

ध्येय की दृढ़ता से गांधी जी का तात्पर्य है कि नारी भावनापूर्ण होने के साथ-साथ कर्तव्य-पथ पर चलने में भी सक्षम होती है। वस्तुतः नारी और पुरुष एक ही चेतन तत्व को समाहित किए हुए हैं। दोनों की रचना एक ही ईश्वर ने की है। दोनों को मोक्ष का अधिकारी भी समान है।⁴

गांधी के अनुसार- स्त्री को अबला कहना उसका अपमान करना है। स्त्री के प्रति पुरुष का यह अन्याय है। यदि शक्ति का अर्थ पशुबल से है तो यही कहना होगा कि स्त्री पुरुष से कम पाशविक है, यदि शक्ति का अर्थ नैतिक शक्ति से लगाया जाए तो नारी निश्चय पुरुष से उच्च है।⁵

आध्यत्मिक दृष्टि से गांधी जी नारी को पुरुष से अधिक उच्च मानते हैं। उनके द्वारा संचालित संस्थाओं में नारियां एवं बालिकाएं एवं स्वतंत्रता का उपयोग करती थी तथा उनके साथ कोई भेदभाव नहीं होता था। साबरमती आश्रम एवं सेवाग्राम आश्रम इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

चारित्रिक गुणों के आधार पर गांधी जी स्त्री को पुरुष से श्रेष्ठ मानते हैं। उसे श्रेष्ठ मानने का उनका दर्शन विनाश के दर्शन से भिन्न निर्माण का दर्शन है। हिंसा से भिन्न अहिंसा का दर्शन है। स्त्री एवं पुरुष में चरित्र की दृष्टि से स्त्री का आसन ज्यादा ऊँचा है, क्योंकि वह आज भी त्याग, मूक-तपस्या, नम्रता, श्रद्धा, और ज्ञान की मूर्ति हैं। उसकी स्वाभाविक सूझ-बूझ पुरुष के ज्ञान से कहीं ज्यादा है। राम के पहले सीता, कृष्ण के पहले राधा के नाम का उल्लेख अकारण नहीं है। उसका उचित कारण है।⁶

गांधी जी अनुसार जैसे पशु-सुलभ साहस में पुरुष नारी से आगे, वैसे ही आत्म त्याग के साहस में नारी पुरुष से कहीं बढ़कर है।⁷ गांधी जी यह मानते थे कि विश्व की तपन और जलन को यदि कहीं मिटाने का सामर्थ्य है तो वह नारी जाति में निहित है। युद्ध के खिलाफ हो रहे युद्ध में दुनिया का नारी-समाज सबसे आगे रह सकता है, और उसे रहना चाहिए, यह तो नारियों का अपना विशेष कार्य और अधिकार है।⁸ यहाँ पर गांधी जी यह पीड़ा फलकती है, जिसके कारण वह मानसिक रूप से पीड़ित थे।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार व प्रसार के कारण पुरुषों के साथ ही साथ नारियों पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ा था। अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव के परिणाम स्वरूप नवयुवक व नवयुवतियाँ वाहय आचरण से अंग्रेजी सभ्यता में रंग गये थे। गांधी जी ने इसके विरोध में आवाज उठायी। उन्होंने स्त्री व पुरुष दोनों से

ही आधुनिकता को त्यागने के लिए कहा। आधुनिकता से उनका तात्पर्य पाश्चात्य खान-पान, विदेशी-वस्त्रों व बेढंगे, फैशन से था, जो कि भारतीय संस्कृति से सर्वथा प्रतिकूल था, इसीलिए उन्होंने नारी, विशेषकर शिक्षित नारी से प्राचीन आदर्शों को मानने एवं भारतीय परम्परा के अनुकूल ही आचरण 'आधुनिक युवती' बनने की प्रवृत्ति से इन्हे दूर ही रखना चाहिए।⁹

गांधी जी स्त्री पुरुष समानता के समर्थक थे। फिर भी यह जानते थे कि दोनों की शरीर रचना में पर्याप्त अन्तर है। अतः दोनों के कार्य क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न है। स्त्री-पुरुष की समानता यह तात्पर्य नहीं है कि दोनों के कार्य (धन्धे) एक हो। कोई भी काम पुरुष है, वह उससे झिझकती है। प्रकृति ने स्त्री पुरुष का एक दूसरे का पूरक बनाया है। जैसे उनके शरीर भिन्न हैं वैसे उनके कार्य भी अलग हैं।¹⁰

गांधी जी इसके लिए स्त्रियों का किसी भी समय संघर्षशील अथवा हिंसात्मक होने को या अपने पति की अवज्ञा करने की कभी भी प्रेरणा नहीं देते हैं। उन्होंने उस प्यार को स्वयं उस शक्ति को जो स्त्री में निहित है, प्रयुक्त करने के लिए सदैव प्रेरित किया, जिससे वि, वह अपना मार्ग चुन सकें।¹¹

गांधी जी का अविर्भाव ऐसी परिस्थितियों में हुआ था, जब की भारत अपने महान प्राचीन आदर्शों, सभ्यता एवं संस्कृति को विस्मृत कर पतन के गहन अन्धकार में डूब गया था। समाज का प्रत्येक पहलू चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अथवा शैक्षिक कोई भी क्यों न हो इस सर्वव्यापी विनाश का शिकार हो चुका था। किन्तु इस समय समाज में सबसे अधिक पतनोन्मुखी स्थिति नारी वर्ग की थी। वह पतन के गहरे गर्त में डूबकर समाज की मुख्यधारा से अलग हो गयी थी। वह पुरुष की सहधर्मिणी, सहयोगिनी व अर्धांगिनी के उच्च स्थान से गिरकर उसकी दासी हो गयी थी। उसका अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व व इच्छा नहीं रह गयी थी। शिक्षा के अभाव में वह कूप मण्डप होकर गृह-कार्य की बन्दिनी होकर रह गयी थी।

गांधी जी देश-भक्ति जैसे महान कार्यों को करने के साथ ही साथ नारियों के उन्नयन के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। उन्होंने नारियों के ऊपर बलपूर्वक थोपे गए, कानून, धर्म एवं कुप्रथाओं के बंधनों को तोड़ने का भरपूर प्रयत्न किया। उन्होंने नारी समाज में अनेक सामाजिक कुप्रथाओं एवं रूढ़ियों जैसे-बाल-विवाह विधवा-विवाह, देवदासी-प्रथा, वेश्यावृत्ति एवं आर्थिक परतन्त्रता के विरुद्ध जोरदार अपील की। उनके अनुसार स्वराज्य प्राप्ति तक सुधार कार्यों को स्थगित कर देना, स्वराज्य के सही अर्थ को न जानना है।¹²

गांधी जी उस समय समाज में व्याप्त सभी कुरीतियों पर अपना ध्यान आकर्षित करते हुए उनके निराकरण के प्रयास किए। गांधी जी बाल-विवाह के विरोधी थे। विशेषकर ऐसे विवाहों से तो वह बहुत दुःखी होते थे, जिसमें अल्प वयस्क बालिका का विवाह अथवा वृद्ध पुरुष के साथ कर दिया जाता था। वह बाल विवाह को मात्र शारीरिक शोषण के रूप में ही नहीं अपितु नैतिक एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अनुचित मानते थे। उनके अनुसार बाल-विवाह की रीति जितनी शारीरिक बुराई है उतनी ही नैतिक बुराई भी है क्योंकि यह हमारे सदाचार की जड़े खोखली कर देती है। और शरीर का नाश (सत्यानाश) कर डालती है।¹³

उन्होंने बाल-विवाह को अधर्म व अनैतिक मात्रा जो लड़की गोद में बैठने लायक हो। उसे पत्नी बना लेना धर्म तो नहीं है, लेकिन अधर्म की पराकष्टा अवश्य है।¹⁴

गांधी जी इस प्रथा को स्वराज्य प्राप्ति के प्रश्न से मिलाकर इसे राजनीति का अंग बना दिया। उनके अनुसार अविकसित व्यक्ति स्वतन्त्रता संग्राम में लड़ने योग्य नहीं हैं। स्वराज्य के लिए मात्र राजनीतिक की महती आवश्यकता है।¹⁵

गांधी जी बाल विवाह को रोकने के दो उपाय बतलाये हैं। प्रथम कानून द्वारा विवाह योग्य आयु निर्धारित कर दी जाये। किन्तु यह कानून तभी प्रभावी होगा। जब मनुष्य में विवेक जाग्रत हो। उनके अनुसार द्वितीय नारियों को जाग्रत एक होकर इसका डटकर विरोध करना चाहिए। गांधी जी द्वितीय विकल्प को श्रेयस्कर मानते हैं। यह काम विशेषकर स्त्रियों का है। बेशक पुरुषों को भी इसमें हाथ बटाना है। यह कार्य उन माताओं का है जो बालिका का विवाह करती है।¹⁶

छात्रों के एक सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए गांधी जी ने उनसे इस विषय में सहायता मांगी। उन्होंने ने छात्रों से बाल विधवा से ही विवाह करने की प्रतिज्ञा करवायी।¹⁷

गांधी जी ने पर्दा प्रथा पर आघात किया। उनके अनुसार पर्दे की आड़ में रखने से चरित्र की पवित्रता नहीं जाती है। चरित्र का विकास तो भीतर से होता है।¹⁸ उस समय सती-प्रथा भी समाज की एक घातक व दूषित प्रथा थी। सती के रूप में प्रतिवर्ष हजारों नारियाँ समाज की बलिवेदी पर आहुत कर दी जाती थी। गांधी जी का ध्यान इस अमानुषिक, बर्बर कुप्रथा की ओर गया, और उन्होंने इसके विरुद्ध सशक्त अभियान छेड़ा। उनके अनुसार नारी का मृतक पति के साथ चिता में बैठकर जल जाना, सर्वथा अनुचित व असंगत है। यह शास्त्रों के विरुद्ध है, लोगों ने शास्त्रों में वर्णित सती शब्द का अनुचित प्रयोग किया है। यह सती का विकृत रूप है। प्राचीन विद्वानों ने जो अर्थ लगाये थे। उसके अनुसार- 'सती' से तात्पर्य नारी से है, जिसका त्याग एवं प्रेम पति पर ही केन्द्रित होता है। जो निःस्वार्थभाव से पति सेवा में रत है, उसके जीवन काल में भी तथा उसकी मृत्योपरान्त भी। सती अपने विचारों शब्दों एवं कार्यों से पवित्र होती है।¹⁹

गांधी जी विवाह को मात्र शारीरिक बन्धन ही नहीं अपितु आत्मा का बंधन मानते हैं। गांधी जी का विवाह से तात्पर्य था। "शारीरिक संबंध" के माध्यम से आध्यत्मिक मिलन। इसके माध्यम से मानव प्रेम दैवीय तथा सार्वभौम प्रेम के प्रति परिवर्तित हो जाता है। यही कारण है कि मीरा गिरधर को पति मानते हुए कहती है कि-

मीरा के प्रभु गिरधर नागर दूसरो न कोय²⁰

दहेज की प्रथा ने भी नारी जाति पर भयंकर अत्याचार किये हैं। यह कुप्रथा स्त्री की मानसिक रूप से कुण्ठित और परिवार को आर्थिक दृष्टि से अपंग करती है। सामान्य प्रचलित प्रथाओं में दहेज की राशि नकद धनराशि के रूप में तथा सामाग्री के रूप में स्वीकार्य होती है। दहेज कन्या पक्ष वाले वर-पक्ष वालों को प्रदान करते हैं। समस्त भारत में यह कुप्रथा नहीं है। समस्त जातियों में भी यह कुप्रथा नहीं है, यह तो मात्र हिन्दुओं की कुछ मानशील जातियों ही हैं। इस कुप्रथा के परिणामस्वरूप कन्या के माता-पिता आत्मग्लानिवश अपना अहित कर बैठते हैं। कभी-कभी कन्या दहेज की वांछित धनराशि के अभाव में ससुराल से प्रताड़ित होने पर आत्महत्या करने के लिए विवश होती है।²¹

गांधी जी के अनुसार दहेज मांगने वाले व्यक्ति को विवाह के अयोग्य घोषित कर देना चाहिए। लेकिन यह सभी का दुर्भाग्य है कि दहेज के लोभियों को किसी भी प्रकार प्रताड़ित नहीं किया जाता है। उनको तो समाज में मान सम्मान प्राप्त होता है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि किसी लड़की से विवाह करने की कीमत लेने की नीचता को निश्चित अयोग्यता नहीं समझा जाता है।²²

गांधी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जातिवाद के इन हानिकारक बंधनों को तोड़ने पर मे अवश्य ही बल देता हूँ। इन बंधनों के टूटने से चुनाव का क्षेत्र विकसित होगा और दहेज प्रथा पर भी अंकुश लगेगा।²³

वेश्यावृत्ति को गांधी जी समाज का अभिशापित कलंक मानते हैं। यह नारी जाति से संबंधित एक गंभीर समस्या है। यह कोई नवीन प्रथा नहीं है। बल्कि इतिहास के सभी युगों में यह किसी न किसी रूप में मिलती है। मध्य युग में तो वेश्यावृत्ति अपनी चरम सीमा पर थी। इस समय सम्पूर्ण देश में यह कुप्रथा व्याप्त थी। बंगाल में वेश्यावृत्ति का प्रचलन जोरो पर था। गांधी जी ने नारी जाति के इस पतन को अत्यधिक शर्मनाक बताते हुए कहा था कि- यह बड़े दुःख और अपमान की बात है कि मनुष्य की वासना की तृप्ति के लिए स्त्रियों को अपनी इज्जत बेचनी पड़े, पुरुषों ने जो स्त्रियों का जो अपमान किया है। उसके लिए उसको कठिन दण्ड भोगना पड़ेगा।²⁴ वह दुष्प्रवृत्ति नारी की स्वभावगत दुर्भलता, विवशता एवं अज्ञानता के साथ-साथ पुरुष की वासना दृष्टि की अगाध इच्छा की चेष्टाओं का परिणाम है।

बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक में भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी के अवतरित होने पश्चात भारतीय राजनीति में पुरुषों के साथ ही महिलाओं की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी थी। महात्मा गांधी नारी का सर्वांगीण विकास करना चाहते थे। अतः उन्होंने नारी के सामाजिक व आर्थिक उन्नयन के साथ ही राजनीतिक क्षेत्र में भी व्यापक सहभागिता पर बल दिया। नारी उन्नयन आन्दोलन के क्षेत्र में उनका सबसे बड़ा योगदान नहीं है कि उन्होंने भारतीय नारियों को देश की राजनीति में खुल कर भाग लेने के लिए न तो सिर्फ प्रोत्साहित ही किया वरन उनका मार्गदर्शन भी किया। भारतीय स्वाधीनता संघर्ष में नारियों ने बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया। इसका समस्त श्रेय गांधी जी को जाता है।²⁵

गांधी नारी शक्ति में गहरा विश्वास करते थे। वह उसे साहस व शौर्य की साक्षात् प्रतिमा मानते थे। वह कहते थे कि भारत उद्धार नारी के त्याग और जागरण पर निर्भर है।²⁶ गांधी जी नारी को त्याग एवं अहिंसा की देवी मानते थे।

भारतीय नारियों के मन मानस पर गांधी जी की अमिट छाप थी। उन्होंने नारी में नवीन जागृति का शंखनाद किया तभी तो उनकी पुकार पर हजारों की संख्या में नारियाँ असहयोग आन्दोलन में भाग लेने को निकल पड़ी। जो गांधी जी के कार्यों में सहयोग दिया। नारियाँ ने अदभुत त्याग का परिचय देते हुए स्वाभूषणों का दान दिया तथा रेशमी वस्त्रों के स्थान पर खादी का प्रयोग प्रारम्भ किया। इतना ही नहीं अनेक महिलाओं ने आन्दोलन का नेतृत्व भी किया। उस समय जब देश के वरिष्ठ नेता जेलों में थे, महिलाओं ने आन्दोलन की वागडोर सम्भाल ली, और पुरुषों के छोड़े हुए कार्य को आगे बढ़ाया। उन्होंने राजनीतिक जूलूसों का नेतृत्व किया, विशाल जन समूहों में उत्तेजनात्मक भाषण दिये व प्रान्तीय सभाओं की अध्यक्षता अनेक नारियों ने म्यूस्पिल कॉरपोरेशन में महत्वपूर्ण पद प्राप्त किए।

कांग्रेस के मंच से अनेक नारियाँ ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में अभूतपूर्व योगदान देते हुए एक नवीन चेतना जागृत की। यही कारण है कि 1917 में श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने 1925 में श्रीमती सरोजनी नायडू ने व 1935 में नेलीसेन गुप्त ने कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता की थी।

वास्तव में स्वाधीनता आन्दोलन में पुरुषों के समान ही महिलाओं की भी महत्वपूर्ण व अविष्मरणीय भूमिका रही है। उनके योगदान के बगैर भारत वर्ष की स्वतन्त्रता प्राप्ति की लालसा अधूरी ही रह जाती।

नारी को अन्य क्षेत्रों में स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात आर्थिक क्षेत्र में भी उसकी स्वतन्त्रता की मांग की जानी स्वाभाविक थी। प्रत्येक काल में स्त्री को कुछ न कुछ आर्थिक अधिकार प्राप्त रहे हैं। हाँ इतना अवश्य रहा है कि नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता सदैव विवादास्पद रही है। आधुनिक युग में नवीन विचारों के अभ्युदय के साथ ही नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता पर भी विचार किया गया तथा उन्हें पुरुषों के समान ही आर्थिक रूप से स्वतन्त्रता पर बल दिया गया।

नारी उत्थान का समर्थन करते हुए गांधी जी ने शास्त्रों का तर्क दिया। उनके अनुसार शास्त्र अत्यधिक पवित्र ग्रन्थ होते हैं। अतः इनका आदर करना चाहिए किन्तु इनमें से उन बातों को निकाल देना चाहिए जो तर्क द्वारा सत्य नहीं सिद्ध होती हैं। उन्होंने प्राचीन भारतीय नारियों-सीता दमयन्ति, द्रौपदी जैसी पवित्र व दृढ़ नारियों के उदाहरण देते हुए कहा है कि इन्हीं के समान ही हमें आज की भारतीय नारियों को बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।²⁷

शिक्षा किसी भी देश व समाज के उत्थान के लिए अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा के अभाव में देश के प्रगति के सभी मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं। अतः किसी भी देश के विकास के लिए यह परम आवश्यक है कि वहा की जनता शिक्षित हो। इसी प्रकार नारी के लिए भी शिक्षा का विशिष्ट महत्व है। शिक्षा के अभाव के फलस्वरूप ही उनका इतना अधिक सामाजिक अधःपतन हुआ है। शिक्षा से वंचित नारी अपने अधिकारों और कर्तव्यों से अनभिज्ञ एक ऐसी स्थिति में पहुँच गयी थी, जहाँ चारों तरफ अंधकार ही अन्धकार हो गया था तथा उनकी प्रगति के सभी मार्ग अवरूद्ध हो गये थे। धीरे-धीरे समाज सुधारकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने इसके निराकरण के उपाय प्रारम्भ किये।

गांधी जी नारी शिक्षा के उतने ही समर्थक हैं। जितने की पुरुष शिक्षा के। उनके अनुसार अशिक्षित व्यक्ति पशु तुल्य हैं। इसीलिए शिक्षा स्त्री और पुरुष दोनों के लिए आवश्यक है।²⁸

यद्यपि गांधी जी नारी की स्थिति में सुधार करना चाहते थे किन्तु वह कानूनी तरह से सुधारों के पक्ष में नहीं थे। वह यह मानते थे कि किसी भी समस्या के निदान का सर्वोत्तम उपाय यह है कि जागृत जनमत का निर्माण किया जाए। जनमत में चेतना जगाये बगैर राज्य द्वारा बनाए गए, कानूनों का कोई अर्थ नहीं होगा। अतः नारी की स्थिति में सुधार के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि सबसे पहले एवं सुसंठित जनमत का निर्माण किया जाये।²⁹

इसके साथ ही गांधी जी यह भी मानते थे कि महिलाओं को इनकी वर्तमान स्थिति का एहसास दिलाया जाये तथा उनमें इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए चेतना जगायी जाये गांधी जी इसके लिए शिक्षा को विशेष लाभकारी मानते थे।³⁰

नारी स्थिति के उत्थान के लिए गांधी जी अभिभावकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करते थे उनके अनुसार इस दिशा में अभिभावकों का कर्तव्य उल्लेखनीय है। क्योंकि बाल-विवाह वाध्य वैधव्य सती प्रथा, पर्दा आदि अनेक कुरीतियों के लिए सबसे अधिक अविभावक ही जिम्मेदारी है। गांधी जी पुनर्विवाह के पक्षधर थे उनका कहना था कि यह अविभावकों का कर्तव्य है कि वे अपनी बाल विधवा बालिकाओं का विवाह अपना कर्तव्य समझदार करें।³¹

इस प्रकार हम देखते हैं कि नारी जागरण के क्षेत्र में गांधी जी का विशिष्ट एवं अविष्मरणीय योगदान है यद्यपि कि गांधी के भी पूर्व भी समाज का ध्यान नारी की स्थिति की ओर आकर्षित अवश्य हुआ था पर भारत के राजनीतिक मंच पर गांधी जी के आने से पहले कोई चमकत्कारी प्रगति नहीं हुई थी।

गांधी जी ने केवल राष्ट्रीय आन्दोलन को ही गति प्रदान नहीं की बल्कि नारी की दशा में सुधार और स्फूर्ति की भी गति प्रदान की। उनके स्वर में विश्वास दिलाने की वह शक्ति थी वह प्रेरणा थी जिसने नारी में चेतना जगायी और उसे घर की चारदीवारी से बाहर निकालने का नैतिक साहस प्रदान किया। नारी के लिए उनके हृदय में कोमल उदगार थे, उसकी अनुभूतियों और समस्याओं को वह उसी की भाँति अनुभव करते थे। राजकुमारी अमृत कौर महात्मा गांधी के बारे में लिखती हैं कि हम उनमें न केवल 'बापू' एक चतुर पिता का रूप पाते हैं। बल्कि उसमें भी अधिक बहुमूल्य एक माँ (का रूप) जिसके सार्वभौम तथा असीम प्रेम के समक्ष सभी भय व बाधाएँ अदृश्य हो जाती हैं।³²

इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधी और कांग्रेस एक उपकरण बन गए थे जिनके माध्यम से सुषुप्त नारी जगत में एक ऐसी स्फूर्ति और चेतना उत्पन्न हुई, जिससे नारी को न केवल पुरुष के समान ही स्थान दिया अपितु उन्हें ऐसा अवसर प्रदान किया जिससे उस समय तथा कालान्तर में उनका चहुँमुखी विकास सम्भव हो सका।

ग्रन्थ सूची-

1. विश्व ज्योति: महात्मा गांधी अंक अप्रैल 1969-पृ0-62
2. दिवाकर, हरिरामचन्द्र (लेख) वूमेन इन एनसियन्ट इण्डिया (पत्रिका) कस्तूरबा गांधी जयंती अंक पृ0 36, 1962।
3. हिन्दी नवजीवन: 25 दिसम्बर 1921 और विनोबा: स्त्री शक्ति, पृ0-9
4. विनोबा: स्त्री शक्ति - पृ010
5. कस्तूरबा मेमोरियल: ए. जनरल पब्लिशड कस्तूरबा गांधी नेशनल ट्रस्ट, कस्तूरबा-ग्राम इन्दौर- पृ0-12 और यंग इण्डिया 10 अप्रैल 1930
6. यंग इण्डिया: 15 सितम्बर 1921
7. हरिजन: 5 नवम्बर 1938
8. हरिजन: 12.01.1934
9. हरिजन: 04.02.1929
10. हरिजन: 02.12.1939
11. शुक्ल चन्द्रशेखर: गांधी जी व्यू ऑफ लाइफ - पृ0 174
12. यंग इण्डिया: 28.06.1926
13. यंग इण्डिया: 26.08.1926
14. यंग इण्डिया: 18.08.1926
15. यंग इण्डिया: 26.08.1926
16. हरिजन: 16.11.1926
17. यंग इण्डिया: 21.05.1931
18. यंग इण्डिया: 03.02.1927
19. यंग इण्डिया: 21.05.1931
20. यंग इण्डिया: 21.05.1931
21. हिन्दी नवजीवन: 06.09.1928
22. हरिजन: 05.09.1936
23. हरिजन: 05.09.1936
24. यंग इण्डिया: 16.04.1925
25. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली: महात्मा गांधी, 100 इयर्स पृ0 218
26. कस्तूरबा मेमोरियल: पृ0 38
27. गांधी, एम0के0: इण्डिया आफ माई ड्रीम्स पृ0 60
28. गांधी, एम0के0: इण्डिया आफ माई ड्रीम्स पृ0 62
29. तदैव
30. गांधी, एम0के0: इण्डिया आफ माई ड्रीम्स पृ0 61
31. हरिजन: 20.03.1947
32. राधाकृष्णन, एस0 : महात्मा गांधी, 100 इयर्स पृ0 216

भारत और नयी वैश्विक व्यवस्था

डॉ० सच्चिदा नन्द राम

एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन, विभाग, कुँवर सिंह पी0जी0 कालेज, बलिया

वर्तमान वैश्विक राजनीति भारत को अपने राष्ट्रीय हितों को आगे बढ़ाने हेतु एक अभूतपूर्व अवसर के रूप में देखती है। एक उभरती हुई शक्ति के रूप में भारत के दीर्घकालिक हित नयी विश्व व्यवस्था के निर्माण को प्रभावित करने हेतु स्वयं को बनाने में निहित है। इन सब के ऊपर, नयी विश्व व्यवस्था का जन्म पश्चिम से पूर्व की ओर शक्ति-हस्तांतरण के साथ हो रहा है। नये मूल्यों का सृजन हो रहा है और भारत को उनके प्रति खुला दृष्टिकोण रखना होगा। एक तरफ, बहुध्रुवीय तेज हो रही है। राष्ट्र अपनी-अपनी संप्रभुता पर जोर दे रहे हैं और नयी स्थितियों में अपने सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पहचान के साम्य में विकास का पथ चुन रहे हैं। नये विकास केन्द्र प्रकट हुए हैं जो अपनी प्रगति को बनाये रखने के लिए पश्चिम पर निर्भर नहीं हैं। यह प्रत्यक्ष है कि किसी एक शक्ति के लिए विश्व-व्यवस्था पर अपना रौब जमाना संभव नहीं है। दूसरी तरफ, अमेरिका के नेतृत्व में पश्चिमी शक्तियाँ अपने वैश्विक नेतृत्वकर्ता की हैसियत को छोड़ रही हैं। वे समकालीन युग में बहुध्रुवीयता की प्रवृत्ति को वापस ले रही हैं या फिर कम से कम धीमा किये हुए हैं। इसके अतिरिक्त, यू0एन0ओ0 को अनदेखा किया जा रहा है, वैश्विक समझौतों को अस्वीकार किया जा रहा है और स्वहित के एकपक्षीय प्रयासों को प्राथमिकता दी जा रही है।¹

2017-18 से विश्व ने विरासत से मिली विश्व-व्यवस्था के पतन का काल देखा है, जो नयी वैश्विक व्यवस्था के सृजन की संभावनाओं को प्रशस्त करता है, जो पूर्व की अपेक्षा अधिक न्यायपूर्ण, स्थायी और शांत होगा, ऐसी आशा है। हालांकि इस बीच गंभीर विवाद और संकट उत्पन्न हो सकते हैं। रूस-अमेरिका के संबंध की वर्तमान स्थिति इसकी बस एक शुरुआत है। मध्यम काल के लिये, बड़ी शक्तियों की प्राथमिकता बड़े पैमाने के युद्ध को रोकने की होगी, जो बहुत संभव प्रतीत होती जा रही है। इसी समय, रूसी चीन और भारत के साथ अपने संबंधों को गहराई देना और अमेरिका के सहयोगियों और साझेदारों जैसे कि जापान, दक्षिण कोरिया और जब संभव होगा तब पश्चिम यूरोपीय देशों के साथ संबंध सुधारना भी जारी रहेगा।² अमेरिका अभी अपने आपको विशेषकर आर्थिक और रणनीतिक रूप से यूरोप से दूर रखने का प्रयास कर रहा है और साथ ही यूरोप को निर्भर रखने का भी प्रयास कर रहा है। इसके अतिरिक्त, ट्रंप पूछ रहे हैं “क्यों अमेरिका को अपना खून और धन यूरोप और एशिया के अपने धनी सहयोगियों की सुरक्षा में खर्च करना चाहिये।” अमेरिका ने अपने “भारत-प्रशांत” नीति के माध्यम से चीन को दक्षिण और पूर्व से घेरने के लिए भी कदम उठाये हैं। चीन की स्थिति को कमजोर करने के लिए अमेरिका, जापान, भारत और आस्ट्रेलिया का चतुर्पक्ष बनाकर हिंद महासागर और दक्षिण चीन सागर में वाणिज्य और ऊर्जा-आपूर्ति मार्ग के सृजन का प्रयास किया गया है। इस प्रकार, चतुर्पक्ष अमेरिका के नेतृत्व में चीन को रोकने के लिए एक गठबन्धन है जो ओबीओआर पहल का एक विकल्प उपलब्ध कराता है। अमेरिका रूस और चीन को एक वास्तविक गठबंधन की तरफ धकेल रहा है।³ दूसरी ओर, चीन का मुखर और अक्सर आक्रामक व्यवहार भारत के लिए एक बड़ी चुनौती के रूप में देखा जाता है क्योंकि इससे चीन के द्वारा भारत के निकटस्थ पड़ोसियों की आशंका रहती है। अगर भारत अपने छोटे पड़ोसियों के साथ मतभेदों को नहीं सुलझाता है, तो यह चीन के द्वारा दक्षिण एशिया में अपने प्रभाव को दिखाने का मार्ग प्रशस्त करेगा।⁴

तीन वर्षों में नरेन्द्र मोदी सरकार के अंतर्गत सामुद्रिक मसलों पर फ्रांसीसियों के साथ सघन वार्ता ने खुफिया जानकारी और सैन्य सुविधाएं साझा करने, अपनी नौसेनाओं के बीच पारस्परिक क्रियान्वयन और संयुक्त अभियानों के लिये भविष्य की नीति के धरातल का निर्माण किया है। एक प्रगति भारत के पश्चिमी समुद्र में हुई है। फ्रांस भारत को दक्षिणी प्रशांत में भी अपनी सामरिक साख बनाने के लिए सहायता कर सकता है। यद्यपि कि भारत फ्रांस लंबे समय हिंद महासागर में सामुद्रिक पड़ोसी रहे है। फिर भी उन्होंने अब तक इसको हृदय से अपनी साझेदारी में नहीं निभाया है। सामुद्रिक समस्याओं को बांटने और भारत-प्रशांत में एक दूसरे की स्थिति सुदृढ़ करने के से उत्पन्न नयी क्षेत्रीय संरचना भारत-फ्रांस के रणनीतिक संबंध में अति आवश्यक गहराई को विकसित करेगी। अगर भारत द्विपक्षीय, छोटे स्तर या बड़े स्तर की यांत्रिकी के साथ अपने सैन्य अलगाव, को छोड़ देता है और लाभकारी रक्षा कूटनीति विकसित कर अपने साझेदारों के साथ गहरा सुरक्षा संबंध स्थापित करता है, तो चतुष्कोणीय वार्ता के माध्यम से यह आज की अपेक्षा कम विवाद पैदा करेगा।⁵

राष्ट्रपति एमानुएल मैक्रॉन की यात्रा से भारत-फ्रांस संबंधों और उछाल आनी चाहिए, जिनकी जड़ गहरी है और जो दोनों देशों के लिये महत्वपूर्ण है।

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता, नाभिकीय हथियारों की प्रतिष्ठा, यूरोपीय संघ में महत्वपूर्ण स्थिति, अर्थव्यवस्था का आकार, अपने नियंत्रण में उन्नत तकनीकी, एक बड़ा रक्षा उत्पादन आधार, वैश्विक कार्यसूची और नम्र शक्ति में योगदान, के चलते फ्रांस का संयुक्त राष्ट्र में बहुत बड़ा वजन है, जिसका स्रोत उसकी भाषा, संस्कृति, व्यंजनों, कला इत्यादि है।

फ्रांस पहला देश था जिसके साथ भारत ने (1998 में) रणनीतिक साझेदारी स्थापित की। हमारे रक्षा संबंध 1950 से रहे हैं। फ्रांस उच्चस्तरीय रक्षा उपकरण की आपूर्ति करता रहा है, जिन्होंने अच्छी सेवा प्रदान की है। अब जबकि छः स्कॉर्पियन पनडुब्बियों और 36 राफेल विमानों के अनुबंध इन संबंधों को सशक्त बना रहे हैं, हल्के उपयोगी हेलिकाप्टरों, ईंधन भरने वाले विमान, संयुक्त विकास और छोटी दूरी के मिसाइलों का उत्पादन अब तक सफल नहीं हो पाया है।

यह कहा जा सकता है कि हमारी धीमी और हमेशा बदलती रहने वाली क्रय प्रक्रिया, रक्षा सौदों में भ्रष्टाचार के धब्बे और सबसे कम बोली लगाने वाले के पक्ष में यांत्रिक रूप से पक्षपाती निविदा की प्रक्रिया ने रणनीतिक संबंधों को विकसित करने हेतु रक्षा खरीद के निर्णयों को बाधित किया है।

पश्चिमी जगत पूँजीवादी रहा और विशेषतः अमेरिका से अभिप्रेरित रहा, जहाँ द्विदलीय शासन प्रणाली कायम है। इसके साथ ही पश्चिमी गुट के अव्वल दर्जे के राष्ट्र भी उदारवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुपालक रहे जिसमें स्वतंत्र संगठन अस्तित्वमान रहे। दूसरी तरफ सोवियत संघ स्वघोषित मार्क्सवादी लेनिनवादी राज्य रहा जहाँ कम्युनिस्ट पार्टी का शासन था। इसी पार्टी ने पूरे राज्य को अपने नियंत्रण में ले लिया। इसका प्रेस, सेना, अर्थव्यवस्था और अन्यान्य संगठनों पर दबदबा था। इस जमाने में खास बात यह थी कि दोनों महाशक्तियों ने कभी भी घोषित युद्ध नहीं लड़ा। लेकिन दोनों ही देशों की सैन्य तैयारी और सैन्य परिसज्जा चरम पर रही। ये कभी भी विश्व युद्ध के लिए तैयार रहते थे।

सोवियत संघ का पूरी तरह से ईस्टर्न ब्लॉक पर कब्जा था, जबकि अमेरिका ने हमेशा सोवियत संघ को चुनौती देने के प्रति अपनी रणनीति बनाने पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रखा था। इसके लिए इसने पूर्वी यूरोप को सैन्य एवं वित्तीय सहायता जारी रखा और इस तरह नाटो (NATO) – (नॉर्थ अटलांटिक ट्रीटी ऑर्गेनाइजेशन) सृजन किया गया। सोवियत संघ एवं अमेरिका का लैटिन अमेरिका पर वर्चस्व था और ये दोनों ही देश अफ्रीका एवं एशिया के उपनिवेश को समाप्त करने पर आमदा थे। सोवियत संघ ने हंगरियों के क्रांति को नेस्तनाबूद कर दिया। इनकी विस्तारवादी नीतियों ने क्षेत्र में और भी संकट पैदा किए। इनमें सुएज संकट (1956), बर्लिन संकट (1961) एवं क्यूबन मिसाइल का संकट (1962) अत्यंत प्रासंगिक रहे, क्योंकि प्रतिस्पर्धा के आवेश में दोनों ही देश इन संकटों के कारण नाभिकीय युद्ध के कगार पर खड़े हो गए। ये द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एवं शीतयुद्ध के दौरान की राजनीतिक व्यवस्था रही।

इसी बीच अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति की पहल ने अपना जड़ जमाना शुरू किया। इससे संबंधित कई आंदोलनों ने दुनियाँ के नागरिकों के मध्य अपनी पैठ बनानी शुरू की। शांति की पहल सबसे पहले जापान में सन् 1954 में शुरू हुई, जब वहाँ लोग नाभिकीय युद्ध के बारे में सोचते रहते थे। क्यूबन मिसाइल संकट के अस्तित्वमान होने की वजह से एक नये युग की शुरुआत हुई जो सोवियत संघ और चीन के बीच संबंधों में दरार की साक्षी बना। सन् 1968 में सोवियत संघ ने चेकोस्लोवाकिया में प्राग स्प्रिंग उदारीकरण के कार्यक्रम को कुचल दिया, जबकि वियतनाम युद्ध (1955-1975) के खिलाफ विद्रोह को अमेरिका ने महसूस किया। उसे यह भी लगा कि नागरिकों में युद्ध के खिलाफ आक्रोश उबल रहा है। इसकी अंतिम परिणति वियतनाम में अमेरिका समर्थित लोकतंत्र से हुई। सन् 1970 में अमेरिका ने चीन के साथ वार्ताएँ करनी शुरू कर दी और रणनीतिक तरीके से हथियारों को सीमित करने की दिशा में काम करना शुरू कर दिया। ये सारी कवायदें सोवियत संघ का मुकाबला करने के प्रति केन्द्रित रही।

सन् 1979 में सोवियत संघ और अफगानियों में युद्ध का दौर चला जो नौ वर्षों तक अनवरत जारी रहा। मुजाहिदीनों और माओवादी समूहों ने सोवियत संघ की सेना के खिलाफ लोहा लिया। जबकि अफगानिस्तान सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में युद्ध की स्थिति पर निगरानी बनाए रखा। मुजाहिदीनों का साथ अमेरिका ने दिया। इनके साथ सऊदी अरब एवं पाकिस्तान भी शामिल थे। इस शीत एवं छद्म युद्ध के दौरान लगभग 5,62,000 से 2,000,000 नागरिक मार डाले गए। कई करोड़ अफगानियों ने शरणार्थी के रूप में देश को छोड़ दिया। इन लोगों ने पाकिस्तान और ईरान में शरण ली। पाकिस्तान को अमेरिका से कई टन हथियार एवं बारूद सामग्रियाँ मिली ताकि वो इन हथियारों को मुजाहिदीनों को सौंप दें। यही से तालिबानों का अभ्युदय हुआ। बड़े पैमाने पर हथियारों को पाकिस्तान के द्वारा पाक अधिकृत कश्मीर की सीमाओं पर उग्रवादी संगठनों को बाँट दिए गए, जो भारत के कश्मीर में तबाही फैलाने के लिए भेजे गए।⁷

अमेरिका ने चूँकि अफगानिस्तान के खिलाफ लड़ने के लिए कमर कस रखी थी। इसीलिए कुछ विद्वान एवं पत्रकार यह तर्क देते रहे कि ओसामा-बिन लादेन का अलकायदा समूह और अफगानिस्तान की तालिबानी सरकार वाकई में अमेरिकी नीतियों की उपज है। एक आमतौर पर अनुभूति भी इन हलकों में कायम है कि अमेरिका ही ओसामा बिन लादेन का प्रशिक्षण देता रहा और तालिबानों के लिए भी वही जिम्मेदार है। उदाहरण के लिए, जैफरी सोमर जॉर्जिया यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर रहे हैं। इन्होंने आरोप लगाया कि तालिबानों का झुकाव अमेरिका के तरफ है। अरिजोना यूनिवर्सिटी में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर डेविड गिब्स ने भी इसी प्रकार की टिप्पणी की। मिडिल ईस्ट में चर्चित पत्रिका 'दी इंडिपेंडेंट' के संवाददाता रॉबर्ट फिस्क ने लिखा कि "सी0 आई0 ए0 के शिविरों में अमेरिकीयों ने ओसामा बिन लादेन के गुरिल्ला साथियों को प्रशिक्षित किया था।" एसोसियेटेड प्रेस के लेखक मोर्ट रोसेन्ब्लम ने घोषणा किया कि "ओसामा बिन लादेन सोवियत संघ से नफरत करने वाला लड़ाका है।"

अमेरिका का कूटनीतिक, सैन्य एवं आर्थिक दबाव सोवियत संघ पर बढ़ता ही गया। यह दबाव ऐसे समय में पड़ा, जब कम्युनिस्ट पार्टी आर्थिक संत्रास झेल रही थी। सन् 1980 के मध्य में नये सोवियत नेता मिखाइल गोर्बाच्योव ने पेरैस्ट्रोईका को उदारवादी सुधारों के अंतर्गत प्रस्तुत किया। इसके साथ ही साथ 'ग्लासनोस्ट' भी प्रस्तुत किए गए। इसी के साथ अफगानिस्तान में सोवियत संघ की संलिप्तता भी समाप्त हो गई। इसके अतिरिक्त पूर्वी यूरोप, खासतौर पर पोलैण्ड में, राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए दबाव भी बढ़ता गया। गोर्बाच्योव ने वारसा संधि के समर्थन में सोवियत संघ की सैन्य टुकड़ियों को वहाँ भेजने से इन्कार कर दिया। इसका परिणाम यह रहा कि सन् 1989 में एक क्रांति की लहर देखने को मिली क्योंकि शांतिपूर्ण ढंग से केन्द्रीय एवं पूर्वी यूरोप में कम्युनिस्ट शासन के पैर उखड़ गए। इनका पूरी तरह से सफाया हो गया। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का पूरा नियंत्रण समाप्त हो गया। परिणामतः सोवियत संघ पूरी तरह से बिखर गया। इसके साथ ही साथ अन्य देशों – मंगोलिया, कंबोडिया और दक्षिण यमन में भी कम्युनिस्ट शासन का सफाया हो गया। अमेरिका विश्व की पहली और एकमात्र महाशक्ति के रूप में बना रहा। इसी बीच रूस और अमेरिका के बीच नया तनाव पैदा हो गया। इस घटनाक्रम को द्वितीय विश्व युद्ध के साथ जोड़ा गया।

सन् 2002 में अमेरिका के नये राष्ट्रपति श्री जॉर्ज0 डब्ल्यू0 बुश ने स्पष्ट किया कि हमारे सामने ईराक को निहत्था करना पहली प्राथमिकता है क्योंकि इराक भारी मात्रा में विनाशक हथियारों के जखीरे को एकत्र कर रहा है तथा इसका निरंतर सहयोग अलकायदा को मिल रहा है। ध्यातव्य है कि यह वही अलकायदा है जिसने 11 सितंबर के हमले को प्रायोजित किए थे। संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव 1441, जो कि 8 नवंबर, 2002 में पारित किए गए थे, में माँग की गई थी ईराक को सारे पूर्व प्रस्तावों पर अमल करना चाहिए। ईराक इन प्रस्तावों को अमल में लाता हुआ प्रतीत भी हुआ। लेकिन सन्

2003 में अमेरिकी राष्ट्रपति श्री बुश और इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री श्री टोनी ब्लेयर ने घोषणा की कि ईराक लगातार संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा निरीक्षण को नजर अंदाज कर रहा है क्योंकि इसके पास भारी मात्रा में हथियार हैं। विश्व के अन्य नेता फ्रांस के राष्ट्रपति श्री जेक्स चिराक और जर्मनी के चांसलर गेरहार्ड शोडर ऐसे ही रहे जिन्होंने माना कि ईराक के प्रति सहयोग में अभिवृद्धि होनी चाहिए और इसीलिए निरीक्षण की अवधि को बढ़ाना चाहिए तथा ईराक को अमल करने के लिए और भी समय देना चाहिए। बहरहाल 17 मार्च, को बुश प्रशासन ने सद्दाम को अल्टीमेटम दे ही दिया। ईराक के राष्ट्रपति श्री सद्दाम हुसैन को 48 घंटे की मोहलत दी गई कि वो यथाशीघ्र ईराक को छोड़ दें।

संदर्भ

- ¹ <http://www.theweek.in/theweek/more/2018/10/05/india-must-shed-its-strategic-ambivalence-in-the-multipolar-world.html>
- ² <http://www.theweek.in/theweek/more/2018/10/05/india-must-shed-its-strategic-ambivalence-in-the-multipolar-world.html>
- ³ <http://eng.globalaffairs.ru/pubcol/A-new-world-order-A-view-from-Russia-19782>
- ⁴ <http://eng.globalaffairs.ru/pubcol/A-new-world-order-A-view-from-Russia-19782>
- ⁵ <https://thediplomat.com/2017/12/grading-indias-neighborhood-diplomacy/>
- ⁶ “Modi set to travel 60,000 km in 30 days”. The Hindu. 16 October 2017
- ⁷ Mikhail Sergeyevich Gorbachev is a Russian and formerly Soviet politician. The eighth and last leader of the Soviet Union, he was General Secretary of its governing Communist Party from 1985 until 1991. He was the country's head of state from 1988 until 1991, serving as Chairman of the Presidium of the Supreme Soviet from 1988 to 1989, Chairman of the Supreme Soviet from 1989 to 1990, and President of the Soviet Union from 1990 to 1991. Ideologically, he initially adhered to Marxism-Leninism although by the early 1990s had moved toward social democracy.

जैनधर्म में प्रतिमा निर्माण, उद्भव एवं विकास

रवींद्र सिंह

शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ०प्र०)

भारतीय कला के विकास में जैन धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस धर्म में मोक्ष का परम साधन कर्म का क्षय माना गया है।¹ धर्म के नियम और सिद्धांतों का ज्ञान-सम्यक ज्ञान-उच्च ज्ञान प्राप्त करके उसे व्यवहार में लाने को सम्यक चरित्र कहते हैं। इस मार्ग में अनुभव सिद्ध-ज्ञान प्राप्त करने वाले चौबीस तीर्थंकर हुये हैं, जिन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष द्वारा 'जिन' पद प्राप्त किया है और तीर्थंकर कहलाये हैं।

तीर्थ शब्द का शाब्दिक अर्थ नदी या नाला है अर्थात् जो संसार रूपी नदी को पार कर ले, तीर्थंकर हैं। जैन धर्म ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करता, वह यह नहीं मानता कि कोई ऐसा ईश्वर है, जिसने संसार की रचना की मनुष्य स्वयमेव अपने दुःख-सुख के लिए उत्तरदायी होता है।² इस धर्म से केवल आध्यात्मिक उपलब्धि करने वाले तीर्थंकरों की प्रतिष्ठा है। वे महापुरुष हैं, जिन्होंने अपने आध्यात्मिक उपलब्धियों से संसार-सागर को पार कर लिया है; उन महापुरुषों की स्मृति व उनसे प्रेरणा लेने के लिये जैन धर्मा में उनकी प्रतिमाएँ निर्मित की जाती हैं। इस प्रकार जैन-प्रतिमाओं का अविर्भाव जैनों के तीर्थंकरों से होता है। इस सम्बन्ध में श्री द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल ने बतलाया है-तीर्थंकरों की प्रतिमाओं का प्रयोजन जिज्ञासु जैनों में न केवल तीर्थंकरों के पावन जीवन; धर्म-प्रचार और कैवल्य प्राप्ति की स्मृति ही दिलाना था; वरन् तीर्थंकरों के द्वारा प्रवर्तित पथ के पथिक बनने की प्रेरणा भी थी।³

जैन तीर्थंकर वीतराग कहलाते हैं, इसीलिये उनकी प्रतिमाएँ ध्यानस्थ रूप में नग्न शरीर से पद्मासन में स्थित होती हैं। उनके सिर पर बालों का गुच्छ और छाती पर श्रीवत्स का चिह्न होता है। श्वेताम्बर प्रतिमाओं में तीर्थंकर को कच्छ पहने हुए दिखाया जाता है। तीर्थंकरों की दूसरे प्रकार की प्रतिमाएँ तप का भाव व्यक्त करती हुयी कायोत्सर्ग मुद्रा में होती हैं। वृहत्संहिता में बतलाया गया है कि घुटने तक लटकते हुए हाथ, छाती में श्रीवत्स का चिह्न, तरुण, सुन्दर, प्रशान्त अर्हत देव की प्रतिमा सौम्य, शान्त, ध्यानस्थ निर्मित होनी चाहिए। श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय में निर्मित तीर्थंकर प्रतिमाओं में कुछ भिन्नता होती है। दिगम्बर सम्प्रदाय में प्रतिमा पूर्णतः नग्न होती है। और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में वस्त्र होता है; उसमें गुह्य भाग नहीं दिखाया जाता। 'जिन' प्रतिमा का बैठा हुआ स्वरूप सभी तीर्थंकर प्रतिमाओं में एक समान होता है, केवल उसकी पीठिका पर निर्मित लाक्षणिकों से उस तीर्थंकर प्रतिमा की पहचान की जाती है।

जैन प्रतिमा-कला की पृष्ठभूमि का अध्ययन करते समय यह जानना आवश्यक है कि जैनों ने पिछली शताब्दियों में देश भर में मूर्तिकला और सापत्य की किन विद्याओं का सृजन किया है। इन क्षेत्रों में जैनो का योगदान भारतीय परम्परा का एक अभिन्न अंग है।

लाक्षणिक कलाओं को लें तो, जैन भंडारों में बहुत अधिक मात्रा में संग्रहीत पाण्डुलिपियाँ प्राप्त होती हैं। पश्चिम भारत में और थोड़ी-बहुत मात्रा में दक्षिण भारत में इन पाण्डुलिपियों पर सूक्ष्म चित्रकारी की गयी है। दक्षिण भारत की कुछ गुफाओं में चित्र बनाये गये हैं। मेरु, नंदीश्वरद्वीप, समवसरण, मानस्तंभ, चौत्य-वृक्ष, स्तूप आदि का चित्रण किया गया है। जैनो ने कई गुफाओं का भी निर्माण किया है।

भारतीय मूर्तियों में हमें अत्यन्त साधारण से लेकर अत्यन्त कलात्मक, अलंकार विहीन से लेकर अलंकृत तथा गंभीर से लेकर रौद्ररूप वाली ऐसी प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं जो अपने समय की सामाजिक-धार्मिक भावना तथा समृद्ध समाज का प्रतिबिम्ब कराती हैं। तीर्थंकर आध्यात्मिक आदर्श रहे हैं। उनके महान गुणों को मूर्तरूप देने और उनमें भक्ति प्रकट करने, उनकी अराधना करने और उनके गुणों को अपने में विकसित करने हेतु जिनों की मूर्तियाँ निर्मित करना सरल ही था। कालांतर में यह सादगीपूर्ण प्रतिमा-पूजन अराधक के साधनों के अनुसार अत्यंत जटिल होता गया। ये प्रतिमाएँ विभिन्न तीर्थंकरों, सिद्धों यहाँ तक की आचार्यों, चौबीस तीर्थंकरों या पंच परमेष्ठियों या नवदेवताओं या नंदीश्वर की हैं। इनके अतिरिक्त धर्मचक्र, अष्टमंगल, आयागपट्ट के प्रतीकात्मक बिम्ब भी प्राप्त होते हैं। तीर्थंकरों की मूर्तियों में सबसे अधिक प्रतिमाएँ ऋषभनाथ, पार्श्वनाथ, शांतिनाथ, नेमिनाथ, चंद्रप्रभ और महावीर की होती हैं। सातवीं-आठवीं शताब्दी में इनके अलग-अलग चिह्न निर्धारित किये गये। ऋषभनाथ का चिह्न वृषभ, नेमिनाथ का शंख और महावीर का सिंह आदि। तीर्थंकर प्रतिमा, चाहें वे कायोत्सर्ग मुद्रा में हों या पद्मासन, दोनों ही रूपों में ये मूर्तियाँ ध्यानावस्था में पायी जाती हैं। वे वीतराग मुद्रा में होती हैं और उनकी भाव-भंगिमा से शांत रस झलकता है।

भारतीय कला विशेषकर प्रतिमाकला को पूर्ण रूप से समझने के लिए इस देश की धार्मिक भावना एवं तदनुरूप धार्मिक संस्थाओं, सम्प्रदायों, परम्पराओं एवं अन्यान्य विभिन्न उपचेतनाओं को समझना आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य है। प्रतिमा कला के प्रतिपादन में हम दो प्रधान दृष्टिकोणों का अवलम्बन करते हैं-एक धार्मिक दृष्टिकोण (प्रतिमा पूजन के परम्परा) तथा दूसरा स्थापत्य दृष्टिकोण (प्रतिमा निर्माण कला)।

यदि हड़प्पा की मूर्तियों को छोड़ दें तो महावीर से पूर्व तीर्थंकर मूर्तियों के अस्तित्व का कोई भी साहित्यिक या पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। जैनग्रन्थों में महावीर की यात्रा के सन्दर्भ में उनके किसी जैन मन्दिर जाने या जिन् मूर्ति के पूजन का अनुल्लेख है इसके विपरीत यक्ष-आयतनों एवं यक्ष-चौत्यों (पूर्णभद्र और मणिभद्र) में उनके विश्राम करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।⁴ भारतीय शिल्प में तीर्थंकर प्रतिमाएँ मौर्यकाल से प्राप्त होकर मध्ययुग तक निर्बाध रूप से मिलती हैं। ऐसी अनेक प्रतिमाएँ मथुरा, लखनऊ, इलाहाबाद, भारत कला भवन, सारनाथ, भरतपुर, कोटा, उदयपुर, अजमेर, बीकानेर, जयपुर, बड़ौदा, नागपुर,

पटना, भुवनेश्वर, कलकत्ता, मुम्बई, खजुराहो, श्रीनगर आदि के संग्रहालयों में तथा देवगढ़, कुमायूँ, खजुराहो, राजगीर, खण्डगिरि, उदयगिरि, ग्वालियर, दीनाजपुर, विदिशा, बादामी, एलोरा आदि स्थानों पर दर्शनीय हैं। ये प्रतिमाएँ तीन प्रकार की हैं—कायोत्सर्ग, असनस्थ तथा सर्वतोभद्रिका।

जैन धर्म में प्रतिमा पूजा से सम्बन्धित प्राचीनतम महत्वपूर्ण उल्लेख महावीर के जीवन काल में उनकी मूर्ति की निर्माण का उल्लेख है। साहित्यिक परम्परा से ज्ञात होता है कि महावीर के जीवनकाल में ही उनकी चन्दन की एक प्रतिमा का निर्माण किया गया था। इस मूर्ति में महावीर को दीक्षा लेने के लगभग एक वर्ष पूर्व राजकुमार के रूप में अपने महल में ही तपस्या करते हुए अंकित किया गया है। चूँकि यह प्रतिमा महावीर के जीवनकाल में ही निर्मित हुई, अतः उसे 'जीवन्त-स्वामी' अथवा 'जीवितस्वामी' संज्ञा दी गयी। साहित्य एवं शिल्प दोनों ही ने जीवन्त-स्वामी को मुकुट मेखला आदि अलंकरणों से युक्त एक राजकुमार के रूप में निरूपित किया है। महावीर के समय के पश्चात् की भी ऐसी मूर्तियों के लिए 'जीवन्तस्वामी' शब्द का ही प्रयोग होता रहा है।

जीवन्तस्वामी प्रतिमाओं को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय उमाकांत प्रेमानंद शाह को है। साहित्यिक परम्परा को विश्वसनीय मानते हुए शाह ने महावीर के जीवन काल से ही जीवन्तस्वामी मूर्ति की परम्परा को स्वीकार किया है।⁶ उन्होंने अकोटा (गुजरात) से प्राप्त जीवन्तस्वामी की दो गुप्त युगीन कांस्य प्रतिमाओं का भी उल्लेख किया है।⁷ इन प्रतिमाओं में जीवन्तस्वामी को कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ा और वस्त्राभूषणों से सज्जित दर्शाया गया है। प्रथम प्रतिमा लगभग पाँचवीं शती ई० की है और दूसरी लेखयुक्त मूर्ति लगभग छठी शती ई० की है। दूसरी मूर्ति के लेख में 'जिवंतसामी' उत्कीर्ण है।⁸

जैन धर्म मूर्ति-निर्माण एवं पूजन की प्राचीनता के निर्धारण हेतु जीवन्तस्वामी मूर्ति की परम्परा की प्राचीनता का निर्धारण अपेक्षित है। आगम साहित्य एवं कल्पसूत्र जैसे प्रारम्भिक ग्रन्थों में जीवन्तस्वामी प्रतिमा का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। इस मूर्ति के प्राचीनतम उल्लेख आगम ग्रन्थों से सम्बन्धित छठी ई० के पश्चात् की उत्तरकालीन रचनाओं, यथा-निर्युक्तियों, टीकाओं, भाष्यों, चूर्णियों आदि में ही प्राप्त होते हैं।⁹ इन ग्रन्थों के कोसल, उज्जैन, दशपुर (मंदसौर), विदिशा, पुरी, एवं वीतभयपट्टन में इन मूर्तियों की विद्यमानता की सूचना प्राप्त होती है।¹⁰

जीवन्तस्वामी मूर्ति का उल्लेख सर्वप्रथम वाचक संघदासगणि कृत 'वसुदेवहिण्डी' (लगभग 610 ई०)¹¹ में प्राप्त होता है। ग्रन्थ में 'आर्या सुव्रता' नाम का एक गणिनी के जीवन्तस्वामी प्रतिमा के पूजनार्थ उज्जैन जाने का उल्लेख है।¹²

जिनदास कृत आवश्यक चूर्ण (676 ई०) में जीवन्तस्वामी की प्रथम प्रतिमा की कथा प्राप्त होती है। इसमें अच्युत इन्द्र द्वारा पूर्वजन्म के मित्र विद्युन्माली को महावीर की मूर्ति के पूजन की सलाह देने, विद्युन्माली के गोशीर्ष चन्दन की मूर्ति बनाने एवं प्रतिष्ठित करने, विद्युन्माली के पास के एक वणिक के हाथ लगने, कालान्तर में महावीर के समकालीन सिन्धु सौवीर में वीतभयपत्तन के शासक उद्यन एवं उसकी रानी प्रभावती द्वारा उसी प्रतिमा को वणिक से प्राप्त करने एवं रानी प्रभावती द्वारा मूर्ति को भक्ति भाव से पूजा करने का उल्लेख है। यही कथा हरिभद्रसूरि की आवश्यकवृत्ति में भी वर्णित है। ऐसा ही वर्णन हेमचन्द्र (1169-72 ई०) ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र¹³ में कुछ नवीन तथ्यों के साथ किया है। पाँचवीं-छठवीं शती ई० के पूर्व जीवन्तस्वामी के सम्बन्ध में किसी प्रकार की ऐतिहासिक सूचना प्राप्त नहीं होती है। वर्तमान स्थिति में जीवन्तस्वामी मूर्ति की धारणा का महावीर के समय तक ले जाने का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।

दूसरी-पहली शती ई० पू० की जैन गुफाएं उदयगिरि-खण्डगिरि (उड़ीसा) से प्राप्त होती हैं। उदयगिरि की हाथी गुफा में खारवेल का लगभग पहली शती ई० पू० का लेख उत्कीर्ण है। यह लेख अरहंतों एवं सिद्धों को नमस्कार से प्रारम्भ होता है। लेखानुसार खारवेल ने अपनी रानी के साथ कुमारी (उदयगिरि) स्थित अर्हंतों को स्मारक अवशेषों पर जैन साधुओं को नन्दराज 'तिवससत' वर्ष पूर्व कलिंग से मगध ले गया था, उसे खारवेल पुनः वापस ले आया। 'तिवससत' शब्द का अर्थ अधिकांश विद्वान 300 वर्ष मानते हैं। इन लेख के आधार पर जिन मूर्तियों की प्राचीनता लगभग चौथी शती ई० पू० तक जाती है। शुंग काल की एक तीर्थक धड़ राज्य संग्रहालय, पटना में सुरक्षित है। एक अन्य शुंगकालीन पार्श्वनाथ की कस्य प्रतिमा शिवाजी संग्रहालय, मुम्बई में सुरक्षित है।

दूसरी शती ई० पू० के मध्य में जैन प्रतिमा-कला को प्रथम पूर्ण अभिव्यक्ति मथुरा में मिली। शुंग युग से मध्य युग (1023 ई०) तक की जैन मूर्ति सम्पदा का वैविध्यपूर्ण भण्डार प्राप्त होता है, जिसमें जैन प्रतिमा-कला के विकास की प्रारम्भिक अवस्थाएं प्राप्त होती हैं। जैन परम्परा में मथुरा की प्राचीनता सुपाश्वर्नाथ के समय तक प्रतिपादित की गयी है, जहाँ कुमार देवी ने सुपाश्वर्नाथ के समय में स्तूप बनवाया था। विविधतीर्थकल्प (14वीं शती ई०) में उल्लेख है कि पार्श्वनाथ के समय में सुपाश्वर् के स्तूप का विस्तार और पुनरुद्धार हुआ था। बप्पभट्टिसूरि ने विक्रम संवत् 826 (769 ई०) में पुनः उसका जीर्णोद्धार करवाया। इस परवर्ती साहित्यिक परम्परा की एक कुषाणकालीन तीर्थकर मूर्ति से पुष्टि होती है, जिसकी पीठिका पर यह लेख उत्कीर्ण है। 167 ई० कि यह मूर्ति देवनिर्मित स्तूप में सापित की गयी।

मथुरा में तीनों प्रमुख धर्मों जैन, बौद्ध एवं ब्राह्मण में अराध्य देवों के मूर्त अंकों के मूल में भक्ति आन्दोलन ही था। जिन मूर्ति का निर्माण मौर्य युग में ही प्रारम्भ हो चुका था, किन्तु इनके निर्माण की क्रमबद्ध परम्परा मथुरा में शुंग-कुषाणयुग से प्रारम्भ हुई। यह कहा जा सकता है कि जैन धर्म में मूर्ति पूजा का प्रारम्भ जैन धर्म की जन्म सिली बिहार में न होकर भक्ति की जन्म स्थली मथुरा में हुआ।

कुषाण युग में मथुरा में प्रचुर संख्या में जैन मूर्तियों का निर्माण हुआ और जैन प्रतिमा-विज्ञान की कई विशेषताओं का सर्वप्रथम निरूपण एवं निर्धारण हुआ। जिनमें ऋषभ, महावीर के जीवन-दृश्य, चौमुखी, नैगमेषी, सरस्वती आदि प्रमुख हैं। जैन प्रतिमा-कला अथवा स्थापत्य के पृष्ठभूमि के मथुरा के शासक वर्ग, व्यापारियों एवं सामान्य जनो का समर्थन रहा है। एक लेख में ग्रामिक जयनाग की पत्नी 'सिंहदत्ता' के द्वारा एक आयागपट्ट दान करते का उल्लेख है। एक अन्य लेख में शिवमित्र द्वारा जैन मूर्ति निर्माण का वर्णन है। कतिपय जैन प्रतिमा लेखों में ब्राह्मणों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। मथुरा के लेखों से जैन मूर्ति निर्माण में स्त्रियों के योगदान का भी ज्ञान होता है। जैन लेखों में 'अकका', 'ओघा' 'ओखरिका' और 'उझटिका' जैसे स्त्री नाम विदेशी मूल के प्रतीत होते हैं।

पहली-दूसरी शती ई० के सोन भण्डार गुफा (राजगीर) के एक लेख में मुनि वैरदेव (श्वेताम्बर आचार्य, 57 ई०) द्वारा जैन मुनियों के निवास के लिए गुफाओं के निर्माण का उल्लेख है, जिसमें तीर्थकर मूर्तियाँ भी सापित की गयीं।¹⁴ दूसरी शती ई० के अन्त तक में कुषाणों के पतन के उपरान्त मथुरा के राजनीतिक मंच पर शक्तिशाली नागवंश का उदय हुआ। अन्य दूसरी क्षेत्रीय शक्तियों का भी उदय हुआ। भिन्न राजनीतिक मानचित्र एवं परिस्थितियों में व्यापार

शिथिल पड़ गया। पूर्व की तुलना में इस युग की कलावशेषों में तीर्थंकर या अन्य जैन प्रतिमाएं बहुत कम हैं तथा तीर्थंकरों के जीवन-दृश्यों, नैगमेषी एवं सरस्वती के अंकनों का पूर्ण अभाव है, जो जैन प्रतिमा निर्माण की क्षीणता का द्योतक है। चौथी शती ई० के प्रारम्भ या कुछ पूर्व आर्य 'स्कन्दिल' के नेतृत्व में मथुरा में द्वितीय वाचन सम्पन्न हुई जिसमें आगम साहित्यों का संकलन किया गया था।

गुप्त शासक मुख्यतः ब्राह्मण धर्मावलम्बी थे फिर भी अन्य धर्मों के प्रति उदार थे। अभिलेख एवं साहित्यिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इस युग में अन्य धर्मों की अपेक्षा जैन धर्म की उन्नति कम हुई। फाह्यान के यात्रा-विवरण में भी जैन धर्म का अनुल्लेख है। रामगुप्त (?) के अतिरिक्त अन्य किसी भी गुप्त शासक द्वारा जैन मूर्ति निर्माण का उल्लेख नहीं मिलता है। विदिशा से प्राप्त लगभग चौथी शती ई० की तीन जिन् प्रतिमाओं में से दो पीठिका लेखों में 'महाराजधिराज श्री रामगुप्त' द्वारा उन मूर्तियों को निर्माण कराने का उल्लेख है। गुप्त संवत् तिथियों वाली कुछ मूर्तियाँ चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम एवं स्कन्दगुप्त के समय की प्राप्त हैं।

कई अन्य शीलों से भी गुप्तकालीन जैन मूर्तियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। बन्दरगाहों के कारण गुजरात व्यापारियों का प्रमुख कार्य क्षेत्र हो गया था। गुप्त युग में ही लगभग पांचवी शती ई० के प्रारम्भ में 'वलभी' में तीसरा और अन्तिम वाचन सम्पन्न हुआ जिसमें सभी उपलब्ध जैन ग्रन्थों को लिपिबद्ध किया गया।¹⁵ अकोटा एवं वल्भी नामक सिलों से गुप्त युगीन जैन प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। गुप्त युग से निरंतर बारहवीं ई० तक राजगिरि (वैभार पहाड़ी और सोनभण्डार गुफा) में जैन-प्रतिमाओं का निर्माण होता रहा।

संदर्भ

- 1 Shah, U.P.; Jain Contribution to Indian Art, डॉ० राजबली पाण्डेय स्मृति ग्रन्थ, पृ० 297
- 2 Jain, J.R.; Outlines of Jainism, pp. 1-6
- 3 प्र० वि०य पृ० 313
- 4 शाह, यू० पी० 'बिगनिग्स ऑफ जैन आइकोग्राफी', अं० 9, पृ० 2.
- 5 Kal, R.C., 'Handbook of the Archaeological and Numismatic Section of Shri Pratap Sing Museum, Calcutta, 1923, Fig. p. 76.
- 6 शाह. यू० पी०, 'जीवन्त-स्वामी', जैन सत्य प्रकाश, वर्ष 17, अं० 5-6, पृ० 104.
- 7 तर्थव, 'ए युनीक जैन इमेज ऑव जीवन्त स्वामी', जर्नल ऑफ दि ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट ऑफ बड़ोदा खं० 1, पृ० 79.
- 8 तथैव, 'अकोटा ब्रोन्जेज', पृ० 26-28, फलक 9ए, बी, 12ए.
- 9 जैन हीरालाल, 'भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान', भोपाल, 1962, पृ० 72.
- 10 जैन, जे० सी०, 'लाइफ इन ऐन्शट स्वामी', जैन कैन्स', बम्बई, 1947, पृ० 252, 300-325.
- 11 शाह, यू० पी०, 'श्री जीवन्त इण्डिया, एज डेपिक्टेड इन दि', जैन सत्य प्रकाश, वर्ष, 17, अं० 5-6. पृ० 98.
- 12 संघदासगणि, 'वसुदेवहिण्डी', खं० भाग 1, पृ० 61.
- 13 हेमचन्द्र, 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र', पर्व 10, सर्ग 11.
- 14 आर्किथोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट 1905-06, पृ० 98, 166.
- 15 विण्टरनिज, एम०, 'ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर', खं० 2, कलकत्ता, 1933, पृ० 432.

गुप्त काल का संक्षिप्त परिचय

डॉ० कविता सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, का0सु0 साकेत पी0जीव कालेज, अयोध्या

अजय कुमार सिंह

शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग, का0सु0 साकेत पी0जीव कालेज, अयोध्या

गुप्त काल को स्वर्ण युग, क्लासिकल युग एवं पैरीक्लीन युग कहा जाता है। अपनी जिन विशेषताओं के कारण गुप्तकाल को 'स्वर्णकाल' कहा जाता है, वे इस प्रकार हैं—साहित्य, विज्ञान, एवं कला के उत्कर्ष का काल, भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार का काल, धार्मिक सहिष्णुता एवं आर्थिक समृद्धि का काल,¹ श्रेष्ठ शासन व्यवस्था एवं महान सम्राटों के उदय का काल एवं राजनीतिक एकता का काल, इन समस्त विशेषताओं के साथ ही हम गुप्त को स्वर्णकाल, क्लासिकल युग एवं पैरीक्लीन युग कहते हैं। कुछ विद्वानों जैसे आर. एस. शर्मा, डी.डी. कौशम्बी एवं डॉ. रोमिला थापर गुप्त के 'स्वर्ण युग' की संकल्पना को निराधार सिद्ध करते हैं क्योंकि उनके अनुसार यह काल सामन्तवाद की उन्नति, नगरों के पतन, व्यापार एवं वाणिज्य के पतन तथा आर्थिक अवनति का काल था।

फाहियान एक चीनी यात्री था। इन्हें चीन के बौद्ध विक्षु के नाम से भी जाना जाता है। 402 ई0 में इनकी भारत की तीर्थ यात्रा से भारत-चीन संबंधों की शुरुआत हुई। इनके लेखों से प्रारम्भिक बौद्ध धर्म के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। फाहियान का दुहरा ऐतिहासिक महत्व है। एक तरफ उनकी यात्रा के प्रसिद्ध विवरण फो-कुओची (बौद्ध साम्राज्यों का रिकार्ड) में प्रारम्भिक शताब्दियों के दौरान भारतीय बौद्ध धर्म के बारे में ऐसी बहुमूल्य जानकारी है, जो अन्य कहीं नहीं मिलती। फाहियान के विस्तृत विवरण से उस काल के बौद्ध भारत का पता चलता है, जब हिंदुओं के सुधारों का प्रभाव नहीं पड़ा था और मुसलमानों के आक्रमण नहीं हुए थे दूसरी तरफ, उन्होंने बौद्ध धर्म ग्रन्थों का उत्तम ज्ञान उपलब्ध कराकर चीन में बौद्ध धर्म को सशक्त बनाया।

भारत में दस वर्ष तक अध्ययन के बादवह बौद्ध ग्रंथों की काफी प्रतियां चीन लाया और उनका संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद किया। इनमें से दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे—महापरिनिर्वाण-सूत्र, निर्वाण के शाश्वत, निजी और शुद्ध प्रकार के महिमामंडन का ग्रंथ, जिस पर चीन में निर्वाण मन ने अपना सिद्धांत तैयार किया और महासंघिका मत के विनय (भिक्षुओं के अनुशासन नियम), जो चीन में असंख्य मठ समुदायों के विनियमन के लिए उपलब्ध हुए।

चन्द्रगुप्त (प्रथम) -

चन्द्रगुप्त (प्रथम) घटोत्कच्छ के पुत्र और गुप्तवंश के क्रम में तीसरे राजा थे। वास्तविक अर्थों में इन्हें ही साम्राज्य का संस्थापक कहना चाहिये। जैसा कि पहले कहा गया है, वे 319 ई0 में सत्तारूढ़ हुए होंगे। अभिलेखों में इन्हें महाराजाधिराज कहा गया है, इस प्रकार उनकी उपाधि अपने पूर्वजों से बड़ी है और वह उनके सार्वभौम शासक होने का द्योतक है। उनकी रानी महादेवी कुमारदेवी ही पहली रानी है, जिनका उल्लेख वंश-सूचियों में हुआ है। वे लिच्छवि परिवार की थीं। प्रयाग प्रशस्ति में उनके पुत्र समुद्रगुप्त को लिच्छवि-दौहित्र कहा गया है और इस विरुद्ध का उल्लेख प्रायः सभी परवर्ती गुप्त अभिलेखों में हुआ है।

कुछ सोने के सिक्के ऐसे पाये जाते हैं जिन पर एक ओर चन्द्रगुप्त (प्रथम) अपनी रानी कुमार देवी के साथ आमने-सामने खड़े अंकित किये हैं और उन पर उन दोनों का नाम लिखा है। इन सिक्कों के दूसरी ओर सिंहवासिनी देवी का चित्रण है और लिच्छवयः अर्थात् लिच्छवि लोग अंकित हैं।

लिच्छवियों का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में वैशाली (आधुनिक बसाढ़, जिला मुजफ्फरपुर, बिहार) स्थित गणतन्त्र के रूप में बहुत मिलता है। ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी में वे मगध सम्राट के कांटे बने हुए थे। वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके ही बिम्बसार उन पर विजय पा सके और अजातशत्रु षडयन्त्र द्वारा ही उनकी शक्ति पंग करने में समर्थ हो पाये। लिच्छवियों के आक्रमणों को रोकने के लिए ही उन्हें पाटलिपुत्र में दुर्ग बनाना पड़ा था। किन्तु इस काल के पश्चात् उनके इतिहास के सम्बन्ध में कोई भी निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं होती। किन्तु जिस प्रकार समुद्रगुप्त के लिच्छविदौहित्र होने में गुप्तों ने अपना गौरव व्यक्त किया है और जिस ढंग से सिक्कों पर लिच्छवियों का नाम अंकित किया गया है, उनसे अनुमान होता है कि वे इस काल में भी काफी शक्तिशाली रहे होंगे और उनके साथ किये गये वैवाहिक सम्बन्ध का गुप्तों के राजनीतिक उत्थान में विशेष योग रहा होगा।

गुप्तों के उत्थान में लिच्छवियों का योग किस ढंग का था, इस सम्बन्ध में लोगों ने अनेक प्रकार की कल्पनाएं की हैं। जायसवाल की धारणा रही है कि गुप्तों ने लिच्छवियों की सहायता से किसी क्षत्रिय राजा से मगध का सिंहासन प्राप्त किया था। उनकी इस धारणा का आधार कौमुदी-महोत्सव नामक नाटक है, जिसे वे घटनाओं की समकालिक रचना मानते हैं। उन्होंने उक्त नाटक के पात्र चण्डसेन की पहचान चन्द्रगुप्त (प्रथम) से की है कि उन्होंने अपने पितामह

के नमा को वंश-नाम का रूप दिया। इस प्रकार के नाम परिवर्तन के समर्थन में उन्होंने वसन्तसेन और वसन्तदेव को उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो एक ही राजा के नाम थे। उन्होंने दहसेन का भी उल्लेख किया है जिनका नाम सिक्कों पर दहगण के रूप में मिलता है। उन्होंने यह भी कहा है कि चन्द्र का प्राकृत रूप चण्ड है। इसके समर्थन में उन्होंने सातवाहन नरेश चन्द्रसाति के अभिलेख का उल्लेख किया है जिसमें चन्द्र का रूप चाण्ड है। दशरथ शर्मा ने उनके इस मत का समर्थन करते हुए सातवाहन नरेश चण्डसाति के अभिलेखों और श्री चण्डसाति अंकित सिक्कों तथा क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी की ओर ध्यान आकृष्ट कराया है। इतिहास के चन्द्रगुप्त (प्रथम) और नाटक के चण्डसेन दोनों के लिच्छवियों के साथ घनिष्ठता की बात, जायसवाल की दृष्टि में, उक्त पहचान को पुष्ट करती है।

नाटक में सुन्दरवर्मन और कल्याणवर्मन कहा गया है। जायसवाल की कल्पना है कि यह वंश प्रयाग-प्रशस्ति में उल्लिखित कौतुहल है पाइरेस (ई०ए०) ने इस मत का खण्डन करते हुए कहा है कि सुन्दरवर्मन और कल्याणवर्मन मौखरि वंश के थे; मौखरिवंशीय राजाओं के समान उनके नाम वर्मान्त है। मगध मौखरियों का मूल स्थान था, इस कारण ही वे मगधकुल के कहे गये हैं। इस प्रसंग में उन्होंने मयूरदर्शन के चन्द्रवल्ली अभिलेख की ओर ध्यान आकृष्ट किया है जिसमें कदम्बों के समय अर्थात् चौथी शताब्दी ई० में मौखरियों के मगध पर शासन करने की बात कही गयी है। हमने अपने ज्ञानार्जन के प्रारम्भिक दिनों में यह मत व्यक्त किया था कि यह मगधकुल उत्तरवर्ती सातवाहन सम्राटों का था। उस समय हमने इस ओर इंगित किया था कि कौमुदी-महोत्सव में कल्याणवर्मन को कर्णिपुत्र कहा गया है, जिससे तात्पर्य सुन्दरवर्मन से है और कर्ण सातवाहन वंश के सुविख्यात नरेश सातकर्ण के नाम का लघु रूप है। चण्डसेन द्वारा राज्यपहरण किये जाने के बाद लोगों ने कल्याणवर्मन को किष्किन्धा स्थित पम्पासर भेज दिया। इस बात से यह अनुमान किया जा सकता है कि इस मगधकुल का सम्बन्ध सातवाहनों के देश से रहा होगा अर्थात् वह सातवाहन वंश का एक अंग होगा।

उस समय हमें भविष्योत्तर पुराण के कलियुगराज-वृत्तान्त से अपनी इस धारणा की पुष्टि होती जान पड़ी थी। इस वृत्तान्त में कहा गया है कि चन्द्रश्री नामक आन्ध्र नरेश मगध का शासक और घटोत्कच्छगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त (अर्थात् गुप्त वंश के प्रथम चन्द्रगुप्त) का, अपनी पत्नी के सम्बन्ध में रिश्तेदार था। दोनों की पत्नियां परस्पर बहन थीं और वे लिच्छविकुल की थीं। अपनी पत्नी के सम्बन्धियों अर्थात् लिच्छवियों की सहायता से चन्द्रगुप्त मगध-सेना का सेनापति नियुक्त किया गया था। पश्चात् अपनी साली (रानी) के उकसाने पर उसने राजा चन्द्रश्री का वध कर दिया। तदनन्तर स्वयं रानी से द्रोह कर उसके बेटे पुलोमा को मार डाला और आन्ध्रों को भगा कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इस ग्रन्थ में भी कहा गया है कि वाशिष्ठीपुत्र चन्द्रश्री सातकर्ण ने तीन वर्ष तक और उसके बेटे पुलोमा ने चन्द्रगुप्त के संरक्षण में सात वर्ष तक राज्य किया। इस प्रकार इस ग्रन्थ के कथनानुसार वाशिष्ठीपुत्र चन्द्रश्री सातकर्ण मगध के शासक थे और उनके पुलोमा नामक एक अल्प-वयस्क पुत्र था।

इस प्रकार कलियुगराज-वृत्तान्त और कौमुदी-महोत्सव की कथा में बहुत साम्य है- मगध के सिंहासन को वहां के राजा के एक सम्बन्धी ने, उसके अल्पवयस्क पुत्र ने कुछ काल तक राज्य किया तदनन्तर वह भी मार डाला गया। इन बातों को दृष्टि में रखते हुए कलियुगराज-वृत्तान्त के चन्द्रगुप्त, चन्द्रश्री और पुलोमा की पहचान कौमुदीमहोत्सव के चन्द्रसेन, चन्द्रश्री और पुलोमा से करना स्वाभाविक ही था।

किन्तु अब यह बात निस्संदिग्ध रूप से सिद्ध हो गयी है कि कलियुगराज-वृत्तान्त विशुद्ध कूट-ग्रन्थ है और कौमुदी-महोत्सव सातवीं शताब्दी ई० के मध्य से पूर्व की रचना नहीं है। इसलिए इन दोनों ही ग्रन्थों को गुप्त-इतिहास के लिए प्रमाणस्वरूप ग्रहण नहीं किया जा सकता। कौमुदी-महोत्सव समकालिक तो है ही नहीं, साथ ही अन्य विश्वसनीय सूत्रों से ज्ञात तथ्यों के विपरीत भी है।

जायसवाल के इस कथन से कि चण्डसेन नाम का चण्ड चन्द्रगुप्त के चन्द्र का प्राकृत रूप है, कोई भी सहमत नहीं हो सकता। संस्कृत का चन्द्र प्राकृत में चन्द्र होता है चण्ड नहीं। सामान्यतः पूर्ववर्ती र, द को ड में परिवर्तित करता है, उत्तरवर्ती र नहीं। जैन-प्राकृत (अर्धमागधी और जैन-महाराष्ट्री) में कभी-कभी चण्ड डूब हो जाता है पर वहां भण्ड नहीं होता। अर्धमागधी में भी चन्द्र का चन्द्र होता है चण्ड नहीं, और जैन-प्राकृत में चण्ड रूप अत्यन्त दुष्प्राप्य है। चन्द्र चण्ड नहीं हो सकता, इसका कारण स्पष्ट है कि पूर्ववर्ती न द का रूप परिवर्तन से रक्षा करता है। सातवाहन अभिलेखों और सिक्कों से दिये गये उदाहरण अत्यन्त सन्दिग्ध हैं। कोडवल्ली कूपअभिलेख में राजा के संस्कृत नाम का रूप वाशिष्ठीपुत्र चण्डस्वाति है चन्द्रस्वाति नहीं और यही रूप पुराणों में भी मिलता है। वायु, ब्राह्मण्ड और मत्स्यपुराण की एक आध और मत्स्य की एक प्रति में चन्द्रश्री है। रैप्सन ने कुछ सिक्कों पर निःसन्दिग्ध वाशिष्ठीपुत्र सिरि चण्डसातिस पढ़ा है; किन्तु जिस अक्षर को उन्होंने ड पढ़ा है। इन सिक्कों का अभिलेख भी चण्ड डी है इसी यप में कोडवल्ली कूप-अभिलेख का भी नाम पढ़ा जा सकता है।²

दशरथ शर्मा का कहना है कि क्षेमेन्द्र ने प्राकृत नाम चण्डसेन को चन्द्रसिंह कर दिया, सत्य प्रतीत नहीं होता। क्षेमेन्द्र के बृहत्कथा-मंजरी के निर्णयानुसार संस्करण में शशांकवती लम्बक में बैताल की आठवीं कहानी में ताम्रलिपि नरेश का नाम दो स्थलों पर निःसंदेह चन्द्रसिंह मिलता है (श्लोक 420 और 430)। उस स्थल पर सोमदेव के कथा-सरित्सागर में पाठ चण्डसेन है। किन्तु साथ ही यह भी द्रष्टव्य है कि बृहत्कथामंजरी में ही उसी कथा के अन्तर्गत उसी व्यक्ति का नाम अन्यत्र चण्डसेन लिखा है चन्द्रसिंह नहीं (श्लोक 446, 449); और यह इस बात का द्योतक है कि बृहत्कथामंजरी में भी नाम चण्डसेन ही है, चन्द्रसिंह अपपाठ है जो दो स्थलों तक ही सीमित है।

कौमुदी-महोत्सव में ही हमें चन्द्र का प्राकृत रूप चन्द्र मिलता है।³ दूसरी ओर चण्डसेन नाम का प्रयोग संस्कृत और प्राकृत दोनों में समान रूप से हुआ है।⁴ जो स्वयं इस बात का द्योतक है कि जिस ध्वनि-परिवर्तन की कल्पना जायसवाल ने की है वह लेखिका के विचार में कभी आया ही नहीं था। यदि चन्द्र रूप में परिवर्तित देखने की ध्वनिक सम्भावना होती तो यह समझ पाना कठिन है कि संस्कृत के नाटक में एक महत्वपूर्ण पात्र का नाम प्राकृत रूप में क्यों दिया गया और किसी अन्य नाम का नाटक में प्राकृतीकरण क्यों नहीं हुआ?

नाम की बात के अतिरिक्त, नाटक की कथा भी पुरातात्विक सूत्रों से ज्ञात तथ्यों से सर्वथा भिन्न है। गुप्त-अभिलेखों के अनुसार लिच्छवियों के साथ चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध विवाह के माध्यम से था; चण्डसेन-लिच्छवि सम्बन्ध के सम्बन्ध में हमें कोई जानकारी नहीं है। नाटक के अनुसार सुन्दरवर्मन के दत्तक के रूप में चण्डसेन का उल्लेख है और उसे विषवृक्ष और हीन-जाति का बताया गया है; उसे पितृघातक भी कहा गया है। चन्द्रगुप्त के दत्तक होने की बात

कहीं भी किसी सूत्र में किसी को भी ज्ञात नहीं है। उसे किसी ने कहीं भी पितृघातक नहीं कहा है। इस प्रकार चन्द्रगुप्त (प्रथम) को नाटक का चण्डसेन मानना सम्भव नहीं है और न इस नाटक को इतिहास के निमित्त गम्भीरता के साथ लिया जा सकता है।

जॉन एलन की कल्पना है कि चन्द्रगुप्त द्वारा सर्वप्रथम विजित किये जाने वाले स्थानों में से वैशाली, जो लिच्छवियों के अधीन था, एक था और सन्धि की एक शत के रूप में कुमारदेवी के साथ उनका विवाह हुआ था। एलन के कथनानुसार गुप्तों को लिच्छवि-रक्त का जो गर्व है वह लिच्छवियों की प्रचीन वंशपरम्परा का है न कि उनके साथ की गयी किसी सन्धि या सहयोग से प्राप्त भौतिक लाभ का परिणाम। सोहोनी (श्री०वा०) की भी धारणा है कि चन्द्रगुप्त (प्रथम) और कुमारदेवी विवाह का निर्णय रणभूमि में हुआ था।

दो राजाओं के बीच हुए युद्ध के परिणामस्वरूप राजघरानों में विवाह होने के निस्सन्देह अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। किन्तु इस प्रकार के विवाह को कभी प्रतिष्ठा भाव से नहीं देखा जाता रहा है। उसे न केवल स्मृतियों में राक्षस विवाह ठहराया गया है वरन् अभिलेखों में भी उसे ऐसा ही कहा गया है। इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न पुत्र अपने को उस कुल से सम्बन्धित होने में कभी गौरव का अनुभव नहीं करेगा जिसका उसने, उसके पिता ने अथवा पिता-कुल के किसी अन्य ने रणभूमि में दलन किया था। ऐसी अवस्था में पराजित पक्ष यदि प्रख्यात या शक्तिशाली रहा है, विजयी पक्ष ने अपने को उस शक्ति के विजित अथवा उच्छेदित करने वाला कहने में ही गौरव माना है।

यदि गुप्तों को लिच्छवि-दैहित्र होने का गर्व था, तो उसका एक मात्र यही अर्थ हो सकता है कि चन्द्रगुप्त (प्रथम) के साथ लिच्छवि-राजकुमारी का विवाह सामान्य स्थिति में हुआ था; और लिच्छवियों के साथ हुए इस विवाह सम्बन्ध से गुप्तों को अपने उत्थान में सहायता प्राप्त हुई थी। प्राचीन भारतीय राज-वंशावलियों में अनेक ऐसे उदाहरण हैं जहाँ नाना का उल्लेख, दौहिक-कुल के वंश-क्रम में हुआ है और ऐसी प्रत्येक अवस्था में इस बात के प्रमाण मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि जमाता को अपने ससुर कुल से समुचित सहायता उपलब्ध हुई थी। वाकाटक-नरेश रुद्रसेन (प्रथम) और रुद्रसेन (द्वितीय) के ससुरों का उल्लेख वाकाटक वंश-परम्परा में केवल इस कारण हुआ है कि उनके साथ किया गया विवाह-सम्बन्ध वाकाटक वंश-परंपरा में केवल इस कारण हुआ है कि उनके साथ किया गया विवाह-सम्बन्ध वाकाटक वंश के लिए पर्याप्त हितकर सिद्ध हुआ। विष्णुकुण्डिन नरेश माधवर्मन अपने को वाकाटक-कुमारी का सन्तान होने का गौरव इसलिए मानते हैं कि वाकाटक-परिवार के साथ विवाह-सम्बन्ध उसके वंश के उत्थान में अत्यधिक सहायक हुआ था।

संदर्भ

1. "Immediately below there runs a broad course of beautifully carved elaborate ornament with geometrical floral patterns combined with birds and human figures, (Pl. VII)." p.21
2. हि. आफ इन्डि, एण्ड इस्टर्न आर्कि, भूमिका, पृष्ठ 14
3. कौमुदी-महोत्सव, बम्बई, 1952, पंक्ति 1, 62, 63, 64, 132, 193, 276
4. कौमुदी-महोत्सव, बम्बई, 1952, पंक्ति 294

भारत-श्रीलंका संबंध

डॉ० अरूण कुमार दीक्षित

एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, वी० एस० एस० डी० महाविद्यालय कानपुर (३०८०)

श्रीलंका सहित भारत की परिधि में विकासशील देशों को वित्तीय और सैन्य सहायता के साथ चीन के बढ़ते प्रभाव के मद्देनजर, भारत को अपने पड़ोसी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों को प्रभावित करने वाली आंतरिक नीतियों के बारे में सतर्क रहना चाहिए। एक उच्च अंतर से जुड़े और अन्योन्याश्रित दुनिया में कोई भी देश कितना भी शक्तिशाली हो, दूसरों पर अधिकार जमा सकता है। लेकिन चीन के विस्तार के प्रभाव को प्रबंधित करने के लिए काफी कूटनीतिक चपलता के साथ विदेशी संबंधों में भारी बदलाव की जरूरत है।

भारत और श्रीलंका-

श्रीलंका में राजनीतिक घटनाक्रम को समझना प्रागैतिहासिक काल से दोनों देशों के बीच संबंधों की खोज में शामिल है।¹ इस प्रक्रिया में विशेष रूप से तमिलनाडु से श्रीलंका तक लोगों की आमद शामिल थी।

स्वतंत्रता के बाद दोनों देशों के बीच काफी अच्छे संबंध थे, हालांकि श्रीलंका सरकार की राष्ट्रवादी नीतियों ने भारत के लिए समस्याएं पैदा कीं। श्रीलंका में तमिलों ने तब अलग-थलग महसूस किया जब इसने अपनी राष्ट्र निर्माण प्रक्रिया के दौरान तमिल आबादी में भेदभाव करने वाली नीतियों को अपनाया। इसके परिणामस्वरूप उग्रवाद एक लंबे समय तक जारी गृहयुद्ध में बदल गया, जो² श्रीलंका में भाषाई और धार्मिक मतभेद थे। श्रीलंका के श्रीलंका के समाज में एक स्पष्ट दरार है। आधिकारिक भाषा के रूप में सिंहली की घोषणा और आधिकारिक धर्म के रूप में बौद्ध धर्म ने तमिल संयुक्त मोर्चा के गठन का नेतृत्व किया। 1947 के नागरिकता अधिनियम द्वारा तमिलों के असंतोष से उपजी नाराजगी की स्थिति।³ नागरिकता अधिनियम 1947 में दी गई आवासीय योग्यता और आजीविका के पर्याप्त साधनों का प्रमाण प्रमुख विडंबनाएं थीं क्योंकि जो लोग इन खंडों को पूरा करने में विफल रहे थे, उन्हें भारत वापस लाया जाना था।⁴ इस मुद्दे को भारत द्वारा हल करने का प्रयास किया गया था- 1964 और 1974 के श्रीलंका समझौते पर, लेकिन इसके बहिष्करण प्रावधानों ने कुछ समस्याएं पैदा कीं, जिन्हें नागरिकता अधिनियम 1986 में सुधार दिया गया था। भारत ने श्रीलंका की नागरिकता समस्या को एक आंतरिक मुद्दे के रूप में देखा। देश का।⁵ यहां तक कि यह भारत और तमिलनाडु की केन्द्र सरकार के बीच अनबन नहीं थी।⁶ यह एक मुद्दा बन गया जब श्रीलंका के बागान मजदूरों ने इसे भारत के तमिलों के साथ सांस्कृतिक और जातीयता पर आधारित बताया।⁷

1983 में तमिल इलम के लिए युद्ध शुरू होने तक भारत ने एक अलग राज्य के लिए लड़ने वाले सीलोनियम तमिलों का समर्थन नहीं किया।⁸ हालांकि हिंसक जातीय संघर्ष के बाद भारत में तमिल लोगों की आमद, उग्रवादियों को हथियारों की आपूर्ति और उसके प्रभाव पर असर पड़ा। भारत में मछली पकड़ने की समस्या-श्रीलंका संबंध। भारत सरकार ने श्रीलंका का इलाज नहीं करने का फैसला किया “भारत को हर समस्या के रूप में सिर्फ एक और देश को प्रभावित किया”⁹ राज्यों में सत्ता का विकास करके श्रीलंका में राजनीतिक सुधारों के परिणामस्वरूप, विरोधाभासी जगह के कारण नाराजगी हुई श्रीलंका के आंतरिक मामलों में भारतीय हस्तक्षेप की भावना पैदा करने के अलावा प्रांतीय परिषदों के संचालन के लिए। राजीव गांधी सरकार ने असम, पंजाब में श्रीलंका में तमिल जातीय समस्या के साथ-साथ जातीय मुद्दों पर लंबे समय तक चलने वाले आंदोलन को समाप्त करने का प्रयास किया, जिसकी परिणति 1987 के भारत-लॉर्ड समझौते में हुई। इसे बहुसंख्यकों द्वारा भारत के गहरे रणनीतिक हितों से प्रेरित माना गया। श्रीलंका के लोगों ने इस तथ्य के बावजूद कि यह श्रीलंकाई सरकार की सहमति पर आधारित था। भारतीय शांति सेना (IPKF) की भूमिका को भारत में बहुत नाराज किया गया था और इसके बाद दोनों देशों के लिए विनाशकारी परिणाम थे, जो भारत ने प्रदान नहीं किया था। श्रीलंका को सैन्य सहायता। यहां तक कि इसने नॉर्वे द्वारा शुरू की गई शांति प्रक्रिया को तेज करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, गैर-घातक हथियार, श्रीलंकाई नौसेना को सैन्य सहायता और इसके बुनियादी ढांचे के विकास के लिए वित्तीय सहायता।¹⁰

1992 से भारत-श्रीलंका संयुक्त आयोग के माध्यम से दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय मामलों पर चर्चा की जाती है। पड़ोस की पहली नीति के अनुरूप भारत सरकार श्रीलंका की अर्थव्यवस्था के कई क्षेत्रों में सहयोग कर रही है।¹¹ दोनों देशों के बीच संयुक्त सैन्य अभ्यास (मित्रा, शक्ति), संयुक्त नौसैनिक अभ्यास (SLINEX) के साथ रक्षा और सुरक्षा सहयोग बढ़ रहा है, जो श्रीलंका के रक्षा कर्मियों को प्रशिक्षण प्रदान करता है और भारत, श्रीलंका और श्रीलंका के बीच हस्ताक्षरित व्यापक त्रिपक्षीय सैन्य सुरक्षा सहयोग प्रदान करता है। मालदीव। यहां तक कि जब समुद्री सीमा पर 1976 में समुद्री सीमा समझौते द्वारा मछली पकड़ने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था, तब भी दोनों देशों के बीच समस्याएं खड़ी हो गई थीं।¹² 1998 में दोनों देशों के बीच FTA पर हस्ताक्षर किए जाने के बाद से श्रीलंका से आयात लगाकर बढ़ रहा है। श्रीलंका को अपने आर्थिक विकास के साथ-साथ सुरक्षा के लिए भारत के समर्थन की आवश्यकता है।

IOR भारत-श्रीलंका संबंध पर-

2009 में LTTE के खात्मे के बाद, भारत-श्रीलंका संबंध सुचारू रूप से आगे बढ़ रहे हैं। हालांकि, दक्षिण एशिया में चीन की बढ़ती उपस्थिति के साथ IOR ने दोनों भारत और श्रीलंका को समस्याग्रस्त क्षेत्रों की समय-समय पर जांच करने के लिये जोर दिया है ताकि उनके अत्यंत सौहार्दपूर्ण संबंधों को कोई नुकसान ना हो। यह तब से अधिक है जब श्रीलंका चीन का रणनीतिक साझेदार बना महत्वाकांक्षी बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (बी0 आर0 आई0)- चीन की रणनीतिक आर्थिक अवसंरचना परियोजना जो 2013 में आया। हंबनटोटा बंदरगाह जिसे चीन द्वारा वित्तपोषित, विकसित और अब चलाया जाता है, 21वीं सदी के समुद्री रेशम मार्ग (MSR) के महत्वपूर्ण चीनी रणनीतिक परिसंपत्ति के रूप में उभरा, जो BRI का हिस्सा है।

इससे पहले प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी 2014 में सत्ता में आने के बाद से ही अपनी विदेश नीति के प्रयासों के केंद्रीय विषय के रूप में सबसे पहले प्रचार कर रहे थे। जैसाकि IOR पड़ोस का हिस्सा है, भारतीय प्रधानमंत्री मोदी ने SAGAR (SECURITY AND GROWTH for all) को बढ़ावा दिया है और सभी के लिये विकास IOR देशों की नीली अर्थव्यवस्था को विकसित करने के समुद्री पहल की है। यह तीन चीजों को बनाना चाहता है: विश्वास पारदर्शिता का माहौल, अंतर्राष्ट्रीय समुद्री नियमों का सम्मान और श्रीलंका, मालदीव, मॉरिशस, सेशेल्स और बांग्लादेश के साथ समुद्री सहयोग में वृद्धि।

मई 2019 के आम चुनावों में बहुमत प्राप्त करने के बाद, प्रधानमंत्री ने दूसरे कार्यकाल के लिये पद संभालने के पहले दस दिनों के भीतर मालदीव और श्रीलंका का दौरा किया। यह इंगित करता है कि भारत की विदेश नीति प्राथमिकता अपने प्लू पड़ोसियों के साथ मजबूत संबंध बनाने के लिये हैं, विशेष रूप से श्रीलंका और मालदीव के साथ।

2009 में ईलम युद्ध समाप्त होने के बाद, चीन ने श्रीलंका के साथ अपने संबंधों को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित किया है क्योंकि यह हिंद महासागर की रणनीति में अच्छी तरह से फिट बैठता है। हिंद महासागर में चीनी युद्धपोतों की बढ़ती मौजूदगी के साथ, चीन ने बांग्लादेश, श्रीलंका, मालदीव, और पाकिस्तान के ढांचागत संपत्ति बनाई है। श्रीलंका के पास अब परियोजनाओं के लिये चीन का 8 बिलियन डॉलर बकाया है, जिसमें माटला हवाई अड्डा और हंबनटोटा बंदरगाह शामिल है। 1.6 बिलियन अमेरिकी डॉलर के हंबनटोटा बंदरगाह के साबित होने के बाद श्रीलंका ने राज्य के स्वामित्व वाली चाईना मर्चेंट पोर्ट्स होल्डिंग्स कंपनी (सीएमपीओआरटी) के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किया, जिसमें हंबनटोटा बंदरगाह के 85 प्रतिशत शेयर को 99 साल तक के लिये रोक दिया गया, जिसके लिये 1.12 बिलियन अमेरिकी डॉलर का भुगतान करने पर सहमति हुई। भारत और अमेरिक और उसके सहयोगी देश चीन को हंबनटोटा बंदरगाह पर नियंत्रण पाने की चिंता के साथ देख रहे हैं क्योंकि यह हिन्दमहासागर में भारत के प्रभाव क्षेत्र के भीतर चीन की रणनीतिक उपस्थिति को वैधता प्रदान करता है।

भारत ने श्रीलंका के आर्थिक विकास जरूरतों को पूरा करने के लिए 400 मिलियन डालर और 50 डालर की सुरक्षा की दृष्टि से तत्परता से साथ दिया। हालांकि पीएम मोदी ने 29 नवंबर को एक प्रेस बयान में उम्मीद जताई थी कि भारत-श्रीलंका समझौते के आधार पर श्रीलंका के संविधान में 13वें संशोधन का पालन किया जायेगा। हालांकि राष्ट्रपति गोतबया ने बाद में कहा कि 13वें संशोधन को “बहुसंख्यक समुदाय की इच्छाओं और भावनाओं के खिलाफ” लागू नहीं किया जा सकता है।

अपनी भारत यात्रा के दौरान राष्ट्रपति गोतबया ने हंबनटोटा बंदरगाह पर चीन के साथ हुए समझौते को एक ‘गलती’ करार दिया और कहा इस पर फिर से ध्यान दिया जाना चाहिये। इससे चीन को बहुत चिंता हुई होगी। हालांकि घर लौटने के बाद उन्होंने एक प्रेस ब्रीफिंग में बताया कि हंबनटोटा समझौते के बारे में फिर से कोई बदलाव करने की कोई आवश्यकता नहीं है, लेकिन सुरक्षा पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता होगी। यद्यपि चीनी ने एक बयान के साथ जल्दी से प्रतिक्रिया व्यक्त की, यह याद दिलाते हुए कि समझौते को फिर से बदला नहीं जा सकता है, यह मुद्दा संभवतः तब सुलझा जब चीनी विदेश मंत्री वांग यी 14 जनवरी को कोलंबो आये थे।

राष्ट्रपति गोतबया के कार्यालय के बयान के अनुसार, चीनी मंत्री ने किसी भी बाहरी उल्लंघन की अनुमति नहीं देने का वादा किया था “श्रीलंका के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए” जाहिर तौर पर अमेरिका में इतना सुक्ष्म संकेत नहीं है जिसने 2015 के चुनाव को प्रभावित करने की कोशिश की थी। उन्होंने एक रणनीतिक साझेदार के रूप में वादा किया, चीन श्रीलंका के हितों को आगे बढ़ाएगा। चीन देश की संप्रभुता, क्षेत्रीय अखंडता और स्वतंत्रता के लिए खड़ा है। बीआरआई परियोजनाओं का मुद्दा और युद्ध अपराधों के मुद्दे पर जवाबदेही के लिए यूएनएचआरसी में श्रीलंका के रुख के लिए चीन का समर्थन उनकी चर्चा में भी शामिल है।

सन्दर्भ

¹ Through cultural exchange, introduction of Buddhism, suzerainty of Chola kings on northern part of Sri Lanka, commercial enterprise and geographical unification under British rule till it became independent in 1948. Both the countries have signed cultural cooperation agreement in 1977. In 1998 India-Sri Lanka Foundation was set up which has promoted Indian culture and facilitated education and research. It is also a partner in Nalanda University project of India.

² Tamils have lived mainly in the northern part of Sri Lanka for centuries and both the countries had close economic, commercial and cultural relationship since the reign of Cholas, Pandys and Keralas in India. Even Buddhism was a common religious bond between the people of the two countries. A Livanagamage, The Indian Factor In the Security Perspective of Sri Lanka, Precolonial Experience, <https://www.tandfonline.com/doi/abs/10.1080/09700161.2013.737518>.

³ But the status of Tamils was a problem preceding India's independence as absorption of Indian Tamils with the Ceylonese population surfaced as back as 1928. The colonial government had taken initiative to decide the status of Tamils of Sri Lanka.

⁴ . Indian government agreed to grant them citizenship if they satisfied Article 8 of Indian constitution.

⁵ Shelton, Kodikara, Indo Ceylon Relations Since Independence, Ceylon Institute of World Affairs, Colombo, 1965 cited in <https://www.tandfonline.com/doi/abs/10.1080/09700161.2013.737518>

⁶ Tamil Nadu

- ⁷ They stretched it to India as there were communal riots against the discriminatory policies of Ceylonese government in 1956, 1958, 1977 on issues like Sinhala Only Act, 1956, colonisation in the dry zone standardization of university entry etc.
- ⁸ Sri Lanka had the most horrendous terrorist experience inflicted by the LTTE which was formed in 1958 at the backdrop of Sinhala –Tamil language riots. In due course it resorted to fierce terrorist activities under different leaders. But the one led by Prabhakaran became a formidable force which was crushed by president Mahinda Rajapaksa in 2009.
M.Maylivaganan, Indian Perceptions in Sri Lanka, Changing Dynamics, World Focus, November-december, 2007
M.Maylivaganan, Indian Perceptions in Sri Lanka, Changing Dynamics, World Focus, November-december, 2007
- ⁹ In 2001 India sold Sukanya class Advanced Offshore Patrol Vessels (AOPV), provided military radar in 2005 and financed repair of runway at Palaly airport.
- ¹⁰ Free Trade Agreement between both the countries was signed in 2010) and investments.
- ¹¹ Transfer of Katchatheevu to Sri Lanka in 1974 was resented by Tamilnadu. Among other reasons Kachchativu was ceded to Sri Lanka to stem international criticism of India's nuclear tests conducted in 1974. It has demanded action against Sri Lanka for its war time crimes which led to the cancellation of visit of Indian prime minister visit to Sri Lanka in 2013 to attend the Commonwealth Heads of Governments Meeting.
- ¹² Sri Lanka opted for China when India declined the offer to construct the port may be due to paucity of resources.

शिक्षा का विकास एवं शिक्षा की समस्याएँ

डॉ० ममता दीक्षित

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, एम०एम०वी० पी०जी० कालेज, कानपुर

प्राचीन काल में शिक्षा के क्षेत्र में भारत अग्रणी था। विश्वविद्यालय शिक्षा की व्यवस्था सर्वप्रथम भारत में प्रारम्भ हुई परन्तु उन दिनों शिक्षा का क्षेत्र इतना व्यापक नहीं था गुरुकुल शिक्षा पद्धति तत्कालीन सन्दर्भ में सर्वोत्तम थी। शिक्षण संस्थाएँ स्वतंत्र रूप से शिक्षण एवं प्रशिक्षण का प्रबन्ध करती थी। शिक्षण एवं प्रशिक्षण का स्तर उच्च था। छात्रों की संख्या बहुत कम होती थी।¹ अनुशासन एवं प्रशासन की समस्या नहीं थी। कालांतर में शासकों ने अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु इस शिक्षण व्यवस्था में परिवर्तन किया। गौरवमयी परम्परा समाप्त हो गयी परन्तु एकाकी प्रकाशपुंज अपनी चमक बनाये रखने में समर्थ रहे। किसी भी देश में विकास कार्यक्रमों के समुचित क्रियान्वयन के लिए शिक्षा की प्रशासकीय व्यवस्था का चुस्त होना आवश्यक है। आंग्ल शासन काल में भी समयानुकूल अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु शैक्षिक प्रशासन की ओर सरकार ने ध्यान दिया था और इसमें सुधार हेतु महत्वपूर्ण कदम उठाये गये थे। स्वतंत्रोत्तर भारत में शिक्षा के पाठ्यक्रम एवं उसकी प्रशासकीय व्यवस्था में आवश्यकतानुसार सुधार हेतु प्रयास किये गये।²

भारतीय शिक्षा पद्धति

भारत में अंग्रेजों के आगमन के साथ भारतीय शिक्षा का विघटन प्रारम्भ हुआ। अंग्रेज शासकों ने अपने निहित स्वार्थों को ध्यान में रखते हुए तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन किया। भारतीय शिक्षा व्यवस्था स्थानीय समाज के हितों के प्रति उदासीन होती गयी। मैकाले द्वारा प्रवर्तित शिक्षा का उद्देश्य आंग्ल शासन के लिए अपेक्षाकृत अल्प वेतन पर स्थानीय क्लर्क उपलब्ध कराना था जो विदेशी शासकों के हित साधन हेतु अधिक सचेष्ट रहते थे। उच्च शिक्षा की सुविधा अधिकांशतः अंग्रेजों के प्रति वफादारधनिक वर्ग के लिए ही उपलब्ध थी और प्रशासन में उच्च पद आंग्ल शासन के प्रति वफादार व्यक्तियों को ही प्राप्त होता था। अतः आंग्ल शिक्षा पद्धति ने भावी समाज के विभिन्न वर्गों में परस्पर सन्देश उत्पन्न कर विदेशी शासन के प्रति साधन में सफलता प्राप्त की एवं सामाजिक विषमताओं को उत्पन्न करती गयी। विदेशी प्रशासक समाज के अल्पसंख्यक प्रभावी वर्ग की एक लम्बी फौज खड़ी करने के लिए 1853-54 तक बहुत से विद्यालयों की स्थापना की जा चुकी थी। अंग्रेजों का यह दृष्टिकोण व्यापारिक था। उसके लिये अपने राष्ट्र का हित सर्वोपरि था। अतएव उन्होंने शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाने और उसे स्थानीय आवश्यकताओं से जोड़ने का कोई प्रयास नहीं किया।

वैदिक युग में शिक्षा

जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने वाले भारत के ही नहीं अपितु विदेशी विचारों ने भी प्राचीन भारत की उच्चस्तरीय शिक्षा, दर्शन था विज्ञान की समृद्ध परम्परा की भरपूर प्रशंसा की है।³ यहां पर इस सन्दर्भ में कुछ विद्वानों का ही उल्लेख किया जा रहा है।

डॉ. एफ. डब्ल्यू. थामस ने अपनी पुस्तक The History and Prospects of British Education in India में इस प्रकार लिखा है “भारत में शिक्षा कोई नई बात नहीं है। संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं है जहां ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन काल से आरम्भ हुआ हो अथवा जिसने इतना स्थायी और शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया हो।”

वैदिक काल में शिक्षा के उद्देश्य

वेदों का गहन अध्ययन करने पर शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य प्रकाश में आते हैं—

1. आचार शिक्षा और चरित्र-निर्माण
2. विद्या और बुद्धि का समन्वय
3. अध्यात्म और भौतिकवाद के समन्वय का मूल्य निर्माण करना
4. तप और दीक्षा (अनुशासन और समर्पण) मूल्यों का विकास करना
5. जीवन को तपस्वी बनाना
6. बुद्धि का परिष्कार और बौद्धिक विकास
7. व्रत और श्रद्धा का विकास
8. ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित करना
9. चिन्तन-शक्ति को बढ़ाना
10. अज्ञान और अशिक्षा का उन्मूलन करना

शिक्षा जीवन के मूल लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति का एक साधन था। इसी भावना से प्रेरित होकर प्राचीन काल में भारतीय ऋषियों ने शिक्षा को धार्मिक क्रियाओं से ओत-प्रोत कर मानव के सर्वांगीण विकास की प्रेरणा दी। अतः ऐसा भी कहा जा सकता है कि ईश्वर-भक्ति तथा धार्मिकता की भावना, चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा मानसिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति तथा राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार प्राचीन भारत में शिक्षा के मुख्य उद्देश्य एवं आदर्श थे।⁴

गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था

गुरु शिक्षा व्यवस्था से अर्थ उस शिक्षा व्यवस्था से है जिसमें गुरु का घर ही स्कूल था। छात्र अपने गुरु के साथ रहकर शिक्षा ग्रहण किया करते थे। गुरु अपने शिष्यों को अपनी सन्तान मानते थे। शिष्य भी गुरु को माता-पिता से बढ़कर मानता था। वह यह अच्छी तरह समझता था कि पिता ने तो उसे शरीर देकर मनुष्य ही बनाया है, परन्तु गुरु उसे मनुष्यत्व से ऊपर उठाकर देवत्व की ओर ले जाता है। वह गुरु के प्रति असीम प्रेम तथा श्रद्धा रखता था।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली

बौद्ध काल में बौद्ध भिक्षुओं द्वारा एक नई शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ जिसे बौद्ध शिक्षा प्रणाली कहते हैं। बौद्ध काल में प्राथमिक एवं उच्च, दोनों प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था बौद्ध मठों एवं विहारों में होती थी। उस काल में बौद्ध भिक्षु ही शिक्षा कार्य करते थे और जो बौद्ध भिक्षु शिक्षण कार्य करते थे उन्हें उपाध्याय (उपाध्याय) कहा जाता था। उपाध्याय बनने के लिए पहली अनिवार्यता थी- उच्च शिक्षा के बाद 8 वर्ष तक बौद्ध धर्म की उच्च शिक्षा प्राप्त करना, दूसरी अनिवार्यता थी- बौद्ध धर्मावलम्बी होना, तीसरी अनिवार्यता थी- आजीवन अविवाहित रहना और चौथी अनिवार्यता थी- बौद्ध संघों के नियमों का कठोरता से पालन करना। उस समय अति विद्वान, आत्मसंयमी और चरित्रवान भिक्षु ही उपाध्याय हो सकते थे। बौद्ध उपाध्याय अपने शिष्यों (श्रमणों) के आवास एवं भोजन की व्यवस्था करते थे, उनका ज्ञानवर्द्धन करते थे और उन्हें सांसारिक दुःखों से छुटकारा प्राप्त करने का मार्ग बताते थे।

बौद्ध काल में शिक्षार्थियों को श्रमण अथवा सामनेर कहा जाता था। इन्हें बौद्ध मठों एवं विहारों में रहना अनिवार्य था। ये बौद्ध मठों एवं विहारों के नियमों का कठोरता से पालन करते थे। इन्हें मूल रूप से दस आदेशों का पालन करना होता था। इसे दस सिक्खा पदानि अर्थात् दस शिक्षा पद कहते थे। ये दस आदेश थे-

- (1) जीव हिंसा न करना,
- (2) किसी की वस्तु न लेना,
- (3) अशुद्ध आचरण से दूर रहना,
- (4) असत्य भाषण न करना,
- (5) मादक पदार्थों का सेवन न करना,
- (6) कुसमय भोजन न करना,
- (7) किसी की निन्दा न करना,
- (8) नृत्य एवं संगीत आदि से दूर रहना,
- (9) श्रृंगार की वस्तुओं का प्रयोग न करना और
- (10) सोना, चाँदी हीरा, जवाहरात आदि कीमती दान न लेना।

उस काल में शिष्य गुरु कके उठने से पहले शय्या त्यागते थे, गुरुओं के लिए दाँतून एवं जल आदि की व्यवस्था करते थे और गुरुओं के साथ भिक्षा मांगने जाते थे। उच्च शिक्षा के जो छात्र शिक्षा शुल्क नहीं दे पाते थे वे सेवा कार्य करते थे।

मध्यकालीन भारत में शिक्षा

भारतीय इतिहास के मध्यकाल में 800 ई. से 1750 ई. तक का समय सामान्यतः शामिल किया जाता है। इस काल को कभी-कभी मुस्लिम काल भी कहा जाता है तथा शिक्षा को मुस्लिम कालीन शिक्षा। यहां यह लिखना भी आवश्यक है कि यद्यपि शासक वर्ग मुस्लिम शिक्षा को प्रोत्साहन देता था, फिर भी ब्राह्मण शिक्षा व्यवस्था भी कई क्षेत्रों में प्रचलित थी।

800 ई. से 1200 ई. तक का समय शिक्षा की दृष्टि से इतना महत्वपूर्ण नहीं था। इस समय में राजनैतिक अस्थिरता का वातावरण था। उत्तरी तथा पश्चिमी भारत में अनेक राजपूत राज्य स्थापित थे। वहां पर हिन्दू शिक्षा व्यवस्था किसी न किसी रूप में प्रचलित थी। 11वीं शताब्दी के आरम्भ में महमूद गजनवी ने अनेक आक्रमण किए। इसके पश्चात् मुहम्मद गौरी ने सन् 1192 में पृथ्वीराज को हरा कर भारत में मुस्लिम शासन को स्थापित किया। यह स्वाभाविक था कि शासक वर्ग अपनी सभ्यता, संस्कृति, भाषा आदि का सम्वर्धन भारत में करे। अतः प्रचलित वैदिक शिक्षा व्यवस्था तथा बौद्धिक शिक्षा व्यवस्था को उत्तर भारत में बहुत क्षति पहुंची। माना जाता है कि आक्रमणकारियों ने यहां के विश्वविद्यालयों को तहस-नहस किया। अनेक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक, धार्मिक तथा वैज्ञानिक ग्रन्थ नष्ट हुए।

महमूद गजनवी ने अपने देश में अनेक स्कूल तथा कालेज खोले परन्तु भारत में ब्राह्मणिक शिक्षा को नष्ट करने में कोई कसर न छोड़ी। उसके आक्रमण मन्दिरों पर थे जो कि प्रायः शिक्षा के केन्द्र थे।

मुहम्मद गौरी जिसे भारत में मुस्लिम शासन का स्थापितकर्ता माना जाता है, वह पहला सुल्तान था जिसने मुस्लिम संस्कृति का विकास करने हेतु अजमेर में स्कूल तथा अन्य इस प्रकार के संस्थान खोले। उसने अपने गुलामों को भी शिक्षा दी। उसका शासन काल बहुत थोड़ा था। अतः किसी भी योजनाबद्ध तरीके से शिक्षा नीति न बन सकी।

सुल्तान सिकन्दर लोदी (1498-1517 ई.) एक प्रसिद्ध कवि था। उसने सैनिक अधिकारियों के लिए अनिवार्य शिक्षा का आरम्भ किया। उसके काल में उच्च स्तर के साहित्य का सृजन हुआ। उनके अपने राज्य के विभिन्न भागों में कई मदरसे स्थापित किए तथा योग्य अध्यापकों की नियुक्ति की। अरब, मध्य एशिया तथा फारस से विद्वानों को आमंत्रित किया। मथुरा तथा नरवार के मदरसे सभी के लिए खोल दिए गए। कायस्थ हिन्दुओं ने फारसी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन में रूचि ली। सिकन्दर लोदी के काल में आगरा उच्च शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र बना। तैमूर के 1398 ई. के आक्रमण के पश्चात् जौनपुर ने उच्च शिक्षा के केन्द्र के रूप में ख्याति प्राप्त की।

मुगल युग में शिक्षा

बाबर (1526-1530 ई.) को मुगल राज्य का संस्थापक माना जाता है। वह अरबी, फारसी तथा तुर्की भाषाओं का विद्वान था। सैयद मकबर अली ने अपनी 'तवारीख' (इतिहास) में लिखा है कि बाबर ने मकतबों तथा मदरसों की उन्नति पर बहुत ध्यान दिया। उसने एक विभाग 'शुहरते-आम' खोला जिसका कार्य शिक्षा संस्थाओं की उन्नति की व्यवस्था करना था। परन्तु उसका शासन अल्पकालिक था। अतः शिक्षा के क्षेत्र में कोई विशेष कार्य न हो सका।

बाबर के पश्चात् उसका लड़का हुमायूँ (1530-1540 ई.) तथा (1555-56 ई.) पुस्तकों का बड़ा प्रेमी था। उसने दिल्ली में एक मदरसे की स्थापना की और पुराने किले (दिल्ली) में पुस्तकालय खोला। उसके काल में भूगोल और ज्योतिष ने बहुत उन्नति की। उसने इन विषयों तथा गणित का अध्ययन अपने द्वारा स्थापित मदरसे में आरम्भ किया। उसने दिल्ली में एक कालेज भी खोला जिसे एक मकबरे के साथ सम्बद्ध किया गया।

अकबर (1556-1605 ई.) मुगल बादशाहों में सबसे 'महान' बादशाह माना जाता है। यद्यपि वह निरक्षर था तथापि उसने शिक्षा के क्षेत्र में बहुत मूल्यवान् कार्य किया। उसने मकतबों और मदरसों की स्थापना तथा देखभाल पर बहुत ध्यान दिया। फतेहपुर सीकरी, आगरा व अन्य अनेक नगरों में उसने मदरसे खुलवाए, जिनमें अनेक विद्वान शिक्षण का कार्य करते थे। अकबर ने यह भी व्यवस्था की कि इन मदरसों में हिन्दू छात्र भी शिक्षा प्राप्त कर सकें। अकबर ने इस प्रकार का एक फरमान जारी किया, जिसके अनुसार यदि किसी धनी व्यक्ति के कोई सन्तान न हो तो उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी सारी जायदाद मदरसों की मरम्मत आदि पर खर्च की जाए।

जहांगीर (1605-1627 ई.) फारसी तथा तुर्की भाषाओं का विद्वान था। अकबर की भान्ति उसने भी एक ही ऐसा फरमान जारी किया। जहांगीर ने अनेक मदरसे जो उजड़े पड़े थे, उनको पुनः चालू किया।

शाहजहाँ (1628-1658 ई.) ने एक शाही मदरसे की दिल्ली में स्थापना की तथा इस के साथ जायदाद लगाई। उसकी लड़की जहाँ आरा ने आगरे में एक मदरसा बनवाया और उसे जामा मस्जिद से सम्बन्धित किया।

शाहजहाँ का लड़का दाराशिकोह अरबी, फारसी तथा संस्कृत का विद्वान था। उसने उपनिषद्, भगवद्गीता, योगवासिष्ठ आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थों का स्वयं फारसी में अनुवाद किया।

औरंगजेब (1658-1707 ई.) का समय मुगल-साम्राज्य के विस्तार करने में तथा लड़ाई-झगड़ा में गुजरा। उसने मुस्लिम धर्म शास्त्रों के अध्ययन को प्रोत्साहित करने के लिये अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये।

ब्रिटिश काल में शिक्षा

भारत प्रारम्भ से ही विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। 15वीं शताब्दी के अन्त (1498) में पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा ने यूरोप से भारत आने के समुद्री जल मार्ग की खोज की। वह पहला यूरोपीय व्यक्ति था जो जल मार्ग द्वारा भारत के पश्चिमी बन्दरगाह कालीकट पहुँचने में सफल हुआ परिणामतः 1510 में पुर्तगालियों ने भारत में प्रवेश किया। लगभग 100 वर्ष तक इनका यहाँ के व्यापार के क्षेत्र में एकछत्र राज्य रहा। 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ (1613) में यहाँ अंग्रेज व्यापारियों का प्रवेश हुआ इनके बाद इसी शताब्दी में क्रमशः डच, फ्रान्सीसी और डेन व्यापारियों का आगमन हुआ। इन यूरोपीय व्यापारियों में संघर्ष होना स्वाभाविक था। अन्त में यहाँ अंग्रेज व्यापारी पैर जमाने में सफल हुए।⁵

अंग्रेज ईसाई मिशनरियों के शैक्षिक कार्य

भारत में आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के विकास में सबसे अधिक योगदान अंग्रेज ईसाई मिशनरियों का रहा। 1613 में इस देश में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ब्रिटेन का प्रवेश हुआ। ऐसा उल्लेख मिलता है कि इंग्लैण्ड से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रत्येक जहाज के साथ एक पादरी आता था। इन पादरियों का उस समय एक ही उद्देश्य था- ईसाई धर्म एवं संस्कृति का प्रचार। इस कार्य के लिए इन्होंने बंगाल को अपना केन्द्र बनाया। इन्होंने यह कार्य दो माध्यमों से करना शुरू किया- एक शिक्षा के माध्यम से और दूसरा दीन-हीनों की सेवा के माध्यम से। इस कार्य के सम्पादन के लिए इन्हें इंग्लैण्ड के अनेक मिशनरी संगठनों से पैसा प्राप्त होता था, साथ ही इस देश में कार्यरत ईस्ट इण्डिया कम्पनी का संरक्षण एवं आर्थिक सहयोग प्राप्त था।

अंग्रेज ईसाई मिशनरियों ने यहाँ कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में अनेक धर्मार्थ विद्यालयों (Charity Schools) की स्थापना की। इनमें दो प्रकार के विद्यालय थे- एक ऐसे जिनमें अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी और दूसरे ऐसे जिनमें स्थानीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। परन्तु दोनों प्रकार के विद्यालयों में ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी।

शिक्षा की समस्याएँ

- प्राथमिक शिक्षा की मुख्य दो समस्याएँ हैं-

- (क) अपव्यय,
- (ख) अवरोधन

- (क) अपव्यय- शिक्षा में अपव्यय का सर्वमान्य अर्थ है उन छात्रों पर समय, धन और शक्ति का अपव्यय जो सफलतापूर्वक अपनी शिक्षा को पूर्ण नहीं करते हैं। अपनी पढ़ाई प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने के पहले ही छोड़ देते हैं और जीविकोपार्जन में लग जाते हैं। अतः वे कुछ दिनों के बाद पढ़ी हुई बातों को भूलकर निरक्षर कहलाने लगते हैं।
- (ख) अवरोधन- प्राथमिक शिक्षा की दूसरी मुख्य समस्या अवरोधन है। अवरोधन का अर्थ स्पष्ट करते हुए हर्टाग-समिति ने लिखा है- “By stagnation we mean the retention in a lower class of a child for period of more than one year.” अर्थात् ‘अवरोध’ से हमारा अभिप्राय है एक बच्चे का निम्न कक्षा में एक वर्ष से अधिक रोका जाना। अवरोधन का प्रमुख कारण परीक्षा में अनुत्तीर्ण होना है। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों में से लगभग 40 प्रतिशत छात्रों को परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के कारण एक कक्षा में एक-से अधिक वर्ष व्यतीत करना पड़ता है। इस प्रकार जो छात्र 4 या 5 वर्ष की निश्चित अवधि में प्राथमिक शिक्षा पूर्ण नहीं कर पाते, उन पर भी किसी अंश तक समय, धन और शक्ति का अपव्यय होता है।

स्त्री शिक्षा की समस्याओं का समाधान

1. बालिका-विद्यालय की व्यवस्था- सरकार द्वारा बालिका-विद्यालय की स्थापना, उसके निर्माण एवं व्यवस्था पर बहुत कम खर्च किया जाता है। यही कारण है कि भारत में अभी 8.5 प्रतिशत ही बालिका-विद्यालय हैं। अतः सरकार को चाहिए कि प्रत्येक गाँव में बालिका-विद्यालय की स्वीकृति देकर उसे भवनादि हेतु अधिकाधिक रूप से देकर सहायता पहुँचाए।
2. अध्यापिकाओं की पूर्ति- बालिका- विद्यालयों में शिक्षिकाओं की आपूर्ति के लिए सरकार जनता के सहयोग से निम्नलिखित कार्य करें-
 - (क) व्यापक पैमाने पर शिक्षिकाओं के प्रशिक्षण के लिए ट्रेनिंग स्कूल एवं ट्रेनिंग कॉलेज खोलें।
 - (ख) प्रशिक्षण में शिक्षिकाओं को विशेष छात्र-वृत्तियाँ प्रदान की जाएँ।
 - (ग) स्त्रियों की नियुक्ति की आयु बढ़ा दी जाए।
3. भारतीय समाज को रूढ़िवादिता, धार्मिक कट्टरता एवं बाल-विवाह की दुरवस्था से बचाने के लिए सरकारी अधिनियम का निर्माण हो तथा बड़ी-बड़ी सभाओं में तत्संबंधी अभिभाषण एवं वाद-विवाद का प्रबंध हो, जिससे अंधी जनता को ज्ञान का प्रकाश दिखाई पड़े।

संदर्भ

1. स0 अल्लेकर, - एजुकेशन इन ऐन्सियेन्ट इण्डिया, वाराणसी, 1944, पृ0-142।
2. शील, अरुण - भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं-73।
3. ठाकुर, आद्याद्व - वेदों में भारतीय संस्कृति, हिन्दी समिति, लखनऊ, पृ0-26।
4. गुप्ता, डॉ0 राजेश चन्द्र - बौद्ध दर्शन का प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति पर प्रभाव, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010,
5. जे0 सी0 अग्रवाल - भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, 2011, पृ0-34-37।

चुनावी-व्यवहार निर्धारक के रूप में जाति और धर्म : एक विश्लेषण

आलोक रंजन

शोधकर्ता, राजनीति विज्ञान, नीलाम्बर-पीताम्बर विश्वविद्यालय, मेदिनीनगर, पलामू

सारांश

जाति-व्यवस्था, अपने सबसे सामान्य लेकिन बुनियादी पहलू में, स्थिति और पदानुक्रम की एक थोपी गई प्रणाली के रूप में वर्णित की जा सकती है। यह प्रणाली लोगों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संबंधों को नियंत्रित और परिभाषित करने के लिए जानी जाती है। चूंकि जाति का पद जन्म से लगाया जाता है, जिससे यह व्यवस्था वंशानुगत सामाजिक स्थिति और विशेषाधिकारों की परिकल्पना करती है। इस कारण से यह व्यवस्था सीमित है। कर्मकांड, सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों में सभी जातियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। जाति किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति के साथ-साथ उसकी आर्थिक स्थिति को भी दर्शाती है। जाति पदानुक्रम का वर्ग पदानुक्रम से गहरा संबंध है। केएन राज, एंडी बटियल, एम.एन. श्रीनिवास और कैथलीन गफ के अध्ययन इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि जाति और वर्ग के बीच एक अनुरूपता है। जमींदार और धनी किसान आमतौर पर उच्च जातियों के होते हैं, जैसे ब्राह्मण, भूमिहार और ठाकुर, जबकि दलित, आदिवासी और आदिवासी बड़े पैमाने पर खेतिहर मजदूर हैं। मध्यवर्ती स्तर पर जाति और वर्ग एक दूसरे से परे हैं। मध्य जातियों के अधिकांश सदस्य जैसे जाट, गुर्जर, यादव और कुर्मी छोटे और मध्यम स्तर के किसान या काश्तकार किसान हैं, जिनमें ऊपर की ओर आंदोलन की प्रवृत्ति देखी गई है। इनमें से कुछ पिछड़ी जातियाँ धनी किसान या जमींदार के रूप में उभरी हैं। इस प्रकार मध्यवर्ती और पिछड़ी जातियाँ मध्यम और छोटे किसानों के वर्चस्व वाली हैं। आमतौर पर बहुत छोटी जोत वाले किसान निचली जातियों के होते हैं और खेतिहर मजदूर के रूप में भी काम करते हैं।

मूल शब्द : चुनाव, व्यवहार, निर्धारक, जाति, धर्म, दल, मतदाता

परिचय

चूंकि भारतीय जनता राजनीतिक रूप से निरक्षर रही है, इसलिए जाति संगठन के लिए सबसे महत्वपूर्ण उपकरण बन गई है। जाति-मान्यताओं का उनके अपने जाति-अभिजात वर्ग द्वारा अपने-अपने वर्ग हितों के लिए अनुचित रूप से शोषण किया जाता है। चुनाव के समय, जब मतगणना का खेल अधिक होता है, जाति-समूह न केवल अपनी जाति के सदस्यों का बल्कि निचली जातियों और दलितों से भी समर्थन हासिल करने की कोशिश करते हैं। अद्वितीय भारतीय स्थिति में, जाति और जाति संघों ने भारत के व्यापक मतदाताओं को सार्थक और प्रभावी ढंग से भाग लेने में मदद करके राजनीतिक लोकतंत्र की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

प्रतिशोध के लिए आधार प्रदान करने के बजाय, जाति ने कुछ नए लोकतांत्रिक मूल्यों को अवशोषित और शामिल किया है। जाति ने न केवल अपना अस्तित्व बनाए रखा है, बल्कि खुद को भी बदल लिया है। इस अर्थ में कि यह अपने मूल्यों और विशेषाधिकारों को संतुलित करने में मदद करके पुरानी व्यवस्था की असमानताओं को दूर करने में योगदान देता है। राजनीतिक उद्देश्यों के लिए जाति का उपयोग वयस्क मताधिकार की शुरुआत से बहुत पहले शुरू हो गया था।

जातियाँ सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक उद्देश्यों के लिए स्वयं को संगठित करने लगीं। वर्तमान में कुछ जातिगत पहलू जैसे अनुष्ठान, अपवित्रता, पदानुक्रम आदि अपना महत्व खो रहे हैं। वयस्क मताधिकार के सिद्धांत पर आधारित लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था शायद सबसे निर्णायक कारक थी, जिसने बड़े उत्साह के साथ जाति को मजबूत किया। लोकतांत्रिक व्यवस्था की प्रणाली ऐसे अनपढ़ लोगों को संगठित करना है जो वर्ग हित के संदर्भ में राजनीति को नहीं समझ सकते हैं। राजनेता जाति की भावनाओं को भड़काना पसंद करते हैं क्योंकि वे इससे लाभान्वित होते हैं। स्पष्ट वर्ग-आधारित राजनीतिक दलों के अभाव में, विचारधारा और वर्ग के अलावा अन्य कारकों के प्रभावी होने की संभावना अधिक होती है। इस प्रकार जाति, धर्म आदि भारत की लोक राजनीति में प्रासंगिक इनपुट बन जाते हैं।

जातियों के आधार पर लोगों की एकजुटता के बारे में रुडोल्फ कहते हैं कि, “एकता तीन प्रकार की होती है: लंबवत, क्षैतिज और विभाजक। ऊर्ध्वाधर लामबंदी स्थानीय समाजों में पारंपरिक अभिजात वर्ग द्वारा राजनीतिक समर्थन का गठन है जो पारंपरिक सत्ता की स्थिति, अन्योन्याश्रयता और वैधता से संगठित और एकीकृत हैं। क्षैतिज लामबंदी में वर्ग या समुदाय के नेताओं और उनके द्वारा समर्थित संगठनों द्वारा राजनीतिक समर्थन का संगठन शामिल है। अलगाववादी लामबंदी में आता है।

जाति की राजनीति का मुख्य कार्य उच्च से मध्यम जातियों में सत्ता का हस्तांतरण रहा है। वे लोग जो निम्नतम से निम्नतम थे, जैसे अछूत, भूमिहीन किसान, ग्रामीण गरीब, इस नई राजनीतिक व्यवस्था से लाभान्वित नहीं हुए। शहरी पूंजीपति वर्ग के साथ गठजोड़ करके उभरते ग्रामीण अभिजात वर्ग के वर्ग हितों की सबसे अच्छी रक्षा की जा सकती है। इस प्रकार, वयस्क मताधिकार, शराजनीति में जातिश सिद्धांत, लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण, पंचायती राज संस्थाओं ने व्यावहारिक रूप से शासक वर्गों को अपने शासन को मजबूत करने में मदद की। इन नए ग्रामीण और शहरी अभिजात वर्ग ने शराजनीति में जातिश को कायम रखने में निहित स्वार्थ को जन्म दिया है।

ग्रामीण संदर्भ में, शराजनीति में जातिश मतदाताओं को नई लोकतांत्रिक प्रक्रिया से जोड़ने, लामबंदी, संचार, प्रतिनिधित्व और नेतृत्व का एक माध्यम रही है। यह अंतर्संबंध निचली जातियों को अन्य जातियों के शोषण और उत्पीड़न से मुक्त करता है।

भारत में कम्युनिस्टों ने जाति-वर्ग अनुरूपता के आधार पर आंध्र प्रदेश में कृषि-मजदूर वर्ग को संगठित करने के लिए जाति मुहावरों का इस्तेमाल किया। विभिन्न राजनीतिक दलों की कार्रवाई जाति की महत्वपूर्ण भूमिका को साबित करती है। उम्मीदवारों के चयन में जाति के आधार पर चुनावी-अभियान रणनीतियों का स्पष्ट विवरण और मतदाताओं की लामबंदी से पता चलता है कि राजनीतिक दल जातिवाद को दूर करने में बिल्कुल भी दिलचस्पी नहीं रखते हैं।

बल्कि, वे इतने कुशल हैं कि वे जाति के माध्यम से राजनीतिक प्रक्रियाओं को मतदाताओं के दमनकारी बहुमत तक पहुँचा सकते हैं। वे यह स्वीकार करने के लिए यथार्थवादी हैं कि जाति पर जोर ग्राम-पंचायत स्तर पर अधिक, राज्य स्तर पर कम और राष्ट्रीय स्तर पर नगण्य होना चाहिए। कृषक वर्ग के साझा हित के आधार पर विभिन्न मध्यम और निचली जातियों के एक साथ आने से इस समूह को खुद को और मजबूत करने में मदद मिली है।

मतदाताओं की उपस्थिति में तेजी से वृद्धि और पार्टियों के लिए चुनावी समर्थन में तेजी से बदलाव के बावजूद, भारतीय मतदाताओं की श्रृंखला की धारणा आज भी जारी है। यह उस मतदाता की छवि है जिसके लिए मतदान एक रस्म है या, सबसे अच्छा, अतिरिक्त-राजनीतिक दायित्वों को पूरा करने का एक कार्य है। मतदान करते समय, मतदाता न केवल अपने निर्णय के राजनीतिक निहितार्थों से अनजान होता है, बल्कि उसे इस बात की भी चिंता नहीं होती है कि वह चयन प्रक्रिया में शामिल है। राजनीतिक वास्तविकता वह है जो उसके अनुभवों और मूल्यांकन की दुनिया से पूरी तरह बाहर है। अगर वह अपनी पार्टी के समर्थन को एक चुनाव से दूसरे चुनाव में बदल देती है, तो कोई भी राजनीतिक राय उसका मार्गदर्शन नहीं करेगी। यह केवल स्थानीय स्तर पर राजनीतिक दलों के बीच सामाजिक व्यवस्था में बदलाव या 'वोट-बैंकों' के इशारे पर काम कर रहे वोट ठेकेदारों के अनुरोधों का जवाब दे रहा है।

फिर भी एक खुली और प्रति-प्रतिस्पर्धी प्रणाली में, चुनाव ही एकमात्र अवसर और साधन है जिसके माध्यम से व्यवस्था में विकृतियों को ठीक किया जा सकता है। चुनाव आज की सबसे बड़ी जरूरत को पूरा करने में मदद कर सकते हैं: गरीबों को शिक्षित करना, उन्हें राजनीतिक रूप से जागरूक बनाना, और उस दुष्चक्र को तोड़ना जो गरीबों को वोट ठेकेदारों, सामंती जमींदारों और बड़े पूंजीपति वर्गों का अधीनस्थ वोट-बैंक बनाता है।

चुनावी व्यवस्था में खामियां

भारतीय चुनाव प्रणाली की कार्यशैली को कई दोषों और कदाचारों का सामना करना पड़ा है। किसी दल को दिए गए मतों और संसद में जीती गई सीटों के बीच विसंगति, राजनीतिक दलों की बहुलता, दलीय व्यवस्था में व्यक्ति-पूजा, जाति और साम्प्रदायिक निष्ठा का शोषण, मांस और धनबल की भूमिका, सरकारी तंत्र का दुरुपयोग, मतदान केंद्र जैसे कपटपूर्ण कार्य मतदाताओं को पकड़ना, डराना-धमकाना और नकली मतदाता बनकर उन्हें धोखा देना भारतीय चुनाव प्रणाली के मुख्य दोष हैं।

चुनावी कदाचार में मतदान केंद्रों पर जबरन कब्जा करने से लेकर युवा चरमपंथी पार्टियों या उन पार्टियों के गुंडा समूहों को चलाने तक शामिल हैं जो कुछ समुदायों को मतदान से रोकने के लिए चुनाव से पहले उन्हें निशाना बनाकर आतंकित कर सकते हैं। यहां तक कि चुनाव कार्यकर्ताओं को गुप्त सहयोग के लिए रिश्वत दी जाती है या आखं मूंदकर काम करने के लिए धमकाया जाता है। मतदान केंद्रों पर कब्जा करने का शांतिर कृत्य 1957 के दूसरे आम चुनाव से प्रचलन में आया, खासकर बिहार में। यह दृश्य धीरे-धीरे पूरे देश में विभिन्न रूपों और आयामों में फैल गया।

चुनावों में बाहुबल की बढ़ती आवश्यकता ने भी अधिक धन के निवेश को आवश्यक बना दिया। पहले मतदाताओं को व्यक्तिगत रूप से रिश्वत दी जाती थी, तब मतदाताओं के लिए यह अधिक सुविधाजनक था। बाद में अलग से पैसे खिलाने की बजाय मतदान केंद्र पर कब्जा करने वाले कुछ सख्त पहलवानों को खरीदने या जीत सुनिश्चित करने के लिए मतदाताओं को धमकाकर वोट लेने का तरीका अपनाया जाने लगा। इससे राजनीति का बढ़ता अपराधीकरण और एक राजनेता-आपराधिक संबंध का उदय हुआ है। धीरे-धीरे अपराधी दूसरों की मदद करने के बजाय अपने दम पर चुनाव लड़ने लगे। कभी-कभी राजनेताओं ने भी नौकरशाही का राजनीतिकरण करना आवश्यक समझा। इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि सरकार बदलने के साथ अधिकांश उच्च अधिकारी किस पैमाने पर बदलते हैं। यह नौकरशाही को अनुकूलित करने के लिए किया जाता है ताकि यह चुनावों के दौरान सत्ताधारी दल के पक्ष में काम करे।

राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों के बारे में जानकारी एकत्र करने के लिए सरकारी मशीनरी का उपयोग किया जाता है। भाड़े की भीड़ जुटाने, मतदाताओं के लक्षित वर्गों को डराने, स्थानीय तनाव को जन्म देने, स्वेच्छा से चुनाव-ड्यूटी कर्मचारियों की भर्ती करने, मतदाता सूची से अतिरिक्त मतदाताओं को नामांकित करने या हटाने आदि में शामिल सरकारी तंत्र प्रभावी साबित होता है। बदले में, वे नौकरशाही को कुछ पैसा कमाने देते हैं ताकि वे असुरक्षित रहें। इस प्रक्रिया में नौकरशाही के महत्वपूर्ण विभाग राजनेता-आपराधिक-नौकरशाही संबंधों में एकीकृत हो जाते हैं। चुनाव प्रक्रिया को साफ सुथरा बनाने के अपने प्रयासों में चुनाव आयोग ने चुनाव की घोषणा के बाद तबादलों और पदोन्नति पर रोक लगा दी है।

हालांकि महत्वपूर्ण है, इस कदम की उपयोगिता सीमित है क्योंकि नौकरशाही की अपरिवर्तनीय रणनीति आमतौर पर बहुत पहले से तैयार की जाती है। अन्य दुर्व्यवहार संबंधी प्रथाओं पर भी आदर्श प्रतिबंध आचार संहिता के तहत लगाया गया है कि टी.एन. शेषन के समय से ही इसे और सख्ती से लागू किया जाने लगा है।

चुनाव के समय की भागदौड़ एक महंगा प्रयोग बनता जा रहा है। भारत जैसे विशाल देश में यह इसलिए अधिक है क्योंकि यहां का निर्वाचन क्षेत्र आमतौर पर आकार और जनसंख्या दोनों के मामले में बहुत बड़ा है।

व्यापक निरक्षरता के कारण, उम्मीदवार को मतदाताओं के साथ व्यापक व्यक्तिगत संपर्क बनाना पड़ता है, जिसमें भारी खर्च होता है। वर्तमान में चुनाव इतने महंगे क्यों हो गए हैं इसका एक कारण आम आदमी से राजनीतिक दलों की बढ़ती दूरी है। अभियान संचालकों के परिवहन, प्रचार और रखरखाव में बहुत पैसा खर्च किया जाता है। किसी भी कीमत पर चुनाव जीतने की इच्छा और चुनावों में बाहुबल पर बढ़ती निर्भरता ने राजनीतिक दलों और उनके उम्मीदवारों द्वारा संदिग्ध रूप से अगणनीय व्यय को संदिग्ध तरीकों से जुटाना आवश्यक बना दिया है।

चुनाव के खर्च और खर्च पर कानूनी रूप से अनुमत सीमा के बीच की खाई भी समय के साथ चौड़ी होती जा रही है। चूंकि चुनाव प्रचार पर खर्च की सीमा कम है, इसलिए राजनीतिक दलों या शक्तिशाली नेताओं के चुनाव कोष के लिए दान के रूप में काला धन एक सिद्ध तथ्य बन गया है। यह अनुमान लगाया गया है कि सभी चुनावी धन का 90 प्रतिशत बड़े व्यापारिक घरानों से विशेष एहसान या संरक्षण प्राप्त करने की आशा में आता है। यह न केवल योग्य और ईमानदार पुरुषों और महिलाओं को वित्तीय सहायता की कमी के कारण चुनावी प्रतिस्पर्धा से बाहर करता है, बल्कि राजनीति के अपराधीकरण को भी प्रोत्साहित करता है।

धर्म और साम्प्रदायिकता

धर्म और संप्रदाय भारत में मतदान की एक महत्वपूर्ण प्रेरक शक्ति है। विभाजन के बाद धार्मिक एकजुटता के कारण वोटिंग व्यवहार धर्म से प्रभावित हुआ है। कांग्रेस शासन की नीति के कारण मुस्लिम अल्पसंख्यकों के पक्ष में मतदान करते हैं। 1991 में बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद सांप्रदायिकता के आधार पर मतदान व्यवहार प्रभावित होने लगा, जिसे विद्वानों ने कमंडल राजनीति का नाम दिया। चुनाव विद्वानों ने शर्मंडल-कमंडल राजनीति शब्द का बखूबी इस्तेमाल किया है। पिछले दो आम चुनावों में देखा गया कि हिंदुत्व का मुद्दा मतदान की प्रथा पर हावी रहा।

निष्कर्ष

चुनाव एक लोकतांत्रिक देश की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह भारत का भी सच है। 1951-52 से भारत में राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर चुनाव होते रहे हैं। लोग विभिन्न जातियों, धर्मों, भाषाओं, लिंगों के हैं। वे उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। ये कारक चुनावों में मतदान व्यवहार के प्रमुख निर्धारक भी हैं। लेकिन ये कारक तब बहुत प्रभावशाली हो जाते हैं जब इन्हें लोगों की आर्थिक जरूरतों में जोड़ दिया जाता है।

पिछले 30 वर्षों में मतदान व्यवहार के परिणाम देखे गए हैं, त्रिशंकु संसदों का जन्म, छोटे समूहों की सामूहिक शक्ति में भारी वृद्धि, अल्पसंख्यक सरकारें, मिश्रित सरकारें, और राजनीतिक अस्थिरता की अवधि, विशेष रूप से 90 के दशक में। और जो भी नेतृत्व था, उसे किसी तरह सहमति के पुल को बांधने के लिए लगातार संघर्ष करना पड़ा। 1999 में वाजपेयी के नेतृत्व को मंजूरी मिली और राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन को स्पष्ट बहुमत मिला, जिससे धीरे-धीरे स्थिरता को बढ़ावा मिला। इसीलिए 2009 में 15वीं लोकसभा के मतदान परिणामों के बाद कहा गया कि यह स्थिरता के लिए जनादेश है। अप्रैल-मई 2014 में 16वीं लोकसभा का जनादेश, जो नरेंद्र मोदी के पक्ष में गया, इसे सफल बनाने के लिए आवश्यक है। यह है कि हाशिए पर पड़ी अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने के लिए काम किया जाना चाहिए।

यह भी देखा गया है कि मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए लुभावने नारे भी लगाए जाते हैं। उदाहरण के लिए, श्रीमती इंदिरा गांधी की मृत्यु के बाद, राजीव गांधी के साथ इंदिरा गांधी की याद में एक नारा लगाया गया था। वर्तमान सरकार का एक नारा प्रसिद्ध हुआ और हास्य का विषय भी बन गया, जो है- अच्छे दिन आने वाले हैं। इस प्रकार, भारत में मतदान व्यवहार पर एक सरसरी निगाह यह स्पष्ट करती है कि समग्र रूप से मतदान व्यवहार के संबंध में निश्चित प्रवृत्तियों को खोजना व्यावहारिक स्थिति नहीं है। हर साल देश की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति इतनी तेजी से बदल रही है कि सुरक्षा का यह सवाल मतदान को सबसे ज्यादा प्रभावित करता है।

वोटिंग के सारे समीकरण कुछ साल भी नहीं टिकते, जिससे कोई पार्टी अपने एकाधिकार का दावा भी नहीं कर सकती। पंचायती राज, सामाजिक न्याय, आर्थिक उदारीकरण की नीतियों ने चुनावी राजनीति को झकझोर कर रख दिया है। ऐसे में भारतीयों के मतदान के व्यवहार को पूर्वानुमेय या पूर्वानुमेय नहीं कहा जा सकता है। भारत में पहले भी कई चुनावी अध्ययन हुए हैं, जिनसे मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण किया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. ब्रास, पॉल आर. (1985), कास्ट, फैक्शन, एण्ड पार्टी इन इंडियन पोलिटिक्स: इलैक्शन स्टडीज, चाणक्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. चौबे, एस.के. (1985), इलैक्शन पोलिटिक्स इन नोर्थ-ईस्ट इंडिया, ओरियंट लॉंगमैन, ई.पी.डब्ल्यू, वोल्यूम 2 (17): 797.799।
3. सेठी, रेणु (1988), “डिटर्मिनेंट्स ऑफ वूमन्स एक्टिव पोलिटिकल पार्टिसिपेशन, ई.पी.डब्ल्यू, वोल्यूम 49 (4): 565.579।
4. मोइन, शकीर, (2019), “इलैक्शन पोलिटिक्स ऑफ माइनोरिटिज एण्ड इंडियन पोलिटिकल सिस्टम”: इन गुरप्रीत महाजन, (सं.) रिडिंग इंडियन सलेक्शन फ्राम ई.पी.डब्ल्यू, नई दिल्ली, आरियंट ब्लैक स्वान।
5. संजय कुमार (2009), “राइज ऑफ प्लेबियंस: द चेंजिंग फेस ऑफ द इंडियन लेजिस्लेटिव एसेंब्लिज”, न्यू दिल्ली, राउटलेज।
6. पुष्पेन्द्र, (1999), “दलित असर्सन थ्रू इलैक्शन पोलिटिक्स”, ई.पी.डब्ल्यू, वोल्यूम 34 (36): 2609.2618।
7. डागर, रेणुका (2015), “जेन्डर नेरेटिव्स एण्ड इलैक्सेस: मेनडेट फोर सेप्टी, डवलपमेंट ओर राइट्स”, सेज प्रकाशन, न्यू दिल्ली।
8. शाह, घनश्याम (2002), कास्ट एण्ड डेमोक्रेटिक पोलिटिक्स इन इंडिया”, न्यू दिल्ली, परमानेंट ब्लैक।
9. पॉल वैलेश (2015), “इंडियाज 2014 इलैक्सेस: ए. मोदी लेड बी.जे.पी. स्वीप”, सेज प्रकाशन, न्यू दिल्ली।

यशपाल का मार्क्सवादी साहित्य एवं कला-चिन्तन

डॉ० अंजू बाला

मार्क्सवादी कला-चिन्तन के क्षेत्र में यशपाल का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है। वे बहुमुखी, बहुआयामी एवं प्रतिभासम्पन्न रचनाकार माने जाते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन 'चरैवेति' का अप्रतिम उदाहरण है। उनकी जीवन अविरत संघर्ष-साधना तथा क्रान्ति का द्योतक है। साधारण जन के समस्त आचार-विचार विशेष तौर पर शोषित वर्ग अपनी जटिलताओं के साथ यशपाल के साहित्य में चित्रित है। मार्क्सवादी साहित्य एवं कला-चिन्तन के पुरस्कर्ता दार्शनिक- राजनीतिक विचारकों एवं नेताओं के अन्तर्गत मार्क्स और एंगेल्स के अतिरिक्त लेनिन (जिन्हें सर्वप्रथम मार्क्सवादी दर्शन को व्यावहारिक रूप देने का श्रेय प्राप्त है) स्टालिन, ट्रट्स्की, एशनोव तथा माओ-से-तुंग आदि की गणना की जा सकती है। रूस और चीन के अतिरिक्त कतिपय अन्य देशों के भी साम्यवादी नेताओं ने जब तब अपने देश के साहित्यकारों एवं कलाकारों के समक्ष साहित्य एवं कला-निर्माण सम्बन्धी निर्देश प्रस्तुत किए हैं, परन्तु उनके निर्देशों का समाहार उपर्युक्त विचारकों एवं नेताओं के चिन्तक के अन्तर्गत हो जाता है।¹

मार्क्सवादी साहित्य एवं कला-चिन्तन की परम्परा के अन्तर्गत सबसे प्रमुख योगदान उन लोगों का है, जो मूलतः साहित्य एवं कला के क्षेत्र में कार्य करने वाले लोग हैं, और जिन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा के सन्दर्भ में साहित्य एवं कला के मूलभूत प्रश्नों पर विचार किया है और इस प्रकार एक सुव्यवस्थित मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र की नींव रखी है। ऐसे लोगों में प्रथमतः वे साहित्य चिन्तक हैं, जिन्होंने प्रधान रूप से सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र को सम्पन्न किया है, द्वितीय वे रचनाकार तथा लेखक हैं, जिन्होंने रचनात्मक निर्माण के द्वारा एक स्तर पर मार्क्सवाद के साहित्य तथा कला-सम्बन्धी दृष्टिकोण की पुष्टि की है, दूसरे स्तर पर चिन्तन के क्षेत्र में भी कुछ अत्यन्त मूल्यवान् निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। इन रचनाकारों तथा विचारकों का सम्बन्ध किसी एक देश ख विदेश से न होकर दुनिया के तमाम देशों से है, जो इस तथ्य का परिचायक है कि मार्क्सवादी विचारधारा ने समूचे विश्व के बुद्धिजीवियों को अपनी ओर आकर्षित किया, फलतः समूचे विश्व में साहित्य-रचना तथा साहित्य-चिन्तन की एक नयी परम्परा का सूत्रपात हुआ। विभिन्न देशों के इन कला-मर्मज्ञों एवं सर्जकों में जी०वी० प्लेखानोव, ए०बी० लूना चरस्की, मैक्सिम गोर्की, जार्ज थाम्पसन, राल्फ फास्क आदि की गणना की जा सकती है।²

मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन का मूल स्रोत मार्क्सवादी विचार-दर्शन के प्रणेता मार्क्स और एंगेल्स के विचारों में उपलब्ध होता है। जीवन के अन्य बुनियादी सवालियों के साथ जब तक उन्होंने साहित्य एवं कला सम्बन्धी प्रश्नों पर भी अपने महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं।³ मार्क्सवाद के जन्मदाताओं- कार्ल मार्क्स और एंगेल्स के सम्बन्ध में लिखते हुए लेनिन ने कहा- “मजदूर वर्ग की मार्क्स और एंगेल्स ने जो सेवाएँ की हैं उन्हें चन्द शब्दों में इस प्रकार बताया जा सकता है : उन्होंने मजदूर वर्ग को सिखलाया कि वह अपने को जाने और अपने बारे में सचेत हो जाएँ।”⁴ अतः कहा जा सकता है कि मार्क्सवाद समाज में समता (कम्यूनिज्म) लाने की एक विधि अथवा वैज्ञानिक विचारधारा है। यशपाल ने इससे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार किया है। “मैं कम्यूनिज्म को सर्वसाधारण जनता की मुक्ति का साधन वैज्ञानिक विचारधारा समझता हूँ। अपनी सम्पूर्ण शक्ति को उस वाद के प्रति ‘देय’ स्वीकार करने में मुझे कोई संकोच नहीं है।”⁵ लेकिन यशपाल के अनुसार बीते समय के ज्ञान, अनुभवों और चिन्तन के आधार पर बने सिद्धान्त विकास की तेज दौड़ में शीर्ष ही रूढ़ि बन जाते हैं। इसलिए यह उचित नहीं कि मार्क्सवाद की शुद्धता के लिए मार्क्सवाद को एक हांडी में रख जमीन में गाड़ कर उसके ऊपर खड़े होकर मार्क्सवाद के लिए लड़ा जाए।⁶ बल्कि “परिस्थितियों के अनुसार चिन्तन की स्वतन्त्रता के अधिकार के लिए किसी भी ‘वाद’ या शब्द - प्रमाण की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।”⁷ अतः यशपाल के अनुसार - “कल्पना को यथार्थ या व्यवहार में परिणत करते समय चिन्तन पर ताला नहीं लगा दिया जा सकता। मार्क्स के लिए समाजवाद की स्थापना एक महत्वाकांक्षा या कल्पना ही थी परन्तु लेनिन के लिए कठिन व्यावहारिक समस्या।”⁸ लेनिन ने क्योंकि मार्क्सवाद को क्रियात्मक रूप में परिणत करते समय उसमें किञ्चित् परिवर्तन किया था इसलिए यशपाल की दृष्टि में भी समय, स्थान, परिस्थिति और विचारधारा के अनुसार मार्क्सवादी की पद्धति में परिवर्तन अथवा पुनर्विचार की सम्भावना है। स्पष्ट है कि सिद्धान्त रूप से मार्क्सवाद से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हुए भी यशपाल उसको क्रियात्मक अथवा व्यावहारिक रूप में परिणत करने के लिए समय, स्थान, परिस्थिति और विचारधारा का महत्त्व स्वीकार करते हैं।⁹

कार्ल मार्क्स ने जिस दर्शन को प्रतिपादित किया है उसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहते हैं। यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही मार्क्सवादी दर्शन का मूल सूत्र है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में सम्मिलित ‘द्वन्द्ववाद’ और ‘भौतिकवाद’ दोनों शब्दों को अलग-अलग व्याख्या के माध्यम से ही इसे अच्छी प्रकार समझ पाएंगे। “द्वन्द्ववाद या डायलेक्टिक्स मार्क्सवाद की आत्मा हैं यह एक अत्यन्त प्राचीन विचार प्रक्रिया है। मार्क्स के अनुसार यह एकमात्र सांगोपांग सर्वांगीण तथा सर्वोच्च चिन्तन प्रणाली है। यद्यपि द्वन्द्ववाद को काण्ट और हेगेल ने दुर्बोध एवं रहस्यावृत्त बना डाला है फिर भी यह एक ऐसी विचारा - प्रणाली है जिसका व्यवहार प्रत्येक वैज्ञानिक, प्रत्येक दार्शनिक यहाँ तक कि प्रत्येक साधारण मनुष्य भी कभी न कभी करता ही है। जिस प्रकार तर्कशास्त्र की रचना के पूर्व ही लोग तार्किक ढंग से सोचते थे उसी प्रकार द्वन्द्वशास्त्र की रचना के पूर्व द्वन्द्वात्मक विधि से चिन्तन करते थे।”¹⁰

एंगेल्स के शब्दों में- “द्वन्द्ववाद क्या है यह जानने से पहले भी लोग द्वन्द्वात्मक प्रणाली से चिन्तन करते थे, जिस प्रकार गद्य क्या है - यह जानने से पहले भी लोग गद्य बोलते थे।”¹¹ मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की मंगलचारिक वन्दना करते हुए लेनिन ने लिखा- “मार्क्सवाद का दर्शन फौलाद के एक ठोस पिण्ड की तरह है। आप इसमें से एक भी मूलभूत धारणा, एक भी सारभूत अंश नहीं निकाल सकते। यदि आप ऐसा करते हैं तो आप सात्य वस्तु को त्याग देते हैं, आप पूँजीवादी, प्रतिक्रियावादी झूठ के हाथों में पड़ जाते हैं।”¹² लेनिन ने मार्क्स के भौतिकवाद का समर्थन अपने Materialism and Empirio-criticism

में किया है। इस पुस्तक में लेनिन ने अपने तर्क में यह स्वीकार किया है कि प्रत्येक दर्शन को या तो आदर्शवादी होना चाहिए या फिर भौतिकवादी क्योंकि द्वन्द्ववाद इन्हीं दो के बीच चलता है।¹³ श्री जी० कुर्सानोव द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधारभूत सिद्धान्त' में कहा गया है कि- "जहाँ तक सार तत्त्व का प्रश्न है, दोनों में कुछ बातें समान हैं, परन्तु उनमें अन्तर भी है। गति सामान्य तथ्य के रूप में ही परिवर्तन की ओर इंगित करती है, विश्व में होने वाले समस्त परिवर्तनों को सूचित नहीं करती, जबकि विकास गति का एक निश्चित दिशा में सक्रिय होने वाला रूप है। यह गति का उच्चस्तरीय रूप है। जो विकास की वास्तविक दिशा निर्धारित करता है। विकास का अर्थ पुराने निषेध और नये का प्रस्तुतीकरण है, और यही तथ्य विकास को अन्तर्विरोधी और द्वन्द्वात्मक रूप में प्रतिष्ठित करता है।"¹⁴ अतः कहा जा सकता है कि मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद हर नये व्यापार अथवा हर उस वस्तु को जो नया होने का दावा करती है, सचमुच नया नहीं मान लेता। मार्क्स भौतिक पदार्थ को सबसे अधिक महत्त्व देता है। यशपाल के शब्दों में मार्क्स के अनुसार- "जीवन की उत्पत्ति भी इन भौतिक पदार्थों के विशेष परिस्थितियों में आने से और उनमें विशेष भौतिक और रासायनिक परिवर्तनों के योग से होती है।"¹⁵ इसीलिए मार्क्स इच्छा और चेतना को जीव के शरीर के अंग मस्तिष्क के तन्तुओं की क्रिया से ही इच्छा और चेतना पैदा होती है। मनुष्य की सत्ता उसको चेतना से नियतकृत नहीं होती बल्कि उसकी सामाजिक सत्ता से ही उसकी चेतना नियतकृत होती है।"¹⁶

यशपाल ने मार्क्स के इस सिद्धान्त को अपनी रचनात्मक सृष्टि के लिए बीज रूप में ग्रहण किया है। उन्होंने भी सामाजिक व्यवस्था के विकास में आर्थिक वैषम्य को ही प्रमुखता दी है। यशपाल के अनुसार साहित्य में इन विषयों का विवेचन समाज में फैली विकृतियों तथा आदर्श के नाम होने वाले अत्याचारों को दिखाने का माध्यम है। अतः कहा जा सकता है कि मार्क्सवादी दर्शन यशपाल की जीवन- दृष्टि का एक महत्वपूर्ण अंग है। यशपाल ने मार्क्सवाद के आर्थिक पक्ष का ही नहीं उसके ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण का भी समर्थन किया है। मार्क्स का कहना है कि- "समाजवादी कार्यक्रम का धर्म है कि वह श्रमिकों को यह बताए कि वह अपनी कार्यक्षमता को वास्तविक रूप से किस प्रकार श्रेष्ठता प्रदान करे अथवा स्वाभाविक आर्थिक संघर्ष को सुयोजित राजनीतिक संघर्ष का रूप देने के लिए अपने आप को किस प्रकार तैयार करे।"¹⁷

मार्क्सवाद के अनुसार- 'आधुनिक राज्य भी मात्र एक पूँजीवादी संगठन है। वर्तमान राज्य का उद्देश्य भी पूँजीवादी संगठन है। वर्तमान राज्य का उद्देश्य उत्पादन प्रणाली की सामान्य बाह्य परिस्थितियों को बनाए रखना और मजदूरों तथा व्यक्तिगत पूँजीपतियों के हमले से उस प्रणाली की रक्षा करना है। स्वरूप चाहे जो भी हो परन्तु आधुनिक राज्य वास्तव में एक पूँजीवादी शासन- यन्त्र है। वह पूँजीपतियों का राज्य, सब पूँजीपतियों का आदर्श सामूहिक संगठन है। राज्य का जितना ही अधिक मात्रा में अधिकार उतनी ही मात्रा में वह पूँजीपतियों का सामूहिक संगठन बनता जाता है, और उतनी ही मात्रा में वह नागरिकों का शोषक बन जाता है। मजदूर मजदूर ही रहते हैं पूँजीवादी सम्बन्धों का अन्त नहीं होता।"¹⁸

यशपाल ने मार्क्स के सिद्धान्तों को अपने उपन्यासों में ज्यों का त्यों पिरो दिया है। उन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था की गहरी और कटु आलोचना की है। मार्क्सवाद समाज के लिए ऐसे शासन या व्यवस्था को जरूरी समझता है जिसमें किसी भी श्रेणी का शोषण न हो सके। यह तभी सम्भव है जब शासन केवल परिश्रम करने वाली श्रेणी का ही हो। समाज में वास्तविक समानता लाने के लिए राजनीतिक सत्ता का मजदूर वर्ग के हाथ में होना अनिवार्य है। मार्क्स के अनुसार - "मजदूर राज्य के सर्वहारा वर्ग धीरे - धीरे बुर्जुआ वर्ग की समस्त पूँजी को अपने अधिकार में करने के लिए उत्पत्ति के समस्त उपकरणों का राज्य अर्थात् शासक श्रेणी के रूप में संगठित सर्वहारा के हाथ में केन्द्रीयकरण करने और समस्त उत्पादक शक्तियों की शीघ्रतिशीघ्र वृद्धि करने के लिए अपनी राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करेगा।" उनका कहना है कि आरम्भ में मापदण्डों के आधार पर बुर्जुआ वर्ग की समस्त सम्पत्ति के अधिकारों और उत्पादन की दशाओं पर निरंकुश आक्रमण किए बिना यह (शासन) अमल में नहीं लाया जा सकता।"¹⁹ इस प्रकार मार्क्स उचित राजनीतिक सत्ता हासिल करने के लिए क्रान्ति को भी आवश्यक समझता है। यशपाल के अनुसार- "राज्यसत्ता के दैवी-अधिकार और प्रजातन्त्रवादियों के राज्यशक्ति की स्थापना के सामाजिक समझौते के सिद्धान्त पर मार्क्सवाद विश्वास नहीं करता क्योंकि इस इतिहास और तर्क की दृष्टि से प्रमाणित नहीं होता।" इसलिए मजदूर-राज्य की स्थापना एवं वर्गों के संघर्ष को समाप्त करके समाज में वास्तविकता लाने के लिए ही मार्क्स ने 'वैज्ञानिक समाजवाद' की नींव डाली थी।"²⁰

यशपाल के अनुसार मार्क्स की दृष्टि में समाजवाद में समता का आदर्श है - "प्रत्येक को अपने विकास और उन्नति तथा जीवन-निर्वाह के उपायों की प्राप्ति के लिए समान अवसर हो और प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिश्रम का फल पाने का भी समान अधिकार हो। यशपाल ने समाजवाद के इसी आदर्श को 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही' में व्यक्त किया है। इसी जीवन दृष्टि से प्रेरित होकर तथा इसी समाजवादी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यशपाल के पात्र निरन्तर संघर्ष करते हुए देखे जा सकते हैं। राजनीतिक क्षेत्र में यशपाल क्रांति का विरोध करते हैं और उसे पिछड़ी सभ्यता का प्रतीक मानते हैं तथा समाजवाद का ही समर्थन करते प्रतीत होते हैं। यशपाल ने 'समाजवाद' की व्याख्या इस रूप में की है- "समाजवाद अनेक नुस्खों में से एक है। उसका भी अपना तरीका है। वह तरीका है, समाज के ऐतिहासिक निदान के आधार पर। समाज की आदिम अवस्था से वह इस रोग के लक्षणों की खोज आरम्भ करता है और बताता है कि समाज का जीवन पैदावार के ढंग और साधनों पर निर्भर करता है और विषमता का कारण मनुष्य-समाज के पैदा कर सकने और खर्च कर सकने में असमानता है। वह बताता है कि अवस्था बदलने पर उपचार और व्यवहार भी बदल जाना चाहिए। ऐसा न करने से समाज की व्यवस्था बदल जाने पर भी यदि व्यवस्था के लिए बन्धन हो जायेगी और व्यवहार अवस्था को अव्यवस्थित कर देगा। समाजवाद - समाजशास्त्र को विज्ञान की सहायता से भौतिक तथ्यों के आधार पर खड़ा करता है, जहाँ मनुष्य ही सर्वोपरि स्वतन्त्र शक्ति है।"²¹

मार्क्सवादी दृष्टि से साहित्य - सर्जना करने वाला कलाकार समाज के वर्गों को हमेशा ध्यान में रखता है। इसलिए वर्ग-संघर्ष का चित्रण उसकी रचना में अनिवार्य रूप में प्रमुख स्थान पाता है। शोषणमूलक पूँजीवादी व्यवस्था के अत्याचारों और विसंगतियों का यथार्थवादी चित्रण करते हुए समाजवादी रचनाकार उस गहराई तक अपनी दृष्टि ले जाता है जहाँ पर प्रगतिशील शक्तियों का संघर्ष प्रतिगामी शक्तियों के साथ चलता रहता है। संघर्ष की उस भूमि को देखता और दिखाता हुआ समाजवादी कलाकार शोषित और सर्वहारा वर्ग के पात्रों का निर्माण इस ढंग से करता है कि पूँजीवादी व्यवस्था के तमाम उत्पीड़नों और दुःख-दर्दों को झेलते हुए तथा टूटते और मिटते हुए वे प्रगति की ओर अग्रसर होते रहते हैं। जीवन के अनेकानेक दुःख संघर्षों से गुजरते हुए भी वे निराशा को पास फटकने नहीं देते, जीवन से विमुख नहीं होते और इस प्रकार जीवन में उनकी गहन आस्था प्रकट होती है। साहित्य एवं कला - सम्बन्धी यही

दृष्टिकोण आगे भी मान्य रहा रूसी साम्यवादी दल की तेइसवी काँग्रेस में साम्यवादी दल के महामन्त्री के रूप में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय कामरेड ब्रेझनेव ने यह स्पष्ट करते हुए कि “पार्टी साहित्य एवं कला – सम्बन्धी प्रश्नों पर किसी भी प्रकार के प्रशासनिक दबावों का विरोध करती है, इस तथ्य को भी स्पष्ट किया कि दलगत भावना तथा वर्ग- दृष्टिकोण ही सांस्कृतिक मामलों में पार्टी का एकमात्र दृष्टिकोण है, साहित्य एवं कला भी जिससे अलग नहीं है।”²²

यशपाल ने यथार्थ के साथ आदर्श को लिया है परन्तु उनका आदर्श मार्क्सवादी या समाजवादी आदर्श है। यशपाल ने कला के समस्त उपकरण स्थूलजगत् से ही ग्रहण किए हैं। “मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि सृजनशील लेखक और कवि अपनी भौतिक परिस्थितियों के कारण ही अपने अन्तर का वह भाव स्पर्श पाता है जो उसे आगे बढ़ा कर यश, मान और धन-वैभव तक देता है। जीवन के यथार्थ से उनका परिचय वहीं से आरम्भ होता है, उसकी आध्यात्मिक या कलात्मक कसौटी भी स्थूलजगत् ही है।” इसलिए कह सकते हैं कि यशपाल की दृष्टि में ‘कला कला के लिए’ वाला सिद्धान्त अधिक उपयोगी नहीं है क्योंकि साहित्यकार अथवा कलाकार जीवन से पृथक् होकर कलात्मक कार्य नहीं कर सकता उसके भाव और विचार इसी संसार के होते हैं। यशपाल कहते हैं- “कला को कला से निर्लिप्त क्षेत्र में ही सीमित न रखकर मैं उसे भावों का वाहक बनाने की चेष्टा करता हूँ। मेरे विचार से कला का उद्देश्य जीवन में पूर्णता की प्राप्ति है।”²³ यशपाल के अनुसार जीवन-विकास के प्रयत्नों की प्रेरणा देना कला का उद्देश्य है। मार्क्सवादी होने के नाते यशपाल साहित्य को सोद्देश्य मानते हैं और कला की सामाजिक उपयोगिता पर बल देते हैं। उनके मतानुसार कोई भी कलाकार सामाजिक यथार्थ से पलायन का कल्पना लोक की उड़ानों के बल पर जीवित नहीं रह सकता। वस्तुतः वे कला को साधन मानते हैं- विचारों के प्रचार का साधन। अतएव कह सकते हैं कि यशपाल की दृष्टि मार्क्सवादी है और उनके साहित्य का विषय सामाजिक यथार्थ है। पारम्परिक मूल्य से अभिप्राय उन मूल्यों से है जो पुरानी परम्परा से चले आ रहे हैं। साहित्य की सही ढंग से रचना भी एक कला है। साहित्य रचना की कला पुराने समय से चली आ रही है। “साहित्य शास्त्रियों ने, जिनमें अधिकांश दार्शनिक अथवा दर्शन से प्रभावित थे, जब प्राचीन भारतीय साहित्य के मूल्यांकन का कार्य आरम्भ किया तो उन्होंने किसी-न-किसी रूप में रसवाद को आगे बढ़ाया।” भरतमुनि ने नाटक के मानदण्ड के रूप में रस- सिद्धान्त की अक्षुण्ण स्थापना की, जो कालान्तर में काव्य का व्यापक लक्ष्य माना गया। रसवाद के विरोधी आचार्य भामह, वामन, दण्डी, आनन्द, वर्द्धन एवं कुन्तक भी ‘रस’ की महत्त्वपूर्ण स्थिति का खण्डन नहीं कर सके।²⁴

मार्क्सवाद एक क्रान्तिकारी जीवन दर्शन है। मार्क्स ने दर्शन के क्षेत्र में व्यक्ति के स्थान पर समाज को स्थापित कर एक युग तक परिवर्तन उपस्थित कर दिया। “मार्क्सवाद ने जीवन, समाज एवं सृष्टि की द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद व्याख्या प्रस्तुत की, हर जगह गतिशीलता और विकास को देखने का दावा करता है। मार्क्सवाद मानता है कि मनुष्य समाज के ऐतिहासिक विकास को नहीं लाँघ सकता। ‘बिइंग डिटरमिंस द कान्शसनेस’ भूत और चेतना – बाह्य और अन्तर्जगत् के सम्बन्ध में मार्क्स का मूलभूत सिद्धान्त यही है। “वस्तु जगत् के बाह्यनिष्ठ अस्तित्व में मार्क्सवाद का प्रबल विश्वास है। उसके अनुसार जीवन के भौतिक आधार और हमारे इन्द्रिय जगत् की स्थूल आवश्यकता का प्रभाव मानव के चेतना जगत् पर अनिवार्य रूप से पड़ता है।”²⁵ दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि परिस्थितियों के अनुरूप भावनाओं का जन्म होता है। समाज में ऐतिहासिक विकासक्रम के मूल में उसकी आर्थिक परिस्थितियाँ हमेशा क्रियाशील रहती हैं। कला साहित्य का क्षेत्र भाव-जगत् है। साहित्यकार हमेशा सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न भावों को स्वर देकर उन्हें समाज के या समाज की व्यवस्था के अनुसार बनाने का प्रयत्न करता है। साहित्यकार का भाव – जगत् सामाजिक चेतना से प्रेरित होकर समाज को उसी के अनुसार आचरण करने के लिए प्रेरित करता है। परन्तु कभी-कभी अगर भाव में परिवर्तन होता है तो सामाजिक चेतना में एक नया मोड़ लाने का भी प्रयास करता है।

“मार्क्सवाद के अनुसार सच्चा और जीवित साहित्य सामाजिक क्रान्ति के आधार पर वर्गहीन समाज की स्थापना में सहायता प्रदान करने वाला एक प्रबल अस्त्र है। मार्क्सवादी दृष्टि से वही साहित्य साहित्य पद का अधिकारी है जो वर्ग-संघर्ष में सहायता प्रदान करता है। लेनिन साहित्य को वर्ग-संघर्ष का एक जबर्दस्त अस्त्र स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में साहित्य जनता को राजनीतिक दृष्टि से शिक्षित करता है।” मार्क्सवाद जीवन और जगत् में सर्वत्र द्वन्द्वात्मक स्थिति को स्वीकार करता है। वाद, प्रतिवाद और संवाद की स्थितियों से गुजरता हुआ समाज विकास की मंजिल को तय करने में निरन्तर प्रयास करता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद जीवन को स्थिर न मानकर निरन्तर गतिशील स्वीकार करता है। गति उसके अनुसार आवश्यक एवं अनिवार्य है। गति के प्रवाह में हमेशा उन्नति होती रहती है। लगातार विकास की प्रक्रिया में कुछ पैदा होता रहता है और उससे नयी उन्नति भी दिखाई पड़ती है। साथ ही कुछ लुप्त होता हुआ अपने रूप को समाप्त करता हुआ भी दिखाई पड़ता है। लेकिन भाववादियों के, अध्यात्म में यह चीज नहीं पायी जाती।” अतः कह सकते हैं कि मार्क्सवादी अवधारणाओं के अनुसार साहित्य द्वन्द्वात्मकता प्रस्तुत करने वाला है।

मार्क्सवाद समाज में (कम्यूनिज्म) समता लाने की एक विधि अथवा वैज्ञानिक विचारधारा है। यशपाल ने इससे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार किया है। उनका कहना है- “मैं कम्यूनिज्म को सर्वसाधारण जनता की मुक्ति का साधन वैज्ञानिक विचारधारा समझता हूँ। अपनी सम्पूर्ण शक्ति को उस वाद के प्रति ‘देय’ स्वीकार करने में मुझे कोई संकोच नहीं है।” लेकिन यशपाल का मानना है कि यह उचित नहीं कि- “परिस्थितियों के अनुसार चिन्तन की स्वतन्त्रता के अधिकार के लिए किसी भी ‘वाद’ शब्द –प्रमाण की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।” यशपाल के अनुसार – “कल्पना को यथार्थ या व्यवहार में परिणत करते समय चिन्तन पर ताला नहीं लगा दिया जा सकता। मार्क्स के लिए समाजवाद की स्थापना एक महत्वाकांक्षा या कल्पना ही थी परन्तु लेनिन के लिए कठिन व्यावहारिक समस्या, क्योंकि लेनिन ने मार्क्सवाद को क्रियात्मक रूप में बदलते समय उसमें थोड़ा परिवर्तन किया था। इसलिए यशपाल की दृष्टि में भी समय, स्थान, परिस्थिति और विचारधारा के अनुसार मार्क्सवाद की पद्धति में परिवर्तन की अथवा पुनर्विचार की सम्भावना है।”²⁶ अतः स्पष्ट है कि सिद्धान्त रूप से मार्क्सवाद से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हुए भी यशपाल उसको क्रियात्मक अथवा व्यावहारिक रूप में परिणत करने के लिए समय, स्थान, परिस्थिति और विचारधारा को महत्त्व स्वीकार करते हैं।

मार्क्सवाद जीवन और जगत् में सारी जगह द्वन्द्वात्मक स्थिति को स्वीकार करता है। मार्क्स तथा एंगेल्स ने द्वन्द्ववाद को सृष्टि तथा समाज के विकास- नियमों का अध्ययन करने वाली एक सबसे अच्छी पद्धति के रूप में मान्यता दी है। मार्क्स कथन विचारणीय है कि- “मेरी द्वन्द्वात्मक पद्धति हेगेलियन पद्धति से भिन्न नहीं उसकी प्रत्यक्ष विरोधी भी है। हेगेल के लिए विचार – प्रक्रिया जिसे उसने फ़क़म या प्रत्यय कहा है वस्तु जगत् की सृष्टि है, और वस्तु जगत् उस

फ़क़्त या प्रत्यय का बाह्य प्रतिबिम्ब, जबकि मेरे लिए फ़क़्त या प्रत्यय और कुछ नहीं, मानवीय मस्तिष्क द्वारा प्रतिबिम्बित भौतिक जगत् का ही प्रतिरूप है।”²⁷ मार्क्स के इसी प्रयास को लक्ष्य कर उनके शब्दों का आधार लेते हुए कहा जा सकता है कि, हेगेल की द्वन्द्वात्मक पद्धति वस्तुतः सिर के बल खड़ी थी, जिसे मार्क्स ने पैरों के बल खड़ा किया। मार्क्स के अर्थ में द्वन्द्ववाद और कुछ नहीं “बाह्यजगत् तथा मानवीय विचारों से सम्बन्धित गति के सामान्य नियमों का विज्ञान है।” एंगेल्स ने लिखा है कि- “प्रकृति द्वन्द्ववाद की परख के लिए वास्तविक कसौटी है, प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में होने वाली नाना खोजों ने जिसके लिए प्रभूत सामग्री प्रदान की है। उसने अन्ततः इसे सिद्ध कर दिया है कि प्रकृति को विकास-प्रक्रिया अधिभूतवादी नहीं, द्वन्द्ववादी है।”²⁸

मार्क्सवाद कला और साहित्य को वर्ग-भावना से भिन्न नहीं मानता। मार्क्सवाद तटस्थता को प्रश्रय नहीं देता वह अनिवार्य रूप से समाज में दो वर्गों- श्रमिक और पूँजीपति के अस्तित्व को स्वीकार करता है। आज सबका लक्ष्य श्रमिक क्रान्ति के द्वारा पूँजीवाद का विनाश और वर्गहीन समाज की रचना है। अतएव साहित्य या तो श्रमिकों द्वारा परिचालित क्रान्ति को पोषण, प्रश्रय और निर्देश देकर उसे आगे बढ़ाएगा अथवा शासकों, पूँजीपतियों का गुणगान करेगा। इसके अलावा उसके लिए कोई दूसरा रास्ता ही नहीं है। मार्क्सवाद के अनुसार सच्चा और जीवित साहित्य सामाजिक क्रान्ति के आधार पर वर्गहीन समाज की स्थापना में सहायता प्रदान करने वाला एक प्रबल अस्त्र है। मार्क्सवादी दृष्टि में वही साहित्य साहित्य-पद का अधिकारी है जो वर्ग-संघर्ष में सहायता प्रदान करता है। लेनिन साहित्य कला को वर्ग- संघर्ष का एक जबर्दस्त अस्त्र स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में साहित्य जनता को राजनीतिक दृष्टि से शिक्षित करता है।”²⁹

साहित्य में शोषित वर्ग हमेशा उपेक्षित रहा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यद्यपि यह अधिक सही है कि शासक समर्थित भावधारा हमेशा प्रधान रही है। “सामन्तयुगीन साहित्य में इसी आदर्श को प्रतिष्ठित करने का प्रयास है। पूँजीवादी व्यवस्था ने जब सामन्तवादी व्यवस्था को समाप्त कर आर्थिक क्षेत्र में निर्विवाद व्यापारिक स्वतन्त्रता का दावा किया तो उसे अपने स्वार्थों को प्रश्रय देने के लिए व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की घोषणा करनी पड़ी। इस वैयक्तिक स्वतन्त्रता के मूल में शोषण को सम्भव बनाने का उद्देश्य छिपा था। पूँजीवादी समाज व्यवस्था जिस प्रकार अपने अन्तर्विरोधों के कारण सर्वहारा को संगठित होकर आगे आने का अवसर प्रदान करती है उसी प्रकार बूर्जुआ साहित्य और संस्कृति के अन्तर्द्वन्द्व भी मानव-स्वाधीनता के लिए परोक्ष रूप से राह देने का काम करते हैं।” महान् कलाकार ने हमेशा हर युग में सामान्य मानव की भावधारा को किसी न किसी रूप में व्यक्त किया है। यद्यपि उसके साहित्य का मूल स्वर युगीन व्यवस्था ही रही है। क्रान्ति के दर्पण तालस्ताय में लेनिन ने यदि एक ओर समाज की सच्ची आलोचना देखी तो दूसरी ओर उसमें देहाती, जमींदार का रूप भी उभरता पाया, जो ईसामसीह के पीछे पागल बना घूमता है। खुलेआम अपनी छाती पीटते हुए और चिल्लाते हुए दिखाई पड़ता है। “मैं पतित हूँ, मैं नीच हूँ, लेकिन मैं अपना नैतिक धरातल ऊँचा कर रहा हूँ। मैंने गोश्त खाना बिलकुल छोड़ दिया है और सिर्फ चावल पर ही दिन गुजारता हूँ।”³⁰

मार्क्सवादी साहित्यकार होने के नाते यशपाल के साहित्यकला में वस्तुतः यह देखने को मिलता है कि अनेक समस्याओं के मूल में आर्थिक भूमिका ही कारण रूप में विद्यमान है। यशपाल ने अपने कई उपन्यासों जैसे देशद्रोही, ‘दादा कामरेड’ के हरीश के माध्यम से और शृङ्गार सचर आदि उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष दिखाया है। यशपाल ने अपने साहित्य में पूँजीवाद, वर्ग-संघर्ष को सही तरीके से दर्शाया है। उनके साहित्य में ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने ये संघर्ष अपनी आँखों से देखे हों। और वास्तव में ऐसा ही है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि यशपाल ने मार्क्स के राजनीतिक विचारों तथा साम्यवादी और समाजवादी दर्शन को ही मूल रूप से ग्रहण किया है। वर्तमान पूँजीवाद समाज में अर्थ के आधार पर क्या कुछ सम्भव नहीं है? अर्थ ही शोषण का मुख्य कारण है। दो वर्गों के संघर्ष को ही उन्होंने अपने राजनीतिक उपन्यासों में दिखाया है। मार्क्स मजदूर संगठन पर बल देता है। यशपाल ने भी श्वादा कामरेड्स में हरीश के माध्यम से मजदूर - संगठन और मजदूर - क्रान्ति पर ही बल दिया है। मार्क्सवादी साहित्यकार सामाजिक विकास में योग देने के लिए और मानव को सच्ची स्वाधीनता की ओर अभिमुख करने हेतु किसी निर्विकार, निराकार, निरपेक्ष कालातीत सत्य का नहीं, बल्कि ‘बाह्य प्रकृति के विरुद्ध संघर्षरत मानवों के सामाजिक सम्बन्धों के सत्य का उद्घाटन करता है। इतना ही नहीं वह सामायिक सत्य को शक्तिशाली रूप देने के लिए सामयिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति में भी पीछे नहीं रहता। मार्क्सवादी साहित्यकार के लिए सामयिकता साहित्य का मूल आधार है। स्थायी और प्रभावशाली साहित्य के निर्माण के लिए समाज की तत्कालीन गतिविधियों को पहचानकर समाज के प्रगतिशील वर्ग से सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक होगा। प्रगतिशील साहित्यकार को प्रतिक्रियावादी शक्तियों का विरोध कर सामाजिक प्रगति की अवस्था में साहित्यकार को प्रतिक्रियावादी और क्रान्तिकारी शक्तियों को पहचानकर क्रान्तिकारी अथवा प्रगतिशील शक्तियों को आगे बढ़ाते हुए सामाजिक विकास के मार्ग में आने वाले अवरोधों को दूर करना होगा। मार्क्सवादी गोर्की को इसलिए महान् मानते हैं कि उसने अपने साहित्य द्वारा सामयिक परिस्थितियों को लक्ष्य में रखकर सोवियत क्रान्ति में सहायता पहुँचाई। गोर्की ने स्वयं क्रान्ति के बाद पत्रकारों को सामयिक तथ्यों पर सही दृष्टिकोण से लिखने के लिए प्रेरणा देते हुए तथा कुछ लेखकों को जो स्थाई साहित्य के भ्रम में पड़ गये थे, साहित्य और दैनिक जीवन का अटूट सम्बन्ध दिखाने के लिए ‘फीचर्स लिखना आरम्भ किया। अतएव कहा जा सकता है कि गोर्की की कला के पीछे एक गम्भीर उद्देश्य था। वह था समाज को शोषणहीन और श्रेष्ठ बनाना, जहाँ मानव विकास की पूरी स्वतन्त्रता हो तथा जहाँ उसकी स्वतन्त्रता वैयक्तिक न होकर सामाजिक हो। मार्क्सवादी साहित्यकार यशपाल के लिए भी सामयिक साहित्य का मूल आधार है।

यशपाल ने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से यह भी उजागर किया है कि वह समाज को शोषणहीन और अच्छा बनाने की इच्छा रखता है। यशपाल चाहते हैं कि उनका समाज शोषणहीन हो। अतः कह सकते हैं कि इन सब मार्क्सवादी अवधारणाओं के आधार पर यशपाल ने अपने कला साहित्य का निर्माण किया।

सन्दर्भ

1. मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन : शिवकुमार मिश्र, पृ० 153
2. वही, पृ० 153, 154
3. वही, पृ० 154
4. मार्क्सवादी चिन्तन : ब्रजकुमार पांडेय, पृ० 26

5. देखा, सोचा, समझा : यशपाल, पृ० 13
6. धर्मयुग, 18 अगस्त, 1966, पृ० 46
7. वही, पृ० 46
8. वही, पृ० 46
9. ज्ञानोदय, नवम्बर, 1963, पृ० 29
10. मार्क्सवादी चिन्तन : ब्रजकुमार पांडेय, पृ० 27
11. वही, पृ० 27
12. वही, पृ० 81
13. वही, पृ० 81
14. मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन : शिवकुमार मिश्र, पृ० 45
15. मार्क्सवाद : यशपाल, पृ० 44
16. यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व : सरोज गुप्त, पृ० 47
17. यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व : सरोज गुप्त, पृ० 50
19. वही, पृ० 51
20. वही, पृ० 51
21. मार्क्सवाद : यशपाल, भूमिका
22. मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन : शिवकुमार मिश्र, पृ० 163
23. दादा कामरेड : यशपाल, भूमिका
24. बात-बात में बात : यशपाल, पृ० 28
25. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल : पारसनाथ मिश्र, , पृ० 50
26. ज्ञानोदय, नवम्बर, 1963, पृ० 29
27. मार्क्सवाद साहित्य-चिन्तन : शिवकुमार मिश्र, पृ० 41
28. वही, पृ० 41
29. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल : पारसनाथ मिश्र, पृ० 52
30. वही, पृ० 53

समकालीन हिन्दी साहित्य में आदिवासी विमर्श

डॉ० सुरेन्द्र शर्मा

‘आदिवासी’ शब्द का उल्लेख होने पर आम लोगों की धारणा बनती है कि वह जाहिल, गँवार, अनपढ़, असभ्य, आदिम, खानाबदोस एवं क्रूर हैं। आजकल तो यदा-कदा शनक्सली के रूप में इनकी पहचान बताकर सुनियोजित तरीके से दुष्प्रचारित किया जाता है। वास्तव में सच यह है कि आदिवासी हमारी ही तरह प्रकृति के अनुपम उपहार हैं, वह हमारे ही समाज के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अंग हैं। वह तथाकथित सभ्य कहे जाने वाली जातियों से अधिक सभ्य हैं। आदिवासी समाज में देश-प्रेम, जाति-प्रेम और संस्कृति प्रेम कूटकर-कूटकर भरा होता है। इतिहास साक्षी है कि अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए और अपनी स्वाधीनता के लिए इस समाज ने अनेक युद्ध किए हैं। छल, कपट से दूर, सीधे, सरल स्वभाव से ओतप्रोत एवं आपस में भाई-चारे की भावना तथा अपनेपन की भावना से ये सम्प्रदाय रहते हैं। आदिवासी समाज आज भी प्रकृति के उपादानों यथा-शजल, जंगल, जमीन की असिमता के लिए प्रण-प्राण से न्यौछावर हैं। सांस्कृतिक सभ्यता उनकी अनमोल धरोहर है और उनकी भाषा में उनका जीवन बसता है। इस प्रकार आदिवासी कहने से एक ऐसे परिवार या समूह का बोध होता है, जिसकी स्वयं की भाषा, संस्कृति एवं एक सुनिश्चित भू-भाग होता है, जिसमें वे परम्परागत विधि-विधानों से परिपूर्ण श्रवतंत्र सुरक्षात्मक संगठन के जरिये अपने समाज का संचालन करने में समर्थ होते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि वैश्वीकरण की आँधी में उड़ने से इन्हें बचाया जाय एवं उनकी रीति-नीति को ध्यान में रखकर उन्हें समाज की मुख्य-धारा से जोड़ने का प्रयास किया जाए।

‘आदिवासी’ अर्थात् प्राचीन मूल निवासी चार अक्षरों का एक छोटा सा नाम, लेकिन इसकी विशालता में अनेक समुदाय जातियों और किस्मों में बँटा एक विविध संसार अपना राजवेश, स्व-संस्कृति प्रेम रीति-रिवाज, लोक नृत्य, लोक परम्परा, लोक संस्कृति, जल, जंगल, जमीन है। आदिवासी 5000 वर्ष पुरानी वे जातियाँ हैं, जो भारतीय पुरातन संस्कृति, मानव सभ्यता को संजोये हुए, एक ऐसा मानव समूह है, जो प्रकृति पर निर्भर है, जिसका जीवन के प्रति नजरिया ऐसा है-

“बामणों में पैदा होंगे / लिख लिख मरोगे
मारवाड़ी होंगे / तोल तोल मरोगे
चमार होंगे / जूता घिस घिस मरोगे
पर होंगे वारली / तो जंगल के राजो बनोगे”
- जंगलचे राजे

यह आदिवासियों की जीवन के प्रति दृष्टि है, इस दृष्टि का प्रतिबिम्ब उनके लोक साहित्य में दिखता है। प्रकृति ही उनकी प्रेरणा है। उनकी संस्कृति के बारे में हमें हमारी कल्पनाएँ हैं, हम उन्हें असभ्य, गैर-आधुनिक, पिछड़ा और क्या-क्या कहते हैं। अंग्रेजीराज से भारतीय आदिवासियों का दूसरे दर्जे का नागरिक समझा गया है। आदिवासी जीवनशैली, संस्कृति और अकृतिम स्वतंत्रता को बाकी जीवन से अलग रखकर उसे अध्ययन और कोतुहल का विषय बना दिया है। आदिवासियों पर कोई परिवर्तन बाहर से थोपा जायेगा तो विद्रोह होगा, क्योंकि वे सामान्य प्रकृति शांत और सरल हैं, लेकिन विद्रोह का नगाड़ा बजते ही पूरा आदिवासी समूह सम्पूर्ण शहरियों के लिये एक चुनौती देता है कि जिसे झेलना असंभव है। एक चिंगारी जो आग बनकर सबको लपेटने की क्षमता रखती है। आदिवासी विमर्श इस श्रृंखला की एक कड़ी है। भारत की आबादी का ८.०८ प्रतिशत अनुसूचित जनजातियों के रूप में बाँटा गया है। अनुसूचित जनजातियों (एस.टी.) को आदिवासी कहा गया है। “जनजातियों को महात्मा गाँधी ने आदिवासी नाम दिया था। भारतीय समाज को बड़े वर्गों में जाति एवं आदिवासी में विभक्त करके रखा है यह विमर्श प्रकृति के बीच गिरि, कंदराओं में नदी के किनारे, जंगल में रहते चले आ रहे आदिवासी समुदायों के विस्थापन के त्रास को केन्द्र में लाता है। भूमण्डलीकरण और विकास के प्रतिमानों के रहते ना जाने कितने आदिवासी समूहों को उनके जल जंगल जमीन से अलग कर समाज की मुख्यधारा से अलग किया। आदिवासी विमर्श साहित्य उनके दर्द को संवेदनशीलता के साथ उकेर कर उनके हिस्से की दुनिया लौटाने का आह्वान करता है।

हर व्यक्ति को जीने के लिए कुछ जन्मसिद्ध अधिकारों की जरूरत होती है। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में यदि कोई अपने अधिकारों को सुरक्षित रखने में नाकामियाब हुए हैं तो वह आदिवासी समाज ही हैं। दुनिया की तेज रफ्तार में हमारे देश के एक बड़ा समाज पीछे छूट गया है, मुख्यधारा से अलग हो गया है और बार-बार विस्थापित हो रहे हैं। भारत में लगभग 10 करोड़ आदिवासी रहते हैं। उन्हीं के नाम पर करोड़ों रुपये खर्च किये जा रहे हैं। लेकिन इन योजनाओं का फल उन्हें नहीं मिल रहे हैं। वर्तमान समय में आदिवासी समाज अपने अस्तित्व और अस्मिता को बरकरार रखने के लिए अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं। और साहित्य ने भी उन्हें वाणी देने की कोशिश की है। आदिवासी साहित्य को नजदीकी से देखने खूब परखने पर ही उनकी विविधता को हम पहचान पायेंगे, आदिवासी के पास अपनी भाषा है, सांस्कृतिक विरासत है और उनकी एक गौरवशाली परंपरा भी रही है। आदिवासी ने अपने अधिकारों के लिए जो आवाज उठायी है, अपनी अस्मिता, चेतना स्वाभिमान, आत्मनिर्णय की क्षमता और स्वस्थ जीवन पक्ष को ग्रहण करने की क्षमता दिखायी है वही आदिवासी विमर्श है।

मानवता के सिद्धांत को आदिवासियों के संदर्भ में भुला दिया गया है। आदिवासी समाज में जन्म लेने वाले को अपराधी मानकर उन्हें हमेशा घृणा, उपेक्षा तथा अपमान सहने के लिए मजबूर किया गया है। हमें यह समझना चाहिए कि अभिजात्य समाज और साहित्य के बाहर एक बड़ा संसार है जिसके बारे में 'सभ्य कहलाने वाले हम' अनजान हैं। जंगलों से खदेड़े जा रहे आदिवासी प्रकृति के मित्र और सहचर हैं। ये अक्षर ज्ञान से दूर हैं और जंगल, जल और जमीन को अपना सब कुछ मानते हैं।

आदिवासी समाज की अपनी अलग एक संस्कृति है जो भारतीय संस्कृति की अस्मिता की पहचान है। आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार पूरी तरह नहीं हो पाने से, सरकारी नौकरियों से वंचित यह समाज आज भी गरीबी की रेखा से नीचे जी रहा है। भूमंडलीकरण, उदारीकरण तथा उच्च तकनीकी के इस युग में भी आज आदिवासी समाज किन्हीं कारणवश विकास यात्रा में नहीं जुड़ पा सका है। शहर के दूर-दराज पर जंगल, दुर्गम तथा पहाड़ी इलाकों में समाज का यह वर्ग हाशिए पर खड़ा है। जल, जंगल और जमीन से विमुक्त होकर वंचना, अभाव, उपेक्षा, निराशा, तथा दैन्य से ग्रसित आदिवासी समाज आदि मानव सदृश जीवन व्यतीत करने का मजबूर हो रहा है। भारत देश स्वतंत्र हुए अड़सठ साल बीत गये हैं। फिर भी आदिवासियों की स्थिति पहले जैसी बनी है। हमारे शासन तंत्र, पूँजीपतियों, व्यापारियों, साहूकारों, जमींदारों, द्वारा उनका शोषण किया जा रहा है। स्वतंत्रता का सूर्य आज भी उनके लिए वंचित रहा है। भारत का लोकतंत्र की रचना स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के आधार पर रचा गया किन्तु उसकी रोशनी से आदिवासी जनजीवन वंचित, विमुख उपेक्षित और विकास से कोसों दूर रह गया है। इसका कारण भी द्रष्टव्य है विषमता, दैन्य, शोषण, भ्रष्टाचार, जातीयता या सांप्रदायिकता, निरक्षरता, अंधश्रद्धा का अंधकार छाया हुआ है। दलित, अल्पसंख्यक तथा आदिवासी जन के विकास के नाम पर भीतर उनका शोषण किया जाता है। इतना सब सहन करते हुए भी आदिवासी समाज अपनी आस्था, कला, रूढ़ि, परंपरा, पर्व-त्यौहार, गीत-नृत्य, नियम, रस्मों-रिवाज, मान्यताएं, देवी-देवता, पूजा-अर्चना, विवाह प्रथा तथा भाषा बोलीओं को अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान को अक्षुण्ण बनाये रख पाया है।

आदिवासी समाज देश के आदिम निवासी है। वे प्राचीन भारत से रामायण, महाभारत काल से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका में रहते आये हैं। वे उदात्त, उदार एवं सरल, निश्छल, आडंबरहीन रहे हैं। वे श्रमजीवी, आत्मनिर्भर, तथा स्वावलंबी भी है। प्रकृति के सच्चे साथी रहे हैं। उनके जीवन में कृत्रिमता का अभाव है। वे किसी क्रिया-कर्मकांडों के बदले सीधे ईश्वर से जुड़ते हैं। अतः उनका व्यवहार निश्छल एवं सत् होता है। आदिवासी-जनजातियों का जीवन जंगलों से जुड़ा है। छोटी-छोटी जमीन पर जीवनयापन हेतु खेती करते हुए जो मिला उसमें संतोष व्यक्त करते हुए प्रसन्न रहना उनकी विशेष खासियत है। उनका जीवन संगीतमय होता है जो उनकी संस्कृति का परिचायक भी है। आदिवासी प्रदेश विशेष से जुड़े होते हैं। आदिवासियों का समूचा जीवन, उनकी संस्कृति, समाज, विशिष्ट क्रिया-विधियों की वजह से निरंतर अध्ययन और दिलचस्पी का विषय बना है। आदिवासियों का रहन-सहन, नृत्य संगीत, व्यवसाय, उनके देवी-देवता, तंत्र-मंत्र पर विश्वास आदि अनेक कारणों से वे सभ्य संस्कृति को आकर्षित करते हैं। आदिवासी समाज आज भी दुर्गम क्षेत्रों में रहते हैं। पहले उनका जीवन प्रकृति पर निर्भर था लेकिन अब उनके क्षेत्र की खनिज संपदा के कारण वे भी औद्योगिक विकास के शिकंजे में फँस रहे हैं। इस विकास में उन्हें और भी अधिक गरीब बनाया है। आदिवासियों के जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई है 'विस्थापन'। यह प्रश्न केवल वर्तमान का नहीं है। इसके उल्लेख इतिहास में भी दूढ़े जा सकते हैं। जो ताकतवर है, वह कमजोर को पीछे ढकेलता जा रहा है।

आदिवासी हमेशा शासन-व्यवस्था का शिकार बनता है। जमीनदारों, साहूकारों, पूँजीपतियों और सत्ता के ठेकेदारों से उनका शोषण हमेशा होते रहते हैं। उन्हें कभी भी अपनी हक और कमाई नहीं मिलता। इसका चित्रण संजीव के उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरु होता है' में देख सकते हैं। इसमें बिहार के चंपरान जिले के थारु जनजाति के जीवन को दिखाया गया है। ये लोग चोरी करते हैं, लड़कियों को बेचते हैं, डाकू बनते हैं। यह उनकी मजबूरी है। उक्त कथन को देखिए: "पहले चीनी मिल बंद हुई फिर खेत बंधक हुआ, मेहारा मरन सेज पर और बेटी को सांप ने डसा।" बिसराम का भाई काली डाकू क्यों बना ? हक की कमाई माँगने पर ठेकेदार के पास पैसा नहीं है। क्या वह इन हरामखोरों के यहाँ बेगार करने के लिए पैदा हुआ है।"

आदिवासी समाज अभाव, विवशता और मजबूरी के कारण कई तरह के शोषणों से गुजरते हैं। उन्हें अपना जमीन गिरवी रखकर भूख मिटाने के लिए बंधुआ मजदूरी भी करना पड़ता है। इसका जिक्र मनमोहन पाठक ने अपना उपन्यास 'गगन घटा घहरानी' में प्रस्तुत किया है। रायसाहब नामक जमीनदार के यहाँ 'सेवकिया' जो आदिवासी है अपनी पूरी जिन्दगी "सत्तर रुपया और दो मन गोंदली के लिए गंवा देता है। अपनी मेहर और बेटी से मजदूरी करवाते हैं, फिर भी बूढ़ा होने पर सेवकिया के हाथ पैर बाँधकर भूखे चीते के सामने फेंक दिया गया। आदिवासी समाज अपने श्रम के बल पर हमेशा आत्मनिर्भर रहा। वह हमेशा प्रकृति का साथी बन, प्रकृति से संवाद करता हुआ, उसके प्रकोप को झेलकर हमेशा गतिशील होकर आगे बढ़ता गया। देश के विकास की कीमत उन्हें विस्थापित होकर चुकाना पड़ा। अपनी मिट्टी से बेदखल होकर, बेरोजगार और बेकार बने भारतीय समाज में अशिष्ट, असभ्य व पिछड़ा आदि शब्दों से अलंकृत होकर जीने के लिए वह विवश हो गया। प्रस्तुत पंक्तियों में उसकी हकीकत की पीड़ा को हम देख सकते हैं :-

“हम चाहते रहे संतुलन
तुम करते रहे असंतुलित
तोड़ते रहे एकता, मिटाते रहे
हमारी पहचान
खदेड़ते रहे हमारे ही जंगल से हमें
उजाड़ते रहे विकास के नाम पर हमारी बस्तियाँ
बसाने के नाम पर ठेलते रहे हाशिये पर
अब तुम जाओ
हम कुछ नहीं बता सकते तुम्हें।”

अभावग्रस्त, पिछड़े, असभ्य तथा अशिक्षित कहे जानेवाले आदिवासी समूह अब बदलाव की दिशा में हैं। अब वे जागृत हो रहे हैं और अपने हक को समझने और हासिल करने में कामयाब होते जा रहे हैं। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लड़ते हुए ये आदिवासी समाज अपनी अस्मिता को बरकरार रखते हुए सक्रिय बनते जा रहे हैं। 'विस्थापन' आदिवासियों के बीच की सबसे बड़ी त्रासदी है। विकास के नाम पर, पूँजी निवेश और औद्योगीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ आदि कितने तरीकों से आदिवासी अपने जड़ों से बेदखल होते जा रहे हैं। आदिवासी की जमीन सस्ते दाम पर खरीदकर देशी – विदेशी कंपनियों को दे रहे हैं और उन्हें उचित मुआवजे भी हासिल नहीं होते हैं। और हमारे सत्ताधारी कभी ये नहीं समझ पाते हैं कि आदिवासी लोग अपनी जिन्दगी कैसे जी रहे हैं, उनका गुजारा कैसे हो रहा है।

वर्तमान में आदिवासी अस्तित्व संकट के साथ पहचान की समस्या भी लगातार गहराती जा रही है। लोग उन्हें सामान्य मनुष्य की तरह नहीं बल्कि जंगली, वनवासी, असभ्य और संविधान में आरक्षित मनुष्य के रूप में परिभाषित करते हैं। आदिवासी समाज की इस विडम्बनापूर्ण महादेव टोपों की कविता 'त्रासदी' अभिव्यक्त करती है—

“इस देश में पैदा होने का मतलब क्या है

जानतेहो मेरे भाई? नहीं?

इस देश में पैदा होने का

मतलब है—

आदमी का जातियों में बंट जाना

और गलती से अगर हो गए पैदा जंगल मेंतो तुम कहलाओगे

आदिवासी – वनवासी

—गिरिजन वगैरह वगैरह

आदमी तो कम से कम कहलाओगे नहीं ही...”³

निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं के माध्यम से आदिवासियों के हो शोषण को स्वर देकर उनकी आवाज को मुखर किया है। उनकी कविताओं में आदिवासियों पर हो रहे शोषण व अत्याचार के खिलाफ तीखा प्रतिरोध का स्वर सुनाई पड़ता है। उन्होंने कविताओं में आदिवासी स्त्री की अस्मिता के सवाल को बखूबी ढंग से उठाया है। इनकी कविताएं आदिवासी समाज के साथ स्त्री के विविध पहलुओं पर भी टिप्पणी करती हैं। निर्मला पुतुल की कविता 'अपने घर की तलाश में' 'तुम कहाँ हो माया' शीर्षक कविता में आदिवासी स्त्री की अस्मिता का सवाल उठाया गया है, यथा—

“दिल्ली के किस कोने में हो तुम? मयूर विहार

पंजाबी बाग या शाहदरा में?/

कनाट प्लेस कीकिसी दुकान में सेल्सगर्ल हो या किसी

हर्बल कंपनी में पैकर? कहाँ हो तुम माया?

कहाँ हो?”⁴

आदिवासी समाज की परम्परागत जीवन शैली खतरे में पड़ गई है, विस्थापन ने आदिवासी अस्तित्व को संकट में डाल दिया है। और आदिवासी समाज की भाषाई अस्मिता पर संकट गहराता जा रहा है, इस चिंता को हरिराम मीणा अपनी कविता के केंद्र में रखकर आदिवासी समाज को सचेत करने की कोशिश करते हैं—

“एकांत को बनना चाहिए कोई विकल्प विराट

ऊर्जा का स्रोत... वे ऐश्वर्य ओढ़कर सोते हैं

निश्चित हम संघर्ष की सूली पर चढ़कर

भविष्य के आकाश में तलाशते हैं—

स्वयं का परिचय और स्थान

तनिक सोचो इस निर्जन एकाकीकारा में भी

मैं कहाँ हुआ निरुत्साहित।”⁵

आदिवासी जनजातियों की एक विशिष्ट प्रकार की जीवन शैली रही है। ये जनजातियाँ वन-सम्पदा पर आश्रित हैं। लकड़ी, कंद-मूल, फल, गोद, जूड़ी-बूटी पर इनका अधिकार होता है। जंगल के जीव-जंतु इनके सहचर या सहयोगी होते हैं। जादू-टोने के निदान हेतु ओझा-गुनिया इनके स्वस्थ व सफल जीवन के लिए महत्व रखते हैं। महुआ से विनिर्मित दारू का जनजातीय संस्कृति में महत्वपूर्ण योगदान है। धार्मिक और सामाजिक अनुष्ठान में लोकविधाओं को संजोती है। यह सब विशिष्टताएँ किसी एक समय सम्प्राप्य थी लेकिन वर्तमान काल में अंशतः सुरक्षित बची है। आदिवासी, जनजातीय संस्कृति में बाह्य परिवर्तन बहुत कम होते हैं क्योंकि इसमें आदिम तत्व अद्यावधि अक्षुण्ण रहते हैं। भारतीय संस्कृति में मानवता और सहिष्णुता प्रमुख गुण माने गये हैं। जो जनजातीय संस्कृति

ति में सामविष्ट है। उनकी संस्कृति में प्रकृति की उपासना तथा पूजा पद्धति भी समानादर स्वीकृत की गई है। इस प्रकार जनजातियों में प्रकृति तथा अध्यात्म का संगम, घनिष्ठ सम्बन्ध दृष्टव्य है। इनका उदाहरण वृक्षों, पर्वतों, समुद्रतट एवं नदियों के तट पर, संगम में तीर्थ मेले उत्सव-पर्व मनाने का विधान से स्पष्ट है। प्रकृति के प्रति आस्था तथा श्रद्धा का भाव से वे आध्यात्मिकता को साकार करते हैं।

आदिवासी जन-जातीय संस्कृति प्राकृतिक परिवेश की विविधता की दृष्टि से एक खास विशेष महत्वपूर्ण है। इसकी अपनी संस्कृति भी एक अलग विशेषता रखती है। ये विस्तृत भूमि भाग में बसे हैं जिसे विभिन्न जलवायु, प्राकृतिक सौंदर्य, उर्वर-अनुर्वर क्षेत्र, वनस्पति, वन-उपवन तथा पशु-पक्षी रहते हैं। इसमें निवास करने वाले लोग, उनका रहन-सहन और उनकी भाषा-बोलियाँ भी अलग हैं किन्तु इतना होते भी सभी जनजातियाँ एक व्यापक एकता से बंधे हुए हैं। क्योंकि सभी जनजातियों का जीवन तथा प्रकृति की विविधता में एकता का समन्वय उनकी पहचान है आदिवासी जनजाति संस्कृति में प्रकृति की बाह्य विविधता में तथा भिन्नता में आंतरिक एकता का बोध उनका मूल उत्स माना गया है। वैश्विकरण की दौड़ में आज हमारा देश भी आधुनिक विकास की ओर तेजी से आगे कूचकर रहा है। आज के समय में प्रत्येक देश महासत्ता बनना चाहता है। आतंकवाद, त्रासवाद, प्रांतवाद, सीमावाद, भाषावाद, धर्मवाद, वर्णवाद, नस्लवाद से हर जगह संघर्ष और हिंसा का दौर चल रहा है।

आदिवासी समाज अपने जीवन की लय, मूल्यों और परम्पराओं के साथ भारतीय समाज का अविभाज्य हिस्सा तो है ही किन्तु बड़े दुःख और खेद से कहें तो आधुनिक भारत में आदिवासियों का स्थान कहीं पर भी नहीं दिखता। आज भी वे हाशिये पर खड़ा मानव समुदाय है। प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक के आंकड़े बड़ा भ्रम जाल निर्मित करते हैं। हमारी सरकार सरकारी नौकरियों में मुठ्ठीभर आदिवासियों को संरक्षण, आरक्षण तथा जीवनदान दे रही है। आज भी मूल आदिवासी जो जंगलों में अपने पेट की आग बुझाने के लिए पहाड़ों जंगलों में दर-ब-दर भटक रहे हैं। हास्यास्पद स्थिति तो यहाँ आती है कि सरकार गरीबों के लिए, इन आदिवासियों के लिए स्वच्छ भारत अभियान के अंतर्गत प्रसाधन गृह (टॉयलेट) बनवा देती है (जो अति निम्न कोटि के होते हैं) किन्तु उनकी रोजी रोटी के लिए, रोजगार का कोई स्थायी प्रबंध नहीं कर पा रही है। राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव यह आदिवासी-जनजातियों का अस्तित्व नष्ट कर रही हैं वे शहरों में श्रमजीवी बनकर जीवन यापन कर रहे हैं।

‘भूख’ आदिवासी समाज की सबसे बड़ी विडंबना है। भूख से कभी भी मुक्ति न पाना और भूख से मुक्त होने के लिए जिन्दगी भर बंधुआ बन कर रह जाना, इस तथ्य को मनमोहन पाठक ने ‘गगन घटा घहरानी’ में उजागर किया है। इसमें बूढ़ा सोचता है कि “हाथ पर हाथ धरे किसके आसरे बैठे हो, अरे तुम्हारा कर्ज तो कब का चुका गया। सूद-मूल समेत। तुम्हारे खेतों में धान की फसल पककर झारी जा रही है और तुम यहाँ झगड़ रहे हो। जाओ, मेरे भगत दूना पहान से कहो-डुगडुगी बजाए। हंसुआ उठाओ, धान काटो। भूखे बच्चों के मुँह में अन्न-दाना डालो।”⁶ भूख की अपनी राजनीति होती है और भूख पर भी राजनीति संभव होती है। भूख से धर्म की राजनीति भी की जाती है। आदिवासी इलाकों में धर्म की राजनीति को भी हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। तेजिन्दर के उपन्यास ‘काला पादरी’ में धर्म परिवर्तन कराकर खाखा को और उसके जैसों को रोटी और अनाज दिया जाता है। बदले में चर्च की सेवा में पीढ़ियों तक धर्म की गुलामी करनी पड़ती है। भूख से मजबूर होकर ये चोरी करते हैं, भीख माँगते हैं, खुद को भी बेजते हैं। आजादी के इतने सालों बाद भी वर्तमान समय में अपनी जिन्दगी स्वतंत्र रूप से जीने का अधिकार सभी को हासिल है ? क्या आदिवासी समाज को भारत के नागरिक होने का हक प्राप्त है ? कतई नहीं, आदिवासी न शहर में जी सकता है न जंगल में। अपने हक के लिए लड़ने पर उन्हें नक्सलवादी घोषित किया जाता है। भारतीय गणतंत्र में जान की कीमत सिर्फ पैसेवालों की है। ‘जहाँ बाँस फूलते हैं’ उपन्यास में हमारी जनतांत्रिक व्यवस्था का उद्घाटन इस प्रकार किया गया है, –“एक तो सरकार है, नीति बनाती है, उन्हें वैसा ही छोड़ दो, सिर्फ लिखाओ, पढ़ाओ और आरक्षण के बदौलत नौकरी दो। सुरक्षा के लिए जरूरी हो तो सड़के बनवा लो। एक विशाल गणतंत्र की विरासत ‘अनेकता में एकता’ के उदाहरण स्वरूप इनकी जिन्दगी अक्षुण्ण रखो। ‘एथ्रोपॉलोजिकल म्यूजियम पीस’ के रूप में।” मिजोराम आन्दोलन के दौरान केन्द्रीय सरकार के जिस बड़े दारोगा की हत्या आन्दोलनकारियों द्वारा की जाती है, उसके अवचेतना में मृत्यु-पूर्व की स्थिति को लेखक लिखता है, “रोटी के टुकड़े, धरती का एक खंड और जिन्दा रहने की आकांक्षा, इनके लिए आदमी हमेशा लड़ा है, अगर उसकी भी कौम लड़ रही है तो किसका दोष।” उसके चिन्तन का दूसरा पक्ष है जो उसके जीवन को समाप्त करना चाहते हैं। जीने के अधिकार से वंचित करना चाहते हैं, उनका मुकाबला किया जाना चाहिए।

आदिवासी की पहचान और नाम छीनकर उसे वनवासी घोषित किया जा रहा है ताकि वह यह बात भूल जाए कि वह यह इस देश का मूल निवासी यानी आदिवासी आदिवासी जनजाति एक निश्चित भूखण्ड में निवास करती है। जहाँ आर्थिक आधार पर संघर्ष करना पड़ता है। जनजाति शब्द के उल्लेख के साथ ही हमारे सामने ऐसी संस्कृति उभरकर आती है जो वैज्ञानिक विकास से दूर, वर्तमानकाल की व्यवहार शैली तथा भौतिक जीवन से अपरिचित, शांत और एकांत प्रकृति के बीच रहती है। परंपराओं तथा रूढ़िओं का पालन करती है। अपनी अलग जीवन पद्धति तथा सामाजिक मर्यादा रखती है। आचार-विचार अनूठे होते हैं। इस प्रकार आदिवासी जनजातीय संस्कृति में जाति या परिवार केन्द्रित समाज का सीमित परिधि और क्षेत्रीय एकान्तिकता के कारण ये जनजातियाँ आंचल की बहतर समाज या लोक से सरोकर नहीं रखती है।

आज का समय पूर्ण रूप से सोशल मिडिया डिजिटल तथा इंटरनेट पर आधारित है। अब आदिवासी यानि अनुसूचित जनजाति समाज भी इससे अछूते नहीं रहें। उनके हाथों में भी स्मार्ट मोबाइल तथा आधुनिक सेवाओं से युक्त मोबाइल आसानी से देखा जा सकता है अब वे भी समसामयिक समाचारों एवं सरकार द्वारा घोषित योजनाओं की विस्तृत जानकारी आसानी से ले सकते हैं इस तरह के लगभग सभी समुदाय आज उत्कर्ष पर हैं। इनके विकास एवं उत्थान हेतु भारत सरकार ने भी कई योजनाओं का शिलान्यास किया है। जिसके तहत वन बंधु कल्याण योजना, आदिवासी विकास योजना, स्टैंड अप इंडिया, मिड डे मील आदि। वर्ष 2010 के बाद आदिवासी समुदायों में उतरोत्तर विकास देखा जा सकता है। सरकार के योजनों के द्वारा या हम सब की भागीदारी जोकि इनके समूह को उत्थान की ओर ले गया है। ऐसे में कई आदिवासी अपनी पहचान बना सके हैं जैसे कि जयपाल सिंह मुंडा भारतीय आदिवासियों और झारखंड आंदोलन के एक सर्वोच्च नेता थे। वे एक जाने माने राजनीतिज्ञ, पत्रकार, लेखक, संपादक, शिक्षाविद् और 1925 में ऑक्सफोर्ड ब्लू’ का खिताब पाने वाले हॉकी के एकमात्र अंतरराष्ट्रीय खिलाड़ी थे। उनकी कप्तानी में 1928 के ओलिंपिक में भारत ने पहला स्वर्ण पदक प्राप्त किया। दूसरा हैं जो एलिस एक्का

हिंदी कथा-साहित्य में भारत की पहली महिला आदिवासी कहानीकार हैं। हिंदी की पहली दलित कहानी लिखने का श्रेय भी एलिस एक्का को है। भारत सरकार के अलावा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी आदिवासी कल्याण हेतु संयुक्त राष्ट्रसंघ ने 9 अगस्त को 'विश्व आदिवासी दिवस' के रूप में पहचाना है। इस दिन संयुक्त राष्ट्र संघ ने आदिवासियों के भले के लिए एक कार्यदल गठित किया था जिसकी बैठक 9 अगस्त 1982 को हुई थी। उसी के बाद से संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने सदस्य देशों को प्रतिवर्ष) अगस्त को विश्व आदिवासी दिवस मनाने की घोषणा की। भारत की तमाम आदिवासी भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य हिंदी, बांग्ला, तमिल जैसी बड़ी भाषाओं में अनुदित और रूपांतरित होकर एक राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर रहा है। प्रकारांतर से पूरा आदिवासी साहित्य बिरसा, सीदो-कानू और तमाम क्रांतिकारी आदिवासियों और उनके आंदोलनों से विद्रोही चेतना का तेवर लेकर आगे बढ़ रहा है। चूंकि आदिवासी साहित्य विमर्श अभी निर्माण प्रक्रिया में है, इसलिए अभी इसके मुद्दे भी आकार ले रहे हैं। साहित्य जगत में आदिवासी मुद्दों को उठाने, उनसे जुड़े सृजनात्मक साहित्य को प्रोत्साहन देने में इन पत्रिकाओं ने अहम योगदान दिया है- युद्धरत आम आदमी' (दिल्ली, हजारीबाग. संपादक- रमणिका गुप्ता), 'अरावली उद्घोष' (उदयपुर संपादक- बीपी वर्मा 'पथिक'), 'झारखंडी भाषा साहित्य, संस्कृति अखड़ा' (रांची, संपादक- वंदना टेटे), 'आदिवासी सत्ता' (दुर्ग छत्तीसगढ़. संपादक के. आर शाह) आदि। इनके अलावा 'तरंग भारती के माध्यम से पुष्पा टेटे, देशज स्वर के माध्यम से सुनील मिंज और साध्य दैनिक 'झारखंड न्यूज लाइन के माध्यम से शिशिर टुडु आदिवासी विमर्श को बढ़ाने में लगे हैं।

सन्दर्भ

1. जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, पृ. 93
2. अपने गाँव आयी रिसर्च टीम, पृ. 93
3. रमणिका गुप्ता, आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ. 49
4. निर्मला पुतुल, 'अपने घर की तलाश में', पृ. 31
5. रमणिका गुप्ता, आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, पृ.25
6. गगन घटा घहरानी : मनमोहन पाठक, पृ. 185
7. जहाँ बाँस फूकते हैं, पृ. 156

‘जाति’ से मृत्युपर्यंत पीछा नहीं छूटता

डॉ० राजन तनवर

एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय सोलन, जिला सोलन, हि.प्र.

भारतीय समाज में ‘जाति’ एक महत्वपूर्ण घटक है। जाति पैदा होते ही व्यक्ति की नियति तय कर देती है। जो स्वयं को इस देश की संस्कृति के तथाकथित संरक्षक कहते हैं, क्या अपनी इच्छा से उन घरों में पैदा हुए हैं जहाँ से वे वर्णवादी व्यवस्था का संचालन करते हुए हर दिन एवं हर पल अन्यो की भावना को आहत करते हुए स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं ? या जिनका वे शोषण करते हैं अपनी इच्छा से उन परिवारों में जन्में हैं जो जन्म से ही शोषण सहने के लिए तैयार रहते हैं।

‘जूठन’ आत्मकथा में वर्णित ओमप्रकाश वाल्मीकि की पीड़ा उन सभी इनसानों की पीड़ा है जिन्हें युगों-युगों से इनसान होते हुए भी इनसान नहीं समझा गया, जो पशु से भी बदतर दुर्व्यवहार सहने के आदि रहे हैं। शोषकों का आत्मश्लाघा में डूबकर सच्चाई से मुँह मोड़ लेना कौन सी बुद्धिमता है। गाँव के स्कूल एवं कॉलेज में पहली से बारहवीं कक्षा तक जलालत, मारपीट, पग-पग पर जाति का दंश झेलते हुए प्रशिक्षण के लिए मेरा चयन हो गया था, जो कि एक सुखद अनुभव था – “इस तरह मेरी पढ़ाई बीच में ही छूट गई थी। अप्रेंटिस बनकर मैं ऑर्डिनेंस फैक्टरी देहरादून में प्रवेश पा गया था। फैक्टरी में दाखिला होने से पहले मुझे उस काम के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। हाँ, इतना जरूर था कि पारिवारिक स्तर पर हजारों वर्षों से मेरे पुरखे जो काम कर रहे थे, वह मुझे नहीं करना है।

मैंने पिताजी को चिट्ठी लिखकर बता दिया था कि मैंने पढ़ाई छोड़ दी है और एक सरकारी कारखाने में मशीन के कल पुर्जों का तकनीकी काम सीख रहा हूँ। उन्हें इस बात से खुशी हुई थी। वे बार-बार एक ही बात कह रहे थे ‘जात’ से तो पीछा छूटा। लेकिन ‘जाति’ से मृत्युपर्यंत पीछा नहीं छूटता, इस तथ्य से वे अंत तक अपरिचित रहे।

मैं आत्मनिर्भर बनने के सपने देखने लगा था। घोर गरीबी के बीच जिए दिन मैं भूल नहीं पा रहा था। तकनीकी शिक्षा पाकर जीविका के लिए दो वक्त की रोटी कमा लेने का रास्ता खुलने लगा था।”

ऑर्डिनेंस फैक्टरी देहरादून में एक वर्ष का प्रशिक्षण पूरा करने के बाद मैंने फैक्टरी द्वारा आयोजित अखिल भारतीय प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। मुझे आगामी प्रशिक्षण के लिए जबलपुर भेजा गया। इस प्रतियोगी परीक्षा ने मेरे लिए प्रगति के नए द्वार खोल दिए थे। जैसे-जैसे मैं अपने गाँव से दूर जा रहा था देश भर के प्रशिक्षु साथियों से मेल बढ़ता जा रहा था। कुछ के व्यवहार में तो अधिक ही अपनापन महसूस हो रहा था। अब मेरे रोटी के लिए जुझने के दिन धीरे-धीरे बीतने लगे थे, यही कारण था कि मैं मैस में रहते हुए रोटी की व्यर्थता बिल्कुल भी बरदाशत नहीं कर पा रहा था क्योंकि मैंने इसके अभाव में बहुत दिन बीताए थे- “अक्सर रोटियों के कच्चा होने की शिकायत छात्र करते थे। कभी-कभार मारपीट की नौबत भी आ जाती थी। कच्ची रोटियों को लेकर विजय बहादुर और मेरा नजरीया भिन्न था। मैं कभी शिकायत नहीं करता था। विजय बहादुर जब रोटियों को बरबाद करते देख लेता था, तो वह अपने गुस्से को रोक नहीं पाता था, “ओए खोते, तू इस रोटी की कीमत नहीं जानता! इसे खेत में उगाने में कितनी मेहनत लगती है...तुझे पता है।” उसके इस संवाद को सुनकर कोई भी रोटी फेंकने की हिम्मत नहीं करता था।

सचमुच किसान से ज्यादा रोटी की कीमत कौन जान पाएगा। विजय बहादुर पंजाब के किसान परिवार से था।

मैंने बचपन से रोटी को बहुत मूल्यवान वस्तु माना है, इसे बरबाद करनेवाले मुझे अपराधी लगते थे।

छात्रावास के दिन कुछ लोगों के लिए मस्ती भरे दिन थे, मेरे लिए व्यक्तित्व निर्माण के।”

संस्थान में प्रशिक्षण एवं नौकरी के दौरान मैं जब भी किसी दलित की पीड़ा एवं अत्यचार को लेकर कोई लेख लिखता या संवाद करता तब मेरे सहपाठी एवं सहकर्मी मेरी जाति ढूँढ़ने लग जाते। उनका दृष्टिकोण ऐसा विकसित हो चुका था कि दलित की पीड़ा को केवल दलित ही उजागर कर सकता है और शीघ्र ही वे मुझे मेरे दलित होने का एहसास करवा देते – “इसी बीच पूना में गंवई-बंधु कांड हो गया था। पूना के पास एक गाँव में सवर्णों ने गंवई बंधुओं की आँखें फोड़ दी थी। इस घटना से बम्बई-पूना में तनाव बढ़ गया था। दलित पेंथर की सुगबगाहट शुरू हो चुकी थी। इस घटना को पार्श्व में रखकर मैंने दलित समस्याओं पर एक लेख नवभारत टाइम्स (बम्बई) को भेजा था जो उसी समय छप गया था। इस लेख पर जबरदस्त प्रतिक्रियाएँ हुई थीं। शिवसेना के समर्थक सरकारी कर्मचारियों ने मेरे इस लेख की शिकायत संस्थान के प्रिंसिपल श्री देसाई से की थी।

प्रिंसिपल ने मुझे अपने कार्यालय में बुलाकर नवभारत टाइम्स की वह प्रति मेरे सामने रख दी थी, “यह तुमने लिखा है?”

जी।”

उन्होंने दुबारा पूछा, “ठीक से बताओ, यह लेख तुम्हारा है?”

‘जी, मेरा ही है,’ मैंने स्वीकार किया।

“तुम सरकारी संस्थान में हो, इसके आधार पर तुम्हारे विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही हो सकती है।”

मैं चुप रहा। थोड़ी देर बाद वे बोले, “ट्रेनिंग के दौरान ये सब मत करो... निकाल दिए जाओगे...जाओ...आगे से ध्यान रखना।” उन्होंने मौखिक चेतावनी देकर मुझे छोड़ दिया था। लेकिन इस लेख के कारण छात्रावास में कुछ साथियों का व्यवहार बदल गया था। वे मेरी ‘जाति’ दूढ़ने लगे थे, क्योंकि मैंने दलितों के प्रति अपनी संवेदना दिखाई थी जो उनकी दृष्टि में मेरा अपराध था।”

मेरे रूम पार्टनर सुदामा पाटिल का मित्र रमेश ने हमारा परिचय विनायक सदाशिव कुलकर्णी से करवाया था। वह कॉलोनी के ही फ्लैट में रहते थे। अम्बरनाथ महाराष्ट्र में जितनी भी सांस्कृतिक गतिविधियों का आयोजन होता था उनमें उनकी मुख्य भूमिका रहती थी। इसी कारण मेरी और सुदामा पाटिल की उनके साथ नजदीकियाँ बढ़ गयी थीं। उनके घर नियमित रूप से हमारा आना-जाना लगा रहता था। वे अवस्था में हमसे बहुत बड़े थे, उनकी बेटी सविता मेरी आयु वर्ग की थी जो कॉलेज में पढ़ती थी। कुलकर्णी परिवार मेरे नाम के साथ वाल्मीकि लगने के कारण मुझे ब्राह्मण समझने लगा था। यही कारण था कि सविता ने मेरे साथ नजदीकियाँ स्थापित कर ली थीं। मैं उस परिवार को अंधेरे में नहीं रखना चाहता था और अपने बारे में बताना चाहता था ताकि वे भ्रम में न रहें—“साहस बटोरते हुए मैंने कहा, “तुम्हारे घर उस रोज जो प्राध्यापक काम्बले आए थे....” मेरी बात पूरी भी नहीं हुई थी, सविता ने काट दी।

“वह महार.. एस सी,” उसके इस व्यवहार से ही मेरी कनपटियाँ गर्म हो गई थीं।

“हाँ... वही..” मैंने कटुता से कहा था।

“आज अचानक उसका ख्याल कैसे आ गया इस वक्त!” सविता ने हैरानी से पूछा।

“उसे चाय अलग बर्तनों में पिलाई थी? मैंने सख्त लहजे में पूछा।

“हाँ, घर में जितने भी एस. सी. और मुस्लिमान आते हैं, उन सबके लिए अलग बर्तन रखे हुए हैं।” सविता ने सहज भाव से कहा।

“यह भेदभाव तुम्हें सही लगता है?” मैंने पूछा। मेरे शब्दों के तीखेपन को उसने महसूस कर लिया था।

“अरे तुम नाराज क्यों होते हो? उन्हें अपने बर्तनों में कैसे खिला सकते हैं?” उसने प्रश्न किया।

“क्यों नहीं खिला सकते?... होटल में, मैस में तो सब एक साथ खाते हैं। फिर घर में क्या तकलीफ है?” मैंने तर्क दिया।

सविता इस भेदभाव को सही और संस्कृति का हिस्सा मान रही थी। उसके तर्क मुझे उतेजित कर रहे थे। फिर भी मैं काफी संयत था उस रोज। उसका तर्क था एस.सी. अनकल्चर्ड(असभ्य) होते हैं। गंदे रहते हैं।

मैंने उससे पूछा, “तुम ऐसे कितने लोगों को करीब से जानती हो? इस विषय में तुम्हारे व्यक्तिगत अनुभव क्या है?” वह चुप हो गई थी। उसका परिचय ऐसे किसी व्यक्ति से नहीं था। फिर भी पारिवारिक पूर्वाग्रह उस पर हावी थे। उसका कहना था आई (माँ), बाबा (पिता) ने बताया। यानी बच्चों को यह सब घरों में बताया जाता है कि एस.सी. से घृणा करो।

वह चुप हो गई थी, उसकी चंचलता भी गायब थी।

कुछ देर हम चुप-चाप पुलिया पर बैठे रहे। मैंने उससे पूछा, “मेरे बारे में तुम्हारी क्या राय है?”

“आई, बाबा तुम्हारी तारीफ करते हैं...कहते हैं, यूपी. वालों के प्रति जो उनकी धारणा थी उससे अलग हो। तुम्हें अच्छा मानते हैं।” सविता ने चहकते हुए कहा।

“मैंने तुम्हारी राय पूछी थी।”

“अच्छे लगते हो।” उसने मेरी बांह पर अपने शरीर का भार डाल दिया था।

मैंने उसे दूर हटाया और कहा, “यदि मैं एस.सी. हूँ... तो भी...”

“तुम एस.सी. कैसे हो सकते हो?” उसने इटलाकर कहा।

“क्यों? यदि हुआ तो?” मैंने जोर दिया।

“तुम तो ब्राह्मण हो।” उसने दृढ़ता से कहा।

“यह तुमसे किसने कहा?”

“बाबा ने।”

“गलत कहा। मैं एस.सी. हूँ...” मैंने पूरी शक्ति से कहा था। मेरे भीतर जैसे कुछ जल रहा था।

“ऐसा क्यों कहते हो?” उसने गुस्सा दिखाया।

“मैं सच कह रहा हूँ... तुमसे झूठ नहीं बोलूंगा।” न मैंने कभी कहा कि मैं ब्राह्मण हूँ। मैंने उसे समझाना चाहा।

वह आश्चर्य से मेरा मुँह ताक रही थी। उसे लग रहा था, जेसे मैं मजाक कर रहा हूँ।

मैंने साफ शब्दों में कह दिया था कि मैंने उत्तर प्रदेश के ‘चूहड़ा’ परिवार में जन्म लिया है।

सविता गम्भीर हो गई थी, उसकी आँखें छलछल्ला आईं।

उसने रूआंसी होकर कहा, झूठ बोल रहे हो न?”

“नहीं सविता...यह सच है... जो तुम्हें जान लेना चाहिए...” मैंने उसे यकीन दिलाया था।

वह रोने लगी थी। मेरा एस.सी. होना जैसे कोई अपराध था। वह काफी देर तक सुबकती रही। हमारे बीच अचानक फासला बढ़ गया था। हजारों साल की नफरत हमारे दिलों में भर गई थी। एक झूठ को हमने संस्कृति मान लिया था।

हम लोग वापसी में लगभग चुप थे। लेकिन भीतर के कोलाहल में डूबे हुए...मैं तनाव-मुक्त हो चुका था। जैसे मेरे मन से कोई भारी बोझ हट गया था। स्टेशन के पास रेलवे लाईन पार करते हुए मैंने सविता से कहा, “... यह हमारी आखरी मुलाकात है।”

“क्यों घर नहीं आओगे?” उसने हैरानी से पूछा था।

“नहीं अब नहीं आ पाऊंगा।”

वह चलते-चलते रूक गई थी। बोली, “घर आओ या न आओ यदि सच है तो बाबा से मत कहना...” वह फिर रूआंसी हो गयी थी। उसका गला भर गया था।

“लेकिन क्यों?” मैंने जानना चाहा था।

“नहीं कहोगे...वादा करो...” सविता की आँखों में अजीब-सी याचना थी।¹⁴

वर्ग का ठप्पा लगने पर असंख्य गुण भी उस धब्बे को नहीं मिटा सकते। परम्परावादी समाज कभी भी यह स्वीकार करने को तैयार नहीं होता कि जिन्हें वे युगों-युगों से शोषित करते आए हैं। वे उनके समकक्ष बैठकर उनके जैसे कैसे हो गए। उनमें उनसे बेहतर गुण किस तरह से विक्षिप्त हो गए, क्योंकि उनकी दृष्टि में एस.सी. तो अनकल्चर्ड ही होते हैं।

संदर्भ

1. जूठन, ओप्रकाश वाल्मीकि, खंड एक पृ.:96-97
2. जूठन, ओप्रकाश वाल्मीकि, खंड एक पृ.:103
3. जूठन, ओप्रकाश वाल्मीकि, खंड एक पृ.:111-112
4. जूठन, ओप्रकाश वाल्मीकि, खंड एक पृ.:119-123

ब्रिटिश काल में शिक्षा का विकास: अवध की शिक्षा के विशेष संदर्भ में

डॉ० अनूप पांडे

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास, गया प्रसाद स्मारक राजकीय महिला, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अंबारी आजमगढ़

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व सार्वजनिक शिक्षा और विद्या प्रचार की दृष्टि से भारत संसार के अग्रतम देशों में गिना जाता था। लेकिन अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् ब्रिटिश काल में शिक्षा का विकास भारत में शनैः शनैः हुआ। अंग्रेजों ने शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य किया, उसका प्रभाव लखनऊ में, नवाबी शासन में नहीं पड़ा। शिक्षा की योजनाएं और उनका लागू होना केवल प्रेसीडेंसी नगरों तक ही सीमित रहा। यूरोपियन संस्कृति ने यहां के नवाबों और धनी वर्ग पर केवल अपना प्रभाव डाला। यहां धर्म प्रचारकों द्वारा कोई पाठशाला नहीं खोली गई, तथा आम जनता भी अंग्रेजी शिक्षा के प्रति उदासीन रही। मुसलमान छात्रों की शिक्षा मदरसों तथा हिन्दुओं की पाठशालाओं तक सीमित रही। नवाबी शासन के आरम्भिक काल से लखनऊ में अंग्रेजी शिक्षा के स्कूल तो खुलना आरम्भ हो गये थे, परन्तु सर्वसाधारण की इस ओर कोई रुचि नहीं थी। वे अपनी परम्परानुसार अपनी ही शिक्षा संस्थाओं में बच्चों को शिक्षा दिलाते थे। 1852 के बाद में लखनऊ में पाश्चात्य प्रभाव बहुत बढ़ गया और अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा के अनेक संस्थान खुलने लगे, जिन्होंने अत्यंत ख्याति अर्जित की। ब्रिटिशकाल में शिक्षा का विकास मुख्यतः अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य को सुदृढ़ करने के लिए किया जो कि तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए उनके हित में था।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व सार्वजनिक शिक्षा और विद्या प्रचार की दृष्टि से भारत संसार के अग्रतम देशों में गिना जाता था। उन दिनों जनसामान्य को शिक्षा देने के लिए मुख्य रूप से चार प्रकार की संस्थाएं थी।¹

असंख्य ब्राह्मण आचार्य अपने घरों पर अपने शिष्यों को शिक्षा देते थे। अनेक मुख्य नगरों में उच्च संस्कृत साहित्य की शिक्षा के लिए टोल या विद्यापीठ कायम थी। उर्दू एवं फारसी की शिक्षा के लिए जगह-जगह मकतब एवं मदरसे थे, जिनमें लाखों हिन्दू, मुस्लिम शिक्षा पाते थे।² इन सब के अतिरिक्त देश के प्रत्येक छोटे-छोटे ग्राम में ग्राम के समस्त बालकों की शिक्षा के लिए कम से कम एक पाठशाला होती थी।

जिस समय तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत की सहस्रों वर्षों की पुरानी ग्राम पंचायतों को नष्ट नहीं कर डाला उस समय तक ग्राम के समस्त बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करना प्रत्येक पंचायत अपना उत्तरदायित्व समझती थी और उसका पालन करती थी।

इंग्लिस्तान की पार्लियामेन्ट में प्रसिद्ध सदस्य केर हाडी ने अपनी पुस्तक इण्डिया में लिखा है- प्राचीन भारतीय इतिहास के यूरोपियन विधानों में मैक्समूलर प्रमाणित माना जाता है और लाडलों एक प्रसिद्ध इतिहास लेखक था। जो बात जर्मन मैक्समूलर ने बंगाल के विषय में कहा है और उसी का समर्थन अंग्रेज लाडलों ने समस्त भारत के लिए किया।³

प्राचीन भारत में असंख्य पाठशालाओं के खर्च की व्यवस्था को ध्यान करते हुए कैम्पबेल लिखता है। 'इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराने समय, में विशेषकर हिन्दुओं के शासनकाल में विद्या प्रचार की सहायता के लिए बड़ी-बड़ी रकमें और बड़ी-बड़ी जागीरें राज्य की ओर से दी जाती थी।' पहले राज्य की आमदनी का एक बहुत बड़ा हिस्सा विद्या को उत्तेजना और उन्नति देने में खर्च किया जाता था।⁴

दिसम्बर 1600 ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भारत में स्थापना, एक व्यापारिक कम्पनी के रूप में हुई थी। यहां के व्यापारिक अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् कम्पनी के निर्देशकों ने पादरियों को ईसाई धर्म प्रचार हेतु भारत भेजना आरम्भ कर दिया और जब 1698 ई० में कम्पनी के आज्ञापत्र का नवीनीकरण हुआ तो उसमें यह धारा जोड़ दी गयी कि कम्पनी भारत में अपनी फैक्टरियों में धर्म मंत्री रखें। इस आज्ञापत्र के पश्चात् कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में धर्म मन्त्री (पादरी) रहने लगे तथा ईसाई और ऐंग्लो-इंडियन बालकों को शिक्षा देने लगे। उन लोगों ने कुछ दान स्कूल भी खुलवाये। भारत में अंग्रेजी शिक्षा का उदय यही से होता है।

1765 ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी व्यापारिक कम्पनी न रहकर राजनीतिक शक्ति बन गयी और उसकी शिक्षा पद्धति और शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण भी बदला। अब तक कम्पनी भारतीयों की शिक्षा के प्रति उदासीन थी⁵ और उसकी शिक्षा केवल यूरोपियन और ऐंग्लोइंडियन बच्चों की शिक्षा तक ही सीमित थी, अतः अब कम्पनी ने हिन्दू और मुसलमान धनी परिवारों के बालकों की शिक्षा हेतु विद्यालय खोलना आरम्भ किये। वारेन हेस्टिंग्स ने 1781 ई० में मुसलमान बच्चों की शिक्षा हेतु कलकत्ता मदरसा तथा अंग्रेज रेजीडेंट जोनायन डंकन ने हिन्दू बालकों की शिक्षा हेतु बनारस संस्कृत विद्यालय की स्थापना की जिनका मुख्य उद्देश्य कम्पनी के उच्च तथा उत्तरदायित्वपूर्ण पदों के लिए धनी बालकों का चयन और हिन्दू-धर्म तथा हिन्दुओं की सेवाएं प्राप्त करना था। 1793 ई० के बाद से कम्पनी और ईसाई धर्म प्रचारकों (मिशनरियों) के सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये, तत्पश्चात् आया 1813 ई० का आज्ञापत्र जो भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नया मोड़ था, परन्तु इससे पूर्व ही कम्पनी के भूतपूर्व कर्मचारी ग्राण्ट ने एक छोटी पुस्तक लिखी जिससे प्रभावित होकर विलियम दिलवर फोर्स ने ब्रिटिश संसद में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसके अनुसार यह तय पाया गया कि कम्पनी द्वारा प्राप्त किये गये 'कर' से कम्पनी भारतीयों की शिक्षा का प्रबन्ध करें।⁶

1813 ई० के इंग्लिस्तान की पार्लियामेंट ने भी चार्टर एक्ट पास किया⁷, जो 1813 ई० के आज्ञापत्र में धारा 43 में यह था कि ब्रिटिश भारत की आमदनी की बचत में से गवर्नर जनरल को इस बात का अधिकार होगा कि हर समय एक लाख रुपये तक⁸, भारत में साहित्य की उन्नति और पुनरुज्जीवन के लिए⁹ शिक्षित भारतवासियों को प्रोत्साहित करने ब्रिटिश अधीन भू-भाग के भारतवासियों में विज्ञान की शिक्षा आरम्भ करने और उसके विकास हेतु थी।¹⁰

परन्तु फिर भी 1854 ई० तक शिक्षा क्षेत्र में उन्नति नहीं हो पायी, क्योंकि धर्म-प्रचारको¹¹ के अधिकार छिन गये थे तथा कम्पनी राजनीतिक उलझनों, युद्धों-सन्धियों, पुलिस और सेना की व्यवस्था तथा न्याय और कानून ठीक करने में लगी थी, अतः शिक्षा की समस्या पीछे रह गयी और इस क्षेत्र में जो भी थोड़े बहुत सुधार आये, वह केवल कलकत्ता बम्बई और मद्रास प्रेसीडेंसी तक सीमित रहे। 1843 ई० में उत्तर पश्चिमी आगरा और अवध के क्षेत्रों में शिक्षा के अधिकार बंगाल से लेकर प्रान्तीय सरकार को दे दिये गए,¹² जिसने आगरा, बनारस व दिल्ली में तीन स्कूल जिसमें अंग्रेजी शिक्षा की व्यवस्था थी और कुछ वर्नाक्यूलर पाठशालाएं खुलीं जिन्होंने यहां शिक्षा क्षेत्र में अनेक सुधार किए।¹³ लार्ड मैकाले जो भारत में गवर्नर जनरल की कौंसिल के कानून सदस्य थे, 'कमेटी ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन का सदस्य हो गये और उनके प्रयत्नों से 1843 ई० तक अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की बढ़ोतरी हुई और इस प्रकार भारत में अंग्रेजी साहित्य, सभ्यता व संस्कृति का प्रचार होने लगा। भारतीय शिक्षा इतिहास में चार्ल्स बुड की (1854-1882 ई०) योजना ने युग-प्रवर्तक का काम किया। बाद में यहां माध्यमिक शालाएं, प्राथमिक शालाएं और विश्वविद्यालयों की स्थापना होने लगी।¹⁴

शिक्षा क्षेत्र में प्रस्तावित योजनाओं और सुधारों का प्रभाव लखनऊ में, नवाबी शासन में नहीं पड़ा। शिक्षा की योजनाएं और उनका लागू होना केवल प्रेसीडेंसी नगरों तक ही सीमित रहा। यूरोपियन संस्कृति ने यहां के नवाबों और धनी वर्ग पर केवल अपना प्रभाव डाला। यहां धर्म प्रचारकों द्वारा कोई पाठशाला नहीं खोली गई, तथा आम जनता भी अंग्रेजी शिक्षा के प्रति उदासीन रही। मुसलमान छात्रों की शिक्षा मदरसों तथा हिन्दुओं की पाठशालाओं तक सीमित रही।

नवाब आसिफुद्दौला के काल में जनरल मार्टिन ने अपने रहने का विशाल भवन बनवाया था।¹⁵ वह अपनी मृत्यु पश्चात् उसी में दफन हो गया और यह भवन स्कूल के रूप में 1830 ई० से अंग्रेजी शिक्षा हेतु आरम्भ हो गया था। वस्तुतः यहां राजघराने अथवा धनी वर्ग के बालक ही शिक्षा ग्रहण करने जाते थे, अन्य वर्गों के बालकों के यहां शिक्षा ग्रहण करने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

नवाब सआदत अली खाँ का पूर्ण बाल्यकाल कलकत्ते में अंग्रेज अफसरों के साथ उनके शिष्टाचार, रहन-सहन एवं सभ्यता सीखने में व्यतीत हुआ।¹⁶ इन पाश्चात्य संस्कृति का पूर्ण प्रभाव था। नवाब के खाने के कमरे में प्लेटों, काटों, चम्मचों और छुरी का आम प्रयोग होता था।¹⁷ नवाब को अंग्रेजी भाषा से भी लगाव था। इसी प्रकार नवाब नासिरुद्दीन हैदर पर भी पाश्चात्य संस्कृति का पूर्ण प्रभाव था। उनके वहां होने वाली रेजीडेन्ट व अन्य ब्रिटिश अधिकारियों की दावतों में भोजन व्यवस्था अंग्रेजों के समान ही होती थी।¹⁸ उन्होंने लखनऊ में प्रथम अंग्रेजी शिक्षा का स्कूल लखनऊ में खोला था।¹⁹

इस प्रकार नवाबी शासन के आरम्भिक काल से लखनऊ में अंग्रेजी शिक्षा के स्कूल तो खुलना आरम्भ हो गये थे, परन्तु सर्वसाधारण की इस ओर कोई रुचि नहीं थी। वे अपनी परम्परानुसार अपनी ही शिक्षा संस्थाओं में बच्चों को शिक्षा दिलाते थे। 1852 के बाद में लखनऊ में पाश्चात्य प्रभाव बहुत बढ़ गया और अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा के अनेक संस्थान खुलने लगे, जिन्होंने अत्यंत ख्याति अर्जित की।

भारतवासियों की शिक्षा की ओर अंग्रेज शासकों का विरोध बहुत दिनों तक जारी रहा। सन् 1831 की जाँच के समय सर जॉनमेलकम के बीस वर्ष पहले के विचारों को दोहराते मेजर जनरल लियोनेलस्मिथ ने कहा, "शिक्षा का परिणाम यह होगा कि वे सब साम्प्रदायिक और धार्मिक पक्षपात जिसके द्वारा हमने अभी तक मुल्क को अपने वश में रखा है। इत्यादि दूर हो जायेंगे। शिक्षा का परिणाम यह होगा कि इन लोगों के दिमाग खुल जाएंगे और उन्हें अपनी विशाल शक्ति का पता लग जाएगा।"²⁰

18वीं शताब्दी के अन्त से इस विषय में अंग्रेज शासकों के विचारों में अन्तर पैदा होना शुरू हो गया, कारण यह था कि धीरे-धीरे इंग्लिस्तान की नीतियों को भारत के अन्दर ही विशेष कठिनाइयां अनुभव होने लगी थी, क्योंकि शिक्षित भारतवासियों की संख्या दिन-प्रतिदिन घटती जा रही थी। इसलिए अंग्रेजों को अपने सरकारी महकमों और विशेष कर नई अदालतों के लिए योग्य हिन्दू एवं मुसलमान कर्मचारियों की कमी महसूस होने लगी। जिसके बिना उन महकमों और अदालतों का चल सकना सर्वथा असम्भव था और उन्हें थोड़े से इस तरह के भारतवासियों की आवश्यकता अनुभव होने लगी। जिसके जरिये शेष भारतीय जनता के हृदय से लाखों लोगों का पता लगा रहे थे और जिनके जरिये शेष भारतीय जनता के लाखों लोगों को भर्तीकर रख सके।²¹

सन् 1930 की पार्लियामेंट कमेटी की रिपोर्ट में इन दोनों आवश्यकताओं का बार-बार जिक्र आता है और साफ लिखा है कि कलकत्ते के मुसलमानों का मदरसा और बनारस का हिन्दू संस्कृत कालेज दोनों अठारहवीं शताब्दी के अन्त में ठीक इसी उद्देश्य से कायम किये गये थे। इसी उद्देश्य से सन् 1822 में पूना का डेकेन कालेज और 1835 में कलकत्ते का मेडिकल कालेज और सन् 1847 में रूडकी इंजीनियरिंग कालेज की स्थापना की गयी।²²

1757 से लेकर 1857 तक भारतवासियों की शिक्षा के विषय में अंग्रेज शासकों के सामने मुख्य प्रश्न केवल यह था कि भारतवासियों को शिक्षा देना साम्राज्य के स्थायित्व की दृष्टि से हितकर है, या अहितकर और यदि हितकर आवश्यक है तो उन्हें किस प्रकार शिक्षा देना उचित है।²³

भारत के लिए अंग्रेजी शिक्षा की सार्थकता का सबसे प्रमाणित दस्तावेज राजा राममोहन राय का वह पत्र है जो दिसम्बर 1823 में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड एम्सहर्ट को लिखा था।²⁴ सरकार हिन्दू पंडितों की देख-रेख में एक संस्कृत स्कूल की स्थापना करना चाहती थी। राजाराम मोहन राय ने सरकार के इस प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि इस तरह के स्कूल और इस तरह की शिक्षा से भारतीयों को लाभ नहीं होगा।²⁵

पाश्चात्य शिक्षा की उपयोगिता के बारे में राजाराम मोहन राय ने जो विचार प्रकट किये थे वे तत्कालीन समाचार पत्रों में भी थे। 7 दिसम्बर 1835 को 'सुधारक' नामक बंगाली पत्र में भी इस प्रकार के विचार व्यक्त किये थे, पत्र में कहा गया था सरकार संस्कृत शिक्षा पर एक लाख खर्च करती है। लेकिन इससे लोगों को कोई लाभ नहीं होता। केवल ब्राह्मण छात्रों को ही संस्कृत विद्यालयों में दाखिला मिलता है।

सरकार को देश में केवल ऐसी शिक्षा-प्रणाली का विकास करना चाहिए जिससे लोगों का अज्ञान दूर हो सके। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए हर गाँव में एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना होनी चाहिए। इसमें काफी रकम लगेगी, सरकार शिक्षा के प्रचार के लिए हर गाँव वालों पर कुछ कर लगा सकती है।²⁶

बंगाल के नवजागरण में हिन्दू कालेज का योगदान अविस्मरणीय है। हेनरी डेरोजियो जैसे अध्यापकों ने छात्रों को स्वतंत्र चिन्तन की प्रेरणा दी और उन्हें बल्टेयर लाक बेकन ह्यूम तथा टांम पेन के विचारों से अवगत कराया। हिन्दू कालेज के विद्यार्थियों ने स्वतंत्र विचार विमर्श के लिए अनेक संस्थाओं का निर्माण किया।²⁷

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि ब्रिटिशकाल में शिक्षा का विकास मुख्यतः अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य को सुदृढ़ करने के लिए किया जो कि तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए उनके हित में था।

सन्दर्भ सूची:

1. Maxmullar - East India p. no. 9 - 1832
2. भारत में अंग्रेजी राज्य-सुन्दरलाल चण. 112. 1938
3. Ibid
4. Report of A.D. Compbell Collector of Bellary Dated 17 the August 1823 No. 1 Published 1832.
5. पी० वासु: अवध एण्ड ईस्ट इण्डिया कम्पनी, पृ०-1
6. Ibid. p.- 5
7. Affairs of the east India Company, published 1832 Vol.-1. p.p. 446, 447
8. F.E.K : A history of Education in India and Pakistan p. No. 136
9. Affairs of the East India Company, published 1832, Vol.-1 pp. 446-447
10. F.E.K : A history of Education in India and Pakistan p. No. 136
11. माइकिल एडवर्ड: द नवाब्स, पृ०-112, अठारहवीं सदी में केवल रोमन कैथोलिक मिशनरिया ही भारत में भी और उनके छोटे-छोटे, स्टेशन लखनऊ, पटना, बंगाल, आगरा, व नेपाल में थे।
12. भगवान दयाल: द डेवलेपमेंट ऑफ मार्डन इण्डियन एजुकेशन, पृ०-68
13. Ibid- P- 68: इस समय थम्पसन इस क्षेत्र का लेफ्टिनेंट गवर्नर था।
14. Ibid- P- 68
15. डब्लू० के० फरमिगन (संपादक): बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट भाग 2, पृ०-277-278
16. भगवान दयाल: द डेवलेपमेंट ऑफ मार्डन इंडियन एजुकेशन, पृ०-68
17. जार्ज वैलेटिया: ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग-2, पृ०-172
18. Ibid-
19. मसूद, हसन: शाने अवध का अरमी व अदबी जोक, पृ०-33
20. Mayor General Sir Zionce smith K.C. B engocery af- 1931.
21. Lettler from the coust Dircefor 8 to the governors general, mr. council dated 5th september, 1827- P- 490.
22. Ibid- P- 491
23. Sixth report from select committee on India Territone 1853, p.p.- 153-57
24. राजाराम मोहन राय और विचार, शिव प्रकाश गुप्ता, मोहनी गुप्ता, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, P.No. 98
25. J.K. Majumdar, Raza Ram Mohan Ray and progressive movement in India Repergented in New Delhi 1988, P. - 250, 252
26. R.C. Magumdar quoted in R.C. Majumdar, P.- 35, 36
27. राजाराम मोहन राय, व्यक्ति और विचार, शिव प्रसाद गुप्ता, मोहनी गुप्ता, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, P.No. 99

जौनपुर जनपद में अवस्थित उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन का लिंग एवं निवासी स्थिति के सम्बन्ध में अध्ययन

स्वराज गौतम

शोध छात्र (शिक्षक-शिक्षा विभाग), राजा हरपाल सिंह पी0जी0 कालेज सिंगरामऊ, जौनपुर, उ0प्र0
सम्बद्ध- वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, उ0प्र0

डॉ० अंजनी कुमार मिश्र

असिस्टेंट प्रोफेसर (शिक्षक-शिक्षा विभाग), राजा हरपाल सिंह पी0जी0 कालेज सिंगरामऊ, जौनपुर, उ0प्र0
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, उ0प्र0

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता ने जनपद जौनपुर में अवस्थित उच्च शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत विद्यार्थियों से स्वनिर्मित प्रश्नावली के माध्यम से शैक्षिक चिन्तन का लिंग एवं निवासी स्थिति से सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित किये गये तथा प्राप्त आँकड़ों का उपयुक्त सांख्यिकीय की सहायता से विश्लेषण करने के पश्चात यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन के विकास में लिंग तथा निवासीय स्थिति की अन्तःक्रिया का भी प्रमुख योगदान है।

मुख्य शब्द- शैक्षिक चिन्तन, लिंग, निवासी स्थिति।

प्रस्तावना:

1. चिन्तन
2. शैक्षिक चिन्तन
3. लिंग एवं निवासी स्थिति

1. **चिन्तन**- चिन्तन श्रेष्ठ उच्च संज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से ज्ञान संगठित होता है। इस मानसिक क्रिया में कल्पना, स्मृति, तर्क, संकल्पना, जैसे तत्त्व विद्यमान रहते हैं। मनुष्यों का जीवन समस्याओं से अच्छादित है, मनुष्य जैसे ही एक समस्या का समाधान ढूँढ़ता है वैसे ही दूसरी समस्या उपस्थित हो जाती है। ये समस्याएँ प्रयास करने से हल हो जाती हैं। यों ही प्रयत्न चिन्तन को जन्म देता है।

अर्थ एवं परिभाषा:

अतीत से वर्तमान तक की विश्व की प्रगति मानव की चिन्तन शक्ति पर ही आधारित रही है। चिन्तन के द्वारा ही यथार्थ का पता लगता है और यथार्थ का ज्ञान ही विज्ञान को जन्म देती है। अतः चिन्तन शब्द का प्रयोग स्मृति, कल्पना, तर्क और अनुमान आदि रूपों में प्रयुक्त किया जाता है। प्रत्येक प्रकार के चिन्तन की एक दिशा तथा लक्ष्य अवश्य ही होता है। चिन्तन में मनुष्य, विद्यार्थी या बालक सक्रिय रूप से क्रियाशील रहता है। चिन्तन वस्तुओं, विषयों, प्रतिमाओं और प्रतीकों आदि किसी के भी सम्बन्ध में हो सकता है। चिन्तन के अर्थ को अधिक स्पष्ट करने हेतु विद्वानों के मतों का उल्लेख सहायक है-

कागन तथा हैभमैन ने चिन्तन की एक सर्वश्रेष्ठ एवं व्यापक परिभाषा दी है- “प्रतिमाओं, प्रतीकों, सम्प्रत्ययों, नियमों एवं अन्य मध्यस्थ इकाईयों के मानसिक जोड़-तोड़ को चिन्तन कहा जाता है।”

2. **शैक्षिक चिन्तन**- शिक्षा व चिन्तन के सम्बन्ध में विस्तार से समझने के पश्चात शैक्षिक चिन्तन को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है- “शैक्षिक चिन्तन से अभिप्राय शिक्षा के विभिन्न आयामों के सम्बन्ध में किये जाने वाले चिन्तन से है जिसके अन्तर्गत शैक्षिक समस्याओं, शैक्षिक अवधारणाओं, शैक्षिक सूचनाओं, शैक्षिक निर्देशन तथा शिक्षा से सम्बन्धित अन्य आयामों के सम्बन्ध में किये जाने वाले चिन्तन को सम्मिलित किया जा सकता है।”

3. लिंग एवं निवासी स्थिति- ग्रामीण महिला विद्यार्थी, ग्रामीण पुरुष विद्यार्थी एवं शहरी महिला विद्यार्थी, शहरी पुरुष विद्यार्थी।

शोध का औचित्य-

उपरोक्त चरों की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिक्षा में विकास के लिए उपयुक्त शिक्षण, उचित वातावरण के साथ-साथ शिक्षा ग्रहण कर रहे विद्यार्थियों की विशेषताओं का भी अहम योगदान है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य की बात करे तो शिक्षा के क्षेत्र में नयी-नयी शिक्षण विधियों जैसे कि प्रोजेक्ट विधि, संरचना विधि, मिश्रित शिक्षण विधियों, पल्टावी विधि इत्यादि के द्वारा शिक्षक विद्यार्थियों को उच्च गुणवत्ता स्तर की सामग्री प्रदान करने के साथ-साथ उन्हें हर प्रकार से सहयोग देने का प्रयास कर रहे हैं परन्तु इसके पश्चात भी सम्पूर्ण देश में शिक्षा के परिणाम एक जैसे नहीं आ पा रहे हैं जिसके प्रमुख कारणों पर शोध करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

शैक्षिक चिन्तन विद्यार्थियों के व्यवहार में ठहराव, धैर्य तथा शैक्षिक लक्ष्यों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में बहुत आवश्यक है। विद्यार्थी के जीवन में इन चरों की महत्वपूर्ण भूमिका देखते हुए शोधकर्ता ने प्रस्तुत अध्ययन करने का निश्चय किया।

समस्या कथन:

प्रस्तुत अध्ययन के क्रियान्वयन में निम्न कथन को समस्या कथन के रूप में लिया गया है। “जौनपुर जनपद में अवस्थित उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन का लिंग एवं निवासी स्थिति के सम्बन्ध में अध्ययन”।

1. **शैक्षिक चिन्तन**- प्रस्तुत अध्ययन में शैक्षिक चिन्तन से अभिप्राय शिक्षा के विभिन्न आयामों के सम्बन्ध में किये जाने वाले चिन्तन से है जिसके अन्तर्गत शैक्षिक समस्याओं, शैक्षिक आवश्यकताओं, शैक्षिक सूचनाओं के सम्बन्ध में किये जाने वाले चिन्तन को सम्मिलित किया जा सकता है।
2. **उच्च स्तर**- प्रस्तुत अध्ययन में उच्च स्तर से अभिप्राय स्नातक स्तर से है।

अध्ययन का उद्देश्य:

1. जौनपुर जनपद अवस्थित उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत महिला व पुरुष विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन का अध्ययन करना।
2. जौनपुर जनपद में अवस्थित शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन का अध्ययन।

अध्ययन की परिकल्पना:

1. जौनपुर जनपद में अवस्थित उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत महिला एवं पुरुष विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. जौनपुर जनपद में अवस्थित उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध परिसीमन:

1. प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत जनपद जौनपुर में अवस्थित समस्त उच्च शिक्षण संस्थाओं को सम्मिलित किया गया है।
2. प्रस्तुत अध्ययन में केवल स्नातक स्तर के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

शोध अभिकल्प:

प्रस्तुत अध्ययन में शोध अभिकल्प के अन्तर्गत निम्न बिन्दुओं का वर्णन किया जाता है-

1. शोध विधि
2. समष्टि
3. प्रतिदर्श
4. शोध उपकरण-निर्माण प्रक्रिया तथा अंकन
5. प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियाँ

1. **शोध विधि**- अनुसंधान की प्रक्रिया को क्रियान्वित करने के ढंग को शोध विधि कहा जाता है। किसी अनुसंधान की शोध विधि का निर्धारण उसकी समस्या कथन में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर होता है। शोधकर्ता ने प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति के अनुसार वर्णनात्मक अध्ययन विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण प्रविधि का प्रयोग किया है।

बेस्ट के अनुसार, “वर्णनात्मक अनुसंधान वर्तमान स्थिति की व्याख्या तथा विवेचना प्रस्तुत करता है। इसका सम्बन्ध उन स्थितियों तथा सम्बन्धों से है जिनका अस्तित्व वर्तमान में है अथवा उन व्यवहारों से है जो कि प्रचलित हैं, व उन दृष्टिकोणों अथवा अभिवृत्तियों से है, जिनका प्रचलन है, व ऐसे प्रक्रमों से है, जो कि सक्रिय हैं तथा उन प्रभावों से है जिन्हें अनुभव किया जा रहा है अथवा उन उपनितियों से है, जो कि विकासशील हैं।”

2. **समष्टि**- समष्टि से अभिप्राय किसी शोध कार्य के अन्तर्गत शोध क्षेत्र में आने वाली सभी शोध इकाईयों के योग से होता है। प्रस्तुत अध्ययन में जनपद जौनपुर में अवस्थित सभी महाविद्यालयों में अध्ययनरत स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के रूप में समष्टि को परिभाषित किया जा सकता है।
3. **प्रतिदर्श**- प्रतिदर्श से अभिप्राय समष्टि के भाग से होता है जिसमें समष्टि को लगभग सभी विशेषताएँ सम्मिलित होती हैं तथा यह सम्पूर्ण समष्टि का प्रतिनिधित्व करती है।

1. सम्भाव्य प्रतिदर्शन

2. गैर सम्भाव्य प्रतिदर्शन

सरलता एवं वस्तुनिष्ठा की विशेषताओं के कारण शोधकर्ता ने द्वि-स्तरीय प्रतिदर्श विधि का प्रयोग किया गया है। इसके अन्तर्गत जौनपुर जनपद के 10 ग्रामीण व 10 शहरी महाविद्यालयों का चयन प्रथम स्तर पर किया गया है तथा द्वितीय स्तर पर इन्हीं महाविद्यालयों में से 420 विद्यार्थियों (210 छात्र व 210 छात्राओं) का चयन करके आँकड़े एकत्रित किये गये। जिसमें से 380 विद्यार्थियों (196 छात्र व 184 छात्राओं) के प्रपत्रों को शोध के लिए उपयुक्त पाया गया। प्रतिदर्श के चयनित महाविद्यालयों तथा विद्यार्थियों की सारणी निम्नलिखित है-

क्र. सं.	महाविद्यालय का नाम	शहरी/ ग्रामीण	छात्र	छात्राएँ
1.	तिलकधारी पी0जी0 कालेज, जौनपुर	शहरी	10	12
2.	मो0 हसन पी0जी0 कालेज, जौनपुर	शहरी	8	8
3.	राजा कृष्ण दत्त पी0जी0 कालेज, जौनपुर	शहरी	12	10
4.	डॉ0 ए0एच0 रिजवी सिया डिग्री कालेज, जौनपुर	शहरी	14	10
5.	तिलकधारी महिला महाविद्यालय, जौनपुर	शहरी	8	14
6.	मुस्लिम गर्ल्स डिग्री कालेज, जौनपुर	शहरी	6	8
7.	मुक्तेश्वरी प्रसाद महाविद्यालय, जौनपुर	शहरी	10	4
8.	गुलाबी देवी महाविद्यालय सिद्दीकपुर, जौनपुर	शहरी	10	6
9.	शिवानी गौरव मेमोरियल लॉ कालेज, जौनपुर	शहरी	8	10
10.	उमानाथ सिंह विधि महाविद्यालय फरीदपुर, जौनपुर	शहरी	6	12
11.	एस0जी0 डिग्री कालेज, समोधापुर	ग्रामीण	10	14
12.	राजा हरपाल सिंह डिग्री कालेज, सिंगरामऊ	ग्रामीण	8	6
13.	सल्लतनत बहादुर महाविद्यालय, बदलापुर, जौनपुर	ग्रामीण	4	4
14.	राज गौरव महाविद्यालय खुटहन, जौनपुर	ग्रामीण	6	8
15.	श्री गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय डोभी, जौनपुर	ग्रामीण	12	10
16.	सहकारी पी0जी0 कालेज मिहरावा, जौनपुर	ग्रामीण	14	12
17.	राम अवध गन्ना कृषक महाविद्यालय ताखा, शाहगंज	ग्रामीण	12	14
18.	राज बहादुर महाविद्यालय गुलालपुर, जौनपुर	ग्रामीण	14	10
19.	श्री राजा राम महाविद्यालय तरियारी केराकत, जौनपुर	ग्रामीण	12	8
20.	श्री बजरंग महाविद्यालय, घनश्यामपुर, जौनपुर	ग्रामीण	12	4

शोध उपकरण- स्वनिर्मित शैक्षिक चिन्तन प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकीय तकनीक- प्रस्तुत अध्ययन के विश्लेषण हेतु केन्द्रीय प्रवृत्तियों के मापों में से सामान्तर माध्य, परिवर्तनशीलता के मापों में से प्रमाप विचलन तथा प्रचालिक परीक्षणों में से t- परीक्षण तथा ANOVA का प्रयोग किया गया है जो कि अगले अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

प्रदत्तो का विश्लेषण:

प्रस्तुत शोध अध्ययन में उपकरणों की सहायता से एकत्रित किये गये आंकड़ों का विश्लेषण तथा व्याख्या, उद्देश्य तथा परिकल्पनाओं को आधार बनाते हुए सारणीवार प्रस्तुतीकरण की सहायता से उपयुक्त सांख्यिकीय लगाते हुए की गयी है जो कि इस प्रकार है:-

सारणी-4.1 : उ0शि0सं0 में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं के शैक्षिक चिन्तन का तुलनात्मक अध्ययन

विवरण	संख्या N	माध्य X	प्रमाप विचलन δ	मानक त्रुटि (SE)	सार्थकता स्तर	t मान सारणी	t मान परिकल्पित	परिणाम
उ0शि0सं0 में अध्ययनरत छात्रों का शैक्षिक चिन्तन	196	29.3	3.278	1.208	$\alpha = 0.05$	$t = 1.96$	(3.064)	शून्य (H_0) परिकल्पना स्वीकृत नहीं
उ0शि0सं0 में अध्ययनरत छात्राओं का शैक्षिक चिन्तन	184	33	4.292					

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि छात्रों के शैक्षिक चिन्तन का माध्य 29.3 है जो कि छात्राओं के शैक्षिक चिन्तन के औसत 33 से कम है। छात्र व छात्राओं के शैक्षिक चिन्तन में पाया गया यह अन्तर सार्थक है या नहीं यह जानने के लिए t परीक्षण (स्वतंत्र समूह) का प्रयोग किया गया तथा t का परिकलित मान (3.064) प्राप्त हुआ जो कि सारणी मान 1.96 (5 प्रतिशत स्तर पर) से अधिक है। अस्तु शून्य परिकल्पना, जौनपुर जनपद में अवस्थित उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत महिला एवं पुरुष विद्यार्थियों के शैक्षणिक चिन्तन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, स्वीकृत नहीं की जा सकती है तथा यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि छात्राओं की अपेक्षा शैक्षिक चिन्तन क्षमता छात्रों के मुकाबले सार्थक रूप से अधिक है जिनका मुख्य कारण छात्राओं की शिक्षा के प्रति अधिक गम्भीरता हो सकता है।

सारणी-4.2 : ग्रामीण व शहरी उ०शि०सं० में अध्ययनरत विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन का तुलनात्मक अध्ययन

विवरण	संख्या N	माध्य X	प्रमाण विचलन δ	मानक त्रुटि (SE)	सार्थकता स्तर	t मान सारणी	t मान परिकलित	परिणाम
ग्रामीण उ०शि०सं० के विद्यार्थियों का शैक्षिक चिन्तन	194	30.8	4.99	1.34	$\alpha = 0.05$	$t = 1.96$	0.521	शून्य (H_0) परिकल्पना स्वीकृत नहीं
शहरी उ०शि०सं० के विद्यार्थियों का शैक्षिक चिन्तन	186	31.5	3.4					

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि ग्रामीण विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन का माध्य 30.8 है जो कि शहरी विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन के औसत 31.5 से कम है। परन्तु यह अन्तर सार्थक है या नहीं यह जानने के लिए t परीक्षण का प्रयोग किया गया जिसमें यह पाया गया कि t का परिकलित मान (0.521), 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर पर t परीक्षण के सारणी मान (1.96) से कम है। अस्तु शून्य परिकल्पना (H_0), जौनपुर जनपद में अवस्थित उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, स्वीकृत की जाती है जिसका यह निष्कर्ष निकला है कि शैक्षिक चिन्तन के सम्बन्ध में निवासीय स्थिति का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है। जिसके सम्भावित कारण वर्तमान में तकनीकी उन्नति के कारण ग्रामीण व शहरी दोनों क्षेत्रों में शैक्षिक सुविधाओं का समान रूप से विचार होना हो सकता है।

निष्कर्ष- प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार है-

1. जौनपुर जनपद में अवस्थित उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत महिला विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन, क्षमता पुरुष विद्यार्थियों के मुकाबले सार्थक रूप से अधिक है जिसका मुख्य कारण छात्राओं की शिक्षा के प्रति अधिक गम्भीरता हो सकता है।
2. जौनपुर जनपद में अवस्थित शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के शैक्षिक चिन्तन के सम्बन्ध में निवासी स्थिति का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है। जिसका सम्भावित कारण वर्तमान में तकनीकी उन्नति के कारण ग्रामीण व शहरी दोनों क्षेत्रों में शैक्षिक सुविधाओं का समान रूप से विस्तार होना हो सकता है।

संदर्भ सूची:

1. गुप्ता, एस०पी० आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
2. गुप्ता, एस०पी० सांख्यिकीय विधियाँ, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
3. कौल, लोकेश, शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, ई०-28, सेक्टर-8, नोएडा (यू०पी०)।
4. राय, सी०पी० एवं राय, पारसनाथ-अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण, अग्रवाल, आगरा।
5. सिंह, अरुण कुमार, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, 41 यू०ए० बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
6. शर्मा, डॉ० आर०ए०, शिक्षा अनुसंधान के मूलतत्व एवं शोध प्रक्रिया, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ।
7. त्यागी, जी०एस०डी०-शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, रवि मुद्रणालय, आगरा।

वेबसाइट-

- www.google.com
- www.wikipedia.com

दार्शनिक अभ्यास में सत्य एवं अहिंसा का औचित्य: अनुप्रयुक्त जैन दर्शन के विशेष संदर्भ में

मेघा जैन

शोध छात्रा, जैन विश्वभारती, लांडनू (राजस्थान)

दर्शन, विचारों से संबंधित है। दर्शन में गहराई से देखने और परखने का तत्व उपस्थित है। दर्शन का मुख सवालों की ओर आमुख हैं। यह चिंतन, मनन के संग तर्क की बात पर जोर देने से जुड़ा हुआ है। मनुष्य और उसके चारों ओर की दुनिया, बड़ी अद्भुत और आश्चर्य से भरी हुई है। हजारों-लाखों सालों से मनुष्य इसे समझने और इसके साथ तारतम्य बैठाकर, विकसित होने का प्रयास करता आ रहा है। आज भी इन्सान की तमाम तरह की गतिविधियों व क्रियाकलापों से, जगत के रहस्यों को खोजने की कोशिशें जारी हैं। गणित और विज्ञान के क्षेत्र में हर प्रकार के सूत्र और स्रोतों से दिन-रात दुनिया एवं जीवन के रहस्यों को समझने तथा उजागर करने के कार्य, बड़े पैमाने पर किए जा रहे हैं। तमाम विकसित, विकाशील और अविकसित देश इस दौड़ में शामिल हैं। पर सवाल यह उभरता है कि, क्या वास्तव में इस तकनीक पसंद दौड़ के कुछ सार्थक मायने भी हैं? क्या सत्य के सभी आयामों को पूरी तरह समझा जा चुका है? क्या इस पृथ्वी पर मौजूद सत्य की बात समझने के प्रयास हुए या हो रहे हैं? क्या सत्य को व्यवहार में भी उतारा जा रहा है या नहीं? सत्य को किससे अधिक हानि हो रही है? क्या अहिंसा को वास्तव में व्यवहार में अपनाया गया है? ऐसे कितने ही सवालों हैं जिसके बारे में गंभीरता से जानना और पहचानना, वास्तव में जरूरी है।

जैन दर्शन, भारत के प्रचलित दर्शनों में से एक है। इसकी गिनती बहुत प्राचीन और संपन्न दर्शनों में की जाती है। “जैन दर्शन की धारा में चौबीस तीर्थकरों के ज्ञान/अनुभव मिले हुए हैं। वर्धमान महावीर को जैन अपना अंतिम अर्थात् चौबीसवां तीर्थकर मानते हैं।”¹ जैन धर्म व दर्शन में पार्श्वनाथ की विशेष जगह है। “महावीर ने बदलते समय के साथ इन्हीं के सिद्धांतों और मान्यताओं का विस्तार, सुधार और पुनर्स्थापना की।”² जैन धर्म को मानने वाले, वेदों को नहीं मानते और पर्याप्त रूप से तर्क को संवादों और विमर्श में जगह देते हैं। जैन दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व की भी स्वीकारिता नहीं है। इसे स्पष्ट करने के लिए, जैन मतावलंबी छह दृष्टिहीन व्यक्तियों और हाथी की कहानी सुनाया करते हैं। जब इन छह दृष्टिहीन व्यक्तियों ने हाथी जैसे बड़े जीव को छुआ, तो सबके हिस्से इस जीव के विशेष अंग ही आए। क्योंकि हाथी निश्चित रूप से एक बड़ा जीव है और मनुष्य चाहकर भी उसे पूरी तरह सिर्फ छूकर समझ नहीं सकता। किसी को वह बड़ा पंख लगा, किसी को तना, किसी को खंभा और दीवार की तरह महसूस हुआ। जैन अनुयायियों के अनुसार इस कहानी से समझा जा सकता है कि, “कोई वस्तु किसी विशेष क्षण में, किसी विशेष दृष्टिकोण से ही, किसी विशेष अवस्था में दिखाई देती है। दूसरे दृष्टिकोण से वह दूसरी अवस्था में दिखाई देती है। सबकी दृष्टि की क्षमता अलग और उनका सत्य भी। उदाहरण के लिए; मिट्टी का घड़ा मिट्टी के रूप में ही है, वह पानी नहीं है।”³ इस तरह हम यह समझ सकते हैं कि, प्रत्येक व्यक्ति के लिए सत्य ऐसा ही है।

जैन दर्शन में यह धारा ‘स्यादवाद’ है। इसका अर्थ ‘संभवतः’ है।⁴ इस जगत ने अपने को विभिन्न प्रकारों से परिलक्षित किया है। इसका अस्तित्व कभी एकदम प्रकट और प्रत्यक्ष है, तो कभी वह अप्रकट और अप्रत्यक्ष है। जगत में सत्य तो मौजूद है, परन्तु वह कभी पूरा आत्मसात नहीं हो पाता। जगत की कोई एक वस्तु अपने को कई तरह से प्रकट करती है और उसको परिभाषित भी अलग-अलग तरह से किया जाता है। उदाहरण के लिए उपर्युक्त हाथी वाली कथा से परे एक अन्य सामान्य उदाहरण लिया जा सकता है। पत्थर की स्थिति को अगर कोई समझे, तो वह कुछ पल के लिए पत्थर द्वारा प्रकट सत्य को समझ सकता है। कुछ पत्थरों के बड़े समूह पहाड़ हैं, तो कुछ अपने आकार के कारण कंकर हैं। कुछ मंदिरों में ईश्वर की मूर्ति में तब्दील हो जाने से पूज्य बना दिए गए हैं। निश्चित रूप से पत्थर के सन्दर्भ में समाज शास्त्र काम करता है, किन्तु पत्थर को निश्चित तौर पर संपूर्ण यथार्थ में नहीं जाना जा सकता। जैन दर्शन में, सत्य के संदर्भ में स्यादवाद महत्वपूर्ण है।

परन्तु जैन दर्शन के भीतर सत्य को उद्घाटित करने वाली शब्दावली, अत्यधिक गहन चिंतन और मनन की मांग करती है। यह आधुनिक समय के सत्य के संदर्भ में समझी जाने वाली शब्दावली से अत्यंत भिन्न और गहरी है। इसके भीतर हर बात के गूढ़ अर्थ हैं। प्रत्येक वस्तु, किसी खास समय में अपने को उद्घाटित करती है। काल एक निश्चित और जरूरी अवयव है, जिसमें सत्य को अवलोकित होने का अवसर मिलता है। एक बार गौतम गणधर ने वर्धमान महावीर से पूछा कि, “काल जीव है या अजीव?” उन्होंने उत्तर दिया- “काल ‘जीव’ भी है और ‘अजीव’ भी।”⁵ ‘जीव’ का मतलब जो आनंद ग्रहण करता है और ‘अजीव’ आनंद प्रदान करता है।⁶ अतः हम यह कह सकते हैं कि काल, जीव और अजीवों के मध्य निरंतर बना रहता है। यह एक दुर्लभ पृष्ठभूमि प्रदान करता है, जिसके बिना जीव और अजीवों की गतिविधि पर असर पड़ता है।

एक द्रव्य की प्रधानता, अलग-अलग बातों से तय होती है। उसमें, उत्पाद, व्यय और ध्रुव्यत्व होता है।⁷ ध्रुव्यत्व का अर्थ द्रव्य की उस स्थिति से है, जो उसकी मूल विशेषता है। यह मौसम और काल के अनुसार थोड़ी बहुत तो परिवर्तित होगी, पर वह किसी भी तरह अपनी मौलिकता में बनी रहेगी। जैन दर्शन के भीतर इस पर विस्तार से बात की गई है। इस बात को एक उदाहरण से समझना बेहतर होगा। एक व्यक्ति किसी संयुक्त परिवार में रहता है। वह

किसी का पिता है, किसी का पति और किसी का पुत्र भी। ठीक इसी तरह वह घर के घर के बाहर भी, अनेकों संबंधों से जुड़ा हुआ है। इस व्यक्ति से उत्पन्न होने वाले सत्य, कई प्रकार के होंगे। वह एक ही समय और परिस्थिति के अनुसार अनेकों रूप उद्घाटित कर रहा है, और हर रूप को स्वीकार करने और नकारने की स्थिति बनी हुई है। यहाँ ध्रुवत्व का संकेत उस व्यक्ति के मूल में, इंसान होने से समझा जा सकता है। एक सत्य उसका होना और निरंतर अपनी शिखिस्यत को दर्ज करवाना है। जैन दर्शन में सत्य अथवा यथार्थ के संदर्भ में भी, यही बात बार-बार कही जाती है।

इस मूल विचार में, कुछ विशेषताओं को समझना होगा। सत्य अकेला ही ध्यान देने योग्य तत्व नहीं है, बल्कि इसके साथ ही सहिष्णुता और समग्रता भी महत्वपूर्ण है। जैन दर्शन से निकली हुई अनेकांतवाद की विचारधारा इस सत्य को न सिर्फ समझने पर जोर देती है, बल्कि वह इसे बड़े ही खूबसूरत अंदाज में आज भी पकड़ने की बात करती है। सत्य, कट्टरता, हिंसा और उन्माद आदि नहीं है। जैन दर्शन के अनुसार एक ही तत्व, अपने आप को कई तरह से प्रस्तुत करते हैं। अतः एक ही समय में उनके कई मायने निकल आते हैं। अब यदि कोई, इस देश को किसी एक धर्म अथवा जाति का मानने में जोर देगा, तो वह किसी दूसरी जाति और धर्म आदि के लोगों के सत्य को नजरन्दाज करने वाली बात होगी। जैन दर्शन इसकी वकालत नहीं करता। उदाहरण के लिए यदि सभी जाति और धर्मों के लोग इकट्ठा होकर कहें कि, इस देश के सभी जंगलों पर केवल उन्हीं का अधिकार है। तो वह अन्य जीव और वनस्पतियों के अधिकार और सत्य का हनन कर रहे हैं। पूंजीवाद की प्रक्रिया अपने लाभ और उद्योगों की खातिर निरंतर सत्य का हनन कर रही है। यहाँ समग्रता का खयाल नहीं है। न ही एक दूसरे के प्रति सम्मान है।

यहाँ एक बात जो हमें ध्यान रखनी चाहिए, वह 'सत्य और असत्य' का फर्क है। सत्य की बात इसलिए बार-बार अनिवार्य है, क्योंकि असत्य का होना बना हुआ है। लोकप्रचलित शब्द 'झूठ' है। देश के राष्ट्रपिता गांधीजी की आत्मकथा का नाम ही 'सत्य के प्रयोग' है। सवाल किया जा सकता है कि, क्या गांधी जी ने उसी सत्य की बात की है जो जैन दर्शन में उपस्थित है? वे सत्य के संदर्भ में कहते हैं, "सत्य मुझे मिला नहीं है, लेकिन मैं इसका शोधक हूँ।"⁸ इसके लिए उनकी आत्मकथा में एक अध्याय को सार रूप में जान लेना ठीक होगा। अध्याय का नाम 'असत्यरूपी विष' है। इस अध्याय में वे एक खाने की जगह जाते हैं, जहाँ खाने का मेन्यू फ्रेंच भाषा में है। वे फ्रेंच पढ़ना नहीं जानते। सो उन्हें अजनबी समझ कर एक वृद्ध महिला पढ़ने में उनकी मदद करती है। बाद में उस महिला से अच्छी जान-पहचान होने के बाद, गांधीजी उनके यहाँ सप्ताहांत में खाने पर जाते हैं और अपने को अविवाहित बताते हैं। वह महिला उन्हें अविवाहित जानकार स्नेह देती है और अन्य लड़कियों से भी मिलवाती है। पर भीतर ही भीतर गांधीजीका कहा गया असत्य उन्हें चौन नहीं लेने देता। इस से मुक्त होने के लिए वे एक चिट्ठी उस महिला को सच बताते हुए लिखते हैं कि, वे विवाहित हैं और उनका बाल विवाह हुआ था। इतना ही नहीं उनका तो एक पुत्र भी है। वे और भी बातें लिखते हैं। अध्याय आगे बढ़ता है, जहाँ वह महिला उनके सत्य को जानकार बुरा नहीं मानती।⁹

यहाँ सत्य के उद्घाटन से यह समझना होगा कि, हम अपने भीतर वहन करने वाले सत्य को कितना और कब उद्घाटित करते हैं? करते भी हैं या नहीं? इसके अतिरिक्त, सामने वाले के सत्य जानने के अधिकार को लेकर हम कितने ईमानदार हैं? जैन दर्शन में मौजूद यथार्थ के संदर्भ में जो दर्शन उपलब्ध है, वह सत्य के उजागर होने अथवा किये जाने से भी संबंधित है। यह वस्तु अथवा जीव से, सापेक्षता से जुड़ा है। सत्य का अपना शिल्प और रूप होता है। दार्शनिक दृष्टि से यह ज्ञान दो भागों में बंटा हुआ दिखाई देता है। पहला-निश्चयनय और दूसरा-व्यवहारनय।¹⁰ इसके संदर्भ में उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। फिर भी और स्पष्टीकरण के लिए एक उदाहरण लिया जा सकता है। कलम बनाने वाली कंपनियां ढेरों प्रकार के और तमाम विशेषताओं वाले कलम बनाती हैं। लेखन और लेखक इनके उपभोगकर्ता तो हैं ही साथ में शिक्षा जगत, गैर शिक्षा जगत में भी इसका बहुत प्रयोग होता है। बच्चे रंग बिरंगे कलम को पसंद करते हैं तो कहीं कहीं आवेदन पत्रों को भरने के लिए लाल, काला और नीला रंग मायने है। पेंसिल भी इस जाति के भीतर रखी जाती है। सभी का रूप अलग है पर गुण लिखने से ही जुड़ा है। यह मुख्य गुण निश्चयनय है। बाकी का भाग व्यवहारनय में माना जाता है। यहीं पर सत्य का रूप एक नहीं रह पाता। पर सत्यता और उसकी मौलिकता में कोई संदेह नहीं रहता।

जैन दर्शन के साथ ही बौद्ध दर्शन में भी, चार महान सत्यों की बात की गई है। इन दोनों ही दर्शनों ने भारतीय मानस को बहुत प्रभावित किया है। बौद्ध दर्शन और विचार ने तो भारत की सीमाओं को पार किया और वहां के आमलोगों में अपनी पकड़ मजबूत की। चीन समेत दक्षिण एशियाई देशों में, एक बड़ी आबादी बौद्ध धर्म और दर्शन के नियमों की अनुयायी है।¹¹ बुद्ध ने जिन महान सत्यों की बात की है उनमें, दुःख, समुच्चय, निरोध और मार्ग हैं।¹² इसे सरल कर समझें तो, दुःख जीवन के साथ उपस्थित है। व्यक्ति चाहे जैसा भी हो, वह दुःख से नहीं बच सकता। उसे बीमारी या वृद्धवस्था घेर ही लेगी। जीवन वास्तव में दुखों से सराबोर है। बुद्ध कहते हैं कि इन दुखों के अपने अपने कारण भी हैं। यदि व्यक्ति जरा अवस्था में है, तो वह उम्र के कारण यहाँ तक पहुंचा है। बुद्ध के अनुसार इन दुखों से मुक्त होने की संभावना है और उन्होंने इनसे मुक्त होने के मुक्ति मार्ग भी बताए। अब इन बौद्ध धर्म के सत्यों को जैन धर्म के सत्यों के समक्ष रखें तो, बहुत हद तक हम एक दिशा में सोच सकते हैं। जैन दर्शन में जीव-अजीव के संदर्भ में फैले विचार, इस जगत से ही संबंधित है। जीव, मनुष्य भी है।

दर्शन का अभ्यास तब तक अधूरा होता है, जब तक उसे भली प्रकार से समझकर तर्क और विज्ञान की कसौटियों पर न जांचा जाए। सत्य, वास्तव में करता क्या है? इस प्रश्न को जानने के बाद ही दर्शन में सवालों की निर्मिति तैयार हो पायेगी। उसके बाद उन्हें अपने व्यवहार और प्रयोगों में जांचना शामिल होता है।

जैन दर्शन में उपस्थित अहिंसा के विचार का औचित्य

जैन दर्शन के भीतर ही अहिंसा का लोकप्रिय और मूल विचार भी है। यह विचार बौद्ध दर्शन में भी है। भारतीय जनमानस में अहिंसा का विचार घूमता है। यहाँ तक कि सीमा पार के देशों और उनकी जनता में भी, यह विचार लोकप्रिय और प्रचलित है। अतः कहा जा सकता है कि दुनिया के विभिन्न समाजों में अहिंसा के विचार को पोषित किया जाता रहा है। दिलचस्प है कि भारतीय इतिहास में उपस्थित धार्मिक महाकाव्यों में, दो मुख्य युद्धों का वर्णन हुआ है और उनकी आवश्यकता पर तरह-तरह के तर्क भी दिए गए हैं। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य ग्रंथों में कितनी सत्यता है, इस पर समय समय पर

बहस होती रही है। पर यह तय है कि इन महाकाव्यों के भीतर मौजूद कथानक में ऐसी परिस्थितियाँ बनती हैं, जो बसे मतभेद और महायुद्धों की ओर ले जाती हैं। ऐसे में ईसा पूर्व छह सौ साल पहले जैन दर्शन, अहिंसा के विचार को बड़ी गहराई के साथ मथ रहा था और उसे प्रस्तुत भी कर रहा था।

जैन दर्शन को समझने में मदद करने वाले सूत्रों में, गूढ़ अर्थ उपस्थित हैं। उनमें अहिंसा के बारे में, काफी विस्तृत विचार पढ़ने और समझने के लिए मिलते हैं। आचारांगसूत्र के अनुसार:

“सर्वे पाणा पिआउया सुहसाता दुक्खपडिकूला अप्पियवधा पियजीविणो जीवितुकामा”¹³

अभिप्राय यह कि “सभी प्राणियों को आयुष्य प्रिय है, सबको सुख अनुकूल लगता है, तथा दुःख प्रतिकूल लगता है। सभी प्राणियों को वध अप्रिय है, सबको जीवन प्रिय है, सब जीना चाहते हैं। भगवान महावीर के ये वचन अहिंसा को सामाजिक एवं मानवीय रूप प्रदान करते हैं।”¹⁴ यह निश्चित रूप से सत्य और तथ्यात्मक बात है। हर कोई जीवन के लिए सदैव साधन इकट्ठा करते हैं। सुख की इच्छा मात्र से लोग हिंसा कर बैठते हैं। हम सब अपने अनुभवों से जानते हैं कि, हम हमेशा सुखमय और सुरक्षित जीवन की लालसा में रहते हैं। यह इंसानी स्वभाव महज एक वर्ष में विकसित नहीं हुआ है, बल्कि इसके पीछे सभी पूंजीवादी, सांस्कृतिक, आर्थिक, न्यायिक, और राजनीतिक, आदि तन्त्रों का हाथ है। इन्होंने ही मनुष्य की जीवन शैली को रूढ़ बना दिया है। यह धारणा मनुष्य के भीतर डाल दी गई है कि, किस प्रकार यदि वह इस काम को करता है तो सुखी और शक्तिशाली बना रहेगा। अतः इससे मनुष्य प्रेरित होकर गतिशील तो हो जाता है, किन्तु सुखी होने की लालसा में हिंसा-अहिंसा का भेद भी भूल जाता है।

अहिंसा को दो तरह से समझा जा सकता है; पहला-हिंसा के निषेध के रूप में और दूसरा-दया, करुणा अथवा अनुकंपा के स्वरूप में।¹⁵ इसके लिए अतीत से उदाहरण लेने की बजाय वर्तमान से उदाहरण लेना ठीक होगा। अहिंसा के निषेध के पीछे कुछ विचार कार्यरत हैं। कितनी ही फिल्में बनी हैं, जिनमें हिंसा का खूनी खेल दिखाया गया है। सत्ता, धन, उपनिवेशों और शक्ति के लिए यूरोपीय देश पहले विश्वयुद्ध में कूद पड़े। बहस भले ही जीत और हार की होती है, पर यह तो किसी से छिपा नहीं कि, इस घोर हिंसा के चलते दोनों पक्षों के कितने ही लोग हार गए। कितने ही लोगों ने अपने जीवन को, बिना किसी निजी कारण के खो दिया। राजा और देश के लिए सैनिक मर गए। उन्हें नहीं पता कि उनके जीवन का ध्येय, संसार में अपने देश और राजा के लिए मरना था अथवा इस पृथ्वी पर जीवन के हर संभावित पक्ष को महसूस कर जीना था।

जैन दर्शन में मौजूद द्रव्य, हिंसा का निषेध और हर तरह की लूट-मार की लड़ाइयों को खारिज करते हुए सबके प्रति संवेदनशील होने की बात करता है। जैन दर्शन में ही लोकप्रिय सूत्र, सूत्रकृतांगसूत्र के अनुसार, “समस्त जीव, भूत, प्राण, एवं सत्त्व को डंडे आदि किसी भी साधन से पीड़ा पहुँचाने, मारने, पीटने परित्याग देने, खिन्न करने, रोम उखाड़ने आदि से उसे दुःख, भय की वेदना होती है। इसलिए जान-बूझकर किसी भी प्राणी को नहीं मारना चाहिए और न ही उन पर शासन करना चाहिए।”¹⁶ यह सूत्र उस बात को भी समेटे हुए है, जिसके अंतर्गत कहा जाता है कि, ‘जैसी स्वतंत्रता और जीवन आप अपने लिए चाहते हैं ठीक वैसा जीवन और आजादी दूसरे व्यक्ति अपने लिए भी चाहते हैं’। अतः एक-दूसरे का सम्मान करना चाहिए। इसी दर्शन के भीतर कहा भी गया है, “अहिंसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्यागः” अर्थात् जहाँ भी अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाती है, वहाँ प्राणी एक दूसरे के लिए मन से बैर का परित्याग कर देते हैं।¹⁷

जैन धर्म में इसे ही, ‘भाव अहिंसा’ कहते हैं। लेकिन अहिंसा की स्थापना, हो तो कैसे हो? यह प्रश्न निरंतर हमारे समक्ष बना हुआ है। इसके लिए किये जाने वाले उपायों को कैसे समाज के व्यक्तियों की मानसिकता और सामाजिक संरचना में स्थापित किया जाए, इन प्रश्नों पर गहन मंथन अनिवार्य है।

जैन दर्शन में अहिंसा से ही जुड़ा एक अन्य सूत्र बहुत दिलचस्प बात कहता है। यह स्थानांगसूत्र है। इसमें जीव के अचानक ही मर जाने के सात कारण बताए गए हैं। यह क्रमशः हैं- राग-द्वेष, शस्त्रास्त्र, बम विस्फोट व विष का प्रयोग, आहार न मिलना या अत्यधिक मिलना, दूसरों के द्वारा आघात मिलना, बिजली से और श्वास व निःश्वास के अवरोध से।¹⁸ अतः यह कहीं न कहीं हिंसा को पूरी तरह से खारिज करने के साथ तो उपस्थित होता ही है, साथ ही जीवन में स्व-जीवन शैली और आसपास के लोगों और प्रकृति से संबंधित रहना भी सिखाता है। आज के उपभोक्तावादी समय में हम बिना जरूरत के भी सामान खरीदकर अपने घर में रखते हैं, जबकि हमें अच्छी तरह से पता होता है कि हम उन सामानों के बिना भी काम चला सकते हैं।

अहिंसा और उपभोग का क्या रिश्ता है, यह सवाल उठाया जा सकता है। अहिंसा के प्रकारों में एक ‘शोषण’ भी है। उदाहरण के लिए दीवाली पर कई ब्रांड यह बताते हैं कि, अगर आपने दीवाली के पर्व को बिना नए कपड़े अथवा आभूषणों के नहीं मनाया तो दीवाली क्या मनाई। कंपनियाँ विज्ञापन का मायाजाल बुनती हैं और महंगे दाम पर फिल्मी कलाकारों से अपने ब्रांड अथवा उत्पादों का विक्रय करवाने की होड़ में रहती हैं। लोग इन बहकावे में आते भी हैं। कंपनियाँ और फिल्मी कलाकार इससे बड़ा लाभ कमाते हैं, जबकि एक मामूली कर्मचारी जो सबसे अधिक मेहनत करता है वह मुश्किल से ही अपना घर और खर्च चला पाता है। यह एक शोषण का रूप है। यह ऐसी हिंसा है, जिसके निशान उसके शरीर पर न लगकर उसके मानस और अंदरूनी जहोजहद के प्रभाव से उत्पन्न बाहरी बेचौनी में झलकते हैं।

‘जैन’ शब्द का उद्भव ‘जिन’ से हुआ है। जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है, वही ‘जिन’ कहलाता है। यह कोई अवतारी नहीं होते, अपितु कोई भी सामान्य व्यक्ति राग-द्वेष रहित अर्थात् वितरागी होकर, इन्द्रिय विषय बन्धनों पर विजय प्राप्त कर, अष्ट कर्मों को नष्ट कर जिन बन सकता है।¹⁹ इसका अर्थ यह हुआ कि, वर्ण व्यवस्था की भाँति यहाँ ज्ञान पाने वालों के मध्य भेद नहीं है।

इस धर्म में कर्म के दर्शन का भेद भी दिया गया है। कर्म को बिना समझे, जैन दर्शन में अहिंसा और सत्य को पाना संभव नहीं हैं। जैन धर्म का यह मौलिक सिद्धांत है कि प्रत्येक जीव में चेतना है तथा उपयोग, दर्शन तथा ज्ञानमय है। इसका कोई स्थूल स्वरूप नहीं है। लेकिन यह समस्त कार्यों को करने वाला है। यह पूरे शरीर में व्याप्त होता है और अपने द्वारा किए गए कार्यों का भोक्ता भी है। यह निरन्तर बदलने वाले लोक में बना रहता है।²⁰ अर्थात् चेतना को मूल में रखकर, कर्म के सिद्धांत को व्याख्यायित किया गया है। इस दर्शन के मुताबिक आत्मा कर्म से संचालित होती है। धर्म का काम, ऐसे अशुभ कर्मों को होने से रोकने का है।

अहिंसा की प्रवृत्ति शुभ कर्म है तो, हिंसा का कारण अशुभ कर्म है। जैन धर्म के अनुसार, सत्य व अहिंसा रूपी धर्म का पालन ही, इस लोक से परलोक तक का सम्यक सफर है।

साधारण रूप में समझने के लिए यह कहा जा सकता है कि, कर्म यदि बुरे आवेगों से संचालित है तो वह निश्चित रूप से हिंसा की उपस्थिति से दो-चार होगा ही। हिंसा तो होगी ही।

संक्षेप में, जैन दर्शन के संदर्भ में दार्शनिक अभ्यास में सत्य और अहिंसा का औचित्य अभी भी बना हुआ है। और दूर तक ऐसी कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती, जब इनकी विशेषता कम होगी। एक ओर जहाँ अपराध, साम्प्रदायिक हिंसक घटनाएं और स्थिति बनी रहती हैं वहाँ इन दोनों की वकालत करना अनिवार्य जान पड़ता है। व्यक्ति में यदि सम्यक दृष्टि का अभाव है तो जरूरी है कि, वह इसे विभिन्न अभ्यासों द्वारा विकसित करे। बिना बेहतर दृष्टि के वह संविधान में दिए गए मूल्यों की समझ को नहीं जान सकता। यदि संविधान सभी को एक जैसे हक देता है, तो यह एक सत्य है। पर यदि कोई व्यक्ति जाति, जन्म, रंग, धर्म, क्षेत्र अथवा भाषा के आधार पर कहे कि; दूसरे लोगों को समान नहीं मानना है तो यह उसकी दोष दृष्टि है। यदि सरकारें पूंजीपतियों के हाथों की कठपुतली बनकर तमाम जंगल और प्राकृतिक संसाधनों को बेच देगी, तो वह प्रकृति के परम सत्य की अनदेखी है, जिसने हर जीव और जंतु को बराबर हक दिया है। इस संपदा पर सभी का हक है, न कि सिर्फ चंद पूंजीपति मनुष्यों का।

देश के विभिन्न भागों से ढेरों अत्याचार की खबरें आती हैं। ऐसा सिर्फ एक दिन नहीं होता। हर दिन दिल को दहला देने वाली हिंसात्मक घटनाएं चौंका देती हैं। व्यक्ति सम्यक ज्ञान और आचार के बिना भटका हुआ है। यदि वह अपने मन से सामान्य ज्ञान का चिंतन भी कर ले तो वह उन रास्तों पर नहीं जाएगा जहाँ हिंसा उसके खुद के लिए, उससे संबंधित लोगों अथवा समाज के लिए अधोगति का गड्ढा खोदे बैठी है। सम्यक व्यवहार के बिना स्थिति विकट बन पड़ी है। लगातार घिसती ओजोन की परत महज यही चाहती है कि, जिन कणों से उसे हानि हो रही है उसका व्यवहार बंद हो। लगातार घायल होती नदियों के पीछे भी यही कारण है।

ऐसे समय में दार्शनिक अभ्यास में, जैन दर्शन में मौजूद सत्य और अहिंसा की अवधारणाएं और भी प्रासंगिक हो जाती हैं।

जैन दर्शन वह दर्शन है जहाँ कहा जाता है - “धम्मो मंगल मुक्किंग, अहिंसा संजमो तवो” देवा वि तं नमसति, जस्स धम्मो साया मणोसस

अर्थात्, “धर्म वही मंगल रूप है जिसमें अहिंसा, संयम (सत्य रूप), तप खत्याग की भावना हो। ऐसा धर्म जिसके मन में वास करता है, उसे देवता भी नमन करते हैं”।

संदर्भ देखें:

1. के. दामोदरन, भारतीय चिंतन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि., दिल्ली, पृ. 130
2. वही.
3. वही, पृ. 131
4. वही, पृ. 130
5. धर्मचंद जैन, जैन धर्म-दर्शन: एक अनुशीलन, प्राकृत भारती अकादमी, प्रथम संस्करण, जयपुर, 2015, पृ. 17
6. के. दामोदरन, भारतीय चिंतन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि., दिल्ली, पृ. 134
7. टी.के. तुकोल, जैन धर्म का सार, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2018, पृ. 244
8. मोहनदास करमचन्द गांधी, सत्य के प्रयोग: आत्मकथा, अनुराग प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ. 3 (आमुख)
9. वही. (अध्याय देखें)
10. टी.के. तुकोल, जैन धर्म का सार, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2018, पृ. 245
11. <https://web.archive.org/web/20160901083804/http://buddhaweb.com/buddhism-now-2nd-largest-spiritual-path-1-6-billion-22-worlds-population-according-recent-studies/>
12. वही, पृ. 135
13. टी.के. तुकोल, जैन धर्म का सार, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2018, पृ. 284-85
14. वही.
15. वही, पृ. 284
16. वही, पृ. 285
17. वही, पृ. 286
18. वही, पृ. 288
19. मुनिश्री प्रमाणसागर, जैन धर्म और दर्शन, निर्ग्रन्थ फाउंडेशन, भोपाल 2019, पृ. 8 (आमुख)
20. टी.के. तुकोल, जैन धर्म का सार, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2018, पृ.82

आदिवासी क्षेत्रों में बढ़ते माओवादी-नक्सलवादी आन्दोलन: झारखण्ड के विशेष संदर्भ में

राकेश कुमार गौड़

शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ०प्र०)

आदिवासी जनजाति भारतीय राष्ट्रीय संस्कृति की पहचान है। इनकी संस्कृति बहुत पुरानी एवं विकसित है जो कई सामाजिक परम्पराओं पर आधारित है। आदिवासी जनजाति जंगलों में युगों से रहते आये हैं और जंगल के उत्पाद से ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। शिकार करना, मछली पकड़ना और वनोत्पाद इकट्ठा करना, आदिवासियों का परम्परागत व्यवसाय रहा है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है किन्तु विगत दशकों में हुए क्रान्तिकारी परिवर्तन जिन्हें हम वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं समग्र दृष्टि डाले तो विश्व छोटा होता प्रतीत होता है, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि डाले तो स्पष्ट है कि वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की खाद से पल्लवित नई आर्थिक नीति ने कई विकराल और जटिल प्रश्न भी उपस्थित किये हैं यथा-भारतीय राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में जनजातियों को न्यायपूर्ण स्थान प्राप्त होगा? आरक्षण व्यवस्था के स्वरूप में क्या बदलाव होगा? विज्ञान और तकनीक के पहिये पर भागती विश्व व्यवस्था में जनजातियां भी गतिमान हो पायेगी अथवा नहीं? जनजातियों की अस्मिता और मौलिक संस्कृति संरक्षित रह पायेगी? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर तलाशता शोध पत्र प्रस्तुत करने का मेरा अल्प प्रयास है।

वैश्वीकरण प्रथम दृष्टि में एक रोमांचक अवधारणा है जो विभिन्न राष्ट्र, राज्यों को विश्व व्यापार संगठन के अधीन एक एकीकृत व्यवस्था में संरचनाबद्ध करने की इच्छुक है किन्तु गहन दृष्टि डालने से स्पष्ट है कि यह तुलनात्मक लागत लाभ के सिद्धान्त का आधुनिकीकरण ही है जो वस्तुओं के बेरोकटोक आयात-निर्यात के सैद्धान्तिक आधार की प्रति स्थापना पर ही बल देती है।

मानवीय विकास 2001 की रिपोर्ट में कहा गया है “वैश्वीकरण अब कोई विकल्प नहीं रह गया है यह एक वास्तविकता है।” वैश्वीकरण के प्रमुख साधन हैं-उदारीकरण, निजीकरण, औद्योगिकरण आदि विश्वपरिप्रेक्ष्य में W.T.O. या विश्व व्यापार संगठन जिसके 150 देश पक्षधर हैं वैश्वीकरण का प्रमुख वाहन बन गया है वैश्वीकरण चतुर्थ आयामी है इसके अन्तर्गत 1. निर्बाध व्यापार प्रवाह 2. निर्बाध पूंजी प्रवाह 3. निर्बाध तकनीकी प्रवाह 4. निर्बाध श्रम प्रवाह पर बल है यद्यपि विकसित देश निर्बाध श्रम प्रवाह में लाभ की संभावना नहीं देखते इसलिये निर्बाध श्रम प्रवाह उपेक्षित ही रहा है भारत जैसे विकासशील देश W.T.O. में निर्बाध श्रम प्रवाह की मांग उठाते रहे हैं वैश्वीकरण के समर्थक जहां से विकासशील देशों के लिये विकास का तीव्रतर साधन मानते हैं वहीं विरोधी इसे विकसित देशों के साम्राज्यवादी इरादों का क्रियान्वयन मानकर चिन्ता व्यक्त करते हैं।

वैश्वीकरण के कारण जहाँ तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में मानव समुदाय काफी उन्नति कर ली है वहीं उसके प्रभाव में आकर अपनी उन्नत संस्कृति का क्षरण करने के लिए भी मानव समुदाय तैयार है। किसी देश या समाज की सभ्यता एवं संस्कृति धिरे-धिरे अपनी उन्नत अवस्था में उस देश की काल, परिस्थिति और मानव जाति के परिवेश को परिष्कृत करते हुए एक लम्बी अवधि के तय करने के बाद विकसित होती है। एशिया जो धर्म, संस्कृति परम्पराओं व भाषा की विविधता को धारण किया हुआ महादेश है। यह अपनी संस्कृति को इस वैश्वीकरण के युग में बचा नहीं सका। भारत पंथनिरपेक्ष देश रहा है यह कई धर्मों और सम्प्रदायों के लोग निवास करते हैं। इनमें भारतीय जनजातियों की अपनी एक समृद्ध संस्कृति रही है। भारत में बहुत काफी जनजातियों की श्रेणी है इनकी पहचान इनके स्वयं द्वारा विकसित संस्कृति है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का जब भारतीय महाद्वीप पर आधिपत्य हुआ तब कम्पनी भारतीय जनजातियों को अपने ईसाई धर्म में परिवर्तन करना प्रारम्भ किया गया। ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करने के लिए इन जनजातियों के गरीबी का सहारा लेकर उनकी सांस्कृतिक पहचान को नष्ट करना उन्हें पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति का भारतीय परिवेश-उपलब्ध कराया गया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत के जनजातीय संस्कृति की पहचान को धुंधला करना शुरू किया और वैश्वीकरण ने इस संस्कृति की पहचान को करीब-करीब नष्ट ही कर दिया है।¹ झारखण्ड, उड़ीसा, छत्तिसगढ़, मध्यप्रदेश, उत्तराखण्ड, राजस्थान, मेघालय, नागालैण्ड, असम, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश जहां कि अधिसंख्य जनजातियों का निवास स्थान है वहां इस वैश्वीकरण से सांस्कृतिक समानता की धारणा विकसित कर एक समूह एवं विकसित संस्कृति को हाशिये पर लाकर खड़ा कर दिया है। वैश्वीकरण द्वारा सांस्कृतिक क्षरण किये जाने के कारण वृहद स्थानीय विरोध का सामना प्रत्येक राज्य को करना पड़ रहा है।²

जनजातीय संस्कृति किसी भी देश या राज्य की अपनी पहचान होती है। आज वैश्वीकरण के कारण पहनावा, खान-पान, मेडिसिन इत्यादि के रूप में भले ही नये-नये अनुसंधान किये जाये परन्तु जनजातीय संस्कृति के पल्लवित एवं विकसित प्राकृतिक चिकित्सा, परम्परागत पहवाना, प्राकृतिक आवास के विषय

में समृद्ध ज्ञान खुशहाल जीवन आज भी देखा जा सकता है। झारखण्ड राज्य में जनजातीय संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए राज्य और केन्द्र सरकार द्वारा कई योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। परन्तु यह तो राज्य स्तर का एक प्रयास है यहां स्थानीय स्तर पर नवीन आर्थिक व्यवस्था, निजीकरण और बाजारीकरण जनजातियों के आंतरिक जीवन में प्रवेश कर आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से इतना कमजोर कर दिया है कि ये अब अपने अस्मिता और स्वयं की जमीन की प्राप्ति के लिए संघर्ष करने को तैयार है।

परिणामतः गैर जनजातियों द्वारा किये जा रहे अत्याचार से व्यथित होकर आदिवासी जनजाति द्वारा सन्थाल विद्रोह (1855-56) एवं गुण्डा विद्रोह (1899-1100 ई०) में किया गया। ऐसे तो यह विद्रोह अंग्रेजी शासन के नीति के विरुद्ध था परन्तु वास्तव में स्थानीय गैर जनजातियों के इस आदिवासी संस्कृति में हस्तक्षेप को कम करने और उन्हें इस राय से बाहर पहुंचाने के लिए ये दोनों आंदोलन किये गये थे।

बीसवीं शताब्दी में यहां के आदिवासी जनजाति राष्ट्रीय असहयोग आंदोलन और सविनय अवज्ञा आंदोलन में महात्मा गांधी का साथ दिये। भारत के 1947 में स्वतंत्र होने के बाद राज्यों के पुनर्गठन के तहत झारखण्ड बिहार राज्य का अभिन्न हिस्सा बना। यह राज्य स्वतंत्रता के पहले से ही अपनी क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान के कारण अलग राज्य के रूप में स्थापित किये जाने का हकदार था किन्तु, राजनेताओं एवं आर्थिक सम्पन्नता के अधिकार का बिहार राज्य से समाप्त हो जाने का जुमला फैलाकर झारखण्ड राज्य को स्वतंत्रता के करीब 50 वर्षों बाद तक बिहार राज्य में ही सम्मिलित रखा गया। झारखण्ड की अलग राज्य बनाने के लिए यहां के आदिवासी जनजातियों द्वारा बहुत पहले ही मांग की गई थी। बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशक में ही छोटानागपुर उन्नति समाज तथा छोटानागपुर सन्थाल परगना आदिवासी सभा इत्यादि ने झारखण्ड राज्य की अलग स्थापना किये जाने की मांग कर दी थी।³ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तो झारखण्ड राज्य की अलग पहचान बनाने के लिए यहां कई आंदोलन और विद्रोह किये गये। इस आंदोलन के नेतृत्व करने वाले इसी समाज के शिक्षित वर्ग कई बार समझौता कर लिये जिसके कारण यह मांग अंतिम स्थिति में पहुंचने के पहले ही दबा दी जाती थी। 1963 से 1973 के दशक में ऐसे काफी आंदोलन किये गये जिसमें आदिवासी जनजातियों की झारखण्ड राज्य की मांग को दबाने की कोशिश किये जाने पर कई पुलिसकर्मियों को अपनी जान गंवानी पड़ी। दरअसल यह आंदोलन कई बार संगठित होकर तुरन्त ही बिखराव की स्थिति प्राप्त कर लेता था जिसके कारण कई स्थानीय संगठन का अस्तित्व आया। इसी में से एक संगठन झारखण्ड मुक्ति मोर्चा (झामुमो) ने संगठित होकर झारखण्ड राज्य की मांग के लिए आंदोलन को कई वर्षों तक कुछ विराम देते हुए नियमित रखा जिसके फलस्वरूप बिहार सरकार ने 1995 ई० में झारखण्ड क्षेत्र स्वायत्तशासी परिषद (जैक) की स्थापना की। अंततः 15 नवम्बर 2000 ई० को संविधान में संशोधन कर झारखण्ड राज्य के अलग अस्तित्व को स्वीकार कर लिया गया।

वास्तव में झारखण्ड को नक्सलवादियों का एक बड़ा गढ़ कहा जाये तो यह बात सत्यता से बहुत दूर नहीं होगी। इस राज्य के 24 जिलों में से 18 जिले नक्सलवाद से ग्रसित हैं। झारखंड में उग्रवाद अपना पाँव पूरी तरह से जमा चुका है। हमारे देश के नक्सल प्रभावित राज्यों में नक्सली हिंसा की बढ़ती घटनाएँ गंभीर चिंता का विषय हैं। उत्तर भारत के झारखंड, छत्तीसगढ़, उत्तरप्रदेश और पूर्वोत्तर के असम में नक्सलियों के कहर से जनजीवन असुरक्षित हो गया है। इन घटनाओं में आम नागरिकों के अतिरिक्त सुरक्षा बलों के जवान भी मारे जा रहे हैं। झारखण्ड में पूर्व मुख्यमंत्री बाबूलाल मरांडी के पुत्र सहित 18 लोगों की हत्या के करने के एक सप्ताह के अंदर ही नक्सलियों ने छत्तीसगढ़ के बीजापुर में पुलिस के खोजी अभियान दल पर हमला कर दिया, जिसमें 15 जवान शहीद हो गये। एक ओर छत्तीसगढ़ अपनी स्थापना का राज्योत्सव मना रहा था और उधर नक्सली हिंसा का कहर ढा रहे थे। नक्सली हिंसा रोकने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारें जितने प्रयास कर रही हैं, उनका अपेक्षित परिणाम अभी तक सामने नहीं आ रहा है। इसके प्रतिकूल नक्सली हिंसा की घटनाएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। यह हमारी सुरक्षा व्यवस्था और नक्सली हिंसा की रोकथाम के लिए किये जा रहे उपायों के समक्ष एक बड़ी चुनौती खड़ी हो गई है। इससे निपटने के लिए अब और अधिक प्रभावी उपायों पर विचार करना होगा। निश्चित रूप से हमारी सुरक्षा व्यवस्था और रणनीतियों में खामियाँ हैं, जिनका लाभ नक्सली उग्रवादी उठा रहे हैं। पूर्व गृहमंत्री शिवराज पाटिल ने नक्सल प्रभावित राज्यों के मुख्यमंत्रियों और गृहमंत्रियों के सम्मेलनों में अनेक बार नक्सली हिंसा की रोकथाम के लिए कारगर रणनीति बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया। वस्तुतः नक्सली हिंसा प्रभावित राज्यों की भौगोलिक स्थितियों के अनुसार अलग-अलग समस्याएँ और चुनौतियाँ हैं। जहाँ दक्षिण, पूर्वोत्तर और उत्तर भारत के राज्यों की स्थितियाँ भिन्न हैं। वहाँ पूर्वोत्तर में नक्सली हिंसा का अलग स्वरूप है।⁴

निष्कर्ष

वस्तुतः स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् बनने वाली सरकारों ने एक ही गलती बार-बार दुहराई है और वह आज बदस्तूर जारी है। वह है अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के विकास हेतु एक ही मंत्रालय की व्यवस्था होना। वस्तुतः इन दोनों वर्गों की समस्याएँ अलग-अलग हैं एवं इनकी प्रवृत्ति भी अलग-अलग है। अनुसूचित जाति वर्ग जहां हिन्दू समाज एवं संस्कृति का उपेक्षित एवं शोषित अंग रहा है वहीं अनुसूचित जनजाति का वर्ग एक रक्त संबंधियों का स्वतंत्र सामाजिक संगठन रहा है जिसकी स्वयं की सभ्यता एवं संस्कृति रही है। अनुसूचित जाति को जहां शताब्दियों से सामाजिक भेद-भाव के चलते मेल-मिलाप से दूर रखा गया है वहीं आदिवासी वर्ग को भी अछूत नहीं समझा गया है। अनुसूचित जाति के लोगों के पास विरले ही स्वयं की भू-सम्पत्ति रही है जबकि अधिकांश आदिवासी वर्ग के पास स्वयं की जमीन पाई जाती है। अधिकांश अनुसूचित जाति वर्ग जहां आर्यों के साथ विकसित गांवों में निवास करता था वहीं अधिकांश अनुसूचित जनजाति एवं जंगलों एवं दुर्गम पहाडिध्यों के बीच रहता है। अपेक्षाकृत जितने विकसित क्षेत्रों के बीच अनुसूचित जाति के लोगों का निवास रहा है उतने ही पिछड़े क्षेत्रों में अनुसूचित जनजाति के लोग रह रहे हैं। अनुसूचित जाति के लोग अपने अस्तित्व एवं विकास हेतु हमेशा सवर्ण हिन्दुओं में संघर्षरत रहे हैं वहीं अनुसूचित जनजाति के लोगों का मुख्य संघर्ष प्रकृति से ही रहा है।

भारत की लगभग 8 प्रतिशत जनसंख्या आदिवासी क्षेत्रों की है जो देश में 40 प्रतिशत क्षेत्रफल में फैले हुये है। इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को अलग-अलग नामों से जाना जाता है, जैसे-वनवासी, आदिवासी, आदिम जाति, वन्य जाति, जनजाति आदि। इनकी जीवनशैली प्रकृति व प्राकृतिक संसाधनों से सीधा संबंध रखती है। जनसंख्या का यह समूह अन्य वर्गों की तुलना में आर्थिक रूप से निर्धन लेकिन सांस्कृतिक रूप से बहुत ही संपन्न होता है। आदिवासी क्षेत्रों में रहने वाले जन समुदायों का जीविकोपार्जन मुख्यतः वनों, वन्य उत्पादों, कृषि व संबंधित व्यवसायों पर निर्भर होता है। प्राकृतिक स्रोतों पर बढ़ते सरकारी नियंत्रण तथा निजीकरण से आदिवासी समूहों के सामने कई समस्याएं आ रही है जैसे-आर्थिक असमानता, ऋणों का बोझ, शारीरिक उत्पीड़न, यौन शोषण, सामाजिक अलगाव आदि। समस्याओं के इस दुष्चक्र को हमारी सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था, अर्थतंत्र, सामाजिक रूढ़ियाँ पोषण प्रदान करती है। इसके परिणामस्वरूप अधिकांश आदिवासी भूमिहीन, साधनहीन होते जा रहे हैं।

संदर्भ

- ¹ Scott, Thomas, "The Global Resurgence of Religion and the Study of World Politics," Millennium, V. 24, No. 2 (1995): 289
- ² Seth, L.D., "Globalization and the Grass Roots Movements," Seminar, V. 473, pp. 77-82, 1999
- ³ मुण्डा, रामदयाल, डॉ०, (2009), "आदिवासी अस्तित्व और झारखण्डी अस्मिता के सवाल", प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ० 79-102
- ⁴ मनोरमा ईयर बुक, 2008

प्राचीन भारत में शूद्र वर्ण की उत्पत्ति का इतिहास (प्रारम्भ से 1200 ई० तक)

कृष्ण कुमार

विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, चौ० नत्थूसिंह डिग्री कॉलेज, करहल, मैनपुरी

विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक सिन्धु घाटी की सभ्यता अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अपनी समस्त समकालीन सभ्यताओं में सबसे विकसित एवं सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त ही उन्नतिशील अवस्था को प्राप्त थी।

इतिहासविदों के अनुसार हड़प्पा सभ्यता की सामाजिक संरचना चार भागों में विभक्त रही होगी। जिसमें विद्वान, योद्धा, व्यापारी और शिल्पी। हड़प्पा और मोहजोदड़ों से प्राप्त खुदाईयों से प्राप्त नगर के बाहर कोठरियों वाले मकानों के अवशेष प्राप्त होते हैं। जो काम करने वाले मजदूरों के रहे होंगे। इन्हीं मजदूरों में कुछ स्वतन्त्र तथा दास रहे होंगे। स्वतन्त्र मजदूरों को निम्न या शूद्र धर्म में रखा जा सकता है। क्योंकि ये मजदूर ही गोदामों में अनाज का भण्डारण करते होंगे। गेहूँ को कूटकर आटा बनाते होंगे, मकान बनाने के लिए ईंटों का निर्माण करते होंगे। तथा सिंचाई और स्नान के लिए जल का संग्रहण करते होंगे।

भवन निर्माण, नालियों का निर्माण, वस्त्राभूषण, कृषि कार्य आदि कार्यों में इन मजदूरों का उपयोग किया जाता था। इस प्रकार यहाँ पर एक प्रकार से शूद्रों की झलक देख पाने की आशा करते हैं क्योंकि व्यापार प्रधान सभ्यता में दास एवं मजदूरों का सहयोग अपरिहार्य हो जाता है।

ऋग्वेद में शूद्र शब्द का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें सर्वप्रथम इसे दैवीय सिद्धान्त माना गया है। जिसमें कहा गया है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीय बाहु राजन्यः कृतः ।

उरूतदस्ययवैश्यः पादभ्यामं शूद्रो अजायतं ॥ ऋग्वेद 10.90.12

ऋग्वेद में पुरुष सूक्त में चारों वर्गों को विराट पुरुष के चारों अंगों से उत्पन्न कहा गया है। तदनुसार उसके मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, पेट से वैश्य तथा पैरों में शूद्रों की उत्पत्ति हुई। चातुर्वर्ण व्यवस्था का यह प्राचीनतम उल्लेख है। यहाँ सम्पूर्ण सामाजिक संगठन एक शरीर के रूप में कल्पित किया गया है। जिसके विभिन्न अंग समाज विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मुख वाणी का स्थान है, इस प्रकार ब्राह्मणों की उत्पत्ति मानव जाति के शिक्षक के रूप में हुई। भुजाएँ शौर्य एवं शक्ति का प्रतीक है, अतः क्षत्रिय का कार्य हथियार ग्रहण करके मानव जाति की रक्षा करना। जंघा शरीर के निचले भाग का प्रतिनिधि है। समस्त शरीर के भरण पोषण का भार उदर पर आ टिकता है। तात्पर्य इस बात से हो सकता है कि जो शरीर का पोषण करे। अतः वैश्य की उत्पत्ति मानव जाति को अन्न प्रदान करने तथा पोषण करने के लिए है। यह बात इससे भी स्पष्ट है कि प्राचीन शास्त्रों के अनुसार कृषि कर्म का अधिकार वैश्यों को ही था। ये आर्थिक सम्पत्ति के स्वामी थे।

पैर शरीर के भारवाहक है, अतः शूद्रों की उत्पत्ति समाज का भार वहन करने के लिए अर्थात् अन्य वर्णों की सेवा करने के निमित्त हुई है। ऋग्वेद वर्ण विभाजन की योजना श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर अवधारित है। इसमें प्रत्येक वर्ण के कार्य का महत्व प्रदान किया गया है। इसे दैवीय आधार प्रदान करने का मुख्य मकसद था कि दैवीय शक्ति से डरकर समस्त जन इसका आचरण करेंगे। जिससे सामाजिक पद सोपान की प्रक्रिया अबाध रूप गतिशील बनी रहेगी।

ऋग्वेद के अलावा उपर्युक्त सिद्धान्त का उल्लेख महाभारत, गीता, मनु स्मृति और विष्णु पुराण में भी प्राप्त होता है। महाभारत के शांति पर्व में उल्लिखित है।

ब्राह्मणों मुखता सृष्टो ब्राह्मणो राजसत्तमः।

बाहुभ्यां क्षत्रियः सृष्टरू उरूभ्यां वैश्य एवं च॥

वर्णानां परिचर्यार्थं त्रयाणां भरतर्षभा।

वर्णश्चतुर्थं संभूत पदभ्यां शूद्रो विनिर्मितः॥

शांति पर्व में उल्लेख है कि ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघे से वैश्य तथा तीनों वर्गों की सेवा करने के लिए पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई है। गीता में भगवान कृष्ण ने स्वयं कहा है कि—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

तस्य कर्तारपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्॥ गीता- 4/13

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र - इन चार वर्णों का समूह गुण और कर्मों के विभाग मेरे द्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि-रचनादि कर्म का कर्ता होने पर मुझे अविनाशी परमेश्वर को तू वास्तव में अकर्ता ही जान। मनुस्मृति में वर्ण व्यवस्था के बारे में उल्लेख प्राप्त होता है—

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहुरूपारतः ।

ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत ॥ मनुस्मृति-1/31

अर्थात् लोकवृद्धि के लिए मुख से, बाहु से, ऊर से तथा पैरों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की सृष्टि की थी।

विष्णु पुराण में भी वर्ण व्यवस्था की दैवीय उत्पत्ति का प्रमाण प्राप्त होता है।

त्वन्मुखात् ब्राह्मणास्त्वत्तो बाहोरू क्षत्रमाजयत ।

वैश्यास्तवोरूजाः शूदास्तव पदभ्यां समुद्रगतः ॥

इसके अनुसार भगवान् विष्णु के मुख से, बाहु से, जंघाओं से तथा पैर से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की उत्पत्ति हुई।

उपर्युक्त ग्रन्थों ऋग्वेद, महाभारत, गीता, मनुस्मृति, विष्णु पुराण मत्स्य, वायु तथा ब्राह्मण आदि पुराणों में भी दैवीय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। जिससे समाज का ढाँचा मजबूती के साथ कायम रह सके तथा पदसोपान का क्रमिक विन्यास कायम रखा जा सके।

अथर्ववेद के 19वें अध्याय में शूद्रों का वर्णन एक वर्ग के रूप में प्राप्त होता है। जो संभवतः शूद्रों का ही एक कबीला था। 1500 बी०सी० के लगभग सम्भवतया भूमि और पशुओं के लिए ऋग्वैदिक आर्य और शूद्रों के बीच संघर्ष हुआ। जिसमें शूद्र पराजित हुए। इसीलिए उन्हें पराजित अनार्यों का दर्जा प्राप्त हुआ। बाद में अनेक अनार्य जातियों की गणना, जो भारत में आर्यों के आगमन से पूर्व रहती थी, शूद्रों में कर ली गई उत्तर वैदिक काल में आर्यों और दासों के वैवाहिक सम्बन्ध होने, आर्य शूद्र स्त्री से विवाह कर सकता था। लेकिन एक शूद्र को आर्य स्त्री से विवाह करने का अधिकार न था। शूद्रों और वैश्यों के व्यवसाय एक जैसे होने के कारण ये आपस में काफी करीब आ गये। वैश्य, शूद्र स्त्रियों से विवाह करने के बाद ब्राह्मण तथा क्षत्रियों जैसे पवित्रता न रख सके। इसी कारण से उच्च वर्ग के लोगों ने शूद्रों से सम्बन्ध प्रथक कर लिए थे।

काठक संहिता के अनुसार शूद्रों से अग्निहोत्र के लिए दूध नहीं निकलवाना चाहिए। वही शतपथब्राह्मण में उन्हें सोमयज्ञ में शामिल होने का प्रावधान किया गया। तैत्तिरीय संहिता में धार्मिक क्रिया का उल्लेख किया गया। जिसमें रथकार के लिए यज्ञ की अग्नि की स्थापना की जाती थी। रथकार की गणना शूद्र कोटि में होती थी लेकिन उसे वैदिक यज्ञ करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि यज्ञ के लिए अभिषिक्त व्यक्ति को शूद्र से वार्तालाप नहीं करना चाहिए। छान्दोग्य उपनिषद् में प्राप्त सत्यकाम, जाबाल और जानश्रुति जैसे शूद्रों को वैदिक ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया गया है। शतपथब्राह्मण तथा तैत्तिरीय संहिता से ज्ञात होता है कि राजसूय यज्ञ के समय शूद्र को भाग नहीं लेने देना चाहिए। शूद्रों का उपनयन संस्कार नहीं किया जाता था। किन्तु उसे सभी वैदिक क्रियाओं से वंचित नहीं किया जाता था।

निषाद एक अनार्य जाति का व्यक्ति था किन्तु उसे यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त था। तथा वह देवताओं की हवि बनाने में भी भाग लेता था ऐतरेय ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि उच्च वर्ण के लोग शूद्र को अपनी इच्छानुसार पीट सकते हैं। उसका कर्तव्य सदा दूसरों की सेवा करना है। शूद्र सामुदायिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भाग लेते थे किन्तु इस काल में उन्हें अधिकतर धार्मिक कार्यों से वंचित कर दिया गया था।

रामशरण शर्मा के अनुसार “शूद्रों के धार्मिक कृत्यों से प्रथक करने का कारण उनकी आर्थिक दशा थी। क्योंकि वे ब्राह्मणों को दक्षिणा में धनराशि देने में असमर्थ थे”।

गौतम तथा आपस्तम्ब (400बी०सी०) के अनुसार “ब्राह्मण स्वयं किसी शूद्र को भोजन न कराये। यह कार्य ब्राह्मण को अपने दास द्वारा कराना चाहिए”। आपस्तम्ब के अनुसार “जिस समय ब्राह्मण भोजन कर रहा हो, कोई शूद्र उसे छू ले तो ब्राह्मण को भोजन छोड़कर उठ जाना चाहिए क्योंकि शूद्र के स्पर्श के कारण वह ब्राह्मण अपवित्र हो जाता है।

बौधायन (300बी०सी) स्नातक को पतित व्यक्तियों, स्त्रियों तथा शूद्रों के साथ यात्रा नहीं करनी चाहिए। लगभग सभी धर्म-सूत्रों के अनुसार ब्राह्मण को शूद्र का दिया हुआ भोजन नहीं खाना चाहिए।

पाणिनि ने शूद्रों का दो वर्गों में विभाजन किया है। निरवसित तथा अनिरवसित। अनिरवसित (अबहिष्कृत) शूद्र वे थे जिनको अपने बर्तनों में भोजन कराने से द्विजों के बर्तन अपवित्र नहीं होते थे तथा निरवसित शूद्र वे थे जिनको अपने बर्तन में भोजन कराने से द्विजों के बर्तन अपवित्र हो जाते थे। निरवसित शूद्र सम्भवतः निषाद आदि थे जिनके रहन-सहन में स्वच्छता न थी और जो नगर के बाहर रहते थे।

आश्वलायन सूत्र में निरवसित शूद्रों में यवन और कंबोजों की गणना की गई है। आर्यों के समाज का भाग न होने के कारण उनकी स्थिति बहिष्कृत शूद्रों जैसी थी। शूद्रों को अपराधों के लिए भी द्विजों की अपेक्षा अत्यधिक दण्ड दिया जाता था तथा शूद्रों को सन्यास लेने का भी अधिकार न था।

गौतम के अनुसार ब्राह्मण नर हत्या या चोरी करें तो अन्धा कर दिया जाये किन्तु यदि शूद्र ऐसा करें तो उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाये और उसे प्राण दण्ड दिया जाये। यदि ब्राह्मण किसी शूद्र को गाली दे तो उसे कोई दण्ड नहीं दिया जाये, किन्तु शूद्र किसी द्विज को गाली या आक्रमण करे तो उसका वह अंग काट लिया जाये तथा प्राण दण्ड प्रदान किया जाये। आपस्तम्ब ने शूद्रों के लिए दण्ड विधान अत्यधिक कठिन बताया है। इससे स्पष्ट होता है कि शूद्रों की समाज में स्थिति बहुत ही दयनीय हो गई थी।

द्विजों में से कुछ व्यक्ति शूद्रों के साथ विवाह करते थे। यह बात धर्म-सूत्रों में संकर जातियों से स्पष्ट है। वशिष्ठ धर्मसूत्र में कहा गया है कि शूद्र पिता और ब्राह्मणी माता से उत्पन्न संतान चाण्डाल होती है तथा उसके साथ जाति से बहिष्कृत व्यक्ति के समान व्यवहार करना चाहिए।

आपस्तम्ब के अनुसार चाण्डाल को देखने व छूने से प्रत्येक वस्तु दूषित हो जाती है। शूद्र पिता और ब्राह्मणी माता के पुत्र को चाण्डाल की भाँति अस्पृश्य समझा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय अनुलोम विवाहों में जिनमें पिता का वर्ण से ऊँचा होता था तो पुत्र का वर्ण वही होता था।

महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण होता है। चाहे उसकी माता क्षत्रिय हो या वैश्य। बुद्ध के समय में भी यही मत प्रचलित था। बौद्ध ग्रन्थों से ज्ञात होता है। राजा प्रसेनजित को यह ज्ञात हुआ कि उनकी रानी वास्तव में एक दासी थी तो ये बहुत चिंतित हुए और उन्होंने इस बात का जिज्ञासु गौतम बुद्ध से किया तो बुद्ध ने कहा कि प्राचीन विद्वानों का यही मत है कि पिता की जाति ही महत्व रखती है। माता की जाति महत्व नहीं रखती है।

शूद्र से आशा की जाती थी कि जब उसके स्वामी पर कोई आपत्ति हो तो वह जी जान से उसकी सेवा करें। इस समय शूद्रों को निश्चय ही अनेक सामाजिक, धार्मिक तथा वैध अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। अन्य तीनों वर्णों से उसकी स्थिति हेय मानी जाती थी। किन्तु इस समय तक अभी शूद्र को अस्पृश्य नहीं समझा जाता था। द्विज उन्हें नौकर रखते थे तथा उनके साथ घर के सदस्यों के भौतिक व्यवहार किया जाता था। ये घर के सभी कार्य करते थे। ये स्नान करके द्विजों के लिए भोजन इत्यादि की व्यवस्था करते थे।

बौद्ध ग्रन्थों में बहुधा पाँच हीन जातियों का उल्लेख प्राप्त होता है। ये पाँच हीन जातियाँ चाण्डाल, निषाद, वेण, रथकार, और पुक्कस थी। हीन जातियाँ आर्यों के चार वर्णों से अलग थीं।

महाभाष्य से ज्ञात होता है चाण्डाल नगरों और गाँवों के बाहर रहते थे। सम्भवतया चाण्डाल आदिवासी थे। जिन्हें अस्पृश्य कहा गया है। सूत्र ग्रंथों में चाण्डाल के स्पर्श से दोष मुक्त होने के लिए सर्वत्र स्नान करना चाहिए।

चित्र भूत जातक से ज्ञात होता है कि चाण्डाल का देखना भी अशुभ माना जाता है। एक अन्य जातक से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण शूद्र से इसलिए दूर भागता है कि शूद्र की छूई हुई वायु उसे न छू जाये नहीं तो वह दूषित हो जायेगा।

मौर्यकाल के अन्तर्गत शूद्रों की स्थिति में सुधार के चिह्न देखने को प्राप्त होते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र में उनका धर्म द्विजातियों की सेवा के साथ-साथ वार्ता, कृषि, पशुपालन, और वाणिज्य बताया गया है। शूद्र कृषक का भी उल्लेख प्राप्त होता है। जिसका तात्पर्य शूद्र किसान थे। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में शूद्रों के निम्नलिखित कर्तव्यों का उल्लेख किया है।

1. द्विजाति सुश्रुषा - तीनों उच्च वर्ण के व्यक्तियों की सेवा और कृषि, पशुपालन और व्यापार के द्वारा जीवन निर्वाह करना।
2. वार्ता - धनोपार्जन।
3. कारुकर्म - कला।
4. कुशीलवकर्म - शिल्प

कौटिल्य ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित वर्ण व्यवस्था का हिमायती था। मौर्यकाल में शूद्रों की प्रायः वही स्थिति रही होगी जो सूत्र काल के अंतिम दिनों में थी। मौर्य काल में शूद्र विभिन्न शिल्पों का अनुसरण करते थे। कौटिल्य ने उन्हें सेना में भर्ती होने की छूट दी। उन्हें सम्पत्ति रखने का अधिकार था। अशोक के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि उनके साथ उदार व्यवहार होता था। अशोक के 13वें शिलालेख से ज्ञात होता है कि कई लोगों को सड़क निर्माण के कार्य में लगाया गया था।

मौर्यकाल में राज्य ने उद्योगों का बहुत प्रोत्साहन दिया कौटिल्य के अनुसार सूती और गरम कपड़ा बनाने वाले जुलाहे और कवच बनाने वाले मिस्त्री नगर के पश्चिमी भाग में शूद्रों के साथ रहे। इसका तात्पर्य था कि जुलाहों व कवच बनाने वालों में अधिकांश शूद्र थे। इस काल में शूद्र वैश्यों के साथ कृषि कार्य करते थे। राज्य के कृषि फार्मों पर तो शूद्र ही कार्य करते थे। इन शूद्रों पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण था। वे समझते थे कि हमने पूर्व जन्म में बुरे कार्य किये होंगे जो हमारा जन्म शूद्र परिवार में हुआ है। परन्तु इस काल में सभी शूद्रों की स्थिति अस्पृश्य जातियों से अच्छी थी। इस काल में राज्य के अपने कारखाने थे। राज्य स्वयं ही खान खुदवाता था तथा व्यापार करता था। इसका अर्थ है कि अनेक शूद्र इन खानों और कारखानों आदि में कार्य करते होंगे। शिल्पियों पर भी राज्य का पूर्ण नियंत्रण था। शिल्पियों के साथ में अनेक शूद्र रहते थे।

मौर्योत्तर काल में समाज में अधिक वर्ण संकरता व्याप्त हो गयी थी। समाज में परम्परागत चार वर्णों के अतिरिक्त अन्य बहुत सी जातियाँ पैदा हो गई थी। जाति प्रथा अधिक कठोर हो गई थी। मौर्य युग में एवं बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण वर्णाश्रम व्यवस्था को ठेस पहुँची थी। अधिकतर लोग सामाजिक कर्तव्यों की उपेक्षा करके श्रमण या भिक्षु बनने लगे।

बौद्ध धर्म (500बी०सी०) के उदय से गुप्त वंश (300-500ई०) का समय जाति व्यवस्था के सुनिश्चतीकरण का काल है। इस काल के विदेशी यात्री इस जटिल व्यवस्था को ठीक से समझ नहीं पाये मैगस्थनीज भारत में 7 जातियों बताता है। ह्वेनसांग भी इसी तरह के वर्णन करता है। वास्तव में ये जातिवाद की आनुवांशिकता को व्यवसाय अपनाने की आनुवांशिकता समझते थे। ह्वेनसांग, अलमसूदी और अल्बरूनी ने वर्ण व्यवस्था का वर्णन किया है। गुप्तोत्तर काल में शूद्रों की सामाजिक स्थिति में सुधार प्राप्त होता है।

देवल स्मृति तथा पाराशर स्मृति में शूद्र के लिए सेवा के अतिरिक्त कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, शिल्प उपयुक्त व्यवसाय बताये गये हैं ओशनम् स्मृति में व्यापार और शिल्प शूद्र की आजीविका के साधन बताये गये हैं। ह्वेनसांग ने शूद्रों को कृषक कहा है। मेघातिथि के अनुसार शूद्र के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह द्विजों की सेवा से आजीविका चलाए।

इस समय तक अधिकांशतः शूद्रों ने कृषि को व्यवसाय अपना लिया था। जिसका विवरण इब्नखुर्दादब तथा ह्वेनसांग ने भी किया है। व्यास स्मृति तथा पाराशर स्मृति में 'कुटुम्बी' नामक कृषक को उल्लेख प्राप्त होता है। जिसे शूद्रों के अन्तर्गत रखा जाता है। एक और श्कीनाशश् का उल्लेख प्राप्त होता है। प्राचीन ग्रंथों में कीनाश वैश्य थे किन्तु 8 वीं सदी में नारद स्मृति के टीकाकार असहाय ने कीनाशों को शूद्र बताया है। इस प्रकार से इन कृषकों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

1. किसान जो भूमि के स्वामी थे और राज्य को अनेक प्रकार के कर देते थे। "कुटुम्बी इसी श्रेणी के थे।

2. वे किसान जो बटाई पर खेती करते थे उन्हें न्यधसीरिन या सीरिन कहा गया है। फिर भी शूद्रों की स्थिति अच्छी नहीं थी। मेधातिथि ने उन्हें चौथे आश्रम के फल अर्थात् मोक्ष के अधिकार से वंचित किया है

12वीं शताब्दी तक आते-आते शूद्र दो वर्गों में विभक्त हो गये – ‘सत’ तथा ‘असत’, सत सूत्रों को पौराणिक विधि से संस्कार, पंच महायज्ञ इत्यादि धर्म कृत्य करने का अधिकार प्रदान किया गया। ‘मूर्तधर्म’ अर्थात् समाजहित के कार्यों जैसे तालाब खुदवाना, वृक्ष लगवाना, दान देना इत्यादि कृत्यों से वे पुण्य प्राप्त कर सकते थे। वेदाध्ययन तथा वैदिक यज्ञ के सम्बन्ध में शूद्रों पर जो प्रतिबंध लगाये गये थे वे अब भी बने हुए थे। वेद श्रवण के स्थान पर पुराण श्रवण को शूद्रों के ज्ञान का साधन बताया गया। गुप्तोत्तर काल में “आर्थिक” नामक जाति का उल्लेख प्राप्त होता है जो कि फसल बटायी का कार्य करते थे।

‘कायस्थ’ का सर्वप्रथम उल्लेख याज्ञवल्क्य स्मृति में प्राप्त होता है। गुप्तोत्तर काल में ओशनम् स्मृति में ये एक जाति के रूप में प्रकट होते हैं। अभिलेखों में सबसे पहले यह मथुरा लेख (कुषाण काल) में प्राप्त होता है। कायस्थों का मुख्य कार्य लेखक, गणक, एवं न्यायिक निर्णयों को लिखना था।

पद्मपुराण में कहा गया है कि कायस्थ की उत्पत्ति ब्रह्मा की सम्पूर्ण काया से हुई थी। श्री हर्ष (जयचंद के दरबारी) ने अपनी पुस्तक नैषधीयचरित में इन्हें यमराज के सचिव “चित्रगुप्त” को कायस्थों का आदि पुरुष कहा है। कायस्थों को अक्षरोपजीवी कहा गया है। इन्हें समाज में अष्टव्याकरणेता के रूप में जाना जाता है। 8वीं व 9वीं शदी में कायस्थ एक जाति के रूप में स्थापित हुए। सहेत-महेत अभिलेख में कायस्थ का उल्लेख एक जाति के रूप में प्राप्त होता है।

10वीं व 12वीं शदी के अन्तर्गत इनकी कई उपजातियाँ बन गयीं थीं। जैसे बंगाल से आये हुए गौड कायस्थ, बल्लभीय कायस्थ, माथुर, श्रीवास्तव, निगम आदि कायस्थों की उत्पत्ति विवादास्पद है। कुछ ने इनकी उत्पत्ति द्विज जाति से बतायी है। किन्तु अनेक ब्राह्मण ग्रन्थों में उन्हें शूद्र कहा गया है। रामशरण शर्मा के अनुसार “ब्राह्मणों का एकाधिकार समाप्त हो गया है”। कायस्थों के उदय के कारण ब्राह्मणों के एकाधिकार को आघात पहुँचा।

संकर जातियों में से अनेक को इस काल में शूद्र वर्ग में गिना गया है। बृहद्धर्म पुराण में “अम्बष्ठ और कायस्थ” जाति के व्यक्तियों को शूद्र कहा गया है। वेद व्यास स्मृति में कायस्थों की गणना शूद्रों में की गयी है। अनुलोम विवाह से उत्पन्न संतान को उपनयन आदि संस्कारों का अधिकार है। किन्तु प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न संतान को सभी प्रकार के संस्कारों से वर्जित माना गया है। बृहद्धर्मपुराण में संकर जातियों की संख्या 41 बतायी गयी है। पुराण के अनुसार 36 जातियों की स्थिति शूद्रों के समान थी। मेधातिथि ने भी सूत, मागध, और आयोगव को अशृष्य माना है। क्योंकि इनकी उत्पत्ति अनुलोम विवाह से हुई है।

इस प्रकार परवर्ती समय में वर्ण व्यवस्था का ही विकसित रूप जाति प्रथा बन गई। जो वर्ग शोषण का एक मुख्य आधार बन गई। राजसी वर्गों ने सदैव जाति व्यवस्था को पोषित किया क्योंकि शासक वर्गों को सदैव उत्पादक व श्रमिक वर्गों की आवश्यकता रही।

वर्ण व जाति व्यवस्था ने कृषक को कृषक व व्यापारी को व्यापारी न रहने दिया और न ही कभी एक वर्ग को दूसरे वर्ग से जुड़ने दिया। जिसके कारण समाज कभी भी एक होकर विदेशियों का सामना न कर सका और भारत हजारों वर्षों तक विदेशी दासता का शिकार बना रहा। तदनन्तर आजादी के बाद जाति व्यवस्था और सामाजिक छद्मों के कारण सांप्रदायिक दंगे और जातिगत ताने बाने और अस्पृश्यता के प्रांकुरण में कहीं भी किसी प्रकार की कमी वर्तमान में भी दिखाई नहीं देती है। यदा कदा सामाजिक बंधनों की बेडियाँ भी टूटती देखीं गई है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मनुस्मृति (अनुवाद), सर विलियम जोंस, द ला बुक एक्सचेंज लिमिटेड, कलकत्ता, 1794
2. पंतजलि का महाभाष्य, एफ0 कील हॉर्न, वाल्युम 3, भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1892-1906
3. वी० फॉसबाल, जातक टुगेदर विथ इट्स कमेंट्री, खण्ड-7, कीगन पाल,ट्रेंच ट्रवनेर एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लंदन, 1897
4. कल्हण की राजतरंगिणी (अनुवाद) एम० ए० स्टीन, आर्चिबल्ड कांस्टेबल एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लंदन, 1900
5. वाल्मीकि रामायण (संपादक) काशीनाथ पाण्डुरंग, द्वितीय संस्करण, जीवाजी दादाजी निर्णया सागरा प्रेस, बॉम्बे, 1902 ।
6. डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर, हू वर द शूद्राज?, थेकर एण्ड कम्पनी लिमिटेड, बम्बई, 1946
7. डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर, द अनटचेबल्स, अमृत बुक कम्पनी, नई दिल्ली, 1948
8. जे0 एच0 हटन, कास्ट इन इंडिया, वाल्युम 4, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1969
9. डी0डी0 कौशाम्बी, कल्चर एण्ड सिवलाइजेशन इन एंशिपंट इंडिया, विकास, दिल्ली, 1994
10. रामशरण शर्मा, प्रारंभिक भारत का आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास
11. एन0 के0 दत्त, ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इण्डिया, कीगन पाल,ट्रेंच ट्रवनेर एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लंदन, 1931
12. एल0 ड्योमोट, कान्डीब्यूशन टू इण्डियन सोशियोलोजी
13. जी0 एस0 घुर्ये, कास्ट एण्ड रेस इन इण्डिया, पापुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1969
14. हेराल्ड ए0 गोल्ड, द हिंदू कास्ट सिस्टम, वाल्युम 1, चाणक्य प्रकाशन, दिल्ली, 1987
15. विष्णु स्मृति गट(संपादक) जे0 जौली, जे0डब्ल्यू0 थामस, बैप्टिस्ट मिशन, कलकत्ता 1881
16. कौटिल्य- अर्थशास्त्र-3-1, चौखम्भा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1984

कथाकार शिवमूर्ति कृत 'तर्पण' उपन्यास में स्त्री जीवन का यथार्थ

डॉ० हिमांशु कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी, के.के. पी.जी. कॉलेज, इटावा, उ०प्र०

स्त्री जीवन के यथार्थ को लेकर हिन्दी साहित्य में मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, अनामिका, मैत्रेयी पुष्पा आदि लेखिकायें अपने अनुभवों, भावनाओं और संवेदनाओं को व्यक्त करते हुए हिन्दी साहित्य में अपना योगदान दे रही हैं। इसी प्रकार शिवमूर्ति जी ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से दलित स्त्री जीवन के यथार्थ से परिचय कराने में योगदान दिया। कथाकार शिवमूर्ति की कहानियाँ नायिका प्रधान हैं। तिरिया चरित्तर, कसाई बाड़ा, अकाल दण्ड, तर्पण आदि में स्त्री की वेदना, उसका संघर्ष, अपमान, प्रताड़ना, काम वासना, पारस्परिक रिश्तों की जकड़न, पारिवारिक विघटन सभी कुछ गहरी वेदना के साथ अभिव्यक्त होता है।

शिवमूर्ति जी ने 'तर्पण' उपन्यास के माध्यम से उस पुरुषवादी संकीर्ण मानसिकता पर करारा व्यंग्य किया है, जिसमें स्त्री को भोग की वस्तु समझा जाता है। चंदर भी रजपत्ती के यौन शोषण का प्रयास करता है। यह यौन शोषण सिर्फ रजपत्ती का ही नहीं है, वरन् यह उन तमाम दलित महिलाओं के खिलाफ की जा रही यौन हिंसा का प्रतीक है। उपन्यासकार ने यह बताने का प्रयास किया कि समाज में कितनी ही रजपत्ती हैं, जिनका शारीरिक शोषण चंदर सरीखे लोग कर रहे हैं। इस ओछी मानसिकता से समाज को बचाने की आवश्यकता है।

शिवमूर्ति की कहानियों में "स्त्री सिर्फ देह नहीं है, सिर्फ उपभोग की वस्तु नहीं है, सिर्फ मनोरंजन नहीं है बल्कि वह एक इंसान है, जो अपने हक के लिए, अपनी अस्मिता के लिए, अपने अस्तित्व के लिए, विरोधी ताकतों से अंतिम समय तक लड़ने का माद्दा रखती है, भले ही उसमें उसकी जान चली जाये या जिन्दगी छिन्न-भिन्न हो जाये।"¹

दलित स्त्री के यौन शोषण की समस्या नई नहीं है, यह सदियों पुरानी समस्या रही है। सामन्ती जमींदार, उच्च पदों तथा उच्च समाज से आने वाले लोगों ने दलित स्त्रियों की देह से खिलवाड़ किया। उनके लिए वह एक खेल का साधन रही है। शिवमूर्ति जी भी ऐसे समाज तथा परिवेश में पैदा हुए कि बचपन से ही ये चीजे उनके अनुभव में आयी जिसके प्रभावस्वरूप उन्होंने इन समस्याओं को लेकर अपना कथा लेखन का कार्य प्रारम्भ किया। बड़ागाँव में सिर्फ रजपत्ती ही यौन शोषण का शिकार नहीं हुई थी वरन् उसकी बड़ी बहन के साथ भी इस तरह की घटना घट चुकी थी। सवर्णों के टोले के कुछ लड़कों ने उसके साथ बलात्कार किया, जिससे वह गर्भवती हो जाती है और लोकलाज के कारण कुँए में कूदकर जान देती है, किन्तु अब जब यही घटनाएँ रजपत्ती के साथ घटनेवाली होती हैं तो वह उसका विरोध करती है। लेखक इस विरोध के माध्यम से बताने का प्रयास करता है कि अब वह पुराना समय नहीं रहा कि सवर्ण जातियाँ खुद के मन से कोई भी अनुचित कार्य कर सकती हैं। यदि कुछ भी गलत होता है तो उसका विरोध अवश्य होगा, चाहे सामने कोई भी हो। उदाहरण द्रष्टव्य है- रजपतिया का कोछ खुलने से पहले चंदर का हाथ बदमाशी के लिए चल गया। इस चले हुए हाथ को बीच में ही झटककर वह गरजी- "हरामजादे और पीछे हटने लगी चंदर ने लपककर उसे कन्धे से पकड़ा और पैर में लंगी मार दिया। वह सँभल न पाई गिर गई और ऊपर झुक आये चंदर के बाल पकड़कर खींचती हुई चिल्लाई- अरे माई गोहार लगा। धरमुआ कै पुतवा उधिरान बा रे।"² इस प्रकार अचानक हुए हमले से रजपत्ती असहज हो जाती है किन्तु वह धैर्य नहीं छोड़ती और मदद के लिए आवाज देती है। परेमा की माँ चिल्लाते हुए दौड़ती आई गए। जाइ न पावै। पहुँच गए। परेमा की माँ के गरजने पर रजपत्ती को बल मिलता है, वह कपड़े ठीक करते हुए कहती है- "इहै मेहरंडा धरमुआ के पुतना। कैलसिया (चंदर की बहन) कै भतरा। अन्ना सै मारै लागा।"³

रजपत्ती के विरोध और परेमा की माँ के आ जाने से चंदर भाग खड़ा होता है। लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि एक दलित महिला को हवस का शिकार बनाना अब सवर्णों को मंहगा पड़ने वाला है। इसके लिए दलित महिलाएँ आवाज उठाती हैं, जिस कारण चंदर जैसे बलात्कारियों को भागना पड़ता है। रजपत्ती के सहयोग के लिए "मिस्त्री बहू हाथ में खुरपा लिए दौड़ती हुई सबसे आगे पहुँची और चंदर को देखकर बिना बताये सारा मजरा समझ गई। ललकारने लगी पकड़-पकड़। भागने न पावै। पोतवा पकड़िष्के ऐठ दे हमेशा-हमेशा का गरह कट जाया।"⁴

मिस्त्री बहू का हथियार उठाना यह दर्शाता है कि अब दलित महिलाएँ शोषण को बर्दाश्त नहीं करेंगी, उसके लिए चाहे किसी की हत्या भी करना पड़े तो फर्क नहीं। यह सब स्त्री चेतना का परिणाम है। चंदर के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज होने के बाद सी. ओ. तफसीस में आते हैं तो परेमा की अम्मा और मिस्त्री बहू गवाही देने से नहीं घबराती। गाँव की दलित महिलाएँ तथा पुरुष इस घटना का विरोध करते हुए रिपोर्ट लिखवाने का निर्णय लेते हैं, जब रिपोर्ट लिखने के बाद तफसीस होती है तो उस तफसीस में अधिकारी द्वारा पूछे गये सवाल का तरीका पुलिस प्रशासन पर ही प्रश्न चिन्ह खड़ा करता है। उदाहरण द्रष्टव्य है-

“क्या किया
साहेब हमार कपड़ा फारि दिए।
कपड़ा ? कौन कपड़ा
आँचर साहेब ।
फिर ?

फिर हमार दूध पकड़ लिए
ऐं दूध ? अच्छा हाँ, दूध । फिर ?”⁵

एक तरफ जहाँ रजपती अपने साथ हुए अत्याचार से परेशान है, वही पुलिस भी ऐसे प्रश्न करती है जो उसे और भी परेशान करते हैं। यह प्रश्न मानसिक रूप से प्रताड़ित करने वाले हैं। “यौन शोषण आदि के चित्रण की दृष्टि से शिवमूर्ति काफी बेबाक कथाकार है। वे कथा की आवश्यकतानुसार बेझिझक इन प्रवृत्तियों को चित्रित करते हैं और जहाँ जो कहना होता है, उसे खुल्लम खुल्ला कहते हैं।”⁶

शिवमूर्ति जी कितने सहज ढंग से दलित स्त्री के यथार्थ को अपनी भाषा के माध्यम से हूबहू व्यक्त कर देते हैं। तर्पण में जहाँ मिस्त्री बहू, परेमा की अम्मा जैसी दलित महिलाएँ हैं जो न्याय का साथ देती हैं, वही लवंगी जैसी पात्र भी हैं जो चन्दर जैसे लोगों का साथ देती हैं। खुद के टोले से विरोध का कारण उनकी दयनीय आर्थिक दशा है, जिस कारण वह सत्य का पक्ष न लें, असत्य का पक्ष लेती हैं। दलित स्त्री के जीवन में शिक्षित होने के लिए संघर्ष, जातिगत पहचान की वजह से प्रगति के हर कदम पर आने वाली कठिनाइयों से जूझना, आर्थिक सबलता के लिए कठिन प्रयास, भूख से लड़ाई, स्त्री होने के कारण घर और बाहर होने वाली अवहेलना, अपमान और शोषण की तिहरी मार झेलने के प्रसंगों, घटनाओं, संघर्षों का चित्रण लेखकों तथा लेखिकाओं ने प्रमुख रूप से किया है। लगभग सभी आत्मकथाओं में सबके महत्वपूर्ण पहलू हैं, पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री का निरंतर शोषण, उसके अस्तित्व और अस्मिता को कुचला जाना और इनके विरोध में स्त्री का संघर्ष। दलित स्त्री मध्यवर्गीय हो अथवा निम्नवर्गीय मजदूर हो अथवा सामाजिक कार्यकर्ता या कॉलेज में अध्यापिका, उसे दलित और स्त्री होने की पीड़ा साथ-साथ झेलनी पड़ी है। यह तथ्य लगभग सभी लेखकों तथा लेखिकाओं के यहाँ समान है। पूर्वजों के साथ हुए जातिगत शोषण और उत्पीड़न की वेदना की लकीरे सभी में एक समान हैं, अन्याय, गुलामी, दरिद्रता, वंचना ने स्त्री के जीवन को एक सी भयावहता, दीनता, लाचारी और कुचले जाने की पीड़ा से भर दिया।

स्त्रियाँ घर के बाहर तो खुद को असुरक्षित महसूस करती ही हैं, साथ ही घरेलू हिंसा ने उनके जीवन की समस्याओं से भर दिया, यदि कोई बाहरी किसी को चोट पहुँचाता है तो उसका दर्द शरीर तक ही हो सकता है किन्तु जब घर परिवार का ही व्यक्ति चोट पहुँचाए तो यह दोहरी चोट होती है उसके लिए। शरीर के साथ-साथ हृदय को भी महज आघात पहुँचता है। तर्पण उपन्यास में भी रजपती को घरेलू हिंसा का शिकार होते हुए दिखाया गया है। एक तरफ वह चंदर के द्वारा किये गये यौन शोषण के प्रयास की घटना से उबरी भी नहीं थी कि उसके पिता पियारे उसकी गलती निकालते हुए पीटने लगते हैं-

“तो क्यों घुसी यह उसके खेत में ? किसने भेजा ?

हरामजादी तेरी जीभ कब्जे में नहीं रहती, बहुत चटोरी हो गई है क्यों भेजा लड़की को ?

पियारे उसका बाल पकड़कर धमाधम चार पाँच घूसे पीठ पर लगाता है। पत्नी चिल्लाने लगती है, एक दम्पै सनक गया हैई आपन तो कहाँ का गुस्सा कहाँ उतार रहा है। अगर लड़की ने एक कौर साग नोच ही लिया तो क्या वह कसाई जान ले लेगा ? जवान जहान लड़की पर हाथ उठा देगा ?”⁷

रजपती के लिए यह स्थिति और भी कष्टप्रद हो जाती है। लिंगभेद समाज के लिए अभिश्राप है। लड़के और लड़की में सिर्फ लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। लिंगभेद की समस्या को लेखकों तथा लेखिकाओं ने अपने लेखन से समाज के सम्मुख रखा। तर्पण में पंडिताइन रजपती के चरित्र पर प्रश्नचिह्न उठाती है और अपने बेटे के किये पर उन्हें कोई पश्चाताप नहीं होता। पंडिताइन कहती हैं- “जवान बेटी को विदा कर देगा तो उसकी कमाई कैसे खाएगा ? उतान होकर गली-गली अटिलाती घूमती है। गाँव भरके लड़को को बरबाद कर रही है।”⁸

यह भी एक प्रकार का लिंग भेद ही है कि खुद के बेटे की गलती को न मानकर रजपती के दलित स्त्री होने की वजह से उसके चरित्र पर ही लांछन लगा दिया जाता है।

शिवमूर्ति जी ने तर्पण उपन्यास में स्त्री जीवन के यथार्थ को दिखाने के लिए ऐसी कथा का चयन किया जो पूर्णतः सफल होती है। उनकी कहानियाँ किसी उथले यथार्थ के हवाई चित्र नहीं हैं। न ही वे भाषाई आडम्बर से बनाए गए ऐसे स्वादिष्ट साहित्यिक व्यंजन ही हैं जिनमें भाषा कि चिकनाई निकाल लेने पर उनमें बस छौंछ ही बची रह जाए। “उनकी कहानियाँ हिन्दी साहित्य में गाँव में बसे दलित और वंचित वर्ग को खोई हुई अस्मिता को वापस पाने का हथियार है।”⁹

हिन्दी कथा साहित्य में शिवमूर्ति को स्त्री की दशा-दिशा का परिचायक कहा जा सकता है। शिवमूर्ति अपनी कहानियों में स्त्री पात्रों को गढ़ते नहीं वरन् वे पात्र स्वयं उनकी कहानियों में अपनी जगह बना लेती हैं, मानों वे मुखर होकर स्वयं के बारे में बताना चाहती हैं, क्योंकि शिवमूर्ति का तादात्म्य ग्राम्य जीवन से रहा है। अतः उनकी कहानियों की स्त्री पात्र ग्रामीण परिवेश से ही आती हैं। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पात्र लेखक की कलम से साकार होते हैं, किसी लेखिका के नहीं। अर्थात् कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति विषय चयन में जोखिम उठाते हैं। एक ऐसा जोखिम जो पुरुष की दोहरी मानसिकता के विरुद्ध खड़ा करता।

देश विकास की अनेक सीढ़ियाँ चढ़ चुका है लेकिन कभी-कभी ऐसा लगता है कि कहीं किसी सीढ़ी पर कुछ काँटे रख दिए गए हैं, जिनके कारण प्रगतिशीलता के पांव लहलुहान होते रहते हैं। इस इक्कीसवीं सदी में भी खाप पंचायतों का दुर्भाग्य भारतीय स्त्रियों का पीछा नहीं छोड़ रहा है। वैचारिक विकास

के क्रम में कहीं तो कुछ ऐसा है जो अभी तक पूरी तरह बदला नहीं जा सका है। गहराई में जाकर पड़ताल करने पर यही तथ्य सामने आता है कि ग्रामीण अंचल में अभी वह पुरुष मानसिकता विद्यमान है जो स्त्रियों को अपने पाँव की जूती मानती है और तमाम सामाजिक निर्णय लेने में अपनी हेठी समझती है। यदि स्त्री कोई विरोध करे तो उसकी चेष्टा को तिरिया चरित्र कहकर अपमान का विषय बना दिया जाता है। यदि वह विरोध न करे तो भी तिरिया चरित्र का ही तमगा पहनाया जाता है। इसी तरह जब रजपत्ती का बलात्कार करने की कोशिश चन्दर करता है तो इस घटना के बाद चंदर की माँ सारा दोष रजपत्ती पर ही मढ़ देती है। धरमू पंडित रजपत्ती के पिता पियारे से कहते हैं 'लौंडिया जवान हो गई तो विदाई करके कंटक साफ करो, घर में बैठाने का क्या मतलब है ?' एक दलित मजदूर जब अपने बेटी के साथ हुए दुर्व्यवहार की शिकायत करने आता है तो अपने बेटे को समझाने के बजाय उसी को दोषी ठहराते हैं। समाज की पुरुष मानसिकता से उत्पन्न व्यभिचार को समाप्त करने के स्थान पर उस महिला को जो दलित है उसे खदेड़ देना समस्या का हल नहीं हो सकता। समस्या गहरी और विकट है। यह तब और गहरी हो जाती है जब पुरुष तो पुरुष, एक स्त्री भी इस समस्या के प्रति वैसा ही कुत्सित व्यवहार प्रकट करती है, जैसा कि पुरुष। पंडितानी जैसी स्त्रियाँ सवर्ण और सामन्ती मानसिकता द्वारा कंडीशनड की जा चुकी होती हैं। वह आखिर तक कभी भी रजपत्ती के दुःख से द्रवित नहीं होती। ये स्त्रियाँ स्त्री अस्मिता के प्रति सजग न होकर सामन्ती वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं और इसी कारण "सवर्ण पुरुष सिर्फ दलित स्त्रियों के प्रति ही हिकारत भरी नजर नहीं रखता। वह अपनी पत्नी, अपने घर की स्त्रियों और जाति की स्त्रियों के लिए भी वैसी ही दृष्टि रखता है। धरमू पंडित का व्यवहार हो या पियारे का अपनी पत्नी, पुत्री के प्रति व्यवहार हो- स्त्रियों की दुर्दशा में कहीं कोई फर्क नहीं है। घर बाहर अपनी परायी सभी स्त्रियों की दशा एक सी दिखाई पड़ती है।"¹⁰

शिवमूर्ति जी ने 'तर्पण' उपन्यास में स्त्री जीवन के जिस यथार्थ को चित्रित किया है वह उनके जीवन अनुभव में भी रहा। उन्होंने समाज में दलित स्त्री के जीवन की जिन समस्याओं को देखा उसे उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से व्यक्त भी किया। "वैसे भी यथार्थ को समझने के लिए बाजार से किसी सूक्ष्मदर्शक यंत्र को खरीदकर नहीं लाना पड़ता, बस अपनी संवेदना को ही व्यापक जीवन से जोड़ना पड़ता है और शिवमूर्ति की भाव संवेदना इस योग्य उन्हें बनाती है कि वे साहित्य को वृहत्तर जीवन से जोड़ सकें। शिवमूर्ति की कहानियों में अनुभव का सच भी इसलिए जटिल है और ऐसा अनुभूत सत्य जो जीवन जगत की कल्पना पर नहीं बल्कि उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति पर आधारित है।"¹¹

निष्कर्षतः कथाकार शिवमूर्ति के प्रत्यक्ष अनुभूति की झलक 'तर्पण' उपन्यास में है। उन्होंने अपने आस-पास दलित स्त्री के प्रति हो रहे यौन शोषण, अत्याचार, लिंगभेग, घरेलू हिंसा जैसी समस्याओं के माध्यम से दलित स्त्री जीवन के यथार्थ को दिखाने का प्रयास किया। दलित स्त्री के जीवन में ये समस्याएँ पितृसत्तात्मक समाज तथा संकीर्ण धार्मिक मान्यताओं की वजह से भी बढ़ी हैं। स्त्री को अपने अधिकारों के लिए स्वयं संघर्षशील होने की आवश्यकता है, तभी उसे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो पायेगी।

संदर्भ सूची-

1. वास्तव की बहुआयामी छवियाँ, उर्मिला शिरीष, लमही अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृ 75
2. उपन्यास 'तर्पण', शिवमूर्ति, पृ 9-10
3. वही, पृ 10
4. वही, पृ 11
5. वही, पृ 70
6. यथार्थ का सत्यापन करती कहानियाँ, उमेश चौहान, लमही, अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृ 58
7. उपन्यास 'तर्पण', शिवमूर्ति, पृ 13
8. वही, पृ 14
9. वंचिता अस्मिता की अभिव्यक्ति, विवेक मिश्र, लमही अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृ 69
10. प्रतिपक्ष की भूमिका में उपन्यास, अमिताभ राय, लमही अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृ 116
11. गाँव की कहानियाँ और कहानियों में गाँव, वैभव सिंह, लमही अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृ 53

गुरुवाणी और नैतिकता

डॉ० हरबंस सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

धर्म और नैतिकता, परस्पर निर्भर हैं। धर्म, नैतिकता से व्यवहारिक रूप धारण करता है और नैतिकता, अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँच कर, धर्म में प्रवेश करती है। इसलिए धर्म और नैतिकता, एक दूसरे से अलग नहीं बल्कि एक दूसरे के पूरक होते हैं। दोनों मानव-विकास से संबंधित हैं। धर्म, नैतिकता की संपूर्णता प्रदान करता है और नैतिकता, धर्म को पवित्र बनाती है। नैतिक जीवन के लिए, मानव को एक आदर्श की आवश्यकता होती है, जिससे वह अपने कार्यों के विषय में अच्छे या बुरे निर्णय कर सके? इन आदर्शों को वह, धर्म, ईश्वरीय-आदेशों के द्वारा पूरा करता है। जिससे उसके नैतिक जीवन को दिशा प्राप्त होती है।

“नैतिकता, संस्कृति के शब्द ‘नीति’ का विकसित रूप है, जो ‘नी’ धातु से बना हुआ है।”

नैतिकता, अंग्रेजी के शब्द ऐथिक्स (Ethics) यूनानी भाषा के विशेषण ‘ऐथिका’ से लिया गया है। यह मूल शब्द, ‘ईथून’ से बना है, जिनका अर्थ रिवाज या आदत होता है। ऐथिक्स को ‘मोरल फिलासफी (Moral Philosophy)’ भी कहा जाता है। मोरल शब्द, लातीनी भाषा के मूल शब्द ‘मोरल’ से निकला है, जिसका अर्थ रिगज या आदत होता है। नीति शास्त्र इन रिवाजों या आदतों का अध्ययन करता है, जो मानवीय व्यवहार को निश्चित करती है। इस प्रकार नीति-शास्त्र मानवीय-व्यवहार के सर्वोत्तर आदर्श का विज्ञान है।²

विलियम लिली के अनुसार, “नीति-शास्त्र, समाज में रहने वाले मनुष्यों का व्यवहार, जिसके विषय में अच्छा या बुरा, सही या गलत का निर्णय किया जा सके, उसका आदर्श मूलक विज्ञान है।”

(Ethics is normative science of conduct of human beings living in societies, so for it is judged at good or bad, right or wrong or in some others may” William Lillie) डॉ. भूर के अनुसार, “नीति-शास्त्र, अच्छे, बुरे सही और गलत का अध्ययन है।”

(Ethics is the science of what is good, bad, right or wrong” - Dr. Moobe)³ देवे अनुसार ‘नीति-शास्त्र का विषय यह बताता है कि व्यवहार में, शुभ और भला क्या है?’ (The subject matter of Ethics is to point out, what is right and good in conduct - Demey)

“नैतिक जीवन, जब सामाजिक धरातल पर स्थित होता है तो वह, अध्यात्मिक जीवन ही होता है, वह क्रियाशील अध्यात्मिकता है। (Charles Moore, Spirituality in West pg- 28) “नैतिकता, उन सिद्धांतों की सूची है, जो समाज में उत्तम जीवन जीने के लिए जरूरी होती है।”

उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार नीति-शास्त्र एक आदर्श मूलक विज्ञान है, जो कि जीवन के परम आदेश या आदर्श की रोशनी में, मानवीय व्यवहार के अच्छे या बुरे, सही या गलत का अध्ययन करता है।

Ethics is normative science which studies The human conduct in terms of good or bad, right or wrong in the light of supreme ideal or higheast good of life.”⁵

पंजाबी में नैतिकता अर्थ, शुभ या अच्छा आचार है। गुरुवाणी और नैतिकता, भिन्न-भिन्न नहीं है, बल्कि, समानार्थी है। गुरुवाणी, मनुष्य को सत्य, प्रेम, नम्रता, क्षमा, सेवा, परोपकारी, सहनशीलता, संतोष, सहजता, दया और नैतिक गुणों को अपनाने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार गुरुवाणी नीति-शास्त्र के साथ संवाद। रचती हुई, नैतिकता के मौलिक संकल्प का सृजन करती है। गुरुवाणी, मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक, आर्थिक और अध्यात्मिक जीवन में, नैतिक गुणों की प्रमुखता पर बल देती है।

मानवीय गुणों को व्यवहारिक रूप देने के लिए, नैतिकता और सदाचार आधारित सिद्धांतों को, व्यवहारिक स्तर पर समझाया गया है। गुरुवाणी अवगुण (अनैतिकता) भरपूर विषय-विकारों, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि को रूपांतरण-प्रक्रिया के माध्यम से ‘कूड़ की पाल’ - मायावी जाल से मुक्त होकर सच्चाई के पद को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। आचरण-शुद्धता के लिए, मनुष्य को उच्च आदर्शों और नैतिकता को अपनाने के लिए प्रेरित करती है, ताकि, मनुष्य के मानसिक अवचेतन में उच्चतम गुण और नैतिकता पैदा हो सके।

गुरुवाणी के अनुसार, गुणों को अपनाकर कार्य करने से अवगुण (अनैतिकता) भी, नैतिकता (गुणों) में सहज ही रूपांतरित हो जाती है -

“सचहु और सभु को ऊपरि सच आचारु॥” (गु. ग्र. साहिब, अंश 765)

इस तरह, नैतिकता और अनैतिकता के भाव को हम ‘जपुजी’ साहिब के केंद्रीय विचार “किव सचिआरा होइओ किव कूडै तुहै पालि” द्वारा समझा जा सकता है। सच्चा बनते ही झूठ की पाल (परदा) (माया, नीचता, दुख, भ्रम-दृष्टि, मनमुखता, अनैतिकता, विषयों का मार्ग आदि) के टूटे बिना, मनुष्य सच्चा

(हुक्म, सच, अत्तमता, सुख, गुरु गुरवता, नैतिकता) नहीं हो सकता। जब झूठ (अनैतिकता) अपनी सीमाएं पार कर लेता है, तो उस समय, सच्चाई छुप जाती है जैसे कि -

‘सरमु धरमु दोई छपि खलोऐ कूडु पिफरे परधानु वे लालो। (अंग 722)

झूठ के परदे से सत्य तक का रूपांतरण, मानवीय शरीर से मन तक की यात्रा, मनुष्य के अपने मूल को पहचानने की होती है। मन के खेलने के लिए, पांच तत्वों के मानवीय शरीर का सृजन हुआ है।

मानवीय शरीर में मन को, पवन के द्वारा प्रवेश करवा के, संसारिक कार्य-व्यवहार करने के लिए संयोग, लगन (नैतिकता) के मार्ग और वियोग (पदार्थ, झूठ का परदा) अनैतिकता के मार्ग पर चलने से पूर्व, मां के गर्भ में समझाया गया था कि जन्म लेते ही, तुम्हें दो रास्ते मिलेंगे। प्रथम सच्चाई (सत्य का, नैतिकता) का मार्ग। दूसरा पदार्थों का, झूठ का (अनैतिकता) का मार्ग मिलेगा अर्थात् कोख की अग्नि और बाहर की माया एक बराबर है।

गुरुबाणी मन को संबोधित करते हुए कहती है, हे मन। तुमने अपने को नैतिक गुणों से जोड़ना है। भूलकर भी, अनैतिक व्यवहार नहीं करने हैं। क्योंकि, पदार्थों के मार्ग (माया का जाल) द्वारा अनैतिक अवगुणों को करवाने के लिए, माया ने अपने पांच दूत (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) तुम्हें भ्रम में डालने के लिए छोड़ रखे हैं -

“पंच दूत चितवहि विकाश।” (अंग 1068)

हे मन, तुमने शब्द का सहारा लेकर, सावधान और सुचेत रहना है। जब भी तुम ध्यान से भटके, तब ही झूठ की सरकार के पंजों ने अपना प्रभाव शुरू करके अवगुणों वाले अनैतिक कार्य करवाने शुरू कर देने हैं।

मन को समझाओ, तुम्हारा भोजन तो हरि का नाम है। तुम दसवें द्वार में रहकर, अपने मन को नहीं भुलना, परम ज्योति से काम लेना है।

हम जानते हैं माया का अपना जाल बड़ा जटिल व्यवहार है जिसे वो मनुष्य के मन को पदार्थों (अवगुण, अनैतिकता) के मार्ग पर डाल कर पूरा करती है। जैसे ‘इन पंचन मेरे मनु जु बिगारिओं’ पहलु पलु हरि जी ते अंतर परिओ। (अंग 710)

माया का व्यवहार, जब बच्चा जन्म लेता है। तब से ही शुरू हो जाता है। बच्चे को लगन के मार्ग से हटाकर, झटसे, उसकी चेतना पर परदा डाल देता है। बच्चे का आत्म ध्यान पर परदा डाल देता है। बच्चे का आत्म ध्यान हट जाता है। माया का असर शुरू हो जाता है जैसा कि

लिंग छुड़की लगी त्रिस्ना माईआ अमर बरताई आ। (अंग-921)

अब मन, पदार्थों की जिंदगी जीने लगता है, वह चिंता, धबराहट, शोक, डर, अज्ञानता तेरा मेरा, बेगानापन, अंध-विश्वास आदि अनैतिक अवगुणों से घिर जाता है। क्योंकि मन, माया के वश हो जाता है। गुरुबाणी में इस विषय में कहा गया है -

“मनु मइआ कै हाथि बिकानऊ” (अंग 710)

जब मन, मायावी (अनैतिक भाग-दौड़) का यात्री बन जाता है। तब यह अपनी इच्छाओं का स्वयं को ही अधिकारी मानता है। और अपनी ही मर्जी के अनुसार काम करने की कोशिश करता है। यह साधरण मनुष्य को असान रास्ता दिखायी देता है। इसलिए, बहुत से लोग इसी मार्ग पर आयु भर चलते रहते हैं और योनियों के आवा-गमन के चक्कर में घूमते रहते हैं। मानवीय अहंकार से तृष्णा जागृत हो जाती है। मन, अनैतिक अवगुणों को एकत्र करने में डूब जाता है और अहंकार ममता, दुविधा, परायेपन के भ्रम में जकड़ा जाता है।

माया, यह सारा अनैतिक व्यवहार मन को त्रि-गुणों के विचार, बंधन में बांध कर करवाती है। यह त्रि-गुण काल की सरकार है। जैसे कि

“तै गुण कालै की तिरिकारा” (अंग-231)

गुरुबाणी, सच की तलाश के लिए “गावीअै सुणीअै मनि रखीअै भऊ” के संस्कार द्वारा, सच को गाने और सुनने के बाद, मन के भाव और प्यार में डूबने की प्रेरणा देती है, जिसके द्वारा मानवी मन, एकता एकग्रता और संतुलन में आकर, सच, भाव ‘लिव’ के मार्ग पर चलने के लिए नैतिकता को धारण कर लेता है। जब यही एकता, एकाग्रता और संतुलन, भंग हो जाता है तो मानव की मानवता लुप्त हो जाती है। मन की तरंगें, सांसारिक शोर-शराबे में गुम हो जाती हैं। मनुष्य असंख्य, अंतहीन अनैतिक कार्यवाहियों में डूब जाता है जिसका वर्णन ‘जपु जी’ साहिब की अठारहवीं पऊड़ी में इस तरह किया गया है, कि असंख्य महापुरुष और असंख्य हो हरामखोर, जेरू जब्दस्ती, अत्याचार करके अपनी मर्जी मनवाते हैं। अनगिनत कातिल, खूनी, हत्यारे, कुकर्म करने वाले, अनगिनत झूठ बोलने वाले अनगिनत झूठ में जन्में पले, अनगिनत खोटी बुद्धि वाले, अनेक मनुष्य झूठे काम करके बेहिसाब धन एकत्र कर लेते हैं, असंख्य निंदा - चुगली करने में डूबे होते हैं। अंत में, गुरु नानक जी कहते हैं कि अन्य जीव भी कई तरह के कुकर्म करने में डूबे हुए होंगे। हे वाहे गुरु। तुम्हारी कुदरत पर विचार करके, ऐसे अनैतिक कुकर्मों में लगे लोगों की सूची, अनैतिक अवगुणों के विचारों में ग्रस्त चले आ रहे हैं। ऐसे अनैतिक कामों में डूबे, जीवों की गिनती करने के लिए, असंख्य शब्द उचित हैं, साफ-सुथरा, नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

नैतिक जीवन में औरत, मर्द की कमजोरी नहीं है। बल्कि गृहस्थ जीवन में साथी बनकर उसी ताकत बन जाती है। उसका त्याग अनैतिकता है। जैसे कि

“घर की नारि तिआगै अंधा”॥

पर नारी लिऊ घाले धंधा॥ (अंग 1164-65)

घर की नारी का त्याग करने वाले को अंधा कहा जाता है। यह अनैतिकता का मार्ग, जिस पर चलकर समाज कभी विकास नहीं कर सकता। इसलिए गुरुबाणी, नैतिक गुणों के द्वारा, आर्दश चरित्रा वाले सच्चे मनुष्य की सृजना करती है।

अनैतिकता (पदार्थों का मार्ग) नैतिकता की तरफ मुड़ने के लिए लगन का सहारा लिया जा सकता है। 'लिव' का अर्थ है 'लीनता' जब मन शुद्ध चेतना के साथ एकांग उस अवस्था को 'लिव' कहा जाता है। यह लगन (लिव) सुरत को सबद गुरु के साथ जोड़े रखती है, जो चलते-फिरते सब कार्य करते हुए भी बनी रहती है। जैसे कि

“नामा कहै त्रिलोचना मुख ते राम, संमालि॥

हाथ पाऊ करि काम, सभु चीतु, निरंजन नलि॥ (अंग-1375-76)

जब स्मरण अभ्यास की बारंबारता, निरंतरता बन जाती है, तब मन लगन के मार्ग का यात्री बन जाता है। लगन मार्ग गुरु प्रसादि के द्वारा ही प्राप्त होता है।

अनैतिक मार्ग पर चलने वालों को 'गुरुमुख' कहा जाता है। उनकी अवस्था, जागृत अवस्था होती है। जैसे कि

गुरुमुखी जागि रहे दिन राती॥

साचे की लिव गुरुमति जाती॥ (अंग 1024)

अनैतिक पात्रों की लगन की निरंतरता भी, नैतिकता के गुणों में रूपांतरित होकर, सच्च के पद, भाव, हुक्म को पहचान लेती है। इस पात्रों की अनैतिकता के कारण समाज में उनकी पहचान, शनाख का कोई पता नहीं था। इन की काम और कामना, जीवन का हिस्सा बनने के कारण उन्हें समाज से तोड़ चुकी थी। बुरे से बुरे काम, भाव अनैतिकता उनके नित्यप्रति जीवन का हिस्सा बन चुकी थी। जैसे जैसे इन पात्रों की लगन, एकाग्रता से जुड़ती गयी, वैसे ही रूपांतरण प्रक्रिया आरंभ हो गई।

वाहेगुरु ईश्वर गुणहीन, आचरण (अवगुण, अनैतिक) वाले जीवों को भी नैतिक गुण प्रदान कर देता है।

यह सारी विचार-चर्चा इस दिशा की तरफ स्पष्ट संकेत करती है कि गुरु ग्रंथ साहिब में नैतिकता अनैतिकता के भेद से संबंधित असीमित उदाहरण हमारे सम्मुख है। क्या मनुष्य इस नदान छद्मतीय ग्रंथ को अपनी जीवन धारा का दिशा निर्देशक बनाकर, एक परम मनुष्य वाले मार्ग पर चलने के लिए अपनाया चाहिए या नहीं?

संदर्भ और टिप्पणियां

1. जसबीर सिंह, डॉ. धर्म और समाज - एक अध्ययन, पृ. सं. 104
2. मनजीत सिंह, धर्म दर्शन, पृ. सं. 28
3. वहीं, पृ. सं. 28
4. वहीं, पृ. सं. 28
5. परमजीत कौर संधु डॉ. कदरां कीमतां दी सिखिया, पृ. सं. 16
6. जसवंत सिंह नेकी डॉ., गुरुमति मनोविज्ञान, पृ. सं. 38
7. रतन सिंह जग्गी डॉ. ;संपा.द्ध गुरु ग्रंथ साहिब विश्वकोष, भाग दूसरा, पृ. सं. 367

महाकवि भारवि का अर्थगौरव-एक विश्लेषण

ज्ञानी राम

प्रवक्ता संस्कृत, पंत इण्टर कालेज, बम्भौरा सीतापुर, उ०प्र०

सामान्य परिचय- संस्कृत जगत् के महान कवि भारवि अपने अर्थगौरव के लिए विश्व विख्यात है। उनके पाण्डित्य पूर्ण काव्य प्रतिभा के सौरभ को सर्वत्र प्रसारित करने वाली मात्र एक कृति 'किरातार्जुनीयम्' है। जो कि विश्व प्रसिद्ध महाकाव्य बृहत्तरयी की प्रारम्भिक कड़ी के रूप में विद्वत्समाज में आदर के साथ नाम लिया जाता है, इस अद्वितीय रचना में अपार गुण भरे हुए हैं और अद्वितीय गुणों के कारण इस रचना ने संस्कृत साहित्य में उच्च कोटि का स्थान प्राप्त किया है। इस कृति का नामकरण भगवान शंकर और अर्जुन के द्वन्द युद्ध की प्रमुख घटना को लेकर किया गया है, परिपक्व एवं कृत्रिम चमत्कारी शैली से अलंकृत करने की पद्धति का प्रारम्भ किरात से ही हुआ है भारवि ने एक ऐसी शैली का जन्म दिया जिसमें अलंकारों की बहुलता दृष्टिगोचर होती है। अलंकार प्रधान होने के फलस्वरूप इसे 'अलंकृत या कृत्रिम शैली' का नाम दिया गया है। महाकवि माघ जैसे दिग्गज कवि भारवि उद्घाटित इस शैली से प्रभावित है अतएव बृहत्तरयी में किरात का स्थान सर्वोपरि है। अर्थगौरव की दृष्टि से यह रचना सम्पूर्ण संस्कृत जगत में सर्वोत्कृष्ट है। अल्पतम शब्दों द्वारा विस्तृत अर्थ को प्रकट करना ही अर्थगौरव कहलाता है इसी शैली का सहारा लेते हुए कवि ने व्याकरण शास्त्र के द्वारा अति सूक्ष्म, नीरस, गम्भीर विषयों को सरस एवं सुन्दर शब्दों द्वारा बोधगम्य बनाया गया है। भारवि के अर्थगौरव को इसी प्रकार निरूपित किया गया है।

भारवि का अर्थगौरव- संस्कृत जगत में अर्थगौरव के लिए भारवि का नाम अमर है यह इनकी सर्वोत्कृष्ट विशेषता है। कविता का जो उच्च आदर्श प्रस्तुत किया गया है वह वास्तव में अनुपम एवं अनूठा है। भारवि का मत है कि स्पष्ट वर्णालंकारों से विभूषित, श्रुति सुखद, गम्भीर अर्थों से युक्त, पदों वाली तथा शत्रुओं को भी वशीभूत करने वाली वाणी पुण्यवान व्यक्ति के माध्यम से प्रकट होती है।

सीमित शब्दों के माध्यम से अधिक अर्थ को प्रकट करना ही अर्थगौरव कहलाता है। किरात में पग-पग पर उक्त वैशिष्ट्य का साक्षात्कार किया जा सकता है। प्रथम सर्ग से ही अर्थगरिमा युक्त पदों का प्राधान्य प्राप्त होने लगता है। सुयोधन की राज्य व्यवस्था समस्त सूचनाओं का आंकलन करके बनेचर द्वारा युधिष्ठिर के सम्मुख व्यक्त किये गये संदेश में प्रयुक्त 'स सौष्टवौदार्य विशेष शालिनीम् विनिश्चतार्थमिति वाचमाददे' वाक्य वास्तव में अर्थगौरव का ही लक्षण है। किरातार्जुनीयम् में जीवन के गम्भीर अनुभवों, शाश्वत् मूल्यों तथा राजनीति एवं लोकव्यवहार में उपयोगी तथ्यों को अभिव्यक्त करने वाली सैकड़ों सूक्तियों वास्तव में व्यापक अर्थ को प्रकट करती हैं। वे सूक्तियाँ वास्तव में व्यापक अर्थ को प्रकट करती हैं। वे सूक्तियाँ भारवेर्थागौरवम् का सादर उद्घोष को सत्यापित करती हैं।

यथा- “ न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः ”

“हितं मनोहरि च दुर्लभम् वचः” समुन्नयन भूतिमनार्थसंगमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः “विचित्ररूपा खल चित्तवृत्त्यः” अविविको परमपदां पदम्” सुदुर्लभा” सर्वमनोरमा गिरः॥ आदि कुछ ऐसी प्रसिद्ध सूक्तियाँ हैं जो व्यापक अर्थ होने के कारण सहज रूप से विद्वानों की जिह्वा पर विद्यमान हो जाती हैं।

किरातार्जुनीयम् में कहा गया है जो मनुष्य शठ के साथ शठता का व्यवहार नहीं करता वह महामूर्ख कहलाता है क्योंकि दुष्ट लोग सीधे सादे व्यक्ति का रहस्य जानकर उसी को नष्ट करने का प्रयास करते हैं। किरातार्जुनीयम् में यह भी कहा गया है कि जिस व्यक्ति का क्रोध सफल होता है समस्त प्राणी उसके वशीभूत हो जाते हैं इसके विपरीत अमर्षशून्य व्यक्ति के खुश एवं नाराज होने से कुछ भी बनता बिगड़ता नहीं है अर्थगौरव की सम्पन्नता शैली को प्रकट करने के पीछे महाकवि भारवि का बहुत ही योगदान रहा है। इसी के माध्यम से पाठकों के मानस पटल पर कुछ ऐसे उपादेय विचारों को अंकित करने में सफल रहे हैं। जिसकी सहायता से व्यक्ति साधारण मनुष्य की संकीर्ण विचारधाराओं को समाप्त करके अपने अन्दर अच्छी विचारधारा का विकास किया जा सके काव्य में वर्णित ऐसी सूक्तियों का वर्णन किया गया है जो अत्यंत जीवनोपयोगी सिद्ध होती हैं। उदाहरणतः युधिष्ठिर का वह कथन लिया जा सकता है जिसमें शास्त्र ज्ञान को शरीर का अलंकार, शांत स्वभाव को शास्त्र ज्ञान की शोभा, पराक्रम को प्रशान्ति का अलंकरण तथा सुनीति पर चलकर अर्जित सफलता को पराक्रम का भूषण कहते हैं:-

शुचि भूषयति श्रुतं वपुः प्रथमस्तस्य भवत्यलं क्रिया।

प्रथमाभरणम् पराक्रमः स न्यायापादितसिद्धिभूषणः॥

उक्त कथन में जहाँ एक तरफ जीवनोत्कर्ष हेतु शास्त्र ज्ञान की अपरिहार्यता को स्वीकार किया गया है वहीं दूसरी ओर नीतिपूर्वक पराक्रम को प्रदर्शित करने पर जोर दिया गया है। इसी प्रकार न्यून शब्दों में अधिक अर्थ प्रकट करना अर्थगौरव कहलाता है एवं अर्थगौरव का उदाहरण इस प्रकार दृष्टिगोचर होता है।

सहसा विद्धीत न क्रियामविवेको परमापदां पदम्।

वृणुते हि विमृष्यकारिणम् गुणलुब्धाःस्वयेमसंपदाः।

उपरोक्त श्लोक से जिन तथ्यों को उजागर किया गया है वह इस प्रकार है।

1. जल्दी-जल्दी कोई कार्य करना अच्छा नहीं माना जाता है।
2. अविवेकवान व्यक्ति को दुख घेर लेता है।
3. जो व्यक्ति विवेकशील होता है उसके पास सम्पत्ति अनायास ही चली आती है।
4. लक्ष्मी गुणी जनों का ही साथ देती है।

निश्चय ही महाकवि भारवि की उक्त कला गागर में सागर भरने वाली है। अर्थ की बहुलता ही उनके कविता की पहचान है। राजा के रूप में दुर्योधन के वैशिष्ट्य वर्णन में एक ही पद्य में नीतिशास्त्र का एक अध्याय समाहित कर लिया गया है जिसके अनुसार दुर्योधन यथोचित रूप से समय का विभाजन करके, समान आदर के साथ अर्थ, धर्म एवं काम का सेवन करता है फलतः कभी भी उसके इस पुरुषार्थ त्रय में विरोध उत्पन्न नहीं होता।

असक्तमाराधयतो यथापथं विभज्य भक्त्या समपक्षपातया।

गुणरागादिव सख्यमीयिवान् न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्॥

किरात के उक्त वैशिष्ट्य से प्रभावित होकर आचार्य मल्लिनाथ ने भारवि काव्य की तुलना नारियल के फल के साथ की है जिसका बाह्य कलेवर कठोर एवं नीरस होते हुए भी अन्तराल रस युक्त सरल एवं सुमधुर होता है—

नारिकेलसम्मिताम् वचो भारविः सपदि तद् विभज्यते।

स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरम् सारमस्य रसिका यथप्सितम्॥

स्वाभावोक्ति, अतिशयोक्ति तथा रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग कवि ने बहुत ही सफलतापूर्वक किया है। भारवि के उपमा अलंकार से प्रभावित होकर अन्य कवियों ने उन्हें 'आतपत्र भारवि' की उपाधि से अलंकृत किया है। जैसा कि कवि ने वर्णित किया है कि कैलाश पर्वत के वर्णन में एक जगह कहा गया है कि वायु के झकोरों से अन्तरिक्ष में मण्डलाकार में उड़ते पीत वर्ण के पराग कनकमय आतपत्र की शोभा को धारण कर रहे हैं।

उत्फुल्लस्थलसनलिनीवनादमुष्मादुद्धृतः सरसिजसम्भवः परागः।

वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्तादाधन्ते कनकमयातपत्रललक्ष्मीम्॥

अर्थान्तरन्यास अलंकार भारवि का अत्यन्त प्रिय अलंकार है किरातार्जुनीयम में इसका प्रयोग बहुलता से देखा जा सकता है। इस अलंकार के प्रयोग में भारवि सिद्धहस्त हैं। उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है।

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः।

स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेश्यतिरहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता॥

अर्थात् समस्त भुवन पर शासन करने वाला दुर्योधन सर्वसाधन संपन्न होने पर भी साधनों की कमी वाले अरण्यवासी युधिष्ठिर से आने वाले भय की चिन्ता से आक्रान्त रहता है। क्योंकि बलवानों के साथ किया गया विरोध दुःखद परिणामों को लाने वाला होता है।

इसी तरह 'भारत चरित' के प्रणेता कृष्ण कवि ने इस कृति की सुन्दर शब्दों में प्रशंसा की है जिसके अनुसार विशाल अर्थों की व्यञ्जना में सक्षम भारवि की कविता के दीपक के सदृश सन्मार्ग को आलोकित करने वाला तथा पश्चाद्वर्ती कवियों के लिए उपजीव्य कहा गया है—

प्रदेशं वृत्त्यापि महान्तर्धम् प्रदर्शयन्ति इस मादधाना।

सा भारवेः सत्यथदीपिकेव रम्या कृतिःकैरिव नोपजीव्याः॥

इससे परिलक्षित होता है कि कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। अतएव वे अपने भावों, कल्पनाओं एवं अनुभूतियों को सजीव रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं। कवि की भाषा में अर्थगौरव की प्रतीति पूर्णतया दिखाई पड़ती है। दीर्घ समासों का प्रयोग न होते हुए भी अर्थगौरव युक्त पदावली का प्रयोग हुआ है। अपनी सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा भारवि ने पात्रों तथा विषय के अनुकूल शब्द योजना की है। द्रोपदी तथा भीमसेन के ओजपूर्ण भावों, युधिष्ठिर की नैसर्गिक शान्ति प्रियता एवं नीतिपरक, अप्सराओं की काम क्रीड़ा, अर्जुन की तपश्चर्या तथा किरात के साथ युद्ध करना ऋतुओं तथा प्राकृतिक सौंदर्य आदि विषयों को कवि ने बड़े ही प्रभावी ढंग से वर्णन करने का प्रयास किया है किरातार्जुनीयम में जहाँ-जहाँ पर लघु समासों का प्रयोग है वहाँ-वहाँ पर अर्थों की सुगमता पर्याप्त रूप में दृष्टिगत होती है उदाहरण स्वरूप दुर्योधन के प्रति सैनिकों की राष्ट्रभक्ति का बहुत ही शुभ हो दृष्टिगोचर होता है—

महौजसो मानधनार्चिता धनुर्भूतःसंयतिलब्धकीर्तयः।

न सदृतातस्यनभिन्नवृत्तयः प्रियाणि वांधन्त्यसुभिःसमीहितुम्।

अभिप्राय यह है कि अत्यन्त पराक्रमी होने के साथ दुर्योधन के सैनिकों की गणना श्रेष्ठ धनुर्धारियों में होती है। बड़े-बड़े युद्धों में अपना लोहा मनवा कर वे निर्मल यश अर्जित कर चुके हैं। समय-समय पर राजकीय सम्मान पाने वाले ये स्वाभिमानी सैनिक किसी बाह्य प्रलोभन में न फँसकर कदापि अपने राजा के विरोध में न तो संगठित होते हैं और ना ही उसके विपरीत आचरण करते हैं वे तो सदैव अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने स्वामी का हित साधने में ही लगे रहते हैं। उक्त पद्य में निश्चय ही भारवि ने छोटे-छोटे पदों के माध्यम से एक आदर्श सेना के वृहदस्वरूप को बड़ी कुशलता से रेखांकित किया है। वास्तव में कोई भी राजा इस प्रकार की सेना का आधिपत्य पाने के लिए क्यों लालायित न होगा? अर्थात् अवश्य ही लालायित होगा। महाकवि भारवि प्रसंगानुकूल पदावली का प्रयोग करने में अत्यन्त निपुण है। अलंकारों के प्रयोग में वह सिद्धहस्त हैं' किरात में अर्थगौरव की विशिष्टता हेतु रुचिकर अलंकारों को काव्य में यथास्थान समुचित स्थान दिया है, यथा उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग निदर्शता समासोक्ति।

उपसंहार- निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि महाकवि भारवि की साहित्य साधना अत्यन्त उत्तम है इसीलिए भारवि संस्कृत जगत में अपनी विशिष्ट पहचान के लिए जाने जाते हैं। अर्थ गाम्भीर्य से ओत-प्रोत काव्य लेखन की अभिनव शैली के उद्भावक के रूप में उन्होंने विद्वानों में अपनी मौलिकता का लोहा मनवाया ही है साथ में पश्चाद्वर्ती अनेक विद्वान कवियों ने इस शैली को सहर्ष अपनाते हुए विविध काव्य कृतियों की रचना की है। भारवि ने अपने अर्थ गाम्भीर्य के द्वारा संस्कृत साहित्य में जो अपनी पहचान बनाई है वह सर्वमंगलकारी है। भारवि ने अपने शाब्दिक परिवार में अल्प होते हुए भी अपनी वैदुष्यपूर्ण सूक्तियों के माध्यम से जिन विविध विषयी उपदेशों को प्रसारित किया है वह वास्तव में सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक है इसके महत्व का आकलन करना बहुत ही कठिन कार्य है।

सन्दर्भ सूची -

1. किरातार्जुनीयम 14.3
2. किरात 2.27
3. किरात 1.3
4. किरात 1.2
5. किरात 1.4
6. किरात 1.8
7. किरात 1.37
8. किरात 12.30
9. किरात 14.6
10. किरात 8.36
11. किरात 1.30
12. किरात 1.33
13. किरात 2.32
14. किरात 2.30
15. किरात 2.11
16. किरात मल्लिनाथ टीका, पृष्ठ 1
17. किरात प्रथमसर्ग, पृष्ठ 27
18. किरात 1.19
19. किरात 3.1
20. किरात 8.43
21. किरात 5.31
22. किरात 1.23

वाराणसी नगर में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का पुनरावलोकन: एक दृष्टि

डॉ० रेनू तोमर

असिस्टेंट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा, महाराणा प्रताप राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिल्सी (बदायूँ), उ०प्र०

सारांश

वाराणसी नगर उत्तरप्रदेश राज्य प्राचीनतम जीवन्त नगर होने के साथ-साथ भारत का 30 वां बृहत्तम नगर है, जहाँ 1198491 जनसंख्या निवास करती है। मानव प्रकृति अंतर्क्रिया के प्रकाश में, घाटों के नगर वाराणसी में पर्यावरण प्रदूषण जैसी ज्वलंत समस्या की गहनता का ज्ञान, नगर की जीवन्तता की निरन्तरता एवं सतत आर्थिक विकास की यथार्थ संकल्पना के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रस्तुत शोधपत्र वाराणसी नगर की पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का पुनरावलोकन करता है। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य वाराणसी नगर के विभिन्न प्रकार्यात्मक क्षेत्रों में पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख प्रकारों यथा वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण तथा विभिन्न ऋतुओं में गंगा नदी के संदर्भ में जल प्रदूषण का अध्ययन करना है। यह शोधपत्र द्वितीयक आंकड़ों के विश्लेषण पर आधारित है। आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि परिवेशीय वायुगुणता सूचकांक के औसत के आधार पर, वाराणसी नगर की सम्पूर्ण वर्ष की वायुगुणता को पीला रंग वर्ग अर्थात् कम खराब नियंत्रण योग्य स्तर में रखा जाता है। नगर की वायुगुणता सर्वाधिक खराब शीतकाल या नवम्बर से जनवरी के मध्य में होती है। इस अवधि की वायुगुणता को नारंगी रंग वर्ग अर्थात् खराब स्तर में रखा जाता है। सम्पूर्ण वर्ष 2018 में, वाराणसी नगर की गंगा नदी में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा, गंगा अपस्ट्रीम तथा डाउनस्ट्रीम में न्यूनतम मानक मात्रा से अधिक है, जैविक ऑक्सीजन माँग (बीओडी) की मात्रा गंगा अपस्ट्रीम में निर्धारित अधिकतम मात्रा के अन्दर तथा डाउनस्ट्रीम में निर्धारित अधिकतम मात्रा से अधिक है, फीकल कोलीफॉर्म तथा कुल कोलीफॉर्म की मात्रा डाउनस्ट्रीम में निर्धारित न्यूनतम मानक मात्रा से सदैव अधिक है। वाराणसी नगर के समस्त प्रकार्यात्मक क्षेत्रों यथा आवासीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक और शान्त (संवेदनशील) क्षेत्रों में दिन रात का ध्वनिस्तर निर्धारित मानक से उच्च पाया गया। प्रस्तुत शोधपत्र का उपसंहार अति अनिवार्य प्रबन्धन नीतियों एवं सुझावों का उल्लेख करते हुए होता है।

प्रस्तावना- भारत के प्राचीनतम जीवन्त नगरों में वाराणसी एक है जिसे हम काशी या बनारस के नाम से भी जानते हैं। सभ्यता के विकास के साथ-साथ यह प्राचीनतम धार्मिक नगरी शिक्षा, व्यवसाय एवं पर्यटन के केन्द्र के रूप में विकसित हुई। नदियों के किनारे विकसित होने वाली प्राचीन मानव सभ्यताओं का उत्कृष्ट उदाहरण वाराणसी नगर प्रस्तुत करता है अर्थात् वाराणसी के सन्दर्भ में मानव और प्रकृति की अन्तर्क्रिया को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वर्तमान में तेजी से बढ़ती जनसंख्या का दबाव स्पष्ट रूप से नगरीय संसाधनों पर परिलक्षित होता है। प्रतिदिन लगभग एक लाख से अधिक लोग इस धार्मिक नगरी के दर्शन के लिए आते हैं और लगभग 60000 से अधिक लोग गंगा में प्रतिदिन डुबकी लगाते हैं अतएव संकरी सड़कों वाले नगरीय केन्द्र एवं घाट यातायात जाम सम्बन्धी समस्याओं से ग्रसित रहता है (नगर विकास योजना, 2006, पृ.95)। स्पष्ट है कि मानवीय क्रियाओं के फलस्वरूप निरन्तर परिवेशीय वायुगुणता, जलगुणता तथा ध्वनिगुणता में निरन्तर अवनयन हो रहा है। प्रस्तुत शोधपत्र परिवेशीय वायुगुणता, जलगुणता तथा ध्वनिगुणता के संदर्भ में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या की वस्तुस्थिति का मात्रात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है जो कि मानवीय जागरूकता को पर्यावरण के प्रति उत्पन्न करके सतत आर्थिक विकास का लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास करता है।

प्रस्तुत शोधपत्र के अधोलिखित उद्देश्य हैं:-

- वाराणसी नगर के विभिन्न प्रकार्यात्मक क्षेत्रों में वायु प्रदूषण का आकलन करना।
- वाराणसी नगर में विभिन्न ऋतुओं में, गंगा नदी के संदर्भ में जल प्रदूषण का आकलन करना।
- वाराणसी नगर में विभिन्न प्रकार्यात्मक क्षेत्रों में ध्वनि प्रदूषण का आकलन करना।

पूर्व साहित्य का पुनरावलोकन- वाराणसी नगर में पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्या को वायु प्रदूषण, गंगा जल प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। पाण्डे, अग्रवाल एवं अन्य (1992) ने वाराणसी में वायुप्रदूषकों के संकेन्द्रण का अध्ययन किया। वायुप्रदूषण के सन्दर्भ में नवीनतम शोधकार्यों में राय, राजपूत व अन्य (2011) ने गैसीय वायु प्रदूषकों के वर्तमान और भविष्य के उत्सर्जन प्रतिरूप का कृषि पर प्रभाव का पुनरावलोकन किया। त्रिपाठी (2018) ने वाराणसी के संदर्भ में परिवेशीय वायु प्रदूषण का अध्ययन किया। वाराणसी नगर में गंगा जल प्रदूषण के सन्दर्भ में, नवीनतम शोधकार्यों में सिंह (2010) ने वाराणसी की प्रदूषित गंगा नदी के जल के भौतिक रासायनिक लक्षणों का अध्ययन किया। कोम्पन (2011) ने गंगा नदी में प्रदूषण की समस्याओं एवं सम्भावनाओं का अध्ययन किया। बासक (2015) ने वाराणसी के घाटों को उभरते हुए प्रदूषण के केन्द्र के रूप में अध्ययन किया। सिंह, शंकर एवं अन्य (2018) ने वाराणसी की गंगा नदी के भौतिक रासायनिक, जैविक गुणता और ऋत्विक विचलन का अध्ययन किया। वर्मा एवं श्रीवास्तव (2018) ने वाराणसी के घाटों में जल प्रदूषण के कारकों का अध्ययन किया। वाराणसी नगर में ध्वनि प्रदूषण के सन्दर्भ में, नवीनतम शोधकार्यों में त्रिपाठी, पाठक

एवं उपाध्याय (2006) ने वाराणसी नगर में ध्वनि प्रदूषण का अध्ययन किया। शालिनी एवं कुमार (2018) ने वाराणसी नगर में सड़क यातायात सम्बन्धी ध्वनि दबाव स्तर का अध्ययन किया। शालिनी एवं कुमार (2018) ने ही यातायात ध्वनि मॉडल का निर्माण समाश्रयण के प्रयोग द्वारा किया।

विधितंत्र- प्रस्तुत शोधपत्र का अध्ययन क्षेत्र वाराणसी नगरीय क्षेत्र है। गंगा नदी जो कि वाराणसी नगर में दक्षिण से उत्तर प्रवाहित होती है, वह एक प्रमुख लक्षण होने के साथ-साथ नगर की प्रमुख सांस्कृतिक विशेषता भी है। प्रस्तुत अध्ययन का आधार ऐसे द्वितीयक आंकड़ें हैं जो कि नगर के विभिन्न प्रकार्यात्मक क्षेत्रों में वायु प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण के स्तर को स्पष्ट करते हैं। जल प्रदूषण, विशेषतः गंगा नदी के सन्दर्भ में उन द्वितीयक आंकड़ों का विश्लेषण किया गया जिनमें नमूनों का संग्रहण, नगर में गंगा नदी की अपस्ट्रीम तथा डाउनस्ट्रीम में से सभी ऋतुओं में किया गया है।

प्रस्तुत शोधपत्र में अधोलिखित निष्कर्ष सम्मुख आते हैं:-

वाराणसी नगर के विभिन्न प्रकार्यात्मक क्षेत्रों में वायु प्रदूषण का स्तर- परिवेशीय वायुगुणता सूचकांक के औसत के आधार पर वाराणसी नगर की सम्पूर्ण वर्ष की वायुगुणता को पीला रंग वर्ग अर्थात् कम खराब नियंत्रण योग्य स्तर में रखा जाता है जिसके प्रभाव स्वरूप फेफड़ें एवं हृदय सम्बन्धी रोगियों, वृद्धों एवं बच्चों को सांस लेने में प्रायः परेशानी होती है। नगर की वायुगुणता सर्वाधिक खराब शीतकाल या नवम्बर से जनवरी के मध्य में होती है। इस अवधि की वायुगुणता को नारंगी रंग वर्ग अर्थात् खराब स्तर में रखा जाता है जिसके प्रभाव स्वरूप देर तक बाहर रहने पर सांस लेने में परेशानी हो सकती है। विशेषतः नवम्बर माह में वाराणसी नगर की वायुगुणता अन्य माह की अपेक्षा अधिक खराब आंकी जाती है, उसी माह में नगर के औद्योगिक क्षेत्र चांदपुर में वायुगुणता हल्का लाल रंगवर्ग अर्थात् अधिक खराब स्तर पर होती है। सम्पूर्ण वर्ष वाराणसी नगर के आवासीय, व्यवसायिक तथा औद्योगिक क्षेत्रों में वायुगुणता के स्तर का आकलन पीला रंग वर्ग अर्थात् कम खराब नियंत्रण योग्य स्तर के रूप में किया गया। सरल शब्दों में सम्पूर्ण वर्ष 2018 में, वाराणसी नगर के व्यवसायिक क्षेत्र चांदपुर की वायुगुणता खराब तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय आवासीय क्षेत्र की वायुगुणता अपेक्षाकृत अच्छी अभिलेखित की गई। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय आवासीय क्षेत्र की वायुगुणता जुलाई से सितम्बर (मानसून काल) में संतोषजनक अर्थात् हल्का हरा रंगवर्ग की आंकी गई। आवासीय क्षेत्र में सर्वाधिक खराब वायुगुणता जवाहरनगर तथा साकेतनगर आवासीय क्षेत्र की है। इन क्षेत्रों की वायुगुणता का स्तर, सिगरा जैसे व्यवसायिक क्षेत्र के लगभग समतुल्य है। औद्योगिक क्षेत्र की वायुगुणता नियंत्रण सीमा के अन्दर ही खराब है। सारणी 1 में वाराणसी नगर के विभिन्न प्रकार्यात्मक क्षेत्रों यथा आवासीय क्षेत्र (जवाहरनगर, साकेतनगर तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय), व्यवसायिक क्षेत्र (सिगरा) तथा औद्योगिक क्षेत्र (चांदपुर) में प्रत्येक माह की परिवेशीय वायुगुणता सूचकांक के स्थानिक वितरण के साथ निर्धारित परिवेशीय वायुगुणता के सूचकांक, वायुगुणता के स्तर एवं रंगवर्ग को भी स्पष्ट किया गया है।

सारणी 1: वाराणसी नगर के विभिन्न प्रकार्यात्मक क्षेत्रों में परिवेशीय वायुगुणता सूचकांक

वर्ष 2018 के माह	वाराणसी नगर के विभिन्न प्रकार्यात्मक क्षेत्रों में परिवेशीय वायुगुणता सूचकांक					
	आवासीय			व्यवसायिक	औद्योगिक	औसत
	जवाहर नगर	साकेत नगर	बनारस हिन्दू वि. विद्यालय	सिगरा	चांदपुर	
जनवरी	238	250	206	243	257	239
फरवरी	167	186	164	168	216	180
मार्च	199	165	150	219	188	184
अप्रैल	183	163	136	174	176	166
मई	154	162	158	154	175	161
जून	148	157	152	151	164	154
जुलाई	69	111	98	84	128	98
अगस्त	89	89	78	81	109	89
सितम्बर	112	104	98	114	124	110
अक्टूबर	178	163	151	178	176	169
नवम्बर	258	268	235	263	313	267
दिसम्बर	259	238	152	230	276	231
औसत	171	171	148	172	192	171
परिवेशीय वायुगुणता सूचकांक						
0-50	51-100	101-200	201-300	301-400	>401	
अच्छा	संतोषजनक	नियंत्रण योग्य कम खराब	खराब	अधिक खराब	गम्भीर खराब	
हरा रंग	हल्का हरा रंग	पीला रंग	नारंगी रंग	हल्का लाल रंग	गहरा लाल रंग	

Source: UPPCB 2018

वाराणसी नगर में गंगा-जल प्रदूषण का स्तर- सारणी 2 में प्रस्तुत आंकड़ों के अनुसार सम्पूर्ण वर्ष वाराणसी नगर में गंगा नदी में जलीय जीव-जन्तु के श्वसन हेतु घुलित ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है जिसकी न्यूनतम मात्रा का मानक 4.0 मिग्रा0 प्रति लीटर निर्धारित है। वाराणसी नगर में गंगा नदी की अपस्ट्रीम में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा निर्धारित न्यूनतम मात्रा से दो गुनी से अधिक है जिसका सम्पूर्ण वर्ष औसत 8.30 मिग्रा0 प्रति लीटर है परन्तु डाउनस्ट्रीम में यह मात्रा अपस्ट्रीम की मात्रा से कम है जिसका सम्पूर्ण वर्ष औसत 6.9 मिग्रा0 प्रति लीटर है। पश्चमानसून काल में गंगा डाउनस्ट्रीम में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा न्यूनतम (6.2 मिग्रा0 प्रति लीटर) पायी जाती है। जल में कार्बनिक पदार्थों के जैव रासायनिक अपघटन हेतु ऑक्सीजन की माँग को जैविक ऑक्सीजन माँग (बीओडी0) कहते हैं जिसकी अधिकतम मानक मात्रा 3.0 मिग्रा0 प्रति लीटर निर्धारित है। वाराणसी नगर में गंगा नदी की अपस्ट्रीम में बीओडी0 प्रचालक का मान सम्पूर्ण वर्ष औसतन 2.8 मिग्रा0 प्रति लीटर है। डाउनस्ट्रीम में सम्पूर्ण वर्ष यह मात्रा औसतन 4.96 मिग्रा0 प्रति लीटर है। पूर्व मानसून काल में बीओडी0 का स्तर डाउनस्ट्रीम में सर्वोच्च (5.4 मिग्रा0 प्रति लीटर) रहता है। वाराणसी नगर में गंगा नदी की अपस्ट्रीम में फीकल कोलीफॉर्म तथा कुल कोलीफॉर्म की औसत मात्रा क्रमशः 1423 तथा 2600 एम.पी.एन प्रति 100 एम.एल. सम्पूर्ण वर्ष पायी गई परन्तु डाउनस्ट्रीम में फीकल कोलीफॉर्म तथा कुल कोलीफॉर्म की औसत मात्रा क्रमशः 29875 तथा 47729 एम.पी.एन प्रति 100 एम.एल. सम्पूर्ण वर्ष पायी गई। पूर्व मानसून काल में डाउनस्ट्रीम में फीकल कोलीफॉर्म तथा कुल कोलीफॉर्म सर्वोच्च की मात्रा क्रमशः 36333 तथा 53667 एम.पी.एन प्रति 100 एम.एल. पायी गई हालांकि जिसकी निर्धारित मात्रा क्रमशः 2500 एम.पी.एन प्रति 100 एम.एल. तथा 5000 एम.पी.एन प्रति 100 एम.एल. ही होती है। सरल शब्दों में सम्पूर्ण वर्ष 2018 में, वाराणसी नगर की गंगा नदी में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा, गंगा अपस्ट्रीम तथा डाउनस्ट्रीम में न्यूनतम मानक मात्रा से अधिक है, जैविक ऑक्सीजन माँग (बीओडी0) की मात्रा गंगा अपस्ट्रीम में निर्धारित अधिकतम मात्रा के अन्दर तथा डाउनस्ट्रीम में निर्धारित अधिकतम मात्रा से अधिक है, फीकल कोलीफॉर्म तथा कुल कोलीफॉर्म की मात्रा अपस्ट्रीम में निर्धारित अधिकतम मात्रा के अन्दर तथा डाउनस्ट्रीम में निर्धारित न्यूनतम मानक मात्रा से सदैव अधिक है।

सारणी 2: विभिन्न ऋतुओं में वाराणसी नगर में गंगा नदी के संदर्भ में जल प्रदूषण का स्तर

मापदण्ड	भीतकाल		पूर्व मानसून काल		मानसून काल		पश्च मानसून काल	
	अपस्ट्रीम	डाउनस्ट्रीम	अपस्ट्रीम	डाउनस्ट्रीम	अपस्ट्रीम	डाउनस्ट्रीम	अपस्ट्रीम	डाउनस्ट्रीम
घुलन ऑक्सीजन (mg/L)	8.9	7.6	8.4	7.1	7.7	6.6	8.2	6.2
जैविक ऑक्सीजन माँग (mg/L)	2.7	5.3	3.1	5.4	2.9	4.7	2.6	4.5
फीकल कोलीफॉर्म (MPN/100ml)	1500	28000	1700	36333	1625	29500	867	25667
कुल कोलीफॉर्म (MPN/100ml)	2900	49000	3200	53667	2600	44250	1700	44000

Source: UPPCB 2018

वाराणसी नगर के विभिन्न प्रकार्यात्मक क्षेत्रों में ध्वनि प्रदूषण का स्तर- वाराणसी नगर के समस्त प्रकार्यात्मक क्षेत्रों यथा आवासीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक और शान्त (संवेदनशील) प्रकार्यात्मक क्षेत्रों में दिन रात का ध्वनिस्तर निर्धारित मानक से उच्च पाया गया। दिन के ध्वनिस्तर के निर्धारित मानक और अभिलेखित स्तर के मध्य सर्वाधिक अन्तर अस्पताल एवं शैक्षिक केन्द्रों में स्थिति वाले शान्त (संवेदनशील) क्षेत्रों में पाया गया। परन्तु रात के निर्धारित ध्वनि मानक और अभिलेखित स्तर के मध्य सर्वाधिक अन्तर वाणिज्यिक क्षेत्र में पाया गया। तत्पश्चात आवासीय क्षेत्र में रात का अभिलेखित औसत ध्वनि स्तर, मानक औसत ध्वनि स्तर से उच्च पाया गया। वाराणसी नगर के समस्त प्रकार्यात्मक क्षेत्रों में दिन रात का ध्वनिस्तर निर्धारित मानक से उच्च पाया गया। सारणी 3 में वाराणसी नगर के विभिन्न प्रकार्यात्मक क्षेत्रों यथा आवासीय क्षेत्र, वाणिज्यिक क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र और शान्त (संवेदनशील) क्षेत्र में दिन रात के अभिलेखित औसत ध्वनि स्तर और मानक औसत ध्वनि स्तर को स्पष्ट किया गया है।

सारणी 3: वाराणसी नगर के विभिन्न प्रकार्यात्मक क्षेत्रों में परिवेशीय ध्वनिगुणता का औसतमान

प्रकार्यात्मक वर्गीकरण	अभिलेखित औसत ध्वनि स्तर [Db(A) Leq]		मानक औसत ध्वनि स्तर [Db(A) Leq]	
	दिन	रात	दिन	रात
आवासीय	58.2	58.41	55	45
वाणिज्यिक	70.23	77.4	65	55
औद्योगिक	78.36	80.87	75	70
भान्त	61.15	50.23	50	40

Source: UPPCB 2017

निष्कर्ष- सम्पूर्ण वर्ष वाराणसी नगर के सभी प्रकार्यात्मक क्षेत्रों में वायुगुणता के स्तर का आकलन पीला रंग वर्ग अर्थात् कम खराब नियंत्रण योग्य स्तर पर पाया गया है परन्तु नवम्बर से जनवरी की शीतकालीन अवधि में यह स्तर खराब श्रेणी में आकलित किया जाता है अतएव मौसम विशेष की मानवीय सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक एवं शीतकालीन अनुकूलन सम्बन्धी क्रियाकलापों में पर्यावरण नैतिकता का सदैव स्मरण रखना चाहिए। मानवीय क्रियाकलापों का यह पक्ष गंगा जल प्रदूषण के रूप में भी विशेष रूप से प्रभावी है इसीलिए फीकल कोलीफॉर्म तथा कुल कोलीफॉर्म की मात्रा डाउनस्ट्रीम में निर्धारित

न्यूनतम मानक मात्रा से सदैव अधिक पायी गयी है। वाराणसी नगर के समस्त प्रकार्यात्मक क्षेत्रों में दिन रात का ध्वनिस्तर निर्धारित मानक से उच्च पाया जाना निश्चित रूप से चिंताजनक है अतएव आवश्यकता इस बात की है कि वाराणसी की संकरी गलियों में नगरीय केन्द्र में सुनियोजित यातायात प्रणाली के साथ साथ बढ़ते यातायात के साधनों को नियंत्रित किया जाए तथा यातायात नियमों एवं ध्वनि मानकों का स्वमेव पालन हो। मानवीय जागरूकता सम्बन्धी प्रयासों के साथ-साथ नियंत्रण के अन्य उपायों यथा पर्यावरण हितैषी इंधन के अन्य विकल्पों का शोध, ग्रीन बेल्ट का विकास, नगर में निर्माण कार्य सम्बन्धी नियमावली आदि के दीर्घकालीन अनुप्रयोग के पश्चात् ही प्रकृति की ध्वस्त स्वतः नियामक प्रणाली को सुचारू रूप से संचालित किया जा सकेगा।

References

- Pandey, J., Agrawal, M., Khanam, N., Narayan, D., and Rao, D.N. (1992). Air pollutant concentrations in Varanasi, India, *Atmospheric Environment Part B: Urban Atmosphere*, Vol. 26, No.1, pp. 91-98.
- Rai, R., Rajput, M., Agrawal, M. and Agrawal, S.B. (2011). Gaseous Air Pollutants: A Review on Current and Future Trends of Emissions and Impact on Agriculture, *Journal of Scientific Research*, Vol.55, pp. 77-102.
- Basak, S., Sarkar, A., Ghosh, R. and Chaudhuri, A. (2015). Ghats of Varanasi : An Emerging Centre of Pollution, *IOSR Journal Of Humanities And Social Science*, Vol. 20, No.9, pp. 19-24.
- City Development Plan (2006). Final Report under Jawaharlal Nehru National Urban Renewal Mission (JNNURM), Varanasi, Uttar Pradesh, pp. 95.
- Komanna, K. (2011). Pollution in River Ganga-Problems and Prospects in Varanasi, India, *TRITA-LWR Degree Project 12:25*, pp.1-21.
- Shalini, K. and Kumar, B. (2018). Study of Road Traffic Noise Sound Pressure Levels in Varanasi City, India, *International Journal of Applied Engineering Research*, Vol. 13, No.8, pp. 6248-6252.
- Shalini, K. and Kumar, B. (2018). Development Of Traffic Noise Model (Tnm) Using Regression Analysis In Varanasi City, India, *International Journal of Civil Engineering and Technology*, Vol. 9, No.4, pp. 70-76.
- Tripathi, S.K. (2018). Evaluation of Ambient Air Pollution: A Case Study of Varanasi, U.P., India, *International Journal for Sciences and Advance Research in Technology*, Vol.4, No. 5, pp. 1-5.
- Verma, A.G. and Shrivastav, K. (2018). Finding the Causes of Water Pollution in Ghats of Varanasi City, *International Research Journal of Engineering and Technology*, Vol. 5, No.6, pp. 891-896.
- Shankar, R., Nale, S., Prakash, P., Singh, G.P. and Singh, S. (2018). The Physiochemical, Biological Quality and Seasonal Variability of River Ganges in Varanasi, Uttar Pradesh, India, *Indian Journal Of Community Health*, Vol. 30, No.2, pp. 151-155.
- Singh, N. (2010). Physicochemical Properties of Polluted Water of River Ganga at Varanasi, *International Journal of Energy and Environment*, Vol. 1, No.5, pp. 823-832.
- Tripathi, B.D., Pathak, V. and Upadhyay, A.R. (2006). A Case Study of Noise Pollution in the City of Varanasi, *Indian Journal of Environmental Protection*, Vol. 26, No.8, pp. 737-741.

‘रत्नावली’ के आधार पर हर्ष का सामुद्रिकशास्त्रवेत्ता के रूप में मूल्यांकन

डॉ० राजकुमार

एसोसिएट प्रोफेसर-संस्कृत, राजकीय महाविद्यालय मौदहा, हमीरपुर, उ०प्र०

सारांश:

अनादिकाल से भारत सामुद्रिकशास्त्र का उद्गम स्थान रहा है। भारत का सामुद्रिकशास्त्र और लक्षणशास्त्र विषयक ज्ञान का चमत्कार यूरोप के देशों तथा मिश्र, चीन आदि प्राचीन सभ्यता वाले देशों में हजारों वर्ष पहले से फैला रहा है। सुप्रसिद्ध हस्तपरीक्षक ‘कीरो’ ने अपनी पुस्तक में लिखा है, “उसे एक हस्त रेखा विषयक विचित्र विज्ञान वैशिष्ट्ययुक्त पुस्तक आदमी के चमड़े पर लिखी हुई भारत वर्ष में मिली है।” हाथ की महिमा का वर्णन करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है:-

अयं ते हस्तो भगवान् अयं ते बलवत्तरः।

अर्थात् यह आपका हाथ ही भगवान है, यह भगवान से बलवान है। जब हम अपने संस्कृत साहित्य के प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करते हैं, तो हमें पता चलता है कि हमारे सभी ऋषि, मुनि एवं कवि आदि सभी लक्षणशास्त्र से परिचित थे। वे व्यक्ति के शरीर के विभिन्न अवयवों और हस्तरेखाओं को देखकर उसके भूतकाल, वर्तमान काल एवं भविष्यकाल की जानकारी सहजता से कर लेते थे। महाकवि हर्ष भी इस ज्ञान से सर्वथा परिचित थे, तभी तो इन्होंने रत्नावली में सर्वत्र इस विषय का जिक्र विभिन्न प्रसंगों में किया है। हमारे इस शोध-पत्र का प्रमुख विषय लक्षणशास्त्र के तराजू पर इनके इस ज्ञान का मूल्यांकन करना है। मैं इस बात को प्रमुखता से कहना चाहता हूँ कि इस शास्त्र पर शोधकर्ताओं का ध्यान अपेक्षित रूप से नहीं गया है। अतएव मैंने इस विषय को अपना शोध-क्षेत्र बनाया है। यह विषय जितना ज्ञानवर्द्धक है, उतना ही रोचक भी है। इस बात का मुझे विश्वास है कि इस शोधपत्र को आधार बनाकर अन्य शोध-पत्र विभिन्न ग्रंथों पर लिखे जाएंगे।

मुख्य शब्द: सामुद्रिकशास्त्र, लक्षणशास्त्र, अंग-लक्षण, हस्त-सामुद्रिक, हस्तरेखाशास्त्र आदि।

सामुद्रिकशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र का एक प्रमुख अंग है और लक्षणशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र का सबसे रोचक अंग है। माँ पार्वती ने संसार के कल्याण के लिए सामुद्रिकशास्त्र के विषय में कहा था कि जिसमें मानव स्वयं अपने अंगों तथा रेखाओं द्वारा अपने भावी भविष्य का ज्ञान करता है। कुछ भारतीय सामुद्रिकशास्त्रवेत्ताओं का मानना है कि भगवान विष्णु ने समुद्र नाम के ब्राह्मण का रूप धारण कर इस शास्त्र का वर्णन किया था।² भारतीय संस्कृति हाथ में लक्ष्मी, सरस्वती तथा ब्रह्मा का वास स्वीकार करती है, इसलिये प्रातःकाल निद्रा से उठते ही सर्वप्रथम हस्तदर्शन का आदेश देती है:-

कराग्रे वसति लक्ष्मी कर मध्ये सरस्वती।

कर पृष्ठे स्थितो ब्रह्मा प्रभाते कर दर्शनम्।³

सामुद्रिकशास्त्र के विषय में एक विदेशी विद्वान कहता है, “Plamistry is a science which in its highest and trust conception has for its aim the motto of the ancients “Know they self” the simplest but grandest sermon that can ring human ears”.⁴

डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली अपनी कृति ‘बृहद हस्तरेखा शास्त्र’ की भूमिका में इस शास्त्र के विषय में कहा है, “वस्तुतः भविष्य का कथन हमारे युग की सर्वोच्च उपलब्धि है। सामुद्रिकशास्त्र ने जितनी प्रगति इस युग में की है, उतनी इसके पहले कभी नहीं की। अमेरिका, यूरोप, फ्रांस, जर्मनी, जापान आदि उन्नत देशों में इससे सम्बन्धित वैज्ञानिक परीक्षण हुए हैं तथा वहाँ के विश्वविद्यालयों में अब इस विज्ञान को प्राथमिकता दी जाने लगी है।⁵

भारतीय ‘लक्षणशास्त्र’ अत्यन्त प्राचीन है। शरीर के अंगों के लक्षणों को देखकर उसके भूत और भविष्य की जानकारी दी जाती है। घोड़ों के बच्चों को देखकर ही चतुर घुड़सवार पहचान लेते हैं कि बड़े होने पर यह कैसे दौड़ेंगे? कुछ लोग गाय और भैंस की शारीरिक बनावट को देखकर उसके दुधारू होने की जानकारी कर लेते हैं। पुरुष-लक्षण, स्त्री-लक्षण, गज-लक्षण एवं वाजि-लक्षण आदि सभी के सुलक्षण एवं कुलक्षण शास्त्रों में वर्णित हैं। ये लक्षण हजारों वर्ष पूर्व भारत में लिखे गये और इनका उद्देश्य था, उस ज्ञान का प्रसार जिसके द्वारा अपने अभ्युदय के लिए मनुष्य सुलक्षण लोगों से सम्पर्क स्थापित करें तथा कुलक्षण-युक्त आदमियों से बचें।

महाकवि हर्ष ने अपनी प्रसिद्ध कृति ‘रत्नावली’ में जिन-जिन सन्दर्भों या स्थानों पर शारीरिक लक्षणशास्त्र का विवेचन किया है, उसका वर्णन अंगानुसार निम्नवत् है:-

मुखः महाकवि शेक्सपियर ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'मैकबेथ' में कहा है, "मनुष्य के दिमाग की बनावट को उसके चेहरे से जाना जा सकता है।"⁶ रत्नावली नाटिका में हर्ष ने वत्सराज उदयन के माध्यम से महारानी वासवदत्ता और नायिका सागरिका (रत्नावली) के मुख सम्बन्धी कथन निम्नलिखित है:-

1. परिपाण्डुनामुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी॥ (रत्नावली, 1-25)
2. देवि त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा
पश्याब्जानि विनिर्जितानिः सहसागच्छन्ति विच्छायाताम्॥ (रत्नावली, 1-26)
3. विधाय पूर्वं पूर्णेन्दुमस्याः मुखमभूद् ध्रुवम्। (रत्नावली, 2-10)
4. शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौ पद्मानुकारौ करौ॥ (रत्नावली, 3-11)
5. वक्त्रेन्दो तव सत्ययं यदपरः शीतांशुरभ्युदगतौ। (रत्नावली, 3-13)
6. कोपरागजनितां तु मुखेन्दुबिम्बे.....। (रत्नावली, 3-14)

इन कथनों में 'गौर वर्ण का मुख', 'कमल के समान मुख', 'चूर्णचन्द्र के समान मुख', 'चन्द्रमा के समान शीतल मुख', 'मुखचन्द्र' कहकर वासवदत्ता और सागरिका के मुख को बताया गया है। 'भविष्य पुराण' के अनुसार सुन्दर, चमकीला, चिकना मुख, भाग्यशाली स्त्रियों का होता है। पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह आकर्षक, गौर, शीतलता लिए हुए कान्तियुक्त मुख हो, तो स्त्री सौभाग्य, धन, पुत्र व सम्पत्तियुक्त सब फलों को प्राप्त करती है।⁷ 'भविष्य पुराण' के ये समस्त फलादेश रानी वासवदत्ता और सागरिका (रत्नावली) पर पूर्णतः चरितार्थ होते हैं, इससे हर्ष के लक्षणशास्त्र विषयक ज्ञान की जानकारी सहज ही हो जाती है।

कपोलः रत्नावली में कपोल से सम्बन्धित विवरण 'प्रथम अंक' में प्राप्त होता है। यहाँ राजा उदयन कहता है, कि क्रीड़ा वाले आंगन में उन्मत्त रमणियों के कपोलों से झरते हुए अबीर के रंग से लाल पैरों के रखने से फर्श को कुछ देर के लिए सिन्दूर के रंग से सना हुआ बना रहे हैं:-

1. उद्दामप्रमदाकपोल निपतत्सिन्दूरागारुणैः।
सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरः कुट्टिमम्॥ (रत्नावली, 1-12)
2. एष खलु कुपितकामिनीकपोलसन्निभः पूर्वदिशं प्रकाशयन्नुदितो भगवान् मृगलाञ्छनः।⁸

उपर्युक्त उद्धरणों में 'लाल कपोल' का जिक्र कवि ने किया है। इस सन्दर्भ डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली का कथन है कि जिन स्त्रियों के कपोल निर्मल तथा सुन्दर होते हैं, वे श्रेष्ठ कही जाती हैं।⁹ लाल रंग के गोल, भरे हुए कपोल वाली स्त्रियाँ दीप्तिमान, सर्वप्रिय व समृद्धिशालिनी होती हैं।¹⁰ 'गरुड पुराण' में लिखा है कि जिस स्त्री के कपोल चारों ओर से गोल, कुछ लाल रंग लिए हुए हो, वह कुलवर्द्धिनी होती है।

नेत्रः रत्नावली नाटिका के नेपथ्य में वैतालिक ने कहा है, "राजसभा की ओर जाता हुआ, चन्द्रमा के समान नेत्रों को आनन्द देने वाले महाराज उदयन के कमल की कान्ति को लज्जित करने वाले मुख का सेवन करने के लिये ऊपर की ओर देख रहा है।"¹¹ राजा के "तृतीय अंक" में सागरिका को लक्ष्य कर कहता है, हे कमलनयनी! मैंजा रहा हूँ, यह मेरा जाने का समय है, सोई हुई आपको मैं पुनः जगाऊँगा:-

1. यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष
सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया। (रत्नावली, 3-6)
2. शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौ पद्मानुकारौ करौ॥ (रत्नावली, 3-11)

यहाँ पर राजा उदयन ने सागरिका के नेत्रों को 'पद्मनयने' और 'उत्पले तव दृशौ' कमल के समान बताया है। 'भविष्यपुराण' के अनुसार यदि कमल के आकार के बड़े-बड़े नेत्र हों, उनमें कुछ ललाई हो और नेत्र की बरौनी सुन्दर हो, तो ऐसी स्त्री सुख और सौभाग्य भोगती है।¹²

समुद्र ऋषि के अनुसार यदि नीलकमल की तरह लावण्ययुक्त आँखें हो, तो ऐसी स्त्री धनधान्ययुक्त और सौभाग्यशालिनी होती है।¹³

कुच-वर्णनः 'रत्नावली' में हर्ष ने शारीरिक अंगों में सर्वाधिकार बार कुच (स्तन) शब्द उल्लेख किया है:-

1. क्रीडन्त्याः पीडाएवस्तनभारविनमन्मध्यभङ्गानपेक्षम्। नर्तकी वर्णन (रत्नावली 1-17)
2. मद्दृष्टिस्तृषितेव सम्प्रति शनैरुह्यतुङ्गौ स्तनौ। (रत्नावली, 2-11)
3. परिम्लानं पीनस्तनपजघनसङ्गादुभयतः। (रत्नावली, 2-13)
4. स्तनयुगपरिणाहं मण्डलाभ्यां ब्रवीति। (रत्नावली, 2-14)
5. परिच्युतस्तत्कुचकुम्भमध्यायात किं शोषयसि मृणालहार।
सूक्ष्मतन्तोरपि तावकस्य तत्रावकाशो भवतः किमु स्यात्॥ (रत्नावली, 2-15)
6. प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता,
घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान् पयोधरौ॥ (रत्नावली, 3-9)

सामुद्रिकशास्त्र में उन्नत, गोल तथा सघन कुचों वाली स्त्री को सौभाग्यशाली माना गया है। लाल रंग वाले स्तन स्त्री कीकामुकता को बताते हैं। महर्षि 'वाल्मीकि' ने सीता के अंगों के शारीरिक लक्षणों को बताते हुए कहा है:-

"स्तनौ चाविरलौ पीनौ मामकौ मग्नचूचकौ।

मग्नाचोत्सेधिनी नाभिः पार्श्वोर्स्कं च मे चित्तम्॥

अर्थात् स्तन, सघन और कुचाग्र मग्न है, नाभि गहरी और उसके किनारे ऊँचे हैं। छाती चौड़ी और पार्श्व भरे हुए हैं। देह मणि के समान चमकती है, ऐसे लक्षणों वाली स्त्री महारानी के पद को अलङ्कृत करने के साथ-साथ पति को बहुत प्यारी होती है। महाकवि हर्ष को इस लक्षणशास्त्र की सम्यक् जानकारी है, तभी इन सुलक्षणों का उल्लेख किया है।

अधरःरत्नावली नाटिका के 'तृतीय अंक' में राजा उदयन सागरिका के अधरों को बिम्ब फल के सदृश लाल बताया है।¹⁴

आचार्य 'वराहमिहिर' ने 'अधर' के सम्बन्ध में कहा है कि बिम्ब फल के समान लाल अधर ऐश्वर्य का लक्षण है। इस विषय में समुद्र ऋषि का कथन है, "जिसके अधर मांसल, चिकने तथा कटे-फटे न हों और बिम्ब फल के समान लाल हों, तो ऐसी कुमारी राजरानी होती है।" 'गरुण पुराण' के अनुसार यदि ओष्ठ कुछ-कुछ लाल हों, तो श्रेष्ठता सूचित करते हैं।¹⁵ 'स्कन्दपुराण' काशीखण्ड के अनुसार यदि अधर में चार गुण 1- पाटल पुष्प की तरह लाल 2- गोलाई लिए हुए 3- चिकनाई युक्त 4- बीच में एक रेखा युक्त हो, तो ऐसी स्त्री का विवाह किसी उच्च पुरुष के साथ होता है।¹⁶ यह समस्त फलदेश लक्षणानुसार सागरिका पर सही सिद्ध होते हैं।

हाथ (पाणि): रत्नावली नाटिका के 'प्रथम अंक' में राजा उदयन अपनी रानी वासवदत्ता के हाथ को नवीन कोमल पल्लव के समान बताते हुए कहता है:-

स्पृष्टस्त्वयैष दयिते स्मरपूजाव्यापृतेन हस्तेन।

उद्भिन्नापर मृदुतर किसलय इव लक्ष्यतेऽशोकः॥ (रत्नावली, 1-22)

अन्यत्र राजा दुष्यन्त सागरिका के साथ को घने चन्दन रस के समान शीतल बताते हुए कहा है, "विन्यस्तस्त्वयि सांद्रचन्दनरसस्पर्शो न तस्याः करः॥ (रत्नावली 3-1) अन्यत्र "शीतांशुमुखमुल्पले तव दृशौ पद्मानुकारौ करौ। (रत्नावली 3-11) इन उद्धरणों में सागरिका के हाथ को कोमल नवीन किसलय के समान लाल, घने चन्दन रस के समान शीतल तथा कमल के समान लाल बताया गया है। 'गरुण पुराण' में इस सम्बन्ध में कहा गया है कि जिस स्त्री का हाथ का लाल कमल के समान कोमल हो, ऐसी स्त्री पतिव्रता होती है।"¹⁷

जाँघ: रत्नावलीकार ने सागरिका की जाँघों को कदली (केला) के समान बताया है।¹⁸ जिस स्त्री की जाँघे कैले के समान हों, ऐसी स्त्रियाँ को सामुद्रिकशास्त्र के अनुसार परम सौभाग्यशाली तथा पति की प्रिय बताई गई हैं। 'अग्निपुराण' के अनुसार जिस स्त्री की जाँघें पुष्ट और भारी हों, ऐसी स्त्री प्रशंसा के योग्य होती है।

कान्ति (शारीरिक चमक): लक्षणशास्त्र में शारीरिक कान्ति अत्यन्त महत्व है। राजा उदयन ने वासवदत्ता की शारीरिक कान्ति के विषय में 'प्रथम अंक' में कहा है:-

प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्त कान्तिः

कौसुम्भरागरुचिरस्फुर दंशुकान्ता॥ (रत्नावली 1-21)

'गरुड़ पुराण' में कहा गया है, "जिस स्त्री का वर्ण (शरीर कान्ति या मुखकान्ति) सोने की तरह हो और हाथ लाल कमल के समान हों तो वह स्त्री पतिव्रता होती है। पूर्ण चन्द्रमा के समान जिस कन्या का मुख सुन्दर हो या उदित होते हुए सूर्य के समान जिसकी कान्ति हो, वह कन्या समस्त जीवन सुख भोगती है।"¹⁹ 'अग्नि पुराण' में कहा गया है, "जिस स्त्री का वर्ण पूर्ण चिकनाई लिए हुए मनोहर हो, ऐसी कन्या प्रशंसा के योग्य होती है।"²⁰

कटि: 'रत्नावली' के प्रथम अंक में वासवदत्ता को देखकर राजा उदयन ने कहा है, "पुष्प के समान कोमल शरीर वाली, व्रत के कारण अत्यन्त क्षीण कटि प्रदेश को धारण करती हुई (पतली) और कामदेव के समीप अवस्थित हो, इससे उसकी धनुरलता सी प्रतीत हो रही हो।"²¹ पं० नारायणदत्त श्रीमाली ने अपनी कृति 'बृहद हस्तरेखा शास्त्र' में बताया है, "जिस स्त्री की कमर 24 अंगुल की हो वह श्रेष्ठ होती है।" (बृहद हस्तरेखा शास्त्र- नारायणदत्त श्रीमाली, पृष्ठ संख्या - 290)

उपर्युक्त तथ्यों और सन्दर्भों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महाकवि हर्ष को सामुद्रिकशास्त्र (शरीरलक्षण) का सम्यक् ज्ञान था। आपके शरीर लक्षण से सम्बन्धित समस्त कथन सामुद्रिकशास्त्रकारों के लक्षणों से पूर्णतः मिलते हैं। सामुद्रिकवेत्ताओं ने सौभाग्य शालिनी स्त्रियों के जो लक्षण और फल कथन किये हैं, वे महारानी वासवदत्ता और सागरिका (रत्नावली) पर शत-प्रतिशत लागू होते हैं।

सन्दर्भ सूची:

1. हस्त रेखा विज्ञान (शरीर लक्षण सहित), पं० गोपेश कुमार ओझा, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसी दास-तृतीय संस्करण, 1967 (भूमिका)
2. हस्त सामुद्रिक-पं० वसन्तलाल व्यास, पृ०सं०-10
3. बृहद हस्तरेखा शास्त्र - डा० नारायणदत्त श्रीमाली (भूमिका) प्रकाशक- पुस्तक महल, दिल्ली।
4. हस्त सामुद्रिक- पं० वसन्तलाल व्यास - पृ० 12
5. बृहद हस्तरेखा विज्ञान-डा० नारायण श्रीमाली - भूमिका, प्रकाशक- पुस्तक महल, दिल्ली।
6. To find the mind construction in the face. हस्तरेखा विज्ञान, पं० गोपेशकुमार ओझा- पृ०सं० 379
7. हस्तरेखा विज्ञान, पं० गोपेशकुमार ओझा- पृ०सं० 472
8. रत्नावली-हर्ष, प्रकाशक-रामनारायणलाल विजयकुमार, कटरा रोड, इलाहाबाद।

9. बृहद हस्तरेखा विज्ञान- डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली-पृ०सं० 280
10. बृहद हस्तरेखा शास्त्र-कीरो-प्रकाशक धीरज पाकेट बुक्स, मेरठ।
11. सम्प्रत्येष सरोरुहद्युतिमुषः पादास्तवासेवितुम्।
प्रीत्युत्कर्षकृतो दृशामुदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते॥ (रत्नावली, 1-24)
12. हस्त रेखा विज्ञान- पं० गोपेश कुमार ओझा, पृ०सं० 477।
13. हस्त रेखा विज्ञान- पं० गोपेश कुमार ओझा, पृ०सं० 477।
14. दर्पस्यादमृतेन चेदिह तदप्येवास्ति बिम्बाधरे। (रत्नावली 3-13)
15. हस्तरेखा विज्ञान- पं० गोपेशकुमार ओझा, पृ०सं० 473।
16. हस्तरेखा विज्ञान- पं० गोपेशकुमार ओझा, पृ०सं० 473।
17. हस्तरेखा विज्ञान- पं० गोपेशकुमार ओझा, पृ०सं० 473।
18. रम्भागर्भनिभं तयोरुयुगलं बाहू मृणालोपमो। (रत्नावली 3-11)
19. यां च कांचन वर्णाभा रक्तहस्त सरोरुहा।
सहस्राणां च नारीणां भवेत्सा च पतिव्रता॥ हस्तरेखा विज्ञान-पं० गोपेश कुमार ओझा- पृ०सं० 466।
20. हस्त रेखा विज्ञान-पं० गोपेश कुमार ओझा- पृ०सं० 466।
21. कुसुमसुकुमार मूर्तिदधती नियमेन तनुतरं मध्यम्।
आभातिमकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव। (रत्नावली, 1-20)

अस्मिताओं का सवाल और भक्ति काव्य

कविता भाटिया

हिन्दी विभाग, मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय

‘आत्मनं विद्धि’- अर्थात् ‘अपने को जानो’ इस सूत्र वाक्य के अनुसार मनुष्य में मनुष्य में अपने को जानने पहचानने की प्रक्रिया का आरंभ हुआ। योग दर्शन के एक सूत्र के अनुसार ‘मैं’ का सही बोध आत्मा का बोध है और यह बोध मनुष्य को तब होता है जब वह विराट का अंश होने की अनुभूति प्राप्त कर लेता है। ‘अस्मि’ का अनुभव सुप्तावस्था तथा जड़ता को तोड़ने वाला, गति को पुनः सक्रिय करने वाला एक प्रकार का सचेतन अनुभव है। आस्तित्ववादी दार्शनिक सार्त्र के ‘मनुष्य स्वतंत्र होने को अभिशप्त है’ -वाक्य के अनुसार मनुष्य की अस्मिता बोध का प्रश्न तभी से अस्तित्व में आया, जब सृष्टि में उसका आगमन हुआ। मनुष्य का विविध बंधनों से मुक्ति का प्रयास और संघर्ष ही अस्मिता का द्योतक है।

आज के समय में स्त्री अस्मिता, दलित अस्मिता एवं हाशिए की अस्मिताओं की चर्चा की जाती है परंतु वैदिक काल से लेकर हिन्दी साहित्येतिहास के विभिन्न कालों पर दृष्टि डाले तो वहाँ भी अस्मिताओं के सवाल से रूबरू हुआ जा सकता है। तत्कालीन परिस्थितियों में संकट की स्थिति और बंधनों का स्वरूप आज से भिन्न अवश्य था, परंतु विविध बंधनों से मुक्ति का प्रयास और संघर्ष करते हुए ‘अपने होने’ को प्रमाणित करना वहाँ भी दिखता है।

साहित्य का संबंध मानव मूल्यों और सामाजिक संदर्भों से है। भिन्न-भिन्न युगों में मूल्यों की गुणवत्ता के आग्रह परिवर्तित होते रहते हैं। भक्त कवियों की ज्ञान व सत्य की उपलब्धि तथा असत्य से मुक्ति की छटपटाहट में अस्मिता के विचार का आरंभिक रूप देखा जा सकता है। ‘स्वान्तः सुखाय’ की प्रेरणा से सृजित होकर मानवता, भावनात्मकता तथा सांस्कृतिक एकता के तरीकों पर टिका भक्ति काव्य अंततः ‘सर्वान्तः सुखाय’ सिद्ध हुआ। भक्ति काव्य की रचना ऐसे समय में हुई जब समाज में जाति-पाति की कठोरता एवं धर्मगत संकीर्णता दृढ़ हो रही थी। हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही वर्ग धर्म की इस कठोरता से पीड़ित थे। तब भक्त कवियों ने अपनी-अपनी वाणी से विशुद्ध होकर समाज को सामान्य भक्ति द्वारा तो कभी प्रेम मार्ग का प्रचार कर, कभी ईश्वर के लोक मंगलकारी तो कभी प्रेम, विश्वास और भाईचारे का संदेश देकर भारतीय जन-जीवन में शांति व शक्ति का संचार किया। के. दामोदरन के अनुसार – “भक्ति आंदोलन का मूल आधार भगवान विष्णु अथवा उनके अवतारों राम और कृष्ण की भक्ति थी किन्तु यह अशुद्धता एक धार्मिक आंदोलन नहीं था... सामाजिक विषय वस्तु में ये जाति प्रथा के आधिपत्य और अन्यायों के विरुद्ध अत्यंत महत्वपूर्ण विद्रोह के द्योतक थे ... ईश्वर के सामने मनुष्य- फिर वे ऊंची जाति के हों या नीची जाति के-समान हैं। इस आंदोलन का केंद्र बन गया, जिसने पुरोहित वर्ग और जाति प्रथा के आतंक के विरुद्ध संघर्ष करने वाले आम जनता के व्यापक हिस्सों को अपने चारों ओर एकजुट किया।”

समूचा भक्ति आंदोलन एक जन आंदोलन था। तत्कालीन समाज के उपेक्षित और उत्पीड़ित जनसमुदाय तक जिस सहज वाणी का प्रसार हुआ, वह कबीर, नानक, दादू, मीरा, रैदास तथा अन्य भक्त कवियों की थी। इन भक्त कवियों ने समन्वयवादी विचारधारा को जन्म दिया। इस्लामी आक्रमण से त्रस्त और व्यथित जनता राम और कृष्ण भक्ति सागर में गोते लगाने लगी। अपने-अपने ढंग से भक्त ईश्वर के निराकार और साकार रूप को भजने लगे। ईश्वर का वह रूप पूजा, आराधना, आत्मिक शांति और व्यक्ति के मोक्ष से जुड़ा था।

इस युग में भक्ति का तात्पर्य एक ही था -अपने अहं को विगलित कर अपने आराध्य के चरणों में पूर्ण समर्पण। “संत कवियों की स्वाभाविक अकड़ के साथ दैन्य व दास्य भाव का अद्भुत मिश्रण इनकी कृतियों में लक्षित होता है। ये कवि कभी ‘राम का कूता’ बन जाते हैं तो कभी ‘राम का गुलाम’ और कभी राम की बहुरिया।”⁽¹⁾ उनका ‘मैं’ राम के सम्मुख उनका आत्मनिवेदन है। राम की प्राप्ति के लिए उन्होंने सबसे अधिक आवश्यक माना – ‘अहं का त्याग’। अहं के प्रति जहां मोह भंग हुआ, वहीं साधक अपने बंधनों और विकारों से मुक्त होकर भगवान के साथ तादात्म्य के मार्ग पर चल पड़ा। तभी तो ‘कहे कबीर जिनि गया अभिमाना, सो भगना भगवंत समाना’। उनको राम का गुलाम बनने ही प्रसन्नता है – ‘मैं गुलाम मोहि बेचि गुसाई’। कबीर का विश्वास है भक्त जब ऐसा निरीह और नितांत दीन हो जाएगा, तभी ईश्वर की प्राप्ति होगी परंतु सच यह भी है कि इस अहं को छोड़ना अत्यंत दुष्कर है, इस कठिनाई की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा –

भगति दुहेली राम की, नहिं कायर का काम ।

सीस उतारे हाथ करि, सो लेहि हरि नाम ॥

यहाँ ‘सीस उतारने’ का तात्पर्य अहं के त्याग से ही है। यही अहं मनुष्य के ‘इंसान’ बनने में बाधक है। यदि उसने अहंकार का उन्मूलन कर लिया तो उसमें और भगवान में अद्वैत तथा एकात्म होने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती। “कबीर ने कई स्थलों पर भक्ति की साधना को दुष्कर बतलाया है और इसे उत्कट साहसी लोगों का ही कार्य कहा है। ... कबीर और भक्तों का मार्ग आत्म-समर्पण का है। इसमें ममत्व और अहं का मोह छोड़ना पड़ता है। यह मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है।”⁽²⁾

कबीर तो बीच बाजार लुकाठी होकर अपने स्वार्थों और अहं को विसर्जित कर देने वाले उस व्यक्ति की खोज में हैं जो समष्टि की भावना से संपृक्त होकर उनके कंधे से कंधा मिलाकर चल सके। उस समय सामाजिक सौहार्द और प्रेम के नष्ट हो जाने से व्यक्ति की अस्मिता कुंठित वातावरण में जीने की

अभ्यस्त होती जा रही थी। भक्ति भावना मनुष्य को साफ-सुथरा पारदर्शी व्यक्तित्व प्रदान करती है, जिसमें अहं का लेशमात्र नहीं और जो त्याग व समर्पण से भरपूर है। कबीर ने 'साधो पांडे निपट कसाई' कहकर तिलकधारी कर्मकांडी पंडितों की पोल खोलकर रख डी तथा उनकी नीच करतूतों, मिथ्या कृत्यों का उल्लेख करके जनता का कट्टर शत्रु घोषित किया। सिद्ध- नाथों से संत कवियों को जो वैचारिक विरासत मिली थी उसे उन्होंने पर्याप्त क्रांतिकारी रचाव दिया। आज दलित साहित्य रचकर दलितों और पीड़ितों की व्यथा सामने लाकर उनके स्वाभिमान की अभिव्यक्ति की जा रही है, जबकि भक्ति काव्य में वर्षों पूर्व ये प्रयास शुरू हो चुके थे। हिन्दू धर्म में बहुदेववाद का खंडन करते हुए कबीर के समानधर्मा मलूकदास भी 'एक जगत का एकै करता / दूसर ब्रह्म कहाँ है रहता' कहकर चुनौती देते प्रतीत होते हैं। संत कवि रैदास ने जातिवाद और वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठायी। उन्होंने मनु स्मृति में दी गयी चारों वर्णों की परिभाषाओं (पहचानों) को नकारते हुए उन्हें अपने ढंग से पारिभाषित किया -

‘ऊंचे कुल के कारने, ब्राह्मण कोय न होय’

इसी के साथ स्वयं को नीची जाति का चमार कहने में भी उन्होंने कोई संकोच नहीं किया, बल्कि स्वयं को चमार घोषित करते हुए उन्होंने अपने पेशे का गर्वपूर्वक बखान किया। “संत रविदास का महत्त्व इस तथ्य से बढ़ जाता है कि उन्होंने अत्यंत सामाजिक निम्नता से अपने पुरुषार्थ के बल पर उठकर उच्चतम महानता को प्राप्त किया -नीच से प्रभु ऊंच कियो है, कह रैदास चमारा।”⁽³⁾

संत कबीर का तो विश्वास था कि मनुष्य की पहचान उसके श्रेष्ठ कर्मों से निर्मित होती है, उसके वंश से नहीं। तभी तो वह 'काल्ह करे सो आज कर ...' कहकर आलस्य को त्याग श्रेष्ठ कर्म करने पर बल देते हैं।

समूचे भक्ति काल में परंपरागत धर्म के बदलाव, बाह्य आडंबरों तथा रूढ़ियों का सशक्त विरोध, आक्रोश तथा सामाजिक परिवर्तन के स्वर स्पष्ट सुने जा सकते हैं। कबीर सहित अनेक संत कवि अपने ढंग से व्यवस्था विरोध की अभिव्यक्ति भी करते हैं तथा तत्कालीन आतंककारी राजसत्ता से टकराते हैं -

कबीर तासो प्रीत करि जाको ठाकुर राम

पंडित राजे भूपति आवहिं कौने काम ।

जिस समय राजाओं के दरबार में चारण कवि अपने आश्रयदाता के यशोगान में रमे हुए थे, उस समय ऐसी सशक्त व निर्भीक घोषणा नव अस्मिता की ही सूचक है। मानव धर्म के प्रतिष्ठापक गुरु नानक ने भी अपने 'स्व' को पहचानने पर बल दिया और जब तक ऐसा नहीं होगा, हमारे मन का भ्रम दूर नहीं होगा। आत्मचिंतन पर बल देते हुए वे कहते हैं -

काहे रे वन खोजत जाई / ... जन नानक बिन आपा चीन्हें, मिटे न भ्रम की काई। “नानक कहते हैं कि जातिगत श्रेष्ठता का अहंकार बेकार है। वास्तव में कोई व्यक्ति अपनी जाति अथवा नाम के बल पर अच्छा कहलाता है तो अच्छा नहीं बन जाता है जब परमात्मा के लेखे में प्रतिष्ठा प्राप्त करे अर्थात् उसके कार्य अच्छे हों - खसमु बिसारहि ते कम जाति, नानक नावै बाझु सनाती (नानक वाणी, पृ० 247) ”⁽⁴⁾

कबीर ने 'मसि कागद छुऔ नहिं, कलम गहिं नहिं हाथ' कहकर बिना किसी दुराव-छिपाव के अपना स्पष्टतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत कर अपनी सवचेतन और अस्तित्व को ही सामने रखा। कबीर ने उस समय जनता को संभाल आत्मचेतन के लिए प्रेरित किया जब नाथ पंथियों के प्रभाव से उनके हृदय प्रेमभाव और भक्ति रस से शून्य और शुष्क पड़ते जा रहे थे। ऐसे में उन्होंने मनुष्यत्व की सामान्य नहावनको आगे कर निम्न श्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊंचे से ऊंचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया। सभी संत कवि धार्मिकता से मुक्त हैं और यही उनकी ताकत है। वे गर्वपूर्वक कहते हैं -

‘पंडित मुल्ला जो लिख दिया, छाँडि चले हम कछु न लिया’

सगुण भक्ति धारा के भक्त कवि तुलसी ने भी अपने युग के विशेषाधिकार प्राप्त पुरोहित वर्ग को चुनौती दी तथा बाह्याचार की तुलना में नाम सुमिरन को महत्ता दी। कबीर की ही तरह उन्होंने भी भवसागर से मुक्ति पाने के लिए अपने स्वार्थ और अहं के विसर्जन को महत्वपूर्ण माना--

‘बहु उपाय संसार तरन हित विमल गिरा श्रुति गावै ।

तुलसीदास मैं मोर गए बिनु जिय सुख कबहुँ न पावै ॥ ’

यहाँ 'मैं' और 'मोर' की भावना का दूर होना ही मनुष्य का 'जगना' है। जब तक मनुष्य इस अहंकार से बंधा रहता है, तब तक वह बराबर कष्ट सहता है। वास्तव में अहं का ऐसा विगलन और निरहंकारिता मध्ययुगीन व्यक्ति की मौलिक पहचान और उसकी उपलब्धि को दर्शाता है। वे राजाओं, सामंतों और धनी लोगों के सामने हाथ पसारने वालों में भी आत्मसम्मान का भाव जागृत करते हैं। वे राम के भरोसे निश्चित हैं। तभी तो उनमें कहीं कहीं स्पष्ट रूप से चुनौती का स्वर सुनाई देता है - 'माँगि को खैबो, मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोड।' - यहाँ वे वर्ण और धर्म से ऊपर अपनी सच्ची मानवीय अस्मिता गढ़ते हैं। यही नहीं, तुलसीदास अपने आदर्शों व सिद्धांतों को तिलांजलि देकर अपना स्वार्थ सिद्ध साधने वाले इधर-उधर डोलने वाले लक्ष्यहीन लोगों को निर्भय होकर चुनौती देते हैं।

‘हाँ चाकर रघुवीर को, पटब लिखो दरबार

तुलसी अब का होहिं नर के मनसबदार । ’

इस तरह वे मनुष्य के स्वाभिमान, समर्पण और एकनिष्ठता जैसे गुणों पर बल देते हैं जिससे उसका सच्चा 'स्व' निर्मित होता है।

आज जब समाज में चहुँ ओर भ्रष्टाचार और अनैतिकता का साम्राज्य है। व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार सारी परिभाषाओं और मूल्यों को पलटकर अनैतिक ढंग से केवल धन अर्जन करने को अपना वास्तविक उद्देश्य समझ बैठा है, जिससे सम्मान और साख में वृद्धि होगी। उसकी ऐसी तुच्छ और स्वार्थी सोच पर प्रहार करते हुए कवि रहीम कहते हैं -

‘धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम की बात
जैसे कुल की कुलवधू, चिथड़न में ही समात ।’

और इसी अर्थ में वह उसे ‘सबल’ बनने का उपदेश देते हैं।

सूरदास के समय में निर्गुण संत संप्रदाय की भावना जोर-शोर से प्रचलित थी। इसी कारण उपयुक्त समय देखकर सूरदास ने ‘सूरसागर’ में भमरगीत प्रसंग का समावेश किया, जो कि उनकी मौलिक उद्भावना कही जाती है। जब उद्धव वाग्विस्तार करके अभिमान से भर गोपियों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने जाते हैं तब गोपियाँ उन्हें बीच में ही टोककर पूछती हैं – ‘निरगुन कौन देस को वासी’।

अंत में वह कहती हैं कि तुम्हारे निर्गुण से तो हमें कृष्ण के अवगुणों में ही अधिक रस जान पड़ता है

‘ऊनो कर्म किए मातुल बधि, मदिरा मत्त प्रमाद
सूर स्याम ऐते अवगुन में निरगुन तें अति स्वाद ।’

यहाँ गोपियों की वचनवक्रता और दृढ़ता अपना स्वाभिमान, और अपनी नव अस्मिता गढ़ती है।

स्त्री होने के कारण जिस पीड़ा, दर्द और संघर्ष को थेरियों ने झेला था उसी का विस्तार स्त्री भक्त कवयित्रियों में देखा जा सकता है। यों ऊपरी तौर पर देखने पर इन स्त्री भक्तों की कविता बहुत कुछ आध्यात्मिक और व्यक्तिगत दिखती है किन्तु गहराई से देखने पर वह शोषित, पीड़ित और अपमानित नारी जाति के दुख का प्रकाशन भी है और उस दुख से मुक्ति की अदम्य आकांक्षा भी। तत्कालीन समय में सामाजिक, राजनैतिक कारणों के साथ धार्मिक संप्रदायों ने भी नारी शोषण को बढ़ावा देकर उसे घोर यंत्रणाओं भरे जीवन की ओर धकेल दिया था। उस मध्ययुगीन जड़ता में जहाँ एक ओर जकड़ी, उपेक्षित, लांछित और अमानवीय जीवन जीती नारी थी तो दूसरी ओर वह मात्र घर की शोभा, वैभव की प्रदर्शनी, बच्चों की जन्मदात्री और पोषिका ही थी। तब ऐसे में इन कवयित्रियों ने समाज के बने-बनाए इस जड़ चौखटे को तोड़ अपनी नयी भूमिका स्थापित की। स्त्री विरोधी मध्यकालीन सामंती समाज में घर की देहरी लांघ सामाजिक जकड़बंदी के विरुद्ध ‘प्रेम दिवाणी’ की घोषणा कर मीरा ‘होणी होय सो होई’ कहकर निर्भीक व निश्चित भाव से अपने बनाए मार्ग पर चलने का संकल्प लेती है। छमीरा में समाज और परंपरा के प्रति अंधानुकरण की प्रवृत्ति नहीं थी। उन्होंने जड़ एवं रूढ़ तत्वों का यथासंभव परिष्कार किया और यदि वह नहीं हो सका तो शालीनतापूर्वक उनका तिरस्कार भी किया।

‘राणा जी महाने यह बदनामी लागे मीठी ।
कोई निंदा, कोई बिंदा, मैं चलूँगी चाल अनूठी ॥’

यह ‘अनूठी चाल’ ही तिरस्कृत और उपेक्षित जीवन जीने से अलग अपनी अस्मिता से प्रेरित है। “मीरा के स्त्रीत्व का निर्माण आत्मसम्मान और स्वतंत्र व्यक्तित्व की ललक पर खड़ा है। उनके लिए मन के भीतरी उधेड़बुन के बहुत सूक्ष्म उलझाव नहीं हैं। ... ढांचे में डालने वाले प्रतिबंधों से उन पर कोई असर नहीं पड़ता।”⁽⁵⁾ इस संदर्भ में डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी भी मानते हैं कि – “निःसंदेह मीरा ने आत्मनिवेदन किया है। लेकिन उनका ‘आत्म’ सामाजिकता और संघर्ष युक्त है। इसीलिए वह इतना प्रभावशाली है। सच्चाई की बहुत बड़ी पहचान यह है कि वह संघर्ष और विरोध आमंत्रित करती है। ‘निर अंकुश अति निडर रसिक जस रसना गायो।’”⁽⁶⁾

जिस समय मुस्लिम समाज में पर्दा प्रथा के जरिए स्त्रियों को चारदीवारी के भीतर सुरक्षित समझा जा रहा था, तब ताज जैसी मुस्लिम महिला भी कृष्ण काव्य से प्रेरित हुई। स्त्री की पराधीनता का एक कारण उसका शरीर माना जाता है। नारी शरीर होने की इस नियति से परे 12 वीं सदी की कन्नड़ भक्त कवयित्री अक्क महादेवी अपने शरीर को ही मुक्ति का माध्यम बनाती हैं। आत्माभिव्यक्ति का जैसा साहस उनमें दिखता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। भक्ति की आधार भूमि पर उन्होंने अपने मनचाहे वर (शिव) का चयन कर विवाह संस्था को चुनौती दी। यह चुनौती वस्तुतः पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था के उन मानदंडों को थी, जिसमें स्त्री को हर तरह की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित रखा गया था। 14 वीं शताब्दी की कश्मीरी कवयित्री लल्लदेवदह का नाम भी इस दिशा में उल्लेखनीय है, जिन्होंने स्त्री चेतना को उद्घाटित किया। वस्तुतः अपनी स्त्री होने की नियति के बीच ये भक्त कवयित्रियाँ अपनी पहचान तलाशती हैं। उनकी रचनाएं स्त्री की आकांक्षाओं और स्वप्नों का दर्पण तो हैं ही, जागृत और संकल्परत होकर मुक्ति की राह पर चलने का अविराम संघर्ष भी। इसी स्त्री चेतना ने पृष्ठभूमि के रूप में भविष्य में उभरने वाले स्त्री विमर्श की भूमिका तैयार की। उस मध्ययुगीन समाज में जब भेदभावयुक्त सामाजिक बंधन तथा जड़ और रूढ़िग्रस्त संस्कार – जो सामान्य जन के व्यक्तित्व को मर्दित कर रहे थे, उनका इन सभी भक्त कवियों ने निर्भीक होकर डटकर प्रतिकार किया और मानव मात्र से प्रेम का आह्वान किया। यही भाव उनकी मानवीय पक्षधरता का द्योतक है। ये सभी भक्त कवि ‘जन’ से जुड़े थे। यह जुड़ाव उन्हें भौतिकता, ऐश्वर्य, आत्मप्रदर्शन एवं अहंकार से दूर कर उनकी अपनी स्वतंत्र पहचान गढ़ता है। वास्तव में समूचा भक्ति काव्य स्वयं को टटोलने, अपनी दुर्बलताओं से मुक्त होने और सबको समभाव से देखने का प्रयास है।

संदर्भ सूची –

1. मध्यकालीन भक्ति काव्य : संपा० डॉ० चंद्रप्रकाश शुक्ल, पृ० 15
2. कबीर : संपाव विजयेन्द्र स्नातक, पृ० 150
3. मध्यकालीन भक्ति काव्य : पुनरावलोकन – संपा० डॉ० चंद्रप्रकाश शुक्ल
4. भक्ति आंदोलन : इतिहास और संस्कृति – संपा० कुंवरपाल सिंह
5. मीरा एक पुनर्मूल्यांकन : संपा० पल्लव
6. मीरा का काव्य : विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ० 87

मेघदूत में वर्णित संवेदना

डॉ० नीलिमा चौधरी

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष-संस्कृत, ज्वाला देवी विद्या मन्दिर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कानपुर

सारांश -

मेघदूत के भावनात्मक पक्ष को स्पष्ट करने के लिए ही इस शोधपत्र लेखन का विचार मेरे मस्तिष्क में जागृत हुआ। संस्कृत नाट्यों के लिए लक्षणकार उसमें वीर या शृंगार रस को प्रमुख मानते हैं और अन्य रस अंग रूप में वर्णित किए जा सकते हैं। इसमें कवि ने यक्ष-यक्षिणी के वियोग के माध्यम से समस्त मानवजाति का यथावसर वियोग में भी जीवन यापन का उपदेश दिया है। सामान्यतः संपूर्ण काव्य शृंगार (विप्रलम्भ) रस से परिपूर्ण दिखाई पड़ता है। किन्तु यह सामान्यतः स्वीकृत है कि देव और देवियों के पारस्परिक प्रेम में सामाजिक की ओर से शृंगार की कल्पना नहीं की जा सकती क्योंकि यह नितान्त अनुचित है। कालिदास ने वैदिक तथ्यों को ही अन्यथा रूप में चित्रित किया है। वैदिक व्याख्या के अनुसार मेघ माध्यमिक वाक् का प्रतीक है। यह माध्यमिक वाक् जल एवं विद्युत से पूरित है और विद्युत का पुनः समन्वय सूर्य से मिलता है। सूर्य को आत्मा का प्रतीक माना गया है। यक्ष-यक्षिणी अर्द्ध देवता माने गए हैं। सभी देवता आत्मा के विभिन्न रूप हैं और प्रलयावस्था में उसी में मिल जाते हैं। उससे अलग होकर भी उससे मिलने की आकांक्षा रखते हैं। इस प्रकार दोनों का वियोग तथा मिलन की इच्छा ब्रह्म या आत्मा के साथ इसी भावना या अवस्था को ध्वनित करती है इसी संवेदनात्मक पक्ष को शोधपत्र में प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द - संवेदना, संदेशवाहक, भावनात्मक, प्रलयावस्था, श्रद्धापरक, ज्ञान-वाहनता, आनन्दानुभूति, सामर्थ्य, अन्वेषण।

यहाँ संवेदना का तात्पर्य भावपक्ष से है। मैंने मेघदूत के भावपक्ष को ही अपने अध्ययन का विषय बनाया है। प्रायः सभी लोग ऐसा मानते हैं कि महाकवि कालिदास शृंगार प्रेमी कवि हैं। उन्होंने अपनी शृंगार भावना को प्रकृत संदर्भ में मेघदूत के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। लक्षणकार ऐसा मानते हैं कि संस्कृत नाट्यों में सामान्यतः शृंगार या वीररस की प्रधानता होनी चाहिए -

एको रसोऽङ्गीकर्तव्यो वीर शृङ्गार एव वा।

अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम्।⁽¹⁾

इससे स्पष्ट है कि नाट्यों में वीर या शृंगार रस को प्रधान बनाकर अन्य रसों को अंग रूप में वर्णित किया जा सकता है। मेघदूत पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें वीररस का वर्णन नहीं है किन्तु शृंगार रस की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। 'रामस्य सीतां प्रति संदेशं मनसि निधाय कृतवानित्याहुः' अर्थात् लोग ऐसा मानते हैं कि रामायण की रचना सीता के प्रति राम के संदेश को हृदय में रखकर की गई है। रामायण में वर्णित राम-सीता का प्रेम शृंगारपरक नहीं है। यह सामान्यतः स्वीकृत है कि देवों और देवियों में जो पारस्परिक प्रेम दिखाया जाता है, उसमें सहृदय सामाजिक की ओर से शृंगार की कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि यह नितान्त अनुचित है तथा इसकी कल्पना वैरस्य को उत्पन्न करती है। मेघदूत में यक्ष एवं यक्षिणी के विषय में भी यही बात स्पष्ट हो रही है। ये दोनों अर्द्ध देवता माने गए हैं। इनके अंदर भी देवताओं जैसा सामर्थ्य एवं बल होता है। यह प्रायः अंतरिक्ष स्थानीय माने जाते हैं इसलिए इनमें शृंगार का अन्वेषण करना उचित नहीं है।

जैसा कि कहा गया है कि कुबेर के द्वारा शाप दिए जाने पर यक्ष ने एक वर्ष का पत्नी वियोग सहन किया और रामगिरि के आश्रमों में निवास किया जहाँ पहले राम निवास कर चुके थे। यक्ष का ऐसे पवित्र स्थान में रहना उसकी मनोदशा की शुद्धता को ही व्यक्त करता है। उसी प्रकार यक्षिणी के अलकापुरी में निवास करने से उसके देवताओं के समीप ही रहने की सूचना मिलती है क्योंकि अलकापुरी हिमालय पर्वत पर थी और हिमालय को देवताओं की आत्मा माना गया है।⁽²⁾ महाकवि कालिदास ने यक्ष-यक्षिणी के एक वर्ष पर्यन्त चलने वाले वियोग⁽³⁾ के माध्यम से मानव जाति को उपदेश देने का प्रयास किया है।

मेघ को कालिदास ने यक्ष के संदेशवाहक के रूप में प्रदर्शित किया है। कालिदास वेदों एवं पुराणों से बहुत प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने वैदिक तथ्यों को ही अन्यथा रूप में चित्रित किया है। वैदिक व्याख्या के अनुसार मेघ माध्यमिक वाक् का प्रतीक माने गए हैं। यह माध्यमिक वाक् जल एवं विद्युत से पूरित है। विद्युत का पुनः समन्वय सूर्य से पाया जाता है। सूर्य आत्मा का प्रतीक है।⁽⁴⁾ यक्ष-यक्षिणी अर्द्ध देवता माने गए हैं। ये सभी देवता एक आत्मा के विभिन्न रूप हैं तथा उसी से निष्पन्न हैं। अन्ततः प्रलयावस्था में उसी में मिल जाते हैं। उससे अलग होकर उससे मिलने की आकांक्षा रखते हैं।

इस प्रकार यक्ष-यक्षिणी का वियोग तथा मिलन की इच्छा ब्रह्मा या आत्मा के साथ इसी अवस्था को ध्वनित करती है।

कवि ने संदेशवाहक मेघ के मार्ग में नदियों और पर्वतों को दिखाया है। कवियों ने अपनी कल्पना में सागर को नदियों का पति माना है। सागर आत्मा का प्रतीक है। यहाँ विचार करने योग्य तथ्य यह है कि कालिदास की दृष्टि में नदियों और मेघ का संबंध क्या रहा होगा। जल को जीवन माना गया है। नदियाँ

वर्षा के माध्यम से बादलों से जल प्राप्त कर बहने लगती हैं और जल के अभाव में वे सूख जाती हैं, अतएव मेघ से जलद प्राप्त करने का तात्पर्य जीवन पाना है तथा पानी देने वाला बादल जीवनदाता बनकर आत्मा या ब्रह्म का प्रतीक होता है।

उत्तर मेघ में कवि ने एक स्थल पर यक्षिणी को मोर को नचाते हुए दिखाया है।⁽⁵⁾ मोर के लिए संस्कृत में शिखिन् शब्द का प्रयोग पाया जाता है जोकि मोर और अग्नि का वाचक है। पुनः अग्नि शुद्धता या निर्मलता का प्रतीक है। जैन धर्म में सोलह प्रकार की विद्या वेदियाँ बताई गई हैं। उनमें से कुछ का संबंध शिखिन् से वाहन रूप में है। यह संबंध विद्या देवी सरस्वती की शुद्धता को अभिव्यक्त करता है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सरस्वती का हंस से संबंध उसकी शुद्धता अथवा ज्ञान-वाहनता का प्रतीक है।⁽⁶⁾ इसी तरह कालिदास ने यक्षिणी को मयूर या शिखिन् से संबद्ध कर उसकी चारित्रिक शुद्धता को व्यक्त किया है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने मेघदूत की आध्यात्मपरक व्याख्या की है जोकि ठीक ही प्रतीत होती है क्योंकि कालिदास एक सामान्य कवि नहीं थे। उनका नाम कुछ और ही था परंतु देवी काली के दास, परम भक्त होने के कारण कालिदास कहलाए। भक्ति को श्रृंगारिक स्तर पर उतारना शोभा नहीं देता इसलिए कालिदास ने मेघदूत में शृंगार रस को भक्ति रस के रूप में ही व्यक्त किया है। इस भक्ति-रस का प्रस्फुटन यक्ष और यक्षिणी नामक दो साधकों द्वारा हुआ है। साधारण कोटि के प्रेमी-प्रेमिका अनेक लीलाएं रचते हैं जिसके कारण वे भर्त्सना के पात्र बनते हैं। परंतु यक्ष-यक्षिणी कभी भी अपनी मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करते।

भक्ति रस शान्त परिवेश चाहता है और शान्त परिवेश के दृश्य मेघदूत में भरे पड़े हैं। यक्ष रामगिरि के शान्त वातावरण में निवास करता है और दूसरी ओर यक्षिणी अलकापुरी में स्थित अपने शान्त एवं निर्जन घर में रहती है। नदियाँ शान्त और पर्वत स्तब्ध हैं। शून्य आकाश का सेवन बलाकाएँ कर रही हैं। पवन मन्द-मन्द बह रहा है। ऐसे वातावरण से रसरज शृंगार नहीं उत्पन्न हो सकता। इसके अतिरिक्त किसी सामाजिक व्यक्ति को मेघदूत के छन्दों को पढ़ते हुए या सुनते हुए आंतरिक आनन्दानुभूति होती है।

अन्ततः हम यह कह सकते हैं कि कालिदास का 'मेघदूत' संवेदनाओं से परिपूर्ण भक्ति प्रधान काव्य है जो कि कालिदास को महाकवि घोषित करने में अकेले ही समर्थ है।

सन्दर्भ -

1. दशरूपक - 3/38
2. कुमारसम्भवम् - 1/1
3. मेघदूत - 1/1
4. कठोपनिषद् 2/2/2
5. उत्तरमेघ - 2/16
6. डॉ. मो. इसराइल खाँ, सरस्वती इन संस्कृत लिटरेचर, गाजियाबाद(1978), पृष्ठ 123-124

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. डॉ. डी.डी. शर्मा, 'कालिदास की कला और संस्कृति', साहित्य भण्डार, मेरठ-1970
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'कालिदास की लालित्य योजना' राजकमल दिल्ली-1970
3. डॉ. मो. इसराइल खाँ, 'सरस्वती इन संस्कृत लिटरेचर', गाजियाबाद-1978

हिन्दू त्रिमूर्ति में प्रजापति ब्रह्मा

डॉ० अर्चना मिश्रा

एसोशिएट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व, कालीचरण पी0जी0 कालेज, लखनऊ।

हिन्दू त्रिमूर्ति परम्परा में ब्रह्मा को प्रथम स्थान प्राप्त है।¹ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश को क्रमशः सृष्टिकर्ता, सृष्टिपालक तथा सृष्टि संहारक रूप में लोकप्रियता मिली। प्रारम्भिक काल से ही ब्रह्मा को प्रजापति नाम दिया गया। ऋग्वेद में प्रजापति को समस्त जीवों का स्वामी तथा सर्वोपरि देव कहा गया है।² शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति को सृजनकर्ता तथा वराह रूप में पृथ्वी का उद्धारक कहा गया है।³ वायुपुराण⁴ तथा मत्स्यपुराण⁵ में ब्रह्मा को ही प्रजापति कहा गया है। कालिदास ने ब्रह्मा को स्वयंभू, चतुर्मुख, वागीश तथा समस्त संसार का सृष्टा बताया है।⁶ विष्णुपुराण में ब्रह्मा को सृष्टिकर्ता बताया गया है।⁷ मत्स्यपुराण में सृष्टि हेतु उन्होंने कठिन तप किया था, ऐसा उल्लेख मिलता है।⁸

पौराणिक युग में ही वैदिक प्रजापति का स्थान विष्णु ने ग्रहण कर लिया। शतपथ ब्राह्मण में उल्लिखित ब्रह्मा के मत्स्य, वराह तथा कच्छप अवतारों को विष्णु से सम्बद्ध कर दिया गया। अनेक कारणों से ब्रह्मा की स्थिति में ह्रास आने लगा और उन्हें विष्णु से निम्न माना जाने लगा। उन्हें विष्णु की नाभि से उत्पन्न मानकर विष्णु से कमतर घोषित किया गया। मत्स्यपुराण में एक वर्णन में उनके पाँच मुख बताये गये हैं जिनमें से एक को शिव ने काट दिया था।⁹ इससे ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु तथा शिव के सम्मुख ब्रह्मा की प्रतिष्ठा धीरे-धीरे कम होती गयी। वराहमिहिर ने विष्णु, शिव तथा सूर्य की तुलना में उनके प्रतिमा लक्षण वर्णन को न्यून स्थान दिया। ब्रह्मा सुर तथा असुर दोनों के लिए वन्दनीय थे। पौराणिक प्रसंगों से ज्ञात होता है कि असुर ब्रह्मा से प्राप्त वरदान के कारण विध्वंसरत हो जाते थे। इन कारणों से ब्रह्मा के प्रति लोगों की विरक्ति बढ़ती गयी। उनकी उपासना वेदों में पारंगत व्यक्ति ही कर सकता था, इस कारण उनके पूजन को सीमित कर दिया गया।

स्कन्दपुराण में 108 ब्रह्मतीर्थों का उल्लेख है।¹⁰ स्कन्दपुराण से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा की उपासना कश्मीर, कामरूप से लेकर स्वातघाटी तक के क्षेत्र में होती थी तथा भारत के प्रत्येक भाग में ब्रह्मा के मंदिर बने हुये थे। राजस्थान में ब्रह्मा विशेष लोकप्रिय थे। पुष्कर में ब्रह्मा ने यज्ञ सम्पादित किया था, ऐसी मान्यता है। यहाँ ब्रह्मा का एक प्राचीन मंदिर है। नहपान के नासिक अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसका जामाता उषवदात पुष्कर गया था। वहाँ स्नानोपरान्त उसने पूजन, दान इत्यादि किया था। यह घटना द्वितीय सदी ईसवी के प्रथम पक्ष की है।

विभिन्न ग्रन्थों में ब्रह्मा के प्रतिमालक्षणों का वर्णन है। बृहत्संहिता में उन्हें चतुर्मुखी तथा पद्मासन में बनाने का उल्लेख है। उन्हें जलपात्र से भी संयुक्त किया गया है।¹¹ बृहत्संहिता के वर्णन के अनुसार ब्रह्मा की मूर्ति ब्रह्मचारी के व्यक्तित्व की सूचक है।¹² विष्णुधर्मोत्तरपुराण में ब्रह्मा की मूर्ति को सौम्य, चतुर्मुख, चतुर्भुज, मृगचर्म ओढ़े हुये पद्मासन में स्थित बताया गया है। उन्हें जटायुक्त एवं सात हंसों से युक्त रथ में स्थित बताया गया है। उनकी भुजायें सर्वाभूषणों को युक्त, सामने की दो ध्यान मुद्रा में तथा पीछे की दो भुजाओं में अक्षमाला तथा कमण्डलु का विधान किया गया है।¹³ यहाँ ब्रह्मा के चारमुखों को चार वेदों का प्रतीक बताया गया है। उनका पूर्वमुख ऋग्वेद का, दक्षिणमुख यजुर्वेद का, पश्चिममुख सामवेद का तथा उत्तरमुख अथर्ववेद का प्रतीक बताया गया है।¹⁴ उनकी चार भुजायें चारों दिशाओं की प्रतीक बतायी गयी हैं।¹⁵ इसी ग्रन्थ में कमण्डलु को स्थावर-जंगम जगत् का प्रतीक माना गया है। जल से ही जगत् की उत्पत्ति मानी गयी है।¹⁶ दक्षिणकर में स्थित अक्षमाला को काल का प्रतीक बताया गया है। जगत् के समस्त प्राणियों को काल के वशीभूत बताया गया है।¹⁷ ब्रह्मा के श्वेतवस्त्रों तथा कृष्णाजिन को शुक्लाशुक्ल कर्मों का प्रतीक बताया गया है। यहाँ अशुक्ल कर्म को तात्पर्य हिंसा अथवा किसी को हानि पहुँचाने से है।¹⁸ उनके रथ के सातहंसों को सप्तलोकों – भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, महल्लोक, जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक का प्रतीक बताया गया है।¹⁹ ब्रह्मा के पद्मासन को पृथ्वी का प्रतीक माना गया है। क्योंकि विष्णु की नाभि से उत्पन्न पद्म पृथ्वी का ही रूप है।²⁰ ब्रह्मा की जटाओं को औषधियाँ तथा आभरणों को प्रकाश स्वरूप विद्यास्थान माना गया है।²¹ ब्रह्मा की बायीं गोद में अक्षमाला लिए हुये आदित्य वर्ण की सावित्री का स्थान बताया गया है।²² मत्स्यपुराण में ब्रह्मा के वामपार्श्व में सावित्री तथा दक्षिणपार्श्व में सरस्वती की स्थिति बतायी गयी है।²³ अग्निपुराण में प्रतिपदा तिथि को ब्रह्मा की अर्चना का विधान किया गया है।²⁴

ब्रह्मा का मूर्तन पुरातत्व में विविध प्रकार से किया गया है। उन्हें प्रायः द्विभुजी, चतुर्भुजी एवं त्रिमुख अथवा चतुर्मुख दिखाया गया है। उन्हें अपने वाहन हंस के साथ अथवा पद्मासन में दिखाया गया है। एकाकी मूर्तियों के अतिरिक्त ब्रह्मा की संयुक्त मूर्तियाँ भी बनायी गयीं। त्रिमूर्ति में उन्हें विष्णु तथा शिव से संयुक्त किया गया। उन्हें सावित्री अथवा सरस्वती के साथ भी बनाया गया। सर्वप्रथम भारत की कुषाण कला में ब्रह्मा की कुछ मूर्तियाँ बनायी गयीं।²⁵ कुषाण मूर्तियों में ब्रह्मा को चतुर्मुख, विशाल उदर वाला एवं करों में अमृत कमण्डलु तथा वेद लिए हुये दिखाया गया है।²⁶ मथुरा संग्रहालय की एक ब्रह्मामूर्ति में तीन मुख प्रदर्शित हैं, चौथा सिर पीछे छुपा हुआ है, उनकी जटायें ऊपर बंधी हुई हैं।²⁷ यहीं पर स्थित एक अन्य मूर्ति भी विशेष दर्शनीय है। यह चतुर्मुखी है, तीन मुख सामने से दर्शनीय है, चतुर्थ मुख मध्यमुख के ठीक पीछे है। केश मध्य में बंधे हैं। ब्रह्मा के वामकर में अमृतघट है।²⁸

परमवैष्णव गुप्तकाल में ब्रह्मा की मूर्तियाँ भी बनायी गयीं। ये मूर्तियाँ द्विभुजी अथवा चतुर्भुजी मिलती हैं। मथुरा संग्रहालय में स्थित एक द्विभुजी प्रतिमा के तीन मुख दिखाये गये हैं। उनका उदर किंचित फूला हुआ है। इस प्रतिमा में मस्तक के पीछे प्रभामण्डल है। मूर्ति धोती तथा मेखला धारण किये हैं, जंघा के नीचे का भाग नहीं है।²⁹ इसी संग्रहालय की एक अन्य मूर्ति पद्म पर स्थित है। सभी मस्तकों पर जटायें प्रदर्शित हैं। भुजायें तथा आभूषण खण्डित हैं, उनके

वाम तथा दक्षिण पार्श्व में अनुचर प्रदर्शित हैं।³⁰ यहीं पर स्थित एक अन्य प्रतिमा की दक्षिण भुजा अभयमुद्रा में प्रदर्शित है। मूर्ति यज्ञोपवीत धारण किये हुये एवं त्रिमुखी है।³¹ लगभग तुलनीय एक प्रतिमा भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में है।³² भारतकला भवन वाराणसी में स्थित ब्रह्मा की एक प्रतिमा में तीन मुख प्रदर्शित हैं। वक्ष के नीचे का अंश खण्डित है। प्रतिमा प्रभामण्डलयुक्त है। उत्तरीय बाँये स्कन्ध पर है।³³ यहीं पर स्थित एक अन्य प्रतिमा को कला का सुन्दर उदाहरण माना गया है। यह प्रतिमा हार, केयूर, कटक, यज्ञोपवीत आदि सर्वाभूषणों से सज्जित है। इसके मस्तक पर मुकुट को कई पट्टियों के संयोग से बनाया गया है। मूर्ति चतुर्भुजी है। नीचे का दाहिना हाथ वरदमुद्रा में तथा बायें हाथ में कमण्डलु है। ब्रह्मा अपने वाहन हंस पर प्रदर्शित हैं। मस्तक के दोनों पार्श्व में विद्याधरों का अंकन है।³⁴ दक्षिण भारत में लिंगोद्भव प्रतिमा में ब्रह्मा का अंकन ऊपरी भाग में मिलता है। ऐलिफैन्टा द्वीप पर स्थित शिव की कल्याण सुन्दर मूर्ति में ब्रह्मा का प्रदर्शन पुरोहित के रूप में हुआ है।³⁵

सन्दर्भ:-

1. डी0एच0आई0, पृ0 510.
2. ऋग्वेद, 10, 121.
3. शतपथ ब्राह्मण, 2, 6, 3, 4 - प्रजापतिः प्रजां असृजत्.....1, 14, 1, 2, 11 इयमग्रे पृथिव्यास.... वराह उज्जघान सोऽस्या पतिः प्रजापतिः।
4. वायुपुराण, 24, 21; 5, 29-37.
5. मत्स्यपुराण, 3, 33.
6. कुमारसम्भवम्, 2,1; 3,17.
7. विष्णुपुराण, 6, 1, 7.
8. मत्स्यपुराण, 3, 39 - सृष्ट्यर्थं यत्कृतं तेन तपः परम दारुणम्।
9. वही, 183, 81-83.
10. स्कन्दपुराण - 7, 1, 107, 103.
11. बृहत्संहिता, 58, 41 - ब्रह्मा कमण्डलुकरश्चतुर्मुखः पकंजासनस्थश्च।
12. डी0एच0आई0, पृ0 516.
13. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 63, 1, 2.
14. वही, 3,46,8.
15. वही, 3,46,9(1).
16. वही, 3,46,9(2-10).
17. वही, 3,46,10(2).
18. वही, 3,46,11(2).
19. वही, 3,46,12(1)-13.
20. वही, 3,46, 14-15.
21. वही, 3,46,17-18.
22. वही, 3,63, 1-3.
23. मत्स्यपुराण, 259, 40-45.
24. अग्निपुराण, 176, 1-3.
25. जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, मथुरा की मूर्तिकला, पृ0 22.
26. अग्रवाल, वी0एस0, इण्डियन आर्ट, पृ0 3331.
27. मथुरा संग्रहालय, सं0 2134.
28. वही, सं0 13, 285.
29. वही, सं0 248.
30. वही, सं0 20.
31. वही, सं0 48, 343.
32. भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता, सं0 25, 109, एन.एस. 3730.
33. भारत कला भवन, वाराणसी, सं0 626.
34. वही, सं0 164.
35. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान पृ0 61.

मंजरी शुक्ला की बाल कहानियाँ: समीक्षात्मक अध्ययन

मीनाक्षी

शोध छात्रा- एम0बी0पी0जी0 कॉलेज, हल्द्वानी (कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल)

समकालीन हिन्दी बाल कहानीकारों में मंजरी शुक्ला एक महत्वपूर्ण नाम है। इनका व्यक्तित्व बहुआयामी रहा है। इन्होंने हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं में साहित्य सृजन किया है। राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रभावी सृजन कार्य किया है। इनके कहानी संग्रह 'फूलों का रंग' और जादुई गुब्बारे की अधिकांश कहानियाँ शिक्षाप्रद, मूल्यबोध, मनोरंजन बाल मनोविज्ञान आदि पर केन्द्रित हैं। इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से बच्चों का मनोरंजन करने के साथ-साथ उनका बहुमुखी विकास करने का भी प्रयास किया है। मंजरी शुक्ला की अधिकांश कहानियों का कथानक शिक्षाप्रद और प्रेरणादायक है जो कदम-कदम पर बच्चों का दिशाकन करती है। इनकी कहानियों के कथानक शिक्षा, प्रेरणादायक, मनोरंजन, पर्यावरण, मूल्यबोध, बालमनोविज्ञान, विज्ञान, बुद्धि चातुर्य आदि से सम्बन्धित है।

मीठी वाणी, होलिका दहन, बाघ की व्यथा, नटखट चुनमुन, हीरे-मोती की खेती, फूलों का नगर, नटखट चकमक आदि कहानियों का कथानक शिक्षाप्रद और प्रेरणादायक है जिसमें कोई न कोई संदेश छुपा है। ये कहानियाँ बच्चों के मन-मस्तिष्क में एक अमिट छाप छोड़ते हैं जो आगे चलकर उन्हें एक सफल नागरिक बनाते हैं। 'जादुई गुब्बारे' कहानी संग्रह एवं 'बाघ की व्यथा' एक सर्वश्रेष्ठ शिक्षाप्रद और प्रेरणादायक कहानी है। इस कहानी में बाघ पर कोर्ट में मुकदमा दर्ज था कि उसने शहर में आकर भोले-भाले लोगों को डराया है और शहर का माहौल खराब किया है, जिस कारण उसे फाँसी की सजा सुनाई। जब बाघ से उसकी अंतिम इच्छा पूछी गई तो वह कहने लगा कि मनुष्य चंद रूपों के लिए जंगलों की कटाई, जंगली जानवरों की शिकार कर रहा है जिस कारण बाघ एवं अन्य जीव-जन्तु सहित अनेक प्रजातियाँ लुप्त होने के कगार पर हैं। अगर जंगल कटेंगे तो जंगली जानवर अवश्य ही शहर की ओर आयेंगे। "लहुलूहान बाघ अपने आँसू पोछते हुए बोला- जज साहब, पहले मेरा बहुत बड़ा परिवार था। बहुत सारे दोस्त थे हम सब जंगल में अपनी दुनिया में हँसी खुशी रहते थे, पर आप लोगों में से कुछ लोग वहाँ पर बड़ी-बड़ी बंदूकें लेकर पहुँचते रहे और बिना किसी गलती के मेरे परिवार वालों और दोस्तों को बड़ी बेदरदी से मारते रहे.....। आप लोगों ने रूपये के लालच में अंधे होकर हरे-भरे वृक्ष काटने शुरू कर दिए। मैं आप लोगों की डर से पेड़ों के पीछे छुप-छुप कर अपने को बचाता रहा पर लालच और स्वार्थ की पट्टी बाँधे आप लोगों ने सारा जंगल ही सफाचट कर दिया और वहाँ बड़ी-बड़ी इमारतें बनवा डाली। अब मैं बेचारा कहा जाता ? मैं इधर-उधर घूम-घूम कर अपने लिए जंगल ढूँढ़ रहा हूँ।"

इस प्रकार एक बाघ के माध्यम से यह बताया गया कि मनुष्य को अपने लालच के कारण जीव-जन्तुओं का घर नहीं उजाड़ना चाहिए। साथ ही यह कहानी मानवीय मूल्यों और पर्यावरण के प्रति हमारे कर्तव्य से भी अवगत कराती है। मंजरी शुक्ला की अधिकतर कहानियों का कथानक जंगल के परिवेश से सम्बन्धित है। ये कहानियाँ बच्चों का मनोरंजन करने के साथ-साथ उन्हें प्रेरणा भी देती है।

इसी प्रकार फूलों का रंग, फूलों का नगर, होलिका दहन, अप्रैल फूल, उपहार आदि कहानियों का कथानक पर्यावरण से सम्बन्धित है। 'उपहार' पर्यावरण से सम्बन्धित सर्वश्रेष्ठ कहानी है जिसमें मांदु नाम का बच्चा अपने राजा के जन्मदिन पर उपहार स्वरूप बहुत सारे फूलों के बीज भेंट करता है- "मांदु, तुम मेरे लिए एक छोटे से थैले में क्या उपहार लाये थे। तुमने मुझे अभी तक वो नहीं दिया। यह सुनकर मांदु फुर्ती से उठा और राजा के हाथों में थैला पकड़ा दिया। राजा ने उत्सुकता से थैले में हाथ डालकर देखा तो उसमें कई तरह के बीज थे।"

मंजरी शुक्ला की कहानियाँ कथानक की दृष्टि से उत्तम हैं। इन कहानियों में रोचकता के साथ-साथ पर्याप्त मनोरंजन भी विद्यमान है जिन्हें पढ़ने से बच्चों की जिज्ञासा बढ़ेगी। इनकी कहानियों के द्वारा बच्चों में सजगता, बहादुरी, धैर्य, मानवीय मूल्यों के प्रति संवेदना, पर्यावरण की रक्षा, जीव जन्तुओं के प्रति दयाभाव आदि गुणों का विकास होता है।

इनकी कहानियों में एक अच्छे कथानक के सभी गुण विद्यमान हैं पर्यावरण, शिक्षा, विज्ञान, मूल्यबोध आदि पर आधारित विषयों को कथानक बनाकर बच्चों को प्रेरणा दी गई है। इन कहानियों को पढ़कर बच्चे में बौद्धिक, भावात्मक, कलात्मक रूचियों का विकास होगा।

लेखिका की अधिकांश कहानियाँ मनोरंजनपरक हैं। इन कहानियों के द्वारा जहाँ एक ओर बच्चों का मनोरंजन होता है और वहीं दूसरी ओर ये बच्चों की जिज्ञासा को भी बढ़ाती है। बच्चों को बचपन से ही मूल्यबोध का अनुभव कराना माता-पिता का कर्तव्य है और कहानियाँ उसका एक सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। 'प्रायश्चित', 'नंदनी की ममता', 'अनोखा जन्मदिन', 'फूलों का नगर', 'शिक्षा की लगन', 'क्रिसमस', 'सपनों का मकान' एवं 'गंगा का स्नान' आदि कहानियों का कथानक मूल्यबोध पर आधारित है। इन कहानियों में 'गंगा स्नान' सर्वश्रेष्ठ कहानी है। इस कहानी में दस वर्ष की मनु अपनी दादी के साथ कुम्भ के मेले में गंगा स्नान करने जाती है वह गंगा नदी में स्नान करने के लिए बहुत ही उत्सुक होती है, लेकिन गंगा नदी की दुर्दशा देखकर उसे रोना आ जाता है- "चारों तरफ वहाँ कीचड़ और बिलकूल काला पानी था। लोग साबुन से मल-मल कर नहा रहे थे और वहीं अपने साथ लाये ढेरों गंदे कपड़े धो रहे थे। दादी आँखों में आँसू भरकर रूँधे गले से बोली-वो देखो हजारों टन कूड़ा-करकट इस नदी में रोज बहाया जाता है। लोग कीचड़ में डुबकी लगा

रहे हैं या गंगा में इन्हें खुद ही नहीं पता है। मनु ये सुनकर आँसू पोंछते हुए बोली दादी, मैं कल ही अपने स्कूल में प्रिंसिपल सर को यह बात बताऊँगी ताकि ये बातें हर बच्चा जाने और हमारी गंगा माँ को कोई गन्दा ना करें।”¹²

पात्र एवं चरित्र-चित्रण किसी भी प्रकार का कथात्मक विधा के लिए अतिआवश्यक होती है। बिना पात्रों एवं चरित्र योजना के कथ्य का पाठक के मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ पाता है। एक स्वस्थ और अच्छी कहानी के लिए उसमें पात्रों का चयन सही प्रकार से होना चाहिए। बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए पात्रों एवं घटनाओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है, क्योंकि अच्छे पात्रों के द्वारा ही कहानी में रोचकता आएगी।

बाल कहानियों में बड़े-बूढ़े, युवा, बच्चे, जीव-जन्तु आदि पात्र हो सकते हैं। मंजरी शुक्ला की कहानियों में पात्रों का चयन अत्यन्त प्रभावी ढंग से हुआ है। इनकी कहानियों के अधिकांश पात्र बच्चों को यथार्थ से परिचित कराते हैं। ‘मन्नत की दीवाली’ कहानी के पात्र मन्नत गरीब और अनाथ बच्चों को देखकर उनके आँखों में आँसू आ जाते हैं। वहीं प्रायश्चित्त कहानी की पात्र मुनिया वैद्य जी के बच्चे की जान बचाकर अपने कर्तव्य का पालन करती है। ‘हीरे-मोती की खेती’ कहानी का पात्र कृष्णदेव अपने पुत्र यशदेव को सही रास्ते पर लाने के लिए अपने कर्तव्य का पालन करता है। ‘बाघ की व्यथा’ कहानी का पात्र बाघ मनुष्यों द्वारा जंगलों और जंगली जानवरों पर हो रहे अत्याचार के बारे में बताता है और पर्यावरण की रक्षा का संदेश देता है।

मंजरी शुक्ला की कहानियों के पात्र विभिन्नता लिए हुए हैं। इनकी कहानियों में बच्चे, बड़े, राजा, पशु-पक्षी, चूहे, बिल्ली, पेड़-पौधे आदि पात्र हैं जो बच्चों को जीवन और जगत के सत्य से अवगत कराते हैं। ‘मटकू’ कहानी की पात्र चाँदनी अपनी सूझबूझ के द्वारा एक ऐसी योजना बनाती है जिससे राजा खुशी-खुशी मटकू को जंगल भेज देता है। “अचानक उसके दिमाग में एक बात आई और वो दौड़ते हुए मटकू के पास जाकर बोली, कोई बात नहीं मटकू हम बाद में आ जाएँगे और फिर उसने धीरे से फुसफुसाया, जिसे सुनकर मटकू खुश हो गया। मुझे लगता है कि हमें मटकू को वापस करके जंगल में भेज देना चाहिए।”¹³

इसी प्रकार ‘गलती’ कहानी के पात्र अज्जू और उसका भाई भी अपनी सूझबूझ का परिचय देते हुए नौकर विनय की सच्चाई सबके सामने लाते हैं। ‘शिक्षा की लगन’ कहानी का पात्र भीकू भी अपने प्राणों की चिन्ता करते हुए नदी में बह रहे शिक्षक को बचा लेता है। इसी प्रकार ‘क्रिसमस’ कहानी का पात्र जेम्स अपने लिए घंटियों वाला क्रिसमस ट्री न लेकर, उन पैसों से अपने दादा जी का चश्मा बनवाता है। ‘गंगा स्नान’ कहानी की पात्र मनु गंगा नदी को गन्दा देखकर उसकी स्वच्छता के लिए स्वयं कदम उठाती है- “मैं कल ही अपने स्कूल में प्रिंसिपल सर को यह बात बताऊँगी ताकि ये बातें हर बच्चा जाने और हमारी गंगा माँ को कोई भी गन्दा न करें।”¹⁴

‘जादुई गुब्बारे’ कहानी संग्रह की कहानी ‘लालच का फल’ का पात्र सोमदत्त को समझ में आ गया था कि लालच के कारण वह कितनी बड़ी मुसीबत में पड़ गया था और वह प्रण करता है कि जीवन में वह कभी भी लालच नहीं करेगा.....।” इस घटना से हम सबके समझ में आ गया है कि लालच, विवेक और बुद्धि को खत्म कर देता है.....। सोमदत्त अब जान चुका था कि मेहनत से कमाया धन का भोजन ही सुख और शांति दे सकता है।

ये सभी पात्र अपने-अपने कर्तव्य का पालन करते दिखाई देते हैं। इन कहानियों के सभी पात्र बच्चों को अपने मूल्यों का अनुभव कराते हैं। इन सभी पात्रों से सम्बन्धित कहानियों को पढ़कर बच्चों में सभी प्रकार के गुणों का विकास होता है।

मंजरी शुक्ला एक सशक्त बाल कहानीकार हैं जिन्होंने बच्चों के लिए एक से बढ़कर एक कहानियाँ लिखी हैं। इनकी कहानियाँ मनोरंजनात्मक है। इन कहानियों को पढ़कर बच्चे आदर्शवादी मनुष्य बनने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इन कहानियों में निहित उद्देश्य बच्चों को बेहतर जीवन जीने के लिए प्रेरित ही नहीं करती बल्कि उनका आत्मविश्वास भी बढ़ाती है। मंजरी शुक्ला की कहानियों का उद्देश्य बच्चों का सर्वांगीण विकास कर भविष्य के लिए तैयार करना है।

संग्रह की प्रथम कहानी ‘जादुई गुब्बारे’ हैं। इस कहानी का मुख्य उद्देश्य उन माता-पिता को संदेश देना है जो नौकरी के कारण अपने बच्चों को पर्याप्त समय नहीं दे पाते हैं। ऐसे माता-पिता को अपने बच्चों के साथ समय बिताना चाहिए जिससे कि उनके सुख-दुख का पता चल सके। इस संग्रह की दूसरी कहानी ‘मीठी वाणी’ है जो एक काल्पनिक कहानी है। जिसका उद्देश्य केवल बच्चों का मनोरंजन करना है। ‘प्रायश्चित्त’ कहानी में उन लोगों पर व्यंग्य किया गया है जो लड़का एवं लड़की में भेदभाव करते हैं। आज के युग में लड़का और लड़की दोनों को समान अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार ‘होलिका दहन’ कहानी का मुख्य उद्देश्य बच्चों को वृक्षों की उपयोगिता और पर्यावरण के प्रति जागरूकता का संदेश देना है। इस कहानी में मुख्य रूप से नीम के वृक्ष की उपयोगिता के बारे में बताया गया है। “जिन हरे-भरे वृक्षों से हम आक्सीजन पाकर जिन्दा रहते हैं तुम सब उन्हें काटने की बात भी कैसे सोच सकते हो और वो भी नीम का पेड़ एक ऐसा पेड़ है जिसका हर भाग जड़, तना, पत्ती, फल और यहाँ तक की छाल भी अनेकानेक बीमारियों के इलाज में काम आती है। हम बड़ों को ही उन्हें पर्यावरण और वृक्षों के बारे में बताना चाहिए ताकि वे वृक्षों की उपयोगिता समझते हुए उन्हें कभी भी काटने की न सोचे।”¹⁵ मंजरी शुक्ला की बाल कहानियाँ मनोरंजन की दृष्टि से उत्तम है। इनकी कहानियाँ मनोरंजन से भरपूर हैं। ये कहानियाँ जहाँ एक ओर बच्चों का सामाजिक यथार्थ से परिचय कराती हैं। वहीं दूसरी ओर उन्हें मेहनती एवं लगनशील बनाने की प्रेरणा भी देती है। ‘बाघ की व्यथा’ कहानी बच्चों के हृदय में जंगल और जंगली जानवरों के प्रति सहानुभूति पैदा करती है। इस कहानी में एक बाघ के मन की व्यथा के बारे में बताया है। “लहुलुहान बाघ अपने आँसू पोछते हुए बोला- जब साहब, पहले मेरा बहुत बड़ा परिवार था। बहुत सारे दोस्त भी थे, पर आप लोगों में से कुछ लोग वहाँ पर बड़ी-बड़ी बंदूक लेकर पहुँचते रहे और बिना किसी गलती के मेरे परिवार वालों और दोस्तों को बड़ी बेदरदी से मारते रहे। जिस तरह से हमें मारा जा रहा है उस तरह से आने वाली पीढ़ी हमें केवल चित्रों में ही देख पाएँगी और यह कहते हुए बाघ हिचकियाँ ले-लेकर जोर-जोर से रोने लगा।”¹⁶

इसी प्रकार ‘नटखट चुनमुन’ कहानी में लेखिका ने ‘फास्ट फूड’ और पेस्टी आदि खाने से हमारे शरीर को होने वाले नुकसान के बारे में बताया है। इस कहानी का मुख्य उद्देश्य बच्चों को पौष्टिक खाने की अहमियत के बारे में बताना है। ‘फूलों का नगर’ कहानी का उद्देश्य बच्चों का सत्य, अहिंसा का पाठ पढ़ाना है। इसमें लेखिका ने संदेश दिया है कि जीवन में परिस्थितियाँ कितनी भी विपरीत क्यों न हों, हमेशा धैर्य एवं सूझबूझ का परिचय देना चाहिए।

'ले लो कंधा', 'लालच का फल', 'हीरे-मोती की खेती' इन तीनों कहानियों का उद्देश्य बच्चों को लालच न करने की सीख देना है। इन कहानियों के माध्यम से लेखिका ने यह बताया है कि मनुष्य अपने लालच के कारण अपने प्राण संकट में डाल देता है। 'क्रिसमस' कहानी का उद्देश्य है कि बच्चों को अपने बुजुर्गों का आदर-सम्मान करना चाहिए और उनके प्रति सहानुभूति का भाव रखना चाहिए।

'गंगा स्नान' कहानी का मुख्य उद्देश्य बच्चों को स्वच्छता का संदेश देना है- "मैं कल ही अपने स्कूल में प्रिंसिपल सर को यह बात बताऊँगी ताकि ये बातें हर बच्चा जाने और हमारी गंगा माँ को कोई गन्दा ना करें।"

कहानी का निर्माण जिन तत्वों से होता है उनके द्वारा इन समस्त जिज्ञासाओं की तृप्ति हो जाती है। बच्चों के लिए लिखी जाने वाली कहानियों की भाषा सरल, सुबोध एवं सम्प्रेषणीयता के गुण से युक्त होनी चाहिए। जिन कहानियों की भाषा सहज और सरल होती है उन कहानियों को पढ़ने में बच्चे रोचकता दिखाते हैं। सरल भाषा में लिखी कहानियों को बच्चे अच्छी तरह से समझ भी पाते हैं। मंजरी शुक्ला की भाषा सामान्य भाषा है जिसे बच्चे अच्छी प्रकार से समझ पाते हैं। इन्होंने आवश्यकता पढ़ने पर देशी, विदेशी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है।

अगर वाक्य विन्यास की बात की जाये जो छोटे-छोटे वाक्य प्रभावी और बच्चों की उत्सुकता को शान्त करते हैं। मंजरी शुक्ला की कहानियाँ लम्बी नहीं हैं। इनकी कहानियाँ छोटी और प्रभावी हैं जो कहानी में बच्चों की रोचकता को बनाएँ रखते हैं। उदाहरण- "बहुत समय पहले यशोवर्मन नाम का एक राजा राज्य करता था। उसकी एक ही पुत्री थी चन्द्रिका। वह बहुत सुन्दर थी और उससे भी ज्यादा सुन्दर था उसका मन। सभी को बहुत प्यार करती थी। उसने अपने बगीचे में खरगोश, गिलहरी और मोर पाल रखे थे। वह दिनभर उन्हीं के साथ खेला करती।"⁷

इनकी ये कहानियाँ बच्चों का मनोरंजन करने के साथ ही उन्हें शिक्षा भी देती है और किस प्रकार संघर्ष करते हुए सफलता प्राप्त कर सकते हैं। यह भी अत्यन्त कुशलता से अभिव्यक्त किया गया है। मंजरी शुक्ला ने वर्णनात्मक शैली, मनोविश्लेषणात्मक आदि शैली में कहानियाँ लिखी हैं। इन्हें बाल मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञान है। भाषा और शैली में मंजरी शुक्ला को सफलता प्राप्त हुई है। ये कहानियाँ मनोरंजन से भरपूर हैं लेकिन पूरी तरह से काल्पनिक हैं। भाषा, वाक्य विन्यास शैली की दृष्टि से उत्तम है।

कहानी को वास्तविकता की तरह दिखाने के लिए उसमें देशकाल अथवा वातावरण का प्रयोग किया जाता है। बच्चों के लिए कहानी में सबसे महत्वपूर्ण घटना का होना होता है। मंजरी शुक्ला की कहानियों में देशकाल एवं वातावरण का प्रयोग कहानी में रोचकता लाने के लिए किया गया है। बच्चों का कहानियाँ ऊबाऊ न लगे इसके लिए बीच-बीच घटना में रोचकता लाने का प्रयास किया गया है। कहानी में क्यों और कैसे घटित हुई इसके लिए लेखिका ने बच्चों में आगामी घटना की जिज्ञासा को बनाएँ रखने का प्रयास किया गया है। "रामपुर गाँव में एक स्कूल था। आसपास के बच्चे वहीं पढ़ने आया करते थे। उस स्कूल में एक ही मास्टर जी थे, प्रधानाचार्य से लेकर चपरासी तक का काम बखूबी करते थे। क्योंकि उस गाँव में बिजली एवं पानी के घोर संकट के चलते जो भी शहर से आता था, वह उल्टे पांव भाग जाता था। मास्टर जी को बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी मास्टर जी कहते थे, पर उनका पूरा नाम शिवेन्द्र नारायण त्रिपाठी। उनमें तमाम अच्छाइयों के बावजूद एक बहुत बड़ा अवगुण भी था, वह केवल ऊँची जाति वाले छात्र-छात्राओं को ही अपने विद्यालय में प्रवेश देते थे एवं पिछड़ी जाति के बच्चों को अपने विद्यालय के आस-पास तक फटकने नहीं देते थे।"⁸

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मंजरी शुक्ला की इन कहानियों के द्वारा बच्चों का भरपूर मनोरंजन हुआ है। कुछ कहानियाँ संदेशप्रद एवं शिक्षाप्रद हैं जो बच्चों के जीवनपथ का दिशांकन करेंगी।

संदर्भ सूची:-

1. शुक्ला मंजरी, बाघ की व्यथा, पृ0सं0- 12
2. शुक्ला मंजरी, जादुई गुब्बारे, पृ0सं0- 62-63
3. शुक्ला मंजरी, फूलों के रंग, पृ0सं0- 34-35
4. शुक्ला मंजरी, गंगा स्नान, पृ0सं0-63
5. शुक्ला मंजरी, जादुई गुब्बारे, पृ0सं0-09-10
6. शुक्ला मंजरी, बाघ की व्यथा, पृ0सं0-12
7. शुक्ला मंजरी, गंगा स्नान, पृ0सं0-63
8. शुक्ला मंजरी, काना जादूगर, पृ0सं0-21
9. शुक्ला मंजरी, शिक्षा की लगन, पृ0सं0-42

भारत में ग्रामीण बुनियादी ढाँचे से रोजगार की सम्भावना: एक दृष्टि

ओंकार यादव

शोध छात्र, अर्थशास्त्र विभाग, तिलकधारी पी0जी0 कॉलेज, जौनपुर, सम्बद्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

शोध सारांश

भारत के गाँवों में लोग रोजगार के अवसरों की कमी के कारण शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। यदि रोजगार के उचित अवसर गाँवों में ही हों तो इसके दो लाभ होंगे- गाँवों से बेरोजगारी की समस्या मिटेगी और शहरी क्षेत्रों पर जनसंख्या का दबाव कम होगा। आज शहरों में तीव्र गति से हो रहा विकास भी काफी कम पड़ रहा है और बिजली-पानी की व्यवस्था भी डाँवाडोल है। यदि गाँवों में बुनियादी आधार मजबूत हो जाए तो गाँवों में उद्योग-धंधों की भरमार होगी, रोजगार के अवसर बहुत सारे होंगे और हर घर में समृद्धि होगी। प्रस्तुत लेख में गाँवों में बुनियादी आधार तैयार करने वाले क्षेत्रों पर विचार किया जा रहा है।

किसी भी देश का बुनियादी ढाँचा जितना मजबूत होगा, उस देश की अर्थव्यवस्था उतनी ही मजबूत होगी। बुनियादी ढाँचे से हमारा तात्पर्य मानवीय विकास के लिए जरूरी सभी मूलभूत आवश्यकताओं से है- चाहे वे सड़कें हो, आवास हो, पेयजल हो या फिर चिकित्सा और शिक्षा की सुविधाएँ। भारत के अधिकांश निवासी आज भी गाँवों में निवास करते हैं, ऐसे में ग्रामीण भारत के विकास के बिना देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत करना संभव नहीं है। भारत कृषि प्रधान देश है ऐसे में कृषि संबंधी अवसरचना को मजबूत किए बिना गाँवों और ग्रामीणों के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

भारत में बिजली एक ऐसा क्षेत्र है जो जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है। बिजली की कमी के कारण न तो खेतों में सिंचाई की व्यवस्था होती है और न उद्योग में उत्पादन की प्रक्रिया ही सही ढंग से सम्पन्न की जा सकती है। ग्रामीण क्षेत्र में लघु और कुटीर उद्योगों को स्थापित करके रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए सर्वप्रथम चौबीसों घण्टे बिजली की वितरण व्यवस्था सुनिश्चित करनी होगी तभी कोई भी व्यक्ति छोटा या बड़ा काम करने के बारे में सोच सकता है।

पानी जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है जो सुबह जागने से लेकर सोने तक की सभी क्रियाओं के लिए आवश्यक है। जिस ग्रामीण क्षेत्र में पानी की व्यवस्था पर्याप्त मात्रा में होगी वहाँ के प्रति लोगों का रुझान औद्योगिक गतिविधियों के लिए ही नहीं अपितु रहने के लिए भी होगा क्योंकि पानी जीवन में हर क्षेत्र के लिए अति आवश्यक है। पानी की अच्छी गुणवत्ता न होने के कारण उद्योगों के माध्यम से बनने वाले उत्पादों विशेषतः, खाद्य उत्पादों की क्वालिटी उत्कृष्ट नहीं होती और वे उत्पाद ज्यादा समय तक टिक नहीं पाते। इसके अलावा, मशीनों में जंग लगने की ज्यादा सम्भावना बनी रहती है।

गाँवों में प्रायः प्राथमिक या माध्यमिक स्तर तक ही शिक्षा उपलब्ध हो पाती है। इसके बाद की शिक्षा प्राप्ति के लिए 8-10 कि0मी0 की दूरी पर स्थित विद्यालयों में जाना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में अधिकतर बच्चे बीच में ही पढ़ाई छोड़कर छोटी उम्र में ही मजदूरी की तलाश में शहरों में चले जाते हैं और जिन्दगी भर मजदूर ही बने रहते हैं। मजदूरी से आगे की बात उन्हें स्वप्न जैसी लगती है। यदि शिक्षा की उत्तम व्यवस्था नजदीक ही विद्यमान हो तो वे सहज रूप से शिक्षा भी प्राप्त कर सकते हैं और कुछ न कुछ काम भी सीख या कर सकते हैं। यदि इन विद्यालयों में सामान्य शिक्षा के साथ-साथ रोजगारोन्मुख व्यावसायिक शिक्षा की भी व्यवस्था हो तो ग्रामीण क्षेत्रों की प्रगति की सम्भावना बनी रहेगी।

किसी भी कार्य के सम्पन्न करने के लिए उसका ज्ञान होना जरूरी है जो प्रशिक्षण के माध्यम से ही उपलब्ध हो सकता है। यह प्रशिक्षण औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों या अस्थायी प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना करके प्रदान किया जा सकता है। लकड़ी, चमड़ा, लोहे आदि के कुछ काम पुश्तैनी होते हैं और उन्हें अपने घर के सदस्यों से ही सीखा जा सकता है। इसके अलावा, यदि 2-3 गाँवों के बीच में एक औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान की व्यवस्था हो तो वहाँ से प्रशिक्षित व्यक्ति या तो अपना कोई काम अपने गाँव में ही शुरू कर सकता है या किसी औद्योगिक इकाई में नौकरी कर सकता है। कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें गाँव की चौपाल, सामुदायिक केन्द्र अथवा किसी अन्य स्थान पर स्थापित अस्थायी अल्पकालीन प्रशिक्षण केन्द्र से सीखा जा सकता है। इनमें मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्र आधारित फल-सब्जी परिरक्षण प्राप्त करके अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है।

ग्रामीण उद्योगों से सम्बन्धित निरन्तर हो रहे अनुसंधानों और सरकारी स्तर पर चल रहे विकास कार्यक्रमों की जानकारी ग्रामीण क्षेत्रों में सम्मेलन, संगोष्ठी, परिसंवाद या कार्यशाला आयोजित करके प्रदान की जा सकती है। विकास कार्यक्रमों का प्रचार-प्रसार भी इन कार्यक्रमों के अलावा बुकलेट या पम्पलेटों के माध्यम से किया जा सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में ही आवासीय क्षेत्र के अलावा औद्योगिक क्षेत्रों का निर्माण किया जाना चाहिए ताकि उस क्षेत्र के समस्त लघु एवं कुटीर उद्यमी एक ही स्थान पर मिलकर काम कर सकें। ये क्षेत्र औद्योगिक पार्कों की तरह ही सरकार की ओर से अनुमोदित होने चाहिए वरना उद्यमी अपने उद्यम में निवेश करने से हिचकेंगे।

संचार माध्यमों से व्यक्ति को आसपास की हर स्थिति की जानकारी रहती है। वर्तमान परिवेश में हो रहे बदलावों, अनुसंधानों एवं विकास कार्यक्रमों और बाजार की सम्पूर्ण जानकारी टेलीफोन या इंटरनेट आदि माध्यमों से तत्काल सुलभ हो जाती है। हाल ही में कृषि क्षेत्र में ये सुविधाएँ उपलब्ध कराई गई हैं। भारत संचार निगम लिमिटेड ने फोन के माध्यम से उत्पादों के बाजार में बीजों एवं उर्वरकों की उपलब्धता, मौसम की जानकारी आदि सूचनाएँ किसानों तक पहुँचाने का कार्यक्रम शुरू किया है। यदि इसी प्रकार के कदम अन्य क्षेत्रों के लिए भी उठाए जाएं तो उससे ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित अन्य उद्योग भी विकसित रूप से लाभान्वित होंगे अन्यथा इन सब कार्यों के लिए उन्हें शहरों से सम्पर्क करना पड़ेगा जिसमें बहुत अधिक समय और धन का अपव्यय होगा।

उद्योग तभी तेजी के साथ बढ़ते हैं जब उन्हें अपने अनुकूल परिवेश मिलता है। रोज-रोज की हड़तालें, राजनैतिक दखलअंदाजी, आए दिन होने वाली रैलियाँ एवं बन्द आदि का वातावरण उद्यमियों को हतोत्साहित करता है। आए दिन होने वाली रैलियों से कच्चे माल के आने और तैयार माल की आपूर्ति करने में व्यवधान पैदा होता है और उत्पादों की आपूर्ति न होने से उद्यमी का पैसा फंस जाता है तथा आगे काम चलाना मुश्किल हो जाता है। राजनैतिक खेमेबन्दी से भी उद्यमी भयाक्रान्त रहता है कि न जाने कब हड़ताल हो जाए अथवा उसे अपनी औद्योगिक इकाई को हटाने के लिए कह दिया जाए। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने और ग्रामीण क्षेत्रों के रोजगारपरक विकास में योगदान देने वाले उद्यमियों को ऐसा अनुकूल परिवेश प्रदान किया जाए कि वह निश्चित होकर उत्पादन प्रक्रिया में संलग्न रहे।

जिस स्थान पर जिस उद्योग से सम्बन्धित कच्चा माल उपलब्ध होता है, वही वह उद्योग केन्द्रित होता है। कृषि आधारित उद्योगों के लिए तो ग्रामीण क्षेत्रों में ही कच्चा माल उपलब्ध हो जाता है। किन्तु बुनाई-कढ़ाई-सिलाई, जिल्दसाजी जैसे कार्यों में काम आने वाली वस्तुओं की स्थानीय स्तर पर उपलब्धता से न तो उद्योग में कच्चा माल समाप्त होने के बाद उत्पादन प्रक्रिया में व्यवधान उत्पन्न होता है और न ही शहरों से कच्चे माल को लाने के लिए आने-जाने में समय और धन ही खर्च होता है तथा इससे कच्चा माल सस्ता भी पड़ता है। इसके लिए सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति औद्योगिक क्षेत्रों में ही कच्चे माल के वितरण केन्द्र खोलने चाहिए जिससे उद्यमियों को अच्छी क्वालिटी का कच्चा माल किफायती दर पर सुलभ हो सके।

जिस प्रकार सरकार ग्रामीण क्षेत्रों में नौकरी करने वाले चिकित्सकों को अतिरिक्त सुविधाएं देती है अथवा कुछ राज्य सरकारें अपने राज्यों में औद्योगिक विकास में तेजी लाने के लिए उद्यमियों को सस्ती जमीन, किफायती दर पर बिजली आदि प्रोत्साहन देने की घोषणाएं करती है, उसी प्रकार सरकार को यह प्रावधान करना चाहिए कि जो भी उद्यमी ग्रामीण क्षेत्रों में अपने उद्योग स्थापित करेंगे उन्हें कुटीर उद्योग के लिए पांच लाख, लघु उद्योग के लिए दस लाख तथा मझोले या वृहद उद्योग के लिए कुल निवेश का 50 प्रतिशत सब्सिडी के आधार पर एवं किफायती ब्याज दर पर ऋण दिया जाएगा। इससे ग्रामीण उद्योग क्षेत्र में गति तेज होगी और ग्रामीण क्षेत्र के निवासियों के लिए रोजगार के अवसरों के मार्ग खुलेंगे।

जब गाँवों में आने-जाने के लिए पक्के एवं लम्बे-चौड़े मार्ग बन जाएंगे तो उद्यमियों को अपने उद्योग लगाने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी। वे कच्चे माल और तैयार उत्पादों को आसानी से बाजारों तक ले जा सकते हैं। इन मार्गों को हाइवे से जोड़ना चाहिए। एक बार सड़क बना देना आसान होता है किन्तु उनका रखरखाव करना कठिन हो जाता है। इनके रखरखाव एवं मरम्मत के मार्ग में कई प्रकार के व्यवधान आ जाते या पैदा कर दिए जाते हैं। अतः सड़कों के रखरखाव की भी समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

सड़कों का निर्माण होने के बाद परिवहन की सुविधाएँ उपलब्ध होना सहज होता है। ग्रामीण उद्योग क्षेत्रों तक आने-जाने के लिए बसों की व्यवस्था तथा कच्चे माल को लाने और तैयार उत्पादों को बाजार में भेजने के लिए परिवहन सुविधाएँ उपलब्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। ये सब निजी संसाधनों के साथ-साथ सरकारी प्रयासों से भी सम्भव होगा। उद्योग क्षेत्र के पास ही वाहनों की पार्किंग की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि आवश्यकता होने पर वाहनों की व्यवस्था करने में कोई कठिनाई न हो।

उत्पादों के तैयार हो जाने के बाद तत्काल आवश्यकता उन उत्पादों के भण्डारण की होती है। भण्डारण के अभाव में अचार-मुरब्बे, जैम-जैली, जूस, चटनी, पापड़, नमकीन, फल एवं सब्जियों के परिरक्षण के लिए वातानुकूलित भण्डारण की व्यवस्था होनी चाहिए अन्यथा इन उत्पादों का एक बड़ा हिस्सा खराब हो जाएगा। ग्रामीण क्षेत्र में ऐसे छोटे-छोटे उद्योग लगाने वालों के पास वित्तीय संसाधनों का अभाव होता है, इसलिए वे वातानुकूलित भण्डारण व्यवस्था करने में असमर्थ होते हैं, अतः ये सारी व्यवस्थाएँ सरकार द्वारा ही की जानी चाहिए। इसके लिए उद्यमियों से किफायती दर पर किराया लिया जा सकता है।

उत्पादन करना आसान होता है क्योंकि यह अपने परिश्रम एवं व्यय पर ही निर्भर करता है किन्तु उत्पादों का विपणन, वह भी इस प्रतिस्पर्धी युग में, अत्यन्त कठिन होता है। इसलिए उद्योगों द्वारा तैयार उत्पादों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में ही विपणन केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए ताकि उद्यमी अपने उत्पादों को आसानी से बेच सकें। इसके अलावा अपने उत्पादों के बाजार का विस्तार करने के लिए ग्रामीण उद्योगों को हाट-मेलों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे उत्पादों की बिक्री भी होगी और उत्पादों का प्रचार-प्रसार भी होगा।

देश के संरचनात्मक विकास हेतु संसाधन जुटाने के लिए करों का प्रावधान करना सरकार की मजबूरी है किन्तु जब बात ग्रामीण उद्योगों की आती है तो ऐसे में सरकार को चाहिए कि कर में कुछ प्रतिशत छूट का प्रावधान करे। जब उद्यमी को यह अहसास होगा कि शहरी क्षेत्र में उद्योग स्थापित करने पर दिए जाने वाले उत्पाद कर की तुलना में ग्रामीण क्षेत्र में स्थापित उद्योगों पर सरकार ने कर छूट का प्रावधान किया है तो वह अपना उद्योग ग्रामीण क्षेत्र में ही स्थापित करने को प्राथमिकता देगा। इससे ग्रामीण क्षेत्र के उद्यमी ही नहीं शहरी क्षेत्रों में रहने वाले उद्यमी भी सहज रूप से ग्रामीण क्षेत्रों की ओर आकर्षित होंगे और ऐसे में रोजगार के अवसर तो बढ़ेंगे ही।

करों में छूट के प्रावधान के अलावा सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना करने को प्रोत्साहित करने के लिए किफायती दर पर जमीन और बिजली की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके अलावा पंचवर्षीय योजनाओं और आम बजट में ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए अधिकतम परिचय के प्रावधान के साथ-साथ ऐसी घोषणाएँ की जानी चाहिए जिससे उद्यमियों को यह आभास हो सके कि ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने में देश का ही नहीं अपितु अपना भी हित है।

ग्रामीण औद्योगिक क्षेत्रों के लिए ऐसे कदम उठाए जाने चाहिए जिससे पर्यावरण असन्तुलन न हो पाए। जहाँ उद्योग होंगे, निश्चित रूप से वहाँ पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव तो पड़ेगा ही। अतः उद्योगों के लिए पर्यावरण अनुकूल कुछ मानकों का प्रावधान करना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा करते हुए उद्यमियों को ऐसा नहीं लगना चाहिए कि ये प्रावधान उन पर थोपे जा रहे हैं अपितु उन्हें यह अहसास हो कि यह सब कुछ उनके हित में ही किया जा रहा है। इसके अलावा, गांवों की ओर जाने वाले मार्गों और औद्योगिक क्षेत्र से गुजरने वाली सड़कों के दोनों किनारों पर तथा औद्योगिक क्षेत्र के चारों ओर हरे-भरे पेड़ों की कतारें लगानी चाहिए। इसके लिए स्थानीय सरकारी निकाय के साथ-साथ उद्यमियों की भी सक्रिय भागीदारी होनी चाहिए। ऐसा करने से बिगड़ते पर्यावरण संतुलन पर रोक तो लगेगी ही, साथ ही औद्योगिक क्षेत्र का वातावरण भी मनोहारी हो जाएगा।

शहरों की ओर बढ़ते पलायन के मूल में तीन ही कारण विद्यमान हैं—रोजगार के अवसर, शैक्षिक वातावरण और स्वास्थ्य सेवाएँ। आज बदलते खानपान एवं जीवनचर्या के कारण बढ़ते रोगों के साथ-साथ तमाम तरह की बीमारियाँ भी बढ़ती जा रही है। यदि ग्रामीण क्षेत्रों में ही स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध हो जाएं तो ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का शहरों के प्रति आकर्षण अपने आप समाप्त हो जाएगा और इसके साथ ही निर्माण होगा स्वस्थ ग्रामीण भारत का। ग्रामीण क्षेत्र स्वस्थ होगा तो निश्चित रूप से उसके निवासियों की सक्रिय शारीरिक क्षमता एवं भागीदारी के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योग भी लगेंगे और रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे।

बुनियादी ढाँचे के विकास का ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति आय और रोजगार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा, एक बेहतर बुनियादी ढाँचे का अर्थ है संसाधनों तक पहुँच और जीवन की बेहतर गुणवत्ता।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि यदि उपर्युक्त मूलभूत विषयों की तरफ ध्यान दिया जाए तो गांवों में उद्योगों की स्थापना के लिए सुदृढ़ बुनियादी आधार तैयार हो जाएगा। इससे किसी उद्यमी या बाहरी निवेश को आमंत्रित करने की आवश्यकता नहीं होगी बल्कि वह स्वयं ही ग्रामीण क्षेत्र में उद्योग स्थापित करने और उद्योगों में निवेश करने के लिए खिंचा चला आएगा। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में समृद्धि आएगी और शहरों की तरफ लोगों का पलायन रुकेंगा तथा भारत के विकास की हवा शहरों से होती हुई गांवों की ओर प्रवाहित होगी। अगर ग्रामीण क्षेत्र समृद्ध होगा तो भारत को समृद्ध होने से कोई नहीं रोक सकेगा तथा तथा वर्तमान मोदी सरकार का 5 ट्रिलियन डालर की अर्थव्यवस्था बनाने का सपना साकार हो सकेगा।

संदर्भ सूची-

1. दत्त एवं सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, रामनगर, नई दिल्ली-110055, 2012
2. कुरुक्षेत्र, जनवरी 2015
3. योजना, अक्टूबर 2012
4. इंडियन इकोनामी - एस.के.मिश्रा, वी.के.पुरी, संस्करण 2004, पृ0 916
5. एग्रीकल्चरल इकोनॉमी - बी.पी. त्यागी, पृ0 827
6. कुरुक्षेत्र, फरवरी 2017
7. योजना, सितंबर 2018

“महाकवि राजशेखर कृत बालरामायण में हनुमत्तत्त्वानुशीलन”

डॉ० अशोक कुमार द्विवेदी

शिक्षक, सरयू प्रसाद इण्टर कॉलेज, कुण्डा, प्रतापगढ़, (उ०प्र०)

महाकवि राजशेखर की कीर्तिकौमुदी विगत सहस्र वर्षों से अप्रतिहत भाव से विद्वानों को आप्यायित और चमत्कृत करती आ रही है। कवि, नाटककार और आचार्य विविध रूपों से उनकी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रही है। वे मात्र संस्कृत साहित्य के ही चूड़ान्त विद्वान नहीं थे, अपितु प्राकृत भाषाओं के विविध रूपों का भी उन्हें पूर्णतः ज्ञान था और इस पाण्डित्य के आधार पर ही उनके समकालिक शंकर वर्मा ने उन्हें वाल्मीकि और भवभूति का अवतार कहा था, जिसे राजशेखर ने स्वीकृत करते हुए उद्धृत किया है—

बभूव वाल्मीक भवः पुरा कवि-
स्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्टताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
सर्वतर्ते संप्रति राजशेखरः॥¹

‘बालरामायण’ संस्कृत-साहित्य में अपना प्रतिस्पर्धी नहीं रखता। इसके अध्ययन से राजशेखर का वेद तथा पुराण दोनों के विषय में अद्भुत परिचय प्राप्त होता है। यह परिमाण में ही महान नाटक नहीं है, अपितु गुणों की दृष्टि से भी यह महनीय रचना है। कवि के काव्य रचना पाठव का दर्शन प्रत्येक पद्य में दृष्टिगोचर होता है। राजशेखर की प्रतिभा वर्णनपरक महाकाव्य के प्रणयन में नितान्त समर्थ है। राजशेखर अपनी प्रौढ़प्रतिभा एवं आलोक-सामान्य, रचना-चातुर्य के लिए तत्कालीन कविजनों के शिरोमणि स्वीकार किये गये हैं। नाटक की महनीयता नट के अभिनय कौशल का चमत्कार-प्रदर्शन नहीं अपितु कवि की प्रतिभा का विलास है। साधारण नाटक ही रस की अभिव्यक्ति के लिए अभिनय की अपेक्षा रखता है, महान नाटक न नट की अपेक्षा रखता है, न अभिनय की। इन दृष्टियों को यदि ध्यान में रखा जाय तो ‘बालरामायण’ की विपुलकायता किसी प्रकार का दूषण नहीं अपितु भूषण है।

महाकवि राजशेखर के ‘बालरामायण’ में प्रदत्त कथा का श्रोत मुख्य रूप से वाल्मीकीय रामायण ही है क्योंकि नाटककार ने आरम्भ में ही उनका स्मरण किया है।² वाल्मीकि रामायण मुख्य श्रोत होने पर भी नाटककार ने पर्याप्त मौलिक उद्भावनाओं की भी सृष्टि की है। जिससे वाल्मीकि रामायण से कथा भाग में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है। महाकवि राजशेखर पर पूर्ववर्ती कवियों विशेषकर महाकवि कालिदास एवं भवभूति के महावीरचरित तथा उत्तररामचरित आदि का प्रभाव भी स्पष्टतः लक्षित होता है।³

‘बालरामायण’ के 7 से लेकर 10वें अंकों तक यत्र-तत्र हनुमद्विषयक प्रसंग हमें प्राप्त होते हैं—यथा-कर्पूरचण्ड श्रीराम का गुणगान करता हुआ कहना प्रारम्भ करता है कि सागर का लंघन कर, अशोक-वाटिका विध्वंस कर तथा अक्ष को मारकर सीताप्रदत्त चूड़ामणि लेकर हनुमान् आपके पास आये, यह सभी आपके महिमा का ही प्रभाव है। यहाँ पर श्रीराम के महिमा वर्णन के साथ ही कर्पूरचण्ड ने व्याजोक्ति के रूप में हनुमान के चरित्र का सार रूप में वर्णन प्रस्तुत किया है—

भीमं यज्जलधिं जवेन हनुमानुल्लङ्घ्य लंकां गतो
यच्चाशोकमहावनं दलितवानक्षं च यत्क्षुण्णवान्।
सीतोपायनमौलिरत्नसहितः प्राप्तश्च यत् त्वामसौ
तत्राप्येष भवत्प्रभावमहिमा निर्यन्त्रणः कारणम्॥⁴

हनुमान् बुद्धि-विवेक एवं पराक्रम में असाधारण होकर भी अत्यन्त विनम्र हैं। उनमें अहंकार स्पर्श तक नहीं किया है। प्रत्येक सफलता को वे प्रभु राम की कृपा का परिणाम मानते हैं। उनका यह निराभिमानी रूप उनकी महानता का सर्वाधिक महत्पूर्ण पक्ष है। प्रभु की महानता और अपनी लघुता, तुच्छता या असमर्थता की व्यंजना ही सच्चे व सिद्धसन्त की पहचान होती है। पूज्य तुलसी ने इसी को कुछ पृथक् रूप में प्रस्तुत किया है—

सिंधु तरे, बड़े वीर दले खल जारे हैं लंक से बंकमवा से
तै रन-के हरि के विदले अलि-कुंजर छैलछवा से

जिस चूड़ामणि को माँ जानकी ने हनुमान् जी को प्रदान किया उस चूड़ामणि को महाराज दशरथ का प्रसाद मानकर उन्होंने धारण किया था। यह बात वामदेव के कथन से अभिव्यक्त होती है। क्योंकि वनगमन के समय सीता जी कर्णभूषण, कंकण, हार, नूपुर, बाजूबन्द तथा मेखला आदि को त्याग दिया था—

निष्कर्णिकाऽस्तवलयोज्झितहारयष्टि
निर्नूपुराप्यपहतांगद मेखला च।
त्वत्कः प्रसाद इति केवलमेववेणौ
चूड़ामणिं निषधत्री चलिता वधूस्ते॥⁶

वन्दी और प्रतिहार के वार्तालाप प्रसंग में प्रतिहार ने हनुमान्जी के केवल पराक्रम का अत्यल्प वर्णन किया है, किन्तु वह 'गागर में सागर' की उक्ति को पूर्ण चरितार्थ करता है, क्योंकि हनुमान् जी समस्त वानर सेना को अपने रोमावलि के अवलम्बन से दुर्लभ समुद्र के पार ले जाकर राक्षसों से युद्ध करने के लिए उद्यत हैं-

वक्तीव वानरबलानि हसन् हनुमान
मद्रोमवल्लिषु दृढंकूरुतावलम्बम्।
येनैष सागरमहं लघु लंघयामि।
श्यामाचरैश्च समरं सह योजयामि॥⁷

हनुमान्जी में असीम साहस विद्यमान था वे सभी गुणों के सागर हैं उन्हें आठों सिद्धियाँ प्राप्त हैं अवसरानुकूल रूपधारण में भी वे समर्थ हैं उनके पराक्रम का वर्णन करते हुए महात्मा तुलसी ने भी लिखा है-

गगन निहारी, किलकारी भारी सुनि हनुमान
पहिचानि भये सानन्द सचेत हैं
बूड़त जहाज बच्चो पथिक समाजुमानो
आज जाये जानि सब अंक माल देत हैं⁸

इस कथन से सिद्ध होता है कि संपूर्ण वानरी सेना हनुमान् पर आश्रित थी। हनुमन्नाटक में स्वयं हनुमान् ने भी अपने बल पौरुष को श्रीराम से निवेदित किया है-

किं प्राकारविहार तोरणवती लंकामिहैवानये
किंवा सैन्यसमुद्धृतं च सकलं तत्रैव संपादये।
हेलान्दोलित पर्वतोच्चशिखरैर्बध्नामि वारानिधिं
देवाज्ञापय किं करोमि सकलं दोर्दण्डसाध्यमम॥⁹

समुद्र से रूष्ट श्रीराम को कुपित देखकर प्रणामपूर्वक हनुमान् जी ने उनसे प्रार्थना की कि हे देव! आप अपने भौहों की कुटिलता, सन्धानित बाण का परित्याग करें, क्योंकि जिनकी भुजंगिनियां कीर्तिमान कर रही हैं वह समुद्र करबद्ध हो आपके समक्ष उपस्थित हो रहा है। इस प्रसंग से यह प्रतीत होता है कि, कुपितावस्था में श्रीराम से प्रार्थना करने की क्षमता मात्र हनुमान् जी में ही थी राजशेखर ने सेवक-सेव्यभाव के माध्यम से ही संवाद को जीवन्तता प्रदान किया है-

सेयं देव भृकुटिरचना मुंचतु त्वल्ललाटं
ज्योतिश्चक्रस्तबकितशिखश्चापदण्डं च बाणः।
वारां मध्यादयमुदयते यन्नगीगीतकीर्तिः
सार्धदारैर्नदपरिवृतः सांजलिर्यत्समुद्रः॥¹⁰

विश्वकर्मा पुत्र नल के स्पर्श से पाषाण जल में तैरेंगे इस तथ्य का श्रवण कर लोगों में आनन्द की लहरें तरंगायित होने लगी और लोगों के आनन्द हास्य का श्रवण कर हनुमान्जी ने कहा-हाँ पता चल गया, समुद्र के वचनों को सुनकर ही कपिसेना में यह अट्टहास है-

हनुमान् (समाकर्णितकेन)-तविदमत्रभगवतो मकरालयस्य
वचनमुपश्रुत्य हृष्यतां कपिबलानामेष हराट्टहासमांसलः कलकलः॥¹¹

इसी प्रसंग में श्रीराम से समुद्र ने पुनः कहा पुल बनने पर ही समस्त वानरों के लिए मार्ग सुगम हो जायेगा क्योंकि सभी वानर हनुमान् नहीं हो सकते। समुद्र के इस कथन से हनुमान् द्वारा समुद्र लांघने की शक्ति का संकेत मिलता है-

समुद्र-रामभद्र! किमपि वाच्छन्तु वानरवीराः सकलकपि
कुलानुग्राही पुनरयं मार्गो न सर्वे हनुमन्तस्तदमुं
मलयतटीविटंकमधिस्था पश्यतु सेतुबन्धप्रदेशं रामः॥¹²

पूज्य तुलसी ने तो सर्पों की माँ सुरसा के भी मुख से हनुमान् की बुद्धि तथा बल का बखान करवाया है-

'राम काज सब करिहु तुम्ह बल बुद्धि निधान'¹³

सुग्रीव ने पर्वतानयन हेतु सेनापतियों को आदेश देने का निर्देश जैसे ही हनुमान् को दिया तो आदेश होते ही उन्होंने कपि वीरों को उत्साहित करते हुए कहा-हे वीरों! आप लोगों के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है। अतः पर्वतो को लाने के लिए दिग्-दिगन्तरों में प्रयास करें-

दृष्यद्विक्रमकेलयः कपिभटाः श्रण्वन्तु सुग्रीवजा-

माज्ञां मौलिनिवेशितांजलिपुटाः सेतोरिह व्यूहने।

दोर्दण्डद्वयताडनश्लथ धरावन्धोद्धृतान् भूधरा-

नानेतुं सकलाः प्रयात ककुभः किं नाम वो दुष्करम्॥¹⁴

यहाँ कपिवीरों के प्रोत्साहित करने से हनुमान् जी के 'बुद्धिमतां वरेण्य' का परिचय प्राप्त होता है, क्योंकि बिना उत्साह के कोई भी कार्य असम्भव है। हनुमन्नाटक तो उनके उत्साह की गाथा से पूरित है। जाम्बवान ने तो उन्हें रूद्रावतार बताया और भगवान राम ने स्वयं हनुमान् के बुद्धि, बल, चातुर्य को दृष्टि में रखते हुए उनका स्तवन किया है-

रामचन्द्रो रूद्रस्तुतिं कृत्वा भो-भो मारुते, त्वया विहीनः कः कर्तुं समर्थोऽस्ति॥¹⁵

गोस्वामी तुलसीदास ने तो श्रीराम द्वारा हनुमान्जी को सुर, नर तथा मुनियों में भी श्रेष्ठ प्रदर्शित किया है-

सुनु कपि तोहि समान उपकारी

नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी॥¹⁶

सैनिकों द्वारा लाये गये पत्थरों को सेतुबन्ध कार्य में लगाने की आज्ञा जैसे ही सुग्रीव ने दी हनुमान्जी हंस पड़े और कहने लगे कि राम के प्रयास से विनीत होकर समुद्र शोणभद्र नद के माध्यम से अपने अन्दर रहने वाले जल जन्तुओं को शिक्षित करने लगे-

हनुमान् (विहस्य) आपद्विनीतः किमपि वर्तते वारिराशिः।

यत्सेतुबन्ध विहितये निज प्रतीहारशोणमुखेन शिक्षति

जलचर महासत्त्वानि॥¹⁷

यहाँ आपद्ग्रस्त अवस्था में विनीत समुद्र के भाव को दयालु हनुमान् जी ने अभिव्यक्त किया है इससे हनुमान् जी की दयालुता का पुनीत दर्शन होता है। हनुमान बाहुक में गोस्वामी जी ने हनुमान् जी को उजड़े हुए को बसाने वाला बताया है यह उनकी दयालुता की पराकाष्ठा है-

उथपे थपनथिर थपे उथपनहार,

केसरीकुमार बल आपनों संभारिये॥¹⁸

सुग्रीव ने हनुमान् से कहा दोनों वानरों को बुलाओ जिससे वे भगवान राम से सेतुबन्ध की विधि का वर्णन करें हनुमान् अतिशीघ्र कपित्थ-दवित्थ को सुग्रीव के सामने उपस्थित कर दिया हनुमान जी की शीघ्रता को देखकर उनके कार्य सम्पादन की निपुणता का ज्ञान होता है॥¹⁹

दवित्थ की बात को सुनकर हनुमान् ने कहा-समुद्र में जो पर्वत फेंके जो रहे हैं, वे सभी मन्दाचल की टकराहट से छिटके अमृत बिन्दु के पान से अमर बने जल मानुषों की बुद्धि में मन्थन का भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं-

यं यं गिरि क्षिपति वानर वर्ग एष वारानिधौ निपतता ननु तेन-तेन।

द्राड् मन्दराहतसुधाकवलामराणां संस्थाप्यते मथनधीर्जलमानुषाणां॥²⁰

हनुमान जी के कथन का अभिप्राय यह है कि पर्वतों के प्रहार से जल जन्तुओं के प्राण की हानि नहीं हो सकती क्योंकि वे सभी पर्वत मन्दाचल के सम्पर्क से अमरत्व प्रदान करने वाले हैं।

कुशल योद्धा बलवान वानरों से आक्रान्त राक्षस सेना लंका की ओर गमन करने लगी ऐसी कपित्थ की वाणी सुनकर हंसते हुए हनुमान् ने कहा हम लोगों की विजय हुई इसलिए प्रधान राक्षस सेना विमुख हो गयी। श्रीराम ने कहा सेनाओं के आवागमन से जय-परायज की सम्भावना नहीं होती तब साहसी हनुमान् ने दृढ़तापूर्वक निवेदन किया कि प्रधान सेना के विमुख होने पर अन्य सैनिक बारह वर्षों तक सामने नहीं आ सकते क्योंकि उनमें सामना करने की शक्ति ही नहीं रह जाती-

हनुमान्-देव! नैवं यत्किल प्रमुखविमुखं वलं द्वादशवर्षाणि न

सम्मुखी भवतीति प्रायोवादः॥²¹

श्रीराम ने पुनः हनुमान् को सम्बोधित करते हुए कहा-सम्मुख विमुख से क्या लाभ क्योंकि यहाँ कैलाशोत्थापक न रावण है न इन्द्र विजेता मेघनाद ही। इतने में राक्षस सेना प्रतोली पार कर स्थित है-

ऊपर विमानारूढ कौन है? ऐसा राम के द्वारा प्रश्न करने पर हनुमान् जी ने कहा राक्षसराज रावण हैं-

रामः- (विहस्य)-भद्र हनुमन् किमनेन विमुखेन सम्मुखेन

वा यदिह न धूर्जटिधराधरो)द्वारेऽप्यकुण्डो दशकण्ठो नापि विनिर्जितमधवा

मेघनादः। (पुरोऽक्तोऽयं) कथं लंकाप्रतोलीमतिक्रम्य राक्षसबलं वर्तते।

(उर्ध्वमवलोक्य सकौतुकम्)

कोऽयं दिव्ये विमाने

हनुमान्!-रजनिचरपतिः।²²

प्रस्तुति कथन में हनुमान्जी की निश्चयात्मिका बुद्धि का पता चलता है। इसी निश्चयात्मकबुद्धि को पूज्य तुलसी ने अपनी कवितावली में कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है-

दिवस-सात जात जानिवे न मातु! धरू
धीर, अरि-अंतकी अवधि रहि थोरिकै।
बारिधि बंधाइ सेतु ऐहैं भानुकूल केतु
सानुज कुशल कवि कटक बटोरि कै।
वचन विनीत कहि, सीता को प्रबोधु करि
'तुलसी' त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै।
जै जै जानकीस दससीस-करि-केसरी
कपीस कूधो बात-घात उदधि हिलोरि कै।²³

सुमुख नामक राक्षण रावण को सम्बोधित करते हुए कहता है-हे पुलस्ति नन्दन आपके पुत्र मेघनाद ने सागरोल्लंघनकर्ता हनुमान् के उस शिर पर बाण प्रहार किया है जिस शिर को अंजना ने आनन्दाश्रु से अभिसिंचित किया है तथा वायु देव द्वारा चुम्बित है-

यन्मङ्गले स्नपतिमन्जनयाऽऽर्द्धनेत्यायन्मारूतश्च परिचुम्बति कौतुकेन।
न्यस्तः शरः शिरसि तत्र हनूमतोऽस्य पुत्रेण ते रभसलोहितसागरस्य।²⁴

प्रस्तुत अंश में सुमुख राक्षस ने ब्याजोक्ति से हनुमान् के वैशिष्ट्य को प्रदर्शित किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी हनुमान के महात्म्य को इसी भाव से व्यक्त किया है-

दूत रामराय को सपूत पूत कौन को तू
अंजनी को नन्दन प्रताप भूरि भानुसों।
सीय-सोच-समन दुरित दोष दमन
सरन आये अवन लक्षन प्रिय प्रान सों।
दसमुख दुःसह दरिद्र दरिवेकोभयो
प्रकट त्रिलोक लोक तुलसी निधान सों।
ज्ञान-गुनवान बलवान सेवा सावधान
साहेब सुजान उर आनू हनुमान सो।²⁵

चिंनगारियों को देखकर दुर्मुख द्वारा विलाप करने पर रावण कहने लगा कि शरीर में लगी अग्नि से हनुमान् ने लंका जलाई उसे कृत अपराध मानकर अग्नि स्वयं मुझसे क्षमा याचना करने के लिए आ रही है-

अनेन लंका यदकारि मत्पुरीं
हनुमतो गात्रगतेन भस्मसात्
निजापराध प्रशमाय तद्भुवं
निषेवितुं मामयमेति पावकः।²⁶

रावण के इस कथन में उसकी बुद्धिहीनता का स्पष्ट निदर्शन होता है क्योंकि पूछ में अग्नि लगाने की आज्ञा उसी ने दिया था। साथ ही हनुमान् का वैशिष्ट्य भी इस कथन से व्यक्त हो रहा है क्योंकि जिस अग्नि ने सुवर्णमयी लंका को भस्मसात् किया वही हनुमान् के रोम को भी प्रदग्ध न कर सकी।

हनुमन्नाटकम् में भी लंकादहन प्रसंग में रावण की अविवेक का द्योतन हुआ है। जिसमें रावण ने मूर्खता व्यक्त करते हुए कहा-

पिनाकधारी शिव मेरे दश मस्तक चढ़ाने से प्रसन्न हुए ग्यारहवें रूद्र नहीं प्रसन्न हुए यही कारण है कि वे मेरी नगरी जला रहे हैं-

तुष्टः पिनाकी दशभिः शिरोभिस्तुष्टो न चौकादशको हि रूद्रः
अतोहनूमान्दहतीति कोपात्पत्तेहि भेदो न पुनः शिवाय।²⁷

कंकालक ने कहा-चारों ओर वानर सेनापतियों ने घेर लिया है सम्मुख जाम्बवान, मणिमान, गतामुख, दुःसह आदि राक्षस सेनापति विद्यमान है। पीछे की ओर गय, गवय गवाक्ष कटाक्ष आदि तैनात है। बायीं ओर दधिमुख दुर्मुखादि हैं और शरम तथा केशरी किशोर हनुमान जी उपस्थित है-

कंकालकः-पुरतोऽपसृत्यं चतुर्दिशं परिवृतो वानरसेनापतिभिः। तस्य पुरतो जाम्बवन्मणिमन्महामुखदुःसहप्रभृतयः स्थिताः कक्षाधिपाः गय गवय कटाक्षपुरःसुराः पश्चाद् गोलांगूलबलाधिपाः। दधिमुखदरीमुख दुर्मुख प्रधाना वामतः। शरभिकेसरिकिशोरप्रमुखाः प्रदक्षिणतो भूत्वा वलितुं प्रवृत्ताः।²⁸

महाकविराज शेखर ने इस कथन से हनुमान् द्वारा समस्त वाहिनी का रक्षा भार घोषित कराया है। ऐसा होना भी चाहिए क्योंकि कि हनुमान्जी स्वयं मारुततुल्य वेग वाले हैं। यही नहीं गोस्वामी जी ने तो उन्हें समुद्र तथा विशाल पर्वतों को भी चंचल करने वाला माना है-

जब अंगदादिन की मति-गति मंद भई,
पवन के पूत को न कूदिवे को पलु गो।
साहसी हवे सैलपर सहसा सकेलि आह,
चितवत चहुँओर औरनि को कलु गो।
'तुलसी' रसातल को निकसि सलिलु आयो
कोलु कलभल्यो, अहि-कमठ को बलु गो।
चारिहूँ चरन के चपेटि चापें चिपिटि गो
उचकें उचिक चारि अंगुल अचलु गो।²⁹

प्रस्तुत प्रसंग से स्वतः सिद्ध है कि महाकवि राजशेखर के हनुमान् अंगदादि वीर सैनिकों को भी निर्भयता प्रदान करने वाले थे।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम ने जब अर्धचन्द्राकार बाण से कुम्भकर्ण का शिर काट दिया तो वानरी सेना में हा-हाकार मच गया। किन्तु वानरी सेना की क्षति न हो इसलिए हनुमान्जी ने उसे आकाश में पकड़ लिया और सागर में फेंक दिया-

सद्यो राक्षसमल्लभल्लदलितग्रीवाप्रकाण्ड पत-
न्निद्रालोर्दुहिणप्रणप्तुरसदृग्दंष्ट्राकरालं शिरः।
द्राक् शाखामृगचक्रचूर्णनभयादादाय तारापक्षात्
प्रक्षिप्तं च महार्णवे हनुमता दृष्टं च गत्वासुरैः।³⁰

प्रस्तुत प्रसंग में महाकवि राजशेखर ने हनुमान्जी की बुद्धि चातुर्य क्षिप्रकारित्व तथा अतुलितबलधामत्व के साथ ही रक्षकत्व की अभिव्यक्ति भी किया है।

हनुमन्नाटक में भी यह भाव उस समय व्यक्त हुआ है जब अक्ष को मारकर हनुमान् जी ने ब्रह्मपाश में अपने आपको आबद्ध कराया था क्योंकि वहाँ भी उनके अप्रतिम पौरुष प्रदर्शन के साथ ही विवेक चातुर्य का ज्वलन्त उदाहरण मिलता है-

इत्युक्त्वा रजनीचरस्य हनुमानुद्भिद्यलीलावनं
वीरं तस्सुतमक्षमात्तपरिधाथातैर्जधानागतम्।
तत्कोपारुणलोचनेन्द्र जयिना प्रांग् निष्कलत्वाद्भुतं
बह्वस्त्रेण विगर्हितेन विधिना वद्धो विदग्धः कपिः।³¹

राम-रावण युद्ध में कौन किसके द्वारा मारा गया इन तथ्यों को संकेतित करते हुए चित्रगुप्त ने लिखा कि कज्जलकांति युक्त समर भयंकर हनुमान् ने धूम्राक्ष और अकम्पन को मारा।

धूम्राक्षं क्रोधधूम्राक्षमकम्पनमकम्पनम्
हतवानंजनीजन्मा भिनान्जन समप्रभः।³²

इस प्रसंग के माध्यम से महाकवि राजशेखर ने हनुमान्जी के समर भयंकरत्व को व्यक्त किया है। पूज्य तुलसीदास जी ने तो भीष्म पितामह के द्वारा हनुमान् जी को तीनों लोकों में सर्वाधिक बलशाली बताया है-

कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाड़ै मानो
नाप के भाजन भरि जलनिधि-जल भो
जातुधान दानन परावन को दुर्ग भयो,
महामीन वास तिभि तोमनिको थल भो
कुंभकर्ण-रावण-पयोदनाद-ईधन को
तुलसी प्रताप जाको प्रबल अनल भो
भीष्म कहत मेरे अनुमान हनुमान
सरिबो त्रिकाल न त्रिलाक महाबल भो।³³

कवितावली में भी हनुमान् जी समर भयंकरत्व दर्शनयी है-

मारिकै, पधारिकै, उपारिभुजदण्ड चंड
खण्डि-खण्डि डोर ते विदारे हनुमान को।³⁴

लंका अपनी सखी अलंका से शोक व्यक्त करती हुई कहती हैं कि यह अग्नि निर्दयी लोगों का प्रथमोद्गार है क्योंकि इसने अशोक नामक क्रीड़ावन को जलाकर सभी को शोकाकुल बना दिया-

लंका-कंकलि कानन दहनो निष्करूणानां प्रथमोदाहरणं हुतवतः ततस्ततः।⁵

महाकवि राजशेखर ने प्रस्तुत अंश में हनुमान् द्वारा अशोक वाटिका को जलाने का संकेत किया है। यह राजशेखर जी की एक मौलिक उद्भावना है यद्यपि वन उजाड़ने की पुष्टि तुलसीदास जी ने भी किया है-

काननु उजार्यो तो उजार्यो न विगार्यो कछु
वानरू वेचारो वार्धि आन्योहठि हारसों।⁶

अयोध्या प्रस्थान करते समय विमानारूढ़ श्रीराम सीता को युद्ध स्थल का अवलोकन कराते हुए कहते हैं कि हे सीते! यहाँ पर कपि और राक्षसों के मध्य अनेकास्त्रशस्त्रों की वर्षा के साथ केशा-केशि तलातलि युद्ध हुआ।

इस स्थान पर नागपाश से हम लोग आबद्ध हो गये थे यहाँ शक्ति के प्रहार से तुम्हारे देवर मूर्च्छित हुए किन्तु हनुमान् ने संजीवनी बूटी के साथ द्रोणांचल पर्वत लाकर उन्हें जागृत किया -

अग्रेविलोक्या कृशांगि कुतुहलेन
दत्त्वा दृशं तरूणकेतकपत्रदीर्घाम्
नानस्त्रमन्त्रणपरं कपि राक्षसानां
युद्धं कचाकचि तलातलि च प्रवृत्तम्॥
(अन्यतो दर्शयन्)-

अत्रासीत्फणि पाशबन्धनविधिः शक्त्या भवदेवरे,
गाढं वक्षसि ताडिते हनुमता द्रोणादिरत्राहतः
दिव्यैरिन्द्रजिदत्र लख्मणशरैर्लोकान्तरं लम्बितः
केनाप्यत्र मृगाक्षि राक्षसपतेः कृत्ता च कण्ठाटवी।⁷

यायावरवंशीय राजशेखर जी ने श्रीराम जी की इस उक्ति के माध्यम से हनुमान् जी के प्राणदातृत्व को भी अभिव्यक्त किया है क्योंकि वायु ही प्राण है और हनुमान् जी स्वयं वायु पुत्र हैं।

महाकवि जयदेव ने भी हनुमान् जी को लक्ष्मण के प्राणदाता के रूप में चित्रित करते हुए कहा है-

आनीत द्रोण शैलेन सौमित्रेः शल्यहारिणा
अक्रियन्त जगन्त्येव निश्शल्यानि हनूमता।⁸

पूज्य तुलसी ने भी भगवानराम से हनुमान् जी के प्राणदातृत्व भाव की सराहना कराते हुए आशीर्वचन स्वरूप कहलाया है-

चल्यो हनुमानु सुनि जातुधान कालनेमि
पठयो, सो मुनिभयो, पायो फलु छलि कै।
सहसा उखारो है पहारू बहु जोजन को
रखवारे मारे भारे भूरिभट दलिकै।
वेगु बलु साहस सराहत कृपाल रामु
भरत की कुसल, अचलु ल्यायो चलिकै।
हाथ हरिनाथ के विकाने रघुनाथ जनु,
सील सिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै।⁹

दूर से देखने का अभिनय करती हुई माँ जानकी ने कहा हे राम ऐसा आभास हो रहा है कि सागरोल्लंघनकर्ता हनुमान् से भी सूक्ष्म दृष्टि आपकी है, इसके पश्चात् हनुमान् जी प्रवेश करके तथा प्रणाम करके कहने लगे- महाराज! मुझसे समाचार पाकर वशिष्ठ, भरत तथा शत्रुघ्न सभी प्रकृतियों के साथ आपके अभिषेकार्थ तैयार हैं-

हनुमान्-(प्रणम्य) देव! मत्तः श्रुत वृत्तान्तो

वशिष्ठः समंभरत शत्रुघ्नाभ्यामन्याभिश्च प्रकृतिभिस्त्वदभिषेक सज्जस्तिष्ठति।¹⁰

इस प्रसंग में आचार्य राजशेखर ने श्रीराम के प्रत्यागमन की प्रत्याशा में मरणासन्न भरत को अमृतमय संदेश सुनाकर हनुमान् ने सभी को हर्षातिरेक से आह्लादित कर दिया। अतः सम्पूर्ण रघुकुल के प्राणरक्षक हनुमान् जी ही प्रतीत होते हैं।

हनुमन्नाटक में तो अखिलविश्व को आनन्दित करने वाले भगवान राम के प्राण रक्षक के रूप में महावीर हनुमान् का स्वरूप चित्रित हुआ है-

हा राम जगदानन्द किमिदं शिवमस्तुते
तब प्राणगतिद्वारस्यार्गलेयं करे मम।¹¹

हनुमान् सदैव गाढ़े (संकट) के साथी हैं। जब और सभी निरुपाय हो जाते हैं तो वे असंभव को भी संभव कर दिखाते हैं ऐसे क्षण में उनकी अवतारणा दुःख, अवसाद और अमंगल को नष्ट कर सर्वत्र आस्था, अह्लाद मंगल एवं भक्ति की सृष्टि करती है। बालरामायण में महाकवि राजशेखर ने इस तथ्य को स्पष्ट रूप में प्रदर्शित किया है। श्री हनुमान् जी की परम पवित्र एवं निर्मल सांगोंपांग सुषमा का वर्णन महामांगलिक है भगवान श्री राम ने लक्ष्मण जी से किष्किन्धा काण्ड में कहा था हनुमान् जी के मुख, नेत्र ललाट भौंह तथा अन्य किसी भी अंग में कोई दोष नहीं है-

न मुखे नेत्रयोर्वापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।

अन्येष्वपि च गात्रेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥⁴²

अन्ततः यह कहना उचित होगा कि हनुमान् असीमशक्ति, पुरुषार्थ तथा बुद्धि विवेक की जीवन्त प्रतिमान है। उनका आविर्भाव राम के कार्यों को संवारने हेतु हुआ है। पवन तनय का निष्काम, सेवा परायण, निरभिमानी तथा एकनिष्ठ भक्तरूप अनुपम है, अद्वितीय है। सम्भवतः इन्हीं गुणों के कारण वे अद्भुत एवं अलौकिक क्रियाकलापों को करने में समर्थ और सफल हो सके। उनका चरित्र सभी के लिए प्रेरणाप्रद है, आदर्श है। वे सभी वानरों में श्रेष्ठ और बुद्धिमान थे-

मारुतस्यौरसः श्रीमान् हनुमान् नाम वानरः

वज्रसंहननोपेतो वैनतेयसमो जवे॥

सर्व वानर मुख्येषु बुद्धिमान् बलवानपि॥⁴³

यही कारण है कि लोक में रामभक्ति के अन्तर्गत भक्ति के अधिष्ठाता भगवान् शंकर और उनके अंश हनुमान् राम से भी कहीं अधिक लोकप्रिय हैं। हनुमान्जी के स्वभाव एवं भक्ति से ओतप्रोत स्वरूप का अवलोकन करने से उन्हें जनदेवता मानना ही समीचीन होगा। प्रस्तुत श्लोक में आदि कवि वाल्मीकि ने उनके कोमल स्वरूप का भक्तिमय चित्रण किया है-

यावद् रामकथा वीर चरिष्यति महीतले।

तावच्छरीरे वत्स्यन्तु प्राणा मम न संशयः॥⁴⁴

हनुमान् शब्द में 'हन्' धातु का अभिप्राय गति से है अतः हनुमान् का अर्थ-गतिवाला, ज्ञानवाला एवं प्राप्ति वाला है। धार्मिक एवं शास्त्रीय विवेचना के अनुसार राम-भक्ति के अधिष्ठाता भगवान् शंकर ने हनुमान् के रूप में जन्म लिया। अतः हनुमान् रूद्रावतार है, साथ ही वे राम के भी अंश हैं ये दोनों कथाएं क्रमशः शिवपुराण एवं आध्यात्म रामायण में आती हैं इस प्रकार वे पवन पुत्र, केशरी नन्दन, अंजनी कुमार के साथ ही साथ रामांश भी हैं।

यायावरवंशीय महाकवि राजशेखर की बालरामायण में हनुमत्तत्त्व की जितनी चर्चा उपलब्ध हुई उसका अनशीलन प्रस्तुत अंश में प्रदर्शित है। आशान्वित हूँ कि हनुमद्विषयक अनुशीलन गवेषकों को संतुष्ट करेगा।

संदर्भग्रन्थ-सूची:-

1. बालरामायण-अंक-1 श्लोक-16 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
2. योगीन्द्रशेखरसं स्रष्टा रामायण महाकविः।
वाल्मीकि जन्मा जयति प्राच्यः प्राचेतसो मुनिः॥ बाल रामायण अंक 1-श्लोक 9 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
3. डा० श्यामा वर्मा कृत-राजशेखर पृष्ठ-57-62
4. बालरामायण-अंक 7 श्लोक 13 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
5. हनुमान् बाहुक-पद-18
6. बालरामायण अंक-6 श्लोक-26 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
7. बालरामायण अंक-7 श्लोक-7 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
8. कवितावली-सुन्दरकाण्ड पद-29 गीताप्रेस, गोरखपुर।
9. हनुमन्नाटक-अंक-6 श्लोक-6 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
10. बालरामायण-अंक-7, श्लोक-34 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
11. बालरामायण-अंक-7, पृष्ठ-230 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
12. बालरामायण-अंक-7, पृष्ठ-230 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
13. श्रीरामचरितमानस-सुन्दरकाण्ड-दोहा सं०-2
14. बालरामायण-अंक-7, श्लोक-46 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
15. हनुमन्नाटकम्-षष्ठोऽंकः-पृष्ठ-96 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
16. श्रीराम चरित मानस सुन्दरखण्ड-चौपाई-32
17. बालरामायण पृष्ठ-232 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
18. हनुमान् बाहुक-पद-22 गीताप्रेस गोरखपुर।
19. हनुमान् निःसृत्य वानराभ्यां सह प्रविश्येतौ कपित्थ-दवित्थौ निवेदयतः (बालरामायण पृष्ठ-232)।

20. बालरामायण-अंक-7, श्लोक-51 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
21. बालरामायण-पृष्ठ-245 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
22. बालरामायण-अंक-8 पृष्ठ-246
23. कवितावली-सुन्दरकाण्ड-पद-27 गीताप्रेस गोरखपुर।
24. बालरामायण-अंक-8 श्लोक-43 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
25. हनुमान बाहुक-8 गीताप्रेस, गोरखपुर।
26. बालरामायण-अंक-8 श्लोक-48 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
27. हनुमन्नाटक अंक-6 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
28. बालरामायण-पृष्ठ-298 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
29. कवितावली किष्किंधाकाण्ड-1- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
30. बालरामायण-अंक-8 श्लोक-82 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
31. हनुमन्नाटकम्-षष्ठोऽंकः श्लोक-21 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
32. बालरामायण-अंक-9 श्लोक-8 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
33. हनुमान बाहुक-7 गीताप्रेस गोरखपुर।
34. कवितावली-लंकाकाण्ड-48 गीताप्रेस गोरखपुर।
35. बालरामायण पृष्ठ-336 चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
36. कवितावली सुन्दरकाण्ड-11 गीताप्रेस गोरखपुर।
37. बालरामायण-अंक-10, श्लोक-19-20, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
38. अनर्थ राघव-अंक-7 श्लोक-10 चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी।
39. कवितावली लंकाकाण्ड-पद-55 गीताप्रेस गोरखपुर।
40. बालरामायण-पृष्ठ-367- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
41. हनुमन्नाटकम्-अंक-6 श्लोक-38 चौखम्भा सुरभारती वाराणसी।
42. वाल्मीकि रामायण-4/3/30-गीताप्रेस गोरखपुर।
43. वाल्मीकि रामायण-7/17/16-17 गीताप्रेस गोरखपुर।
44. वाल्मीकि रामायण-7/40/17 गीताप्रेस गोरखपुर।

भारतीय संस्कृति और विवेक के मूल आधार

डॉ० सानंद कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, सतीशचंद्र कॉलेज, बलिया (उ.प्र.)

हमारे देश का नाम भारत है। भारत का अर्थ है जो “भा” यानी प्रकाश की खोज में रत है। भारत वह देश है जो ज्ञान की खोज में सदा लगा रहा है। हमारा देश पाँच हजार साल पुराना है। वहाँ पर ज्ञान की परम्पराएँ बहुत पहले ले विकसित रही हैं जिनमें से कुछ तो अभी तक चली आ रही हैं। उनके द्वारा खोजा गया ज्ञान सारी दुनिया के लिए अभी भी बेहद जरूरी है। भारत ने बहुत प्राचीन काल से यह समझ लिया था कि बिना ज्ञान के मुक्ति संभव नहीं है। भारत में विद्या उसे ही माना गया है जो हमें बंधनों से मुक्त करे। ये बंधन हैं अज्ञानता के, लोभ के, क्रोध के, हिंसा के, भय के, लालच के, संकीर्णता के, मेरे और तेरे के। इन्हीं बंधनों में मनुष्य जीवनभर जकड़ा रहता है। भारत ने अपने दृष्टिकोण में सभी बंधनों से मुक्त होने को सबसे पहला काम माना। इसके लिए जीवन के वास्तविक सत्य “रीयल ट्रुथ” पर ध्यान देना जरूरी था।

वेदों की परम्पराओं ने, जिसमें उपनिषद भी आते हैं, बहुत पहले ही कहा था कि –“सत्य एक है, जिसे ज्ञानी लोग अनेक तरह से बताते हैं।” भगवान महावीर ने उसी सत्य के लिए कहा था कि उसे जानने के अनेक मार्ग हैं। भगवान बुद्ध ने जो करुणा और प्रेम का संदेश दिया वह सत्य और ज्ञान की उसी परम्परा का प्रकाश है। महान सम्राट अशोक ने उसी सत्य और ज्ञान को शिलालेखों पर लिखवाकर भारत के कोने कोने में फैला दिया।

हमारे अपने समय में महात्मा गांधी ने उसी महान परम्परा में से सत्य और अहिंसा को खोजा और आज की राजनीति में प्रयोग किया जिसे आप सभी जानते हैं। दुनिया में ऐसा प्रयोग न कभी हुआ न देखा गया। यह इंग्लैंड की रक्तहीन क्रांति से आगे की बात थी। हमारे देश के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी किताब ‘डिस्कवरी आफ इंडिया’ में भारत की इसी ज्ञानमय परम्परा के भारत की सबसे बड़ी विशेषता कहा है। “अनेकता में एकता” को देखने का सूत्र यहीं पर मिलता है। इसका मतलब होता है कि भारतवासी बाहरी और ऊपरी भेदभाव के भीतर छिपी हुई आत्मा की एकता को सदा जानते और मानते रहे हैं। एकता के इसी बोध को हमारे देश में ज्ञान कहा गया है। भारत की संस्कृति का यही आधार है।

यह सोचकर आश्चर्य होता है कि ईसा से हजार साल पहले से यानी आज से चार हजार साल पहले से भारत में गुरु-शिष्य परम्परा मिलती है जिसमें पढ़ कर ही ऋषि-मुनियों ने कला, साहित्य, आयुर्वेद, औषधि, संगीत, विज्ञान और अनेक शास्त्रों का विकास किया। पहले यह अध्ययन-अध्यापन ऋषियों के गुरुकुलों में होती था। बाद में उसकी पढ़ाई के लिए तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालय बनाए गए। ज्ञान-विज्ञान में भारत की ख्याति के कारण इनमें पढ़ने के लिए दुनिया भर से विद्यार्थी आते थे।

भारत में ज्ञान की परम्परा विश्वविद्यालयों के अलावा ग्रामीण विद्यालयों और गुरुओं के आश्रमों में भी दी जाती थी जो ईस्ट इंडिया कंपनी के भारत में आने के समय तक सत्रहवीं सदी तक चल रही थी। इस पर धर्मपाल नामक प्रसिद्ध इतिहासकार ने इंग्लैंड में रहकर ही शोध किया और ऐतिहासिक तथ्यों को प्रमाण सहित सामने रखा है। उसमें यह बताया गया है कि भारत की अर्थव्यवस्था दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था थी। भारत में बने हुए सूती कपड़े की माँग दुनिया भर में थी। दुनिया भर में मसालों के व्यापारी केवल भारत आना चाहते थे। चौथी सदी से सत्रहवीं सदी तक कितने तरह के ज्ञान-पिपासु, फाहियान-ह्वेनसांग जैसे बौद्ध भिक्षु, अलबरूनी और इब्नबतूता जैसे ज्ञानी, मारकोपोलो, ट्रेवर्नियर, प्लिंच और वास्को डि गामा जैसे यात्री और नाविक भारत जाने के लिए बेचौन थे। कोलंबस ने भारत को खोजने के सिलसिले में ही अमेरिका को खोजा। आखिरी भारत में ऐसी क्या बात थी?

भारत की परम्पराओं में दोष तब पैदा हुआ जब बाहरी लोगों ने इन परम्पराओं का विनाश शुरू किया। उन लोगों को ज्ञान की परम्पराओं से कुछ लेना देना नहीं था। भारत ने ज्ञान-विज्ञान को खोज कर ही अपने पास तरह तरह की भौतिक और आध्यात्मिक समृद्धि का निर्माण किया जिसे देख कर दुनिया आश्चर्य में थी। और सत्रहवीं सदी में डच, पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेजों ने हमारे देश की लूट शुरू की। कितनी बड़ी विडम्बना है कि पश्चिमी दुनिया कहती है कि पंद्रहवीं सदी में इटली के माध्यम से पूरे युरोप में पुनर्जागरण हुआ लेकिन जागने के बाद भी यह दुनिया इतिहास की सबसे बड़ी लूट में शामिल होती है। यह भारत में हुए मध्यकालीन आक्रमणों से भी भयानक बात थी। जब हमारा देश अंग्रेजों का गुलाम हुआ तो हमारी आत्मा बंदी हो गयी। हम भारतवासी तो किसी तरह के बंधन को स्वीकार करने वाले नहीं रहे। हमने ज्ञान का विकास ही सारे बंधनों से मुक्ति के लिए ही किया। हिंदू धर्म में जन्म लेने को भी बंधन माना गया है। हिंदू धर्म की सारी जीवनशैली ही इस प्रकार की है कि इसमें दोबारा पैदा होना ही जीवन में असफल होने जैसा है। इसलिए धर्म अर्थ काम के साथ ही मोक्ष की खोज की गयी। मोक्ष यानी पूरी मुक्ति (कंप्लीट लिबरेशन) भारत की खोज है। यह स्वर्ग-नर्क से आगे की बात है। भारत की चेतना पूर्ण मुक्ति की चेतना है। यही कारण है कि भारत में किसी को गुलाम नहीं बनाया और न ही किसी पर आक्रमण किया। तब भी भारत के विचार पूरी दुनिया में चारों ओर तक फैले।

भारत ने सभी जीव-जंतुओं को सारी वनस्पतियों को, समस्त जीवधारियों को विकास के क्रम में देखा है और सबमें जीवन की संभावना को महसूस किया है। आज से ढाई हजार साल पहले भगवान महावीर ने “जियो और जीने दो” का मंत्र दिया। वाल्मीकि और व्यास जैसे महाकवियों ने जीवन के भीतर छिपी हुई दिव्यता को प्रकट करने के लिए भगवान राम और कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया। कालिदास ने शकुंतला जैसे चरित्र का वर्णन किया जिसे पढ़कर महाकवि गेटे नाचने लगा। आठवीं सदी में महान आचार्य शंकर ने चारों मठ बनाए और कहा कि सत्य को समझने के लिए युद्ध से नहीं बल्कि वाद-विवाद और विचार विमर्श से अपनी बात कही जाए। आज से पाँच सौ साल पहले हमारे देश में हुए भक्ति आंदोलन ने जिसमें गुरु नानक, संत कबीर, संत मीरा, भक्त नामदेव ने जन साधारण को शामिल किया और मानव एकता के लिए काम किया।

आज हमारी दुनिया में असुरक्षा, आतंक और पर्यावरण के ख़तरों चारों ओर हैं। इस संबंध में पूरी दुनिया के लिए भारत का संदेश आज भी शांति और एकता का है। भारत सदियों से मानता आया है कि केवल मानव ही नहीं बल्कि मानव के अलावा भी पृथ्वी पर जो जीवन है, वह बचा रहे तभी मानवता भी बचेगी। असल में बड़ी मानवता की पहचान ही यही है। इसलिए पर्यावरण की सुरक्षा के लिए भारत की चिंताएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। भारत की परम्परा ने त्यागपूर्वक जीवन जीने को केंद्र में रखा है। वह दूसरों के लिए कुछ छोड़कर ही अपने लिए उपभोग की बात सदियों से करती आयी है। “मैं नहीं पहले आप”-यही भारत का आचरण है इसलिए भारत में व्यक्ति नहीं समाज महत्वपूर्ण है। पहले स्थान पर हमारे लिए प्रकृति है, पृथ्वी है और सारी मानवता है। उसके बाद ही हम अपनी बात करते हैं। महात्मा गांधी ने हमारे देश को यह बात एक बार फिर से सिखलाई। इसी को हमारे देश में ‘वसुधैव कुटुंबकम्’ कहा गया है। पूरी दुनिया एक परिवार है। नोबल पुरस्कार प्राप्त हमारे देश के महाकवि रवीन्द्रनाथ ने भी यही कहा कि हमारा लक्ष्य है कि हम ऐसी दुनिया बनाएँ जहाँ सभी को आश्रय मिले। जहाँ सारा विश्व एक नीड़ बन जाए।

बीसवीं सदी में भारत आजाद हुआ। आजादी के बाद से ही अपने पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में हमारे देश ने हर क्षेत्र में विकास के लिए काम किया। आज भी वह काम चल रहा है। वर्तमान प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी भी उन्हीं रास्तों पर आगे चलते हुए काम कर रहे हैं। महात्मा गांधी ने स्वच्छता को केंद्र में रखा था। लेकिन देश में बीसवीं सदी में विकास की आपाधापी में कचरा पैदा करने की अव्यवस्था भी फैली है। यह सारा कुछ विकास की कीमत पर हुआ है। पर्यावरण का संकट भी इसी से पैदा हो रहा है। इसलिए हमारे सामने चुनौती है कि हम विकास के साथ साथ चलते हुए पर्यावरण संतुलन को कैसे साधें! हमारे प्रधानमंत्री के आवाहन पर देश में स्वच्छता का संकल्प एक आन्दोलन बन चुका है। शीघ्र ही हम स्वच्छ और सुन्दर देश के रूप में दुनिया के पटल पर होंगे। भारत का समाज एक बहुलतावादी समाज है। यहाँ पर सभी धर्मों की परम्पराओं का आदर किया जाता है। स्वामी विवेकानंद ने १८९३ में अमेरिका में हुए विश्वधर्म सम्मेलन में ही यह बात कही थी कि हम सभी धर्मों का न केवल आदर करते हैं बल्कि उन्हें ईश्वर की ओर ले जाने वाला सच्चा धर्म मानकर चलते हैं। यह बात हमारी धर्मनिरपेक्षता के मूल में है। यह हमारे संविधान के उद्देश्य में ही निहित है। हमारे देश में धर्म और आतंकवाद को लेकर विवेकपूर्ण जनमत है। हम इसे अलग करके देखते हैं और हमारे प्रधानमंत्री ने इस बात को दुनिया के मंच पर रेखांकित भी किया है। हम आतंकवाद से पीड़ित देश रहे हैं। लेकिन अपनी समस्याओं का समाधान करते हुए चल रहे हैं। भाषा और धर्म हमारे यहाँ लड़ाई के कारण नहीं हैं। देश ने सभी महत्वपूर्ण भाषाओं को राष्ट्रीय भाषा के रूप में मान्य किया है जिसका नेतृत्व करने में हिन्दी देश के सभी प्रांतों में पुल बनाने वाली भाषा (लिंग लैंग्वेज) बन चुकी है। इस भाषा का साहित्य आज विश्व साहित्य से होड़ ले रहा है क्योंकि इसमें भारत की सभी भाषाओं के साथ ही संस्कृत जैसी प्राचीन और समृद्ध भाषा की साहित्य परम्पराएँ भी मिल गई हैं।

यह कहने की जरूरत नहीं कि हम ब्रिटिश कॉमनवेल्थ के सदस्य देश हैं। भारत की प्राचीन परम्पराओं का संगम इंग्लैंड की आधुनिकता से हुआ है जिससे आज का भारत बना है। हमारे देश की आधुनिक राजनैतिक परम्पराओं में इंग्लैंड का योगदान है। हमारा आधुनिक लोकतंत्र इससे अछूता नहीं है। हम चाहते हैं कि इस देश के ज्ञान-विज्ञान का लाभ हमारे देश को मिलता रहे। अंग्रेजी भाषा हमारे देश में “भारतीय अंग्रेजी” (इंडियन इंग्लिश) के रूप में बहुत विकसित हुई है। उसका साहित्य भी अंग्रेजी में अन्य भारतीय भाषाओं के समान ही विकसित है जिसमें अनेक लेखकों को अन्तरराष्ट्रीय ख्याति भी मिली है। हमारी दुनिया आज तकनीक के उस युग में पहुँच गयी है जिसे डिजिटल क्रांति रहा जा सकता है। सूचना का परम विस्फोट हर आदमी के हाथ में है। यह केवल सूचना भर ही नहीं है बल्कि देखने-सुनने के साथ ही जीवन को गहराई से बदलने वाली तकनीक भी है। क्षण भर में ही सोशल मीडिया बाढ़ की तरह घेर लेती है। इस विषय में नए सिरे से सोचने की जरूरत है कि तकनीक जितनी तेजी से बदल रही है क्या उतनी ही तेजी से हमारा ग्राहक और उपयोग करने वाला भी बदल रहा है। क्या हमारी शिक्षा व्यवस्था हमारे युवकों को विवेक सम्पन्न बना रही है जिसमें तकनीक के ख़तरनाक उपयोग से बचा जा सके। यह बात मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि आज यहाँ पर शिक्षा से संबंधित निर्णय लेने वाले महत्वपूर्ण लोग हमारे सामने बैठे हैं। हमें यह मिलकर सोचना है। दुनिया के सामने पर्यावरण के ख़तरों से भी बड़ा ख़तरा दिमाग को प्रदूषित करने का ख़तरा है जो यदि पूरी तरह से प्रदूषित हो गया तो फिर मानवता संकटों से मुक्त नहीं हो सकेगी।

हमारी शिक्षा की जरूरत है कि हम मुक्त मन वाले संस्कारवान मनुष्यों का निर्माण करें। यह चुनौती हमारे आपके सामने है। हमें जड़ता, मूर्खता, आत्मविनाश और भौतिकता के बंधनों में बाँधने वाला ज्ञान नहीं चाहिए बल्कि ऐसा ज्ञान चाहिए जो हमारी दुनिया को ऊँचा उठा सके, आत्मविश्वास को बढ़ा सके, दुखों को दूर कर सके और हमारी आत्मा के प्रकाश को पूरी दुनिया में फैला सके।

दरअसल ‘भारत’ का वही अर्थ है यानी जो प्रकाश की खोज में रत है। जो अंधेरे के कण नहीं इकट्ठा कर रहा बल्कि जो रोशनी को पकड़ना चाहता है। इसी भारत को पुनः साकार करने से हमारी राष्ट्रीय चेतना का विकास होगा और समाज में सामरस्य भी पैदा होगा।

सहायक ग्रंथ

1. भारत का प्राचीन इतिहास- डॉ आर एस त्रिपाठी
2. इतिहास चक्र - डॉ राममनोहर लोहिया
3. डिस्कवरी ऑफ इंडिया- जवाहर लाल नेहरू
4. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर
5. भारत: इतिहास और संस्कृति- ग मा मुक्किबोध
6. भारतीय संस्कृति के मूल आधार - श्री अरविंद
7. भारत हमें क्या सिखा सकता है? मैक्स मूलर
8. हिंदू धर्म - वेंडी डोनिगर
9. प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता- दामोदर धर्मानंद कोसंबी
10. भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास-डॉ भारतेश कुमार मिश्र एवं डॉ सच्चिदानंद त्रिपाठी

रामायण में उल्लिखित प्रमुख नगरी मिथिला - एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० रूबी तबस्सुम

असिस्टेंट प्रोफेसर- इतिहास, राजकीय महाविद्यालय, भूपतवाला, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

विषय सारांश-

मिथिला को रामायण शतपथ ब्राह्मण से पता चलता है कि विदेह माधव सरस्वती नदी के तट पर निवास करते थे, परन्तु वैश्वानर अग्नि को मुख में धारण करने के कारण अग्नि पूर्व-दिशा की ओर सब कुछ जलाते हुए आगे बढ़ा पीछे विदेह माधव और अरे पुरोहित गौतम राहुगण चले, जब अग्नि सदानारा नदी को नहीं जला पाया तो इसके पूर्वी ओर विदेह माधव के निवास करने के कारण माधव के आधार पर उस भूमि का नाम मिथिला तथा विदेह के आधार पर विदेह प्रचलित हुआ। बाल्मीकी रामायण में इसी मिथिला नगरी का बहुत ही सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। साथ ही साथ मिथिला का संस्थापक निमि को माना गया है, इसी निमि के पुत्र मिथि एवं मिथि के पुत्र जनक का उल्लेख प्राप्त होता है जो कि माता सीता के पिता थे, उन्हें मिथिलाधिप जनक कहकर भी सम्बोधित किया गया है। जैन एवं बौद्ध ग्रन्थों से भी पता चलता है कि मिथिला विदेह जनपद की राजधानी थी। पुराणों में निमि के पुत्र मिथि को मिथिला नगर का संस्थापक बताया गया तथा एक अन्य नाम तीरभुक्ति भी उल्लिखित है। वर्तमान समय के मधुबनी एवं मुजफ्फरपुर से मिथिला को समीकृत किया जाता है, यहाँ से प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर इसका समय द्वितीय शती 0 पू० से गुप्तकाल तक ठहराया गया है, परन्तु उसके बाद यह नगर लगभग उजड़ गया रहा होगा।

मुख्य शब्दावली- वैदेह, योजन, तीरभुक्ति, मैनाक पर्वत, अधीश्वर कराल, मृण्मय फलक, किलेबन्दी, पुरावस्तु ।

प्रस्तावना- मिथिला का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है, जिसके अनुसार विदेह माधव ने वैश्वानर अग्नि को मुख में धारण किया। उस समय विदेह माधव सरस्वती के तट पर निवास करते थे। वह अग्नि सब कुछ जलाता हुआ पूर्व दिशा की ओर आगे बढ़ा। उसके पीछे-पीछे विदेह माधव तथा उनका पुरोहित गौतम राहुगण चला। अकस्मात् वह सदानारा नदी को नहीं जला पाया। विदेह माधव ने अग्नि से पूछा कि अब मैं कहाँ निवास करूँ? अग्नि ने उत्तर दिया इस नदी के पूर्व की ओर। वह भूमि मानव निवास के योग्य न थी, परन्तु धीरे-धीरे ब्राह्मणों ने यज्ञाग्नि प्रज्वलित की और दलदली भूमि गीलेपन से मुक्त होकर कृषि तथा मानव निवास के पूर्णतया योग्य बन गयी। विदेह माधव का वहाँ निवास हुआ। माधव के आधार पर उस भूमि का नाम मिथिला तथा विदेह के आधार पर विदेह नाम प्रचलित हुआ।

बाल्मीकी रामायण के अनुसार मिथिला के राज्यवंश का संस्थापक निमि था। मिथि इसके पुत्र थे और मिथि के पुत्र जनक। इन्हीं के नामराशि वंशज सीता के पिता जनक थे। इसी ग्रन्थ में सीता के पिता मिथिलाधिप जनक को वैदेह कहा गया है, जिनके समय में इस जनपद की प्रसिद्धि अपने चरम पर थी तथा मिथिला को जनकपुर भी कहते थे। अहिल्याश्रम मिथिला के सन्निकट स्थित था¹। महाभारत में उल्लेख प्राप्त होता है कि इन्द्रप्रस्थ से राजगृह जाते समय कृष्ण भीम एवं अर्जुन के साथ मिथिला आये हुए थे। मिथिला विदेहों की राजधानी थी तथा राजा जनक को मिथिलाधिप कहा गया है। जैन ग्रन्थों के मतानुसार विदेह एक जनपद था और उसकी राजधानी मिथिला थी। विदेह निवासिनी होने के कारण महावीर की माता त्रिशला “विदेह दिन्ना” (विदेह दत्ता) कही जाती थी विविध तीर्थकल्प के अनुसार 19सवें तीर्थकर मल्लिनाथ और 21वें तीर्थकर नेमिनाथ दोनों ने मिथिला में ही जैन धर्म में दीक्षा ली थी²। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार मिथिला विदेह जनपद की राजधानी थी। यहाँ पर शासन करने वाला राजा महाजनक था। विदेह जनपद 300 योजन विस्तार वाला था और इसकी राजधानी मिथिला का विस्तार सात योजन था। इस विदेह देश में 16000 ग्राम, 16000 भाण्डार और 16000 नर्तकियाँ थी। विदेह से चम्पा तक सीधी सड़क थी, जिसकी लम्बाई चम्पा तक 60 योजन थी। विदेह देश के पार्श्व में काशी और कोशल नाम के देश थे³। भविष्य पुराण के अनुसार निमि के पुत्र मिथि ने मिथिला के सुरम्य नगर की स्थापना की थी। इस नगर का संस्थापक होने के कारण उन्हें जनक कहा जाता था। बृहत् विष्णु पुराण के मिथिला खण्ड में मिथिला के बारह नाम बताये गये हैं तथा मिथिला के एक अन्य प्रचलित नाम तीरभुक्ति का उल्लेख भी इसमें प्राप्त होता है, परन्तु रामायण, महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में हमें विदेहों की राजधानी अथवा उनके प्रदेश का नाम तीरभुक्ति नहीं मिलता है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि नदियों के तीरों पर स्थित भुक्ति(प्रान्त) होने के कारण मिथिला जनपद का नाम तीरभुक्ति रखा गया, जो बाद में तिरहुत में परिवर्तित हो गया। अतः स्पष्ट है कि आर्यावर्त में विदेह नामक एक प्रान्त था, जिसकी राजधानी मिथिला थी।

विश्लेषण- रामायण के अनुसार मिथिला नगर सुरम्य, शान्तिसम्पन्न एवं उच्च प्रकार के द्वारा परिवेष्टित था। विदेह राज जनक के शासनकाल में राजर्षि विश्वामित्र के साथ कौशलेश दशरथ कुमार राम और लक्ष्मण ने मिथिला की यात्रा की थी, जिसका वर्णन रामायण में इस प्रकार किया गया है कि वैशाली राजा सुमति ने परमआदरणीय अतिथि के रूप में उपस्थित ऋषि के साथ उन दोनों महाबली दशरथ पुत्रों (राम और लक्ष्मण) का विधि-पूर्वक आतिथ्य-सत्कार

किया। दोनों ही राजकुमारों ने ऋषि विश्वामित्र के साथ वहाँ रात्रि में विश्राम किया और उषाकाल में उठकर नित्यकर्मों से निवृत्त हो मिथिला (जनक-नगरी) के लिए प्रस्थान किया। विशाला से चलकर वे सब मिथिला-राज्य में आये। वहाँ राजा जनक के राज्य-पुरों की शोभा देखकर सभी महर्षि 'साधु-साधु कहने लगे तथा उन सबों ने राजा जनक के राज्य की उन पुरियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

उसके बाद उन्होंने एक उपवन में प्रवेश किया। जहाँ रमणीय पर सुनसान तथा त्यक्त आश्रम था। ऋषि विश्वामित्र से उस गौतम आश्रम तथा ऋषि की पत्नी अहिल्या की कथा सुनकर गुरु के ही अनुरोध से राम और लक्ष्मण ने उस निर्जन-वीरान आश्रम में प्रवेश कर पति शाप से शिला-भूता ऋषि पत्नी अहिल्या का उद्धार किया। वहाँ से वे सब पूर्वोत्तर दिशा की ओर राजा जनक की राजधानी में होने वाले धनुष यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए प्रस्थान किया। इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि अहिल्या के पति न्यायसूत्र के प्रणेता अक्षपाद गौतम मिथिला की ही विभूति थे तथा वैदेही जानकी के पिता सीरध्वज जनक के शासनकाल में वर्तमान थे। जब संकिशा के राजा सुधन्वा ने बिना किसी प्रकार की उत्तेजना के शान्तिप्रिय एवं सहअस्तित्व के सिद्धान्त के समर्थक सीरध्वज जनक के मिथिला राज्य पर आतयायी बनकर आक्रमण किया तब मिथिलापति ने भयंकर समर में उसे उनके सहायकों के साथ पराभूत कर निष्काम भाव से निहत किया तथा इस प्रकार अपने नृपोचित कर्तव्य का वीरतापूर्वक पालन किया। इतना ही नहीं उसके गृहराज्य पर भी उन्होंने अधिकार कर लिया तथा अपने अनुज कुशध्वज को वहाँ के राज-सिंहासन पर अभिषिक्त किया। सीरध्वज जनक वीर क्षत्रिय होने के साथ ही साथ महान दार्शनिक भी थे।

महाभारत से ज्ञात होता है कि राजा जनक वेदज्ञों एवं शास्त्रज्ञों में अग्रगण्य थे। उन्होंने मिथिला में अपना यज्ञ सम्पादित किया था। शुक्रदेव राजा जनक की राजसभा में ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए गये थे, परन्तु अध्यात्म-विद्या अध्ययन के पूर्व जनक के सांसारिक विभव का पर्यवेक्षण कर वीतराग मुनिश्रेष्ठ की बुद्धि चकरा गयी। राजा जनक के विषय में महाभारत में एक कथा आती है कि मिथिला का नगर किसी समय प्रबल अग्निदाह के कारण भस्मीभूत होने के सन्निकट आ गया। उस समय जनक ने अनासक्ति के साथ कहा था कि "इस जलती हुई नगरी में मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है।

विदेह जनक-गण दार्शनिक ज्ञान में जितने बढ़े-चढ़े थे, उनकी मिथिला भी वैभव समृद्धि में उससे कम न थी। राजा जनक के सम्बन्ध में महाभारत-कर्ता ने उल्लेख किया है कि जिस प्रकार सभी पर्वत मैनाक पर्वत से छोटे होते हैं, सभी बछड़े साँड से छोटे होते हैं, उसी प्रकार मिथिला के अधीश्वर से अन्य सभी नृपतिगण छोटे हैं। विदेहापति जनक की धार्मिक एवं सांस्कृतिक कृतियों से इस नगर की शोभा दोगुनी हो गयी थी। इसके नागरिक सभ्य, सुसंस्कृत तथा सम्पन्न थे। वे उत्सवप्रेमी, धर्मपरायण तथा परोपकार की भावना से ओत-प्रोत थे। इससे राजमागों का निर्माण वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार किया गया था।

जैन ग्रन्थ विविधतीर्थकल्प सूत्र में मिथिला का विशद वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें उल्लेख है कि "भारतवर्ष के पूर्व देश में विदेह नाम का देश है, जो तिरहुत के नाम से प्रसिद्ध है। नगरी के चारों द्वारों पर चार बड़े बाजार थे तथा यहाँ के साधारण लोग भी संस्कृत भाषा में प्रवीण हैं और अनेक ऋषियों से समृद्ध मिथिला नाम की नगरी है। इस समय यह जगई नाम से प्रसिद्ध है। उसके समीप जनक महाराजा जनक का निवास-स्थान कनकीपुर है। इससे स्पष्ट होता है कि इसका एक अन्य नाम जगती भी था तथा इसके निकट ही कनकपुर नामक नगर स्थित था।

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार महात्मा बुद्ध मिथिला में रूके थे, वहीं उन्होंने मरवादेव तथा ब्रह्मायुसुत्तों को प्रवचन दिया था। बासिंदी नामक एक थेरी मिथिला में बुद्ध से पहली बार मिली थी और उनके धार्मिक उपदेशों को सुन करके बौद्ध संघ में प्रविष्टि हुयी थी। मिथिला में महात्मा बुद्ध के धर्म-प्रचार के कार्यों का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में कम प्राप्त होता है। इससे प्रतीत होता है कि बुद्ध के समय में मिथिला में ब्राह्मण धर्म की ही प्रधानता रही होगी।

जातकों से मिथिला नगरी के वैभव पर भी प्रकाश पड़ता है। महाउम्मग जातक में उल्लेख है कि मिथिला के चारों ओर तीन प्रकार की खाइयाँ थी। उनके चारों ओर ऊँची सुरक्षात्मक दीवाल थी, जिसमें चार प्रवेश द्वार थे। चारों प्रवेश द्वारों में प्रत्येक पर एक बाजार था। वाणिज्य के क्षेत्र में भी मिथिला की प्रतिष्ठा बौद्ध काल में स्थापित हो चुकी थी। यहाँ की समृद्धि दूसरे देशों यथा, वाराणसी से व्यापार करने के कारण थी। अपने सामान को बेचने के लिए लोग श्रावस्ती से विदेह आते थे। बुद्ध का एक शिष्य स्वयं बहुत सारा सामान लेकर व्यापार के निमित्त विदेह गया था।

बौद्धिक क्षेत्र में मिथिला के नरेशों की रूचि राजा जनक के समय से ही विख्यात थी। बुद्ध के काल में मिथिला के राजा सुमित्र ने विद्योपार्जन हेतु चार ऋषियों को नियुक्त किया था। उसके पुत्र की शिक्षा तक्षशिला में हुई थी। मिथिला के तर्कशास्त्र में विशेष ख्याति अर्जित की। बुद्ध युग से पूर्व ही कराल जनक के काल में ही मिथिला से राजतंत्र का लोप हो चुका था, क्योंकि कराल जनक चरित्रहीन व्यक्ति था। इसका उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र और अश्वघोष के बुद्धचरित्र में भी प्राप्त होता है। इसके पश्चात मिथिला राज्य वाणिज्य संघ के अन्तर्गत रहा, परन्तु मगध सम्राट अजातशत्रु के साथ जब वैशाली का पराभव हुआ, तो उसके साथ ही मिथिला पर भी अजातशत्रु का अधिकार हो गया।

मिथिला के क्षेत्र मधुबनी एवं मुजफ्फरपुर से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री से द्वितीय शती ई०पू० से लेकर गुप्तकाल तक के अवशेष प्राप्त हुए हैं। मधुबनी से लगभग 200 ई०पू० में किलेबन्द बस्ती का प्रमाण मिला है, जो लगभग चार वर्गमील के घेरे में फैला हुआ था। यहाँ से पहले चरण से आवासीय ढाँचे, शृंगकालीन मृण्मय फलक, पहिए, खिलौना गाड़ियाँ, लोहे की कीलें, कुठाली, मृण्मय मोहर छापे तथा ताँबे के ढलवा सिक्के इत्यादि प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार मुजफ्फरपुर जिले के कटरागढ़ की खुदायी से भी ई०पू० दूसरी शताब्दी में किलेबन्दी पायी गयी है, जो कि तीन चरणों में निर्मित हुई है और यह खाया से घिरी हुई भी है। इस किलेबन्दी के निर्माण काल के दूसरे और तीसरे चरण में पक्की ईंटों का इस्तेमाल किया गया है तथा सम्पूर्ण किलेबन्दी शृंगकाल में की गयी है। इस नगर में जल निकास के लिए एक लम्बी नाली का निर्माण किया गया था, जिससे बस्ती का पानी नदी में बहाया जाता था। यहाँ से प्राप्त शृंगकालीन सामग्री में ताँबे के सिक्के, मोहर छापें, कीमती पत्थर की वस्तुएँ, चित्रित प्रकार के मृदभाण्ड, मृण्मय मोहरें साथ ही साथ मृण्मय वस्तुओं के मनके, पटिया, पासे, खिलौना गाड़ियाँ, कुम्हार का थपका, भेड़, घोड़े, बैल तथा चिड़ियों की मूर्तियाँ, मानव सिर बनाने का साँचा इत्यादि इस बात के प्रमाण हैं कि यह नगर शृंगकाल में फल-फूल रहा था।

यद्यपि कुषाणकालीन पुरावस्तुएँ अधिक मात्रा में प्राप्त नहीं होती हैं, परन्तु जो सामग्री प्राप्त हुयी है, उससे यह संकेत प्राप्त होता है कि यह नगर कुषाणकाल में भी आबाद रहा। इन सामग्रियों में हुविष्क की स्वर्णमुद्रा, मोहरछापें, कुठाली, अबरकी ठीकरें, लाल मृदभाण्ड के बर्तन, सुराहीनुमा हजारे इत्यादि मिले हैं, जो इमारतें मिली हैं वे केवल एक ईंट चौड़ाई की हैं तथा निर्माण में सम्भवतः खपड़ों का इस्तेमाल होता था। गुप्तालीन अवशेषों में कुछ मृदभाण्ड तथा मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुयी हैं¹⁰, जो कि इस ओर इशारा कर रही हैं कि गुप्तों के समय में और उनके बाद यह नगर लगभग उजड़ चुका था।

सन्दर्भ सूची:

1. शतपथ ब्राह्मण, 1/4/1/10
2. बाल्मीकि रामायण, 48-49
“तत्रः परमसत्कारं सुमते प्राप्य राघवौ। उप्यतत्र निशःमेकां जग्मतुः मिथिलां ततः॥
तां दृष्ट्वा मुनयः सर्वे जनकस्य पुरी शुभाम्। साधुसाध्वतिशंसन्तो मिथिलां संपूजयन्॥
मिथिल पवने तत्र आश्रमं दृश्य राघवः। पुराणं निजनेरम्यां प्रयच्छ मुनिपुंगवम्॥”
3. विविधतीर्थकल्प, पृ० 32
4. जातक, 4/26-32
5. रामायण, 49/11-12-21-22 “यदागच्छ महातेज आश्रमं पुष्यकर्मणः।
तारयैनां महाभागमहल्यां देवरूपिणीम्॥
विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः।
गौतमोऽपि महातेजा अहल्यासहितः सुखी।
राम सम्पूज्य विधिवत् तपस्तेपे महातपाः॥
रामोऽपि परमां पूजां गौतमस्य महामुनैः।
सकाशाद् विधिवत् प्राप्य जगाम मिथिलां ततः॥
6. महाभारत, 3/134/5 “सर्वे राज्ञो मैथिलस्य मैनाकस्येत पर्वताः।
निक्रष्टभूता राजानो वत्सा ह्यनडुहो यथा।
7. विविधतीर्थकल्प, पृ० 32
“इहेव भारतवासे पुव्वदेसे विदेहा नाम जणवओ, संपइ काले तीरहुत्तिदेसो त्रि भण्णई - - - -तत्थ रिद्धित्थमिअसमिद्धा मिहिला नाम नयरी हुत्था। संपयं जगइत्ति प्रसिद्धा। एयाए नाइदूरे जणयमहारायस्य भाउणो कणयस्स निवासट्ठणं कणइपुरं वट्ठइ।
8. जातक, 06/333
9. अर्थशास्त्र, 1/6 “दण्डको नाम भोजः कामाद् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः
सबन्धुराष्ट्रो विनाश करालश्च वैदेहः”
बुद्धचरित, 4/80 “कराल-जनकस्यचौव हत्वा ब्राह्मण-कन्यकाम्।
अवाय भृशमप्येवं न तु सेजे न मन्मथम्॥”
10. आई०ए०आर०, 1975-76, पृ० 7-15

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

डॉ० अखिलेश कुमार वर्मा

असि० प्रोफेसर हिन्दी विभाग, रामनगर पी०जी० कॉलेज, रामनगर, बाराबंकी (उ०प्र०)

श्री इलाचन्द्र जोशी आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य के उल्लेखनीय और सर्वमान्य मनोविषयात्मक उपन्यासकार हैं। इनका जन्म, कुलीन ब्राम्हण परिवार में हुआ था। उनके पिता अल्मोड़ा के निवासी थे। 13 दिसम्बर 1902 ई० को प्राकृतिक पृष्ठभूमि में रहने के कारण बचपन से ही जोशी जी उससे प्रभावित रहे। किशोरावस्था में ही उन्होंने देशी विदेशी साहित्यकारों की महत्वपूर्ण कृतियों का परायण कर लिया था। हाईस्कूल तक आते-आते वे व्यास, वाल्मीकि कालिदास, शैली, कीट्स, टाल्सटाय, दास्तविस्की तथा चेखव आदि के कृतित्व से परिचित हो चुके थे। आगे चलकर उन्होंने चाँद, 'सुधा', 'विश्ववाणी', 'विश्वमित्र', सम्मेलन पत्रिका, 'भारत', 'धर्मयुग साहित्यकार आदि पत्र-पत्रिकाओं में लेखन संपादन किया। उपन्यास रचना के क्षेत्र में इनका दृष्टिकोण मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है। जोशी के लज्जा (घृणामयी) 1929 ई०, संन्यासी 1941 ई०, निर्वासित 1946 ई०, मुक्तिपथ 1950 ई०, सुबह के भूले 1951 ई० त्याग का भोग (जिप्सी) 1952 ई०, जहाज का पंछी 1955 ई०, ऋतुचक्र 1968 ई०, भूत का भविष्य 1973 ई०, कवि के प्रेयसी 1976 ई०, आदि उपन्यास हैं। मनोविश्लेषणात्मक कहानियाँ—(दीवाली और होली), 'रोगी', 'स्त्रीमय' डायरी के नीरस पृष्ठ, 'मैं बदला', 'विद्रोही', 'पागल की सफाई', 'किडनैप्ड', 'मेरा जीवन चक्र, रोमांटिक छाया', 'परित्यक्ता', पतिव्रता या पिशाची एक शराबी की आत्मकथा, 'होली', 'फोटो', 'दुष्कर्म', 'एकाकी', 'कापालिक', 'जारज', 'मिस्त्री', रात्रिचर) समाजपरक मनोविश्लेषणात्मक कहानियाँ—(रेल की रात, 'प्लैनचेट', 'क्रान्तिकारी महिला', 'आहुति', 'क्रय-विक्रय', 'मिस एल्किन्स', 'दो मित्र', 'चरणों की दासी', 'परिणिता', 'गोदावरी की काशी यात्रा', 'प्रेत आत्मा), 'डॉ० की फीस', 'उद्धार', 'मेरे प्राथमिक जीवन की स्मृतियाँ', 'चौथे विवाह की पत्नी', 'रूकमा', 'तारा', समाजपरक मनोवैज्ञानिक कहानियाँ—(अनाश्रित, 'अंधी गलियाँ, सरदार', 'रक्षित धन का अभिशाप', 'स्वामी आलोकानन्द) आदि कहानियाँ हैं। इलाचन्द्र जोशी जी आधुनिक हिन्दी की मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेषणात्मक कथा साहित्य परम्परा के बहुचर्चित उपन्यासकार हैं। एक दर्जन उपन्यासों की रचना करके उन्होंने उपन्यास क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया है।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास कला का मूल उद्देश्य पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर व्यक्ति चिंतन एवं व्यक्ति विश्लेषण है। वह स्वयं व्यक्ति के अन्तर्जगत की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करते हुए लिखते हैं— "आधुनिक मनोविज्ञान ने अत्यन्त परिपुष्ट प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया है कि मानव – मन के भीतर की अतल गहराई में एक गहन रहस्य, अपार, अपरिमित जगत वर्तमान है, जिसकी एक निजी स्वतन्त्र सत्ता है। यह जगत किसी भी बाहरी आर्थिक अथवा सामाजिक अनुशासन से परिचालित नहीं होता। इसलिए वह प्रेमचन्द की सामाजिक परम्परा का परित्याग कर अर्थात् बाह्य सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण का पथ छोड़कर, मानव के अज्ञात चेतना के गहरे स्तरों में प्रविष्ट होकर उसके भीतर दमित वासनाओं तथा कुण्ठित भावनाओं का विश्लेषण करने का प्रयास करते हैं। उनकी उपन्यास कला का विकास वैयक्तिक समस्याओं के चित्रण द्वारा व्यष्टि तथा समष्टि में सामंजस्य खोजने के प्रयत्न का द्योतक है।"

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का क्षेत्र महत्व और आवश्यकता—

प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यास साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का श्रेय मनोविज्ञान को है। दर्शनशास्त्र के इस उपेक्षित भाग को बीसवीं सदी में इतना महत्व प्राप्त होने का कारण उसका मन की गतिविधियों को अपनी विषयवस्तु बनाना तथा उसका प्रचार करने के लिए उपन्यास जैसी सर्वश्रेष्ठ साहित्य विधा को चुनना है।

उपन्यास शब्द से ही यही ध्वनि निकलती है कि उप-समीप तथा न्यास थाती के योग से बना है, जिसका अर्थ हुआ (मनुष्य के) निकट रखी हुई वस्तु। अर्थात् लेखक इसके द्वारा निकट की मन की कोई बात कहना चाहता है। इसमें मन ही प्रधान है, बात या घटना गौण घटना कुछ भी हो पर वह मन पर प्रकाश डाले, वह मन के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए है, चाहे लेखक या पात्र का एक आदर्श उपन्यास की घटनाओं, व्यापार शृंखलाओं और मानव-मन में पारस्परिक सम्बर्द्धनशील आदान-प्रदान आवश्यक है। "जे०डब्ल्यू० बीज का कथन है—

"Soul Should be defined by the action of the story and action should be determined by the soul of character -"

अर्थात् पात्र के अन्तर्मन का ज्ञान कहानी में वर्णित कार्यों द्वारा प्राप्त हो। उपन्यास ही हमारे साहित्य की सबसे अधिक जीवन्त और जागरूक धारा है जो मानव जीवन के अन्तर्मन रूप को समूर्त उपस्थित कर देने की क्षमता रखती है। इस विधि द्वारा मनोविज्ञान को जितना जाना जा सकता है उतना शास्त्र द्वारा नहीं। इसीलिए दास्ताएवस्की के एक आलोचक ने कहा था कि दास्ताएवस्की के उपन्यासों को पढ़कर हमें मानव के मनोविज्ञान का जितना ज्ञान होता है उतना मनोविज्ञान के शास्त्री ग्रन्थों को पढ़कर नहीं।

आलोचना का काम किसी साहित्यिक रचना की समीक्षा करना रहता है, जहाँ मनोविज्ञान का संबंध प्रमुखतः मानसिक व्यापारों के अन्वेषण से है। जब से मनोविज्ञान के अंतर्गत मनोविश्लेषण संबंधी नवीन अन्वेषण पद्धति का आरंभ हुआ है, ऐसी धारणा भी बनती जा रही है कि आलोचना-विषयक अनेक प्रश्नों का समाधान मनोविज्ञान के सहारे भली भाँति किया जा सकता है। इसकी सहायता से मानव मस्तिष्क की उन सारी प्रक्रियाओं पर प्रकाश डाला जा सकता है जो एक साहित्यिक के मानस क्षेत्र में काम करती है और जिन पर विचार करने की समस्या किसी अन्य प्रकार से सुलझायी नहीं जा सकती। मनोवैज्ञानिक युग का कहना है “मनोविज्ञानिक अन्वेषण द्वारा जहाँ एक ओर हम किसी कलात्मक वस्तु के निर्माण की मूल प्रक्रिया के ऊपर प्रकाश पड़ने की आशा रखते हैं, वहाँ दूसरी ओर हमें यह बात भी स्पष्ट हो जाने में देर नहीं लगती कि किन-किन कारणों से कोई व्यक्ति कभी किसी कलात्मक कृति के निर्माण में समर्थ हो पाता है।”

आधुनिक मनोविश्लेषण के पुरस्कृत फ्रायड के अनुसार किसी कलाकार के लिए स्नाविक बन जाना सरल है। उसे विभिन्न प्रकार के सम्मानों का अर्जन करना रहता है जिसके लिए प्रायः सभी साधन सुलभ नहीं हो पाते। इस कारण वह अपनी अतृप्त वासनाओं की पूर्ति के लिए वस्तुस्थिति से हटकर किसी मनोराज्य के निर्माण में प्रवृत्त हो जाया करता है। किसी विशिष्ट कौशल द्वारा वह अपने दिवास्वप्नों को साकार कर उन्हें दूसरों के लिए आकर्षक बना देना चाहता है। अपनी रहस्यमयी योग्यता के सहारे अपनी कलाकृति को आनंदप्रद बना देना चाहता है। वह पूर्णतः स्नाविक नहीं हो पाता, क्योंकि उसमें आ गयी उदात्तीकरण की प्रवृत्ति उसे वैसी स्थिति में आने से बचा लेती है। इसी प्रकार फ्रायड के एक सहयोगी एडलर का भी मत इससे मूलतः भिन्न नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इनके अनुसार भी किसी कलाकार का स्नाविक बन जाना कभी उतना कठिन नहीं रहा करता। इन दोनों के मतों में मुख्य भेद केवल इसी बात का पाया जाता है कि फ्रायड के अनुसार जहाँ किसी कलाकार का उद्देश्य केवल सम्मान या ऐश्वर्य अर्जित करना रहता है, वहाँ एडलर के अनुसार वह अपने ‘हीनत्व’ की भावना से ऊपर उठकर वरिष्ठ बन जाने का प्रयास करता है। इस कारण प्रथम की दशा में जहाँ कला के संबंध में उदात्तीकरण से काम लिया जाता है, वहाँ द्वितीय के अनुसार उसमें क्षतिपूर्ति की प्रतिक्रिया काम करती है।⁵

हर्बर्ट रीड नामक एक अंग्रेज लेखक ने ऐसे मतों का स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि यहाँ पर मूल उल्लेखनीय बात यह है कि मनोविश्लेषण के अनुसार किसी कलाकार की प्रवृत्ति स्वभावतः स्नायविक बन जाने की ही रहा करती है, किंतु वह चाहता है कि मैं इसके परिणामों से अपने को बचाकर वस्तुस्थिति की ओर पुनः लौट आऊँ। अतएव मेरे विचार से यह विज्ञान किसी समीक्षक की सहायता इस प्रकार कर सकता है कि वह किसी ऐसी स्नायविक प्रवृत्ति के उदात्तीकरण की सम्यक जाँच-पड़ताल कर ले। मनोविश्लेषण द्वारा हमें यह पता चल सकता है कि अमुक कलात्मक अभिव्यक्ति कहाँ तक सफल या असफल कही जाएगी। साहित्य के अंतर्गत प्रायः बहुत सी बातें इस प्रकार पायी जाती हैं जो तथ्य की सीमा रेखा तक आ जाती हैं। ऐसे समीक्षक के लिए यह आवश्यक होगा कि वह उस सीमा रेखा निश्चित रूप से परिचय प्राप्त कर ले। किंतु फिर भी मैं चाहूँगा कि इस रेखा का निर्णय, एक समीक्षक, संभवतः समीक्षा विषयक साधारण सिद्धान्तों के आधार पर भी कर ले सकता है। मनोविश्लेषण उसकी ऐसी परीक्षा का मार्ग प्रशस्त कर दिया करता है। जो कुछ भी हो, यह उसके लिए एक ऐसा संतोषजनक और समानांतर प्रमाण तो प्रस्तुत कर देता ही है जिसका वह पूरा लाभ उठा सके। “निष्कर्ष यह कि हर्बर्ट रीड भी ऐसे मत का ही समर्थन करते हैं। इनकी भी धारणा है। कि कलाकार की प्रवृत्ति आपसे आप स्वाभाविक हो जाने की रहा करती है, किंतु वह केवल उदात्तीकरण के सहारे उससे अपने को बचा ले जाता है। युग ने इस विषय पर विचार करते समय किसी कलाकार को एक व्यक्ति के रूप में, तथा किसी व्यक्ति को एक कलाकार के रूप में जैसी दो विभिन्न दृष्टियों से देखने की चेष्टा भी की है।”⁶

युग ने कहा है- ‘प्रत्येक रचनात्मक वस्तु प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति के भीतर परस्पर विरोधी वृत्तियों का कोई द्वेषभाव काम करता पाया जाता है। एक ओर जहाँ यह कोई व्यक्तिगत जीवनयुक्त मनुष्य रहा करता है, यहाँ दूसरी ओर हमें उसके व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले कारणों को समझने के लिए उसके मूल चित्र के रूप बनाव को भी परखना अत्यंत आवश्यक हो सकता है किन्तु उसकी रचनापरक सफलता के ही आधार पर हम उसके कलाकार होने की योग्यता को भी समझ पाते हैं जो यहाँ पर उल्लेखनीय है “इसी प्रकार किसी मानव के रूप में उसके विविध संवेग, संकल्प अथवा व्यक्तिगत उद्देश्य भी हो सकते हैं, किंतु किसी कलाकार के रूप में यह अधिक व्यापक अर्थ में ही मानव कहला सकेगा उस दशा में वह ऐसा समष्टिगत मानव कहा जायगा जो मानव मात्र के अवचेतन को आगे ले जाता है अथवा उसे कोई अधिक विकसित रूप दिया करता है। ऐसा कठिन कार्य करना उसके लिए कभी-कभी आवश्यक हो जाता है। इसके लिए उसे अपने सुख अथवा उन सारी बातों का त्याग करना पड़ता है जिनके आधार पर एक साधारण मनुष्य का जीवन उपयोगी बन सकता है।”⁷

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता

इलाचन्द्र जोशी अपने उपन्यासों के माध्यम से निरन्तर इस खोज में प्रस्तुत है कि अज्ञात चेतना के पाताल लोक में स्थित अतल नरक के विश्लेषण द्वारा बाह्य जीवन तत्त्वों के साथ उन नारकीय, किन्तु मूल जीवन-तत्त्वों का समुचित सम्बन्ध स्थापित करके मानव-जगत् में किन उपायों से अपेक्षित स्वर्ग की स्थापना की जा सकती है। उनका विश्वास है कि व्यक्ति जो देखता है, वह यहीं नहीं है, उसके बाहरी रूप के भीतर कितनी परतों के नीचे उसका असली रूप छिपा रहता है। उनकी यह भी धारणा है कि व्यक्ति के जीवन में जो कुछ भी घटित होता है, यह अकारण भाग्यवश नहीं होता, उन घटनाओं के बीज पहले से ही व्यक्ति मानस में छिपे रहते हैं तथा छोटी-छोटी घटनाओं की ओट में पर्वतोच्च विशाल मानसिक प्रवाह ठाठे मारता रहता है। उनके औपन्यासिक पात्रों के चरित्र-विकास से भी उनकी यही धारणा पुष्ट होती है कि व्यक्ति की समस्याओं का मूल उसकी बाह्य आर्थिक परिस्थितियों में नहीं, बल्कि उसके मानस की अतल गहराइयों में होता है।

लज्जा जोशी जी का प्रथम उपन्यास घृणामयी नाम से सन् 1929 ई० में प्रकाशित हुआ था इस उपन्यास में एक ऐसी नारी की कहानी है, जो मन में अथाह पीड़ा लिये हुए है। वह अपने चार भाई बहनों में सबसे अधिक राजू को प्यार करती है। उपन्यास की नायिका लज्जा ज्यों-ज्यों सयानी होती जाती है, काम-वासना से अधिक अनुप्रेरित होती जाती है यह डॉ० कन्हैया लाल की ओर आकृष्ट होती है, किन्तु राजू यह सम्बन्ध नहीं चाहता और अन्त में उत्तेजित

होकर यह आत्महत्या कर लेता है लज्जा के काका की मृत्यु हो जाती है। एक दिन व अपने प्रेमी डॉक्टर को कमलिनी के साथ मोटर में जाते हुए देख लेती है उसके मन में प्रतिहिंसा जागृत हो उठती है उसकी यह प्रतिहिंसा जीवन और संसार के लिए घृणा में परिवर्तित हो जाती है। राजू के भीतर एक ग्रन्थि है। लज्जा प्रारम्भ में प्यार करती थी, किन्तु जब यह डॉक्टर के प्रति आकर्षित हो जाती है, तो उसे ईर्ष्या होती है कालान्तर में यही उसकी आत्महत्या का कारण बन जाता है।

जोशी जी का प्रसिद्ध उपन्यास है 'संन्यासी जिसमें मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का कलात्मक निर्वाह आत्मकथात्मक-शैली में हुआ है। इसमें नायक नंदकिशोर के रूप में व्यक्ति के अहंभाव की, एकान्तिकता पर निर्मम प्रहार हुए हैं। यथार्थ जीवन भूमि पर मानवीय मनोभावों का सूक्ष्म तरंगाभिगात एवं जीवन के भूल तत्वों का विवेचन-विश्लेषण इस उपन्यास की विशेषता है। पर्दे की रानी, प्रेत और छाया तथा निर्वासित बाद की रचनाएं हैं जिनमें मनोविज्ञान उत्तरोत्तर कला पर हावी होता गया है। पर्दे की रानी की नायिका निरंजना अपनी समस्त बौद्धिकता के बावजूद आवेगमयी रागात्मक प्रवृत्तियों द्वारा ही संचालित होती है। यह स्वयं भी इस बात को स्वीकार करती है, मेरे भीतर वैश्या के संस्कार पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। यदि ऐसा न होता तो मैं इन्द्रमोहन को अपनी भावभंगिमा से उस तरह रिझाने की चेष्टा न करती और होटल वाली तथा उसके बाद की दुर्घटना का कारण न बनती प्रेत और छाया में नायक पारसनाथ की उस मानसिक ग्रन्थि के कुपरिणामों का चित्रण है जिसका मूल उसके पिता द्वारा पैदा किए गए इस भ्रान्तविश्वास में मिलता है कि उसकी माँ का किसी पर पुरुष से सम्बन्ध था नायक की जीवन-व्यापी नारकीय भटकन का अंत तभी होता है जब मरते समय उसका पिता यह स्वीकार कर लेता है कि उसका यह लांछन मिथ्या था इस आत्म स्वीकृति के परिणामस्वरूप पारसनाथ की मानसिकता की परत खुल जाती है पर मनोवैज्ञानिक सत्य के उद्घाटन की धुन में रचना का उपन्यासत्व कमजोर पड़ गया है। यही बात जोशी जी के उपन्यास निर्वासित पर भी लागू होती है। जिसमें कला और मनोविज्ञान में सामंजस्य स्थापित न हो पाने के कारण यह एक कुण्ठाग्रस्त निराश प्रेमी की कहानी बनकर रह गया है। सारी रचना पर नायक महीप के अन्तर्मन का विश्लेषण ही छाया रहता है और कला उसके नीचे दबकर रहती है।⁸

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इलाचन्द्र जोशी के ये उपन्यास प्रकाशित हुए हैं मुक्ति पथ, सुबह के भूले, त्याग का भोग (जिप्सी), जहाज का पंछी और ऋतुचक्र , एवं मुक्ति पथ से उनकी उपन्यास कला ने एक नये स्वरूप का मोड़ लिया है। यहाँ से उन्होंने वर्षों के अपने मनोविज्ञान सम्बन्धी अध्ययन मंथन का सामाजिक उद्देश्य से प्रयोग करना शुरू किया है। उपन्यास का नायक राजीव समाजवादी विचारधारा का है और श्रम द्वारा मुक्ति चाहता है पर नायिका सुनन्दा जीवन में श्रम भी चाहती है और विश्राम भी मुक्ति भी चाहती है और बन्धन भी राजीव से विदा लेती हुई वह पुरुष की स्वार्थवृत्ति का भंडा फोड़ती हुई कहती है असल बात यह है कि पुरुष चाहे कितना ही महान क्यों न हो, उसका यह युग-युग का संस्कार मिटाना नहीं चाहता व्यक्ति से भी कम है, उसके अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का कोई प्रश्न नहीं चरित्र में ऐसा है। इस उपन्यास से एक और निष्कर्ष निकलता है और यह भी अत्यन्त स्वाभाविक रूप से, वह यह कि व्यक्ति समाज की आधारभूत इकाई है, व्यक्ति को दबाकर सामाजिक उत्थान के लिए किए गए किसी भी कार्य की विफलता निश्चित है। अपने सामाजिक कार्य के प्रति सच्चा होने के बावजूद राजीव इसीलिए असफल रहा कि यह अपनी और सुनन्दा की भीतरी आवाज को दबाकर कोरे आदर्श का सहारा लेता रहा।

“सुबह के भूले उपन्यास में लेखक ने समाज के निम्न वर्गों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। बैजनाथ और महावीर बम्बई की एक निम्नवर्गीय बस्ती में रहते हैं। बैजनाथ गाँव से झमिया नामक एक विधवा युवती से विवाह करके उसे बम्बई ले आता है उससे उसकी एक कन्या भी जन्म लेती है। जिसका नाम गुलबिया रखा जाता है। बैजनाथ की मृत्यु के पश्चात् गुलबिया धीरे-धीरे बड़ी होती जाती है और शिक्षित होकर परिस्थिति वश अभिनेत्री बन जाती है। यहाँ का छलकपट पूर्ण जीवन उसमें उक्ताहट पैदा कर देता है और वह अपने समाज में लौटकर किशन नामक युवक से विवाह कर लेती है। इस उपन्यास में लेखक ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि नैसर्गिक जीवन के प्रति ही मनुष्य में संस्कार गत मोह की भावना होती है। कृत्रिम जीवन किसी भी वर्ग को अधिक समय तक आकर्षित नहीं कर सकता। उनका अगला उपन्यास 'त्याग का भोग' (जिप्सी) अधिक सारगर्भित है। उपन्यास का नायक रंजन अपने-अपार धन-वैभव के आधार पर जिप्सी लड़की मनिया को अपने वश में कर लेने की हर सम्भव कोशिश करता है। आरम्भ में तो रंजन को खूब सफलता मिलती है, पर ज्यों ही मनिया के व्यक्तित्व का विकास होता है, उसका आत्मबल बढ़ता देख, यह रंजन और उसके वैभव के बन्धन को तोड़कर समाज सेवा से युक्त वायुमण्डल में चली जाती है मनिया से हार मानते हुए रंजन स्वयं स्वीकार करता है तब मेरी सफलता का कारण यह था कि मैं मनिया की सच्ची मंगल कामना से प्रेरित होकर, सच्चा आत्मिक बल पाकर उसके मन को प्रभावित करने को उद्यत हुआ था, पर आज मैं वास्तविक कल्याण कामना से प्रेरित न होकर स्वार्थ हानि की आशंका से ईर्ष्या दग्ध होकर कृत्रिम मानसिक बल के प्रयोग से 'हिप्नोटिज्म' करने चला था। “यहाँ जोशी जी मानव व्यक्तित्व की प्रकृत शक्ति पर बल देते हैं और 'हिप्नोटिज्म' की कृत्रिमता को काटते हैं।⁹

जोशी जी का उपन्यास 'जहाज का पंछी' व्यक्ति के प्रति समाज के और व्यक्ति के प्रति व्यक्ति के अत्याचार की कहानी प्रस्तुत करता है महानगर कलकत्ता को आधार बनाकर और कथानायक को उसकी विविध परिस्थितियों में से गुजार कर उपन्यासकार ने शहरी जीवन की कृत्रिमता की पोल खोलते हुए आज के युग के आत्मकेन्द्रित व्यक्ति की स्वार्थान्धता पर कसकर प्रहार किया है और व्यक्ति को परखने की समाज की गलत कसौटी की खिल्ली उड़ाई है इस उपन्यास की सबसे बड़ी कमजोरी है इसके कथानक की घटना बहुलता और पात्रों की भरमार है। कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा जोड़कर उपन्यासकार ने असंख्य पात्रों के इतिवृत्तों (केस हिस्ट्री) के सहारे उपन्यास-भर में इतनी घटनाएँ बिखेर दी हैं कि पाठक बेचारा चकरा जाता है। प्रत्येक घटना और उसमें व्यक्त पात्रों की प्रतिक्रिया के आरम्भ विकास और निष्पत्ति में इतना साम्य है, निष्कर्षों की इतनी आवृत्ति है कि पाठक बहुधा ऊब जाता है।

जोशी जी का उपन्यास 'ऋतुचक्र' जिसमें कुछ अछूती समस्याओं को गहराई से लिया गया है उदाहरणार्थ मनुष्य के सामूहिक अवचेतन के केन्द्रीय परमाणु के विस्फोट की कल्पना का अनासक्ति काम, उन्मुक्त प्रकृति के सानिध्य में विकार मुक्ति परम्परा से थोड़ा हटकर इसमें जन्मान्तरवाद की व्याख्या भी की गई है। पर इसमें चौकाने वाली बात है इसके नायक द्वारा नायिका चित्रा की आत्महत्या को महिमामन्वित करने का प्रयास नायक के नाम चित्रा द्वारा अपने पत्र से आत्महत्या मनः स्थिति का पता चलता है कि तब जीवन की महानता से उसका सहज जिसके फलस्वरूप जीवन और मृत्यु के बीच की खाई उसके निकट मिट जाती है। निर्भीक होकर उसने आत्महत्या की थी। यह ठीक है कि प्राप्त हो जाएगा, यह मृत्यु से घबरा कर किसी से ऐसा व्यक्ति जीवन की विभीषिकाओं

से करेगा, क्योंकि उसके निकट यह बात नहीं काट सकती, उसी प्रकार आत्महत्या करके लाख चाहने पर भी व्यक्ति उस अखण्ड धारा से कट और बच नहीं सकता। यह बात लेखक को भी खटकी है जो बाद में उसने चित्रा से स्पष्टीकरण दिलवाया है। चित्रा ने अपने कर्जदारों से उन्मत्त होने की जो बात कही है। वह आत्महत्या जैसी घटना के लिए हल्की पड़ती है। वैसे, कुल मिलाकर यह उपन्यास विचारोत्तेजक भूत का भविष्य इस उपन्यास में एक उदाहरण दिया है समय की उसकी सम्बन्ध जुड़ गया था गई और मृत्यु के प्रति जो व्यक्ति इस उन्नत मानसिक अवस्था को जीवन की भीख नहीं माँगेगा, पर यह भी सच है कि घबराकर स्वेच्छा से मृत्यु का वरण अर्थात् आत्महत्या भी नहीं स्पष्ट होगी कि जिस प्रकार मृत्यु जीवन की अखण्ड धारा को में जो माना जाएगा। जिस प्रकार एक हाथी के सम्बन्ध में जोशी जी का एक उपन्यास है दर्शन से मेल खाती है। 'इस सड़ी हुई लाश को असंख्य चीटियाँ घेरे रहती है उसी प्रकार मनुष्य का अहं चिंताओं के असंख्य चलते-फिरते कीटों और छोटे-छोटे लपलपाते जीवों की विशाल सेना की सहायता से उसको प्रतिफल अशान्ति पीड़न, असंख्य दुख और काँटों का शिकार बनाकर उसके अस्तित्व को छलनी बनाये रखता है।' अपने मन की इसी अनुभूति के कारण ही घर-घर में नरक की ज्वालाएँ धधक रही हैं। इस प्रकार विकृत अहं को इलाचन्द्र जोशी समाजघाती और आत्मघाती दोनों मानते हैं।

आधुनिक भारतीय साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की नींव बंकिमचन्द्र ने डाली थी। उनके अधिकांश उपन्यास सर बाल्टर स्काट की रचनाओं की तरह ऐतिहासिक घटनाक्रमों पर आधारित हैं, पर उनके तीन उपन्यास 'रजनी', कृष्णाकांतेर उडल और विषवृक्ष मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित हैं। विशेष कर 'विषवृक्ष' में उन्होंने जिस कोटि के मनोविज्ञान का अवलम्ब ग्रहण किया है यह उन्नीसवीं सदी के पाश्चात्य लेखकों की श्रेष्ठ रचनाओं से टक्कर लेता है अन्तर केवल यह है कि बंकिम ने व्यक्ति के अन्तर्जीवन का समाज के बाह्य जीवन से संघर्ष दिखाकर दोनों के सामंजस्य का मार्ग निर्देशित किया है और उनके समसामयिक पाश्चात्य लेखकों ने केवल संघर्ष की तीव्रता दिखाकर ही अपना कर्तव्य पूरा हुआ माना है। इस परम्परा को उपन्यासकार जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय ने आगे बढ़ाया। इसलिए मनोवैज्ञानिक उपन्यास देखने वालों में यह त्रयी अग्रणी है। इलाचन्द्र जोशी अपने को जैनेन्द्र और अज्ञेय से भिन्न मानते हैं जैसे कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। मेरे अपने उपन्यासों में अज्ञेय जी से ठीक उल्टा दृष्टिकोण प्रतिपादित हुआ है। मेरे सभी उपन्यासों का प्रधान उद्देश्य व्यक्ति के अहंभाव की ऐकान्तिकता पर निर्मम प्रहार करने का रहा है। आधुनिक समाज में पुरुष की बौद्धिकता ज्यों-त्यों बढ़ती चली जा रही है। त्यों त्यों उसका अहंभाव तीव्र से तीव्र और व्यापक से व्यापकतर रूप ग्रहण करता चला जाता है। अपने इस कभी तृप्त न होने वाले अहंभाव की अस्वाभाविक पूर्ति की चेष्टा में जब उसे पग-पग पर स्वाभाविक असफलता मिलती है तो वह बौखला उठता है और उस बौखलाहट की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यह आग विनाश के पहले अपने आसपास के संसार के विनाश की योजना में जुट जाता है उसकी इस विनाशात्मक क्रिया का सबसे पहला और सबसे घातक शिकार बनना पड़ता है नारी का उसकी इस विनाशात्मक क्रिया का सबसे पहला और सबसे घातक शिकार बनना पड़ता है नारी को युगों से प्रपीड़ित और अधिक शोषित वर्ग है। नारी उसे और अधिक प्रपीड़ित और शोषित करने की चेष्टा में आज का अहंवादी पुरुष बुद्धिवादी भी है, इसीलिए अपने मनोवृत्ति की यथार्थता से बहुत कुछ परिचित भी रहता है और इसी कारण उसके भीतर विस्फोटक संघर्ष मचते रहते हैं। साथ ही यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि उसी विस्फोट के उपादान वर्तमान युग की बुद्धिवादिनी नारी की शोषित अन्तरात्मा से भी प्रलयंकर रूप से जुटते चले जा रहे हैं किन्तु विपरीत दिशा में अर्थात् भारतीय नारी के भीतर निकट भविष्य में जो विस्फोट होगा वह उसकी युग-युग से पीड़ित आत्मा के प्रचण्ड विद्रोह की सामूहिक घोषणा करेगा।

अतः इलाचन्द्र जोशी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में उनके विविध आयामों को स्पष्ट करने हेतु गहराई के साथ विवेचन, विश्लेषण एवं अनुसंधान कार्य करने की नितान्त आवश्यकता है। यह औचित्य पूर्ण प्रतीत होता है कि इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक अवधारणा का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में है। विश्लेषणीय है। उनके मनोवैज्ञानिक उपन्यास साहित्य को एक नवीन दिशा देगा जो साहित्य जगत की महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी।

संदर्भ सूची-

1. इलाचन्द्र जोशी का कथा-साहित्य, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998 ई०
2. जे हरि कुमार, जोशी का कथा-साहित्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998 ई०
3. इलाचन्द्र जोशी, दैनिक जीवन और मनोविज्ञान, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयागराज, 1938 ई०
4. इलाचन्द्र जोशी, का कथा-साहित्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998 ई०
5. इलाचन्द्र जोशी, लज्जा (घृणामयी), लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद - 1929 ई०
6. इलाचन्द्र जोशी, संन्यासी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद- 1941 ई०
7. इलाचन्द्र जोशी, पर्दे की रानी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद- 1945 ई०
8. इलाचन्द्र जोशी, प्रेत और छाया, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद- 1945 ई०
9. इलाचन्द्र जोशी, निर्वासित, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1941 ई०

जनक्रान्ति के कवि - नागार्जुन

डॉ० मंजुला यादव

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, नवयुग कन्या महाविद्यालय, राजेन्द्र नगर, लखनऊ

नागार्जुन हिन्दी कविता धारा के उन प्रमुख स्तम्भों में हैं जिन्होंने कविता को रचा ही नहीं बल्कि उसको जीया भी। उनकी प्रखर सामाजिक चेतना यथार्थ से सीधा साक्षात्कार करती है और जनजीवन से सीधे जाकर जुड़ती है। व्यवस्था के प्रति विद्रोह नागार्जुन के काव्य की मूलक भावना रही है। लगभग 60 वर्षों के रचनाकाल में विद्रोह की यह भावना उनकी कविताओं में अविचल बनी रही। विसंगतियों, विषमताओं, विद्रूपताओं, वीभत्सताओं आदि से क्षुब्ध कवि व्यवस्था पर तीखे प्रहार करता है। उसके मन की व्यथा आक्रोश बनकर फूटती है। नागार्जुन अपने समय की सभी समस्याओं से सीधे टकराते हैं। वे समस्यायें चाहे राजनैतिक हों, आर्थिक हों या सामाजिक, एक युग की धड़कन उनके साहित्य में है।

“कविता में नागार्जुन की दिलचस्पी का दायरा बहुत बड़ा है और बातों को छोड़ भी दें तो भावबोध और मानवीय स्थितियों की जैसी विविधता उनके यहाँ है वैसी अन्यत्र नहीं। उनकी कविता एक तरह से अपनी सम्पूर्णता में, विगत चालीस वर्षों के भारतीय जीवन के उथल-पुथल की गाथा है।.....कभी वे कर्पूर के आतंक को देखते हैं, कभी बस ड्राइवर की स्टीयरिंग पर टँगी उन चूड़ियों को जिन्हें उनकी नहीं बिटिया ने टाँग दिया था।”

नागार्जुन का कृतित्व प्रगतिशील चेतना का वाहक है। उन्होंने जो भी लिखा है उसके चित्र जीवन (विशेषकर मध्यवर्गीय जीवन) और मजदूर वर्ग की जिन्दगी से लिए गये हैं। इनके काव्य की प्रधानतः तीन धाराएँ हैं— पहली धारा में वे कविताएँ आती हैं जिनमें कवि ने मानव मन की रागात्मक और सौन्दर्यमयी छवियों को अंकित किया है तथा साथ ही साथ मनुष्य की मानवीय सम्भावनाओं के प्रति आस्था व्यक्त की है। दूसरी कोटि की कविताएँ वे हैं जो सामाजिक कुरूपता, राजनीतिक अव्यवस्था और धार्मिक अन्धविश्वास पर बहिष्कार चुभता हुआ व्यंग्य करती हैं। तीसरी कोटि की रचनाएँ उद्बोधनात्मक हैं किन्तु काव्य तत्व की दृष्टि से रचनाएँ हलकी हैं। ‘बादल को घिरते देखा है’, ‘पाषाणी’, ‘चंदना’, ‘सिन्दूर तिलकित भाल’ आदि कविताएँ इनकी उत्तम प्रगतिवादी कविताएँ हैं। इसके अतिरिक्त ‘युगधारा’, ‘सतरंगे परंगेवाली’, ‘प्यासी पथराई आँखें’, ‘तालाब की मछलियाँ’, ‘हरिजन गाथा’ आदि नागार्जुन की प्रमुख रचनाएँ हैं।

नागार्जुन की कविताओं का चयन जितना जरूरी है उतना ही मुश्किल भी। उनकी काव्यभूमि विपुल है और विषम भी। विषम इतनी कि इस ऊँची-नीची भूमि में समतल की अभ्यस्ताओं से अक्सर धोखा ख खाती हैं। ऊपर-ऊपर से देखने पर जो अत्यन्त सपाट वर्णन है। वह भी अपने समूचे असर में इतना कवित्वपूर्ण होता है कि काव्यत्व की किसी एक जगह पर उँगली रखना कठिन है।

नागार्जुन जनकवि अर्थात् जनक्रान्ति के कवि हैं। जनता के प्रति उनकी संवेदना का स्वर सदा मुखरित हुआ। इन्होंने अपने जीवन संघर्ष से जनता के जीवन संघर्ष को केन्द्रीभूत किया है। नागार्जुन ने अन्नपचीसी के दोहे (1974) में लिखा है—

कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी साथ

बंदा क्या घबरायेगा, जनता देगी साथ।

छीन सके तो छीन ले, लूट सके तो लूट।

मिल सकती कैसे भला, अन्न चोर को छूट।

नागार्जुन आमजन के प्रति बद्ध कवि हैं, उनकी यही प्रतिबद्धता उन्हें आम लोगों के पक्ष में खड़े होकर उनके हित के लिए संघर्ष को प्रेरित करती है। नागार्जुन की कविता की जिस विशेषता ने सभी का ध्यान आकर्षित किया है, वह है आमजन के पक्ष में खड़े होकर वे उकने हित में जूझते दिखायी देते हैं। उनके लिए ‘जनता का सुख’ सर्वोपरि है।

“नागार्जुन जितने सचेत रूप से क्रान्तिकारी हैं उतने ही अचेत रूप से भी। उनका क्रान्तिकारित्व एक ओर साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और पूँजीवाद की प्रखर आलोचना में प्रकट होता है, दूसरी ओर वह उनकी कला द्वारा हिन्दी जातीयता के स्तर पर विभिन्न जनपदों की श्रमिक जनता को एकताबद्ध करने में प्रकट होता है।”²

नागार्जुन यथार्थ चेतना को शब्दबद्ध करके पाठक तक पहुँचाने वाले प्रगतिवादी कवियों में सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हैं। बाबा नागार्जुन के रचना संसार में आम लोगों की उपस्थिति, उसकी पक्षधरता से उपजे राजनीतिक, आर्थिक सरोकार हैं, व्यवस्था और पूँजीपति वर्ग के प्रति सक्रिय आक्रोश है। इनकी कविताओं में जनसामान्य की संघर्षशील चेतना की अभिव्यक्ति विविध रूप में हुई है। उनकी कविता के केन्द्र में आमजन और उनका समाज है।

जनक्रान्ति के कवि होने के कारण वह जनता की आवाज को मजबूती से उठाते हैं—

जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बतलाऊँ

जनकवि हूँ, साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ।

नागार्जुन एक ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने खुली आँखों और खुले मन से न केवल अपने आसपास को देखा है अपितु सक्षम दृष्टि से उस समूचे परिवेश और उसमें व्याप्त विसंगतियों तथा विषमताओं को देखा-परखा है। शोषितों की पीड़ा, उसकी छटपटाहट, दीनता, हीनता के साथ मजदूर वर्ग की विषमता, शोषण तथा पूँजीपतियों के अत्याचार व उत्पीड़नकी कथाओं के सहारे विकसित व्याथा प्रसंगों की मुँह बोलती तस्वीर नागार्जुन के काव्य में देखने को मिलती है:-

खेत हमारे, भूमि हमारी, सारा देश हमारा है,
जिसका जांगर उसकी धरती, यही एक बस नारा है,
होशियार, कुछ देर नहीं है, लाल सवेरा आने में,
लाल भवानी प्रकट हुई है, सुना कि तेलंगाने में⁹

नागार्जुन ने अपने काव्य में आमजन के दुःख-दर्द का चित्रण बहुत ही सच्चाई के साथ किया है। 'अकाल और उसके बाद' शीर्षक कविता में वे उन्हीं सरकारी योजनाओं की बात को व्यक्त किया जो अकाल पीडित जनता तक नहीं पहुँचती। योजनाओं का सारा धन बिचौलिये ही खा जाते हैं और अकाल पीडित जनता भूख से मर रही है:-

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास,
कई दिनों तक काली कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों चूहों की भी हालत रही शिकस्त¹⁰

नागार्जुन वस्तुतः जन के कवित हैं और इसके महत्त्व को उजागर करते हुए जनभावना को अपनी आवाज प्रदान करते हैं। आमजन के प्रति अपना लगाव, अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त करते हुए नागार्जुन स्पष्ट शब्दों में कहते हैं:-

प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ प्रतिबद्ध हूँ,
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ
अविवेकी भीड़ के भेडिघ्या धसान के खिलाफ
अन्ध बधिर व्यक्तियों को सही राह बतलाने के लिए
अपने आप को भी व्यायोह से उतारने के खातिर
प्रतिबद्ध हूँ जी हाँ शतधा प्रतिबद्ध हूँ¹¹

नागार्जुन केवल कवित ही नहीं सोशल एक्टिविस्ट भी हैं और इसीलिए वे परिवर्तनकारी जनान्दोलनों के साथ चलने वाले सच्चे जन कवि भी हैं। बिहार के किसान आन्दोलनों में सक्रिय भागीदारी करते हुए उन्होंने पुलिस की लाठी-डण्डे का स्वाद भी चखा और जेल भी गये।¹²

स्वाधीनता के सच को नागार्जुन अच्छी तरह से पहचानते हैं। कुछ भी तो नहीं बदला केवल गोरे अँग्रेजों की जगह काले अँग्रेजों ने सत्ता की बागडोर सम्भाल ली। नेताओं, नौकरशाहों, सरकारी कार्यालयों, स्कूल-कॉलेजों के लिए भले ही 15 अगस्त और 26 जनवरी के कुछ मायने हों, आम आदमी के लिए तो यह रोज की तरह का ही एक दिन है। नाममात्र की इस लोकतांत्रिक व्यवस्था का चरित्र मूलतः सामन्ती है जो येन-केन-प्रकारेण अपना ही हित-साधन करना जानती है। इस व्यवस्था में जनता के खून-पसीने की कमाई को मंत्री और नौकरशाह अपनी सुख-सुविधाओं तथा भोग विलास पर खर्चा करते हैं। धनी व्यक्ति अधिक धनी होता जा रहा है जबकि गरीब दिनों-दिन दरिद्रता के भयावह दलदल में डूबता जा रहा है, उसके दुःख का कोई अन्त नहीं है। नागार्जुन लिखते हैं:-

जमींदार हैं साहूकार हैं बनिया हैं व्यापारी हैं
अन्दर-अन्दर विकट कसाई बाहर खद्दरधारी हैं
सब घुए आए भरा पड़ा है भारतमाता का मंदिर
एक बार जो फिसले अगुवा फिसल रहे हैं फिर फिर फिर¹³

कवि देख रहा है कि यों तो देश की कोई भी जगह खाली नहीं। मकान, दुकान, अस्पताल, स्कूल, फुटपाथ, स्ट्रीट, गलियाँ और मस्तिष्क कुछ भी खाली नहीं। अभावों से ग्रस्त देश की स्थितियों को देखकर नागार्जुन बेचैन हो उठते हैं और दाने-दाने के लिए तरसते पीडित वर्ग से खाली पेट की आवाज बुलन्द करते हैं:-

खाली है हाथ, खाली है पेट,
खाली है थाली, खाली है प्लेट¹⁴

भूखे-नंगे, फटे-पुराने चिथड़ों में अपने शरीर को ढके, अत्यन्त कष्टमय जीवन जी रहे हैं। बेरोजगारी के महाभँवर में युवा वर्ग पड़ा हुआ है। इस स्थिति में शासकों द्वारा आयोजित आजादी की रजत जयन्ती आजादी की नहीं महँगाई की जयन्ती है।

राजनीतिक बोध वाली नागार्जुन की कविताएँ मीडियाधर्मी भी प्रतीत होती हैं। जिस तरह लोकतंत्र का चौथा पाया कही जाने वाली मीडिया सरकार सहित किसी की भी आलोचना करने को स्वतंत्र है, उसी तरह ये कविताएँ भी मीडिया की भूमिका का निर्वाह करती हैं। इसलिए बार-बार अभिव्यक्ति का खतरा

उठाते हुए नागार्जुन ने लोकतंत्र विरोधी आचरण करने वाले (सत्तापक्ष या विपक्ष के) बड़े से बड़े राजनेता को भी नहीं बख्शा- चाहे गाँधी हों या संत विनोबा भावे, इन्दिरा गाँधी हों या जवाहरलाल नेहरू, बालठाकरे हों या उनकी शिवसेना, सभी उनके निशाने पर हैं।¹¹

इंदू जी क्या हुआ आपको? शीर्षक कविता की पंक्तियाँ तो मुहावरा बनकर लोगों की जुबान पर चढ़ गयी हैं:-

क्या हुआ आपको
क्या हुआ आपाके?
सत्ता की मस्ती में
भूल गयीं बाप को
इंदू जी, इंदू जी
क्या हुआ आपको?¹²

सन् 1961 में नेहरू जी को भी नहीं बख्शा था- जब नेहरू के समय ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ भारत यात्रा पर आयीं तो बड़े धूम-धमाके से उनके स्वागत की तैयारियाँ होने लगीं। यह स्वागत जनकवि को रास नहीं आया। उन्होंने बड़े व्यंग्यात्मक ढंग से अपना प्रतिरोध दर्ज किया:-

आओ रानी, हम ढोयेंगे पालकी
यही हुई है राय जवाहर लाल की।
रफू करेंगे फटे-पुराने जाल की
यही हुई है राय जवाहर लाल की
एक बात कह दूँ मलका, थोड़ी सी लाज उधार लो
बापू को मत छोड़ो, अपने पुरखों से उपहार लो
जय ब्रिटेन की जय हो इस कलिकाल की।
आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी।¹³

नागार्जुन सर्वजनसुखाय तथा सर्वजनहिताय के रचनाकार थे। वे उस माटी के रचनाकार थे जिसकी महक उनके रोम-रोम में बसी थी। जनसाधारण ही उनकी सोच का केन्द्र था। उसे मुक्ति दिलाना ही वे अपना कर्तव्य समझते थे। वे स्वयं कहते थे- “जनसामान्य हमारी सारी आशाओं का प्राण केन्द्र है।”

‘तालाब की मछलियाँ’ शीर्षक कविता में नागार्जुन स्त्री-विमर्शकार की मुद्रा धारण किये बिना, मछली तलने वाली गृहिणी के साथ मछली के मार्मिक संवाद (कल्पित) द्वारा नारी जीवन की विडम्बना और उसकी अस्मिता का प्रश्न उठाते हुए मुक्ति की सम्भावना भी तलाशते हैं:-

हम भी मछली, तुम भी मछली
दोनों ही उपभोग की वस्तु हैं
ज्ञाता स्वाद सुधीजन, सजनी हम दोनों को
अनुपम बतलाते हैं
इसलिए तो
हमें इन्होंने कैद कर लिया तालाबों में
इसीलिए तो
तुम्हें
इन्होंने कैद कर लिया
सात-सात डेवढ़ियों वाली हवेलियों में।¹⁴

‘हरिजन गाथा’ शीर्षक कविता में बेलछी नरसंहार को आधार बनाया गया है। हरिजनों पर पाशविक अत्याचार की पृष्ठभूमि में रचित उक्त कविता में गर्भकुक्षियों के अन्दर भ्रूण तक को सहन करने पड़े जुल्म का मार्मिक चित्रण है। बिहार में सामन्तों का दलित उत्पीड़न कोई नई बात नहीं थी लेकिन इस दर्दनाक हादसे ने नागार्जुन को विचलित कर दिया। यह कोई आकस्मिक हादसा नहीं था, किसी अनहोनी की आशंका से निकटवर्ती थाने को अवगत करा दिया गया था। किसी मांगलिक उत्सव की तरह हादसे के सभी सामान जुटाये जा रहे थे:-

और निरन्तर कई दिनों तक
चलती रही हों तैयारियाँ सरेआम
किरोसिन के कनस्तर मोटे-मोटे लक्कड़
उपलों के ढेर, सूखी
घास-फूस के पूते

खोदा गया हो गड़्हा हंस-हंसकर

और ऊँची

जातियों वाली को समूची आबादी

आ गई हो होली वाले सुपरमौज के मूड में!⁵

इस कविता में भविष्य का नायक नवजात दलित शिशु जन्मजात क्रान्तिकारी है। उसकी हथेली की आड़ी तिरछी रेखाओं में विभिन्न शस्त्रों के निशान हैं- बरछा, भाला, बम इत्यादि के निशान लेकर जन्म ग्रहण करने का चित्रण गोधरा काण्ड की नृशंसता एवं वीभत्सता को तरोजा कर देता है:-

आड़ी तिरछी रेखाओं में

हथियारों के ही निशान हैं

खुखरी है बम है, असि भी है

गंडासा-भाला प्रधान है!⁶

यह बालक निम्न वर्ग के भविष्य का नायक है और कवि को उसके नेतृत्व पर पूरा भरोसा है:-

श्याम सलोना यह अछूत शिशु

हम सबका उद्धार करेगा

आज यही सम्पूर्ण क्रान्ति का

बेड़ा सचमुच पार करेगा

दिल ने कहा दलित माओं के

सब बच्चे अब बागी होंगे!⁷

नागार्जुन की कविताएँ जनता से ही अपनी ताकत ग्रहण करती हैं और फिर जनता को जीवन से लड़ने की शक्ति देती हैं, उनमें नये प्राण का संचार करती हैं। इसीलिए सुधीर रंजन सिंह ने उन्हें 'जनप्राण कवि' कहा है।

नागार्जुन इसलिए आम आदमी के कवि नहीं थे कि उन्होंने आम आदमी की आवाज को कविता के माध्यम से विराटत्व प्रदान किया बल्कि उनकी कविताओं का प्रधान नायक आम आदमी ही होता है।

नागार्जुन जनक्रान्ति के प्रतिनिधि कवि हैं। उनका स्थान जनवादी रचनाकारों में अग्रणी हैं। निश्चित रूप से उनकी कविता आम आदमी की वेदना से उपजी कविता है क्योंकि उन्होंने जो लिखा आम आदमी से रूबरू होकर लिखा। उनके काव्य में जनता की व्यथा, दुःख-दर्द आदि मुखरित हुआ है। नागार्जुन के लिए देश और जनता का हित सर्वोपरि था। अपने काव्य के माध्यम से जनता की पीड़ा को कम करने तथा उसके हित तथा हक की आवाज उठाकर समकालीन सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं। जनक्रान्ति के कवि के रूप में नागार्जुन का स्थान अद्वितीय है।

सन्दर्भ सूची:

1. आलोचना, अंक 56-57, केदारनाथ सिंह, पृ0 17
2. प्रतिनिधि कविताएँ, नागार्जुन, सं0 नामवर सिंह, पृ0 5
3. लहर, नवम्बर 70, डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ0 43
4. भारतभूमि में प्रजातन्त्र का बुरा हाल है, नागार्जुन रचनावली, पृ0 4
5. लाल भवानी, नागार्जुन रचनावली-1, पृ0 100
6. प्रतिनिधि कविताएँ, नागार्जुन, सं0 नामवर सिंह, पृ0 98
7. प्रतिनिधि कविताएँ, नागार्जुन, सं0 नामवर सिंह, पृ0 15
8. आधुनिकता का लोकपक्ष और साहित्य, प्रो0 चौथीराम यादव, पृ0 79
9. हँस, जून 1948
10. युगधारा, पृ0 113
11. आधुनिकता का लोकपक्ष और साहित्य, प्रो0 चौथीराम यादव, पृ0 83
12. इंदू जी क्या हुआ आपको, नागार्जुन रचनावली-2, पृ0 81
13. आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी, नागार्जुन रचनावली-2, पृ0 347
14. तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन रचनावली-1, पृ0 113
15. प्रतिनिधि कविताएँ, नागार्जुन, सं0 नामवर सिंह, पृ0 137-138
16. प्रतिनिधि कविताएँ, नागार्जुन, सं0 नामवर सिंह, पृ0 142
17. प्रतिनिधि कविताएँ, नागार्जुन, सं0 नामवर सिंह, पृ0 143

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा की रहस्यानुभूति

डॉ० अमिता रानी सिंह

हिन्दी विभाग, नवयुग कन्या महाविद्यालय, राजेन्द्र नगर, लखनऊ

सारांश

छायावादी काव्य के विकास में महादेवी वर्मा का योगदान अप्रतिम है। वे अपने समय के कवियों में एक अलौकिक भाव जगत का सृजन कर छायावादी काव्यधारा को एक नयी सौन्दर्य दृष्टि प्रदान करती हैं। यही कारण है कि उन्हें छायावादी काव्य-धारा में रहस्यावादी धारा की प्रमुख कवयित्री माना जाता है। सर्वथा नये उपमान, प्रतीक लाक्षणिकता, उनके काव्य को लालित्य-योजना की दृष्टि से एक ऐसा आयाम प्रदान करते हैं जो छायावादी कवियों में उनकी अलग पहचान बनाता है।

मुख्य शब्द - रहस्यवाद, छायावाद, आलोकित, अपरिमित, दृग्जल, मधुमास, मधु मदिरा

महादेवी वर्मा छायावाद तथा रहस्यवाद की प्रमुख कवयित्री हैं। प्रारम्भ में वह सूर, तुलसी, मीरा के भक्ति पदों से प्रभावित होकर ब्रजभाषा में रचना करती थी, किन्तु कुछ समय पश्चात वह वेदना के भावों को लेकर खड़ी बोली में रचना करने लगी। करुणा एवं भावुकता उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग थे। जहाँ एक ओर उनके काव्य में इन भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई वहीं दूसरी ओर उनकी ये भावनाएँ सम्पर्क में आने वाले पीडित एवं दुखी व्यक्तियों को भी उनके प्रेम एवं सहानुभूति से प्रभावित करने लगी।

महादेवी की रचनाएँ 'चाँद' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई, 1983 ई० में इन्होंने 'प्रयाग महिला विद्यापीठ' के प्राचार्या पद को सुशोभित किया, काव्यात्मक प्रतिभा के लिये इन्हें 'सेक्सेरिया' एवं 'मंगला प्रसाद' पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। 1983 ई० में 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। इसी वर्ष उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से 'भारत-भारती' पुरस्कार मिला। महादेवी वर्मा आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री हैं। इन्होंने रहस्यवाद की शैलियों को अपनाकर वेदना के माध्यम से आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को जिस कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया, वह अनुपम है।

महादेवी मूलतः छायावादी कवयित्री हैं किन्तु इनका गद्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनके गद्य में भी काव्य जैसी अनुभूति होती है। इन्होंने नारी स्वातन्त्र्य के लिये संघर्ष किया, परन्तु अपने अधिकारों की रक्षा के लिये नारियों का शिक्षित होना भी आवश्यक बताया। कुछ वर्षों तक ये उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्या भी रही। भारत के राष्ट्रपति से इन्होंने 'पद्म विभूषण' की उपाधि प्राप्त की। महादेवी वर्मा के जीवन पर महात्मा गाँधी का तथा कला साहित्य साधना पर कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रभाव पड़ा। आधुनिक हिन्दी की सबसे सशक्त कवयित्रियों में से एक होने के कारण इनको आधुनिक मीरा के नाम से भी जाना जाता है। महादेवी ने स्वतन्त्रता के पहले का भारत भी देखा और उसके बाद का भी। उनकी गणना उन कवियों में की जाती है जिन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के भीतर विद्यमान हाहाकार रूदन को देखा, परखा और करुण होकर अधिकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की। उन्होंने मन की पीड़ा को इतने स्नेह और श्रृंगार से सजाया कि 'दीपशिखा' में वह जन जन की पीड़ा के रूप में स्थापित हुई और उसने पाठकों के साथ समीक्षकों को भी गहराई तक प्रभावित किया।

प्रतिभावान कवयित्री और गद्य लेखिका महादेवी वर्मा साहित्य और संगीत में निपुण होने के साथ-साथ कुशल चित्रकार और सृजनात्मक अनुवादक भी थीं। अतः भारत के साहित्यकाश में महादेवी वर्मा का नाम ध्रुव तारे की भाँति प्रकाशवान है।

महादेवी वर्मा की रचनाएँ इनके जीवन-काल में विविध पड़ावों के समान हैं। सन 1980 में 'निहार' 1932 में, 'रश्मि', 1934 में 'नीरजा', 1936 में 'सांध्यगीत' नामक चार कविता संग्रह प्रकाशित हुए। इसके अतिरिक्त 'दीपशिखा' 'यामा' की रचना की। 'अतीत के चलचित्र' 'स्मृति की रेंखाएँ', 'शृंखला की कड़ियाँ' इनकी महत्वपूर्ण गद्य रचनाएँ हैं।

महादेवी वर्मा छायावादी कवियों की वृहत्तुष्टयी में से एक हैं, जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में छायावाद का अपना विशिष्ट स्थान है, उसी प्रकार महादेवी छायावादी कवियों में औरों से भिन्न अपना एक विशिष्ट और निराला स्थान रखती हैं। महादेवी वर्मा की यही विशेषता उनकी रहस्यभावना, आध्यात्मिकता, वेदना की व्यापकता एवं अभिव्यक्ति, सौन्दर्य में दिखाई पड़ती है। आधुनिक हिन्दी काव्य को सौन्दर्य भावना के विचार से महादेवी वर्मा की देन विशेष महत्व रखती है। छायावादी सभी कवियों के काव्य में रहस्य भावना विद्यमान है। अनन्त, अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा का भाव इन सभी कवियों में रहस्यवाद के प्रमुख सोपान के रूप में दिखाई पड़ता है।

मानव जिज्ञासु प्राणी है। अपने चारों ओर फैले हुए प्राकृतिक वैभव पर्वत, सरिता, वृक्ष, पशु, पक्षी, सूर्य, चन्द्र, मेघ इत्यादि को देखकर उसके मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि वह कौन सी सत्ता है जो इस सृष्टि का संचालन कर रही है? इसी जिज्ञासा को जब कवि अपनी कविता में अभिव्यक्त करता है तो वही अभिव्यक्ति 'रहस्यवाद' कही जाती है।

महादेवी ने रहस्यवाद को छायावाद का ही दूसरा सोपान माना है। महादेवी का रहस्यवादी दृष्टिकोण आधुनिक है, उनका रहस्यवाद प्राचीन रहस्यवाद से साम्य रखते हुए भी अनेक अर्थों में भिन्न है। प्राचीन रहस्यवाद में साधना और योग क्रिया का प्राधान्य था। वह बौद्धिक धरातल पर अधिक अवलम्बित था, किन्तु उसमें प्रेम-पीर की सरसता भी कम नहीं थी। आधुनिक रहस्यवाद में योग-साधना और रहस्य पद्धति की दार्शनिक गूढ़ता समाप्त हो गयी थी। बुद्धि और हृदय का सामंजस्य ही महादेवी के नवीन रहस्यवाद का मूल है। महादेवी की रहस्यानुभूति प्रणयमूलक सौन्दर्यवादी रहस्यानुभूति है। इन्होंने रहस्यवाद में द्वैत तथा अद्वैत दोनों ही स्थितियों को स्वीकार किया है- रहस्यवादी भावना के लिये द्वैत की स्थिति भी आवश्यक है और अद्वैत का आभास भी, क्योंकि एक के अभाव में विरह की अनुभूति असम्भव हो जाती है और दूसरे के बिना मिलन की इच्छा अधिकार खो देती है।⁽¹⁾ वस्तुतः महादेवी का रहस्यवाद साधनात्मक न होकर भावनात्मक है। रहस्यवाद का मूलाधार आत्मा का परमात्मा में आत्म-समर्पण होना है। महादेवी का यह आत्म-समर्पण बुद्धि की सूक्ष्मता से लेकर सौन्दर्य-दृष्टि की विराट तक विस्तृत है। बुद्धि के द्वारा वह सत्-चित्त की उपलब्धि करता है और सौन्दर्य के द्वारा आनन्द की अनुभूति। महादेवी वर्मा के शब्दों में - “रहस्यवादी के आत्म-समर्पण में बुद्धि की सूक्ष्म व्यापकता से सौन्दर्य की प्रत्यक्ष विविधता तक फैल जाने की क्षमता रहती है, अतः उनमें सत् और चित्त की एकता में आनन्द सहज संभव रहेगा।”⁽²⁾

महादेवी के काव्य में रहस्यवाद लोक-सेवा के जीवन-दर्शन के रूप में प्रकट हुआ है। उनकी रहस्य भावना में लोक-कल्याण का साधनात्मक स्वरूप स्पष्ट है। महादेवी वर्मा ने दीप के जलने में आत्म समर्पण की भावना की अभिव्यक्ति बड़ी मार्मिकता के साथ की है-

“मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर,
सौरभ फैला विपुल धूप बन
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित
मेरे जीवन का अणु गल-गल”⁽³⁾

निसंदेह महादेवी के मानस का निर्माण सार्वभौम करुणा के परमाणुओं से ही हुआ है। इसलिये वह प्रिय से यह वरदान मांगती है कि- मैं धन बनूँ और झर-झर मिटूँ नित” उनकी इस करुणा में विसर्जन का महत्व भी आ गया है -

अति मैं कण-कण को जान चली
सबका क्रंदन पहचान चली।
आँसू के सब रंग जान चली।
दुख को कर सुख-आख्यान चली,
क्षण-क्षण का जीवन जान चली,
मिटने को कर निर्माण चली⁽⁴⁾

महादेवी वर्मा की रहस्यानुभूति अद्वैतवादी है। अद्वैतवाद एक दर्शन मात्र है जबकि रहस्यवाद उसकी अनुभूति है। “अद्वैतवादी सिद्धान्त के अनुसार आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है। अद्वैत के मूल में एक दार्शनिक सिद्धान्त है। कवि कल्पना या भावना नहीं, जब उसका संचार भाव क्षेत्र में होता है तब उच्चकोटि के भावात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है।”⁽⁵⁾

“वर्तमान हिन्दी में अद्वैतवादी रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वभाविक विकास है, इसमें अपरोक्ष अनुभूति, सरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहम् का इदम् से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।”⁽⁶⁾ वस्तुतः दार्शनिकता मानव को ज्ञान देती है और रहस्य उसे अनुभूति प्रदान करता है। महादेवी ने आत्मा परमात्मा का निरूपण कुछ इस प्रकार किया -

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
नींद भी मेरी अचल निस्पन्द कण-कण में
प्रथम जागृति भी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
शाप हूँ जो वन गया वरदान बंधन में,
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी।⁽⁷⁾

आत्मा-परमात्मा वस्तुतः अलग न होकर दोनों एक ही हैं किन्तु बीच में एक स्थिति ऐसी भी आती है जब दोनों पृथक् हो जाते हैं। यह पृथक्ता वैसी ही है जैसी कि विद्युत की धन से होती है। महादेवी वर्मा असीम और ससीम के द्वैत भाव को वास्तविक न मानकर उसे सीमा का भ्रम मानती हैं। महादेवी वर्मा अलौकिक प्रिय से प्रेम तो करती है परन्तु एकाकार नहीं होना चाहती क्योंकि मिलन के बाद स्वयं का अस्तित्व नष्ट हो जाएगा। प्रेम की अनुभूति के लिए प्रिय और प्रेयसि दोनों का अलग अस्तित्व आवश्यक है। स्व को बनाये रखना महादेवी की आवश्यकता है क्योंकि अनुभूति के लिए स्व का अस्तित्व होना आवश्यक है।

रहस्यवाद आत्मा और परमात्मा के मिलन का साधन है परमात्मा को प्राप्त करने के लिये आत्मा को कई सीढ़ियों को पार करना पड़ता है।

रहस्यवाद का प्रारम्भ जिज्ञासा से होता है जब साधक के मन में परम तत्व के प्रति कौतूहल जागृत होता है तभी उसका मन प्रश्न करने लगता है कि वह कौन है? सृष्टि का सृजन कैसे हुआ? सृष्टि को परिचालित कौन करता है? कण-कण में कौन समाया है? प्राणों में कौन समाया है? इस प्रकार जिज्ञासा से रहस्यवादी चिंतन का जन्म होता है। ईश्वर की सत्ता के प्रति जिज्ञासा व्यक्त करते हुए महादेवी वर्मा कहती हैं-

हुआ यों सूनेपन का भान,
प्रथम किसके उर में अम्लान
और किस शिल्पी ने अन्जान
विश्व प्रतिमा कर दी निर्माण⁽⁸⁾

इस प्रकार आत्मा और परमात्मा की प्रणयानुभूति को रहस्यवाद कहा जाता है। महादेवी की रहस्यानुभूति में प्रेम की तीव्रता छलकती है। उन्हें अपने प्रिय से अगाध अथाह प्रेम है। उनका सम्पूर्ण जीवन प्रिय की आराधना में समर्पित है। महादेवी का प्रणय व्यापार प्रकृति की विराट पृष्ठभूमि में विकसित हुआ। उनका अज्ञात प्रिय जीवन में प्रणय का प्रथम संगीत सिखाने इस पार आया-

निशा की धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल
कली से कहता था मधुमास
बता दो मधु मदिरा का मोल⁽⁹⁾

महादेवी अपनी मिलन की बेला में किसी का तनिक भी व्यवधान उपस्थित होने देना नहीं चाहती, उनका प्रियतम केवल एक बार ही प्रणय-वेदना जगाने आया था। तब से न जाने कितने युग बीत गये, न जाने कितने प्रतीक्षा में दीप जले और न जाने कितने दीप बुझे पर प्रियतम लौटकर नहीं आये। अतः स्वप्न-मिलन की यह अनुभूति उनके हृदय की अथाह अनुभूति बन गई। ये अपने को मिटाती जा रही है। लेकिन उनका अनुरागमय मन यही कहता है -

जो तुम आ जाते एक बार,
कितनी करुणा कितने संदेश पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार-तार अनुराग भरा उन्माद राग,
आँसू लेते वे पद पखार⁽¹⁰⁾

महादेवी की रहस्यानुभूति में विरह की प्रधानता है। उनके हृदय में असीम वेदना गरज रही है। वेदना ही उनकी साधना है वहीं उनके जीवन का सार तत्व है विरह और वेदना में मनुष्य अपने अभीष्ट तक पहुँचने में समर्थ होता है। वह अपने प्रिय की स्मृति में आँसूओं की हाट लगती चल रही है। उनके आँसूओं का उद्गम स्थल उस अज्ञात प्रियतम का अनुराग ही है। वह प्रायः विरहानुभूति में लीन रहती है। वह मिलन के लिये अंतिम क्षण तक आशा करती हैं और अपने आप को अमर सुहागिनी मानती है। महादेवी ने 'यामा' की भूमिका में अपनी विरहानुभूति के स्वरूप बताए हैं- "एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से अविच्छिन्न बंधन में बाँध देता है, और दूसरा वह जो काल और सीमा के बंधन में पड़े हुए असीम चेतना का क्रन्दन है।"⁽¹¹⁾

महादेवी की वेदना का स्वरूप विषादकारी न होकर आह्लादकारी है। उन्हें करुणा स्नात उजले उल्लासमय दुख की अपेक्षा है, निराशाजनित मलिन दुख की नहीं -

'शून्य मन्दिर में बूँगी आज में प्रतिमा तुम्हारी
अर्चना हो शूल हों ले दृगजल अर्घ्य होले
आज करुणा स्नात उछला, दुःख से मेरा पुजारी⁽¹²⁾

इस प्रकार महादेवी की काव्य-कृतियों में वेदना का स्वभाविक विकास उपलब्ध होता है, पंत जी ने निम्नांकित पंक्तियाँ कदाचित इनके काव्य को ही लक्ष्य करके लिखी थी -

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
वही होगी कविता अनजान⁽¹³⁾

इस प्रकार महादेवी की विरहानुभूति बहुत ही व्यापक है और वह जीवन को सक्रियता प्रदान करने वाली ठोस सेवा का संकल्प लिए हैं। इनकी वेदनानुभूति में व्यापक और विविधता दोनों विद्यमान है। छायावादी कवियों में वेदनानुभूति की दृष्टि से वह जयशंकर प्रसाद के सर्वाधिक निकट हैं।

महादेवी की रहस्यानुभूति की धारा मिलन, विरह के तटों को स्पर्श करती हुई अंत में उस स्थल पर पहुँच जाती है जहाँ संयोग में ही वियोग और वियोग में ही संयोग की अनुभूति विद्यमान रहती है-

विरह का युग आज दीखा
मिलन के लघु पल सरीखा

दुःख सुख में कौन तीखा
मैं न आनी औ न सीखा
मधुर मुझको हो गए सब
मधुर प्रिय की भावना लें⁽¹⁴⁾

अंततः महादेवी वर्मा इन रहस्य का बोध प्राप्त कर लेती है कि आत्मा को विरह में तपकर ही इस योग्य बनाया जा सकता है कि वह अलौकिक प्रिय की सत्ता का साक्षात्कार करने में समर्थ हो सके, उनका यह विरह उनके लिए निर्वाण बन जाता है।

पीड़ा और वेदना की अमर गायिका महादेवी के भावपूर्ण, सरस और मर्मस्पर्शी गीत हिन्दी साहित्य रसिकों को सदैव भावरस और प्रेमरस से अभिसिंचित करते रहेंगे।

संदर्भ ग्रन्थ:-

1. साहित्यकार की आस्था तथा निबन्ध-महादेवी वर्मा लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 106
2. साहित्यकार की आस्था तथा निबन्ध-महादेवी वर्मा लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 98
3. संधिनी -महादेवी वर्मा- लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 83
4. संधिनी -महादेवी वर्मा- लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 155-156
5. जायसी ग्रंथावली भूमिका-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृष्ठ 159
6. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध-जय शंकर प्रसाद-लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 68
7. आधुनिक काव्य मंजरी सम्पादक-प्रो० प्रेम सुमन, डॉ० हिमांशु सेन, पृष्ठ-108
8. संधिनी-महादेवी वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, पृष्ठ-50
9. संधिनी-महादेवी वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, पृष्ठ-33
10. आधुनिक काव्य मंजरी सम्पादक प्रो० प्रेम सुमन, डॉ० हिमांशु सेन, पृष्ठ-110
11. महादेवी और संधिनी राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, पृष्ठ-100
12. महादेवी और संधिनी राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, पृष्ठ-101
13. महादेवी और संधिनी राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, पृष्ठ-102
14. महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य भावना-डॉ० गोविन्द पाल-लोक भारती प्रकाशन, पृष्ठ-88

बाबा अजीत सिंह

डॉ० अमरबीर कौर

एसोसिएट प्रोफेसर, माता सुंदरी कॉलेज, नई दिल्ली

जन्म

बाबा अजीत सिंह श्री गुरु गोबिंद सिंह जी के सबसे ज्येष्ठ पुत्र थे। आपका जन्म माता सुंदरी जी के गर्भ से पांवटा साहिब में हुआ। आपके जन्म की खबर जब गुरु गोबिंद सिंह जी ने सुनी, तब गुरु जी ने इनका नाम अजीत सिंह रख दिया, क्योंकि उस समय गुरु जी ने भंगाणी के युद्ध में विजय प्राप्त की थी, जो पहाड़ी राजाओं द्वारा किया गया था। गुरु जी के अनुसार “सिक्ख हमेशा अपराजित हैं जिन्हें पराजित नहीं किया जा सकता।” सर्वत्र खुशियाँ मनाई गईं और दीपमाला की गई।

बाल्यकाल

भंगाणी के युद्ध के उपरांत गुरु गोबिंद सिंह जी सपरिवार जनवरी 1687 ई. में अनंदपुर साहिब आ गए। साहिब अजीत सिंह अपनी माताओं और दादी गुजरी जी की गोद में खेलकर बड़े होने लगे। इस विषय में माता सुंदरी कॉलेज की प्रिंसिपल डॉ. महिंदर कौर गिल ने ‘माता सुंदरी जीवनी’ में लिखा है :-

साहिबजादे अजीत सिंह का बचपन वधोरे करके आपणी दादी अंमा माता गुजरी दे हँथां विच ही गुजरिआ। माता गुजरी जी ने अपने पोतरे दा पालण पोसण बड़े चावां मलावां ते सुचँजी निगरानी हेठ कीता ताँहीउं तां इह बँचा आपणे बाप वांगू बड़ा सूझवान ते सूरबीर निकलिआ।”

अनंदपुर साहिब विच माता जीतो जी की कुखों साहिब जुझार सिंह, साहिब, जोरावर सिंह, साहिब फतहि सिंह दा जनम होइआ। साहिबजादा अजीत सिंह सभ तों वडे सन जिस करके पियार ते मुहँबत नाल इहनां नूँ खिडाउंदे। दादी गुजरी जी वी आपणे बाल पोतरियां नूँ गुरबाणी कंठ कराउंदे, साखीआं सुणाउंदे, गुरु दे उपदेशां नाल वाकफीअत कराउंदे, चोंजां विच बालां नाल चुहल-मुहल करदे रँब का शुक़र मनाउंदे।¹ इनका आपसी प्यार और खेलों को देखकर सभी प्रसन्न होते। अल्प आयु से ही साहिब अजीत सिंह जी अपने भाइयों और साथियों के साथ नकली लड़ाइयाँ लड़ते हुए बड़े होने लगे। वह अपने पिता गुरु गोबिंद सिंह जी के साथ फौजी कैंप में जाकर देखते कि किस प्रकार उनके सिंह युद्ध की तैयारी करने में जुटे हुए हैं और उनके करतब और लड़ाई के नये-नये गुरु सीखते।

गुरु गोबिंद सिंह जी भंगाणी के युँधा तों बाअद लोकां विच होर जाग्रती लिआउणा चाहुंदे सन, भारत वासीआं विच सवै सनमान दा नवां जीवन सिरजणा चाहुंदे सन, इसे लई भारत दे गौरवमई अतीत काल दीआं पौराणिक कथावां, मिथिहास अते इतिहास विचों ब्रिज भाषा अते पंजाबी विच अनुवाद कर कराके आम लोकां दे सनमुख रखिआ। उहनां नूँ हलूणिआ, उहनां लोकां विच पुनर-जाग्रती लिआ के सधारण ते नितानिआं तों असाधारण अते ताण वाले सवै माण वाले बण सकण।”²

इसके अतिरिक्त गुरु जी ने लोगों को ऐय्याशी और कायरता के जीवन को छोड़कर शस्त्र-विद्या और धर्म के मार्ग पर चलने का गुरु बताया। इसके अलावा उन्होंने आनंदपुर साहिब में दुर्गों का निर्माण प्रारंभ कर दिया। सतलुज दरिया के पार लोहगढ़, होलगढ़ और निर्मोहगढ़ शहर बनवाए। साथ ही फतेहगढ़, अनंदगढ़, और केसगढ़ दुर्ग भी तैयार होने शुरू हो गए ताकि यह दुर्ग इतने मजबूत हो जाएं कि इनके द्वारा दुश्मन भीतर प्रवेश ना कर सके। गुरु जी स्वयं फौजी जनरल और दूरदर्शी थे। उनको आभास था कि अब निर्बलों की रक्षा और धर्मयुद्ध हेतु तलवार उठानी ही पड़ेगी। इसी मंशा से अनंदपुर साहिब में युद्धाभ्यास आरंभ हो गया। साहिब अजीत सिंह भी उनकी (गुरु जी) कार्यवाई को उत्साहपूर्वक देखते और समझने की कोशिश करते। अब साहिबजादा अजीत सिंह भी गुरु के आशय के मुताबिक “भै काहू को देत नहि, नहि भै मानत आनि।” किसी से नहीं डरना और ना ही किसी को डराना का सबक सीखने लगे। वह भी गुरु जी के आस-पास रहने लगे ताकि गुरु जी के पास रह रहे सिक्खों की भावनाओं को समझ सकें। हर जगह से समाज से लताड़े जा रहे लोग, निम्न जाति के लोग गुरु जी के पास शरण लेने हेतु आने लगे। इस बारे में मैलकम ने लिखा है कि :-

“उस महापुरुष का एक निशाना था कि कौम को गिरी हुई अवस्था में से निकाला जाए। उन्होंने ऐसे तरीके अपनाए जिससे सभी एकजुट हो जाएं।”

गुरु जी अपने सिक्खों में हौंसला बुलंद करने हेतु अनंदपुर की पहाड़ियों में उन्हें आखेट खेलने हेतु ले जाते और वहाँ बाघों और रीछों को चुन-चुनकर मारते ताकि लोगों में पहाड़ी राजाओं और मुगलों को भय बना हुआ है, वह निकल जाए। वह भी आत्मनिर्भरता का जीवन व्यतीत कर सकें। वह लोग अपने परिवार की रक्षा दिलेरी के साथ कर सकें। प्रिंसिपल सतिबीर साहिब सिंह के अनुसार :-

“मुर्दे मन में जीवित हो गए और सदियों से दबा कर रखी मानवता में जोश भरा।”

गुरु जी ने स्वयं लिखा है :-

“तहि को सिंघ, आने चुनी मारे,
होर रीछ बहु भांत बिदारे।”

यह सब देखकर पहाड़ी राजाओं में घबराहट पैदा हो गई। वह भीतर से डरने लगे कि कहीं हम मार ही ना दें। इसी भय से वह गुरु जी पर आक्रमण कर देते जब उनकी लड़ाई का जवाब गुरु जी डटकर देते, पहाड़ी राजा पराजित होकर वापिस लौट जाते। समस्त पहाड़ी राजाओं ने आपस में सलाह की कि किसी तरह हम बादशाह को सूचित करें कि यह गुरु गोबिंद सिंह खुद बादशाह बन गया है, इसके राज में नगाड़े बजते हैं, वह लोगों को जबरन सिक्ख बना रहा है। उसके (गुरु जी के) राज में समस्त छोटे-बड़ों को एक ही स्थान प्राप्त है, जबकि निम्न जाति के लोगों को हमारे पास बैठने का कोई हक नहीं। उन्होंने यह सब लिखकर औरंगजेब के पास भेज दिया। औरंगजेब ने इस कार्य हेतु पुत्र ‘मुअज़्ज़म’ को यह काम सौंपा और आदेश दिया कि किसी भी तरह वहाँ हो रही बगावत को दबाया जाए और पहाड़ी राजाओं की सहायता की जाए। शहजादा मुअज़्ज़म जब लाहौर आया तब मिर्जा बेग और भाई नंद लाल जी ने शहजादे को गुरु गोबिंद सिंह जी के बारे में विस्तारपूर्वक बताया कि वह (गुरु जी) तो खुद मज़लूमों की रक्षा करते हैं। उन्होंने इन पहाड़ी राजाओं के अत्याचारों से तंग आए लोगों को शरण दी है और वह उनकी रक्षा ही तो करते हैं। तब वह भी यह सब देखकर अर्चभित हो गया कि सिक्खों का अपने गुरु के प्रति कितना स्नेह है। इसके बारे में लतीफ ने भी लिखा है :-

“सारे सिक्खों को ऐसा सम्मान देने के साथ ही पहाड़ी राजाओं और ब्राह्मणों ने विरोध किया और वह गुरु जी के शत्रु बन गए।”

शहजादा मुअज़्ज़म ने अपने मुंशी भाई नंद लाल जी (जो गुरु घर के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे और फारसी व अरबी भाषाओं के विद्वान भी थे) के साथ मिलकर गुरु जी के साथ मित्रता कर ली। इसके साथ सिक्खों के हौसले और भी बुलंद हो गए।

साहिबज़ादा अजीत सिंह भी अब लगभग 13 वर्ष के हो गए थे। उन्होंने भी जब शहजादे मुअज़्ज़म और अपने पिता गुरु गोबिंद सिंह जी के साथ हुई मित्रता देखी तो वह भी मंत्रमुग्ध हो गए। गुरु गोबिंद सिंह जी ने देख लिया कि यह पहाड़ी राजा किसी-ना-किसी बहाने औरंगजेब के कान भर रहे हैं और लड़ाई से नहीं टलते तब उन्होंने सिक्ख धर्म को एक लड़ी में पिरोने की सोची। अर्थात् सिक्खों को मजबूत जत्थेबंदी में बाँधाने के बारे में सोचा। इस स्थान पर एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सच्चाई को समझना और विचारना अत्यंत आवश्यक है। यह यही है कि धर्म की सृजना का कार्य गुरु साहिबान ने धर्म को जत्थेबंद करने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है, पर इस पंथक जत्थेबंदी के संस्थात्मक गुणों का विकास करके और इसे पूर्ण रूप से राजनीतिक पार्टी का दर्जा देकर खालसा धर्म के रूप में रूपांतरित करने के समस्त कार्य को गुरु गोबिंद सिंह जी ने पूर्ण किया। इसके बारे में रतन सिंह भंगू ने भी लिखा है :-

“फिर सतिगुरू चित सोझी आई।
इह (राजपूत) कब सिख बने हम आई।
मुढ तिने अम्रित इन किम दयो।
किम पुत बिगाने मुख चुम चुमयै।
उड़ि राजपूत सदावै आप सिपाही।
उहि कहै कदों गुर दशीह पातशाही
अब दई पातशाही गरीबन उठाई।
वहै जानै गुर दई हमारै।”⁴

इस मंतव्य हेतु उन्होंने समूचे देश में जगह-जगह आदेश भेजने शुरू कर दिए। सन् 1699 ई. की बैसाखी को समस्त संगतों को निमंत्रण दिया। हुकमनामे की परंपरा (रिवायत) तीसरे गुरु, गुरु अमरदास जी के द्वारा शुरू हुई थी।

“हुकमनामा के कोशगत अरथ हन उह जिनी अथवा लिखत जिस विच हुकमां नूं अंकित कीता गिआ होवे, इह हुकमनामे वारतक विच हुंदे सन ते गुरु दरबार दे किसे प्रतिष्ठत सिंख राहीं गुरू साहिब वलों लिखे जांदे सन।”⁵

इस मंतव्य के लिए गुरु जी ने संगतों की देखभाल और लंगर की जिम्मेदारी साहिबज़ादा अजीत सिंह जी और गुरु महिलाओं को दी ताकि संगतों को किसी भी किस्म का कष्ट न हों साहिबज़ादा अजीत सिंह जी ने बड़ी निपुणता के साथ समस्त संगतों के रहन-सहन और उनके लंगर का ध्यान रखा।

30 मार्च, 1699 ई. की बैसाखी वाले दिन कसगढ़ में भारी दीवान सजाया गया। सिक्ख संगतें दूर-दूर से अनंदपुर साहिब पहुँचीं। कीर्तन की समाप्ति के उपरांत गुरु जी ने तलवार को म्यान से बाहर निकाल कर गरजते हुए कहा, “है कोई सिक्ख जो मेरे कहे अनुसार अपना शीश न्योछावर करे।” यह सुनकर सारी संगत हैरत में पड़ गई कि यह क्या दुखद घटना घट गई। हर कोई गुरु जी के बारे में तरह-तरह की बातें करने लग पड़ा। सारी संगत ने गुरु जी को पहली बार इस रूप में देखा था। गुरु जी ने पुनः पकड़ कर कहा तब सर्वत्र खामोशी छा गई। इतने में एक सिक्ख खत्री दया राम, जो लाहौर का निवासी था, उठा और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और उसने कहा, “धान्य गुरु जी, यह शीश आपके कहे अनुसार न्योछावर होने हेतु तैयार है।” गुरु जी उसको साथ वाले तंबू में ले गए। जब वह तंबू से बाहर निकले तब उनकी तलवार खून से सनी हुई थी। सारी संगत में हलचल मच गई। गुरु जी ने पुनः शीश की माँग की। इस बार धरम दास जाट, तीसरी बार रसोई भाई हिम्मत राय, चौथी बार जाट का छींवा मुहकम चंद और साहिब चंद नाई ने बारी-बारी अपने शीश गुरु जी के समक्ष भेंट किए। गुरु जी ने सभी को साथ वाले तंबू में ले जाकर नीले परिधान और शस्त्रों के साथ तैयार किया और सारी संगत के सामने पेश किया। वहीं संगत के सामने अमृत तैयार किया जिसमें माता जीतो जी ने बताशे डाले। पाँचों सिक्खों को एक ही बर्तन में अमृतपान कर जात-पात का भेद मिटा दिया और उनके नामों के साथ सिंह लगाकर भाई दया सिंह, भाई धरम सिंह, भाई हिम्मत सिंह, भाई मुहकम सिंह बना दिया। गुरु गोबिंद सिंह जी ने इनको ‘पंज पिआरिआँ’ की उपाधि प्रदान की। इस बारे डॉ. महिंदर कौर गिल ने कितना सुंदर लिखा है कि :-

“इहनां पंजां बलीदानिआं नूं गुरु जी ने पिआरे का विशेषण दित्ता, गुरु जी ने पंज पिआरे चुण के पंचाइती राज की नीह रख दित्ती।”⁶
 ‘पंजा पिआरिआं’ से गुरु जी ने आप अमृत छका और भाई गुरदास जी के कथनानुसार :-

“वाहु वाहु गोबिंद सिंह आपे गुर चेला।”

अमृतपान के लिए अब सभी में उत्साह दर्शनीय था। गुरु जी के महिलों (गुरु साहिबानों की पत्नियाँ), तीनों साहिबजादे साहिबजादा अजीत सिंह, साहिबजादा जुझार सिंह, साहिबजादा जोरावर सिंह ने अमृत की दात ली। साहिबजादा फतेह सिंह अभी लगभग दो वर्ष के ही थे। उस समय लगभग 15 हजार सिक्खों ने अमृतपान किया। गुरु जी ने यह सत्य कर दिखाया कि कोई भी मानव जन्म से कायर या निम्न नहीं होता। वह जाति या वर्ग तक ही सीमित नहीं होता, इसके साथ ही गुरु जी ने पांच रहित मर्यादाओं और ककारों की महत्ता भी बताई।

“वास्तव विच जीवन विभिन्न खेतरां ते वरगां विचों आए विअकतीआं विच रहु रीतां ते सभिआचार दी इकसारता लिआउणी सी तां जो उह इहो लड़ी विच प्रोते जाए, ते इक पंथ का रूह जापण अथवा समाजिक खेतर विच इक सुतंतर सभिआचार अते नैतिक इकाई दे रूप विच विचर सकण। अंग्रित छकण समें पंजां रहितां दे पंज कुरहितां दी सिंखिआ दे के सिंखी अथवा संत-सिपाही वाले पूरन मनुख दी उची ते सुँची जीवन जाच दी मोटी जिही रूप रेखा तां दस दित्ती पर फिर वी इक लोड़ महिसूस कीती गई कि जीवन दे रह खुशी गमी दे मौकिआं लई अथवा कार विहार लई किनां रसमां रिवाजज नूं अपणाइया जावे, इहनां विच इकसारता लिआंदी जावे, इस लई विधीवत रूप विच रहितनामिआं का मुँढ बनिआ।”

गुरु गोबिंद सिंह जी ने सभी को एक ही राह पर चलने और एक ही धर्म में रहने की ताकीद की और एक ही नारा ‘वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतहि।’

“खालसा अकाल पुरख की फौज है, खालसा रूहानी ते दुनियावी तौर ते खुदमुखतिआर है, खालसा अते वाहिगुरु दे विचकार विचोला हो नहीं सकदा।”⁸

गुरु जी ने कौम को प्रत्येक समय शस्त्रबद्ध रहने का आदेश दिया। शस्त्रों का प्रयोग सिर्फ दुर्बलों की रक्षा हेतु और अपने बचाव के लिए करना। प्रो. दर्शन सिंह खालसा के अनुसार कि :-

“महान गुरु सिद्धांत ही खालसे की शक्ति है। इसके बारे में गुरु गोबिंद सिंह जी ने स्वयं कहा है :-

“खालसा मेरे रूप है खासा।

खालसा में हउ करउ निवास...

खालसा अकाल पुरख की फौज।

प्रगटिउ खालसा प्रमातम की मौज।”

जंगी प्रशिक्षण

बाटे से अमृतपान करके के उपरांत साहिबजादा अजीत सिंह अब खुद खालसा फौज के बहादुर सिपाही बनने की तैयारियों करने लग गए। गुरु जी से सांसारिक और आध्यात्मिक विद्या के साथ-साथ शस्त्र-विद्या के भी गुरु सीखने प्रारंभ कर दिए। गुरु जी स्वयं उनकी इन क्रीड़ाओं को देखते और नेतृत्व करते रहते, इस नेतृत्व के कारण साहिबजादा अजीत सिंह जी में हौसला और निर्भयता आती गई। गुरु जी भी समझ गए कि अब मेरा शेर पुत्र जंगी लड़ाई हेतु तैयार हो चुका है। गुरु जी साहिबजादा अजीत सिंह को सेना के साथ कहीं-ना-कहीं भेजते ही रहते। एक बार गुरु दरबार लगा हुआ था कि पोठोहार से सिंघों ने आकर शिकायत की कि, “हम आपके दर्शन करने के लिए आते हैं तब रंगड़ जाति के लोग हमारा माल असबाब लूट लेते हैं, हमारा रास्ता रोकते हैं और हमें बहुत तंग करते हैं।” गुरु जी ने उसी समय साहिबजादा अजीत सिंह की जत्थेबंदी के तहत भाई उदै सिंह आदि 100 सिंघों को वहां के रंगड़ों को सबक सिखाया। साहिबजादा अजीत सिंह ने वहां के लोगों की खूब मरम्मत की और उनके नेता कंसोराम रंगड़ को अनंदपुर पकड़ कर ले गए। जब कंसोराम रंगड़ ने गुरु जी के दर्शन किए तो अपनी भूल के लिए क्षमा मांगी और भविष्य में ऐसी हरकत दुबारा ना करने का वचन लेकर छोड़ दिया। उसके बाद से वो गुरु घर का पक्का श्रद्धालु बन गया।

दूसरी तरफ निर पहाड़ी राजाओं ने सिर उठाना प्रारंभ कर दिया। सारे राजा अजमेर चंद के पास एकत्रित हुए और कहने लगे कि इनको (गुरु जी) को अनंदपुर से बाहर निकालो। तब राजा अजमेर चंद ने कहा :-

“भाई! बड़े अचरज दी गॅल है कि इस गुरु दी अंग्रित विच अेडी डाढी शकती है जो कमीण कादू जॅट बूट आ के अंग्रित चॅख के गिंदड़ां तों शेर बण बण सानूं डराउण वाले हो जांदे हन, अजे तां पंज सत हजार है पद लॅख दो लॅख हो गिआ तां सानूं वसण कीकूं देणगे।”¹⁰

तब सबने मिलकर बादशाह औरंगजेब को पत्र लिखा। पहाड़ी राजाओं की अर्जी देने पर सरहिंद के वजीर खां ने सरदार दीना बेग और पैदे खां पठान को लगभग पाँच हजार फौज देकर गुरु गोबिंद सिंह को पकड़कर लाने के लिए कहा।

दूसरी तरफ गुरु जी को भी संदेशा मिल गया। उन्होंने भी तैयारी कर ली। जब दिल्ली से फौजों ने आकर अभी डेरे ही लगाए थे कि सिंघों ने अचानक उन पर आक्रमण कर दिया। पैदे खां मारा गया। अदीना बेग लड़ रहा था उधार साहिबजादा अजीत सिंह ने पहुँचकर बहुत सारे तुर्कों को मौत के घाट उतार दिया। दीना बेग ने घायल होकर अपनी सेना को पीछे कर लिया क्योंकि उसके साथ दो पहाड़ी राजाओं की सेना थी जो भाग खड़ी हुई थी। साहिबजादा अजीत सिंह जब वापिस आए तो गुरु जी उनकी पीठ थपथपाकर बचन किया, “बेटा! अँज मैं वडभागी हो गिआ जो तेरे जिहे सपुतर ने आपणा क्षत्री धरम पाल

दिखाया।”¹¹

दूसरा, पैदे खाँ की मृत्यु के पश्चात् दीना बेग पहाड़ी राजाओं से लड़ पड़ा कि हम तुम्हारी सहायता के लिए आए हैं और तुम्हारी सेना भाग गई तब राजा अजमेर चंद, बीर सिंह और गुजरां के नेता जगतुल्ला ने पुनः एकत्रित होकर लगभग 20 हजार की सेना लेकर अनंदपुर साहिब को घेरने लग पड़े। जब गुरु जी ने देखा कि यह तो अनंदपुर साहिब को घेरने लग पड़े हैं तब गुरु जी ने लगभग 10 हजार सेना के साथ मोर्चाबंदी शुरू कर दी। जब गुरु जी मोर्चाबंदी कर रहे थे तब साहिबजादा अजीत सिंह जी शक्ति देखकर भाई उदै सिंह ने गुरु जी के समक्ष विनती की, “सच्चे पातशाह, हुकम होवे तां साहिबजादा अजीत सिंह शत्रूआं पर हँला करना। गुरु जी ने बड़ी खुशी नाल बचन कीता कि छत्रीआं दा खास धरम इहो है। अभिमनिऊ ने ऐसे आयू विच बेअंत शत्रू पछाड़ के जँस पाया सी। इनहां हुकम सुणै सारे साहिबजादा अजीत सिंह चार कु हजार सिंघां नाल तिआर हो के अकाल अकाल गजाउंदे पहाड़ीआं दे मोरचे पुर जा पऐ।”¹²

युद्ध दोनों तरफ से बराबर हो रहा था जब उदै सिंह ने सिंघों के पैर पीछे हटते देखे तो अपना घोड़ा दौड़ाकर साहिबजादा अजीत सिंह जी को उस स्थान पर ले आए। तब साहिबजादा अजीत सिंह जी के बाणों ने पहाड़ियों के छक्के छुड़ा दिए। रक्त की धाराएँ बहने लगीं, लाशों के ढेर लग गए। भाई उदै सिंह के हाथों जगतुल्ला गुजर मारा गया। फिर फतेह की सूचना जब गुरु जी के पास पहुँची तो वह बहुत प्रसन्न हुए। साहिबजादा अजीत सिंह जी बड़े कर्मयोगी और बहादुर शूरवीर थे। इस युद्ध के बाद गुरु जी को साहिबजादा अजीत सिंह जी पर काफी भरोसा हो गया। उन्होंने सेना की कमान काफी हद तक उनको सौंप दी। पहाड़ी राजाओं ने अपनी सेना की बर्बादी देखी तो सोचों में पड़ गए। कहिलूर का राजा, राजा हंडुरी और कटोच परस्पर बातें करने लग पड़े कि हमें समझौता कर लेना चाहिए। तब राजा केसरी सिंह जसवालीआ जो बहुत ही अहंकारी था, ने गरज कर कहा अगर हम अनंदपुर को घेर लें और कोई सामान अंदर न जाने दें तो हम जीत जाएँगे। यह सलाह सभी को पसंद आई और रात के अंधेरे में उन्होंने पुनः दुर्ग को घेरने के लिए अनंदपुर साहिब पहुँच गए। गुरु जी और साहिबजादा अजीत सिंह जी ने दुर्ग के ऊपर से बाणों की बौछार शुरू कर दी। उनके सिंघों ने ऐसे गोला-बारूद बरसाए कि सारे पहाड़िए भाग खड़े हुए। साहिबजादा अजीत सिंह जी रणभूमि में आ गए और दूसरी ओर से तुर्कों की सेना पर आक्रमण कर दिया। इस हड़बड़ी में साहिबजादा अजीत सिंह जी का घोड़ा मारा गया। वह रणभूमि में पैदल ही लड़ते रहे और उदै सिंह ने एक और घोड़ा लाकर साहिबजादा अजीत सिंह जी को दिया। साहिबजादे ने शत्रुओं के साथ खूब मार-काट की। सिंघों के ताकतवर आक्रमण की गति न सहते हुए सारे पहाड़िए और सैनिक भाग गए। “भाई सेवा सिंह, टहिल सिंह और उदै सिंह आदि सिंघां ने साहिबजादे दी बहादरी ते कहिलूरीआं दे मोरचे दी कतल घर जंग दी जित गुरु साहिब नू सुणाई ते गुरु जी बहुत खुश होऐ अते आखण लगे भाई दया सिंह जी! हुण खालसा धारम युँध करन दे लाइक हो गिआ है। बाकी अँगे नू वधदा जाएगा।”¹³

जद पहाड़ी राजाओं ने संभाल कीती तां आपणी सेना वधोरे मरी नजर आई तां सिर सुँट के बैठ गए। राजा अजमेर चंद बार बार लड़ाई तों हार के तंग आ चुका सी। उस ने राजा केसरी चंद नू आपणे नाल रला लिआ किउंकि उह बहुत सिआणा ते ताकतवर सी। केसरी चंद दी जी हारन करके काफी बेइज्जती हो चुकी सी। उहनां सारिआं ने रल के फिर किले नू तोड़न दी सलाह बणाई। उहनां दे वजीर परमानंद ने शराबी हामी दे राहीं किला लोहगढ़ दा दरवाजा तोड़न का पका मनसूबा बणाइआ। इस दी खबर गुरु गोबिंद सिंह जी दे सूहीऐ चतर सिंह बराड़ ने उसी समें गुरु जी नू दस दिती। साहिबजादा अजीत सिंह सणे सारे सिंघ गुसे विच आ गए। गुरु जी ने इस कम दा जिंमा बचिंतर सिंह नू दिता। बचिंतर सिंघ जो भाई मनी सिंह दे सपुतर ते भाई उदै सिंह दे भरा सन। “भाई मनी सिंघ जी शहीदी दा समुँचा जीवन अदुँती ते अमोलक विरसा है। भाई साहिब दा सारा परिवार (1 भरा ते 10 पुतरां विचां 7 पुतर ते कई पोतरे) सिंखी सिदक नू निभाउंदे होऐ शहीदी प्राप्त कर गए। भाई साहिब दी इह अदुँती घालणा सिंघ पंथ लई हमेशां चानण मुनारे दा कम दिंदी रहेगी।”¹⁴

गुरु जी ने भाई बचिंतर सिंह को अपनी नागणी दे के आशीर्वाद दिया और कहा कि शराबी हाथी का मुकाबला तो मेरा यह शेर पुत्र करेगा। बचिंतर सिंह ने सति-बचन कहकर और नागणी हाथ में पकड़कर दुर्ग का दरवाजा खोल दिया। सामने हाथी के पीछे राजा केसरी चंद जसवालीया, सेना सहित आ रहा था। बचिंतर सिंह सति श्री अकाल के जयकारों की गूंज के बीच अपनी नागणी इतनी जोर से हाथी के मस्तिष्क पर मारी कि लोहे के तवे को नागणी चीरकर हाथी के मस्तिष्क के मध्य फँस गई। शराबी हाथी घायल होकर वापिस पहाड़ी राजाओं की सेनाओं को कुचलने लग पड़ा। सभी तरफ हाहाकार मच गई तब जसवाल के केसरी चंद को बड़ा क्रोध आया। उसने तुरंत ही दुर्ग के अंदर प्रवेश करने की चेष्टा की तब भाई उदै सिंह ने आगे बढ़कर अपनी तेज तलवार के जौहर दिखाकर राजा केसरी चंद का शीश धाड़ से अलग कर दिया। इस बहादुर योद्धा ने शीघ्र ही अपने नेजे में उसके सिर को पिरो कर गुरु जी के समक्ष पेश हो गया। सिंघों की बड़ी जीत का सेहरा भाई उदै सिंह और भाई बचिंतर सिंह के सिर रहा। अब पहाड़ी राजाओं ने मिलकर अफसोस किया। उनको राजा केसरी चंद की मौत का बहुत दुख हुआ क्योंकि वही उन सभी राजाओं में बहादुर और समझदार था। अब सर्वत्र शांति फैल गई।

अनंदपुर साहिब में एक बार फिर चहल-पहल शुरू हो गई। हर समय दरबार लगा रहता। इसी तरह जब गुरु जी का दरबार लगा हुआ था तब कुछ सिंघों ने शिकायत की कि हम अमृत की दात हेतु आ रहे थे कि रंगड़ों और गुजरां ने मिलकर हमें बुरी तरह लूट लिया। गुरु ने उसी समय साहिबजादा अजीत सिंह जी को लगभग दो सौ सिंघों का जत्था देकर भेजा कि वहाँ के बजरूड़ वासियों के रंगड़ों और गुजरां को उनकी करनी का फल चखाओ। साहिबजादा अजीत सिंह जी ने सति बचन कहा और अपने साथियों सहित बजरूड़ गाँव पर हमला कर दिया। दोनों तरफ से घोर लड़ाई हुई। सिंघों ने गाँव वालों की अच्छी भुगत संवारी।

गाँव के दोनों मुखिया चित्तू और मित्तू रणभूमि में मारे गए। रंगड़ियों और गुजरां ने ऐसे विलाप किया, ऐसा विलाप बजरूड़ में अब तक प्रसिद्ध है :-

“हाए-हाए नी कीतो माए
जिहने चित्तू मित्तू भैडे जाए
नी तेरे सिंघ जमाई आए
जिनहां कोठे बठले ढाए।”¹⁵

साहिबज़ादा अजीत सिंह जी ने वापिस आकर गुरु जी को सारा किस्सा सुनाया। गुरु जी ने सबको पारितोषिक बाँटे। उस दिन के बाद फिर कभी भी अनंदपुर साहिब आने वाले संगतों को किसी ने भी नहीं रोका और ना ही तंग किया। साहिबज़ादा अजीत सिंह जी अब हर प्रकार के मामलों को हल करने में भी निपुण हो गए। एक बार दरबार में एक ब्राह्मण, जिसका नाम देवदास था, रोता हुआ फरियाद करने लगा कि मेरी नव-विवाहिता पत्नी बस्सी गाँव के नवाब ने छीन ली है। गुरु जी समझ गए कि यह हरकत वहाँ के पठान 'जाबर खान' ने ही की है जो कि वहाँ का नवाब भी बना फिरता है। साहिबज़ादा अजीत सिंह जी को बहुत क्रोध आया कि लोग कैसे दिन-दिहाड़े किसी दूसरे की पत्नी को छीन लेते हैं उन्होंने उसी समय गुरु जी से अनुमति लेकर लगभग 100 सिंहों के दस्ते के साथ ब्राह्मणी को छुड़वाने हेतु चले गए। साहिबज़ादा अजीत सिंह जी ने बस्सी गाँव पर धावा बोल दिया। वहाँ के नवाब जाबर खान, जो अपनी हवेली में छुपा बैठा था, की मुशका बंनीआं और ब्राह्मणी को उसके घर से दूँदकर अनंदपुर गुरु जी के दरबार में पेश किया। गुरु गोबिंद सिंह जी ने साहिबज़ादा अजीत सिंह जी की पीठ थपथपाई और ब्राह्मणी को ब्राह्मण के सुपुर्द करके उसके गाँव पहुँचाया और जाबर खान को थोथे तीरों से मरवा दिया।¹⁶ चारों दिशाओं में इस बात की धूम मच गई। हर कोई इस कार्य की प्रशंसा करता और गुरु घर के साथ जुड़ जाता। घर-घर में गुरु जी की महिमा सर्वत्र होने लगी।

साहिबज़ादा के विवाह के बारे में विवाद (चर्चा)

अनंदपुर साहिब में पुनः चहल-पहल शुरू हो गई। संगतें दूर-दूर से अधिक संख्या में गुरु घर के दर्शनों हेतु पहुँचने लगीं। इतिहासकारों ने साहिबज़ादा अजीत सिंह जी के विवाह का वर्णन नहीं किया पर प्यारा सिंह पदम 'चारे साहिबज़ादे' में साहिबज़ादा अजीत सिंह जी के विवाह का उल्लेख है माघ सुदी एकम 1761 बि: को अनंदपुर में तारा बाई के साथ अजीत सिंह का रिश्ता होना बताया गया है। इसी प्रकार 'गुरु कीआं साखीआं' में भी साहिबज़ादा अजीत सिंह जी का विवाह भाई सेवा सिंह बुरहानपुरिए की पुत्री बीबी तारा बाई के साथ हुआ। दीपमाला के अवसर पर समस्त परिवार अनंदपुर दर्शनों के लिए आया हुआ था। यहीं बीबी तारा बाई की सहेली ने साहिबज़ादा अजीत सिंह जी को देखकर कहा, "जे तेरा विआह इस दे नाल कर देड़ीऐ" बीबी तारा बाई बड़े भरोसे वाली थी। उसने गुरु अमरदास जी की पुत्री बीबी अमरो वाली साखी सुनी हुई थी, ने कहा, "मैं हुण साहिबज़ादा अजीत सिंह नाल ही विआह करांगी।" इतनी बात का बतंगड़ बन गया और इस परिवार ने माता गुजरी जी से विनती की। तभी माता गुजरी जी ने प्रसन्नतापूर्वक इस विवाह की इजाजत दे दी और विवाह संपन्न हो गया। भट्ट वही पूरबी दक्खणी वाले ने इस विवाह का वर्णन इस प्रकार किया है :-

"अजीत बेटा गुरु गोबिंद सिंह महल दसमें दा पोता गुरु तेग बहादर जी का पड़पोता गुरु हरिगोबिंद जी का बंस गुरु अरजन जी की, सूरजबंसी गोसल गोतरा सोढी खत्री, बासी अनंदपुर परगा कहिलूर का बिवार तारा बाई बेटा सेवा सिंह से साल सतारा से इकाहट माघ सुदी ऐकम के दिवस किला आनंद गड़ में हुआ।"¹⁷

इस विवाह का जिक्र इतिहास में नहीं है पर 'गुरु कीआं साखीआं' द्वारा गुरु इतिहास की बहुत-सी गाँठें खुलती हैं। उस समय भट्टों की प्रवृत्ति बहुत प्रचलित थी। ये ही गुरु साहिब की जीवन-घटनाओं को लिख-लिखकर सँभालते रहते थे।

शाही फौज का अनंदपुर को घेरना और साहिबज़ादा अजीत सिंह द्वारा उनको लूटना

पहाड़ी राजाओं ने सरहिंद के नवाब और काज़ियों के साथ मिलकर एक अर्जी औरंगज़ेब को भेजी, अब औरंगज़ेब भी तंग आ चुका था। वह भी हर हाल में अनंदपुर का किला प्राप्त करना चाहता था। उसने अपने खास जनरल वज़ीर खा और प्रसिद्ध जनरलों सहित तकरीबन दो लाख की सेना के साथ अनंदपुर साहिब का किला फतेह करने के लिए भेजा। अज़ान खा पठान और सैद खा के साथ गुरु जी का सामना हुआ। गुरु जी ने सिक्खों को कहा कि नियमपूर्वक लड़ना, पर वह तो अतिउत्साहित थे क्योंकि उन्होंने अब तक लगभग सभी लड़ाइयों में विजय प्राप्त की थी।

सैद खा गुरु घर की श्रद्धालु था। पर पठानों की तरु से लड़ने आया था। जब उसने गुरु जी के दर्शन किए तो मैदान छोड़कर चला गया। सिक्खों के हौसले बढ़ गए। गुरु जी ने पीछा करने से इंकार कर दिया, पर सिक्ख नहीं माने, तब गुरु जी वापिस आ गए। अज़ान खा ने जोरदार हमला किया जिससे सिक्खों के पाँव उखड़ गए। उसने अनंदपुर आकर कली लूट-खसोट की। इसका साहिबज़ादा अजीत सिंह जी को कली अफसोस हुआ और मध्य रात्रि को खालसे को लेकर तुर्कों पर टूट पड़े। सारे शाही लश्कर में शोर मच गया। वे आपस में ही लड़ने लगे। साहिबज़ादा अजीत सिंह जी और उनके साथियों ने बहुत सारे घोड़े और हथियार लूटकर अनंदपुर साहिब वापिस आकर गुरु जी के चरणों में शीश झुका दिया। गुरु जी बहुत प्रसन्न हुए।

शाही सेना ने अनंदपुर साहिब को चारों तरफ से घेर रखा था। इस तरह कई बार साहिबज़ादा अजीत सिंह जी, साहिबज़ादा जुझार सिंह, सिंहों के साथ मिलकर शाही सेना पर आक्रमण करते और वापिस किले में आ जाते। दिन-रात लड़ाई होती रहती। गुरु जी स्वयं दिन में लड़ते और प्रातः साहिबज़ादा अजीत सिंह जी अपने दस्ते के साथ लोहगढ़ और होलगढ़ के किले से निकलकर सोए हुए तुर्कों पर धावा बोल आते। एक बार इसी प्रकार साहिबज़ादा अजीत सिंह जी भी काफी घायल हो गए, उसके बावजूद भी उन्होंने अपनी सेना की कमान को सँभाले रखा। गुरु गोबिंद सिंह जी ने शाबाशी दी और फिर बचन किया :-

"शाबाशो! खालसे जी नूं अैसा ही उदम करना चाहीदा है, बैरीआं नूं मारना, लुँटणा अते ऐस पापी ज़ालम तुरकां दे राज दी जड़ नूं पुँटणा खालसे का खास धरम है। कोई समां आवेगा ते इह पहाड़ी राजे ते मुहंमदीआं दा राज नास होवेगा...अकाल पुरख दा खालसा पंथ हमेशां हरा भरा फैलदा ही रहेगा।"¹⁸

अनंदपुर का दुर्ग छोड़ना

यह युद्ध करीब 7 महीने इसी प्रकार ही चलता रहा। कई महीनों तक लड़ाई लड़ते हुए दोनों तरफ के लोग थक चुके थे। मुगल फौज पहले गर्मी और बरसात के कारण तंग आ चुकी थी। उनमें बीमारी फैल गई थी। दूसरी तरफ गुरु जी के कई सिंह शहीद हो चुके थे। कुछेक सिंहों ने तंग आकर युद्ध से

किनारा करने की सोची। उनमें से लगभग 40 सिंहों और महां सिंह गुरु जी को बेदावा लिखकर छोड़ गए। बाहर से रसद आनी बंद हो चुकी थी। घमासान लड़ाई के कारण लंगर समाप्त हो गया। सिंह चारों पहर चने खाने को मजबूर थे। घोड़ों के लिए चारा तक न रहा, वह भी पत्तों की खुराक के बिना दम तोड़ने लगे, पर गुरु जी और उनके सिंह हर समय चड़दी कलां में रहते। शूरवीरता के साथ मुगलों के साथ लड़ते और उन पर हावी रहते।

जब मुगल जनरल और पहाड़ी राजाओं ने देखा कि तंगी के बावजूद भी सिंह हार नहीं रहे, हम किला फतेह नहीं कर सके तो उन्होंने धार्मिक सहायता लेकर गीता और कुरान की कसमें खाई, “जे तुसीं किला छड दिउगे तो असीं तुहानू कुझ नहीं कहांगे।” गुरु जी अंतर्धामी थे उनको पता था कि मुगल किसी के भी सगे नहीं हैं। यह सिर्फ ढोंग कर रहे हैं। इस अर्जी की सूचना सिक्खों ने माता गुजरी जी को दी। माता जी भी इस युद्ध से तंग आ चुकी थीं। उन्होंने सिक्खों की खातिर गुरु जी को दुर्ग छोड़ने को कहा तब माता जी का आदेश और सरबत खालते का हुक्म मानकर दिसंबर 1704 ई. में गुरु गोबिंद सिंह जी ने अनंदपुर साहिब का किला छोड़ने का फैसला कर लिया। इसलिए उन्होंने महिलों, छोटे साहिबजादों, वृद्ध रोगी, बच्चों और स्त्रियों को इस मजबूत जत्थेबंदी के सुपुर्द कर दिया। इस जत्थेबंदी का प्रधान भाई मनी सिंह को नियुक्त किया। दूसरी तरफ सारा साहित्य घोड़ों और संदूकों में भर लिया। लगभग 1500 सिंहों के जत्थे के साथ, बड़े साहिबजादों अजीत सिंह, जुझार सिंह के साथ रात्रि के तीसरे पहर अनंदपुर साहिब छोड़कर कीरतपुर की तरफ कूच कर गए।

उस समय साहिबजादों ने कई बार मुड़कर अनंदपुर साहिब की ओर देखा तब भाई चंपा सिंह जी बोले, “जिथे असीं सतारां बरस मन भाए सुख पाए उस नूं ऐहो पल वेखण दा है, बेर मुड़ असां विचों किसे नहीं वेखणा। हुण असीं बिपता रूपी शीहणी दे मूंह विच पै के से धारम की चिखा ते चड़न लगे हां।”¹⁹ साहिबजादा अजीत सिंह जी अपने पिता गुरु गोबिंद सिंह जी की भाँति दूरदर्शी थे। उनको भी पता था कि इन मुगलों का कोई ऐतबार नहीं। वह सारे परस्पर बाते करते हुए गुरु जी से थोड़ी दूरी पर चल रहे थे।

सरसा नदी के पास आक्रमण और साहिबजादा अजीत सिंह जी का अपने लश्कर की रक्षा करना

जब गुरु गोबिंद सिंह जी ने अनंदपुर का दुर्ग छोड़ा तब किसी ने मुगलों को बताया कि गुरु जी ने दुर्ग खाला कर दिया है तब राजा अजमेर के बहकावे पर मुगल फौजों ने गुरु जी पर पीछे से हमला कर दिया। सरसा नदी पर भयानक युद्ध हुआ। वह अपने वादे और गीता और कुरान की कसमें खाई थीं, सबको छींकें पर टाँग दिया। इसका वर्णन हकीम अल्लाह यार खां जोगी ने इस प्रकार किया है :-

“बदबखतों ने जो वाअदा कीआ था, बिसर गए,
ना मरद, “कोला” करके जुबा से मुकर गए,
गोबिंद सिंह के शेर भी फौरन बिठर गए,
तलवार सूत सूत के रन में उतर गए।”²⁰

गुरु गोबिंद सिंह जी ने अब साहिबजादा अजीत सिंह जी को लगभग 50 सिंहों के दस्ते के साथ मुगलों का रास्ता रोकने हेतु कहा क्योंकि वह चाहते थे कि समस्त सिंह सरसा नदी को पार कर जाएँ। बरसात होने के कारणवश सरसा नदी में बाढ़ आई हुई थी। इसी भागमभाग में सभी बिछुड़ गए। कहीं सारा साहित्य पानी में बह गया। माता गुजरी और छोटे साहिबजादे रसोइए गंगू के हत्थे चढ़ गए। गंगू नमक हराम निकला और रुपयों की खातिर उसने माता जी और बच्चों को मुगलों के हवाले कर दिया। महिला भी बिछुड़ गए पर भाई मनी सिंह ने वड़ी वीरता के साथ माता सुंदरी जी और माता साहिब कौर को पुरुष वेश धारण करवाकर दिल्ली पहुँचा दिया। साहिबजादा अजीत सिंह लगभग 50 सिंहों सहित सरसा नदी के किनारे डटकर लड़ते रहे। इस समय शहजादे के करतब देखने लायक थे। किस तरह उन्होंने दुश्मन को नाकों चने चबवा दिए। अधिकांश लोग सरसा नदी पार कर चुके थे। अब धीरे-धीरे उनके सिंह साथी भी शहीद होने लगे। भाई उदै सिंह ने देखा कि साहिबजादा अजीत सिंह जी अब दुश्मनों के घेरे में आ गए हैं तब उन्होंने बड़ी बहादुरी के साथ मुगलों का घेरा तोड़ा और उन्हें वहाँ से सुरक्षित निकाल लाए। साहिबजादा अजीत सिंह को बचाने के लिए अपने सीने तान कर खड़े हो गए और जब तक साहिबजादा अजीत सिंह जी सरसा नदी पार नहीं कर गए, मुगलों को आगे बढ़ने नहीं दिया और उनकी (साहिबजादा अजीत सिंह जी) की रक्षा करते हुए शहीदी को प्राप्त हुए। साहिबजादा अजीत सिंह जी पलक झपकते ही सरसा नदी पार कर गए। मुगल फौजों ने पीछा किया, पर वह हाथ मलती रह गई। साहिबजादा अजीत सिंह जी गुरु गोबिंद सिंह जी के पास पहुँच चुके थे। शाम ढलने तक दोनों साहिबजादे, पंज प्यारे और लगभग 40 सिंहों के साथ थके-माँदे, भूखे और प्यासे रोपड़ के नजदीक जाकर अपना डेर जमाया। इतने में चौधारी बुद्धि चंद जो गुरु घर का श्रद्धालु था, उसने हाथ जोड़कर विनती की :-

“महाराज दुश्मन कीआं फौजां आप दा पिच्छा कर रहीआं हन, आप मेरी हवेली दे अंदर चलो, है तां कची पर आप लई किले का कंम करेगी आप दे सिंघ उस हवेली दे अंदरों मुगल गैजां दा डट के मुकाबला कर सकणगे।”²¹

गुरु जी को दलील पसंद आ गई क्योंकि गुरु जी भी मुगलों की नीयत समझ चुके थे कि अगर मुगल जनरल कुरान की कसमें खाकर मुकर गए हैं, उनका कोई ऐतबार नहीं किया जा सकता। उन्होंने अपने सिंहों को गडी के भीतर रुकने के लिए कहा और स्वयं गडी की निरीक्षण करने लग गए।

चमकौर साहिब की जंग

साहिबजादा अजीत सिंह और साहिबजादा जुझार सिंह ने भी अपने शेष बचे साथियों के साथ गडी के प्रवेश-द्वार की तरु से मोर्चाबंदी शुरू कर दी। साहिबजादा अजीत सिंह जी की निगरानी में आठ-आठ सिंहों को नियुक्त करके मुगलों का राह देखने लगे। गुरु जी ने सारी गडी को एक दुर्ग में तब्दील कर लिया था। उन्हें पता था कि मुगल सेनाएँ सूँघती हुई उनके करीब पहुँच जाएँगी। उन्होंने सबको विश्राम करने के लिए कहा। सभी थके-माँदे थे और लेटते ही सभी नींद की आगोश में चले गए। गुरु जी जाग रहे थे, वह साहिबजादा अजीत सिंह और साहिबजादा जुझार सिंह को निद्रावस्था में देखते रहे। इस विषय में हकीम अल्ला यार खां जोगी ने बहुत सुंदर लिखा है :-

“फुरमाते थे कॅल कोनो ही परवान चढ़ेंगे,
दुख भोगेंगे हम, खलदा में तुम चैन करोगे।
होते ही सहर दागि जुदाई हमे दोगे।
सुपने मे खबर आ के कबी बाप की लोगे।
अै पिआरे अजीत! अै मेरे जुझार पिआरे।
हम कहते हैं कुझ, सुनते हो, दिलदार पिआरे।”²²

दूसरी तरु वजीर खाँ, जाफ़र बेग, पहाड़ी राजा सेना सहित चमकौर की गडी तक पहुँच जाते हैं। उन्होंने चमकौर की गडी को चारों तरु से घेर लिया। अब वजीर खाँ की मंशा गुरु गोबिंद सिंह जी को जीवित पकड़ने की थी कि किसी भी तरह वह उनके हाथ आ जाएँ और उनका धर्म-परिवर्तन करके, मुसलमान बनाकर तगड़े जत्थे का प्रधान बनकर औरंगज़ेब के दरबार में पेश हो, इसलिए उसने एक सुनेहा लिखकर एक काज़ी द्वारा गुरु गोबिंद सिंह जी को भेजा कि :-

“जे तुसीं साडा धारम कबूल कर लउ तां मैं तुहानूँ छड देवांगा ते काफी सारीआं ज़मीनां ते जागीरां तुहाडे नाम लगा दिआंगा।”

इतना सुनते ही साहिबज़ादा अजीत सिंह जी ने गुस्से में अपनी तलवार म्यान से बाहर निकालकर कड़क कर बोले :-

“काज़ी साहिब तुसीं ऐलची बण के आए हो, वरना मैं हुण तुहानूँ जहनुम पुचा दिंदा।”²³

काज़ी साहिबज़ादे को इतने गुस्से में देखकर वापिस चला गया। साहिबज़ादा अजीत सिंह जी ने पिता गुरु गोबिंद सिंह जी से कहा हम लड़ने-मरने के तैयार हैं, कुर्बान हो जाएँगे, पर सिर नहीं झुकाएँगे, भले ही हम संख्या कम है पर आपके महा वचन : “सवा लाख से ऐक लड़ाऊँ, तबै गोबिंद सिंह नाम कहाऊँ।” को सिद्ध करके दिखलाएँगे। इतना सुनते ही गुरु गोबिंद सिंह जी ने अपने पुत्र साहिबज़ादा अजीत सिंह जी को अपनी बाँहों में भरकर युद्ध का ऐलान कर दिया। तब कुछ सिंहीं ने गुरु जी को कहा कि आप दोनों साहिबज़ादों को साथ लेकर चमकौर की गडी से निकल जाओ हम मुकाबला कर लेंगे। तब गुरु जी ने कहा, “तुसीं किहड़े साहिबज़ादिआं की गॅल कर रहे हो, तुसीं सारे ही मेरे साहिबज़ादे हो।”²⁴

गुरु जी की यह बात सुनकर सारे सिंह चुप हो गए। एक तरु गुरु जी, दोनों साहिबज़ादे, पंज प्यारे और 40 के लगभग थके, भूखे-प्यासे और अल्प संख्या के बावजूद भी उनके हौसले बुलंद थे, वह सभी प्रगति की ओर बढ़ रहे थे, क्योंकि उन्होंने गुरु गोबिंद सिंह जी द्वारा अमृत की दात बख्शी हुई थी और दूसरी तरफ मुग़लों के भाड़े की 10 लाख सेना।

मुग़लों ने बाहर से गुरु जी पर गोलियों की बौछार शुरू कर दी। गुरु जी और साहिबज़ादों ने भी गोलियों, बाणों के साथ ऐसा जवाब दिया कि कोई भी गडी के पास नहीं फटक सका।

“मुग़ल फौजां दे जरनैल नाहर खान ने चोरी-छिपे हवेली दी दीवार नाल पौड़ी लाई जद उस ने पौड़ी ते चड़ के ज़रा कु सिर उच्चा कीता तां गुरु जी ने उस नूँ तीर दा निशाना बणा के उथे ही चित्त कर दिता। नाहर खान दे डिगदिआं ही गनी खाँ ने अग्गे आउण का हीआ कीता तां गुरु जी ने गुरज नाल उसका सिर भनिआ ते मिँझ कढ़ती। इस द्रिश नूँ देख के मुग़ल फौजां विच घबराहट फैल गई।”²⁵

अब वजीर खाँ और सरहिंद के नवाब ने मिलकर सलाह की कि इस तरह तो हमारे सारे व्यक्ति ऐसे ही मारे जाएंगे क्यों ना हमें एक ही बार में हमला कर देना चाहिए और उन्होंने तैयारियाँ प्रारंभ कर दीं। गुरु जी ने भी अंदर से इस दृश्य को देखा तब वह साहिबज़ादा अजीत सिंह और साहिबज़ादा जुझार सिंह जी को साथ लेकर गडी की ममटी पर चढ़ गए। जैसे ही मुग़लों की सेना दुर्ग के नज़दीक आई तब गुरु जी ने पाँच-पाँच सिंहीं के जत्थों को बाहर भेजना शुरू कर दिया। और ऊपर से गुरु जी ने और साहिबज़ादा अजीत सिंह ने बाणों के साथ गडी के ऊपर से दुश्मनों के सिर काटने शुरू कर दिए। पाँच सिंह दुश्मनों पर टूटकर पड़े। एक-एक सिंह ने क़त्ली संख्या के मुग़लों को अपने पैरों तले रौंद दिया। उनके जौहर भी देखने लायक थे। इन पाँचों की शहीदी के बाद बाहर निकलकर दूसरे पाँच सिंहीं का जत्था मुग़ल सेनाओं के साथ लड़ने हेतु निकल पड़ा। ऊपर से गुरु जी ने भी तीरों की वर्षा करनी प्रारंभ कर दी। इसके बारे में प्रिंसिपल सतिबीर सिंह ने लिखा है कि :-

“सारीआं जंगां नालों जिआदा तीर गुरु जी ने चमकौर साहिब दी लड़ाई समें चलाए।”

गुरु जी के सिंह बड़ी बहादुरी के साथ लड़ रहे थे।

साहिबज़ादा अजीत सिंह जी की शहीदी

जब क़त्ली सिंह शहीद हो गए तो साहिबज़ादा अजीत सिंह जी ने गुरु जी से रणभूमि में जाने की आज्ञा माँगी। इसके बारे में मिर्ज़ा अब्दुल गनी ने इस प्रकार वर्णन किया है :-

“मुझ को भी दीजै हुकम कि जौहर दिखाऊँ मैं।
जाए बला से जान पे वापस ना आऊँ मैं।
जोश मे मैदां मै कदम को बडाऊँ मैं।
नाम का अजीत हूँ जीता ना जाऊंगा।
जीता तो पैर, हार के जीता ना आऊंगा।”²⁶

गुरु जी ने खुशी-खुशी अपने हाथों से अपने ज्येष्ठ पुत्र साहिबज़ादा अजीत सिंह के शरीर पर शस्त्रों को सजाया और उनका माथा चूमा। उस समय अजीत सिंह जी की आयु लगभग 19 वर्ष की थी। गुरु जी ने भाई मुहकम सिंह, भाई लाल सिंह, भाई ईशर सिंह, भाई केसर सिंह सहित आठ सिंहों के जत्थे को युद्ध में भेजा। उनको ज्ञात था कि वह वापिस नहीं आयेंगे पर फिर भी उनके चेहरे पर जलाल था किसी तरह का शिकवा नहीं था और उन्होंने परम पिता परमेश्वर को धान्यवाद दिया। गडी से बाहर निकलते ही जयकार बोला। हकीम अल्ला यार खाँ जोगी ने इस प्रकार वर्णन किया है :-

“गोबिंद के, ‘दिलदार’ किले से निकल आए।

वुह देखीऐ सरकार किले से निकल आए।

घोड़े पे हो असवार किले से निकल आए।

ले हाथ में तलवार किले से निकल आए।

ललकारे अजीत और मुखातिब हूऐ सभ से।

तुरमाऐ अदू से ‘न निकल हँदि अदब से।’²⁷

अजीत सिंह और दूसरे सिंहों ने दुश्मनों को गाजर-मूली की भाँति काटना शुरू कर दिया। साहिबज़ादा अजीत सिंह जी के इतने करारे प्रहारों से दुश्मन ‘या अल्लाह, या अल्लाह’ पुकारते हुए पीछे हट गया।

“जोत परोड़ पठान को, सभहन सांग दिखलाऐ।

देखन ही सभ करत है, अरे खुदाई खुदाई।”²⁸

प्रिंसिपल सतिबीर सिंह ने भी यही लिखा है कि “इस बहादुरी नाल उहनां वैरीआं दा मुकाबला कीता ते लड़े उह इतिहास जिन इक अमिट घटना बण गई।” गुरु जी भी अपने पुत्र के जौहर देखकर प्रसन्न हो रहे थे। उन्होंने भी गडी के भीतर से बाणों की बौछार शुरू कर दी। अजीत सिंह भाले (नेजे) से दुश्मनों को ऐसे बंध रहे थे जैसे सीखों में कबाब। इस बारे अल्ला यार खाँ जोगी ने कहा है :-

“साहिबज़ादाई ‘जी जाह’ ने भागड़ बी मचाई,

यिह फौज भगादी कभी वुह फौज भगा दी।

बड़ नड़ के तँवको से, सुजाईता जो दिखाई (दलेरी)

सतिगुर ने वहीं किले से बेटे को ‘नदा’ दी (आवाज़)

“शाबाश पिसर” खूब दलेरी से लड़े हो। (पुँतर)

हां किउं ना हों गोबिंद के फरजंद बड़े हो।”²⁹

इतने में एक मुगल सरदार ने कसकर भाला अजीत सिंह जी की ओर मारा, उन्होंने बड़ी फुर्ती से वार को बचा लिया। वह तो बच गए पर उनको घोड़ा बुरी तरह घायल हो गया। बाबा अजीत सिंह को आगे बढ़ता देखकर क्षणभर के लिए दुश्मन डरकर चौंके। उनकी पुस्तकों में कोई ऐसा पिता नहीं था जो सबसे पहले अपने पुत्र को शहीदी हेतु भेजे। उन्होंने पैदल ही अपनी तलवार के साथ जौहर दिखाने शुरू कर दिए। उनके इर्द-गिर्द दुश्मनों की लाशों के ढेर लग गए। उनके साथ भी अब धीरे-धीरे शहीदी का जाम पी चुके थे। दुश्मनों के ताकतवर जत्थे ने धीरे-धीरे साहिबज़ादा अजीत सिंह को चारों तरफ से घेरना शुरू कर दिया और सभी ने मिलकर उन पर वार कर दिया। देखते-ही-देखते साहिबज़ादा अजीत सिंह शहीदी को प्राप्त हो गए।

ऊपर से गुरु जी ने यह देखा तो ‘बोले सो निहाल’ का जयकारा बोला तब गडी के भीतर से सिंहों ने ‘सति श्री अकाल’ का जवाब दिया। गुरु जी ने दोनों हाथ जोड़कर शुकुराने द्वारा परमात्मा के आगे शीश झुकाया। ‘शुकर है, अकाल पुरख, तेरी अमानत अदा होई।’

इस नरसंहार के बारे में गुरचरन सिंह टोहरा द्वारा, जो शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष थे ने ‘साका चमकौर’ में लिखा है :-

“चमकौर साहिब की जंग निरी अदुँती ही नहीं, अनोखी वी है किउंके इथे ही चाली भुँखिआं, त्रिहाणिआं, हथिआरां तों बिनां
पिआरिआं, सनिआरिआं, सूरमिआं ने दशमेश पिता दी असीस लै के दस लँख मुगल मलूखड़ीइ दा टाकरा करके साहस दा निराला नमूना
पेश कीता। रि चमकौर विखे ही कलगीआं वाले ने आपणे दोवें साहिबज़ादिआं बाबा अजीत सिंह अते बाबा जुझार सिंह जी नूं जी
मैदाने-जंग विच भेजिआ अते शहीद हुंदा देख जिवें शुकर मनाइया।”³⁰

आज सिक्ख धर्म की बुनियाद को मजबूत करने में इन साहिबज़ादों की शहीदी का बहुत बड़ा हाथ है जिन्होंने इतनी अल्प आयु में वयस्कों वाले कारनामे किए इसलिए इनको बाबाओं की उपाधि से सम्मानित किया गया। इनकी ही शहीदी बताकर गुरु गोबिंद सिंह जी ने बंदा सिंह बहादुर सरीखे को सरहिंद के किले की ईंट से ईंट बजाने हेतु तैयार किया। साहिबज़ादा अजीत सिंह की कुर्बानी अद्वितीय और बेमिसाल है। आज हर कोई उनकी इस शहीदी को देखकर सिर को झुकाता है और कह उठता है :-

“धनं धनं बाबा अजीत सिंह जी।”

इस तरह मिर्जा मुहम्मद अब्दुल गनी ने भी लिखा है :-

“जाना ये बाप ने हुआ कतल वुह ‘पिसर’ (पुँतर)

शुकर अकाल पुरख का कीआ झट उठा के सर

और अरज की कि बंदा पै क्रिपा की कर नज़र

मुझ पर से आज तेरी अमानत अदा हुई
बेटे की जां धारम की खातर फ़िदा हुई।”

(चार साहिबज़ादे, पृष्ठ 41)

संकेत

1. डॉ. महिंदर कौर गिल, माता सुंदरी जी।
2. डॉ. पुष्पा सूरी, दस गुरु महिल, संपादक डॉ. महिंदर कौर गिल।
3. स. ज्ञान सिंह अटवाल, साहित्य अध्ययन, प्रो. हरबंस लाल वतनी।
4. डॉ. जसपाल सिंह, राज दा सिक्ख संकल्प।
5. डॉ. गुरचरन सिंह पटियाला, मध्यकालीन पंजाबी साहित्य मंथन, संपादक अमरजीत सिंह कांग।
6. डॉ. हरजिंदर सिंह दिलगीर, सिक्ख कल्चर।
7. सिंह साहिब प्रो. दर्शन सिंह, सिक्ख धर्म ते सिक्ख इतिहास की मुँढली पछाणा
8. भाई स्वरूप सिंह, गुरु कीआं साखीआं, संपादक प्यारा सिंह पदम।
9. भाई ज्ञान सिंह ज्ञानी, तवारीख गुरु खालसा, भाग पहला।
10. स. मोहन सिंह, खून शहीदां दा, प्रकाशक सिक्ख मिशनरी कॉलेज।
11. प्रो. जगदीश सिंह, साका चमकौर।
12. पांथी ननकाणवी, बेकसां दा यार गुरु गोबिंद सिंह।
13. प्यारा सिंह पदम, चार साहिबज़ादे।
14. प्रिंसीपल सतिबीर सिंह, साडा इतिहास, भाग पहला।
15. प्रिंसीपल सतिबीर सिंह, गुरमति प्रकाश, अक्टूबर 1994, संपादक रूप सिंह।

फुटनोट

1. डॉ. महिंदर कौर गिल, माता सुंदरी जी, पृष्ठ 31।
2. डॉ. पुष्पा सूरी, दस गुरु महिल, संपादक डॉ. महिंदर कौर गिल, पृष्ठ 194।
3. ज्ञान सिंह अटवाल एम.ए., साहित्य अध्ययन, संपादक प्रो. हरबंस लाल वतनी, पृष्ठ 76।
4. डॉ. जसपाल सिंह, राज का सिक्ख संकल्प, पृष्ठ 201।
5. डॉ. गुरचरन सिंह पटियाला, मध्यकालीन पंजाबी साहित्य मंथन, संपादक डॉ. अमरजीत सिंह कांग, पृष्ठ 60।
6. डॉ. महिंदर कौर गिल, माता सुंदरी जी, पृष्ठ 45।
7. डॉ. गुरचरन सिंह पटियाला, मध्यकालीन पंजाबी साहित्य मंथन, संपादक डॉ. अमरजीत सिंह कांग, पृष्ठ 60।
8. डॉ. महिंदर कौर गिल, माता सुंदरी जी, पृष्ठ 45।
9. भाई ज्ञान सिंह (ज्ञानी), तवारीख गुरु खालसा, भाग पहला, पृष्ठ 916।
10. वही, पृष्ठ 917। वही, पृष्ठ 922।
11. भाई ज्ञान सिंह (ज्ञानी), तवारीख गुरु खालसा, भाग पहला, पृष्ठ 916।
12. स. मोहन सिंह, खून शहीदां दा, प्रकाशक सिक्ख मिशनरी कॉलेज।
13. भाई सरूप सिंह कोशिश, गुरु दीआं साखीआं, पृष्ठ 143।
14. तवारीख गुरु खालसा, पृष्ठ 967।
15. भाई सरूप सिंह कोशिश, गुरु दीआं साखीआं, संपादक प्यारा सिंह पदम, पृष्ठ 148-150।
16. भाई ज्ञान सिंह (ज्ञानी), तवारीख गुरु खालसा, भाग पहला, पृष्ठ 916।
17. भाई ज्ञान सिंह (ज्ञानी), तवारीख गुरु खालसा, भाग पहला, पृष्ठ 916।
18. चार साहिबज़ादे, पृष्ठ 89।
19. प्रो. जगदीश सिंह, साका चमकौर, पृष्ठ 17।
20. चार साहिबज़ादे, पृष्ठ 51।
21. पांथी ननकाणवी, बेकसां दा यार गुरु गोबिंद सिंह, पृष्ठ 77।
22. प्रो. जगदीश सिंह, साका चमकौर, पृष्ठ 17।
23. चार साहिबज़ादे, पृष्ठ 41।
24. हकीम अला यार खां जोगी, चार साहिबज़ादे, पृष्ठ 67-68।
25. साडा इतिहास, भाग पहला, पृष्ठ 311।
26. हकीम अला यार खां जोगी चार साहिबज़ादे।
27. हकीम अला यार खां जोगी चार साहिबज़ादे।

लोकतंत्र के चतुर्थ स्तंभ के रूप में मीडिया की भूमिका

राजेश गुप्ता

सहायक आचार्य-राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश

एक लोकतन्त्रीय विकासवादी समाज व्यवस्था में मीडिया की भूमिका एवं दायित्व महत्वपूर्ण है। जनचेतना के विकास, जनमत निर्माण एवं राज्य व समाज-व्यवस्था पर निरन्तर निगरानी रखने के कारण मीडिया की भूमिका समाज में महत्वपूर्ण हो जाती है। मीडिया के अभाव में हमें जीवन में रिक्तता की अनुभूति होती है। वस्तुतः मीडिया समाज, देश, विदेश तथा विभिन्न समस्याओं एवं विचारों को समझने में हमारी सहायता करता है।

मीडिया अब जनमानस तक कोई भी बात पहुंचाने का सर्वश्रेष्ठ साधन है। मीडिया ने चुनावों की पल-पल खबरें लोगों तक पहुंचाकर एक नया अध्याय लिखा है। आज चुनावों को लेकर चर्चा आम हो गई है और मीडिया में इसको लेकर जिज्ञासा भी आम हो गई है। वर्तमान में बढ़ती सूचना क्रांति ने पत्रकारिता के पूरे स्वरूप को बदल कर रख दिया गया है।

संसाधन और विज्ञान के विकास के चलते आज दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने तक खबरों को पहुंचाने में कुछ ही पलों का समय लगता है। अब लोग समाचार चौनलों की खबरों को टेलीविजन के माध्यम से देखने के लिए बेताब रहते हैं तो दूसरी तरफ प्रातः काल अखबार खोलकर पूरी खबर का विश्लेषण करते हैं। नई रोचक जानकारियों से परिपूर्ण अखबार की पूरी परिभाषा बदलाव का एक बड़ा कारक बन गई है।

लोकतंत्र के चौथे स्तंभ मीडिया ने अपनी भूमिका को बखूबी अंजाम दिया है और चुनावी समर में चुनावी राजनीति को प्रभावित करने वाले मुद्दे और उन पर लोगों की अपेक्षाएं, लोगों को मतदान के प्रति जागरूक करने, चुनाव में खड़े होने वाले राजनीतिक दलों के प्रत्याशियों के संपत्ति विवरण, उनके आपराधिक रिकॉर्ड को जानने और जन मुद्दों के प्रति प्रत्याशियों की गंभीरता का तुलनात्मक अध्ययन करने और इस रूप में अपने मत निर्धारित करने में भी मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

संकेताक्षर - लोकतान्त्रिक, समाजीकरण, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, प्रिंट मीडिया, संवेदनशील, प्रशासनिक तंत्र, वैश्वीकरण, लोक-कल्याणकारी, साम्राज्यवादी, मानवीय

प्रस्तावना:- आजादी से पहले और आजादी के बाद मीडिया की भूमिका हर मायने में काफी महत्वपूर्ण रही है। जिस वक्त देश को एक जज्बे की जरूरत थी, उस वक्त बाल गंगाधर तिलक जैसे लोगों ने अखबार निकालना शुरू किया ताकि, देशभक्तों द्वारा की जा रही आजादी की गतिविधियों को आम भारत के लोगों तक पहुंचाया जा सके और उन्हें भी अपनी कलम के जरिए देश की आजादी की लड़ाई के लिए प्रेरित करने का काम किया।

ब्रिटिश हुकूमत हमारे कलम के पहरेदारों से खौफ खाती थी और उनके खिलाफ भी देशद्रोह का मुकदमा चलाया जाता था जो कलम के जरिए अपनी आवाज बुलंद करने की कोशिश करते थे। उस दौर में महीने में एक अखबार आता था और उसमें भी सीमित जानकारियां रहती थी।¹ उस समय मीडिया के सामने कई चुनौतियां भी थी, यथा- एक तो सरकार के खिलाफ लिखना और दूसरा, संसाधनों की कमी।

जब संविधान की रचना हुई तो मीडिया के महत्व को समझते हुए मीडिया को चौथे स्तंभ का दर्जा दिया गया। 1952 में भारत में पहला आम चुनाव हुआ और उस समय प्रमुख समाचार पत्रों ने चुनावी कवरेज को प्रमुखता से स्थान दिया था। उस समय समाचार पत्रों का विकास ज्यादा नहीं था। उस दौर में हिन्दुस्तान, नेशनल हेराल्ड, नवभारत टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया जैसे प्रमुख समाचार पत्र थे।

भारत में 1970 के दशक में जब समाजवादी आंदोलन का बिगुल बजा, उस समय जनता ने देखा कि सही मायनों में लोकतंत्र में प्रेस की क्या भूमिका हो सकती है। उस समय राष्ट्रीय अंग्रेजी दैनिक 'द इंडियन एक्सप्रेस' की बिजली तक काट दी गई थी, ताकि सही खबरें जनमानस तक नहीं पहुंचें। लेकिन तत्कालीन एजक्यूटिव एडिटर अरुण शौरी ने पत्रकारिता की मिसाल कायम की और सरकार के सामने घुटने नहीं टेके। यह ऐसा उदाहरण है जो लोकतंत्र में पत्रकारिता के महत्व और कर्मठता को दर्शाता है। सही मायने में कुछ अखबारों और कुछ पत्रकारों ने लोकतंत्र में पत्रकारिता की भूमिका और महत्व को समझा और इसे आगे बढ़ाने में मदद की।²

इस प्रकार मीडिया द्वारा निरन्तर निभाई जा रही सकारात्मक एवं जनहितकारी भूमिका के बावजूद भारत के लोकतंत्र के चार प्रमुख स्तंभों विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और प्रेस यानी मीडिया में समय-समय पर टकराव होता रहता है, जो देश के विकास के लिए ठीक नहीं है। हालांकि पिछले 10 वर्षों में ये टकराव ज्यादा बढ़ी है, जिसका दोष मीडिया को दिया जाता है।

इस टकराहट का एहसास नीति निर्माताओं को पहले से ही था, इसलिए संविधान में साफ तौर पर लिखा है कि, संसद और विधानमंडल जहां मुख्य रूप से कानूनों का निर्माण करेंगे, वहीं कार्यपालिका के कामकाज की समीक्षा भी करेंगे।⁴ यह भी स्पष्ट है कि कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी है। कार्यपालिका सारा काम उसी की स्वीकृति से करेगी और न्यायपालिका संविधान में पूर्ण रूप से स्वतंत्र है, इसके कार्य में विधायिका और कार्यपालिका का दखल बिल्कुल नहीं है।

मीडिया का काम शुरू से ही लोकतंत्र के इन पहरेदारों पर निगरानी का रहा है। पिछले कुछ सालों के न्यायालय द्वारा दिए गए अहम फैसलों पर अगर नजर डाले तो जेसिका लाल हत्याकांड, प्रियदर्शिनी मट्टू हत्याकांड, नीतिश कटारा हत्याकांड, आरुषि हत्याकांड जैसे केसों में गुनहगारों को सजा दिलाने में मीडिया ने भी जी तोड़ मेहनत की है, वह किसी से छिपा नहीं है, इसके अलावा केरल के सबरीवाला मंदिर में महिलाओं के प्रवेश का मामला हो या समलैंगिकों को उनके अधिकारों से जुड़ा हुआ मामला, मीडिया ने सदैव इनके अधिकारों की पैरवी कर इनके पक्ष में तर्क प्रस्तुत करने में सहायता प्रस्तुत की है। यहां तक कि उच्चतम न्यायालय ने इस बात की तस्दीक और सराहना भी की है।

हालांकि मीडिया द्वारा की जाने वाली कुछ गतिविधियों पर कार्यपालिका और विधायिका के द्वारा एतराज भी जताया गया है, जैसे मीडिया द्वारा किए जाने वाले स्टिंग ऑपरेशन को लेकर विधायिका द्वारा सकारात्मक रुख नहीं दिखाया है। 2005 में यद्यपि तत्कालीन केंद्र सरकार द्वारा इस संबंध में मीडिया की भूमिका को सीमित रखने हेतु विधेयक पारित करने का प्रयास किया गया लेकिन यह प्रयास सफल नहीं हो पाया।⁵

कार्यपालिका और विधायिका के प्रतिनिधि जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि हैं एवं उनका कार्य संविधानवाद की अवधारणा के अनुरूप जनहित में कार्य करते हुए लोकतांत्रिक मूल्यों को संरक्षित रखना है। लेकिन कई बार कार्यपालिका या विधायिका के प्रतिनिधि जनहित के बजाय राजनीतिक या व्यक्तिगत स्वार्थ के वशीभूत होकर अनैतिक एवं गैर कानूनी कार्य करते हैं एवं कई बार इन कार्यों को मीडिया के द्वारा ही जनमत के समक्ष लाया जाता है, ताकि ऐसे प्रतिनिधियों एवं प्रशासनिक अधिकारियों के ऊपर समुचित कार्रवाई की जा सके, जैसे- बोफोर्स सौदा, पेट्रोल पंप घोटाला, ताबूत घोटाला, तेल घोटाला, चारा घोटाला, स्टांप पेपर घोटाला, 2जी स्पेक्ट्रम घोटाला जैसे कई हाईप्रोफाइल घोटाले हुए हैं, जिन्हें जनमत के समक्ष उजागर करने का कार्य इस मीडिया के द्वारा ही किया गया है। इसके अलावा हरियाणा में शिक्षक भर्ती प्रक्रिया में ओम प्रकाश चौटाला एवं चारा घोटाले में लालू यादव को आरोपी बनाए जाने एवं इसके संबंध में समुचित साक्ष्य मीडिया के द्वारा ही उजागर किए गए।⁶

इसी मीडिया के बढ़ते प्रभाव के कारण राजनेता भी सार्वजनिक रूप से अपनी स्वच्छ छवि को बनाए रखना चाहते हैं। चुनावों के समय मीडिया के विश्लेषणात्मक रूप को देखकर राजनेता अमर्यादित बयानबाजी करने से बचने लगे हैं।⁷ राजनीतिक दलों के प्रत्याशियों के द्वारा चुनाव में किए जाने वाले वायदे और उनकी व्यवहार में क्रियान्वित से संबंधित समस्त तथ्य मीडिया जनमत और उन प्रत्याशियों के सामने रखती है जिन्होंने ये वायदे जनता से किए। इस संबंध में जनहित समस्याओं के प्रति जनता की मनःस्थितियों से अवगत भी मीडिया ही कराती है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम हो या फिर समाचार पत्र, जनता की आवाज को जननेताओं तक पहुंचाने में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है।⁸

चुनाव के दौरान मीडिया से जुड़े पत्रकारों को बिना समय की परवाह किए हर समय चुनाव आयोग की तरह चौकन्ना रहना पड़ता है। इसी का प्रतिफल है कि चुनावों के समय मीडिया लोकतंत्र के चतुर्थ स्तंभ के रूप में निर्धारित भूमिका को बहुत सकारात्मक रूप में निभा रहा है। वर्तमान में कई समाचार चैनलों का विस्तार हो रहा है एवं समाचार पत्रों की संख्या में प्रसार हो रहा है।

प्रत्याशियों की अच्छाइयों और बुराइयों का सही तरीके से विश्लेषण मीडिया ही करती है। कई बार तो जब राजनेता कतिपय तथ्यों से मतदाताओं की आंखों में धूल झोंकने का काम करते हैं, तब मीडिया जनमत के समक्ष सही तथ्यों से अवगत कराने का प्रयास करती है। अब लोग अपने अधिकारों को लेकर ज्यादा से ज्यादा जागरूक हो रहे हैं, क्योंकि मीडिया के जरिए उन्हें अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का प्लेटफार्म मिल रहा है।⁹

अब चूंकि मीडिया काफी सक्रिय भूमिका अदा करती है और इसकी सक्रियता का काफी असर भी देखने को मिलता है, इसलिए नौकरशाही के साथ-साथ राजनीतिक दल भी मीडिया को काफी तरजीह देते हैं। इस प्रकार बदली हुई परिस्थितियों में मीडिया काफी ताकतवर बनकर उभर गया है।¹⁰

इसलिए कई राजनीतिक दल से मीडिया समूह किसी न किसी रूप में जुड़ते जा रहे हैं। दक्षिण राज्यों में तो विभिन्न दलों के राजनेताओं का अपना खुद का या तो टेलीविजन चैनल है या फिर समाचार पत्र। यहां तक कि कई राजनीतिक दलों का अपना मुख पत्र जैसे शिवसेना के द्वारा जारी किया जाने वाला 'सामना' नामक समाचार पत्र भी मीडिया के रूप में जनता के बीच अपनी पहचान बना रहा है।

उक्त भूमिकाओं के अतिरिक्त और जन समस्याओं की मजबूत पैरवी करने के साथ-साथ चुनावों में मतदान जागरूकता को बढ़ाने के परिदृश्य में भी मीडिया सदैव अगुआ की भूमिका में रहा है।¹¹ यद्यपि मीडिया के द्वारा मतदान प्रतिशत को बढ़ाने हेतु विभिन्न उपायों का सहारा लिया जा रहा है और इस कार्य में चुनाव आयोग के विभिन्न अधिकारियों एवं कर्मचारियों के साथ साथ राज्य एवं जिला स्तर पर संपूर्ण प्रशासनिक तंत्र सहयोग करता है फिर भी शैक्षिक जागरूकता के बढ़ते स्तर की तुलना में मतदान प्रतिशत का उस गति से ना बढ़ना चिंता का विषय है और यह चुनौती इस रूप में भी है कि जहां आज भी ग्रामीण क्षेत्र में मतदान प्रतिशत अधिक देखने को मिल रहा है वहीं दूसरी ओर अधिक शिक्षित शहरी तबके में मतदान प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में कम नजर आ रहा है।

यद्यपि प्रशासनिक तंत्र और मीडिया के द्वारा समय-समय पर लोगों को जागरूक करने हेतु अनेक संगोष्ठी, नाट्य मंच, फिल्में, जागरूकता रैली और इस प्रकार की विविध गतिविधियां आयोजित की जाती रही है तथापि इस संबंध में मतदान प्रतिशत को बढ़ाने और इस संबंध में युवा वर्ग को अधिक जागृत और शिक्षित करने की आवश्यकता है और इसमें प्रशासनिक तंत्र के अलावा मीडिया की बहुत प्रभावी उपादेयता है।¹²

आज वैश्वीकरण के कारण मीडिया में ग्लैमर बढ़ा है, चकाचौंध बढ़ी है। फैशन, सौंदर्य, सेक्स, हिंसा आदि मीडिया के अधिक स्थान को घेरते हैं, ऐसे में मीडिया में वैचारिक शून्यता की स्थिति आती जा रही है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के वैचारिक दृष्टि से विपन्न कार्यक्रम और पत्र-पत्रिकाओं में ग्लैमर की दुनिया से उठाई गई विषय-सामग्री दर्शकों और पाठकों में वैचारिक संपन्नता नहीं लाती, उनमें किसी तरह का चिंतन पैदा नहीं करती।¹³

समाज में जो व्यापक भ्रष्टता विसंगति की स्थिति है, उसके विरुद्ध किसी संघर्ष की चेतना को पैदा नहीं करती। मूल्यों की दृष्टि से जो अभावजन्य स्थिति है, उसके प्रति लोगों को सजग नहीं करती। पाठकों, दर्शकों और श्रोताओं की सोयी हुई संवेदनाएँ नहीं जगाती।

भारतीय मीडिया को कई रूपों में, कई कोणों से भूमंडलीकरण के कारण उपजे साम्राज्यवाद से चुनौती मिल रही है। इन स्थितियों में पत्रकारिता के मूल्यों का संरक्षण कठिन होता जा रहा है। साम्राज्यवाद के नए-नए प्रभावों की धूल झाड़कर अपनी पहचान बनाए रखना आज भारतीय मीडिया की चुनौती है। इन स्थितियों में जरूरत इस बात की है कि नियोजित ढंग से मीडिया के लोक-कल्याणकारी रूप को उभारा जाए। उसके सबसे कारगर उपयोग के बारे में विमर्श की प्रक्रिया चलाई जाए।

जरूरत एक कठिन संकल्प और निष्ठा की भी है। आत्मपराएपन के दर्पण में खोते जा रहे अपने वजूद की रक्षा का दृढ़ संकल्प हमें भूमंडलीय मीडिया के दुष्प्रभाव से बचा सकता है। हाईटेक संचार माध्यमों के साम्राज्यवादी-प्रभुत्ववादी आधुनिकता के जाल को काटने के लिए मीडिया को सही रास्ते पर आज नहीं तो कल, आना ही होगा, अन्यथा हमारी संस्कृति मिट जाएगी और संस्कृति का मिट जाना देश का मिट जाना होता है।¹⁴

यह सच है कि भारतीय संविधान ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को समुचित महत्व दिया है। संचार माध्यमों के संदर्भ में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बेहद जरूरी है, लेकिन जिम्मेदार संचार माध्यमों को स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व के बीच उचित संतुलन बनाकर चलना होगा, जिसकी बात अक्सर विदेशी मीडिया और भारतीय मीडिया से जुड़े लोगों द्वारा दोहराई जाती रही है। साम्राज्यवादी सूचना इंद्रजाल के मोहक रूप को तोड़कर स्थानीय परिप्रेक्ष्य और राष्ट्रीय हित के लिए कल्याणकारी सूचनाओं के प्रसार को कैसे बल दिया जाए, आज के मीडिया के लिए यह बहुत बड़ी चुनौती है।

अतः आज के मीडिया के लिए चुनौती है कि वह किस तरह अपने ऊपर पड़ी व्यावसायिकता की चादर को हटाकर समाज में व्याप्त मौजूदा समस्याओं के प्रति जनमानस में चेतना पैदा करे। किस तरह सस्ते और बाजारू किस्म की विषय सामग्री और कार्यक्रमों की संरचना को भेदकर राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नों को वरीयता दे, कैसे पत्रकारिता में विचारों की गंभीरता वापस लाए, कैसे भावी पीढ़ी को संस्कारित करे, उन्हें कैसे राष्ट्रीय और मानवीय सरोकारों से परिचित कराए, कैसे पत्रकारों को यह दिशा-निर्देश देकर चेताए कि, "पत्रकारिता, खबरों की सौदागरी नहीं है।"

हमारे साहित्यकार और पत्रकार पहले साहित्य व पत्रकारिता में बुनियादी विरोध नहीं मानते थे। साहित्य और पत्रकारिता के बीच गहरे संबंधों का एक धागा पिरोया हुआ था, लेकिन वह धागा आज वैश्वीकरण की प्रक्रिया में बाजारवाद के पैसे औजार ने काट दिया है। एक समय था, जब अखबारों के विशेष पृष्ठों को, पत्रिकाओं की खास जगहों को सृजनात्मक साहित्य से गरिमा मिलती थी। उनमें गंभीर साहित्यिक विमर्श चलता था।

अखबारों के जरिए कविता, कहानी, रिपोर्ट्स आदि साहित्यिक विधाएँ घर-घर पहुँचती थीं, लेकिन अब साहित्य के पन्ने गायब हो गए हैं। उनकी जगह सौंदर्य प्रतियोगिताओं, फैशन शो तथा बड़ी-बड़ी हस्तियों की पार्टियों की तस्वीरों और खबरों ने घेर ली है।

मीडिया में छापे बाजारवाद ने साहित्य को पृष्ठभूमि में डाल दिया है, जबकि साहित्य आज भी मानवीय संवेगों को पहले की ही तरह उद्दीप्त करने की शक्ति सँजोए हुए है। आज भारतीय मीडिया वैचारिकता और साहित्य का महत्व कैसे प्रतिपादित करे, मीडिया हमें साहित्य के संस्कारों से कैसे संस्कारित करे, यह हमारे समक्ष चुनौती है।

मीडिया के समक्ष एक चुनौती यह भी है कि वह कैसे जुझारू, सजग उत्तरदायित्वपूर्ण तथा लोकतांत्रिक स्वरूप को गढ़कर 'चतुर्थ स्तंभ' के अपने आदर्श की रक्षा करे। इसके लिए तमाम व्यावसायिकता के नारों के बीच भारतीय मीडिया को यह समझना होगा कि वह लोक का शक्तिशाली स्तंभ है और राष्ट्रीय संस्कारों तथा लोकतांत्रिक मूल्यों का संवाहक भी। वह दिशा-दर्शन के गहरे दायित्व बोध से भी जुड़ा हुआ है।

निष्कर्ष - भारतीय मीडिया, चाहे वह इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हो अथवा प्रिंट मीडिया, दोनों का ही सैद्धांतिक स्वरूप राष्ट्रीय समता, अखंडता और संप्रभुता बनाए रखने के उद्देश्य के साथ-साथ देश की जनता में सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से एक अनुकूल और प्रेरक सोच पैदा करने के उद्देश्य से गढ़ा गया है। शिक्षा तथा साक्षरता के माध्यम से समाज के विकास को गति देना भी उनका लक्ष्य है।

व्यावसायिकता से उपजी तमाम चुनौतियों के बीच भारतीय मीडिया को अपनी यह चमक पुनः कायम करनी होगी। उसे इन्हीं चुनौतियों से गुजरकर वह राह पकड़नी होगी, जिस पर चलकर वह देश के व्यापक फलक पर व्याप्त भ्रष्टता और विसंगति को चुनौती दे सके, 'साम्राज्यवादी सूचनाओं के इंद्रजाल' से मुक्त होकर राष्ट्रीय प्रतिबद्धता का पाठ पढ़ा सके तथा ग्लैमर, चकाचौंध के आवरण को चीरकर समाज को स्वस्थ दिशा दे सके।

संदर्भ सूची सूची

1. सिंह रामगोपाल, वैश्वीकरण, मीडिया और समाज, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2020.
2. अग्रवाल, मधु, भारतीय विज्ञापन में नैतिकता, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1995.
3. मिश्र, रविंद्र नाथ, मीडिया और लोकतंत्र, अरिहंत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2014.
4. चौधरी, लाखाराम, भारत में चुनावी राजनीति और चुनाव सुधार के प्रयास, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2018.

5. बिष्ट, पंकज और सिंह, भूपेन, मीडिया बाजार और लोकतंत्र, अनिरुद्ध बुक्स, नई दिल्ली, 2021.
6. कार, पराग, दूरसंचार विकास का उद्दीपन, योजना, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, नवम्बर, 2010.
7. भारद्वाज नंद, संस्कृति जनसंचार और बाजार, सामायिक प्रकाशन, दिल्ली, 2016.
8. मिश्र, कृष्ण बिहारी, अज्ञेय, पत्रकारिता इतिहास और प्रश्न, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2015.
9. वत्सला, प्रत्युष एवं शर्मा, संगीता, मीडिया और लोकतंत्र, कल्पज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2021.
10. कौर गुरमेहर, द यंग एंड द रेस्टलेस: यूथ एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया, पेंगुइन पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2019.
11. तिवारी, इति, मीडिया और सामाजिक परिवर्तन, अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2018.
12. कृष्ण, दया, सभ्यताएँ एवं संस्कृतियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018.
13. जोशी अपूर्व, लोकतंत्र राजनीति और मीडिया, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020.
14. टेलर, मीनाक्षी, भारत में संसदीय शासन के औचित्य का परीक्षण, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 2018.

कानपुर में गुप्तकालीन मंदिर विशेष संदर्भ में भीतरगांव मंदिर

ओम प्रकाश

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत मंदिरों का देश कहा जाता है। सम्पूर्ण भारत में विभिन्न देवी-देवताओं के मंदिर आज भी पाए जाते हैं। उत्तरी भारत में मंदिरों की संख्या कम है, क्योंकि यहाँ नदियों की बाढ़ से तथा आक्रमणकारियों द्वारा किये गए विनाश से प्रायः मंदिर नष्ट हो गए। दक्षिण भारत में अब भी मंदिरों की संख्या अधिक है। देखा जाए तो दक्षिण भारत में ही मंदिर-वास्तु कला का सर्वाधिक विकसित स्वरूप दिखाई पड़ता है। भारत में मंदिर-निर्माण की परम्परा का प्रारूप बौद्ध स्तूपों और चौत्यों में पाया जा सकता है। गुप्तकाल में इन्हीं से प्रभावित होकर हिन्दू मंदिरों का विकास हुआ था। गुप्तकाल की यह मंदिर निर्माण-परम्परा दक्षिण भारत में 19 वीं शताब्दी तक बराबर चलती रही।

भारत के हिन्दू मंदिर साधारण भवन नहीं थे। गुप्तकाल में भारतीय मनीषियों ने मंदिर को देव-प्रसाद अथवा देवायतन के रूप में अभिकल्पित किया था। मन्दिर तत्कालीन जनजीवन के केन्द्र-बिन्दु थे। वे भारतीय संस्कृति के साकार स्वरूप माने गए थे। इसलिए भारतीय हिन्दू मन्दिरों को समझने के लिए भारतीय विचार जान लेना अति आवश्यक है।

हिन्दू मंदिर एक प्रतीक है अथवा अन्य संदर्भ में अनेक प्रतीकों का समन्वय है। मंदिर को पुरुष की संज्ञा दी जाती है। चरण, पाद, जंघा, ग्रीवा इत्यादि मानव शरीर के अंग हैं, मंदिर के स्थापत्य के विभिन्न अंगों को इंगित करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। हिन्दुओं के लिए मन्दिर उस देवता का स्थान है जो विश्व की अन्तरात्मा है। इसलिए मंदिर को 'देवालय', 'शिवालय' व 'देवायतन' जैसे शब्दों से जाना जाता है। मंदिर के गर्भगृह में देव-प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा करके स्थापना के साथ पूजा अर्चना प्रारम्भ किया जाता है।

जिस प्रकार से एक राज प्रसाद में दरबार कक्ष दीवान-ए-आम व दीवान-ए-खास होता है उसी प्रकार मंदिर में एक गर्भगृह, एक मंत्रणाकक्ष, व कभी-कभी एक सभा मण्डप होता है। समयानुसार विभिन्न उत्सवों व विभिन्न क्रिया-कलापों के लिए मंदिरों में परिवर्धन होता गया।

नृत्य, गायन व उत्सव निर्धारित मण्डपों में होता है, प्रत्येक अराधक बारी बारी से गर्भगृह में पूजा अर्चना करता है। गर्भगृह ठोस दीवारों से घिरा हुआ अन्धकारमय कक्ष होता है। इसके अन्दर के भाग में एक मध्य प्रकाश प्रकाशित होता है। मंदिर के विभिन्न अंगों का स्थापत्यिक उद्भव भी अधिक अर्थपूर्ण है। मंदिर के भीतरी भाग, जो प्रायः ठोस दीवारों से घिरा तथा गहन अन्धकार से युक्त कक्ष को गर्भगृह की संज्ञा दी गयी तथा ऊपर की चोटीयुक्त संरचना को शिखर भी कहा गया तथा जो पर्वत स्वरूप होती है उसे पौराणिक मेरुमंदिर या कैलाश कहा गया।

पहली शताब्दी में मंदिर के साथ शिल्प का सम्बन्ध है, तो लगभग पहली दूसरी शताब्दी ई0पू0 से निर्मित ध्वज स्तम्भों से प्राप्त होता है, किन्तु मंदिरों में अलंकरण की परम्परा का प्रारम्भ गुप्तकाल से ही देखने को मिलता है।

तलविन्यास या उर्ध्वविन्यास का प्रकाश नहीं मंदिर को सम्पूर्ण स्मारक का स्वरूप देता है। भीतर गांव का इष्टिका का मंदिर गुप्तकाल (लगभग 400-700ई0) में निर्मित मंदिर है। जिसका निर्माण गुप्त शासकों ने अपनी धार्मिक भावना को प्रकट करने हेतु किया था। यह मंदिर उत्तर भारत के अन्य मंदिरों की ही भांति था। साहित्य और कला के प्रायः समग्र क्षेत्र में रचनात्मक दृष्टिकोण से गुप्तकाल की उपलब्धियाँ अभूतपूर्व हैं। गुप्तकाल से पूर्व शासकों ने मंदिरों के निर्माण में लकड़ी व अन्य नष्ट होने वाले पदार्थों का प्रयोग करवाया था। गुप्तकाल में सर्वप्रथम मंदिर निर्माण परम्परा में पाषाण का प्रयोग किया गया। सुदृढ़ता एवं स्थायित्व की दृष्टि से मंदिरों में पाषाण का प्रयोग कालान्तर में निर्माण सिद्धान्त के लिए सर्वाधिक सफल प्रयास माना गया। भक्ति समुदाय के विकास अथवा ईश्वर के सगुणोपसना ने समाज के समग्र वर्गों को अपूतपूर्व प्रेरण प्रदान की। परिणामस्वरूप लोकप्रिय देवताओं जैसे वासुदेव और बलराम, वराह और नृसिंह, विष्णु, शिव, स्कन्द तथा बुद्ध की आराधना के निमित्त समस्त उत्तर, मध्य तथा दक्षिण भारत में बहुत बड़ी संख्या में मंदिर निर्मित हुए जिनमें से कुछ ही सुरक्षित हैं। आराधना एवं पूजा के लिए ऐसे देवालयों की आवश्यकता हुयी, जिनमें देवमूर्ति को स्थापित किया जा सके तथा अराधक को उचित वातावरण प्राप्त हो सके, इसकी समुचित व्यवस्था गुप्त कालीन मंदिरों में की गयी।

इस प्रकार से मौलिक और तात्विक विशेषताओं वाले चौकोर गर्भगृह तथा स्तम्भयुक्त अर्धमण्डप के विशिष्ट मंदिरों की निर्माण कला का शिलान्यास गुप्तकाल में हुआ। गुप्त मंदिरों के विकसित मंदिरों में आच्छादित प्रदक्षिणापथ निर्मित हैं। प्रस्तर निर्माण के प्रारम्भिक उदाहरणों में पाषाण की निर्मित छत पायी जाती है जो बहुधा एक ही पत्थर की होती थी, जबकि परवर्ती मंदिर ईट व पत्थर द्वारा निर्मित होते थे, और इन पर शिखर होता था। परवर्ती मंदिरों के अन्दर नवीन अलंकरण अभिप्रायों जैसे गण, मिथुन, विद्याधर द्वारपाल तथा उत्तरंग के मध्य में महत्वपूर्ण आकृति, जो उस देवता का प्रतीक है व जिसको मंदिर समर्पित किया गया हो, का समावेश किया जाता है।

गुप्तकाल में मंदिर निर्माण कला शैली समय के साथ विकसित होती गयी। प्रारम्भिक गुप्त मंदिरों की तिथि पाँचवीं सदी ई० हैं। इसमें एक गर्भगृह तथा चार स्तम्भों पर आधारित एक अर्धमण्डप है। इन मंदिरों की विशेषता वाह्य दिशा की अपेक्षा मध्य में स्तम्भों का व्यापक निर्माण है। जैसा कि सपाट, चौकोर या आयताकार छत, दीवारों और रचना की सादगी से ज्ञात होता है।

ईट तथा मिट्टी से निर्मित भीतरगाँव का इष्टिका मंदिर एक ऊँची जगती पर स्थित है जिसके ऊपर क्रमशः घटते तलों वाला कोणाकार शिखर है। यह योजना में त्रिरथ है जिसमें तीन तरफ केन्द्रीय शैलबाहु हैं। स्पष्ट है कि गुप्त काल के वर्गाकार चबूतरे पर चौकोर मंदिरों का निर्माण हुआ। उसी परम्परा में भीतरगाँव के मंदिर का निर्माण किया गया। देवगढ़ के मंदिर की भाँति यहाँ भी ऊँची चौकी तथा उसके ऊपर मंदिर के बाहर निकली हुई दोहरी कोनियाँ देखने को मिलती हैं। मंदिर का गर्भगृह 15 फिट वर्ग का है और जो एक दीर्घायत मार्ग से जुड़ा हुआ है। बाहरी अन्तराल का आयाम 7 फिट वर्ग का है। मंदिर में दो प्रदक्षिणापथ थे जो नचना के पार्वती मंदिर की भाँति ढके हुए थे। गर्भगृह के ऊपर उत्तरीय कोष्ठ बना हुआ था। गर्भगृह और विमुख कक्ष में पट्टेदार छत है जो गुम्बदाकार है। पादक के उपान काफी स्पष्ट है। गुप्तकाल के प्रश्चात् निर्मित उत्तर भारतीय मंदिरों में भीतरगाँव के मंदिर की विशेषताओं को ग्रहण किया गया।

मंदिर के बाहरी भाग का अलंकरण सुरुचिपूर्ण है। उसके चारों ओर बनाये गये आलों अथवा ताखों पर पकी मिट्टी की कलापूर्ण प्रतिमायें (टेराकोटा) सुसज्जित की गयी हैं। ये प्रतिमायें रामायण, महाभारत तथा पुराणों के विभिन्न प्रसंगों को सकार करती हैं। बाहरी भाग की दीवारों पर सज्जापट्टियाँ दर्शनीय हैं। धार्मिक दृष्य गणेश, आदिवराह, महिषासुरमर्दिनी, गंगा तथा सीता के अपहरण से सम्बद्ध कथायें एवं नर नारायण की तपस्या तथा वामन आकृतियों से सम्बन्धित हैं। मानव तथा पशु आकृतियाँ; काल्पनिक पक्षी, बेल-बूटे तथा अन्य अलंकृत कलाकृतियाँ सम्पूर्ण सज्जा में वृद्धि करती हैं। मंदिर का आंशिक रूप से सुरक्षित शिखर कोणस्तूपाकार है। यह चौत्यगवाक्षों के अध्यारोपित तलों से वैष्टित है, जिसमें विभिन्न प्रकार के सिर अथवा धड़ या सामान्यतया पूर्ण मानव आकृतियाँ हैं। मंदिर के निर्माण में सादगी होते हुए भी वास्तुगत अनेक नवीन विशेषतायें हैं, जो गुप्तकाल के प्रारम्भिक मंदिरों में नहीं हैं।

भीतरगाँव मंदिर की स्थिति

यह हिन्दू मंदिर भारत में सर्वाधिक प्राचीन, उपयोगी इष्टिका मंदिर के रूप में जाना जाता है। भीतरगाँव नामक गाँव उत्तर प्रदेश राज्य के कानपुर जिले में घाटमपुर तहसील में स्थित है। भीतरगाँव का शाब्दिक अर्थ है “अन्दर का गाँव” जो बाहरी गाँव से सटी हुई प्रतिमूर्ति है। यह स्मारक लगभग 1500 वर्षों से किसी का ध्यान आकर्षित कर पाने में अक्षम रहा। पूजा एवं अर्चना का अस्तित्व कई शताब्दियों से विद्यमान रहा परन्तु कोई भी परम्परा इसके साथ नहीं जुड़ी हुई है। कोई अन्य गुप्तकालीन ईट का मंदिर, अत्यधिक खूबसूरती से सजा हुआ, गुप्तकाल से लेकर वर्तमान समय तक टिका हुआ नहीं है तथा जो निःसन्देह गुप्तकाल से पूर्णरूपेण सम्पर्क रखता हो।

मुस्लिम शासनकाल से पहले भीतरगाँव नामक गाँव कन्नौज के राजवंश से सम्बन्धित था। उसके पश्चात् यह दिल्ली के सवाय के सुल्तानों के अधीन आ गया, उनके जाने के पश्चात् यह मुगलों के अधीन आ गया उसके पश्चात् कई वर्षों तक यह फरूखाबाद के बंगेश के नवाबों के अधीन आ गया। यह भू-भाग 1801 ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को आर्पित किया गया था तथा 1947 ई० तक यह भू-भाग ब्रिटिश सरकार के अंतर्गत ही रहा। सिन्द नदी यमुना की एक सहायक नदी थी तथा भीतरगाँव ग्राम दो नदियों के बीच स्थित था, जो इस सहायक नदी के नजदीक था। परम्पराओं के अनुसार यहाँ प्रत्येक दो मील के अन्तराल पर एक मंदिर उपस्थित था। यहाँ के इन भवनों को आरगल के राज गौतम द्वारा स्थापित किया गया था। यहाँ पर कुछ अन्य मंदिरों के भग्नावशेष भी उपस्थित हैं। जिनमें परौली, शर, सिम्बुआ, भदेओना, कोहरा तथा करचुलियापुर प्रमुख हैं।

इस स्मारक की खोज सन 1977 ई० में अलेक्जेंडर कनिंघम द्वारा की गयी थी, जो इसी वर्ष के नवम्बर मास में क्षेत्र पर भ्रमण हेतु आये थे तथा फरवरी 1978 ई० में पुनः इसी स्थान पर भ्रमण हेतु आये।

सर्वेक्षण के दौरान मंदिर के चारों ओर कनिंघम ने अधिक संख्या में मृणमूर्तियाँ तथा उसी प्रकार के अलंकृत ईटे खोज निकाले। उनके द्वारा कुछ ईटों का प्रयोग मंदिर के पुनर्निर्माण में किया गया था। उन्होंने कम से कम दो द्वारफलक भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता को भेजे थे, जहाँ वह फलक वर्तमान समय में भी सुरक्षित है। यद्यपि बहुत सी अलंकृत ईटे राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित हैं।

सन्दर्भ सूची:

- अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला, वाराणसी, पृथिवी प्रकाशन, 1977.
- अग्रवाल, वासुदेवशरण, स्टडीज इन इण्डियन आर्ट, वाराणसी, 1965.
- अग्रवाल, पृथ्वीकुमार, गुप्त टेम्पल आर्किटेक्चर, वाराणसी, बुक्स एशिया, 1968. अग्रवाल, पृथ्वीकुमार, भारत का कला इतिहास, वाराणसी, बुक्स एशिया, भाग-2 1994.
- उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर, पटना, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, (नव संस्करण) 2003
- उपाध्याय, उदयनारायण, गौतम तिवारी, भारतीय स्थापत्य एवं कला, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001
- उपाध्याय, भगवतशरण, गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर-प्रदेश, लखनऊ, 1969
- कृष्ण देव, उत्तर भारत के मंदिर, दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1971. (अनु०-ओम प्रकाश टंडन)
- रूट्स ऑफ इण्डियन आर्ट, दिल्ली, बी०आर० पब्लिशिंग कारपोरेशन, 1980.
- कनिंघम, द स्तूप ऑफ भरहुत, वाराणसी, 1962.
- कनिंघम ए., एशियन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, बनारस 1963।

- क्रेमरिश, स्टेला, दि हिन्दू टेम्पल्स, 1946.
- जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, बिहार राष्ट्र भाषा- परिषद्, पटना, 2000
- गुप्त, परमेश्वरी लाल, भारतीय वास्तु कला, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1999.
- ब्राउन, पी0, इण्डियन आर्किटेक्चर (बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू पीरियड) बम्बई 1956.
- राव, टी0ए0जी0, एलिमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, मद्रास, 1914.
- सहाय, शिवस्वरूप, भारतीय कला, स्टूडेंट्स फ्रेंड्स, इलाहाबाद, 2010
- श्रीवास्तव, ए0 एल0, भारतीय कला, इलाहाबाद, 1988.
- श्रीवास्तव, ए0 एल0, भारतीय कला- संपदा, उमेश प्रकाशन , इलाहाबाद, 2001
- श्रीवास्तव, डॉ. ब्रजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010।
- पाण्डेय जयनारायण, भारतीय कला, भाग-1, प्राच्य विद्या संस्थान, बी-78, गोविन्दपुर, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2000 ई.।
- मिश्र रामनाथ, भारतीय मूर्तिकला का इतिहास, संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण 2002, प्रथम हिन्दी 1978, गन्ध शिल्पी (इण्डिया) प्रा0लि0, दिल्ली।
- मिश्रा इन्दुमती, प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972।
- लाहा, विमल चन्द्र, प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, उ.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी लखनऊ, प्रथम संस्करण 1972।
- सिंह, अमर, ग्वालियर दुर्ग, मंदिर एवं मूर्तियाँ, तरुण प्रकाशन, विशाल खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ, 1996।
- सिंह, अरविन्द कुमार, प्राचीन भारतीय मूर्तिकला एवं चित्रकला, पाषाण काल से गुप्तकाल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2006
- Agrawala, V.S., *Gupta Art (A History of Indian Art in the Gupta Period 300-600 AD.)*, Prithivi Prakashan, Varanasi, 1977.
- Saraswati. S.K., *Gupta Temple Architecture*, Prithivi Prakashan, Varanasi, 1968.
- Sinha, B.P., *Archaeology & Art of India*, Sudeep Prakashan, Delhi, 1979.
- Vidyarthi, L.P., *Temple of North India*, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, New Delhi, 1959.
- Vidyarthi, L.P., *Art And Culture of North-East India*, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, New Delhi, 1986.

स्वतंत्रता आंदोलन में बाबूराव विष्णु पराङ्कर की पत्रकारिता का योगदान

डॉ० प्रेरणा त्रिपाठी

सहायक आचार्य, आई०आई०एस०ई० ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन, लखनऊ

शोध सारांश

बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में तेजस्वी हिंदी पत्रकारिता को गढ़ने वाले मूर्धन्य संपादकों में बाबूराव विष्णु पराङ्कर जी का नाम सबसे पहले लिया जाता है। उनकी पत्रकारिता में राष्ट्रभक्ति और क्रांति धर्म की झलक सर्वथा देखने को मिलती है। “आज” के मुखर-प्रखर संपादक के रूप में पराङ्करजी ने हिंदी भाषा और पत्रकारिता को संस्कारित एवं समृद्ध किया। अनेक नए शब्द गढ़े इस तरह हिंदी की अभिव्यक्ति सामर्थ्य को बढ़ाया। हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में पराङ्कर जी का नाम इसी वजह से बहुत ही सम्मान के साथ लिया जाता है। पराङ्कर जी की पत्रकारीय योगदान की पड़ताल प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से किया गया है।

प्रमुख शब्द: पत्रकारिता, स्वतंत्रता आंदोलन बाबूराव विष्णु पराङ्कर।

प्रस्तावना: बाबूराव विष्णु पराङ्कर का जन्म काशी में 16 नवंबर 1883 में हुआ था। बाबूराव के पिता विष्णु शास्त्री पराङ्कर संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। बाबूराव पराङ्कर की शिक्षा-दीक्षा वैदिक रीति के अनुसार हुई लेकिन बाबूराव पूरी तरीके से प्रगतिशील विचारों से ओतप्रोत थे। इनका मानना था कि यदि पत्रकार और पत्रकारिता प्रगतिशील होगी तो देश में स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी अहम भूमिका पत्रकारिता दे सकती है। पत्रकारिता में इनका पदार्पण 1906 में कोलकाता से निकलने वाले “हिंदी बंग भाषा” में सहायक संपादक के रूप से हुआ। सन् 1907 में बाबूराव “हित वार्ता” के संपादक बने। यहां पर उन्होंने अपनी वैचारिक आजादी के साथ हित वार्ता का संपादन किया, साथ ही साथ नेशनल कॉलेज में अध्यापन कार्य भी जारी रखा। 12 जनवरी 1955 में पराङ्कर जी का स्वर्गवास हो गया।

सन् 1911 ई. में “भारतमित्र” के संयुक्त संपादक हुए जो उस समय साप्ताहिक से दैनिक हो गया था। सन् 1916 ई. में राजद्रोह के संदेह में गिरफ्तार होकर साढ़े तीन वर्ष के लिए नजरबंद किए जाने के समय तक इसी पद पर रहे। वो कलकत्ता के युगांतर क्रांतिकारी दल के सक्रिय सदस्य रहे। सन् 1920 में नजरबंदी से छूटने पर वाराणसी आ गए। उसी वर्ष 5 सितंबर को दैनिक “आज” का प्रकाशन हुआ। पहले चार वर्ष तक वे अखबार से संयुक्त संपादक और संपादक तथा फिर प्रधान संपादक मृत्यु पर्यंत रहे। बीच में 1943 से 1947 तक “आज” से हटकर वहीं के “दैनिक संसार” के संपादक रहे। वाराणसी में भी अपने पत्रकार जीवन के समय वर्षों तक उनका क्रांतिकारी गतिविधियों से सक्रिय संपर्क रहा।

पराङ्करजी की प्रतिष्ठा और सर्वमान्यता का प्रमाण है कि हिंदी संपादक सम्मेलन का पहला अध्यक्ष उन्हें चुना गया। समय की नब्ज पर उनका हाथ था और आने वाले कल की आहट वे सुन लेते थे। सन् 1925 के वृंदावन हिंदी संपादक सम्मेलन के अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में उन्होंने कहा था कि पत्र निकालकर सफलतापूर्वक चलाना बड़े-बड़े धनिकों अथवा सुसंगठित कंपनियों के लिए ही संभव होगा। पत्र सर्वांग सुंदर होंगे, आकार बड़े होंगे, छपाई अच्छी होगी; मनोहर, मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक चित्रों से सुसज्जित होंगे, लेखों में विविधता होगी, कल्पनात्मकता होगी, गंभीर गवेषणा होगी और मनोहारिणी शक्ति भी होगी। ग्राहकों की संख्या लाखों में गिनी जायेगी। यह सब कुछ होगा, पर पत्र प्राणहीन होंगे। पत्रों की नीति देशभक्त, धर्मभक्त अथवा मानवता के उपासक महाप्राण संपादकों की नीति न होगी। इन गुणों से संपन्न लेखक विकृत मस्तिष्क समझे जाएंगे। संपादक की कुर्सी तक उनकी पहुँच भी न होगी। वेतनभोगी सम्पादक मालिक का काम करेंगे और बड़ी-बड़ी खूबी के साथ करेंगे। वे हम लोगों से अच्छे होंगे पर आज भी हमें जो स्वातंत्रता प्राप्त है वह उन्हें न होगी। ऐसे दूरदर्शी और क्रांतिधर्मा पराङ्करजी के जीवन और उनकी पत्रकारिता और कृतित्व के बारे में प्रस्तुत शोध पत्र के जरिये अध्ययन का प्रयास किया गया है।

शोध का उद्देश्य: इस शोध कार्य के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:-

1. पूर्वाचल की पत्रकारिता के संबंध में विस्तार से अध्ययन कर वहां के मूर्धन्य पत्रकारों एवं उनकी पत्रकारिता के बारे में जानकारी हासिल करना।
2. एक दूरदृष्टा पत्रकार के रूप में बाबूराव विष्णु पराङ्कर जी के पत्रकारीय चेतना के संबंध में अध्ययन करना।
3. स्वतंत्रता आंदोलन में बाबूराव विष्णु पराङ्कर जी के पत्रकारिता के बारे में विस्तार पूर्वक ढंघा से जानकारी जुटाना।

शोध: प्रस्तुत अध्ययन बाबूराव विष्णु पराङ्कर जी के पत्रकारीय लेखन व उनकी सामाजिक चेतना के बारे में किया जाना है। अतः एक गंभीर पत्रकारीय अध्ययन के रूप में यह जानना महत्वपूर्ण होगा कि उनकी पत्रकारिता की धार कितनी थी? सामाजिक जागृति में उनके द्वारा संपादित पत्रों के माध्यम से किस

प्रकार की विषय वस्तु के माध्यम से आजादी की लड़ाई में योगदान दी जा रही थी तथा साहित्य एवं पत्रकारीय जगत को उनकी क्या-क्या देन है? यही इस शोध अध्ययन का प्रमुख प्रश्न है, जिसकी पड़ताल प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से की गई है।

शोध प्रविधि: इस अध्ययन में प्रविधि के रूप में वैयक्तिक अध्ययन व विषय वस्तु अध्ययन दोनों का सहारा लिया गया है। उपरोक्त दो प्रविधियों के प्रयोग के पीछे की वजह यह है कि जहां वैयक्तिक अध्ययन के माध्यम से बाबूराव विष्णु पराङ्कर जी के पत्रकारिता के बारे में संपूर्णता से जानकारी मिल पाएगी वहीं विषयवस्तु अध्ययन के जरिये उनकी लेखनी के बारे में भी सम्यक तौर पर जानने को मिल पाएगा।

शोध कार्य का महत्व: आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता का इस्तेमाल एक प्रमुख हथियार के तौर पर किया। देश के कोने-कोने से विभिन्न भाषाई अखबारों ने इस कार्य में अपनी महती भूमिका अदा की। इसी क्रम में पूर्वांचल के समाचार पत्र व पत्रिकाओं ने भी अंग्रेजी शासन के खिलाफ बिगुल फूंकने का काम किया। पूर्वांचल क्षेत्र में ऐसे बहुत सारे पत्र पत्रिकाओं ने अंग्रेजों के द्वारा यहां के लोगों को गुलाम बनाकर उनका शोषण करने के विरुद्ध जनजागरण का काम किया। ऐसे पत्रों और पत्रकारों के योगदान को प्रस्तुत पत्र के माध्यम से विस्तारपूर्वक जानने का प्रयास किया गया है। इसी वजह से प्रस्तुत विषय पर शोध किया जाना और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

शोध की सीमाएं: स्वतंत्रता संग्राम के दौरान सामाज सुधारकों के साथ-साथ पत्रकारों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दे कर देश की जनता में जागृति लाकर उन्हें गुलामी की जंजीरों से मुक्त होने की दिशा में कई प्रयास किये। इसी जागरूकता के क्रम में कई सारे क्षेत्रों से पत्रकारों और समाज सुधारकों व क्रांतिकारियों का विशेष योगदान देखने को मिलता है। ऐसे में प्रस्तुत अध्ययन में पूर्वांचल की पत्रकारिता पर केंद्रित तौर पर यह कार्य किया जा रहा है। देश भर के पत्रकारों का योगदान किसी एक शोध पत्र के माध्यम से समेटना आसान प्रतीत नहीं होता है। प्रस्तुत शोध कार्य की यही सीमा है।

साहित्य पुनरावलोकन: मिश्र (2019) प्रस्तुत पुस्तक हिंदी पत्रकारों एवं पत्रकारिता को लेकर गहनता के साथ विमर्श करता है। हमारे वरेण्य पत्रकारों में हिंदी पत्रकारिता की कठिन डगर पकड़ने की चाह क्यों और कैसे जगी तथा इस पथ पर उन्होंने अपना सर्वस्व क्यों निछावर किया, आदि प्रश्न यदि किसी के मन में उठें तो डॉ. मिश्र का सीधा उत्तर है- जातीय अस्मिता को जगाने के लिए। जातीय अस्मिता की जागृति में हिंदी पत्रकारिता को समर्पित साधकों ने कितने काल तक कितनी आहुतियाँ दी, इस पुस्तक में उसके प्रेरक विवरण दर्ज हैं। यही नहीं इस पुस्तक के दो परिशिष्टों में इस जागरण-भूमिका को पुष्ट करने वाले दस्तावेज शामिल किए गए हैं। हिंदी के आसनसिद्ध निबंधकार की कलम से हिंदी पत्रकारिता के इतिहास से उजागर हुआ यह महत्वपूर्ण पक्ष हमारी जातीय अस्मिता के आलोक को देशव्यापी प्रसार देगा, ऐसा विश्वास और सहज उम्मीद है।

आशारानी (2009) प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से लेखिका का मानना है कि हिंदी पत्रकारिता को नया स्वरूप, नई गति, नई दिशा देने और उसमें राष्ट्रीयता को नए मानदंड स्थापित करने में बाबूराव विष्णु पराङ्कर जी का इस क्षेत्र में विशिष्ट योगदान है। वे ऐसे विरल हिंदी सेवी थे, जिन्होंने अहिंदी भाषी होते हुए भी हिंदी भाषा, गद्य और पत्रकारिता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देकर अपना नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित कराया।

विश्लेषण व परिचर्चा: बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में तेजस्वी हिंदी पत्रकारिता को गढ़ने वाले मूर्धन्य संपादकों में बाबूराव विष्णु पराङ्कर अग्रण्य हैं। उनकी पत्रकारिता, राष्ट्रभक्ति और क्रांति धर्म से अनुप्राणित है। “आज” के मुखर-प्रखर संपादक के रूप में पराङ्करजी ने हिंदी भाषा और पत्रकारिता को संस्कारित एवं समृद्ध किया। अनेक नए शब्द गढ़े। इस तरह हिंदी की अभिव्यक्ति-सामर्थ्य को बढ़ाया। भारत की आजादी के आंदोलन में अखबार को बाबूराव विष्णु पराङ्कर ने एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया उनकी पत्रकारिता क्रांतिकारी थी उनके युग में पत्रकारिता एक मिशन था। उनके हाथों में “आज” जैसे पत्रों को संवारने का आत्मबल था अपनी जुझारू कलम के धनी बिना किसी डर, अखबार का बंद हो जाना या फिर अंग्रेजी सरकार के दमनकारी नीतियों की परवाह किए बिना पत्रकारिता का वरण किया। एक जेब में पिस्तौल, दूसरी में गुप्त पत्र “रणभेरी” और हाथों में “आज”, “संसार” जैसे पत्रों को संवारने, जुझारू तेवर देने वाली लेखनी के धनी पराङ्करजी ने जेल जाने, अखबार की बंदी, अर्थदण्ड जैसे दमन की कार्यवाही की परवाह किए बगैर पत्रकारिता का वरण किया। मुफलिसी में सारा जीवन न्यौछावर करने वाले पराङ्करजी ने आजादी के बाद देश की आर्थिक गुलामी के खिलाफ धारदार लेखनी चलाई।

पराङ्करजी ने हिंदी भाषा के पत्रकारिता के माध्यम से कई नए शब्द दिए जैसे राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, मुद्रास्फीति, स्वराज, वातावरण या फिर किसी के नाम से पहले उसे सम्मान देने के लिए सर्वश्री लगाने का आविष्कार पराङ्करजी का ही है, जिसे जनमानस के साथ-साथ हिंदी पत्रकारिता ने भी आत्मसात कर लिया। उनके बारे में पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी ने लिखा है कि पूरे पचास वर्ष तक जगत की निरंतर सेवा करने वाले किसी दूसरे हिंदी पत्रकार के बारे में हमें पता नहीं लेकिन इस विषय में पराङ्करजी ही निसंदेह अमूल्य थे। पराङ्करजी सन् 1931 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के शिमला अधिवेशन के सभापति चुने गए। सम्मेलन ने उन्हें “साहित्य वाचस्पति” की उपाधि से विभूषित किया। गीता की हिंदी टीका और प्रख्यात बांगला पुस्तक “देशेर कथा” का हिंदी में अनुवाद भी किया (देश की बात नाम से)। हिंदी भाषा को सैकड़ों नए शब्द आपने दिए, लिखने की विशिष्ट शैली थी जिसमें छोटे-छोटे वाक्यों द्वारा गूढ़ से गूढ़ विषय की स्पष्ट और सुबोध अभिव्यक्ति होती थी।

निष्कर्ष एवं सुझाव: आज के मालिक काशी के अत्यंत सम्पन्न घरानों में से एक बाबू शिव प्रसाद गुप्त थे। वे आजादी की लड़ाई में गांधीजी के साथ भामाशाह की परंपरा के थे। जब अखबार की रूपरेखा बनी तो उन्होंने पराङ्करजी को उसका संपादन दायित्व देने का निर्णय किया। पराङ्करजी कलकत्ता में थे पर वे काशी आना चाहते थे। पराङ्करजी काशी के प्रति आकर्षण से मुक्त नहीं थे। वे काशी आये। अखबार की रूपरेखा बनी और अखबार निकलना शुरू हुआ। पराङ्करजी अखबार के संपादकीय नीतियों को अपनी इच्छा से चलाना चाहते थे। उन्हें ऐसी छूट भी मालिकों द्वारा दी गयी थी। अखबार निकला और पूर्वी उत्तरप्रदेश क्या वह हिंदी जगत का प्रमुख अखबार बन गया। 29 अक्टूबर 1930 से 08 मार्च 1931 तक अंग्रेजी सरकार के नीति के विरोध में “आज” ने संपादकीय की एक मिसाल पेश की। संपादकीय वाली जगह पूरी तरीके से खाली रहती थी। बस पाठकों के लिए मात्र एक आवाहन निकलता था।

देश की दरिद्रता, विदेश जाने वाली लक्ष्मी, सिर पर बरसने वाली लाठियां, देशभक्तों से भरने वाले कारागार इन सबको देखकर प्रत्येक देशभक्त के हृदय में जो अहिंसात्मक विचार उत्पन्न हो, वही संपादकीय विचार है। विष्णु पराङ्कर की पत्रकारिता, देश सेवा, भाषा सेवा और साहित्य सेवा का एक माध्यम रहा एक संपादक के रूप में, एक पत्रकार के रूप में उनका योगदान सराहनीय रहा।

संदर्भ सूची

1. तिवारी, अर्जुन, (2010) बाबूराव विष्णु पराङ्कर, नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन
2. मिश्र, कृष्णबिहारी, (2004) हिंदी पत्रकारिता, नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ
3. तिवारी, अर्जुन, (2019) मीडिया समग्र, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन
4. मिश्र, कृष्णबिहारी, (2004) हिंदी पत्रकारिता: आश्रित और आशंका, नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन प्रा. लि.
5. व्होरा, आशारानी(2009),स्वाधीनता सेनानी लेखक-पत्रकार, नई दिल्ली: प्रतिभा प्रतिष्ठान

तेजेंद्र शर्मा की कहानियों में आधुनिकता बोध

प्रो० प्रदीप श्रीधर

आचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग तथा निदेशक, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
डॉ० भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

बीज शब्द: प्रवासी, ब्रिटेन, कहानियाँ, तेजेंद्र शर्मा आधुनिकता आदि।

शोध सार: कोई भी मनुष्य सामाजिक, धार्मिक व मानवीय हितों के लिए परंपराओं, रीति-रिवाजों, धर्म आदि का अंधानुकरण व उन्हें यथावत रूप में स्वीकार न करते हुए इनका तार्किक दृष्टि से आलोचनात्मक मूल्यांकन करने के पश्चात् जब उन्हें ग्रहण करता है, तब ही आधुनिकता की शुरुआत होती है। आधुनिकता में दो प्रमुख और महत्वपूर्ण शब्द जुड़े हुए हैं जो इस प्रकार हैं—पहला है ‘आधुनिक’, दूसरा है ‘आधुनिकीकरण’। आधुनिक शब्द एक कालवाची शब्द है और यह वर्तमान को इंगित करता है। आधुनिकीकरण से तात्पर्य उन परिवर्तनों से है जो मनुष्य के द्वारा भौतिक स्तर पर किए जाते हैं और उन परिवर्तनों का व्यापक प्रभाव पारंपरिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक व आर्थिक रूप से पड़ता है। आधुनिकता के अगर प्रथम चरण के बारे में बात की जाए तो आधुनिकता का प्रथम चरण नवजागरण है। 19वीं सदी में अंग्रेजों द्वारा लाई गई पाश्चात्य शिक्षा तथा आधुनिकीकरण ने भारतीयों की सदियों से चली आ रही संकुचित मानसिकता को तोड़ा जिससे एक नवीन विचारधारा का आरंभ हुआ। दूसरे शब्दों में कहें तो एक नयी चेतना जागृत हुई और यहीं से आधुनिकता का प्रथम चरण आरंभ होता है।

प्रस्तावना: प्रवासी हिंदी साहित्य समाज में अपनी रचनाओं से विश्व में हिंदी एक अलग पहचान बना रहा है। हिंदी साहित्य के अंतर्गत प्रवासी हिंदी साहित्य एक नये विमर्श के रूप में उभरा है। भारतीय मूल के लोग जो समस्त विश्व में फैले हुए हैं और उन लोगों ने विदेशों को अपने कर्मक्षेत्र के रूप में चुना है। प्रवासी साहित्य विमर्श कोई नवीन विमर्श नहीं है, यह बीसवीं सदी से हिंदी साहित्य जगत में चला रहा है। बीसवीं सदी में प्रवासी भारतीयों ने ही विदेशों में रहकर भारतीयता को बनाए रखने का प्रयास किया। भारतीय मूल के विदेशों में रहने वाले साहित्यकारों के लेखन को प्रवासी साहित्य कहा जाता है और जिन्होंने हिंदी को ही माध्यम बनाकर साहित्य सृजन किया है, वे लोग ही प्रवासी भारतीय साहित्यकार हैं। हिंदी का प्रवासी साहित्य बहुत समृद्ध है। प्रवासी हिंदी साहित्य अपनी एक अलग और विशेष पहचान बनाने में सफल सिद्ध हुआ है। हिंदी शब्दों में प्रवासी का अर्थ प्राप्त होता है—विदेशों में रहने वाले भारतीय। यद्यपि अन्य भाषाओं में इस शब्द का अर्थ और प्रयोग बिल्कुल भिन्न है।

व्यापक अर्थ में जो लेखन अपने घर से दूर रहकर विदेश में हुआ हो, वही लेखन प्रवासी साहित्य कहा गया है। आज प्रवासी हिंदी साहित्यकारों ने हिंदी का विश्व पटल पर परचम लहराया है। प्रवासी हिंदी साहित्य के अंतर्गत मुख्यतया उपन्यास, कहानियाँ, अनूदित साहित्य, महाकाव्य, नाटक, कविताएँ, एकांकी, खंडकाव्य, यात्रावर्णन और आत्मकथ्य आदि विधाओं पर लेखन किया गया है। प्रवासी रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नीतिमूलक, मिथक, इतिहास, संस्कृति एवं सभ्यता को विदेशों में सुचारू रूप से अपने जीवन में बनाए रखकर भारतीयता को सुरक्षित रखा है।

तेजेंद्र शर्मा: साहित्यिक संदर्भ- समकालीन कथा साहित्य में तेजेंद्र शर्मा एक चर्चित नाम हैं। तेजेंद्र शर्मा मूल रूप से भारत के पंजाब प्रांत के जगरांव शहर में जन्मे। 1998 से वह लंदन में प्रवास कर रहे हैं। तेजेंद्र जी हिंदी, पंजाबी, उर्दू एवं गुजराती भाषाओं के जानकार हैं। इसके साथ ही साथ विभिन्न विधाओं के ज्ञाता, कुशल कहानीकार, नाटककार, अभिनेता एवं एक कवि और लेखक के रूप में अत्यंत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। उनके द्वारा लिखा गया धारावाहिक ‘शांति’ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि प्राप्त धारावाहिक बन गया है। उन्होंने अभिनय के क्षेत्र में अभिनेता नाना पाटेकर के साथ एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन भी किया। तेजेंद्र शर्मा इंदु शर्मा मेमोरियल ट्रस्ट के संस्थापक तथा हिंदी साहित्य के एकमात्र अंतरराष्ट्रीय सम्मान इंदु शर्मा अंतरराष्ट्रीय कथा सम्मान प्रदान करने वाली संस्था कथा युके के सचिव हैं। उन्हें समय-समय पर अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है जो उनकी लोकप्रियता को अभिव्यक्त करते हैं। तेजेंद्र शर्मा का हिंदी साहित्य जगत में कहानीकार वाला रूप निखर कर आया है यद्यपि उन्होंने अन्य विधाओं में भी लेखन कार्य किया है लेकिन इनको समकालीन कहानी विधा के सशक्त और सफल हस्ताक्षर के रूप में जाना जाता है।

आधुनिकता शब्द: आशय और स्वरूप- आधुनिकता शब्द के बारे में अगर बात की जाए तो आधुनिकता शब्द अंग्रेजी के मॉडर्निटी शब्द का हिंदी अनुवाद है। आधुनिकता की प्रकृति सूक्ष्म है। इसकी कोई स्थूल, पूर्वनिश्चित और अपरिवर्तनीय दिशा नहीं है जिसे व्यापक ऐतिहासिक दृष्टि से खोजा जा सके। विशिष्ट परिस्थितियों में दो विरोधी विचारधाराएँ आपस में टकराती हैं तो एक नवीन बोध विरोधी विचारधारा के प्रतिफलन के रूप में प्राप्त होता है, जिसे युगबोध भी कहा जा सकता है। आधुनिकता का मूल्य और युगसापेक्ष धर्म से गहरा संबंध है परंतु प्रासंगिकता के बिना यह सम्बंध कमजोर जान पड़ता है। मूल्य हमारे महत्त्व और उपयोगिता को दर्शाता है। यदि हम आधुनिकता को मूल्य मानते हैं तो प्रासंगिकता के बिना यह सम्बंध कमजोर पड़ता है। आधुनिकता को गतिशील बनाने में मूल्य और युगसापेक्ष धर्मिता दोनों ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

तेजेंद्र जी की कहानियों में व्याप्त आधुनिकता:

तेजेंद्र शर्मा की कहानियों के बारे में अगर बात की जाए तो उनकी कहानियों में लंदन में रह रहे प्रवासियों के जीवन का एक सजीव रूप हमें देखने को मिलता है। उनकी कहानियों में आधुनिकता का एक व्यापक रूप हमें दिखाई देता है, वह इसलिए भी क्योंकि तेजेंद्र जी ने ब्रिटेन का परिवेश वहां रहकर न सिर्फ देखा-समझा है बल्कि वहां की जीवनशैली, परिवेश और संस्कृति को अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों के समक्ष लाने का प्रयास भी किया

है। तेजेंद्र शर्मा भारत और लंदन दोनों ही परिवेश से भलीभांति परिचित हैं, इसलिए उनकी कहानियां पाठकों के दिल और दिमाग को छू जाती हैं। उनकी कहानियों में आधुनिकता के दर्शन होते हैं।

सम्बंधों का टूटना: तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'छूता फिसलता जमीन' मैडी और जेम्स के प्रेम संबंधों के टकराव और रिश्तों में टूटन और मानसिक तनाव पर आधारित है। इस कहानी में आधुनिकता बोध द्रष्टव्य है। मैडी ब्रिटेन में अपने माता-पिता और भाई कमलजीत के साथ रहती है। जेम्स का उसके घर में आना-जाना लगा ही रहता था। मैडी जेम्स को मन ही मन प्यार करती थी। लेकिन जेम्स उसको प्यार नहीं करता है, वह सिर्फ और सिर्फ वासना का भूखा है। जेम्स मैडी के मन की बात समझा या नहीं पर उसकी मां उसकी बात को और उसकी भावनाओं को अच्छे से समझती थी। वह मनदीप से कहती है, "नी रूठ जाणिये, मैं तेरे सारे चालों देख रही हूं। अपने मन चों ऐ गल्ला कड दे। मैं तेरा ब्याह उस गोरे नाल नई करना।"

जेम्स मैडी की बिना इजाजत लिए उसके साथ शारीरिक संबंध बनाने की कोशिश करता है। जेम्स के खिलाफ पुलिस में रिपोर्ट भी लिखवाई जाती है। मैडी के माता-पिता को जब यह पता चलता है कि उनकी बेटी गर्भवती है तो वे उसे एबार्शन करवाने की सलाह देते हैं लेकिन डॉक्टर अबॉर्शन करने से मना कर देती है। तेजेंद्र जी ने अपनी इस कहानी के माध्यम से भारतीय पाश्चात्य जीवन के साथ-साथ संबंधों में आए बदलाव, रिश्तों की टूटन और घुटन आदि का सजीव रूप प्रस्तुत किया है।

अकेलापन: तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'ढिबरी टाइट' अकेलेपन की पीड़ा से ग्रसित एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो विदेशी वस्तुओं के आकर्षण से स्वयं को रोक नहीं पाता और इस कहानी का नायक गुरमीत साधनसंपन्न होते हुए भी सब कुछ छोड़ छोड़कर विदेश में जाकर रहने लगता है और वहीं नौकरी करता है। विदेश में रहने के बावजूद उसे अकेलेपन का भय हमेशा अंदर ही अंदर खोखला कर देता है। "विदेश में अकेले पड़ जाने का खौफ गुरमीत की आंखों में स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा था। सात समुंदर पार करके विदेश जाने की ललक थी गुरमीत में। पर एक ही समुद्र के उस पार पहुंचकर उसका दिल दहल गया था।"² तेजेंद्र शर्मा की यह कहानी पराये देश में रहने वाले गुरमीत की मानसिकता और उसके अकेलेपन का भयावह रूप प्रस्तुत करती है।

एकाकीपन: तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'पासपोर्ट का रंग' में हमें एकाकीपन सर्वाधिक रूप में दिखाई देता है। उनकी इस कहानी में आधुनिकता बोध भी द्रष्टव्य है। यह कहानी ब्रिटेन की नागरिकता को त्यागकर भारतीय नागरिकता के परिप्रेक्ष्य के संबंध में आधारित कहानी है। इस कहानी में गोपाल त्रिखा का बेटा इन्द्रेक्ष उन्हें भारत की नागरिकता त्यागकर ब्रिटेन की नागरिकता दिलाना चाहता है लेकिन गोपाल प्रसाद त्रिखा ब्रिटेन की नागरिकता नहीं लेना चाहते थे। फिर भी उन्हें ब्रिटेन की महारानी के प्रति निष्ठा रखने की कसम खानी पड़ती है। वे स्वयं अपनी बेटे से कहते हैं, "बेटा तू नहीं समझ सकता। मेरे लिए ब्रिटेन की नागरिकता लेने से मर जाना कहीं बेहतर है। मैंने अपनी सारी जवानी इन गोरे साहबों से लड़ने में बिता दी। जेलों में रहा, मुझे तो फांसी की सजा तक हो गई थी।"³ लेकिन उनका बेटा उन्हें ब्रिटेन की नागरिकता लेने को मजबूर करता है। इस कहानी में एक भारतीय गोपाल प्रसाद का अपने देश के प्रति लगाव और प्रेम दर्शाया गया है। गोपाल प्रसाद को न चाहते हुए भी ब्रिटेन की नागरिकता लेनी पड़ी लेकिन वह इस सदमे को सहन न कर सके और हमेशा के लिए इस दुनिया से अलविदा हो गए।

पारिवारिक विघटन: तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'हाथ से फिसलती जमीन' पारिवारिक विघटन और संबंधों में आए बदलावों पर आधारित एक ऐसी कहानी है जहां नरेन भारतीय परिवेश में जन्मा है और लंदन आकर बसने के बाद यूरोपियन लड़की जैकी से विवाह कर लेता है परंतु विवाह से कुछ समय पूर्व और पश्चात् भी कुछ समय तक रिश्तों में मधुरता बनी रहती है किंतु कुछ समय के बाद नरेन वर्णभेद का शिकार हो जाता है। अपने ही घर में और अपने ही परिवार में रहकर वह हीनभावना से ग्रस्त हो जाता है क्योंकि जैकी और उसके बच्चे अब एक रंग के हैं और नरेन अकेला भारतीय चमड़ी वाला है और इस कारण नरेन और जैकी के अलग-अलग संस्कृति में होने के बाद न सिर्फ उनके संबंधों में बदलाव आया बल्कि उनके भिन्न संस्कृति के होने के कारण उनका परिवार भी बिखर जाता है। नवीन को अब लगने लगता है कि मानो "उसके हाथों से उसकी जमीन फिसलती जा रही है। वह अपने बच्चों के सामने कभी नहीं आएगा।"⁴

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है तेजेंद्र शर्मा ने अपनी कहानियों की रचना आधुनिक परिवेश में की है। उनकी कहानियां कल्पना से परे यथार्थवादी सोच की परिचायिका हैं। शर्मा जी ने अपनी कहानियों के पात्रों का चयन यथार्थ के धरातल पर रहकर किया है। उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से एक स्वतंत्र विचारधारा को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है जो पाठक एवं समाज को भी एक अच्छा संदेश देती हैं। उनकी कहानियों के पात्र पुरुष हों या स्त्री, सभी के विचारों में आधुनिकता बोध दर्शनीय है। तेजेंद्र जी की कहानियां मानवीय जीवन के विविध रूपों का अंकन करने वाली जीवन की कहानियां हैं। उनकी कहानियों में अकेलापन और पारिवारिक समस्याएं दिखाई पड़ती हैं। तेजेंद्र जी के लंदन प्रवास के पश्चात् लगभग सभी कहानियों में आधुनिकता हमें दिखाई पड़ती है क्योंकि विदेशी धरती पर रहने के बाद उन्होंने वहां के परिवेश, जीवन शैली और संस्कृति को पहले समझा और इसके पश्चात् ही उन्हें अपनी कहानियों में भी सजीव रूप में चित्रित किया। तेजेंद्र शर्मा की कहानियां जीवनधर्मी हैं। कोई भी पाठक या श्रोता वर्ग अगर एक बार उनकी कहानियां पढ़ना शुरू कर दे तो अंत तक उनकी कहानियों को पढ़कर ही रहता है। अंततः हम यह बात तेजेंद्र शर्मा की कहानियों का अवलोकन करने के पश्चात् कह सकते हैं, उनकी कहानियों में आधुनिकता हमें व्यापक रूप में दिखाई पड़ती है, विशेषकर लंदन प्रवास के बाद की कहानियों में।

संदर्भ सूची:

1. तेजेंद्र शर्मा, 'देह की कीमत' सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 110
2. तेजेंद्र शर्मा, प्रतिनिधि कहानियां (ढिबरी टाइट), किताबघर प्रकाशन, पृ. 120
3. तेजेंद्र शर्मा, 'देह की कीमत' सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 139
4. तेजेंद्र शर्मा, 'सपने मरते नहीं' सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ 144

सूचना तकनीक एवं पत्रकारिता

डॉ० साधना

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जी०एस०एच० (पी०जी०) कालेज, चान्दपुर-स्याऊ (बिजनौर) पिन-246725

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के मध्य अवस्थित होने के कारण मनुष्य आत्मविचारों, भावों एवं संज्ञान को परस्पर बांटना चाहता है। भूख-प्यास की भाँति सूचना की जिज्ञासा भी एक स्वाभाविक प्रकृति है। यदि मनुष्य में सूचना की भूख नहीं हो तो वह सूचना तलाशेगा ही नहीं और इस प्रकार परस्पर संप्रेषण की प्रक्रिया समाप्त हो जायेगी, जिससे मनुष्य का ज्ञान शून्य हो जायेगा और विकास की प्रक्रिया भी अवरूद्ध हो जायेगी। वास्तव में सूचना मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है।

मनुष्य परस्पर ज्ञान एवं सूचना का आदान-प्रदान चाहता है। मनुष्य की यही इच्छा विविध संचार अथवा सूचना प्रक्रियाओं को जन्म देती है। मनुष्य एकाकी हो अथवा समूह में, उसके आभ्यन्तर में चिंतन प्रक्रिया अनवरत चलती ही रहती है। संज्ञानात्मक स्तर पर प्रत्येक मनुष्य में परस्पर भिन्नता होती है। इस संज्ञानात्मक भिन्नता का आधार सूचना या संचार ही है। प्रश्न उठता है कि विभिन्न सूचनाओं को जन समाज तक पहुँचाने का माध्यम क्या है? एक स्थान पर घटित घटना या जानकारी को हम समाचार पत्रों या दृश्य श्रव्य माध्यमों से ही प्राप्त करते हैं। इस सन्दर्भ में संचार एवं पत्रकारिता के विषय में जिज्ञासा स्वाभाविक है। सर्वप्रथम हम पत्रकारिता की चर्चा करना चाहेंगे।

पत्रकारिता का सामान्य अर्थ जन माध्यमों के सूचना सम्प्रेषण व्यवहार एवं प्रक्रिया से जुड़ा है। वास्तव में पत्रकारिता संचार प्रक्रिया का व्यवहारिक पक्ष है। इसी के माध्यम से संचार मूर्त रूप लेता है। इस सम्बन्ध में आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार, “पत्रकारिता-सूचना, सामग्री के संकलन, लेखन एवं प्रकाशन से जुड़ा कार्य है, जो समाचार पत्र, पत्रिका, रेडियो एवं टी०वी० से जुड़ा है।”

उक्त से स्पष्ट है कि पत्रकारिता जनसंचार के दृश्य, श्रव्य माध्यमों के लिए सूचना संकलन, लेखन एवं प्रेषण अथवा प्रकाशन से जुड़ा कार्य है। लेकिन पत्रकारिता को सिर्फ जनसंचार माध्यम तक सीमित करना उचित नहीं है। पत्रकारिता सूचना के संकलन, लेखन, प्रारूपण एवं प्रकाशन से सम्बद्ध है। “हिन्दी के पत्रकारिता शब्द का समानार्थक शब्द अंग्रेजी में ‘जर्नलिज्म’ है। जिसकी व्युत्पत्ति फ्रांसीसी भाषा में लैटिन भाषा के ‘डियुर्नलीज’ (Diurnalis) से हुई है। इसका अभिप्राय दैनिक से है। रोम में लगभग 130 ई० पूर्व हस्तलिखित बुलेटिन मुख्य स्थलों या चौराहों पर लगायी जाती थीं। इन्हें ‘ऐक्टाडियुर्ना’ (Acta diurna) कहा जाता था। इस प्रकार ‘ऐक्टाडियुर्ना’ प्रथम समाचार पत्र था। 1880 के पूर्व संवाददाता घटनाओं को काल क्रमानुसार लिख देते थे। यह व्यक्तिगत पत्र या कार्यालयी प्रतिवेदन की भाँति होती थी सम्पादक इसमें भाषा एवं व्याकरणगत सुधार कर प्रकाशनार्थ भेज देते थे, किन्तु खोजी पत्रकारिता के अन्तर्गत हिन्दी में छह ककार और अंग्रेजी में पाँच डब्ल्यू तथा एक एच को स्वीकार किया गया है। जिस का क्रम इस प्रकार है -

1. किसने/कौन?	(Who?)
2. क्या?	(What?)
3. कब?	(When?)
4. कहाँ?	(Where?)
5. क्यों?	(Why?)
6. कैसे?	(How?)

पत्रकारिता जगत में इन छह ककारों का ध्यान रखना अति आवश्यक है। ये छह ककार ही समाचार सम्बन्धी लेखन को पूर्णता प्रदान करते हैं। ये छह ककार रिपोर्टिंग एडिटिंग के साथ-साथ प्रत्येक सूचना की पूर्णता के तत्व हैं। यदि कोई पत्रकार इन छह ककारों को ध्यान में रखकर सूचना संग्रहीत नहीं करता है तो वह समाचार किसी एक संदर्भ के टूटने पर श्रोता पर प्रभाव नहीं छोड़ सकेगा। इन छह ककारों को दृष्टिगत रखते हुए की जाने वाली विशिष्ट लेखन प्रणाली को पत्रकार शैली या अंग्रेजी में जर्नलीज (Journalise) कहा जाता है। “पत्रकार-शैली वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा संक्षिप्त तरीके से भाषा एवं उभर दिया जाता है। इस प्रक्रिया में कम शब्दों में बड़े कुशलता के साथ विषय वस्तु को व्यक्त किया जाता है। इस प्रक्रिया को पत्रकार शैली के नाम से जानते हैं। इस प्रकार शीर्षक सहित कम शब्दों में व्यवस्थित लेखन प्रक्रिया को हम पत्रकारिता-शैली कहते हैं।”²

पत्रकारिता जगत में सामान्यतः दैनिक समाचार पत्रों में समाचार के इंट्रो में जो संदर्भ आता है, समाचार के अन्य भाग में उसी का पूरा विवरण होता है। इतना ही नहीं शीर्षक भी इंट्रो के आधार पर ही बनता है। इस प्रकार छह ककार से सम्बद्ध तथ्यों की प्रस्तुति समाचार लेखन को पूर्णता प्रदान तो करती ही है, उक्त छह प्रश्नों के संदर्भों को प्रस्तुत करने वाला समाचार अपने में पूर्ण होने के साथ-साथ समस्त पाठक वर्ग की जिज्ञासाओं को पूर्ण करने वाला भी होता है। वस्तुतः पत्रकारिता एक कौशल है, जो सामाजिक विषय बिन्दुओं पर आधारित है। पत्रकारिता का प्राणतत्व सूचना संदर्भ है, जिसे जन माध्यमों के कार्य व्यापार में समाचार की संज्ञा दी जाती है।

“संस्कृत भाषा में सूचना शब्द की व्युत्पत्ति सूच् शब्द से है जिसका अर्थ है – बताना, हाव-भाव, पता लगाना आदि। इसी सूच् शब्द में ल्युट् प्रत्यय जुड़ने से सूचना शब्द बनता है, जिस का अर्थ होता है – भेद खोलना, इंगित करना, रहस्य जानना, देखना, निश्चय करना आदि।³

“सूचना को हम अंग्रेजी के "Information" शब्द का हिन्दी रूपान्तर मानते हुए ज्ञप्ति अथवा खबर, इत्तला जैसे शब्दों के पर्याय रूप ग्रहण कर सकते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ है – अवगत या सूचित करना। जतलाना। बतलाना। वह बात जो किसी व्यक्ति को किसी विषय का ज्ञान या परिचय कराने के लिए कही या बतायी जाये।⁴

‘सूचना’ और ‘संचार’ निस्संदेह ये दो संकेत शब्द हैं, जो दुनिया भर में हो रही हलचल का प्रतिनिधित्व करते हैं। सही ‘सूचना’ के सही समय पर और सुविधाजनक रूप में पहुँचने से मनोरंजन, ज्ञान, व्यापार, अनुसंधान तथा उद्योग जगत् में नई दिशाएं खुलती हैं।

“सूचना किसी भी समाज की प्रगतिगामी गतिविधियों का मुख्य आधार है। हमारी सारी आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति विशेष रूप से वाणिज्यिक, वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति ‘सूचना’ के एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने पर निर्भर है। विभिन्न स्थानों पर, विभिन्न स्थितियों में कार्यरत् व्यक्तियों को अपनी आवश्यकता के अनुसार तरह-तरह के विषयों पर अलग-अलग रूप में अलग-अलग ढंग की सूचना चाहिए होती है।⁵

सूचना आंकड़ों के संसाधन से प्राप्त होती है। “मानव सभ्यता के आदि काल से लेकर आज तक हुए विकास तथा जीवन स्तर के सुधार में ‘सूचना’ हमेशा ही एक महत्वपूर्ण घटक रही हैं वर्तमान आधुनिक समाज में सूचना, उन्नति और विकास के साथ बहुत गहराई के साथ जुड़ी है। इसकी छाप हमें आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, व्यावसायिक तथा अन्य बहुत से क्षेत्रों में दिखायी देती है।⁶

उक्त के आधार पर स्पष्ट है कि सूचना तथ्यों पर आधारित ज्ञान की आधारभूत अवस्था है। सूचना की सत्यता, विविधता एवं समन्वय से ही समाचार अस्तित्व में आता है। जन माध्यमों की विभिन्न क्रियाएं सूचनाओं पर ही आधारित होती है। इन्हीं सूचनाओं में सूचना योग्य संदर्भ को हम समाचार के रूप में देखते हैं। लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए कि पत्रकारिता सिर्फ सूचना तक ही सीमित हो। “स्वस्थ पत्रकारिता से अभिप्राय उस पत्रकारिता से है जो मनुष्य के पूरे व्यक्तित्व का पोषण करे – उसका शरीर, उसका मन, उसकी आत्मा। ऐसी पत्रकारिता जो बेहतर मनुष्यता को निर्मित करने में संलग्न हो, सिर्फ घटनाओं के वृतांत इकट्ठे न करे। पत्रकारिता सिर्फ सूचना तक सीमित न हो, उसे एक अच्छा साहित्य भी होना चाहिए, तभी वह स्वस्थ है।”⁷

ओशो के अनुसार – “पत्रकारिता व्यवसाय नहीं, एक क्रांति होनी चाहिए।”

संदर्भ ग्रंथ

1. संचार और पत्रकारिता के विविध आयाम, ओमप्रकाश सिंह, पृ0 25
2. Watson James and Hill Anne, A Dictionary of Communication and Media Studies, P. 93
3. आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत, श्यामलाल वर्मा, पृ0 276
4. मानक हिन्दी कोश, सम्पादक रामचन्द्र वर्मा, भाग-5, पृ0 31
5. सूचना क्रांति और विश्व भाषा हिन्दी, प्रो0 हरिमोहन, पृ0 13
6. वहीं, पृ0 15
7. ओशो टाइम्स इंटरनेशनल, अगस्त 1996, पृ0 18

विभाजित लेबनान में शांति स्थापना की चुनौती

डॉ० निशा बक्सी

लेबनान की समृद्धि और बुनियादी ढांचा तब प्रभावित हुआ, जब लेबनान में पंद्रह वर्षों तक जारी हिंसक गृहयुद्ध ने इसके समाज और संस्थानों को नष्ट कर दिया एवं उन्हें भविष्य के लिए और अधिक असुरक्षित बना दिया। देश में 1975-90 के बीच चले गृहयुद्ध के बाद भौतिक विनाश ने आम लेबनानी की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को और अधिक दयनीय बना दिया। इसके अलावा, संकट से निपटने में सरकार की विफलता ने लेबनानी राज्य की कमजोरियों एवं दुर्बलता को उजागर किया। लंबे समय तक अस्थिरता और विनाश की स्थिति के बाद हुए शताब्दी समझौते के बाद जहां एक ओर युद्ध विराम हुआ, वहीं दूसरी ओर देश के पुनर्निर्माण के लिए अनुकूल मार्ग भी प्रशस्त हुआ।

इतिहास

लेबनान एक पश्चिम एशियाई देश है जिसकी सीमा उत्तर और पूर्व में सीरिया एवं दक्षिण में इजराइल से लगती है। इससे पहले लेबनान ग्रेटर सीरिया के नाम से जाना जाता था, जो लगभग 400 वर्षों तक तुर्क साम्राज्य का हिस्सा था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद 1918 से 1 सितंबर, 1920 तक फ्रांसीसी उपनिवेश के तौर पर सीरिया का हिस्सा रहा। छह साल बाद फ्रांस ने सीरिया से लेबनान को अलग कर दिया, जिसे लेबनान गणराज्य कहा गया, लेकिन यह फिर भी फ्रांसीसी उपनिवेश का हिस्सा रहा था। तुर्क साम्राज्य के अंतर्गत आने वाले अरब क्षेत्र के विभाजन स्वरूप फ्रांस को युद्ध की लूट के रूप में वर्तमान सीरिया और लेबनान दिया गया था। हालांकि, लेबनान एक ईसाई आबादी वाला देश था, फिर भी मुसलमान और ड्रुज भी इस क्षेत्र में थे। 1926 में फ्रांस ने लेबनान को नया संविधान दिया, जिसके तहत कॉन्फेसियनल प्रणाली को लागू किया गया और विभिन्न धार्मिक पंथों को केंद्र सरकार, विधायिका और राज्य नौकरशाही में स्थान देकर इसे एक संस्थागत स्वरूप देने का प्रयास किया गया। लेबनान में अपने प्रभाव का विस्तार करने के लिए फ्रांसीसी ने 1932 की जनगणना के आधार पर श्मैरोनाइट ईसाइयों को लेबनान में विभिन्न महत्वपूर्ण स्थानों पर बैठाया और उनका प्रयोग एक मोहरे के रूप में किया। लेबनानी राजनीतिक व्यवस्था में सांप्रदायिकता मौजूद होने के कारण लेबनान के धार्मिक पंथ ज्यादातर समय अन्योन्य राजनीतिक, जातीय श्रेष्ठता और प्रतिद्वंद्विता में शामिल रहे।

गृह युद्ध

एक खूनी गृह युद्ध जिसने लेबनान को तबाह कर दिया, उसके पीछे कई कारण थे। एडवर्ड अजार ने लेबनानी समाज में मौजूद सांप्रदायिक प्रवृत्ति को गृहयुद्ध की शुरुआत करने वाले प्रमुख कारकों में से एक के रूप में पहचाना। चार जातीय समुदाय – श्मैरोनाइट, ड्रुज, सुन्नी और शिया – अपने लोगों के लिए अधिकतम राजनीतिक और आर्थिक भागीदारी हासिल करने के लिए निरंतर प्रतिस्पर्धा कर रहे थे। एक-दूसरे के खिलाफ उनकी प्रतिस्पर्धा ने सामाजिक ताने-बाने को तनावपूर्ण बना दिया और अंततः लेबनान में विखंडन और लंबे संघर्ष को जन्म दिया। लेबनान के बाहरी संबंधों ने भी युद्ध को बढ़ाने में योगदान दिया था। सीरिया को उस देश के रूप में उद्धृत किया जा सकता है जिसने लेबनान के सांप्रदायिक ताने-बाने को बिगाड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। लेबनान के आंतरिक मामलों में सीरिया के हस्तक्षेप के पीछे मुख्य कारण इसकी भौगोलिक निकटता, लेबनान के साथ ऐतिहासिक और आर्थिक संबंध थे।

सीरिया के अलावा बड़ी संख्या में फिलिस्तीनी शरणार्थियों की उपस्थिति एक अन्य महत्वपूर्ण कारक था, जिसने लेबनान में संघर्ष को विस्तार दिया। फिलिस्तीन की उपस्थिति ने लेबनान के संघर्ष को और गहरा ही किया। इजरायल और फिलिस्तीन के बीच चले गुरिल्ला युद्ध ने सीरिया और इजराइल को इस क्षेत्र में अपना प्रभुत्व बढ़ाने के लिए प्रेरित किया और दोनों ने मिलकर लेबनानी संकट को गहरा बना दिया।

ताइफ समझौता

पंद्रह वर्षों तक चला लेबनानी संघर्ष शताब्दी समझौते पर हस्ताक्षर के साथ समाप्त हुआ। अल्जीरिया के राष्ट्रपति चादली बेंदजेदीद, सऊदी अरब के किंग फैंड और मोरक्को के राजा हसन द्वितीय की एक त्रिपक्षीय अरब लीग ने 22 अक्टूबर, 1989 को शताब्दी समझौते पर हस्ताक्षर करने में मदद की। ताइफ में युद्ध के बाद शांति निर्माण से संबंधित विभिन्न प्रावधान शामिल थे। लेकिन तीन मुद्दे – राजनीतिक सुधार, लेबनानी क्षेत्र से सभी विदेशी ताकतों की वापसी और एक नए राष्ट्रपति का चुनाव – इस समझौते के कुछ प्रमुख प्रावधान थे। ईसाई और मुसलमानों के लिए समान प्रतिनिधित्व के साथ संसदीय कर्तव्यों की संख्या 99 से बढ़ाकर 108 कर दी गई। लेबनानी राजनीतिक व्यवस्था के भीतर सदन के शिया स्पीकर के कार्यकाल को एक से चार साल तक बढ़ाने जैसे कई अन्य राजनीतिक सुधार भी पेश किए गए। विदेशी सेना की वापसी के मुद्दे के संबंध में समझौते ने निर्धारित किया कि लेबनान राज्य को सीरिया द्वारा दो साल की अवधि के लिए लेबनान के सभी क्षेत्रों पर राज्य का अधिकार स्थापित करने में मदद मिलेगी, जिसके बाद सीरियाई सैनिकों को निर्दिष्ट लेबनानी क्षेत्रों में तैनात किया जाएगा।

युद्धविराम के बाद लेबनान में शांति निर्माण की प्रक्रिया

तीन परस्पर संबंधित और अन्योन्याश्रित प्रणालियां राजनीतिक, प्रशासनिक और आर्थिक, किसी भी राज्य की सबसे महत्वपूर्ण संस्थाएं होती हैं। इन संस्थानों की दक्षता और स्थिरता राज्य की क्षमता को निर्धारित करती है। लेबनान के मामले में ये सभी संस्थान युद्ध से बुरी तरह नष्ट हो गए थे और इस तरह देश कमजोर से और कमजोर बन गया था। युद्ध के बाद के देश में आर्थिक विकास को बढ़ावा देने, सामाजिक सद्भाव एवं राजनीतिक स्थिरता स्थापित करने के लिए शांति निर्माण की प्रक्रिया को एक तत्काल आवश्यकता के रूप में महसूस किया गया। शांति निर्माण या संघर्ष के बाद का पुनर्निर्माण संघर्ष समाधान का एक हिस्सा है, जो मुख्य रूप से संघर्ष की समाप्ति के बाद के प्रयासों के तहत संघर्षों की पुनरावृत्ति या नए संघर्षों को रोकने की प्रक्रिया है।

उदारवाद और 'लस्सीज-फेयर' लेबनानी अर्थव्यवस्था की मुख्य पारंपरिक विशेषताएं रही हैं। इजराइल पर अरब द्वारा लगाए गए प्रतिबंध के परिणामस्वरूप हाइफा के बंदरगाह को बंद करने के साथ बेरूत के बंदरगाह को इस क्षेत्र में एक वैकल्पिक बंदरगाह सुविधा के रूप में विकसित किया गया था। 1960 के दशक के दौरान लेबनान के विकसित सेवा क्षेत्र ने भी अपनी अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया। चूक तेल समृद्ध अरब राज्य सेवा क्षेत्र में कमजोर थे, इसलिए लेबनान उनकी स्पष्ट पसंद बन गया। अरब राज्यों ने परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग, अनुबंध और पर्यटन जैसे विभिन्न कार्यों के लिए लेबनान को अपने सेवा केंद्र के रूप में इस्तेमाल किया। लेबनान की सफलता का श्रेय एक शिक्षित श्रम शक्ति द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं को भी दिया गया, जिसमें जबरदस्त उद्यमशीलता की भावना थी साथ ही अरब एवं पश्चिमी दोनों संस्कृति के साथ उनकी निकटता भी इसमें एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही थी। इसके अलावा, मुद्रा विनिमय नियंत्रणों की अनुपस्थिति, एक अच्छी तरह से विकसित बैंकिंग क्षेत्र, बेहतर परिवहन व्यवस्था और दूरसंचार सुविधाओं ने बेरूत में अपने पश्चिम एशियाई मुख्यालय स्थापित करने के लिए कई बहुराष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय व्यापार फर्मों को आकर्षित किया। युद्ध ने अर्थव्यवस्था के प्रमुख स्तंभों- मजबूत मुद्रा और मूल्य स्थिरता को भी नष्ट किया था। 1982 तक लेबनान का बैंकिंग क्षेत्र लगातार मुद्रास्फीति से प्रभावित नहीं था। जनवरी, 1977 में सरकार ने देश के पुनर्निर्माण के लिए अपनी पहली पहल की। पुनर्निर्माण प्रयासों को लागू करने के लिए विकास और पुनर्निर्माण परिषद (सीडीआर) का गठन किया गया था। ऐसी पृष्ठभूमि में परिवहन प्रणाली, बुनियादी ढांचे, उद्योग, स्वच्छता और दूरसंचार के विकास के लिए कई परियोजनाएं शुरू की गईं। विभिन्न स्कूलों और अस्पतालों का भी निर्माण किया गया, लेकिन बार-बार होने वाली हिंसा और लड़ाई से इन प्रयासों में बाधा उत्पन्न हुई। इसके अलावा, सरकार के पास एक व्यापक विकास रणनीति का भी अभाव था। पुनर्निर्माण गतिविधियों की विफलता के बावजूद सार्वजनिक क्षेत्र की बढ़ी हुई भागीदारी वास्तव में प्रशंसनीय थी।

सितंबर, 1992 में प्रधानमंत्री के रूप में रफीक हारीरी का चयन और उनकी पुनर्निर्माण योजना ने सभी विरोधी गुटों को युद्ध से तबाह देश के पुनर्निर्माण के लिए प्रयास करने को प्रेरित किया। लेबनान के पुनर्निर्माण के लिए एक योजना तैयार की गई थी- 'योजना-2000' जिसे बाद में 'होराइजन-2000' के रूप में जाना गया। यह आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और वित्तीय विसंगतियों के उन्मूलन के लिए 10 साल की एक विकास योजना थी, यह वहीं विसंगतियां थी, जो पहले गृहयुद्ध के प्रमुख कारकों में शामिल रही थी। 2005 तक पर्यटन क्षेत्र में विभिन्न निर्माण गतिविधियों को अंजाम दिया गया और 2000 में लेबनान से इजरायली सेना की वापसी ने उद्योग में पुनर्निर्माण प्रक्रिया के रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर कर दिया, लेकिन 2005 में हरीरी की मृत्यु ने लेबनान की अर्थव्यवस्था के प्रदर्शन पर विशेष रूप से पर्यटन क्षेत्र पर गहरा प्रभाव छोड़ा है। 1990 के दशक के उत्तरार्ध से लगभग 10 प्रतिशत सालाना की दर से बढ़ने के बाद देश में आने वाले पर्यटकों की संख्या में 11 प्रतिशत की कमी आई है।

इन वर्षों के दौरान, सरकार ने विभिन्न पुनर्निर्माण कार्यक्रम तैयार किए लेकिन उन्हें ठीक से लागू नहीं किया जा सका। लेबनानी अर्थव्यवस्था की धीमी और असंतोषजनक गति के असंख्य कारण थे। लेबनान में आर्थिक सुधारों के साथ-साथ विभिन्न राजनीतिक सुधार भी किए गए। 21 अगस्त, 1990 को बेरूत में 51 में से 48 नेशनल असेंबली डेप्युट्स की बैठक ने नेशनल असेंबली के सदस्यों की संख्या को 108 तक बढ़ाने को मंजूरी दे दी, जो समान रूप से ईसाई और मुस्लिम-डूज के बीच विभाजित है। बैठक में मंत्रिपरिषद् को निर्णयों को लागू करने के लिए कार्यकारी अधिकार देकर राष्ट्रपति के अधिकार को कम करने पर भी सहमति हुई। 1992 में जो चुनाव हुए, उनका बड़ी संख्या में अल्पसंख्यकों ने बहिष्कार किया और इन चुनावों में अधिक व्यवस्था समर्थक प्रतिनिधि चुने गए। जून में अमल और हिजबुल्लाह ने अपने कुछ मतधेदों को सुलझा लिया और दक्षिणी लेबनान के चुनावों में सहयोग करने पर सहमत हुए। अमल-हिजबुल्लाह के उम्मीदवारों ने दक्षिणी निर्वाचन क्षेत्रों में अच्छा प्रदर्शन किया। नव-निर्वाचित नेशनल असेंबली ने अमल नेता नबीह बिर्री को संसद के अध्यक्ष के रूप में चुना। स्पीकर ने रफीक अल-हरीरी को लेबनान के प्रधानमंत्री के रूप में नामित किया।

हालांकि, फिलिस्तीनी शरणार्थी के मुद्दे ने व्यवस्था पर एक और बोझ डाला। दिसंबर, 1992 में हमास (इस्लामी प्रतिरोध आंदोलन) के 415 फिलिस्तीनी सदस्यों को कब्जे वाले क्षेत्रों से दक्षिणी लेबनान के इजरायल सुरक्षा क्षेत्र में निर्वासित कर दिया। लेबनान ने निर्वासितों को लेबनानी नियंत्रित क्षेत्र में प्रवेश करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया। इजरायल के साथ फिलिस्तीनियों की झड़पों का लेबनानी राजनीतिक व्यवस्था पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। लेबनानी राजनीतिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण में हिजबुल्लाह (अप्रतिबंधित लेबनानी मिलिशिया) एक और समस्या थी। इजरायल के हवाई हमलों और बमबारी के प्रतिशोध ने राजनीतिक सुधारों के प्रयासों को कमजोर किया।

जून 2000 में दक्षिण लेबनान से इजरायल की वापसी भी हिजबुल्लाह को संतुष्ट नहीं कर सकी, क्योंकि उसने कहा कि इजरायल को अभी भी शेबा खेतों के रूप में जाना जाने वाले क्षेत्र से निकलने की आवश्यकता है। शीबा के खेतों का मुद्दा हिजबुल्लाह, सीरिया और इजराइल के बीच संघर्ष का एक और क्षेत्र बन गया। सीरिया पर क्षेत्रीय और पश्चिमी देशों द्वारा लेबनान से अपने सैनिकों की वापसी और लेबनान के आंतरिक मामलों में उसकी भूमिका को खत्म करने के लिए दबाव डाला गया, जो मई, 2000 में दक्षिणी लेबनान से इजरायल की वापसी के बाद से बढ़ रहा था। नतीजतन, जून 2001 के मध्य में सीरिया, बेरूत और इसके दक्षिणी और पूर्वी उपनगरों और माउंट लेबनान से अपने सशस्त्र बल वापस लेना शुरू कर दिया। हालांकि, लेबनान पर सीरियाई

प्रभाव जारी रहा। इसने फरवरी, 2003 तक उत्तरी लेबनान में तैनात 4000 से अधिक सैनिकों को फिर से तैनात किया। हालांकि, सीरिया की सैन्य उपस्थिति में कमी आई थी, लेकिन इसने लेबनान की घटनाओं को प्रभावित करना जारी रखा।

निष्कर्ष

देश की राजनीतिक व्यवस्था के भीतर सभी लेबनानी जातीय समुदायों को समायोजित करने की प्रक्रिया में शताब्दी समझौते ने वास्तव में देश के सांप्रदायिक विभाजन को मजबूत किया। संघर्ष के बाद शांति निर्माण के लिए बाहरी लोगों को सौंपी गई विशेष भूमिका को समझौते की प्रमुख कमियों में से एक माना जा सकता है क्योंकि इसने बाहरी लोगों को पुनर्निर्माण प्रक्रिया में लेबनान के आंतरिक मामलों के मध्यस्थ बने रहने का अवसर प्रदान किया, जिसके परिणामस्वरूप राजनीतिक अराजकता आयी। आर्थिक क्षेत्र में भी शांति निर्माण के प्रयास इससे जुड़े विभिन्न मुद्दों का समाधान करने में विफल रहे। आर्थिक सुधार के प्रयासों में स्थानीय और राष्ट्रीय हितधारक की पूर्ण भागीदारी के अभाव में पुनर्निर्माण प्रक्रिया उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं कर सकी। लेबनान के शांति निर्माण प्रयासों में विभिन्न कमियों के बावजूद इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि देश ने निस्संदेह खुद को सामान्य स्थिति में वापस लाने का प्रयास किया। हालांकि, जातीय रूप से विभाजित लेबनान का अनुभव बहुत स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि संरचनात्मक परिवर्तन के दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य के अभाव में न्याय पर आधारित स्थायी शांति एक काल्पनिक लक्ष्य ही हो सकता है। इसके अलावा, लेबनान के भीतर नागरिक समाज (सिविल सोसाइटी) को मजबूत करने की भी आवश्यकता है। अक्सर देखा गया है कि कमजोर संस्थागत परिवेश में नागरिक समाज (सिविल सोसाइटी) जनता और राज्य के बीच राजनीतिक एवं सामाजिक सामंजस्य स्थापित करने के प्रमुख कारक बन सकता है।

सन्दर्भ

- हेलेना कोबन (विंटर, 1983-1984), 'लेबनान चाइनिस् पजल', फॉरेन पालिसी, न.53, पीपी 34-48
- एडवर्ड इ. अजर (1990), द मैनेजमेंट ऑफ प्रोटेक्टेड सोशल कनफ्लिक्ट: थ्योरी एंड केसेस, यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, मिशिगन: डार्टमाउथ, पीपी 5-12
- लतीफ अबुल-हुस्न (1998), द लेबनीज कनफ्लिक्ट लुकिंग इनवर्ड, लंदन: लयनी रैंनेर पब्लिशर्स, पीपी 61-65
- काली सी. एलिस (विंटर, 1999), 'द रीजनल स्ट्रगल फॉर लेबनान', अरब स्टडीज क्वार्टरली, वॉल्यूम 21, न 1, पीपी 5-23
- हलीम बरकत (1988), टुवर्ड्स ए विएबल लेबनान, यूएसए: क्रूम हेल्म, पीपी 133-144
- ऑगस्टस रिचर्ड नॉर्टन (समर, 1991), 'लेबनान आफ्टर ताइफ: इज द सिविल वॉर ओवर?', मिडिल ईस्ट जर्नल, वॉल्यूम 45, न 3, पीपी 457-473
- दीब मैरी-जेन एंड दीब मारियस के. (1991), 'रीजनल कनफ्लिक्ट एंड रीजनल सोल्यूशन्स : लेबनान', एनल्स ऑफ अमेरिकन अकाडेमी ऑफ पॉलिटिकल एंड सोशल साइंस, वॉल्यूम 518, रेसोल्विंग रीजनल कनफ्लिक्ट : इंटरनेशनल प्रेस्पेक्टिवेस (नवंबर, 1991), पीपी 82-94
- मरौन किशवानी (1991), 'द रिहैबिलिटेशन एंड रिकंस्ट्रक्शन ऑफ लेबनान', रिमेकिंग द मिडिल ईस्ट
- पीटर वेलेंस्टीन (2007), अंडरस्टैंडिंग कनफ्लिक्ट रेसोल्यूशन: वॉर, पीस एंड द ग्लोबल सिस्टम, लंदन : सेज पब्लिकेशन्स लिमिटेड, पीपी 47-50
- एएन मीडो, प्लेबनान अप फ्रॉम द एशोज, अरामको वर्ल्ड मैगजीन, जनवरी-फरवरी 1994. कैलिफोर्निया
- द यूरोपा वर्ल्ड: लेबनान, 2003, पीपी 720-711
- हॉ-वोन जेओंग (2006), पीस बिल्डिंग इन पोस्ट कनफ्लिक्ट सोसाइटीज: स्ट्रेटेजी एंड प्रोसेस, कोलोराडो, यूएसए : लीनने रैंनेर पब्लिशर्स
- ऑगस्टस आर. नॉर्टन (1983), पॉलिटिकल वायलेंस एंड शिया फॅक्शनलिस्म इन लेबनान, मिडिल ईस्ट इन स्लिट, वॉल्यूम 3, न. 2
- डेनिस रॉस (2005), 'यूएस पालिसी टुवर्ड ए वीक असाद', द वाशिंगटन क्वार्टरली, वॉल्यूम 28, न. 3
- पेरेज किड्रोम (1997), 'इजराइल : टाइम टू पुल्ल आउट ऑफ लेबनान', मिडिल ईस्ट इंटरनेशनल, वॉल्यूम 544, 21 फरवरी, 1997
- मैथ्यू होडिए एंड कैरलाइन हर्जेल (2005), 'सिग्नल्स ऑफ रेकन्सिलिएशन : इंस्टीट्यूशन बिल्डिंग एंड द रेसोल्यूशन ऑफ सिविल वार्स', इंटरनेशनल स्टडीज रिव्यू, वॉल्यूम 7, मार्च 2005
- चार्ल्स फोस्टर (1995), 'लेबनान; द साइलेंट चॉइस', कंटेम्पररी रिव्यू, वॉल्यूम 267. अक्टूबर 1995
- एडवर्ड इ. अजर (1984), द इमरजेंसी ऑफ न्यू लेबनान, यूएसए: प्राइजर
- जॉन बलोच (1997), डेथ ऑफ ए कंट्री: द सिविल वॉर इन लेबनान, लंदन: बटर एंड टान्नर लिमिटेड
- डेरट्रे कलिंग्स (इडी.) (1994), पीस फॉर लेबनान? फ्रॉम वॉर टू रिकंस्ट्रक्शन, लंदन: लीनने रैंनेर पब्लिशर्स
- डेविड सी. गोएडेन (1983), लेबनीज नेशन इन जेओपर्डि, यूएसए : वेस्ट व्यू प्रेस

भारतीय राजनीति के बदलते दायरे और पसमाँदा आन्दोलन की उपयोगिता

डॉ० चन्द्रकांता के माथुर

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

उर्दू भाषा का एक शब्द 'पसमाँदा' जिसका शाब्दिक अर्थ है 'जो पीछे रह गया है।' पसमाँदा शब्द का प्रयोग मुस्लिम समाज में पिछड़े, शूद्र, आदिवासी, दलित आदि धर्मावलम्बी मुसलमान जातियों के लिए किया जाता है। भारत में दो प्रकार के मुसलमान पाए जाते हैं। पहले वे मुसलमान जो अरब ईरान और तुर्की मूल से ताल्लुक रखते हैं। इन्हें अशराफ या शरीफ मुस्लिम के रूप में जाना जाता है। दूसरा प्रकार उन स्वदेशी मुसलमानों का है जिनमें मुख्य रूप से हिंदू समाज के दलित और पिछड़े वर्ग से इस्लाम धर्म में खुद को परिवर्तित किया। आजादी से पूर्व हिंदू समाज के दलित और पिछड़े वर्ग के लोगों का बड़े पैमाने पर धर्मपरिवर्तन कराया गया। हिंदू समाज की संरचनात्मक विकृतियाँ और भेदभाव धर्मांतरण के लिए पूर्ण रूप से जिम्मेदार थे। इस वजह से दलित-पिछड़े समाज के तमाम पीड़ित हिंदू कभी पैसे के लालच में, जोर-जबरदस्ती, दबाव या इस्लाम में तथाकथित 'समानता' से आकर्षित होकर मुसलमान बन गए। पसमाँदा आंदोलन ऐसे ही पिछड़े मुसलमानों का शक्तिशाली आंदोलन है, जो इस्लाम धर्म की तमाम मान्यताओं को चुनौती देता है।

पृष्ठभूमि (Background)

'पसमाँदा मुस्लिम महाज', बिहार नाम से पटना में पहली बार 1998 में एक सामाजिक संगठन की स्थापना किया गया और इसके दो साल बाद व्यक्तियों की मांग पर इसको राष्ट्रीय संगठन 'ऑल इंडिया पसमाँदा मुस्लिम महाज' में बदल दिया गया। ये देखते-देखते यह नाम जन-जन के बीच काफी मशहूर हो गया। अगर पसमाँदा आंदोलन के इतिहास की बात करें तो इसकी शुरुआत संत कबीर से होता है। संत कबीर वह पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने इस्लाम धर्म में मौजूद जातिगत भेदभाव, असमानता, ऊँच-नीच आदि के खिलाफ आवाज बुलंद किया और आगे बढ़कर उन्होंने निडरतापूर्ण साहस के साथ संपूर्ण भारत में मौजूद जातिगत भेदभाव का आलोचना किया साथ ही उचित कदम उठाए। इस तरह संत कबीर मुस्लिम समाज के ही नहीं वरन् संपूर्ण भारतीय समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था के खिलाफ जाति उन्मूलन के कार्यक्रम को आगे बढ़ाते रहे। संत कबीर निडरतापूर्वक अशराफ उलेमा की भी आलोचना करते थे। लेकिन संत कबीर की आवाज और आंदोलन को कुंद करने के लिए उनके धार्मिक हैसियत को खत्म करना जरूरी समझा गया, अशराफ उलेमा संत कबीर को मुसलमान समाज के घेरे से बाहर करने की कोशिश करते हैं ताकि पसमाँदा मुसलमानों पर उनकी बात का कोई असर न हो और इस्लाम मुसलमानों में जाति व्यवस्था जस की तस बनी रहे और स्वघोषित विदेशी अशराफ उलेमा के वर्चस्व पर कोई आंच ना आए।

कई सालों के बाद संत कबीर की परंपरा को आगे बढ़ाने का काम मौलाना अली हुसैन आसिफ बिहारी (1890-1953) ने अपने हाथ से किया। उन्होंने नियमानुसार सांगठनिक रूप से एक अंतरराष्ट्रीय संगठन (जमीयतुल मोमिनीन मोमिन कांफ्रेंस) की स्थापना किए जो की ये संगठन भारत के अलावा नेपाल श्रीलंका बर्मा में तत्पत्ता के साथ कार्य कर रहा था। आसिम बिहारी से पूर्व बंगाल में फरायजी आंदोलन जो की मुख्यतः दिहाड़ी मजदूर जातियों और कृषकों का आंदोलन था जो हाजी शरीयतुल्लाह (1761.1840) मार्गदर्शन में पूर्ण विकास हुआ। इस आंदोलन में हिन्दू और इस्लाम धर्म के पिछड़े तबके के लगभग सभी दिहाड़ी मजदूर व कामगार जातियों ने बढ़चढ़ के हिस्सा लिया। फरायजी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य इस्लाम धर्म में उत्थान करना था। इस आंदोलन का दूसरा नाम 'फराइदी आंदोलन' भी था, जिसकी शुरुआत पूर्वी बंगाल में 'हाजी शरियतुल्लाह' के द्वारा किया गया। हाजी शरीयतुल्लाह के जातीय विध्वंस या उन्मूलन के इस आंदोलन में एक बड़ा वर्ग बुनकर समाज जुड़ा था। जिस कारण अशराफ लोगों जो उच्च वर्ग से आते थे उन्हें 'जुलाहों का पीर' कह कर कलंकित किया। हाजी शरियतुल्लाह का मुख्य उद्देश्य इस्लाम धर्म के लोगों को सामाजिक भेदभाव एवं शोषण से बचाना था। परंतु शरियतुल्लाह की मौत के बाद में सन् 1840 ई० में इस आंदोलन का संचालन उनके पुत्र दूदू मियाँ (1819.1862) और नोया मियाँ (1852.1884) के द्वारा संभालने पर इस आंदोलन ने क्रांतिकारी रूप अख्तियार कर लिया। दूदू मियाँ ने गांव से लेकर प्रांतीय स्तर तक प्रत्येक स्तर पर एक प्रमुख नियुक्त किया। इस आंदोलन में ऐसे क्रांतिकारियों का दल तैयार किया गया जिन्होंने हिन्दू जमींदारों एवं अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष किया। दूदू मियाँ को पुलिस के द्वारा कई बार अवरुद्ध किया गया तथा इन्हें सन् 1847 ई० में गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया जिससे आंदोलन नेतृत्वहीन हो गया। सन् 1862 ई० दूदू मियाँ की मृत्यु के बाद आंदोलन निष्क्रिय पड़ गया।

वर्ष 1972 में ही कॉमरेड मेजर इस्हाक ने एक पटकथा लिखा जिसका नाम मुसल्ली था। जिसमें मुसल्लियों के राजनैतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक और शैक्षिक परिस्थितियों को बहुत विशुद्ध रूप से वर्णित किया और पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर मुसल्लियों का विचार-विमर्श आगे आया। इस पटकथा ने

मुसल्लियों में भी एक अतिबृहत चेतन्य का संचार किया और पंजाब के मूल निवासी पहली बार भी स्वयं को सम्मानित एवं प्रतिष्ठित अनुभव करने लगे। उन्हें ये ज्ञान हुआ कि अभी तक पंजाब की जितने भी बड़े-बड़े युद्ध हुए हैं उन युद्धों में मुसल्लियों की एक बड़ा योगदान रहा है भले ही परम्परागत इतिहास में इसकी विचार-विमर्श नहीं है।

पसमांदा आंदोलन के पहले ऐतिहासिक व्यक्ति मौलाना अली हुसैन (15 अप्रैल, 1890.6 दिसम्बर, 1953) है। इन्हें आसिम बिहारी के नाम से भी जाना जाता है। अब्दुल कयूम अंसारी के जैसे ही इन्होंने भी न सिर्फ देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ाई में सम्मिलित हुए बल्कि मुसलमानों में पिछड़ों और अति पिछड़ी जातियों की आवाज भी बनने और इनकी बातों को रखने का भी काम किया। इन्हें पसमांदा आंदोलन की नींव डालने वाला माना जाता है। कलकता में एक छोटी सी नौकरी करने के साथ ही वह स्वतंत्रता आंदोलन और गरीब-मजलूम पिछड़े लोगों के लिए सियासत में भी व्यस्त थे। इसी वजह से मात्र 24 साल की आयु में ही 1914 में मौलाना आसिम ने एक चर्चा स्थल दारुल मुजाकरा प्रारंभ किया था जो की जिला नालंदा (बिहार) के मोहल्ला खाँसगंज में था। यहां उन्होंने एक पुस्तकालय का भी शुभारंभ किया था। उनका उद्देश्य था कि पसमांदा जातियों के बच्चे शिक्षा के साथ ही उन सवालों पर चर्चा में शामिल हो जो उनके जिनगी से जुड़े थे। इसके बाद जमीयतुल मोमिनीन नामक संस्था निर्मित करने का श्रेय भी मौलाना आसिम को ही जाता है जो उन्होंने इसकी शुरुआत वर्ष 1920 में किया था और इसके प्रथम बैठक में मौलाना आजाद जैसे नेता सम्मिलित हुए थे। मौलाना अली हुसैन ने उस असमानताओं को देखा था जो बार बार अशराफ मुसलमान पसमांदा समाज के लोगों के साथ व्यवहारिक रूप से किया करते थे। इन्हीं कारणों से उन्होंने पसमन्दा समाज की सभी जातियों को आगे बढ़ाने या जोड़ने का जोरदार चेष्टा जारी रखते हुए आवाज बुलंद की और 'मोमिन गजट' नाम के पत्र में उनके विचार-विमर्श और चिंतन को अत्यंत उत्तरदायित्व के साथ लिखना शुरू किया। वर्ष 1930 में मुस्लिम लेबर फेडरेशन और वर्ष 1931 में बोर्ड ऑफ मुस्लिम वोकेशनल एंड इंडस्ट्री क्लासेज की शुरुआत करते हुए कामगार पसमांदा समाज के मुस्लिमों के मुद्दे और उनकी परेशानियों को जाना समझा और उसे व्यवस्थित ढंग से लिखा भी था। उनकी इन्हीं प्रयासों का फल यह रहा था कि आने वाले कई चुनावों में 'मोमिन कॉन्फ्रेंस' के कई से व्यक्ति चुनाव जीत कर आए और पसमांदा समाज तथा उनके मसलों को लेकर विचार-विमर्श देशव्यापी स्तर तक पहुंचा।

अशराफ (उच्च जातियों के मुसलमान) द्वारा एक ओर पसमांदा समाज को मसलकफिरका के अनेक हिस्सों में बाँट कर उनकी एकता को अनेकता में छिन्न भिन्न करना और स्वयं के आत्महित पूर्ति के लिए पसमांदा समाज को 'धर्म और धार्मिक एकता' के धोखे की नीति में बांधें रखना था। आंदोलन के नेताओं के एक बड़े वर्ग को जाति विशेष (अंसारी) के महान नेता और फिर 'पूरे मुस्लिम समाज का नेता होने के झांसे' में रखने के कारण प्रथम पसमांदा आंदोलन समय से पहले ही वीरगति को प्राप्त हुआ।

जब पहला पसमांदा आंदोलन 'जमीयतुल मोमिनीन' (मोमिन कॉन्फ्रेंस) अपने मरते हुए परिस्थिति में था तब उसी काल में महाराष्ट्र से पसमांदा आन्दोलन को एक नये नेता व मार्गदर्शक शब्बीर अन्सारी के रूप में प्राप्त हुआ। जो वर्ष 1981 महाराष्ट्र राज्य मुस्लिम ओबीसी आर्गनाइजेशन (बाद में आल इंडिया मुस्लिम ओबीसी आर्गनाइजेशन) नाम का एक संगठन का निर्माण कर पसमांदा समाज की अपेक्षा को आगे बढ़ाते हुए मण्डल कमीशन को प्रयोज्य करवाने की अभियान में पसमांदा समाज का नुमाइंदा बनकर उभरा। मण्डल कमीशन प्रयोज्य होने के बाद भी महाराष्ट्र में ओबीसी की सूची में अधिकांश पसमांदा जातियों को सम्मिलित नहीं किया गया था। अन्सारी जी ने इसके लिए दृढ़तापूर्वक परिश्रम कीए पूरे देश में विभिन्न जगहों पर सम्मेलनए विरोध प्रदर्शन नियोजित किए। इस काम में उनके दो बड़े सहभागी रहे। पहले विलास सोनवाने और दूसरे फिल्म स्टार दिलीप कुमारए हालांकि एआईएमओबीसीओ पसमांदाओं के लिए 1978 से ही काम कर रहा था, लेकिन दिलीप कुमार के उनके आंदोलन से जुड़ने से संगठन को गतिवेग मिली। सरकार इस संस्था के साथ खड़े हजारों लाखों व्यक्तियों की आवाज पर विचार करने के लिए बाध्य हो गई। नतीजतन महाराष्ट्र सरकार को 7/12/1994 को एक शासनादेश जारी करके सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े मुसलमानों को ओबीसी की सूची में शामिल करना पड़ा। इस शृंखला में सरकार ने लगभग 57 अधिसूचनाएँ और शासनादेश जारी किये। उस समय पसमांदा आंदोलन की एक बड़ी उपलब्धि थी।

बीड जिला (महाराष्ट्र) के रहने वाले इकबाल पेंटर (आयु लगभग 90 वर्ष) अपने संस्था 'मुस्लिम भटके विमुक्त जाति जमाती' के द्वारा मराठवाड़ा क्षेत्र में लंबे वक्त से क्रियाशील रहे हैं। पसमांदा आदिवासी जनजातियों के उन्नति में उनकी अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है, उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'न्याय प्रतीक्षित मुस्लिम अनुसूचित जाति जमाती भटके विमुक्त समाज' जो 2015 में प्रकाशित हुई थीए उस इलाके के पसमांदा जातियों पर एक ठोस प्रलेख है जिसमें करीब करीब 70 से 80 पसमांदा (ओबीसीए एससी एसटी) जातियों की विचार-विमर्श है।

इस समय देशभर बड़े स्तर पर कई पसमांदा सामाजिक संगठन कार्य कर रहे हैं जिनमें कुछ संगठन पसमांदा जातियों को लेकर सक्रिय है तो कुछ सम्पूर्ण पसमांदा समाज के हितों को लेकर चल रहे हैं। इस क्रम में एक नाम गाजीपुर, उ०प्र० निवासी डॉ. एम० इकबाल का जुड़ता है। अपनी तमाम गुरबत, शारीरिक कमजोरियों और परेशानियों के बाद भी डॉ. इकबाल पिछले 30 वर्षों से कम्युनिस्ट, बहुजन और पसमांदा आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। उन्होंने 'मेरी आवाज सुनो' नामक पुस्तिका का लेखन किया, वे पसमांदा मुस्लिम मोर्चा के संस्थापक अध्यक्ष रहे हैं और 'पसमांदा पहल' पत्रिका के मुख्य सम्पादक हैं। इसी कड़ी में एक और नाम क्रांति-भूमि बिहार के दरभंगा निवासी डॉ० अय्यूब राईन का नाम जुड़ता है जो 2009 ई० से जर्नल ऑफ सोशल रियलिटी नामक अन्तर्राष्ट्रीय द्विभाषी रिसर्च पत्रिका की संस्थापक सम्पादक के रूप में पसमांदा विमर्श को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उठा रहे हैं। अब तक की सबसे गहन शोध पर आधारित पसमांदा दलित जातियों पर उनकी पुस्तक 'दलित मुसलमान' भाग-1 (2013) और भाग-2 (2018), पसमांदा दलित जाति पमारिया पर आधारित शोध पुस्तक 'पमारिया' (2015) प्रकशित हो चुकी है, 'अंसारी नगिना' नामक शोध पुस्तक भी प्रकशित होने वाली है। राईन जी पसमांदा दलितों के उत्थान के लिए साल 2012 ई० में गठित 'दलित मुस्लिम समाज' के संयोजक भी हैं, यही नहीं विगत दो वर्षों से उनका एक अनूठा प्रयोग 'दलित मुसलमानों का मेला' भी लगातार आयोजित हो रहा है। जिसके माध्यम से पसमांदा दलित जातियों के विमर्श को मुख्यधारा में स्थान दिलवाने की महत्वपूर्ण

कोशिश जारी है। डॉ० एजाज अली की यूनाइटेड मुस्लिम मोर्चा, शब्बीर अंसारी की ऑल इंडिया मुस्लिम ओबीसी आर्गेनाइजेशन और अली अनवर की आल इंडिया पसमांदा मुस्लिम महाज भी तमाम उतार चढ़ाव के बाद अभी भी अपनी सक्रियता बनाये हुए हैं। साथ ही साथ मरीन (समुद्री) इंजीनियरिंग के विद्यार्थी फजल सिद्दीकी, और अब्दुल्लाह मंसूर जैसे नौजवान 'द पसमांदा' एवं 'पसमांदा डेमोक्रेसी' नामक ऑनलाइन वेब पोर्टल एवम् यू ट्यूब चैनल के माध्यम से पसमांदा विमर्श को लगातार मुख्य धारा के मीडिया के केंद्र में ला रहे हैं।

राज्य का कोई धर्म नहीं (No religion of state)

पसमांदा तबके के अनुसार 'सेक्युलर' देश में 'धार्मिक-अल्पसंख्यक' का कोई औचित्य नहीं, क्योंकि राज्य का कोई धर्म ही नहीं है। फिर भारत में मुस्लिम जनसंख्या कई मुस्लिम देशों से भी ज्यादा और पाकिस्तान में मुस्लिमों की संख्या के बराबर है, तो मुस्लिम यहां अल्पसंख्यक कैसे हो सकते हैं? अशराफ मुस्लिम पर्सनल ला बोर्ड का सरकारों के विरुद्ध दबाव समूह के रूप में दुरुपयोग करते हैं, जबकि वे धोबी, नट, बक्सू, हलालखोर, नालबंद, पमरिया, भाट, कसाई आदि पसमांदा मुस्लिमों को प्रतिनिधित्व नहीं देते। अशराफ मुस्लिम समाज में सामाजिक न्याय के लिए कोई आवाज नहीं उठाते, लेकिन वहीं वे हिंदू समाज में सामाजिक न्याय के लिए बहुत फिक्रमंद रहते हैं। पसमांदा आंदोलन राष्ट्रवादी सोच पर आधारित पिछड़े और दलित मुस्लिमों का आंदोलन है। पसमांदा की रंगों में हिंदू समाज और भारत का खून दौड़ता है। त्रासदी यह कि उन्हीं की उपेक्षा कर उनके नाम पर अशराफ मुस्लिम अपनी राजनीति चमकाते हैं। पसमांदा आंदोलन तथाकथित सेक्युलर पार्टियों के लिए एक बड़ी चुनौती है। यह न केवल मुस्लिम विमर्श बदल रहा है, बल्कि एक बड़े मुस्लिम वर्ग की सोच और मतदान व्यवहार में बदलाव लाकर भारतीय राजनीति में गंभीर परिवर्तन लाने की प्रबल संभावना भी रखता है।

पसमांदा अपना मसीहा 'कबीरदास' को मानते हैं (Pasmada considers his messiah "Kabir Das")

मुस्लिम समाज में जातीयता अभी भी मौजूद है। इस्लाम अंगीकरण करने पर भी दलित और ओबीसी मुस्लिमों में हिंदू समाज की जातीय व्यवस्था समाप्त नहीं हुई है। पाकिस्तान में भी यही स्थिति है। जहांगीर अहमद ने न्यूयार्क टाइम्स में एक लेख लिखा कि पाकिस्तान के 'गुलाम कश्मीर' में एक मुस्लिम व्यक्ति जो की लोहार जाति था उसको 80 गोतियां इसलिए मारी गयी, क्योंकि उसने अपने से ऊंची जाति की लड़की के साथ विवाह कर लिया था। पसमांदा 'संत कबीरदास' को अपना मसीहा एवं परमेश्वर मानते हैं, जिन्होंने मुस्लिम समाज में व्यापक जातिवाद और ऊंच-नीच के भेदभाव के विरुद्ध आवाज बुलंद किया और उलमा का प्रतिरोध किया। उनके आवाज को दबाने के लिए अशराफ उलमा ने 'कुफ्र का फतवा' निकला और कहा कि वे मुसलमान नहीं हैं, ताकि पसमांदा मुसलमानों पर उनका प्रभाव न हो और मुस्लिम समाज में जातिगत विभेदन और नस्लीय विभेदन मौजूद रहे। पसमांदा मुस्लिमों का यह भी इलजाम है कि आजादी के बाद मौलाना आजाद ने सभी अशराफों को गोल टोपी पहनाकर शासन और प्रशासन में स्थान दिया और पसमांदा मुसलमान पीछे छूटता चला गया। पसमांदा नेताओं के अनुरूप मदरसे परिवारवाद और सामंतवाद का आधार हैं, जिसको यूजीसी जैसी संस्थान बनाकर अपने नियंत्रण में करना चाहिए।

जाति आधारित मताधिकार (Caste-based disenfranchisement)

जहां तक सामाजिक क्षेत्र का संबंध है, अली अनवर की मासावत की जंग (2000) ने मदरसों और व्यक्तिगत कानून बोर्डों, प्रतिनिधि संस्थानों जैसे सामुदायिक संगठनों में स्वयंभू अशराफ नेताओं के हाथों दलित और पिछड़ी जाति के मुसलमानों के जाति-आधारित मताधिकार का दस्तावेजीकरण किया है। (संसद और राज्य विधानसभाएं) और विभाग, मंत्रालय और संस्थान जो मुसलमानों के लिए काम करने का दावा करते हैं (अल्पसंख्यक मामले, वक्फ बोर्ड, उर्दू अकादमियां, एएमयू, जामिया मिलिया इस्लामिया, आदि)। यह पुस्तक जाति के आधार पर अपमान, अनादर और हिंसा की कहानियों को भी रेखांकित करती है, जो विभिन्न पसमांदा समुदायों को प्रतिदिन कम से कम भारत के उत्तरी भागों में झेलनी पड़ती है।

पसमांदा आंदोलन के नारे हिंदू हो या मुसलमान पिछड़ा-पिछड़ा एक समान से बदलेगी देश की राजनीति (The politics of the country will change with the slogan of Pasmada movement "Hindu or Muslim backward and equal")

जाति सिर्फ हिंदुओं की नहीं, बल्कि सम्पूर्ण दक्षिण एशिया की बीमारी है। सांस्कृतिक विभिन्नताओं के बावजूद भी जाति व्यवस्था लगभग सभी धार्मिक समूहों में पायी जाती है और ज्ञान, सत्ता, संपत्ति, संसाधन, लैंगिकता, मान-सम्मान के वितरण और संचालन में केन्द्रीय भूमिका निभाती है।

भारतीय मुसलमान भी जातीय विषमता के शिकार हैं और तीन प्रमुख वर्गों और सैकड़ों बिरादरियों में विभाजित हैं। उच्चवर्गीय मुसलमान 'अशराफ' कहलाते हैं जो या तो अपना उद्भव पश्चिम एशिया या सेंट्रल एशिया बताते हैं (सय्यद, शेख, मुगल, पठान इत्यादि) या फिर सवर्ण जातियों से धर्म परिवर्तित हैं (रांगड़ या मुस्लिम राजपूत, तगा या त्यागी मुसलमान, गाढ़े या गौड़ मुसलमान, इत्यादि)। सय्यद बिरादरी का दर्जा सबसे ऊपर है और मुसलमानों में वह ब्राह्मणों के समानांतर हैं।

मुसलमानों के अन्दर गैर-बराबरी के दर्शन को सय्यदवाद कहा जाता है और इस दर्शन और अशराफिया वर्चस्व के विरुद्ध 'अजलाफ' (शूद्र या पिछड़े मुसलमान) और 'अर्जाल' (दलित मुसलमान) तबकों के सामाजिक आन्दोलन लगभग बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से संघर्षरत हैं।

आस्था और जातीयता (Faith and Ethnicity)

पसमांदा कार्यकर्ता जिन सामाजिक एकजुटता के साथ काम करते हैं, वे विश्वास और जातीयता के बीच उलझे हुए संबंधों से गहराई से प्रभावित होते हैं। हिंदू धर्म और इस्लाम के क्षेत्र काफी जटिल हैं, कई संसाधनों और संभावित संभावनाओं के साथ-साथ विभिन्न तरीकों से, वे 'ब्राह्मणवाद' और 'अशराफवाद'

से आगे निकल जाते हैं जो समय के साथ उन्हें अधिक निर्धारित करने के लिए आए हैं। एक ओर, पसमांदा मुसलमान उच्च जाति के मुसलमानों के साथ 'मुस्लिमता' की व्यापक भावना साझा करते हैं, एकजुटता जिसे अक्सर आंतरिक जाति और मसलाक-आधारित (सांप्रदायिक) अंतर्विरोधों द्वारा सीमित कर दिया जाता है। दूसरी ओर, पसमांदा मुसलमान अधीनस्थ जाति के हिंदुओं के साथ जाति-आधारित अपमान और अनादर का अनुभव साझा करते हैं, एकजुटता जो समान रूप से उच्च-जाति संस्थानों द्वारा लगातार पुनरुत्पादित धार्मिक अंतर के आसपास के प्रवचन से बाधित होती है। चूंकि पसमांदा आंदोलन का स्पष्ट उद्देश्य अधीनस्थ जाति के मुसलमानों के जाति-आधारित बहिष्कार के मुद्दे को उठाना रहा है, इसने सभी धर्मों में जाति-आधारित एकजुटता पर जोर दिया है। जैसा कि पसमांदा मुस्लिम महाज के संस्थापक अली अनवर कहते हैं; 'पसमांदा मुसलमानों और अन्य धर्मों के पसमांदा वर्गों के बीच दर्द का एक बंधन है। दर्द का यह बंधन ही सबसे बड़ा बंधन है....इसलिए हमें दूसरे धर्मों के पसमांदा वर्गों से हाथ मिलाना पड़ता है।'

मुसलमानों में जातियों और प्रतिनिधित्व का प्रश्न (Question of castes and representation among Muslims)

मुसलमानों की कुल जनसंख्या का लगभग 15 फीसदी सवर्ण मुसलमान जो उच्च वर्ग के माने जाते हैं और बाकि बचे 85 फीसदी दलित ए पिछड़े और आदिवासी मुसलमान जिन्हें निम्न वर्ग का माना जाता हैं। 1990 के दशब्दी में बिहार से आल इंडिया बैकवर्ड मुस्लिम मोर्चा के डॉ. एजाज अली, 'आल इंडिया पसमांदा मुस्लिम महाज' के अली अनवर और महाराष्ट्र में 'आल इंडिया मुस्लिम ओबीसी आर्गनाइजेशन' के शब्बीर अंसारी जैसे लोगों के संगठनों ने इस्लाम के भीतर जाति विध्वंस के सामाजिक आंदोलनों को नया गति दिया।

धर्मनिरपेक्षता बनाम सांप्रदायिकता और उपेक्षित पसमांदा (Secularism vs communalism and neglected Pasmandas)

धर्म की धुरी के चारों ओर व्यवस्थित राजनीति अक्सर ब्राह्मणवादी और सैन्यवादी ताकतों द्वारा अपने हितों और सामाजिक प्रभुत्व की रक्षा के लिए नियोजित की जाती है। मॉब लिंग और सांप्रदायिक दंगों की घटनाओं को अक्सर इन ताकतों द्वारा प्रायोजित किया जाता है ताकि अधीनस्थ जाति समुदायों को भावनात्मक मुद्दों के जाल में फंसाया जा सके, जिससे बाद के सामाजिक और आर्थिक उत्थान के अधिक दबाव वाले मुद्दों को दबा दिया जा सके।

एक तरह से हिंदू और मुस्लिम सांप्रदायिक ताकतें एक-दूसरे की मदद करती हैं और एक-दूसरे का पेट भरती हैं। लगभग सभी साम्प्रदायिक घटनाओं में पीड़ित लगभग हमेशा अधीनस्थ जातियाँ होती हैं जबकि लाभार्थी अगड़ी जाति के वर्ग होते हैं। यह कुछ हद तक हैरान करने वाली बात है कि सैकड़ों जातियों और समुदायों में विभाजित आबादी सांप्रदायिक घटनाओं और दंगों के दौरान तेजी से 'हिंदू' और 'मुस्लिम' में बदल जाती है।

देश की राजनीति में कहाँ है : मुसलमानों की 85 फीसदी पसमांदा आबादी (Where is the country's politics 85 percent of the Pasmanda population of Muslims)

2019 के लोकसभा चुनाव में पसमांदा मुसलमानों के प्रतिनिधित्व को लेकर सवाल उठ रहे हैं। एक विश्लेषण के अनुसार पहली से चौदहवीं लोकसभा तक चुने गए 7,500 प्रतिनिधियों में से 400 मुस्लिम थे। जिनमें से 340 अशरफ (उच्च जाति) समुदाय के थे। पसमांदा पृष्ठभूमि से केवल 60 मुसलमान चौदह लोकसभाओं में चुने गए हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार, मुसलमान भारत की आबादी का लगभग 14.2 प्रतिशत हैं। इसका मतलब है कि अशरफों की देश की आबादी में 2.1 फीसदी हिस्सेदारी होगी। लेकिन लोकसभा में उनका प्रतिनिधित्व करीब 4.5 फीसदी था। दूसरी ओर, जनसंख्या में पसमांदा की हिस्सेदारी लगभग 11.4 प्रतिशत थी और फिर भी संसद में उनका प्रतिनिधित्व मात्र 0.8 प्रतिशत था।

मुसलमानों में जातिभेद पर क्या कहते हैं विचारक (What do the thinkers say on caste discrimination among Muslims)

मान्यवर कांशीराम ने एक बार भारतीय मुसलमानों के साथ काम करने के अपने अनुभव के बारे में बताया: 'मैंने सोचा कि मुसलमानों से उनके नेतृत्व के माध्यम से संपर्क करना बेहतर होगा। लगभग 50 मुस्लिम नेताओं से मिलने के बाद मैं उनके ब्राह्मणवाद को देखकर चकित रह गया। इस्लाम हमें समानता स्थापित करना और अन्याय के खिलाफ संघर्ष करना सिखाता है लेकिन मुसलमानों के नेतृत्व में सैन्य, शोख, मुगल और पठान जैसी तथाकथित उच्च जातियों का वर्चस्व है। बाद वाले नहीं चाहते कि अधीनस्थ मुस्लिम जातियाँ जैसे, अंसारी, धुनिया, कुरैशी अपने स्तर पर उठें...मैंने केवल उन मुसलमानों को तैयार करने का फैसला किया जो नेतृत्व के लिए हिंदू एससी समुदायों खपसमांदा मुस्लिम, से परिवर्तित हुए थे (सतनाम सिंह, कांशी राम की नेक कामाई जिने सोती कौम जगई, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 132)। यहाँ तक कि अम्बेडकर और राम मनोहर लोहिया ने भी मुस्लिम समाज के भीतर जातिवाद को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है।

डॉ अम्बेडकर इस प्रकार कहते हैं: 'जाति व्यवस्था को ही लीजिए। इस्लाम भाईचारे की बात करता है। हर कोई यह निष्कर्ष निकालता है कि इस्लाम को गुलामी और जाति से मुक्त होना चाहिए। गुलामी के बारे में कुछ भी कहने की जरूरत नहीं है। यह अब कानून द्वारा समाप्त कर दिया गया है...लेकिन अगर गुलामी चली गई है, तो मुसलमानों के बीच जाति बनी हुई है....इस प्रकार कोई संदेह नहीं हो सकता है कि भारत में मुस्लिम समाज हिंदू समाज के समान सामाजिक बुराइयों से पीड़ित है।'

1901 की जनगणना रिपोर्ट के आधार पर, डॉ. अम्बेडकर ने दलित मुसलमानों के बारे में कहा: 'उनके साथ, कोई अन्य मुसलमान संबद्ध नहीं होगा, और उन्हें मस्जिद में प्रवेश करने या सार्वजनिक कब्रगाह का उपयोग करने की मनाही है।' हिंदुओं के बीच जाति का मुकाबला करने के लिए सामाजिक सुधार

आंदोलनों के विपरीत डॉ अम्बेडकर को लगता है कि: 'मुसलमान....यह नहीं समझते कि वे बुराई हैं और फलस्वरूप उन्हें हटाने के लिए आंदोलन नहीं करते हैं। वास्तव में वे अपनी मौजूदा प्रथाओं में किसी भी बदलाव का विरोध करते हैं'-

निष्कर्ष (Conclusion)

भारत में 'अल्पसंख्यक' और 'बहुसंख्यक' समुदायों की धारणा-मुख्य रूप से धार्मिक पहचान के संदर्भ में पढ़ी जाती है। आधुनिक मूल की है और एक आधिपत्य वाले धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र-राज्य परियोजना के उद्भव और समेकन से जुड़ी हुई है। इस अर्थ में, जबकि 'धर्मनिरपेक्ष' राष्ट्रवाद वैध शक्ति और हिंसा का ठिकाना बन जाता है, हिंदू और इस्लामी राष्ट्रवाद अवैध शक्ति के स्थल बन जाते हैं। साम्प्रदायिक दंगों या 'हिंदू' 'इस्लामिक' आतंक के इर्द-गिर्द जो हाल ही में 9/11 के बाद की दुनिया में लगातार इस वैचारिक ढांचे के भीतर लड़े गए प्रतीत होते हैं, वे सभी धर्मों में अधीनस्थ जाति समुदायों की आवाज को नकारने में सहायक रहे हैं। क्रमशः 'धर्मनिरपेक्ष', हिंदू या मुस्लिम अभिजात वर्ग के हितों को सुरक्षित करने में। इस अर्थ में, पसमांदा अभिव्यक्ति ने बहुसंख्यकवादी और अल्पसंख्यक कट्टरवाद की सहजीवी प्रकृति को उजागर किया है और पूर्व के खिलाफ एक निर्णायक लड़ाई जीतने के लिए उत्तराद्ध को भीतर से लड़ने की मांग की है। जैसा कि एक पसमांदा कार्यकर्ता वकार हवारी कहते हैं: 'जबकि इमाम बुखारी और सैयद शहाबुद्दीन जैसे मुस्लिम राजनेता जोड़ ख्स्टार्टर योगर्ट, जोड़ते हैं, यह सांप्रदायिकता का दही तैयार करने के लिए हिंदू कट्टरपंथियों पर छोड़ दिया जाता है। ये दोनों जिम्मेदार हैं। हम हिंदू और मुस्लिम दोनों कट्टरता की राजनीति का विरोध करते हैं।'

संदर्भसूचि (Reference)

1. Ansari, K. A. (2019, May 14). India's Muslim community under a churn: 85% backward Pasmandas up against 15% Ashrafs. ThePrint. Retrieved June 12, 2022, from <https://theprint.in/opinion/indias-muslim-community-under-a-churn-85-backward-pasmandas-up-against-15-ashrafs/234599/>
2. The Hindu. (2016, November 5). Muslims that 'minority politics' left behind. Retrieved June 12, 2022, from <https://www.thehindu.com/opinion/lead/Muslims-that-minority-politics-left-behind/article12076617.ece>
3. ईतदह प्दकपण (2021ए श्रनदम 3)ण पसमांदा आंदोलन का संक्षिप्त इतिहास. SabrangIndia. Retrieved June 12, 2022, from <https://hindi.sabrangindia.in/article/brief-history-of-pasmanda-movement>
4. शेख A. S. अ (2021, August 12), पसमांदा आंदोलन के प्रणेता रहे अब्दुल कय्यूम अंसारी और मौलाना अली हुसैन. फॉरवर्ड प्रेस. Retrieved June 12, 2022, from <https://www.forwardpress.in/2021/08/history-pasmanda-movement-hindi/>
- 5ण अंसारीख.अ. (2019, डल 7). पसमांदा आंदोलन के नारे 'हिंदू हो या मुसलमान पिछड़ा-पिछड़ा एक समान' से बदलेगी देश की राजनीति. ThePrint Hindi. Retrieved June 12, 2022, from <https://hindi.theprint.in/opinion/slogan-of-pasamanda-movement-will-change-country-politics/59893/>

स्त्री विमर्श की ऐतिहासिकता

डॉ० सविता उपाध्याय

एसो. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कन्या महाविद्यालय, भूड़, बरेली, सम्बद्ध-एम. जे. पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, 243005 उ०प्र०

स्त्री विमर्श उस साहित्यिक आंदोलन को कहा जाता है जिसमें स्त्री अस्मिता को केंद्र में रखकर संगठित रूप से स्त्री साहित्य की रचना की गई। हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श अन्य अस्मितामूलक विमर्शों के भांति ही मुख्य विमर्श रहा है जो की लिंग विमर्श पर आधारित है। स्त्री विमर्श को अंग्रेजी में फेमिनिज्म कहा गया है। शुरुआत में हिंदी में इसके लिए नारीवाद या मातृसत्तात्मक शब्द प्रचलन में रहा है।

किसी समाज के सुसंस्कृत होने की पहचान नारी से ही होती है। जब-जब नारी का गौरवमय स्थान अपनी महत्ता छोड़ने लगता है, तब-तब नारी ने उस महत्ता को प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया है, यही संघर्ष नारी मुक्ति का रूप ले लेता है। यहाँ नारी मुक्ति से हमारा तात्पर्य पुरुषी मानसिकता के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल बजाना है, न कि घर गृहस्थी की दीवारों में दरारें डालना, बल्कि नारी को उसका सम्मानित दर्जा दिलाना है।

प्राचीन काल (वैदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल) से स्त्री की स्थिति का अध्ययन अपेक्षित है।

वैदिक काल:-

भारत के अतीत का काल विभाजन अत्यन्त मतभेद पूर्ण है। समाजशास्त्री और इतिहासज्ञ काल निर्णय को लेकर मतैक्य स्थापित नहीं कर पाए हैं। वैदिक काल के सम्बंध में भी विद्वानों के अनेक मत हैं।

“विद्वानों में परस्पर उग्र मतभेद होने पर भी वैदिककाल का समय 2000 से 8000 ई. पूर्व तक मानना अनुचित न होगा। इसी काल में चारों वेदों, ब्राह्मणों उपनिषदों तथा आरण्यकों की रचना हुई। कालांतर में वैदिक संस्कृति सिंधु और गंगा-जमुना के दोआब से बढ़ती-बढ़ती प्रायः सारे देश में छाई।”

वेदकालीन समाज व्यवस्था पितृसत्तात्मक थी, घर का वयोवृद्ध पुरुष घर का व्यवस्थापक होता था। वेदों तथा उपनिषदों आदि के अध्ययन के आधार पर भारतीय नारी की जो स्थिति सामने आती है वह अन्य देशों की तुलना में उत्कृष्ट श्रेणी की है। यद्यपि समाज में उन्हें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था फिर भी पुत्र जन्म को ही प्रसन्नता का विषय माना जाता था।

पुत्री के जन्म पर यद्यपि प्रसन्नता का अभाव होता था किन्तु पालन-पोषण उनका भी उचित प्रकार से किया जाता था। उनके विकास की उपेक्षा नहीं की जाती थी। शिक्षा आरंभ के निमित्त कन्याओं का भी उपनयन संस्कार किया जाता था।

वेदों का अध्ययन करने वाली स्त्रियाँ ब्रह्मवादिनी कहलाती थी। वेद अध्ययन के साथ-साथ ये अध्यापन तथा यज्ञकर्म भी करवाती थीं।

“ऋग्वेद के अनेक सूत्रों की रचना इन ऋषिकाओं या ब्रह्मवादिनियों द्वारा की गई है। घोषा, लोपामुद्रा, शचीमोलोमी, वाग्भणी, विश्वंभरा आदि प्रसिद्ध नामों में से कुछ कवयित्रियाँ थीं, कुछ शास्त्रज्ञ।”

स्त्रियाँ पुरुषों के समान शास्त्र विद्या भी सीख सकती थीं तथा युद्धों में भाग भी ले सकती थीं।

पुत्र न होने की स्थिति में पुत्री ही पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी मानी जाती थी। “वैदिक समाज में सम्पत्ति का स्वरूप कैसा होगा, इसका स्पष्ट विवरण न मिलने के कारण उत्तराधिकार के बारे में अधिक जानकारी जुटाना कठिन है, परन्तु ‘निरुक्त’ में यास्क ने यह स्पष्ट उल्लेख किया है कि पुत्र न होने पर पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी पुत्री को ही माना जाएगा। पति द्वारा पत्नी को भेंट देने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। वैदिक युग के उपलब्ध विवरणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पितृसत्तात्मक परिवार के ढाँचे के अन्तर्गत स्त्री को यथासंभव ऊँचा स्थान दिया गया था।”

बाल विवाह का प्रचलन नहीं था।

ब्रह्मवादिनियों के लिए भी आजीवन ब्रह्मचर्य धारण कठोर नियम नहीं था। इच्छा होने पर ये गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सकती थीं।

“किन्तु ये ब्रह्मचारिणी कन्याएँ जीवन के भौतिक सुखों के संधान से एकदम विरत रखी गयी हों ऐसा भी नहीं है:-

जीवं रूदन्तिवि मन्यन्ते अध्वरे दीर्घा मनुप्रसीति दीधियुनरः

वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरेमयः पतिभ्योः जनयः परिष्वजे।

जो भी कोई ब्रह्मचारिणी नारी लक्षणों से संपन्न होकर कमनीय वर की इच्छा करे, उसे उसकी मनोदशा के अनुकूल वर मिले।”

ससुराल में वधु को पूरा मान-सम्मान प्राप्त था। सिर्फ पति ही नहीं बल्कि घर के प्रत्येक सदस्य से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे स्त्री को ऐसा अनुकूल परिवेश प्रस्तुत करें जिसमें उसका सर्वमुखी विकास हो सके। पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था।

“पदा-प्रथा अस्तित्व में ही नहीं थी, इसका संकेत सूर्या सूक्त की तैत्तिरीय ऋचा में है, जहाँ वर स्वयं अपनी पत्नी को देखने का आग्रह और लोगों से करता है।”:-

सुमङ्ग लीरियं वधूरिमां समेत पश्यत्।¹⁵

सती प्रथा का अस्तित्व नहीं था।

“सस्कारों” के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट है कि सती-प्रथा तो अस्तित्व में नहीं थी, विधवा-विवाह का भी प्रावधान था। अथर्ववेद संहिता में तो एक पूरा कांड ही इस विषय पर प्रकाश डालता है।

मृत व्यक्ति की पत्नी शोकाभिभूत-सी चिता पर जा लेटती भी थी तो बाद में अन्य संबंधियों द्वारा उसे वहाँ से हटा दिया जाता था। इतना ही नहीं, इसके बाद उसका पुनर्विवाह भी हो जाता था, जैसा कि अथर्ववेद संहिता (18/3/1-2) से स्पष्ट है।¹⁶

विधवा विवाह भी स्वीकृत था।

विधवा विवाह के अतिरिक्त नियोग प्रथा का भी प्रचलन था, जिसमें स्त्री पति के भाई या निकट सम्बन्धी से यौन सम्बन्ध स्थापित करती थी, जिसका हेतु संतानोत्पत्ति मात्र था।

“नियोग से उत्पन्न पुत्र या सामाजिक विवाह के परिणामस्वरूप प्राप्त पुत्र में किसी प्रकार का भेदभाव रखा जाता होगा, ऐसे साक्ष्य नहीं मिलते।”

बहुपत्नी प्रथा नहीं थी। विवाह-विच्छेद को हीन-दृष्टि से देखा जाता था। ऐ मात्र ग्रन्थ ‘कौटिल्य के अर्थशास्त्र’ में विवाह-विच्छेद के प्रावधान की चर्चा करने वाला एकमात्र ग्रन्थ है।

3/2/17-19 में कौटिल्य कहते हैं कि जब स्त्री-पुरुष दोनों एक दूसरे से द्वेष करते हों तो उन्हें अलग किया जा सकता है।¹⁸

समाज में स्त्री को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वह आत्मविश्वास से भरी हुई थी। “वैदिक काल में स्त्रियों के मुक्त विचरण में बाधाएँ नहीं होंगी ऐसा प्रतीत नहीं होता। उस युग में सामाजिक एवं सार्वजनिक अवसरों पर स्त्रियों की उपस्थिति एक सामान्य बात थी।”¹⁹

धार्मिक क्षेत्र में भी स्त्रियों को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। पति का यज्ञ-अनुष्ठान पत्नी के साथ बैठने पर ही पूर्ण माना जाता था।

“धार्मिक जीवन में स्त्री का स्थान गौण नहीं था, ऐसे प्रमाण जगह-जगह पर प्राप्त होते हैं। सामवेद की ऋचाएँ तो मात्र स्त्रियाँ ही गातीं, पति यदि विदेश गए हों तो दैनिक धार्मिक क्रियाएँ करने का उत्तरदायित्व स्त्रियों पर ही रहता। सीता भाग, रूद्रबलि तथा रूद्रयोग ऐसे यज्ञ करने का अधिकार स्त्रियों को था।”¹⁰

उत्तर वैदिक काल:-

उत्तर वैदिक काल का समय विस्तार लगभग एक हजार वर्षों का है।

“उस युग की काल गणना महामहोपाध्याय काणे के मतानुसार ईसा से 800 पूर्व से लेकर ई. सन् 200 तक अर्थात् एक हजार वर्ष के लंबे फलक पर फैला हुआ है।”¹¹

वैदिक काल के बाद स्त्री की स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए। वैदिक युग में उसे पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। बालकों के समान बालिकाओं का भी उपनयन संस्कार किया जाता था। किन्तु उत्तर वैदिक काल में यह बंद कर दिया गया। उपनयन संस्कार का समावेश विवाह विधि में कर लिया गया, अतएव स्त्री हेतु विवाह हेतु अनिवार्य कर दिया गया।

“उपनयन संस्कार का हेतु अब विवाह विधि द्वारा सिद्ध हो जाता है, पतिसेवा गुरुसेवा के समान है और गृहस्थी का कार्य यज्ञ के समान है।”¹²

उत्तर वैदिक काल में स्त्री की स्वतंत्रता धीरे-धीरे समाप्त हो गई। उसके लिए पराधीनता-सूचक विधि विधान आरंभ हो गए। इसी समय “मनुस्मृति” की रचना हुई।

“इसकाल का विशेष महत्त्व इस कारण है कि स्मृतिकार मनु ने इसी काल में हिन्दू समाज के लिए नियमों का ऐसा लौह ढांचा बनाकर स्थापित कर दिया जो अठाहरवीं शताब्दी के अन्त तक अटल रहा।”¹³

“मनुस्मृति” में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया गया है। ये प्रकार हैं-ब्रह्म, देव, प्रजापत्य, आर्ष, गांधर्व, असुर, राक्षस, और पैशाच। इन सभी विवाह प्रकारों में एक मात्र गान्धर्व विवाह में ही स्त्री की सहमति देखने को मिलती है, अन्य सभी विवाह प्रकारों में स्त्री एक वस्तु से अधिक प्रतीत नहीं होती है।

“वर-चयन के संदर्भ में स्त्रियों की स्वतंत्रता सीमित क्यों थी-यह एक बड़ा प्रश्न है। विवाह के साथ इतने भौतिक-आधिभौतिक प्रयोजन जुड़े हुए माने गए हैं, पति-पत्नी के सम्मिलित दायित्व इस लोक और उस लोक दोनों में इतने संधनित कहे गए हैं-फिर भी वर-वधू का मानसिक नैतिक स्तर एक रहे, इस पर अधिक जोर नहीं दिया गया।”¹⁴

हिन्दू धर्म रूढ़िवाद तथा कर्मकाण्ड के विस्तार ने स्त्री व शूद्र को निम्न स्थान दिया गया। विधवा विवाह को हीन दृष्टि से देखा जाने लगा, इसी काल में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ। हिन्दू धर्म में उपेक्षा का शिकार होने के कारण स्त्री स्वाभाविक रूप से बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित हुई।

“वेद कालीन धार्मिक स्वतंत्रता की चेतना फिर एक बार इस काल में दृष्टिगत होती है। बौद्ध धर्म की स्थापना के छः वर्ष बाद ही बुद्ध के पट्ट शिष्य आनंद के अथक प्रयास से भिक्षुणियों को भी संघ में प्रवेश की अनुमति मिली।”¹⁵

बौद्ध युग के पश्चात् पुराण युग में स्त्री की स्थिति अत्यन्त पराधीन बना दी गई। पुराण युग के पश्चात् भारत पर एक ओर मुसलमानों का आक्रमण हुआ तथा दूसरी ओर भक्ति सम्प्रदाय का उद्भव हुआ। इन सब का स्त्री की स्थिति पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

मध्यकाल:-

मध्यकाल का समय लगभग 750 ई. से लेकर 1761 ई. तक माना जाता है।

“यह भारतीय मध्ययुग सातवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक अर्थात् यूरोपीय मध्ययुग की भाँति लगभग एक हजार वर्षों तक विद्यमान रहा।”¹⁶

मध्यकालीन समाज में सामन्ती व्यवस्था थी। इस युग तक आते-आते स्त्री का सम्मान धराशायी हो गया उनके अधिकार छिन गए।

“आठवीं शताब्दी के आरम्भ से अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ तक (यानि मुहम्मद बिन-कासिम के आक्रमण से लेकर मुगल साम्राज्य के पतन तक भारत में मुस्लिम हमलों व मुस्लिम राज्य के प्रभाव से हिन्दू स्त्रियों पर अनेकानेक सामाजिक बंधन लगे।”¹⁷

स्त्री की स्थिति में क्रमशः गिरावट आने के कारण उसकी शिक्षा का स्तर भी निम्न होता चला गया। वैदिक काल में जहाँ भारतीय स्त्री पूर्ण शिक्षित व विदुषी थी, शास्त्र व शास्त्र दोनों ही विधाओं में पारंगत थी वहीं मध्यकाल में वह पुरुष के उपयोग व उपभाग का साधन मात्र बना दी गई।

“शास्त्रार्थ करने वाली विदुषी महिला धीरे-धीरे अशिक्षा के अंधकार में चली गई। आम स्त्री स्वतंत्र प्रेम व चुनाव का अपना अधिकार खोकर मानसिक गुलामी व शारीरिक शोषण का शिकार हुई।”¹⁸

समाज में जैसे रूढ़िवादिता बढ़ती गई, विकास की गति अवरुद्ध होती गई, नियम कठोर होते गए तथा अनेक कुप्रथाएँ उत्पन्न होती गईं।

इस सामन्ती समाज व्यवस्था में स्त्री व पुरुष के लिए अलग मानदण्ड निर्धारित थे। स्त्री की स्थिति क्रमशः दयनीय होती गई। सामाजिक-व्यवस्था संतुलित नहीं थी। पुरुष को सब कुछ करने की स्वतंत्रता थी व स्त्री को सब कुछ सहन करने के लिए बाध्य होना पड़ता था। स्त्री की दुनिया घर तक सीमित थी। अतः वह उपार्जन भी नहीं कर सकती थीं और न ही उन्हें संपत्ति में अधिकार प्राप्त था। उसे कैदियों के समान घर के आंतरिक भागों में रखा जाता था। मुगल-शासकों के महलों में स्त्री के रहने वाले भाग को हरम कहा जाता था। हरम में अधिक से अधिक संख्या में स्त्रियों का होना राजा के लिए प्रतिष्ठा की बात समझी जाती थी।

“मध्यकाल का यह सामन्ती युग औरत और शराब के लिए प्रसिद्ध है। मुस्लिम शासकों के हरम में (अपवाद रूप में औरंगजेब को छोड़कर) सुंदर रखैलें भरी रहती थी। यूनानी आक्रमण के बाद यूनानी महलों से यह परम्परा भारत आई।”¹⁹

स्त्री को पहले तो घर से निकलने ही नहीं दिया जाता था और यदि कभी निकाला भी जाता तो उसका मुँह ढक दिया जाता था। उसके लिए अलग से मीना बाजार लगाए जाते थे, जहाँ वह अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीद सकती थी।

“महिलाओं के लिए परदे के भीतर ‘मीनाबाजार’ लगते थे। उन बाजारों में राजा, नवाब और कुछ चुने हुए जागीरदार ही जा सकते थे और ये लोग सुंदरियों के चुनाव के उद्देश्य से ही वहाँ जाते थे।”²⁰

मुगलकाल में दरबारों में नर्तकियाँ व गणिकाएँ भी रखी जाती थीं। ये गणिकाएँ मनोरंजन के उद्देश्य से ही रखी जाती थीं। ये भी अपनी इच्छा से स्वतंत्र जीवन नहीं जी सकती थीं न ही अपनी इच्छा से किसी के साथ यौन सम्बन्ध रख सकती थीं।

“मुगल दरबारों में नृत्य गायन के लिए बड़ी संख्या में स्त्रियाँ नियुक्त थीं। ये महिलाएँ हर किसी के साथ यौन-सम्बन्ध रखने को स्वतंत्र न थीं। बल्कि राज्य-संरक्षण में प्रत्येक को किसी एक अभिजात पुरुष के साथ सम्बन्धित किया गया था।”²¹

इस काल में राजपूतों के महलों में दासियों व गोलियों की प्रथा भी थी। ये दासियाँ या तो रानियों को दहेज में मिलती थीं या राजाओं को युद्ध में प्राप्त होती थीं।

“इसी काल में राजपूती महलों में भी रानियों के साथ दहेज में आई या राजपूतों को युद्ध में प्राप्त बड़ी संख्या में दासियों तथा गोलियों का उल्लेख मिलता है। राजपूती रनिवासों में इन्हें लेकर मुगल शासकों से अलग एक विशिष्ट परम्परा पनपी जिसके अपने कायदे-कानून थे।”²²

मध्य काल में स्त्री की स्थिति समय के साथ गिरती ही चली गई। मुगल शासन के काल में जो राजनर्तकियाँ थीं वे बाद में वेश्या बनने को विवश हो गईं। इस प्रकार धीरे-धीरे यह एक व्यवसाय का रूप लेने लगा।

वह समाज व परिवार में पूर्णतः उपेक्षित थी। उसे किसी भी शुभ कार्य में सम्मिलित नहीं किया जाता था। अनेक कठोर नियमों के पालन हेतु बाध्य किया जाता था। सर्वाधिक दुखद स्थिति बाल-विधवा की थी, जिसे न तो विवाह का अर्थ पता होता था और न ही वैधव्य का। विधुर पुरुष को पुनर्विवाह की स्वतंत्रता थी, स्त्री वैधव्य झेलती हुई जीने को अभिशप्त थी।

“अग्निपुराण तथा नारद और पाराशर स्मृतियों के अनुसार, स्त्रियों का पुनर्विवाह या विधवा विवाह पति के लापता होने पर, मृत्यु पर, सन्यासी होने पर या जाति-बहिष्कृत होने पर संभव था। किंतु मेधातिथि ने (मनु 8-225) पुनर्विवाह या विधवा विवाह के विरुद्ध मत व्यक्त किया है।”²³

आधुनिक काल:-

आधुनिक काल 1850 ई. के आस-पास से आरम्भ माना जाता है और यही भारतीय पुनर्जागरण का भी काल है। इस समय में दो संस्कृतियाँ एक-दूसरे के संपर्क में आईं। पहली परम्परागत भारतीय संस्कृति है और दूसरी अंग्रेजों द्वारा लाई गई यूरोपीय संस्कृति। पुनर्जागरण के मूल में इन दोनों संस्कृतियों की टकराव है।

“आधुनिक काल में भारत भूमि पर संपर्कित होने वाली दोनों संस्कृतियाँ एक-दूसरे के विसदृश थीं। योरोपीय संस्कृति नई वैज्ञानिक सभ्यता और चिन्तन-धारा पर आधारित थी, जबकि परंपरित भारतीय संस्कृति धर्म और अध्यात्म प्रधान थी। इस टकराहट से विशिष्ट सांस्कृतिक ऊर्जा उत्पन्न हुई जिसे हम भारतीय पुनर्जागरण का नाम देते हैं।”²⁴

अंग्रेजी शासन के कारण भारत में नई राजव्यवस्था तो आई ही, साथ ही नई आर्थिक रचना और विचारधारा भी आई।

औद्योगीकरण, उपभोक्तावाद, उदारीकरण मध्य वर्ग का उदय ये भी आधुनिक युग की विशेषताएँ हैं।

कृषि प्रधान देश भारत में औद्योगीकरण उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आरंभ हुआ। इसके परिणामस्वरूप अनेक औद्योगिक नगरों का विकास हुआ, जैसे-कलकत्ता, मद्रास, अहमदाबाद, कानपुर, जमशेदपुर आदि। उद्योगों के विकास से अनेक क्षेत्रों में राष्ट्र की आत्म-निर्भरता बढ़ी। देश आर्थिक रूप से अधिक सबल हुआ।

औद्योगीकरण का एक परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण समुदाय के जो कृषक एवं श्रमिक उत्पादन के कार्य में जुटे थे, वे धीरे-धीरे नगरों की ओर पलायन करने लगे। पारिवारिक व सामाजिक जीवन भी इन स्थितियों से प्रभावित हुआ।

औद्योगीकरण का आधार विज्ञान एवं तकनीकी है। विज्ञान एवं तकनीकी के युग में मनुष्य अध्यात्म से दूर होता गया और भौतिकता की ओर प्रवृत्त हुआ। बढ़ती भोग-प्रवृत्ति ने मनुष्य को स्वार्थी बनाया, जिससे पारिवारिक व सामाजिक विघटन होने लगे। आत्मा गौण व शरीर प्रधान हो गया, परिणामस्वरूप नैतिकता का हास हुआ। स्त्री और पुरुष दोनों का चारित्रिक पतन हुआ।

औद्योगीकरण के फलस्वरूप पूँजीवाद का उदय हुआ। इसमें पूँजी का महत्त्व भूमि से अधिक हो गया। पहले भू-स्वामी उच्च वर्ग का प्रतिनिधि होता था और श्रमिक निम्नवर्ग का। अब अनेक भू-स्वामी अपनी भूमि-संपत्ति खोकर कुछ नीचे आ गए तथा अनेक श्रमिक उद्योग के सहारे धनार्जन कर अपनी स्थिति से ऊपर उठ गए। इस प्रकार, मध्य-वर्ग का उदय हुआ।

उद्योग के फलस्वरूप बाजार बढ़ा और उपभोक्तावाद का उदय हुआ। उपभोक्तावादी संस्कृति अनेक प्रकार के उत्पाद निर्मित करने व बेचने में विश्वास रखती थी। चूँकि उत्पाद बनाने हैं और बेचने हैं, इसीलिए इस तरह का वातावरण तैयार किया जाता है, जिसमें व्यक्ति उत्पाद को खरीदने को लालायित हो।

उत्पाद को बेचने के लिए अनेक विज्ञापन बनाए जाते हैं, जिनका प्रसारण रेडियो, दूरदर्शन, समाचार पत्र-पत्रिकाओं आदि के माध्यम से किया जाता है।

इसी युग में उदारवादी विचारधारा के अनेक लक्षण दिखाई पड़ने लगे। इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं-करार (एग्रीमेंट) बुद्धि की प्राथमिकता तथा वैयक्तिक स्वातंत्र्य, जाति का महत्त्व घटा। जाति, जन्म या लिंग के आधार पर किसी को महत्त्वपूर्ण या महत्त्वहीन मानना उदारवादी विचारधारा के विरुद्ध है। रीति-रिवाज, रूढ़ि-परम्परा आदि का अंधानुकरण करने की अपेक्षा बुद्धि और तर्क की कसौटी पर खरी उतरने वाली परम्परा का पालन ही उदारवाद के अंतर्गत उचित समझा जाता है। अंधभक्ति, अंधविश्वास तथा अंधानुकरण उदारवाद खंडन करता है। इसकी एक और विशेषता है-वैयक्तिक स्वातंत्र्य। प्रत्येक व्यक्ति को अपना स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार है। तथा किसी भी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप का अधिकार नहीं है। ये सारी स्थितियाँ स्त्रियों के हित में हैं। अतः उदारवादी विचारधारा के प्रभाव से स्त्री को भी एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में पहचान मिलने की संभावना जगने लगी।

परिवहन व्यवहार की सुविधा से सूरूर स्थानों की दूरी नियंत्रित हुई, रेल-व्यवस्था, डाकघर की स्थापना आदि से संपर्क-सूत्र दृढ़ हुए।

ब्रिटिश शासन के परिणाम स्वरूप रीति-रिवाजों के स्थान पर कानून का प्रभुत्व स्थापित होने लगा।

सन् 1833 से नई शिक्षा पद्धति की शुरुआत हुई, अंग्रेजी शासन के प्रभाव से अन्य परिवर्तनों के साथ ही वैचारिक क्रांति भी हुई। पश्चिम के उदारवाद के परिणाम स्वरूप भारत में भी अंधविश्वास, स्वामित्व की भावना असमानता इत्यादि को दूर करने के प्रयत्न किए गए।

“नई शिक्षा पद्धति ने भारत के एक वर्ग में अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से नई शिक्षा, नए मूल्यों, नई विचारधारा का मार्ग प्रशस्त किया। इसी वर्ग में से नए सुधारक, राजनीतिक, नेता, साहित्यकार और प्रशासनिक अधिकारी पैदा हुए।”²⁵

शिक्षा के क्षेत्र में जागरूकता आई तथा स्त्रियों को शिक्षा के अवसर प्रदान किए जाने लगे। शिक्षा पाकर वे आत्मनिर्भर बनने का प्रयास करने लगीं। शिक्षा ने जहाँ उन्हें मानसिक व वैचारिक स्तर पर सुदृढ़ बनाया वहीं आर्थिक आत्मनिर्भरता ने उनके आत्मविश्वास को दुगुना कर दिया। एक बार जब स्त्रियों ने बाहर कदम रखा तो धीरे-धीरे उसने अनेक क्षेत्रों में पदार्पण किया।

आधुनिक काल में स्त्रियों की स्थिति पहले से अच्छी हुई। उसे भी समाज की एक सक्रिय इकाई के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। उसे सहयोगी व्यवहार का पुरुषों ने स्वागत किया। सामाजिक विकास के लिए उसकी प्रतिभा व कार्यक्षमता के महत्त्व को स्वीकार किया।

चूँकि भारतीय समाज में पर्याप्त अंतर्विरोध है, अतः इस युग में स्त्री की स्थिति में भी यह अंतर्विरोध रहा है। एक ओर जहाँ स्त्री शिक्षित और आत्मनिर्भर होने लगी, वहीं दूसरी ओर अनेक स्त्रियाँ मध्यकालीन मानसिकता और दोहरी मूल्य व्यवस्था का शिकार रहीं।

आधुनिक काल में देश तो स्वतंत्र हो गया, स्त्री की स्थिति में सुधार भी हुए, किन्तु उसे पूर्ण स्वतंत्रता नहीं मिल पाई। कई ऐसी स्त्रियाँ जिन्होंने स्वाधीनता आंदोलन में भाग लिया था, वे भी घरों में सिमट गईं। काफी स्त्रियाँ आर्थिक रूप से पराश्रित हो रहीं। पूर्ण जागृति की स्थिति अभी भी नहीं आ पाई। शहरी व उच्च वर्ग में जहाँ स्त्री को अच्छी शिक्षा के अवसर दिए जाने लगे, वहीं गाँवों में तथा निम्न वर्गों में स्त्री को शिक्षित तो किया जाने लगा किन्तु उस शिक्षा का लक्ष्य योग्य वर पाना ही रहा। किन्तु ये स्त्रियाँ जब माँ बनी तो उन्होंने अपनी बेटियों को स्वयं से बेहतर अवसर प्रदान करने के प्रयास किए।

इन समाज-सुधारकों के प्रयत्नों से स्त्री की स्थिति में व्यापक सुधार हुए। उनमें शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने के साथ-साथ आत्मनिर्भर बनने की आकांक्षा जगी, जिसके परिणामस्वरूप स्त्रियाँ नौकरी में आने लगीं।

आधुनिक समाज में स्त्री के सशक्तिकरण की प्रक्रिया बहुत लंबी है। समाज-सुधारकों तथा स्वयं स्त्री के सतत् प्रयासों द्वारा अनेक आंदोलन हुए। स्त्री के हितार्थ अनेक संगठन बनाए गए। इनमें प्रमुख हैं-‘स्वायत्त नारीवादी संगठन’, ‘वामपंथी महिला समूह’, ‘गांधीवादी महिला समूह’ आदि।

स्वतंत्रता आंदोलन के बाद अनेक आंदोलन हुए। 'तेलंगाना आंदोलन' में हड़तालों तथा रैलियों में हजारों स्त्रियाँ सक्रिय थीं। इस आंदोलन में अनेक महिला एक्टिविस्ट उभरकर आईं जैसे-कामरेड स्वराज्यम्, अखला कमला देवी, चकली इस्लाम इत्यादि।

आठवें दशक के आरंभ में ही राजनैतिक दलों ने अलग से महिला मोर्चा बनाना शुरू कर दिया था। इन महिला समूहों व संगठनों द्वारा अनेक आंदोलन हुए।

“महिला आंदोलन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है आम औरत से रिश्ता और जुड़ाव अंततः आन्दोलन की नींव उन लाखों-करोड़ों आम औरतों ने डाली है, जिन्होंने सदियों से सवाल उठाए हैं, असंतोष जताया है, विरोध के स्वर ठाए हैं, और असहयोग की शुरूआत की है।”²⁶

इन आंदोलनों के फलस्वरूप स्त्री से जुड़े मुद्दों पर समाज की चिन्ता बढ़ी। नुक्कड़ नाटकों, पोस्टरों प्रदर्शनियों के द्वारा भी स्त्री-उन्नति की राह दिखाई गई। साथ ही शहरी क्षेत्रों में विशेषकर महानगरों में गैर सरकारी महिला सेवी संगठन अस्तित्व में आने लगे।

महिलाओं ने सामाजिक और राजनीतिक मुद्दे उठाने के साथ-साथ पर्यावरण जैसे मुद्दे भी उठाए जिसमें 'चिपको आंदोलन' बहुत प्रसिद्ध हुआ।

“अवचेतन के सहज आग्रह से जंगल की कुछ स्त्रियाँ उठीं और पेड़ों की अस्मिता से अपनी अस्मिता एक करती हुईं उनसे जा चिपकी...।”²⁷

इन आंदोलनों के फलस्वरूप एक समग्र दृष्टिकोण विकसित हुआ। समाज में स्त्री को एक व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। माताएं अपनी बेटियों को स्वयं की अपेक्षा अधिक सक्षम बनाने के प्रयास में जुट गईं।

उत्तर आधुनिक काल:-

उत्तर आधुनिक काल में स्त्री शिक्षित होकर ज्ञान, विज्ञान तथा देश-दुनिया की जानकारी रखने में सक्षम हो पाई, आर्थिक रूप से भी समर्थ होने लगी। इतना ही नहीं विकास की दिशा में अग्रसर स्त्री लगभग हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने लगी। मगर अभी भी पूर्णरूपेण स्त्री का विकास नहीं हुआ है, यही कारण है कि सकारात्मक स्थितियाँ सभी को नहीं सुलभ हो पाई। एक बड़ी संख्या में स्त्री अभी भी, अशिक्षित, अर्धशिक्षित तथा घर की चारदीवारी तक सिमटी रही।

भारत में 1980 ई. के आस-पास उत्तर-आधुनिकता की प्रवृत्तियाँ प्रकट होती दिखाई देने लगती हैं, यद्यपि इसका प्रभाव सम्पूर्ण समाज पर एक समान नहीं पड़ा।

“संयोगवश हिन्दी में 1980 के बाद आई आलोचना में इस पदबंध का प्रयोग मिलता है।”²⁸

इन प्रवृत्तियों के साथ-साथ 'उत्तर-आधुनिकता' शब्द का प्रयोग भी होने लगा।

उत्तर-आधुनिक युग में स्त्री पूर्ण सजग हो गई। वह घर से बाहर तो आधुनिक काल में ही निकलने लगी थी, अब उसमें आत्म-सम्मान की चेतना पैदा होने लगी। वह रोजगार, प्रेम-विवाह, काम-सम्बन्ध आदि को अपने ही निर्णय-क्षेत्र में रखने लगी। इन परिवर्तनों ने स्त्री-मुक्ति को संभव बनाने में सहायता की।

“उत्तर-आधुनिक समाज में औरत कुछ तो आत्म-विश्वासी हुई है। प्रतिशत भले ही कम हो शक्ति-संपन्न स्त्रियों का।”²⁹

अब संचार माध्यम भी सक्रिय भूमिका निभाने लगे। मीडिया ने न सिर्फ स्त्री की जानकारी बढ़ाने में मदद की बल्कि उसने स्त्री की समस्याओं के प्रति भी सहानुभूति रखी।

एक गृहिणी के अतिरिक्त स्त्री क्या-क्या हो सकती है, इस ओर भी मीडिया की सजगता रही। उसने स्त्री में स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार के प्रति सकारात्मक सोच विकसित की। स्त्री को समय की मांग, जरूरत व गति से अवगत कराया।

“1975 के बाद स्त्रियों की समस्याएं प्रमुखता से छपने लगीं। उनके लिए पर्सनल कॉलम शुरू हुए। स्त्रियों की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार सम्बन्धी मसले भी उठने लगे।”³⁰

इन सबके प्रभाव से स्त्री में शिक्षा और रोजगार के प्रति अतिरिक्त सजगता आई। स्त्री ने आत्मनिर्भरता के महत्त्व को समझा, परिणामस्वरूप वह उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगी। विविध क्षेत्रों में उसकी भागीदारी और सफलता के उदाहरण दिखाई देने लगे।

स्त्री जब बौद्धिक रूप से अधिक समर्थ होने लगी तो वह किसी भी मुद्दे को अधिक गहराई से जानने-समझने का प्रयास करने लगी।

स्त्री ने जब अपनी पूरी शक्ति लगा दी तो समाज का स्वरूप भले पूर्ण रूप से न सही किन्तु काफी बदला। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि अब तक जो अनेक कानून सिर्फ सैद्धान्तिक थे वे व्यवहार में आए। इसके साथ ही विज्ञान के नए-नए आविष्कारों ने स्त्री को उन जगहों पर सबल बनाया, जहाँ वह प्राकृतिक रूप से कमजोर है। कानूनी प्रावधानों के क्रियान्वयन तथा प्राकृतिक बाधाओं पर नियंत्रण ने स्त्री को निश्चित रूप से अधिक स्वतंत्रता प्रदान की है।

“सन् 1971 से पहले जब गर्भपात कानून नहीं बना था तो अविवाहित लड़कियाँ गर्भधारण की अवस्था में आत्महत्या कर लेती थी या अवैध रूप से गर्भपात कराती थीं।”³¹

स्त्री का सिर्फ जानना और समझना ही काफी नहीं है, उसे यदि कुछ करना है, तो समाज द्वारा प्रदत्त स्त्री की छवि को तोड़कर आगे आना होगा, इस तथ्य से वह अवगत हो चुकी है। सदियों से जिन मानकों पर स्त्री को नापा जाता रहा है, और जिस खास सांचे में डालकर देखा जाता रहा है कि यह एक आदर्श-स्त्री है या नहीं, उन मानकों व सांचों को वह तोड़ चुकी है। उसने सड़ी-गली मान्यताओं व रूढ़ियों का विरोध कर दिया है।

“स्त्री को तो प्रतिरोध की भाषा सीखनी होगी। उन पारंपरिक तस्वीरों को धो-पोंछ डालना होगा जो अब तक दफ्तरी बयानों में छपता रहा। उसे निरन्तर और अधिकाधिक शक्तिशाली मीडिया के संपादकों और प्रोफेसरों के गढ़ पर वैचारिक हमला करना होगा, जो यथास्थिति को बचाए रखने की जद्दोजहद में व्यस्त हैं।”³²

1975 ई. को महिला-वर्ष के रूप में मनाया गया, यह स्त्री को, अधिकारों के प्रति जागरूक करने का सराहनीय कदम था। महिला-वर्ष में महिला-कल्याण के लिए बनी राज्यों की योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए अगले दस वर्ष का सकय 'महिला दशक' घोषित किया गया। सन् 1975 के बाद भारतीय स्त्री की स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए हैं। मीडिया द्वारा स्त्री की समस्याओं को उठाया गया। संयुक्त राष्ट्र में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष की घोषणा हुई। महानगरों में अधिक संख्या में वह नौकरियों में आने लगी। स्त्री की स्थिति को सुधारने के लिए अनेक योजनाएँ बनीं। दहेज-विरोधी तथा बलात्कार-विरोधी कानून बने। अनेक महिला संगठन बने। कार्यस्थलों पर स्त्री के उत्पीड़न को रोकने के लिए उच्चतम न्यायालय के आदेश पर अनेक कमेटियाँ बनीं।

एक तरफ जहाँ स्त्री मुक्त होकर सकारात्मक व्यक्तित्व प्राप्त कर रही है, वहीं दूसरी ओर वह स्वेच्छा से अपना वस्तुकरण कर रही है। मीडिया, बाजारवाद और उपभोक्तावाद के इस युग में स्त्री लगभग हर उत्पाद के विज्ञापन में दिखाई देती है।

“कैसा मखौल है यह भी कि जो स्त्री को दबी-ढंकी देखना चाहते हैं, वे ही उसके कपड़े उतरवा लेने से चूकते नहीं। टेलीविजन अपनी श्रेष्ठ परम्परा में कुलशील दृश्यविलयाँ प्रस्तुत करने के साथ-साथ नंगी औरत के अंग दिखाते हुए अधोवस्त्रों के विज्ञापनों की झड़ी लगा देता है।”³³

उपभोक्तावाद और बाजारवाद की एक बड़ी साजिश है सौन्दर्य प्रतियोगिताएँ। शहर, जिलों, राज्यों, देश व विश्व स्तर पर ये प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। विजयी कन्याओं को मुकुट पहनाकर उनका स्वागत किया जाता है। वे समाज-सेवा व देश-सेवा का व्रत लेती हैं, किन्तु अंग प्रदर्शन करती हुई विभिन्न उत्पादों के विज्ञापन में दिखाई देने लगती हैं।

“तुम्हारा निर्मल हृदय किसने मलिन कर डाला कि तुम साबुन, डिटर्जेंट और तौलियों के विज्ञापन देने लगीं। दूधपेस्ट और क्रीम से लेकर फ्रिज और एयर कंडिशनर बेचती हुई सुंदरी, विश्वसुन्दरी देखी जा सकती हैं।”³⁴

उपभोक्तावाद व बाजारवाद के अत्यधिक वर्चस्व के परिणामस्वरूप मानवीय मूल्य समाप्त होने लगे। स्त्री अपने नैतिक व सांस्कृतिक मूल्यों को भूलने लगी। उत्तर-आधुनिकता के इस दौर में अनेक स्त्रियाँ अपने लक्ष्य को भूल-पथभ्रष्ट होने लगीं। शरीर का वस्तु की भाँति प्रदर्शन करने लगीं हैं।

“ब्वाय फ्रेंड्स की ‘डेटि’, ‘नौकिंग’, ‘डांस-पार्टी’, ‘डिस्कथेक मीट’ के बिना शहरी लड़कियाँ जैसे पिछड़ेपन में शुमार मानी जाने लगी हैं। ‘स्लीवलेस’, ‘लो-कट’, ‘बैकलेस’, ‘सी-थ्रू’, ‘बिकनी’ शब्द आधुनिक फैशन की पोशाकों में आम हो चले हैं, विशेष रूप से सम्मोहन का जाल फेंकने वाले स्त्री-पुरुषों की क्लब-पार्टियों और बिजनेस की काकटेल-पार्टियों में।”³⁵

उत्तर-आधुनिक युग में टी.वी. धारावाहिकों में स्त्रियों को जिस प्रकार चित्रित किया जा रहा है वे नितान्त अव्यवहारिक तो है ही, समाज पर दुष्प्रभाव भी डाल रहा है। वहाँ स्त्रियाँ या तो सजी-धजी मूर्ति हैं, जैसे वह कोई सजावट की वस्तु हो या फिर तमाम छल-कपट से भरी अनेक प्रकार की साजिश व षड्यंत्र करने वाली हैं।

“ऊबी स्त्रियों को देखकर वे औरतें क्या सोचें जो बस में लटककर कारखाने या दफ्तर जाती हैं। दिन-भर थककर लौटने के बाद चौका-चूल्हा देखती हैं। हाट-बाजार से आटा और नमक लाती हैं।”³⁶

सिनेमा में जहाँ पुरुष की बहादुरी का प्रदर्शन होता है वहीं स्त्री की नग्नता का।

“हमें गुरेज इस बात पर है कि मर्द अपनी बहादुरी बेचता है बहादुर कहलाता है। पर औरत अपनी देह ही बेच रही है। पुराने जमाने से अबतक?”³⁷

अधिक पुरुषों से सम्बन्ध रखना, पार्टियों में चाबी उछालने जैसे खेल के माध्यम से जोड़े बदलना इत्यादि स्थितियाँ स्त्री के लिए घातक हैं। ऊपर की ओर उठने की होड़ में वह अपना नैतिक पतन कर रही है। इन परिस्थितियों में चारित्रिक संकट सबसे बड़ी समस्या बनकर उभरी है।

“आज हमारे देश के सामने बहुत से संकट हैं पर अनेक संकटों की जड़ यह चारित्रिक संकट सबसे बड़ा है।... तो क्या प्रगति की दौड़ में विजय केवल खुले फैशन, यौन-आजादी और भ्रष्टाचार से होगी?”³⁸

सन्दर्भ सूची:-

1. भारतीय समाज में नारी-नीरा देसाई, पृ. 2-3
2. नारी शोषण आईने और आयाम-आशा रानी क्लोरा, पृ. 5
3. भारतीय समाज में नारी-नीरा देसाई, पृ. 6
4. लेख-हम पुरबिया औरतें और हमारा स्त्री विमर्श-अनामिका पुस्तक-अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, सं राजन्द्र योदव, अर्चना वर्मा, पृ. 167
5. वहीं, पृ. 167
6. लेख-हम पुरबिया औरतें और हमारा स्त्री विमर्श-अनामिका पुस्तक-अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, सं राजन्द्र योदव, अर्चना वर्मा, पृ. 167
7. भारतीय समाज में नारी-नीरा देसाई, पृ.5
8. लेख-हम पुरबिया औरतें और हमारा स्त्री विमर्श-अनामिका पुस्तक-अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, सं राजन्द्र योदव, अर्चना वर्मा, पृ. 171
9. भारतीय समाज में नारी-नीरा देसाई, पृ.6
10. वहीं, पृ.6

11. वही, पृ.7
12. वही, पृ.10
13. वही, पृ.7
14. लेख-हम पुरबिया औरतें और हमारा स्त्री विमर्श-अनामिका पुस्तक-अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, सं राजन्द्र योदव, अर्चना वर्मा, पृ. 170-171
15. भारतीय समाज में नारी-नीरा देसाई, पृ.11
16. मध्यकालीन भारत (750-1540) सं. हरिश्चन्द्र वर्मा, संपादकीय (प्र.सं.) पृ. (xv)
17. नारी शोषण के आईने और आयाम: आशारानी व्होरा, पृ.14
18. वही, पृ. 18
19. वही, पृ.15
20. वही, पृ.15
21. वही, पृ.15
22. वही, पृ.16
23. मध्यकालीन भारत, सं. हरिश्चन्द्र वर्मा, पृ.70-71
24. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास-रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.82
25. भारतीय समाज में नारी-नीरा देसाई, पृ. 39
26. नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे-सं. साधना आर्य, निवेदिता आर्य एवं जिनी लोकनीता, पृ. 261-262
27. स्त्रीत्व का मानचित्र-अनामिका, पृ.105
28. उत्तर-आधुनिकतावाद-जगदीश्वर चतुर्वेदी-पृ.156
29. साहित्य की वैचारिकता, शशिकला त्रिपाठी, पृ.132
30. स्त्रीत्ववादी विमर्श: समाज और साहित्य, क्षमा शर्मा, पृ. 20
31. स्त्रीत्ववादी विमर्श: समाज और साहित्य, क्षमा शर्मा, पृ. 69
32. उपनिवेश में स्त्री-प्रभा खेतान, पृ.61
33. खुली खिड़कियाँ-मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 248-249
34. वही, पृ.243
35. नारी शोषण: आईने और आयाम-आशारानी व्होरा, पृ.75
36. खुली खिड़कियाँ-मैत्रेयी पुष्पा, पृ.249
37. वही, पृ.254
38. नारी शोषण: आईने और आयाम-आशारानी व्होरा, पृ. 75-76

भारतीय उपमहाद्वीप के सन्दर्भ में अमेरिका की विदेशनीति : एक विश्लेषण

डॉ० अनिल कुमार सिंह

विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, (बिहार)

अमेरिका विश्व राजनीति की महत्वपूर्ण शक्ति है। अपनी परिष्कृत सैन्य तकनीक, पूंजीगत एवं मानवीय संसाधन एवं आर्थिक प्रगति के कारण उसे यह स्थिति प्राप्त है। इस सशक्त आधार के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय संगठन तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के मानकों के निर्धारण के कारण, पच्चास के दशक के बाद वैचारिक आधार पर दो खेमों में बंटे विश्व के एक भाग के नेतृत्व कर्ता के कारण उसे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में केन्द्रिय स्थान प्राप्त है जो मूलतः सशक्त आर्थिक, भौगोलिक एवं सामरिक क्षमताओं के कारण उत्तरोत्तर विकसित होता रहा है। अमेरिका नेतृत्व ने 1945 के बाद से बड़ी कुशलतापूर्वक विदेशनीति को विकसित तथा संचालित किया। अपनी शक्ति, कूटनीतिक क्षमता के बाद अमेरिका अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के केन्द्र में स्थापित हो गया।

अमेरिकी विदेशनीति के लक्ष्य शुरुआत से स्पष्ट रहे हैं। साथ ही उनको पूरा करने हेतु वहां के शासकों में गहरी प्रतिबद्धता भी रही, जो कूटनीतिक, सामरिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक आधार पर गतिमान रहें जिस पर अमेरिका अपनी शक्तिशाली स्थिति के कारण कभी भी समझौता करता नहीं नजर नहीं आया।

90 के दशक के बाद शुरू हुए शीत युद्धोत्तर युग में अमेरिकी विदेश नीति और कुशलता एवं सशक्तता के साथ संचालित है। साम्यवादी खेमे के पतन में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उसकी चुनौति को समाप्त कर उसे एक मात्र महाशक्ति के रूप में स्थापित कर दिया है। पहले जहां राजनीतिक, वैचारिक, आधार पर उसकी विदेश नीति की संचालित थी वहीं अब यह आधार कमजोर पड़ने से अमेरिकी विदेशी नीति के नये आयाम खुले हैं जिसने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में और मजबूत आधार प्रदान किया है। वर्तमान शीतयुद्धोत्तरकालीन दौर में वैचारिक आधार राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के बजाय आर्थिक प्रतिद्वंद्विता का दौर है। इसी आर्थिक दौर में अमेरिका अपने नये मानकों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय है। आज आतंकवाद, आर्थिक, व्यापारिक, तकनीकी मुद्दे एवं शस्त्र तकनीक तथा नियंत्रण, परमाणु शस्त्र एवं अप्रसार, पर्यावरण, श्रम जैसे व्यापक मुद्दों के साथ अमेरिकी विदेश नीति अपने लक्ष्य प्राप्ति हेतु संचालित हो रही है।

शीत युद्ध के दौर में विश्व में वैचारिकी के आधार पर पूंजीवादी, उदारवादी लोकतंत्र की व्यवस्था को अपने सैन्य, सामरिक आर्थिक एवं कूटनीतिक बल पर स्थापित करने की लड़ाई अमेरिका जीत चुका है। अब उसकी विदेश नीति की प्राथमिकता अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपने सर्वोच्च स्थिति को कायम रखने की है। वर्तमान में आतंकवाद, असुरक्षा, शस्त्र तकनीक, परमाणु शस्त्र तथा तकनीक हस्तान्तरण, खुली बाजारवादी व्यवस्था, पर्यावरण, अंतरिक्ष तकनीक जैसे मुद्दे अमेरिकी विदेश नीति के समक्ष कठोर चुनौतियां हैं जिसके विरुद्ध वह मुखरता से सक्रिय है।

वस्तुतः शीतयुद्धोत्तर भूमण्डलीकरण के दौर में अमेरिकी विदेश नीति दो महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं: प्रथम- अपने आर्थिक हितों का सुरक्षित रखना एवं द्वितीय- सैन्य एवं सामरिक, विशेषतः परमाणु एवं रासायनिक शस्त्र तकनीक प्रसार के स्तर पर विश्व से मिल रही कड़ी चुनौति को समाप्त करना है। अपने आर्थिक उद्देश्य की पूर्ति हेतु अमेरिका ने सिर्फ क्षेत्रीय स्तर पर स्थापित आर्थिक संगठन के स्थापना की है बल्कि अपने हित अनुसार वह विश्व आर्थिक संगठन, (NAFTA, प्रशांत एवं अटलांटिक महासागरिय राष्ट्रों का संगठन...) सदस्यता प्राप्त एवं उनके नियमों को पालन करना रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उसने शीतयुद्धोत्तरकालीन खुली उदारवादी भूमण्डलीकृत अर्थव्यवस्था के एशिया, अफ्रिका एवं चीन के बड़े उपभोक्ता बाजार तक पहुंच हेतु अपने विदेश नीति के नये मानक एवं सम्बन्ध विकसित किये हैं। इसमें एशिया, अफ्रिका में उसके परम्परागत सम्बन्ध एवं भूमिका को परिवर्तित कर दिया है। यहां उसकी राजनीतिक चुनौतियां समाप्त हुई हैं और उसकी नजर (बहुराष्ट्रीय कम्पनी) इनके विशाल उपभोक्ता बाजार में खपत तथा निवेश पर है। इसके लिए अमेरिका ने आर्थिक सहायता, राहत कार्य के साथ-साथ श्रम, पर्यावरण, जनसंख्या, मानवाधिकार एवं लोकतंत्र जैसे ढाल गढ़े हैं।

अपनी विदेश नीति के द्वितीय लक्ष्य की प्राप्ति अमेरिका के लिए सबसे चुनौतिपूर्ण है। विश्व के कई भागों के परमाणु एवं रासायनिक क्षमता, तकनीक, शस्त्र निर्माण, परिष्कृत हथियार (प्रक्षेपास्त्र) तकनीक का विकास हो चुका है। इसने अमेरिका की परम्परागत सैन्य क्षमता को कड़ी चुनौति दी है। विशेषकर यह वहां और चिन्तनीय है जहां अमेरिका विरोधी सत्ता स्थापित थी/है। (इराक, लीबिया, उत्तरी कोरिया, ईरान सीरिया, और लेबनान आदि) इन्हें सीमित करना अमेरिकी विदेशी नीति की सर्वोच्च प्राथमिकता है। वर्तमान में अमेरिकी विदेश नीति के प्राथमिक लक्ष्यों को हम निम्नवत रख सकते हैं:-

- परमाणु तकनीक एवं परमाणु शस्त्र नियंत्रण।
- परिष्कृत हथियार तकनीक अप्रसार एवं नियंत्रण।
- आतंकवाद, ईस्लामिक कट्टरता एवं नशीले पदार्थों की तस्करी का उन्मूलन।

- भूमण्डलीकृत खुली उदार अर्थव्यवस्था में निवेश एवं उपभोक्ता बाजार।
- आर्थिक मानक जैसे- विश्व व्यापार संगठन तथा इसके नियम, बौद्धिक सम्पदा एवं अधिकार संरक्षण, श्रम एवं पर्यावरण, आर्थिक प्रतिबंध (सुपर 301, प्रेसलर नियम), बहुराष्ट्रीय कम्पनियां तथा डम्पिंग नियमों के आधार पर स्व आर्थिक हित का पोषण।
- स्वतंत्रता, लोकतंत्र और मानवाधिकार के आधार पर हस्तक्षेप।
- चुनौत की स्थिति में सैन्य हस्तक्षेप अपने हित अनुसार व्यवस्था की स्थापना (अफगानिस्तान, ईराक तथा सीरिया आदि)

इन्हीं आधारों पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर अमेरिकी विदेश नीति संचालित हो रही है। यूरोप, पश्चिम एशिया एवं दक्षिण एशिया में अमेरिका के हित इन्हीं मुद्दों के आधार पर सक्रिय हैं।

मध्यपूर्व, वर्तमान में मध्यपूर्व अमेरिकी विदेश नीति की प्राथमिक सूची में है जो उसके लिए आर्थिक, सामरिक तथा धार्मिक तीनों दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। मध्यपूर्व अपने तेल/ऊर्जा संसाधन, बड़े आकार, महत्वपूर्ण सामरिक अवस्थिति के साथ-साथ ईस्लामिक विश्व के रूप में अमेरिका के लिए सदियों से संवेदनशील रहा है। मध्यपूर्व में अमेरिका के स्थायी हित हैं। अमेरिका अपने ऊर्जा संसाधन के लिए इस क्षेत्र पर निर्भर करता है। फलतः क्षेत्र से नियंत्रण सुविधाजनक दर पर तेलपूर्ति उसकी आवश्यकता है। फलतः क्षेत्र की व्यवस्था पर अपनी पकड़ बनाये रखना उसकी विवशता। मध्यपूर्व के ईस्लामिक जगत में ईसाई विरोधी भावना अति तीव्र है। यह पूरा क्षेत्र धार्मिक ईस्लामिक कट्टरता के आधार पर ध्रुवीकृत रहा है। दूसरी ओर अमेरिका ईसाई जगत का सबसे प्रखर राष्ट्र है जो क्षेत्र में अमेरिकी विरोधी भावनाओं को और तीव्र करते हैं। क्षेत्र में कोई भी राजनीतिक विवाद अमेरिकी हित को दीर्घकालिक और गहरे प्रभावित करता है। पर सबसे महत्वपूर्ण कारण अमेरिका के अरब-ईजराईल संघर्ष में ईजराईल समर्थक नीति रही है जो पूरे मुस्लिम जगत में अमेरिका की खलनायक छवि को उभारती है। यूं तो अमेरिका पश्चिम एशिया में मध्यस्थता द्वारा स्थायी शांति की तलाश में है पर ईजराईल के अधिक दबाव न डालने की उसकी विवशता, इसमें सबसे बड़ी बाधा है। फलतः समस्या से जुड़े राष्ट्र- फिलीस्तीन, सीरिया, जॉर्डन, लेबनान के साथ शेश अरब विश्व में अमेरिका की नकरात्मक छवि है। इन्हीं इस्लामिक कट्टरपन से उत्पन्न आतंकवादी सक्रियता आज अमेरिका के समक्ष सबसे बड़ी चुनौति है। क्षेत्र में कई राष्ट्र विशेषकर ईराक, ईरान, सीरिया, जॉर्डन अमेरिकी हितों के प्रखर विरोधी हैं। ईराक 90 के बाद से अमेरिका को सीधी चुनौति देता रहा है। अमेरिका द्वारा प्रथम तथा द्वितीय खाड़ी युद्ध, ईराक द्वारा क्षेत्र में अमेरिकी श्रेष्ठता को चुनौति देने एवं अमेरिकी प्रभाव को नकारने का परिणाम है। विशेषकर 12 सितम्बर की घटना के बाद अमेरिका द्वारा किसी भी चुनौति का सहन न कर अपने विरोधियों को समाप्त कर देने की दिशा में स्पष्ट संकेत है। अफगानिस्तान और ईराक इसके उदाहरण हैं- अमेरिका को पता है कि यह क्षेत्र उसके लिए अति महत्वपूर्ण है, फलतः वह क्षेत्र में सावधानी के साथ स्थाई पैठ एवं प्रभुत्व के लिए अग्रसर है।

ईरान खाड़ी क्षेत्र में शिया बहुल मुस्लिम जगत के नेतृत्व कर्ता के रूप में अपने को स्थापित करना चाहता है। 1979 की क्रांति के बाद पश्चिम समर्थक रजा पहलवी वंश की समाप्ति तथा आयातुल्लाह खमेनी धार्मिक साम्राज्य की स्थापना ने ईरान और पश्चिम के बीच एक बड़ी खाई उत्पन्न कर दी। 1980 में शुरू और आठ वर्ष चले भीषण खाड़ी संघर्ष को ईरान, ईराक में परोक्ष रूप से अमेरिका की ही हरकत मानता रहा है। ईरान मध्यपूर्व में सुन्नी बहुल राष्ट्रों की अपेक्षा पश्चिमी विशेषतः अमेरिका का कट्टर विरोधी राष्ट्र है। ईरान के विरोध का आधार पश्चिमी और ईसाई सभ्यता का विरोध रहा है। यह स्थिति ही पश्चिमी जगत में ईरान की एक कट्टरपंथी धार्मिक, ईस्लामिक अपारदर्शी राष्ट्र की छवि प्रस्तुत करती है। अरब-ईजराईल संघर्ष में ज्यादातर जहां मध्यपूर्व के राष्ट्रों ने ईजराईल के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया है, वहीं ईरान ज्यादा कठोर नीति अपनाते हुए अभी भी ईजराईल को एक हमलावर मानते हुए एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में मान्यता देने से इन्कार करता रहा है। हाल के वर्षों में ईरान के द्वारा अपनी परमाणु क्षमता का विस्तार, विश्व के शिया बहुत युद्धरत क्षेत्रों में शिया गुटों को समर्थन (सीरिया में असद सरकार, लेबनान में हिजबुल्लाह छापामार, यमन में हुती विद्रोहियों आदि), ईजराईल में हमला तथा अन्य फिलीस्तीनी छापामारों का समर्थन, और मध्यपूर्व में अमेरिका एवं सुन्नी बहुल राष्ट्र विशेषतः साउदी अरब से सैन्य-आर्थिक गठजोड़ के कारण अमेरिका तथा ईरान के सम्बन्धों में कड़वाहट बढ़ी है। ईरान की इन गतिविधियों के कारण अमेरिका ईरान को उत्तर कोरिया, लीबिया एवं क्यूबा के साथ शैतान राष्ट्रों की धुरी मानता रहा है। लम्बे अरसे तक पश्चिम विरोध के कारण ईरान को आर्थिक प्रतिबंधों का सामना करना पड़ रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में तेल पदार्थों की बिक्री, मुद्रा संचयन पर रोक एवं विश्व व्यापार की मुख्य धारा से निष्कासन से ईरान की अर्थव्यवस्था गम्भीर रूप से प्रभावित हुई है। पर 2012 के बाद ईरान और पश्चिम ने अपने सम्बन्धों के पुनर्मूल्यांकन की कोशिश की है, इसी क्रम में परमाणु मुद्दे पर जिनेवा समझौता एक कड़ी है जिसके द्वारा ईरान पर लगे आर्थिक प्रतिबंध चरणबद्ध रूप में समाप्त होंगे और बदले में ईरान के परमाणु क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय निगरानी के लिए खोल दिये जाएंगे। ईरान और अमेरिका के सम्बन्धों का यह नया दौर शायद मध्यपूर्व में सुन्नी बहुल राष्ट्रों के साथ भविष्य में प्रतिसंतुलन की नयी नीति है।

सीरिया वर्तमान में मध्यपूर्व में शिया-सुन्नी समुदायों के संघर्ष तथा इस माध्यम से मध्यपूर्व महाशक्तियों के वर्चस्व का एक ज्वलंत उदाहरण है। सीरिया सुन्नी बहुल राष्ट्र है जबकि सत्ता अल्पसंख्यक नेता अशद के पास है। एक तरफ अशद सरकार एवं उसकी फ्रीसीरियन आर्मी, रूस, ईरान, हिजबुल्लाह छापामार और कई छोटे सैन्य गुट हैं जबकि दूसरी तरफ विरोधी गुट में अमेरिका, साउदी अरब, षै और तुर्की शामिल है। संयुक्त राष्ट्र संघ के लगातार शांति प्रयास एवं समझौते के बावजूद युद्धरत पक्षों में समझौते के प्रति प्रतिबद्धता नहीं है और लगातार युद्ध विराम की स्थिति का उल्लंघन हो रहा है। वस्तुतः रूस समर्थित अशद सरकार की जीत ईरान की मुस्लिम जगत में बढ़ते प्रभाव का द्योतक है।

दक्षिणी एशिया, अमेरिकी विदेश नीति का महत्वपूर्ण केन्द्र है। विशेषतः क्षेत्र में भारत एवं पाकिस्तान के परमाणु सम्पन्नता के बाद। यूं तो शीत युद्धोत्तर भूमण्डलीकृत बाजारवादी व्यवस्था के दौर में अमेरिका की परम्परागत भूमिका बदल गयी है पर आर्थिक एवं सामरिक दृष्टि से यह क्षेत्र भी अमेरिका के लिए चुनौतिपूर्ण है। क्षेत्र के दो प्रमुख राष्ट्रों (भारत तथा पाकिस्तान) के साथ सम्बन्ध में संतुलन बनाये रखना एक कठिन अभ्यास है। फलतः क्षेत्र में भारत और पाकिस्तान दोनों अमेरिका नीति से संतुष्ट नहीं हो पाते। पाकिस्तान, अमेरिका के लिए परम्परागत मित्र, ईस्लामिक जगत का उदारवादी राष्ट्र और अपने महत्वपूर्ण

सामरिक अवस्थिति के कारण महत्वपूर्ण है तो भारत लोकतांत्रिक उदारवादी व्यवस्था के साथ अपने खुले उपभोक्ता बाजार के कारण। पाकिस्तान के साथ अमेरिका के सामरिक हित हैं तो भारत के साथ आर्थिक। इसलिए वर्तमान में उसकी नीति दोनों राष्ट्रों को नाराज न करने की है। परिणामतः क्षेत्र के सम्बन्ध में अमेरिकी विदेश नीति द्विविधा में है।

दक्षिण एशिया में अमेरिकी विदेश नीति की निम्न प्राथमिकताएं हैं:-

- परमाणु तकनीक एवं शस्त्र नियंत्रण।
- परिष्कृत तकनीक (सैन्य/वैज्ञानिक) स्थानान्तरण पर रोक।
- निवेश एवं खपत हेतु विशाल आर्थिक उपभोक्ता बाजार।
- क्षेत्र में स्थायी शांति तथा सम्भावित परमाणु युद्ध का टालना।
- क्षेत्र के परमाणु सम्पन्न राष्ट्रों के बीच वार्ता के द्वारा सहमती के प्रयास।
- आतंकवाद एवं ईस्लामिक कट्टरपंथ तथा नशीले पदार्थों का नियंत्रण।
- क्षेत्र में पाकिस्तान के माध्यम से ईस्लामिक राष्ट्रों पर नियंत्रण।
- चीन-भारत-पाकिस्तान के गठजोड़ को टालना।
- मानवाधिकार तथा लोकतंत्र की स्थापना।

अमेरिकी विदेश नीति के सभी लक्ष्य दक्षिण एशिया में उसके समक्ष कठोर चुनौति पेश कर रहे हैं। इन्हीं उपर्युक्त मुद्दों के साथ अमेरिका क्षेत्र में सक्रिय है, पर उसका मुख्य जोर परमाणु सम्पन्न भारत एवं पाकिस्तान के परमाणु तकनीक, परिष्कृत सैन्य शस्त्र तकनीक एवं परमाणु युद्ध पर नियंत्रण लगाना है। विशेषतः तब यह और महत्वपूर्ण है जब कश्मीर जैसे तीव्र मतभेद के मुद्दों के साथ भारत-पाकिस्तान के सम्बन्ध स्थायी गतिरोध के दौर से गुजर रहे हैं। क्षेत्र में भारत-पाकिस्तान दोनों के मध्य स्थायी समझौते के द्वारा शांति स्थापित करना अमेरिकी नीति के उद्देश्य हैं। पर दोनों राष्ट्रों के भिन्न हितों के कारण अमेरिका किसी के भी साथ कठोर परेशानी की स्थिति में नहीं है। वर्तमान में दक्षिण एशिया में अमेरिका भारत और पाकिस्तान दोनों पर दबाव बनाये रखने के लिए दोनों के परस्पर विरोधी मुद्दों पर दोनों राष्ट्रों के भयादोहन (Blackmailing) क्षेत्र में हितों की पूर्ति हेतु सक्रिय है।

वस्तुतः अमेरिका अपने समस्त शक्तियों से युक्त होने के कारण अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति करने में सक्षम है। वह सदियों से महाशक्ति के रूप में स्थापित किसी भी चुनौति के समक्ष डिग कर विश्व राजनीति में अपने अस्तित्व एवं पकड़ को ढीला नहीं करना चाहता। शक्ति सम्पन्नता एवं एकध्रुवीयता की स्थिति उसे अपने लक्ष्य को पूरा करने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। खाड़ी युद्ध में संयुक्त राष्ट्र संघ, प्रमुख यूरोपीय शक्ति एवं विश्व जनमत के विरुद्ध भी आधारविहीन तर्क पर उसने ईराक पर आक्रमण करके वहां अपने हित अनुसार व्यवस्था स्थापित की। साथ ही, अमेरिकी श्रेष्ठता को चुनौति देने का परिणाम का भी संदेश दिया। आज कई कारकों विशेषतः आतंकवाद, परमाणु अप्रसार, शस्त्र नियंत्रण, मानवाधिकार, लोकतंत्र, बालश्रम, पर्यावरण तथा आर्थिक नियमों के साथ अमेरिका अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय है। आर्थिक सहायता, अनुदान, निवेश एवं अपने बहुराष्ट्रीय निगमों के द्वारा एशिया तथा अफ्रिका की खुली अर्थव्यवस्था पर उसकी पकड़ मजबूत है। यह सभी कारक विदेश नीति द्वारा राष्ट्रीय हित साधने के माध्यम हैं और इसे चुनौति देने का परिणाम अमेरिका द्वारा सैन्य हस्तक्षेप के माध्यम से अपने हित अनुसार व्यवस्था की स्थापना है। अफगानिस्तान, पाकिस्तान, ईराक इसके उदाहरण हैं। यह अमेरिकी विदेश नीति का नया संस्करण है जिसके कई पुनर्मुद्रण आने शेष हैं।

BIBLIOGRAPHY

1. S.D. Muni, 'South Asian Relations: Bilateral and Regional', in Leo E. Rose and others, Eds. 'Towards a New World Order: Adjusting India-US Relations' (Berkeley, Institute of East Asian Studies, 1992), P. 53, Also, Satu P. Limaye, 'US-Indian Relations: Pursuit of Accommodation' (London, Westview Press, 1993), P. 30.
2. Robin Raphel, 'Non-Proliferation Policy in South Asia' US Department of State Dispatch (Washington, DC) 20 March 1995, Vol. 6, No. 12, P. 223.
3. Warren Christopher, 'Strengthening US Relations with South Asia' Address to the SAARC, New York City, 29 September 1994, US Department of State Dispatch, 3 October 1994, Vol. No. 40, P. 656.
4. Frank G. Wisner, 'Indo-US Relations: Building a Partnership Today to Meet the Global Challenges of Tomorrow' Speech before Confederation of Indian Industry at Mumbai (Bombay) on 12 January 1996.
5. Quoted in Cameron Barr, 'South Asian Arms Race Heats up' The Christian Science Monitor, 3 March 1992, P. 3.
6. Ahmed Kamal, Pakistan's Representative to the Conference on Disarmament, Speech to the Conference Plenary, 2 June 1994, CD/EPV. 681.
7. Steve Fetter and Frank Von Hippel, 'A Step-By-Step Approach to a Global Fissile Materials Cutoff', Arms Control Today(USA), October, 1995, P. 8
8. Quoted in Braham Chellany, 'CTBT Danger Signals' Hindustan Times (New Delhi), 24 June 1995, P. 13.
9. Mitchell Reiss, Without the Bomb: The Politics of Nuclear Non-Proliferation (New York, 1988) P. 217.
10. Harlan Cleveland, The Third Try at World Order: US Policy for an Interdependent World (New York, 1997)
11. John Hawes, 'Nuclear Non-Proliferation: New Energy, New Direction', Paper prepared for project on the thinking arms control CISSM, School of Public Affairs, University of Maryland.
12. Edmund Stillman and William Pfaff, Power and Importance: The failure of American Foreign Policy (New York, 1966), P. 9.

13. Simon Serfaty, 'The Elusive Enemy: American Foreign Policy since World War II (Boston, 1972), P. 162-63.
14. Richard Nixon, 1999: Victory Without War.
15. Henry Kissinger, The White House Years
16. A.G. Noorani, 'Search for New Relationships in the Indian Subcontinent', World Today, Vol. 131, June 1975, PP. 247-47, Quoted in Yager, No. 3, P. 357.
17. Stephen Philip Cohen, 'Nuclear Neighbours', in Stephen Philip Cohen, Ed., Nuclear Proliferation in South-Asia: The Prospects for Arms Control (Boulder, 1991), P.20.
18. Richard Nixon, Seize the Moment: America's Challenge in a One-Super Power World (New York, 1972), PP. 254-55.
19. Geoffrey Kemp, Powderkeg: Weapons Proliferation in the Near East and South Asia: US Policy Dilemmas, report of the project on arms control and the proliferation of high technology weapons in the Near East and South Asia, quoted in Cohenrn, No. 24, P. 346.
20. For detail, see Chintamani Mahapatra, US- Pakistan Alliance in Flux: Strategic Analysis, April 1991.
21. Bill Clinton and Al Gore, Putting People First: How We Can All Change America (New York, 1992), PP. 42-43. Shivaji Ganguly, US Policy Towards South Asia (Boulder, Col.: Westview, 1990), Ch. 2 Shirin Tahir Kheli, Nuclear Weapons and South Asian Security (Washington, DC: Carnegie Endowment for International Peace, 1988). Robert H. Johnson, The Persian Gulf is US Strategy: A Skeptical View: In International Security, Vol. 14 No. (Summer 1989) PP. 122-60. Noor A Hussain and Leo E. Rose (Eds.), Pakistan-US Relations: Social, Political and Economical Factors (Berkeley, Cal.: Institute of East Asian Studies, University of California, 1988).
22. South Asia, in Robert S. Litwak and Samuel F. Wells, Jr (Eds.) Superpower Competition and Security in the Third World (Cambridge, Mass: Ballinger, 1987) PP. 176-77.
23. Dilip Mohite, 'India and the United States: The New Equations' in Dilip Mohite (Ed.), India, USA and the Emerging World Order (Baroda, MS University, 1995) P. 158-59.

भारतीय भाषा ओ पत्रकारिता

डॉ० मीनू कुमारी

मैथिली शिक्षिका, रामनंदन मिश्र राजकीय बालिका उच्चतर, माध्यमिक विद्यालय, लहेरियासराय, दरभंगा

समाचार बूझब आ बुझाएब दूनों अतिप्राचीन कालहिसँ आबि रहल अछि। विशेषज्ञ लोकनिक अनुसार मनुष्यक बौद्धिक विकासक संगहि समाचारक आदान-प्रदान सेहो आरम्भ भए गेल। पहिने राजाजाक प्रसारण ढोलहो दय लोककँ एक ठाम बजाय कएल जाइत छल। एक राज्यसँ दोसर राज्य धरि समाचार व्यापारी लोकनिक माध्यमसँ सेहो जाइत छल। व्यापारी सभ जहन वस्तु विक्रय लेल अबैत छल तऽ ओ अपना ओहि ठामक समाचार लोक सभकँ सुनबैत छल आ जहन आपस जाइत छल तऽ ओ ओहि ठामक समाचार अपना ओहि ठाम लए जाइत छल। शिलालेख, स्तम्भ लेख आदि द्वारा राजा लोकनि सेहो अपन आदेशक सूचना लोक तक पहुँचबैत छलाह। बादमे राजाक निर्णय, महामारी, वन्यजन्तुक उपद्रव आदिक सूचना लिखबा कए जगह-जगह सटबा देल जाइत छलैक।

सामाजिक व्यवस्था जतेक सुदृढ़ भेलैक, विज्ञान जतेक आगू बढ़ल एक राज्य दोसर राज्यक आ एक देश दोसर देशक सन्निकट होइत गेल। समाचार पत्रक प्रयोजनीयता आ लोकप्रियता सेहो बढ़ैत गेल। छपाइ-यन्त्रहुक विकास क्रमिक होइत गेलैक आ ओहि संग पत्रकारिताक विकास सेहो द्रुत गतिँ बढ़ल जाइत छैक। लोकतंत्रमे तऽ एकरा चारिम खाम्ह कहल गेल अछि। वस्तुतः पत्रकारिता आजुक समयमे समाजक पथ प्रदर्शक एवं नीति-निर्धारित बनि गेल अछि। जन सामान्यक समस्याकँ सम्पूर्ण संसारक समक्ष सम्यक् रूपसँ उपस्थित करबाक ई अपूर्व साधन मानल जाइत अछि।

पौराणिक कालसँ हमरा लोकनिक संस्कृतिमे सूचना-सेवाके स्वीकारल गेल अछि। पौराणिक आख्यानक अनुसार नारद एक गोठ विशेष सम्वाददाता छलाह जे आकाश मार्गसँ भ्रमण करैत एक राजासँ दोसर राजाक दरबार तक सूचना पहुँचा कए स्वर्गलोक आ मध्यलोकक बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करयमे समर्थ छलाह। ओ हुनका लोकनिक कीर्ति-कथा सुनबैत छलाह जे अपन धैर्य, शौर्य, आत्मत्याग आ धर्म परायणताक लेल विशेष सराहनीय छलाह। एहिना त्रेतामे हनुमान द्वारा लंका जाएब आ सीताक सम्बन्धमे जानकारी एकत्रित कए आनब आ महाभारतक समय द्वारपर युगमे संजय द्वारा कएल गेल युद्धक वर्णन जे धृतराष्ट्रकँ सुनाओल गेल छल, पत्रकारितेक अन्तर्गत अबैत अछि।

मुगल कालक संबंधमे ब्रिटिश इतिहासकार बर्नियरक कथन अछि—“मुगलो शासन कालमे जिला भरिक महत्वपूर्ण घटनाक सूचना जिलामे नियुक्त ‘वाकिया नवीस’ सांडनी सवार काफिला अथवा हरकाराक द्वारा भेजैत छलाह। मुगल साम्राज्यक पतनक बादो ‘बाकिया नवीसक’ महत्त्व बनले रहलैक। मुगलकालमे दिल्लीसँ प्रसारित ‘अखबारते-दरबारे-मुअल्ला’ तथा ‘पूनेसँ अखबार’ निकलैत छल से निश्चित अछि। ‘अखबारते-दरबार-मुअल्लाक’ किछु हस्तलिखित प्रति राजस्थानक पुरालेख विभागमे एखनहुँ सुरक्षित अछि।” मुदा एहिमे अवधिक कोनो उल्लेख नहि कएल गेल अछि।

“भारतीय पत्रकारिताक इतिहासवेत्ता लोकनिक मन्तव्य छनि जे संसार सर्वप्रथम दैनिक पत्र कोन प्रकाशित भेल से कहब कठिन अछि, परन्तु किछु विद्वानक मत छनि जे 1340 ई० मे चीन मे ‘पेकिंग गजेट’ नामसँ एक विज्ञप्ति प्रकाशित होइत छल जकरा संसारक प्रथम समाचार पत्र मानल जा सकैत अछि।”¹²

भारतमे पत्रकारिताक आरम्भ अंगरेजी शासनक संगहि आरम्भ भेलैक। 1756 ई० मे पलासीक युद्धक बाद बंगालमे जखन ‘ईस्ट इण्डिया कम्पनी’क शासन सत्ता सुव्यवस्थित भए गेलैक तकर लगभग दू दशक बाद मानव गरिमाक प्रेमी एवं वाक स्वातंत्र्यके महान प्रेमी यूरोपीय (डच) पत्रकार जेम्स अगस्टस हिकी 29 जनवरी 1780 ई० कऽ पहिल भारतीय पत्र ‘हिकीज बंगाल गजेट’ प्रकाशित कएलाह। पत्रक आकार बारह इंच नाम आ आठ इंच चाकर एवं पृष्ठक संख्या दू गोठ मात्र छल। ओ स्वातंत्र्य चेता पत्रकार अपन एहि अंगरेजी पत्रक माध्यमसँ सर्वप्रथम ईस्ट इण्डिया कम्पनीक कार्य शैली एवं नीतिक आलोचना कएलक। एहिसँ क्रोधित भए कम्पनीक गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स पत्रक प्रकाशन पर रोक लगाय देलनि। हिकीजक निर्ममता पूर्वक दमनक किछु समय धरि कोनो पत्र प्रकाशमे नहि आएल। मुदा ओही वर्षक नवम्बर माससँ ‘मेसिंग ओ पीटर’ नामक दू अंग्रेज ‘इण्डियन गजेट’ नामक दोसर पत्र प्रकाशित करय लगलाह। एकरो भाषा अंगरेजिए छल। तकर चारि वर्षक बाद ‘कलकत्ता गजेट’ नामक एक गोठ सरकारी गजेटक प्रकाशन आरम्भ भेल। एही समयावधिमे मद्राससँ एक गोठ तेसर पत्र प्रकाशमे आएल जकर नाम छलैक ‘इण्डिया हेरल्ड’ आ सम्पादक छलाह हम्फ्रेस नामक एक अंगरेज विद्वान।

तेसर स्थान बम्बई अछि जतय सेहो पत्रक विकास संगहि भेल छलैक। 1789 ई० में बम्बईसँ पहिल प्रकाशित होबएवाला पत्र छल ‘बाम्बे डेराल्ड’ जे साप्ताहिक पत्र छल। एक वर्षक बाद 1790 ई० मे अंगरेजक सम्पादकत्वमे ‘बाम्बे केरियर’ नामक पत्रक प्रकाशन भेल जे बाद मे ‘टाइम्स ऑफ इण्डिया’ नामसँ अद्यावधि प्रकाशित भए रहल अछि। 1792 ई० मे बॉम्बे गजेट प्रकाशित भेल। 1799 ई० सँ एकर अतिरिक्त आनोआन ठामसँ अनेक पत्रक प्रकाशन आरम्भ भेल, यथा—‘बंगाल हरकारू’, ‘मॉनिंग पोस्ट’, ‘कलकत्ता कैरियर’, ‘टेलीग्राफ’, ‘ओरियण्टल स्टार’, ‘इण्डिया गजेट’, ‘एशियाटिक मिरर’, आदिक प्रकाशन होबए लागल। एहि ठाम एतबा ध्यातव्य थिक जे भारतवर्षमे एतेक दिन धरि अर्थात् 1818 ई० धरि आन कोनो भारतीय भाषाक पत्रिकाक प्रकाशन नहि भेल। भारतीय भाषामे प्रथम प्रकाशित पत्र कहयबाक अधिकारी बंगला भाषा भेल, जकर नाम ‘दिग्दर्शन’ छल। एकर प्रकाशन वर्ष 1818 ई० आ सम्पादक ‘माशमेन’ छलाह।

एकर बाद कलकत्तेसँ 1821 ई० मे मिरातुल (फारसी) एवं 'संवाद कौमुदी', बंगलामे राजाराम मोहन रायक द्वारा प्रकाशित कएल जाइत छल। हिन्दीक प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' के होएबाक गौरव प्राप्त छैक जकर प्रकाशन 30 मई 1826 ई० मे कलकत्तेसँ एक गैर-हिन्दी भाषा विद्वान संचालक एवं सम्पादक युगल किशोर शुक्ल छलाह। यद्यपि एहिमे सरकारी विज्ञप्ति, विज्ञापन, निविदा आ बाजारक ताजा भाव देल गेल रहैत छल, मुदा एकरा सरकार डाक सुविधा उपलब्ध नहि होएबाक कारणे डेढ़ साल मात्र चललाक बाद 4 दिसम्बर 1827 ई० कए बंद करय पड़लैक। एकर बाद 1829 ई० में 'बंग दूत', 1831 ई० मे ईश्वरचन्द्र गुप्तक 'संवाद प्रभाकर' नामक साप्ताहिक आ 1834 ई० मे प्रजामित्रक प्रकाशन कलकत्तेहिसँ आरम्भ भेल। आ तखन तक देशक अन्यो भाग सभमे आनो-आनो भाषाक पत्र सभ प्रकाशित होबए लागल।

डॉ० रमेश जैनक एक आलेखमे देल गेल अछि-भारतीय समाचार पत्रक अध्ययनसँ जे एक बात समक्ष आयल जे एखन देशमे लगभग पंचानबे भाषा एवं बोली सभमे समाचार पत्रक प्रकाशन भए रहल अछि। जाहिमे प्रमुख भाषा

अछि-हिन्दी, अंगरेजी, तमिल, मलयालम, मराठी, गुजराती, बंगला, उर्दू, तेलगु, कन्नड़, पंजाबी, उड़िया, सिंधी, असमिया, संस्कृत आ कश्मीरी एवं अन्य भारतीय भाषा अछि-कोंकणी, मणिपुरी, खाँकी, लुसाई (मिजो) मैथिली, संथाली, भोजपुरी, गारो, राजस्थानी, थाड़ो, भारा, अंगामी, नागा, हिंदुस्तानी, पैटे, टंगखुल, डोगरी, काबुई, जोऊ, बुदेलखण्डी, हलाबी, मगही, नार, पाली, छत्तीसगढ़, हाड़ोती, गोरखाली (नेपाली) हमार, जैतल, काबुर, कोकबोरोक, मारवाड़ी, मितिलोन, मुरीदारी, पहाड़ी, रोंगमेई आदि। एक विशेष बात ई छैक जे प्रायः सभ भारतीय भाषाक समाचार पत्रक संख्या आ विक्रय संख्यामे लगातार वृद्धि होइत गेल छैक।³

प्रत्येक प्रमुख भाषाक संक्षिप्त विकास क्रम एहि रूपेँ अछि-

1. हिन्दी-भारत मे पत्रकारिताक विकासक किछुए दिनक बाद हिन्दी पत्रिकाक विकास आरम्भ भए गेलैक। किछु इतिहासकार 'दिग्दर्शन'क हिन्दी संस्करणके भारतक पहिल हिन्दी पत्र मानैत छथि, तऽ किछु विद्वान 'दरबार रोजनामचा' के प्रथम मानैत छथि, मुदा आधिकारिक रूपसँ 'उदन्त मार्तण्ड' (1826 ई०) के प्रथम भारतीय हिन्दी पत्र होएबाक गौरव प्राप्त छैक। भारत मे हिन्दी पत्रकारिताक विकासक-यात्राक अध्ययन करबाक लेल एकरा पांच चरणमे बाँटल गेल छैक।
 - (क) प्रथम चरण भारतेन्दु-पूर्व काल 1867 ई० सँ पूर्व युगलकिशोर शुक्ल 1826 ई० मे 'उदन्त मार्तण्ड' कलकत्तासँ प्रकाशित कएलनि मुदा ई अल्पजीवी भेल। पुनः ई 1850 ई० मे 'साम्यदण्ड मार्तण्ड'क प्रकाशन आरम्भ कएलनि मुदा इहो अकाले मरल। 1853 ई० मे 'ग्वालियर गजट' आ 'समाचार सुधावर्षण'क प्रकाशन आरम्भ भेल। 'समाचार सुधावर्षण'के भारतक पहिल दैनिक पत्र होयबाक गौरव प्राप्त छैक। एहि कालक प्रमुख पत्र अछि-देश हितैषी, दूरबीन, सुल्तान उल अखबार, पयामे आजादी, सूरज प्रकाश, प्रजाहित, ज्ञान प्रदायिनी, विधा विलास आदि।
 - (ख) भारतेन्दु काल-एकर आरम्भ 1869 ई० मानल जाइत अछि। हिन्दी पत्रकारिताक आदि गुरु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'कवि वचन सुधा' नामक मासिक पत्रक प्रकाशन 1667 ई० सँ आरम्भ कयलनि। एहि समयमे 1871 ई० मे अल्मोड़ा समाचार आ 1872 मे कलकत्तासँ 'दीप्ति प्रकाश' नामक मासिकक प्रकाशन आरम्भ भेल छल। एकर अतिरिक्त-'बिहार बन्धु' (कलकत्ता), 'सदादर्श' (दिल्ली), 'काशी पत्रिका' (काशी), 'भारत बन्धु' (अलीगढ़), 'मित्र विलास' (लाहौर), 'हिन्दी प्रदीप' (प्रयाग), 'आर्य दर्पण' (शाह जहानपुर) आदि प्रमुख पत्रिकाक प्रकाशन आरम्भ भेल। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अनेक पत्रक सम्पादन कएल गेल, यथा-हरिश्चन्द्र मैगजीन (1873), हरिश्चन्द्र चंद्रिका (1874), कविवचन सुधा (1867), स्वत्व निज भारत गहै (1873) अछि। एकर अतिरिक्त सम्राट (बाल कृष्ण भट्ट) हिन्दी बंगवासी (1890), नागरी प्रचारिणी पत्रिका (1896), श्री वेंकटेश्वर समाचार (1896), आर्यमित्र (1898), चतुर्वेदी (1895), महिला पत्रिका भारत भागिनी (1888), सुगृहिणी (1889), सार सुधा निधि (कलकत्ता) उचित-वक्ता (कलकत्ता), आदि विशिष्ट पत्रक प्रकाशन आरम्भ भेल।
 - (ग) तेसर चरणकें द्विवेदी काल कहल जाइत अछि। किछु गोटे एकरहि तिलक युग सेहो कहैत छथि। एहि युगक आरम्भ 'सरस्वती' नामक मासिक पत्रक प्रकाशनसँ आरम्भ होइत अछि। एकरा हिन्दी पत्रकारिताक गंगा कहल जाइत अछि। एहि समयक प्रमुख पत्र-पत्रिका छैक-समालोचक (1902 जयपुर), हिन्दी केसरी (नागपुर), स्त्रीदर्पण (1904 प्रयाग), अभ्युदय (1907 प्रयाग), भारत (1908 बम्बई), कलकत्ता समाचार (1914 कलकत्ता), सर्व हितैषी (1914 चमरौली), विज्ञान (1915 प्रयाग), विश्वमित्र (1917 कलकत्ता), हिन्दी बिहारी (1917 कलकत्ता)।
 - (घ) चारिम चरणक गाँधी युगक नामसँ संबोधित कएल जाइत अछि। एहि युगमे हिन्दी पत्रकारितामे बहुत बेसी विकास भेल छलैक। सभ पत्रिकाक मुख्य स्वर स्वतंत्रता आन्दोलन छल। एहि कालक मुख्य पत्रिका अछि-आज (वाराणसी), वर्तमान (कानपुर), स्वतंत्र (कलकत्ता), कर्मवीर (जबलपुर), भावनामा (गुजरावाला), चाँद (प्रयाग), सैनिक (आगरा), मतवाला (कलकत्ता), हिन्दु पंच (कलकत्ता), अर्जुन (दिल्ली), कल्याण (गोरखपुर), हिन्दी संसार (दिल्ली), भारत (प्रयाग), वीणा (इन्दौर), त्यागभूमि (अजमेर), विशाल भारत (कलकत्ता), हंस (काशी), विश्वबन्धु (लाहौर), शक्ति (लाहौर), नवज्योति (अजमेर), आर्यावर्त (पटना), संघर्ष (लखनऊ), हिन्दुस्तान (दिल्ली) आदि। एहि कालक पत्र-पत्रिकाक मुख्य स्वर छल अंग्रेजी शासनक नीतिक विरोध कए स्वतंत्रताक लहरि जगाएब।
 - (ङ) पाँचम चरण अछि स्वतंत्रताक बादक युग-एहि कालक प्रमुख पत्र अछि-पायोनियर, स्वतंत्र भारत, नेशन हेराल्ड, नवजीवन, टाइम्स ऑफ इण्डिया, नवभारत टाइम्स, इण्डियन एक्सप्रेस, जनसत्ता, अमृत बाजार पत्रिका, अमृत पत्रिका, सर्चलाइट, प्रदीप, अमर उजाला, दैनिक जागरण आदि।

पत्रकारिता यदि एक दिश सूचना आ समाचारक संकलन सम्पादन, प्रकाशन आ प्रेरणा करैत अछि तऽ अन्याय, दमन प्रतिरोध सेहो करैत अछि एवं रचनात्मक प्रवृत्तिक प्रोत्साहन सेहो करैत अछि। विशिष्ट अर्थमे ई समाजक उच्च मूल्य एवं आदर्शक प्रतिष्ठापनमे सहयोगी होइत अछि।

2. अंगरेजी-हिन्दीक बाद सबसँ बेशी संख्यामे अंगरेजी समाचार पत्र निकलैत अछि। भारती पत्रकारिताक आरम्भे एही भाषासँ भेल अछि। भारतमे प्रकाशित सबसँ पहिल पत्रिका अछि 'हिकी बंगाल गजट' (1780) एखनहु देशक सबसँ पुरान पत्र बम्बईसँ प्रकाशित 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' अछि। एकर प्रकाशनक मुख्य केन्द्र महानगर अछि जतयसँ लगभग दू-तिहाई अंगरेजी पत्र प्रकाशित होइत अछि। प्रमुख पत्र अछि-टाइम्स ऑफ इण्डिया, इंडियन एक्सप्रेस, हिन्दुस्तान टाइम्स, हिन्दू, स्टेट्समैन, अमृत बाजार पत्रिका, टेलीग्राफ, ट्रिब्यून, दक्कन हेराल्ड, कश्मीर टाइम्स, पेट्रियॉट आदि प्रमुख पत्र एवं ब्लिट्ज, रीडर्स डाइजेस्ट, फिल्म फेयर, इंडिया टूडे, संडे मेल, संडे ऑब्जर्वर, इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया आदि उल्लेखनीय अछि।
3. तमिल-तमिलक पत्र-पत्रिकाक प्रकाशन मुख्य केन्द्र तमिलनाडु विशेष रूपसँ मद्रास महानगर अछि। तिरुनेलवेली, डायोसेसन मगजीन, तमिल मासिक एवं तिरुनेलवेली (1849) तमिलक प्राचीन पत्र अछि। एकर अतिरिक्त-दिणामणि, डेली थांथी, अन्ना, दिनाकरण, मोक्कुल कुराल एवं दिनामलार दैनिक पत्र अछि आ प्रमुख पत्रिका-कुमुदम, वारांतरी रानी, आनंद विकेतन, तुगलक, देवी, रानी मधु आदि उल्लेखनीय अछि।
4. मलयालम-मलयालम भाषाक समाचार पत्रक मुख्य केन्द्र केरल अछि। 'दीपिका' (1887) कोट्टायमक प्राचीनतम पत्र अछि। प्रमुख दैनिक पत्र अछि मलयाला मनोरमा, केरल कौमुदी, मातृभूमि, दीपिका एक्सप्रेस, देशाभिमानी, केरल पत्रिका, केरल भूषमम् एवं जनयुगम् आ पत्रिका मंगलम, मलयाला मनोरमा (साप्ताहिक), मनोराज्यम्, साखी, बलराम, कुमारी, केरल शब्दम्, गृहलक्ष्मी, स्नेह, सेना आदि अछि।
5. मराठी-एकर मुख्य केन्द्र महाराष्ट्र अछि। प्रथम मराठी पत्र अछि पवलगाँव समाचार एकर प्रकाशन वर्ष 1863 ई० अछि। मराठीक प्रमुख दैनिक पत्र अछि-लोक सत्ता, सकाल, महाराष्ट्र टाइम्स, केसरी, लोकमत, तरुण भारत, मुंबई सकाल, नवाकाल, नवशक्ति, संध्याकाल, प्रभात, गाँवकारी, संचार, नागपुर, पत्रिका, मराठबाड़ा आ प्रमुख पत्रिका शेतकारी, लोक प्रभा, क्रीडागण, व्यापारीमित्र, स्वराज्य, चंदोबा, मार्मिक आदि उल्लेखनीय अछि।
6. गुजराती-गुजराती पत्र-पत्रिकाक प्रमुख केन्द्र अहमदाबाद आ बम्बई अछि। बम्बईसँ प्रकाशित 'बम्बई समाचार पत्र' गुजरातीक सभसँ पुरान पत्र अछि। 1822 ई० में आरम्भ भेल छल। एखन प्रमुख रूपसँ 'मुम्बई समाचार', जामे जमशेद, खेड़ा वर्तमान, गुजरात मित्र, गुजरात दर्पण, फूलछाब, संदेश, गुजरात समाचार एवं लोक सत्ता आदि अनेक पत्र प्रकाशित भए रहल अछि।
7. बँगला-भारत पत्रकारिताक आदि भूमि कलकत्ता रहल अछि। एकर प्रथम पत्र 'दिग्दर्शन' अछि जकर प्रकाशन 1818 ई० मे आरम्भ भेल छल। तत्काल प्रकाशित पत्रमे सबसँ पुराना 'मुर्शिदाबाद हितैषी' (1893, मुर्शिदाबाद) तथा 'चिनौरिया वरतया' (हुगली) अछि। प्रमुख दैनिक-आनंद बाजार पत्रिका, जुगांतर, आजकल, वसुमति, गणशक्ति, सत्ययुग आदि एवं प्रमुख पत्रिका-देश, आनंद मेल, संग्रामी हथियार, आनंद लोक, वर्तमान, सुकताश आदि अछि।
8. असमिया-एकर प्रकाशनक प्रमुख केन्द्र गुवाहाटी अछि। एकर प्रमुख पत्र 'दैनिक असम' अछि आ पहिल 'जन्मभूमिक'क प्रकाशन 1947 ई० मे जोरहटसँ भेल छल।
9. कन्नड़-कन्नड़ भाषाक प्रमुख केन्द्र कर्नाटक अछि। एकर प्रथम पत्रिका 'कन्नड़ समाचार' जकर आरम्भ 1812 ई० मानल जाइत अछि। एकर प्राचीनतम समाचार पत्र 'सुबोध चन्द्रिका' दिनाचारी दैनिक आदि प्रमुख पत्र तथा सुधा, तरंग, प्रजामाता, लंकेश पत्रिका, मयूरा, उदयवाणी, रूपधारा आदि उल्लेखनीय पत्रिका अछि।
10. उड़िया-एकर सभसँ प्राचीन दैनिक समाचार पत्र 'समाज'क प्रकाशन 1915 ई० सँ आरम्भ अछि। ओना एकर प्रथम पत्रिका 'उत्कल दीपिका' सन 1867 ई० मे प्रकाशित भेल। एकर प्रमुख दैनिक पत्र समाज, प्रजातंत्र, संवाद, खबर, कागज, प्रगतिवादी आदि आ प्रमुख पत्रिका सुचरिता आ पौरुष अछि।
11. पंजाबी-एकर 'खालसा समाचार' सभसँ प्राचीनतम साप्ताहिक पत्र छल जकर प्रकाशन 1819 ई० मे आरम्भ भेलैक। एकर प्रमुख दैनिक-अजित, पंजाबी, ट्रिब्यून, जगवाणी, अकाली पत्रिका आदि अछि। कौमी रणजीत, संत सिपाही, सचित्र पंजाबी पत्रिका आदि लोकप्रिय पत्रिका अछि।
12. संस्कृत-संस्कृत सभसँ प्राचीन देवभाषा होइतहु एकर पढ़यवाला एवं बाजयवालाक अभावक कारण एकर कोनो पत्र-पत्रिका सुदृढ़ रूपसँ विकसित नहि भए सकल। 'संस्कृत साहित्य परिषद्' संस्कृत प्राचीनतम विद्यमान पत्रिका अछि जे कलकत्तासँ 1919 ई० सँ प्रकाशित भए रहल अछि।
13. सिंधी-सिंधी भाषीक कोनो विशेष क्षेत्र नहि होएबाक कारणेँ एकरहु पत्रिकाक विकास सम्यक रूपसँ नहि भेल छैक। एकर प्राचीनतम पत्रिका 'इयाम' साप्ताहिक 1938 ई० मे प्रकाशित भेल छल।
14. तेलुगु-आन्ध्र प्रदेशक प्रमुख भाषा तेलुगु अछि। मद्राससँ प्रकाशित 'दुधवाणी' (1887) एकर प्राचीनतम विद्यमान पत्र अछि। एकर प्रमुख दैनिक पत्र अछि-इडालु, आंध्रज्योति, आंध्रप्रभा, आंध्र पत्रिका आदि प्रमुख पत्रिका आंध्रभूमि, सचित्र बारा पत्रिका, ज्योति चित्रा, आंध्र ज्योति, बाला ज्योति आदि उल्लेखनीय अछि।
15. उर्दू-हैदराबादसँ प्रकाशित 'मुशीर-ए-दक्कन, उर्दू भाषा सभसँ प्राचीनतम दैनिक पत्र अछि। एकर प्रकाशन 1884 ई० सँ आरम्भ भेल छल। एकर अतिरिक्त प्रमुख दैनिक प्रताप, मिलाप, सियासत, रहनुमा-ए-दक्कन, रोजाना सिंह, आजाद हिंद एवं प्रमुख पत्रिका खातून-ए-मशरिक, मासिक शमा, मस्ताना, कौमी आवाज आदि लोकप्रिय अछि। उर्दूक सभसँ बेशी पत्र-पत्रिका बिहारसँ प्रकाशित होइत अछि।
16. मैथिली-मैथिली पत्रकारिताक उदय 1905 ई० मे 'मैथिल हित साधन'क प्रकाशन सँ आरम्भ होइत अछि। एकर सम्पादक छलाह विद्यावाचस्पति मधुसूदन झा। पुनः काशीसँ मिथिला मोदक प्रकाशन भेल। एकरा बाद विकासक पथ पर अग्रसर होइत विभिन्न ठामसँ विविध स्वाद ओ महत्त्वसँ परिपूरित पत्र-पत्रिकाक प्रकाशन होइत रहल अछि, जाहिमे प्रमुख अछि-वैदेही, मिथिला-मिहिर, मैथिल प्रभा, भारती विभूति, स्वदेश, बटुक, धीया-पूता, आखर, सोना माटि, कोसी कुसुम, स्वाती, घर-बाहर, मिथिला-दर्शन, भारती मंडन, कर्णामृत इत्यादि।

पत्र पत्रिकाक विषय वस्तु-

समाचार पत्रक प्रमुख उद्देश्य पाठक लोकनिकें घटनाक जानकारी देब होइत छैक, चाहे ओ घटना राजनीतिक हो अथवा आर्थिक, समाजिक, नैतिक आकि धार्मिक। आजुक समयमे आर बहुत वस्तुक जानकारीक संग मनोरंजनक विशेषता पाओल जाइत अछि।

पत्रकारिताक प्रथम चरणमे धार्मिक चेतना, साहित्यिक चेतना आ जन-जागरण स्वर विशेष रूपसँ रहैत छल। दोसर चरणमे साहित्यिक विकासक संगहि शिक्षाक विकास एवं अंग्रेजी शासनक गलत नीतिक विरोधक स्वर मुखरित होबए लागल छल।

तेसर चरणकें द्विवेदी युग कहल जाइत अछि आ तिलक युगक नामसँ संबोधित “एहि युगमे हिन्दीके साहित्यकार आ पत्रकार पर बड़ गम्भीर दायित्व आबि गेल छल जाहिसँ साहित्यिक पत्रकारिताक उदय भेलैक। साहित्यिक क्षेत्रमे ‘सरस्वती’ क प्रभाव पूर्ववते कार्य कए रहल छल आ स्वतंत्रताक राष्ट्रीय लक्ष्य पहिलेसँ प्रखर भए गेल छल। एहि कालमे माधुरी, सुधा, मतवाला, विशाल, भारत, शान्ति, चौद, देश, आर्यमित्र आ अजमेर आदि प्रमुख पत्र छल।”⁴

चारिम चरणक विकासमे गाँधीजीक एवं काँग्रेसक नेतृत्वमे भारतमे राजनीतिक उठा-पटक एवं अंगरेजक दमनकारी नीतिसँ पत्रिकाक मुख्य स्वर स्वतंत्रता संग्राम रहल। ओहि समय प्रायः जतेक प्रमुख नेता छलाह कोनो ने कोनो पत्र अवश्य निर्गत करैत छलाह अथवा कोनो ने कोनो पत्र-पत्रिकासँ निश्चित रूपसँ जुड़ल छलाह। पत्र-पत्रिकामे आन्दोलनमे कएल गेल क्रिया-कलाप एवं अंगरेज द्वारा कएल गेल दमनात्मक कार्यक विवरण देल जाइत छलैक। अंतिम चरणमे जखन देश स्वतंत्र भए गेल तऽ पत्र-पत्रिको नव-प्रभातक निर्मल प्रकाशमे चहुमुखी विकास संग सम्मुख आएल। आब देशमे व्याप्त गरीबी, भूखमरी, बाढ़, रौंदी, सरकारक विकास योजना आदिक वर्णनक संग मनोरंजनक संसाधन सभ जुटाओल जाए लगल। पत्रिकाक वर्गीकरण भए गेल राजनीतिक पत्रिका यथा इंडिया टूडे, धार्मिक पत्रिका यथा कल्याण, मनोरंजन यथा फिल्म फेयर आदि अस्तित्वमे आबि गेल।

पत्रकारिताक उद्देश्यमे कहल गेल अछि जे ई पत्रकारिता यदि एक दिश सूचना आ समाचारक संकलन, सम्पादन, प्रकाशन आ प्रेषण करैत अछि तऽ दोसर दिश ओ वर्तमान समयक धड़कनकें अनुभव करबाक माध्यम सेहो अछि। अन्याय आ दमनक विरोध करैत अछि आ रचनात्मक प्रवृत्तिकें प्रोत्साहित करैत अछि। व्यापक अर्थमे ओ समाजमे उच्च मूल्य आ आदर्शक प्रतिष्ठापनमे सहयोगी बनैत अछि।

एहि एकैसम शताब्दीमे पत्रकारितामे उपग्रह, कम्प्यूटर एवं इलेक्ट्रॉनिक्सक विकासक परिणाम स्वरूप आमूल-चूल परिवर्तन आबि गेल अछि। मानव समुदाय अधिक चौतन्य आ संवेदनशील भए गेल अछि। इलेक्ट्रॉनिक्स आविष्कारक फलस्वरूप संचारक विस्मयकारी उपकरण उपलब्ध भए रहल छैक। जाहिसँ समाचार संकलन, सम्पादन, मुद्रण, प्रतिशोधन, प्रकाशन आ प्रसारणमे विशिष्ट परिवर्तन दृष्टिगत होइत अछि। आइ कम्प्यूटर-क्रांतिक कारण समाचार-पत्रक स्वरूपे बदलि गेल छैक। विडियोके कारण घर-घर मे दिन-प्रतिदिन मनोकूल फिल्म तैयार भए रहल छैक। टेलीवीजन आ सोशल मीडियाक प्रभावसँ क्षणमे विविध समाचारक जानकारी भेटि जाइत अछि।

भारतीय भाषामे पत्रकारिताक विकासक संदर्भमे डॉ० नगेन्द्रक विचार अछि-“नव अर्थव्यवस्था आओर नवीन शिक्षापद्धतिक कारण भारतीय जनतामे एक-एक गोठ एहन चेतना उत्पन्न भेलैक जाहि आधार पर लोक अपना कठिनाइके बुझबाक लेल आ ओकरा दूर करबाक लेल प्रयत्नशील भए गेल। एहि लेल प्रेससँ सुन्दर आओर कोनो साधन नहि भए सकैत छल। भारतमे मुद्रण-यंत्र स्थापित करबाक श्रेय पुर्तगाली लोकनिकें छनि। सन् 1550 ई० मे ओ लोकनि दू गोठ यंत्र मंगबाकय धार्मिक पुस्तक छापब आरम्भ कएलनि। अठारहवीं शताब्दीमे मद्रास, कलकत्ता, हुगली, बम्बई आदि स्थान पर छापखानाक स्थापना भेलैक। पहिले अंग्रेज आ मिशनरी लोकनि समाचार पत्र निकालव आरम्भ कएलनि। परंतु अपना देशक संदर्भमे पत्र निकालबाक पहिल प्रयास राजाराम मोहन राय द्वारा भेल। सन् 1821 ई० मे ‘संवाद कौमुदी’ नामक साप्ताहिक बंगला पत्रक प्रकाशन आरम्भ भेल।”

एवंविध भारतीय पत्रकारिताक जन्म स्थान कलकत्ता बनल ओहि ठामसँ प्रथम भारतीय भाषाक पत्रक रूपमे 1818 ई० मे ‘दिग्दर्शन’क जन्मसँ आरम्भ भेल। ओ आरम्भमे तऽ द्विभाषी छल मुदा बाद मे शुद्ध बंगला बना देल गेलैक। दोसरो पत्र संवाद-‘कौमुदी साप्ताहिक’ बंगले भाषाक पत्र छल। 1826 ई० मे प्रथम हिन्दी पत्र ‘उदन्त मार्तण्ड’क उदय भेल। एकरा बादसँ गुजराती, उर्दू, मराठी आदि भाषाक संगहि आनो आन भाषाक पत्र-पत्रिकाक प्रकाशन आरम्भ भेल। एखन सभ भाषा मिलाय लगभग एक हजारसँ अधिक पत्र-पत्रिकाक प्रकाशन भए रहल अछि। आजुक युगमे एकरा प्रजातंत्रक चारिम खाम्ह कहल जाय रहल छैक। एकर महत्ता विश्व-गाँवक परिकल्पनासँ आओर बेशी बढ़ि गेल छैक। जाहिमे लोक गाम-घरक संगहि देश-विदेशक समाचार सुनबाक लेल आ पढ़बाक लेल बेचौन रहैत छथि।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. हिन्दी पत्रकारिताक इतिहास, मीनाक्षी सिंह, पृ०-62
2. पत्र और पत्रकार, श्री कमलापति त्रिपाठी, पृ०-73
3. भारतीय पत्रकारिता, कल आज और कल, सं० गौतम, पृ०-15
4. हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, मीनाक्षी सिंह, पृ०-42
5. तथैव, पृ०-55
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० नगेन्द्र, पृ०-436

आधुनिक भारत में नारी

उमेश सिंह

शोध छात्र- समाजशास्त्र विभाग, शोध केन्द्र-सल्लनत बहादुर पी0जी0 कालेज, बदलापुर जौनपुर, उ0प्र0।

इतिहास साक्षी है, नारी किसी भी रूपों में पुरुषों से पीछे नहीं रही हैं। नारी ने अपनी कार्य कुशलता, दक्षता व पौरुषत्व के बल पर यह सिद्ध कर दिया है कि यदि वे एक बार संकल्प कर ले तो जीवन के हर क्षेत्र में अपनी उच्चता एवं विशिष्टता सिद्ध कर सकती हैं। भारतीय नारियों में वह शक्ति अभी भी मौजूद है, जिसे पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। नारी शोषण की समाप्ति व अत्याचार का खात्मा नारी चेतना व नारी जागरण से ही सम्भव है। नारी चेतना के प्रस्फुटन से ही पुरुष प्रधान समाज के वर्चस्व की समाप्ति होगी। नारी समाज में परिवर्तन से ही भारतीय समाज में परिवर्तन आयेगा।

विगत सात-आठ दशकों में नारी संबंधी अध्ययन व महिला उत्थान विषयक विचार धाराओं ने बौद्धिक जगत में एक केन्द्रीय व प्रमुख स्थान अर्जित किया है। इन विचार धाराओं के विकास की प्रक्रिया को सामाजिक स्थितियों व उनमें होने वाले परिवर्तन की गति से जोड़कर करके देखा जा सकता है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में प्रजाति, जाति, वर्ग व अन्य सामाजिक श्रेणियों में गतिशीलता के आयाम स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं। औद्योगिक क्रांति के बाद न केवल शैली व सांस्कृतिक मूल्यों में बदलाव आये, बल्कि सामाजिक संरचना में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन उभर कर प्रस्तुत हुये हैं। नये व्यवसायों के प्रादुर्भावों से सामाजिक गतिशीलता को एक आधार मिला तथा आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया में व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा सामाजिक समानता को संस्थात्मक माध्यमों से क्रियान्वित किया गया। प्रजातंत्र की व्यवस्था व्यक्ति को समान मताधिकार तथा भागीदारी का अवसर प्रदान करती है। समानता तथा स्वतंत्रता की अवधारणाओं ने समूहों के परस्पर विभेदों को हटाकर समान अधिकारों के उपयोग की व्यवस्था प्रस्तुत की है। इसी सम्बन्ध में नर तथा नारी के संबंधों व परिस्थितियों की असमानता एक आवश्यक प्रश्न के रूप में उभरा है।

आधुनिकपरिपेक्ष्य में महिलाओं की प्राथमिकताएं और उनकी समस्याएं भी पूरी तरह बदल गई हैं। इस परिवर्तन का एक कारण जनसंचार भी है। “आज उपभोक्ता संस्कृति ने महिलाओं के लिए घर-परिवार और समाज के प्रति उसकी सोच में व्यापक परिवर्तन ला दिया है।” इस सोच को विकसित करने में कहीं न कहीं जनसंचार की भी अहम् भूमिका रही है।

महिलाओं के लिए आज जनसंचार उनकी जीवनशैली का एक अभिन्न अंग बन गया है। जिसप्रकार से हमारी बुनियादी जरूरतें सांस लेना और भोजन हैं, उसी तरह मीडिया भी आज महिलाओं के लिए एक बुनियादी जरूरत बन गया है। महिलाओं द्वारा जनसंचार का प्रयोग सूचनाआदान-प्रदान के लिए किया जाए, जानकारी, मनोरंजन या फिर अपने काम के लिए, मीडिया से जुड़ाव व मीडिया पर महिलाओं की बढ़ती निर्भरता के कारण पिछले कुछ दशकों में पूरे विश्व में महिलाओं की जीवनशैली में बदलाव देखने को मिला है।

वस्तुतः मानव समाज का इतिहास महिलाओं को 'सत्ता' 'प्रभुसत्ता' एवं शक्ति से दूर रखने का इतिहास है। इसलिए प्रत्येक देश, प्रत्येक काल, प्रत्येक जाति, प्रत्येक धर्म में महिलाओं को पुरुषों के सामान न आने देने की संरचनात्मक व सांस्कृतिक बाधिताएँ बनाई गई हैं। महिला विमुक्ति आंदोलन अथवा महिला अधिकारवाद आंदोलन में मुख्यतः दो धारणाओं पर बल दिया जाता है—(क) समानता का अधिकारवाद, (ख) भेद-विभेद का अधिकारवाद। समानता का अधिकारवाद पुरुष एवं स्त्री इन दोनों लिंगों में समानता का प्रतिपादन करता है और यह मानता है कि जो कार्य पुरुष कर सकते हैं वही कार्य उतनी ही दक्षता एवं कुशलता से स्त्री भी कर सकती है। असमानता की स्थिति मुख्यतः समाज की पितृसत्तात्मक अथवा पुरुष-प्रधान व्यवस्था के कारण जन्म लेती है, जो स्त्री को कुछ विशेष कार्यों, तथा घर-गृहस्थी, बच्चों का लालन-पालन इत्यादि तक ही सीमित कर देती है। इस व्यवस्था में एवं इस व्यवस्था से महिलाओं की रचनात्मक एवं सृजनात्मक प्रतिभा संकुचित एवं कुंठित हो जाती है। भेद-विभेद का अधिकारवाद पुरुष एवं महिला जगत में शारीरिक एवं प्राकृतिक भेद की सार्वभौमिकता को स्वीकारता है। नारी की प्रस्थिति के रूपान्तरण के लिए जरूरी है कि महिलाओं को शक्ति के सभी क्षेत्रों में इच्छित चयन की आजादी हो। संरचनात्मक भेद-भाव व दिन-प्रतिदिन की विषमताओं को दूर किया जाए तथा उसे अपने फैसले लेने की स्वतंत्रता हो।

भारत में बढ़ते समय के साथ पुत्री, पत्नी और विधवा की स्थिति, शक्ति एवं पद में क्रमिक परिवर्तन होता रहा। महिलाएँ परिवार, धर्म और सार्वजनिक जीवन के क्षेत्र में पहले पर्याप्त स्वतंत्रता और विशेषाधिकारों का उपयोग करती थीं पर ज्यों-ज्यों इतिहास के रथ के चक्र बढ़ते गए और शताब्दियों के बाद शताब्दियाँ बीतती गई उनकी स्थिति में क्रमिक परिवर्तन और ह्रास आता गया। पर यदि समग्र रूप से देखा जाये तो मध्यकालीन भारत में विधवाओं और वैश्याओं की दयनीय स्थिति सती प्रथा और पर्दा के अभिशाप के अलावा हिन्दू स्त्रियों की स्थिति सामान्यतः संतोषजनक थी।

विश्व के सभी उन्नतशील देशों में विकास का वास्तविक अर्थ मानव का विकास है, मानव में समताओं का विकास, मानवके विकास मार्ग में आने वाली समस्याओं का निवारण, रहन-सहन की परिस्थितियों का ऐसा निर्माण जिनमें मनुष्य के मन पर कम से कम दबाव रहे और वे सब साथ-साथ सुख से जी सकें।

आज यह प्रायः सर्वतः स्वीकार किया जा रहा है कि अभी भी कई ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें स्त्रियों को पुरुषों के समान दर्जा नहीं मिल पाया है। इसलिए लोगों का ध्यान उन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कारकों की ओर जा रहा है जिनमें फलस्वरूप स्त्रियों का स्थानपुरुषों की तुलना में नीचे है, सरकारें कानून

बनाकर और अपेक्षित जनमत तैयार करके सामाजिक आचरण में बदलाव लाने का प्रयास कर रही है जिससे स्त्रियों की दशा में सुधार हो सके और वे पुरुषों के समान प्रतिष्ठा पा सकें। भारत और संसार के विभिन्न भागों में जारी स्त्री आंदोलनों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यक्रमों एवं लोगों के सोच में बदलाव की गति काफी धीमी है। वास्तविक समस्या यह है कि परिवर्तन की इस गति को तेज कैसे किया जाए, समाज में स्त्रियों की वास्तविक भूमिका तथा महत्व को समझा जाए और उन्हें विकास के एक आवश्यक साधन के रूप में मान्यता मिले। सितम्बर 1995 में बिजिंग (चीन) में स्त्रियों के संबंध में था चौथा विश्व सम्मेलन हुआ था। इन सम्मेलन ने स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए एक कार्यक्रम बनाया है। भारत ने उस कार्यक्रम को स्वीकारा है और उसे पूरा करने के लिए वचनबद्ध है। नारी जागृति के विषय में वैश्विक धरातल पर जो वाद-विवाद चल रहा है भारत उसमें बराबर भाग लेता आया है। स्त्री और पुरुष की बराबरी का विचार भारतीय चिंतन का बुनियादी तत्व है। भारत में पिछली दो सदियों में अनेक नारी आंदोलन हुए हैं। शुरू में ये आंदोलन सामाजिक प्रश्नों तक सीमित थे। बाद में ये आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन के अभिन्न भाग बन गए। 1950 में भारत का नया संविधान बना। संविधान में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार दिए और राज्य ने अपेक्षा की कि वह स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए विशेष कानून बना सकता है। भारत के पहले विधि मंत्री डॉ० बी० आर० अम्बेडकर ने अस्थायी संसद में हिन्दू कोड बिल पास कराने की कोशिश की। यह बिल आधुनिक भारत का एक महत्वपूर्ण कानून था। इस बिल का उद्देश्य स्त्रियों एवं पुरुषों को समानता का अधिकार देना था।

भारतीय संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान बनाये गये हैं। जिसके अंतर्गत महिलाओं को आर्थिक लाभ का अवसर प्राप्त हो सके, जिससे समाज में वे अपनी स्थिति को ऊँचा उठा सकें। जनसंचार के साधनों द्वारा भी महिलाओं को उनके आर्थिक अधिकारों के लिए जागरूकता प्रदान की जाती है। अर्थके क्षेत्र में महिलाओं की पुरुषों पर निर्भरता को समाप्त करने हेतु सरकार ने सर्वप्रथम पारिवारिक श्रेणी का प्रयास किया। संसद ने उत्तराधिकार अधिनियम 1956 पास किया, जिसमें यह प्रावधान किया गया कि पुत्रियों को भी पिता की सम्पत्ति में पुत्रों के समान अधिकार और पति की सम्पत्ति में पति के बराबर का अधिकार है।

स्वतंत्रता के बाद विशेषतः संचार-साधनों के प्रयोग आधुनिक शिक्षा के प्रसार एवं तकनीकी विकास के कारण महिलाएँ आत्मनिर्भर होने में काफी हद तक सफल हुई हैं। शिक्षा क्षेत्र में पुरुषों के बराबर अवसर मिलने के कारण वे पुरुषों से आगे निकलती दिख रही हैं। आज के विभिन्न प्रशासनिक और गैर प्रशासनिक सेवाओं में नियुक्ति पाकर देश एवं समाज की सेवा कर रही हैं।⁴

वर्तमान में दूरदर्शन, केबल चैनल, मोबाइल, इण्टरनेट ने विश्व की परम्पराओं एवं सूचनाओं को सुदूर भारतीय ग्रामों तक पहुँचाया है, जिसके कारण भारतीय रूढ़िवादी दृष्टिकोण बदल रहे हैं। महिलाओं के प्रति लोगों की सोच बदल रही है। ये सब प्रयास महिलाओं को विवाह करने की स्वतंत्रता और विवाह की बाधिता तथा उच्च शिक्षा और सेवा के प्रति समाज के दृष्टिकोण को बदल रहा है। आज संचार के साधन महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका परिवर्तन में आवश्यक भूमिका निर्वाह कर रहे हैं। संचार के माध्यमों से हिंसा कानून, समान वेतन कानून, गोद लेने सम्बन्धी कानून और सम्पत्ति में स्त्रियों के अधिकार की जानकारी सहित ऐसी अनेक आवश्यक सूचनाएं प्रदान की जा रही हैं। जो कि उनके जीवन की अनेक समस्याओं को बेहतर ढंग से सुलझाने की क्षमता प्रदान करती हैं।

भारत सरकार का महिला एवं बाल विकास विभाग लगातार महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को उन्नत करने का प्रयास कर रहा है और कई योजनाएं बना रहा है। इस दिशा में कुछ अन्य सरकारी, गैर- सरकारी, संस्थाएं भी काम कर रही हैं, लेकिन जब से मीडिया इस दिशा में आया है, तब से उल्लेखनीय परिणाम प्राप्त हो रहे हैं। आज सरकारी योजनाओं की सभी जानकारी का महिलाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ रहा है। अंत्योदय योजनाएं, महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना, जननी सुरक्षा योजना, राष्ट्रीय महिला आयोग और अन्य योजनाएं महिलाओं की स्थिति और भूमिकाओं को बदल रही हैं।

संदर्भ

- 1 सारस्वत, डॉ० ऋतु, 2017, पुरुषवादी मानसिकता बदलने की जरूरत, राजस्थान पत्रिका, जयपुर।
- 2 लिमये, संध्या, 2017, निशक्तीकरण, योजना, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली।
- 3 अजिज, अब्दुल, 2015, भारत में महिला सशक्तीकरण, अनमोल प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
- 4 मुहम्मद नईम, 2014, महिला सशक्तीकरण, यूनिवर्सिटी प्रकाशन, नई दिल्ली।

समाज तथा राष्ट्र की प्रगति में शिक्षा का स्वरूप

विकास सिंह

शोध छात्र- बी०एड० विभाग, शोध केन्द्र-सल्लनत बहादुर पी०जी० कालेज, बदलापुर जौनपुर, ३०५०१

शिक्षा को सदैव से ही समाज तथा राष्ट्र की प्रगति के एक महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली साधन के रूप में ग्रहण करता है। इसी वजह से प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक सदैव ही शिक्षा को सामाजिक तथा राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से एक सम्मानजनक स्थान दिया जाता रहा है।

'प्राचीन काल में शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त संकुचित तथा एकाकी था। उस समय प्रायः शिक्षा को सूचनाएँ प्राप्त करने तक सीमित माना जाता था। छात्रों की आवश्यकताओं, परिस्थितियों, क्षमताओं, रुचियों आदि का शिक्षा प्रक्रिया में कोई स्थान नहीं था।

शिक्षा

किसी भी शब्द के अर्थ को समझने का सबसे सहज तथा स्वाभाविक ढंग उस शब्द के शाब्दिक अर्थ को जानना है। शाब्दिक अर्थ से शब्द की उत्पत्ति का ज्ञान होने के साथ-साथ उसका अर्थ भी कुछ सीमा तक स्पष्ट हो जाता है। अतः शिक्षा शब्द का अर्थ समझने के लिए पहले इसके शाब्दिक अर्थ को जानना उचित ही होगा। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष' धातु में अ प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष' का अर्थ सीखना और सिखाने से होता है। अतः 'शिक्षा' शब्द का शाब्दिक अर्थ-सीखने व सिखाने की क्रिया से है। 'शिक्षा' शब्द के लिए अंग्रेजी में 'एजुकेशन' (Education) शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'एजुकेशन' शब्द लैटिन भाषा के 'एजुकटम' (Educatum) शब्द से विकसित हुआ है तथा 'एजुकटम' शब्द इसी भाषा के ए (E) तथा ड्यूको (Duco) शब्दों से मिलकर बना है। ए (E) का अर्थ- अन्दर से है, जबकि ड्यूको (Duco) का अर्थ- आगे बढ़ाना है। अतः 'एजुकेशन' शब्द का अर्थ- अन्दर से आगे बढ़ाना होता है। प्रश्न यह उठता है कि यहाँ पर अंदर से आगे बढ़ाने से क्या तात्पर्य है। वास्तव में प्रत्येक बालक के अन्दर जन्म के समय कुछ जन्मजात शक्तियाँ (Innate Powers) बीज रूप में विद्यमान रहती हैं। उचित वातावरण के सम्पर्क में आने पर शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं, जबकि उचित वातावरण के अभाव में ये शक्तियाँ या तो पूर्णरूपेण विकसित नहीं हो पाती हैं अथवा अवांछित रूप ले लेती हैं। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की जन्मजात शक्तियों को अंदर से बाहर की ओर उचित दिशा में दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि 'एजुकेशन' शब्द का प्रयोग व्यक्ति या बालक की आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर करने अथवा विकसित करने की क्रिया के लिए किया जाता है। लैटिन के 'एडुकेयर' (Educare) तथा 'एजुशियर' (Educere) शब्दों को भी 'एजुकेशन' शब्द के वास्तविक के रूप में माना जाता है। इन दोनों शब्दों का अर्थ भी आगे बढ़ाना (To Bring Up), बाहर निकालना (To Lead Out) अथवा विकसित करना (To Raise) है। स्पष्ट है कि शिक्षा तथा इसके अंग्रेजी पर्यायवाची 'एजुकेशन' (Education) दोनों ही शब्दों का शाब्दिक अर्थ मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों को आगे बढ़ाने वाली, विकसित करने वाली अथवा बाह्य प्रस्फुटन करने वाली प्रक्रिया है। अतः परिमाण है कि शिक्षा शब्द का अर्थ समान्यतः जन्मजात शक्तियों का सर्वांगीण विकास करने की प्रक्रिया से लगाया जाता है।

शिक्षा शब्द के वास्तविक अर्थ को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों के द्वारा शिक्षा के अर्थ के सम्बन्ध में प्रकट किये गये विचारों का अवलोकन एवं विश्लेषण करना आवश्यक होगा। शिक्षा की कुछ परिभाषाएँ अग्रकित प्रस्तुत की जा रही हैं-

स्वामी विवेकानन्द - मनुष्य को जन्म से पूर्ण (Perfect) स्वीकार करते थे तथा उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य उसकी पूर्णता को प्रस्फुटित करना था। उनके

Education is the manifestation of perfection already present in man-Swami Vivekanand

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने शिक्षा को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं अध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट किया। उनके शब्दों में- "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक तथा मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्तम विकास से है।"

By Education I mean an all round drawing out of the best in child and man-body, mind and spirit.-Mahatma Gandhi

प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक सुकरात के अनुसार- "शिक्षा का अर्थ उन सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत विचारों को विकसित करना है जो प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में छिपे हुये हैं।"

Education means the bringing out of the ideas of universal validity which are latent in the mind of everyman.-Socrates

अरस्तु ने शिक्षा के द्वारा शारीरिक तथा मानसिक विकास पर बल देते हुए शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा था कि - मस्तिष्क का निर्माण करना ही शिक्षा है।"

Education is the creation of a sound mind in a sound body.-Aristotle

विभिन्न विद्वानों तथा शिक्षाविद् के द्वारा 'शिक्षा' वर्ण की दी गयी उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा एक ऐसी सोद्देश्यपूर्ण, सतत, गतिशील तथा सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात एवं अन्तर्निहित शक्तियों का विकास किया जाता है तथा जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति अपने बाह्य जीवन में अधिक अच्छे ढंग से समन्वय आधारित करने में योग्य होता है। अतः लेखक के विचार से शिक्षा शब्द को व्यापक अर्थ परिभाषित किया जा सकता है-

“शिक्षा जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त निरन्तर चलने वाली वह सोद्देश्य सामाजिक व्यक्ति की समस्त जन्मजात एवं अन्तर्निहित शक्तियों का सर्वोत्तम एवं सर्वांगीण विकास करके उसके व्यवहार का अधिकतम सम्भव परिमार्जन किया जाता है, जिससे व्यक्ति अपना जीवन आनन्दपूर्वक ढंग से व्यतीत करने में समर्थ हो सके तथा समाज का एक सुयोग्य, उपयोगी तथा कर्तव्यनिष्ठ नागरिक बन सके।”

“Education is that purposeful social process which runs from birth to death continuously and by and which a person's behaviour is modified through optimum around development of all of his innate and inherent powers so that he may be able to lead his happily and be a able, useful and dutiful citizen of the society.”

स्पष्ट है कि शिक्षा व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए ही अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा बच्चे का चारों ओर विकास हो सकता है तथा अपने सर्वांगीण विकास के माध्यम से वह एक सभ्य समाज तथा उत्कृष्ट राष्ट्र का निर्माण करता है। शिक्षा का मूल उद्देश्य मानव को अज्ञानता रूपी अंधकार से ज्ञान रूपी प्रकाश की ओर ले जाना है। बालक सर्वप्रथम शिक्षा माता-पिता तथा परिवार के सदस्यों से प्राप्त करता है। कुछ समय बाद वह समाज के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करता है और वह समाज में घुल-मिल जाता है तथा समाज के समस्याओं से वह रू-ब-रू होने लगता है।¹ चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए वह समाज में रहकर अपना जीवन यापन करता है। तथा वह समाज तथा राष्ट्र का मार्ग प्रशस्त करता है।

जब हम शिक्षा की बात करते हैं तो शिक्षा का तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जिससे व्यक्ति में सामाजिक शिक्षा, सांस्कृतिक शिक्षा एवं भावनात्मक शिक्षा का विकास हो सके। इन सभी बातों को ग्रहण करने हेतु व्यक्ति को एक शिक्षक की आवश्यकता पड़ती है छात्र के इर्द-गिर्द विकास में सहायता कर सके। जहाँ शिक्षक की बात आती है तो इसके विषय में हम प्राचीन में अपने पुराणों को देखते हैं जिससे सिद्ध है कि उस्ताद का स्थान महत्वपूर्ण होता था तथा शिक्षक को गुरु की महत्ता थी तथा छात्र का स्थान गौण था। परन्तु आज की शिक्षा बाल केन्द्रित शिक्षा पद्धति हो गई है। शिक्षा में जितना भी परिवर्तन क्यों न किया जाये परन्तु शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य यथावत बना रहता है।

प्राचीन काल में शिक्षा के माध्यम से जहाँ व्यक्ति के स्वरूप एवं व्यक्तित्व का उन्नति होता था वही इससे नागरिक कर्तव्यों का बोध भी कराया जाता था। यद्यपि हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक शिक्षा पद्धति का रूप बदला है परन्तु मूल्य और आदर्श नहीं बदलते हैं इस प्रकार शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसे मानव के व्यवहारों व उनके व्यवहारों में बदलाव आ सके।²

रेमण्ड के शब्दों में-“शिक्षा का विकास वह क्रम है जिससे मानव अपने को आध्यात्मिक, सामाजिक एवं भौतिक वातावरण के अनुकूल बना सकें अतः शिक्षा समाज की नींव है।” राष्ट्र में जिस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था होगी उस राष्ट्र के लोगों का विकास उसी प्रकार से होगा। एक कहावत है कि किसी भी राष्ट्र को ध्वस्त करना हो तो उस राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था को नष्ट कर दीजिये वह राष्ट्र अपने आप ही ध्वस्त हो जायेगा।

शिक्षा मानव चेतना का एक ज्योतिर्मय पक्ष है। जिससे मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है शिक्षा वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति के सामाजिक आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं मानसिक शक्तियों का विकास होता है। दूसरे शब्दों में जीवन के भौतिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक सुखों का आधार भी कहा जा सकता है क्योंकि इसके कारण ही मानव के व्यवहारों में परिवर्तन होता है।³

समाज के कल्याण के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति पूर्ण रूप से समायोजित हो और ऐसे ही लोग अपने परिवार समाज और संप्रदाय के लिए बेहतर और भले साबित होते हैं। क्योंकि यदि किसी व्यक्ति का समाज के साथ समायोजन नहीं हो पाता है तो ऐसे ही व्यक्ति समाज को भारी क्षति एवम् नुकसान पहुँचाते हैं।

शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है व्यक्ति अपने अनुभवों के द्वारा इसे जीवन पर्यन्त ग्रहण करता रहता है शिक्षा ही वह प्रकाश रूपी पौधा है। जिसको पाकर व्यक्ति खिल उठता है। तथा उसके आभाव में वह बिखर जाता है यदि देखा जाये तो शिक्षा ही व्यक्ति के व्यक्तित्व बनता है। इस तरह शिक्षा हमारा सम्पूर्ण विकास करती है। शिक्षा माता कि तरह पालन पोषण तथा पिता कि तरह उचित मार्ग दर्शन करती है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति सारे संसार के सुखों का अनुभव प्राप्त करता है। और इसके अभाव में निर्धनता दरिद्रता तथा दुखों से ग्रसित एक ऐसी सामाजिक गतिशील प्रक्रिया है। जो व्यक्ति के जन्मजात गुणों का विकास करके उसके व्यक्तित्व को निखारती है।

वास्तव में, शिक्षा एक ओर जहाँ मनुष्य का सभी तरह विकास करके उसकी व्यक्तिगत उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है, वहीं दूसरी ओर वह उसे समाज का एक महत्वपूर्ण व उत्तरदायी सदस्य तथा राष्ट्र का एक सुयोग्य, कर्तव्यनिष्ठ व सजग नागरिक भी बनाती है। शिक्षा के द्वारा ही समाज अपनी भावी पीढ़ी को उच्च आदर्शों, अभीष्ट आशाओं, उत्कंठ आकांक्षाओं, सनातन मूल्यों, सतत विश्वासों तथा प्राचीन परम्पराओं से युक्त अपनी सांस्कृतिक धरोहर को हस्तान्तरित करता रहता है। शिक्षा बालक के हृदय में देशप्रेम, बलिदान व निहित स्वार्थों के त्याग की भावना को प्रज्ज्वलित करती है। उचित ढंग से शिक्षित नागरिकों के अनुकरणीय कार्यों के फलस्वरूप ही समाज एवं राष्ट्र निरन्तर उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर होते जाते हैं। स्पष्ट है कि शिक्षा प्रणाली के द्वारा सभी के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सार्थक भूमिका अदा की जाती है। निःसंदेह शिक्षा सतत रूप से चलने वाली एक ऐसी गत्यात्मक प्रक्रिया है जो मानव को अपनी बहुमुखी भूमिका को प्रभावी ढंग से अदा करने में सक्षम बनाती है एवं राष्ट्र के प्रगति में सहायोग करती है। शिक्षा व्यवस्था को प्रभावी तथा उपयोगी बनाकर ही किसी भी राष्ट्र की प्रगति तथा विकास की यात्रा की सततता को जारी रखा जा सकता है।

संदर्भ

- ¹ Dev, Psychol (2013), A Study of Social-emotional Adjustmentlevels of Preschool Children in Relation to Peer Relationship,PMC, 41(5)
- ² Borich, G. D. & Tombari, M. L. (1997).Educational Psychology (2ed.). New York: Pearson. Retrieved from <http://kows.edb.utexas.edu/site/edrgary-d-borich/educational-psychology-contemporary-approach#0>
- ³ Hergenhahn, B.R. (2009).An introduction to the history of psychology. Belmont, CA: Wadsworth
- ⁴ Dev, Psychol (2013), A Study of Social-emotional Adjustmentlevels of Preschool Children in Relation to Peer Relationship,PMC, 41(5)

दलित साहित्य और भारतीय सामाजिक व्यवस्था

डॉ० वंदना यादव

चौधरी तुलसीराम यादव महाविद्यालय, इलाहाबाद

दलित साहित्य कभी हाशिए का लेखन कहा जाता था, परंतु आज साहित्य की मुख्यधारा बनने की ओर अग्रसर है। दलित साहित्य केवल साहित्य का लेखन नहीं है बल्कि यह दलित चेतना की पृष्ठभूमि की बेचौनियों और उसके प्रभावों, आन्दोलनों और रचनात्मकताओं का सविस्तार विश्लेषण भी है।

दलित साहित्य से हम समाज का वास्तविक अध्ययन कर सकते हैं। यदि दलित साहित्य नहीं होता, तो शायद यह जानना असंभव होता कि हमारा सामाजिक इतिहास किन पीड़ाओं, तकलीफों, अन्यायी, शोषण और असमानताओं का इतिहास रहा है। दलित साहित्य लोकतांत्रिक और बौद्धिक तौर पर विकसित होते समाज का एक मजबूत आधार स्तम्भ है। सामाजिक अत्याचार, अन्याय और शोषण केन्द्रित अमानवीय भेदभाव वाले वर्णवादी, दार्शनिक और पौराणिक तत्वज्ञान की चेतना को प्रेमचन्द्र, महात्मा गांधी, निराला आदि की रचनाएं हिला नहीं पायी, उसे अम्बेदकरवादी दर्शन और रचनाएं ही ध्वस्त कर सकीं। अमानवीय उत्पीड़न और दमन की यह आवाज मराठी, कन्नड़, मलयालम, कोंकणी, कच्छी, पंजाबी, हिन्दी और अन्य भाषाओं में उत्कटित हुई और फिर इसने दलित साहित्य आंदोलन का रूप ले लिया। अतः यह शत प्रतिशत मानवीय और सामाजिक है।

बुद्ध के शब्दों में, न जच्चा वसलो होति। न जच्चा होति ब्राह्मणो कम्मना बसलो होति । कम्मना होति ब्राह्मण कोई।

अर्थात् जन्म से न कोई वृषल (शूद्र होता है, न जन्म से कोई ब्राह्मण, कर्म से ही कोई शूद्र और ब्राह्मण होता है। सदियों के शोषण, प्रताड़ना, द्वेष और वैमनस्य के भेदभाव तले दबा दलित समाज भारत की सांस्कृतिक विरासत और समाज व्यवस्था को आज विविध रूपों में देख रहा है। धन, धर्म, शिक्षा, संस्कार और सम्मान से वंचित यह वर्ग आज शिक्षित होकर अपनी हीन अवस्था और अधिकारों के प्रति जागरूक हो रहा है।

दलितों की यही मुक्ति चेतना साहित्य में दलित साहित्य के रूप में अभिव्यक्त हो रही है।

विशिष्ट शब्द- दलित, आन्दोलन, अमानवीय उत्पीड़न, ऐश्वर्यवादी, ऐतिहासिक, सम्मान, साहित्य, चेतना।

दलित शब्द का प्रयोग उन व्यक्तियों के लिए भारतीय सामाजिक व्यवस्था में किया गया है जो सबसे निचले पायदान पर अवस्थित हैं, जिसे भारतीय वर्ण व्यवस्था में अस्पृश्य माना जाता है।

वर्ण व्यवस्था में जिसे अछूत या अन्त्यज कहा गया है जिसका शोषण और दलन हुआ है जिसे संविधान ने अनुसूचित किया और जो जन्मना अछूत और घृणा का पात्र रहा है, वही दलित कहलाया है। यह दलित साहित्य शब्द साहित्य के साथ मिलकर एक ऐसी साहित्यिक धारा का निर्माण करता है, जो मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक सरोकारों की यथार्थवादी अभिव्यक्ति कर उसकी विसंगतियों को छिन्न-भिन्न कर देना चाहती है।

इस संदर्भ में अगर बात दलित साहित्य स्तर पर की जाये तो दलित साहित्यसे अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रुपमित किया है, अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। दलित साहित्य की अनुभूति परंपरागत साहित्य से बिल्कुल अलग है, क्योंकि यह साहित्य दलित चेतना मुक्ति की बात करता है। प्राचीन भारतीय घा सामाजिक व्यवस्था प्राचीनकाल से ही वर्णात्मक व्यवस्था रही है जिसे अलग-अलग जातियों में विभक्त कर दिया गया है।

भारतीय साहित्य के ऐतिहासिक पक्ष को देखने से हमें जो जानकारी प्राप्त होती है इसके अंतर्गत भारतीय साहित्य में वर्ण शब्द का उल्लेख पहले और जाति शब्द का प्रयोग बाद में देखने को मिलता है।

ऋग्वेद में भारतीय प्रजा के लिए सर्वत्र विशः शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है 'बसने वाला'।

मूल वैदिक काल में आर्य जनता विशः ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैश्यों का वर्गीकरण नहीं हुआ। समस्त ऋग्वेद संहिता में शूद्र और राजन्य शब्द का प्रयोग केवल एक-एक बार किया गया है। शूद्र शब्द का उल्लेख केवल पुरुष-सूक्त में किया गया है परंतु पुरुष-सूक्त ऋग्वेद में बाद में प्रयोग किया गया है।

कोल ब्रुक और मैक्स मूलर, दोनों ही विद्वानों का यह मत है कि पुरुष सूक्त शैली और भाषा दोनों की दृष्टि से ऋग्वेद की अपेक्षा बहुत नवीन है। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैश्य जातियों के उद्गम के संकेत तो ऋग्वेद में मिलते हैं परंतु पुरुष-सूक्त के बाद में जोड़े जाने पर यह बताना असंभव हो जाता है कि शूद्रों का उद्गम क्या था।

अतः शूद्र शब्द सामाजिक व्यवस्था की उपज लगती है। इस संदर्भ में डॉ० अम्बेदकर का यह कथन सही मालूम पड़ता है कि शूद्र भी उसी भंडार के हैं जिसकी शाखा क्षत्रीय जाति के रूप में विकसित हुई है।

मुख्य जातियों का जो रूप हम आज देखते हैं, वह आरंभ में नहीं था। इसका प्रयोग वैदिक युग के बाद प्रचलित हुआ जिसके अंतर्गत किसी खास जाति को किसी खास व्यवसाय से जोड़ दिया गया। जो कमजोर थे उनके लिए व्यवस्था का प्रावधान अलग कर दिया गया। इसका उल्लेख मनु-स्मृति में देखने

को मिलता है। वरं स्वधर्मों विगुणों, न पारक्यः स्वतुष्टितः परधर्मेण जीवन् हि सद्यः पतति जातितः। अपना विगुण धर्म भी (यानी पैतृक परंपरा से कठिन धंधा भी दूसरों के धर्म से श्रेष्ठ है।⁵

इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था में परिवर्तन होना शुरू हुआ। वैदिक काल के बहुत बाद जिसके अंतर्गत सामाजिक स्तर पर वर्ण-व्यवस्था में बदलाव के बाद सामाजिक स्तर पर यह चार भागों में विभक्त हो गया। कमजोर लोगों को शूद्र की श्रेणी में रख दिया गया जिसके स्वरूप में आज तक बदलाव नहीं आया है। कालान्तर में इस पर श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ के भाव प्रभावी होते चले गये और इनमें कोई अत्यंत नीचा और तो कोई अत्यंत उच्च बन गया।⁶

प्रख्यात समाजशास्त्री एम0 एन0 श्रीनिवास ने सन् 1966 में प्रकाशित अपनी पुस्तक “सोसलॉजिकल स्टडी ऑफ मॉडर्न इंडिया में लिखा है कि “वैदिक काल में ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त से जो वर्ण-व्यवस्था चली वह आज भी जारी है। इसमें अभी तक कोई बदलाव नहीं आया। यहां तक कि अंग्रेजों के शासनकाल में भी वर्ण-व्यवस्था को प्रोत्साहित किया गया। दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त को इसलिए अपने आर्य सामाजिक संस्करण से हटा दिया क्योंकि इसमें शूद्र का उल्लेख था।⁷

भवदेव पांडेय ने कहा है कि दुर्भाग्य यह रहा है कि ऋग्वेद के बाद पुरोहितों विभाजित कर दिया। विभाजन के लिए पुरोहितों ने जिस सबसे धारदार औजार का प्रयोग किया, वह थी भाषा यानी वेद भाषा, आये भाषा अथवा देव भाषा इसी भाषा ने सांस्कृतिक स्वीकृति और सांस्कृतिक अस्वीकृति के बड़े-बड़े षडयंत्र को जन्म दिया, जिसके कारण न केवल मंत्रों को बदल दिया गया, बल्कि बड़ी कुशलता से उसे लोप कर दिया गया। इससे पता चलता है कि किस प्रकार कमजोर को और कमजोर बना दिया गया। जो भारतीय सामाजिक व्यवस्था के लिए किसी अभिशाप से कम नहीं है।⁸ भविष्य पुराण में उल्लिखित है कि शूद्रों को इसलिए शूद्र कहा गया क्योंकि वैदिक ज्ञान जूठन के रूप में प्राप्त होता था।

ये ते श्रुतेर्द्रति प्राप्ताः शुद्रास्तेनेह कीर्तिता भविष्य पुराण

अतः इस प्रकार का मापदंड निर्धारित किया गया था। शूद्रों के लिए क्या यह पूरी तरह सार्थक है, यानी शूद्रों को किस प्रकार निकृष्ट समझा गया यह चित्रार्थ होता है। प्राचीन समय में उनकी स्थिति अच्छी रही हो परंतु ये श्लोक उनकी सामाजिक भिन्नता को दर्शाता है और यह दिखाता है कि शूद्रों को सामाजिक व्यवस्था में क्या स्थान प्राप्त था। वैदिक साहित्य में जहां शूद्रों की स्थिति का आधार आर्थिक है, वहीं बौद्धकाल में इसे सामाजिक कर दिया गया है। बौद्धों द्वारा प्रस्तुत व्याख्यान भी बाह्यणों की व्याख्या की तरह ही काल्पनिक लगती है। बुद्ध के अनुसार शूद्रों की स्थिति सुद्धा त्वेव अक्खरं उपनिव्वतम् या लुदाआचारा खुद्याचाराति थीः¹⁰ अर्थात् जिन व्यक्तियों का आचरण आतंकपूर्ण और हीन कोटि का था, वे सुद्ध (संस्कृत शूद्र कहलाने लगे और इस तरह सुद्ध (संस्कृत शूद्र शब्द बना। दीर्घ निकाय राहुल सांकृत्यायन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलित साहित्य को कभी हशिये का लेखन कहा जाता था क्योंकि दलित साहित्य की रचना निकृष्ट मानी जाती थी। पहली दलित कविता 1927 में चौद नामक पत्रिका में निकाली गयी जो अछूत विशेषांक था। इसमें एक कविता छपी थी। शोभा राम (धेनु सेवक) की जो बड़ी ही मार्मिक थी। विभो क्या हम अछूतों की दशा पर ध्यान भी दोगे? कभी हम दीन-दलितों की दया का दान भी दोगे? धर्म के ढोंगियों को क्या कभी यह ज्ञान भी दोगे? दलित अंगों की हत्थागों! क्या कभी उत्थान भी दोगे?¹¹ दलितों की यह मुक्ति चेतना साहित्य में दलित साहित्य के रूप में अभिव्यक्त हो रही है। यह बार-बार कहा जा रहा है कि दलित साहित्य साहित्य से अधिक सामाजिक आंदोलन और सांस्कृतिक विमर्श है। वह संस्कृति के व्यापक विमर्श द्वारा सामाजिक विसंगतियों से दलित दमित मनुष्य की मुक्ति की चाहत है। इसलिए दलित साहित्य की समस्या सामाजिक और सांस्कृतिक दोनों है। दलित साहित्य केवल संस्कृति की पुर्नव्याख्या द्वारा उसका परिष्कार चाहता है। यद्यपि साहित्य की सामाजिकता किसी वर्ग विशेष की सामाजिकता नहीं होती है। साहित्य को अखिल मानवता के हित में उसके पक्ष में खड़ा होना होता है। लेकिन कुछ अपवादों को छोड़कर शायद ही ऐसा कोई काल हो जिसमें साहित्य सबके लिए लिखा गया हो और दलितों के लिए तो खासकर नहीं। कभी राजा-महाराजाओं और सत्ता संपन्न सामंतों के लिए तो कभी रसिक समाज के मनोरंजन के लिए, कभी युद्ध-वर्णन और शौर्य पराक्रम के प्रदर्शन के लिए कभी सूर-सुंदरी को महत्व देने के लिए साहित्य लिखा गया है। इस प्रकार अलग-अलग कालों में अलग-अलग साहित्यों की रचना की गई है। दलित साहित्य के रचनाकार तब भी थे, जब कोई दलित आन्दोलन नहीं था, क्योंकि यातना ग्रस्त व्यक्ति को चीखने से कोई नहीं रोक सकता और दलित साहित्य एक स्तर पर यातना से पैदा हुई चीख का ही साहित्य है। इस प्रकार साहित्य के रूप में दलित चेतना भले ही आज स्थापित हुई हो। इसकी पुकार नयी नहीं है। अनादि काल से दलितों पर अत्याचार हो रहे हैं, उन्हें ताड़ित और प्रताड़ित किया जाता रहा है। इसलिए उनका प्रतिकार भी पुराना ही होगा। अंतर केवल इतना है कि आज यह प्रतिकार लिखित रूप में व्यक्त हो रही है, पहले यह मूक या मौखिक रूप में होता रहा होगा।¹² भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान लिखा गया राष्ट्रीय साहित्य और समाजवादी-मार्क्सवादी साहित्य इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। साहित्य की मुक्ति चेतना ने देश को विदेशी हुकूमत से मुक्त तो करा दिया परंतु यहां के बहुसंख्यक जनता को सामाजिक, सांस्कृतिक गुलामी से निजात नहीं दिला सकी। इन सबके बावजूद दलित साहित्य जब सामाजिक सरोकार से जुड़ा तो वह जन सामान्य और शोषित पीड़ितों के साथ खड़ा हो गया। दलित साहित्य ने उनको एक नई चेतना प्रदान की। दलित साहित्य भी कुछ इसी प्रकार का लेखन है। दलित साहित्य वह लेखन है जो वर्ण-व्यवस्था के विरोध में और विपरीत मूल्यों के लिए संघर्षरत मनुष्य के लिए प्रतिबद्ध है।¹³ दलित साहित्य वर्ण-व्यवस्था से उपजी घोर अमानवीयता, स्वतंत्रता, समता विरोधी, सामाजिक अलगाव की पक्षधर सोच को परिवर्तित कर बदलाव की प्रक्रिया करना दलित साहित्य की मूल संवेदना है। दलित साहित्य का मुख्य बिन्दु मनुवाद का विरोध करते हुए असमानता और अस्पृश्यता का अंत करना है। साहित्य संस्कृति और कलाओं में परिवर्तन धीरे-धीरे होता है। प्राचीनकाल में जब वाणिज्य संस्कृति का विकास हुआ और सामाजिक नैतिक मूल्यों का टकराव होने लगा तब सामाजिक स्तर पर परिवर्तन आना शुरू हुआ। जिससे कालान्तर में धर्म-संस्कृति और विचारों का वैश्वीकरण कर दिया। इसकी पहुंच समस्त मानव समाज तक होने लगी। खासकर दलित साहित्य में विविध रूपों में यह देखने को मिलता है।¹⁴ प्रकार हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण की चेतना फैलाने का श्रेय हिन्दी के भारतेन्दु आदि साहित्यकारों को जाता है, उसी प्रकार हिन्दी क्षेत्र में दलित चेतना के प्रचार का श्रेय भी इस क्षेत्र के दलित साहित्यकारों को जाता है। विचार के क्षेत्र में यह इतना प्रखर और प्रौढ़ हो चुका है कि अन्य विचार इसके सामने सीमित और पुराने लगने लगे। हैं। साहित्य की इस नवीन सृजन और चिंतन ने अबतक के बने बनाये समस्त सौंदर्य शास्त्रीय ढांचे और परम्परागत इतिहास बोध पर प्रश्न चिन्ह सा लगा दिया है।¹⁵ डॉ० अम्बेदेकर ने अपने शोध ग्रंथ अछूत में भारतीय सामाजिक व्यवस्था के बारे में विस्तृत

रूप में वर्णन किया है और उसके प्रतिपक्ष प्रभावों को दिखाया है। इस प्रकार जाति-प्रथा और शूद्रों के पक्ष में जो भी तर्क और प्रमाण दिये गये हैं वे समाज के स्वस्थ और संतुलित विकास के परिचायक नहीं कहे जा सकते। यदि शूद्र आर्य वृत्त के अंतर्गत का ही कोई वर्ण होता तो उसके साथ इतने कटु और घृणारपद व्यवहार नहीं किए जाते। कालान्तर में जाति और वर्ण-व्यवस्था ने शूद्रों से प्रायः मानवाधिकार छीनकर उन्हें सर्वाधिक ग्रहित और हीन बना दिया। उसके साथ पशुवत् व्यवहार होते रहे हैं। उन्हें अछूत बनाकर उनके साथ अमानवीय शोषण और अत्याचार किये गये। इस प्रकार भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उन्हें निकृष्ट कर दिया गया।¹⁶ आधुनिक भारत में अगर दलित चेतना को देखें तो भारत में दलितों के मुक्ति के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में आंदोलन चलाये गये। भारत में अंग्रेजी राज्य की जड़े मजबूत होने के साथ-साथ दलित चेतना की जड़े भी मजबूत होती चली गयी। अंबेदकर, पेरियर, ज्योतिबा फूले ने अलग-अलग आंदोलन का संचालन किया जिसका प्रभाव साहित्य रूप में पड़ा। अंबेदकर ने वर्ण और वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए शिक्षा संगठन और संघर्ष का नारा दिया। हिन्दी साहित्य से अधिक मराठी साहित्य में दलित चेतना का उद्भव और विकास अंबेदकर के इसी संघर्ष का परिणाम है।¹⁷ साहित्यिक धारा के रूप में इसका विकास आजादी के बाद हुआ। दलित लेखकों का सर्वप्रथम सम्मेलन 2 मार्च, 1958 को दादर, बंबई के बंगाली हाई स्कूल में हुआ। इस सम्मेलन में दलित साहित्य को उचित महत्व दिया जाय, इस आशय का प्रस्ताव पारित किया गया जो भारत के दलित साहित्य के इतिहास का एक ऐतिहासिक कदम था, जिसने दलित साहित्य को निरंतर आगे की ओर अग्रसारित करने पर बल दिया। आजादी के पहले गांधीजी के द्वारा भी अछूतोंद्वारा आंदोलन से प्रभावित होकर सन् 1927 में चाँद पत्रिका में अछूत विशेषांक निकाला गया था। अतः दलित साहित्य की व्यापकता का अनुमान गांधीजी को भी बहुत पहले हो गया था।¹⁸ महाराष्ट्र में दलित साहित्य शब्द का प्रयोग सन् 1954 से होने लगा था। मराठी में दलित साहित्य आंदोलन 1960 में शुरू हुआ। 1967 में इस पर विधिवत् बहस शुरू हुई और 1976 में नागपुर दलित साहित्य सम्मेलन में यह बहुत जोर पकड़ने लगा। महाराष्ट्र में लघु पत्रिका आंदोलन उभरा जिसने साहित्य के क्षेत्र में हिन्दू लेखकों के वर्चस्व को विशेषांक के द्वारा सुनाई पड़ने लगा जिसके तत्कालीन संपादक कमलेश्वर थे। परंतु चुनौती दी। हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य का स्वर 1975 के सारिका के दलित हिन्दी भाषा में 90 के दशक दलित साहित्य के लिए मुखर हुआ और हिन्दी साहित्य में दलित के साहित्य का दौर चल पड़ा। 1990-91 में मंडल कमीशन ने इस चेतना को और आगे बढ़ाया। 1992 से पूर्व हिन्दी दलित साहित्य पत्र-पत्रिकाओं दलित सभा सम्मेलनों, दलित मंचों पर अपनी मौजूदगी स्थापित कर चुका था।¹⁹ हिन्दी दलित साहित्य को हंस पत्रिका के पहले ने इस साहित्य को केन्द्र में लाकर खड़ा कर दिया। हंस पत्रिका की यह पहल हिन्दी दलित साहित्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है जिसने न केवल दलित साहित्य को भारतीय मानस पटल के सम्मुख आने का एक विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया जो बाद के वर्षों में विभिन्न प्रकाशकों के द्वारा लोगों के सम्मुख प्रस्तुत हो सका जिसने दलित चेतना की एक नई विचारधारा, दृष्टिकोण, सामाजिक स्वरूपता एवं सामाजिक न्याय को जन्म दिया। दलित साहित्य मनुष्य की मुक्ति का साहित्य है जो अमानवीय, ऐश्वर्यवादी साहित्य संस्कृति में मनुष्य की अस्मिता के सवालियों को निर्णायक रूप दे रहा है।²⁰

निष्कर्ष-

दलित साहित्य न केवल दलित दुर्दशा का दस्तावेज है बल्कि यह पारम्परिक समाज व्यवस्था के प्रतिकार द्वारा मुक्ति का प्रयत्न भी है। यह वर्ग से अधिक वर्ग की बात करता है। वर्ण-व्यवस्था का विरोध, जाति-भेद और साम्प्रदायिकता का विरोध दलित चेतना की प्राथमिकताओं में है। दलित साहित्य मानव मुक्ति के संघर्ष में वह मनुष्य की स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय का पक्षधर है जो समाज का बदलाव चाहता है। इस प्रकार दलित साहित्य वर्चस्ववाद का विरोधी साहित्य है। दलित साहित्य के माध्यम से ही हम समाज का वास्तविक अध्ययन कर सकते हैं। (यदि दलित साहित्य नहीं होता तो शायद यह जानना असंभव होता कि हमारा सामाजिक इतिहास किन पीड़ाओं और तकलीफों, अन्यायों, शोषण और असमानताओं का इतिहास रहा है। दलित साहित्य लोकतांत्रिक और बौद्धिक तौर पर विकसित होते समाज का एक मजबूत आधारस्तंभ है।) दलित साहित्य मनुष्य की मुक्ति का साहित्य है जो अमानवीय, ऐश्वर्यवादी साहित्य संस्कृति में मनुष्य की अस्मिता के सवालियों को निर्णायक रूप दे रहा है। दलित साहित्य का समाजशास्त्र सीधा है। समाज और संस्कृति की ऐतिहासिक पड़ताल द्वारा वर्तमान संदर्भ में अपने मार्ग निर्धारित करना, खोई हुई परंपरा को पुनर्जीवित कर उसे आज के संदर्भ में प्रस्तुत करना और दलित समाज की बेहतरी और सम्मान में स्थान बनाना। दलित चेतना प्रथम चरण में साहित्य का सृजन कर रही है। इतिहास ने इनकी जो छवि गढ़ी है, जो पहचान बनाई है, दलित साहित्य उसे मुक्त करना चाहता है। अतः अपनी अस्मिता और पहचान की तलाश में अकुल और व्याकुल दलित साहित्य की सामाजिकता साहित्य के रूप में सामने आ रही है। यही उसकी सामाजिकता है और साहित्यकता भी।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

- भारत में जाति प्रथा-- बाबा साहब अम्बेदकर संपूर्ण वाङ्मय खण्ड-1 (1998 प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली (पृष्ठ सं०-21-22)
- संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर 2004, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद (पृष्ठ सं०-477)
- आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास:- बच्चन सिंह, 2006, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद (पृष्ठ सं०- 40-45)
- बौद्ध धर्म तथा वर्ण-व्यवस्था:- तुलसी रामहंस, 2004, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (पृष्ठ सं०-63-65)
- दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र:- ओम प्रकाश वाल्मिकी, 2008, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली (पृष्ठ सं०- 82-87)
- भारतीय सामाजिक व्यवस्था:- राम आहुजा, 2011. रावत पब्लिकेशन, जयपुर (पृष्ठ सं०- 320-325)
- भारतीय समाज में ब्राह्मण और शूद्र संस्कृति और प्रति संस्कृति का द्वन्द्व- भवदेव पांडेय, 2000, कथाक्रम, नई दिल्ली (पृष्ठ सं०- 15-18)
- भविष्य पुराण 1-44-23 (पृष्ठ सं०- 60-61)
- दीर्घ निकाय- सं राहुल सांकृत्यायन, 3/95 (पृष्ठ सं०- 25-26)
- चाँद पत्रिका अछूत विशेषांक, 1927 (पृष्ठ सं०- 10-12)
- दलित साहित्य का उद्देश्य और वैचारिकता- बाबूराव बागुल (जुलाई-सितम्बर 2003, वसुधा- (पृष्ठ सं०- 25-26)

- हिन्दी नवजागरण एवं दलित चेतना- निरंजन कुमार 2005, संपादक जयप्रकाश कर्दम, नागपुर (पृष्ठ सं०-79-80)
- हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ- नामवर सिंह, आलोचना (अक्टुबर-दिसम्बर) 1986, नई दिल्ली (पृष्ठ सं०- 96-98)
- दलित समुदाय और सामाजिक परिवर्तन- विवेक कुमार, 2004 (अगस्त, हंस प्रकाशन, नई दिल्ली (पृष्ठ सं०-93-95)
- भारत के सामाजिक क्रांतिकारी:- देवेन्द्र कुमार वेसन्तरी, 2004, नागपुर
- भारतीय साहित्य की भूमिका- रामविलास शर्मा, 2005, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (पृष्ठ सं०- 127-129 (पृष्ठ सं०- 89-95)
- हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 2004, नागरी
- प्रचारिणी सभा, इलाहाबाद (पृष्ठ सं०- 38-40)
- गराठी दलित कविता और राजनीतिक (पृष्ठ सं०- 12-15 साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक और चेतना- विमल चोराट 2001 हिन्दी बुक सेन्टर नई दिल्ली
- दलित साहित्य का समाजशास्त्र- हरिनारायण ठाकुर 2009 भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली (युध सं०- 95-98)
- वही पुष्प सं० 110 115

योग और आधुनिक जीवन शैली

सीमा चौहान

प्रवक्ता, योग विभाग, डी०एच०बी० परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

सारांश

योग शब्द संस्कृत धातु 'युज' से निकला है, जिसका मतलब है व्यक्तिगत चेतना या आत्मा का सार्वभौमिक चेतना या रूह से मिलन। योग, भारतीय ज्ञान की पांच हजार वर्ष पुरानी शैली है। हालांकि कई लोग योग को केवल शारीरिक व्यायाम ही मानते हैं, जहाँ लोग शरीर को मोड़ते, मरोड़ते, खिंचते हैं और श्वास लेने के जटिल तरीके अपनाते हैं। यह वास्तव में केवल मनुष्य के मन और आत्मा की अनंत क्षमता का खुलासा करने वाले इस गहन विज्ञान के सबसे सतही पहलू हैं। योग विज्ञान में जीवन शैली का पूर्ण सार आत्मसात किया गया है।

आज के दौर में दुनियाभर के युवाओं में रोष, गुस्सा और जरूरत से ज्यादा आक्रामक व्यवहार देखने को मिल रहा है। वैज्ञानिकों का कहना है कि दिमाग को शांत रखने वाला योग, उन युवाओं की मदद कर सकता है जो पारिवारिक झगड़ों को बीच रह हैं या झगड़ालु व्यवहार दिखाते हैं या फिर नकारात्मक और खतरनाक रवैया अपनाए हुए हैं।

विशिष्टशब्द : योग, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्यानहार, धारणा, ध्या न एवं समाधि।

प्रस्तावना

ज्ञान का मूल वेदों में निहित है। दार्शनिक चिन्तन तथा वैदिक ज्ञान का निचोड़ आत्म तत्व की प्राप्ति है। आत्मतत्व की प्राप्ति का साधन योग विद्या के रूप में इनमें (वेद) उपलब्ध है। योगसाधना का लक्ष्य कैवल्य प्राप्ति है। वैदिक ग्रन्थ, उपनिषद्, पुराण और दर्शन आदि में यत्र-तत्र योग का वर्णन मिलता है। जिससे यह पुष्टि होती है कि योग वैदिक काल से सृष्टि में उपलब्ध है। योग के अर्थ एवं परिभाषाओं का वर्णन प्रस्तुत इकाई में किया जा रहा है।

उद्देश्य

प्रस्तुत विषय का अध्ययन करने के पश्चात हम योग शब्द का अर्थ तथा परिभाषाओं का स्वरूप जान सकेंगे। वैदिक काल, उपनिषदकाल, दर्शनकाल, टीकाकाल में योग का आधार समझ सकेंगे। भक्तिकाल के साथ योग के व्यावहारिक काल हठयोग काल का अध्ययन कर सकेंगे। विभिन्न ग्रन्थों के आधार पर योग के बाधक तत्वों को जान सकेंगे। विभिन्न ग्रन्थों के आधार पर योग के साधक तत्वों को जान सकेंगे। योग का सर्वांगीण क्षेत्रों में महत्व जान सकेंगे। आधुनिक जीवन शैली में योग का महत्व को जान सकेंगे।

योग शब्द का अर्थ

पाणिनी ने योग शब्द की व्युत्पत्ति युजि योगे युज समाधो तथा युज संयम ने इन तीन धातुओं से मानी है। प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार योग शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग किया गया है। जैसे जोड़ना, मिलाना, मेल आदि। इसी आधार पर जीवात्मा और परमात्मा का मिलन योग कहलाता है। इसी संयोग की अवस्था, को समाधि की संज्ञा दी जाती है जो कि जीवात्मा और परमात्मा की समता होती है।

महर्षि पतंजलि ने योग शब्द को समाधि के अर्थ में प्रयुक्त किया है। व्यास जी ने योग:

समाधि: कहकर योग शब्द का अर्थ समाधि ही किया है। वाचस्पति का भी यही मत है।

संस्कृत व्याकरण के आधार पर योग शब्द की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से की जा सकती हैं।

1. **युज्यते एतद् इति योगः** इस व्युत्पत्ति के अनुसार कर्मकारक में योग शब्द का अर्थ चित्त की वह अवस्था है जब चित्त की समस्त वृत्तियों में एकाग्रता आ जाती है। यहाँ पर योग शब्द का उद्देश्य के अर्थ में प्रयोग हुआ है।
2. **युज्यते अनेन अति योगः** इस व्युत्पत्ति के अनुसार करण कारक में योग शब्द का अर्थ वह साधन है जिससे समस्त चित्तवृत्तियों में एकाग्रता लाई जाती है। यही योग शब्द साधनार्थ प्रयुक्त हुआ है। इसी आधार पर योग के विभिन्न साधनों को जैसे हठ, मंत्र, भक्ति, ज्ञान, कर्म आदि को हठयोग, मंत्रयोग, भक्ति योग, ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि के नाम से पुकारा जाता है।
3. **युज्यतेऽस्मिन् इति योगः** इस व्युत्पत्ति के अनुसार योग शब्द का अर्थ वह स्थान है जहाँ चित्त की वृत्तियाँ की एकाग्रता उत्पन्न की जाती है। अतः यहाँ पर अधिकरण कारक की प्रधानता है।

योग का महत्व

योग का महत्व प्राचीन काल में योग विद्या सन्यासियों या मोक्षमार्ग के साधकों के लिए ही समझी जाती थी तथा योगाभ्यास के लिए साधक को घर को त्याग कर बन में जाकर एकांत में वास करना होता था। इसी कारण योगसाधना को बहुत ही दुर्लभ माना जाता था। जिससे लोगों में यह धारणा बन गयी थी कि यह योग सामाजिक व्यक्तियों के लिए नहीं है। जिसके फलस्वरूप यह योगविद्या धीरे धीरे लुप्त होती गयी। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से समाज में बढ़ते तनाव, चिन्ता, प्रतिस्पर्धा से ग्रस्त लोगों को इस गोपनीय योग से अनेको लाभ प्राप्त हुए और योग विद्या एकबार पुनः समाज में लोकप्रिय होती गयी। आज भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्वभर में योगविद्या पर अनेक शोध कार्य किये जा रहे हैं और इससे लाभ प्राप्त हो रहे हैं।

आधुनिक जीवन शैली में योग का महत्व

अर्थप्रधान एवं अतिव्ययस्तव आधुनिक जीवन शैली अपनाने के कारण आज का मानव न चाहते हुए भी दबाव एवं तनाव, अविश्राम, अराजकता, रोग ग्रस्तन, अनिद्रा, निराशा, विफलता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या तथा अनेकानेक कष्टपूर्ण परिस्थितियों में जीवन निर्वाह करने के लिए बाध्य हो गया है। जल, वायु, ध्वनि तथा अन्नक प्रदूषण के साथ-साथ ऋणात्मिक दुर्भावनाओं का भी वह शिकार बन चुका है। परिणामस्वरूप अनेकानेक शारीरिक रोगों के साथ-साथ मानसिक असंतुलन, चिन्ताएं, उदासी, सूनापन एवं दुर्भावनात्मक विचार उसे चारों ओर से घेर लेते हैं। उसके मन की शान्ति भंग हो जाती है लेकिन इन परिस्थितियों का दृढ़ता के साथ सामना करने के लिए हमारी भारतीय पौराणिक योग पद्धति सहायता कर सकती है।

तथ्य तो यह है कि मानव अस्तित्व का मुख्य उद्देश्य एक मात्र योग है। उसका प्रादुर्भाव योग में रहने के लिए हुआ है। योग साधना को यदि अपने जीवन का अभिन्ने अंग बना दिया जाए तो यह मानव की खोई हुई राजसत्ता की पुनर्प्राप्ति का आश्वासन देता है एवं पुनः अनन्त सत्य के साथ जीवन जीने की कला सिखाता है। योग स्वयं जीवन का संपूर्ण सद्बिज्ञान है। योग हमारे सभी शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक कष्टों एवं रोगों से मुक्ति दिलाता है। यह परिपूर्णता एवं अखण्ड आनंद के लिए वचनबद्ध है।

योग में धार्मिक महत्ता

भगवान श्री कृष्ण श्रीमद्भागवत गीता में स्वआयं योग की परिभाषा द्वितीय अध्याय के पचासवें श्लोक में देते हैं- “योगः कर्मसु कौशल” अर्थात् कर्मों की कुशलता का नाम योग है।

महर्षि पतञ्जलि कृत योग-दर्शन में व्याख्या की गई है।

“योगश्चित्तवृत्ति निरोधः

चित्तवृत्तियों का नियंत्रण है। योग साधक अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है योग अनुशासन का दूसरा नाम है।

महर्षि पतञ्जलि का अष्टांग योग भौतिक उन्नक्ति के साथ आध्यात्मिक विकास के लिए मन पर नियंत्रण की प्रेरणा देता है यह केवल हिमालय पर रहने वाले साधु-संतों, सन्यासियों के लिए ही नहीं, अपितु सभी गृहस्थों के लिए भी एक संमार्ग है। योग जीवन है एवं भोग मृत्युह है।

योग के अष्टाङ्ग-

योग के मुख्य आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि।

1. पांच यम हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

2. पांच नियम हैं- शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्राणिधान।

3. आसन स्थिरसुखमासनम्। निश्चल सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है। साधक अपनी योग्यता के अनुसार जिस रीति से बिना हिले-डुले स्थिर-भाव से सुखपूर्वक बिना किसी पीड़ा के बहुत समय तक बैठ सके वही आसन उसके लिए उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त जिस पर बैठकर साधन किष्क्या जाता है, उसका नाम भी आसन है। बैठते समय सिर, गला एवं रीढ़ की हड्डी ये तीनों शरीर के भाग सीधे और स्थिर हों।

आसन-सिद्धि हो जाने पर शरीर पर सर्दी, गर्मी आदि द्वन्द्वों का प्रभाव नहीं पड़ता, शरीर में उन सबको बिना किसी प्रकार की पीड़ा के सहन करने की शक्ति आ जाती है। वे द्वन्द्व चित्त को चंचल कर साधन में विघ्न नहीं डाल सकते।

आसन वह शारीरिक मुद्रा है जिसमें शरीर की स्थिरता बढ़ती है, मन को सुख-शान्ति प्राप्त होती है और आसन की सिद्धि द्वारा नाडियों की शुद्धि, आरोग्य की वृद्धि, शरीर की स्फूर्ति एवं अध्यात्म में उन्नति होती है।

पंच तत्त्वों - आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी से निर्मित शरीर आसनों का अभ्यास करने से सदैव स्वस्थ रहता है। आंतरिक शक्तियां जागृत होती हैं। सभी चक्र खुल जाते हैं। मन में एकाग्रता स्थापित होती है। शक्तिवर्धन के कारण साधक की कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती है। जीवन के चहुंमुखी विकास एवं प्रत्येक कार्य में सफलता के लिए आसनों का अभ्यास अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4. प्राणायाम = प्राण + आयाम। इसका शाब्दिक अर्थ है - प्राण (श्वसन) को लम्बा करना या प्राण (जीवनीशक्ति) को लम्बा करना। (प्राणायाम का अर्थ ‘स्वास को नियंत्रित करना’ या कम करना नहीं है।) प्राण या श्वास का आयाम या विस्तार ही प्राणायाम कहलाता है।

प्राण वह शक्ति है जो हमारे शरीर को जिंदा रखती है और हमारे मन को शक्ति देती है। तो ‘प्राण’ से हमारी जीवन शक्ति का उल्लेख होता है और ‘आयाम’ से नियमित करना। इसलिए प्राणायाम का अर्थ हुआ खुद की जीवन शक्ति को नियमित करना।

प्राण का विवरण

प्राण शरीर की हजार सूक्ष्म ऊर्जा ग्रंथियों (जिन्हें नाड़ि कहते हैं) और ऊर्जा के केंद्रों (जिन्हें चक्र कहते हैं) से गुजरती है और शरीर के चारों ओर आभामंडल बनाती है। प्राणशक्ति की मात्रा और गुणवत्ता मनुष्य की मनोस्थिति निर्धारित करते हैं। अगर प्राणशक्ति बलवान है और उसका प्रवाह निरंतर और सुस्थिर है तो मन सुखी, शांत और उत्साहपूर्ण रहता है। पर ज्ञान के आभाव में और सांस पर ध्यान न रखने की वजह से मनुष्य की नाड़ियां, प्राण के प्रवाह में रूकावट पैदा कर सकती हैं। ऐसी स्थिति मन में आशंका, चिंताएं, और डर उत्पन्न करती है। हर तकलीफ पहले सूक्ष्म में उत्पन्न होती है। इसलिए कोई बीमारी पहले प्राणशक्ति में उत्पन्न होती है।

प्राणायाम के फायदे

- प्राण शक्ति की मात्रा और गुणवत्ता बढ़ाता है।
- रुकी हुई नाड़ियां और चक्रों को खोल देता है। आपका आभामंडल फैलता है।
- मानव को शक्तिशाली और उत्साहपूर्ण बनाता है।
- मन में स्पष्टता और शरीर में अच्छी सेहत आती है।
- शरीर, मन, और आत्मा में तालमेल बनता है।

प्राणायाम के प्रकार और उपयोग

प्राचीन भारत के ऋषि मुनियों ने कुछ ऐसी सांस लेने की प्रक्रियाएं ढूंढी जो शरीर और मन को तनाव से मुक्त करती हैं। इन प्रक्रियाओं को दिन में किसी भी वक्त खली पेट कर सकते हैं। देखते हैं कौन सी प्रक्रिया किस परिस्थिति में उपयोगी है :

ख अगर आपका मन किसी बात को लेके विचलित हो या आपका किसी की बात से अपना मन हटा ही नहीं पा रहे हो तोह आपको भ्रामरी प्राणायाम करना चाहिए। यह प्रक्रिया उक्त रक्तचाप से पीड़ित लोगों के लिए बहुत फायदेमंद है।

5. प्रत्याहार – अपने विषयों के संबंध रहित होने पर, इन्द्रियों का चित्त के स्वीरूप में तदाकार सा होना प्रत्याहार है। इन्द्रियों की बाह्यवृत्ति को ओर से समेटकर मन में विलीन होने का नाम प्रत्याहार है। इससे इन्द्रियों पर नियंत्रण होता है। प्रत्याहार दो शब्दों ‘प्रति’ और ‘आहार’ से मिलकर बना है। ‘प्रति’ का अर्थ है विपरीत अर्थात् इन्द्रियों के जो अपने विषय हैं उनको उनके विषय या आहार के विपरीत कर देना प्रत्याहार है। इन्द्रियों विषयी हैं, ये विषय को ग्रहण करती हैं। ये विषय हैं- पंच तन्मात्राएँ। चेतना ज्ञान प्राप्त करना चाहती हैं और चित्त उसका माध्यम बनता है। विषय अधिक होने पर चित्त उसमें भटक जाता है और यह ज्ञान इन्द्रियों से प्राप्त होता है। जब इन्द्रियाँ विषयों को छोड़कर विपरीत दिशा में मुड़ती हैं तो प्रत्याहार होता है। अर्थात् इन्द्रियों की बहिर्मुखता का अंतर्मुख होना ही प्रत्याहार है। योग के उच्च अंगों के लिए अर्थात् धारणा, ध्यान तथा समाधि के लिए प्रत्याहार का होना आवश्यक है।

प्रत्याहार की परिभाषा

1. महर्षि पतंजलि प्रत्याहार के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं – स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः॥ पातंजल योग सूत्र 2/54 अर्थात् अपने विषयों के संबंध से रहित होने पर इन्द्रियों का जो चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाता है, वह प्रत्याहार है।
2. प्रत्याहार से संबंधित विभिन्न व्याख्याकारों ने जो व्याख्या की है वह इस प्रकार है- महर्षि व्यास के अनुसार – इन्द्रियाँ अपने विषय से असम्बद्ध हैं, जैसे मधुमक्खियाँ रानी मधुमक्खी का अनुकरण करती हैं। राजा मन के निरोध होने से इन्द्रियों का भी निरोध हो जाता है। योग की इस स्थिति को ही प्रत्याहार कहा जाता है।
3. आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार – इन्द्रियों की बाह्य वृत्ति को सब ओर से हटाकर एकत्रित करके मन में लय करने के अभ्यास को प्रत्याहार कहा गया है। इन्द्रियों का विषयों से अलग होना ही प्रत्याहार है। जिस समय साधक अपनी साधनाकाल में इन्द्रियों के विषयों का परित्याग कर देता है और चित्त को अपने इष्ट में एकाकार कर (लगा) देता है, तब उस समय जो चिंतन इन्द्रियों के विषयों की तरफ न जाकर चित्त में समाहित हो जाती है, वही प्रत्याहार सिद्धि की पहचान है। जिस तरह से मनुष्य की छाया चलने पर चलने लगती है, रूकने पर रूक जाती है, वैसे ही इन्द्रियाँ चित्त के अधीन रहकर कार्य करती हैं। यही प्रत्याहार के अभिमुख होना है।
4. शारदातिलक के अनुसार – इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरगलम्। बलदाहरणं तेभ्य प्रत्याहारौभिधीयते॥ 25/23 अर्थात् ये इन्द्रियाँ विषयों में बेरोक-टोक दौड़ते रहने से चंचल रहती हैं। अतः उन विषयों से इन्द्रियों को निरुद्ध कर मन को स्थिर करने का नाम प्रत्याहार है। रूद्रयामल में भगवद्पाद में चित्त लगाने को प्रत्याहार कहा गया है।
5. घेरण्ड संहिता के अनुसार – यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिम्। ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्यैव वशं नयेत्॥ 4/2 अर्थात् जहाँ-जहाँ यह चंचल मन विचरण करे इसे वहीं-वहीं से लौटाने का प्रयत्न करते हुए आत्मा के वश में करे (यही प्रत्याहार है)।
6. विष्णु पुराण के अनुसार – शब्दादिष्वनुषक्तानि निगृह्याक्षिण योगवित्। कुर्याच्चित्तानुकारिणी प्रत्याहार परायणाः॥ अर्थात् योगविदों को चाहिए कि वह शब्दादि विषयों में आसक्ति का निग्रह करे और अपने-अपने विषयों में आसक्ति का निग्रह करे और अपने-अपने विषयों से निरुद्ध इन्द्रियों को चित्त का अनुसरण करने वाला बनावे। यही अभ्यास प्रत्याहार का रूप धारण कर लेता है।

7. कठोपनिषद् (1/3/13) के अनुसार - बुद्धिमान मनुष्य को उचित है कि वाक् आदि इंद्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर मन को इष्ट में लगावे।
8. मैत्रेयुपनिषद् (1/9) के अनुसार - चित्त ही संसार है। इसलिए प्रयत्नपूर्वक उसे ही शुद्ध करो, क्योंकि जैसा चित्त है वैसी ही गति, यह सनातन सिद्धांत है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि इंद्रियों का अपने विषयों को छोड़कर चित्त के अनुकूल अनुरूप होकर कार्य करना प्रत्याहार है। उपर्युक्त परिभाषाओं में महर्षि पतंजलि द्वारा बतायी गयी परिभाषा के अनुसार प्रत्याहार स्वतः होने वाली प्रक्रिया है। इसमें प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है जबकि अन्य परिभाषाओं में प्रयासपूर्वक अर्थात् क्रियात्मक प्रत्याहार पर जोर दिया गया है।

प्रत्याहार का परिणाम एवं महत्व

महर्षि पतंजलि के अनुसार-

ततः पातंजल योग सूत्र परमावश्यतेऽन्द्रियाणाम्॥ 2/55 उस प्रत्याहार से इंद्रियों की परम आवश्यकता होती है अर्थात् प्रत्याहार से इंद्रियाँ अपने वश में हो जाती हैं। प्रत्याहार के परिणाम से संबंधित विभिन्न व्याख्याकारों ने जो व्याख्या की है वह इस प्रकार है-

व्यास भाष्य के अनुसार -

इंद्रियों की परमवश्यता क्या है, इसे व्यास भाष्य में इस प्रकार कहा गया है-कोई कहते हैं शब्दादि विषयों में आसक्त न होना अर्थात् अपने अधीन रखना इन्द्रियवश्यता या इन्द्रियजय है। दूसरे कहते हैं कि वेदशास्त्र से अविरुद्ध विषयों का सेवन, उनके विरुद्ध विषयों का त्याग इन्द्रियजय है। कुछ लोग कहते हैं कि विषयों में न फँसकर अपनी इच्छा से विषयों के साथ इंद्रियों का सम्प्रयोग। कुछ लोग कहते हैं कि राग-द्वेष के अभावपूर्वक सुख-दुःख से शून्य विषयों का ज्ञान होना इन्द्रियजय है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार -

तब वह मनुष्य जितेन्द्रिय होकर जहाँ अपने मन को ठहराना या चलाना चाहे, उसी में ठहरा एवं चला सकता है। फिर उसको ज्ञान हो जाने से सदा सत्य से प्रीति हो जाती है और असत्य में कभी नहीं।

आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार -

योगी साधक जब प्रत्याहार की सिद्धि प्राप्त कर लेता है तो समस्त इंद्रियाँ उसके वश में हो जाती हैं। वह जितेन्द्रिय हो जाता है। इंद्रियों की स्वतंत्रता का सदैव के लिए अभाव हो जाता है। इन सब विषयों में इन्द्रियजय के लक्ष्य में विषयों का संबंध बना ही रहता है जिससे गिरने की आशंका दूर नहीं हो सकती। इसलिए यह इंद्रियों की परमवश्यता नहीं है। चित्त की एकाग्रता के कारण इंद्रियों की विषयों में प्रवृत्ति न होना इन्द्रियजय है। उस एकाग्रता से चित्त के निरुद्ध होने पर इंद्रियों का सर्वथा निरोध हो जाता है और अन्य किसी इन्द्रियजय के उपाय में प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं रहती। इसलिए यही इंद्रियों की परमवश्यता है। प्रत्याहार का फल है इन्द्रियजय अर्थात् मन सहित समस्त इंद्रियों पर विजय। इन्द्रियजय योग की एक महत्वपूर्ण घटना या प्रक्रिया है जो आगे धारणा, ध्यान, समाधि के लिए आधारभूमि का काम करती है।

6. धारणा-का अर्थ है ऐसे विश्वावसों को धारण करना जिनके द्वारा मनोवांछित स्थिति को प्राप्त किया जा सके। ये स्थितियाँ हैं प्रसन्नता, निरोगिता, सुख, शांति, संतोष, तृप्ति, आनंद जिन्हें आत्मिक संपदाओं से संबोधित किया जाता है। मानव अपने भाग्यस का स्वयं निर्माता है। धारणा मन की एकाग्रता है, एक बिन्दु, एक वस्तु या एक स्थान पर मन की सजगता को अविचल बनाए रखने की क्षमता है। "योग में धारणा का अर्थ होता है मन को किसी एक बिन्दु पर लगाए रखना, टिकाए रखना। किसी एक बिन्दु पर मन को लगाए रखना ही धारणा है। धारणा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'धृ' धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है- आधार, नींव।" धारणा अर्थात् ध्यान की नींव, ध्यान की आधारशिला। धारणा परिपक्व होने पर ही ध्यान में प्रवेश मिलता है। धारणा की अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

महर्षि पतंजलि- देशबन्धश्चित्तस्य धारणा॥ पा.यो.सू. 3/1-अर्थात् देश विशेष में चित्त को स्थिर करना धारणा कहलाता है। स्पष्ट है कि महर्षि ने भी मन को एकाग्र करने की प्रक्रिया को ही धारणा कहा है जिसमें मन या चित्त को किसी स्थान विशेष में बांधकर रखने की प्रक्रिया ही धारणा है। यहाँ देश के दो भेद किए गए हैं- बाह्य देश जैसे किसी मूर्ति, सूर्य, चन्द्रमा आदि तथा अंतर देश जैसे शरीर के अंदर के कुछ विशिष्ट स्थान जैसे क्राट्चक्र आदि। धारणा से संबंधित विभिन्न व्याख्याकारों ने जो व्याख्या की है वह इस प्रकार है-

महर्षि व्यास- नाभिचक्रे, हृदयपुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाग्रे, जिह्वाग्र इत्यादि देशों में अथवा बाह्य विषय में वृत्ति मात्र से बंधना स्थिर करना धारणा कहलाता है।

इस सूत्र में देश बन्ध पद का अभिप्राय यह है कि चित्तवृत्ति को शरीर के अंदर किसी स्थान विशेष जैसे नाभिचक्र, हृदय कमल, नासिका का अग्रभाग, भृकुटि, जिह्वाग्र में अथवा आकाश, सूर्य, चन्द्रमा आदि देवता में से किसी एक में अन्य सभी जगह के विषयों से विरक्त हो एक ही विषय पर चित्त की वृत्ति को स्थिर करने का नाम ही धारणा है। कुछ अन्य ग्रंथों में धारणा की परिभाषा इस प्रकार है-त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्-

पंचभूतमये देहे भूतेष्वेतेषु वंचषु। मनसो धारणं एतद् युक्तस्य च यमादिभिः।

अर्थात् चित्त का निश्चलीकरण भाव होना ही धारणा है। शरीरगत पंचमहाभूतों में मनोधारण रूप धारणा भवसागर को पार कराने वाली है।

योगतत्त्वोपनिषद् (69/72)- पंचज्ञानेन्द्रियों के विषय में ब्रह्म या आत्मा की भावना होना ही धारणा है

दर्शनोपनिषद्- शरीरगत पंचभूतांश का बाह्य पंचभूतों में धारण करना ही यथार्थ धारणा है।

तेजोबिन्दूपनिषद्- मन के विषयों में ब्रह्मभाव का अवस्थित होना ही धारणा है।

कठोपनिषद्- तां योगमिति मन्यते स्थिरामिन्द्रिय धारणम् 2/3/11

अर्थात् मन और इंद्रियों का दृढ़ नियंत्रण ही धारणा योग है।

वसिष्ठ संहिता- इसमें धारणा की चार परिभाषाएँ दी गयी हैं। अर्थात् योगशास्त्र के ज्ञाता योगी लोग यम आदि गुणों से युक्त अपने में मन की स्थिरता को धारणा कहते हैं। अन्य तीन परिभाषाओं में क्रमशः एक में बाह्याकाश एवं अंतराकाश का हृदय में चिंतन करने को धारणा कहा गया है। एक में पंचमहाभूतों का बीज मंत्रों के साथ और एक में पांच देवताओं का चिंतन करना धारणा कहा गया है।

स्वामी विवेकानन्द- धारणा का अर्थ है मन को देह के भीतर या उसके बाहर किसी स्थान में धारण या स्थापन करना। मन को स्थान विशेष में धारण करने का अर्थ है मन को शरीर के अन्य स्थानों से हटाकर किसी एक विशेष अंश के अनुभव में बलपूर्वक लगाए रखना।

आचार्य श्रीराम शर्मा- धारणा का तात्पर्य उस प्रकार के विश्वासों की धारणा करने से है जिनके द्वारा मनोवांछित स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है। भौतिक संपदायें कुपात्रों को भी मिल जाती हैं परंतु आत्मिक संपदाओं में एक भी ऐसी नहीं है जो अनाधिकारी को मिल सके। स्वामी निरंजनानंद सरस्वती- वह वस्तु या प्रत्यय जिस पर मन दृढ़तापूर्वक आधारित होता है, योग की परंपराओं में धारणा राजयोग का अंतरंग अभ्यास है जो मानसिक अनुशासन का मार्ग है। स्वामी शिवानंद- विचारों के सामुदायीकरण को धारणा कहते हैं। मानसिक प्रवृत्तियों को केवल एक पदार्थ पर स्थिर और प्रतिष्ठापित करना धारणा है। जिस विधि में मन और मन की प्रवृत्तियाँ एकाग्र कर दी जाती हैं। उनमें चंचलता और विक्षेप नहीं रहता उसे (या उस विधि को) धारणा कहा जाता है।

धारणा के प्रकार-

धारणा के प्रकारों का वर्णन विभिन्न ग्रंथों एवं विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग प्रकारों का वर्णन किया है- स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के अनुसार - इन्होंने चार प्रकार की धारणा बतायी है जिनके कई उपभेद हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं -

औपनिषदिक धारणा-

इसमें स्वामी जी ने 6 प्रकार की धारणा बताई है-

1. बाह्याकाश
2. अंतराकाश
3. चिदाकाश
4. आज्ञाचक्र धारणा
5. हृदयाकाश धारणा
6. दहराकाश धारणा

लय धारणा-

यह दो प्रकार की है-

1. मूलाधार एवं विशुद्धि दृष्टि
2. लोक दृष्टि

व्योम पंचक धारणा-

इसमें पांचों सूक्ष्म आकाशों की अनुभूति अवचेतन तथा उसके परे जगत की होती है। ये पांच हैं-

1. गुणरहित आकाश
2. परमाकाश
3. महाकाश
4. तत्वाकाश
5. सूर्याकाश

नादानुसंधान धारणा-

स्थूल से सूक्ष्म आकाशों की अनुभूति अवचेतन तथा उसके परे ध्वनि कंपन की खोज धारणा का संपूर्ण भाग है जिसे नादानुसंधान कहते हैं। (धारणा दर्शन, पृ. 423)

वसिष्ठ संहिता में वर्णित धारणा- इसमें पांच तत्वों की धारणा बतायी गयी है-

भूमिरापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च। एतेशु पंचवर्णानि धारण धारणा स्मृताः॥४/४

अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश इनमें पांच बीज वर्णों (ल, व, र, य, ह) का चिंतन करना धारणा है। इसे इस प्रकार समझ सकते हैं- महाभूत स्थान बीजाक्षर देवता पृथ्वी पांव से जानु तक लं ब्रह्म जल जानु से मूलाधार तक वं विष्णु अग्नि मूलाधार से हृदय तक रं रुद्र वायु हृदय से भ्रूमध्य तक यं महत् आकाश भ्रूमध्य से ब्रह्मरंध्र तक हं अध्यवत

घेरण्ड संहिता के अनुसार - इसमें पंचतत्त्वों के आधार पांच प्रकारों की धारणा का उल्लेख है- पार्थिवी धारणा, आम्भसी धारणा, अग्नि धारणा, वायवीय धारणा व आकाशी धारणा। शिव संहिता तथा अन्य कई उपनिषदों में भी पंच तत्व के आधार पर पांच प्रकार की धारणा बतायी गयी है।

धारणा का परिणाम एवं महत्व

धारणा से एकाग्रता बढ़ती है और एकाग्रता से अनेक कार्य संपन्न होते हैं क्योंकि हमारी मानसिक ऊर्जा एक बिन्दु पर होती है। आध्यात्मिक एवं लौकिक दोनों प्रकार के कार्यों के लिए धारणा आवश्यक है। स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के अनुसार कोई भी छोटा से छोटा कार्य हो, उसे एकाग्रता से करने की आवश्यकता होती है। बिना एकाग्रता के हम कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। जबकि एकाग्र मन वाला व्यक्ति कोई भी कार्य अधिक दक्षतापूर्वक कर सकता है। अतः दैनिक जीवन के साथ ही साथ आध्यात्मिक साधना के लिए धारणा आवश्यक है। हम मन की तुलना बल्ब से कर सकते हैं। एक बिजली के बल्ब का प्रकाश सभी दिशाओं में फैलता है, ऊर्जा बिखरती रहती है। आप उस बल्ब से पांच फुट की दूरी पर ताप का अनुभव नहीं कर सकते। यद्यपि उस बल्ब के मध्य स्थित फिलामेंट में पर्याप्त ताप विद्यमान होगा। इसी प्रकार मन में प्रच्छन्न रूप में अपरिमित शक्ति है परन्तु यह सभी दिशाओं में बिखरी हुई है जो धारणा से केन्द्रित होती है। वसिष्ठ संहिता (4/11-15) में धारणा की महत्ता के सन्दर्भ में बताया गया है कि-

पृथ्वी तत्व की धारणा से पृथ्वी तत्व पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

1. जल तत्व की धारणा से रोगों से छुटकारा मिलता है।
2. अग्नि तत्व की धारणा करने वाला अग्नि से नहीं जलता।
3. वायु तत्व की धारणा से वायु के समान आकाश विहारी होता है।
4. आकाश तत्व में पांच पल की धारणा से जीव मुक्त होगा और एक वर्ष में ही मल-मूल की अल्पता होगी।

7. ध्यागन-मन की चंचलता समाप्त कर एकाग्रता में प्रवेश कर वर्तमान में जीवनकला का नाम ध्याधन है। ध्या न से सभी कार्य सफल होते हैं। जीवन की सार्थकता तभी है जब हम उसे आनंदमय, शान्तिमय, संगीतमय, रसमय और ज्योतिर्मय बनाएं। ध्यामन द्वारा समस्त शारीरिक रोग एवं मानसिक तनाव दूर होते हैं। जीवन वीणा से मधुरता एवं समसरता के स्वीर गूंजते हैं। सभी प्रकार के आवेग एवं आवेश शान्त हो जाते हैं। उत्तेजनाएं समाप्त हो जाती हैं। ध्यान ही समाधि के द्वारा ही साधक आध्यात्मिक उत्कृष्ट शिखर पर पहुंचता है। साधक की ईमानदार, निष्ठोवान एवं लग्नयशील होना परमावश्यक है।

ध्यान क्या है?

ध्यान एक विश्राम है। यह किसी वस्तु पर अपने विचारों का केन्द्रीकरण या एकाग्रता नहीं है, अपितु यह अपने आप में विश्राम पाने की प्रक्रिया है। ध्यान करने से हम अपने किसी भी कार्य को एकाग्रता पूर्ण सकते हैं।

ध्यान के लाभ-

1. शांत चित्त
2. अच्छी एकाग्रता
3. बेहतर स्पष्टता
4. बेहतर संवाद
5. मस्तिष्क एवं शरीर का कार्याकल्प व विश्राम ध्यान के कारण शरीर की आंतरिक क्रियाओं में विशेष परिवर्तन होते हैं और शरीर की प्रत्येक कोशिका प्राणतत्व (ऊर्जा) से भर जाती है। शरीर में प्राणतत्व के बढ़ने से प्रसन्नता, शांति और उत्साह का संचार भी बढ़ जाता है।
1. उच्च रक्तचाप का कम होना, रक्त में लैक्टेट का कम होना, उद्वेगव्याकुलता का कम होना।
2. तनाव से सम्बंधित शरीर में कम दर्द होता है। तनाव जनित सिरदर्द, घाव, अनिद्रा, मांशपेशियों एवं जोड़ों के दर्द से राहत मिलती है।
3. भावदशा व व्यवहार बेहतर करने वाले सेरोटोनिन हार्मोन का अधिक उत्पादन होता है।
4. प्रतिरक्षा तंत्र में सुधार आता है।
5. ऊर्जा के आंतरिक स्रोत में उन्नति के कारण ऊर्जा-स्तर में वृद्धि होती है।

ध्यान के 11 मानसिक लाभ-

ध्यान, मस्तिष्क की तरंगों के स्वरूप को अल्फा स्तर पर ले आता है जिससे चिकित्सा की गति बढ़ जाती है। मस्तिष्क पहले से अधिक सुन्दर, नवीन और कोमल हो जाता है। ध्यान मस्तिष्क के आंतरिक रूप को स्वच्छ व पोषण प्रदान करता है। जब भी आप व्यग्र, अस्थिर और भावनात्मक रूप से परेशान होते हैं तब ध्यान आपको शांत करता है। ध्यान के सतत अभ्यास से होने वाले लाभ निम्नलिखित हैं:

1. व्यग्रता का कम होना
2. भावनात्मक स्थिरता में सुधार

3. रचनात्मकता में वृद्धि
4. प्रसन्नता में संवृद्धि
5. सहज बोध का विकसित होना
6. मानसिक शांति एवं स्पष्टता
7. परेशानियों का छोटा होना
8. ध्यान मस्तिष्क को केन्द्रित करते हुए कुशाग्र बनाता है तथा विश्राम प्रदान करते हुए विस्तारित करता है।
9. बिना विस्तारित हुए एक कुशाग्र बुद्धि क्रोध, तनाव व निराशा का कारण बनती है।
10. एक विस्तारित चेतना बिना कुशाग्रता के अकर्मण्य/ अविकसित अवस्था की ओर बढ़ती है।
11. कुशाग्र बुद्धि व विस्तारित चेतना का समन्वय पूर्णता लाता है।

ध्यान आपको जागृत करता है कि आपकी आंतरिक मनोवृत्ति ही प्रसन्नता का निर्धारण करती है।

ध्यान के 3 आध्यात्मिक लाभ-

ध्यान का कोई धर्म नहीं है और किसी भी विचारधारा को मानने वाले इसका अभ्यास कर सकते हैं।

1. मैं कुछ हूँ इस भाव को अनंत में प्रयास रहित तरीके से समाहित कर देना और स्वयं को अनंत ब्रह्मांड का अविभाज्य पात्र समझना।
2. ध्यान की अवस्था में आप प्रसन्नता, शांति व अनंत के विस्तार में होते हैं और यही गुण पर्यावरण को प्रदान करते हैं, इस प्रकार आप सृष्टी से सामंजस्य में स्थापित हो जाते हैं।
3. ध्यान आप में सत्यतापूर्वक वैयक्तिक परिवर्तन ला सकता है। क्रमशः आप अपने बारे में जितना ज्यादा जानते जायेंगे, प्राकृतिक रूप से आप स्वयं को ज्यादा खोज पाएंगे।

ध्यान के लाभ कैसे प्राप्त करें-

ध्यान के लाभों को महसूस करने के लिए नियमित अभ्यास आवश्यक है। प्रतिदिन यह कुछ ही समय लेता है। प्रतिदिन की दिनचर्या में एक बार आत्मसात कर लेने पर ध्यान दिन का सर्वश्रेष्ठ अंश बन जाता है। ध्यान एक बीज की तरह है। जब आप बीज को प्यार से विकसित करते हैं तो वह उतना ही खिलता जाता है।

प्रतिदिन, सभी क्षेत्रों के व्यस्त व्यक्ति आभार पूर्वक अपने कार्यों को रोकते हैं और ध्यान के ताजगी भरे क्षणों का आनंद लेते हैं। अपनी अनंत गहराइयों में जाएँ और जीवन को समृद्ध बनाएं।

प्रतिदिन ध्यान करने से लाभ-

1. आत्मविश्वास में वृद्धि
2. अधिक केन्द्रित व स्पष्ट मन
3. बेहतर स्वास्थ्य
4. बेहतर मानसिक शक्ति व ऊर्जा
5. अधिक गतिशीलता
8. समाधि-जब समाधि एक सामान्य रूप से प्रयोग किया जाने वाला संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ होता है- ध्यान की ऐसी स्थिति जिसमें बाहरी चेतना विलुप्त हो जाती है। इसे ध्यान का या आध्यात्मिक जीवन का आखिरी चरण माना जाता है। इसलिए इस शब्द का उचित अर्थ समझ लेना आवश्यक है। वास्तव में यह संस्कृत का शब्द है जो ग्रीक, लैटिन और फारसी भाषा की तरह ही एक प्राचीन भाषा है और हर शास्त्रीय भाषा की तरह संस्कृत में भी अधिकतर शब्द कुछ मूलशब्दों से उत्पन्न हुए हैं।

‘समाधि’ शब्द मूलरूप से ‘धा’ शब्द से लिया गया है, जिसके अर्थ होते हैं - रखना, स्थापित करना, प्रस्तुत करना, छोड़ देना या स्थित। इसी प्रकार ‘समाधि’ शब्द के अर्थ हैं - एक साथ जोड़ना, संजोना, संघ, समापन, एकाग्रता, ध्यान, या समझौता। वैसे, आध्यात्मिक जीवन में ‘समाधि’ ध्यान की उस स्थिति को कहा जाता है जब ध्यान लगाने वाला व्यक्ति और ध्यान की जाने वाली चीज दोनों का आपस में विलय हो जाते हैं, एकाकार हो जाते हैं, उनमें कोई भेद नहीं रह जाता। फिर इस चरण में कोई विचार प्रक्रिया नहीं रह जाती।

इसे ध्यान की उच्चतम अवस्था माना जाता है। समाधि, शांत मन की सबसे अच्छी स्थिति है। इसके अतिरिक्त इसे एकाग्रता की भी सर्वोच्च अवस्था माना जाता है। इसके अंतर्गत किसी वस्तु पर ध्यान एकाग्र करने वाला व्यक्ति और वस्तु आखिरकार दोनों एक हो जाते हैं। अर्थात् ध्यान की इस स्थिति में, ध्यान लगाने वाले व्यक्ति के आत्म और उस वस्तु के बीच का अंतर पूरी तरह से मिट जाता है। वे एकाकार हो जाते हैं।

उपनिषदों में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को समाधि की अवस्था प्राप्त करने से पहले अनावश्यक गतिविधियों से बचना चाहिए। उसे संयमित वाणी, संयमित शरीर और संयमित मस्तिष्क की आवश्यकता होती है। उसे आध्यात्मिक जीवन की सभी कठिनाइयों के प्रति न केवल सहनशील होना चाहिए अपितु उसका त्यागी और धैर्यवान होना भी आवश्यक है। एक व्यक्ति वास्तव में अपनी सच्ची प्रकृति और आत्ममान केवल समाधि के द्वारा ही प्राप्त कर सकता है।

वैसे, स्वामी विवेकानंद जी द्वारा बताए गए निम्नलिखित चार योगों - राजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग और जननयोग में से किसी एक के द्वारा समाधि की अवस्था प्राप्त की जा सकती है। राज योग अर्थात् मानसिक नियंत्रण के अभ्यास के अलग - अलग चरणों का पालन करके व्यक्ति समाधि की अवस्था प्राप्त कर सकता है। कर्म योग में स्वामीजी ने बताया है कि निःस्वार्थ कर्म यानी बिना फल की चिंता किए किया जाने वाला काम करके भी समाधि की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार भक्ति और जननयोग के द्वारा भी समाधि प्राप्त की जा सकती है। समाधि की अवस्था में मन अन्य सभी वस्तुओं का संज्ञान खो देता है। यहां तक कि उस वस्तु तक का जिसपर ध्यान लगाया गया था। इस स्थिति में मन, ध्यान लगाई जाने वाली वस्तु में इतना तल्लीन हो जाता है कि किसी और का कोई भान ही नहीं रहता। समाधि का एक अर्थ यह भी है कि इस स्थिति में व्यक्ति तीनों सामान्य चेतनाओं - सोने, जागने और सपने देखने की अवस्थाओं से परे किसी चौथी अवस्था में चला जाता है।

समाधि की स्थिति में व्यक्ति का अहंकार पूरी तरह से नष्ट हो जाता है। फिर मन एक ऐसे अस्तित्व में रहता है, एक ऐसी अवस्था में विलीन हो जाता है, जो ज्ञान और अहं से कहीं ऊपर है। इनसे कहीं परे है। जहां व्यक्ति स्वयं अपनी चेतना खो देता है। समाधि, व्यक्ति को सामान्य से विशेष बना देती है। यह एक ऐसा परिवर्तन है जिसमें व्यक्ति प्रबुद्ध हो जाता है, उसे आत्मज्ञान हो जाता है। और फिर वो सदा - सदा के लिए जन्म-मृत्यु (आवागमन) की बेड़ियों के बंधन से मुक्त हो जाता है।

इसके अतिरिक्त समाधि में कारण, प्रभाव और तर्क के संकीर्ण क्षेत्रों का कोई स्थान नहीं रह जाता। समाधि में कुछ भी तार्किक नहीं है। इस स्थिति के अंतर्गत शरीर लगभग पूरी तरह से अपनी सभी सचेतन शारीरिक गतिविधियों को बंद कर देता है, फिर भी व्यक्ति मरता नहीं है। यह एक विचारशून्य अवस्था है, जिससे लौटने के बाद व्यक्ति के विचार अपने आप में पूर्ण और निर्बाध होते हैं और उसके विचारों में स्पष्ट वैश्विक दृष्टि झलकती है। इस प्रकार से समाधि को ऐसी अवस्था के रूप में समझा जा सकता है जो तर्क, चेतना और विचारों से कहीं परे है।

ध्यान में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति है और चित्त का निज स्वरूप शून्यह सा हो जाता है, तब वहीं ध्यान ही समाधि हो जाता है। सत्यक, चौतन्योता एवं आनंद का अनुभव करने के लिए ईश्वरीय कृपा-पात्र बनने के लिए हमें ध्यान करना चाहिए।

योग से मिली युवाओं को मदद-

इसके साथ ही रिसर्चरों ने दिमाग को शांत करने वाली अलग-अलग क्रियाओं का भी अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि जो युवा इस तरह की गतिविधियों का इस्तेमाल शुरू कर चुके हैं उनके आक्रामक और खतरनाक व्यवहार में सुधार आया है। वैज्ञानिकों ने कहा, 'जिन युवाओं ने योग या मेडिटेशन (ध्यान लगाना) जैसी क्रियाओं को अपनाना शुरू किया है उनके नकारात्मक रवैये में सुधार आया है और ऐसे युवा तनाव के कारण गलत कामों की ओर जाने से भी बच गए हैं।

शोध से जुड़े वैज्ञानिकों ने कहा कि टेस्टोस्टेरोन दिमाग में ज्यादा आक्रामक व्यवहार को जन्म देने के लिए जिम्मेदार होता है। लेकिन अगर इसे स्पोर्ट्स, योग और सकारात्मक प्रतिस्पर्धा जैसी चीजों से कंट्रोल किया जाए तो इसका असर ज्यादा पोजिटिव होता है। रिसर्चरों ने पाया कि जो लोग किताब पढ़ने, स्पोर्ट्स खेलने, जैसी दिमाग को व्यस्त रखने वाली क्रियाओं में समय बिताते हैं, उनमें यौन भावनाएं और झगड़ालु व्यवहार उत्पन्न होने का खतरा दोगुना कम होता है।

योग से पाएं खतरनाक रोगों पर नियंत्रण-

किसी कठिन और थका देने वाली दो-ढाई घंटे लंबी कसरत के बजाय बीस से तीस मिनट तक किया जाने वाला योगाभ्यास ज्यादा कारगर होता है। कसरत में फिर भी नुकसान की गुंजाइश रहती है क्योंकि पता नहीं शरीर में कौन सा रोग पल रहा है और की जा रही कसरत अपने दबाव से उस रोग को बढ़ा या बिगाड़ दे।

लेकिन योग में ऐसा कोई खतरा नहीं। कोई आसन अभ्यास अनुकूल नहीं बैठ रहा तो आपकी सांस उखड़ने लग सकती है या हो सकता है कि वह आसन करना संभव ही न हो। योग के इन फायदों के साथ ताजा अनुसंधानों में यह भी साबित हुआ है कि योग से मधुमेह, अस्थमा और हृदयरोग जैसी जटिल बीमारियां भी बिना किसी औषधि और उपचार के नियंत्रित की जा सकती हैं। चिकित्सा विज्ञान दवाओं और इलाज के बावजूद रोग के ठीक होने या उसे काबू करने की गारंटी नहीं लेता परंतु योग तो निश्चित आश्वासन देता है क्योंकि यह शरीर में मौजूद रोग प्रतिरोधक क्षमता से तालमेल बिठाता है।

शक्ति पाने के लिए योग कीजिए -

योगा आपके शरीर, मन और आत्मा को एक साथ लाने का काम करता है। ये एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है। इससे शरीर को ऊर्जा मिलती है और शरीर और आत्मा का मिलन होता है। योगा से तनाव तो कम होता ही है, साथ ही ये वजन कम करने से लेकर कई अन्य बीमारियों के इलाज में कारगर साबित होता है।

निष्कर्ष

योग एक प्रकार से दवा की तरह काम करता है जो हमारे शरीर के विभिन्न अंगों को उनके कार्य को सुचारू रूप से करने के लिए संचालित करता है। और विभिन्न प्रकार की गहन बीमारियों से रक्षा करता है। योग हमारे शरीर में शांति बढ़ाने और तनाव तथा समस्याओं को दूर करने के भी सहायता करता है। योग और इसके लाभों के प्रति दुनिया को जागरूक करने के लिए अब विश्वभर में 21 जून का दिन विश्व योग दिवस के रूप में मनाया जाने लगा है। इस दिन दुनिया भर में अनेकों आयोजन किए जाते हैं। योग किसी भी आयु जैसे बाल्यावस्था, किशोरावस्था, वयस्क अथवा वृद्धावस्था में किया जा सकता

है। योग करने से शरीर में शांति का स्तर बढ़ जाता है जिससे कि सकारात्मक सोच एवं आत्मविश्वास भी जागृत होता है। विभिन्न प्रकार के योग अभ्यास विभिन्न उद्देश्यों के लिए किए जाते हैं इसलिए हमें केवल स्वयं की आवश्यकतानुसार और केवल सुझाए गए योगों का ही अभ्यास करना चाहिए। योग के दौरान श्वसन क्रिया में ऑक्सीजन लेना और छोड़ना मुख्य तकनीक है।

दैनिक जीवन में प्रतिदिन योग के अभ्यास से हम बहुत सी भयानक बिमारियों जैसे कैंसर, मधुमेह और उच्च रक्तचाप इत्यादि से अपना बचाव कर सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Ministry of AYUSH, Govt. of India, Common Yoga Protocol 2017 (Internet)
2. Asana Pranayama & Mudra Bandha Saraswati, Swami Satyananda Bihar School Of Yoga, Munger, 1969
3. Bhartiya Darshan ki Ruprekha Sinha, Harendra Prasad MLBD, Delhi, 1963
4. Eighty four Asanas in Yoga Buhneemann, Gudaum D.K. Printworld Pvt. Ltd., New Delhi, 2007
5. Foundations of Yoga Singh, S.P. & Yogi Mukesh Standard Publishers, India, 2010
6. History of Yoga Singh, S.P. & Chattopadhyaya, D.P. MLBD, New Delhi, 2010
7. Light on the Yoga sutras of Patanjala Iyengar, B.K.S. Aquarian Thorsons, 1993

भारत में कृषि और किसानों की स्थिति: बिहार के विशेष सन्दर्भ में

संजय कुमार सिंह

शोधार्थी, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

2009-10 तक, देश की आधे से अधिक श्रम शक्ति (53%), यानी 24.3 करोड़ लोग कृषि क्षेत्र में कार्यरत थे। हालांकि, जीडीपी में इसका योगदान 17.5% ही (वर्तमान 2015-16 की कीमतों पर) है। इस क्षेत्र से अपनी आजीविका कमाने वाले लोगों में जमींदार, काश्तकार किसान जो जमीन के एक छोटे टुकड़े पर खेती करते हैं और इन खेतों में काम करने वाले खेत मजदूर शामिल हैं। पिछले 10 वर्षों के दौरान 2010-11 में 8.6%, 2014-15 में -0.2% और 2015-16 में 0.8% की वार्षिक वृद्धि के साथ, कृषि उत्पादन अस्थिर रहा है।

बिहार की 70 प्रतिशत आबादी आज भी कृषि से जुड़ी है। राज्य के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान लगभग 18-19 प्रतिशत है। लेकिन कृषि की अपनी विकास दर में लगातार कमी आई है। यह वृद्धि दर 2005-2010 के बीच 5.4%, 2010-14 में 3.7% थी और अब 1-2% के बीच है। बिहार में बार-बार बाढ़ और सूखे की स्थिति बनी रहती है। जिस समय उत्तरी बिहार बाढ़ से प्रभावित होता है, उसी वर्ष दक्षिण बिहार में सूखा पड़ जाता है।

प्राचीन काल से लेकर आज तक, किसानों का जीवन केवल अभाव में ही गुजरा है। अगर भारत को एक प्रगतिशील और मजबूत राष्ट्र बनाना है, तो पहले किसानों को समृद्ध और आत्मनिर्भर बनाना होगा। किसान अन्नदाता होते हुए भी साल भर, खेतों में भूखा- अधनंगा मेहनत करके देशवासियों को अनाज मुहैया कराता है। बदले में उन्हें सिर्फ गरीबी और परेशानियाँ ही मिलती हैं।

मूल शब्द : भारत, बिहार, कृषि, किसानों की स्थिति

परिचय

हम सभी जानते हैं कि भारत गांवों का कृषि प्रधान देश है, जहाँ लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या खेती पर निर्भर है।

उत्पादन के उच्च स्तर के बावजूद, अन्य बड़े उत्पादक देशों की तुलना में भारत में कृषि उत्पादन कम है। कृषि उपज प्रति हेक्टेयर भूमि में उत्पादित फसल की मात्रा है। 1950-51 से खाद्यान्न उत्पादन में चार गुना वृद्धि हुई है। 2014-15 के दौरान यह 2,071 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर था।

2012-13 तक 140 मिलियन हेक्टेयर भूमि कृषि के लिए उपयोग की जा रही थी। यह कृषि क्षेत्र, भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटा हुआ है। मामूली स्वामित्व वाली भूमि की संख्या 1971 में 36 मिलियन से बढ़कर, 2011 में 93 मिलियन हो गई। सीमांत और छोटे स्वामित्व वाली भूमि के साथ कई समस्याएं हैं; जैसे मशीनीकरण और सिंचाई तकनीकों के उपयोग से जुड़ी समस्याएं।

वर्तमान में, खाद्यान्न पैदा करने वाली लगभग 51% कृषि भूमि सिंचित है। शेष क्षेत्र वर्षा पर निर्भर (वर्षा आधारित कृषि) है। सिंचाई के स्रोतों में भूजल (कुएँ, नलकूप) और सतही जल (नहरें, टैंक) शामिल हैं।

केंद्र या राज्य सरकारें कृषि उत्पादों की खरीद करती हैं। भारतीय खाद्य निगम कृषि उत्पादों की खरीद, भंडारण, आवाजाही, वितरण और बिक्री में लगा हुआ है। न्यूनतम समर्थन मूल्य वह मूल्य है, जिस पर सरकार किसानों से खाद्यान्न खरीदती है।

बिहार में कृषि

बिहार की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। बिहार का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 93.60 लाख हेक्टेयर है, जिसमें से केवल 56.03 लाख हेक्टेयर में खेती की जाती है। राज्यों में लगभग 79.46 लाख हेक्टेयर भूमि कृषि योग्य है। कुल 43.86 लाख हेक्टेयर भूमि पर विभिन्न साधनों से सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है, जबकि लगभग 33.51 लाख हेक्टेयर भूमि सिंचित है।

बिहार की प्रमुख खाद्य फसलें धान, गेहूँ, मक्का और दलहन हैं। मुख्य नकदी फसलें गन्ना, आलू, तंबाकू, तिलहन, प्याज, मिर्च, जूट हैं। लगभग 6,764.14 वर्ग किमी. में वन क्षेत्र फैले हुए हैं, जो राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 7.1 प्रतिशत है।

बिहार में तमाम प्राकृतिक विपदाओं के बावजूद, खाद्यान्न का उत्पादन अच्छा बना हुआ है। लेकिन समस्या कृषि उत्पादों को बेचने की कोशिश में शुरू होती है।

वर्ष 2008 में, प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों (PACS) का गठन किया गया था। पैक्स के 12 सदस्यों के लिए पंचायत स्तर पर चुनाव होते हैं। सरकार ने पैक्स का गठन इस उद्देश्य से किया था कि वह किसानों से खाद्यान्न खरीदेगी, फसल बीमा में मदद करेगी, उर्वरक उपलब्ध कराएगी। ताकि कृषि को एक लाभदायक व्यवसाय बनाया जा सके और किसानों को लाभ मिल सके।

वर्तमान में बिहार की सभी पंचायतों में 8,624 पैक्स समितियां हैं। इसके अलावा 534 प्रखंडों में व्यापार मंडल सहयोग समितियां हैं। लेकिन किसानों का कहना है कि, इस व्यवस्था से उन्हें कोई लाभ नहीं मिल रहा है।

वैसे तो राज्य में प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना लागू है, लेकिन बिहार सरकार ने अपनी राज्य फसल बीमा योजना भी चलाई है। लेकिन इसका फायदा उठाने के लिए किसानों को ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन कराना अनिवार्य है। वहां किया गया रजिस्ट्रेशन ही मान्य होता है। इसकी भी एक सीमा होती है। 20% तक के नुकसान के लिए 7,500 रुपये प्रति हेक्टेयर उपलब्ध है। अधिकतम दो हेक्टेयर के लिए 15 हजार रुपये उपलब्ध हैं। वहीं, 20 प्रतिशत से अधिक पर 10 हजार रुपये प्रति हेक्टेयर और अधिकतम दो हेक्टेयर में 20 हजार रुपये की दर से उपलब्ध है।

2016 में, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (NSSO) ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि, किसानों की औसत मासिक आय 6,426 रुपये और सालाना 77,112 रुपये है। यह आंकड़ा जुलाई 2012-जून 2013 के बीच का है।

नाबार्ड ने 2016-2017 की अपनी सर्वेक्षण रिपोर्ट में यह भी कहा कि किसानों की औसत मासिक आय 8,931 रुपये है।

नीति आयोग की एक रिपोर्ट के मुताबिक बिहार के 91 फीसदी किसान, सीमांत किसान हैं। यानी उनके पास 1 हेक्टेयर से भी कम जमीन है।

सिंचाई

बिहार में कुल सिंचाई क्षमता 28.63 लाख हेक्टेयर है। यह क्षमता बढ़ी और मध्यम सिंचाई परियोजनाओं से जुटाई जाती है। यहां बड़ी और मध्यम सिंचाई परियोजनाएं बनाई गई हैं और प्रमुख सिंचाई योजनाओं के माध्यम से 48.97 लाख हेक्टेयर क्षेत्र सिंचित है।

2000 में बिहार से झारखंड अलग होने के बाद, बिहार से खनिजों, उद्योगों और बिजली उत्पादन इकाइयां भी झारखंड के हिस्से में चले गए। जिससे बिहार मुख्य रूप से कृषि प्रधान राज्य बना रहा। लगभग 93 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल वाले राज्य में सरकारी आंकड़े दिखाते हैं कि, सकल बुवाई क्षेत्र 76 लाख हेक्टेयर और 56 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र है। गंगा, बूढ़ी गंडक, सोन, बागमती, अधवारा समूह, कमला, कोसी, महानंदा जैसी प्रमुख नदियों के साथ-साथ कृषि के लिए उत्कृष्ट भूमि के साथ दर्जनों छोटी नदियां हैं। बिहार देश का सबसे समृद्ध जल संसाधन वाला क्षेत्र है। इसकी 90% आबादी गांवों में रहती है, जिसमें बड़ी संख्या में कृषि श्रमिक हैं। यहां धान, गेहूं, मक्का, दालें, सब्जियां, फल और व्यावसायिक फसलों के अलावा गन्ना और जूट की भी खेती की जाती है। इन तमाम हालात के बावजूद बिहार के किसान और किसान परेशान हैं।

बिहार में कृषि की समस्या को आर्थिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से देखा जा सकता है। जहां उत्तर बिहार का विशाल क्षेत्र बाढ़ से प्रभावित है, वहीं दक्षिण बिहार में सूखा पड़ता रहता है। आजादी के बाद सभी सरकारों ने बाढ़ और सूखे की समस्या को नजरअंदाज किया और उचित समाधान का रास्ता नहीं खोजा। इस प्राकृतिक आपदा से हर साल हजारों लोगों की जान जाने और अरबों रुपये की सरकारी, गैर सरकारी संपत्ति के नुकसान के बावजूद नदियों के जल प्रबंधन पर कोई कार्रवाई नहीं की गई। हिमालय से निकलने वाली नदियां गंगा में मिलकर समुद्र में मिलती हैं और बिहार की भूमि बाढ़ और सूखे से तबाह होती रही। नदियां गाद से भर रही हैं, छोटी नदियां मर रही हैं। कुछ मरती हुई नदियों को बचाने के लिए नागरिक समाज और सामाजिक कार्यकर्ता अच्छे प्रयास कर रहे हैं। नदियों से गाद हटाकर, नहरों के निर्माण से बाढ़ से बचाव और सिंचाई का विस्तार कर, नदियों को बचाने की सरकार के पास कोई रणनीति नहीं है। सरकारी नदियों का क्षेत्र 3675 किलोमीटर है जिसपर बांध बन चुके हैं। राजनेता, इंजीनियर और एजेंट उन्हें बार-बार तोड़ने और बांधने के खेल में समृद्ध हो रहे हैं। बिहार में 19 जिलों की 76 फीसदी आबादी और 73 फीसदी से ज्यादा कृषि क्षेत्र इससे प्रभावित हैं। तीन दशक के सरकारी आंकड़े बताते हैं कि अब तक बाढ़ से 7 हजार से ज्यादा लोगों की जान चली गई है।

सिंचाई की कमी

इसी तरह कृषि के लिए सबसे महत्वपूर्ण सिंचाई के लिए भी किसान, मौसम और निजी महंगे सिंचाई स्रोतों पर निर्भर है। अधिकांश राजकीय नलकूप वर्षों से बंद और जीर्ण-शीर्ण हो गए हैं। कुछ तो स्थापित होने के एक दिन बाद भी शुरू नहीं हुए और जवाबदेही तय तक नहीं की गई। बिहार की कृषि समस्याओं के सामाजिक पहलू में, समाज के बिगड़ते ताने-बाने के कारण, गांवों में सभी जातियों और धर्मों के अल्पसंख्यकों के लिए कृषि असुरक्षित है, जो कृषि के विकास को प्रभावित कर रही है। आर्थिक पहलू में मुख्य समस्या खेती की बढ़ती लागत है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक, एक करोड़ 61 लाख जोतों में से 91% छोटे और मध्यम किसान हैं, जिनके पास कृषि उत्पादन के लिए बुनियादी ढांचे की कमी है। खेतों तक सड़क, बिजली, सिंचाई की कोई सुविधा नहीं है। महंगे बीज, उर्वरक, कीटनाशक, बिजली, डीजल पुनः सिंचाई, जुताई, परिवहन आदि की लागत में वृद्धि के कारण कृषि उत्पादन की लागत बढ़ रही है। इसके बावजूद, लागत की अनदेखी करते हुए, कृषि उत्पादों का न्यूनतम समर्थन मूल्य निश्चित किया गया। फिर भी तय एमएसपी पर सरकारी खरीद नहीं हो रही है। बिहार में बाजार और बाजार समितियों की कोई व्यवस्था नहीं है। बाजार समितियों को सुव्यवस्थित करने के बजाय उन्हें बंद कर दिया गया है। किसान बिचौलियों के चंगुल में हैं। पैक्स के माध्यम से कृषि उपज की सरकारी खरीद को औपचारिक रूप दिया जाता है। एफसीआई, एसएफसी सीधे किसानों से खरीद नहीं करते हैं। प्रखंडों में बने एफसीआई के गोदामों को तोड़ा जा रहा है।

अन्य राज्यों में कृषि से संबंधित अन्य उद्योगों के विकास के साथ, वहाँ कृषि को बढ़ावा मिल रहा है। बिहार में कृषि आधारित पारंपरिक उद्योग, लगभग समाप्त हो चुके हैं। डेयरी, मत्स्य पालन, सब्जियों, फलों के उत्पादन की दिशा में प्रयास अपर्याप्त हैं। बिहार में कृषि के लिए महत्वपूर्ण सहायक पूंजी का भी अभाव है। सरकार के बार-बार निर्देश का भी बैंकों पर कोई असर नहीं हो रहा है। सभी किसानों के पास केसीसी नहीं है। जहां पहुंच है, वहां राशि

अपर्याप्त है। अधिकांश बैंक बिना रिश्वत के केसीसी नहीं बनाते हैं। नतीजतन, कृषि के लिए साहूकारों से ऋण लिया जाता है। प्राकृतिक आपदा से जूझ रहे बिहार के किसानों से बीमा प्रीमियम काटने के बावजूद प्रधानमंत्री फसल बीमा का लाभ कुछ ही किसानों तक पहुंच पाया है। राज्य सरकार द्वारा शुरू की गई राज्य फसल योजना कागजों पर ही घूम रही है। इसी तरह प्राकृतिक आपदा के समय राज्य सरकार द्वारा घोषित मुआवजा और इनपुट अनुदान, सभी प्रभावितों तक नहीं पहुंचता है और किसान कर्ज के चक्र में फंस जाता है। क्योंकि खेती को आजीविका के लिए नहीं छोड़ा जा सकता है।

बदहाली में गन्ने की खेती

व्यावसायिक फसल के नाम पर किसानों द्वारा गन्ने की खेती की जाती है, लेकिन राज्य की सभी चीनी मिलें बंद कर दी गई हैं। वर्तमान में केवल 10 चीनी मिलें चल रही हैं, जो किसानों के गन्ना मूल्य के 150 करोड़ से अधिक बकाया के लिए जिम्मेदार हैं। कुछ मिलों में 2016-17 का बकाया भी नहीं चुकाया गया है। गन्ने के विकास के लिए अंग्रेजों द्वारा स्थापित 'गन्ना अनुसंधान संस्थान, पूसा' मर रहा है। यह अनुसंधान संस्थान उन्नत गन्ना बीज, कम लागत पर उन्नत कृषि तकनीक, टिकाऊ खेती और अन्य वैज्ञानिक ज्ञान और सुविधाएं प्रदान करने में विफल रहा है। परिणामस्वरूप, गन्ने की उत्पादन लागत बढ़ने के साथ बिहार में गन्ने की उत्पादकता, गुणवत्ता और रिकवरी कम है।

पिछड़ी और लाभहीन कृषि के कारण किसान, मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी का भुगतान करने में असमर्थ हैं। आजीविका के लिए बड़े पैमाने पर मजदूरों का दूसरे प्रांतों में पलायन होता है, जिसका असर कृषि पर पड़ता है। बहुत छोटे किसान खेती छोड़कर उन्हीं मजदूरों के साथ पलायन करते हैं। कुछ लोग खेती छोड़ने को मजबूर हैं। सरकारी आंकड़ों से पता चलता है कि 2012 की तुलना में, मोटे अनाज को छोड़कर गन्ना सहित अन्य कृषि उत्पादों में कमी आई है। किसान संगठन, सरकार से लगातार मांग कर रहे हैं कि मनरेगा को कृषि से जोड़कर आधी मजदूरी सरकार और आधी किसान को दी जाए, जिससे पलायन भी रुकेगा और कृषि उत्पादन और बढ़ेगा। इसके अलावा, पूंजी की कमी से जूझ रहे किसानों को पूंजी की उपलब्धता और सरकार द्वारा कर्ज के बोझ से छुटकारा पाने के प्रभावी प्रयासों की कमी के कारण साहूकारों पर निर्भरता बढ़ जाती है।

इस प्रकार बिहार; कृषि की कम उत्पादकता, उत्पादन की बढ़ती लागत, उचित मूल्य न मिलना, एमएसपी पर सरकारी खरीद का अभाव, आधारभूत संरचना का संकट, मुख्य वाणिज्यिक फसल गन्ना के उचित मूल्य एवं कीमतों का भुगतान, नदी जल प्रबंधन, श्रम प्रवास, पूंजी कमी आदि समस्याओं से गुजर रहा है।

उपजाऊ जमीन होने के बावजूद बिहार के किसान गरीब क्यों हैं?

बिहार में क्षेत्रफल के अनुसार जनसंख्या बहुत अधिक है। यहाँ जितने भी लोग उपजाऊ भूमि रखते हैं, वह छोटे टुकड़ों 1 बिसा, 2 बिसा से एक बीघा, 2 बीघा, 4 बीघा, 5 बीघा में बंटी हुई है। भूमि विभाजन के अलावा बिहार में नेपाल, बांग्लादेश, उत्तर प्रदेश, बंगाल जैसे स्थानों से हर साल बाढ़ का पानी आता है। इस बाढ़ से हर साल बिहार में जान-माल के साथ कृषि और घर का भारी नुकसान होता है।

हर साल आने वाली बाढ़ के कारण बिहार में हजारों एकड़ कृषि भूमि नष्ट हो जाती है और यह चक्र हर साल बिहार में नियमित रूप से आता है। प्राकृतिक आपदाओं के कारण बिहार गरीबी का सामना कर रहा है। बिहार में गरीबी दूर करने के लिए गुजरात और महाराष्ट्र जैसे बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण करना होगा, जिससे कृषि उत्पादों का उचित मूल्य मिल सके। उद्योगों से गरीब बेरोजगार लोगों को रोजगार मिलेगा और जो खेती नहीं कर रहे हैं; वो अपनी आय बढ़ाने के लिए खेती के अलावा अन्य व्यवसायों में हाथ आजमायेंगे। आमदनी बढ़ने से गरीबी की समस्या अपने आप दूर होगी, लेकिन इसके लिए राज्य सरकार को पहल करनी होगी।

निष्कर्ष

आजादी के बाद से किसानों की स्थिति में कोई खास सुधार नहीं आया है। कई विकास योजनाएं बनीं, लेकिन भ्रष्टाचार के कारण सफल नहीं हुईं। किसान हमेशा आर्थिक कठिनाइयों से जूझते रहे हैं। किसान राजनीतिक घटनाओं से बहुत प्रभावित थे। पंचायती राज की स्थापना के साथ ही सत्ता की बागडोर अमीरों के हाथ में चली गई। राजनीतिक दलों ने अपने स्वार्थ के लिए जातिवाद का सहारा लिया है। आज हमारे लिए आवश्यक है कि हम कृषि व्यवस्था में सुधार के लिए प्रभावी कदम उठाएं, कृषि प्रौद्योगिकी व्यवस्था में बदलाव करें और जलवायु परिवर्तन के कहर से बचें। किसानों को प्राकृतिक विधि और जैविक खाद का उपयोग कर उगाई जाने वाली खाद्य सामग्री का लाभ उठाकर लाभ उठाने के लिए प्रेरित करना होगा। कृषि उत्पाद खराब होने वाले हैं। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में कोल्ड स्टोरेज की सुविधा न होने के कारण उपज का 15 से 20 प्रतिशत हिस्सा सड़ जाता है। 55 फीसदी गांवों में बीज भंडारण की व्यवस्था नहीं है, 80 फीसदी गांवों में कृषि उपकरणों की मरम्मत की सुविधा नहीं है और 60 फीसदी गांवों में बाजार केंद्र नहीं हैं। इसलिए, बीज भंडारण से उत्पाद के उचित संचालन की व्यवस्था करना आवश्यक है। कृषि में जोखिम अधिक है, इसलिए किसानों को सुरक्षा कवर प्रदान करने के लिए, फसल बीमा योजना को व्यापक और तर्कसंगत बनाने के लिए, बीमा प्रीमियम दर को किसानों की आय के अनुपात में रखना होगा।

सन्दर्भ

1. Basic Animal Husbandry & Fisheries Statistics, 2014. Department of Animal Husbandry, dairying and Fisheries, Ministry of Agriculture.
2. Cervantes-Godoy, D. and Dewbre, J. 2010. "Economic Importance of Agriculture for Poverty Reduction", OECD Food, Agriculture and Fisheries Working Papers, No. 23, OECD Publishing.
3. de Janvry, A., and E. Sadoulet. 2010. "Agricultural Growth and Poverty Reduction: Additional Evidence." The World Bank Research Observer 25 (1): 1-20.
4. Fujita, K. 2012. Development Strategy in Bihar through Revitalizing the Agricultural Sector: A Preliminary Analysis. IDE Discussion paper No 332, March 2012.

5. Government of Bihar, Economic Survey of Bihar 2014-15
6. Government of India, 16th Livestock Census, 2007. Department of Animal Husbandry, Dairying and Fisheries,
7. Ministry of agriculture Government of India Government of India, 19th Livestock Census, 2012. Department of Animal Husbandry, Dairying and Fisheries, Ministry of agriculture Government of India
8. Government of India, 2008. State-wise and item-wise estimates of Value of Output from Agriculture and allied activities (1999-00 to 2005-06). Central Statistical Office, Ministry of Statistics and Programme Implementation
9. Government of India, 2016. State-wise and item-wise estimates of Value of Output from Agriculture and allied activities (2011-12 to 2013-14). Central Statistical Office, Ministry of Statistics and Programme Implementation
10. Gulati, A. 2016. From Plate to Plough: Twenty-five years of Tinkering. Indian Express, July 4, 2016. <http://indianexpress.com/article/opinion/columns/india-economic-reforms-indian-farmers-fertiliser-subsidy-union-budget-modi-govt-organic-farming-2892089/> Infrastructure Leasing & Financial Services Limited & FS. 2007. Prepared by IL&FS for Government of Bihar
11. Joshi, P. K., Gulati, A. and BIRTHAL, P. S. 2007. Agriculture Diversification in India, in Agricultural Diversification and Small holders in South Asia, edited by Joshi, P. K., Gulati, A. and Cummings, R.
12. Kishore, A; Sharma, B and Joshi, P.K. 2014. Putting agriculture on the takeoff trajectory: Nurturing the seeds of growth in Bihar, India. New Delhi, India: International Food Policy Research Institute (IFPRI) and International Water Management Institute (IWMI)
13. Mishra, K.D. 1999. Flood Protection That Never Was: Case of Mahananda Basin of North Bihar. Economic Political Weekly, Vol. 33(29), July 17, 1999.
14. Prasad, K and Routray, D. 2014 Report on Review of Draft Bihar State Water Policy in Line with National Water Policy 2012 in Context of Climate Change, December 2014.
15. Ravallion, M., and G. Datt. 1996. "How Important to India's Poor is the Sectoral Composition of Growth in India." World Bank Economic Review 10: 1-25
16. Sajesh, V.K. and Suresh, A. 2016. "Public-Sector Agricultural Extension in India: A Note," Review of Agrarian Studies, Vol. 6, (1), available at http://ras.org.in/public_sector_agricultural_extension_in_india
17. Shah, T.1993. Groundwater Markets and Irrigation Development: Political Economy and Practical policy. Bombay, India: Oxford University Press.

भारत में लोक सेवायें: साख पर सवाल

शालिनी सिंह

शोध छात्रा, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सीधे सरल शब्दों में कहें तो लोक सेवा से हमारा अभिप्राय सरकार के उन स्थायी और गैर राजनीतिक अधिकारियों से है जो न्यायांग अथवा सेना के सदस्य नहीं होते और जो एक बार सरकारी नौकरी में आने के बाद सामान्यतः अवकाश ग्रहण करने की आयु तक उस पर बने रहते हैं।¹ यह वास्तव में लोक नीति के रूप में अभिव्यक्त राज्य की इच्छाओं को क्रियान्वित करने का प्रमुख साधन हैं जो आधुनिक राज्य के कार्य संचालन के लिए अपरिहार्य हैं। श्रीराम माहेश्वरी के अनुसार “लोक सेवा के दो अभिप्राय होते हैं- (1) अनिवार्य वस्तु की आपूर्ति का कार्य, (2) सरकार द्वारा समर्थित रोजगार की व्यवस्था। सरकार द्वारा समर्थित सेवा को लोक सेवा कहा जाता है, जिसका आशय प्रतियोगितात्मक परीक्षा द्वारा सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति की एक विधि है।”² लोक सेवा कानूनों को अमल में लाने वाला निकाय तो है ही साथ ही यह नियमों के निर्माण में भी सक्रिय रूप से शामिल है। पेशेवर दक्षता के कारण एक लोक सेवक अपने राजनीतिक प्रमुख को न सिर्फ विधि निर्माण में सहयोग प्रदान करता है बल्कि काफी हद तक विधि को आकार भी प्रदान करता है, खासतौर पर वरिष्ठ लोक सेवक अपना ज्यादातर समय इस तरह की गतिविधियों में ही लगाता है। लोक सेवाएँ कराधान की प्राप्तियों का व्यय करती हैं और इस बात का भी निर्णय लेती हैं कि राजस्व की उगाही कितनी मात्रा में करनी है और इसे किस तरह से वसूलना है। ग्लैडन ने लोक सेवा के अर्थ को सार रूप में स्पष्ट करते हुए लिखा है कि “लोक सेवा के लिए अनिवार्यताओं में जो बातें शामिल हैं वे हैं- इसका चयन निष्पक्ष रीति से किया जाएगा, यह प्रशासन कला में दक्ष होगी, राजनीतिक रूप से तटस्थ होगी तथा समाज के प्रति सेवा की भावना से ओत-प्रोत होगी।”³ भारत में लोक सेवा का इतिहास वैसे तो काफी पुराना है लेकिन आधुनिक संदर्भ में इसके उदय को ईस्ट इंडिया कंपनी से जोड़कर देखा जा सकता है। भारत में सर्वप्रथम लोक सेवा शब्द का प्रयोग 19वीं सदी में ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन में लगे उन कर्मचारियों के लिए किया गया जो उसकी सैनिक सेवा में नहीं होते थे बल्कि कर वसूली आदि के दीवानी या असैनिक कार्यों में लगे होते थे। दीवानी कार्यों में लगे होने के कारण उन्हें सिविल सेवा के कर्मचारी कहा जाता था।⁴ भारतीय दंड संहिता की धारा 21(a) में लोक सेवक की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि ‘सरकारी सेवारत या वेतन पाने वाला अथवा सरकारी कार्य के लिए शुल्क या कमीशन पाने वाला व्यक्ति लोक सेवक की श्रेणी में आता है।’⁵

भारत में लोक सेवाएँ प्रतिष्ठा और अधिकार दोनों ही दृष्टियों से अपना विशेष महत्व रखती हैं। आजादी के बाद सरकार द्वारा सामाजिक आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को प्राथमिकता के आधार पर संपन्न करने की सोच ने लोक सेवाओं के कार्यक्षेत्र में आशातित विस्तार किया और लोक सेवाएँ पालने से लेकर चिता तक व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करने वाले राज्य के मूर्त उपकरण के रूप में सामने आयीं। भारत में लोक सेवाओं की भूमिका को मुख्य रूप से निम्नलिखित संदर्भों में देखा जा सकता है-

1. नीति क्रियान्वयन में भूमिका- भारत में लोक नीतियों के क्रियान्वयन इकाई के रूप में लोक सेवाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह सरकार के अधिकांश दैनिक कार्यों को संपन्न करने वाली संस्था है। यह नौकरशाही ही है जो सरकार के कार्मिकों, निधि, संपदा तथा वैधानिक शक्तियों का नियंत्रण करती है और कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायिक निर्णयकर्ताओं के अधिकांश निर्देशों को प्राप्त करती है। नीति क्रियान्वयन से संबंधित लोक सेवकों का कार्य न सिर्फ कार्यरत सरकार की राजनीतिक नीतियों के अनुरूप सीमित होता है बल्कि राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित भी होता है।

2. प्रदत्त विधायन एवं अन्य प्रत्यायोजित कार्यों का निपटान- प्रत्यायोजित या प्रदत्त विधायन से अभिप्राय संसद की किसी विधि द्वारा प्रदत्त सत्ता के अंतर्गत कार्यपालिका द्वारा नियमों तथा उपनियमों का निर्माण करने से है। यह एक अर्द्ध विधायी कार्य है जो लोक सेवा द्वारा संपन्न किया जाता है। सिद्धांत रूप में देखें तो “प्रजातंत्र में सभी प्रयोजनार्थ अंतिम कार्यपालक प्राधिकार राजनीतिक कार्यपालिका में विहित है जो संसद के माध्यम से जनता के प्रति जवाबदेह है तथापि किसी बड़े संगठन की तरह ही सरकार को भी विभिन्न स्तरों पर और भिन्न-भिन्न स्थितियों में परिभाषित कार्य करने होते हैं। इनके लिए व्यावहारिक आधार पर लोक सेवकों को सरकार के विभिन्न स्तरों पर प्राधिकार और जिम्मेदारी का प्रत्यायोजन आवश्यक है। ऐसा प्रत्यायोजन अधीनस्थ के सिद्धांतों के अनुरूप है जिससे सरकार को लोगों के निकट लाने में मदद मिलती है।”⁶ भारत में लोक सेवकों को प्रत्यायोजित अधिकार संविधान एवं विधि के सुस्पष्ट दायरे में होते हैं जिनकी निगरानी अधिनस्थ विधायन समिति द्वारा की जाती है।

3. प्रशासकीय अधिनिर्णय- प्रशासकीय अधिनिर्णय का अर्थ है ‘किसी प्रशासनिक अभिकरण द्वारा कानून तथा तथ्य के आधार पर किसी गैर सरकारी पक्ष से संबंधित विवाद की जाँच तथा उस पर निर्णय देना’।⁷ आमतौर पर आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य के अंतर्गत विवादों के निपटारे से संबंधित न्यायिक शक्तियाँ व कार्य प्राथमिक रूप से न्यायपालिका में निहित होते हैं किंतु समकालीन समाज में राज्य के सामाजिक, आर्थिक गतिविधियों के सक्रिय उपकरण के रूप में अस्तित्व में आने के पश्चात् सरकार द्वारा विविध प्रकार की शक्तियों से युक्त अनेक प्रशासनिक इकाईयाँ या संस्थाओं का गठन किया गया है जिसमें विवादों के निपटारे हेतु अधिनिर्णय की शक्तियाँ भी सम्मिलित हैं। आज इस बात को लेकर एक वैश्विक सहमति है कि राज्य के न्यायिक कृत्य सिर्फ न्यायपालिका तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि विभिन्न प्रशासनिक एजेंसियों की भी इसमें भूमिका अनवरत बढ़ती जा रही है।⁸

प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की स्थापना मुख्य रूप से साधारण न्यायालयों की खर्चीली एवं विलंबकारी प्रक्रिया, विशेषज्ञों द्वारा निर्णय करने की आवश्यकता, सामाजिक नीतियों को लागू करने की जरूरत तथा साधारण न्यायालयों के पास पहलकारी शक्ति के अभाव जैसे तथ्यों से अभिप्रेरित है। प्रशासनिक न्यायाधिकरण न सिर्फ साधारण न्यायालय प्रणाली के बाहर कार्य करते हैं बल्कि जैसा कि रॉब्सन ने कहा है 'प्रशासकीय न्यायाधिकरण व्यक्ति एवं सार्वजनिक सत्ता के मध्य समुचित संबंध स्थापित करने की दृष्टि से प्रगतिशील होते हैं। वे नागरिकों के लिए स्वतंत्रता तथा न्याय और आधुनिक ढंग की सरकार की आवश्यकताओं के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास करते हैं।'¹

भारत में प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की चर्चा करते समय 42वें संविधान संशोधन का उल्लेख विशेष रूप से आवश्यक है। भारत में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा अंतर्विष्ट अनुच्छेद 323 क-ख का आशय प्रशासनिक अधिकरणों के उद्देश्यों एवं विनिश्चयों पर अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता हटा देना था। इन अनुच्छेदों को कार्यान्वित करने के लिए विधान बनाना आवश्यक था किंतु श्रीमती इंदिरा गांधी की पहली सरकार को ऐसा करने का समय नहीं मिला। बाद में अनुच्छेद 323 क को प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम 1985 द्वारा क्रियान्वित किया गया। हालांकि एल. चन्द्र कुमार बनाम यूनियन ऑफ इंडिया वाद (1997) के नैसले के बाद अब स्थिति बदल गई है क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 323 क खंड-2 (घ) और 323 ख, खंड-3 (घ) और इन अनुच्छेदों के अनुसरण में अधिनियमित सभी विधायनों में 'अधिकारिता के अपवर्जन' के खण्डों को भी उतनी सीमा तक असंवैधानिक घोषित कर दिया है जहाँ तक वे उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की अनुच्छेद 226/227 तथा 32 के अधीन अधिकारिता को अपवर्जित करते थे।²

4. लोक नीति निरूपण में भूमिका- जैसा कि थॉमस डाई ने कहा है कि 'सरकार जो भी करने को या न करने को चुनती है वही लोक नीति है'। आमतौर पर लोक नीति का निर्माण एक विधायी कृत्य माना जाता है और प्रशासन या लोक सेवा की भूमिका को सिर्फ नीति क्रियान्वयन तक सीमित रखने की बात की जाती है लेकिन आज वास्तव में लोक सेवा की भूमिका को लेकर इस तरह की कोई विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती। आज 'लोक सेवा नीति निर्माताओं के महत्वपूर्ण सलाहकार के तौर पर कार्य करती है और प्रायः स्वयं ही नीति निर्माता होती है। लोक सेवक तथा मंत्री, नीति निर्माण के कार्यक्षेत्र में भागीदार होते हैं। यह भागीदारी न सिर्फ उनके विशिष्ट योगदानों पर बल्कि इनकी परस्पर पूरक भूमिका पर आधारित होती है।'³

भारत में विगत दशकों में नौकरशाह निर्णयन प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग बनकर उभरे हैं। इसकी मुख्य वजह यह है कि राजनीतिक प्रतिष्ठानों ने राजनीतिक प्रकृति के विषयों पर अपना ध्यान केंद्रित करने के लिए स्वेच्छा से अपनी यह भूमिका त्याग दी है।⁴

भारतीय लोक सेवा की इस बहुआयामी भूमिका और इतने बड़े पैमाने पर शक्तियों के केंद्रीकरण ने लोक सेवा के लिए कर्तव्य पथ से विचलन की संभावनाओं को भी उसी अनुपात में बढ़ाया और लार्ड एक्टन की प्रसिद्ध उक्ति "सत्ता भ्रष्ट करती है और पूर्ण सत्ता पूरी तरह से भ्रष्ट करती है" चरितार्थ होने लगी। 1950 के दशक में दुनिया के लिए ईर्ष्या का विषय मानी जाने वाली भारतीय लोक सेवा और राजनीतिक वर्ग के सदस्यों में आयी तीव्र गिरावट यद्यपि आज चौंकाने वाली बात लगती है लेकिन अगर हम इसके कारणों की पड़ताल करें तो सदस्यों के इस ह्रास को सर्वव्यापी परमिट राज से जोड़कर देखा जा सकता है, जो आयात, उत्पादन तथा निवेश के लिए मंजूरी से जुड़ा हुआ था और जिसमें समय के साथ-साथ लगातार बढ़ोत्तरी होती रही। इस परिमित राज की व्यवस्था ने लोक सेवकों और राजनीतिक वर्ग के लिए भ्रष्टाचार की असीम संभावनाओं के द्वार खोल दिए। जल्दी ही उच्च स्तरीय नौकरशाही ने यह जान लिया कि लाइसेंस या परमिट का लाभ प्राप्ति हेतु प्रयोग किया जा सकता है, वहीं राजनेताओं ने इस प्रणाली में महत्वपूर्ण वित्तीय समर्थकों के रूप में साधन को देखा।⁵ नतीजा यह हुआ कि लोक सेवाओं के भ्रष्ट आचरण हेतु रास्ता सफ हो गया और लोक सेवा भ्रष्टाचार के दलदल में धँसती चली गयी। लोक सेवकों ने नियम पुस्तिका में लिखित तथ्यों की व्याख्या का राजनीतिक सत्ताधारियों द्वारा अपने प्राधिकार के दुरुपयोग को रोकने में सहायक रोध व संतुलन की व्यवस्था की बजाय फाइलों को अनावश्यक रूप से रोकने और पैसे बनाने के साधन के रूप में प्रयोग करना शुरू कर दिया और भ्रष्टाचार के नए-नए रास्ते तलाश लिए। लोक सेवकों की इस प्रवृत्ति के कुछ बेहद अप्रत्याशित और खतरनाक नतीजे सामने आए। हाल के वर्षों में राजनेताओं की जो नई पीढ़ी उभरी है वह नियम पुस्तिकाओं को अवरोध तथा नौकरशाही को अनावश्यक बाधा के रूप में देखती है और इन सबको परे रखकर काम करना चाहती है फलतः संबंधों में संघर्ष की स्थिति लगातार बढ़ती जा रही है। हालांकि यह तस्वीर का सिर्फ एक पक्ष है। इसका दूसरा पक्ष यह है कि अपने भविष्य एवं वृत्ति को लेकर भयातुर नौकरशाही तथा अपने अल्प कार्यकाल के दौरान काम कर अपने भविष्य को सुरक्षित करने की जल्दबाजी में लगे राजनीतिक वर्ग ने परस्पर फायदे को ध्यान में रखकर एक अपवित्र गठजोड़ कर लिया है जिसमें भ्रष्टाचार को पुष्पित पल्लवित होने का अवसर मिलता है।⁶

किरण कार्निंक ने लोक सेवा में भ्रष्टाचार के लिए मुख्य रूप से जिन कारणों की पहचान की है उनमें शामिल हैं- पकड़े जाने की अल्प तथा सजा होने की नगण्य संभावना, भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए विद्यमान तंत्र के बारे में जानकारी का अभाव तथा सामाजिक बहिष्कार या कलंक का डर नहीं होना। लोक सेवा की एकाधिकारी प्रकृति से भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है। चूँकि आम जनता के पास अपने काम को करवाने का कोई दूसरा विकल्प नहीं होता लिहाजा प्रायः वह मजबूरी में अपने काम को करवाने के लिए रिश्वत का सहारा लेती है।⁷

भ्रष्ट लोक सेवकों द्वारा प्रायः घूस की मांग और प्राप्ति को संभव बनाने में एक सामान्य कारण जो काफी हद तक जिम्मेदार है वह है सेवाओं की प्रदायगी का समय सुनिश्चित नहीं होना। ऐसी स्थिति में लोक सेवक प्रायः 'स्पीड मनी' के रूप में रिश्वत की माँग करते और इसे प्राप्त करते हैं।⁸ प्रशासनिक प्रक्रिया की इस कमी को दूर करने के लिए मध्य प्रदेश, बिहार, दिल्ली, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, असम, पंजाब तथा राजस्थान आदि राज्यों द्वारा सेवा के अधिकार से संबंधित कानून का निर्माण किया गया है जो एक सराहनीय पहल है, जरूरत इस बात की है कि इस तरह के कानून के दायरे में ज्यादा से ज्यादा सेवाओं को लाया जाए तथा जिन राज्यों में इस तरह के कानून नहीं हैं, वह भी इस दिशा में शीघ्र व सार्थक पहल करें। यह वास्तव में अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि हमारे देश में भ्रष्टाचार एक अंतहीन रूढ़न का विषय बन गया है, इस हद तक कि इसकी चर्चा सिर्फ रस्मी रह गयी है..... यह बढ़ता हुआ विश्वास कि सभी भ्रष्ट हैं लोगों के मन में यह भाव भी पैदा करता है कि चूँकि सभी भ्रष्ट ही हैं तो ईमानदार रहना जो कठिनाईयों से भरा है जरूरी नहीं है और भ्रष्ट आचरण ही व्यावहारिक आचरण है। इस तरह जो भ्रष्ट आचरण से घबराते हैं वे अव्यावहारिक या इससे भी बढ़कर निरे मुख समझे जाते हैं।⁹ प्रशासक और लोक सेवक भी इसके अपवाद नहीं हैं। हमारे सामने ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो यह बताते हैं कि ईमानदार अधिकारियों (जैसे- अशोक खेमका) का

किस तरह बार-बार तबादला कर उन्हें प्रताड़ित किया जाता है ताकि वे अपने राजनीतिक आकाओं के गलत कार्यों का विरोध नहीं करें।¹⁷ बेइमान अधिकारी चाहे जिस पार्टी की भी सरकार बने मजे में रहते हैं क्योंकि उन्हें अपने राजनीतिक आकाओं की मांग के मुताबिक खुद को ढालना आता है।

प्रसिद्ध समीक्षक सुरेन्द्र मोहन का मानना है कि अंग्रेजी राज्य के दिनों से विनिर्मित इस्पाती ढाँचा जिसे निष्पक्ष और निष्प्रेष्ट होना चाहिए अपने उन सभी गुणों से च्युत होता जा रहा है। भ्रष्टाचार के पनपने में उच्च स्तरीय सत्ता का जो भारी योगदान है उसमें नेता, अक्सर और पूंजीपति की मिली-भगत बरसों से चलती रही है और इसके चलते न केवल प्रशासन की साख को भारी धक्का लगा है बल्कि चुनावों व अन्य राजनीतिक कामकाज में थैलियों व थैलिशाहों का बोलबाला हो गया है।¹⁸ यहाँ हमें इस बात को याद रखना होगा कि भारत जैसे देश में राजनीतिक भ्रष्टाचार और प्रशासनिक भ्रष्टाचार हमजोली हैं जो एक-दूसरे को सहयोग व समर्थन प्रदान करते हैं। यही वजह है कि लोक सेवाओं में सुधार हेतु प्रयासों को लेकर काफी लंबे समय तक अनिच्छा का भाव देखने को मिला है। हालांकि हाल के वर्षों में स्थिति में बदलाव हेतु कुछ सकारात्मक प्रयास हुए हैं, जैसे- नागरिक घोषणा पत्र को अपनाना, सूचना का अधिकार कानून का क्रियान्वयन, समयबद्ध सेवा प्रदायगी के कानून पर अमल, सामाजिक अंकेक्षण की व्यवस्था, ई. अभिशासन पहल आदि, लेकिन अभी भी इस दिशा में काफी कुछ किए जाने की आवश्यकता है। अध्ययन बताते हैं कि नागरिक घोषणा पत्र को लेकर बड़े-बड़े दावे किए जाने के बावजूद देश में इसकी प्रभाविता कमोबेश औसत ही रही है। भारत में नागरिक घोषणा पत्रों को प्रारंभ करने के त करीबन एक दशक बाद 2007 में पब्लिक अकेयर्स सेंटर, बंगलौर ने इसकी प्रभाविता की समीक्षा की और 'इंडियाज सिटिजन्स चार्टर- ए डिक्लेड ऑफ एक्सपीरियंस' के नाम से प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में इसकी खामियों को उजागर किया जिनमें प्रमुख थीं- घटिया डिजाइन और विषय वस्तु, सार्वजनिक जागरूकता का अभाव, अपर्याप्त आधार कार्य, घोषणा पत्रों को अद्यतन नहीं किया जाना, घोषणा पत्रों के निर्माण में वरिष्ठ नागरिकों एवं विकलांगों की आवश्यकताओं की उपेक्षा आदि।¹⁹ इन कमियों को सुधारने की दिशा में आज भी पर्याप्त पहल नहीं हुई है। ऐसे में सिटिजन चार्टर से जो उम्मीदें हैं वह पूरी नहीं हो पा रही हैं।

यही स्थिति 'सूचना का अधिकार' कानून के साथ भी है जो यद्यपि एक बेहतरीन पहल है तथापि जागरूकता के अभाव, अपर्याप्त रूप से प्रशिक्षित लोक सूचना अधिकारियों, बेकार हो चुके रिकॉर्ड प्रबंधन दिशा निर्देशों, लोक सूचना अधिकारियों में अभिप्रेरणा की कमी, निगरानी एवं निरीक्षण के अभाव, लंबित मामलों में वृद्धि तथा सूचना आयोगों की भौगोलिक अवस्थिति जैसे कारणों से 'सूचना का अधिकार' कानून के अपेक्षित परिणाम नहीं प्राप्त हो रहे हैं।²⁰ इसके अलावे 'सूचना का अधिकार' कानून के तहत सूचना मांगने वाले सूचना अधिकार कार्यकर्ताओं की हत्या, हत्या के प्रयास तथा झूठे मामलों में फंसा कर उन्हें प्रताड़ित करने जैसे मामलों ने भी इस कानून के जरिये प्रशासनिक भ्रष्टाचार को उजागर करने की कोशिशों को धक्का पहुँचाया है।²¹

भारत में सामाजिक अंकेक्षण को प्रत्यक्षतः स्थानीय स्वशासन के संदर्भ में पारदर्शिता लाने एवं जनसहभागिता निभाने के आंदोलन से लोकप्रियता मिली है और यह प्रशासनिक भ्रष्टाचार पर अंकुश का एक अच्छा माध्यम सिद्ध हो रहा है। इस बात के मद्देनजर कि हमारे देश में सरकारी बजट का 50 प्रतिशत से अधिक हिस्सा कल्याणकारी योजनाओं पर व्यय होता है यह इस बात पर नजर रखने में कि कैसे और कितनी मात्रा में धनराशि अपेक्षित प्राप्तकर्ताओं की बजाए दूसरी तरफ मोड़ी गई महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है²² तथापि इसका दायरा अभी काफी संकुचित है। भारत में महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 वह प्रथम राष्ट्रीय कानून है जिसमें सामाजिक लेखा परीक्षण की प्रक्रिया को विधिवत तथा पूरे मनोयोग से स्वीकार किया गया है।²³ इस तरह की व्यवस्था न सिर्फ दूसरे क्षेत्रों में भी करने की जरूरत है बल्कि इसकी गति पर भी ध्यान देना होगा क्योंकि मुक्त सूचना के इस युग में इस तरह की व्यवस्था का लाभ अगर हम अपेक्षित तेजी के साथ आम जनता तक नहीं पहुँचाते हैं तो इसके अत्यंत घातक परिणाम भी हो सकते हैं।

प्रशासनिक भ्रष्टाचार पर नियंत्रण की दिशा में ई-अभिशासन पहल एक महत्वपूर्ण नवाचार है। राष्ट्रीय ई. गवर्नेंस योजना समेत राज्य स्तर पर किए जाने वाले प्रयासों जैसे- बिहार में 'जानकारी' मॉडल, कर्नाटक में 'भूमि' कार्यक्रम, आंध्र प्रदेश में 'ई-सेवा', उत्तर प्रदेश में 'लोकवाणी' तथा केरल में 'फैंड्स' परियोजना ने न सिर्फ लोगों के लिए सरकारी सेवाओं तक पहुँच को आसान बनाया है बल्कि भ्रष्टाचार पर भी अंकुश लगाने में सफल रही है। लेकिन इस तरह की ई-अभिशासन पहलों के साथ भी कुछ समस्याएँ हैं जैसे- लोगों में साक्षरता विशेषकर कम्प्यूटर साक्षरता का अभाव, ज्यादातर जानकारीयों का अंग्रेजी में उपलब्ध होना, इंटरनेट की अनुपलब्धता तथा अत्यधिक लागत आदि। फिर भी जैसा कि यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, बर्कले के लोक नीति के सहायक प्रोफेसर जेकिर बुसेल का कहना है तकनीक का सबसे बड़ा योगदान यह है कि इसने नागरिकों की सूचना तक पहुँच सुनिश्चित की है।²⁴ सूचना के सार्वजनिक रूप से उपलब्ध होने का सबसे बड़ा फायदा यह हुआ है कि अब लोक सेवकों के लिए कई मामलों में लोगों को पहले की तरह अंधेरे में रखना संभव नहीं है जो भ्रष्टाचार की सबसे बड़ी वजह है। इस संदर्भ में किरण कार्णिक की टिप्पणी अत्यंत सटीक है कि तकनीक भी कोई जादू की गोली नहीं है लेकिन यह पारदर्शिता, पहुँच तथा दक्षता प्रदान कर सकती है और परिवर्तनकारी हो सकती है। यह (तकनीक) नाव से पानी बाहर फेंकने वाले की बजाय छेद बंद करने वाला रणनीतिक उपकरण हो सकती है।²⁵

भारत में लोक सेवाओं की दशा और दिशा के इस समग्र विवेचन का समाहार करते हुए कहें तो भारतीय लोक सेवा यात्रा के क्रम में आदर्श, आशा तथा अनाचार के पड़ावों से होकर गुजरती रही है। किसी समय में इस्पाती ढाँचा मानी जाने वाली भारतीय लोक सेवा आज घुन लगी लकड़ी की तरह हो चुकी है तथापि इसके लिए सिर्फ लोक सेवा को ही उत्तरदायी ठहराना इसके साथ ज्यादाती होगी। वास्तव में कोई भी संरचना या व्यवस्था अपने परिवेश के प्रभाव से अछूती नहीं रह सकती। लोक सेवा पर भी सामाजिक राजनैतिक परिवेश का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जैसा कि सच्चिदानंद सिन्हा का विचार है "भारत के आधुनिकतावादी, जीवन का प्रधान लक्ष्य भौतिक या आर्थिक उपलब्धि मानते हैं लेकिन इसके लिए खुली प्रतियोगिता की जगह जो आधुनिकता की मांग है पारिवारिक या जातिय खोल के भीतर से ही उपलब्धि के साथ संघर्ष में जुटना चाहते हैं। यह दोष दिनोंदिन और भी सघन होता गया है। हमारे यहाँ भ्रष्टाचार उस सामाजिक मूल्यहीनता का परिणाम है जहाँ पारंपरिक मूल्यों का लोप हो चुका है पर पारंपरिक वफादारियाँ अपनी जगह पर जमी हुई हैं।"²⁶ जब तक हम इस बुनियादी बात पर ध्यान नहीं देंगे व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन संभव नहीं है। हमारे देश में प्रशासनिक भ्रष्टाचार वस्तुतः राजनीतिक शह पाकर ही इस हद तक सुदृढ़ हुआ है ऐसे में राजनीतिक सुधार के बगैर प्रशासनिक सुधार की कोई भी योजना अपेक्षित परिणाम नहीं दे सकती। इतिहास साक्षी है कि 18वीं सदी और 19वीं सदी के प्रथमार्द्ध में ब्रिटेन की प्रशासनिक व्यवस्था भ्रष्टाचार को लेकर कुख्यात हो चुकी थी लेकिन विलियम

एबर्ट ग्लैडस्टोन ने 1850 में वित्त मंत्री के रूप में और तत्पश्चात् 1868 से चार बार बतौर प्रधानमंत्री कार्य करते हुए चुनाव सुधार और प्रशासनिक नियमों तथा विनियमों में व्याप्त कमियों को दूर करने हेतु अपेक्षित इच्छाशक्ति का प्रदर्शन किया जिसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार में इस हद तक कमी आयी कि ब्रिटेन को दुनिया के शीर्ष 15 न्यूनतम भ्रष्ट देशों की सूची में शामिल होने का सम्मान प्राप्त हुआ।²⁷ भारत की शासन व्यवस्था भी इसका अपवाद नहीं है विशेषकर इस बात को ध्यान में रखते हुए कि इसकी जड़ें ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन तंत्र में निहित हैं और कमोबेश हमारी संपूर्ण प्रशासनिक व राजनीतिक व्यवस्था ब्रिटिश व्यवस्था के प्रतिरूप हैं इस बात में कोई संदेह नहीं कि राजनीतिक इच्छाशक्ति से संपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था में काफी हद तक एक सकारात्मक परिवर्तन आ सकता है। हालांकि इसके साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि केवल कानून बनाना और संगठनात्मक परिवर्तन करना पर्याप्त नहीं है। सच तो यह है कि नैतिकता बाहरी तत्व है जो समाज के लोगों के व्यवहार पर निर्भर करती है अतः जब तक समाज के लोग स्वयं मूल्यों का निर्माण करते हुए इसका पालन नहीं करते संपूर्ण सुधार संभव नहीं है।

संदर्भ सूची

1. सुभाष कश्यप, विश्व प्रकाश गुप्ता. राजनीति कोष पृष्ठ 67
2. श्री राम माहेश्वरी. भारतीय प्रशासन पृष्ठ 253
3. E. N. Gladden. 'The Civil Service: Its Problems and Future', p.35
4. बी.एल. फाड़िया. लोक प्रशासन पृष्ठ 438
5. Dr. T. Bhattacharya. 'The Indian Penal Code', p.12
6. द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग 10वीं रिपोर्ट पृष्ठ 314
7. Delegated Legislation-PRS. www.prsindia.org/.../1370586704-Parliamentary%20Security%20of%20
8. Noor Mohammed Bilal. 'Dynamism of Judicial Control and Administrative Adjudication', p.24
9. डी.डी. बसु. भारत का संविधान एक परिचय पृष्ठ 312
10. Kuldeep Mathur, James Warner Bjorkman. 'Policy Making in India: Who Speaks? Who Listens?' p.76
11. Kuldeep Mathur. 'From Government to Governance', p.47
12. Jagdish N. Bhagwati. 'Getting Corruption Right'. www.project-syndicate.org/commentary/getting-corruption-right.
13. Kuldeep Mathur. 'From Government to Governance', p.47
14. Kiran Karnik. 'Corruption: Try technology as it can be transformational'. The Economic Times (6 November 2012)
15. N. Changkakoti. 'Corruption and its eradication in India'. The Clarion: Multidisciplinary International Journal, Volume-1, Number-1, February (2012). pp.183-85
16. सच्चिदानंद सिंहा. लोकतंत्र की चुनौतियां पृष्ठ 113-123
17. 45th Transfer? IAS officer Ashok Khemka, who took on Robert Vadra, asked to shift again. www.ndtv.com/.../45th-transfer-ias-officer-ashok-khemka-who-took-on-
18. सुरेन्द्र मोहन. लोक संस्थाओं का क्षय (भारत का राजनीतिक संकट, संपादक राजकिशोर) पृष्ठ 70
19. 'India's Citizen's Charter: A Decade of Experience'. Public Affairs Centre, Bangalore
20. 'Key issues and constraints in implementing the RTI Act'. rti.gov.in/rticorner/studybypwc/key-issues.pdf.
21. for detailed analysis see- RTI activist: sitting ducks of India. Published by: Asian Centre for Human Rights (2011)
22. Priti Patnaik. 'Social audits in India'. the guardian (13 January 2012)
23. nrega.nic.in/circular/Social-Audit.htm.
24. Beina Xu. 'Governance in India: Corruption'. www.cfr.org/corruption-and-.../governance-india-corruption/p31823
25. Kiran Karnik. 'Corruption: Try technology as it can be transformational'. The Economic Times (6 November 2012)
26. सच्चिदानंद सिंहा. लोकतंत्र की चुनौतियां पृष्ठ 113-123
27. N. Changkakoti. 'Corruption and its eradication in India'. The Clarion: Multidisciplinary International Journal, Volume-1, Number-1, February (2012). pp.183-85

औपनिवेशिक वित्तीय शोषण के रूप में नव उदारवादी नीतियां

गंगाराम

असिस्टेंट प्रोफेसर अर्थशास्त्र, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय रानीगंज प्रतापगढ़

शोध सारांश

उपनिवेशवाद दो देशों के बीच राजनीतिक एवं सामाजिक संबंधों की एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें एक देश शासक दूसरा देश शासित होता है शासक देश का शासित देश पर राजनीतिक प्रभुत्व तो होता ही है साथ ही अधीन देश के आर्थिक मामलों में भी अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर गतिविधियों निर्णय एवं नीतियों का क्रियान्वयन करता है जिसके कारण अधीन देश की अर्थव्यवस्था पिछड़ जाती है वहां गरीबी आर्थिक तंगी का माहौल कायम हो जाता है वही नव उदारवादी नीतियों से तात्पर्य स्वतंत्र व्यापार एवं आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देने वाली वैश्विक आर्थिक व्यवस्था से है जिसमें वैश्वीकरण के तहत विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों को लागू करने की अनिवार्यता के साथ सभी देशों के मध्य समान प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने हेतु नीतियों के उदारीकरण से है। औपनिवेशिक वित्तीय शोषण से क्या तात्पर्य है नव उदारवादी नीतियों से क्या तात्पर्य है क्या औपनिवेशिक नीतियों एवं नव उदारवादी नीतियों में कुछ समानता है या नहीं।

उपर्युक्त विषय के संदर्भ में यह प्रश्न प्रमुख रूप से विचारणीय है कि क्या वैश्वीकरण के दौर में अपनाई गई नव-उदारवादी नीतियों का प्रभाव वही होगा जो ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान थी इन नीतियों के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास पर विपरीत प्रभाव परिलक्षित होंगे क्या नो उदारवादी नीतियों के आधारभूत दर्शन में नव-उपनिवेशिक शोषण का प्रश्न निहित है या नहीं उपरोक्त प्रश्नों के आलोक में हम यह देखेंगे कि किस प्रकार नव उदारवादी नीतियों के माध्यम से हमारे आर्थिक राजनीतिक सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक विचार प्रभावित हो रहे हैं और इसके फलस्वरूप-क्या नकारात्मक व सकारात्मक परिवर्तन हो रहे हैं इन परिवर्तनों का क्या औचित्य है।

औपनिवेशिक वित्तीय शोषण के रूप में नव उदारवादी नीतियां

प्रस्तावना

विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के आन्तरिक मामलों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किये जाने वाले हस्तक्षेप को नव-उपनिवेशवाद (छमवववसवदपंसपेउ) कहा जाता है। नव उपनिवेशवाद की धारणा के मानने वालों का सोचना है कि पूर्व में उपनिवेशी शक्तियों ने जो आर्थिक ढांचा बना रखा था उनका अब भी उन उपनिवेशों पर नियन्त्रण करने में इस्तेमाल किया जा रहा है। यूरोप के देशों ने एक लम्बे समय तक एशिया और अफ्रीका के देशों पर अपना साम्राज्यवादी जाल फेंकर उनका राजनीतिक व आर्थिक शोषण किया लेकिन उन देशों में उभरने वाले स्वतन्त्रता आन्दोलनों ने साम्राज्यवादी देशों के मनसूबों पर पानी फेर दिया। धीरे-धीरे एशिया और अफ्रीका के देश एक-एक करके साम्राज्यवादी चुंगल से मुक्ति पाने लगे। जब साम्राज्यवादी शक्तियों को अपने दिन लदते नजर आए तो उन्होंने औपनिवेशिक शोषण के नए नए तरीके तलाशने शुरू कर दिए। उन्होंने इस प्रक्रिया में उन देशों पर अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए आर्थिक साम्राज्यवाद का सहारा लिया। स्वतन्त्र होने के बाद नवोदित राष्ट्र इस स्थिति में नहीं रहे कि वे अपना स्वतन्त्र आर्थिक विकास कर सकें। उनके आर्थिक विकास में सहायता के नाम पर विकसित साम्राज्यवादी देशों ने डॉलर की कूटनीति (डॉलर डिप्लोमैसी) का प्रयोग करके उनकी अर्थव्यवस्थाओं पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया और धीरे-धीरे वे नए साम्राज्यवाद के जाल में इस कदर फंस गए कि आज तक भी वे विकसित देशों के ही पराधीन हैं। इस व्यवस्था को नव-उपनिवेशवाद के नाम से जाना जाता है।

नव-उपनिवेशवाद का अर्थ

यह एक नई अवधारणा है। इसका प्रयोग नए प्रकार के साम्राज्यवाद के लिए किया जाता है। इसे 'डॉलर साम्राज्यवाद', 'आर्थिक साम्राज्यवाद', 'नया-साम्राज्यवाद' आदि नामों से भी जाना जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अधिकतर पराधीन राष्ट्र राजनीतिक रूप से तो स्वतन्त्र हो गए लेकिन फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी तरह साम्राज्यवाद का शिकार बने रहे। उनकी यह स्थिति आधुनिक साम्राज्यवाद या नव-उपनिवेशवाद कहलाती है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो एक शक्तिशाली विकसित राष्ट्र या अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली राष्ट्र का सम्बन्ध एक आर्थिक या उपग्रह उपनिवेश को दर्शाती है। बहुराष्ट्रीय निगम इसके प्रमुख साधन हैं। इनका उद्देश्य आर्थिक रूप से पराधीन या उपग्रह उपनिवेश का अधिक से अधिक शोषण करके उस पर अपना वर्चस्व

बनाए रखना है। आर्थिक साम्राज्यवाद या नव-उपनिवेशवाद से तात्पर्य ऐसे नियंत्रण से है जिसमें कोई देश प्रत्यक्ष रूप से साम्राज्यवादी शक्तियों से मुक्त प्रतीत होने पर भी परोक्ष रूप से उनके निर्देशों का पालन करने पर बाध्य होता है।

राष्ट्रपति सुकार्नो ने बाण्डुंग सम्मेलन में 1955 में कहा था कि राष्ट्र के अन्दर छोटे से विदेशी समुदाय द्वारा आर्थिक नियंत्रण, बौद्धिक नियंत्रण तथा वास्तविक भौतिक नियंत्रण के रूप में यह एक नए लिबास में उपनिवेशवाद है। उसका स्पष्ट इशारा बहुराष्ट्रीय निगमों की बढ़ती भूमिका की तरफ था। आज विकसित देश अपना साम्राज्यवादी शिकंजा कसने के लिए इनका सहारा ले रहे हैं। इनके द्वारा निर्धन देशों के कच्चे माल पर नियंत्रण पूंजी निर्यात व आसान विनिमय दरों के नाम पर दीमक की तरह घुसकर किया जा रहा है ताकि वे देश कच्चे माल की पूर्ति तथा तैयार माल की बिक्री का केन्द्र बन जाएं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नव-उपनिवेशवाद साम्राज्यवादी नियंत्रण की ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रयोग विकसित राष्ट्र नवोदित अल्प विकसित राष्ट्रों का आर्थिक शोषण करने के लिए करते हैं। ये राष्ट्र राजनीतिक रूप से तो स्वतन्त्र होते हैं, लेकिन आर्थिक सहायता, सैनिक सहायता, शस्त्रों की सहायता, तकनीकी ज्ञान, उत्पादन के क्षेत्र में विकसित देशों के ऊपर ही आश्रित होते हैं। इनकी विकसित देशों पर निर्भरता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि ये अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक रूप से भी स्वतन्त्र नहीं रह जाते।

नव-उपनिवेशवाद के प्रकार

आर्गेन्सकी ने उपनिवेशवाद के तीन रूपों- राजनीतिक उपनिवेशवाद, आर्थिक दृष्टि से पराधीन देश तथा पिछलग्गू देश का वर्णन किया है। आधुनिक युग में राजनीतिक दृष्टि से तो सभी देश स्वतन्त्र हो चुके हैं। इसलिए इसका कोई महत्व नहीं रह गया है। वह अन्तिम दो को ही नव-उपनिवेशवाद के अंतर्गत शामिल करता है।

आर्थिक रूप से पराश्रित देश

ये देश राजनीतिक रूप से तो स्वतन्त्र होते हैं लेकिन आर्थिक सहायता के लिए विकसित राष्ट्रों की ओर देखते हैं। इन देशों में आर्थिक पिछड़ापन पाया जाता है। लोगों की निर्धनता व अस्थिर राजनीतिक व्यवस्थाएं इसके सूचक हैं। लोगों की व्यक्तिगत आय व राष्ट्रीय आय नाम मात्र की होती है। एशिया व अफ्रीका के नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्र इस श्रेणी में शामिल हुए। लम्बे समय तक आर्थिक विकास के लिए उन्हें विदेशी सहायता पर निर्भर हुए। उनमें से अधिकतर आज भी आर्थिक रूप से पराधीन राष्ट्रों की श्रेणी में आते हैं। विकसित देशों ने इन देशों में अधिक से अधिक पूंजी लगाकर इनमें अपनी उत्पादन इकाईयां स्थापित कर रखी हैं। कई देशों में तो यह निवेश 80 प्रतिशत तक है। ये देश पराश्रित राष्ट्रों के राजनीतिक जीवन को भी प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। ऐसे देशों को आर्थिक पराश्रित उपनिवेश कहा जाता है। अमेरिका द्वारा पाकिस्तान, थाईलैंड, घाना आदि एशिया व अफ्रीका के देशों में डॉलर साम्राज्यवाद की नीति का प्रसार इस प्रकार के उपनिवेशवाद का ही एक हिस्सा है।

पिछलग्गू देश या उपग्रह उपनिवेश (Satellites)

यह एक ऐसा राष्ट्र होता है जो औपचारिक रूप से तो स्वतन्त्र होता है लेकिन राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से किसी विदेशी शक्ति के अधीन होता है। वे देश स्वतन्त्र विदेश नीति का पालन करने में सक्षम नहीं होते। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अनेक देशों में सोवियत संघ के नियंत्रण वाली साम्यवादी सरकारें स्थापित हुईं। वे सभी देश पिछलग्गू देश या उपग्रह उपनिवेश की श्रेणी में आते थे। आज अफगानिस्तान में अमेरिका समर्थित सरकार है। इसलिए अफगानिस्तान अमेरिका का पिछलग्गू देश है। आवश्यकता पड़ने पर पिछलग्गू देशों को अनेक आकाओं द्वारा सैनिक सहायता भी उपलब्ध कराई जाती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दोनों महाशक्तियों ने अपने पिछलग्गू देशों की हर प्रकार से मदद की थी। आर्थिक रूप से पराश्रित देशों की तुलना में इन उपनिवेशों की स्थिति अधिक खराब होती है।

नव-उपनिवेशवाद को जन्म देने वाले तत्व

द्वितीय विश्वयुद्ध तक पहुंचते-पहुंचते साम्राज्यवादी शक्तियां इतना अधिक कमजोर हो गई कि वे पराधीन राष्ट्रों पर अपना साम्राज्यवादी नियंत्रण बनाए रखने में अयोग्य सिद्ध होने लगे। साथ में पराधीन देशों में निरन्तर उभर रही राजनीतिक चेतना के परिणामस्वरूप उभरे स्वतन्त्रता आन्दोलन ने भी साम्राज्यवादी शक्तियों को बहुत हानि पहुंचाई। दो विश्व युद्धों ने साम्राज्यवादी देशों की अर्थव्यवस्थाओं को भारी नुकसान पहुंचाया। वे अब इस स्थिति में नहीं रहे कि आन्दोलनकारी ताकतों से लोहा ले सकें। इसलिए उन्होंने अपना साम्राज्यवादी नियंत्रण ढीला कर दिया और उपनिवेशी शासन का अन्त होने लगा। लेकिन इसके बाद एक नए प्रकार के साम्राज्यवाद का जन्म हुआ जिसे नव-उपनिवेशवाद या आर्थिक साम्राज्यवाद के नाम से जाना जाता है। यह विकसित साम्राज्यवादी देशों द्वारा अपनी खण्डित अर्थव्यवस्थाओं को पटरी पर लाने के लिए किए गए प्रयासों का महत्वपूर्ण हिस्सा था। साम्राज्यवादी ताकतें चाहती थी कि आर्थिक नियंत्रण द्वारा वे नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों के आर्थिक जीवन पर अपना नियंत्रण लादकर उनसे पहले जैसा ही लाभ उठा सकती हैं। इसके जन्म के निम्नलिखित कारण हैं।

उपनिवेशों में राजनीतिक चेतना का उदय

धीरे-धीरे औपनिवेशिक शोषण के शिकार देशों में राजनीतिक चेतना का उदय हुआ। इससे वहां पर स्वतन्त्रता आन्दोलन का तेजी से विकास होने लगा। भारत जैसे राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन ने औपनिवेशिक ताकतों को यह अहसास करा दिया कि अब उनका नियंत्रण ज्यादा दिन तक नहीं टिक सकता। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में आत्मनिर्णय के अधिकार को स्वीकृति मिल चुकी थी। इसलिए समय की नाजुकता को देखकर उन्हें अपनी उपनिवेशों को स्वतन्त्र करना

पड़ा। परन्तु उन देशों की राजनीतिक अस्थिरता ने इन देशों को अपना आर्थिक नियंत्रण स्थापित करने का मौका दे दिया। इससे पुराना उपनिवेशवाद नए रूप में परिवर्तित हो गया।

यूरोपीय ताकतों का कमजोर होना

दो विश्व युद्धों ने यूरोप की साम्राज्यवादी ताकतों को भयंकर हानि पहुंचाई। अब उपनिवेशों में शासन चलाना उनके सामर्थ्य से बाहर हो गया। लगातार उठ रहे मुक्ति आंदोलनों ने भी बड़े-बड़े साम्राज्यों को नष्ट कर दिया। भारत में इंग्लैण्ड को जो हानि उठानी पड़ी, उससे भयभीत होकर अंग्रेजों ने यहाँ पर अपना औपनिवेशिक शासन जारी रखने में असमर्थता जाहिर की। नवोदित प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों ने अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों को प्रभावित करना शुरू कर दिया। 1949 में चीन एक साम्यवादी शक्ति के रूप में उभरा। अब वहाँ पर साम्राज्यवादी ताकतों का टिकना मुश्किल हो गया। माओ ने सभी साम्राज्यवादी ताकतों को भयंकर परिणाम की चेतावनी दे डाली। लेकिन सभी नवोदित राष्ट्र चीन व भारत जैसे शक्तिशाली नहीं थे। अधिकतर देशों में अपने आर्थिक विकास का सामर्थ्य नहीं था। इसलिए उन्होंने अपने पुराने साहूकारों पर ही निर्भरता की इच्छा व्यक्त की। सभी साम्राज्यवादी ताकतें आर्थिक सहायता के नाम पर अपने अधीन रहे देशों में हस्तक्षेप के प्रयास करने लगीं। इससे वहाँ नव-उपनिवेशवाद का जन्म हुआ।

नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों की आर्थिक मजबूरियाँ

सभी नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों अपने आर्थिक विकास के लिए विदेशी आर्थिक मदद की आवश्यकता अनुभव हुई। लम्बे समय औपनिवेशिक शासन के शिकार रह चुके अधिकतर देशों के आर्थिक साधनों का दोहन साम्राज्यवादी देश कर चुके थे। इन नवोदित राष्ट्रों के पास अपने आर्थिक विकास के लिए न तो पर्याप्त पूँजी थी और न ही तकनीकी ज्ञान, अपने आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इन देशों को पुरानी उपनिवेशी ताकतों से कर्ज लेने पर मजबूर कर दिया। इससे इन देशों में पुरानी उपनिवेशी ताकतें फिर से अपना जाल बिछाने में कामयाब हुई और नए-उपनिवेशवाद का जन्म हुआ।

साम्राज्यवादी ताकतों की मजबूरियाँ

दो विश्व युद्धों ने साम्राज्यवादी ताकतों को बहुत ज्यादा आर्थिक हानि पहुंचाई। उपनिवेशवादी शासन के अन्त के साथ ही उनके कच्चे माल के स्रोत तथा तैयार माल बेचने वाली मंडियाँ समाप्त हो गईं। इससे साम्राज्यवादी देशों को यह आवश्यकता महसूस हुई कि नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों में मंडियों की खोज व कच्चे माल को प्राप्त करने के लिए क्या किया जाए। ऐसे समय में नवोदित राष्ट्रों की आर्थिक मजबूरियों का लाभ उठाने का विचार उनके मन में आया। इसलिए उन्होंने आर्थिक सहायता के नाम पर इन देशों में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया और धीरे-धीरे वहाँ नव-उपनिवेशवादी शासन की स्थापना के प्रयास किए जिससे वहाँ पर नव-उपनिवेशवाद की धारणा अस्तित्व में आई। इस व्यवस्था ने साम्राज्यवादी ताकतों की समस्त इच्छाओं को पूरा करने में भरपूर सहायता पहुंचाई।

विकसित राष्ट्रों की आर्थिक नीतियाँ

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका और सोवियत संघ में शीत-युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों महाशक्तियों ने अपनी अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए नए राष्ट्रों को अपने गुटों में शामिल करने का निर्णय किया। विदेशी सहायता, शस्त्र पूर्ति, बहुराष्ट्रीय निगमों पर नियंत्रण आदि साधनों द्वारा इन महाशक्तियों ने नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों को आर्थिक रूप से अपने नियंत्रण में ले लिया। इससे उपग्रही राज्यों की संख्या में वृद्धि होने लगी। उनकी सभी आर्थिक नीतियाँ एक-एक करके नव-उपनिवेशवाद को मजबूत आधार प्रदान करने के लिए ही थीं। आज भी अमेरिका जैसे विकसित राष्ट्र बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से अपने नव-उपनिवेशवादी नियंत्रण को सुदृढ़ बना रहे हैं।

नव-उपनिवेशवाद के साधन

धनी व शक्तिशाली साम्राज्यवादी राष्ट्र अपने आर्थिक हितों को पूरा करने के लिए नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों में अपने नियंत्रण के अलग अलग तरीके अपनाते हैं। उनका मुख्य ध्येय अविकसित देशों पर अपना नया साम्राज्यवादी नियंत्रण स्थापित करना है। इसके लिए उनके द्वारा अपनाए गए साधन निम्नलिखित हैं

बहुराष्ट्रीय निगम

सभी धनी देशों द्वारा विश्व के सभी भागों में आर्थिक तथा औद्योगिक इकाईयों को नियंत्रित करने के लिए बहुराष्ट्रीय निगमों का जाल बिछाया गया है। अपनी आर्थिक शक्ति व कार्यक्षेत्र में वृद्धता के कारण ये अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले सभी देशों में अपनी मनमानी करने लगते हैं। इनका उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है। विकासशील देशों में ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ प्रत्यक्ष पूँजी निवेश करके पूँजीवादी देशों के लिए कच्चा माल तथा प्राथमिक उत्पादन की पूर्ति की गारन्टी देते हैं। ये सर्वाधिक निवेश प्राथमिक उत्पादन तथा कच्चा माल के क्षेत्र में करते हैं। ये जीवन में मूलभूत आवश्यकताओं की वस्तुओं के निवेश में सर्वाधिक मुनाफा देखते हैं। विकासशील देशों में सस्ते श्रम, कच्चे माल तथा शोषण की तीव्रता के कारण पूँजी निवेश से अधिक मुनाफा होता है। 1996 में भारत में 741 विदेशी कम्पनियों ने निवेश कर रखा था। भारत जैसे विकासशील देश में भी इन कम्पनियों को कई गुणा लाभ प्राप्त होता है। अपनी पूँजी की सुरक्षा के लिए ये निगम अपने नियंत्रण वाले देशों के आन्तरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करते हैं। ये कम्पनियाँ विदेशों में अंतरराष्ट्रीय पूँजी व्यापार, वाणिज्य तथा उत्पादन व वितरण पर अपना एकाधिकार करने के लिए कार्य कर रहे हैं। एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के देशों पर इनका पूरा नियंत्रण है। IBM, GEC, Standard Oil जैसी कम्पनियाँ इन देशों से काफी मुनाफा उठा रही हैं। अपने मुनाफे की दर को अधिक से अधिक ऊँचे स्तर

पर ले जाने के लिए ये अपने अधीन राष्ट्रों के राजनीतिक हस्तक्षेप करने से भी नहीं चूकते। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय निगम नव-उपनिवेशवाद के सबसे अधिक शक्तिशाली साधन हैं और इन्हें सभी विकसित राष्ट्रों का पूरा समर्थन प्राप्त होता है।

विदेशी सहायता तथा साम्राज्यवादी कर्ज

नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्र अपने आर्थिक विकास के लिए पूर्ण रूप से विदेशी सहायता व साम्राज्यवादी कर्ज पर ही निर्भर हैं। अपने कर्ज की आड़ में तथा विदेशी सहायता के नाम पर विकसित राष्ट्र इन देशों को मनमानी शर्तें मानने के लिए बाध्य कर देते हैं। इन्हें कर्ज लेते समय अनेक कठोर शर्तें भी माननी पड़ती हैं। इन देशों का कर्जा दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। निर्यात से प्राप्त आय का अधिकतर हिस्सा साम्राज्यवादी कर्ज का ब्याज चुकाने में लग जाता है और भुगतान संतुलन का घाटा निरंतर बढ़ता ही जाता है। उन्हें इस कर्ज की राशि का प्रयोग बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से ही सामान खरीदने के लिए करना पड़ता है। उन्हें व्यापार अवरोधों को समाप्त करने की शर्तें भी माननी पड़ती हैं। सभी शर्तें पूंजी निवेश करने वाले देशों के हितों की पोषक होती हैं। विदेशी सहायता प्राप्त करने वाले देश को सदैव निवेशक या सहायता प्रदान करने वाले देश के हितों में वृद्धि करने के लिए अपनी अर्थव्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन करने पड़ते हैं। धीरे-धीरे साम्राज्यवादी कर्ज और विदेशी सहायता पर विकासशील देशों की निर्भरता बढ़ती ही जाती है। अल्प विकसित या पिछड़े हुए देशों की हालत तो विकासशील देशों से भी बदतर होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विदेशी सहायता तथा साम्राज्यवादी कर्ज की होड़ में विकसित देश नव-उपनिवेशवाद का ही पोषण कर रहे हैं।

हथियारों की पूर्ति

आज के आणविक युग में प्रत्येक राष्ट्र अपने को सैनिक व सामरिक दृष्टि से सुरक्षित देखना चाहता है। इसके लिए उन्हें विकसित देशों से शस्त्र खरीदने पड़ते हैं। आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण ये देश कई बार कर्जा भी लेते हैं। आज विकासशील देशों की राष्ट्रीय आय का अधिकतर हिस्सा हथियार खरीदने पर ही खर्च हो रहा है। महाशक्तियों द्वारा किया जाने वाला शक्ति प्रदर्शन शस्त्र प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देता है। 1979 में महाशक्तियों का आपसी टकराव विदेशों में पहुंचकर पर्याप्त लाभ दिलाए। इन महाशक्तियों द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद किए गए शक्ति प्रदर्शन इनके शस्त्र उद्योग में आई मन्दी को कम करने में सहायक सिद्ध हुए। आज तृतीय दुनिया के अधिकतर देश अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन तथा सोवियत संघ से ही हथियार खरीदते हैं। अपनी औपनिवेशिक स्थिति को मजबूत बनाने के लिए साम्राज्यवादी देशों ने तीसरी दुनिया के देशों में अपने सैनिक अड्डे खोल रखे हैं। हथियारों की पूर्ति के रूप में ये देश नव-उपनिवेशवाद को ही बढ़ावा दे रहे हैं।

अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएं

आज विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का संचालन कर रही हैं। ये संस्थाएं ऋण देते समय कठोर शर्तें लगाकर नव-उपनिवेशवाद का ही पोषण करती हैं। देशों को दिया जाने वाला ऋण हमेशा राजनीतिक प्रतिबन्धों पर आधारित होता है। वह हमेशा विकसित राष्ट्रों के हितों का ही पोषक होता है। इसीलिए तृतीय विश्व के देश नई अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की पुरजोर मांग करते रहते हैं। उनका आरोप है कि विश्व की आर्थिक संस्थाएं साम्राज्यवादी हितों को पोषित करने वाली हैं। ये निरंतर पिछड़े हुए या विकासशील देशों के आर्थिक व राजनीतिक हितों पर कुठाराघात करती हैं। इस तरह ये उपनिवेशवाद के नए रूप को बढ़ावा दे रही हैं।

आश्रित या उपग्रही राज्य

साम्राज्यवादी शक्तियां आर्थिक सहायता देकर पिछड़े राष्ट्रों को निरंतर कमजोर करती रहती हैं। वहां के आर्थिक व राजनीतिक जीवन में साम्राज्यवादी या निवेशकर्ता देश का पूरा हस्तक्षेप बढ़ जाता है। विदेशी ताकत आश्रित देश के व्यापार पर अपना पूर्ण नियंत्रण रखती है तो उनका नियंत्रण धीरे-धीरे स्थायी रूप प्राप्त कर लेता है और यह निर्भरता निरन्तर बढ़ती ही रहती है और वह अन्त में उपग्रही राज्य का रूप ले लेता है। अब साम्राज्यवादी ताकत आर्थिक क्षेत्र की बजाय राजनीतिक क्षेत्र की तरफ अपना ध्यान लगा लेती है। इससे उपग्रही राष्ट्र को अपने आका की हर बात मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है। 1990 से पहले सोवियत संघ ने इस प्रकार की नीति का खुलकर प्रयोग किया था। इसके पीछे नव-उपनिवेशवाद के प्रसार की ही भावना विद्यमान रहती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आज भी नव-उपनिवेशवाद के रूप में विकसित राष्ट्र अल्पविकसित तथा विकासशील देशों पर अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं। दक्षिण के गरीब देश निरंतर नव-उपनिवेशवाद के शोषण का शिकार हो रहे हैं। उत्तर के विकसित देश बहुराष्ट्रीय निगमों तथा अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं के माध्यम से इन देशों पर अपनी पकड़ मजबूत बनाए हुए हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां विकासशील व पिछड़े देशों में दीमक की तरह घुस रही हैं। अधिकतर देशों में ये राजनीतिक व्यवहार को भी प्रभावित करने में समर्थ हैं। अपने हितों की पूर्ति के लिए विकसित राष्ट्र सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का भी सहारा ले रहे हैं। शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व में अपने आर्थिक या डॉलर साम्राज्यवाद का तेजी से विकास कर रहा है। वह आर्थिक जीवन के साथ-साथ विकासशील व पिछड़े तृतीय विश्व के देशों के राजनीतिक क्रिया-कलापों में भी हस्तक्षेप करने लगा है। यदि उसके उभरते नव-उपनिवेशवाद को न रोका गया तो समस्त विश्व के लिए नया खतरा पैदा हो जाएगा। आज तृतीय विश्व के देशों को एकजुट होकर नव-उपनिवेशवाद की जड़ें उखाड़ने की जरूरत है ताकि नई अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना हो।

संदर्भ-

1. कुरुक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार।
2. योजना, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार।
3. भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण तथा विश्लेषण प्रोफेसर एस. के लाल डॉ. एस एन लाल।
4. दत्त रुद्र एवं सुंदरम के. पी.एम. भारतीय अर्थव्यवस्था यस चंद एंड कंपनी लिमिटेड नई दिल्ली ।
5. मिश्रा एंड पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था।
6. भारत वार्षिक- प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार।
7. आर्थिक समीक्षा भारत सरकार।
8. नीति आयोग की वार्षिक रिपोर्ट।
9. विश्व स्वास्थ्य संगठन की वेबसाइट।
10. वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट।
11. वित्त मंत्रालय भारत सरकार की वेबसाइट।
12. अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र एम एल झिंगन

वैश्विक चुनौतियों के समाधान में गांधीवादी विचारधारा की प्रासंगिकता

महेन्द्र प्रताप बाँयला

सह आचार्य-राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश:- 20वीं शताब्दी के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था ने बहुत से संगठनों और विचारधाराओं के कार्यों का अनुभव किया गया, परन्तु इनमें से कोई भी वैश्विक स्तर पर शान्ति की चिरस्थायी खोज की प्राप्ति नहीं कर पाई। गांधी ने अपने नाम के साथ किसी 'वाद' की स्थापना में कभी भी विश्वास नहीं किया। परन्तु फिर भी इसे केन्द्रीय मूल्य या कृपलानी ने इसे "गांधीवादी तरीका" कहा है। हमारे सामने यह अहिंसा और शान्ति की एक उत्कृष्ट विचारधारा के रूप में खड़ा है। परिणामस्वरूप, इस वर्तमान शताब्दी में गांधीवाद की प्रासंगिकता निर्विवाद बन गई है। यह अहिंसा के केन्द्रीय मूल्य पर आधारित समय की कसौटी पर खरी एक विचारधारा है जिसका मूलभूत उद्देश्य शान्ति प्राप्त करना है। यह पद्धति विकासशील देश की पुरानी मांग नयी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को पूरा कर सकती है और इसके साथ ही यह मानवीय चेहरा वाली वैश्विक विकास को मजबूती प्रदान करती है। इस प्रकार से गांधीवादी मूल्यों को व्यवहार में लाते हुए मानवतावादी समस्याओं जैसे हथियारों की दौड़, आतंकवाद और पर्यावरण का ह्रास को हल किया जा सकता है। वैश्विक शंकाओं और वाद-विवाद के बावजूद, समकालीन विश्व में इस दर्शन की अत्यधिक प्रासंगिकता है।

धन के केन्द्रीयकरण या फिर इसके असमान वितरण के कारण वर्तमान विश्व में आर्थिक असमानताएं विद्यमान हैं। गरीब देशों द्वारा न्यायसंगत व समानतावादी व्यवस्था की मांग को सुलझाया नहीं गया है। इसके विपरीत, केन्द्रीय आर्थिक वैश्विक एजेण्डा से अलग हटते हुए इस मुद्दे को हाशिए पर धकेल दिया गया है। यहां तक कि शीत युद्ध के बाद के युग में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने विकासशील राज्यों की स्थितियों को सुधारने की अपेक्षा अधिक समस्याओं को पैदा कर दिया है। इस परिस्थिति में गांधी की ट्रस्टीशिप की अवधारणा महत्वपूर्ण बन जाती है। इस प्रकार की पद्धति में, सबके साथ समानता का व्यवहार किया जाता है, इसलिए किसी का किसी के द्वारा शोषण नहीं होता है। अमीर का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह वंचित बंधुओं के कल्याण का ध्यान रखे।

प्रस्तावना:- परिवर्तित विश्व व्यवस्था-शीत युद्ध की समाप्ति के बाद भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई जिसने विश्व की संरचनात्मक व कार्यात्मक गतिशीलता में परिवर्तन ला दिये। विष्व के लिए सामान्य तौर पर और विकासशील देशों के लिए विशेष तौर पर इन परिवर्तनों के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों निहितार्थ थे। सकारात्मक रूप में, द्वि-ध्रुवीय वैचारिक आधार पर बंटे संसार में प्रतियोगी प्रभाव निर्माण का युग समाप्त हो गया है। यहां तक कि एकमात्र बची महाशक्ति का एकपक्षीय वर्चस्व भी, विचारधारा का अंत या पुंजीवादी की विजय के अर्थ के सन्दर्भ में स्थापित नहीं हो सका है। धीरे-धीरे ध्रुवहीन विश्व व्यवस्था एक वास्तविकता बनती जा रही है जिसमें राज्यों के बहुत समूह सीमित क्षेत्रों में अधिपत्य का प्रयोग कर रहे हैं और अन्य राज्यों के लिए भी ऐसा ही करने के लिए स्थान छोड़ रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, वैश्विक संस्थानिक संरचनाओं के सन्दर्भ में केन्द्र उन्मुख शक्तियों के पतन के साथ ही, कुछ क्षेत्रीय आर्थिक शक्तियों का फिर से मेल-मिलाप भी देखा जा सकता है। इस प्रक्रिया में कुछ नए क्षेत्रीय आर्थिक मंच अपनी शक्ति का बढ़ा रहे हैं और ऐसे ही अन्य मंचों से प्रतियोगिता नहीं करना चाहते हैं बल्कि अपने सदस्य देशों की स्थिति को शक्ति प्रदान करना चाहते हैं। सदस्य देशों के बीच क्षेत्रीय मुक्त व्यापार मजबूती ग्रहण कर रहा है और मेल-मिलाप को बढ़ावा दे रहा है। इसके साथ ही व्यापार, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश व संयुक्त उद्यमों के क्षेत्र में अन्तर्समूह सहयोग देखा जा रहा है। यद्यपि, इन समूहों के बीच व्यापक स्तर पर नकारात्मक प्रतियोगिता दिखाई नहीं देती है।

इन दो सकारात्मक परिणामों के बावजूद, इन विकासों के सकारात्मक पक्ष भी सशक्त व प्रत्यक्ष हैं। राजनीतिक रूप से एक तरफ तो द्वि-ध्रुव के समाप्त होने से विश्व व्यवस्था में अस्थायित्व की स्थिति पैदा हो गई है तो दूसरी ओर एकमात्र शक्ति के पास वर्चस्व का लाभ है। इस शक्ति ने संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए हस्तक्षेपवादी भूमिका को आगे करके न केवल समस्या का निर्माण किया है बल्कि अमेरिका की आज्ञाकारिता न मानने के नाम पर और आदेश न मानने पर देशों के विरुद्ध "आक्रमण विरोध" के नाम पर अमेरिका को युद्ध छेड़ने के लिए प्रेरित किया है। इसके अतिरिक्त, अमेरिका के नेतृत्व में एक मात्र उपलब्ध सैन्य गठधन व्यवस्था-नोटो-की बढ़ती भूमिका से अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का ढांचा ही अव्यवस्थित हो गया है। इसी तरह, विकासशील देशों के मंचों जैसे गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के कमजोर हो जाने से ये देश हाशिए पर चले गये हैं इस प्रकार वैश्विक व्यवस्था उस दौर से गुजर रही है जिसमें विकासशील देशों को अपनी स्वायत्तता की सुरक्षा करने में या वैश्विक व्यवस्था में अपने लिए स्थान बनाने में कठिनाई का अनुभव हो रहा है।

आर्थिक तौर पर एक तरफ तो उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया (एल.पी.जी.) के शुरू होने से विकासशील देशों में सीमा के झंझट समाप्त हो गए हैं और यहां विकसित देशों का माल निर्बाध गति से आ रहा है तो दूसरी ओर इस प्रक्रिया ने उत्पादन और वितरण के पूंजीवाद ढंग को मजबूती

प्रदान की है। इसके अतिरिक्त, इस प्रक्रिया ने दो जुड़वा संस्थाओं आई.एम.एफ. और वर्ल्ड बैंक के होने के बावजूद विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के रूप में तीसरे संस्थानिक व्यवस्था की स्थापना से ब्रेटल वुडस मॉडल को मजबूत प्रदान की है। व्यापक पैमाने पर व्यापार के रूप में “दक्षिण अपने बजारों को उत्तर के देशों के लिए खोल रहा है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश या संयुक्त उपक्रम को अपनाने वाले देशों की आर्थिक स्थितियों में कोई सुधार नहीं हुआ है। इन देशों में अमीर व गरीब के बीच निरंतर अंतर बढ़ रहा है। जिसके कारण सामाजिक तनाव, राजनीतिक उथल पुथल और ऐसी अन्य समस्याएं उभरकर सामने आई हैं।

शीत युद्ध के बाद एक नए विषय परिदृश्य उभरने से मानवतावादी सरोकार, हथियारों की दौरे आतंकवाद और पर्यावरण ह्रास के रूप में, चिंताजनक स्थिति में पहुंच गए हैं। यद्यपि हथियारों की दौड़ की समस्या काफी दशकों से है, परन्तु वर्तमान समय में व्यापक स्तर पर तबाही मचाने वाले हथियारों के प्रयोग का निरंतर भय बना रहता है। इसलिए वर्तमान समय में यह मुद्दा गंभीर विस्तार के संभावित परिणामों को लिए है। इसके अतिरिक्त, परमाणु अप्रसार संधि को अनिश्चितकाल तक बढ़ाने की स्वीकृति से भी परमाणु प्रसार की प्रक्रिया पर रोक नहीं लग पाई है।

कुछ देशों ने न केवल व्यापक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि को यह कहकर टुकरा दिया है कि यह परमाणु प्रसार सन्धि के दायरे में नहीं आती है बल्कि इस सन्धि का प्रस्ताव करने वाले देश अमेरिका की सीनेट ने भी इसे मजूरी नहीं दी है। इसके विपरीत, परमाणु क्लब में अब तीन नए सदस्यों (दक्षिण कोरिया, भारत और पाकिस्तान) के आने से अब परमाणु-5, परमाणु-8 बन गया है। इस बढ़ोतरी का चाहे कोई भी औचित्य हो, या इस पर वाद-विवाद हो, एक बात निश्चित है। इस शस्त्र होड़ ने एक गंभीर आयाम ग्रहण कर लिया है। नए देशों पर नियंत्रण लगाने का प्रयास किया जा रहा है। दवाबकारी कूटनीति के द्वारा इन देशों पर शिकंजा कसा जा रहा है, परन्तु इस प्रकार के विकास के घातक परिणामों के बारे में अनिश्चिता की स्थिति बनी हुई है।

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के लिए आतंकवाद, विशेषकर इसकी बढ़ती उच्च तकनीकी प्रकृति के कारण एक अन्य गंभीर समस्या है। जिसका यह व्यवस्था सामना कर रही है। 9/11 के बाद से यह मुद्दा अत्यधिक महत्वपूर्ण बन गया है, आतंकवाद के इस चेहरे ने यह दर्शाया है कि विश्व का शक्तिशाली देश भी इसकी चपेट में आ सकता है। इसका परिणाम यह हुआ कि अल-कायदा को समाप्त करने के लिए विश्व के कई भागों को नष्ट किया गया। परन्तु अफगानिस्तान में भारी बमबारी के बावजूद और विश्व के अन्य भागों में की गई कार्यवाही के बावजूद अल-कायदा को समाप्त नहीं किया जा सकता है। आतंकवाद वास्तव में उत्तर-आधुनिक युद्ध संघर्ष है- अनियतरूपी, भ्रामक, भावात्मक, व्यक्तिगत, मायावी और छितराया। इस प्रकार के यह राज्य की सत्ता के बाहर चला गया है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन न केवल आतंकवाद की धमकियों को नियंत्रित करने में असफल रहे हैं बल्कि इस शब्द की परिभाषा भी नहीं बना पाए हैं। इस प्रकार से पूर्ण अराजकता और अव्यवस्था की स्थिति में राष्ट्रों को अपना मार्ग ढुंढने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है और वे अंधेरे में मार्ग तलाश कर रहे हैं।

औद्योगिक विकास की तीव्र गति ने पर्यावरण ह्रास की गंभीर समस्या को उत्पन्न कर दिया है। संयुक्त राष्ट्र ने इस मामले पर चार अन्तर्राष्ट्रीय संयुक्त राष्ट्र सम्मेलनों का स्टॉकहोम (1972), नेरोबी (1982), रियो डी जेनेरियो (1982) और जोहानिसबर्ग (2002) में आयोजन किया, परन्तु पर्यावरण ह्रास की समस्या अभी भी नहीं सुलझी है। इसके विपरीत, अन्तिम सम्मेलन पर तो भूमण्डलीकरण का प्रभाव दिखाई दे रहा था, बाध्यकारी उपायों की भूमिका को पूरी तरह से गैर सरकारी संगठनों व बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हवाले कर दिया गया था, और राज्य को उसकी जनता के प्रति जवाबदेही से पूरी तरह से वंचित कर दिया गया। कुछ महत्वपूर्ण संधियों जैसे से पूरी तरह से वंचित कर दिया गया।

कुछ महत्वपूर्ण संधियों जैसे क्योटो को अभी भी लागू नहीं किया जा सकता है और न ही वैश्विक गर्माहट के मद्दे से निपटने के लिए प्रभावकारी कदम ही उठाए गए हैं। यहाँ तक की “संपोषित विकास” के लिए उपयुक्त नीति निर्देश अभी भी व्यवहार में नहीं आ पाए हैं। वैश्विक एजेण्डा पर विकसित विषय पर यह दबाव डाल रहे हैं कि वे संरक्षण के लिए मानदण्डों और सिद्धान्तों का पालन करें जबकि स्वयं वे पर्यावरण को हानि पहुंचाने में व्यस्त हैं।

गांधीवादी मूल्यों का प्रयोग:-गांधीवादी व्यवहार में ही उपरोक्त समस्याओं का समाधान समाहित है। गांधीवाद के केन्द्रीय मूल्यों पर आधारित रणनीतियों को अपनाकर ही इन मुद्दों को सुलझाया जा सकता है। इन मूल्यों का नीचे दिए गए ढंग से विस्तार किए जाने की आवश्यकता है। ऐसा प्रतीत होता है। कि अधिकांश राजनीतिक समस्याओं का आधार राज्यों के बीच विश्वास कमी है। परिणामस्वरूप, तत्काल आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रों के बीच उस विश्वास को स्थापित किया जाए। इस प्रकार के संघर्ष को गांधी द्वारा प्रचारित अहिंसात्मक तकनीकों के प्रयोग द्वारा सुलझाया जा सकता है। इसकी प्राप्ति के लिए तो नए संस्थानिक व्यवस्थाओं का विकास किया जाए या फिर सम्बद्ध देशों के व्यवहार में परिवर्तन निर्माण लाया जाए। इस सन्दर्भ में सम्बन्धित देशों के बीच विश्वास निर्माण उपाय को शुरू किया जा सकता है, यह उपाय सही दिशा में सही कदम हो सकता है।

इस पद्धति द्वारा इस बात की संभावना है कि देशों के मध्य आपसी विश्वास स्थापित हो जाए। इसके लिए सम्बन्धित पक्षों में सद्‌इच्छा का निर्माण किया जाता है। विश्वास बहाली को व्यक्ति का व्यक्ति से सम्बन्धों के रूप में ढग-प्प की कूटनीति का प्रयोग करके मजबूत किया जा सकता है। इस प्रक्रिया के द्वारा न केवल तात्कालिक समस्या सुलझ जाएगी बल्कि संभावना इस बात की भी है कि स्थायी शान्ति के लिए प्रत्याशा जाग उठेगी। हथियारों के लिए दौड़ की समस्या हथियारों के विकास की अपेक्षा कहीं अज्ञानता से जुड़ी समस्या है। हथियारों की दौड़ राज्यों के बीच अविश्वास से उपजी है।

इस प्रकार, अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि पड़ोसी देशों के बीच विश्वास किस तरह से पैदा किया जाए। इसे राज्य के व्यवहार और दृष्टिकोण में लाकर परिवर्तित किया जा सकता है। जब कोई राज्य अपने कार्यों में इसे प्रदर्शित करेगा, तब अन्य देश भी ऐसा करेगा। इस प्रकार से एक सहयोगी राष्ट्र-राज्य की नैतिक शक्ति क्षेत्र में छाये तनावों को दूर कर सकती है। इस सन्दर्भ में गांधी ने माना है कि सदैव अन्य देशों द्वारा किस नीति का अनुसरण किया जाता है, इसे ध्यान में न रखकर देश एक पक्षीय निःशस्त्रीकरण की ओर आगे बढ़े। आतंकवाद की समस्या युद्ध के विकास की नहीं है बल्कि यह इससे कहीं अधिक राजनीतिक व सामाजिक-मुद्दों से जुड़ी समस्या है। आतंकवाद की जड़े सामाजिक-मनोवैज्ञानिक कारकों से जुड़ी हैं। यहाँ व्यक्ति का व्यवहार एक उपयुक्त कारक है।

परिणामतः अगर किसी भी समाधान में आतंकवादी की मानसिकता का परिवर्तित करने की बात नहीं है, तब वह सफल नहीं हो सकता है। यहाँ पर गाँधीवादी मूल्यों की प्रासंगिकता बढ़ जाती है। गाँधीवाद का विश्वास है कि जो व्यक्ति इस प्रकार की गतिविधियों में शामिल है, उनका हृदय परिवर्तन किया जा सकता है। गांधी का विश्वास है कि व्यक्ति का आत्मा का रूपान्तरण किए बिना समाज में सुधार नहीं लाया जा सकता है। इसलिए स्थायी शान्ति और आतंकवाद की समस्या के पूर्ण समाधान के लिए व्यक्ति के व्यवहार में सुधार आवश्यक है।

निष्कर्ष:-पर्यावरण से जुड़ी समस्या का मुख्य कारण तकनीकी रूप से विकसित देशों की तृष्णा है। ये देश अपने देश को मजबूत करने और आर्थिक स्थिति में मजबूती लाने के लिए सारा धन इकट्ठा करके प्रकृति के सारे संसाधनों पर कब्जा जमाना चाहते हैं। कुछ देशों की यह शोषणकारी प्रकृति विश्व समाज के एक व्यापक क्षेत्र के समस्याएं पैदा कर रही है। गाँधीवाद का मानना है कि प्रकृति ने प्रत्येक वस्तु को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध किया हुआ है जिससे सबकी तृष्णा की नहीं बल्कि सबकी आवश्यकताएं पूरी हो जाती है। इसलिए व्यक्ति को आवश्यकताओं की निरंतर पूर्ति के लिए संपोषित विकास का समर्थन करता ँधन के केन्द्रीय करण या फिर इसके असमान वितरण के कारण वर्तमान विश्व में आर्थिक असमानताएं विद्यमान हैं। गरीब देशों द्वारा न्यायसंगत व समानतावादी व्यवस्था की मांग को सुलझाया नहीं गया है। इसके विपरीत, केन्द्रीय आर्थिक वैश्विक एजेण्डा से अलग हटते हुए इस मुद्दे को हाशिए पर धकेल दिया गया है। यहां तक कि शीत युद्ध के बाद के युग में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने विकासशील राज्यों की स्थितियों को सुधारने की अपेक्षा अधिक समस्याओं को पैदा कर दिया है।

इस परिस्थिति में गांधी की ट्रस्टीशिप की अवधारणा महत्वपूर्ण बन जाती है। इस प्रकार की पद्धति में, सबके साथ समानता का व्यवहार किया जाता है, इसलिए किसी का किसी के द्वारा शोषण नहीं होता है। अमीर का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह वंचित बंधुओं के कल्याण का ध्यान रखे। यह पद्धति विकासशील देश की पुरानी मांग नयी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को पूरा कर सकती है और इसके साथ ही यह मानवीय चेहरा वाली वैश्विक विकास को मजबूती प्रदान करती है। इस प्रकार से गाँधीवादी मूल्यों को व्यवहार में लाते हुए मानवतावादी समस्याओं जैसे हथियारों की दौड़, आतंकवाद और पर्यावरण का ह्रास को हल किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. तिवारी विवेकानन्दः अछूत मतवाद के सचः गाँधी और अम्बेडकर सस्ता साहित्य प्रकाशन मण्डल, नई दिल्ली, 2011
2. उपाध्याय हरिभाऊः बापू-कथा 1920-1948, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 2002
3. गाँधी मोहनदास करमचन्दः सत्य के साथ मेरे प्रयोग, आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1947
4. भट्टाचार्य एस.एनः महात्मा गाँधीः एक पत्रकार, राष्ट्रीय गाँधी म्यूजियम और माणक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
5. गाँधी मोहनदास करमचन्दः सत्य के साथ मेरे प्रयोग, आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद - 1947, पृष्ठ 258
6. वही, 1947, पृष्ठ 259
7. गाँधीः नवजीवन (पत्र) 'विदेशी माध्यम की बुराई' अहमदाबाद, 2 सितम्बर, 1921
8. गाँधीः 'स्वराज्य का अर्थ, नवजीवन (पत्र), अहमदाबाद, 27 जनवरी, 1925
9. गाँधीः 'संतति- नियमन, नवजीवन (पत्र), अहमदाबाद, 12 मार्च, 1925
10. गाँधीः 'समाचार-पत्र, नवजीवन (पत्र), अहमदाबाद, 1 अप्रैल, 1926

पत्र - पत्रिकाएँ

1. प्रतियोगिता दर्पण
2. सिविल सर्विसेज टाइम्स
3. क्रॉनिकल
4. योजना
5. कुरुक्षेत्र

स्पेटः शासन संचालन एवं प्रशासनिक नैतिकता उत्थान का बेहतर साधन

(SPAT- Self Performance Assessment Technique: A Better Tool For Governance & Enhancement In Administrative Ethics)

डॉ० ज्ञानचंद भारती

सहायक आचार्य - लोक प्रशासन, मा.ला.व.राज. महाविद्यालय, भीलवाड़ा

प्रशासन, कार्यों का व्यवस्थित प्रबंधन है वहीं लोक प्रशासन, जीवन को व्यवस्थित जीने का साधन है। मानव ने अपनी आदिम व्यवस्था से लेकर अब तक अनेक श्रेणियों, संगठनों, शासन व्यवस्थाओं व सामाजिक संस्थाओं को अंगीकार करके अपना जीवन बिताया है। जहाँ उसने 'राजकुलीन व्यवस्था' 'पुलिस राज्य' व 'तानाशाही' के अधीन अपना जीवन बिताया है वहीं अब वह 'लोकतांत्रिक जीवन प्रणाली' के सुख में गोते लगा रहा है। यह लोकतांत्रिक जीवन प्रणाली उसके जीवन में स्वतंत्रता, अस्मिता, आत्मगौरव व सम्मानित जीवन जीने की ललक जगाती है वहीं राज्य व्यक्ति को शिक्षा, चिकित्सा, व्यवसाय, मनोरंजन, सुरक्षा, कल्याण, उपलब्धि, सम्मान जैसी अनेकानेक सुविधायें ही नहीं देता है वरन् वह उसके सम्पूर्ण कल्याण की जिम्मेदारी भी ओढ़ता है। राज्य का यह स्वरूप उसे 'लोक कल्याणकारी राज्य' की छवि प्रदान करता है, जो व्यक्ति की न केवल तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है वरन् वह उसके जन्म पूर्व से लेकर उसकी मृत्यु पश्चात भी उसमें रुचि बनाये रखता है।

राज्य द्वारा जनकल्याण नवीन संरचना नहीं है। वैदिक काल में राजा का जनता द्वारा चुना जाना और राजा द्वारा जन कल्याण की शपथ लेना, राज्य की लोक कल्याणकारी छवि का ही द्योतक था साथ ही 'सभा' और 'समिति' द्वारा राजा पर नियंत्रण शासन में नैतिकता के समावेश का अनूठा यंत्र था।

मनुस्मृति के अनुसार 'राजा द्वारा धर्म के विरुद्ध किया गया कार्य लोक में उसकी अपकीर्ति का, और मृत्यु के बाद उसके नरक गमन का कारण बनता है।' मनु ने राज्य के दैवी उत्पत्ति सिद्धान्त अपनाने के बावजूद राजा के आचरण में नैतिकता का समावेश किया है। मनु ने राजा को जितेन्द्रिय, न्यायी, विद्वान, विनीत व लोकप्रिय होना आवश्यक माना है। राजा के नैतिक च्युत होने पर उसे भी साधारण प्रजाजन से अधिक (सहस्र पण) दण्ड भुगतना होता था।

“कार्षापणं भवेदण्डयो यत्रांतः प्राकृतो जनः।

तत्र राजा भवेदण्डयोः सहस्र मिति धारणा ॥”

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजा को नैतिकता का पाठ पढ़ाते हुए कहा है कि

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।

नात्म प्रियम हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।^१

कौटिल्य ने राजा में नैतिक गुणों का समावेश करने के कलए उसकी दिनचर्या को आठ भागों में विभाजित कर उसमें आत्मानुशासन की भावना को केन्द्रीभूत किया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत संसदीय लोकतंत्र को अपनाते हुए लोक कल्याणकारी राज्य के मार्ग पर चल पड़ा। राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप ने राज्य के कार्यों में बेहताशा वृद्धि की है जिससे शासन का सुचारू संचालन एवं जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति राज्य के लिए दुःस्वप्न साबित होने लगा है। 'प्रशासकीय राज्य' की अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप लोक सेवाओं के विस्तार (ब्युरोमेनिया) एवं अनेकानेक विसंगतियों ने राज्य के सामने शासन संचालन (Governance), प्रशासन में सच्चरित्रता, भ्रष्टाचार उन्मूलन, राजनीतिक तंत्र का स्थायित्व एवं प्रशासनिक तंत्र की कार्यकुशलता जैसी गंभीर समस्याएं खड़ी की है।

भारतीय सन्दर्भ में ब्यूरोक्रेसी, जिसे 1850 में थॉमस कार्लाइल ने 'महाद्विपीय उत्पात' का नाम दिया था, भारतीय प्रशासन में साक्षात् हो उठी है।^२ भारतीय प्रशासन में वे सभी बुराइयां संकलित हो गयी हैं, जो नौकरशाही का वीभत्स रूप दिखाने के लिए पर्याप्त थी। ब्रिटिशकाल में ही प्रशासनिक सुधार की प्रक्रिया शुरू हो गयी थी जो अनवरत जारी है। इस प्रक्रिया में गठित सैकड़ों आयोग एवं समितियाँ भी भारतीय प्रशासन की मनोवृत्ति में यथेच्छ परिवर्तन लाने में असफल रही हैं।

1992 में विश्व बैंक ने 'गुड गवर्नेंस' के संदर्भ में दिशा निर्देश बनाते हुए कहा

“अभिशासन वह है जिसमें राजनीतिक जवाबदेयता, नौकरशाही क्रिया शीलता व जवाबदेयता, स्वतंत्रता की उपलब्धता, कानूनों का पालन, पारदर्शिता पूर्वक सूचनाओं की उपलब्धता, प्रभावी तथा कुशल प्रशासन और सरकार एवं लोगों के मध्य सहयोग परिलक्षित होता है।

अभिशासन या सुशासन की यह अवधारणा e-Governance के साथ घुली मिली हुई है जिसे आजकल SMART Government कहा जा रहा है जिसका अर्थ है:

S = Small (नौकरशाही का आकार कम करना)

M = Morale (प्रशासन में नैतिकता स्थापित करना)

A = Accountable (लोकसेवाओं में जवाबदेयता लाना)

R = Reliable & Responsive (जनता में प्रशासन के प्रति विश्वास उत्पन्न करना)

T = Transparent (सरकारी नीतियों, निर्णय, कार्यों तथा सेवाओं में पारदर्शिता लाना)

इस भाँति सुशासन जनता के प्रति न केवल संवेदनशील रहता है वरन् वह पारदर्शिता व जवाबदेयता भी उत्पन्न करता है। भारतीय संदर्भ में सुशासन के निम्न आयाम होंगे:

1. जवाबदेयता
2. पारदर्शिता
3. प्रशासन में नैतिकता
4. नागरिकों के प्रति मित्रवत
5. प्रभावशील प्रशासन
6. नागरिकों के प्रति संवेदनशील
7. कार्यकुशल लोक सेवायें
8. शासन में जनसहभागिता
9. जनता में शासन के प्रति सद्भाव
10. समग्र मानव संसाधन विकास

लेकिन भारतीय नौकरशाही की मानसिकता (mind set) में परिवर्तन लाना हमेशा से ही कठिन रहा है क्योंकि हमने जिस प्रशासनिक तंत्र का अपनाया था वास्तव में वह शोषणकारी प्रवृत्ति का था, जिसे नियामकारी कार्यों को सम्पादित करने में तो महारत हासिल थी लेकिन विकास प्रशासन के लिए वह अनुपयुक्त था। इस प्रशासनिक तंत्र को जब विकास कार्यों के संपादन का दायित्व मिला तो यह अपने कार्य व्यवहार (work culture), कार्य प्रणाली (work mechanism) एवं कार्य नैतिकता (work ethos) विकसित नहीं कर पाया जो उसके नवीन दायित्व के लिए अपरिहार्य थी। उस कमी के चलते जितने भी सुधार आयोग एवं समितियाँ बनी उन्होंने उसका बाहरी कायाकल्प तो किया लेकिन वो इसकी आत्मा को नहीं झकझोर सकी।

किसी भी संगठन में किया गया परिवर्तन तब तक प्रभावी नहीं हो सकता जब तक वह उसके उद्देश्यों एवं मूल्यों की आत्मा में झनकार पैदा नहीं करे अर्थात् वह उन गहरे विश्वासों एवं मान्यताओं में आमूलचूल परिवर्तन ना ला दे जिस पर संगठन खड़ा है, और परिवर्तन इतना जबरदस्त हो कि संगठन अपने जड़ों में पनप रहे नासूर को निकाल फेंके। तब संगठन और उसके कार्मिकों में सुधार न केवल परिलक्षित होगा वरन् प्रभावी भी होगा और ऐसा केवल प्रशासन में नैतिकता के समावेश से ही संभव होगा।

नैतिकता अपने आप में विवेचनीय है। संतों और महात्माओं ने नैतिकता को धर्म और अध्यात्म से जोड़ कर देखा है, वहीं समाज वैज्ञानिकों ने इसे सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं व लोक व्यवहार के रूप में परिभाषित किया है। कानूनविद इसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त पर तोलते हैं तो प्रशासनिक अधिकारी संगठन के उद्देश्यों, कार्यों एवं नीतियों के प्रति प्रतिबद्धता व प्रभावी संचालन के रूप में इसकी व्याख्या करते हैं।

1925 में महात्मा गांधी ने सात सामाजिक बुराईयों का वर्णन किया था यह बुराईयों प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भ्रष्टाचार से सम्बन्धित थीं :

1. सिद्धान्त के बिना राजनीति
2. काम के बिना सम्पत्ति
3. विवेक बिना खुशी
4. आचरण के बिना ज्ञान
5. नैतिकता के बिना व्यापार
6. मानवता के बिना विज्ञान
7. कुर्बानी के बिना पूजा

उपर्युक्त सभी सिद्धान्त प्रशासन में नैतिकता के लिए नीति निर्देशक तत्वों की भूमिका निभा सकते हैं।

सडब्यूरी स्कूल का दावा है कि 'एथिक्स' यानी आचार एक ऐसा पाठ्यक्रम है जिसे जिन्दगी के अनुभव से सीखा जाता है। उन्होंने मूल्यों को हासिल करने और नैतिक कार्य के लिए जो सबसे जरूरी घटक पेश किया है वो है 'निजी जिम्मेदारी'।⁶

लोकप्रशासन में "नैतिकता" को सुशासन की चाबी माना जाता है। नैतिकता लोक प्रशासन में वह यथेष्ट प्रतिमान है जो लोक सेवक को अपने कार्य व्यवहार में नीर-क्षीर विवेकशीलता अपनाने में सहायता करती है और साथ ही अपने कार्यों का तादात्म्य संगठन के उद्देश्यों से स्थापित करने में सहयोग देती है। लोकजीवन में नैतिक अवधारणात्मक संरचना की स्थापना करने हेतु OECD (Organisation for Economic Co-operation and development) OECD ने अपने निर्देशों में तीन लक्ष्यों

1. सहभागी विकास
2. मानव अधिकार
3. लोकतंत्रीकरण को प्राप्त करने के लिए⁷

शासन (गवर्नेंस) के निम्न अवयवों की पहचान की है।

1. राजनीति प्रतिबद्धता
2. प्रभावी कानूनी संरचना
3. प्रभावी जवाबदेयता यंत्रित्व
4. व्यावहारिक आचार-संहिता
5. व्यावसायिक समाजीकरण यंत्रित्व
6. सहयोगी लोक सेवा परिस्थितियां
7. नियकेन्द्रीय नैतिकता मन निकाय
8. क्रियाशील सिविल सोसाईटी

उपरोक्त सभी बिन्दु एक से अधिक भूमिका निभाकर नैतिक अवधारणात्मक संरचना की स्थापना के लिए मानवीय व्यवहार का नियन्त्रण, निर्देशन एवं प्रबन्ध करते हैं।⁸

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (वीरप्पा मोइली समिति) ने अपनी चौथी रिपोर्ट “शासन में नैतिकता” में प्रशासन, चुनाव, न्यायालय व विधायिका की कार्य प्रणाली में संशोधन के साथ-साथ लोकपाल, लोकायुक्त एवं स्थानीय स्तर पर भी ओम्बड्समैन जैसी संस्था की वकालत की है। अपनी रिपोर्ट में लोक सेवकों के लिए Public Service Value (2.7.12) के तहत माना है कि इन मूल्यों से विचलन दुर्व्यहार माना जाकर दण्डनीय होगा। साथ ही लोक सेवकों की राजकीय संस्थानों के अध्यक्षीय पदों व सलाहकारी निकायों में नियुक्ति की मनाही की गई है। संविधान के अनुच्छेद 310 एवं 311 की पुनर्समीक्षा की अनुशंसा की है और अनुच्छेद 309 को राज्यों द्वारा लागू किये जाने पर जोर दिया गया है।⁹

जवाबदेयता, शासन में उत्तरदायित्व एवं नैतिकता से सम्बन्धित संकल्पना है जिसे जिम्मेदारी, जवाबदेही, दायित्व जैसी संकल्पनाओं का पर्यायवाची माना जाता है। जवाबदेयता की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द "Accomptare" अर्थात् हिसाब करने से हुई है जिसे प्राचीन समय में शासन और मुद्रा के लेन-देन से जुड़े रिकार्ड रखने की गतिविधियों के रूप में परिभाषित किया जाता रहा है।

“शासन में नेतृत्व की भूमिका में जवाबदेयता के अन्तर्गत कार्यों, उत्पादों, फैसलों को स्वीकार करना और उनकी जिम्मेदारी लेने के साथ-साथ शासन और उन्हें अपनी भूमिका के दायरे में लागू करने तथा उसकी परिणति के प्रति जवाबदेह होना भी शामिल है।”¹⁰

प्रशासन में जवाबदेयता बढ़ाने के तहत 24 मई, 1997 को तत्कालीन प्रधान मंत्री इन्द्र कुमार गुजराल की अध्यक्षता में ‘प्रभावी व उत्तरदायी शासन’ विषय पर मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में नौ सूत्री कार्ययोजना बनाई गयी थी: नौ सूत्री कार्ययोजना -

1. नागरिकों के लिए अधिकार पत्र व जवाबदेह प्रशासन
2. प्रभावी व त्वरित लोक शिकायत निवारण
3. ग्रामीण व शहरी स्थानीय निकायों को अधिक अधिकार
4. प्रवर्तित कानूनों और प्रक्रियाओं की समीक्षा एवं सरलीकरण
5. प्रशासन में पारदर्शिता
6. सरकारी कार्यालयों से सूचना प्राप्त करने का अधिकार
7. लोक सेवकों के लिए आचार संहिता
8. भ्रष्टाचार निवारण के लिए कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थायित्व
9. सेवाओं का विकेन्द्रीकरण

उपर्युक्त नौ सूत्री कार्य योजना को क्रियान्वित करते हुए वर्ष 2004 तक 97 नागरिक अधिकार पत्र केन्द्रीय विभागों तथा 616 नागरिक अधिकार पत्र विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा जारी किये जा चुके थे। वर्ष 2005 में सूचना का अधिकार पूरे देश में लागू किया गया। 14 नवम्बर, 2011 को राजस्थान सरकार ने भी मध्यप्रदेश सरकार की भांति लोक सेवा गारंटी अधिनियम, 2011 लागू कर विभिन्न विभागों द्वारा प्रदत्त सेवा की समयावधि तय कर प्रशासन में जवाबदेयता सुनिश्चित करने का प्रयास किया है।¹¹

इसी भांति The Right of Citizen for time bound delivery of goods and service and redressal of their grievances bill - 2011 लोकसभा में विचाराधीन है जो लोक सेवा गारंटी व शिकायत निवारण की दिशा में मिल का पत्थर साबित होगा।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग 2003 व राष्ट्रीय जाँच एजेंसी 2009 के माध्यम से भी निरन्तर प्रयास होते रहे हैं। प्रशासन में सच्चरित्रता लाने के उपर्युक्त सभी प्रयास अनन्तिम थे किन्तु बाहरी/थोपे हुए व नकारात्मक होने के कारण प्रभावी नहीं हो सके। अब आवश्यकता है कि हम कार्मिकों को स्वयं अपनी सकारात्मक राह चुनने के लिए प्रेरित करें और इस कड़ी में स्पेट (SPAT) अपनी प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

शोध प्रविधि

प्रत्येक अनुसंधान के लिए एक निर्धारित व निश्चित शोध प्रविधि को अपनाया जाना अपेक्षित होता है। किसी भी अनुसंधान की व्यावहारिकता एवं प्रासंगिकता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि किस प्रकार की शोध प्रविधि को अपनाया गया है? सामाजिक विज्ञानों में अनुसंधान के लिए विभिन्न प्रकार की शोध प्रविधि का चयन शोध की प्रकृति पर निर्भर करता है। प्रस्तावित अध्ययन एक व्यावहारिक अध्ययन है जो कि शोध की दृष्टि से विश्लेषणात्मक एवं अनुभवमूलक दोनों ही प्रकार का अध्ययन है। प्रस्तावित अध्ययन के लिए चयनित शोध प्रविधि को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है:

1. शोध की सार्थकता

प्रशासनिक तंत्र की सफलता एवं विफलता उस तंत्र के प्रति जन सामान्य के दृष्टिकोण व प्रतिक्रिया के रूप में अभिव्यक्त होती है। प्रायः भारतीय प्रशासनिक तंत्र की रूढ़िवादिता, नियमों के अनुयायी, साध्य से अधिक पेचिदा साधनों पर बल देने वाली छवि सर्वविदित है। जब भी जन सामान्य को प्रशासनिक तंत्र के कार्यव्यवहार से दो-चार होना पड़ा तभी उसकी वेदना में वृद्धि हुई है। आखिर वे कौनसे घटक या क्रियाएं हैं? जो जन सामान्यजन को सुख कम और दुख ज्यादा देती है अर्थात् जिन कमियों व अपक्रियाओं के कारण सामान्य लोगों को प्रशासनिक तंत्र से असंतोष व वितृष्णा का अनुभव होता है। यह असंतोष व वितृष्णा ही लोक शिकायत के रूप में उद्घाटित होती है।

इस शोध प्रबंध की सार्थकता इस तथ्य में है कि प्रशासनिक तंत्र में कौनसे क्रिया क्षेत्र है जिनमें लोक शिकायतें अधिक मात्रा में उत्पन्न होती है? शोध आलेखमें जन सामान्य तक अपनी सेवाओं के माध्यम से पहुंच बनाने वाले कार्मिकों के कार्य व्यवहार एवं मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने वाले उपायों का विश्लेषण किया गया है।

2. परिकल्पनाएं/मान्यताएं

शोध अध्ययन में परिकल्पनाओं का विशेष महत्व होता है क्योंकि यह शोध कार्य को आवश्यक मार्गदर्शन प्रदान करती है। परिकल्पनाएं दो या दो से अधिक चरों के मध्य कार्य-करण संबंध का अनुमानित विवरण है। इन्हें हम साधारण सामान्यीकरण भी कहते हैं। प्रस्तुत शोध प्रबंध में निम्न मान्यताएं हैं:

- प्रशासनिक तंत्र पूर्णरूपेण विकसित नहीं है तथा इसमें पारदर्शिता व जवाबदेयता की कमी है ;
- प्रशासनिक कार्यप्रणाली में पाये जाने वाला विलंब, भाई-भतीजावाद व अन्य प्रशासनिक अनियमितताएं प्रशासन के प्रति जन असंतोष में वृद्धि करती है;
- प्रशासन में जन सहभागिता, पारदर्शिता व संवेदनशीलता (नैतिकता) की भावना के समावेश से जन असंतोषों व जन अभियोगों में कमी लाई जा सकती है;
- नागरिक अधिकार पत्र, सूचना का अधिकार, लोक सेवा गारंटी अधिनियम व जन सुनवाई अधिनियम के पूर्णरूपेण क्रियान्वयन से प्रशासन में पारदर्शिता व जवाबदेयता को बढ़ावा मिलेगा।

3. तथ्य संकलन

शोध की प्रकृति विश्लेषणात्मक होने के साथ-साथ अनुभवमूलक भी है इसलिए शोध के तथ्यों का संकलन प्राथमिक व द्वितीयक दोनों स्त्रोतों से किया जा सकता है। प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु प्रत्यार्थियों से सरकारी तंत्र में उनके सामने आ रही बाधाओं के बारे में उनके विचार जानने के लिए अनुसूचियों का निर्माण किया जा सकता है। जिसमें शोध के विषय से संबंधित विभिन्न प्रश्नों को शामिल किया जा सकता है। अनुसूचियों के अतिरिक्त प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु अनौपचारिक वार्तालाप व असहभागी अवलोकन पद्धति का भी प्रयोग किया जा सकता है।

4. तथ्य विश्लेषण

प्राथमिक व द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त तथ्यों को संपादित करके उन्हें विषयानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है। वर्गीकृत तथ्यों का सारणीयन, चार्ट एवं रेखाचित्रों के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है। तथ्य विश्लेषण के लिए सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। जिनमें औसत, प्रतिशत, माध्य एवं ससंबंध गुणांक पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है। गणितीय विश्लेषण के साथ-साथ सैद्धांतिक विश्लेषण भी किया जा सकता है। शोध की परिकल्पनाओं का सैद्धांतिक व गणितीय परीक्षण भी किया जा सकता है।

वर्तमान बाजारीकरण के दौर में सेवाओं का डिजिटलिकरण हो रहा है और ई-गवर्नेंस का अनुप्रयोग बढ़ता जा रहा है नागरिक स्मार्ट प्रशासन के तहत सिंगल क्लिक पर सेवाओं की उपलब्धता चाहता है। निजी सेवा प्रदाताओं के लोक लुभावने वादे, तड़क-भड़क वाली कार्यशैली व सेवा आपके द्वार (Service Delivery at your foot step) जैसे कार्यकलापों से भ्रमित होना स्वभाविक है।

ऐसे में लोक प्रशासन को न केवल अपनी सेवाओं को समयबद्ध, त्वरित, कार्यकुशल बनाना है वरन् जनता के मन में उठ रही अविश्वसनीयता के सवाल का हल भी सुझाना है। वर्तमान दौर की इस आपाधापी में नागरिक सेवाओं की पूरी तरह से

- औचित्यपूर्ण उपलब्धता
- वैधानिक प्रारूप
- विश्वसनीयता की कसौटी

पर परखना चाहता है जिससे वह सेवाओं के प्रति न केवल आश्वस्त हो वरन् उनके बारे में भविष्यवाणी (Predication) भी कर सके और ऐसा प्रयास केवल और केवल लोक प्रशासन द्वारा ही सम्भव होगा जब प्रशासन में नैतिकता का समावेश हो। यही आधारणात्मक संकल्पना मानव के जेहन में सदैव के लिए अंकित हो जायेगी और गांधीजी के स्वप्नों का “राम राज्य” साकार होगा।

स्पेट (SPAT- Self Performance Assessment Technique)

स्पेट (SPAT- Self Performance Assessment Technique) लोक जीवन में कार्मिकों के अनुभवमूलक परीक्षण पर आधारित तकनीक है जिसके माध्यम से लोक सेवकों के कार्य व्यवहार में नैतिकता की प्रस्थापना कर उनकी कार्यशैली में उन्नयन व कार्य संपादन में प्रभावकारिता को उन्नत बनाती है।

स्पेट तकनीक को अपनाने से पूर्व संगठन में कुछ पूर्वापेक्षाओं का आंकलन अनिवार्य है। सूक्ष्म वैज्ञानिक परीक्षण के बाद किसी संगठन हेतु पूर्वापेक्षाएं निम्न हो सकती हैं-

1. संगठन के निश्चित उद्देश्य एवं कार्य
2. उद्देश्य पूर्ति हेतु उचित सत्ता एवं शक्तियों का संस्थायीकरण
3. उद्देश्य अनुरूप कार्य प्रणाली व कार्य अनुरूप शैली
4. योग्य कार्मिकों की उपयुक्त एवं विस्तृत श्रृंखला
5. कार्य अनुरूप प्रशिक्षण एवं योग्यतानुरूप कार्य विभाजन
6. कार्मिकों में नवाचार हेतु अभिप्रेरण
7. नवाचारों के आंकलन एवं क्रियान्वयनका प्रभावी तंत्र

स्पेट तकनीक के विभिन्न चरण

1. संगठन का विवरण तैयार करना: इस तकनीक को अपनाने के लिए सर्वप्रथम संगठन का विस्तृत ब्यौरा तैयार किया जाता है। जिसमें संगठन के उद्देश्य, सम्पादित किये जाने वाले कार्य, कार्य के अनुरूप सत्ता, प्रशिक्षित कार्मिकों में योग्यतानुरूप कार्य विभाजन, क्रियान्वयन में आने वाली कठिनाइयों के आंकलन एवं समाधान हेतु क्रियाशील तंत्र व पर्यवेक्षण (मॉनीटरिंग) की सुसंगत व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है।

2. निर्णयन के स्तरों की पहचान: संगठन में इन स्तरों की व कार्य स्थलों की खोज की जाती है जहाँ पर नियंत्रण की प्रक्रिया संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति करती जान पड़ती है। यदि ऐसे स्तर बहुत कम हैं या स्पष्ट नहीं हैं, तो विक्रेन्द्रीकरण के माध्यम से इन स्तरों की खोज या निर्माण किया जाता है। इस प्रक्रिया को अधिक सुसंगत बनाने के लिए सब्सिडियरी सरकार (नैपेकपंतल छवअमतदउमदज) संकल्पना का इपयोग किया जा सकता है, जिसमें प्रत्येक स्तर अपने यहाँ किये जाने वाले कार्यों के बारे में स्वतंत्ररूप से निर्णय करता है। इससे कार्यों में पुनरावृत्ति (अतिव्यापन) जैसी समस्या नहीं पनपती है।

3. प्रशिक्षण व मार्गदर्शन: इन स्तरों पर कार्यरत कार्मिक अपने द्वारा सम्पादित कार्यों या निर्णयों का तादात्म्य संगठन के उद्देश्यों से नहीं बैठा पा रहे हो तो उन्हें उचित प्रशिक्षण दिया जाता है।

4. संतुष्टि स्तर की जाँच करना: तत्पश्चात इन स्तरों पर कार्यरत कार्मिकों में अपने द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों के प्रति संतुष्टि या असंतुष्टि के कारणों की खोज की जाती है ताकि लोक सेवकों को संगठन के उद्देश्योनु रूप अभिप्रेरित कर उनके मनोबल को इतना उँचा उठाया जाता है कि वे नवाचारों को सकारात्मक रूप में ग्रहण कर इस तकनीक की सफलता में सहर्ष सहयोग देवे।

5. प्रपत्र भरवाना: संगठन में निर्णय के स्तर तय हो जाने के पश्चात प्रत्येक कार्मिक से एक मासिक प्रपत्र भरवाया जाता है।

जिसका प्रारूप कुछ इस भाँति हो सकता है-

प्रपत्र-1 माह

संगठन / विभाग का नाम						विवि
संगठन / विभाग का सामान्य उद्देश्य.....						
कार्मिक का नाम	पद	सम्पादन कार्य	निर्णय का स्तर	कार्य, संगठन सामान्य उद्देश्यों के अनुरूप है या नहीं	यदि हाँ तो कार्य से जनता को क्या लाभ मिलेगा	
					यदि नहीं है तो कार्य में क्या परिवर्तन किया जावे संगठन के सामान्य उद्देश्य की पूर्ति हो	

प्रत्येक कार्मिक द्वारा इस मासिक प्रपत्र को तैयार किया जाता है जिसका गहन मूल्यांकन प्रभारी / अधिकारी द्वारा किया जाता है। यदि कोई कार्मिक इस प्रपत्र को भरने में असमर्थ होता है तो प्रभारी / अधिकारी का दायित्व बनता है वे संगठन के सामान्य उद्देश्यों की व्याख्या कर इनका मार्गदर्शन करें।

इस तकनीक में दूसरा प्रपत्र कार्मिकों द्वारा सम्पादित कार्यों की प्रभावकारिता जाँचने के लिए भरवाया जाता है। यह प्रपत्र निम्न प्रारूप में हो सकता है-

प्रपत्र -2

माह.....

संगठन का नाम.....			निर्णय का स्तर		
कार्मिक का नाम			पद		
सम्पादित किया जाना वाला कार्य	संपादन हेतु दी गई अवधि	संपादित कार्य में खर्च अवधि	संपादित कार्य से संगठन को हानि/लाभ	संपादित कार्य से लाभान्वितों को हानि/लाभ	दी गई अवधि से पूर्व संपादन पर लाभान्वितों की प्रतिक्रिया

इन दोनों प्रपत्रों को प्रत्येक माह की 05 तारीख से पूर्व मूल्यांकन कर कार्मिकों को उनके द्वारा सम्पादित कार्यों की रेटिंग (ग्रेडिन्ग) बता दी जाती है ताकि कार्मिक अगले माह में अपनी कार्यशैली में सुधार व कार्य संपादन की प्रभावकारिता में बढ़ोतरी कर सके। यदि कोई कार्मिक फिर भी अपनी कार्यशैली में परिवर्तन लाने में कठिनाई महसूस करता है तो उसका निकटतम उच्च स्तर इस संबंध में न केवल दिशा निर्देश देगा वरन् ऐसे कार्मिकों के लिए प्रशिक्षण, कार्यशालाओं व सेमिनारों का आयोजन भी करवायेगा।

6. सी. आर. सी. (Citçen Response Card): कार्मिक प्रत्येक लाभान्वित व्यक्ति सेसी. आर. सी. (Citçen Response Card) पूर्ति करवा कर संबंधित कार्य के मासिक प्रपत्र के साथ लगाएगा।

सी. आर. सी. (Citçen Response Card)का प्रारूप निम्नानुसार हो सकता है-

सी. आर. सी. (Citizen Response Card)

निर्णय का स्तर					विवि
लाभान्वित का नाम व पता					
कार्य का नाम व प्रकार	कार्य संपादन के लिए निर्धारित अवधि	कार्य निष्पादन में खर्च अवधि	क्या लाभान्वित को उचित संतुष्टि मिली	यदि नहीं तो क्या कारण रहे	

प्रत्येक उच्च स्तर अपने निकटतम अधीनस्थ स्तर के कार्मिकों की अच्छी रेटिंग के लिए उपलब्धि प्रमाण पत्र, विशेष वेतन वृद्धि, पदोन्नति की सिफारिश, कार्य सुविधाओं का विस्तार, मिशन रूपी कार्यों में नियोजन जैसे अनेकानेक लाभ देकर नवाचारों का संस्थायीकरण करने का प्रयास करेगा।

प्रारम्भ में यह तकनीक अपने नाम के अनुरूप नहीं जान पड़ती है क्योंकि इसमें हर स्तर का मूल्यांकन उसके उच्च स्तर द्वारा किया जाता है। लेकिन धीरे-धीरे जब सभी कार्मिक अपने संपादित कार्यों का ब्यौरा प्रपत्रों में भरेंगे तब वे स्वयं द्वारा संपादित कार्यों का मूल्यांकन करना सीखेंगे एवं अपने योगदान को संगठन के सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के रूप में देखेंगे। एक समय ऐसा आयेगा जब कार्मिक अपनेसंपादित कार्यों के मूल्यांकन के आधार पर यह महसूस करेगा कि उसका कार्य व्यवहार (Work conduct)संगठन के अनुरूप है या नहीं? यदि वह स्वयं को दोषी पायेगा तो सुधार की दिशा में पहल भी स्वयं करेगा। कार्मिक की इस स्वयं पहल का नाम ही स्पेट (SPAT- Self Performance AssessmentTechnique) है।

इस प्रणाली में पारंगत होने के पश्चात कार्मिक द्वारा संगठन के सामान्य उद्देश्यों से तुलना करने पर उसे न केवल संगठन में अपनी भूमिका का भान होगा वरन वह संगठन के सामान्य उद्देश्यों से जुड़ाव महसूस करेगा। यह अनुभूति ही उसकी मनोवृत्ति (डपदकैमज)में परिवर्तन लाएगी। वह अधिक जिम्मेदारी पूर्वक व नैतिकता पूर्ण व्यवहार में यकीन करना प्रारम्भ कर देगा। सकारात्मक कदम संगठन के दुष्प्रभावों को न्यून कर नैतिकता की स्थापना को बल प्रदान करेगा।

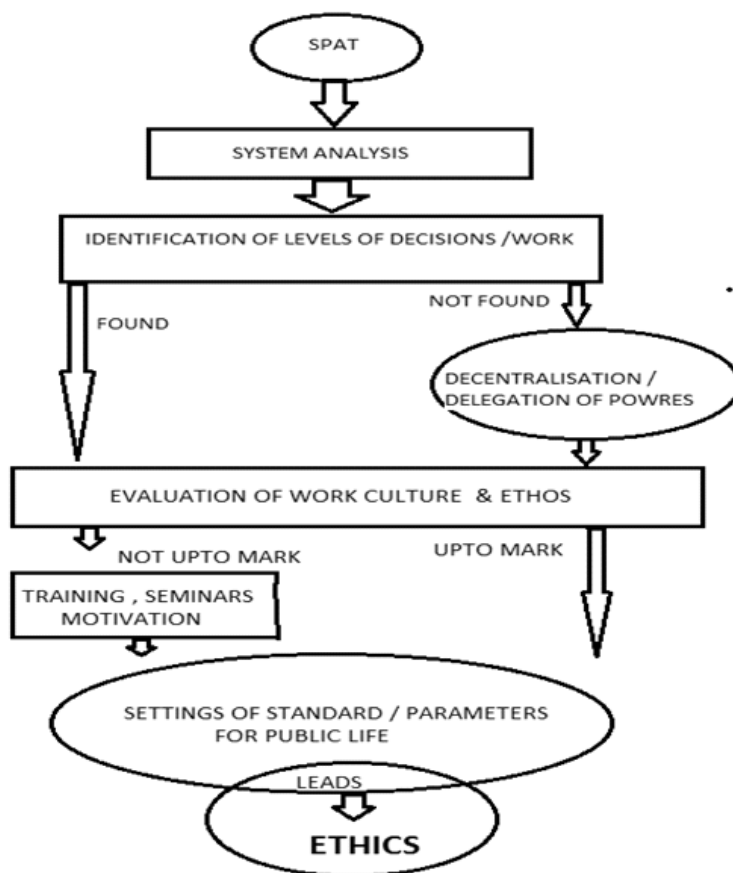
दूसरा सकारात्मक प्रभाव कार्मिकों द्वारा भरे जाने वाले प्रपत्र-2 से उत्पन्न होगा। प्रत्येक कार्मिक को जब उसके द्वारा संपादित कार्य की रेटिंग मिलेगी तो वह अपनी कार्यशैली में परिवर्तन कर उसकी प्रभावकारिता बढ़ाने का प्रयास करेगा।

इस तकनीक से नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न नहीं हो इसके लिए निम्न सावधानियों को ध्यान में रखना श्रेयस्कर होगा-

1. संगठन के निर्णय स्तरों को तय करते समय जनहित (त्मबमपअपदह म्दक) को सर्वोच्च प्राथमिकता देवे।
2. कार्मिकों में सत्ता एवं कार्यों का वितरण संतुलित होना चाहिए, क्योंकि बिना सत्ता के कार्य बेमानी एवं बिना कार्य के सत्ता आततायी बन जाती है।
3. कार्मिकों के प्रपत्रों के मूल्यांकन में भाई -भतीजावाद व चाटुकारिता का प्रवेश नहीं होने देवे।

4. नवाचारों के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक हो जिससे कार्मिकों की मनोवृत्ति को संगठन के उद्देश्यों के अनुरूप बनाया जा सके।
5. कठिनाइयों के आंकलन व संशोधन की उपयुक्त व्यवस्था हो, साथ ही कार्मिकों के मनोबल को उँचा बनाए रखने के लिए अनुसंधान, प्रशिक्षण व सहयोग की प्रक्रिया की निरन्तरता बनी रहे।

SPAT : Flow Chart



संदर्भ सूची:

1. मनुस्मृति: अष्टम अध्याय, श्लोक 127
2. शर्मा डॉ देवकांता, कौटिल्य के प्रशासनिक विचार, प्रिंटवैल, जयपुर, 1998
3. कटारिया डॉण् सुरेन्द्रए कार्मिक प्रशासन RBSI जयपुर 2005 पेज.66
4. कटारिया डॉ. सुरेन्द्र, प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबंध, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2009, पृष्ठ 96
5. कटारिया डॉ. सुरेन्द्र, भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2008, पृष्ठ 611-12
6. सड्ब्यूरी वैली स्कूल (1970) "लॉ ऑर्डर: फाउण्डेशन ऑफ डिसिप्लिन," अमेरिका एज्युकेशन. एन. एनालिसिस एण्ड ए प्रोपजल, 24 अक्टूबर 2009 पृ. 49-55
7. Summary Report, IJPA, July- September 2007 vol.II III पेज 639-657
8. OECD, एथिक्स इन पब्लिक सर्विस पेरिस 1996
9. समरी रिपोर्ट, एथिक्स इन गवर्नेंस, IJPA, जुलाई- सितम्बर 2007, खण्ड LIII पृष्ठ 639-57
10. द्याक्त्रा कलरेंस ए, द क्वेस्ट फॉर रेस्पोंसिबिलिटी, (अमेरिकन पोलोटिकल साइंस रिव्यू) खण्ड 33 संख्या 01,33 पृष्ठ 1-25
11. कटारिया डॉ. सुरेन्द्र, भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2012 पेज 619-635

संस्कृत साहित्य में स्त्री विमर्श

डॉ० सरोज मीना

सह आचार्य - संस्कृत विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश

प्राचीन युग से ही हमारे समाज में नारी का विशेष स्थान रहा है। हमारे पौराणिक ग्रंथों में नारी को पूज्यनीय एवं देवीतुल्य माना गया है। हमारी धारणा रही है कि देव शक्तियाँ वहीं पर निवास करती हैं जहाँ पर समस्त नारी जाति को प्रतिष्ठा व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

इन प्राचीन ग्रंथों का उक्त कथन आज भी उतनी ही महत्ता रखता है जितनी कि इसकी महत्ता प्राचीन काल में थी। कोई भी परिवार, समाज अथवा राष्ट्र तब तक सच्चे अर्थों में प्रगति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता जब तक वह नारी के प्रति भेदभाव, निरादर अथवा हीनभाव का त्याग नहीं करता है। संस्कृत साहित्य में माता और जन्म भूमि को स्वर्ग से बढ़कर बताया गया है।

नारी के कन्या, भगिनी, अर्धांगिनी, माता आदि विविध रूप हैं जिनमें सत्य स्नेह, साधर्म्य, वात्सल्य, त्याग और तपस्या जैसे अनेक गुणों का उत्कर्ष देखा जा सकता है। भारतीय ऋतुम्भरा मनीषा परा शक्ति को द्वैत अथवा किसी भी रूप में माने किन्तु भौतिक सृष्टि के परिप्रेक्ष्य में द्वैत, अद्वैत शक्ति का समन्वय सापेक्ष है।

यह स्वरूप प्रथमतया एक ही रहा तदुपरान्त द्वैतभाव को प्राप्त हुआ मूलतया अद्वैत सिद्धान्त ही समीचीन दृष्टिगोचर होता है। इस अद्वितीय परम पुरुष का एकाकी रूप में रमण सम्भव नहीं हो सका। नारी समस्त सुखों के साथ-साथ एक अपूर्व मातृत्व सुख को अनुभव कर वात्सल्य सागर में डूबती उतरती संसार में अपने आपको धन्यतम मानती है, यह मातृत्व ही उसे पुरुष से भी अधिक सर्वोच्च स्थान प्राप्त करवाता है।

संकेताक्षर - गृहस्थ, दिव्यगुणोपेत, अर्धांगिनी, आद्याशक्ति, वसुधैव कुटुम्बकम्, माहात्मर्य।

प्रस्तावना - जिस घर, समाज में नारियाँ प्रसन्न रहती हैं। वहाँ का वातावरण सुख-शान्तिमय होता है, उस समाज में दिव्यगुणोपेत संस्कार सम्पन्न सन्ततियाँ पनपती हैं।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

‘न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते “यो भर्ता सा स्मृतागन्ना”’

इत्यादि सुभाषित वाक्य भारतीय समाज में नारी के प्रति केवल शाब्दिक सदभावना का प्रदर्शन मात्र नहीं है, अपितु भारतीय गृहस्थ जीवन में पग-पग पर इसकी व्यावहारिक-सार्थकता सिद्ध होती है।

‘मातृदेवो भव, पितृदेवो भव’ यह आदर्श वाक्य नारी के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इस वाक्य में जनक से पहले मातारूपी जननी को इतना उत्कृष्ट स्थान दिया है। यही नहीं हमारे देश में तो भारत को भी भारत माता कहकर जय जयकार की है। संस्कृत साहित्य में माता और जन्म भूमि को स्वर्ग से बढ़कर बताया गया है।

भारतीय नारियों का इतिहास में महत्वपूर्ण एवं सम्मानजनक स्थान रहा है। यहाँ तक आज भी पुरुष से पहले श्री (लक्ष्मी) का सम्बोधन कर नामोच्चारण किया जाता है, नारी की महिमा अपार है। मार्कण्डेय ऋषि के अनुसार ‘स्त्रियस्समस्तास्तव देवि भेदाः इस संसार में जितनी भी स्त्रियाँ हैं वे आपका ही स्वरूप हैं, भेद हैं। नारी वो आद्याशक्ति है जिसके सामर्थ्य से शिव शक्तिमान् होकर शिव वन स्पन्दनशील हुए तथा जिसके आधार पर सृष्टि का प्रथम सूत्रपात हुआ।

जिसकी दृढ़ पृष्ठ भूमि पर सांसारिक चक्र क्रियाशील है, जिससे सारा जगत् प्रकाशमान होता है, जिसके विस्तार की परिधि में पुरुष के जीवन का आद्यन्त समाया हुआ है, जिसकी एक मुस्कराहट से संसार आबाद हैं, धन्य है ऐसी नारी, धन्य है उसका समर्पण और धन्य है सम्पूर्ण सृष्टि नारी के कन्या, भगिनी, अर्धांगिनी, माता आदि विविध रूप हैं जिनमें सत्य, स्नेह, साधर्म्य, वात्सल्य, त्याग और तपस्या जैसे अनेक गुणों का उत्कर्ष देखा जा सकता है।

कहा भी गया है कि “जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी” नारी, माता, बहिन, पुत्री, पत्नी आदि के स्वरूप में इस सृष्टि का भार वहन करती हुई संसार के क्रम को बनाए रखती हैं।

प्राचीन काल को नारी के विकास का स्वर्णिम युग माना जाता है। उस युग में नारी की समाज में सार्वभौमिक श्रेष्ठ एवं सम्माननीय स्थिति थी। भारतीय साहित्य में उस काल का विवरण प्राप्त होता है, जब समाज में नारी का स्थान और उसकी महत्ता सर्वोपरि थी। कहा भी कहा गया है-

यद्गृहे रमते नारी, लक्ष्मी स्तद् गृहवासिनी।

देवता कोटिशो तस्य, न त्यजन्ति गृहं हितम्॥

नारी बड़े-बड़े शूरवीरों, योद्धाओं कवियों, राजनेताओं, लेखकों, विद्वानों को जन्म देकर राष्ट्र की ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व की सेवा कर रही है। माता के लिए पुत्र, पुत्री समान होते हैं, पुत्र, पुत्री कैसे भी हों पर माता कुमाता नहीं होती। जैसा कि दुर्गासप्तशती में लिखा है कि कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

स्मृति ग्रन्थ व स्त्री विमर्श - भारतीय ऋतम्भरा मनीषा परा शक्ति को द्वैव अथवा किसी भी रूप में माने किन्तु भौतिक सृष्टि के परिप्रेक्ष्य में द्वैत, अद्वैत शक्ति का समन्वय सापेक्ष है। यह स्वरूप प्रथमतया एक ही रहा तदुपरान्त द्वैतभाव को प्राप्त हुआ मुलतया अद्वैत सिद्धान्त ही समीचीन दृष्टिगोचर होता है।

इस अद्वितीय परमपुरुष का एकाकी रूप में रमण सम्भव नहीं हो सका अतः द्वितीय की आवश्यकता प्रतीत हुई-

स वै नैव रेमे। एकाकी न रमते, सद्वितीयमैच्छत्।

इस द्वितीय की स्पष्ट स्थिति का ज्ञान होता है, बृहदारण्यक के इस वाक्य से -

सोऽकामयत द्वितीयो म आत्मा जायेतेति।

स मनसा वाचं मिथुनं समभवत् ॥ (1/2/4) बृहद उपनिषद्

नारी के लिए 'स्त्री' शब्द जितना अधिक व्यापक है उतना ही अधिक प्रचलित भी है। वैदिक काल में प्रसिद्धि पा चुका यह स्त्री शब्द आज भी भारत की लगभग सभी भाषाओं में अपना स्वरूप किसी न किसी रूप में बनाये हुए हैं। स्त्री शब्द 'स्त्यै' धातु से निष्पन्न होता है, आचार्य यास्क के मत से स्त्यै धातु लज्जा से सिकुडना अर्थ में प्रयुक्त है।

स्त्री का स्त्रीत्व उसके लज्जाशील होने में ही है। स्त्रियः स्त्यायन्ते अपत्रपणकर्मणः इस प्रकार स्त्री का अधिकरण साधन होने से माहात्म्य अधिक सिद्ध होता है। 'जाया' शब्द भी पुरुष के साहचर्य से ही महत्त्वशाली है। स्त्री शब्द स्त्री के सामान्य गुण धर्म की अभिव्यक्ति करता है। जबकि जाया शब्द पत्नीरूप ग्रहण पश्चात् पुरुष सम्पर्क से अपनी, अभिख्या सिद्ध कर पाता है। महर्षि मनु ने इस जाया शब्द की उत्पत्ति को और भी अधिक स्पष्ट किया है कि पति भार्या में पुत्ररूप में उत्पन्न हो तभी जाया जाया कहलाती है।

पतिभार्या संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।

जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः॥ मनुस्मृति 9/8

नारी होने के बाद ही उसे सौभाग्य अर्थात् स्वस्थ पति का साहचर्य प्राप्त होता है और वह 'पत्नी' पद प्राप्त करती है। यह पत्नी यदि पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाते हुए दोनों ही सह धर्मिता बनाये रखे तो धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष रूप समस्त पुरुषार्थ चतुष्टय का फल सहज सुलभ हो जाता है, अत एव पुरुष का घर पत्नी से ही होता है-

धार्मिक कृत्य, सुख, सन्तान यहाँ तक कि अपनी और पितरों की भी स्वर्ग प्राप्ति स्त्री की सहधर्मिता से ही सम्भव है।

अपत्यं धर्मकर्माणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।

दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह॥ (मनुस्मृति 9/28)

नारी समस्त सुखों के साथ-साथ एक अपूर्व मातृत्व सुख को अनुभव कर वात्सल्य सागर में डूबती उतरती संसार में अपने आपको धन्यतम मानती है, यह मातृत्व ही उसे पुरुष से भी अधिक सर्वोच्च स्थान प्राप्त करवाता है, हमारे शास्त्र नारी की वन्दना करते हुए स्पष्ट कहते हैं-

पुरुषः पुत्ररूपेण भार्यामाश्रित्य जायते।

मातरं पितरं चोभौ दृष्ट्वा पुत्रस्तु धर्मवित्॥

यह सुख परस्पर सामंजस्य से दिन दूनी रात चौगुनी होकर चार चाँद लगाते हुए जीवन में सुखमय ज्योत्सना का प्रसार तब करता है जब पति और पत्नी एक दूसरे के सत्संलिप्त कार्यों को पूरा करने में मनोयोग से सहयोग करने को तत्पर रहें-

भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिव्रतम्। "निर्णयामृत"

दश उपाध्यायों से आचार्य, सौ आचार्यों से पिता और हजार पिताओं से माता का गौरव अधिक है-

उपाध्यायन दशाचार्य आचार्यणां शतं पिता।

सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥

श्रुतिस्तुवेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः 'इत्युक्तिमनुसृत्य धर्मशास्त्रस्य अपरो नाम स्मृतिः स्मृतिग्रन्थेषु सर्वतः प्राक् मनुस्मृतौ मनुना नारी (स्त्री) पुरुषस्यार्धाङ्गि-गनीरूपेण स्वीकृता। अर्धाङ्गिनी बिना पुरुषः नरो वा पूर्णरूपेण मानसिक सामाजिकदृष्ट्या अपूर्णा एव भवति उक्तं-

उत्पादनमयत्यस्य जातस्य परिपालनम्।

प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्री निबन्धनम्॥

महर्षि मनु ने स्त्री महिमा के विषय में कहा है-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः

अपि च-

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजितः।

तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥

स्त्री विषयक विमर्श मेधातिथिगोविन्दराजो ने बहुत ही स्पष्ट रूप से बताया “नवोढा दुहितृसुषाद्या जामयः इति। महर्षि मनु व याज्ञवल्क्य ने स्त्रीधन, स्त्रीधर्म, स्त्रीप्रशंसा, स्त्रीधन विभाग आदि का पृथक् रूप से वर्णन किया है, यथा-

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

जिस प्रकार से वृक्ष पर आश्रित लता उस पर शाखा, उपशाखा आदि के विस्तार से फल एवं पुष्प अपनी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार स्त्री भी बाल्य अवस्था में पिता पर आश्रित तत्पश्चात् पति-पुत्रादि पर आश्रित होकर अपना जीवन यापन करती है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने नारी का चित्रण करते हुए कहा है-

सोमः शौचं ददस्वासां गन्धर्वश्च शुभां गिरम्।
पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्या वै योषितो ह्यतः॥ (आचाराध्याय-7)

विवाह पश्चात् सोमगन्धर्व अग्नि के माध्यम शुद्ध व मधुरवचन पवित्र मेधा के साथ स्त्री पति के वचन पालन को ही सर्वश्रेष्ठ परम धर्म मानती है। गृहस्थ धर्म में नारी महत्त्व विषय एवं भोजनादि के बारे में कहा गया है-

“बालस्ववासिनी वृद्ध गर्भिण्यातुरकन्यकाः।
संयोज्यातिथिभृत्याश्च दम्पत्योऽशेषभोजनम्॥ (आचाराध्याय 105)

सामान्यतः मार्गप्रदानेऽपि स्त्रीमहत्त्वविषये उक्तम् -

वृद्धभारिनुपस्नातस्त्रीरोगि वर चक्रिणाम्
पन्था देय नृपस्तेषां मान्यः स्नातश्च भूपतेः॥

स्मृति साहित्य में भी गर्भाधान संस्कार से लेकर अन्त्येष्टि संस्कारों का वर्णन सम्यक् रूप से उपलब्ध है। वे समस्त नर-नारियों में समान रूप से विद्यमान हैं। उपनयन संस्कार के विषय में कहा गया है-

पुराकल्पे तु नारीणां मौंजीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा॥

मेधातिथि कहते हैं कि विवाह ही स्त्रियों का वैदिक रूप से उपनयन संस्कार है।

याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी अपने पति से ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करती है। अतः स्मृति साहित्य में नारी शिक्षा की भी समुचित व्यवस्था विद्यमान थी। महाभारत में भी त्रिवर्ग संसाधन प्राप्ति के विषय में कहा गया है-

अर्ध भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा
भार्यामूलं त्रिवर्गस्य भार्यामित्रं मरिष्यतः (आदिपर्व 68/40)

भारतीय संविधान में स्त्रियों के अधिकार व कर्तव्य प्रदत्त हैं। उनका आधार भी स्मृति साहित्य में बताया गया है।

स्मृति साहित्य में स्त्रियों के अधिकारों के विषय में स्पष्ट रूप से जानकारी बताई गई है। सामान्यतः जो अधिकार पुरुषों के लिए निर्धारित किए गए वे ही स्त्रियों के लिए भी थे जैसे- सम्पत्ति का अधिकार, यज्ञाधिकार, विशिष्ट शास्त्रों में निर्दिष्ट आय व्यय अधिकार, अर्थसंग्रहणादि अधिकार इत्यादि यथा- मनु ने अर्थ संग्रह व व्यय के विषय में स्त्रियों के सम्मान के विषय में जो समान अधिकार थे उनके बारे में लिखा है-

ग्राह्या लालयितव्याश्च पूज्याश्च सततं बुधैः।
शीलवत्यो नमस्कार्याः पूज्याः श्रिय इव स्त्रियः॥ (हरिवंशपुराण)

रामायण व महाभारत काल में भी सीता, मन्दोदरी, तारा, कुन्ती, द्रौपदी आदि ने पति कर्तव्य परायणता व सम्माननादि विषयों का प्रतिपादित किया है-

उपाध्यायान् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥

स्त्रियों का मातृत्व रूप संसार के अन्य साहित्यों में जो बताया गया है उससे ज्यादा श्रेष्ठ तरीके से स्मृतियों में बताया गया है-महर्षि मनु के अनुसार-

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥

स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा - स्मृति ग्रंथों में स्त्रियों की पूर्ण सुरक्षा, पूर्ण सम्मान तथा पुण्यकर्मों में अनिवार्यतः सहभागिता का वर्णन किया गया है। जिस घर, समाज में नारियाँ प्रसन्न रहती हैं वहाँ का वातावरण सुख शान्तिमय होता है। उस समाज में दिव्यगुणोपेत संस्कार सम्पन्न सन्ततियाँ पनपती हैं।

यदि नारी का तिरस्कार-अपमान होता है तो सम्पूर्ण कुल व समाज विषादग्रस्त-सा प्रतीत होता है, अतः जिस परिवार अथवा समाज में दम्पती परस्पर प्रीतियुक्त रहते हैं तो निश्चित रूप से वह परिवार और समाज कल्याण को प्राप्त करता है।

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याण तत्र वै ध्रुवम्॥

स्मृति शास्त्रों का अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव - चम्पाद्वीप के शिलालेख पर मनु स्मृति का निम्नांकित श्लोक उत्कीर्ण है-

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पंचमी।

एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद् यदुत्तरम्॥

फिलीपीन द्वीप के नवनिर्मित लोकसभा भवन के सामने महर्षि मनु की मूर्ति की स्थापना मानव धर्मशास्त्र में आस्था का प्रतीक है। बर्मा का 'धम्मथट्' मनु स्मृति पर केन्द्रित है। इसी प्रकार जावा, स्याम, बाली द्वीप का विधान मनु स्मृति पर अवलम्बित है।

निष्कर्ष:- स्मृतियाँ सृष्टि की नियमावली हैं, जिन पर चलकर मानव जीवन सुखमय हो सकता है। प्रकृति के अनुकूल जीवन बनाना तथा प्राणि मात्र का हित सम्पादन करना ही इनका लक्ष्य है। स्मृति ग्रन्थों को भारतीय संस्कृति में मानव जाति के कर्तव्य का निर्देशक बतलाया गया है। स्मृतियों में सामाजिक आचार, सदाचार, लोकाचार, देशाचार, शिष्टाचार आदि का आचरण लोकहित के लिए दर्शाए गए हैं। स्मृतियाँ उपनिषदों की भाँति केवल आध्यात्मिक ग्रन्थ ही नहीं हैं, अपितु समाज का विधान (धर्मशास्त्र) भी हैं। सन्मार्ग दर्शक उपदेश वचनों से स्मृति साहित्य ओत-प्रोत हैं, जिन्हें आचरण में ढालकर समाज और राष्ट्र का अधिकाधिक समुन्नयन किया जा सकता है।

धन्या पतिव्रता नारी, पूज्या मान्या विशेषता।

पावनी सर्वलोकानां, सर्व पापौघनाशिनी ॥

सन्दर्भ ग्रंथ सूची -

1. दुर्गा सप्तशती
2. बृहदारण्यक उपनिषद् - 1 / 2/4
3. मनुस्मृति 9/28, 2/145
4. दक्षस्मृति
5. निर्णयामृत
6. याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय - 7, 105
7. महाभारत, आदि पर्व- 68/40
8. हरिवंश पुराण
9. रामायणेन्दु

भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकारों का स्वरूप एवं विकास

डॉ० गुलाब बाई मीना

सह आचार्य - राजनीति विज्ञान विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो किसी भी व्यक्ति को जन्म के साथ ही मिल जाते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो किसी भी व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता और प्रतिष्ठा का अधिकार ही मानव अधिकार है। इन अधिकारों की मांग प्रत्येक मनुष्य कर सकता है, चाहे इनके बारे में उस देश (जहाँ का वह निवासी है) के संविधान में प्रावधान किया गया हो या नहीं। इनकी उत्पत्ति का स्रोत मानवीय विवेक न होकर मानव का मानवोचित गुण है। इनके अंतर्गत राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जैसे अन्य अधिकार भी शामिल हैं। इन्हीं अधिकारों के संबंध में संयुक्त राष्ट्र ने साल 1948 में एक घोषणा-पत्र जारी किया था। इस घोषणा-पत्र में कहा गया था कि मानव के बुनियादी अधिकार किसी भी नस्ल, जाति, धर्म, लिंग, समुदाय और भाषा आदि से भिन्न होते हैं।

‘मानवाधिकार’ शब्द का प्रयोग 20वीं शताब्दी में किया गया था। इसके पहले अधिकारों के संदर्भ में ‘प्राकृतिक अधिकार’ अथवा ‘व्यक्ति के अधिकार’ शब्द प्रचलन में थे। प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत की उत्पत्ति 17वीं शताब्दी में प्रसिद्ध दार्शनिकों ग्रोशियस, हॉब्स और लॉक की रचनाओं में हुई थी। उन्होंने बताया था कि प्राकृतिक अधिकारों का मुख्य आधार ‘प्राकृतिक कानून’ है। यह कानून प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता तथा संपत्ति का सम्मान करने की बात कहते हैं। जॉन लॉक ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक “दी टू ट्रीटसेज ऑन गवर्नमेंट” में इन प्राकृतिक सिद्धांतों का उल्लेख किया है।

इसके अलावा, 1776 में अमेरिका द्वारा स्वतंत्रता के संबंध में जारी किये गए घोषणापत्र में भी कहा गया था कि ‘सभी व्यक्ति समान पैदा हुए हैं तथा सृष्टिकर्ता ने उन्हें जीवन, स्वतंत्रता तथा सुख की प्राप्ति जैसे कुछ अदेय अधिकार प्रदान किये हैं।’ तत्पश्चात 1789 में फ्रांस द्वारा घोषित मानव और नागरिक अधिकारों के घोषणापत्र में एक बार फिर व्यक्ति के अधिकारों की प्राकृतिक व अदेयता की बात कही गई थी। इन देशों ने अपने नागरिकों को ये अधिकार एक व्यक्ति होने के नाते दिया था न कि एक राज्य होने के नाते।

17वीं और 18वीं शताब्दी में प्राकृतिक अधिकारों से संबंधित जो घोषणाएँ की गई थीं 20वीं शताब्दी में संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार घोषणापत्र और इनसे संबंधित कई अन्य समझौतों के माध्यम से उन्हीं का और विस्तार किया गया। आसान भाषा में कहें तो मानवाधिकार पुराने प्राकृतिक अधिकारों के ही उत्तराधिकारी हैं।

मुख्य शब्द - मूलभूत, संरक्षण, आधारशिला, प्राकृतिक अधिकार, गरिमा, बुनियादी, पुनर्वास सार्वभौमिकरण, मौलिक, प्रजातीयता, नारीवाद।

प्रस्तावना - मानव अधिकार वस्तुतः वे अधिकार और सुविधाएँ हैं जो लोगों को व्यक्ति के रूप में मिली हुई हैं, भले ही वे कहीं भी रहें। प्रत्येक व्यक्ति मानव होने के नाते मानव अधिकारों का नैसर्गिक अधिकारी है। मूलभूत मानव अधिकारों में बोलने की स्वतंत्रता, राजनीतिक स्वतंत्रता और धार्मिक स्वतंत्रता शामिल हैं। कुछ लोगों का मानना है कि जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ, यथा-खाना और शुद्ध पेय जल भी मूलभूत मानव अधिकार में शामिल किए जाने चाहिए। इसी प्रकार मुकदमों में निष्पक्ष विचारणा भी मूलभूत मानव अधिकार है।

मानव अधिकार की धारणा इस विचार पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना आत्मसम्मान और गरिमा और इस कारण उसे कुछ मूलभूत स्वतंत्रताएँ मिलनी चाहिए। जब इन स्वतंत्रताओं को मान लिया जाता है तो प्रत्येक व्यक्ति सुरक्षा, संरक्षण और अपने जीवन में तरह-तरह के निर्णय कर पाने का आनंद पाता है। मानव अधिकार से हमें यह सोचने में सहायता मिलती है कि सही चीज क्या है तथा उसे प्राप्त करने के लिए हमें ऐसा कौन सा रास्ता अपनाना चाहिए जो सही हो।

मानवाधिकार सभ्य समाज की आधारशिला है लोकतांत्रिक व्यवस्था के मजबूत होने के साथ-साथ इन अधिकारों को अधिक सम्मान देना अनिवार्य हो गया है। इनके अभाव में व्यक्ति में गहरी पीड़ा एवं समाज में व्यापक तनाव पैदा होता है इसीलिए विधि शास्त्र की प्राकृतिक विधि शाखा ने मानवीय प्रतिष्ठा एवं प्राकृतिक अधिकारों को संरक्षण एवं मान्यता देते हुए शंखनाद किया है कि किसी भी व्यक्ति को न्याय और अधिकार नहीं बेचने दिया जायेगा और न ही न्याय प्रदान करने में देरी करने की जायेगी। मानव अधिकार तत्त्व रूप में सभ्य समाज की मौलिक आवश्यकता एवं मांगे हैं। ये समाज की स्वीकृत इच्छाएँ हैं जो समाज में रहने वाले प्रत्येक नागरिक को प्राप्त हैं। मानव के समग्र व्यक्तिगत विकास में तथा समाज के समग्र विकास की दिशा निर्धारित करने में मानव अधिकारों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

मानवाधिकारों की अवधारणा इतिहास की लम्बी अवधि में सत्ता के स्वेच्छाचारी इस्तेमाल को रोकने के उपकरण के रूप में विकसित हुई। ऐतिहासिक रूप से मानवाधिकारों के लिए संघर्ष का प्रमाण 15 जून, 1215 की उस घटना से मिलता है जब ब्रिटेन के सीमेड नामक स्थान पर तत्कालीन सम्राट जॉन

को उसके सामंतों द्वारा कतिपय मानवीय अधिकारों की मान्यता देने वाले घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया गया तथा अधिकारों का हस्तान्तरण सामंतों को हो गया। इतिहास में इसे मैग्नाकार्टा के नाम से जाना जाता है।

ज्यों-ज्यों अंतर्राष्ट्रीय संचार साधनों में सुधार हुआ, लोगों का ध्यान दूसरे देशों में रहने वाले लोगों के साथ किए जाने वाले दुर्व्यवहार और मानवाधिकार हनन आदि बातों की ओर गया और ये सब बातें केवल स्थानीय बातें न रहकर अंतर्राष्ट्रीय महत्व की बातें बनने लगीं। पूरी दुनिया के देशों में इनके विरोध में आवाजें उठने लगीं और उन देशों की सरकारों पर दबाव पड़ने लगा कि वे अपने यहां की शासन व्यवस्था में बदलाव लाएं। मानव अधिकार का इतिहास शुरू में केवल समान अधिकार या व्यवहार की सीमित मांगों से ही शुरू होता है, पर धीरे-धीरे पिछले दो सौ वर्षों में इसका दायरा बढ़ा है और अब इसके दायरे में शासकों के अधिकार सीमित करने और सभी लोगों के साथ एक समान व्यवहार तथा निर्भयतापूर्वक और गरिमा के साथ रह सकने की मांगें भी सामान्यतया मानी जाने लगी हैं।

मानव अधिकार सामान्यतः तीन प्रकार के होते हैं - व्यक्तिगत निष्ठा-समग्रता के अधिकार, नागरिक स्वतंत्रता के अधिकार तथा सामाजिक और आर्थिक अधिकार। पहले प्रकार के अधिकारों में व्यक्तिगत सुरक्षा और स्वतंत्रता की बात आती है। इसमें गुलामी, प्रताड़ना और अनावश्यक नजरबंदी भी शामिल है। नागरिक स्वतंत्रता में प्रत्येक व्यक्ति को शब्द एवं कृत्यों के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता के अधिकार आते हैं। इसमें बोलने, मिलने-जुलने, अंतश्चेतना और धर्म की स्वतंत्रता भी शामिल है। नागरिक स्वतंत्रता के अन्य अधिकारों में मतदान और किसी सरकारी पद के लिए खड़े होने का अधिकार तथा विवाह करने तथा परिवार बढ़ाने का अधिकार भी आता है। सामाजिक और आर्थिक अधिकारों में जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं और विकास के अधिकार आते हैं। इनमें आहार, आवास, चिकित्सीय देखभाल, शिक्षा तथा काम करने का अधिकार शामिल हैं।

कहा जाता है कि मानव अधिकार की बात उतनी ही पुरानी है जितनी कि सभ्यता और संस्कृति। 1978 में अमेरिका की सरकार द्वारा प्रकाशित 'ह्यूमन राइट्स एंड यू एस फोरेन पॉलिसी' (मानव अधिकार और अमेरिका की विदेश नीति) के शुरू में ही कहा गया है कि मानव अधिकार का विचार उतना ही पुराना है जितना कि उसका प्राचीन दुश्मन-स्वेच्छाचारिता या निरंकुशता। 1997 में हिलेरी क्लिंटन ने भी राष्ट्र संघ में दिए गए अपने भाषण में मानव अधिकार की बात उठाते हुए कहा था कि मानव अधिकार हमारे साथ शुरू से ही, सभ्यता के प्रथम प्रकाश के समय से ही हैं।

इसके बावजूद यह कहना भी गलत नहीं होगा कि मानव को मानव अधिकार अनंत काल से नहीं मिले हैं। इतिहास गवाह है कि पहले अधिकार या तो ईश्वर द्वारा प्रदत्त माने जाते थे या फिर पद, जाति, प्रतिष्ठा, धर्म आदि के आधार पर मिलते थे। इसके साथ ही आदि काल से ही लोग इस बात पर विचार करते रहे हैं कि समाज का संगठन किस प्रकार या किस आधार पर होना चाहिए। एक ओर तो वे लोग हैं जो मानते हैं कि कुछ गिने-चुने लोगों का दूसरों पर शासन करने का अधिकार होना चाहिए और ऐसे अधिकांश लोगों का कर्तव्य है कि जो लोग इस प्रकार शासन करते हैं वे उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहें। इसके विपरीत दूसरे वे लोग हैं जिनका मानना है कि सभी लोगों के साथ समानता, आदर, गरिमा का व्यवहार किया जाना चाहिए और शासक का कर्तव्य है कि ऐसा होने देने के लिए वह बराबर प्रयत्न करता रहे।

भारत में मानवाधिकारों का विकास - भारत में मानवाधिकारों का विकास एक जटिल, संगठित प्रक्रिया के अन्तर्गत हुआ है। हमारी अपनी लम्बी परम्परा में विविध संस्कृतियों के जीवन आदर्शों, परम्पराओं एवं दर्शनों ने मिलकर समन्वित मानवीय अधिकारों का विकास किया है। भारतीय दृष्टिकोण सदैव अधिकारों के साथ ही मनुष्य के कर्तव्यों पर भी बल देता रहा है। यहाँ अधिकार और कर्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलु समझे गये हैं। हमारे चिन्तकों एवं विचारकों का विचार था कि प्रत्येक आदमी का हित व्यापक अर्थ में सामाजिक हित में मिला हुआ है। तीन मुख्य बिन्दु मानववाद, वसुधैव कुटुम्बकम् एवं धार्मिक सहिष्णुता भारतीय परम्परा रहे हैं। अशोक का राजदर्शन उसके मानवीय सिद्धान्त पर आधारित था। यह सिद्धान्त दया, मानवता, करुणा, प्रेम पर बल देता था। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन एक व्यापक मानवीय आन्दोलन था।

आधुनिक युग नए भारत के उदय का काल था। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, ज्योतिबा फुले, नारायण गुरू जैसे धार्मिक सामाजिक सुधारकों ने सदैव मानवीय गरिमा के लिए संघर्ष किया। दुनिया भर के अन्य सुधारवाद आन्दोलनों से प्रभावित होकर भारतीय नेताओं ने '1928 की नेहरू रिपोर्ट' तथा 'कराँची प्रस्ताव' में (काँग्रेस अधिवेशन) मानव अधिकारों की मांग की। भारतीय संविधान के भाग तीन में वर्णित मौलिक अधिकार इसी परम्परा का विकास थे। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में सदैव मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए प्रजातन्त्रीय शासन प्रणाली को अपनाया। वयस्क मताधिकार, बहु राजनैतिक दल, कानून का शासन आदि हमारे लोकतंत्र के आधार हैं। भारतीय न्यायपालिका सक्रियता, स्वतंत्र प्रेस, स्वस्थ जनमत, भारतीय प्रजातंत्र के रक्षक व प्रहरी हैं।

इन उपायों एवं उद्देश्यों के बावजूद भारत के विभिन्न क्षेत्रों से मानवाधिकारों के उल्लंघन एवं हिंसा के समाचार मिलते रहे हैं यह विशेषतः तीन स्तरों पर मिलता है- व्यक्तिगत स्तर, सामाजिक स्तर व राज्य स्तर पर। साम्प्रदायिक दंगा, दहेज, सामाजिक संघर्ष, राजनीतिक अपराधीकरण जैसी चुनौतियों से भारत जूझ रहा है। इस तरह की हिंसा में मानवाधिकारों का उल्लंघन हुआ है। मानव अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए भारत सरकार ने कमजोर वर्गों के हितों के लिए आयोग का गठन किया है। अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, पिछड़ा वर्ग आयोग, अनुसूचित जाति-जनजाति आयोग का गठन किया। इन सबसे बढ़कर 12 अक्टूबर, 1993 को राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन किया गया। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग संबंधित शिकायतों के बारे में पता लगाता है और उसके बाद उनके निराकरण हेतु सरकार या प्राधिकारी के समक्ष सिफारिशें प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही बारह राज्यों में राज्य मानव अधिकार आयोगों की स्थापना हुई।

इस तरह मानवाधिकार आयोग एक पूर्णतः स्वतन्त्र संस्था है जो स्वायत्तता एवं पारदर्शिता जैसी महत्वपूर्ण अवधारणाओं पर आधारित है। सही मायने में इस संस्था से भारतीय संविधान में वर्णित मूल अधिकारों की भावना का यथार्थीकरण होता है। आयोग द्वारा दी गई सिफारिशों का भारत सरकार के लिए विशेष महत्व है। आयोग की स्थापना के साथ ही भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण एवं विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण चरण प्रारम्भ हुआ। संक्षिप्त अवधि में आयोग ने मानवाधिकारों के प्रति लोगों को सजग किया है भारतीय राज्य की भूमिका एवं क्रियात्मक स्वरूपों की जाँच पड़ताल की है, नौकरशाही के गलत

एवं आतंककारी कदमों की आलोचना की है। आयोग ने एक स्वस्थ संस्कृति का विकास किया है। लेकिन भारत जैसे देश में जहाँ चुनौतियाँ विविध हो, समस्याएँ विकराल हों, सामाजिक विषमता अधिक हो, आयोग का काम एवं दायित्व और गुरुतर हो जाता है।

मानवाधिकार एवं महिला प्रस्थिति – समाज में महिलाओं की भूमिका जन्म से ही लिंग के द्विध्वीकरण के कारण अतार्किक व स्वेच्छाचारी ढंग से निर्धारित की जाती रही है। पुरुष व महिलाओं को बचपन से ही समाज के नियमों से परिचित कराया जाता है जिससे बाद में वे उसी तरह का आचरण करते हैं। इस कारण से दोनों के बीच मनोवैज्ञानिक अंतर सामाजिक क्रम में उत्पन्न हो जाते हैं और रीति रिवाजों से संस्थागत हो जाते हैं। इसलिए समाज के नियमों को परिवर्तित करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। उत्पादन, पुनः उत्पादन, व बच्चों का समाजीकरण— इन सभी परतों में महिलाएं मुख्य भूमिका निभाती हैं परन्तु इन पर स्वयं महिलाओं का सबसे कम नियन्त्रण होता है और वे सामान्यतः पुरुषों द्वारा नियंत्रित की जाती हैं। इस तरह सदियों तक महिला पुरुष के द्वारा उपेक्षित, उत्पीडित, त्रासित, शोषित व संवेदित रही हैं। परन्तु 20 वीं सदी में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने हेतु विश्व के अनेक भागों में आन्दोलन हुए। कई देशों में महिलाओं को मताधिकार प्राप्त हुआ।

संयुक्त राष्ट्रसंघ प्रस्तावना में यह कहा गया कि “हम संयुक्त राष्ट्रों के लोग मूलभूत मानवाधिकारों में, व्यक्ति की गरिमा और मूल्यों में, पुरुष और स्त्री के समाज अधिकारों में आस्था व्यक्त करते हैं.....।”

संयुक्त राष्ट्रसंघ की सार्वभौम घोषणा 1948 में महिला समानता को मानव जाति की शांति, न्याय व समृद्धि के लिए आवश्यक माना और यह सिद्धान्त रूप से स्वीकार किया गया कि जब तक पुरुष मानव जाति के अपरिहार्य भाग महिला वर्ग को अपने साथ नहीं लेगा तब तक पुरुष समग्र विकास, शांति व समृद्धि की कल्पना तक नहीं कर सकता। यदि वह नारी का सहयोग, सह अस्तित्व व संयोग, समृद्धि के लिए स्नेह नैसर्गिक रूप से लेता हो तभी लौकिक जीवन की समरसता, सुरक्षा व संरक्षण सुनिश्चित हो सकेगा।

नारी उत्थान तथा नारी सबलीकरण/सशक्तिकरण के सन्दर्भ में भारत में राष्ट्रीय महिला अधिकार आयोग का गठन 1992 में किया गया। जिसकी प्रथम अध्यक्ष मोहिनी गिरी थी। भारतीय राष्ट्रीय महिला अधिकार आयोग का गठन नारी स्वतंत्रता, समानता व न्याय के संदर्भ में वे प्रयास करने से उद्देश्य के किया गया है जिससे प्रथमतः नारी शोषण व उत्पीड़न रूके और द्वितीयतः, नारी का विकास व सशक्तिकरण के सकारात्मक उपाय किए जाएँ ताकि राष्ट्रीय विकास की धारा में नारी का भी समुचित, प्रभावी व सकारात्मक योगदान हो।

मानव अधिकारों की स्थापना के प्रयत्न सैकड़ों ही नहीं, हजारों वर्षों पहले शुरू हुए कहे जा सकते हैं। इससे संबंधित सबसे पहला दस्तावेज जैसा कि पहले कहा गया है, ‘मेग्ना कार्टा’ माना जाता है। उसी पर बाद में अन्य दस्तावेज आधारित हुए, जैसे 1791 में अमेरिकी संविधान का ‘बिल ऑफ राइट्स’ बना था। इसमें यद्यपि सार्वभौम अधिकारों की बात मानी गई थी, पर व्यवहार में उसमें गुलामों और कुछ अन्य वर्गों के लोगों को अलग रखा गया था। वह सही अर्थ में सार्वभौम नहीं कहा जा सकता। अतः आज हम मानव अधिकारों से जो कुछ समझते हैं, उसे उनका प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता।

मानवाधिकार कानून एक विशेष कानून है जो यह बतलाता है कि किसी मुद्दे को समझने के लिए अन्य कानून अपर्याप्त हैं या असंगत हैं। मानवाधिकार की भाषा का प्रयोग सभी प्रकार के कृत्यों और व्यवहार की आलोचना करने, उन्हें उचित ठहराने और उनमें सुधार करने के लिए किया जाता है। किसी भी प्रकार के विवाद की स्थिति में मानवाधिकार का कार्ड खेलना विपक्षी से अपनी बात मनवाने में निर्णायक होता है। यह एक ऐसा पक्ष है जो मानवाधिकार के नैतिक जोर को आकर्षक बनाता है।

देखा जाता है कि आजकल जब कभी कोई समस्या आती है, तो उसे आसानी से मानव अधिकारों का प्रश्न मान लिया या बना लिया जाता है। ऐसी स्थिति में पहले यह समझ लेना ठीक होगा कि मानवाधिकार की बात शुरू में कहां से और क्यों उठी और उसके बाद से अब तक विश्व स्तर पर कैसे मानव अधिकार आंदोलन का विकास हुआ है। इस दृष्टि से सोचना इसलिए भी आवश्यक है कि मानवाधिकार के प्रश्न पर अलग-अलग लोग अलग-अलग ढंग से सोचते हैं। कुछ लोगों के विचार से किसी प्रकार के अन्याय के प्रति मानवाधिकार की दृष्टि से सोचना नैतिकता की दृष्टि से सही है, जब कि दूसरों के लिए यह एक थोथा नारा मात्र है जिसे हमेशा संदेह की दृष्टि से देखना चाहिए। वकील लोग तो किसी भी मुद्दे को आसानी से मानवाधिकार का प्रश्न बना लेते हैं और दोनों ही पक्षों के लोग अपने- अपने ढंग से अपने पक्ष में मानव अधिकार कानून की दलीलें देते हैं।

आज जब किसी भी संदर्भ में मानवाधिकार की बात पर चर्चा होती है, तो वह मुख्यतः और निश्चित ही राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कानून के संदर्भ में होती है न कि किसी नैतिक या दार्शनिक संदर्भ में। दार्शनिक आधार पर हम मानवाधिकार की आवश्यकता एवं महत्व और उन्हें किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है—इस बात पर बराबर बहस करते रह सकते हैं। और स्पष्ट शब्दों में यों कहा जा सकता है कि सामान्यतः मानवाधिकार की बात मानवाधिकार के केवल कानूनी पक्ष को लेकर ही होती है और यह पहले कही गई इसी बात की पुष्टि करता है कि हम जब मानवाधिकार की बात करते हैं, तो उसमें हमारा स्वार्थ और हित निहित रहता है।

मानवाधिकार के संबंध में अब कुछ बातें साफ नजर आती हैं। पहली बात तो यही कि कुछ लोगों के लिए मानवाधिकार की बात स्पष्ट, सुव्यक्त और सीधी-सादी तार्किक है इसके विरोध में कहीं से कोई चौलेंज नहीं उठता। इसकी नींव ऐसी ठोस है कि उसकी बात उठाना ही आपको सही ठहराने के लिए पर्याप्त है। दूसरी बात यह कि किसी के मन में मानवाधिकार की बात तभी उठती है जब उसके साथ किसी प्रकार का अन्याय होता है। उसे तब पता चलता है कि उसके अधिकारों का हनन हुआ है। जब प्रताडित लोग मिल बैठते हैं, तो उनकी एकजुटता उन्हें विरोध करने की शक्ति देती है और तब उनका यह विरोध कानून के भी आड़े आ जाता है। मानवाधिकार की बात उठाना ही अपने आप में उस कानून को चेतावनी देना है जिसे हम अनुचित और असंगत समझते हैं। भले ही वह कानून सही तरीके से बनाया गया हो। वास्तव में देखा यही जाता है कि मानवाधिकार की धारणा आज इतनी विकसित हो चुकी है कि सभी देशों में केवल इसी बात को लेकर किसी भी कानून को चौलेंज कर कहा जा सकता है कि उससे मानवाधिकार का उल्लंघन होता है। और यही बात अब राष्ट्रीय कानून और अंतर्राष्ट्रीय कानून के संबंध में भी कही जा सकती है।

मानव अधिकारों की बात मानना कहने में जितनी आसान है, उन्हें जीवन में उतारना एक कभी खत्म न होने वाली प्रक्रिया है जब हम देखते हैं कि मानव अधिकारों का संबंध किसी न किसी रूप में जीवन, समानता, वाक्-स्वातंत्र्य, मित्रता, स्वास्थ्य, आहार, आवास आदि प्रायः सभी क्षेत्रों से है। मानव अधिकारों से आशय हम सभी को गरिमा के साथ रहने से है और विश्व स्तर पर यह लक्ष्य प्राप्त करना वस्तुतः बहुत दूर की बात है। मानवाधिकार आंदोलन का अर्थ केवल कुछ मान्य सिद्धांतों पर अमल करना मात्र भी नहीं है, बल्कि उसका अर्थ है लोगों का अन्याय के विरुद्ध खड़े होना और दमन-उत्पीड़न के सामने एकजुटता प्रदर्शित करने के लिए तैयार रहना भी है।

मानवाधिकार की बात कहने और मानने का अर्थ केवल लक्ष्य प्राप्ति नहीं वरन् जिस तंत्र में हम रह रहे हैं उसको बदलना भी है। विश्व के शासन तंत्र को बदलने के लिए मानवाधिकार सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक अस्त्र है। आज मानवाधिकार की मांग से किसी देश के कानून ही नहीं बदले जाते हैं, वरन् मानवाधिकार के सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय सहायता प्राप्त करने में, सहायता के प्रोजेक्ट तैयार करने में, गरीबी से लड़ने में, युद्ध से नष्ट हुए देशों का पुनर्निर्माण करने में और वहां की अर्थव्यवस्था सुधारने आदि सभी क्षेत्रों में सहायक होते हैं। अगस्त 2010 में पाकिस्तान के उत्तरी भाग में आई बाढ़ से हुई भीषण तबाही की बात इसके उदाहरण के रूप में ली जा सकती है, जब इस प्राकृतिक विभीषिका से हुई बर्बादी से निपटने के लिए मानवाधिकार के प्रश्न पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पाकिस्तान को अरबों डॉलर की सहायता प्राप्त हुई। पिछले 50 वर्षों का इतिहास देखने पर पता चलता है कि उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, गुलामी प्रथा, प्रजातीयता, रंगभेद नीति, नारीवाद, जातिवाद आदि सभी प्रकार के संघर्षों से लड़ने में मानवाधिकार की सहायता ली जाती रही है और ली जा रही है तथा इसमें सफलता भी मिली है।

निष्कर्ष - मानवाधिकार वह अधिकार हैं जो मानव जीवन के लिए मौलिक हैं। मानवाधिकार दुनिया भर के सभी मनुष्यों के लिए कुछ दावों और स्वतंत्रताओं के अधिकार हैं। चरित्र में मौलिक और सार्वभौमिक होने के अलावा, इन अधिकारों को अंतर्राष्ट्रीय आयाम माना जाता है। किसी भी प्रकार के किसी भी भेद के बिना अधिकारों का सार्वभौमिकरण मानवाधिकारों की एक विशेषता है। भारत एक लोकतांत्रिक देश होने के नाते अपने नागरिकों को ऐसे अधिकार प्रदान करता है और उन्हें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सहित कुछ अधिकारों की अनुमति देता है। इन अधिकारों, जिन्हें 'मौलिक अधिकार' कहा जाता है, भारत के संविधान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

मानवाधिकार की सबसे बड़ी सफलता इस बात में है कि इससे सभी प्रकार के प्रताड़ित लोग राष्ट्रीयता, जाति, लिंग, वर्ण आदि के भेद भूलकर एकजुट हो जाते हैं और यही उनकी शक्ति होती है। इसी के बल पर मानवता की बात उठाई जाकर मानवाधिकार आंदोलन आगे बढ़ता गया है और बढ़ता ही जा रहा है।

सन्दर्भ सूची -

- 1 सुभाष, सी. कश्यप : "मानवाधिकार और संसद (1978)"
- 2 आर. सी. हिंगुरानी : "भारत में मानवाधिकार (1985)"
- 3 वाई. के. त्यागी : "भारतीय राज्य एवं मानवाधिकार (1992)"
- 4 जी. एस. बाजवा : "भारत में मानवाधिकार उल्लंघन एवं क्रियान्वयन (1995)"
- 5 रमेश प्रसाद गौतम एवं पृथ्वीपाल सिंह: "भारत में मानव अधिकार (उल्लंघन, संरक्षण, क्रियान्वयन एवं उपचार (2000))"
- 6 कटारिया, सुरेन्द्र : "मानव अधिकार, सभ्य समाज एवं पुलिस", आर.बी.एस.ए. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003.
- 7 कुल्हरी, सुमन : "महिला एवं मानव अधिकार", नेहा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर, 2010.
- 8 रस्तोगी एण्ड रेखा : "वुमन एंड ह्यूमन राइट्स (2008)"
- 9 गुप्त, कैलाशनाथ एवं शाह, सरिता : "मानव अधिकार: संघर्ष, संदर्भ एवं निवारण", अभिव्यक्ति प्रकाशन, दिल्ली 2012.
- 10 परांजपे, एन० वी० : "अपराधशास्त्र एवं दण्डशास्त्र".
- 11 डॉ. विप्लव : "महिला सशक्तिकरण के विविध आयाम 2013.
- 12 बेदी, किरण : "इट इज आलवेज पॉसिबल वन वूमन्स ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ इण्डिया प्रिजन सिस्टम", हिमालयान इन्स्टीट्यूट प्रेस, 2007.
- 13 चौधरी, सुनेत्रा : "सलाखों के पीछे".
- 14 लक्ष्मीकांत, एम. : "भारत की राजव्यवस्था", एम.सी. ग्रो एजुकेशन प्रा.लि. 2017.
- 15 शर्मा, मंजु : "नारी शोषण एवं मानवाधिकार", राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2008.
- 16 शास्त्री, उर्मिला : "माइ डेज इन प्रिजन", हार्पर वेन्टेज पब्लिशिंग हाउस, 2012.
- 17 शर्मा के.के. : "'मानवाधिकार - सिद्धांत एवं व्यवहार, 2011'.

व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में गांधीजी के एकादश व्रतों की उपादेयता

डॉ० सुशीला देवी मीणा

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान, सेठ आर.एल राजकीय पीजी महाविद्यालय, कालाडोरा, जयपुर

सारांश:- मनुष्य इस संसार में जीवन विकास की सर्वोपरि सीमा है। आजतक इस सृष्टि में मानव से विकसित कोई जीव नहीं जन्मा है। अतः मानव का मानव होने के नाते एक विशिष्ट व्यवहार होता है जो अन्य जीवों से भिन्न व उच्चतर होता है। मानव का यह मानवीय व्यवहार स्वतः नहीं बनता बल्कि यह निरन्तर शिक्षण-प्रशिक्षण के द्वारा अर्जित किया जाता है। मनुष्य अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु परिवार, समाज व प्रकृति से नियमित अन्तरक्रिया करता रहता है। सीखने के इस दौर में उसे कुछ कटु व कुछ मधुर अनुभव होते हैं। कटु अनुभवों से सुधार करते हुए व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को निखारता है। जीवन में झंझावतों से निकलकर व्यक्ति जब आगे बढ़ता है तभी उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है। व्यक्ति का व्यक्ति रूप से मानवीय रूप में रूपान्तरण ही व्यक्तित्व विकास है।

व्यक्तित्व विकास में व्यक्ति के शारीरिक एवं बौद्धिक विकास के साथ-साथ उसका सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास भी आता है। व्यक्तित्व विकास एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, चारित्रिक, नैतिक, सृजनात्मक, सौन्दर्यात्मक एवं भाषागत आयाम सम्मिलित हैं। व्यक्ति अपने व्यक्तित्व विकास के लिए विभिन्न धर्मशास्त्रों एवं सामाजिक मूल्यों के अध्ययन के साथ ही विभिन्न महापुरुषों से भी प्रेरणा लेता है।

इसके साथ ही प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में कुछ नियम व व्रतों को अपनाता है। इन नियम व व्रतों के माध्यम से मनुष्य आत्म संयम व आत्म नियन्त्रण द्वारा अपने आन्तरिक गुणों को निखारता है। महात्मा गांधी जी ने भी अपने निजी व सार्वजनिक जीवन में व्रतों व नियमों को महत्वपूर्ण भूमिका दी। उन्होंने अपने आश्रमों में सभी के लिये इन व्रतों की पालना सुनिश्चित की। महात्मा गांधी के ये व्रत एकादश व्रत के नाम से जाने जाते हैं।

वर्तमान भौतिकवादी युग में व्यक्तित्व विकास को एक नयी दिशा देने में गांधीजी के एकादश व्रत सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेह, अपरिग्रह, अभय, अस्पृश्यता निवारण, शारीरिक श्रम, सर्वधर्म सम्भाव व स्वदेशी बहुत सहायक हो सकते हैं।

अतः हमें एक मानव होने के नाते न केवल इनको जानना आवश्यक है बल्कि इन्हें अपने जीवन में आत्मसात करना भी जरूरी है।

शोध के उद्देश्य:- इस शोध का उद्देश्य गांधी जी के एकादश व्रतों की व्यक्तित्व विकास में उपादेयता बताना है। जो इस प्रकार है:-

1. गांधीजी के एकादश व्रतों का विस्तृत अध्ययन करना।
2. व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास का अर्थ समझना।
3. व्यक्तित्व विकास के विभिन्न आयामों को जानकारी प्रदान करना।
4. व्यक्तित्व विकास व एकादश व्रतों के मध्य सम्बन्ध बताना।
5. वर्तमान भौतिकवादी युग में एकादश व्रतों की उपयोगिता बताना।
6. समाज में व्यक्तित्व विकास हेतु एकादश व्रतों का योगदान बताना।
7. गांधी के एकादश व्रतों की पालना हेतु लोगों को जागरूक करना।

विषय परिचय:- गांधीजी का सम्पूर्ण जीवन मानव को समर्पित था। वे त्याग, तपस्या एवं सादगी की प्रतिमूर्ति थे। गांधी जी का आध्यात्म एक व्यावहारिक आध्यात्म था जो एक उच्च जीवन शैली एवं परिष्कृत व्यक्तित्व का दर्शन प्रस्तुत करता है। गांधी जी के आध्यात्म में उनके एकादश व्रतों का महत्वपूर्ण स्थान है। गांधी जी ने इन व्रतों की पालना द्वारा एक उत्तम चरित्र निर्माण द्वारा व्यक्तित्व के विकास की राह दिखाई। गांधी जी के एकादश व्रत इस प्रकार हैं:-

1. **सत्य:-** गांधी जी एक ऐसे महान सन्त थे जो कि मन, वचन और कर्म से सदा सत्य को समर्पित थे। सत्य का शाब्दिक अर्थ होता है “सते हितय” अर्थात् सभी का कल्याण।

इस सर्वकल्याण के सात्विक भाव को अपने छदय में बसाकर ही व्यक्ति सत्य बोल सकता है। सत्य मानव छदय में सात्विकता का भाव जगाने के साथ-साथ उसमें दृढ़ संकल्प और निष्ठा जगाता है। मनुष्य किसी भी स्थिति में हो उसे अधिक से अधिक सत्य का प्रयोग करना चाहिए। सत्य सेतु है। समाज और संस्कृति का वाहक है। जब समाज में समय के साथ परिवर्तन आता है तब सत्य की स्थिति भी बदल जाती है। सत्य के द्वारा ही मनुष्य और समाज को सद्मार्ग पर ले जाना सम्भव है।

गांधी जी ने कहा कि - सत्य केवल शब्दों की सत्यता नहीं है बल्कि विचारों की सत्यता भी है। गांधी जी ने सापेक्ष सत्य के साथ-साथ निरपेक्ष सत्य को स्वीकार किया और उनके अनुसार ईश्वर निरपेक्ष सत्य है। उन्होंने कहा कि मेरे मन में सत्य ही सर्वोपरि है और उसमें अगणित विष्णूतियों का समावेश हो जाता है। यह सत्य स्थूल वाचिक सत्य नहीं है, यह तो वाणी की तरह विचार का भी है। यह सत्य हमारा कल्पित सत्य नहीं बल्कि स्वतन्त्र चिरस्थायी सत्य है अर्थात् परमेश्वर है। इस प्रकार पहले गांधी जी ईश्वर को सत्य मानते थे लेकिन अन्त में उन्होंने कहा कि सत्य ही ईश्वर है। गांधी जी कहते हैं कि यदि सत्य को तराजू के एक पलड़े में और दूसरे पलड़े में एक सहस्र यज्ञों को रखे तो भी सत्य कायम ही रहेगा।

गांधी जी ने सत्य को जीवन का लक्ष्य मानते हुए कहा कि हमारे अस्तित्व का एक मात्र औचित्य हमारी समस्त गतिविधि सत्य पर केन्द्रित होनी चाहिए। सत्य हमारे जीवन का प्राण तत्व है। क्योंकि सत्य के बिना व्यक्ति अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। यह सम्भव है कि उसे सफलता मिल जाये लेकिन सत्य के बिना आन्तरिक शान्ति प्राप्त नहीं होती।

गांधी जी ने लोककल्याण के माध्यम से सत्य की प्राप्ति को महत्व देते हुए कहा कि “मैं सत्य का विनम्र शोधक हूँ। इसी में मैं आत्म साक्षात्कार के लिए मोक्ष प्राप्त करने के लिए आतुर हूँ। करोड़ों जनता के छदय में बसे ईश्वर के सिवाय मैं किसी और ईश्वर को नहीं जानता। लोग अपने अन्दर ईश्वर को पहचानते नहीं हैं। मैं पहचानता हूँ। इन लाखों करोड़ों लोगों की सेवा के द्वारा ही सत्य रूपी परमेश्वर की पूजा करता हूँ।

सत्य के क्षेत्र को व्यापक बताते हुए गांधी जी कहते हैं कि सत्य का सम्बन्ध वाणी, विचार और आचार के साथ सम्बन्धित है। गांधी जी ने सत्य के परिवेश की व्यापकता को बताते हुए उसे केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं मानते। उनके अनुसार सत्य के परिवेश में व्यक्ति ही नहीं समस्त समाज और राष्ट्र का भी समावेश है। सम्पूर्ण सत्य (मन, वचन, कर्म का सत्य) का पालन धर्म, राजनीति, अर्थनीति और परिवार सबसे होना चाहिए।

गांधी जी ने सत्य के लिए मौन का होना आवश्यक माना उनके अनुसार सत्य के पुजारी के लिए मौन उसके आध्यात्मिक अनुशासन का एक अंग है। जाने-अनजाने बढ़ा-चढ़ाकर कहने की, सत्य की दवा देने की या कम ज्यादा कर देने की वृत्ति मनुष्य की स्वाभाविक कमजोरी है और मौन इस पर विजय पाने के लिये जरूरी है।

सत्य की खोज में क्रोध, स्वार्थ, घृणा आदि विकार स्वतः छूट जाते हैं। अन्यथा सत्य की प्राप्ति असम्भव हो जाये। जो व्यक्ति वासनाओं के वश में हैं, उसकी नियत साफ होने पर भी वह कभी सत्य की प्राप्ति नहीं कर सकेगा। सत्य की खोज में सफलता प्राप्त होने पर व्यक्ति प्रेम और घृणा, सुख और दुःख के द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है।

गांधी जी कहते हैं कि सत्य एक विशाल वृक्ष है, आप जितना इसका पोषण करेंगे, उतने ही ज्यादा फल देगा। सत्य की खान को जितना ज्यादा खोदेंगे, सेवा के नये से नये मार्गों के रूप में उतने ही अधिक हीरे-जवाहरात प्राप्त होंगे।

इस प्रकार गांधी जी ने जीवन पर्यन्त सत्य की खोज की और अपनी आत्म कथा को “सत्य के साथ मेरे प्रयोग” नाम देकर इसकी सार्थकता को सिद्ध किया।

गांधी जी की सत्य की अवधारणा के द्वारा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में सेवा, त्याग, तपस्या, सर्वजन कल्याण, समर्पण एवं सद्भाव के गुणों के साथ ही संयम, आत्मनियंत्रण एवं मन की पवित्रता को प्राप्त कर सकता है। सत्य को मनसा, वाचा, कर्मणा में स्थान देकर व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सम्भव है। जो आज के भौतिकवादी युग में हो रहे अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, नैतिक पतन, स्वार्थपरता, आत्मकेन्द्रित मानवीय प्रवृत्ति, सामाजिक वैमनस्य आदि को दूर करने हेतु आवश्यक है।

2. अहिंसा:- गांधी जी के एकादश व्रत में अहिंसा का महत्वपूर्ण स्थान है। अहिंसा का अर्थ प्रेम को समुद्र और बैर भाव का त्याग है। अहिंसा का तात्पर्य मन, कर्म व वचन से किसी के छदय को दुःख नहीं पहुंचाना है। अहिंसा में सफल होने के लिए लगन होना आवश्यक है। यदि लगन नहीं होगी तो व्यक्ति में अहिंसा के लिए उत्कंठा और उतावलापन नहीं होगा। इसलिए व्यक्ति को साहस, लगन और धैर्य के साथ अहिंसा के सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए। गांधी जी के अनुसार अहिंसा में हीनता, भीस्ता और डरकर भागना बिल्कुल नहीं होना चाहिए। अहिंसा में दृढ़ता, वीरता और निश्चय होना चाहिए। अहिंसा के पालन के लिए छदय की पवित्रता अर्थात् आत्मानुशासन, नम्रता और न्याय की भावना आवश्यक है।

गांधी जी के अनुसार अहिंसा केवल दर्शन नहीं है बल्कि एक कार्यपद्धति है। छदय परिवर्तन का साधन है। उन्होंने अहिंसा को व्यक्ति के आचरण तक ही सीमित न रखकर मानव जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में लागू किया। उन्होंने कहा कि सत्य सर्वोच्च कानून है और अहिंसा सर्वोच्च कर्तव्य अहिंसा की शक्ति असीम है। उन्होंने सत्य, आन्तरिक पवित्रता, व्रत, निर्भीकता, त्याग और सुदृढ़ता को अहिंसा की अनिवार्य शर्तें बतायीं।

गांधीजी ने कहा कि मैंने तो पुकार-पुकार कर कहा है कि अहिंसा, वीर का लक्षण है कायरता का कभी धर्म नहीं हो सकती। आत्मबल के सामने तलवार का बल तृणवत है, अहिंसा आत्मा का बल है। अहिंसा व्यक्ति को निर्भीक बनाती है। वह व्यक्ति में आत्मबल पैदा करती है। आत्मबल ही वास्तविक शक्ति है। आत्मबल के बिना शारीरिक बल व्यर्थ है।

अहिंसा का प्रत्येक व्यक्ति के मन में वास बताते हुये गांधी जी कहते हैं कि अहिंसा प्रत्येक व्यक्ति के मन में वैसे ही विद्यमान है जैसे धरती के अन्दर दबा हुआ बीज। बीज को जब जल आदि उचित संसाधन प्राप्त हो जाते हैं तो वह अंकुर का रूप ले लेता है और वही लघु अंकुर एक दिन विशाल वृक्ष बन जाता है। उसी प्रकार प्रत्येक मन में अहिंसा है मात्र उसे विकसित करने की आवश्यकता है।

इस प्रकार मनुष्यों के प्रति क्रूरता, पदार्थ के प्रति आसक्ति, विचारों के प्रति आग्रहपूर्ण, वृत्तियों के प्रति असंयत और शरीर के प्रति मूर्च्छापूर्ण सम्बन्ध के चलते हिंसा का जो दौर आज चल रहा है उससे क्रूरता, भय, ईर्ष्या, क्रोध और अहंकार का वातावरण उत्पन्न हो गया है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को एवं एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को खत्म कर देना चाहता है। ऐसे में अहिंसा को धारण कर न केवल व्यक्ति बल्कि समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व का विकास सम्भव है।

3. ब्रह्मचर्य:- ब्रह्मचर्य का अर्थ है आत्मा को (ब्रह्म को) पहचानने का मार्ग अर्थात् सब इन्द्रियों का विग्रह। मुख्यतः स्त्री और पुरुष द्वारा मन, वचन और काया से विषय भोग का त्याग। गांधीजी ने इन्द्रियों के संयम को बहुत महत्व दिया। उनके अनुसार शुद्धाचरण की तरफ मन, कर्म व वचन से अग्रसर होना ही ब्रह्मचर्य है। गांधी जी ने कहा कि मैं कहता हूँ कि मार्ग में आने वाले कांटों-पत्थरों और बाधाओं से कतरायेंगे तो हम उस पर चल नहीं सकेंगे, हो सकता है कि हमारे पैर लड़खड़ा जाये, हमारे पांवों में खून बहने लगे, कदाचित्त हम नष्ट भी हो जाये लेकिन हम इनसे अपना मुंह नहीं मोड़ सकते।

इस प्रकार आज जहां भौतिकवादी सुख-सुविधाओं की चकाचौंध में व्यक्ति वासना, लालसा और तृष्णा के वशीभूत होकर चारित्रिक गिरावट की निम्नतम सीमा तक पहुँच रहा है। जिसके कारण छेड़छाड़, बलात्कार, महिलाओं के साथ यौन अपराध, समलैंगिक अपराध, हत्या आदि घटनायें समाज को शर्मसार कर रही हैं। इस समय गांधी जी के ब्रह्मचर्य का व्रत मनुष्य को सद्मार्ग की ओर ले जा सकता है। जिसके परिणाम स्वरूप समाज संयत, आत्मनियन्त्रित, परस्पर सम्मान की भावना से युक्त और अपराध मुक्त हो सकता है।

4. अस्वाद:- गांधी जी ने अपनी पुस्तक "की टू हेल्थ" में कहा कि मनुष्य के स्वस्थ रहने के लिए शरीर के पांचों तत्वों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के बीच तालमेल होना आवश्यक है। उन्होंने कहा कि भोजन शरीर की आवश्यकता के लिये होना चाहिए न कि स्वाद के लिए। यदि हम अपनी पाश्विक वृत्तियों और कामनाओं पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें स्वाद का त्याग करना होगा। गांधी जी ने अपने आश्रम में तथा अपने खुद के जीवन में शाकाहार को महत्व दिया। आज जीभ के स्वाद के चलते मनुष्य तरह-तरह के व्यंजनों को भोजन में शामिल करता है जिससे एक बहुत बड़े जन समुदाय की भोजन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा पहुँचती है। स्वाद पूर्ण भोजन के चलते आज हम बिना शरीर की आवश्यकता के भी भोजन खा रहे हैं जिससे मोटापे की समस्या आम हो गयी है। अतिरिक्त भोजन के चलते व्यक्ति उच्च रक्तचाप, मधुमेह जैसी बीमारियों से ग्रस्त हो रहे हैं तथा दूसरी तरफ गरीब लोगों को संतुलित आहार प्राप्त करना भी मुश्किल हो रहा है। फास्ट फूड के स्वाद के चलते स्वदेशी भोजन, शाकाहार व सात्विकता से हम दूर भागते जा रहे हैं। अतः मनुष्य अस्वाद को अपनाकर भोजन के महत्व को समझकर अन्न का सम्मान कर गरीब लोगों के पोषण का मार्ग खोल सकते हैं।

5. अस्तेह:- अस्तेह का अर्थ है चोरी नहीं करना। प्रकृति ने प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता के लिये संसाधन किये हैं लेकिन व्यक्ति के लालच और वासना के लिये नहीं। अतः किसी दूसरे के हिस्से की किसी वस्तु को ग्रहण करना चोरी है।

गांधीजी के अनुसार दूसरे की चीज को उसकी अनुमति के बिना लेना, जिस कार्य के लिये कोई वस्तु ली है उससे भिन्न कार्य में उसका उपयोग करना तथा जितने समय के लिये ली है, उससे अधिक समय के लिये उपयोग करना चोरी है। उनके अनुसार बिना परिश्रम के कोई वस्तु लेना, बिना आवश्यकता के वस्तुओं का उपयोग करना भी चोरी है। आज व्यक्ति की लालसा इतनी बढ़ गयी है कि वह संसाधनों के अति दोहन में लगा हुआ है। आज व्यक्ति मानवता की परवाह किये बिना दूसरे व्यक्ति के हितों पर कुठाराघात कर रहा है। एक व्यक्ति द्वारा दूसरे की जमीन सम्पत्ति व आवश्यक वस्तुओं एवं विचारों की चोरी आज आम बात है। अतः अस्तेह के मार्ग पर चलकर व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व दोषमुक्त बना सकता है। इसके माध्यम से व्यक्ति में मितव्यता के गुण के विकास के साथ-साथ सदाचार व परोपकार के भावों का भी विकास होगा।

6. अपरिग्रह:- किसी विचार, व्यक्ति या वस्तु में आसक्ति नहीं रखना या मोह नहीं रखना अपरिग्रह है। आसक्ति के चलते व्यक्ति अपनी जरूरत से अधिक संग्रह कर लेता है। जिससे इस प्रकृति व समाज का सन्तुलन बिगड़ जाता है। व्यक्ति की इच्छाएँ असीम व अनन्त हैं। अतः इसके चलते व्यक्ति धन का संग्रह करता है जिससे विलासिता, मोह व भय उत्पन्न होता है। अतः अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण रख शान्तिपूर्ण जीवन जीने के लिये अपरिग्रह आवश्यक है। प्रकृति व समाज प्रदत्त वस्तुओं को औचित्य से अधिक अपने पास संग्रहित नहीं करना और ना ही औचित्य से अधिक उपभोग करने का विचार अपरिग्रह है।

महात्मा गांधी ने अपरिग्रह के विचार को न केवल अपने विचार बल्कि जीवन में भी अपनाया। वे अपने व्यक्तिगत जीवन व आश्रम में इस सिद्धान्त की कठोरता से पालना करते थे।

गांधीजी ने अपरिग्रह का स्वर्णिम नियम बताया जिसके अनुसार जो आज लाखों लोगों को उपलब्ध नहीं है उसका भोग करने से हम दृढ़तापूर्वक इंकार कर दें। इंकार करने की क्षमता हमारे अन्दर अचानक नहीं आ जाएगी। पहले तो हमें इस मानसिक वृत्ति का विकास करना होगा कि जो वस्तु या सुविधा लाखों लोगों को उपलब्ध नहीं है उसका भोग हम नहीं करेंगे। इसके बाद अगला कदम होगा इस मनोवृत्ति के अनुसार अपने जीवन क्रम में यथाशीघ्र परिवर्तन लाना।

गांधी जी का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ उतना ही रखे जितने की उसे जरूरत है तो कोई अभावग्रस्त नहीं रहेगा और सब संतोष का जीवन जिएंगे। आज जो स्थिति है उसमें जितने असन्तुष्ट निर्धन हैं उतने ही असन्तुष्ट धनवान भी हैं। निर्धन व्यक्ति लखपति बनने को उतावला है और लखपति करोड़पति।

गांधी ने कहा कि अपरिग्रह का विचार वस्तुओं और विचारों पर समान रूप से लागू होता है। जो व्यक्ति दिमाग में निरर्थक ज्ञान भरता है वह भी इस अमूल्य सिद्धान्त का उल्लंघन करता है।

निष्कर्ष रूप से अपरिग्रह के विचार को अपनाकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की ऊँचाईयों पर पहुँच सकता है। अपरिग्रह के विचार को अपनाकर उच्च नैतिक चरित्र, भ्रष्टाचार मुक्त व्यवहार, गरीब के प्रति सहानुभुति, प्रकृति एवं पर्यावरण का संरक्षण कर सकता है।

7. अभय:- गांधी जी के अनुसार सभी ब्राह्म भयों से मुक्ति जैसे- बीमारी, शारीरिक क्षति या मृत्यु का भय, स्वामित्व हरण का श्रम, प्रियजनों से बिछुड़ने का भय, प्रतिष्ठा हानि अथवा अपमान का भय आदि- आदि से मुक्त हो जाना ही अभय है। गांधी जी कहते हैं कि बिना अभय हुए व्यक्ति अपने जीवन को सही तरीके से नहीं जी सकता। यदि कोई व्यक्ति सार्वजनिक कार्य करना चाहता है तो उसे अभय सिद्धि करना चाहिए। सच्ची सार्वजनिक सेवा तभी सम्भव है जब मान-मर्यादा, धन सम्पत्ति, जाति, स्पी-कुटुम्ब जन और मृत्यु के सम्बन्ध में निर्भयता आ जाती है और तभी मोक्ष स्त्री पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है। गांधी जी ने अभय से आत्मबल की प्राप्ति को सम्भव मानते हुए कहा कि संख्या के बल पर कायर लोग कूदते हैं। आत्मबल वाला मनुष्य अकेला जूझता है। आत्मबल ही सच्चा बल है। यह निश्चित मानिये कि वह बल तपश्चर्या, त्याग, दृढ़ता, श्रद्धा और नम्रता भय पर विजय पाये बिना प्राप्त नहीं हो सकती।

8. अस्पृश्यता निवारण:- अस्पृश्यता समाज में भेदभाव व गैर- बराबरी का प्रतीक है। जो विश्व के प्रत्येक समाज में किसी न किसी रूप में पायी जाती है। भारतीय समाज में यह गहरी पैठ बनाये हुए है। खान-पान, बैठक, पूजा स्थल, तीर्थ स्थल पर अस्पृश्यता का रंग दिख जाता है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में यह दिख जाती है। आज अस्पृश्यता ने वैचारिक व सैद्धान्तिक वेश धारण कर लिया है। आज भी बुद्धिजीवी, विद्वान, लेखन और कलाकर भी इस संकीर्णता से नहीं बचे हैं। आज के तथाकथित उच्च वर्ग कुत्ते, बिल्ली, जैसे जानवरों को पालना व साथ रखना तो विलासिता का प्रतीक मानते हैं लेकिन इंसान से दूर भागते हैं। दलित दुल्हे को घोड़ी से उतारना, मटके से पानी पीने पर छात्र को निर्मम मारना आदि घटनाये समाज के माथे पर काला टीका हैं

गांधी जी ने रंगभेद के रूप में इस अस्पृश्यता की यातना स्वयं भोगी और झेली थी। इसलिए उनकी आत्मा में किसी दलित से अधिक दलित चेतना की बैचेनी और छटपटाहट मिलती है। गांधी जी कहते हैं कि अस्पृश्यता सम्पूर्ण मानवता के विरुद्ध किया गया जघन्यतम अपराध और क्रूरतम हिंसा है। सामान्यतः मानव हत्या में तो आप व्यक्ति को एक बार मार देते हैं, लेकिन अस्पृश्यता में मानवता के एक विशाल समुदाय के मन में बूँद-बूँद घृणा टपकाते हैं तिल-तिल उनकी नैतिक हत्या करते हैं, तिल-तिल उनकी आत्मा का वध करते हैं, यहा तक कि उनका सम्पूर्ण अमानवीकरण कर देते हैं।

स्वराज्य की स्थापना के प्रसंग पर गांधीजी कहते हैं कि 'जब तक हिन्दु समाज अस्पृश्यता के पास से मुक्त नहीं हो जाता है, जब तक स्वराज्य की स्थापना असम्भव है। जब तक हिन्दु धर्म में अस्पृश्यता कायम है तब तक मुझे शर्म आती है और हिन्दु होने का दावा करने में भी मुझे संकोच होता है'

गांधी जी कहा कि साम्प्रदायिक फूट और अस्पृश्यता के कलंक से मुक्ति होने पर ही भारत के सात लाख स्वस्थ, आत्मनिर्भर, साक्षर और अहिंसक उद्योगों के आधार पर सहकारी संघ में एकत्रित हुए गांवों को कोई गुलाम नहीं रख सकता।

गांधी जी का यह मानना था कि हिन्दु धर्म में अस्पृश्यता आज जिस रूप में प्रचलित है वह मेरी राय में ईश्वर व मनुष्य के प्रति पाप है और इसलिए वह जहर की तरह धीरे-धीरे हिन्दुधर्म को खोखला किये जा रहा है

गांधी जी अस्पृश्यता रूपी कलंक से आहत थे। उन्होंने अस्पृश्यता निवारण के लिये 'हरिजन सेवक संघ' नामक संगठन बनाया। इस संघ की कल्पना उन्होंने प्रायश्चित्त करने वालों के एक समाज के रूप में की जिससे हिन्दु समाज तथा कथित अस्पृश्यों के प्रति किये गये अपने पाप का प्रायश्चित्त कर सके।

इस अस्पृश्यता निवारण के व्रत द्वारा आप समाज में व्याप्त वैमनस्यता को समाप्त कर समतामूलक समाज की स्थापना की जा सकती है

9. शारीरिक श्रम:- गांधी जी ने अपने जीवन में शारीरिक श्रम को बहुत महत्व दिया। वे अपने पत्र लेखन, पुस्तकों के जिल्द चढ़ाना, बाइंडिंग, कपड़े धोना, बाल काटना, बकरी का दूध निकालना, सफाई, पानी भरना, सूत काटना आदि कार्य स्वयं करते थे। उन्होंने शारीरिक श्रम की महत्वा को स्पष्ट करते हुए कहा कि "रोटी के लिये श्रम का अर्थशास्त्र जीती-जागति जीवन पद्धति हैं इसका मतलब यह है कि हर आदमी को अपनी रोटी, कपड़े के लिये शारीरिक श्रम करना होगा अगर लोगों को रोटी के लिये श्रम का महत्व और उसकी आवश्यकता समझा सकू तो रोटी, कपड़े की कमी कभी नहीं पड़ेगी"।

अतः आज जहां लोग आलस्य से ग्रस्त हैं। विलासिता पूर्ण जीवन के चलते शारीरिक श्रम नहीं करते। जिसके परिणाम स्वरूप शेष जनसंख्या पर कार्य भार बढ़ रहा है। इसके साथ ही शारीरिक श्रम के अभाव में अनेक बीमारियों से ग्रस्त युवा पीढ़ी मानसिक रूप से अस्वस्थ हो रही हैं। कामिक या शारीरिक श्रम के द्वारा व्यक्ति न केवल अपना शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य सुधार सकता है बल्कि अपने कौशल को विकसित कर राष्ट्र निर्माण में भी योगदान दे सकता है।

10. सर्वधर्म सम्भाव:- सर्वधर्म सम्भाव गांधी के विचारों व कार्यों में निहित था। गांधी जी के आश्रम साम्प्रदायिक सद्भाव के केन्द्र थे। गांधी जी के आश्रम सभी जातियों व सम्प्रदायों के लिये खुले थे। यहां किसी प्रकार का भेदभाव करने वालों के लिए प्रवेश पाना सम्भव नहीं था। गांधी जी ने अपने आश्रमों के लिये सभी धर्मों की मुख्य बातों को सम्मिलित करते हुए सर्वधर्म प्रार्थना तैयार करवायी तथा उनका गायन प्रार्थना सभा में होता था। इन प्रार्थनाओं में प्रमुख प्रार्थना थी "वैष्णव जन तो तेने कहिए"। इस प्रकार गांधी जी के आश्रमों में साम्प्रदायिक सद्भाव के बीज पल्लवित होते थे।

सर्वधर्म सम्भाव को भारतीय संस्कृति का आधार बताते हुए गांधी जी कहते हैं कि "हिन्दुस्तान उन सब लोगों का है जो वहां पैदा हुए हैं और पले हैं और जो किसी दूसरे देश का आसरा नहीं ताक सकते। इसलिए यह जितना हिन्दुओं का है उतना ही पारसियों, हिन्दुस्तानी ईसाइयों, मुसलमानों और दीगर गैर हिन्दुस्तानियों का भी है।

इस प्रकार गांधी के विचारों में सर्वधर्म की भावना झलकती हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे देश का धर्म के आधार पर विभाजन हुआ और आज साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाये आम हैं। गांधी के सर्वधर्म सम्भाव के व्रत का पालन कर साम्प्रदायिक सद्भाव की भावना का विकास सम्भव है। मानवता के भाव, मनुष्य मात्र से प्रेम, सामाजिक, आर्थिक सौहार्द की भावना का विकास कर व्यक्ति के व्यक्तित्व को पवित्र बनाया जा सकता है। मनुष्य ने आपसी प्रेम, सौहार्द एवं आत्मीयता के भाव से ही भारत में साम्प्रदायिक सद्भाव सम्भव है।

11. स्वदेशी:- गांधी जी स्वदेशी पर बल देते हुए स्थानीय कुटीर उद्योगों के विकास एवं स्वदेशी विचार का प्रसार-प्रसार किया। स्वदेशी के बल पर असहयोग व सविनय अवज्ञा आन्दोलन के माध्यम से राष्ट्र की आजादी के युद्ध को सफल बनाया। स्वदेशी के भाव को जन-जन में प्रसारित करने में गांधी जी को योगदान महत्वपूर्ण है।

गांधी जी कहते हैं कि "स्वदेशी वह भावना है जो हमें दूर-दराज के इलाकों को छोड़कर अपने समीपस्थ क्षेत्रों का उपयोग करने और उनकी सेवा करने तक सीमित करती हैं जहां तक आर्थिक क्षेत्र का सम्बन्ध है। मुझे उन चीजों का इस्तेमाल करना चाहिए जिनका उत्पादन मेरे समीपस्थ पड़ोसी करते हैं और मुझे वहां के उद्योगों में कोई कमी दिखाई देती है तो मुझे उन्हें अधिक कार्यकुशल और पूर्ण बनाने के लिए उनकी सेवा करनी चाहिए।"

गांधी जी का यह मानना था कि उत्पादन और उपयोग स्थानीयकृत होते हैं तो उत्पादन में अंधाधुंध और किसी भी कीमत पर वृद्धि करने का लालच समाप्त हो जाता है। तब हमारे वर्तमान अर्थ की सभी अनन्त कठिनाईयाँ और समस्याएं समाप्त हो जाती हैं।

गांधी जी ने स्वदेशी कुटीर उद्योगों का समर्थन करते हुए कहा कि “मैं सीधे सादे औजारों, उपकरणों और यंत्रों का स्वागत करता हूँ, जो व्यक्ति के श्रम को बचाते हैं और लाखों झोपड़ियों के काम के बोझ को हल्का करते हैं।”

इस प्रकार स्वदेशी को अपने एकादश व्रत में शामिल कर गांधी जी ने इसे जनमानस के अन्तःस्थल तक पहुंचाया।

आज प्रभाव से प्रभावित युवा स्वदेशी मूल्यों को भूल रहे हैं उनमें स्वदेशी के भाव को बढ़ाकर लघु व कुटीर उद्योगों के द्वारा स्वरोजगार को बढ़ाकर युवाओं के व्यक्तित्व को नयी दिशा दे सकते हैं।

निष्कर्ष :-

गांधी जी ने एकादश व्रत के द्वारा व्यक्तित्व निर्माण के विभिन्न आयामों जैसे शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक विकास के साथ ही व्यक्ति के जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक पक्षों का उत्थान सम्भव है। सत्य, अहिंसा, असत्य, अपरिग्रह व अभय द्वारा व्यक्ति की आत्मा की उन्नति तथा कामिक श्रम, अस्पृश्यता निवारण, साम्प्रदायिक सदभाव एवं स्वदेशी द्वारा व्यक्ति, समाज व राष्ट्र का उत्थान सम्भव है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. गांधी: समग्र विचार दर्शन विशेषांक, भाषा-पृ 45 नवम्बर-दिसम्बर 2018, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार।
2. गांधी की नैतिकता, सुजाता, सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट वाराणसी 2012
3. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय भाग-2 पृ. 30, प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रसारण मंत्रालय।
4. महात्मा गांधी के सिद्धान्त की दार्शनिक पृष्ठभूमि, संजय शाह मंत्रालय, इन्टरनेशनल जनरल ऑफ एम्पलाईड रिसर्च।
5. गांधी दर्शन एक अनुचिन्तन, डॉ. अनेकान्त कुमार जैन, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई देहली 2012।
6. सत्य के साथ मेरे प्रयोग।
7. हिन्द स्वराज्य।
8. स्वास्थ्य कुंजी।
9. अहिंसा के सम्बन्ध में गांधी जी के विचार, कुलदीप सिंह।
10. यंग इण्डिया पृ.2, 02.09.1930।
11. हरिजन, 3-11-1946 पृष्ठ 388।
12. हरिजन 07-09-1947 पृ. 316।
13. यंग इण्डिया, 17-06-1926 पृ. 218।
14. स्पीचेस एण्ड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी, जी.ए. नटेसन एण्ड कम्पनी मद्रास 1933 पृ. 336-44 ।
15. महात्मा गांधी के विचार, सम्पादक आर. के. प्रभु तथा यू. आर. राव, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया 1994 ।
16. गांधी जी के साथ पच्चीस वर्ष, महादेव भाई की डायरी, खण्ड -12 पृ. 309-310।
17. पूर्णाहुति खण्ड -1, पृ. 80।
18. पूर्णाहुति खण्ड - 2, पृ. 253।

भारत में निर्वाचन प्रणाली एवं दलीय व्यवस्था: स्वरूप एवं सुधार हेतु सुझाव

नन्दराम खटीक

सह आचार्य-राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश

सक्षम संसदीय लोकतंत्र स्वस्थ निर्वाचन प्रणाली और स्वच्छ, स्वतंत्र तथा निष्पक्ष निर्वाचनों के ऊपर टिका होता है। संविधान के निर्माताओं की उम्मीद थी कि सार्वभौम वयस्क मताधिकार के द्वारा लोग ऐसे प्रतिनिधियों को निर्वाचित करेंगे जो वास्तव में उनका प्रतिनिधित्व करेंगे, उनकी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करेंगे और उन्हें ऐसी संवेदनशील तथा उत्तरदायी सरकार देंगे जो बिना किसी भेदभाव के सुरक्षा तथा सुशासन सुलभ कर सके।

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संसदीय प्रतिनिधिक लोकतंत्र को देश के लिए सर्वश्रेष्ठ माना और संविधान ने उसे अंगीकार किया। आधुनिक प्रतिनिधिक लोकतंत्र के मायने हैं कि जनता अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा स्वयं अपने ऊपर शासन करे। इस प्रकार लोकतंत्र की सफलता और सार्थकता की नींव और कुंजी है निर्वाचन प्रणाली और राजनीतिक दल व्यवस्था।

मूल शब्द- प्रतिनिधित्व, लोकतंत्र, संविधान, निर्वाचन, मताधिकार, गांधीवादी।

परिचय- भारतीय संविधान की उद्देशिका में कहा गया है कि “हम भारत के लोग इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।” इस शब्दावली का स्पष्ट अर्थ निकलता है कि भारत की राजनीतिक व्यवस्था में संप्रभुता का वास जन साधारण में है।

भारत के लोग लोकसभा और राज्य-विधानसभाओं के लिए प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते समय मत डाल कर अपनी प्रभुसत्ता का प्रयोग करते हैं। संविधान ने अनुच्छेद 324 के द्वारा संसद और प्रत्येक राज्य के विधान मंडल के लिए कराए जाने वाले सभी निर्वाचनों के लिए तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचनों के लिए निर्वाचक नामावली तैयार कराने का और सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग में निहित किया है।

अनुच्छेद 327 के अनुसार संसद समय-समय पर विधि द्वारा संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान मंडल के सदन या प्रत्येक सदन के लिए निर्वाचनों से संबंधित या संसक्त सभी विषयों के संबंध में, जिसके अंतर्गत निर्वाचक नामावली तैयार कराना, निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन और ऐसे सदन या सदनो का सम्यक् गठन सुनिश्चित करने के लिए अन्य सभी आवश्यक विषय हैं, उपबंध कर सकती है।

अनुच्छेद 328 ने किसी राज्य के विधानमंडल के लिए निर्वाचनों के संबंध में उस विधान मंडल की शक्ति का निरूपण किया है। निर्वाचन आयोग की शक्तियाँ और क्षेत्राधिकार निर्वाचन कराने तक सीमित है।

पहले साधारण निर्वाचन (1951-52) के समय से ही निर्वाचन सुधारों पर व्यापक चर्चा होती रही है। निर्वाचन आयोग की हर रिपोर्ट में सुधार प्रस्तावों का उल्लेख है और यह क्रमिक मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने इस समस्या की ओर ध्यान दिया है।

1990 में नियुक्त सर्वदल दिनेश गोस्वामी समिति की सिफारिशों को भी व्यापक समर्थन मिला था। लोकसभा ने निर्वाचन सुधारों के संबंध में लालकृष्ण आडवाणी के एक प्रस्ताव को सर्व सम्मति से पास किया था। इंद्रजीत गुप्ता समिति सभी राजनीतिक दलों की सहमति से यह निर्णय चाहती थी कि निर्वाचनों में होने वाला सारा खर्च सरकार उठाए।

वाजपेयी सरकार ने निर्वाचन सुधारों के कुछ प्रस्ताव निर्वाचन आयोग के पास टिप्पणी के लिए भेजे थे। निर्वाचन आयोग ने उन पर अपनी प्रतिक्रिया जाहिर की थी और अपनी ओर से भी कुछ प्रस्ताव रखे थे। विधि आयोग ने भी निर्वाचन सुधारों के प्रश्न पर विचार किया था। उसने सात विचार गोष्ठियों का आयोजन किया था। अंतिम विचार गोष्ठी विज्ञान भवन में हुई थी। आयोग ने निर्वाचन सुधारों के संबंध में एक विस्तृत प्रतिवेदन प्रकाशित किया था।

मार्च, 2008 के अंत में संविधान आयोग की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। रिपोर्ट में सबसे बड़ा अध्याय निर्वाचन और राजनीतिक दलों के सुधारों के बारे में था। इस विषय में आयोग की सिफारिशें सबसे महत्वपूर्ण थीं। संविधान आयोग की रिपोर्ट नौकरशाही की दलदल में फँस गई। सरकार ने उस पर अपनी कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की।

संभवतः जनमत के बढ़ते दबाव के चलते भारत सरकार के विधि मंत्रालय और निर्वाचन आयोग ने मिल कर एक पृष्ठाधार प्रलेख प्रकाशित किया जिसमें इसी संविधान आयोग की कुछ सिफारिशों को दोहराया गया यद्यपि कुछ सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिफारिशों का उल्लेख नहीं किया गया उदाहरण के लिए, निर्वाचित होने के लिए डाले गए मता का पचास प्रतिशत से अधिक मिलना अनिवार्य होना।

निर्वाचन प्रक्रिया में सुधार करने के लिए कुछ सुझावों पर विचार किया जा सकता है -

- (1) निर्वाचन की लागत में कमी की जानी चाहिए। इसके लिए निर्वाचन अभियानों के नियम बदल देना आवश्यक होगा। निर्वाचन अभियान राज्य के खर्च पर इलेक्ट्रॉनिक और कंप्यूटर तकनीकों द्वारा किया जाना चाहिए। बड़ी-बड़ी चुनाव रैलियों पर जिनमें दर्शकों की गाड़ियों में बैठा कर सभा स्थल पर पहुँचाया जाए पाबंदी लगा देनी चाहिए।
- (2) जहाँ तक संभव हो, राज्य विधान सभाओं तथा संसद के चुनाव एक साथ होने चाहिए।
- (3) निर्वाचन अभियान की अवधि घटा देनी चाहिए।
- (4) किसी भी व्यक्ति को एक से अधिक निर्वाचन क्षेत्र से लड़ने की अनुमति नहीं देनी चाहिए।
- (5) जाचरण संहिता को एक विधि का रूप दे देना चाहिए और उसका उल्लंघन होने पर दंड देने का अधिकार निर्वाचन आयोग को होना चाहिए।
- (6) निर्वाचनों में दीवार को खाजा लकड़ी के बड़े-बड़े पुतलों और झंडों के प्रदर्शन, दल कार्यालयों, सार्वजनिक सभाओं और अन्य विशिष्ट स्थानों को छोड़कर बाकी स्थानों पर झंडों का फहरना, निर्दिष्ट संख्या से ज्यादा वाहनों का प्रयोग, चलते हुए वाहनों से चुनाव का प्रचार तथा घोषणाएँ करना, नियत समय से परे सार्वजनिक सभाओं का आयोजन, जिला निर्वाचन अधिकारियों द्वारा निर्दिष्ट स्थानों के अलावा अन्य स्थानों पर विज्ञापनों के प्रदर्शन पर पाबंदी लगनी चाहिए।
- (7) जो निर्वाचन आयोग द्वारा ही आयोजित न हों ऐसी सार्वजनिक सभाओं की अनुमति नहीं होनी चाहिए।
- (8) एक ऐसे कानून का निर्माण होना चाहिए जिसके अंतर्गत उम्मीदवारों, राजनीतिक दलों या एजेंटों द्वारा नारों के चित्रांकन, विज्ञापन और झंडे लगाने पर दंड देने की व्यवस्था हो।
- (9) आवश्यक निधियों के विधि सम्मत स्रोतों को निर्धारित किया जाना चाहिए। व्यक्ति तथा कंपनियाँ अधिक-से-अधिक कितना चंदा दे सकें, इसकी सीमा बढ़ा देनी चाहिए और ऐसे व्यक्तियों तथा कंपनियों को कर में भरपूर छूट मिलनी चाहिए।
- (10) निर्वाचनों में उम्मीदवार अधिक-से-अधिक कितना खर्च कर सकें, इसकी सीमा तय करना जरूरी है। प्रायः सभी उम्मीदवार निर्वाचन व्यय के गलत आँकड़े प्रस्तुत करते हैं। उम्मीदवार के मित्र और हितैषी उसके निर्वाचन में कितना खर्च करते हैं, इसका हिसाब लगाया जाना चाहिए और उसे उम्मीदवार के खर्च में शामिल करना उचित है। इस सारे आय-व्यय की रसीदों के आधार पर लेखा-परीक्षा आवश्यक कर देनी चाहिए।

अपराधीकरण- निर्वाचन प्रक्रिया के अपराधीकरण और अपराध के राजनीतिकरण के क्षेत्र में मुख्य समस्याएँ हैं-

अपराधियों को विधि की प्रक्रियाओं से रक्षा के लिए राजनीतिज्ञों के संरक्षण की आवश्यकता होती है। इसलिए अपराधी राजनीतिज्ञों की जेब भरते रहते हैं। राजनीतिज्ञों का अपना राजनीतिक गतिविधियों, दलों, निर्वाचनों और स्वयं अपने लिए विपुल यात्रा में बिना हिसाब-किताब वाले धन की आवश्यकता होती है। कर देने वाले लोग राजनीतिज्ञों को अंधाधुंध पैसा नहीं दे सकते। राजनीतिज्ञों की अधिक धन अपराध-जगत् से मिलता है।

राजनीतिज्ञ धीरे-धीरे अपराध-जगत् के शहंशाहों के ताबेदार बन गए। अपराधी स्वयं भी राजनीति के मैदान में कूद पड़े और चुनावों में खड़े होने लगे। राजनीतिज्ञों ने अपराधियों से आर्थिक सहायता ही नहीं ली, बल्कि उन्होंने अपने विरोधियों का मुकाबला करने के लिए बाहुबलियों से भी मदद ली।

सरकार द्वारा नियुक्त लोग समिति ने कठोर शब्दों में कहा था कि अपराधी गुटों तथा राजनीतिज्ञों के बीच गहरा संबंध है। केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने वोहरा समिति को दी गई अपनी रिपोर्ट में विचार व्यक्त किया था, अपराधी संगठन अपने आप में कानून बन गए हैं... छोटे शहरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों तक में गुंडों का राज स्थापित हो गया है। भाड़े के हत्यारे इस संगठनों के अभिन्न अंग हैं। देश के विभिन्न भागों में यह प्रमाणित हो गया है कि सरकारी नौकरों तथा राजनीतिज्ञों के बीच साठ-गाँठ है। वर्तमान फौजदारी कानून व्यक्तिगत अपराधों से निपटने के लिए था। वह माफिया की कार्यवाहियों से निपटने में असमर्थ है।

आर्थिक अपराधों के लिए कानून के उपबंध कमजोर हैं। माफिया अपने कारनामों से जो संपत्ति एकत्रित करते हैं, उसे जब्त करना कानूनी दृष्टि से असंभव है। माफिया तंत्र समानांतर सरकार चला रहा है। उसने राज्य की व्यवस्था को अप्रासंगिक बना दिया है। रिपोर्ट में आगे चलकर कहा गया था “बिहार, हरियाणा, उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में अपराधी गुटों को विभिन्न दलों के स्थानीय नेताओं तथा सरकारी अफसरों का संरक्षण प्राप्त है।

कुछ राजनीतिक नेता इन गुटों से सशस्त्र सेनाओं के नेता बन जाते हैं और कुछ समय बाद स्थानीय निकायों, राज्य विधानसभाओं तथा राष्ट्रीय संसद के लिए निर्वाचित हो जाते हैं। इन तत्त्वों का राजनीतिक प्रभाव बढ़ जाता है और वे प्रशासन के सुचारू संचालन में बाधाएँ पैदा करने लगते हैं। जनसाधारण की संपत्ति तथा जीवन की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है और लोगों के बीच निराशा की भावना घर कर लेती है।”

तथाकथित सभ्य समाज में आजकल जिन निर्वाचन संबंधी सुधारों की बात की जा रही है उनमें दो प्रमुख मुद्दे हैं - (1) निर्वाचित प्रतिनिधियों के वापस बुलाने का अधिकार (राइट टू रिकॉल) तथा (2) नकारात्मक (नेगेटिव) मतदान अथवा (राइट टू रिजेक्ट) अर्थात् किसी भी उम्मीदवार को मत न देने की घोषणा। हमारी वर्तमान व्यवस्था के चलते यह दोनों सुझाव नितान्त अव्यवहारिक और अर्थहीन हैं।

जहाँ जीतने वालों का बहुमत मतदाताओं के अल्पमत से जीता हो वहाँ रिकाल का मतलब होगा अधिकांश निर्वाचित सांसदों और विधायकों को निर्वाचन के नतीजे निकलते ही वापस बुलाने की प्रक्रिया का प्रारंभ होना। वापस बुलाने की याचिका पर कुछ प्रतिशत निर्वाचकों के हस्ताक्षर जरूरी होंगे। उदाहरण के लिए लोक सभा के निर्वाचक मंडलों में प्रायः कई-कई लाख (दस, बीस, तीस लाख) मतदाता होते हैं उनमें से 10 प्रतिशत या 50 प्रतिशत के हस्ताक्षर कराना और फिर उनकी सत्यता की जाँच कराने का काम सरल नहीं होगा और यदि प्रक्रिया सफल होती है तो बेहिसाब संख्या में निर्वाचन कराने होंगे। लोग और प्रशासन पहले ही वर्ष भर कहीं-न-कहीं लगातार चलते रहते निर्वाचन से तंग आ चुके हैं।

एक और बात, अगर एक बड़ी संख्या ऐसे मतदाताओं की है जिन्हें कोई भी प्रत्याशी ठीक नहीं लगता तो वह किसी अच्छे व्यक्ति को खड़ा क्यों नहीं कर सकते। किसी को भी न चुनना लोकतंत्र में विकल्प नहीं हो सकता। विकल्प होगा किसी अच्छे को उम्मीदवार बनाना और चुनना। दार्शनिक प्लेटों की कहना था कि अगर अच्छे लोग राजनीति में भाग लेने के लिए आगे नहीं आते तो उन्हें बुरे लोगों के शामिल होने की कीमत चुकानी होगी।

छल पद्धति- निर्वाचन सुधारों का अन्य कई क्षेत्रों से विशेष कर राजनीतिक दलों से संबंध है। संविधान में राजनीतिक दलों का कहीं उल्लेख नहीं था। इनका संविधान में सबसे पहले उल्लेख 1985 में अधिनियमित 52वें संवैधानिक संशोधन में किया गया था। फिर भी यह एक तथ्य है कि संविधान के अंतर्गत स्थापित प्रतिनिधिक लोकतंत्रात्मक शासन सुसंगठित राजनीतिक दलों के अस्तित्व पर निर्भर है।

पिछले कुछ दशकों में हमारी अनेक राजनीतिक कठिनाइयों का मूल कारण यह है कि हम राजनीतिक या आर्थिक कार्यक्रम पर आधारित दो या तीन स्वस्थ राष्ट्रीय राजनीतिक दलों का विकास नहीं कर सके हैं। इस समय पंजीकृत दलों की संख्या 1800 से अधिक है। लोकतंत्रात्मक शासन की सफलता के लिए दोनों आवश्यक हैं। सत्तारूढ़ दल भी और विरोधी दल भी। इसके लिए यह जरूरी है कि राजनीतिक दल लोकतंत्र के सिद्धांतों पर आधारित हों तथा लोकतंत्रात्मक रीति से चलें। इस बात की शिकायतें हैं कि हमारे अधिकांश राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र नहीं है।

लोक सभा और राज्य विधानमंडलों के लिए होने वाले निर्वाचनों में से तो नीति के कई प्रश्न होते हैं और न निर्वाचकों के सामने कोई कार्यक्रम ही रखा जाता है। सारा चुनाव व्यक्तियों तथा सत्ता के आधार पर लड़ा जाता है। दल विकास, राष्ट्रीय अभिमान, सुरक्षा तथा पंथ निरपेक्षता की बात अवश्य करते हैं लेकिन इन प्रश्नों के बारे में उनकी कोई निश्चित धारणा नहीं होती। राजनीतिक दलों का एक ही लक्ष्य होता है। किसी प्रकार सत्ता प्राप्त करना और एक बार सत्ता पा लेने पर उस पर डटे रहना। लोग भी समझ जाते हैं कि राजनीतिज्ञ उनके हितों की अनदेखी कर ज्यादा-से-ज्यादा अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगे हुए हैं।

जहाँ एक बार निर्वाचन समाप्त हुए, सारी लड़ाई मुख्यमंत्री, मंत्री या अन्य लाभकारी पदों के लिए शुरू हो जाती है। लोगों का राजनीतिज्ञों पर से विश्वास हटता जा रहा है। राजनीतिज्ञों का लक्ष्य जनता की सेवा करना नहीं, अपनी तिजोरियाँ भरना हो गया है। लोकतंत्र में यह सबसे अधिक दुःख की बात होती है कि प्रतिनिधि निर्वाचकों की दृष्टि में गिर जाएँ।

संसदीय लोकतंत्र में विरोधी दल सरकार का ही एक अंग माना जाता है। भारत में विरोधी दल अपनी जिम्मेदारी नहीं समझता। जब कोई राजनीतिक दल सत्ता में होता है, तब वह एक ढंग से काम करता है और जब विरोध में होता है, तब दूसरे ढंग से। राजनीतिक दलों को यह याद रखना चाहिए कि यदि वह आज सत्ता में है तो कल विरोध में बैठ सकता है और यदि इस समय विरोध में है, तो कभी सत्ता में भी आ सकता है। सत्ता पक्ष और विरोधी पक्ष दोनों में एक-दूसरे के प्रति आदर और सम्मान की भावना रहनी चाहिए। यह नहीं कि वे एक-दूसरे को अपना और देश का दुश्मन समझें।

वैस्टमिंस्टर मॉडल की सफलता की बुनियादी शर्त द्वि-दल पद्धति है। दोनों दलों की सुनिश्चित विचारधारा और कार्यक्रम होना चाहिए। भारत में हमने ब्रिटिश संसदीय शासन-प्रणाली को तो अपना लिया है लेकिन इंग्लैंड की तरह दो राजनीतिक दलों का विकास नहीं हो सका है। संसदीय शासन में मुख्य विरोधी दल को वैध विकल्प माना जाता है, उसे स्वीकार किया जाता है और उसका आदर किया जाता है। उसे अछूत समझ कर तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखा जाता। भारत जैसे विशाल देश में प्रादेशिक दलों का भी अपना महत्त्व है। राष्ट्रीय गठबंधनों के भाग बन कर वे भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समस्या तब आती है जब वह अपने समर्थन के लिए अनैतिक सौदेबाजी करने लगें और ब्लैक मेल कर उतारू हो जाएँ।

राजनीतिक दलों के लिए कानून- संविधान ने नागरिकों को संघ बनाने का मूल अधिकार दिया है। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के परिच्छेद 29-क ने उपबंध किया है कि भारत के नागरिकों के संघों और निकायों को निर्वाचन आयोग के पास राजनीतिक दलों के रूप में पंजीकृत किया जा सकता है। निर्वाचन आयोग निर्वाचन प्रतीक (आरक्षण और आवंटन) आदेश, 1968 के अनुसार राष्ट्रीय या राज्य-स्तरीय राजनीतिक दलों को मान्यता देता है।

आयकर अधिनियम के अंतर्गत राजनीतिक दलों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपना रखें, 20 हजार या उससे ज्यादा रुपयों का चंदा देनेवालों के नाम और पते बताएँ, उनकी लेखा परीक्षा कराएँ तथा हर साल आय-व्यय का विवरण पत्र आयकर कार्यालय में जमा करें। कंपनियाँ अपने लाभ का पाँच प्रतिशत तक राजनीतिक दलों को दे सकती है। लेकिन, राजनीतिक दल इन कानूनी उपबंधों की ओर ध्यान नहीं देते। वे वार्षिक विवरण-पत्र कम ही भरते हैं। वे अपनी आय-व्यय के विवरण छिपा कर रखते हैं। आयकर अधिनियम के अधीन किसी दल के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई है।

संविधान (52वाँ संविधान) अधिनियम, 1985 ने संविधान की दसवीं अनुसूची जोड़ दी है। इस अनुसूची में दल परिवर्तन के आधार पर राजनीतिक दल के किसी सदस्य को संसद के किसी सदन या राज्य विधानमंडल के किसी सदन की सदस्यता से अनर्ह करने का प्रावधान है। इन अपवादों को छोड़कर आज भी राजनीतिक दलों के निर्माण, पंजीकरण क्रियान्वयन या विनियमन के बारे में अन्य कोई कानून नहीं है।

राजनीतिक दलों के सदस्यों और कार्यों का विनियमन करने के लिए व्यापक कानून बना कर उन्हें औपचारिक आधार दे दिया जाए। कानून में राजनीतिक दलों के पंजीकरण, उन्हें मान्यता देने, उनकी मान्यता छीन लेने, उनके राष्ट्रीय या राज्य-स्तर का होने और उनके द्वारा हिसाब-किताब रखने के बारे में नियम होने चाहिए।

जब तक राष्ट्रीय और राज्य-स्तरो पर राजनीतिक दलों तथा उनके गठबंधनों की संख्या कानून द्वारा विनियमित नहीं होगी तब तक हमारे विधायकों को वास्तविक प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता। केवल मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दलों तथा मतदान पूर्व गठबंधनों की (जिन्होंने डाले गए मतों के कम-से-कम 5 या 10 प्रतिशत मत प्राप्त किए हों) लोक सभा के निर्वाचनों में खड़े होने के लिए समान प्रतीक दिए जाने चाहिए। राज्य स्तरीय दलों को राज्य विधानमंडलों तथा राज्य सभा के निर्वाचनों के लिए समान प्रतीक दिए जाने चाहिए। मतदान पूर्व गठबंधनों को बढ़ावा देने से मत संचित होंगे और संघीय दलों या गठबंधनों के विकास में मदद मिलेगी तथा अधिक स्थिर सरकारों का निर्माण होगा।

निष्कर्ष- आज राष्ट्र के और उसके लोकतंत्र के भविष्य को सुरक्षित रखने के लिए, व्यापक प्रशासनिक, संसदीय तथा न्यायिक सुधार करने होंगे। सभी आवश्यक और महत्वपूर्ण हैं, किंतु प्राथमिकता दी जानी चाहिए निर्वाचन सुधारों को क्योंकि निर्वाचन प्रणाली और राजनीतिक दल व्यवस्था हमारी अनेक समस्याओं और राजनीति में आई विभिन्न विसंगतियों की जड़ में है, जैसे-कालाधन, भ्रष्टाचार, राजनीति का अपराधीकरण आदि।

राजनीतिक दलों विषयक प्रस्तावित कानून में दलों की आर्थिक स्थिति तथा आंतरिक लोकतंत्र जैसे मामलों का भी प्रावधान होना चाहिए। कानून में यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि कोई राजनीतिक दल ऐसे किसी उम्मीदवार को टिकट न दे जिसे न्यायालय ने अपराध के लिए दोषी पाया हो या उसके ऊपर आपराधिक आरोप लगाए हो। यदि कोई दल इस उपबंध का उल्लंघन करे तो संबद्ध उम्मीदवार को अनर्ह घोषित करने के साथ-साथ दल की मान्यता समाप्त कर देनी चाहिए। यदि इस सुझाव को लागू किया जाए तो राजनीति में अपराधियों के बढ़ते हुए प्रभाव पर अंकुश लगेगा।

आवश्यकता है निर्वाचन प्रणाली और राजनीतिक दल व्यवस्था में सुधारों के लिए एक व्यापक जन अभियान की, जन-आंदोलन की जन-जन को जगना होगा, लोकतंत्र में भागीदार बनाना होगा, अपने दायित्वों को पहचानना होगा।

1. गेना, सी.बी., तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1978, पृ. 36
2. रंजन, राजीव, चुनाव, लोकसभा और राजनीति, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2000, पृ. 47
3. दास, हरिहर, पॉलिटिकल सिस्टम ऑफ इंडिया, अनमोल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1998, पृ. 51
4. लाल. शिव, दी प्राइम मिनिस्टर्स पोलकेस एण्ड अवर जजमेन्ट्स, दी इलेक्शन्स आर्काइव्स, नई दिल्ली, 1977, पृ. 10
5. कॉजेंकर, एस.वी. तथा रिचार्ड एल. पान रिपोर्ट्स ऑफ दी इण्डियन जनरल इलेक्शन्स 1951-52, पोपुलर बुक डिपो, बाम्बे, 1956, पृ. 32
6. कश्यप, सुभाष सी., अवर पार्लियामेन्ट, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2011, पृ. 87
7. जैन, एस.एन., भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 1998, पृ. 98
8. जनरल इलेक्शंस, 1962 फैक्ट्स एण्ड फिगर्स, इण्डियन प्रेस इन्फोरमेशन ब्यूरो, इलैक्शन्स यूनिट, नई दिल्ली, 1962, पृ. 7
9. दुबे, रमेश, व शर्मा, हरीश चंद्र, भारत में लोक प्रशासन, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2012, पृ. 34
10. शर्मा, अशोक, भारत में लोकतंत्र और निर्वाचन, अनुसंधान व विशद् अध्ययन संस्थान, जयपुर, 1984, पृ. 67
11. राठौड़, मीना, भारत में राजनीतिक दल, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2003, पृ. 13
12. भगवती, जगदीश एन, तथा अन्य इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन दी इण्डियन स्टेट्स. मनोहर, दिल्ली, 1975, पृ. 74
13. नारायण, इकबाल, लिन्केज: इलिट एण्ड इलेक्शन इन एन इंडियन स्टेट, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1978, पृ. 12
14. सिंह, निशांत, लोकतंत्र और चुनाव सुधार, राधा पब्लिकेशन्स, दरियागंज नई दिल्ली, 2003, पृ. 71
15. महेश्वरी, एस.आर., इलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन नेशनल मेट्रोपोलिस, रीतु पब्लिकेशन्स, 1982, पृ. 15
16. बम्बवाल, के. आर. भारतीय राजनीति और शासन, आत्माराम एण्ड संस, द्वितीय संस्करण, दिल्ली, 1961, , पृ. 27
17. गोयल, एम.एल., पॉलिटिकल पार्टीसिपेशन इन ए डवलपिंग नेशन, इंडिया एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, 1974, पृ. 72

अथर्ववेद में निहित सतत् विकास की अवधारणा

डॉ० योगिता मकवाना

सह आचार्य- संस्कृत, बाबू शोभाराम राजकीय कला, महाविद्यालय, अलवर

परिचय

सभ्यता के विकास के साथ विकसित होता प्रकृति का उपासक मानव उन्हीं प्राकृतिक तत्वों का नियन्ता बन गया। वक्त के साथ बदलती मानसिकता तथा परिवर्धित होते मानवीय क्रियाकलापों के साथ तकनीक में उन्नतिशील मनुष्य, भौतिक तथा मानसिक धरातल पर आर्थिक व प्रौद्योगिक मानव बन चुका है। तकनीकी प्रगति, वैज्ञानिक उपहारों से आह्लादित तथा आर्थिक सम्पन्नता के लिए प्रयासरत प्रत्येक मनुष्य भूमण्डलीय तापन, जलवायु परिवर्तन, सीमित संसाधनों की समाप्य प्रवृत्ति के साथ जूझ रहा है। यह आर्थिक मानव उस समय चिन्तातुर हो उठता है जब इसकी निर्माणाधीन व भावी योजनाएँ किसी प्राकृतिक परिघटना के प्रभावाधीन चौपट होने की आशंकाएँ प्रबल हो जाती हैं। इसके चेतन मन में यदा-कदा उत्पन्न होने वाले ये तनाव ही इसे मानव-पर्यावरण संबंधों पर पुनः विचार करने हेतु प्रेरित करते हैं जो कि इसकी वर्तमान व भावी समस्याओं का एक स्थायी हल हो सकता है। आधुनिक मानव की मानसिकता को मानव जाति के समक्ष मौजूद समस्याओं की भयावहता तथा उसके अतीत का पुनःस्मरण करवाकर ही प्रकृति प्रेमी विचारधारा में बदला जा सकता है। इस प्रकार मानव अपनी लोभ प्रवृत्ति का त्याग कर, आवश्यकता पूर्ति तक सीमित रहना सीख जाये तो यही प्रक्रिया उसके व आने वाली पीढ़ियों के लिए संधृत विकास अथवा सतत् विकास कहलाएगी।

इस प्रकार के चिंतन की वैश्विक स्तर पर शुरुआत 20वीं शताब्दी के अर्द्धशतक के पश्चात् हुई जबकि पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रमों का निर्माण व क्रियान्वयन हेतु विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संगठन जैसे- प्राकृतिक संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय संघ (IUCN) 1948 में, विष्व वन्यजीव कोष (WWF) 1962 में, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) 1972 में, पर्यावरण व विकास का विश्वव्यापी कोष (WCED) 1984 में तथा जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र संघ का अर्द्धसरकारी दल (IPCC) 2007 इत्यादि अस्तित्व में आये। इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण व सतत् विकास संबंधी चिंतन, कार्ययोजनाओं का निर्माण तथा उन्हें क्रियान्वित करने संबंधी सामयिक आयोजन किये जा रहे हैं।

इन सभी गतिविधियों व पर्यावरणीय नीतियों से इतर अगर समृद्ध भारतीय वैदिक साहित्य का पुनरावलोकन किया जाये जो कि आध्यात्मिक दर्शन के साथ-साथ वृहद् रूप से सामाजिक संरचना, राजनैतिक कर्तव्य, आर्थिक क्रियाकलापों कृषि, खनन, व्यापार इत्यादि, पर्यावरणीय तत्वों के कार्य तथा उनके चिरकाल तक सदुपयोग हेतु भौतिक व नैतिक दिशा निर्देश, संसाधन विदोहन, संसाधन संरक्षण जैसे अनन्य महत्वपूर्ण तथ्यों संबंधी गूढ़ रहस्यों को सूक्त व मंत्रों के रूप में समाहित किये हुए हैं। वेदों की गणना भारतीय ही नहीं अपितु विश्व के प्राचीनकाल साहित्यों में की जाती है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग और उपांग आते हैं। संहिता में देवताओं की स्तुतिपरक मंत्र अर्थात् ऋचाएँ हैं संहिता चार है। संहिता ऋक् (ऋचा), यजुष, साम और अथर्व है। ऋग्वेद को ज्ञान कांड, सामवेद को उपासना कांड, यजुर्वेद को कर्मकांड, तथा अथर्ववेद को विज्ञान कांड माना जाता है। यहाँ प्रस्तुत लेख में अथर्ववेद के मंत्रों को आधार मानकर निज ज्ञान की सामर्थ्यानुसार शीर्षक से संबंध करने का प्रयास किया गया है।

प्रदूषित जल स्रोत बनाम 'जल अमृत है, जल में औषधि है।'¹

जल जो कि जीवन का आधार है, औद्योगिक अपशिष्टों, हानिकारक रसायनों, तेल रिसाव द्वारा बड़े पैमाने पर प्रदूषित किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त वाहित मल, कीटनाशक, घरेलू गंदगी जल में मिलने पर निर्मल जल, मलवाही जल में परिवर्तित हो जाता है। मानवीय आवश्यकताओं की पूरक व धार्मिक महत्त्व की नदियाँ गन्दे नालों में तब्दील हो रही हैं। "सर्वे भवन्तु सुखिनः" जैसे वाक्यांश हमारी स्वार्थपरकता से न जाने कहाँ दमित हो गये हैं। आज का पूँजीपति वर्ग आम आदमी के प्रति बिलकुल भी चिन्तातुर नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे अंतःकरण में मानवीय मूल्यों तथा पूर्वजों की वैचारिक धरोहर के प्रति कोई सम्मान नहीं है। जबकि हमारे वैदिक साहित्य में तो जल स्रोतों को शुद्ध रखने का आह्वान किया गया है-

शंत आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्याः।

शंते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्वाः ॥अ.११९।२॥ ॥

(हे मनुष्य! तेरे लिए पहाड़ों से आने वाले जल शान्तिदायक हो। कुओं से निकलने वाले जल, बहता जल, वर्षा का जल शान्तिदायक हो। इसका आह्वान किया गया है।)

किन्तु जल के स्रोत एवं साधन तभी शान्तिदायक होंगे यदि उन्हें शुद्ध रखा जायेगा तथा संरक्षित किया जायेगा, जब प्रत्येक व्यक्ति अपनी चेतना में उक्त श्लोक में निहित रहस्यों को धारण करेगा।

भूगर्भ का शोषण बनाम 'पृथ्वी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।'²

अन्नदायी तथा पालनहारी धरती भी तृष्णालु मानव के राक्षसी पंजों से स्वयं को नहीं बचा पाई है। हिरण्यगर्भा पृथ्वी सदियों से धन-धान्य व खनिज पदार्थों से मानव आव यक्ताओं की पूर्ति कर रही है किन्तु आर्थिक मानव भूगर्भ को खंगाल कर अपने हितार्थ सब कुछ प्राप्त करने की कोशिश में दिन रात जुटा हुआ है। महात्मा गाँधी जी की बात की प्रासंगिकता यहाँ सिद्ध होती है कि प्रकृति मानव की जरूरतों को तो पूरा कर सकती है परन्तु मानव के लालच को तृप्त नहीं कर सकती। संसाधनयुक्त होने की इसी होड़ में भू राजनीतिक महत्वाकांक्षें सामने आ रही हैं। विष्व की आर्थिक शक्तियाँ येन केन प्रकारेण दूसरे देशों के संसाधनों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कब्जा करने की जद्दोजेहद में संलिप्त हैं। यह व्यक्तिगत लोभ प्रवृत्ति संतोष द्वारा परिपूरित हो सकती है। अगर निम्नलिखित वैदिक सूत्र को समझ लिया जाये-

यत ते भूमे विखनामि क्षिप्र तदपि रोहतु।

मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमपिपम्॥ अ.। 12। 1। 35।

(हे भूमि। मेरे द्वारा उपयोग किये गये पदार्थ शीघ्र उगें हे खोजने योग्य। न तो तेरे मर्म स्थल को और न तेरे हृदय को मैं हानि करूँ।)

उपरोक्त मंत्र विचार को हृदयंगम करने पर जल व खनिजों कमा अतिरिक्त दोहन निश्चित ही खत्म हो जायेगा बशर्ते इन वैदिक रहस्यों को श्रद्धा के साथ विचारा जाये जैसे कि हमारे पूर्वज विविध प्राकृतिक तत्वों को देवरूप मानकर उनके उपकार के प्रति स्वयं को अनुगृहीत मानकर कृतज्ञता अपूण करते थे।

वायु को गुणवत्ता में ह्रास बनाम 'दोषनाशक पवन के तथा सर्वप्रेरक सूर्य के गुणों को हम विचारते हैं।'³

सूर्यताप तथा वायु की मौजूदगी दो ऐसे विषिष्ट प्राकृतिक उपहार हैं जिनके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। अगर पृथ्वी आठों पहर अंधकार के आगोष में डूबी रहे अथवा हमें थोड़ा समय प्राणवायु न मिले तो जीव जगत की क्या गति होगी इसकी हम कल्पना कर सकते हैं। यह प्राकृतिक व्यवस्था विशाल है तथा इस व्यवस्था में संतुलन बनाये रखने के तथा अव्यवस्था पैदा करने वालों को दंडित करने के तरीके भी बड़े पैमाने के परन्तु मंथर गति से प्रभावी हैं अतएव जीवन भर मानव इन उपहारों के प्रति कृतज्ञता अर्पित न करके अपने हितार्थ उन्हें प्रदूषित करता रहा है। विशेषकर वायुमण्डलीय अपुद्धियाँ (हानिकारक गैसों, धुआँ, विभिन्न रसायनों, रेडियोएक्टिव विकिरणों, इत्यादि) वायु में मिश्रित करके इस प्राकृतिक व्यवस्था को असंतुलित करने की ओर मानव अग्रसर है। वायु की गुणवत्ता में ह्रास आधुनिक विश्व के लिए सबसे बड़ा खतरा है। तकनीकी व औद्योगिक प्रगति तथा समय से आगे निकलने की होड़ में वह शुद्ध वायु की महत्ता को भूलकर आर्थिक उन्नति के प्रति चिंतित दिखाई पड़ता है।

हमारे सौरमण्डल में आदिकाल से ऊष्मा का एकमात्र स्रोत सूर्य है जिससे प्राप्त ऊष्मा विविध रूपों में जीवनदायी शक्ति है। सूर्य रश्मियाँ इसके अतिरिक्त अपनी गर्मी के द्वारा रोगाणुनाशक, प्रतिरोधक क्षमता वर्धक इत्यादि प्रभाव पैदा करती है। इसके अतिरिक्त यह ऊर्जा विविध रूपों में प्राकृतिक तत्वों की मलिनता को भी दूर कर उनकी सतत् संपोषणीयता को प्रभावी बनाती है। सौर्यताप से ही वर्षा, पवन प्रवाह जैसे भौगोलिक तथ्य प्रकट होते हैं जिससे सम्पूर्ण पृथ्वी पर शुद्ध जल की प्राप्ति तथा वायु द्वारा ऊष्मा वितरण प्रदूषक तत्वों के एक स्थान पर सांद्रण में कमी करके विस्तृत क्षेत्र में प्रसरण तथा शुद्धिकरण किया जाता है।

वायु दूसरी मुख्य प्राकृतिक शक्ति है जो कि जैविक जगत में श्वसन जैसी प्रमुख अनिवार्यता को संपादित करती है। पृथ्वी के चारों ओर मौजूद वायु का आवरण ही जैविक जगत के अस्तित्व का कारण है। वायु के नैसर्गिक गुणों को स्वास्थ्य वर्धक स्थलों के रूप में महसूस कर सकते हैं। प्रत्येक प्राकृतिक तत्व में स्वतः शुद्धिकरण की क्षमता पाई जाती है प्रकृति के इसी स्वरूप का आह्वान अथर्ववेद के चतुर्थ कांड के पच्चीसवें सूक्त के चौथे मंत्र में किया गया है-

अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षासि शिमिदां च सेधतम।

सह्युर्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुचतमंहसः॥ अ.। 4। 25। 4।

(वायु तथा सूर्य को प्रदूषण दूर करने के सामर्थ्य से युक्त माना गया है। इनके माध्यम से रोगरूपी राक्षसों व पीड़कों को दूर कर शारीरिक तथा आत्मिक बल प्रदान करने का आह्वान किया गया है।)

निजी हितों को साधने हेतु प्रकृति की स्वतः संतुलन की क्षमता से अधिक इन घटकों को प्रदूषित कर रहा है। जीव मंडल के सीमित दायरों में रहने वाला आधुनिक प्रौद्योगिक मानव स्थल मंडल, जलमंडल, वायुमंडल सभी की गुणवत्ता में दिन-प्रतिदिन अपनी गतिविधियों द्वारा ह्रास कर रहा है।

पारस्परिक वैमनस्यता बनाम 'तू दृढ़ होकर विरोधों व विद्वेशों को हटाकर बहुत दूर कर दे।'⁴

पृथ्वी रूपी वैश्विक ग्राम को सुखी व खुशहाल जीवन बनाने तथा जीवन की निरंतरता को बचाये रखने के लिए प्राकृतिक संसाधनों व मानवीय मूल्यों का आवश्यकतानुसार व लोभरहित दोहन, संरक्षण व संवर्धन नितान्त आवश्यक है। ऐसी व्यवस्था मानसिक चेतना में अध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों के दीप प्रज्वलित करके ही चिरस्थायी रूप में प्राप्त की जा सकती है। अगर आर्थिक मानव इन वेद रश्मियों से आलोकित मार्ग का अनुसरण करे तो वैश्विक समरसता, सर्वत्र शान्ति तथा स्थायी विकास को प्राप्त किया जा सकता है।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।

कृतस्य कार्यस्थ चेह स्फाति समावह॥ अ.। 3। 24। 5।

(हे मानव! तू सौ हाथों वाला होकर धनार्जन कर व हमारे हाथों वाला बनकर दान कर। इस प्रकार अपने कर्तव्य का निर्वाह करके उन्नति कर। सामूहिक उन्नति के लिए सबको मिलकर चलना चाहिए।)

अगर मनुष्य उपरोक्त शिक्षा का अनुयायी बने तो दुनिया में कोई भी व्यक्ति भूखा न रहे, कोई भी लाचार न हो तथा जाति, धर्म तथा आर्थिक स्तर के अलगाव की दीवारें गिराई जा सकती हैं और “वसुधैव कुटुम्बकम्” जैसे वाक्यांश को चरितार्थ किया जा सकता है। आप सभी का सतत् विकास के इस मानवीय व दैवीय महाभियान हेतु आह्वान करता हूँ।

उतिष्ठतं सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।

संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राष्यर्बुदे॥ अ. 1 111 61 2 ।

(हे प्रेरक विजयी जनो तुम उठो व कवच पहनो। हे शूर सेनापति। जो हमारे मित्र हैं वे तुम्हें देखकर रक्षित होंगे।)

सारांश

वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति के युग का प्रौद्योगिक मानव विकास की चरमावस्था तक पहुँचाने हेतु वायु जल, भूमि जैसे प्राकृतिक उपहारों का शोषण करके उनकी गुणवत्ता का ह्रास कर रहा है जिससे भविष्य में जीवन तथा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रति वर्तमान समाज का सतत् विकास, संसाधन संरक्षण व संवर्धन के रुझानों की ओर अग्रसर हुआ है। समृद्ध भारतीय वैदिक साहित्य में सदियों पूर्व लिपिबद्ध ईश्वरीय ज्ञान में विभिन्न पर्यावरणीय तत्वों के नैसर्गिक गुणों, उनकी सामाजिक उपदेयता तथा मानव मात्र को उनकी निर्मलता बनाये रखने का आह्वान किया गया है। चारों वेदों में सबसे बाद में लिखे गए अथर्ववेद को विज्ञान काण्ड के रूप में सम्बोधन, इसमें लिखित मंत्रों द्वारा वैज्ञानिक रहस्योद्घाटन की ओर संकेत करता है “माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः” जैसे मंत्राणों द्वारा हम ईश्वरीय ज्ञान के प्रति मन में श्रद्धाभाव उत्पन्न कर मधुर मानव-पर्यावरणीय संबंधों की ओर पुनः उन्मुख हो सकते हैं। मानव मानसिकता के परिवर्तन से ही चिरस्थायी सतत् विकास संभव है।

सन्दर्भ

1. अथर्ववेद 1/4/4
2. अथर्ववेद 12/1/12
3. अथर्ववेद 4/25/1
4. अथर्ववेद 1/2/2
5. शर्मा पं. जयदेव, 2009 अथर्ववेद, डी.ए.वी. प्रकाशन विभाग, दिल्ली
6. त्रिवेदी क्षेमकरण दास, 1974 अथर्ववेद, दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली
7. हनुमान प्रसाद, 2011 वैदिक तत्वों का भौगोलिक विवेचन, शोध प्रबन्ध
8. सरस्वती दयानन्द, 2010 सत्यार्थ प्रकाश, श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर
9. ओझा एस.के., 2008 पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण, बौद्धिक प्रकाशन, इलाहाबाद
10. बाहरी हरदेव, 2008 हिन्दी शब्दकोष, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
11. कौषिक एस.डी., 2006 भौगोलिक विचारधाराएँ व विधि तंत्र, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ
12. उपाध्याय पूर्णचन्द, 1991 वैदिक संस्कृति का विश्व कोष
13. मौर्य एस.डी., सिंह और आर.एन., 2003 भौगोलिक पारिभाषिक शब्दकोष
14. सक्सेना हरि मोहन, 1999 पर्यावरण व पारिस्थितिकी भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

वर्तमान शासन व्यवस्था और राजनीतिक दल

बबीता मीणा

शोधछात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, राजस्थान

किसी भी शासन व्यवस्था के समुचित रूप से संचालन हेतु राजनीतिक दल का होना आवश्यक है, खासकर लोकतांत्रिक व्यवस्था में तो इसे 'रक्त-प्राण' माना जाता है, जिसके बिना आधुनिक लोकतंत्र को मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता। यही कारण है कि आज 'दल नहीं तो लोकतंत्र नहीं' जैसी बातें पूर्ण रूप से मान्य हो गई हैं। राजनीतिक दल आधुनिक राजनीति की जीवन डोर बन गए हैं। वर्तमान समय में राजनीतिक दल आधुनिकता के प्रतीक समझे जाने के कारण निरंकुश व्यवस्था में भी प्रतिस्थापित किए जाने लगे हैं।

सामान्यतः निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों के संगठित समूह को दल कहा जाता है, एवं जब इस प्रकार के समूह का उद्देश्य राजनीतिक हो तो इसे राजनीतिक दल कहा जाता है। हालांकि यह परिभाषा सरल है, एवं विभिन्न विद्वानों ने इसकी परिभाषा विभिन्न आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकार से की है-

बर्क के अनुसार "राजनीतिक दल व्यक्तियों का ऐसा समूह है, जिसके सदस्य सामान्य सिद्धांतों पर सहमत हों, और सामूहिक प्रयत्नों द्वारा राष्ट्रीय हित को प्रोत्साहित करने के लिए एकता सूत्र में बंधे हों।" रेने तथ केन्डल ने अपनी पुस्तक 'डेमोक्रेसी एण्ड अमरीकन पार्टी सिस्टम' में राजनीतिक दल की कार्यात्मक परिभाषा दी है तो ऐल्डर्सवेस्ड ने अपनी पुस्तक 'पोलिटिकल पार्टीज : ए बिहेवियरल अनैलिसिस' में राजनीतिक दलों की व्यवहारवादी परिभाषा दी है। जबकि राबर्ट सी० बोन ने अपनी पुस्तक 'एक्शन एण्ड आरगेनाइजेशन: एन इन्ट्रोडक्शन टू कन्टेम्परेरी पोलिटिकल साइंस' में राजनीतिक दल की संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक आधार पर परिभाषा की है। उसके अनुसार "राजनीतिक दल व्यक्तियों का ऐसा संगठन है, जो अपने उद्देश्यों को सरकार पर औपचारिक प्राप्त करके समाज में मूल्यों के आधिकारिकता वितरण में प्राथमिकता के प्रकरण बनाने का प्रयत्न करता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से राजनीतिक दलों की संरचना, उद्देश्य एवं कामों का बोध हो जाता है। ज्ञातव्य है कि हर प्रकार का राजनीतिक संगठन राजनीतिक दल नहीं होता। माइरन वीनर ने किसी भी समूह को राजनीतिक दल कहने के लिए चार लक्षण अनिवार्य माना है, जो इस प्रकार हैं-

1. संगठन की निरंतरता अर्थात् एक ऐसा संगठन जिसका संभावित कार्यकाल उसके मौजूदा नेताओं के जीवन काल पर आश्रित नहीं हो।
2. स्थानीय स्तर पर प्रकट और संभवतः स्थायी संगठन हो तथा स्थानीय और राष्ट्रीय निकायों के बीच नियमित सम्प्रेषण और अन्य संबंध हो।
3. राष्ट्रीय और स्थानीय दोनों ही स्तरों पर नेताओं का न केवल सत्ता के प्रयोग को प्रभावित करने और अकेले या किसी अन्य दल से मिलकर निर्णय करने की, सत्ता बनाए रखने का स्वचेतन संकल्प हो।

किसी भी शासन व्यवस्था के समुचित रूप से संचालन हेतु राजनीतिक दल का होना आवश्यक है, खासकर लोकतांत्रिक व्यवस्था में तो इसे 'रक्त-प्राण' माना जाता है, जिसके बिना आधुनिक लोकतंत्र को मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता। यही कारण है कि आज 'दल नहीं तो लोकतंत्र नहीं' जैसी बातें पूर्ण रूप से मान्य हो गई हैं। राजनीतिक दल आधुनिक राजनीति की जीवन डोर बन गए हैं। वर्तमान समय में राजनीतिक दल आधुनिकता के प्रतीक समझे जाने के कारण निरंकुश व्यवस्था में भी प्रतिस्थापित किए जाने लगे हैं।

सामान्यतः निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों के संगठित समूह को दल कहा जाता है, एवं जब इस प्रकार के समूह का उद्देश्य राजनीतिक हो तो इसे राजनीतिक दल कहा जाता है। हालांकि यह परिभाषा सरल है, एवं विभिन्न विद्वानों ने इसकी परिभाषा विभिन्न आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकार से की है-

बर्क के अनुसार "राजनीतिक दल व्यक्तियों का ऐसा समूह है, जिसके सदस्य सामान्य सिद्धांतों पर सहमत हों, और सामूहिक प्रयत्नों द्वारा राष्ट्रीय हित को प्रोत्साहित करने के लिए एकता सूत्र में बंधे हों।" रेने तथ केन्डल ने अपनी पुस्तक 'डेमोक्रेसी एण्ड अमरीकन पार्टी सिस्टम' में राजनीतिक दल की कार्यात्मक परिभाषा दी है तो ऐल्डर्सवेस्ड ने अपनी पुस्तक 'पोलिटिकल पार्टीज : ए बिहेवियरल अनैलिसिस' में राजनीतिक दलों की व्यवहारवादी परिभाषा दी है। जबकि राबर्ट सी० बोन ने अपनी पुस्तक 'एक्शन एण्ड आरगेनाइजेशन: एन इन्ट्रोडक्शन टू कन्टेम्परेरी पोलिटिकल साइंस' में राजनीतिक दल की संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक आधार पर परिभाषा की है। उसके अनुसार "राजनीतिक दल व्यक्तियों का ऐसा संगठन है, जो अपने उद्देश्यों को सरकार पर औपचारिक प्राप्त करके समाज में मूल्यों के आधिकारिकता वितरण में प्राथमिकता के प्रकरण बनाने का प्रयत्न करता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से राजनीतिक दलों की संरचना, उद्देश्य एवं कामों का बोध हो जाता है। ज्ञातव्य है कि हर प्रकार का राजनीतिक संगठन राजनीतिक दल नहीं होता। माइरन वीनर ने किसी भी समूह को राजनीतिक दल कहने के लिए चार लक्षण अनिवार्य माना है, जो इस प्रकार हैं-

1. संगठन की निरंतरता अर्थात् एक ऐसा संगठन जिसका संभावित कार्यकाल उसके मौजूदा नेताओं के जीवन काल पर आश्रित नहीं हो।
2. स्थानीय स्तर पर प्रकट और संभवतः स्थायी संगठन हो तथा स्थानीय और राष्ट्रीय निकायों के बीच नियमित सम्प्रेषण और अन्य संबंध हो।
3. राष्ट्रीय और स्थानीय दोनों ही स्तरों पर नेताओं का न केवल सत्ता के प्रयोग को प्रभावित करने और अकेले या किसी अन्य दल से मिलकर निर्णय करने की, सत्ता बनाए रखने का स्वचेतन संकल्प हो।

4. संगठन को चुनावों में अपना समर्थन जुटाने की उद्दिगता हो या जो किसी न किसी तरीके से जन-समर्थन प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो। हालाँकि ये सब सैद्धान्तिक विशेषताएँ हैं और अधिकांश राजनीतिक दलों के बारे में खरी नहीं उतरतीं। आजकल कुछ विशेष परिस्थितियों में राजनीतिक दल द्वारा बल प्रयोग करके सत्ता प्राप्त करना भी अनुचित नहीं माना जाता है।

राजनीतिक दलों की भूमिका

राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दल अनेक प्रकार से सक्रिय रह सकते हैं। ये एक ही साथ मध्यवर्ती, स्वतंत्र या आश्रित परिवर्त्य के रूप में गत्यात्मक भूमिका निभा सकते हैं।

राजनीतिक दल मध्यवर्ती परिवर्त्य के रूप में सरकारी तंत्र तथा राजनीतिक समाज के बीच में आदान-प्रदान की कड़ी का काम करता है। यह समाज और सरकार को जोड़ता है। इस रूप में दल क्षेत्रीय हितों को एक-दूसरे के करीब लाते हैं, भौगोलिक दूरियों का निवारण करते हैं और कभी-कभी विभक्त कर देने वाली शासन संरचनाओं में सामंजस्य स्थापित करते हैं। मध्यवर्ती परिवर्त्य के रूप में दल की तीन सामान्य भूमिकाएँ होती हैं -

1. दल सरकार की नीतियों की अपने समर्थकों व आम जनता के लिए व्याख्या करता है और सरकार के कार्यों के बारे में जनता को समझाता है।
2. राजनीतिक व्यवस्था में उठने वाली माँगों को सरकार तक पहुँचाता है।
3. सत्ता में बने रहने के लिए या सत्ता में आने के लिए लोकमत की परख में लगा रहता है।

राजनीतिक दल शून्य में कार्य नहीं करते हैं। ये राजनीतिक व्यवस्था में कार्यरत रहते हैं। इनका कार्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण में संचालित होता है। अपने चारों तरफ के वातावरण से दल न केवल प्रभावित होते हैं वरन् उससे उनकी गतिविधियाँ बहुत कुछ सीमित व नियमित भी होती हैं। इस प्रकार आश्रित परिवर्त्य के रूप में राजनीतिक दल निम्न भूमिका निभाता है -

1. राजनीतिक समाज की संरचना व समाज के सांस्कृतिक प्रतिमान को प्रभावित करने वाली राजनीतिक प्रक्रिया को जोड़ना, सरल करना और स्थिर बनाना।
2. समाज की संरचनाओं व उप-व्यवस्थाओं में समन्वय स्थापित करना।
3. पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप अपने को ढालते हुए समाज की सम्पूर्ण समूह व्यवस्था के अनुकूलन में योग देना।

स्वतंत्र परिवर्त्य के रूप में राजनीतिक दल, विचारधारा, कार्यक्रम की रूपरेखा के अनुसार न्यायोचित समाज की स्थापना करने के लिए समाज व सरकार दोनों का ही नियंत्रक, निर्देशक व निरीक्षक रहता है। इस रूप में राजनीतिक दल की भूमिका निम्न प्रकार की रहती है -

1. समाज व सरकार, दोनों का निर्देशन करना व उन पर नियंत्रण रखना।
2. विचारधारा के अनुसार सम्पूर्ण संस्थात्मक व्यवस्थाओं को ढालना।
3. कार्यक्रम की क्रियान्विति में आने वाली सभी प्रक्रियात्मक व संरचनात्मक बाधाओं को दूर करना।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि स्वतंत्र परिवर्त्य के रूप में राजनीतिक दल की भूमिका सर्वाधिकारी शासन-व्यवस्था में ही संभव है।

राजनीतिक दल के कार्य

राजनीतिक दल के कार्य इस प्रकार हैं-

हर प्रकार की शासन व्यवस्था में जनता के नेतृत्व करने वाले नेताओं की आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति राजनीतिक दल ही करते हैं।

राजनीतिक व्यवस्था में दल ही नीतियों व कार्यक्रमों के उत्पादकर्ता होते हैं। मतदाताओं में अधिकांश तो संपूर्ण समाज के व्यापक हितों की दृष्टि से ऊपर नहीं उठ पाते। अकेला व्यक्ति संपूर्ण समाज के लिए उपयोगी नीतियों व कार्यक्रमों का निर्धारण चाहकर भी नहीं कर सकता। अतः राजनीतिक दल चुनावों के मुद्दे पेश करके नीतियों व कार्यक्रमों के निर्माता बन जाते हैं। सर्वाधिकारी शासन में तो राजनीतिक दल यह कार्य स्वयं करते हैं।

राजनीतिक दलों का तीसरा महत्वपूर्ण कार्य शासन-अंगों में समन्वय व सरकार के नियंत्रण का है। दल ही सरकार पर प्रभावी नियंत्रण का यंत्र हो सकते हैं। दल का यह कार्य निरंतर चलता रहता है। इतना ही नहीं दलों द्वारा शासन का कार्य केवल उनके सत्ता में बने रहने पर ही नहीं होता वरन् विपक्ष में भी वे शासन कार्य में सक्रिय रहते हैं।

राजनीतिक दल नेताओं की भर्ती व अदला-बदली के लिए संरचनात्मक प्रक्रियाएँ जुटाने के साथ-साथ सत्ता के वैधीकरण की व्यवस्था भी करते हैं। जबरदस्ती हथियाई सत्ता को वैधीकरण के लिए जनता के सामने दल ही रखवाते हैं। इनकी सत्ता वैधीकरण में इतनी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है कि निरंकुश व्यवस्थाओं में भी दलों का नहीं तो कम-से-कम एक दल का निर्माण शायद इसीलिए किया जाता रहा है।

राजनीतिक दल समूह मांगों की संतुष्टि और सामंजस्य द्वारा एक-सी मान्यताएँ या विचारधारा उत्पन्न करते हैं, जिससे समाज में विभाजनकारी प्रवृत्तियों का शमन होता रहता है तथा इससे समाज के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त होता है।

राजनीतिक दलों का एक कार्य सरकार तथा जनता के बीच संपर्क स्थापित करना है। वे निर्वाचक समूह को जानकारी प्रदान करने, प्रशिक्षित करने और सक्रिय बनाने की कोशिश करते हैं। वे जनता की मांगों को सरकार तक तथा सरकार के निर्णयों को जनता तक ले जाते हैं। इस तरह दल सरकार तथा जनता के बीच मध्यस्थ का कार्य करते हैं।

विकासशील राज्यों की राजनीतिक व्यवस्थाओं में आधुनिकीकरण की समस्या का सामना करने के लिए सरकारें भी राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार करती हैं। इन राज्यों में परम्परागत समाज होने के कारण जातीय, धार्मिक, नस्लीय तथा अन्य लगावों के बीच खिंचाव प्रबल होते हैं, जिससे राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है। राजनीतिक दल इस समस्या के समाधान में सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयत्न को जन समर्थन प्रदान करते हैं।

हर जगह राजनीतिक दल जन-संचालन का कार्य करते हैं। एकदलीय प्रणालियों में तो जन-संचालन लोक प्रशासन के अनिवार्य अंग के रूप में ही व्यवस्थित रहता है। इन व्यवस्थाओं में जन संचालन, जनता तथा दल के सदस्यों को अनुशासित रखने के एक पहलू के रूप में भी देखा जाता है।

राजनीतिक दल अपने समर्थकों के हितों की अधिकतम सुरक्षा के लिए अन्य संस्थागत संरचनाओं से सौदेबाजी भी करते हैं। यह सौदेबाजी अधिकतर सरकार के साथ करनी होती है।

राजनीतिक दल केवल रचनात्मक कार्यों तक ही सीमित नहीं रहते आजकल राजनीतिक दल विपक्ष में होने पर विरोध की राजनीति अपनाते हैं। वे सरकार को नियंत्रित करने व उसमें समन्वय स्थापित करने के कार्य के बिल्कुल प्रतिकूल कार्य भी करते हैं।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि राजनीतिक दल राज-व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण उप-व्यवस्था है, जिससे शासन का सुचारू रूप से संचालन संभव होता है। लोकतंत्र का तो यह प्राण ही है। दल के बिना आधुनिक लोकतंत्र की परिकल्पना ही नहीं की जा सकती। साथ ही अन्य प्रकार के शासन-व्यवस्था में निर्णायक भूमिका के कारण इनकी महत्ता स्वतः सिद्ध है।

संदर्भ सूची :-

1. बाल, ए०आर०ए-Modern Politics and Government pn. 102, 103
2. गेना, सी०बी० - तुलनात्मक राजनीति एवं संस्थाएँ, पृष्ठ सं० 822-871
3. जौहरी, जे०सी० और सीमा - आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त, पृष्ठ सं० 446-470
4. गाबा, ओ०पी० - राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा, पृष्ठ सं० 252-260

आसियान और सार्क के आर्थिक एवं राजनीतिक आयाम का समीक्षात्मक विश्लेषण

डॉ० गुलाब बाई मीना

सह आचार्य- राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश- आसियान और सार्क के गठन और उदय में अंतर-क्षेत्रीय और बाह्य-क्षेत्रीय दोनों ही तत्वों ने प्रभाव डाला। बांग्लादेश के राष्ट्रपति जियाउर रहमान ने 1985 के अफगानिस्तान संकट की पृष्ठभूमि से उपजी स्थिति के खिलाफ सार्क के गठन की पहल की थी। यह महसूस किया गया कि क्षेत्रीय स्तर पर शांति और स्थायित्व के लिए सहयोग जरूरी है और बदले में यह क्षेत्रीय राष्ट्रों की आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति के लिए भी महत्वपूर्ण है। इसके अलावा यह दुनिया के अन्य हिस्सों की क्षेत्रीय व्यवस्था का भी बेहतर जवाब है। यही सार्क के उदय का मूल कारण बना। बैंकाक में 1967 में स्थापित आसियान आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सहयोग का संगठन माना जाता था। लेकिन शुरू से ही यह साफ दृष्टिगोचर था कि इसका असली उद्देश्य क्षेत्रीय और राष्ट्रीय सुरक्षा है। इंडोनेशिया और मलेशिया के बीच शत्रुता खत्म होने के बाद आसियान का उदय हुआ। अतः आसियान देशों के लिए क्षेत्रीय सुरक्षा का महत्वपूर्ण लक्ष्य विस्तृत हुआ और सामंजस्य की यह प्रक्रिया संस्थागत हुई।

आसियान के पांच शुरुआती देशों में आंतरिक गड़बड़ी फैलाने के लिए सक्रिय साम्यवादियों को मिल रहे बाहरी समर्थन के लिए अनुकूल होती परिस्थिति ने साझा सुरक्षा चिंताओं को बढ़ा दिया। आंतरिक गड़बड़ी की आशंका में आर्थिक विकास की कमी ने आग में घी डालने का काम किया। इस लिहाज से एशियान के गठन को लचर आंतरिक राजनीतिक पद्धति के भरभराने के खतरने को कम करने के साथ-साथ अपने आंतरिक मामलों में बाहरी शक्तियों के हस्तक्षेप को कम करने के प्रयास के रूप में देखा जा सकता है।

क्षेत्रीय रुख न केवल विविध क्षेत्रीय गतिविधियों में सहयोग को बढ़ावा देता है बल्कि सदस्य देशों के बीच मतभेदों के शांतिपूर्ण समाधान के लिए एक संस्थागत ढांचा भी मुहैया कराता है। इसके अलावा क्षेत्रीय पहल, क्षेत्रीय शक्ति को क्षेत्रीय कल्याण और क्षेत्रीय सुरक्षा तक सीमित करने के प्रभावी जरिया के रूप में भी दिखाई देता है। इस लेख में सार्क और एशियान के विश्लेषणात्मक अध्ययन के जरिए दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया में क्षेत्रीय सुरक्षा के आर्थिक और राजनीतिक-रणनीतिक आयामों की परीक्षा की गई है।

मूल शब्द- आर्थिक, सुरक्षा, क्षेत्रीय, अंतर्निर्भरता, द्विध्रुवीय, संप्रभुता।

परिचय- अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में महत्वपूर्ण बदलाव के साथ 21वीं सदी का आगाज हुआ। विज्ञान एवं तकनीक में आई क्रांति के परिणामस्वरूप दूरियां कम हो गईं। आधुनिक हथियारों का विकास, खास तौर से व्यापक जनसंहार के हथियारों ने क्षेत्रीय सीमाओं की सुरक्षा को हाशिए पर ला दिया था। इन बदलावों के प्रति राष्ट्रों के रुख को आर्थिक, राजनीतिक और सैन्य जैसे सभी क्षेत्रों में आंतरिक और बाह्य में सामंजस्य के रूप में देखा जा सकता है। बाह्य सामंजस्य का विस्तार क्षेत्रीय संगठनों में रूपायित हुआ जिसकी जमीन दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से ही मजबूत हो रही थी।

आर्थिक मोर्चे पर विकसित और विकासशील देशों की आर्थिक स्थिति में अंतर का ध्यान रखते हुए विकासशील देशों में एकजुटता के प्रयास का मूल्यांकन विकास में इसके योगदान के जरिए किया जाना चाहिए न कि इसके वृहत्तर प्रभाव से। सार्क ने सहयोग के लिए सक्रिय रुख अपनाया और शुरू में ही सहयोग के लिए उन क्षेत्रों को चुना गया जिनमें राजनीतिक चिंता का समावेश कम से कम था। हालांकि आर्थिक विकास और सामूहिक आत्मनिर्भरता को संगठन के घोषणा पत्र में लक्ष्य एवं उद्देश्य के रूप में उल्लेखित किया गया था, फिर भी सदस्य देशों ने आर्थिक सहयोग बहुत बाद शुरू किया।

इसके विपरीत आसियान ने न केवल शुरू से ही आर्थिक मामलों में सहयोग का फैसला लिया बल्कि इस क्षेत्र के मामलों का हल करते जाने का भी फैसला लिया। हालांकि 1976 के बाली शिखर सम्मेलन तक सक्रिय तौर पर आसियान ने आर्थिक मोर्चे पर कोई उल्लेखनीय साझीदारी नहीं कर सका। अलग-अलग आर्थिक समझदारी और पहल, सदस्य देशों के आर्थिक विकास के स्तर ने आसियान में आर्थिक सहयोग की रफ्तार को कमजोर बनाए रखा।

जहां इंडोनेशिया ने अपने आर्थिक विकास के लिए आयात को तरजीह देना मुनासिब समझा वहीं सिंगापुर ने निर्यात आधारित औद्योगिक विकास पर जोर दिया। यह स्थिति राजनीतिक मतभेद और विवादों के कारण और जटिल होती गई। सबाह पर मलेशिया और फिलिपींस के बीच उभरे विवाद के कारण करीब एक साल तक आसियान की सभी बैठकें स्थगित रहीं। आसियान अर्थव्यवस्था के बीच कमोवेश समानता के पीछे का कारण यह है कि केवल थाईलैंड को छोड़ कर शेष सभी देश उपनिवेश रहे और उनकी आर्थिक स्थितियों का विकास औपनिवेशिक शासकों की जरूरतों को पूरा करने के लिहाज से हुआ। यही आर्थिक रिश्ता इन देशों की आजादी के बाद कायम रहा।

यही स्थिति सार्क के सदस्य देशों के बीच भी मौजूद है। 1973 में तेल की कमी से उत्पन्न आर्थिक संकट को आसियान देशों के बीच आर्थिक सहयोग से राजनीतिक प्रभाव बढ़ाने के विचार की मजबूती प्रदान करने वाले के रूप में देखा जाता है। 1975 में इंडोचीन में अप्रत्याशित कम्युनिस्ट विजय एशियान

के लिए महत्वपूर्ण बिंदु साबित हुआ और 1976 में आसियान देशों के शीर्ष नेतृत्व की पहली शिखर बैठक आयोजित हुई जिसमें मैत्री एवं सहयोग समझौते (टीएसी) पर हस्ताक्षर हुए।

क्षेत्रीय पहचान और एकजुटता के निर्माण की दिशा में यह एक और कदम था। इस सम्मेलन में सदस्य देशों से अंतर्राष्ट्रीय बहुपक्षीय मंच पर आर्थिक मामलों में संयुक्त रुख अपनाने का आह्वान किया गया। आसियान इंडस्ट्रियल प्रोजेक्ट (1976) और आसियान प्रोफेशनल ट्रेडिंग अरेंजमेंट (1977) सफल नहीं हो पाए। आसियान इंडस्ट्रियल कंप्लीमेंशन स्कीम (1981) और आसियान इंडस्ट्रियल ज्वाइंट वेंचर्स ने कुछ प्रगति हासिल की, लेकिन इसका अंतर-क्षेत्रीय व्यापार पर बहुत ज्यादा असर नहीं पड़ा।

अंतर्राष्ट्रीय बाजार में आर्थिक अनिश्चितता और वृहत्तर आर्थिक एकीकरण बढ़ते जाने के कारण आसियान ने 1992 में मुक्त व्यापार क्षेत्र (एएफटीए) की स्थापना के लिए समझौता किया। सार्क में सदस्य देशों ने सभी एएफटीए समझौतों को हरी झंडी दी और यह 1995 में लागू हुआ। यह सार्क के शंकोर क्षेत्र में शामिल हुआ। शीत युद्ध की समाप्ति और नेपाल में लोकतंत्र की स्थापना, बांग्लादेश और पाकिस्तान में उदित नया राजनीतिक वर्ग सहयोग के प्रति ज्यादा खुले थे। कुल मिलाकर उस समय तक सार्क के देश आर्थिक उदारीकरण कार्यक्रम शुरू कर चुके थे।

पहले दो दौर के दौरान रियायतों की नरम प्रकृति का आदान-प्रदान हुआ। जिन उत्पादों पर देशों ने शुल्क कम

करने की पेशकश की उनका या तो सदस्य देशों के बीच व्यापार नहीं होता था या फिर सीमित कारोबार होता था। इसी तरह की समस्या से पेटा के शुरुआती चरण में आसियान भी गुजरा। गैर व्यापारिक बाधाएं खास तौर से मात्रात्मक प्रतिबंध अंतर-सार्क व्यापार की धीमी गति का एक और कारण था।

परिवहन और संचार सुविधाओं की अपर्याप्त व्यवस्था ने भी दक्षिण एशिया में अंतर-क्षेत्रीय सहयोग की राह में रुकावट पैदा की। हालांकि ये उद्यम धीमे और नरम थे, लेकिन यह अपने आप में महत्वपूर्ण था कि मतभेदों के बावजूद क्षेत्र के देशों ने ये कदम उठाए थे। पाकिस्तान द्वारा भारत को एमएफएन का दर्जा देने पर सहमति जताने के बाद प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने मालदीव में 17वें सार्क शिखर सम्मेलन में हिस्सा लेने आए पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री यूसुफ रजा गिलानी से 2011 में मुलाकात की थी। पाकिस्तान ने भारत की ओर से एमएफएन का दर्जा दिए जाने के 16 साल बाद भारत को यह दर्जा देने पर सहमति जताई थी।

दक्षिण पूर्व एशिया में 1995 में औसत आर्थिक विकास दर 6.71 प्रतिशत रहा। दक्षिण पूर्व एशिया में आए आर्थिक संकट के साथ चीजों में तेजी से बदलाव आया। हालांकि राजनीतिक और आर्थिक रूप से आसियान शीर्ष रैंक का क्षेत्रीय समूह बना हुआ है, लेकिन असल में पूर्व एशियाई वित्तीय संकट का 1997 डोमिनो प्रभाव ने इन देशों की अंतर-निर्भर प्रकृति को उजागर किया और उनके सहयोग प्रयासों को आगे बढ़ाने में उत्प्रेरक का काम किया।

इसने चीन, जापान और कोरिया को शामिल करते हुए आसियान प्लस थ्री (एपीटी) और 2015 तक आकार लेने वाले आसियान आर्थिक समुदाय के रूप में आर्थिक सहयोग को और गहरा करने वाली आवश्यक प्रेरणा मुहैया कराने के साथ-साथ राजनीतिक इच्छा शक्ति को बल प्रदान किया। खास तौर से उभरते हुए चीनी बाजार से कड़ी प्रतिस्पर्धा के कारण आसियान के सदस्य देशों ने विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने के लिए अपना साझा बाजार बनाने की दिशा में काम करने का फैसला लिया।

थाईलैंड के चियांग माई में मई 2000 में हुई एपीटी के वित्त मंत्रियों की बैठक में पूंजी प्रवाह निगरानी, स्व सहायता और समर्थक तंत्र व अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय सुधार के क्षेत्र में सहयोग के लिए ढांचा तैयार किया गया। च्यांग माई प्रयास के नाम से ज्ञात इस व्यवस्था ने पूर्वी एशिया के संकट प्रभावित देशों को अस्थायी रूप से विदेशी मुद्रा समर्थन मुहैया कराया। सीएमआई नकदी के अत्यंत इच्छित स्तर तक शामिल नहीं हुआ, लेकिन प्रारंभिक विश्वास बनाने के लिए छोटी राशि मुहैया कराई।

इससे आगे आसियान-6 के देशों ने संपूर्ण दक्षिण पूर्व एशिया तक संगठन के विस्तार के आर्थिक और राजनीतिक फायदे को स्वीकार किया। इससे न केवल क्षेत्रीय मुद्दों का समाधान तलाशने में संगठन की विश्वसनीयता और प्रभाव में वृद्धि हुई, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय मंचों में आसियान के राजनीतिक और आर्थिक कद को भी बढ़ाया।

इसके साथ ही आसियान के नेता दो-स्तरीय क्षेत्रीय मंच के आकार लेने की संभावना से भी चिंतित हुए। इसलिए आसियान के मूल सदस्य देशों ने अपनी जरूरतों के समायोजन की प्रक्रिया अपनाई और सीईपीटी योजना के तहत शुल्क रियायत पूरा करने के लिए एक दशक देने की अनुमति दी। इसके अतिरिक्त मूल सदस्यों ने अपने जारी सुधार कार्यक्रम के लिए नए सदस्य देशों को तकनीकी सहायता मुहैया कराई।

आसियान का सबसे कारगर पहलू आर्थिक या राजनीतिक क्षेत्र में सहयोग का मतलब मौजूदा समय की विभिन्न प्रवृत्तियों को नजरअंदाज करते हुए बाहरी देशों या समूहों से सौदेबाजी में साझा रुख अपनाना है। आसियान वार्ता के साझीदारों की ईयू, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, जापान, न्यूजीलैंड और अमेरिका के साथ मुलाकात ने आर्थिक मामलों में सहयोग को बढ़ाया। चीन ने भी आसियान के साथ अपने व्यापार और निवेश संपर्क को तेजी से बढ़ाया।

बाहरी तत्व किस तरह क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था पर असर डालता है इसका अंदाजा इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि अमेरिका-जापान द्विपक्षीय व्यापार असंतुलन और परिणाम स्वरूप 1980 के अंत से व्यापार नीति विवाद, आसियान देशों के लिए चिंता का कारण बना। अन्य देशों खास तौर से अमेरिका से होने वाले प्रवाह के विरुद्ध बराबरी के अभाव के कारण आसियान को जापान पर अति निर्भरता का खतरा लगने लगा जिससे उनकी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं निवेश और तकनीक हस्तांतरण में मोलभाव की ताकत घट सकती थी।

कुल मिलाकर अमेरिका की विकासशील देशों के प्रति व्यापार नीति ने आसियान और अमेरिका के बीच समस्या पैदा की। अमेरिका का बाजार तक पहुंच को मानवाधिकार, श्रम अधिकार, लोकतंत्र पर्यावरण और बौद्धिक संपदा अधिकार से जोड़ना, आसियान देशों को गैर जरूरी और उनके घरेलू मामलों में राजनीतिक हस्तक्षेप लगा। उसी समय आसियान देश चीन की तरफ से खासकर उसके डब्लूटीओ में शामिल होने के बाद मिल रही आर्थिक चुनौती से भी

आर्शकित थे। इस स्थिति ने क्षेत्र में अमेरिकी प्रभाव का मुकाबला करने की मंशा रखने वाले चीन को राजनीतिक और आर्थिक दोनों ही मोर्चों पर लाभ पहुंचाया।

एशियाई परिप्रेक्ष्य में वैधानिक बंधनकारी समझौतों की बजाय अनौपचारिक समझौतों और प्रोत्साही संपर्कों को ज्यादा तरजीह मिली हुई थी। इस परिप्रेक्ष्य में उप क्षेत्रीय सहयोग अत्यंत उपयुक्त होता है। 1992 में सिंगापुर में हुए आसियान शिखर सम्मेलन में क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग के समानांतर और सहायक माध्यम के रूप में श्रोथ ट्राएंगलर उपाय को मंजूरी दी गई।

दक्षिण एशिया में आसियान जैसे साझा उपक्रमों को समर्थन देने की विश्व बैंक की उत्सुकता ने एसाउथ एशियन डेवलपमेंट ट्राएंगलर (एसएडीटी) को जन्म दिया। इसमें गंगा-ब्रह्मपुत्र-मेघना घाटी के क्षेत्र शामिल हुए और भारत का पूर्वी और उत्तर पूर्वी हिस्सा, बांग्लादेश, नेपाल और भूटान इसके दायरे में आए। श्रीलंका, पाकिस्तान और मालदीव को इस बात से डर पैदा हो गया कि उप क्षेत्रीय सहयोग के गठन से सार्क पर बुरा असर पड़ सकता है। माले में सार्क उप क्षेत्रीय सहयोग पर घोषणा पत्र के केवल अनुच्छेद 7 के तहत विचार करने पर सहमत हुआ। इस अनुच्छेद में दो और दो से अधिक देशों के बीच सहयोग की अनुमति दी गई है।

भारत और श्रीलंका ने 1998 में द्विपक्षीय मुक्त व्यापार समझौता किया। नेपाल और भूटान की भारत के साथ तरजीही व्यापार व्यवस्था पहले से ही मौजूद थी। सिंगापुर का क्षेत्र से बाहर जापान, न्यूजीलैंड और मैक्सिको के साथ द्विपक्षीय मुक्त व्यापार समझौता था। ब्राडबैंड समझौतों के नाम से ज्ञात ये द्विपक्षीय समझौते महज व्यापार उदारीकरण के लिए ही नहीं थे, बल्कि समय के बदलाव को ध्यान में रख कर इसमें कई व्यापारिक और निवेश सुविधाओं से संबंधित कदमों और आर्थिक सहयोग प्रयास शामिल किए गए थे।

हालांकि सार्क क्षेत्र के साथ आसियान के सदस्य देशों को इस प्रकार के मुक्त व्यापार की दिशा में कुछ आपत्तियां थीं। इस लिहाज से सिंगापुर सरकार लगातार यह दलील देती रही कि उसका फाटा अभिप्राय क्षेत्रीय प्रक्रिया का विकल्प नहीं है। आसियान मुक्त व्यापार समझौता (एएफटीए) ने 'खुली क्षेत्रीयता' की नई लहर को उजागर किया और यह शीत युद्ध की समाप्ति के बाद प्रचलन में आया। खुली क्षेत्रीयता का अर्थ किसी खास क्षेत्र के देश अपने संगठन और क्षेत्र से बाहर की अर्थव्यवस्था के लिए किसी भी प्रकार की कृत्रिम व्यापार बाधा पैदा किए बगैर अपने क्षेत्र में आर्थिक लेन-देन की बाधाओं को दूर करे ताकि नए तरह के भेदभाव से बचाव हो सके।

हाल ही में आसियान के आर्थिक मंत्रियों की 18वीं बैठक म्यांमार में संपन्न हुई। मंत्रियों ने एशियान देशों के बीच व्यापार, सेवा और निवेश प्रयासों को तीव्र करने का फैसला लिया और यह भी तय किया कि आसियान के एक एकजुट बाजार की तरफ विकास सुनिश्चित करने के लिए सामान और सेवाओं के बाजार तक पहुंच की बाधाओं को गंभीरता से दूर किया जाए। मंत्रियों ने 2015 तक आसियान आर्थिक समुदाय (ईसी) की स्थापना के लक्ष्य को लेकर किए जा रहे विभिन्न प्रयासों की स्थिति का भी उल्लेख किया। आसियान के भीतर अब आसियान-6 के लिए 99.65 प्रतिशत व्यापार शुल्क लाइन पर और कंबोडिया, लाओस, म्यांमार और वियतनाम के लिए 98.86 प्रतिशत पर शुल्क घटाकर शून्य कर दिया गया है।

सार्क के कामकाज में सुधार के लिहाज से पूर्व की 11 तकनीकी समितियों को सार्क सक्रिय एकीकृत कार्यक्रम के तहत 1 जनवरी 2000 से सात समितियों में पुनः गठित किया गया है। तकनीकी समितियों के कामकाज को और ज्यादा प्रभावी और उपयोगी बनाने के लिए बैठकों को धड़ल्ले से स्थगित करना, फील्ड वर्क में दोहराव, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर की समितियों में तालमेल का अभाव बैठकों में पेशेवर दक्ष लोगों की भागीदारी का अभाव जैसी कमियों को दूर किए जाने की जरूरत है। सार्क संस्थागत ढांचा हासिल कर चुका है और इसे केवल प्रभावी इस्तेमाल और कार्यक्रमों के सही तरीके से क्रियान्वयन की जरूरत है।

राजनीतिक और रणनीतिक आयाम- सैन्य और राजनीतिक-रणनीतिक क्षेत्र में हम कह सकते हैं कि बीते सालों में आसियान कार्ल डॉयश के 'सुरक्षा समुदाय' के रूप में विकसित हो गया है।

चाहे सबाह पर विवाद हो या दक्षिणी चीन सागर पर सदस्यों ने स्थिति को हथियारों के इस्तेमाल तक जाने से रोका सदस्य देशों के बीच विवाद इतना गहरा था कि युद्ध अवश्यंभावी दिखाई देता था। आसियान ने क्षेत्रीय और क्षेत्र से बाहर के मामलों को हल करने के लिए आचार संहिताएं बनाई और उनका पालन भी किया। असल में अनौपचारिक रुख के साथ और बगैर वैधानिक बंधनकारी समझौतों के बगैर स्थिति को नियंत्रित करना जयादा सहज होता है और आसियान इस सकारात्मक हाल तक पहुंच सकता है।

इसके भिन्न सार्क को एक सक्रिय संगठन के रूप में पाते हैं। यह संगठन आर्थिक क्षेत्र जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर करते हुए मध्यम मार्ग अपनाते हुए आगे बढ़ता है। सार्क के घोषणा पत्र में क्षेत्र की सुरक्षा चिंता की झलक दिखाई देती है। भूमिका में सदस्य देशों की क्षेत्र में शांति, स्थायित्व, बंधुत्व और प्रगति की इच्छा का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। हालांकि सार्क घोषणा पत्र में द्विपक्षीय और चले आ रहे मुद्दों को अपने विचार-विमर्श से बाहर रखा गया है।

सार्क ने सहयोग की दिशा में क्रमागत रुख अपनाया और जानबूझ कर द्विपक्षीय और पूर्व से चले आ रहे विवादों को बाहर रखा ताकि सदस्य देशों के बीच मौजूद विभिन्न तरह के विवाद उसकी प्रगति की राह का रोड़ा नहीं बने। हालांकि यह कहना सही नहीं होगा कि राजनीतिक मंच पर सार्क ने कोई भूमिका अदा नहीं की। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति और सैन्य मुद्दे सार्क के शिखर सम्मेलनों के एजेंडे में हमेशा शामिल रहते हैं।

भले ही सार्क को द्विपक्षीय राजनीतिक विवादों से दूर रखा गया हो, फिर भी सभी सार्क शिखर सम्मेलनों में हिस्सा लेने पहुंचे नेताओं के बीच अनौपचारिक द्विपक्षीय वार्ता होती रहती हैं। मंत्री स्तरीय बैठकों, विदेश सचिवों की बैठकों राजनीतिक स्तर पर आयोजित की जाती हैं और ऐसे मौकों पर द्विपक्षीय राजनीतिक मुद्दों पर खुलकर बातचीत भी होती है और यहां तक कि कई महत्वपूर्ण फैसले भी लिए जाते हैं। बहुदेशीय ढांचे के जरिए सार्क ने सदस्य देशों के बीच विश्वास बहाली के उपायों का अवसर मुहैया कराया है। नए सदस्य के रूप में अफगानिस्तान के शामिल होने से इसे एक नया आयाम मिला है।

आसियान के 1976 के बाली शिखर सम्मेलन में टीएसी ने मतभेदों या विवादों का शांतिपूर्ण समाधान तलाशने और खतरा या बल प्रयोग को टालने का आह्वान किया था। इसलिए आसियान ने दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्रीय व्यवस्था की युक्ति को आगे बढ़ाया और इंडोचाइना को इसका हिस्सा बनाना चाहा। हालांकि इस संभावना को वियतनाम ने सिरे से खारिज कर दिया। क्षेत्रीय के साथ-साथ क्षेत्र से बाहर के माहौल में एक क्षेत्रीय संगठन सुरक्षा मामलों में अपनी भूमिका अदा कर सकता है। 1960 के दशक के दौरान युद्ध के बाद के वियतनाम की संभावनाओं के साथ काम करने के लिए एशियान तत्पर था। इसके अलावा वियतनाम से अमेरिकी फौजों की अचानक वापसी की दशा में एक और सवाल क्षेत्र में खड़ा हो रहा था। चीनी और सोवियत हस्तक्षेप के साथ किस तरह निपटा जाए यह समस्या खड़ी हो गई।

अपने जोन ऑफ पीस, फ्रीडम एंड न्यूट्रलिटी (जेडओपीएफएन-जोपफान) आइडिया के माध्यम से आसियान ने दिखाया कि उसकी अभिलाषा बाहरी ताकत के प्रभाव से मुक्त होनी चाहिए। हालांकि शुरू में आसियान के सदस्य देशों ने शुरू में जोपफान विचार के प्रति बहुत ज्यादा उत्साह नहीं दिखाया। थाइलैंड और फिलीपींस का मानना था कि उनकी सुरक्षा के लिहाज से जोपफान का हिस्सा होने से अमेरिका के साथ रिश्ता रखना कहीं ज्यादा बेहतर है।

अंततः 1971 में कुआलंपुर में आसियान देशों के विदेश मंत्रियों ने जोपफान को मंजूरी दी। 1978 में कंबोडिया पर वियतनाम के हमले ने आसियान में तत्काल एकजुटता का भाव जगाया और वे कंबोडिया में वियतनाम को अलग-थलग करने के साझा लक्ष्य पर आमादा हुए। आसियान ने कंबोडिया के मुद्दे को सरा एजेंडे में शीर्ष पर रखा। इस मुद्दे ने आसियान को सफल कूटनीतिक समुदाय के रूप में पहचान दिलाई, लेकिन यह आसियान की एकजुटता की परीक्षा भी साबित हुआ उसके सदस्य देशों इंडोनेशिया और मलेशिया के लिहाज से वियतनाम के मुकाबले चीन कहीं ज्यादा बड़ा खतरा था।

चीन ने 1965 में इंडोनेशिया में पीकेआई समर्थित तख्तापलट की कोशिश का समर्थन किया था और मलेशिया में 1945 से 47 के आपातकाल के दौरान एमसीपी का साथ दिया था। इसके अलावा चीन का मलेशिया में बहुसंख्यक चीनी समुदाय पर अच्छा खासा प्रभाव था। इन सब विपरीत स्थितियों के बावजूद इंडोनेशिया और मलेशिया आसियान के अन्य देशों के साथ विचारों में सामंजस्य बनाने में कामयाब थे। शीत युद्ध के बाद के समय में आसियान ने आसियान रीजनल फोरम (एआरएफ) के जरिए सुरक्षा के क्षेत्र में सहयोग को संस्थागत रूप दिया। एआरएफ वार्ता साझीदारों के साथ पोस्ट मिनिस्ट्रियल कान्फ्रेंस पर आधारित था।

चीन भी अपने सैन्य कार्यक्रमों के आधुनिकीकरण पर अडिग हो गया। दक्षिण चीन सागर के द्वीपों की संप्रभुता के सवाल पर मतभेद बरकरार रह गया। आसियान ने 1990 के शुरुआत से ही चीन के प्रति शसकारात्मक बातचीत की नीति अपना ली। दक्षिण चीन सागर में पांच वार्ता प्रक्रियाओं के गठन और क्षेत्रीय आचार संहिता के साथ चीन-आसियान सहयोग को संस्थागत रूप दिया गया।

दक्षिण पूर्व एशिया में एक और महत्वपूर्ण सवाल पूर्वी तिमोर को लेकर था। यह डर स्वाभाविक था कि पूर्वी तिमोर में जनमत संग्रह और उसके परिणाम का असर अन्य इलाकों से भी इसी प्रकार की मांग उठने के रूप में सामने आ सकता है। हालांकि आसियान देशों के अपने ही यहां डोमिनो प्रभाव को लेकर चिंतित होने की स्थिति में इस तरह की मांग को समुदाय न तो प्रोत्साहित करता और न ही समर्थन देता।

दक्षिण पूर्व एशिया और दक्षिण एशिया दोनों ही में संपूर्ण सुरक्षा वातावरण का क्षेत्रीय परमाणु सुरक्षा आज एक महत्वपूर्ण अवयव बन गया है। दक्षिण पूर्व एशिया परमाणु हथियार मुक्त क्षेत्र (एसईएएनडब्लूएफजेड) की स्थापना के साथ 1971 में जोपफान का एक महत्वपूर्ण अवयव होने का फैसला लिया गया था। शीत युद्ध की समाप्ति और और फिलीपींस से अमेरिकी फौजों की वापसी और चीन के हठवादी रवैया त्यागने से आसियान के इस दिशा में प्रयासों को नया बल मिला। एसईएएनडब्लूएफजेड समझौते पर अंततः दिसंबर 1995 में बैंकाक में दस्तखत हुए।

सार्क के मोर्चे पर परमाणु हथियारों के खतरे पर चर्चा और निशस्त्रीकरण की जरूरत शुरू से ही शिखर सम्मेलनों के एजेंडे में रही है। भारत और पाकिस्तान अब परमाणु संपन्न देश हैं। परमाणु सिद्धांत पर राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार परिषद के 17 अगस्त 1999 की प्रारूप रिपोर्ट में किए गए उल्लेख के अनुसार भारत का प्राथमिक लक्ष्य प्रभावी, विश्वसनीय परमाणु प्रतिरोधक और प्रतिरोधक विफल होने पर पर्याप्त प्रतिकार का साधन मुहैया कराना है।

भारत ने तय किया है कि वह पहले प्रयोग से बचेगा, परमाणु शक्ति रहित देशों के खिलाफ परमाणु हथियार का प्रयोग नहीं करेगा और परमाणु हथियार के खात्मे के लिए कटिबद्ध है। पाकिस्तान का अपने परमाणु हथियार के बारे में तर्क न केवल भारत के परमाणु हथियारों के प्रतिरोध तक है, बल्कि भारत की परंपरागत सैन्य श्रेष्ठता से मुकाबले तक भी है। परमाणु हथियारों ने दक्षिण एशिया के क्षेत्रीय सुरक्षा वातावरण में एक नया आयाम जोड़ दिया है।

पाकिस्तान के बटे हुए समुदाय ने वहां की सरकारों को कश्मीर और परमाणु प्रतिरोध को राष्ट्रीय एकता पैदा करने के हथियार के रूप में सुरक्षा मुद्दे की तरह उठाने के लिए बाध्य किया है। सर्व विदित है कि चीन की मदद और प्रोत्साहन के बल पर पाकिस्तान का परमाणु हथियार कार्यक्रम आगे बढ़ा है। चीन की नीति भारत को दक्षिण एशिया तक बांध कर सीमित रखना और पाकिस्तान से उलझाए रखने की है।

इससे पाकिस्तान को अमेरिका व अन्य शक्तियों को इसी क्षेत्र में उलझाए रखने के लिए भारत-पाकिस्तान परमाणु खतरे को अपने हित के हिसाब से खेलने का मौका भी मिल रहा है। कुछ परमाणु विश्वास निर्माण प्रयास भारत और पाकिस्तान के बीच एक दूसरे के परमाणु ठिकाने पर हमला नहीं करने जैसे समझौते कराने में जुटे हैं।

आसियान के तहत रक्षा लहजे में सीमित सहयोग को सदस्य देशों द्वारा नकार दिया गया था। अब इस स्थिति में बदलाव आ रहा है। 2000 में क्षेत्रीय राजनीतिक और सुरक्षा मुद्दों का समयबद्ध समाधान तलाशने के लिए आसियान देश एक आसियान त्रय बनाने पर सहमत हुए। 2003 में बाली में हुए आसियान शिखर सम्मेलन में आसियान नेताओं ने बाली कान्फॉर्ड-2 घोषित किया। इसमें आसियान सुरक्षा समूह, आसियान आर्थिक समूह और आसियान सामाजिक-सांस्कृतिक समूह को समाहित करते हुए आसियान समूह के गठन का आह्वान किया गया।

बाद में चल कर दक्षिण पूर्व के सभी दस आसियान देशों को शामिल करते हुए आसियान के विस्तार से न केवल क्षेत्रीय सुरक्षा को ताकत मिली, बल्कि इससे बाहरी दुनिया में उसकी मोलभाव की शक्ति में भी इजाफा हुआ। आसियान राजनीतिक और सुरक्षा समूह (एपीएससी) के लिए जिम्मेदार आसियान के

मंजरी नवंबर 2011 में बाली में आसियान राजनीतिक-सुरक्षा समूह परिषद की छठी बैठक के लिए एकत्र हुए। शांति और सुलह के लिए आसियान संस्थान, दक्षिण चीन सागर के पक्षकारों के आचार की घोषणा (डीओसी) को लागू करने संबंधी निर्देश की मंजूरी और आसियान समुद्री मंच एवं रक्षा सहयोग का संयोजन आसियान समूह के राजनीतिक-सुरक्षा समूह के तहत हासिल की गई कुछ उपलब्धियों की बानगी हैं।

सार्क के रजत जयंती वर्ष में भूटान की राजधानी थिंपू में 2010 में आयोजित शिखर सम्मेलन में सदस्य देशों ने सार्क की प्रगति के लिए दक्षिण एशिया के सांसदों द्वारा सामूहिक रूप में लोकतांत्रिक और भागीदारी परंपरा को प्रस्तुत करने पर ध्यान देने की जरूरत महसूस की। सभी सदस्य देशों में बहुदलीय व्यवस्था होने की सराहना करते हुए सदस्य देशों ने प्रभावी, सक्षम, पारदर्शी और जवाबदेह सरकार देने में पेश आ रही चुनौतियों को रेखांकित किया। इस दिशा में सदस्य देशों ने अनुभव साझा, बेहतर कामकाज और संस्थागत संपर्क स्थापित करने के जरिए बेहतर शासन मुहैया कराने के लिए क्षेत्रीय सहयोग की जरूरत पर जोर दिया। बांग्लादेश का लोकतंत्र पर सार्क घोषणा के विचार पर ढाका में एक अंतर-सरकारी बैठक आयोजित करने के सुझाव की सार्क के सदस्य देशों ने सराहना की।

आसियान की सफलता से सबक- क्षेत्रीय सहयोग और क्षेत्रीय सुरक्षा संबंध के मूल विचार से जुड़ा है। क्षेत्रीय सहयोग की प्रक्रिया क्षेत्रीय सुरक्षा बढ़ाती है। क्षेत्रीय संगठन का विकास न केवल सक्रियता के विविध क्षेत्रों में लाभकारी होता है, बल्कि सदस्य देशों के बीच मतभेद वाले मुद्दों के शांतिपूर्ण समाधान के लिए एक संस्थागत ढांचा भी मुहैया कराता है।

इसके विपरीत क्षेत्रीय सहयोग के किसी प्रयास की सफलता के लिए क्षेत्रीय सुरक्षा की समस्या का समाधान होना अनिवार्य है। इंडोनेशिया और मलेशिया के बीच विवाद के अंत की परिणति के रूप में 1967 में आसियान का गठन हुआ। यह संगठन इसके मूल पांच देशों की उनके बीच किसी और विवाद की संभावना को कम करने की इच्छा की प्रतिध्वनि भी था। इसने यह भी दर्शाया कि किस तरह अंतः-देशीय और अंतः-क्षेत्रीय वातावरण सुरक्षा बोध को प्रभावित करता है। इंडोनेशिया में सुकर्णो से सुहार्तो के नेतृत्व में बदलाव इसके परिणाम स्वरूप घरेलू और विदेश नीति में परिवर्तन इंडोनेशिया और मलेशिया के बीच झगड़े के अविलंब स्थगन का तात्कालिक कारण था।

दक्षिण एशियाई क्षेत्र में हर लिहाज से चाहे वह सैन्य, आर्थिक या प्रादेशिक हो, भारत की मजबूत स्थिति के द्वारा वर्गीकृत है। इसलिए भारत और उसके छोटे पड़ोसियों के लिए सुरक्षा का मतलब भिन्न है। दक्षिण एशिया के छोटे देश भारत की मजबूत स्थिति को संतुलित करने के लिए बाहरी ताकतों के साथ गठबंधन करने की इच्छा रखते हैं। इसलिए क्षेत्र से दुनिया के खिलाड़ियों को बाहर रखने के लिए उन्हें क्षेत्र में ही संतुलित रखना जरूरी है। भारत के लिए उसकी क्षेत्रीय सुरक्षा नीति दक्षिण एशिया के एकल रणनीतिक क्षेत्र के अनुमान पर आधारित है। सार्क घोषणा पत्र में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि सभी फैसले ध्वनिमत से लिए जाएंगे। इससे भारत और अन्य सदस्य देशों में एक दूसरे से मौजूद भय कम होता है। दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय देश। ऐतिहासिक विरासत के बंदी और घरेलू राजनीतिक चिंताओं के कारण क्षेत्रीय सहयोग के जरिए अपनी पूरी क्षमता का दोहन करने में समर्थ नहीं हैं।

यदि सार्क इच्छित स्तर तक प्रगति नहीं कर पाया है तो इसका यह मतलब नहीं निकलता कि दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग के लाभ का असर मौजूद नहीं है, क्योंकि यह पूरी दुनिया में मौजूद है। सिर्फ साझा शत्रु और साझा खतरे को समझने में कमी है। इसी कमी का नहीं होना दक्षिण पूर्व एशिया की ताकत है। इसलिए क्षेत्रीय सुरक्षा समस्याओं के समाधान की दलील के उपसिद्धांत के तौर पर अगली दलील है- साझा तौर पर एक शत्रु से बाहरी खतरे को समझना। यही बोध देशों को उस खतरे से सामूहिक रूप से निपटने के लिए करीब लाता है। आसियान का गठन करने वाले सभी देश साम्यवाद विरोधी हैं। यहां तक कि शुरुआती वर्षों में वे आंतरिक विवादों से त्रस्त थे। वियतनाम का सम्मिलन और कंबोडिया में वियतनामी हस्तक्षेप ने आसियान के सदस्य देशों के लिए सामूहिक रूप से काम करने के लिए उत्प्रेरक का काम किया।

विकासशील देशों में क्षेत्रीय सहयोग अनिवार्य रूप से राजनीतिक या आर्थिक संयोजन की ओर उन्मुख या लक्षित नहीं होता, बल्कि विशेष उद्देश्य के साथ एक प्रभावी कार्यशील अंतःसरकारी संगठन होता है। इसका लक्ष्य अधिराष्ट्रीय प्राधिकार का गठन नहीं है। क्षेत्रीय सहयोग राष्ट्रीय हितों पर आधारित पारस्परिक लाभ का मात्र सामंजस्य है। क्षेत्रीय सहयोग या तो आर्थिक, पारिस्थिति की, सामाजिक या सांस्कृतिक क्षेत्रों में पृथक विकास पर जोर देते हुए या फिर सुरक्षा के लिहाज से कार्यशील हो सकता है। न तो आसियान और न ही सार्क अपने सदस्य देशों की संप्रभुता के किसी हिस्से को खींचने में तल्लीन है।

आसियान ने मुफाकत अर्थात् सर्वसम्मत फैसले पर पहुंचना और मुसफवराह अर्थात् बगैर किसी दबाव के व्यापक अनौपचारिक बातचीत और संपर्कों के जरिए फैसले तक पहुंचना जैसी दोहरी प्रक्रिया अपनाई। यह प्रक्रिया संभवतः धीमी हो सकती है, लेकिन इससे आपसी विश्वास बहाली और विवाद प्रबंधन में मदद और सदस्यों को विभिन्न समझ के साथ सामने आने का मौका मिलता है। इनमें से अधिकांश कारक दक्षिण पूर्व एशिया के लिए अनोखे नहीं हैं, लेकिन इन्हें सदस्य देशों ने जैसे अपनाया वही इसे भिन्न बनाता है। आपसी विश्वास और बातचीत की आदत सालों में बनती है। इसी ने सदस्य देशों को अत्यंत विकट परिस्थिति में भी आत्मसंयम बरतने के लिए तैयार किया ताकि संघ को कोई नुकसान नहीं पहुंचे।

क्षेत्र से बाहर के मामलों का आसियान के जरिए सामूहिक हल और क्षेत्रीय सुरक्षा पर खतरे के समय

कूटनीतिक एकजुटता ने इसे एक संगठन के रूप में मान्यता दिलाई। एशियान ने संघ का सफल कामकाज सुनिश्चित करने के लिए सबाह पर फिलीपींस और मलेशिया के बीच विवाद जैसे द्विपक्षीय विवादों को दरकिनार रखने का फैसला लिया था। शुरू में आसियान पर शासक वर्ग का अपनी सत्ता को वैधानिकता देने वाले संगठन होने का आरोप लगा था। बाद चलकर दक्षिण पूर्व एशिया के लोगों में आसियान उसके लक्ष्य और इसके लाभ के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए नियोजित प्रचार अभियान चलाया गया। आज हम इसके सदस्यों के बीच आसियान से संबंधित होने के गर्व का भाव पाते हैं।

जैसा कि आसियान में हो चुका है, ठीक उसी तरह सेवा क्षेत्र में सहयोग सार्क के देशों के बीच पारस्परिक संपर्क को तेज कर सकता है। सार्क के कार्यक्रम और गतिविधि के विस्तार के साथ बाहरी क्षेत्रीय संगठनों और देशों के साथ गठबंधन को भी बढ़ावा दिया जाना चाहिए। दक्षिण एशियाई देश संपूर्ण क्षेत्र को सामने रखते हुए विदेशी निवेशकों का स्वागत करें। दक्षिण एशिया क्षेत्र में पर्याप्त ऊर्जा की कमी समेत महत्वपूर्ण ढांचागत खामियां क्षेत्र में स्थायी विकास

की राह में बड़ी बाधा है। मजेदार है कि क्षेत्र में पर्यावरणीय लिहाज से ऊर्जा के स्वच्छ स्रोत के रूप में स्वीकार्य पनबिजली और प्राकृतिक गैस समेत संसाधनों का प्रचुर भंडार मौजूद है। बिजली की मांग में वृद्धि, बिजली आपूर्ति में सुधार आर्थिक विकास को बनाए रखने और सामाजिक क्षेत्र में सेवा सुधार के लिए महत्वपूर्ण है।

क्षेत्र के देशों द्वारा विभिन्न संसाधनों का इस्तेमाल ऊर्जा क्षेत्र में सहयोग और व्यापार की महत्वपूर्ण संभावना बनाएगा। यहां सार्क क्षेत्रीय भौतिक बुनियादी ढांचा बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाए। इससे परस्पर विश्वास बढ़ेगा और विकास को गति मिलेगी। विश्व बैंक के एक अध्ययन में दिए गए संकेत के अनुसार दक्षिण एशिया क्षेत्र को दो ऊर्जा व्यापार जोन में लिया जा सकता है। पहला पश्चिमी जोन जिसमें अफगानिस्तान, पाकिस्तान और उत्तर पश्चिमी भारत का आयात बाजार जहां मध्य और पश्चिम एशिया से ऊर्जा की आपूर्ति और दूसरा पूर्वी जोन जिसमें भारत (मुख्य आयातक बाजार), नेपाल, भूटान, बांग्लादेश और श्रीलंका शामिल होंगे, लिया जा सकता है। आखिरी तौर पर क्षेत्रवार एकीकृत बाजार निर्मित करने के लिए भारत दोनों जोन के बीच सेतु का काम कर सकता है।

यह वास्तव में विडंबनापूर्ण है कि 2011 में आयोजित सत्रहवें शिखर सम्मेलन का विषय 'सेतु निर्माण' था। शिखर घोषणा में साफ्टा मंत्रिस्तरीय परिषद को पूरी और प्रभावी तरह से साफ्टा लागू करने का निर्देश दिया गया। परिषद को संवेदनशील सूची को घटाने पर काम करने के साथ-साथ गैर शुल्क बाधाओं के शीघ्र समाधान तलाशने व मानकों को सुसंगत करने और सीमाशुल्क प्रणाली की प्रक्रिया में तेजी लाने का काम सौंपा गया। इसी तरह सार्क वित्तमंत्रियों को भी एक प्रस्ताव तैयार करने का निर्देश दिया गया जिससे व्यापक वित्तीय पूंजी प्रवाह और अंतर-क्षेत्रीय लंबी अवधि का निवेश सुनिश्चित हो सके।

सार्क के लिए अपने घोषणा पत्र में संशोधन के जरिए एजेंडे में राजनीतिक मुद्दों को भी जगह देने का यह शायद उपयुक्त समय है। अंत में सार्क अपने सदस्य देशों के बीच मौजूद विवाद और भिन्न समझ पर खुल कर बातचीत करने का मंच मुहैया कराए। सार्क के सदस्य देशों में राजनीतिक मतभेद और राजनीतिक इच्छा शक्ति का अभाव आर्थिक, सैन्य या राजनीतिक क्षेत्र में सहयोग वृद्धि और इनके विकास के रास्ते की रुकावट बना हुआ है। पाकिस्तान की प्रवृत्ति से आर्थिक और सैन्य क्षेत्र में भारत से आगे निकलने की निराशा झलकती है।

इसके अलावा शीत युद्ध के बाद की परिस्थिति ने भारत को एशिया प्रशांत क्षेत्र के विस्तृत फलक पर आगे बढ़ने का अवसर मुहैया कराया है। भारत और पाकिस्तान पड़ोसी मुल्क हैं और यह एक तथ्य है कि दोनों में से कोई भी दूसरी जगह स्थानांतरित नहीं हो सकता। इसलिए दोनों को शांति और प्रगति के साथ रहना चाहिए। लोगों का लोगों के साथ संपर्क का यही असली समय है। भारत और पाकिस्तान की सिविल सोसाइटियों को दोनों देशों के बीच स्थायी संबंध बनाने का उपाय तलाशने में और निश्चयात्मक होना चाहिए।

क्षेत्रीय संगठन आज की कई सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय, राजनीतिक और सैन्य समस्याओं के लिए कोई रामबाण औषधि नहीं है। लेकिन, यह निश्चित रूप से बिगड़ती हुई स्थिति में खास तौर से दुनिया के इस हिस्से के विकासशील देशों के बीच महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. गुप्ता, राकेश, टैरिज्म कम्युनलिज्म एण्ड अदर चौलेन्जेज टू इण्डियन सिक्युरिटी, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004
2. गुलाम, श्रीप्रकाश, मोहम्मदशाह, टुवर्ड्स अण्डरस्टेन्डिंग द कश्मीर क्राईसेस, नई दिल्ली, 2015
3. लाल, ए.के., नीयो-टैरिज्म, ज्ञान पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2004
4. मिश्रा, पुष्पेंद्र कुमार, भारत-पाक संबंध: एक पूनर्वेक्षण, क्लासिकल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2016
5. सेन, अमर्त्य, स्वतंत्रता के रूप में विकास, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2000
6. चन्द्र भूषण, टैरिज्म एण्ड सेपरेशन इन नॉर्थ ईस्ट इण्डिया, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
7. चन्द्र रमेश, ग्लोबल टैरिज्म: ए थेट टू ह्यूमनिटी, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
8. दीक्षित, संजय, अनब्रेकिंग इंडिया डिसेजन ऑन आर्टिकल 370 एंड सीएए, गरुड़ प्रकाशन, 2020
9. भोंडले के., राहुल, इण्डिया सिक्युरिटी स्कोप, ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2006
10. चन्द, अतार, टैरिज्म पॉलिटिकल वायलेन्स एण्ड सेक्युरिटी ऑफ नेशनस, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988
11. हॉरोविट्ज, डोनाल्ड, सामुदायिक संघर्ष: नीति और संभावनाएँ, ईगल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1990

भारवि की सूक्तियों में नीति लालित्य

श्रीमती कविता

सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा

डॉ० योगिता मकवाना

सह आचार्य- संस्कृत, बाबू शोभाराम राजकीय कला, महाविद्यालय, अलवर

सूक्तियां साहित्य का नवनीत हैं। वैदिक ऋषियों के मौलिक चिंतन को सूक्तों के रूप में वेदों में संकलित किया गया। परवर्ती काल में विकसित सूक्तियों का बीज उन्हीं सूक्तों में है। आगम, त्रिपिटक, और वैदिक वाङ्मय से और प्रतिभामूर्ति कवियों के साहित्य से सूक्तियों के अनेक संकलन तैयार किये गये, जो अत्यधिक लोकप्रिय हुए। सूक्तियां भले ही दिखने में छोटी होती हैं पर प्रभाव गंभीर करती हैं। इनमें सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् का मधुर समन्वय होता है। इस प्रकार चमत्कार पूर्ण हृदयवेधी उक्तियों का प्रणयन संस्कृत साहित्य में बहुत वर्षों से होता आ रहा है। कीथ ने स्पष्टतया स्वीकार किया है कि जीवन और सदाचार अथवा नीति से संबंध रखने वाले सारवत् निरीक्षणों को पद्य में प्रकट करने में भारत ने सदा प्रसन्नता का अनुभव किया है।

सूक्ति: व्युत्पत्तिपरक अर्थ-एवं स्वरूप विवेचन

सूक्ति शब्द दो शब्दों के मेल से बना है—सु और उक्ति। सु शब्द अब्यय है। और विभिन्न कोशकारों ने इसका निम्नलिखित अर्थ किया है—निरुक्तकार यास्क ने इसे उपसर्ग के अंतर्गत मानते हुए इसका अर्थ स्वीकृति (पूजार्ह) माना है—सु इत्यभिपूजितार्थे।¹

मेदिनी कोशकार ने पूजा अनुमति आधिक्य समृद्धि काठिन्य आदि अर्थों को सु का द्योतक माना है—सु पूजायां भृशार्थेनुमतिकृच्छसमृद्धिषु।²

अमरकोश ने.....पूजने सु³ अर्थात् पूजार्थक स्वीकार किया है।

अमरकोश टीकाकार (रामाश्रमी) ने सु शब्द को इस प्रकार व्युत्पन्न किया है—यहां 'सु गतौ' एवं सु प्रसवैश्वर्ययोः धातु से विप्रसंम्यो द्वसंज्ञायाम् 'सूत्र' में गठित वार्तिक मितद्रादिम्य उपसंख्यानाम् से डु प्रत्यय होकर सु शब्द बनता है जिसका अर्थ—सुन्दर गति प्रसव, ज्ञान एवं ऐश्वर्य होता है।

वामन शिवराम आप्टे⁴ के अनुसार सु निपात का कर्मधारय और बहुव्रीहि समास बनाने के लिये संज्ञा शब्दों से पूर्व जोड़ा जाता है। विशेषण और क्रिया विशेषणों में भी जुड़ता है। इसका अर्थ है—सुन्दर, मनोहर, सर्वथा, अत्यधिक ठीक प्रकार से आदि।

सु का मोनीयर विलियम्स⁵ ने संस्कृत अंग्रेजी कोश में इस प्रकार अर्थ किया है—Good, beautiful, well, easy, any, excellent, much, quickly.

उक्ति—उक्ति शब्द अदादिगणीय वच परिभाषण⁶ धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' सूत्र से क्तिन् प्रत्यय एवं 'वाचिस्वपियजादीनां किति' से संप्रसारण करने पर उक्ति शब्द बनता है।

अमरकोशकार ने बचन के छः नामों से उक्ति को बतलाया है.....व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः।⁷

विविध कोश ग्रंथो⁸ में उक्ति के निम्नलिखित अर्थ बताए गए हैं—वाणी, अभिव्यक्ति शब्द, एक मूल्यवान् वाणी, भाषण, कथन, वाक्य, वचन, घोषणा आदि।

इस प्रकार सू के साथ उक्ति के मिलने से सूक्ति शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है—सुंदर उक्ति, ज्ञानयुक्त कथन, समृद्धवाणी, सम्मानित वचन, रमणीय अभिव्यक्ति आदि। आप्टेकृत संस्कृत हिन्दीकोश⁹ में सूक्ति का अर्थ है—चातुर्यपूर्ण कथन, अच्छा या सौहार्दपूर्ण भाषण आदि।

वाचस्पत्यम् में 'सूक्तिः सुष्ठुतौ'¹⁰ अर्थात् सुष्ठु उक्ति को सूक्ति कहा गया है।

मोनीयर विलियम्स¹¹ ने सूक्ति का अर्थ—Beautiful-verse or stanza, wish saying, A good or friendly speech. किया है।

अलंकारशास्त्र के आचार्यों ने सूक्ति शब्द का प्रयोग कर उसकी अर्थवत्ता एवं महनीयता का निर्देश किया है। महाकवि दण्डी ने काव्यादर्श में सेतुबंध की उत्कृष्टता का वर्णन करते हुए लिखा है कि महाराष्ट्री प्राकृत में सूक्ति रत्नों के सागर सेतुबंध आदि काव्यों की रचना हुई—

सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धाति यन्मयम्।¹²

वक्रोक्तिजीवितकार आचार्य कुन्तक ने सूक्ति को कवि की अभिव्यक्ति में उत्कृष्ट सहायिका माना है।

औचित्य मार्ग के प्रवर्तक आचार्य क्षेमेन्द्र सूक्तियों में विचार का अधिक महत्व बतलाते हैं—उचित विचार से सूक्तियां चारुता प्राप्त करती हैं, वैसे ही जैसे ज्ञातव्य तत्त्वों के ज्ञान से मनीषियों की विद्या—

उचितेन विचारेण चारूतां यान्ति सूक्तयः ।

वेद्यतत्त्वावबोधेन विद्या इव मनीषिणाम् ॥¹³

भोजदेव ने शृंगार प्रकाश में लिखा है—तेषु उक्ति प्रधान काव्यम् ॥¹⁴

आचार्य राजशेखर ने सूक्तियों को कवियों के लिये समुद्र में पोत के समान माना है।¹⁵

कर्पूरमंजरी में राजशेखर ने विशिष्ट उक्ति अर्थात् सूक्ति को काव्य माना है—उक्ति विसेसो कव्वां।¹⁶

इस प्रकार सूक्ति का अर्थ वह वचन या उक्ति है जो संक्षिप्त होते हुए भी गंभीर अर्थवत्ता को धारण करे, चातुर्य पूर्ण उक्ति, जिसका प्रभाव विलक्षण हो। सूक्ति संघटना के दो अंग हैं—बाह्य और आंतरिक। सूक्ति के बाह्य रूप में प्रयुक्त अलंकार छन्द भाषा शैली में आते हैं। इनके आधार पर सूक्तियों के कापक्ष को उजागर किया जाता है। सूक्ति का बाह्य रूप कवि की काव्य प्रतिभा का परिचायक है। वहीं सूक्ति के आंतरिक रूप में भावों और विचारों का स्थान है।

संस्कृत महाकाव्यों के इतिहास में महाकवि भारवि किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के रचयिता के रूप में विख्यात हैं। उन्होंने महाकाव्य के विचित्र मार्ग या कलावाद का प्रवर्तन किया जिसमें भाव पक्ष की अपेक्षा कला पक्ष पर ही विशेष बल रहता है। पाण्डित्य प्रकर्ष की अभिव्यक्ति और मूल विषय का त्याग करके लम्बे वर्णनों में उलझ जाना इस मार्ग की विशिष्टता है।

भारवि की काव्यशैली सामान्यतः वैदर्भी है, जिसमें अल्प समास का प्रयोग होता है। शास्त्रीय वैदुष्य और पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी भारवि में बहुत अधिक है। किन्तु इस समस्त कृत्रिमता के मध्य उनमें भावों की अभिव्यक्ति करने की अद्भुत क्षमता है, जो सामान्य स्थलों में विपुल रूप से प्राप्त होती है। भावों के अनुरूप ही इन्होंने काव्य कला का प्रयोग किया है। राजनीति जैसा शुष्क विषय हो या शरद वर्णन जैसा सरल विषय भारवि की भाषा-शैली रूक्षता नहीं छोड़ती। यही कारण है कि मल्लिनाथ ने इनकी वाणी को 'नारिकेलफलसम्मित' कहा है।

भारवि ने अपने व्यावहारिक और शास्त्रीय अनुभव के द्वारा न जाने कितने नैतिक सिद्धांतों की स्थापना की है अपने भावों की गरिमा से अर्थ गौरव से भरी हुई कविता से न जाने कितने व्यक्तियों का जीवन-दर्शन किया है, मार्ग प्रशस्त किया है। भारवि की शास्त्रगत व्युत्पत्ति के अतिरिक्त लोकानुभव का प्रकृष्ट परिचय उनकी सूक्तियों से प्राप्त होता है। उनके सुभाषित शास्त्रों पाण्डित्य से मण्डित तथा व्यापक अनुभूतियों से समन्वित हैं। उनमें नीति, राजनीति तथा सामान्य जीवन से संबद्ध सूक्तियों का भण्डार है। इन सूक्तियों में अर्थ गौरव की महता अंकित करके सहृदय समीक्षकों ने एक उक्ति प्रचलित कर दी है—'भारवेरर्थगौरवम्' अर्थात् अर्थगौरव वह काव्य गुण है, जिसमें अल्पतम शब्दों में व्यापक अर्थ को प्रकाशित करने की क्षमता हो।¹⁷

भारवि के काव्य में नीति, राजनीति तथा सामान्य जीवन से संबद्ध सूक्तियों में यह गुण प्रचुर परिमाण में विद्यमान है। जिसमें जीवन का शाश्वत सत्य एवं अनुभव छिपा है। भारवि ने अर्थ गौरव की उत्कृष्टता के लिये उन शाश्वत सत्यों को अपनी सूक्तियों के माध्यम से दिखलाने का एक सफल प्रयास किया है।

भारवि की नीति से संबंध सूक्तियां

भारवि स्वयं राजनीतिज्ञ थे। अतः उनके काव्य में नीतिपूर्ण युक्त सूक्तियां नूतन प्रेरणादायक हैं। किरातार्जुनीयम् के द्वितीय सर्ग में नीति से सबद्ध अनेक पद्य हैं। भारवि के मत में नीतिशास्त्र बहुत दुर्गम है फिर भी इसमें लोग प्रवेश करते ही हैं क्योंकि इसमें प्रवेश करने के लिये गुरुओं ने मार्ग बनाये हैं। जलाशय में प्रवेश करने के लिये सोपान बना दिये जाने पर सभी लोगों का अवगाहन सरल हो जाता है वैसे ही भयावह नीतिशास्त्र की स्थिति है। किन्तु वह व्यक्ति दुर्लभ होता है जो कृत्य (नीतिशास्त्र पक्ष में—करने योग्य कार्य, जलाशय पक्ष में स्नानादि) के लिये उक्ति मार्ग बताये। नीतिक्षेत्र में उस व्यक्ति का महत्व है जो समय पर कर्तव्य के विषय में सही परामर्श दे। जलाशय के पक्ष में वह व्यक्ति महत्वपूर्ण है जो जलाशय में सोपान बना दे, स्नान करने वाले तो अनेक होंगे।

विषमोऽपि विगाहयते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः ।

स तु तत्र विशेष दुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्मयः ॥¹⁸

भारवि ने एक और नीतिपूर्ण तथ्य स्पष्ट किया है वह यह है कि विद्वान लोग किसी की वाणी के गुणों का ग्रहण करते हैं वे यह नहीं देखते कि यह किस वक्ता की वाणी है (स्त्री की बात है या कि पुरुष की ननु वक्तृविशेषनिः स्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः ॥¹⁹)

भारवि की राजनीति विषयक सूक्तियां

भारवि राजनीति के विशिष्ट ज्ञाता हैं। इसलिए तद्विषयक सूक्तियां भी उन्होंने अनेकानेक दी हैं—

भारवि 'शठे शाट्यं समाचरेत' की नीति के अनुयायी हैं इसीलिए वे कहते हैं कि मूर्ख बुद्धि से वे मनुष्य पराजित होते हैं, जो दुष्टों के साथ दुष्टता का व्यवहार नहीं करते, क्योंकि कवच रहित शरीर में बाण जिस प्रकार प्रविष्ट होकर मानव की मृत्यु का कारण बनता है, उसी प्रकार दुष्ट दूसरों के विनाश का कारण होता है। अतः शठ के साथ शठता का आचरण करना चाहिए—

ब्रजन्ति ते मूढधियः परामवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः । प्रविश्य हि ध्वन्ति शाठस्तथ विधान संवृतागन्निशिता इषवेवः ॥²⁰

भारवि के अनुसार युद्ध में विजय की प्राप्ति पराक्रम पर ही आश्रित होती है अर्थात् युद्ध में विजय शक्ति साधन संपन्न और पराक्रमी व्यक्तियों को ही मिलती है—प्रकर्षतत्रा हि रणे जय श्रीः ॥²¹

कई परिस्थितियों में मानव मन का क्षोभ क्रोध शून्य व्यक्ति का न मित्र ही आदर करता है और न शत्रु ही उससे डरता है—

अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जात हार्देन न विद्विषादरः।²²

भारवि का यह कथन राजाओं के लिये कितना सत्य है कि महापुरुषों का यह स्वभाव होता है कि दूसरों की उन्नति सहन नहीं करते हैं अर्थात् वे दूसरों के अम्युदय को सह नहीं पाते—प्रकृतिः खु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नति यया।²³

भारवि ने निस्तेज व्यक्ति के संबंध में इस सूक्ति के माध्यम से बताया है कि उसके पास स्वाभिमान कहां से होगा—तेजोविहीन विजहाति दर्पः।²⁴

भारवि की सामान्य जीवन से संबद्ध सूक्तियां—व्यक्ति की वाणी उसके भावों और प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने का सार और प्रमुख माध्यम है। वह जो कुछ प्रकाशनीय मानता है उसी को कहना चाहता है गोपनीय को नहीं। लेकिन भारवि ने जीवन के अनुभव से अच्छी तरह जान लिया है कि हितकारक वाणी कभी मनोहर और मीठी नहीं हो सकती है। उसमें कटु सत्य होगा जो कि सुनने वाले को तीखी छुरी की तरह लगेगा। अतः उनका कथन है कि ऐसी वाणी दुर्लभ है जो हितकर होने के साथ मन के अनुकूल भी हो—हितं मनोहारि च दुर्लभ वचः।²⁵

भारवि कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को हमारी वाणी प्रियलगे, यह आवश्यक नहीं है सब व्यक्तियों की सुंदर लगने वाली वाणी दुर्लभ है—सुदुर्लभाः सर्व मनोरमा गिरः।²⁶

भारवि का कहना है कि सज्जनों का संसर्ग विश्वास की भूमि है, सज्जनों के साथ शीघ्र ही विश्वास उत्पन्न हो जाता है—विश्वासयत्याशु सतां हि योगः।²⁷

भारवि का मानना है कि सज्जनों की वाणी सदैव प्रिय भाषण ही करती है—सतां हि वाणी गुणमेव भाषते।²⁸

भारवि ने एक और भी महत्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट किया है कि वह यह है कि सज्जन व्यक्ति से यदि विरोध भी होता है तो वह अच्छा ही है, उसके अपने दोष तो पता चलते ही हैं, अहित की संभावना कम रहती है। तात्पर्य है कि नीचों की संगति की अपेक्षा बड़े लोगों से विरोध कहीं अच्छा है, क्योंकि उससे ऐश्वर्य की सिद्धि होती है—समुन्नयन भूतिमनार्य संगमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।²⁹

भारवि का मानना है कि बलवान् व्यक्तियों से विरोध करने पर अंत तो कष्टकर होगा ही—अहो दुरन्ता बवद् विरोधिता।³⁰

भारवि का कहना है कि बिना विचारे अर्थात् अकस्मात् कोई काम नहीं करना चाहिए क्योंकि अविवेक विपत्ति का कारण है। विचारवान व्यक्तियों को संपत्तियां वरण करती हैं—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।³¹

कई बार परिस्थिति या मनोदशा के अवस्थ होने पर या किसी अन्य कारण से मानव मन की स्वाभाविक अवस्था में कुछ परिवर्तन आ जाता है। उस समय वह किसी भाव या विकार से युक्त हो जाता है। हर कोई विकारग्रस्त हो सकता है और इसमें कोई अस्वाभाविकता नहीं भारवि का भी कहना है कि ईर्ष्याग्रस्त व्यक्तियों के चित्त सज्जनों के प्रति भी द्वेष युक्त ही रहते हैं—मात्सर्यं रागो पहतात्मनां हि स्खन्ति साधुष्वपि मानसानि।³²

चित्त की गतियां विविध हैं जिसमें बहुत कुछ गोपनीय है और व्याकुताएं हैं। चित्त की वृत्तियां विचित्र रूपों वाली हैं। भारवि का कहना है कि इन्द्रियों के विषय तो अपनी प्राप्ति के समय ही अच्छे लगते हैं, अंतिम अवस्था में वे सन्ताप ही देते हैं—आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः।³³

भारवि यह भी जानते हैं कि शत्रु का विनाश उसे भोग विलास में आकृष्ट कर सहज ही किया जा सकता है—कामा कष्टा हि शत्रवः।³⁴

भारवि का कहना है कि कामी जन सर्वदा गुणों की क्रमशः अधिकता की खोज करते रहते हैं उपस्थिति गुणों से संतुष्ट नहीं होते—यथोत्तरेच्छा हि गुणेषु कामिनः।³⁵

मानव अपने गुणों से श्रद्धा, मान-सम्मान पाता है विशालाकृति से नहीं विशाल आकृति भय उत्पन्न कर सकती है सम्मान नहीं। सम्मान गुणों से ही प्राप्य है—

गुरुतां नयन्ति हि गुणः न संहतिः।³⁶

पुनः भारवि कहते हैं कि मानव अपने परिचय से प्रिय नहीं बनता है अपितु उसके गुण ही उसे आदर सम्मान और स्नेह दिलाते हैं—गुणाः प्रियत्वेऽधिकृताः न संस्तवः।³⁷

भारवि का मानना है कि प्रेम में गुण बसते हैं किसी भौतिक पदार्थ में नहीं—

बसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि।³⁸

भारवि का कहना है कि संसार में सौंदर्य की प्राप्ति कठिन नहीं है, किन्तु गुणों की प्राप्ति बहुत कठिन है—सुलभा रम्यता लोके दुर्लभा हि गुणार्जनम्।³⁹

भारवि के इस सूक्ति से परस्पर संबंध एवं आत्मीयता का बोध इस प्रकार होता है: अपने बान्धव को कोई न भी पहचान पाये तथापि उसे देखकर मन में प्रबल हर्षोद्वेग होता ही है—अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात्प्रह्लादते मनः।⁴⁰

भारवि का मानना है कि किसी उद्देश्य का अंतिम परिणाम क्या होगा, यह जानना कठिन है दुरधिगमा हि गतिः प्रयोजनानाम्।⁴¹ भारवि का यह कटु अनुभव है कि सभी लोग अपने वर्ग का हित चाहते हैं—आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः।⁴² और सभी लोग निरापद स्थान पर रहना चाहते हैं—वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः।⁴³

भारवि की एक अन्य महत्व सूक्ति जिसमें वे संपूर्ण समस्याओं का हल सहिष्णुता और क्षमा से देखते हैं। उनका कहना है क्षमा के समान अन्य कोई साधन नहीं है—न तितिक्षा सममस्ति साधनम्।⁴⁴

इस प्रकार भारवि की समस्त सूक्तियां उनके शास्त्रीय पाण्डित्य से मण्डित तथा व्यापक अनुभूतियों से समन्वित हैं। उनकी नीतियां जीवन के सभी पक्षों पर पथ-प्रदर्शन करती मिलती हैं। यथावसर लोकनीति, राजनीति, कूटनीति इनके काव्य में भास्वर मणि की भांति अवस्थित है। कहीं उपमा अलंकार के द्वारा, कहीं अर्थान्तरन्यास, कहीं काव्यलिंग आदि अलंकारों के द्वारा साहित्यिक आभा से ओत-प्रोत होकर 'किरातार्जुनीयम्' में उल्लिखित है। अपनी उपादेयता के कारण इसे सूक्ति शब्द की संज्ञा दी गई है। इन सूक्तिभूत नीतियों का संकलन, स्पष्टीकरण एवं आलेखन इस शोध पत्र का एकान्त उद्देश्य है। निस्संदेह जीवन के प्रत्येक मोड़ पर इनकी सूक्तियां उपादेय, अनुकरणीय और प्रशंसनीय हैं।

संदर्भ

1. यास्कविरचित निरुक्त 1.3
2. मैदिनीकोश-185.79
3. अमरकोश 3.4.5
4. संस्कृत हिन्दी कोश (आप्टे/पृष्ठ 1109)
5. संस्कृत अंग्रेजी कोश (मोनीयार विलियम्स) 1219
6. संस्कृत धातु कोश पृष्ठ-109
7. अमरकोश 1.6.1
8. संस्कृत हिन्दी कोश (आप्टे) पृष्ठ 181
संस्कृत अंग्रेजी कोश (मो.वि) पृष्ठ 172
9. संस्कृत हिन्दी कोश (आप्टे) पृष्ठ 1109
10. वाचस्पत्यम् खण्ड 6, पृष्ठ 532
11. संस्कृत अंग्रेजी कोश (मो.वि) पृष्ठ 1240
12. काव्यादर्श (दण्डी) 1.34
13. औचित्य विचार चर्चा पृष्ठ 37
14. शृंगार प्रकाश, पृष्ठ 109
15. काव्यमीमांसा दशम् अध्याय
16. राजशेखर विरचित कर्पूरमंजरी 1.7
17. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ 250
18. किरातार्जुनीयम्-2/3
19. किरात-2/5
20. किरात-1/30
21. किरात-3/17
22. किरात-1/33
23. किरात-2/21
24. किरात-17/16
25. किरात-1/4
26. किरात-14/5
27. किरात-3/31
28. किरात-14/11
29. किरात-1/8
30. किरात-1/23
31. किरात-2/30
32. किरात-3/53
33. किरात-11/12
34. किरात-11/35
35. किरात-8/4
36. किरात-12/10
37. किरात-4/25
38. किरात-8/27
39. किरात-11/11
40. किरात-11/8
41. किरात-10/40
42. किरात-9/64
43. किरात-9/16
44. किरात-2/43

भारत में कृषि विकास: मुद्दे एवं चुनौतियाँ

आसीन खाँ

सह आचार्य- अर्थशास्त्र विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर।

सार-संक्षेप

महात्मा गांधी का कहना था कि भारत के पूर्ण स्वराज का रास्ता ग्राम स्वराज से होकर जाता है। उन्होंने ग्रामीण भारत की सेवा करने के उत्सुक छात्रों को संबोधित करते हुए एक बार कहा था कि “वास्तविकता यह है कि ग्रामवासियों को कोई उम्मीद ही नहीं है। वे हर अजनबी पर संदेह करते हैं कि उसका हाथ उनके गले तक पहुंचेगा और जो कोई भी आता है, वह उनका शोषण करने ही आता है। बुद्धिवादियों और श्रमिकों के बीच अलगाव हो गया है जिससे खेती लुंजपुंज सी हो चुकी है। किसी कार्यकर्ता को गांवों में प्यार और उम्मीद के साथ जाना चाहिए, यह सोचकर कि वहां खेतिहर मजदूर स्त्री-पुरुष पूरे साल रोजगार में नहीं रहते। वहां पूरे साल काम करने और श्रमशक्ति तथा बुद्धि को इकट्ठा करके काम करने से ही उनका विश्वास जीता जा सकता है”। इसलिए भारत में कृषि क्षेत्र के सतत विकास के लिए बुद्धि व श्रम को एक साथ लाना आवश्यक है।

प्रस्तावना:

कॉरपोरेट क्षेत्र और उद्योगों के तेज विस्तार के बावजूद हमारा देश आज भी कृषि प्रधान है। देश की लगभग आधी जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए या तो पूरी तरह या फिर बहुत हद तक किसी न किसी रूप में किसानों के कार्य पर निर्भर करती है। ये विविध कार्य या तो कृषि फसलों उगाने, बागवानी, पशुपालन या फिर मछलीपालन जैसे कृषि से जुड़े व्यवसाय के रूप में होते हैं। बुनियादी ढांचे और मानव विकास का स्तर कम होने तथा विषमताओं और अनिश्चितताओं से भरे माहौल के कारण ग्रामीण भारत अपनी कल की दुनिया में बदलाव लाए जाने को कभी आशा से तो कभी चिंता से देखता है। जो भी हो, कृषि क्षेत्र में आय के अवसरों में विस्तार गरीबी कम करने का सबसे बड़ा और सशक्त माध्यम है। इतना ही नहीं, देहाती इलाकों में गैर-कृषि क्षेत्र से आमदनी की बहुत संभावनाएं रहती हैं क्योंकि इसका काफी हिस्सा कृषि गतिविधियों से जुड़ा रहता है। इनमें फसल कटाई के बाद के कई काम और कृषि उपकरणों के रखरखाव की अनेक क्रियाएं शामिल होती हैं। इस तरह: कृषि से जुड़े आर्थिक कार्यों के विस्तार का ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि इतर कार्यों से होने वाली आमदनी के साथ जुड़ जाने का एक चक्र सा चलने लगता है। देश में खासकर वर्षा पोषित क्षेत्रों में कृषि संकट की पुष्टि, 2003 में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा किए गए किसानों के स्थिति के आकलन से और 2004 में दसवीं योजना की मध्यावधि मूल्यांकन से भी हो गई। राष्ट्रीय विकास परिषद ने 2005 में कृषि की स्थिति पर विचार के लिए एक उपसमिति बनाई तथा राष्ट्रीय किसान आयोग और योजना आयोग ने जो सूचना सामग्री दी उसके आधार पर ग्यारहवीं योजना बनाई गई। राष्ट्रीय विकास परिषद ने पहली बार 2007 में अकेले कृषि क्षेत्र पर विचार के लिए विशेष बैठक बुलाई। इसमें इस क्षेत्र के लिए ग्यारहवीं योजना की कार्यनीति पर विचार किया गया और इस विषय पर प्रस्ताव पारित किया गया। इस विचार-विमर्श से यह तथ्य उभरकर सामने आया कि प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव तथा ग्रामीण बुनियादी ढांचे के अभाव के अलावा, कमजोर प्रौद्योगिकी, कर्ज के लिए रुपये-पैसे की उपलब्धता में देरी तथा विस्तार और विपणन सेवाओं में ढीलापन साफ दिखाई देता है।

मुख्य आलेख:

कुछ वर्षों से ग्रामीण आय बढ़ गई है और गांवों में गरीबी घटी है। लेकिन शहरी और देहाती लोगों की आय में अंतर काफी बढ़ गया है। कारण यह है कि कृषि का विस्तार अन्य क्षेत्रों की तुलना में धीमी गति से हुआ है और गैर-कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसर इतने नहीं बढ़े हैं कि कृषि पर आबादी की निर्भरता कम हो जाए। हरित क्रांति के उत्पादकता लाभ पर आठवीं योजना के अंत तक एक तरह से विराम सा लग गया था। परिणाम यह हुआ कि उसके बाद प्रतिव्यक्ति अनाज उत्पादन घट गया। कृषि का बागवानी, पशुपालन और गैर-खाद्य फसलों के क्षेत्र में विस्तार तो हुआ लेकिन 1997-1998 से 2004-2005 के दौरान स्वयं कृषि के सकल घरेलू उत्पाद में औसत से सिर्फ 1.9 प्रतिशत की वृद्धि ही हुई। कृषि से आय वृद्धि दर तो और भी घट गई क्योंकि इस अवधि में व्यापार शर्तें कृषि के प्रतिकूल थीं। यह सब कुछ अपर्याप्त मांग और ग्रामीणों की क्रय शक्ति में कमी का सूचक था। कृषि आय की तुलना में कृषि कर्ज बढ़ जाने से आशा की किरण धूमिल पड़ने लगी। इसकी परिणति किसानों की आत्महत्याओं की संख्या में वृद्धि के रूप में देखने को मिली।

ग्यारहवीं योजना में कृषि विकास की रफ्तार में उन कमियों को दूर करने का प्रयास किया गया है जो नौवीं योजना में देखने को मिलीं। गिरावट का यह दौर दसवीं योजना के दौरान भी जारी रहा। परंतु बाद के साम्य में इसमें उल्लेखनीय सुधार देखने को मिला। 2010-11 में खाद्यान्नों का उत्पादन 24 करोड़ 16 लाख टन के शिखर तक पहुंच गया। गेहूं के साथ-साथ दलहनों, तिलहनों और कपास के उत्पादन में भी कीर्तिमान स्थापित किए गए हैं। 2010-11 की अंतिम तिमाही में तो कृषि का कुल उत्पादन 7.5 प्रतिशत की प्रभावशाली विकास दर से हुआ। परिणाम यह हुआ कि इस वर्ष का सकल घरेलू उत्पाद बढ़कर 6.6 प्रतिशत हुआ। साथ ही पाँच वर्षीय योजना में कृषि की विकास दर 3.2 प्रतिशत हो गई। यह सब तब संभव हुआ जब इससे कुछ ही पहले सूखे, बेमौसमी बरसात भीषण बाढ़ और पाले जैसे प्रतिकूल मौसम की मार झेलनी पड़ी थी। दसवीं योजना के दौरान तो कृषि की वृद्धिदर घटकर 2.2 प्रतिशत रह गई।

भारत सरकार राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक संसद में पारित कर चुकी है, जिसका उद्देश्य है भोजन को सबके लिए कानूनी अधिकार बनाना। पिछले एक दशक के दौरान महत्वपूर्ण मानवीय आवश्यकताओं के मामले में ठीक रखैया अपनाया जाता रहा है। उदाहरण के लिए इस समय शिक्षा, रोजगार, सूचना और भूमि के (अनुसूचित जनजातियों और अन्य पारंपरिक वनवासियों के लिए) अधिकार प्राप्त हैं। जब कानूनी पात्रता हो जाएगी, तब भोजन का अधिकार भारतीय लोकतंत्र में सबसे महत्वपूर्ण कानून है। सबके लिए भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित होने के साथ निम्नलिखित बातें भी जुड़ी हैं-

भोजन की उपलब्धता- यह उत्पादन का काम है या फिर जब जरूरत हो, तो आयात का; जैसे दालों के मामले में किया गया।

भोजन तक पहुंच- यह क्रय शक्ति का मामला है। यह वही क्षेत्र है जिस पर राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक, 2011 के जरिये ध्यान दिया जा रहा है। और भोजन हजम करना यह शरीर का काम है और इसके लिए जरूरी है पेयजल, साफ-सफाई, बुनियादी स्वास्थ्यचर्या और पोषक तत्वों के बारे में ज्ञान।

महत्वपूर्ण बात यह है कि 12वीं पंचवर्षीय योजनाविधि में मानव जीवन की पेयजल, साफ-सफाई, स्वास्थ्यचर्या और पर्यावरण की स्वच्छता जैसी अनेक जरूरतों के संबंध में हमें यह सीखना है कि ये सेवाएं किस तरह उपलब्ध कराई जाएं। अगर हमने यह नहीं सीखा तो हमारे देश की बदनामीज्यों की त्यों बनी रहेगी। इसके लिए सुशासन और पात्रता दोनों मुद्दों पर साथ-साथ काम करना होगा।

प्रमुख चुनौतियां:

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक विचलित करने वाला पक्ष है किसान परिवारों पर बढ़ता कर्ज राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के आंकड़ों के अनुसार मई 2005 में देश के 48.6 प्रतिशत किसान परिवारों पर कर्ज था और उनमें से ज्यादातर साहूकारों के चंगुल में थे। कर्जदार परिवारों का अधिकांश भाग 82 प्रतिशत आंध्र प्रदेश में रहता है। दूसरा नंबर तमिलनाडु का है, जहां 74.5 प्रतिशत किसान परिवार कर्जदार बताए गए हैं। सिंचित भूमि वाले प्रदेश पंजाब में भी कर्जदार किसानों का प्रतिशत 65.4 है। महाराष्ट्र में जहां से अक्सर कर्ज के चलते किसानों द्वारा आत्महत्या की खबरें आती हैं, 54.8 प्रतिशत किसान कर्ज में डूबे हुए हैं और विदर्भ क्षेत्र में इनकी संख्या सबसे ज्यादा है। किसानों की कामयाबी अधिकांशतः मानसून और बाजार पर निर्भर करती है। जलवायु परिवर्तन का नतीजा धरती गर्म होने के रूप में सामने आ रहा है। ऐसी हालत में जरूरी है कि हम जलवायु के प्रति लचीली कृषि व्यवस्था का विकास करें। इस काम में पंचायती राज संस्थानों की मदद ली जा सकती है। इसके लिए समुदाय प्रबंधकों को जलवायु परिवर्तन खतरों के चारों ओर प्रशिक्षित किया जा सकता है, जो जरूरत पड़ने पर स्थानीय समाज की मदद कर सकें। जलवायु परिवर्तन के खतरे तापमान अथवा समुद्र जल स्तर में बढ़ोतरी के रूप में प्रकट हो सकते हैं। केरल के समुद्री तट के अलावा अन्य स्थानों पर भी बड़ी संख्या में समुद्र के किनारे लोग रहते हैं। जरूरत पड़ने पर हमें उनके पुनर्वास के लिए तैयार रहना चाहिए। इन्हें जलवायु शरणार्थी कहा जाएगा, क्योंकि ये वे लोग हैं जिन्हें अपना घर छोड़ने के बाद मुख्य भूमि पर ही बसाना होगा।

भंडारण सुविधाओं का एक राष्ट्रीय स्थापित किए जाने की जरूरत है जिसमें अनाज और जल्दी खराब होने वाली जिन्यों की व्यवस्था हो। 1979 में मैने ग्रामीण क्षेत्रों में गोदाम बनाने का एक कार्यक्रम शुरू किया था। ये गोदाम ऐसे डिजाइन किए गए थे, ताकि बड़ी में किसानों को अपनी उप की बात है कि फसल कटाई के बाद को प्रौद्योगिकी पर भारत में पूरा ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसी का नतीजा है कि पैदावार और फसल कट जाने के बाद काम आने वाली बुनियादी सुविधाओं का विकास नहीं हो पा रहा है, जिसके चलते अनाजों, फलों और सब्जियों की मात्रा और गुणवत्ता, दोनों को नुकसान हो रहा है। खाद्य सुरक्षा के लिए मानकों पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

वर्तमान कृषि विज्ञान केंद्रों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए ताकि किसानों को खाद्य प्रसंस्करण, मूल्यवर्धन और कृषि व्यापार के विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षित किया जा सके। ऐसा करने पर ही कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि उद्योग विज्ञान केंद्रों में परिवर्तित किए जा सकेंगे।

मूल्यों की अस्थिरता:

घरेलू खाद्य असुरक्षा बढ़ाने में कीमतों की अस्थिरता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह दुर्भाग्य की बात है कि लंबे अरसे से खाद्य मुद्रास्फीति की दर ऊंची बनी हुई है। इसलिए हमें खाद्य मुद्रा स्फीति नियंत्रण का राष्ट्रीय मिशन बनाना होगा। मिशन के लिए निम्नलिखित घटक हो सकते हैं-

सार्वजनिक नीतियों और मूल्यवृद्धि के बीच संबंध को समझा पाना भी बहुत महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए एक लीटर दूध की जो लागत आती है, उसका 80 प्रतिशत भाग पशु आहार और चारे के रूप में होता है। दुर्भाग्य की बात है कि चारागाह के लिए छोड़ी जाने वाली जमीन घटती जा रही है और किसान चारा उत्पादन पर काफी ध्यान नहीं दे पाते हैं। इसके अलावा सोयाबीन जैसे पोषकतत्वों का निर्यात किया जा रहा है। उधर करीब 10 लाख मवेशियों का पर्याप्त पोषक आहार देना मुश्किल हो गया है। पशुआहार और खासतौर से पोषकतत्वों के निर्यात की समीक्षा करने की जरूरत है।

खाद्य मुद्रास्फीति के चालकों की पहचान- उदाहरण के लिए सब्जियों, दालों, दूध, अंडे मांस आदि पर होने वाला खर्च। इस मामले में सामान्य रखैया मददगार नहीं होगा। इसीलिए हमें मूल्य वृद्धि के घटकों को अलग-अलग करके देखने की जरूरत पड़ेगी। साथ ही, यह भी जरूरी है कि हम उन जिन्यों की पहचान करें, जिनकी पूर्ति और मांग में असंतुलन बना हुआ है, जिसके चलते किसी खास मौसम में मूल्यों में बढ़ोतरी हो जाती है। इस प्रकार की रूपरेखा बना लेने से मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियों की पहचान और उन पर नियंत्रण आसान हो जाएगा। बढ़ती कीमतों पर नियंत्रण पाना राष्ट्रीय बागवानी मिशन, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना और 60 हजार पल्सेज विलेजेज प्रोग्राम के खास घटक हैं।

कृषि में प्रगति का पथ:

प्रौद्योगिकी परिवर्तन का प्रमुख चालक है। इस पर हम गेहूं और चावल के जिन छोटे करने के संदर्भ में ध्यान दे चुके हैं। छोटे पैमाने पर खेती करने और मछलीपालन के संदर्भ में भी हम मोबाइल टेलीफोनी के लाभ देख चुके हैं। अब हम ऐसे युग में प्रवेश कर रहे हैं, जहां अनिश्चितता और मौसम की अति का सामना करना पड़ता है। वैज्ञानिक जानकारी और किसानों के काम आने वाली जानकारी में अंतर हमें पाटना है। अभी तक किसान अनेक प्रकार की चुनौतियों

का सामना करते रहे हैं और उन्हें जो जानकारी मिल पाती है। वह काफी नहीं है। अब ग्रामीण प्रौद्योगिकी का माहौल बदल चुका है और इस क्षेत्र में अनेक निजी व्यवसायी भी आ गए हैं। बीज, कीटनाशक और उर्वरक कंपनियां भी किसानों को सलाह और सूचना देती हैं। कई बार तो साहूकार भी, जो उन्हें अन्य जरूरी चीजों की आपूर्ति करता है, वह प्रसार विशेषज्ञ के रूप में काम करने लगता है। इसीलिए आजकल रसायनों का अवैज्ञानिक और अत्यधिक प्रयोग हो रहा है, जिससे लागत भी बढ़ती है और पर्यावरण को नुकसान भी पहुंचता है। बिजली की निःशुल्क आपूर्ति जैसी सरकारी नीतियों के चलते भूजल का अत्यधिक दोहन हो रहा है जिसके चलते पंजाब और अन्य क्षेत्रों में भूजल स्तर नीचे जा रहा है। प्रौद्योगिकी की बदौलत 60 के दशक में मुख्य हरित क्रांति सफल हो पाई थी। खास ग्रामीण परिवेश की जरूरतें पूरी करने के लिए प्रौद्योगिकी का विकास किया जाना अभी बाकी है। फिलहाल वैज्ञानिक किसी खास क्षेत्र के लिए विनिर्दिष्ट प्रौद्योगिकी विकसित करने में लगे हुए हैं। सतत और स्थान विनिर्दिष्ट प्रौद्योगिकी विकसित करने के लिए अनुसंधान के काम में किसानों को भी शामिल करना होगा। अभी ऐसा नहीं हो रहा है। एम.एस. स्वामीनाथन अनुसंधान प्रतिष्ठान के वैज्ञानिक ओडिशा के कोरुपुट क्षेत्र में आदिवासियों के साथ मिलकर काम कर रहे हैं। केरल में केलपेटा में भी वे आदिवासी महिलाओं और पुरुषों के साथ मिलकर ऐसे धान की उन्नत किस्मों के विकास में लगे हुए हैं जो बदलती जलवायु के हिसाब से अपने को ढाल सकें और स्थानीय रूप से इस्तेमाल की जा सकें। इस तरह से मिलजुलकर अनुसंधान करने से कलिंग कालाजीरा जैसी धान की उत्तम किस्में तैयार की जा सकती हैं। कृषि उद्योगों के लिए प्रौद्योगिकी विकास के असली फायदे अभी आने हैं। 1992 में मैंने लघु किसान कृषि व्यापार संघ बनाने का प्रस्ताव किया था। इसके जरिये छोटे पैमाने पर उत्पादकों की शक्ति को अर्थव्यवस्था में लगाना था। तब के प्रधानमंत्री स्व. नरसिंहराव और डॉ. मनमोहन सिंह (तब वित्तमंत्री) ने इसकी सराहना की थी। असलियत यह है कि 1992 में डॉ. मनमोहन सिंह ने ऐसे संघ के गठन का एलान भी किया था ताकि कृषि उद्योगों के लाभ छोटे किसानों तक पहुंच सकें। ऐसे संघ मौजूद तो अब भी हैं, लेकिन इनके जरिये गरीब किसानों तक कोई संसाधन नहीं पहुंच रहे हैं। जहां कहीं बड़े पैमाने पर सरकार द्वारा सब्सिडी दी जाती है वहाँ कंपनियां अपने उत्पाद बेच पाती हैं। इस संदर्भ में डिप सिंचाई का उदाहरण दिया जा सकता है। कृषि में प्रसार सेवाओं के लाभ इस रूप में सामने आने चाहिए कि लोग देखकर वैसा ही आचरण करें और इस तरह से नयी प्रौद्योगिकी का प्रसार हो सके। किसान से किसान सीखें, इस बात के संगठित प्रयास होने चाहिए। यह काम कृषि विद्यालयों को स्थापना द्वारा किया जा सकता है।

मौसम और विपणन के क्षेत्र में मोबाइल फोन के लाभ दिखाई देने लगे हैं। इनके चलते छोटे किसान भी जरूरी सूचनाएं पा जाते हैं। इसी तरह से तमिलनाडु में समुद्र में जाने वाले मछुआरों को भी समुद्र में ही रहते हुए सूचना मिल जाती है। ऐसी प्रौद्योगिकी का प्रचार आंध्र प्रदेश, ओडिशा और पश्चिम बंगाल में भी किया जा रहा है।

पिछले साढ़े तीन दशकों के दौरान दुग्ध उत्पादन क्षेत्र में विशेष सफलता मिली है। जिसके चलते हम दुनिया में सबसे बड़े दुग्ध उत्पादक देश बन गए हैं। साथ ही, गेहूं और चावल पैदा करने, कपास में जीएम प्रौद्योगिकी की शुरुआत करने के हमारे प्रयास भी जारी हैं। लेकिन, सार्वजनिक नीति और कटाई के बाद की प्रौद्योगिकी निवेश करने में हम सफल नहीं हो पाए हैं और खासतौर से अनाज भंडारण और जल्दी खराब हो जाने वाली जिन्यों को संभाल पाने के लिए आधारभूत सुविधाएं जुटाने के क्षेत्र में हम विफल रहे हैं। इसके अलावा, ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण और विशेष सुविधाओं की उपलब्धता भी घटी है, जिस अब सुधारा जा रहा है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की मानव संसाधन विकास क्षेत्र में एक बात को तुरंत जरूरत है। वह है, वहां चल रही बड़ी संख्या में वैज्ञानिकों की रिक्तियों को भरना। कृषि अनुसंधान विकास में एक विशेष पूर्वोत्तर संवर्ग बनाए जाने की जरूरत है। हैदराबाद की राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान अकादमी को सर्वोच्च प्रशिक्षण संस्थान की तर्ज पर विकसित किया जाना चाहिए, जैसे राष्ट्रीय रक्षा अकादमी नयी दिल्ली के बारे में किया गया है। इससे कृषि विश्वविद्यालयों और कृषि अनुसंधान संस्थानों के प्रबंधन में सुधार आएगा। हैदराबाद की कृषि अनुसंधान अकादमी को मात्र डिग्रियां बांटने वाले विश्वविद्यालय के रूप में नहीं छोड़ देना चाहिए।

अगले पांच वर्षों में अधिकांशतः पर्यावरण विज्ञान, अर्थशास्त्र और प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में चुनौतियों का सामना करना होगा। पर्यावरण की दृष्टि से हमें बुरे परिवर्तनों से निपटने की तैयारी करनी है। अर्थशास्त्र में हमें कृषि के लागत जोखिम प्रतिफल ढांचे में खराबी का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि गांवों की युवा पीढ़ी वहां रहने और खेती व्यवसाय में शामिल होने की इच्छुक नहीं है। हमारी जनसंख्या के 50 प्रतिशत से ज्यादा लोग 35 वर्ष से कम आयु के हैं। अतः युवकों को खेती में लगाए रखना सबसे बड़ी चुनौती हो सकती है। हम इस समस्या को सभी सुलझा सकते हैं जब खेती को बुद्धिवादी, प्रेरक और आर्थिक रूप से लाभप्रद व्यवसाय बना सकें। इसके लिए हमें पैदावार और फसल कटाई के बाद के कामों की तकनीकी रूप से उच्चिकृत करना होगा।

जलवायु परिवर्तन के कारण अंतरराष्ट्रीय अनाज बाजार में अनिश्चितता शुरू हो गई है। यही कारण है कि अगर अनाज आयात करना पड़ता है, तो हम अनाजों तक सबकी पहुंच को कानूनी अधिकार नहीं बना पाएंगे। हमारी खाद्य सुरक्षा का आधार स्वदेशी अन्न उत्पादन होना चाहिए। यह इसलिए जरूरी है कि खेती को अनाज उत्पादन करने वाली मशीन नहीं समझा जा सकता। यह तो देश को 60 प्रतिशत से ज्यादा लोगों की जीविका की सुरक्षा व्यवस्था है। यही कारण है कि अगर खेती गड़बड़ा जाती है तो अर्थव्यवस्था में कुछ भी ठीक रहने के आसार नहीं बचते। छोटे किसानों को आमदनी के अनेक स्रोत उपलब्ध रहें। इसके लिए जरूरी है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अनुसंधान कार्यक्रम चलाए जाएं, जिसमें खेती और गैर-खेती के कामों में उसी समय मिलने वाले रोजगार को शामिल किया जाना चाहिए। हमारे किसानों की जीत छोटी है अतः उनका आमदनी के एक ही स्रोत पर निर्भर रहना काफी नहीं होगा। ऐसा इसलिए भी, क्योंकि हमारी करीब 60 प्रतिशत कृषि भूमि की वर्षा से सिंचाई की जाती है। इसी तरह से तटीय क्षेत्रों में हमें एक तटीय व्यवस्था अनुसंधान कार्यक्रम चलाने की जरूरत है जिसके अंतर्गत हमें तटीय इलाक़ों की जमीन और समुद्र दोनों ओर ध्यान देने की जरूरत पड़ेगी। हमें तटीय क्षेत्रों में समुद्री पानी से सिंचाई करके खेती का आंदोलन शुरू करना होगा और ऐसी किस्में विकसित करनी होंगी जो नमकीन पानी को बर्दाश्त कर सकें। तटीय इलाकों में इस तरह के फार्म पर्यावरण और आर्थिक आधार पर विकसित किए जा सकते हैं जिससे स्थानीय निवासियों की जीविका की सुरक्षा हो सकेगी और साथ ही तटीय इलाकों के पर्यावरण में भी सुधार होगा।

महिला किसानों का सशक्तीकरण

भारतीय किसानों की 50 प्रतिशत आबादी महिलाओं की है और खेतों में काम करने बाल श्रमिकों में 60 प्रतिशत महिलाएं हैं। खेती में महिलाओं का योगदान बढ़ रहा है जिसके चलते पुरुष आबादी का शहरों की तरफ पलायन कम हो रहा है और महिला किसानों की जरूरतों पर ध्यान दिया जा रहा है। भविष्य में उनके स्वास्थ्य और विकास को ध्यान में रखते हुए ऐसे इलाकों में उनको खाद्य सुरक्षा पर ध्यान देना जरूरी है जहां जलवायु परिवर्तन हो रहा है। 2010-11 के दौरान महिला किसान सशक्तीकरण योजना शुरू की गई है जिसका विस्तार होना चाहिए ताकि महिला किसानों को जनता पर ध्यान दिया जा सके और उनकी जमीन, पानी, प्रौद्योगिकी, ऋण सुविधाएं, बीमा तथा विपणन की त पूरी की जा सके। 12वीं योजना में उपयोगी होगा कि महिला किसानों के लिए एक कृषि कांप की स्थापना की जाए जो महिला किसानों के उपयुक्त प्रशिक्षण क्षमता निर्माण और विपणन सुविधाएं जुटाने तथा वृद्धावस्था पेंशन आदि पर ध्यान दे। छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) के दौरान हमने महिलाओं के विकास का पहला अध्याय शुरू किया था। अब समय आ गया है जब हमें महिला किसानों की जरूरतों पर ध्यान देना है क्योंकि खेती वह सबसे बड़ा व्यवसाय है जिसमें हमारे देश की महिलाएं लगी हुई हैं।

आज हमारे सामने बहुत से अवसर मौजूद हैं जिनके जरिये हम खेतों को समुचित तकनीकों, सेवाओं और सार्वजनिक नीतियों के माफत आर्थिक विकास का एक प्रमुख साधन बना सकते हैं। 160 के दशक में हरित क्रांति सफल हुई थी और उसमें कई तरह की वैज्ञानिक दक्षता, राजनीतिक इच्छाशक्ति और किसानों के उत्साह का मिला-जुला योगदान था। दुर्भाग्य की बात है कि आज अधिकांश किसान अपना व्यवसाय छोड़ने को तैयार बैठे हैं बशर्ते उन्हें कोई वैकल्पिक जीविका मिल जाए। इसी तरह से किसानों के बच्चे खेतों में काम करने की इच्छा नहीं रखते। अब समय आ गया है जब हम गांधीजी की प्रौद्योगिकी और श्रमशक्ति को ग्रामीण क्षेत्रों में इकट्ठा करने की सलाह अपनाकर खेती को अधिक सार्थक बना सकते हैं।

निष्कर्ष व सुझाव:

महात्मा गांधी ने बुद्धि और श्रम को इकट्ठा करने पर जोर दिया था ताकि गांवों का फिर से विकास किया जा सके। मिशाल के तौर पे हम 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम-एमजीएनआरजीए' को फिर से व्यवस्थित एवं संयोजित करके इससे अधिकतम लाभ पा सकते हैं और इसे दुनिया का सबसे बड़ा सामाजिक सहायता कार्यक्रम बना सकते हैं। इस दिशा में इस प्रकार से प्रयास किए जाने होंगे-श्रम की अवधारणा का विस्तार किया जाए, ताकि उसमें महिलाओं के संदर्भ में कृषि, बालवाड़ी और स्कूलों में मध्याह्न भोजन का संचालन शामिल किया जा सके। मजदूरों से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों को मिलाकर संचालित किया जाए और इसके साथ ही प्रत्येक जिले में एक तकनीकी सहायता संघ की स्थापना की जाए ताकि बुद्धि और श्रमको इकट्ठा लाया जा सके। श्रम को सम्मान दिया जाए और श्रमिकों की सहायता की जाए, ताकि पर्यावरण मित्र जैसे पुरस्कारों को प्राप्त करने में लोग गर्व महसूस करें साथ ही महात्मा गांधी नरेगा टीमों के बढ़िया कामों को मान्यता दी जाए और इनके जरिये जल संभरण विकास, वर्षा जल संचयन, मिट्टी संरक्षण और पादप उर्वरकों के जरिये मृदा-कॉर्बन बैंकों का निर्माण किया जा सके। 100 दिनों से अधिक रोजगार वाला एक कार्यक्रम शुरू किया जाए, जिसके अंतर्गत जल संभरणों को जैव औद्योगिक संभरणों में बदल दिया जाए ताकि सूक्ष्म उद्यमों को चलाने के अवसर मिलें और छोटे ऋण देकर उनकी मदद की जाए। इस तरह से कृषि और गैर-कृषि श्रम अवसरों का समन्वय किया जाए। इससे दक्ष और अकुशल श्रमिकों को सहायता मिल पाएगी।

यदि महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम कार्यक्रम को व्यवस्थित करके प्रभावी तरीके से लागू किया जाए तो मनरेगा कार्यक्रम सचमुच ही मेहनत और बुद्धि को इकट्ठा लाने का एक शक्तिशाली साधन बन सकता है।

संदर्भ:

1. अरोड़ा, वेद प्रकाश. (2012): "कृषि का ऊंचा उठता मुकाम", योजना, वर्ष- 56, अंक- 1, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 54-58.
2. स्वामीनाथन, एम.एस. (2012): "कृषि का सतत विकास", योजना, वर्ष- 56, अंक- 1, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 25-28.
3. राय, अमरेन्द्र कुमार. (2012): "खाद्य सुरक्षा के लिए मजबूत पीडीएस", योजना, वर्ष- 56, अंक- 1, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 59-60.
4. भास्कर, भुवन. (2017): "समग्र विकास के साथ समृद्ध सांस्कृतिक विरासत संजोता ग्रामीण पर्यटन", कुरुक्षेत्र, वर्ष- 64, अंक- 2, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली पृ. 12-14.
5. सौरभ, समीरा. (2017): "भारतीय कृषि में सूचना एवं संचार", कुरुक्षेत्र, वर्ष- 63, अंक- 10, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली पृ. 22-26.
6. सिंह, अशोक. (2018): "कृषि आय बढ़ाने वाली कम लागत की तकनीकें", कुरुक्षेत्र, वर्ष- 64, अंक- 4, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली पृ. 43-46.

धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना के अग्रदूत श्रीमंत शंकरदेवः एक अध्ययन

मुनमी गौ

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, रुकासेन महाविद्यालय, कार्बि आंगलोंग, असम

साधारण अर्थ में धर्म सत्य का अन्वेषण तथा परम सत्य की उपलब्धि ही है। सभ्यता तथा संस्कृति के उन्नयन के क्षेत्र में मानव-समाज का पथ प्रदर्शन धर्म ने ही करते आ रहे हैं। भारतीय संस्कृति की एकता का मूल कारण भी धर्म ही रहा है। आदिम मानव सभ्यता के अन्वेषक इतिहासकार इस सम्बंध में एकमत है कि मानव अन्तः श्रुति तथा प्रेरणा का एकमात्र आधार भी धर्म हो रहा है। वैदिक युग की आर्य आर्यतर संस्कृतियों ने धर्म की धरा पर ही अपना-अपना विकास किया है। जीवन और जगत की अटल गहराइयों की खोज के लिए जब भारतीय विचारक उतरे तब सर्वप्रथम वे धर्म जिज्ञासा की ओर प्रवृत्त हुए। अनेक विचार के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह मानव धर्म जिससे इहलोक तथा परलोक दोनों में अभ्युदय (धर्म-अर्थ-काम) और निःश्रेयस (मोक्ष) इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है वही धर्म है। अर्थात् जो सबको समान रूप से भेद-भाव किए बिना, अभ्युदय की ओर ले जाए और सबको कल्याण का मार्ग दिखाये वही धर्म है। अतः धर्म एक मर्यादा है, अनुशासन है, जो समस्त ब्रह्माण्ड को नियन्त्रित किए हुए है।

मनुष्य के चिंतन जगत में जितना मूल्यवान बात धर्म, साहित्य, दर्शन, कला प्रवाहित हो रहा है और मनुष्य के कर्मनेन्द्रिय ने जितने कर्मानुष्ठान का समाधान किए है उन सबसे श्रेष्ठ अंश ही संस्कृति है। किसी एक जाति की संस्कृति ही उस जाति के जातीय जीवन की बहती धारा है। नदी की बहती धारा की तरह ही संस्कृति भी निरंतर प्रवाहमान है। संस्कृति शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ है सम्यक भाव से या भाव से किया गया कृति अर्थात् जिस शिल्प कर्म में सम्यक सृजनशीलता होता है, सौन्दर्य है, मानवता है वही संस्कृति है। प्रकृतार्थ में संस्कृति किसी एक जाति के समस्त सृष्टि प्रतिभा को प्रतिनिधित्व करती है।

भारतीय संस्कृति के उदय और अस्तित्व के मूल में धर्म सदाशय रूप से निहित है। समय-समय पर उसके अस्तित्व के लिए जब-जब संकट उपस्थित हुए तब धर्म ने ही उसकी रक्षा की है। पुरातन आर्य-आर्यतर युग से लेकर आज तक के लगभग पाँच हजार वर्षों के इतिहास में संस्कृति की अक्षुण्णता और उसका निरंतर विकास धार्मिक समन्वय के कारण ही सम्भव हो सका।

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने अपने भारत भ्रमण काल में विभिन्न स्तर के संतो के संपर्क में आए। धीरे धीरे उसके हृदय सर्वोत्तम चेतना जागृत हो उठे तथा बाद में वही चेतना प्रेरणा में बदल गए। असम के वैसम्यपुर्ण जनसाधारण के मानसिकता के साथ मिलाकर तथा भारतीय मूलस्रोत के साथ संगति रखकर, मौलिक चिंतन दारा अद्वैतवाद और भक्ति का समन्वय कर भागवत के भक्ति और गीता के एकशरण को एकत्र करके एक अभिनव, अत्यंत सहज पथ का उदभावन किया। उन्होंने मनीषी शंकराचार्य अथवा रामानुजाचार्य की तरह कोई दार्शनिक मतवाद प्रतिष्ठा नहीं किया था। संत कबीर तथा गुरु नानक को छोड़ उस समय के वैष्णव नवजागरण पथों में युगल उपासना की धारा प्रचलित थी। जैसे रामानुजाचार्य के पंथ में लक्ष्मी-नारायण, तुलसीदास, रामानंद के पंथ में सीता-राम, वल्लभाचार्य के पंथ में गोपी-कृष्ण, मराठी भक्तों में रूक्मिणी-कृष्ण, चौतन्य में राधा-माधव इत्यादि। किंतु शंकरदेव तांत्रिकता के केन्द्र असम में इस युगल उपासना की धारा को प्रवाहित न कराके एकमात्र कृष्ण संस्कृति में ही महत्व दिए।

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने असम के बंछित दलित तथा पीड़ित मानव को मुक्ति के लिए प्रत्येक मानव के अन्तःकरण में कृष्ण संस्कृति के सहज, उदार पथ के रसमयी भक्ति के दीव-शिखा को दे गए। उन्होंने संकल्प लिया कि नाना पंथों के पाक-चक्र, कु-संस्कार, अंध-विश्वास के चंगुल में पड़े समाज को उध्वमुखी कराएंगे तथा इसे परिष्कार करने में गुरु शंकर का असमीया जन-समाज के लिए पहला सांस्कृतिक अवदान रहे एकशरण नाम धर्म की ज्योति। शंकरदेव के कर्म मानवात्मा के मुक्ति का कर्म है। उन्होंने एकशरण हरि नाम धर्म के माध्यम से यही दिखाने की कोशिश की है कि धर्म का अर्थ केवल कुछ बाह्य आचार न होकर धर्म का अर्थ है श्रृंखला, कुछ सत नीति का कर्षण जिससे हृदय में उच्च मानवीय मूल्यबोध का जन्म होता है जो हमें धीरे-धीरे विशुद्धता की ओर ले जाती है। भारतीय संस्कृति के साथ असमीया संस्कृति के आत्मिक सम्बंध को इसी के द्वारा शंकरदेव ने घोषित की है।

धर्म संस्कृति का एक बड़ा अंग है। संस्कृति का काम ही उच्छृंखलता के विपरीत समाज को श्रृंखलाबद्ध करना। यवन, मिरि, गारो, नागा, कछारी, मुसलमानों के बीच एक उदार मानवतावादी धारणा की सृष्टि करके शंकरदेव ने शक्तिशाली असमीया जाति गठन का एक अपूर्व, दूरदर्शी प्रक्रिया आज से साढ़े पाँच सौ वर्ष पहले असम में प्रारम्भ किया था-

किरात कछारी खाछि गारो मिरि

यवन कंक गोवाल।

अमय मुलुक रजत तुरुक

कुवाच म्लेच्छ चंडाल॥'

श्रवण-कीर्तन प्राधान्य ही इस नाम धर्म में इतनी शक्ति है तथा इसके रस इतने अमृतमय होते हैं जिससे भक्तों को मुक्ति की स्पृहा ही नहीं रह जाते। जैसे-

मुक्ति निस्पृह जिटो सेहि भक्तक नमो

रसमय मागोही भक्ति।

समस्त मस्तक मणि निज भक्तवत्सल्य

भजो हेन देव यदुपति।^१

यहा भक्त एक परम आनन्द के सागर में अवगाहन करते रहते हैं। ये आनन्द विश्वास का आनन्द, भगवान के साथ एकांत सम्बंध स्थापना का आनन्द, काय-वाक्य मन से एक होने का आनन्द एवं अपार्थिव-सुख्यतम आनन्द, मुक्ति का आनन्द, आनन्द-परमानन्द होने का स्तर ही भगवान प्राप्ति का स्तर है।

अमित प्रतिभाशाली गुरुजन ने बहु देवताओं के बीच एक ईश्वर का संधान देकर प्रकृत अर्थ में एक कठोर मानसिक संयम दिया जो कठोर नैतिकता भी रहे। संस्कृति परिमार्जन के ये एक अत्यंत महत्वपूर्ण बात है। ये संयम ही पार्थिव प्राप्ति को तुच्छ ज्ञान करते हैं तथा पार्थिव कल्पना के प्रति मन को निस्पृह करते हैं। इस मार्ग के द्वारा ही हृदय में निष्काम भक्ति का उदय होता है। निष्काम भक्ति के लिए जो त्याग या संयम का प्रयोजन वह अत्यंत प्रगतिशील और उच्चतम संस्कृति का प्रतीक है। भक्तिमार्ग में ज्ञान और कर्म से ज्यादा भक्ति को श्रेष्ठ मार्ग स्वीकार किया जाता है। अद्वैत दर्शन के पुरुषार्थ का लक्ष्य है अद्वैत ब्रह्म और उपाय है अव्यभिचारी ज्ञान। किंतु शंकरी मार्ग का लक्ष्य है भागवत के आनन्द रस धन कृष्ण तथा उपाय है आत्मसमर्पण और निष्काम भक्ति। अद्वैत दर्शन की यथार्थ सत्ता ब्रह्म निर्गुण, निराकार, चैतन्य स्वरूप। शंकरी नाम धर्म में कृष्ण एक देव दुःखहारी काल मायादिरों अधिकारी-

कृष्ण बिने श्रेष्ठ देव नाहि नाहि आन।

सृष्टिस्थिति अन्तकारी देव तो बिने आन नाहि केव

जनिया विष्णु समस्त जगते सारा।^२

अर्थात् कृष्ण बिना अन्य देव देवी श्रेष्ठ नहीं सृष्टि स्थिति और प्रलय के अधिकारी भी कृष्ण ही है। इस प्रकार के घोषणा के द्वारा उन्होंने दृढ़ मानसिक संयम की संस्कृति दान दे गए। शंकरदेव ने विशाल, उच्च, आध्यात्मिक अनुवाद साहित्य की रचना के उपरांत भी मौलिक काव्य, नाट, गीत, पद आदि रचना करके उसके माध्यम से हिन्दु के नैतिक संस्कार, कर्मफल, जन्मांतरवाद, पाप-पुण्य की धारणा के साथ-साथ मानसिक तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष के शिक्षा दान देने के साथ ही अपने रचनाओं के माध्यम से असमीया साहित्य के जिस विशाल भव्य भवन का निर्माण किया उसके लिए समस्त असमवासी के हृदय में शंकरदेव सदैव स्मरणीय एवं आदरणीय रहेंगे। इसके उपरांत बौद्ध संघ के कुछ आर्हि से सांस्कृतिक केन्द्रस्वरूप सत्र, नामवर की स्थापना करके नित्य क्रिया के लिए चौदह प्रसंग प्रवर्तन किए। इन चौदह प्रसंगों में से असम के अपूर्व सुन्दर गायन-वायन, सत्रीया, उजापालि और वरगीत भी आते हैं। नैमित्तिक कार्य के लिए विभिन्न तिथि-पार्वण आदि पालन करते समय नाट नृत्य आदि विभिन्न सुकुमार कला की नियमित चर्चा के केन्द्र प्रदान किए जिसके कारण ही संस्कृति का भी परिष्करण सम्भव हुआ तथा नित्य नुतन विकास की ओर आगे बढ़े। उन्होंने सभी को ब्रह्म ज्ञान का शिक्षा दिया जिससे असम के अशिक्षित लोग भी इस तरह प्रार्थना कर सके-

कृपार सागर दैवकी नंदन

पुरिउ मनर काम।

भक्तवत्सल्य सदा नुगुचुक

मुखे तुवा गुण नाम।^३

शंकरदेव की सृष्टि आर्हि और आदर्श द्वारा प्रतिष्ठित है जो अत्यंत सहज, स्थापत्य कला के ग्राम्य रंगालय स्वरूप नामघरों में साढ़े पाँच सौ वर्ष से अंकीया भाओना होता आ रहा है। उनके द्वारा सृष्ट नाटकों को भाषा ब्रजबुलि असमीया साहित्य के एक महत्वपूर्ण सम्पद हुए। साथ ही उनके द्वारा रचित वरगीत का स्थान भी असमीया समाज में महत्वपूर्ण है।

आज हमारे समाज में जो विश्रंखलता दिखाई दे रही है तथा हम आज जिस धार्मिक विद्वेष के माहौल में जीवन-यापन कर रहे हैं उसमें महापुरुष शंकरदेव की वाणी अधिक प्रभावी भूमिका का निर्वाह कर सकती है। नैतिक मूल्यों का पतन आज जिस तीव्रता से हो रहा है तथा मानवीय मूल्यों का जो विघटन समाज में देख रहे हैं उसके कु-प्रभाव को दूर करने के लिए शंकरदेव की अमृतवाणी आज भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। शंकरदेव ने जो शिक्षा असमीया समाज को दे गये वह किसी एक युग के होते हुए भी सभी युगों के लिए है तथा वह असम के होते हुए भी समस्त विश्व के हैं। इस महान साहित्यकार तथा सर्वकाल के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष के आदर्श ने सर्वत्र संकट के समय परम ज्योति के रूप में असमवासी के पथ आलोकित करने के साथ-साथ सच्चे अर्थों में असमीया जन-जीवन का नायकत्व किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

भारतीय संस्कृति और कला, वाचस्पति गैरोला

शंकरदेव वाक्यामृत, भगवत द्वितीय स्कंध 38

नाम घोषा, माधवदेव, पृष्ठ- 1

नामघोषा, माधवदेव, पृष्ठ नं- 128

नामघोषा, माधवदेव, पृष्ठ- 87

मृणाल के पाण्डे में सामाजिक जीवन-दर्शन

आरती

यूजीसी नैट (हिन्दी) उत्तीर्ण, सतलुज कालोनी, शाहबाद मारकण्डा (कुरुक्षेत्र)

प्रस्तावना:

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। दोनों का सम्बन्ध अटूट है। व्यक्ति के योगदान से ही समाज निर्मित होता है और समाज में ही उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। समाज सोद्देश्य व्यक्तियों का गतिशील गठन है। समाज अपने सदस्यों को बाह्य तत्वों से नष्ट होने से बचाता है। समाज सामूहिक कल्याण हेतु मानव की सहज प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाता है। उनके व्यक्तित्व जीवन में हस्तक्षेप करता है।

1.1 समाज अर्थ एवं परिभाषा:

समाज शब्द के लिए अंग्रेजी भाषा में सोसायटी शब्द मिलता है। बृहत् हिन्दी कोश में समाज शब्द से अभिप्राय है मिलना, एकत्र होना, समूह, संघ, दल, सभा, समिति, समाज पूर्ति के लिए संघटित संस्था। सामान्यतः समाज से अभिप्राय इस परिवेश, वातावरण से लिया जाता है, जहां रहकर मनुष्य अपना जीवन अतीत करता है।

विद्याभूषण के अनुसार -

समाज में केवल व्यक्तियों को परस्पर बांधने वाले राजनीतिक सम्बन्ध ही शामिल नहीं हैं, अपितु मानवीय सम्बन्धों एवं सामूहिक गतिविधियों का सम्पूर्ण क्षेत्र सम्मिलित है।¹

समाजशास्त्री सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार -

मनुष्यों के जीवन में एक दूसरे के साथ सम्बन्धों का जाल बिछा हुआ है, समाजशास्त्र में उसी को समाज कहा जाता है।²

व्यक्ति और समाज दोनों अभिन्न हैं। दोनों का एक-दूसरे से इतने घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध कि व्यक्ति या समाज पर पृथक् रूप से विचार करना असम्भव सा है। व्यक्ति और समाज एक दूसरे बगैर अधूरे हैं।

1.2 परिवार संयुक्त एवं एकल

संयुक्त परिवार का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ. एस.सी. दुबे ने लिखा यदि कई मूल परिवार एक ही साथ रहते हो और इनमें निकट का नाता हो, एक ही स्थान पर भोजन करते हो और एक ही आर्थिक ईकाई के रूप में कार्य करते हो तो उन्हें संयुक्त परिवार कहा जाएगा। संयुक्त परिवार में कई पीढ़ियों के सदस्य कर्तव्य परायणता के आधार पर एक दूसरे के साथ बंधे रहते हैं। संयुक्त परिवार में बाबा, दादी, मां, बाप, चाचा-चाची, ताई, ताचा, भाभियों, चचेरे भाई उनकी पत्नियां और अविवाहित बहने होती हैं। हिन्दुओं में ऐसे परिवार खास तौर पर गांवों में काफी संख्या में पाए जाते हैं।

प्रसिद्ध विद्वान के. एस. पाणिकर ने संयुक्त परिवार को जाति व्यवस्था से सम्बन्धित माना है।³

डॉ. देसाई के मतानुसार- संयुक्त परिवार उसे कहते हैं, जिसमें मूल परिवार के अधिकारियों के सदस्य सम्मिलित हो तथा उनके सदस्य एक दूसरे से सम्पत्ति आय तथा पारस्परिक अधिकारों एवं कर्तव्यों के द्वारा सम्बन्धित हों।⁴

दुर्घटना कहानी में शहरी और ग्रामीण सभ्यता के बीच टकराहट दिखाई देती है। “मेरे होने के बाद अम्मा ने बाबू जी से गांव छोड़वा दिया। यहां रहते उन्हें अपने बेटों के नितांत देहाती बन जाने की आशंका थी, जो निराधार न थी। दोनों के जन्म से पहले ही शायद उन्होंने हम दोनों के स्वर्णिम भविष्य के सपने देख डाले थे।”⁵ परंतु यही बेटे आगे जाकर सोचते हैं अरे, अगर मां-बाप को खुश करने के चक्कर में ही पड़े रहे, तो हो चुके।⁶

परिवार का कम विस्तृत रूप केन्द्रीय परिवार या एकल परिवार हैं। एकल परिवार में सर्वाधिक आन्तरिक वृत्त दाम्पत्य सम्बन्धों का होता है जो परिवार का लघुतम रूप है। मृणाल पाण्डे की कोहरा और मछलियां, शरण्य की ओर, कंगार पर, पितृदाय, विरूद्ध कहानी और उपन्यासों में एकल परिवार को दर्शाया है।

1.3 निम्न वर्ग एवं मध्यम वर्ग का यथार्थ चित्रण:-

मृणाल पाण्डे जी एक आधुनिक युग की लेखिका हैं। उनके साहित्य में हमें आधुनिक और प्राचीन दोनों प्रकार के विचारों के माध्यम से मध्यम वर्ग व निम्न वर्ग का चित्रण मिला है। ‘रास्तों पर भटकते हुए’ उपन्यास में पाण्डे जी ने मध्यवर्गीय परिवार के एक लड़के बंटी का चित्रण किया। लेखिका उस छोटी

सी उम्र के लड़के की दयनीय दशा देखकर द्रवित हो उठती है। “अगली बार जब बंटी आया था तो उसका फटा पुराना स्वेटर भी उसके बदन पर नहीं था। श्वास रहा था स्वे स्वे गरम चाय पीकर मेरा पुराना शॉल ओढ़कर तनिक सांस पलटी तो उसने बताया कि उसे ढाबा बंद करके ठंडे पानी से जूठी प्लेटे धोनी होती है। उसके सूजे हाथों में मलपस हो गया है। गन्दा, जूठा खाना छू-छूकर।”

लेखिका का भाई मध्यवर्गीय परिवार के एक सम्पन्न, धनाढ्य पात्र के यप में सामने आता है, जिसे गरीबों से मेरा कोई सरोकार नहीं, पैसा कमाना ही उसका मुख्य लक्ष्य है। लेखिका के शब्दों में मेरा भाई हमारी भूतपूर्व मां का इकलौता बेटा, इस शहर का एक बड़ा उद्योगपति और सत समुद्र चौदह भुवनों तक फैली कम्पनी का बॉस है।⁸

1.4 बुद्धिजीवी वर्ग:-

बुद्धिजीवी वर्ग के नर लेखकों के कद अपेक्षाकृत छोटा होता लेकिन उनका खून कुछ कर गुजरने की बेचौनी से उबाल खाता दिखाई पड़ता है। इन्हें गांव-देहात की तरफ से जाने वाली हिन्दी की जगह अंग्रेजी की सलीकेदार तानाशाही अधिक पसंद है। वे दनादन अंग्रेजी या अंग्रेजी में अनुदित यूरोपीय साहित्य के उद्धरण देकर अपने बुद्धिजीवी होने का प्रमाण पेश करना पसन्द करते थे।⁹

मृणाल जी बौद्धिकता का आधार बुद्धितत्व स्वीकार करती है। चार दिन की जवानी तेरी कहानी संग्रह में उन्होंने बताया है कि बुद्धिजीवी व्यक्ति अपने कार्यों में वर्तमान युग की भागदौड़ में व्यक्त क्यों न हो, विश्वास, मान्यताएं, क्रियाकलापों के बारे में हमेशा जिज्ञासु बना रहा है।

1.5 पूंजीवादी व्यवस्था:

‘रास्तों पर भटकते हुए’ उपन्यास में दिखाया है कि किस प्रकार शोषक वर्ग अपनी स्वार्थ लिप्सा की पूर्ति हेतु हर प्रकार के हथकड़े अपनाते हैं-“उसूल-वसूल की छोड़ो। भैंचों काम यहा उसूलों का पालन किसी को कुछ नहीं देता। न पुलिस को, न पत्रकार को। सबसे सफल इन धन्धों में साले वे हैं, जो आपस में तालमेल बिठा चुके हैं और दूर करवट बेपनाह पैसा पीट रहे हैं।”¹⁰

चार दिन की जवानी तेरी कहानी संग्रह में उमेश जी कहानी में उमेश शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हुआ सामने नजर आता है जो नौकरी देने के बहाने लड़कियों को अपने पास बुलाता उनकी इज्जत तक ले लेता है। लेकिन फिर भी मजबूर होकर नौकरी के लिए उनके पास को मजबूर है-“अचानक मुझे लगने लगा कि हो न हो उमेश जी से नौकरी मांगने को आने वाली हर लड़की को साथ इस दफ्तर में ऐसा ही जलाजल भरा बर्ताव होता होगा। कमाल है, फिर पर लड़कियां आती हैं नौकरी मांगने।”¹¹

1.6 नारी के प्रति दृष्टिकोण:

मृणाल जी के साहित्य में हमें नारी के जीवन के हर पहलू का चित्रण मिलता है, उनके साहित्य में आधुनिक नारी का वर्णन भी मिलता है जो कि अति स्वच्छन्दता, अत्याधुनिकता को अपना जीवन मूल्य मानती है तो दूसरी और रूढ़िवादी, अंधविश्वासी महिलाओं का वर्णन है। कहानी ‘शरण्य की ओर’ में अलग-अलग विचारों की नारियों का चित्रण है। उमी पालित शादी शुदा है। वह दोनों विवाह का मजाक समझते हैं। उमी आधुनिक विचारों वाली नारी है। दोनों हमेशा एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं। वे एक दूसरे के साथ सहज नहीं हैं- उमी का व्यवहार पति की अनुपस्थिति में ज्यादा खुला सहज हो जाता है वरना या तो दबी-दबी सी वह चुपचाप सिगरेट पीती रहती है या निरर्थक मुस्कराहट।¹²

गर्मियां, दरम्यान, कगार पर, विरूद्ध आदि कृतियों में नारी के प्रति दृष्टिकोणों को दर्शाता है।

1.7 नारी जीवन से सम्बन्धित समस्याएँ:-

मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी होने के नाते अनेक समस्याओं से गुजरना पड़ता है। यह समस्याएं नारियों को सहनी पड़ती हैं। मृणाल जी के साहित्य में हर वर्ग की नारियों का चित्रण मिलता है। साथ ही उनकी समस्याओं का भी वर्णन मिलता है। विवाहित नारी की, अविवाहित नारी की, कामकाजी महिलाओं की मजदूर वर्ग की सभी नारियों की अपनी समस्याएं हैं या घरेलू नारियों की समस्या है। ‘बर्फ और कौवे’ कहानी में पाण्डे जी ने ऐसी लड़कियों का चित्रण किया है जो कि मां-बाप के झगड़ों के कारण सहमी रहती हैं। उसके मन में डर सा थम जाता पर बड़े का विद्रुप उसे आज तक पता नहीं क्यों नी गुदगुदा पा रहा था कि वह न हंसी, न मुस्करा रही थी। बस चुपचाप घुटनों में सिर दिए रही जैसे जम गई है।¹³

‘विरूद्ध’ उपन्यास में युवावस्था में लड़कियां जिन समस्याओं से गुजरती हैं उन पर प्रकाश डाला गया है। उपन्यास में रजनी बिल्लो दो बहने हैं जो बचपन से ही होस्टल में पली हैं। शादी के बाद बिल्लो को जब स्वतंत्र खुला वातावरण मिलता है तो वह होस्टल के दिन याद करती है वहां होस्टल में रहते उसने कभी सोया भी नहीं था कि इससे बाहर एकदम खुले में भी सोया जा सकता है। वहां तो शाम के पांच बजे नहीं कि सब लड़कियां भेड़ों के मिमियाने झुण्ड की तरह भीतर हांक दी जाती थी।¹⁴

निष्कर्ष:-

इस प्रकार मृणाल पाण्डे जी ने अनेक कामकाजी महिलाओं की समस्याओं का वर्णन किया है। उनके निबन्धों में कुछ इसी प्रकार की समस्याएं दृष्टिगोचर होती हैं - कामकाजी महिलाएं आर्थिक विवशताओं के कारण घर से बाहर की यात्रा करती हैं। रोजगार पेश नारी को अपने कार्यालय से शोषण के बीच गुजरना पड़ता है। जहां उसका बॉस या सहकर्मी विभिन्न तरीके से शोषण करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि मृणाल जी ने अपनी रचनाओं में नारियों लगभग सभी समस्याओं और मजबूरियों को दर्शाया है।

संदर्भ

1. विद्याभूषण, समाज के शास्त्र के सिद्धांत, पृ. 68
2. सत्यकेतु विद्यालंकार, समाजशास्त्र, पृ. 36
3. के. एम. पाणिक्कर, हिन्दू सोसायटी रडक्रास रोड, पृ. 19
4. आई. पी. देसाई, द ज्वाइंट फैमिली इन इंडिया, पृ. 48
5. मृणाल पाण्डे, दरम्यान, पृ. 159
6. वही, पृ. 161
7. मृणाल पाण्डे, रास्तो, पृ. 69
8. वही, पृ. 19
9. मृणाल पाण्डे, अपनी गवार्ध, पृ. 47
10. मृणाल पाण्डे, रास्तो पर भटकते हुए, पृ. 56
11. मृणाल पाण्डे, चार दिन की जवानी तेरी, पृ. 31
12. मृणाल पाण्डे, पानी की एक बात थी, पृ. 50
13. मृणाल पाण्डे, एक नीच ट्रेजडी, बर्फ, पृ. 14
14. मृणाल पाण्डे, विरूद्ध, पृ. 24
15. नासिरा शर्मा, शातमली, पृ. 77

ग्रामीण स्त्री के बदलते जीवन-मूल्य (चाक उपन्यास के सन्दर्भ में)

डॉ० देवी प्रसाद

सह आचार्य, हिन्दी, एस.एन.के.पी.राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमकाथाना, सीकर, राजस्थान

सारांश:- मैत्रेयी पुष्पा का नाम उन समकालीन महिला लेखिकाओं में शामिल है, जिन्होंने नारी शोषण के विरुद्ध अपनी लेखनी चलाई है। कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, मन्नु भंडारी, ममता कालिया आदि अनेक महिला लेखिकाओं ने महिलाओं के जीवन-संघर्ष को अपने लेखन का विषय बनाया है। इनमें से मैत्रेयी पुष्पा का नाम शीर्षस्थ है। मैत्रेयी पुष्पा ने जिस बेबाकी से स्त्री विमर्श को समाज के समक्ष रखा है, वह अपने आप में अनूठा है। वे नारी स्वतंत्रता की पक्षधर हैं। उनके साहित्य का अनुशीलन करने पर हम पाते हैं कि उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से नारी-जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है। आलोच्य उपन्यास 'चाक' में इन्होंने ग्रामीण नारी की बदलते जीवन-मूल्यों को उद्घाटित किया है। इस उपन्यास की नायिकाएँ प्रेम, पाप-पुण्य, नैतिकता और मानव संबंधों की नई परिभाषा गढ़ती हैं।

मूल पाठ:- 'चाक' मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखित एक अक्खड़ जाटिनी की जुझारू कहानी है, जो चुप रहकर, कभी बोलकर अपने बदलते व्यक्तित्व का परिचय देती है। पूरे उपन्यास में घटनाओं की भरमार है। उपन्यास की शुरुआत एक दुर्घटना से होती है, जहाँ सारंग नैनी की बहन रेशम की हत्या कर दी जाती है। हत्या का कारण भी बहुत स्पष्ट है, वह यानी रेशम, पति के मर जाने के बाद अपने मन मुताबिक जीने की कोशिश करती है, जिसका खामियाजा उसे अपनी जान गवाँकर भुगतना पड़ता है।

चाक उपन्यास का प्रारंभ रेशम की हत्या से होता है। रेशम की हत्या के साथ ही अनेक घटनाओं पर से पर्दा उठता है कि किस प्रकार रुक्मणी की मौत रस्सी के फंदे से होती है, रामदेई की कुएँ में कूदने से, और कैसे नारायणी करबन नदी में डूब कर मर जाती है। रेशम सारंग की बहन होती है, इसलिए सारंग अपनी बहन की हत्या का बदला लेने के लिए पूरे समाज से भिड़ जाती है। वह अपनी बहन की लड़ाई के लिए समाज, परिवार और यहाँ तक कि अपने पति की भी अवहेलना करती है, परंतु अपने रास्ते से नहीं डिगती। डोरिया को रेशम की हत्या का जिम्मेदार माना जाता है। उसके खिलाफ पुलिस में मामला दर्ज होता है, किंतु वह अपने प्रभाव के कारण छूट जाता है। उसके खिलाफ सारंग दुबारा अपील करती है। इस कारण डोरिया सारंग के साथ अभद्र व्यवहार करता है। ऐसे वक्त में सारंग के पति रंजीत को सारंग का साथ देना चाहिए था, लेकिन रंजीत अपनी पत्नी को ही दोषी मानता है। सारंग को उसके देवर और ससुर गजाधर सिंह का साथ मिलता है। इतनी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी सारंग अपने हौसले को नहीं छोड़ती। दरअसल मैत्रेयी पुष्पा की 'सारंग' एक ऐसी महिला का प्रतिनिधित्व करती है, जो किसी भी परिस्थिति में हार नहीं मानने वाली है। अन्याय-अत्याचार के खिलाफ नारी द्वारा किया जाने वाला यह विद्रोह इस उपन्यास को विषेय बनाता है।

इस उपन्यास में नारी-जीवन के संघर्ष को उभारा गया है। पूरे उपन्यास में एक तरफ सारंग नैनी है, जो संघर्ष का पर्याय है और दूसरी तरफ वे स्त्रियाँ हैं, जो जरा-सा सिर उठाने पर कुचल दी जाती हैं। सारंग कन्या गुरुकुल की शारदा शकुंतला से लेकर, रेशम, गुलकंदी तक ऐसी स्त्रियों का जिक्र करती है, जिन्हें किसी न किसी हादसे का नाम देकर मार दिया जाता है या फिर मरने पर विवश कर दिया जाता है। इस उपन्यास में टूटते-बिखरते रिश्तों के चित्रण के साथ ही रिश्तों में आ रहे बदलाव और नैतिक पतन को भी रेखांकित किया गया है। शारदा बर्तन माझने वाले मणि के कमरे में पकड़ी जाती है। जिस क्षण यह बात सारंग नैनी को पता चली, वह स्वयं शास्त्री जी को बाँहों में थी। लेकिन सूचना देने वाली लड़की इतनी घबराई हुई थी कि उसने उस समय ध्यान ही न दिया, किन्तु जब मटा जी ने शास्त्री जी से शारदा के विषय में जानकारी लेने के लिए सारंग के पास जाने की बात कही (उस बातचीत के कुछ अंश इस प्रकार हैं) शास्त्री जी के पूछने पर सारंग विफर जाती है और जवाब कुछ इस तरह देती है, "मान लीजिए मैं और आप देख लिए जाते तो ऐसी ही सजा मुझे.....। हम तो चोरी का लाभ ले गए। हम नहीं केवल मैं, आप को सजा क्यों मिलने लगी भला।" इस पर चिढ़कर शास्त्री जी जो जबाब देते हैं, वह पुरुष मानसिकता का पर्दापफाश करता है, "मेघदूत पढ़ा है, जब 'ऋतुसंहार' पढ़ लिया हो तो मेघदूत भी पढ़ा होगा तुमने....याद करो।" 'ज्ञात स्वादों विव्रत जंघनाम को विहातुम समर्था।' "जिसको एक बार स्वाद लग गया हो, तो फिर फैंली हुई अनाव्रत जांघों को कौन अस्वीकार कर सकता है।" शास्त्री जी कि ऐसी बातें सुनने पर सारंग को घृणा होने लगती है और उसके मुख से जो निकलता है, वह कुछ इस प्रकार है, 'छिः' शास्त्री जी। इतने नीच..... सारा दोष शारदा पर... पुरुष तुम कितने अन्यायी हो? गुरुकुल जैसा पवित्र स्थान जहाँ घरवाले लड़कियों को यह सोचकर भेजते हैं कि वहाँ उनकी बेटियों में सत्कर्मों का समावेश होगा और दुनियाँ की पाषण्डिकता से बची रहेंगी या मैं चिता मुक्त रह सकता हूँ किन्तु वही गुरुजी जिसके सानिध्य में भेजकर घर वाले चौन की वंशी बजाते हैं, उन्हीं के द्वारा उनको (लड़कियों) रौंदा जाता है।" एक तरफ शारदा, मणि के साथ पकड़ी जाती है, तो दूसरी तरफ शकुंतला को गर्भ ठहर जाता है। गुरुकुल की माताजी ने उसके पिता को चिट्ठी लिख दी। शकुंतला के पिता आए भी किन्तु उसका स्थायी निवास, उसी गुरुकुल को बनाकर चले गए। शकुंतला को पूरे गुरुकुल में उपेक्षितता का जीवन जीना पड़ रहा था। एक दिन वह अपने आप को संभालने में असमर्थ साबित हुई और

गुरुकुल की चारदीवारी से कूदकर जान दे दी। इस प्रकार गलती की सजा केवल शकुंतला को ही भुगतनी पड़ती है। जिम्मेदार पुरुष सजा से वंचित रह जाता है। शकुंतला का पिता उसे अपनी बदनामी के भय से घर नहीं लेकर जाता, वरन् वहीं पर गुरुकुल में छोड़कर चला जाता है।

इसके अलावा भी गुरुकुल में अनेक घटनाएँ घटती हैं। इसी के साथ केवल गुरुकुल ही नहीं अपितु आस-पास के गाँवों में ऐसी अनेक घटनाएँ होती हैं। जब सारंग नैनी अपनी ससुराल अतरपुर गाँव और वहाँ के इतिहास की बात करती है, तो उस इतिहास में दफन स्त्रियाँ कुछ इस तरह सामने आती हैं- “इस गाँव में दर्ज दास्तानें बोलती हैं, रस्सी के पंफदे पर झूलती रुक्मणी, कुएँ में कूदने वाली रामदेई, करबन नदी में समाधिस्थ नारायणी ये बेबस औरतें सीता मैया की तरह ‘भूमि प्रवेश’ कर अपने शील, सतीत्व की खातिर कुर्बान हो गयी। ये ही नहीं, और न जाने कितनी....।”¹²

पूरे उपन्यास में इस तरह की जितनी भी घटनाएँ दिखाई गई हैं, वे सब स्त्रियों का प्रतिरोध हैं और दूसरी तरफ उस प्रतिरोध को कुचलने की कोशिश। सारंग के सामने शारदा, शकुंतला, रामदेई, नारायणी, रुक्मणी, रेशम, गुलकंदी जैसी स्त्रियों को मौत के घाट उतारा गया, जो उसके भीतर खदबदाती रहती हैं और उसकी आत्मा पर फफोले डालती रहती हैं। यही कारण है कि वह चैन से बैठ नहीं पाती। अपने पति का प्रतिरोध झेलती है, किन्तु हार नहीं मानती। प्रतिरोध तो रेशम ने भी कम नहीं किया था और दिलेरी भी दिखाई उसी का खामियाजा मौत के रूप में चुकाया। रेशम को जब उसकी सास उसके गर्भवती होने पर भला-बुरा कहती है, तो रेशम अपनी सास से कुछ इस तरह जबाब तलब करती है, “ऐसा ही करना होता तो तुम्हारे बड़े पूत का ही बालक करती। मेरे मरे पीछे तेरही तक का भी सबर न करता और ले आता दूसरी। तुम खुश हो रही होती कि पूत की उजड़ी जिंदगी बस गई। पर मेरा फजीता करने पर तुली हो।...मैं तो पुनः कर रही हूँ, अम्मा, उसे पाप न कहो। बिना बाप के बालक को भगवान पाप मानता तो कुँवारी विधवा की कोख सुखा डालता।”¹³ पर रेशम की सास का एक वाक्य यह स्पष्ट रूप से बता देता है कि उसके भीतर भी जो दहशत, भय, डर है, वह सब पुरुष वर्चस्व के चलते है। वह अंत में रेशम से कहती है, “रेशमियाँ मेरा बस चले तो मैं तुझे अपनी पलकों में छिपा लूँ, पर मर्दों को क्या जवाब दूँगी री...।”¹⁴

स्त्रियों के मन में जो पाप पुण्य का बीज बोया गया है, वह पुरुषों द्वारा ही बोया गया है। वे अपनी कुर्सी मजबूत स्थिति में रखने के चलते हमें ही हमारे खिलाफ खड़ा कर देते हैं। लेकिन बदलती पीढ़ी यह बात समझने लगी है तभी तो रेशम सारंग से कहती है, “सारंग बीबी तैयार करने दे सूली, मैं हौसला नहीं हारूँगी हौँ!”¹⁵ गुलकंदी भी विसुदेवा से व्याह करने के कारण अपने ही चचेरे भाई द्वारा आग लगाकर मार दी जाती है। जातिवाद उसके मरने का कारण बनता है, “चुनौतियाँ नाइन दहाई मारकर रो रही है। ऐसी बहन चली गई री...हाय, अरी मेरी मेरे मन की मन में रह गई री...गुलकंदी, हरीप्यारी, विसुदेवा तीनों एक कुल हो गए। चुनिया, ननुया, हरपरसाद के खानदानी।”¹⁶

चाक में स्त्रियों के जीवन जीने की जिजीविषा उन पर भारी पड़ती है। यह अनुगूँज शुरु से अंत तक सुनाई पड़ती है। यह जानते हुए भी कि जीना सबका मौलिक अधिकार है, उस अधिकार से किसी को वंचित नहीं किया जा सकता, इसके बावजूद न जाने कितनी स्त्रियों से उनकी जिंदगी बेरहमी से छीन ली जाती है, रेशम, गुलकंदी, शारदा, नारायणी आदि इसका जीवंत उदाहरण हैं। लेकिन प्रेम में प्रतिरोध इन नायिकाओं की विशेषता है और यह प्रतिरोध उपन्यास जहाँ से शुरू होता है, वहीं से शुरू होकर अंत तक जाता है। सारंग द्वारा प्रधानी के लिए पर्चा भरे जाने तक। उपन्यास का केन्द्रीय बिन्दु ही प्रतिरोध है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने पात्रों के संबंध में लिखा है, “मैं अपने उपन्यास का केन्द्रीय बिन्दु या कहें केन्द्रीय पात्र सारंग को न मानकर रेशम को मानती हूँ। रेशम की अदम्य जिजीविषा और उस जिजीविषा का रौंदा जाना, यहीं से उपजता है, उपन्यास और बीज रूप में काम करती है सारंग, डालियों की तरह जुड़ती जाती हैं, अनेक महिला पात्र और उनकी समस्याएँ-यातनाएँ। यह बात दीगर है कि बीच में रेशम की हत्या वाला मुद्दा धीमा पड़ जाता है और कहानी किसी और दिशा की ओर मुड़ती नजर आती है और अंत तक आते-आते वह ग्रामीण राजनीति में स्त्रियों के प्रवेश से जुड़ जाती है। सारंग में जो क्रोध, गुस्सा रेशम की मृत्यु के कारण दिखाई देता है, बदला लेने की जो कोशिश शुरु-शुरु में दिखाई देती है, उसकी परिणति कहीं दिखाई नहीं देती। डोरिया यूँ ही छुट्टा घूमता रहता है।”

अगर इस उपन्यास की कथावस्तु पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि इसमें कई मोड़ आते हैं। सारंग के पति द्वारा सारंग का साथ न दिए जाने पर व अपने बेटे की सुरक्षा के चलते मास्टर श्रीधर के संपर्क में आती है। उनसे प्रेम कर बैठती है और रंजीत जो शुरु में रेशम के हत्यारों को सजा दिलाने की सौगंध खाता है, बीच उपन्यास तक आते-आते ग्रामीण राजनीति की तरफ उन्मुख हो जाता है। इस उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा जिस कहानी को लेकर आगे बढ़ती है, वह कहानी धूमिल सी पड़ती नजर आती है। उनकी नायिका जो तेवर गुरुकुल में दिखती है, बाद में कहीं नहीं दिखा पाती, बाद में उसका प्रतिरोध दबा-दबा सा दिखाई देता है। शायद भारतीय नारी की पारिवारिक मर्यादाओं को उनकी नायिका त्याग नहीं पाती, यही कारण है कि सारंग प्रतिरोध तो करती है, किन्तु दबे स्वर में।

चाक में ग्रामीण स्त्रियों के बदलते जीवन मूल्यों को बखूबी रेखांकित किया गया है। मैत्रेयी के चाक की जितनी भी नायिकाएँ हैं, सब की सब मुखरित हैं। ग्रामीण स्त्रियों का जो दबूपन होता है, उससे एकदम अलग। वे बोलती ही नहीं अपनी बात को जोर देकर सामने रखती हैं। मैत्रेयी ने स्त्रियों को लेकर कुछ नवीन स्थापनाएँ भी की हैं। सारंग, रेशम, गुलकंदी, कलावती चाची बातों ही बातों में ऐसी बात कह देती हैं, जो सोचने पर विवश कर देती हैं। मैत्रेयी की नायिकाएँ कहे, बिना कहे यह बता देती हैं कि जो नियम कानून उनके लिए हैं, वे पुरुषों के लिए क्यों नहीं। वे जिद्दी बघिया की तरह जुआँ उतार कर फेंक देना चाहती हैं, यही तो किया रेशम ने, बनी बनाई लीक पर चलने से इंकार कर दिया। सारंग रेशम को समझाते हुए डोरिया की ताकत का बखान करने लगी तब रेशम आग बबूला होकर कहती है, “डोरिया जैसे देखे हैं तीन सौ साठ। उंगली छूकर तो देखें, भडुआ को कच्चा चबा जाऊँगी।” मैत्रेयी के चरित्र, लड़ने की ताकत पैदा करते हैं। सदियों से चले आ रहे पुराने नियमों कानूनों की थाली में सुराख करते हैं, जिससे पितृसत्तात्मक समाज तिलमिलाने बिना नहीं रह पाता। सारंग नारी शक्ति की प्रतीक है, जो सभी रूढ़ियों और संस्कारों को तोड़ती है। रेशम और गुलकंदी की हत्या सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न खड़ा करता है। श्रीधर ज्ञान का प्रतीक है, जो अन्याय का विरोध करता है और मानवीयता को प्रश्रय देता है। साथ ही वह सारंग के व्यक्तित्व को भी नई दिशा प्रदान करते हैं।

चाक उपन्यास की नायिकाएँ पुरुष मानसिकता को समझती हैं। किसी स्त्री को पाने के लिए तड़पने वाले को लक्ष्य करते हुए सारंग जो बात कहती है। वह स्त्रियों की सोच में आए परिवर्तन को ध्वनित करती है। साथ ही यह बताने का काम करती है कि पुरुष यदि पहल करे तो भला, स्त्री यदि पहल करे तो गुनाह भला क्यों। सारंग कहती है, “मर्द औरत को छूता है, तो उसका उद्धार कर देता है...मगर औरत मर्द को छुए तो, उसे पाताल में डुबो दे। ऐसा क्यों? अजब बात गढ़ रखी है यह।”⁸ ये पंक्तियाँ हमारे समाज में पुरुषों द्वारा अपनाए जा रहे दोहरे मापदण्डों पर प्रहार हैं, बने बनाए नियमों कानूनों कि जड़ों में मट्टा डालने जैसा। सारंग के शब्द हमारी सोच पर प्रहार करते हैं और उसे बदलने के लिए प्रेरित भी। चाक में एक ब्रह्म वाक्य है, जो मैत्रेयी ने श्रीधर से कहलवाया है कि “जब तक स्त्री का अपमान होता रहेगा, ऊसर भूमि ऐसे ही जलती रहेगी। फसल को वीराने में बदल देगी। मंझा स्त्री थी, स्त्री की पीर जानती थी, तभी तो साधू-महात्मा से एक चावल नहीं, अपनी जैसी बांझपन भोगती हुई सौ रानियों के लिए, सौ चावल लाई थी।”⁹

स्त्रियों ने जब से अपने बारे में सोचना शुरू किया है, तब से उन्हें लगने लगा है कि स्त्री को स्त्री का दुश्मन बनाया गया है, जिससे वे एक भ्रमजाल में जीती रहें और वर्चस्ववादी ताकतें अपना काम आसानी से करती रहें। यह तो वही बात हुई या तो स्त्री को स्त्री के सामने खड़ा कर दो या फिर आईने के सामने जिससे या तो वे आपस में लड़ती रहें या फिर अपने स्थूल सौंदर्य को निहार-निहार कर खुश होती रहें। मैत्रेयी पुष्पा ने इस बात को बखूबी समझा है और पात्रों के माध्यम से कहानियों एवं उपन्यासों में मुखर स्वर रखा है। मैत्रेयी पुष्पा के चरित्र अपने तरीके से अपनी जिंदगी जीना चाहते हैं और उसके लिए जद्दोजहद भी करते हैं। सारंग नैनी भी उन्हीं में से एक है, वह रंजीत की पत्नी है, किन्तु कुछ निर्णय वह खुद लेना चाहती है, वह प्रत्येक बात के लिए पति पर निर्भर नहीं रहना चाहती। श्रीधर की पिटाई होने के बाद वह उसके साथ अस्पताल जाती है और उसकी देखरेख भी करती है। वह एक स्थान पर कहती है, “मैं कोई चोरी नहीं कर रही। किसी से मोहलत नहीं मांगती यह आजाद बेला। यह केवल मेरी इच्छा है।”¹⁰

स्त्री के बंधनों को और बंधनों की कसमसाहट से मुक्त की छतपटाहट को मैत्रेयी पुष्पा ने समय-समय पर श्रीधर के मुख से भी कहलवाया है। यहाँ मैत्रेयी शायद यह दिखाना चाहती हैं कि पढ़ा-लिखा युवा वर्ग भी स्त्रियों पर होने वाले अन्याय-अत्याचार को समझता है और आजादी का मार्ग भी तलाश करता है। तभी तो श्रीधर केका जैसी दलित लड़की का भी साथ देते हैं, जिसके कारण उन्हें वह गाँव तक छोड़ना पड़ता है। वे सारंग को भी साहस एवं सहयोग प्रदान करते हैं। श्रीधर स्त्रियों के विषय में सोचते हुए कहते हैं, “कि जानवरों के बाद यदि किसी को खूँटे से बांधा जाता है, तो वे हैं, आँगन लीपती, घर सहेजती, खेतों में काम करती औरतें।” श्रीधर को शहरों में पनप रही विभिन्न समूहों के नाम याद आते हैं, “नारी उत्थान केन्द्र, सहेली, जागो री, नारी सहायता केन्द्र....पता नहीं वे किन नारियों के लिए हैं। नारी शिक्षा पर व्याख्यान देने से क्या फायदा, यहाँ तो बेटी का जन्म होते ही खेरापतिन दादी चंदना की कथा याद करने लगती है, कि बेटी जन्मी है, तो इसे खबरदार भी करते रहना, इसकी जननी।”¹¹ उपन्यास ‘चाक’ शिक्षा और संस्कारों के नए अर्थ खोलता है, न सिर्फ रूढ़ियों को तोड़ता है, बल्कि विकल्प प्रस्तुत करता है। जहाँ पुरुषों की स्वार्थ सत्ता का प्रतिपक्ष प्रस्तुत करती स्त्री अपनी शक्ति के साथ सामने आती है, समाज को सही दिशा मिलने लगती है।

मैत्रेयी पुष्पा ने लड़की के जन्म, उसकी शिक्षा, संस्कार, विवाह और विवाह के बाद की पारिवारिक यातना और उससे छुटकारा पाने की संभावनाओं का विस्तार से वर्णन किया है। लड़की के साथ जुड़ी हुई जितनी भी समस्याएँ हो सकती हैं, सब की सब चाक में भारी पड़ी हैं। सारंग ने उन समस्याओं के प्रति एक प्रतिरोध का तेवर अपना लिया। पर्दा, घूँघट भी उन्हीं रूढ़ियों व समस्याओं में से एक है। पर्दा के विषय में मैत्रेयी पुष्पा ने सारंग के मुख से ही कहलवाया है, “जिस दिन सारंग ने बंदूक उठा ली थी, उसके लिए पर्दा उस दिन से छूटा तो नहीं, लेकिन कम हो गया। लोग एकटक देखते हैं, देखा करें। इसमें डरने-झिझकने की क्या बात है? घूँघट मार कर चलते हैं, लोग समझते हैं, कोल्हू का बैल आ रहा है।”¹²

उपन्यास के बीच-बीच में मैत्रेयी पुष्पा ने श्रीधर से जो शब्द कहलवाए हैं, वे सोच बदलने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। चुनाव में खड़े होने के लिए सारंग को समझाते हुए श्रीधर जो कहते हैं, वह अनोखा है, “ध्यान रखना-गरीब को धन के लिए, निर्बल को बल के लिए और अज्ञानी को ज्ञान के लिए संघर्ष करना पड़ता है, यह शास्त्रों में लिखी प्रामाणिक बातें हैं, यदि ऐसा नहीं होता तो, इन्सानों और पशुओं में कोई फर्क नहीं। ये कोशिशें कोई बुरी बात तो नहीं। किसी शिकंजे से आजाद होना गुनाह तो नहीं सारंग.....।”¹³ श्रीधर, सारंग की सोच बदलने में उसे सहायता करते हैं, वह परिवार और समाज को देखती है। श्रीधर उसे खुद से रू-ब-रू कराते हैं। उसे उसकी ताकत से परिचित कराते हैं, जिसे वह घर परिवार संभालते-संभालते भूल चुकी थी। वे बताते हैं, सारंग चिंता करने से समस्या का समाधान नहीं हो जाता। उसके समाधान के लिए प्रयास करना पड़ता है। सत्ता पर काबिज होना पड़ता है और आज तुम्हारे पास उस सत्ता पर काबिज होने का मौका है, जिसे तुम यूँ ही हाथ रखकर गवां देना चाहती हो।

मैत्रेयी पुष्पा ने यौन नैतिकता का नया पाठ पढ़ाया है। चाक में कलावती चाची, केहरसिंह से संबंध स्थापित करती है और सारंग, श्रीधर से संबंध स्थापित करती है। उसका ऐसा किया जाना उसे किसी तरह का पाप-बोध का स्मरण तक नहीं कराता है। सारंग स्पष्ट शब्दों में कहती है, “पोखर कहे या कोई गंदी नाली, मुझे तो पाप नहीं लगा। मैं न अबोध थी न विधवा राँड और न कुंवारी अलहड़ जवानी की मारी।”¹⁴

सारंग पूरी तरह पूरे होश-ओ-हवास में यह स्वीकार करती है कि उसने जो किया, उसका उसे कोई पश्चाताप नहीं है, और हो भी क्यों? यहीं पर बदलाव दिखाई देता है, मैत्रेयी पुष्पा व अन्य लेखिकाओं में। वे जैसा है, उसे वैसा ही स्वीकार कर लेती हैं। उससे पीछे नहीं हटतीं न और न ही उससे मुँह फेरती हैं, जो किया डंके की चोट पर किया। जब एक पुरुष गलती करके सीना चौड़ा करके चल सकता है, तो एक स्त्री क्यों नहीं? तभी तो सारंग कहती है कि श्रीधर के ऊपर एहसान नहीं किया उसने। उसकी बहन रेशम की हत्या गाँव में की गयी, हत्यारे डोरियों के विरुद्ध न तो उसका पति पूरी तरह साथ देता है और न गाँव वाले, बल्कि सारे पुरुष रेशम की हत्या को जायज ठहराते हैं, क्योंकि उसने विधवा होकर भी प्रेम करने का अभूतपूर्व साहस जो किया था। रेशम के अलावा गुलकंदी, उसके दलित प्रेमी विसुदेवा तथा गुलकंदी की माँ को होली के दिन जलाकर मार दिया जाता है। गुलकंदी और उसके परिवार की हत्या के पीछे सारा पुरुष समाज था, जिसने पुलिस में जाकर गवाही देने का मन नहीं बनाया क्योंकि रेशम की तरह ही गुलकंदी का प्रेम करना पुरुष समाज के मुँह पर तमाचा था। लेकिन सारंग अन्दर ही अन्दर पंचायत का चुनाव लड़ने की इच्छा रखती है। सारंग के अन्दर एक विद्रोही आग है, जो गाँव को नाश करने पर तुले फत्ते सिंह, भवानी दास, ठान सिंह आदि को जलाकर नष्ट कर देना चाहती है। ऐसा ही चाक का दूसरा स्त्री चरित्र है, कलावती चाची, जो

वाले केलासीसिंह को अभयदान देती है। जबकि पाठकों को यह जानकारी आश्चर्य होगा कि वह उसका दामाद (मेहमान) है। सारंग को जब कलावती चाची पूरी घटना से परिचित कराती हैं तो स्वयं सारंग की भी आँखें खुली रह जाती हैं, इस पर कलावती चाची स्वयं कहती हैं, “चल लुच्चई, हम जातिनी तो जेब में बिछिया धरे फिरती हैं। मन आया टके पहर लिए।...एए तौर हबै क्या पल्लौ।”¹⁵ चाक उपन्यास में लेखिका ने महिलाओं को राजनीति में भी आगे बढ़ते हुए दिखाया है। अब महिलाओं को यह समझ में आने लगा है कि सत्ता में भागीदारी होनी चाहिए।

तो ये हैं चाक उपन्यास की स्त्रियों के परिवर्तित मूल्य, जिस पर पति के साथ धोखा करने का अपवित्रता का आरोप भी लगाया जा सकता है, लेकिन ये आरोप सभ्य समाज के मनुवादियों पर कभी नहीं लगाया गया। बड़े-बड़े रचनाकारों ने वेश्यावृत्ति को समाज की सफाई का माध्यम बताया है। ऐसा माना जाता है रहा है कि यदि वैश्यालय न हों तो समाज में व्यभिचार बढ़ जाएगा। आखिर क्यों, एक पत्नी होते हुए भी वेश्यालयों की आवश्यकता क्यों? एक स्त्री एक पुरुष के साथ जीवन पर्यंत बंध कर रह सकती है, यदि पुरुष की तरफ देखती भी है, तो वह कुलटा कुलक्ष्मी की श्रेणी में आ जाती है, आखिर क्यों? वेश्यालय के विषय में जर्मन दार्शनिक आर्थर शोपेन्हावर कहते हैं, “वे सर्वश्रेष्ठ पाप हैं, क्योंकि वे पुण्य के संरक्षक हैं।” सभ्य समाज के लिए चिंतनीय विषय है कि ये सर्वश्रेष्ठ पाप क्यों हैं। वे पुण्य के संरक्षक नहीं, वे पुरुषों की गंदी व घृणित मानसिकता को छुपाने का काम करते हैं। आपके परिवारों को टूटने से बचाते हैं। स्त्रियाँ तो वेश्यालय नहीं जाती, न इस तरह की कोई आवश्यकता स्त्रियों के लिए महसूस की जाती है। ऐसे में यदि कलावती चाची, रेशम शारदा, सारंग, शकुंतला जैसी स्त्रियाँ थोड़ा ऊँच-नीच कदम उठा भी लेती हैं, तो इसमें इतना हंगामा बरपाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। तुम्हारे लिए वेश्यालय, मदिरालय, और हम स्त्रियाँ किसी पुरुष को नजर उठाकर देख भी नहीं सकती। वाह रे पुरुष, तुम कितने अन्यायी! हेमलता महेश्वर स्त्री पुरुष की मानसिकता के विषय में लिखती हैं, “पुरुष स्वभाव से मनचला होता है और स्त्रियाँ जी कड़ा करने में माहिर।”¹⁶ बस जो यह जी कड़ा करना है, उसी की थोड़ी सी लगाम ढीली कर देती हैं, मैत्रेयी पुष्पा की नायिकाएँ। इसी कारण सारंग, श्रीधर से संबंध स्थापित करने के बाद पश्चाताप नहीं करती, बल्कि अनुभव करती है कि उसने कुछ गलत नहीं किया। वह स्वगत कथन के माध्यम से स्वयं से कहती है, “मुझे तो पाप नहीं लगा, अपना किया। कतई नहीं हुआ पाप-बोध। जो किया सोच समझ कर किया।”¹⁷ मैत्रेयी पुष्पा ने अपने इस उपन्यास में महिलाओं के जीवन-मूल्यों में आ रहे परिवर्तनों को रेखांकित किया है। इसे उपन्यास में आए अनेक उदाहरणों के माध्यम से इसे समझा जा सकता है। अथेड़ उम्र की भाभी रिश्ते के ननदोई की मालिश करने का जिन्न करते हुए कहती है, “ज्यादा ही सरमदार का घुसला बन रहा था। तैमद ऊपर सरकावै ही न। लत्ता जितना ही ऊपर उठाऊँ, उतना ही भींचता जाय तैमद को। मैंने कही लुगाई है रे तू? जबरदस्ती तैमद खोलकर फेंक दिया बंजमारे का....। मैंने ऐसी मालिश करी जैसे छः महिने का बालक हो और फिर खाट पर लेट गई उसके बराबर। बोल दिया कि कल्लू कैलासी, भूल जाओ रिश्ते-नाते और फिर ये तो देह के रहते का खेला है रे, पाप-पुन मत सोचना।”¹⁸

मैत्रेयी पुष्पा गाँव की स्त्रियों को साहस और बेबाकपन के साथ सामने रखती हैं। उनकी नायिकाएँ घूँघट में छिपी लिसी-पिटी गुड़िया नहीं, न ही मालिक द्वारा हाँके जाने पर हँक जाने वाली। दबी जुबान ही सही पर प्रतिरोध उनका स्वभाव बनता जा रहा है। लावे को ज्यादा देर दबाकर नहीं रखा जा सकता। यदि ऐसा करने की कोशिश की जाएगी, तो वह एक दिन भयानक विस्फोट के रूप में आएगा। सारंग का बंदूक उठा लेना ऐसा ही एक विस्फोट है।

चाक उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने केवल नारी संघर्ष को ही नहीं, वरन् प्रेम को भी नई परिभाषा दी है। इस उपन्यास की नायिकाएँ प्रेम की परम्परागत परिभाषा को अस्वीकार करती हैं, जिसमें पुरुष स्वतंत्र है और स्त्रियाँ परतंत्र। इस उपन्यास में चित्रित प्रेम संबंधों ने साहित्य-जगत में एक नई बहस शुरू की। इस उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने श्रीधर और सारंग के बीच प्रेम संबंध दिखलाया है, जो सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं है, परन्तु नायिका (सारंग) को इसे लेकर कोई पश्चाताप नहीं है। श्रीधर और सारंग के प्रेम संबंध में मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं, “मेरी दृष्टि में प्रेम शब्द और व्यभिचार शब्द को अलग-अलग देखा जाए, तो दोनों में एक-दूसरे के विपरीत आचरण में दिखते हैं। प्रेम जहाँ निश्चलता, विश्वास और ईमानदारी भरा लगाव है, तो व्यभिचार चोरी, कपट और बेईमानी है। लेकिन सामाजिक विडंबना यह है कि अक्सर प्रेम को भी व्यभिचार से जोड़ दिया जाता है, खासतौर से विपरीत लिंगी प्रेम को। ‘चाक’ उपन्यास छपने के बाद बड़ा बवाल मचा था, क्योंकि मैंने नायिका की ओर से लिख दिया था कि यह व्यभिचार नहीं, मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।”¹⁹

चाक उपन्यास की स्त्रियाँ घर-परिवार की चारदीवार में कैद रहकर जीवन यापन करने वाली नहीं हैं, वे इस चारदीवारी को तोड़कर बाहर निकलती हैं। न केवल बाहर निकलती हैं, अपितु वे न्याय का पक्ष लेती हैं। अपने ऊपर होने वाले अन्याय से मुक्ति का प्रयास करती हैं। सबसे खास बात यह है कि ये केवल अपनी ही मुक्ति का प्रयास नहीं करती वरन् एक विपाल जनसमूह की मुक्ति की अगुआ बनती हैं। ये जोर-जुल्म के खिलाफ खुलकर आवाज बुलन्द करती हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने चाक उपन्यास में चित्रित नारी-संघर्ष को लेकर लिखा है, “यह लड़ाई नारी मुक्ति या नारीवाद की सीमा नहीं बनती, बल्कि यह लड़ाई मनुष्य के अधिकारों की लड़ाई है। यह अपनी शक्ति को पहचानने की लड़ाई है। यह भारत की ग्रामीण जमीन पर घूँघट के भीतर दहकती आंखों की लड़ाई है, जो सड़ी-गली मान्यताओं को भस्म कर देना चाहती है। साथ ही नैतिकता के पाखंड को तोड़ती हुई नैतिकता की नई जमीन बनाती नजर आती है।”²⁰

मैत्रेयी पुष्पा के नायिकाएँ ऐसी स्त्री का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो समाज की तमाम रूढ़ियों से टकराती हैं। वे एक प्रगतिशील नारी की भूमिका नजर आती हैं। वे इस बात को बखूबी समझती हैं कि जब तक स्त्री सशक्त नहीं होगी, अपने ऊपर होने वाले अत्याचार के विरुद्ध आवाज नहीं उठाएगी, तब तक उस समाज से उपेक्षा ही मिलेगी। उसे अपन हक-अधिकार हासिल करने के लिए आंतरिक रूप से सबल होना पड़ेगा और इस गैर बराबरी की खाई को पाटने के लिए समाज की मुख्यधारा में अपनी जगह बनानी होगी। स्त्रियों के हक में फैसला लेने के लिए मजबूती से दृढ़ संकल्प के साथ स्त्री को ही आगे आना होगा, तभी वह अपने ऊपर होने वाले अन्याय के खिलाफ आवाज बुलंद कर सकेगी। मैत्रेयी पुष्पा के चाक उपन्यास में स्त्री-शोषण के विविध आयामों को अत्यंत सहज और यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा ने महिला स्वतंत्रता का समर्थन किया है। नारी के बदलते स्वरूप को उन्होंने बहुत कुशलता से प्रस्तुत किया है। मैत्रेयी पुष्पा की पात्र संदेश देती हैं कि अब महिलाएं अपना निर्णय स्वयं लेना सीख गई हैं। वे किसी के दबाव में रहने वाली नहीं हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने इस संबंध में लिखा है, “मेरी सारंग अपने अधिकार का मूल्य जानती है। सांस्कृतिक मनो भूमिकाओं में वह किसी पुरुष से ऊपर है। अपमान, घृणा, उपेक्षा जो पति से मिलती है, उसका निदान हमखयाल मित्र के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने में है। उसे पति नहीं, साथी चाहिए। साथी मन का भी, तन का भी।”²¹

निष्कर्ष:- 'चाक' उपन्यास के बारे में कहा जा सकता है कि इसमें ग्रामीण स्त्रियों के बदलते जीवन-मूल्य निहित हैं। ग्रामीण महिलाएँ दबे पाँव ही सही किन्तु मंजिल की तरफ बढ़ चलीं हैं। सम्पूर्ण उपन्यास में वर्चस्ववादी ताकतों को दबदबा भी है, प्रभुत्व भी है, सत्ता भी है, किन्तु ठीक इसके विपरीत उस दबदबा प्रभुत्व, सत्ता से लड़ने के लिए ग्रामीण स्त्रियाँ कटिबद्ध दिखाई देती हैं। अब नारी हर क्षेत्र में समान भागीदारी चाहती है। नारी को अब सह मंजूर नहीं कि महिला और पुरुष के लिए नैतिकता के अलग-अलग मापदण्ड हों। वह बिना किसी भय कि अपना संघर्ष स्वयं करना चाहती है। यदि उसके हक और अधिकार की लड़ाई में उसका परिवार यहाँ तक कि उसका पति भी साथ नहीं हो तो भी वह अपने ऊपर होने वाले अन्याय के खिलाफ लड़ाई लड़ेगी। इसके लिए चाहे उसे किसी परपुरुष का सहारा लेना पड़े। प्रस्तुत उपन्यास में सारंग का पति जब सारंग का साथ नहीं देता तो सारंग श्रीधर का साथ लेती है। सारंग इस बात की परवाह नहीं करती कि लोग उसको और श्रीधर को लेकर क्या सोचेंगे। समाज में उसके के बारे में क्या चर्चाएँ हो रही हैं? प्रस्तुत उपन्यास नारी जीवन के बदलते जीवन-मूल्यों को तो उद्घाटित करता ही है, साथ ही नारी के संघर्षशील और जुझारू व्यक्तित्व को भी समाज के समक्ष रखता है। इस उपन्यास की नायिकाएँ सदियों से चले आ रहे जीवन मूल्यों को अस्वीकार करती हैं। ग्रामीण नारी का स्वरूप बदलने लगा है। यह केवल सामाजिक तौर पर ही नहीं वरन् अब नारी अपना राजनैतिक वजूद भी समझने लगी है। तभी तो सारंग प्रधानी का चुनाव लड़ती है। सबसे खास बात यह है कि उसके इस चुनाव में महिलाएँ उसका साथ देती हैं। चुनाव प्रचार में पूरे गाँव की स्त्रियाँ ढोलक-मजीरों के साथ घरों से बाहर निकल आती हैं। बेटियाँ अपनी-अपनी ससुराल से अपने मत का प्रयोग करने मायके आ जाती हैं, और सारंग को संबोधित कर कहती हैं, "भाभी तू चिंता मत करना री।"²² हरप्रसाद की बहन नकटी कहती है, ".....याद कर लो री वोट कैसे देना है, गुलाबी रंग का कागद, कागद पर छतरी, छतरी, छतरी.."²³ ये स्त्रियों की आवाज है, जो सदियों से दबाकर रखी गई थी, किन्तु अब सोच के मानदंड बदल चुके हैं। परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं और उस बदलाव की स्पष्ट झलक हमें चाक में दिखाई देती है।

मैत्रेयी पुष्पा ने चाक उपन्यास में गढ़े गए नारी पात्रों द्वारा नारी के बदलते जीवन-मूल्यों को मानव समाज के समक्ष रखा है। अब नारी के नैतिक मूल्य बदलने लगे हैं। अब वह कठपुतली की तरह किसी के इशारों पर नाचने वाली गुडिया नहीं है। वह अपने हक-अधिकार पाने के लिए लड़ना सीख गई है। उसे पुरुष समाज द्वारा लादी गई नैतिकताएँ मंजूर नहीं हैं। वह अपने निर्णय स्वयं लेने लगी है। परन्तु यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि स्त्रियों की प्रगतिवादी आवाज पुरुषसत्ता की वाकपटुता की तह में गर्क होती रही है। माना कि आज की सामाजिक/राजनैतिक परिस्थितियाँ निरन्तर बदल रही हैं, किन्तु शिक्षा के अभाव में ग्रामीण महिलाओं की स्थिति जस की तस बनी हुई है। यद्यपि चाक में ग्रामीण महिलाओं की स्थिति में बदलाव के पुख्ता संकेत हैं, तथापि वास्तविक स्थिति में सूक्ष्म बदलाव ही देखने को मिलते हैं।

सन्दर्भ सूची

- 1 मैत्रेयी पुष्पा, 'चाक', (उपन्यास) पृ. सं. 91
- 2 वही, पृ. सं. 7
- 3 वही, पृ. सं. 21
- 4 वही, पृ. सं. 21
- 5 वही, पृ. सं. 21
- 6 वही, पृ. सं. 362
- 7 वही, पृ. सं. 22
- 8 वही, पृ. सं. 100
- 9 वही, पृ. सं. 215
- 10 चाक, 310
- 11 वही, पृ. सं. 345
- 12 वही, पृ. सं. 349
- 13 वही, पृ. सं. 401
- 14 वही, पृ. सं. 328
- 15 वही, पृ. सं. 104
- 16 स्त्री लेखन और समय के सरोकार, हेमलता महीश्वर, पृ. सं. 21
- 17 वही, पृ. सं. 328
- 18 वही, पृ. सं. 104
- 19 मैत्रेयी पुष्पा, सुनो मालिक सुनो (लक्ष्मण रेखा की चुनौतियाँ) पृ. सं. 219
- 20 'चाक', (उपन्यास) कवर पेज, पृ. सं. 2
- 21 सुनो मालिक सुनो, मैत्रेयी पुष्पा, पृ. सं. 223
- 22 मैत्रेयी पुष्पा, 'चाक', (उपन्यास) पृ. सं. 427
- 23 वही, पृ. सं. 427

लीलाधर जगूड़ी के काव्य एवं राजनीतिक विचार

प्रो० संजय एल० मादार

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पी० जी० काम्पलेक्स, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, खैरताबाद, तेलंगाना राज्य।

नेहा कुमारी

शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, पी० जी० काम्पलेक्स, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, खैरताबाद, तेलंगाना राज्य।

राजनीति का प्रादुर्भाव समाज के विकास के साथ ही हुआ। राजनीति के द्वारा समाज का कल्याण सम्भव होता है। राजनीति अनेक प्रकार के नियमों का निर्माणक होती है। ये सभी नियम चेतना के प्रयोग द्वारा बनते और बिगड़ते रहते हैं। राज्य के सदस्य होने के नाते व्यक्ति की भलाई राजनीति से संबंधित होती है। राजनीति के अन्तर्गत यदि चेतना का सहयोग प्राप्त न हो तो व्यक्ति का कल्याण हो ही नहीं सकता। बिना राजनीति से टकराये जीवन के यथार्थ को जानना, पहचानना उसका एहसास करना भी असम्भव है। हर आदमी राजनीति से तीन रूपों में सामना करता है – एक, नागरिक की हैसियत से चुनाव आदि में हिस्सा लेकर, दूसरा-आन्दोलन में सहयोग देकर और तीसरा- दर्शक की भाँति। सामान्य व्यक्ति राज्यों की नीतियों से प्रभावित रहता है। राज्यों की गतिविधियों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से उस अवश्य प्रभाव पड़ता है। डॉ० सुषमा कहती हैं – “राज्य और उसकी विभिन्न व्यवस्थाओं का समाज और व्यक्ति दोनों पर बहुत ही प्रभाव पड़ता है और इस तरह तीनों ही व्यक्ति, समाज और राजनीति एक-दूसरे से अविच्छिन्न रूप से अनुस्यूत हैं। राजनीति समाज की दशा निर्धारित करती है और समाज राजनीति की। इस प्रकार दोनों ही एक-दूसरे से प्राण-रस ग्रहण करते रहते हैं।”

राजनीति से उद्भूत कर्कश ध्वनि जहाँ एक ओर वितृष्णा फैलाती है वहीं दूसरी ओर वास्तविक जीवन-यापन के साधनों की सम्प्राप्ति हेतु प्रेरणा भी प्रदान करती है। इन क्रियाकलापों में चेतना गतिमान होती है। मानव-चेतना जब कुमार्ग ग्रहण करती है तब दूषितराजनीति का प्रादुर्भाव होता है, परन्तु दोष-विहीन चेतना के प्रयोग द्वारा जो राजनीति संचालित होती है वह कल्याणप्रद होती है।

लीलाधर जगूड़ी के काव्य-संग्रह ‘नाटक जारी है’ से ही समकालीन हिंदी कविता जगत में जगूड़ी की पहचान बनती है। इस संग्रह की कविताओं में आज के व्यक्ति के संकट को अभिव्यक्ति मिली है। व्यक्ति के परिवेश और उसकी स्थिति को इस संग्रह की कविताओं में उजागर किया गया है –

‘दुकानों पर नये चाकु बिके हैं।’

बदनाम मुलाकातों के कीड़े/नालियों में हिले हैं/ पैंट/फ्राक के ऊपर पड़ा है/ इधर कुछ नये अखबार निकले हैं।’

परिवेश में व्याप्त भ्रष्टाचार, अपराध, बलात्कार तथा सनसनीखेज खबरों को ये पंक्तियाँ अभिव्यक्त करती हैं। व्यक्ति की घुटन और टूटन को स्पष्ट एवं सपाट भाषा में जगूड़ी अभिव्यक्त करते हैं। आज व्यक्ति परम्परागत मूल्यों, विवासाँ, नैतिकता, राजनीति, सभी के विरुद्ध हो गया है। आज आम आदमी की स्थिति तुच्छ और निरीह हो गयी है। वह असहाय और विवश हो गया है। आज के आदमी की सही तस्वीर हमारे सामने रखते हुए जगूड़ी लिखते हैं- ‘गजब है आप सो रहे हैं, अपने ही देश की तरह तटस्थ हो रहे हैं, आप के चेहरे पर कृषि प्रधान देश की पूरी भूख है।’ आम आदमी की इस स्थिति के लिए वर्तमान व्यवस्था और राजनीति जिम्मेदार है। व्यक्ति व्यवस्था के जबड़े में पड़ा हुआ ही काह रहा है- ‘मैं भी तुम्हारे साथ उसी जबड़े में हूँ, जहाँ एक चढ़ाता है और दूसरा उतारता है, दांत के नीचे।’ इस संग्रह की कविताओं में जगूड़ी स्थितियों को नंगा करके देखते हैं, कि –

“वह मकान जिसका द्वार आँगन के पार खुलता है,

गेहूँ के बोरो से चिन दिया गया।

लोकसभा से संयुक्त राष्ट्र-संघ तक,

हमारी कोई उपयोगिता नहीं।”

“झोलों से फाइलें तक सड़कें हैं, शहर हैं,

कुर्सियों पर मरने के लिए दो बैल हैं।

तरक्की पर आदमी के साथ जोते हुए,

हमारी और क्या उपयोगिता हो सकती है,

अपने ही वश में पैदा होते हुए।”²

इस देश की हर सड़क तिजोरी तक जाती है

और तुम्हारे लिए पोस्टकार्ड की कीमत बढ़ जाती है।”

राजनेता देश को, आम आदमी को उल्लू बना रहे हैं और लोग बनते चले जा रहे हैं – बिना किसी विरोध के। जनता पिस रही है, शोषण हो रहा है। स्वार्थी और भ्रष्ट सत्ताधीश जनता को चूसते चले जा रहे हैं। हर पाँच साल बाद होने वाले आम चुनावों को भी जगूड़ी इस नाटक का ही एक अंग मानते हैं। चुनाव नाटक है, इसलिए वह भी झूठ है जनता को उल्लू बनाने का एक तरीका। पाँच सालों के बाद जनता के सेवक हाथ जोड़कर, चेहरे पर मुस्कराहट लिए आम आदमी के सामने खड़े हो जाते हैं – विनय करते हैं, धिधियाते हैं, आश्वासनों को फिर से दुहराते हैं, यह सब नाटक नहीं तो और क्या है? चुनाव में प्रतिनिधि जनता नहीं चुनती, प्रतिनिधि चुनने का काम राजनीतिक दलों का है – जनता तो केवल मोहर लगाती है।

राजनीतिज्ञ सड़कों, घरों, कपड़ों, पौष्टिक आहार की सुविधाओं के मिथ्या आश्वासनों से जनता की वोट तो खरीदते ही हैं, इसके साथ-साथ वे चुनाव जीतने के लिए निम्नस्तरीय तरीकों को इस्तेमाल करने से नहीं चूकते। अग्रलिखित उदाहरण में आधुनिक जननायकों के डुप्लीकेट व्यक्तित्व, अवसरवादी दृष्टिकोण, आत्मकेन्द्रित चिंतन और चारित्रिक अन्तर्विरोधी पहलुओं का स्वरूप देखा जा सकता है –

“सब कुछ बिल्कुल तैयार है, सड़कें, घर, कपड़े-पौष्टिक आहार, देखने के लिए कई मधुर सपने, यहाँ तक कि आनन्दित होने का भी इन्तजाम है।”

तुमको कुछ नहीं करना पड़ेगा,

हमें लागू करने भर का मौका दें,

प्रधानमंत्री कह दें और मजाल है सूर्य इधर न आए।”

आनन्दित का इन्तजाम है ‘पॉक्ति में राजनीतिज्ञों के घृणित रवैये पर करारा व्यंग्य है।

“कानून की सर्वोच्च पवित्रता लेकर हमारे पास आएँगे’

ऐसी प्रधानमंत्री की इच्छा है’ – वे कहेंगे

तुम हमें चुना, हम सब कुछ बदलकर रख देंगे,

उसके बाद भी अगर कोई भूख की बात करे

तो यह प्रधानमंत्री को सहन नहीं होगा।”

जगूड़ी ने व्यवस्था के कोरे आश्वासनों पर, उनकी शोषकी नीतियों पर, उनके छद्मवेशी सिद्धान्तों पर तीखा व्यंग्य किया है। यह व्यंग्य शोषण वर्ग की नीतियों को तो अनावृत करता ही है, पर इसके साथ-साथ शोषित वर्ग में भी नैतिक बल का संचरण करता है। कवि ने व्यवस्था के धिनौने व्यक्तित्व की तमाम परतों को इस सीमा तक अनावृत कर दिया है कि सामान्य व्यक्ति सत्तासीन व्यक्तियों के विरुद्ध जनमत तैयार कर जूआ फेंकने को तत्पर हो जाए।

जहाँ रिशवत का बाजार गर्म हो, व्यवस्था का लगभग हर प्राणी चोर हो और जहाँ आदमी को अपनी भूलों पर पश्चाताप करने की जरूरत न हो, वहाँ कानून की स्थिति का संदिग्ध होना कोई नामुमकिन बात नहीं है। न्यायाधीश, उच्चस्तरीय वकील प्रायः अभिजात वर्ग से सम्बद्ध होते हैं। उन तक शोषित सर्वहारा वर्ग की पहुँच नहीं हो पाती। इसके विरुद्ध मिल मालिकों/उद्योगपतियों/सूदखोरों/साहूकारों में न्यायाधीशों की जेब भरने की सामर्थ्य होती है। इसलिए कानून की जड़ पुस्तकों में नहीं बल्कि बटुवे में होती है।

“सब कुछ के बाद एक गलत जिज्ञा की तरह, हमारा होना, हम कच्चे पड़ गए हैं, कानून की जड़ बटुवे में लेकर, ये सब लोग, इस सारी व्यवस्था के साथ सच्चे पड़ गए हैं।”

जहाँ कानून की पुस्तकों के प्रति अविश्वास हो, जहाँ संविधान के पृष्ठ जलाकर किसी षडयंत्र की साजिश की जा रही हो, जहाँ विरोधी प्रस्ताव के मूल में जनहित नहीं बल्कि निजी स्वार्थ की बात निहित हो वहाँ कानून की स्थिति समादृत कैसे हो सकती है –

परसों कानून की किताब के कुछ और पेज जला दूँगा, लोकसभा के पीछे, खुद के विरुद्ध, अविश्वास प्रस्ताव रखूँगा और पास कर दूँगा, किसी षडयंत्र के लिए, अपना निर्वाचन।”

कितनी विडम्बनापरक स्थिति है जब सुनवाई के सभी द्वार संदिग्ध हों और कानून के पृष्ठों के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव केवल षडयंत्रों के लिए रखे जाते हों?

पूँजीवादी व्यवस्था प्रायः नीतियों और अध्यादेशों के परिपालन हेतु पुलिस का सहयोग लेती है। यद्यपि ये पुलिसकर्मी सर्वहारा वर्ग से आते हैं शक्ति और नशे में चूर ये शोषक वर्ग से भी कहीं अधिक क्रूर और बर्बर सिद्ध होते हैं। जहाँ भी किसी विद्रोह या हड़ताल की आशंका हो, कोई भाषायी या साम्प्रदायिक उपद्रव मुंह खोलता हो, वहीं पुलिस कर्मियों की विभीषिकापूर्ण कार्यवाही की शुरुआत हो जाती है। वस्तुतः अपनी इसी अमानुषिकता के कारण वे आम जनता के हितचिन्तक बनने की अपेक्षा पूँजीवादी वर्ग के पक्षधर सिद्ध होते हैं।

‘बच्चा और राजनीति’ (घबराए हुए शब्द) भेद, हत्या (रात अब भी मौजूद है), इस व्यवस्था में (नाटक जारी है) आदि रचनाओं में पुलिस कर्मियों के बर्बर अत्याचारों, अमानुषिक कृत्यों एवं अमानुषिक रवैयों के संकेत हैं। ‘भेद’ कविता में पुलिस की बर्बरता, क्रूरता और मूल्यभंजक मानसिकता का रहस्योद्घाटन है। अगर कोई पुलिसकर्मी आंतरिक स्नेह, सौजन्य या आत्मीयता का प्रदर्शन करता है तो यह केवल स्वप्न में ही संभव है।

‘पुलिस हस रही है ! पुलिस हस रही है।’

“मैं कल भी झूठ बोलूँगा, अमर्यादित होना, पाप मुक्ति के लिए, अनिवार्य प्रार्थना है किसी का पीछा करता हुआ, थाने के सामने से गुजर जाऊँगा। पुलिस-कर्मियों का दायित्व होता है व्यवस्था स्थापन में सत्ता का सहयोगी होकर सामान्य जनता के लिए रक्षाकवच सिद्ध होना - “संगीन पुलिस किसी रंगीन अपराधी को पकड़ती है, और मुझे अपने देश के दिमाग पर खुशी होती है, चकमे बाजियाँ बतायेंगी कि प्रतिभाएँ, प्रजातंत्र में अपराध करती हैं।”

जगूड़ी समकालीन कविता के उन हस्ताक्षरों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्होंने भ्रष्ट राजनीतिज्ञों, यथास्थितिवाद के समर्थक बिचोलियों, पुलिसकर्मियों, मूल्यभंजक सत्ताधारियों के आचरण को उद्घाटित करने में लेखकीय दायित्व का निर्वाह किया है। जगूड़ी की कविता व्यवस्था, राजनीति चरित्र, जनतंत्र का यथार्थ रूप, जनता का स्वर और प्रतिक्रिया आदि के यथार्थ को स्पष्ट करने का, उनके सही रूप को सामने रखने का प्रयास करती है। जगूड़ी की कविता आम आदमी की व्यथा और करुणा को, परिवेष्ट के यथार्थ को अपनी व्यंग्य-विद्रूप भरी उक्तियों से अभिव्यक्त करती है इस अभिव्यक्ति में परिवर्तन और बदलाव की, विद्रोह की ओर संघर्ष की इच्छा भी नजर आती है।

संदर्भ

1. डॉ० सुषमा, उपन्यास और राजनीति, पृ. 23
2. लीलाधर जगूड़ी, नाटक जारी है, पृ. 59
3. लीलाधर जगूड़ी, इस यात्रा में, पृ. 106
4. लीलाधर जगूड़ी, नाटक जारी है, पृ. 60

भारत में महिलाओं की प्रगति में केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों की भूमिका

किरण सिंह

शोधार्थी - समाजशास्त्र विभाग, डॉ राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उ०प्र०।

भारत के संविधान और अन्य कानूनों में तो महिलाओं को बराबरी का दर्जा प्राप्त हो चुका है, किन्तु इस कानूनी बराबरी को वास्तविकता के धरातल से जोड़ना भी अति महत्वपूर्ण है। इस दिशा में महिलाओं का स्वावलम्बन और आर्थिक सक्षमता बढ़ाने के लिए कुछ योजनाएं प्रारम्भ की गयी हैं। भारत में अब भी लगभग 41 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रही है जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। इस दिशा में भारत सरकार की आई. आर.डी.पी. ट्राइसेम एवं ड्वाकरा योजनाएं महत्वपूर्ण हैं। महिलाओं को स्वरोजगार चलाने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु इन योजनाओं में काफी बल दिया गया है। इसके अलावा गत 3-4 वर्षों में कुछ नयी योजनाएं प्रारम्भ की गयी, जैसे- राष्ट्रीय महिला कोष, इन्दिरा महिला योजना, महिला समृद्धि योजना, स्त्रेप, नीराड योजना तथा महिला आर्थिक विकास निगमों की योजना। अब तक भारत में 17 महिला आर्थिक विकास निगम स्थापित किये जा चुके हैं, जिनका उद्देश्य महिलाओं को आर्थिक रूप से सक्षम बनाना है। इस योजना के अधीन केन्द्र तथा राज्य सरकार को क्रमशः 49 प्रतिशत और 51 प्रतिशत हिस्सों के अनुसार कुल 1 करोड़ रुपये आवंटित कर ये निगम निर्मित किये जाते हैं।

इस योजना का उद्देश्य अधिक अच्छे रोजगार के साधन उपलब्ध करना है ताकि वे आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र और आत्म निर्भर बन सकें। इसके अतिरिक्त यह योजना महिला रोजगार सेक्टर में मुख्य बाधाओं को दूर करने में सहायता करती है। वास्तव में महिला सहयोग बहुत सी स्वायत्त संस्थाएँ, बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्थाएँ, और एजेन्सियाँ भी कर रही हैं। भारत के संविधान और अन्य कानूनों में तो महिलाओं को बराबरी का दर्जा प्राप्त हो चुका है, किन्तु इस कानूनी बराबरी को वास्तविकता के धरातल से जोड़ना भी अति महत्वपूर्ण है। इस दिशा में महिलाओं का स्वावलम्बन और आर्थिक सक्षमता बढ़ाने के लिए कुछ योजनाएं प्रारम्भ की गयी हैं। भारत में अब भी लगभग 41 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रही है जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। इस दिशा में भारत सरकार की आई.आर.डी.पी. ट्राइसेम एवं योजनाएं महत्वपूर्ण हैं। महिलाओं को स्वरोजगार चलाने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु इन योजनाओं में काफी बल दिया गया है। इसके अलावा गत 3-4 वर्षों में कुछ नयी योजनाएं प्रारम्भ की गयी, जैसे- राष्ट्रीय महिला कोष, इन्दिरा महिला योजना, महिला समृद्धि योजना, स्त्रेप, नीराड योजना तथा महिला आर्थिक विकास निगमों की योजना। अब तक भारत में 17 महिला आर्थिक विकास निगम स्थापित किये जा चुके हैं, जिनका उद्देश्य महिलाओं को आर्थिक रूप से सक्षम बनाना है।

राष्ट्रीय महिला कोष:-

कोष की योजना के अनुसार जो ऋण दिये जाते हैं, संस्थाएं आगे इन्हें महिलाओं को समूहों के रूप में गठित करके अपने क्षेत्रीय अमले के माध्यम से उन तक ऋण पहुँचाती रहती है। जब ऋण दिया जाता है, तो उसका भुगतान भी समूह की बैठकों में किया जाता है, जब किशतें वापस देने का समय आता है तब भी चूँकि ऋण सभी की रजामन्दी से दिये गये हैं। किस्तों की अदायगी के लिए भी समूह के सदस्यों का एक दूसरे पर दबाव पड़ता है। ऋण की एक और विशेषता यह है कि वह एक से अधिक बार अर्थात् अनेक बार भी एक ही सदस्य को दिया जा सकता है। अतः एक बार किस्त की सही अदायगी न होने से परिणाम यह हो सकता है कि उक्त महिला को आगे ऋण ही देना बन्द कर दिया जाय। इस प्रकार समूहों में बहुत सी शक्ति है, और अनुशासन लागू करने का सामर्थ्य भी।

ड्वाकरा:-

इस योजना के अधीन महिलाओं के समूहों की आर्थिक गतिविधियों के लिए बीज निधि के रूप में प्रति समूह रुपये 15 से 25 हजार दिये जाते हैं तथा इसके अलावा समूह की जो बचत होती है, उसके बराबर ही राशि समूह को प्रोत्साहन स्वरूप उसकी आर्थिक गतिविधियों के लिये दी जा सकती है। समूह में गरीब परिवारों की 10-15 महिलायें होनी चाहिये। इन समूहों की ट्राइसेम के अधीन आर्थिक उपार्जन की गतिविधियों सम्बन्धी प्रशिक्षण भी दिया जाता है। पहले इस योजना के अधीन आबादी सारी समूह नेताओं के साथ-साथ ग्राम सेविका के संयुक्त खातों में जमा की जाती थी, किन्तु अब यह समूह नेता तथा समूह कोषाध्यक्ष दोनों के नाम खोले गये खाते में डाली जाती है। योजना की जिम्मेदारी जिला विकास प्राधिकरण के सहायक कार्यक्रम अधिकारी (A.P.O. ड्वाकरा) पर होती है। समूह को अपनी कारगुजारियों को समय-2 पर उनके समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है। कठिन क्षेत्रीय समूह सदस्यों की संख्या 10-15 की अपेक्षा कुछ कम भी हो सकती है। अब तक ड्वाकरा योजना से 15 लाख महिलायें लाभान्वित हो चुकी हैं। इस योजना का उद्देश्य यह है कि समूह बीज राशि समूह को लौटा दे। समूह सुचारू रूप से संगठित हो जाने के बाद उसे स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषण, स्वच्छ जल एवं स्वच्छ शौचालय तथा बालकों के

उन्नत लालन-पालन आदि की सेवायें भी ज्यादा अच्छे तरह से मिल सकेंगी। क्योंकि समूह नेता एवं सदस्यों का सम्पर्क शासकीय अमले से बना रहेगा और महिलायें अपने जरूरतों को बताने में झिझकेंगी नहीं। देखा गया है कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् बैंको द्वारा अपने 40 प्रतिशत ऋण गरीबों का सतर ऊपर उठाने के लिये प्रायोरिटी सेक्टर को दिये जाने आवश्यक होते हैं एवं जब से ऋण समूह के माध्यम से दिये जाते हैं, तो इनकी वसूली का प्रतिशत बहुत ऊँचा रहता है। बैंकों द्वारा समूह को प्रोत्साहन देने के लिये तथा प्राथमिक क्षेत्र में ऋणों के सुदपयोग के लिए महिलाओं के समूह बनाने पर बल दिया जा रहा है।¹ इस सम्बन्ध में नाबार्ड द्वारा स्वयं-सहायता-समूहों को उनकी बचत का चार गुना ऋण के रूप में दिया जाये, ऐसे निर्देश सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों को दिये गये हैं, किन्तु इसके लिए निम्न शर्तें पूरी होनी चाहिये-

1. समूह में सामंजस्य तथा एकता की भावना अवश्य हो।
2. समूह कम से कम 6 माह तक अपने ही साधनों से बचत करता रहा हो।
3. समूह के लेखे भली प्रकार संचालित हों, इसी प्रकार उसकी कार्यवाही विवरण भी सिलसिलेवार रखी जाय।
4. समूहों में सभी को नेता बनने का अवसर हो, यह गणतांत्रिक पद्धति पर चलता रहता है।
5. क्या-क्या लेखे रखने चाहिए, इसका निर्धारण बैंक द्वारा किया जायेगा, किन्तु किसी सदस्य से कोई सुरक्षा निधि नहीं ली जायेगी। जो संस्थान ग्रामीण धनहीनों की बचत का कार्यक्रम उनके समूह बनाकर चल रही है, उनके माध्यम से भी बैंको द्वारा समूहों को आर्थिक सहायता ऋण के रूप में दिलाई जा सकती है।

नाबार्ड से बैंकों को इस प्रकार की राशियों के लिए पुर्न वित्त प्रदान किया जाता है जो कि 6.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज की दर पर बैंकों को तथा बैंकों द्वारा स्वायत्त संस्थाओं से 10.5 प्रतिशत पर दिया जाता है। संस्था समूह को किस दर पर ऋण देगी तथा समूह अपने सदस्यों को किस दर पर ऋण दें, यह उनके विवेक पर छोड़ दिया जाता है। नाबार्ड 10 लाख तक का ऋण सीधे स्वायत्त संस्थाओं को आवर्ती निधि के रूप में भी प्रदान करता है, जिनकी ब्याज दर करीब 9 प्रतिशत है।

कपार्ट:-

कपार्ट के माध्यम से महिलाओं तथा निर्धन वर्गों के लिये ग्रामीण विकास विभाग की अनेक योजनाओं में स्वायत्त संस्थाओं के लिए बनाये गये लाभ हित-ग्राहियों तक पहुँचाये जाते हैं। कपार्ट द्वारा ग्रामश्री मेलों का आयोजन प्रतिवर्ष किया जाता है, जिनमें इन योजनाओं से प्रशिक्षित महिलाओं द्वारा उत्पादित वस्तुओं की बिक्री सम्भव होती है।

यू.टी.आई. महिला यूनिट योजना:-

इस योजना के तहत वयस्क महिलाओं को अपनी लघु बचतों को निवेश का मौका मिलेगा और आवश्यकता पड़ने पर यूनिटों को बेचा या खरीदा जा सकेगा। निवेश के लिए यह योजना 2001 में खुली।

स्वशक्ति योजना:-

योजना का मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों की अशिक्षित महिलाओं को जागरूक बनाना और उन्हें आर्थिक स्वावलम्बन के महत्व से परिचित कराना है। इस योजना को भारत सरकार के अलावा विश्व बैंक और 'इंटरनेशनल फण्ड फॉर एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट' (IFAD) से आर्थिक सहयोग मिल रहा है।

दिल्ली डोमेस्टिक वर्किंग विमेंस फोरम बनाम भारत संघ (1995):-

उच्चतम न्यायालय ने श्रमजीवी महिलाओं के साथ बढ़ते हुए यौन अपराधों के प्रति गम्भीर चिन्ता व्यक्त करते हुए इन मामलों के शीघ्र परीक्षण, उन्हें प्रतिकार प्रदान करने तथा उनके पुनर्वास के लिए विस्तृत मार्ग दर्शक सिद्धांतों को निर्धारित किया है। मार्गदर्शन सिद्धांतों में अन्तर्निहित है कि यौन शोषण से पीड़ित महिला को यह स्वेच्छा है कि वह या तो अपना स्थानान्तरण चाह सकती है या दोषी व्यक्ति को स्थानान्तरित करवा सकती है। प्रत्येक विभाग में किसी महिला की अध्यक्षता में शिकायत समिति का गठन किया जाना भी आवश्यक बनाया गया है।

शिकायत समिति आरोपी व्यक्ति के विरुद्ध जाँच कर सके, इस तरह की समितियों में गैर सरकारी संगठनों को भी शामिल किया जाना चाहिये तथा शिकायत समिति की वार्षिक रिपोर्टकृत कार्यवाही की सूचना के साथ सरकार को भेजनी चाहिए। उच्चतम न्यायालय के इस दिशा-निर्देश को अक्षरशः स्वीकार कर इसे लागू करने के आदेश पारित कर दिये गये हैं।²

राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना:-

गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों की गर्भवती स्त्रियों को पहले दो जीवित जन्मों तक के लिए केन्द्रीय सहायता दी जाती है। बशर्ते वे 19 वर्ष तथा अधिक आयु की हो। प्रसव से कई सप्ताह पूर्व 500 रुपये की नगद एकमुश्त सहायता दी जाती है। विलम्ब की स्थिति में बच्चों के जनम के बाद भी यह लाभ दिया जा सकता है।

प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम (1961)³ :-

शिशु प्रसव से पूर्व और उसके बाद की कुछ अवधि में महिलाओं के नियोजन को विनियमित करने का उद्देश्य से बनाया गया है। इसका उद्देश्य महिला कर्मचारियों को सामाजिक न्याय प्रदान करना है। उच्चतम न्यायालय ने अपने विनिश्चयों में कहा है कि इस अधिनियम के उपबन्धों का निर्वचन करने में

न्यायालय को उदारवादी नियम का पालन करना चाहिए, जिससे न केवल महिला कर्मचारों का भरण-पोषण हो सके बल्कि वे अपनी क्षीण शक्ति को पुनः प्राप्त कर सकें, शिशुओं का पालन-पोषण हो सके तथा वे अपनी कार्य क्षमता को बनाये भी रख सकें

प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम की धारा 4 के अनुसार “उद्योग में नियोजित प्रत्येक महिला को प्रसव तथा गर्भपात के लिए सब मिलाकर 12 सप्ताह का विश्राम पाने का वैधानिक अवसर प्राप्त है। कई राज्यों तथा कई सेवाओं में प्रसूति अवकाश बढ़ाकर 135 दिन का कर दिया गया है। इस अधिकार को प्रदान करना नियोजक के लिए बन्धनकारी है, क्योंकि यह प्रावधान आदेशात्मक है। अधिकारों को प्रदान न करने पर उसे दोषी सिद्ध किया जा सकता है। कोई भी नियोजन जानबूझ कर ऐसी महिला को काम पर नहीं लगायेगा जिसे 6 सप्ताह के अन्दर ही बच्चे को जन्म देने की सम्भावना है। इसी से जुड़ा हुआ दूसरा अधिकार यह है कि प्रसव से 6 सप्ताह की छुट्टी पर जाने के एक माह पूर्व यदि वह स्वयं से लिखित प्रार्थना करती है कि उसे अधिक और भारी काम न लिया जाये, जिससे उसको तथा होने वाले बच्चे पर प्रभाव का डर या स्वास्थ्य पर विपरीत असर पड़ने की सम्भावना है तो नियोजन उसकी प्रार्थना कर कार्य करे तथा उसे श्रम साध्य कार्य न देने के लिए अपेक्षित है। इन सारे अधिकारों के साथ कर्मचारी महिलाओं को यौन शोषण के विरुद्ध भी भारतीय संविधान के द्वारा अधिकार प्रदान किया गया है।

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम (1990):-

संसद ने राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम (1990) द्वारा महिलाओं के लिए एक आयोग का गठन भी किया है। आयोग का प्रमुख कार्य महिलाओं को दी गई संवैधानिक और विधिक सुरक्षाओं से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन करना और निगरानी करना है। भारत सरकार के द्वारा कर्मचारी महिलाओं के लिये होस्टल की भी व्यवस्था की गयी है, जिसमें अविवाहित, विधवा, तलाकशुदा, पति से अलग रहने वाली या जिनके पति शहर से बाहर रहते हैं, ऐसी 30 प्रतिशत महिलायें जिनकी मासिक आय 2000 रुपये से अधिक न हो, होस्टल में रह सकती हैं। इनके साथ इनके 8 वर्ष से कम उम्र के बच्चे भी रह सकते हैं। इनमें अनुसूचित जाति, जनजाति के लिए साढ़े सात से 15 प्रतिशत स्थान आरक्षित हैं।

भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों वाले अध्याय में स्त्रियों के लिए विशिष्ट व्यवस्था करने का प्रावधान है। अनुच्छेद 51(5) में प्रत्येक नागरिक पर एक मौलिक दायित्व अधिरोपित करता है कि ऐसी प्रथाओं को परित्याग करें जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों। महिला कर्मचारों को दी गई वैधानिक सुरक्षा इसी दायित्व की सम्पूर्ति है।

संदर्भ

1. डॉ० पोथन के०पी० एवं टोग्या वी०सी० - परिवार और समाज, कमल प्रकाशन इन्दौर, 1989 पेज 279
2. चन्द्रा सुसमिता (2001): वूमन एण्ड इकोनोमिक डेवलपमेन्ट, ए केश स्टडी उ.प्र.बी.आर. पब्लिसिंग को. न्यू दिल्ली।
3. इन्द्रजीत सिंह, इकोनोमिक डेवलपमेन्ट 1961:439-42

मिथिला की ज्ञान प्रणाली: रूढ़ान और परंपराएँ

प्रो० (डॉ०) प्रभासचन्द्र मिश्र

प्रोफेसर, इतिहास विभाग, ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा।

पारंपरिक ज्ञान-प्रणाली

अब मान्य हो रहा है कि, पश्चिमी मापदंड ही एक मात्र निर्देश चिह्न नहीं है जिनसे अन्य सांस्कृतिक ज्ञान का मूल्यांकन किया जाए। वैसे तो 'परंपरिक' शब्द कदाचित् संकेतार्थ रूप से 'आधुनिकता - विरुद्ध' होने का संकेत देता है, एक 'अविकसित' या 'अप्रचलित' प्रसंग, किन्तु कई पारम्परिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी वास्तव में, पश्चिमी मानदंड से भी परे आधुनिक स्तर की थीं और अच्छे ढंग से क्षेत्रीय स्थिति और आवश्यकताओं के अनुकूल भी थी। उत्तरकालीन 'आधुनिक' प्रतिनिधि की तुलना में, उन देशों में जहाँ पुरातन सांस्कृतिक सभ्यता व्याप्त थीं, वहाँ जनसाधारण एवं उत्कृष्ट विज्ञान दोनों ही साथ में बिना किसी आधिपत्य वर्गीकरण के समान रूप से संगठित थे।¹

तथापि, आधुनिकता ने कई समाधानों को समान रूप कर दिया। जैव-विविधता के नाश से उपनिवेशवादियों ने व्यवस्थित रूप से क्षेत्रीय जन समुदाय का पारम्परिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं भूमि, शिल्प कला को अप्रतिष्ठित, पूर्णतया विनष्ट या दुर्बल बना दिया और साथ ही उन्हें लूटा भी, क्योंकि वे उनका बौद्धिक अहंकार तोड़ना चाहते थे और उनके आर्थिक उत्पादन के साधनों को और सामाजिक संस्थाओं के माध्यमों को नियंत्रित और संशोधित करना चाहते थे। आधुनिक समाज ने आधिपत्य वर्गों का निर्माण किया जिन्होंने नूतनकलीन तथाकथित 'अविकसित' लोगों के संग कार्य किया। कई उच्च विकसित एवं परिष्कृत प्रौद्योगिकी का ज्ञान उन्हीं लोगों से प्राप्त हुआ। पारंपरिक ज्ञान प्रणाली की शब्दावली इसी कारण निर्मित की गयी।

यूनाइटेड नेशन के प्रस्ताव के अनुसार, "पारंपरिक ज्ञान" या "क्षेत्रीय ज्ञान" मानव जाति के उपलब्धियों का क्रम है जो जीवन की जटिलताओं को समाविष्ट करता है और उत्तर - जीवन की शैली को एक, अमित्रवत वातावरण में पारंपरिक ज्ञान, जो प्रौद्योगिक, सामाजिक, संस्थात्मक या सांस्कृतिक हो सकता है एक महान मानव जाति के उत्तरजीविता एवं विकास के अन्वेषणों द्वारा वह प्राप्त किया गया है। लारा नादेर व्याख्या करती हैं पारम्परिक ज्ञान प्रणाली (ट्रेडिशनल नॉलेज सिस्टम, टी.के.एस) के अध्ययन का उद्देश्य लोगों की मानसिकता को जागरूक करना है,² अन्य प्रकार के दृष्टिकोणों द्वारा विचार करने के लिए और प्रश्न करने के लिए, ज्ञान के प्रति अपनी प्रवृत्ति को बदलने के लिए, विज्ञान की संस्था का पुनः निर्माण करने के लिए एक विचार की प्रणाली को निरूपित करना जो परम्परा के विषय में सार्वभौमिक हो।³

मिथिला प्रदेश का भौगोलिक विस्तार:

मिथिला जिसे सामान्य अर्थ में उत्तर बिहार भी कहा जाता है; तिरहुत या तिरभुक्ति के नाम से जाना जाता है। पूर्व में महानंदा नदी, दक्षिण में गंगा, पश्चिम में नारायणी नदी और उत्तर में वाह्य हिमालय या शिवालिक हिमालय की तलहटी सीमा से घिरा मिथिला की यह भूमि काफी हद तक एक समतल और उपजाऊ जलोढ़ मैदान है। मिथिला की भूमि कई सदानीरा नदियों जो उत्तर में हिमालय से निकल कर उत्तर से दक्षिण प्रवाहित होती है, दक्षिण में गंगा नदी से मिल जाती है। समतल मैदानों और उपजाऊ भूमि के कारण मिथिला में जैविक संसाधनों की प्रचुरता के साथ विविधता भी है। हालाँकि, लगातार बाढ़ के कारण लोग इन संसाधनों का पूरा लाभ नहीं उठा सके हैं। मिथिला प्रक्षेत्र से सात प्रमुख नदियाँ बहती हैं—महानंदा, गंडक, कोसी, बागमती, कमला, बलान और बूढ़ी गंडक। ये नदियाँ नियमित रूप से बाढ़ लाती हैं, खेत में गाद जमा करती है और कभी-कभी कठिनाई भी पैदा करती है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:

मिथिला का नाम आमतौर पर विदेह साम्राज्य के साथ, आधुनिक समय के प्रदेशों में जो विदेह की प्राचीन सीमाओं के भीतर आते हैं, को संदर्भित करती है। महामानव निमी को विदेह साम्राज्य के प्रथम शासक और मिथिला में जनक वंश का प्रवर्तक माना जाता है। वायु पुराण और विष्णु पुराण में निमि को विदेह का राजा कहा गया है तथा उसे इक्ष्वाकु वंशी माना है। मिथिला राज्य राजा मिथि के नाम पर प्रसिद्ध हुआ। विष्णु पुराण में मिथिलावन का उल्लेख है।⁴ विष्णु पुराण में मिथिला को विदेह नगरी कहा गया है। मज्झिमनिकाय और निमिजातक में मिथिला का सर्वप्रथम राजा मखादेव बताया गया है। जातक में मिथिला के महाजनक नामक राजा का उल्लेख है। निमि, मनु के पोते और इक्ष्वाकु के पुत्र थे। विष्णुपुराण और बृहद विष्णुपुराण के अनुसार, निमि मिथिला के पहले राजा बने। एक बार ऋषि वशिष्ठ ने निमि को क्रोधित हो शाप दिया कि वह शारीरिक रूप से जीवित रहेगा। इसीलिए विदेही अर्थात् मिथि के साम्राज्य को विदेह के नाम से जाना गया। विदेह देश को कालांतर में मिथिला कहा गया, हालाँकि यह राजधानी शहर था। राजा निमि ने अपने शरीर के बिना लौटकर मिथिला पर 84,000 वर्षों तक शासन किया। अपने पिता निमी के मृत शरीर से जन्में मिथि जनक की उपाधि से विभूषित हुए। राजा मिथि के अनन्तर विदेह के स्थान पर मिथिला नाम प्रचलित हुआ। राजाओं को जनक तथा सम्पूर्ण शासित प्रदेश को मिथिला कहा जाने लगा। मां जानकी सीता के पिता 21 वें जनक थे। बाद के जनक के उत्तराधिकारियों में अंतिम 54 वें उत्तराधिकारी राजा कृति रहे।

ऐसा कहा जाता है कि जनक राजवंश के अंतिम राजा कीर्ति जनक बुरे चरित्र के शासक थे, जिन्होंने अपने विषयों पर नियंत्रण खो दिया था। उन्हें आचार्यों (चितकों) के नेतृत्व में जनता द्वारा अलग किया गया था। इसके बाद, मिथिला सैकड़ों वर्षों तक बिना राजा के रही। राजा के बजाय, एक लोकतांत्रिक प्रणाली का पालन किया गया, शासक जनता द्वारा चुने गए और निर्णय सामूहिक रूप से लिए गए। वास्तव में, मिथिला को दुनिया का पहला लोकतंत्र कहा जा सकता है। यह कई शताब्दियों तक जारी रहा जब तक कि इस क्षेत्र पर हमला कर मगध साम्राज्य द्वारा विजय प्राप्त की गई।

मिथिला साम्राज्य के पतन की इस अवधि के दौरान, लिच्छवि का प्रसिद्ध गणराज्य वैशाली में बढ़ रहा था और मिथिला क्षेत्र लगभग सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व में लिच्छवि के नियंत्रण में आया था। 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व में मगध के अजातशत्रु द्वारा लिच्छवी को पराजित किया गया और इस तरह मिथिला क्षेत्र मगध साम्राज्य के नियंत्रण में आ गया। बाद में कई राजवंशों जैसे कि शिशुनाग, नंद, मौर्य, शुंग, कांत, गुप्त, वर्धन आदि ने समय-समय पर वहां शासन किया। 5वीं से 6वीं शताब्दी तक जनक के बाद मिथिला में कोई महत्वपूर्ण शासक नहीं था जब जयवर्धन राजा सलहेश राजा बने। उन्होंने महिसौथा-सिरहा (वर्तमान में नेपाल) में अपनी राजधानी बनाई। उसने कई बार तिब्बतियों के हमलों के खिलाफ क्षेत्र का बचाव किया। इसलिए, उन्हें जयवर्धन से शैलेश (पहाड़ों का राजा) कहा जाता था, जिसे स्थानीय बोली में सलहेश कहा जाता है।⁵

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध धर्म के उदय से पहले, वैशाली में वज्जियन गणराज्य के लिच्छवि द्वारा विदेहन राजशाही का स्थान लिया गया था। पूर्व के पतन का कारण नैतिक भ्रष्टाचार को माना जाता है जिसने बाद के जनक राजाओं में स्थापित किया था। लिच्छवी, हालांकि स्वदेशी क्षत्रिय होने के बावजूद, जैन धर्म और बौद्ध धर्म जैसे गैर-ब्राह्मणवादी⁶ धर्मों में परिवर्तित हो गया तो उन्हें शास्त्री, यानी, ब्राह्मणवादी संहिता के पालन में उनके जपवद प्रत्याख्यान के लिए त्रुती कहा गया। दूसरे शब्दों में, वे जाति भेद को विनियमित करने के मामले में लचीले हो गए। यह भी तर्क दिया जा सकता है कि चूंकि इन क्षत्रियों में व्यापारी वर्ग (स्थानीय पार्लरों में श्रुतियां) शामिल थीं; उन्होंने ब्राह्मणों को वर्चस्व नहीं दिया। आखिरकार, मगध साम्राज्य के अजातशत्रु ने अपनी विस्तारवादी नीति के हिस्से के रूप में वज्जियन परिसंघ को जीत लिया। वज्जी के अजातशत्रु द्वारा उजाड़े जाने के बाद मिथिला पर कई राजवंशों ने शासन किया। 11वीं शताब्दी तक, मिथिला पर बंगाल के राजाओं का शासन था - विशेषकर पाल और सेन वंशों का। चौदह सौ साल बाद मिथिला राज्य ने अपनी “खोई हुई महिमा” को एक बार फिर से कर्णाट राजाओं में पाया।⁷

इतिहासकार डॉ. उपेंद्र ठाकुर के अनुसार अगले 27 वर्षों तक मिथिला क्षेत्र में अराजकता कायम रही। 1353 ई. में फिरोज शाह तुगलक ने पं. कामेश्वर ठाकुर को कारद राजा (टैक्स पेइंग किंग) के रूप में नियुक्त किया गया था। कामेश्वर ठाकुर औनी नामक गाँव से थे, जो वर्तमान में मुजफ्फरपुर जिले में है। राजवंश का नाम औनी गाँव के नाम पर ओइनवार राजवंश रखा (1326 ई. से 1526 ई.) गया। कामेश्वर ठाकुर, विद्वान स्वभाव के होने के कारण, फिरोज शाह तुगलक को कर जमा करने और भुगतान करने में असमर्थ थे। इस प्रकार, कामेश्वर ठाकुर को अलग रखा गया और उनके पुत्र, भोगीश्वर ठाकुर को मिथिला क्षेत्र का अगला राजा बनाया गया। यह राजवंश भारत के कुछ शासक राजवंशों में से एक था जो ब्राह्मण थे। इसी राजवंश के कामेश्वर ठाकुर (1963 ई.) को फिरोजशाह तुगलक ने खुद कारद राजा (कर चुकाने वाले राजा) के रूप में नियुक्त किया था। इसी राजवंश के भैरव सिंह (1480 से 1515 ई.) एक बहुत लोकप्रिय राजा थे और उन्होंने कई विकास कार्यों जैसे कि सड़कों, कुओं, मंदिरों आदि के तालाबों के निर्माण की शुरुआत की। लक्ष्मीनाथ सिंह देव ओइनवार राज वंश के अंतिम राजा थे। सिकंदर लोधी ने 1526 में मिथिला क्षेत्र पर हमला किया और आगामी युद्ध में महाराजा लक्ष्मीनाथ सिंह देव मारे गए।

मिथिला के ऐतिहासिक स्रोत:

मिथिला का सामाजिक जीवन प्राचीन काल से ही धार्मिक भावनाओं से प्रभावित रहा है, जिसमें नैतिक मूल्यों, आचारगत अभिव्यक्तियों एवं जगत् नियंता के प्रति समर्पण की भावना का मिला-जुला स्वरूप था। संपूर्ण समाज धर्म के क्षेत्र में क्रियाशील रहा। धर्म का व्यवहारिक महत्व, कर्तव्य का समुचित पालन, जिसके पालन से व्यक्ति लौकिक उत्कर्ष के साथ-साथ एक अध्यात्मिक उत्कर्ष करता था। जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्येक मानव का जीवन ज्ञानगर्भित, सचित्र और धर्म-परायण था। उसके सभी कर्तव्य और कर्म - ज्ञान समन्वित और श्रद्धा सिक्त होकर धर्म से ही गतिमान और उत्प्रेरित होते थे,⁸ जो अपने परिवार और समाज को संगठित कर बल प्रदान करते थे (मैक्समूलर)। ऐसी स्थिति में ज्ञान संचालित, नैतिक आचरण प्रभावित तथा सत्कर्म से प्रेरित मान्यताएं और स्थापनायें मानव की धार्मिकता को उद्भाषित करती रही। उसके आचार-विचार, कर्तव्य, उत्तरदायित्व, परंपरा और संबंध को भी उत्कर्षित करती रही है। निश्चय ही व्यक्ति की यह अभिव्यक्ति उसकी धार्मिकता थी। इस धर्म से जिन मूल्यों, मान्यताओं, आयामों और स्थापनाओं का ज्ञान होता था, उन्हीं के अनुरूप व्यक्ति कर्म की ओर आकृष्ट होता था।

मिथिला के महत्वपूर्ण इतिहासकार उपेंद्र ठाकुर के अनुसार, मिथिला क्षेत्र के इतिहास को लिखने के मुख्य स्रोत अथर्ववेद, ब्राह्मण, विशेष रूप से सतपथ ब्राह्मण, उपनिषद, बौद्ध (जातक) और जैन ग्रंथ, पुराण (महाभारत और रामायण) हैं। कुछ विदेशी यात्रियों, मध्ययुगीन संस्कृत साहित्य, पंजियों या वंशावली के रिकॉर्ड मिथिला के लोग, पुरातत्व, शिलालेख और सिक्कों जैसे बहुत कम पुरातत्व प्रमाण हैं। हालांकि, यह दावा किया जाता है कि इनमें से कई स्रोत, विशेष रूप से पुराण, प्रकृति में वैज्ञानिक नहीं हैं, जो मिथक और इतिहास के टकराव के लिए प्रोत्साहित करती हैं।

मिथिला क्षेत्र की ज्ञान परंपराएँ:

मिथिला भारतीय उप-महाद्वीपीय भूभाग है जिसे प्राचीन सभ्यता माना जाता है। इस क्षेत्र के अधिकांश इतिहासकार इसे भारतीय उप महाद्वीप के इतिहास के सबसे गौरवशाली तत्वों के भंडार के रूप में मानते हैं। यह दावा इस तथ्य के आधार पर किया जाता है कि यह मिथिला में मानव दर्शन और संस्कृति के इतिहास से संबंधित महान और अद्वितीय दार्शनिक चर्चा कभी आयोजित हुआ करते थे। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि इस क्षेत्र का इतिहास लड़ाइयों और युद्धों का इतिहास नहीं है, बल्कि अदालतों और राजाओं का है, जो ज्यादातर सीखने के लिए समर्पित थे।⁹ मिथिला की भौगोलिक स्थिति से यह स्पष्ट है कि यह पहाड़ों और नदियों के स्थलाकृतिक अवरोधों द्वारा बंद भूमि का एक मार्ग है, क्योंकि यह एक स्वतंत्र भौगोलिक इकाई के रूप में विकसित हुई है।¹⁰

मिथिला भारतीय रूढ़िवादी दार्शनिक परंपराओं के छह में से चार प्रणालियों का घर रहा है—नव्य न्याय, वैशेषिक दर्शन, मीमांसा और सांख्य।¹¹ इसे सर्वाधिक रूढ़िवादी ब्राह्मणवादी परंपरा की भूमि के रूप में चिह्नित किया गया है। लेकिन यह भी वही स्थान है, जहाँ बौद्ध और जैन धर्म जैसे गैर-आर्य दर्शन पनपे थे। महावीर और बुद्ध दोनों मिथिला में रह चुके हैं और हतोत्साहित हुए हैं। लेकिन गैर-आर्यन/गैर-ब्राह्मण धाराओं ने हमेशा इस क्षेत्र में उत्तराद्ध के पूर्ण अधिग्रहण से पहले ब्राह्मणवादी धर्म के साथ संबंध तनावपूर्ण किया था। हमें उन विभिन्न नामों के पौराणिक वृत्तांत मिलते हैं जो इस क्षेत्र से जुड़े हुए हैं, जो कि शतपथ ब्राह्मण और पुराणों में हैं।¹² मिथिला या विदेह नाम हैं, जो इतिहासकारों के अनुसार, पूरी तरह से पौराणिक हैं। कुछ आख्यानों में, यह राजा विदेह माधवा द्वारा बसाई गई भूमि है, जो सरस्वती नदी के किनारे से वहां पहुंची थी। दूसरों में, यह अयोध्या का राजा निमि था, जो इस भूमि पर आया था, जो बलिदानों के लिए जाना जाता था, जिसके पुत्र मिथि ने अंततः मिथिला राज्य की स्थापना की। पुनः, विष्णु पुराण और श्रीमद्भगवत जैसे ग्रंथों में, राजा मिथि के आसपास किंवदंती के विभिन्न संस्करण हैं।

वाचस्पति मिश्र (900-980 ई.) भारत के दार्शनिक थे जिन्होंने अद्वैत वेदान्त का भामती नामक सम्प्रदाय स्थापित किया। वाचस्पति मिश्र ने नव्य-न्याय दर्शन पर आरम्भिक कार्य भी किया जिसे मिथिला के 13वीं शती के गंगेश उपाध्याय ने आगे बढ़ाया। वाचस्पति मिश्र प्रथम मिथिला के ब्राह्मण थे जो भारत और नेपाल सीमा के निकट मधुबनी के पास अन्धराठाढ़ी गाँव के निवासी थे। इन्होंने वैशेषिक दर्शन के अतिरिक्त अन्य सभी पाँचों आस्तिक दर्शनों पर टीका लिखी है। वाचस्पति मिश्र मिथिला के मूर्धन्य विद्वान् दर्शन के विशिष्ट विद्वान् होने के कारण वे सर्वतन्त्रस्वतन्त्र और षड्दर्शनी वल्लभ कहे जाते हैं।¹³ वाचस्पति मिश्र का समय सम्वत् 898 के लगभग है इसमें संदेह नहीं।¹⁴ इन्होंने न्यायवार्तिक को सुबोध बनाने तथा उसपर धर्मकीर्ति आदि बौद्ध नैयायिकों की आलोचनाओं का उत्तर देने के लिए न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका नामक विशिष्ट ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रंथ में इन्होंने त्रिलोचन को अपना गुरु तथा राजा नृग को अपना आश्रयदाता बताया है। इन्होंने अपने न्यायसूची निबंध नामक ग्रंथ में अपना समय 898 सं. (841 ई.) बताया है। यथा—

न्यायसूची निबंधोहपावकारि सुधियाँ मुदे,

श्री वाचस्पति मिश्रेण वस्वंकबसुवत्सरे॥

इनके अन्य ग्रंथों में ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्यकी भामतीटीका, सांख्यकारिकापर सांख्यतत्वकौमुदी आदि बड़े विद्वत्पूर्ण और ख्यातिप्राप्त हैं।

गंगेश उपाध्याय मिथिला के निवासी तथा नव्य न्याय के जन्मदाता हैं। इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ तत्त्वचिन्तामणि इनके लोकोत्तर वैदुष्य का साक्षी है। नव्य न्याय का उत्तरकालिक सारा विस्तार और परिष्कार इसी ग्रंथ पर आधारित है। गंगेश उपाध्याय मिथिलाम में 13वीं शती के गणितज्ञ एवं नव्य-न्याय दर्शन परम्परा के प्रणेता प्रख्यात नैयायिक थे। उन्होंने वाचस्पति मिश्र की विचारधारा को बढ़ाया।¹⁵ उनकी अक्षयकीर्ति उनका तत्त्वचिन्तामणि है। उन्होंने गौतम के मात्र एक सूत्र प्रत्यक्षानुमानोपमान शब्दः प्रमाणाति की व्याख्या में इस ग्रंथ की रचना की है। यह न्याय ग्रंथ चार खण्डों में विभाजित है—प्रत्यक्षखण्ड, अनुमानखण्ड, उपमानखण्ड और शब्दखण्ड। इसमें उन्होंने अवच्छेद-अवच्छेदक, निरूप्य-निरूपक, अनुयोगी-प्रतियोगी आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग कर एक नई स्वतंत्र लेखन शैली को जन्म दिया जिसका अनुसरण परवर्त अनेक दार्शनिकों ने किया है।

पक्षधर मिश्र मिथिला के महान नैयायिक थे। इनका दूसरा नाम जयदेव भी था। इन्होंने गंगेश के तत्त्वचिन्तामणि पर आलोकनाम के विशिष्ट टीका ग्रंथ की रचना की थी। ये उच्चकोटि के नैयायिक तो थे ही, साथ ही प्रसिद्ध नाटककार भी थे। इनके प्रसन्नराघव की नाटक ग्रंथों में बड़ी ख्याति है। इनका समय 13वीं सदी का उत्तरार्द्ध माना जाता है।¹⁶

कर्मकाण्ड विषयक वाक्यों के विरोध का परिहार करती है। इस पर जिन प्रमुख आचार्यों ने टीकाओं या भाष्यों की रचना की, उनकी अनुक्रमणिका यह है—

1. सूत्रकार जैमिनि, 2. भाष्यकार शबरस्वामी, 3. कुमारिलभट्ट, 4. प्रभाकर मिश्र, 5. मंडन मिश्र, 6. शालिकनाथ मिश्र, 7. कचरपति मिश्र, 8. सुवरित मिश्र, 9. पार्थसारथि मिश्र, 10. भवदेव भट्ट, 11. भवनाथ मिश्र, 12. नंदीश्वर, 13. माधवाचार्य, 14. भट्ट सोमेश्वर, 15. आपदेव, 16. अप्पय दीक्षित, 17. सोमनाथ, 18. शंकरभट्ट, 19. गंगा भट्ट, 20. खंडदेव, 21. शंभु भट्ट, और 22. वासुदेव दीक्षित।

मंडन मिश्र:

मंडनमिश्र, पूर्व मीमांसा दर्शन के बड़े प्रसिद्ध आचार्य थे। कुमारिल भट्ट के बाद इन्हीं को प्रमाण माना जाता है। अद्वैत वेदांत दर्शन में भी इनके मत का आदर है। ये भर्तृहरि के बाद कुमारिल के अंतिम समय में तथा आदि शंकराचार्य के समकालीन थे।

मीमांसा और वेदांत दोनों दर्शनों पर इन्होंने मौलिक ग्रंथ लिखे। मीमांसानुक्रमणिका, भावना विवेक और विधि विवेक—ये तीन ग्रंथ मीमांसा पर, शब्द दर्शन पर स्फोटसिद्धि, प्रमाणशास्त्र पर विवेक तथा अद्वैत वेदांत पर ब्रह्मसिद्धि—ये इनके ग्रंथ हैं। शालिक नाथ तथा जयन्त भट्ट ने वेदांत का खंडन करते समय मंडन का ही उल्लेख किया। शांकरभाष्य के सुप्रसिद्ध व्याख्याता, भामती के निर्माता वाचस्पति मिश्र ने मंडल की ब्रह्मसिद्धि को ध्यान में रख कर अपनी कृति लिखी।

एक परंपरा के अनुसार मंडल कुमारिल भट्ट के शिष्य थे। यही बाद में शंकराचार्य द्वारा शास्त्रार्थ में पराजित होकर संन्यासी हो गए और उनका नाम सुरेश्वराचार्य पड़ा। मंडल और सुरेश्वर एक ही हैं या अलग-अलग—इसको लेकर बड़ा विवाद हुआ है। अधिकांश प्रमाण दोनों की भिन्नता के पक्ष में ही मिलते हैं। मंडन ने शब्दाद्वैत का समर्थन किया है, पर सुरेश्वर इसके बारे में मौन हैं। मंडन ने अद्वैत प्रस्थान में अन्यथा ख्यातिवाद का बहुत हद तक समर्थन किया, पर सुरेश्वर इसका खंडन करते हैं। मंडन के अनुसार जीव अविद्या का आश्रय है, सुरेश्वर ब्रह्म को ही अविद्या का आश्रय और विष मानते हैं। इसी मतभेद के आधार पर अद्वैत वेदांत के दो प्रस्थान चल पड़े। भामती प्रस्थान मंडन का अनुयायी बना, विवरण प्रस्थान सुरेश्वर के सिद्धांतों पर चला। सुरेश्वर शुद्ध ज्ञान को मोक्ष का मार्ग मानते हैं पर मंडन के अनुसार वेदांत के श्रवण मात्र से मोक्ष नहीं मिलता, जब तक अग्निहोत्र आदि कर्मज्ञान के सहकारी न हो। यही नहीं, किसी प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथ में मंडन और सुरेश्वर को एक नहीं माना गया है।¹⁷

अनुमान किया जाता है कि गंगेश उपाध्याय 13वीं सदी में हुए थे और मिथिलावासी थे। नवद्वीप के नैयायिकों का कहना है कि उनका जन्म एक अत्यंत दरिद्र ब्राह्मण के घर हुआ था। बाल्यकाल में उनके पिता ने उन्हें पढ़ाने लिखाने का बहुत प्रयास किया पर जब कोई लाभ न हुआ तो उन्हें ननिहाल भेज दिया। गंगेश के मामा एक अच्छे विद्वान थे। उनके यहां अनेक शिष्य पढ़ते थे। उनके मामा और उनके शिष्यों ने भी उन्हें पढ़ाने सिखाने की चेष्टा की। पर वे भी असफल रहे।¹⁸ निदान उन्हें हुक्का भरने के काम में लगा दिया गया। इस प्रकार अतिदीन भाव से वे कालयापन करते रहे।

गंगेश उपाध्याय:

गंगेश उपाध्याय भारत के 13वीं सदी के गणितज्ञ एवं नव्य-न्याय दर्शन परम्परा के प्रणेता प्रख्यात नैयायिक थे। उन्होंने वाचस्पति मिश्र की विचारधारा को बढ़ाया।

तत्त्व चिन्तामणि उनकी अक्षय कीर्ति है। उन्होंने गौतम के मात्र एक सूत्र प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणाति प्रत्यक्ष खण्ड, अनुमान की व्याख्या में इस ग्रंथ की रचना की है। यह न्यायग्रंथ चार खंडों में विभाजित है – प्रत्यक्ष खण्ड, अनुमान खण्ड, उपमान खण्ड और शब्द खण्ड। इसमें उन्होंने अवच्छेद्य-अवच्छेदक, निरूप्य – निरूपक, अनुयोगी प्रतियोगी आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग कर एक नई स्वतंत्र लेखन शैली को जन्म दिया जिसका अनुसरण परवर्ती अनेक दार्शनिकों ने किया है।¹⁹ तत्त्व चिन्तामणि के पश्चात जितने न्याय ग्रंथ लिखे गए वे सब नव्य न्याय के नाम से प्रख्यात हैं।

तत्त्व चिन्तामणि पर जितनी टीकाएँ जितने विस्तार के साथ लिखी गई हैं उतनी किसी अन्य ग्रंथ पर नहीं लिखी गईं। पहले इसकी टीका पक्षधर मिश्र ने की, तदनंतर उनके शिष्य रुद्रदत्त ने एक अपनी टीका तैयार की। और इन दोनों से भिन्न वासुदेव सार्वभौम, रघुनाथ शिरोमणि, गंगाधर, जगदीश, मथुरानाथ, गोकुलनाथ, भदानंद, शशधर, शितिकंठ, हरिदास, प्रगल्भ, विश्वनाथ, विष्णुपति, रघुदेव, प्रकाशधर, चंद्रनारायण, महेश्वर और हनुमान कृत टीकाएँ हैं। इन टीकाओं की भी असंख्य टीकाएँ लिखी गई हैं।

मैत्रेयी मित्र ऋषि की पुत्री एवं याज्ञवल्क्य की दूसरी पत्नी थी। मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य के ज्ञान परंपरा को आगे बढ़ाया। याज्ञवल्क्य के संन्यास लेने पर मैत्रेयी ने भी संन्यास ले लिया।

गार्गी का नाम वैदिक ऋचाओं के द्रष्टा में एक प्रमुख नाम है। गार्गी वचन्तु ऋषि की पुत्री थी, इसलिए उनका नाम वाचकन्वी गार्गी रखा गया। राजा जनक के दरबार में याज्ञवल्क्य एवं गार्गी प्रसिद्ध विद्वान रहे। इन्हीं दोनों के बीच शास्त्रार्थ हुआ था जिसमें गार्गी को सर्वोपरी विचारक घोषित किया गया था।²⁰

अष्टावक्र राजा जनक के दरबार के प्रसिद्ध तत्त्व ज्ञानी थे जिन्होंने बंदी नामक विद्वान को शास्त्रार्थ में पराजित किया तथा अपने पिता को जेल से छुड़वाया था। इसके अतिरिक्त वाचस्पति मिश्र, महाकवि विद्यापति ज्योतिश्वर ठाकुर, मंडन-भारती, घाघ, माघ, गोनू झा, डाक इत्यादि मिथिला के प्रसिद्ध चिंतक थे।

मिथिला की ज्ञान प्रणाली प्रारंभिक दौर:

उत्तर बिहार का मिथिला बहुत शुरुआती समय से ब्राह्मण परंपरावादी शिक्षा के उत्कर्ष का एक महत्वपूर्ण केंद्र था। यह मध्य काल के दौरान तर्क एवं दर्शन में विशेष अध्ययन के लिए प्रसिद्ध था। प्रख्यात बुद्धिजीवी रघुनंदन इसके उत्पादक थे। बादशाह अकबर ने उपहार स्वरूप रघुनंदन मिथिला का पूरा शहर दिया। लेकिन बाद में रघुनंदन ने इसे अपने गुरु महेश ठाकुर को सम्मान के रूप में अर्पित कर दिया।

16वीं शताब्दी में, मिथिला धर्मनिरपेक्ष और धार्मिक शिक्षा दोनों के मुख्य केंद्र के रूप में उभरा। भारत के विभिन्न हिस्सों से संस्कृत के विद्वान मिथिला पहुंचे। स्थानीय शासकों ने उनका संरक्षण किया। उन दिनों हिंदुओं के लिए उच्च शिक्षा का एक और प्रसिद्ध केंद्र नादिया को 14वीं और 15वीं शताब्दी में मिथिला से प्रेरणा मिली। कहा जाता है कि नादिया के प्रसिद्ध तर्कशास्त्री वासुदेव सर्वभूमा ने 15वीं शताब्दी में मिथिला में अपनी शिक्षा प्राप्त की थी।

अबुल फजल के अनुसार मिथिला हिंदुओं के लिए शिक्षा का एक महान केन्द्र था। शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान, मिथिला अपने विद्वानों और कवियों के लिए प्रसिद्ध हो गया, जिन्होंने अपनी विद्वता के लिए सम्राट ने पुरस्कार प्राप्त किया। लेकिन नादिया के विद्वानों की बढ़ती प्रसिद्धि से मिथिला की उच्च प्रतिष्ठा काफी हद तक प्रभावित हुई। महामहोपाध्याय गोकुलनाथ (1650-1750) नादिया चले गए और वहाँ अपने नए तर्कशास्त्र के विद्यालय की स्थापना की जिसे नव्य-न्याय के नाम से जाना जाता है। इससे मिथिला की प्रतिष्ठा और महत्व में ह्रास हुआ।

कला, वास्तुकला, धर्म और विज्ञान जैसे संस्कृति के विभिन्न पहलुओं के साथ मिथिला की संस्कृति का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू शिक्षा पद्धति²¹ है।

प्राचीन वैदिक कालीन मिथिला में शिक्षा गुरुओं द्वारा बुलाए गए विद्यार्थियों को उनके आसपास इकट्ठा करने वाले विद्यार्थियों द्वारा प्रदान की गई थी और परिवार के सदस्यों के रूप में उनके साथ उनके घर में रहने के लिए आए थे।

ऐसी जगह को गुरुकुल कहा जाता था। गुरुकुल एक घरेलू विद्यालय, एक आश्रम के रूप में कार्य करता था, जहाँ गुरु द्वारा बच्चों की शिक्षा पर ध्यान देने के साथ उनमें मानसिक विकास के लिए छात्रों को व्यक्तिगत निर्देश भी दिए जाते थे। शिक्षा मुख्य रूप से उच्च जातियों का विशेषाधिकार था। सीखना शिक्षक और शिष्य के बीच अंतरंग संबंध था जिसे गुरु शिष्य परम्परा कहा जाता है। सीखने की प्रक्रिया आम तौर पर एक धार्मिक समारोह, उपनयन (पवित्र धागा समारोह) के साथ शुरू होती थी। शिक्षा आम तौर पर मौखिक रूप से प्रदान की गई थी। इसमें वेदों और धर्मशास्त्रों जैसे ग्रंथों को पूरी तरह या आंशिक रूप से याद किया गया। बाद में ग्रामर, लॉजिक और मेटा फिजिक्स जैसे विषयों को पढ़ाया जाने लगा। मैत्रायणी उपनिषद् हमें सिखाता है कि परम ज्ञान (ज्ञान) सीखने (विद्या), प्रतिबिंब (चिंतन) और तपस्या (ताप) का परिणाम है। आत्मनिरीक्षण (आत्मतत्त्व) के माध्यम से व्यक्ति को मन की शुद्धता (सतत्वा), चरणों में आत्मा की संतुष्टि और संतुष्टि प्राप्त था।²² इस समय के दौरान आत्म शिक्षा को उच्चतम ज्ञान प्राप्त करने का उचित तरीका जाना जाता था। इसका सबसे अच्छा उदाहरण तेतरिया उपनिषद् में पाया जा सकता जहाँ वरुण के पुत्र भृगु, अपने पिता के पास जाते हैं और उनसे यह सिखाने के लिए कहते हैं कि ब्राह्मण क्या है। पिता उसे ध्यान के माध्यम से यह पता लगाने के लिए कहते हैं।

मौर्य और मौर्योत्तर काल के दौरान मिथिला एक गहन परिवर्तन के दौर से गुजरा। शहरी केंद्रों और व्यापार के विकास के साथ, व्यापारी समुदाय सक्रिय भूमिका निभाने लगे। तकनीकी शिक्षा के केंद्र का निर्माण हुआ और खनन, धातु विज्ञान, बढईगरी, बुनाई और रंगाई के ज्ञान को बढ़ावा दिया गया।

शहर के जीवन के उद्भव के साथ, नए वास्तुशिल्प रूप विकसित हुए। ज्योतिष शास्त्र के साथ खगोल विज्ञान को भी संरक्षण दिया गया। खगोलविदों और ब्रह्मांड विज्ञानियों ने समय (काल) पर एक बहस शुरू की। यह अतीत की तुलना में समय (काल) के एक तेज अर्थ के विकास में मदद करता है। आयुर्वेद के रूप चिकित्सा प्रणाली का आधार बनाया गया। जड़ी-बूटियों के औषधीय गुणों का ज्ञान और उनका उपयोग एक बहुत ही उन्नत चरण में पहुंच गया।²²

गुप्त काल के अंत तथा हर्ष के आसन में कला और शिक्षा ने बहुत प्रगति की। उन्होंने सभी स्तरों पर शिक्षा को प्रोत्साहित किया गया। मंदिरों और मठों में शिक्षा दी जाती थी। सातवीं और आठवीं शताब्दी में, मंदिर ब्राह्मणवादी शिक्षा के नए केंद्र के रूप में उभरे। शिक्षा का माध्यम संस्कृत था। इन मंदिर कॉलेजों में प्रवेश केवल उच्च जातियों या 'द्विजों' (दो पार जन्म लेने वाले) के लिए खुला था। शिक्षा के माध्यम के रूप में संस्कृत के प्रयोग ने आम लोगों को शिक्षा से दूर कर दिया। शिक्षा समाज के केवल ऊपरवाले वर्गों का विशेषाधिकार बन गई।²³

मिथिला की संरचनात्मक ज्ञान प्रणाली:

प्राचीन मिथिला में, शिक्षा व्यक्तिगत चिंता का विषय रही। शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों के समग्र व्यक्तित्व का विकास था। शिक्षा के इस दृष्टिकोण के साथ एक व्यक्ति के आंतरिक विकास और आत्म-पूर्ति, तकनीकों, नियमों की एक प्रक्रिया के रूप में और तरीके विकसित किए गए थे। यह माना जाता था कि किसी व्यक्ति के विकास का अर्थ है, मुख्य रूप से, ज्ञान प्राप्त करने के साधन के रूप में उसके मन का प्रशिक्षण। यह ज्ञान उसकी रचनात्मक क्षमता को बढ़ाएगा। मनन शांति सोच के विषय की तुलना में अधिक प्रासंगिक माना गया था। इस प्रकार, शिक्षा का प्राथमिक विषय मनन ही था।

प्राचीन मिथिला में लोगों की शिक्षा में गणित या गणितों में अंकगणित, ज्यामिति, बीजगणित, खगोल विज्ञान और ज्योतिष शामिल थे। व्यापार और वाणिज्य में इसके उपयोग के कारण अंकगणित में रुचि बढ़ी। ब्राह्मणवादी अंधविश्वासों द्वारा खगोल विज्ञान की देखरेख की गई।

गुरु हमेशा पुरुष थे और लगभग हमेशा ब्राह्मण (पुरोहित वर्ग) से थे।²⁴ ब्राह्मणों या क्षत्रियों (शासक वर्ग) से एक युवा लड़के को इन तीन क्षेत्रों-कला, प्रशासन या धर्म में से एक में 9 से 12 साल की कठोर शिक्षा के लिए, 12 साल की उम्र में एक गुरु के पास भेजा जाता था। जो लोग वैश्य (व्यापारी वर्ग) के थे और श्रमिक वर्ग ने अपने व्यापार या शिल्प में एक कुशल व्यक्ति की तरह खुद को प्रशिक्षित किया था।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है, जो ब्रह्म (ईश्वर) में रहता है वह ब्रह्मचारी है, इस प्रकार, ब्रह्मचारी वह है जो महान बनने की आकांक्षा के साथ गुरु के पास आता है। वैदिक शिक्षा प्रणाली में, गुरुकुल में प्रवेश पाने वाले छात्र को केवल विद्यापति (ज्ञान की आकांक्षा रखने वाला) नहीं बल्कि ब्रह्मचारी कहा जाता था। जीवन के इस चरण को परंपरागत रूप से ब्रह्मचर्य आश्रम के रूप में वर्णित किया गया है। गुरुकुल में छात्रों को कठोर अनुशासन के अधीन किया गया था। उन्हें बहुत ही उत्साहपूर्ण वातावरण में रहना पड़ता था, गुरु की देखरेख में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना, योग और ध्यान का अभ्यास करना और गुरु के घर के लिए कई कार्य करता था। आश्रम की मूल भावना श्रम (श्रम) और तप (तपस्या) है।

मिथिला की ज्ञान प्रणाली: रुझान

मध्यकालीन भारत में शिक्षा ज्ञान, धर्म, दर्शन, ललित कला, चित्रकला, वास्तुकला, गणित, चिकित्सा और खगोल विज्ञान के क्षेत्र में स्थानिक और इस्लामी परंपराओं के बीच एक नई शुरुआत हुई। बुनियादी शिक्षा के तौर पर संस्कृत के अलावे अरबी, फारसी का प्रचलन हुआ क्योंकि उस समय की अदालत की यही भाषा थी। 11वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी तक मिथिला पर विभिन्न देशी राजवंशों का शासन था। इनमें से सबसे पहले कर्नाट ओईनवार और खंडेवाड़ राजवंश थे। ओईनवार राजवंश के शासक और राज दरभंगा मैथिल ब्राह्मण थे। यह राज दरभंगा परिवार के शासनकाल के दौरान मिथिला की राजधानी दरभंगा में स्थानांतरित कर दिया गया था।

तुगलक ने बिहार कर अधिकार कर लिया और तुगलक वंश के अंत से 1526 में मुगल साम्राज्य की स्थापना तक इस क्षेत्र में अराजकता थी। अकबर (1550 से 1605 तक शासनकाल) ने महसूस किया कि मिथिला के करों को केवल तभी एकत्र किया जा सकता है यदि कोई राजा हो जो यहां शांति स्थापित कर सके। मिथिला क्षेत्र में ब्राह्मणों का वर्चस्व और मिथिला में पूर्व में ब्राह्मण राजा थे।

अकबर ने राजपंडित चंद्रपति ठाकुर को दिल्ली बुलाया और उनसे अपने एक बेटे का नाम रखने को कहा, जिसे मिथिला में उसकी जमीनों के लिए कार्यवाहक और कर संग्रहकर्ता बनाया जा सके। चंद्रपति ठाकुर ने अपने पुत्र का नाम महेश ठाकुर रखा और अकबर ने 1507 ई. में रामनवमी के दिन महेश ठाकुर को मिथिला का कार्यवाहक घोषित किया। मुस्लिम शासन के आगमन के साथ मध्ययुगीन काल में हिंदू शिक्षा प्रणाली में राज्य का समर्थन लगभग समाप्त हो गया। अब यह अमीर लोगों, विद्वानों और ग्राम समुदायों पर निर्भर करता था। बेशक, धीरे-धीरे कुछ ऐसे क्षेत्र बने रहे जहां कोई मुस्लिम शासक नहीं थे, उसे राज्य का समर्थन प्राप्त था। धर्म ओरिएंटेड शिक्षा की प्रणाली द्वारा और बड़े स्तर पर धर्म का प्रभुत्व था। प्राथमिक शिक्षा 'पाठशालाओं' में प्रदान की गई थी जो गांवों और कस्बों दोनों में मौजूद थी। आमतौर पर कुछ घरों के बरामदे में या पेड़ों के नीचे पाठशालाएँ आयोजित की जाती थीं। पाठशालाओं के लिए अलग घर भी थे। उनके लिए विशिष्ट प्रकार की इमारतें मौजूद नहीं थीं। मंदिरों के परिसर का भी इस्तेमाल किया गया। शिक्षा ग्रहण के लिए छात्रों से कोई नियमित शुल्क नहीं लिया जाता था, अभिभावक शिक्षकों को उपहार देते थे। छात्रों को शिक्षकों को व्यक्तिगत सेवा प्रदान करना आवश्यक था। कभी-कभी शिक्षक भी अपनी आय को पूरा करने के लिए अंशकालिक काम में लगे रहते थे।²⁵

वैदिक और धार्मिक शिक्षा का भी इस स्कूलों में एक माध्यमिक स्थान था। कुछ स्कूलों में, देवी कुशलता को छात्रों द्वारा दिल से सीखा गया था। हिन्दुओं में पौराणिक, कथाओं और पवित्र प्रेम का निर्देश स्कूलों में भी दिया गया। आधुनिक मिथिला में शिक्षा में अंग्रेजी मात्रा की शिक्षा देने वाली शैक्षिक प्रणाली

पर अधिक जोर दिया गया और व्यक्तिगत प्रयासों के लिए अरबी, फारसी और संस्कृत जैसी भाषाओं के अध्ययन को छोड़ दिया गया। आधुनिक शिक्षा के तौर पर आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद लॉर्ड मैकाले के अनुसार भारतीय केवल अपने रंग में बने रहते हैं जबकि उनकी रुचियाँ, विचार, नैतिकता और बुद्धिमत्ता बदल जाती है। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में शिक्षा के प्रचार में बहुत कम दिलचस्पी दिखाई। भारत में शिक्षा प्रणालियों को देखने का एकमात्र उद्देश्य कंपनी द्वारा कानून अदालतों में भारतीयों की निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित करना था। भारत के शास्त्रीय ज्ञान का उपयोग ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा देशी राज्यों के साथ पत्राचार स्थापित करने के लिए किया गया था।

स्वतंत्रता के बाद, शिक्षा राज्यों की जिम्मेदारी बन गई। केंद्र सरकार का एकमात्र दायित्व तकनीकी और उच्च शिक्षा में समन्वय और मानकों को निर्दिष्ट करना रहा। 1976 के पश्चात, शिक्षा राज्य और केंद्र की आयु के संयुक्त जिम्मेदारी बन गई। जिम्मेदारियों के साथ मूल्य आधारित शिक्षा किसी भी जाति, लिंग और भेदभाव के बिना शिक्षा शरीर, मानसिकता और चरित्रातीन पहलुओं को विकसित करने की कोशिश करती है।

पारंपरिक ज्ञान पद्धति के समकालीन सन्दर्भ:

समकालीन जीवन में मिथिला की प्राचीन ज्ञान प्रणालियों के महत्व की जांच करना एक आवश्यक प्रयास है जिसके आधार पर यहां की समृद्ध बौद्धिक परंपरा और एक पाठीय विरासत जो सैकड़ों वर्षों में अर्जित ज्ञान का भंडार है, का उपयोग भविष्य में कायम रखी जा सके और अनुसंधान कार्यों में संदर्भ में निर्धारित किया गया है। भविष्य का आविष्कार वर्तमान में लगे अतीत के साथ एक संवाद के माध्यम से किया जाता है। स्मृति यह जलाशय है जहाँ से कोई भी समाज या व्यक्ति उस भविष्य को आकार देने के लिए संसाधनों को आकर्षित करता है। समय या ऐतिहासिक घटनाओं से स्मृति का विचलन किसी भी समाज विशेषकर उन समाज के लिए एक चुनौती है जो उपनिवेश जैसी घटनाओं के माध्यम से अपनी संस्कृतियों के जबरन पुनर्स्थापन का गवाह बने हैं।²⁶ अतीत के ज्ञान प्रणालियों को याद रखने और सावधान रहने का एक कार्य इसलिए बाद के औपनिवेशिक स्थितियों में एक तार्किक प्रतिक्रिया है। ज्ञान के उत्पादन और वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप प्रसार के वर्तमान संदर्भ में यह सांस्कृतिक पहचान और स्थानीय बौद्धिक परंपराओं को बनाए रखने और जोर देने के लिए एक जवाबी संघर्ष में संलग्न होने के लिए एक कट्टरपंथी प्रतिक्रिया भी बन जाता है।

सदियों से, मिथिला-क्षेत्र में ज्ञान प्रणाली पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुरुकुल-एस (गुरु का परिवार) नामक स्कूलों के माध्यम से पारित की गई थी और पूरी तरह से मुंह से कान तक एक अखंड मौखिक परंपरा में प्रेषित की गई थी। इसके अलावा, वे नीचे पत्थर, तांबे की प्लेट, सन्टी छाल, ताड़ के पत्ते, चर्मपत्र और कागज जैसे विभिन्न सामग्रियों पर लिखे गए थे। पाठों के लिखे जाने के बाद भी, मौखिक शिक्षण को नियोजित साधन के रूप में जारी रखा गया।²⁷

वेदों की शिक्षा के लिए प्राचीन ज्ञान प्रणालियों से युक्त ज्ञान का खजाना पांडुलिपियों के रूप में हमारे पास आ गया। ये पांडुलिपियां प्रदेश में विभिन्न संस्थानों, पुस्तकालयों, मठों, मंदिरों और कई निजी संग्रह उपलब्ध हैं। हालांकि, मिथिला क्षेत्र ने संभवतः पांडुलिपियों का एक बड़ा हिस्सा खो दिया है।

गुरुकुल शिक्षा:

एक गुरुकुल प्राचीन भारत में एक प्रकार की शिक्षा प्रणाली है जिसमें शिष्य गुरु के पास या उसी घर में रहते हैं। गुरु-शिष्य परंपरा हिंदू धर्म में एक पवित्र है और भारत में अन्य धार्मिक समूहों में भी दिखाई देती है। गुरुकुल शब्द संस्कृत के शब्द गुरु और कुल (परिवार या घर) का संयोजन है। ब्रिटिश शासन के आगमन से पहले, गुरुकुल ने दक्षिण एशिया की प्राथमिक शैक्षिक प्रणाली के रूप में कार्य किया। इस शब्द का इस्तेमाल आज आधुनिक मठों द्वारा संचालित आवासीय पाठों या स्कूलों को संदर्भित करने के लिए किया जाता है।

अंत में, एक शिष्य गुरुकुल छोड़ने से पहले गुरु दक्षिणा प्रदान करता है। गुरुदक्षिणा गुरु को स्वीकार करने, सम्मान और धन्यवाद देने का एक पारंपरिक संकेत है, जो मौद्रिक हो सकता है, लेकिन एक विशेष कार्य भी हो सकता है जो शिक्षक चाहता है कि छात्र पूरा करे। गुरुकुल एक आवासीय स्कूली शिक्षा प्रणाली थी, जिसका मूल भारतीय उपमहाद्वीप में लगभग 5000 ईसा पूर्व की है। यह वैदिक युग के दौरान अधिक प्रचलित था जहाँ छात्रों को विभिन्न विषयों और संस्कारित और अनुशासित जीवन जीने के बारे में पढ़ाया जाता था।

प्राचीन काल से की गुरुकुल प्रणाली अस्तित्व में है।²⁸ उपनिषदों में गुडगांव में गुरु द्रोण सहित कई गुरुकुल में हुआ गुरुकुलमों का उल्लेख है। कहा जाता है कि भृगु वल्ली (ब्राह्मण पर प्रवचन) गुरु वरुणी के था। विचार का वैदिक विद्यालय 8 वर्ष की आयु से पहले सभी व्यक्तियों को गुरुकुल (यात्रा का पवित्र संस्कार) निर्धारित करता है। गुरुकुलको सार्वजनिक दान द्वारा समर्थित किया गया था। इसके बाद कई वैदिक विचारों ने गुरुकुलों को शुरुआती रूपों में से एक पब्लिक स्कूल केंद्र बना दिया।

मिथिला का औपनिवेशिक काल:

औपनिवेशिक भारत में कई स्थानवादी आंदोलनों दावा करने के लिए आधुनिकता समाज (1875), थियोसोफिकल सोसायटी (1882) और रामकृष्ण मिशन (1896), के लाइन में मैथिली और तत्त्व विमर्शणी सभा यानी मिथिला पर अनुसंधान के लिए महाराजा के तत्वावधान में 1905 में स्थापित किया गया था। दरभंगा के तत्कालीन महाराजा रामेश्वर सिंह ने इस सभा को मैथिली संस्कृति के प्रचार के लिए स्थापित किया गया था। इस अंत को पूरा करने के लिए सभा ने संस्कृत सीखने की वकालत की। मिथिला के प्रमाणिक इतिहास को लिखने के लिए संकल्प भी किए गए थे, इसके साहित्य और इस क्षेत्र की प्रमुख हस्तियों पर ध्यान केंद्रित किया गया था। यह पता चला है कि संस्कृत शिक्षा के लिए ध्यान केंद्रित करने के साथ ही अंग्रेजी साहित्यकारों की संख्या घटने लगी थी।²⁹ वैदिक शिक्षा के पुनरुद्धार के लिए महाराजा ने 20 छात्रवृत्तियां बनाईं। उन्होंने संस्कृत को लोकप्रिय बनाने के लिए संस्कृत महाविद्यालयों की स्थापना की। पटना में संस्कृत शिक्षा शुरू करने के लिए बिहार और उड़ीसा सरकार को आगे बढ़ाने में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने शिक्षा और परीक्षा की पारंपरिक प्रणाली धूत परीक्षाओं को भी फिर से लागू किया। उन्होंने संस्कृत में मिथिलेश महेश- रमेश व्याख्यान शृंखला की शुरुआत की और 1950 के दशक में दरभंगा में कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना की। संस्कृत के उनके संरक्षण का उद्देश्य सभी समुदायों के लोगों को आकर्षित करना नहीं

था और इसलिए, विभिन्न अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक पहचानों से संबंधित आम लोग इस कार्यक्रम के साथ पूरी तरह से पहचान नहीं कर सके। इसका अर्थ है कि शास्त्रीय भाषा का पुनरुत्थान लोगों के बीच जीवंत, सक्रिय सामाजिक बंधन के लिए नहीं हो सकता है। बाद के राजा महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह ने एक अलग रास्ता अपनाया। वे शाब्दिक शिक्षा के लिए गए, इस प्रकार हिंदी को संरक्षण देने का मुद्दा उठा। देवनागरी लिपि के साथ प्रिंटिंग प्रेस ने मैथिली लिपि की जगह ले ली। महाराजा ने हिंदी को क्षेत्र की आधिकारिक भाषा घोषित किया।

जाति की शुद्धता और रूढ़िवादी हिंदू धर्म, ब्राह्मणवाद के सख्त पालन के साथ-साथ संस्कृत शिक्षा के लिए श्रद्धा, जातिगत विशिष्टता, एक पदानुक्रमित सामाजिक व्यवस्था के विचार पर आधारित है, इसी चेतना के मूल में उच्च जाति वर्ग थे। समाजशास्त्री हेतुकर झा ने इसे कुलीन-जन विरोधाभास के रूप में परिभाषित किया, जिसने सभी सामाजिक समुदायों के बीच गठजोड़ के लिए बाधा उत्पन्न की। इसका वर्णन करते समय, वह धन के असमान वितरण और विभिन्न सांस्कृतिक प्रथाओं के बारे में कई मुद्दों की गणना करता है, जैसे कि जमींदारों को भूमि का किराया देने और राजाओं द्वारा अपने पसंदीदा को देने का अभ्यास, जमींदारी व्यवस्था में किसी भी परिवर्तन को शुरू करने के लिए ब्राह्मण और कायस्थ जमींदारों के बीच समझौता, विषयों से संग्रह के किराए और कठोर तरीकों को बढ़ाने के लिए सनकी फैसलों की व्यापकता, दासता की प्रथा, एक एकीकृत शिक्षा प्रणाली की कमी, पंजी प्रणाली और मैथिल महासभा की प्रतिक्रियावादी गतिविधियाँ। वास्तव में, उप-महाद्वीप के मिथिला प्रदेश में होने वाले किसी भी पुनर्जागरण आंदोलन की अनुपस्थिति ने मिथिला को एक स्थिर पूल में बदल दिया। मैथिल महासभा केवल भोजन और शादी के बारे में जाति पूर्वाग्रहों बनाए रखने के लिए अपने प्रयासों को बढ़ा दिया। उन्होंने द हिंदू कोड बिल को सिरे से खारिज कर दिया और गौ-रक्षा आंदोलन का समर्थन किया।³¹ एक ओर दरभंगा महाराजा-रामेश्वर सिंह ने 1900 में दिल्ली में रूढ़िवादी समूहों का एक राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया। इस जुलूस में वे वेदों की एक प्रति लेकर नंगे पैर चले।

समुदायिक ज्ञान:

मिथिला समाज की रूढ़िवादिता विशिष्ट है, क्योंकि यह जैन धर्म और बौद्ध धर्म जैसे गैर-धार्मिक धर्मों लिए भी निर्धारित थी। इस विशेषता को चीनी यात्रियों और एक प्राचीन विद्वान धर्मस्वामी के यात्रा वृत्तांतों में चित्रित किया गया है। प्राचीन काल के दौरान, बौद्ध धर्म और जैन धर्मों ने अपनी संख्या में भारी संख्या में आकर्षित किया और क्षेत्र में विधर्मी धर्मों की परंपरा बनाई, हालांकि ब्राह्मणवाद अपने प्रभुत्व को बनाए रखना जारी रखा।

जटाशंकर झा ने मिथिला में आधुनिक शिक्षा की अपनी पुस्तक 'गाडन बिगनिंग' में 19वीं सदी के उत्तरार्ध में उनके अधिकार क्षेत्र में आने वाले क्षेत्र में दरभंगा राज द्वारा 26 गाँवों में शाब्दिक माध्यम से स्कूल खोलने की बात की है। इन स्कूलों में ज्यादातर नीचली जातियों के बच्चों द्वारा भाग लिया गया था लेकिन आखिरकार 19वीं शताब्दी के अंत तक ये सभी बंद हो गए। 1921 और 1931 की जनगणना रिपोर्टों में, मिथिला क्षेत्र की साक्षरता दर लगभग 5 प्रतिशत पाई गई। साक्षरता दर के जाति आधारित विभाजन से पता चलता है कि अधिकांश निम्न जातियाँ पूरी तरह से निरक्षर थीं।³⁰

यह भी उल्लेखनीय है कि जाति की स्थिति में सुधार के लिए मध्य और निम्न जातियों की ओर से संस्कृतिकरण की दिशा में किसी भी प्रयास का कोई रिकॉर्ड नहीं है, जबकि पूर्णिया और सहरसा के आसपास के जिलों में इस तरह के प्रयास आम थे। इन संदर्भों के अलावा, मुख्य रूप से औपनिवेशिक दस्तावेजों में, विशेष रूप से मिथिला के दुसाध और चमारों में सामान्य रूप से निम्न जाति समुदायों के इतिहास पर कोई विद्वानों का काम नहीं है। 19वीं शताब्दी ईर्द-गिर्द के आंदोलनों ने इतिहास-लेखन को एक अत्यंत जटिल कार्य बना दिया और जाति समूह, विशेष रूप से जाति पदानुक्रम के नीचे पायदान से संबंधित, अपनी जाति-समूहों के लिए मूल के मिथकों का निर्माण करके उच्च स्थिति का दावा किया।

निष्कर्ष:

मिथिला क्षेत्र के इतिहासकारों के अनुसार, पंजी उस समय अस्तित्व में आया जब मिथिला समाज को मुस्लिम आक्रमण का खतरा था। इसलिए, समाज का पुनर्निर्माण करना पड़ा और सामाजिक संबंधों और संस्थानों को विदेशियों से मिथिला की संस्कृति, विशेषकर महिलाओं को बचाने और जातियों के बीच एकता और मैथिलहुड की भावना के लिए एक तरह से कठोर बनाना पड़ा। यह मैथिलों की पहचान बनाने का भी एक तरीका था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह व्यवस्था सामंती समाज से स्वाभाविक रूप से निकलती है, जिसकी नींव संरक्षक वर्गों के वर्चस्व को बनाए रखने के लिए समुदाय के सदस्यों की गला घोटने वाली गतिशीलता पर टिकी हुई है। मिथिला की महिलाओं द्वारा चित्रकला परंपरा के विकास और परिष्कार को मिथिला की विशेषता के लिए आए सामंती, ब्राह्मणवादी और पितृसत्तात्मक सामाजिक ताने-बाने के संदर्भ में देखना होगा। समकालीन इतिहास इस तरह के आंशिक ज्ञान उत्पादन और इसके विषय के सहवर्ती निर्माण की विरासत से जुड़ा रहा है जो बहिष्कृत है। अगला कालखंड औपनिवेशिक शासन के दौरान मिथिला का ऐतिहासिक वृत्तांत प्रस्तुत करता है, जब औपनिवेशिक शक्तियों की ताकत के सामने मिथिला के, उच्च जाति समूह अपनी पहचान को मजबूत करने के लिए अलग-अलग तरीके से लामबंद हुए। इसने मुख्य रूप से एक भाषा आंदोलन का रूप ले लिया, लेकिन उस समय की सामाजिक संरचना को भी प्रतिबिंबित किया। एक ओर राष्ट्रवादी उत्कंठा शासकों को मैथिली पर हिंदी का विशेषाधिकार देने के लिए मजबूर किया, दूसरी ओर, मैथिली भाषा और संस्कृति एक धुरी बन गई जिसके चारों ओर मिथिलांचल के अलग राज्य की मांग के लिए आंदोलन को स्पष्ट किया गया था। ये आंदोलन मिथिला के लोगों को जुटाने में विफल रहे, क्योंकि वे अपने दृष्टिकोण में बहिष्कृत रहे। यह मिथिला के ब्राह्मणों और कर्ण कायस्थ थे, जिन्होंने आंदोलन को गति दी और उसे बनाए रखा, जो जाति-बहिष्कार की उनकी नीति के कारण, एक बड़ी मैथिल पहचान नहीं बना सके।

संदर्भ:

- रोमिला थापर (1987): एन्सियेन्ट सोशल हिस्ट्री: सम इन्टरपरटेशन्स आरयेन्ट लॉगमैन, न्यू दिल्ली, पृ. 16
- त्रिलोकनाथ झा (1996): द ग्लोरी दैट वाज मिथिला, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, जनकपुरी

3. जयकांत मिश्र (1951): द फाक लिटरेचर ऑफ मिथिला, लोक साहित्य, मैथिली, मैथिली (भारत)-सभ्यता, मैथिली साहित्य-इतिहास और आलोचना, यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद।
4. अखिलेश कुमार सिंह (2021): मिथिला का पुरातात्विक इतिहास-Archaeological History of Mithila, बी.आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, आईएसबीएन-9789388789721
5. शंकरदेव झा (2015): अठारहवीं शताब्दी की मिथिला का इतिहास-History of Mithila of Eighteenth Century, कला प्रकाशन, आईएसबीएन-9789381698952
6. योगेन्द्र पाठक वियोगी (2022): फाक टेल्स ऑफ मिथिला, नोशन प्रेस, फरवरी, आईएसबीएन-B09LGV94N6
7. विजय कुमार ठाकुर (2002): मिथिला का इतिहास लेखन: समस्याएँ एवं सम्भावनाएँ, विश्वम्भर झा, जयदेव मिश्र एवं समरेन्द्र नारायण आर्य द्वारा सम्पादित (पं. राजशेखर ठाकुर अभिनंदन ग्रन्थ)-मिथिला संस्कृति एवं परम्परा, पटना, पृ.57-64
8. राधाकृष्ण चौधरी (1958): द हिस्ट्री ऑफ बिहार, दिल्ली।
9. के.ए. नीलकंठ शास्त्री (1953): द चोलाज, मद्रास।
10. धर्मेन्द्र कुमार (2002): मिथिला का इतिहास: स्रोतगत समस्याएँ और संभावनाएँ, रत्नेश्वर मिश्र, सम्पा.-रिजन ऑफ हिस्ट्री पर्सपेक्टिविग बिहार, पटना, पृ. 214-220
11. अमर कांत मिश्र (2018): रूलिंग डाइनेस्टी ऑफ मिथिला: डॉ. सर कामेश्वर सिंह, लेखक-दरभंगा के दिवंगत महाराजा धीरज के पीए, आईएसबीएन-9781644297612, नोशन प्रेस, चेन्नई, भारत, सिंगापुर, मलेसिया, 1 जनवरी
12. कुमार संतोष (2021): कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया Cultural History of Mithila, संकल्प प्रकाशन, आईएसबीएन: 9788194935926
13. यदुनंदन रे एवं सुरेन्द्र महतो (2019): मिथिला की लोक-संस्कृति: Folk Culture of Mithila, अभिषेक प्रकाशन, दिल्ली, आईएसबीएन: 9788183903202
14. बेबी कुमारी (2020): सोशल रिफॉर्म मूवमेंट इन मॉडर्न मिथिला ए हिस्टोरिकल स्टडी, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ट्रेड इन साइंटिफिक रिसर्च एंड डेवलपमेंट (आईजेटीएसआरडी) में प्रकाशित, आईएसएसएन: 2456-6470, खंड-4, अंक-6, अक्टूबर
15. रत्नेश्वर मिश्र (2007): दरभंगा राज रिकार्ड्स-ए सोर्स फॉर हिस्ट्री रूरल मिथिला, सं० 278, ऑनवार्ड्स
16. इन्द्रकान्त झा (1986): विद्यापतिकालीन मिथिला, पटना
17. वेन्डी सिंगर (1997): क्रियेटिंग हिस्ट्रीज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन
18. उपेन्द्र ठाकुर (1988): हिस्ट्री ऑफ मिथिला (द्वितीय संस्करण), दरभंगा।
19. मुकुन्द झा बख्शी (1897): मिथिला भाषामय इतिहास, दरभंगा
20. रास बिहार दास (1915): मिथिला दर्पण, दरभंगा
21. श्याम नारायण सिंह (1922): हिस्ट्री ऑफ तिरहुत, कलकत्ता
22. जयकान्त मिश्र (1949): हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर, इलाहाबाद
23. हेतुकर झा (1993): इमेजनिंग मिथिला: ए स्टडी ऑफ इट्स आइडेंटिटी क्राइसिस, एस.वी. राय एवं ए.के. घोष सम्पादित-पिपुल ऑफ इंडिया: बायोकल्चरल डाइमेंशन्स, दिल्ली, पृ.244-251
24. राधाकृष्ण चौधरी (1976): मिथिला इन द एज ऑफ विद्यापति, वाराणसी
25. उपेन्द्र ठाकुर (1964): स्टडीज इन जैनियम एंड बुद्धियम इन मिथिला, वाराणसी
26. मो० अकीक (1974): इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ मिथिला (सी० 600 बी०सी०-1097 ए० डी०), नई दिल्ली
27. स्टीफन हेनिंगम (1970): एक ग्रेट स्टेट एण्ड इट्स लैडलॉर्ड्स इन कॉलोनियल इंडिया: दरभंगा, 1860-1942, ऑक्सफोर्ड प्रेस, लन्दन
28. अमिताभ झा (2000): मिथिला के इतिहास से संबंधित रचनाओं का सर्वेक्षण, रत्नेश्वर मिश्र संपादित पुस्तक-रीजियन इन हिस्ट्री, पटना, पृ. 162-173
29. रामप्रकाश शर्मा (1979): मिथिला का इतिहास, दरभंगा
30. विजय कुमार ठाकुर (1988): मध्यकालीन मिथिला, पटना, पृ. 1-37

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान का उपलब्धि अभिप्रेरणा के सम्बन्ध का अध्ययन

डॉ० एम० पी० सिंह

शोध पत्र, प्रधानाध्यापक, प्राथमिक विद्यालय-लुधौरा,सूलाबाद,कानपुर देहात(३०८०)

शोध सारांश: प्रस्तुत शोध अध्ययन “माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान का उपलब्धि अभिप्रेरणा के सम्बन्ध में अध्ययन” किया। अध्ययन के उद्देश्य सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का अध्ययन करना एवं सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का अध्ययन करना। अध्ययन की परिकल्पना: सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है एवं सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है। वर्तमान अध्ययन की शोध विधि में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। न्यादर्श के रूप में माध्यमिक स्तर के 400 शहरी विद्यार्थी (200 छात्र एवं 200 छात्राएं) एवं 400 ग्रामीण विद्यार्थी (200 छात्र एवं 200 छात्राएं) को शहरी- ग्रामीण, सामान्य वर्ग एवं आरक्षित वर्ग से चयनित किया गया है। शोधपत्र का निष्कर्ष: सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाली छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

महत्वपूर्ण शब्द: माध्यमिक स्तर, सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी, उपलब्धि अभिप्रेरणा

प्रस्तावना:-

विद्यार्थियों में उच्च शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने के लिए उनमें उपलब्धि अभिप्रेरणा का होना आवश्यक है वह अपनी रुचि, रुझान और योग्यता के आधार पर ही शैक्षिक परिक्षेत्र का चुनाव करते हैं यही उनके शैक्षिक दृष्टिकोण से उपयुक्त भी है क्योंकि अभिप्रेरणा से किसी भी विषय पर किया गया ज्ञानार्जन का उनकी शैक्षिक क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध होगा। माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थी तकनीकी शिक्षा के माध्यम से ही शैक्षिक उपलब्धि अथवा विषय सीखने की कला प्राप्त कर सकता है जिससे उनमें नवीन क्रियाओं का सृजन करने में सहायता प्राप्त होती है। वर्तमान युग तकनीकी का युग है। जीवन का शायद ही कोई पहलू होगा जो इसके प्रभाव से अछूता हो। शिक्षा में तकनीकी की विषय उपयोगिता को देखते हुए आज अधिकतर विद्यालय तकनीकी शिक्षा की ओर उन्मुख हो रहे हैं। चूँकि शिक्षा में तकनीकी के प्रयोग से शिक्षण की गुणवत्ता और विद्यार्थी की उपलब्धि स्तर में सुधार लाया जा सकता है।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का विकास समाज में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि द्वारा की गयी क्षतिपूर्ति है। ज्ञातव्य है, कि वर्तमान समय में समस्त विकास की मूलधार तकनीकी शिक्षा ही है। शिक्षक, डाक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, कलाकार, साहित्यकार जैसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों का व्यक्तित्व, बुद्धि एवं भाषाशैली व गुणवत्ता उनकी तकनीकी शिक्षा क्षमता पर ही निर्भर करती है। अतः उनकी शैक्षिक प्रक्रिया में सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का विकास एक महत्वपूर्ण बिन्दु है।

शिक्षा सामाजीकरण की एक सशक्त प्रक्रिया है, जो बालक की पार्श्विक और जैविक प्रवृत्तियों को संशोधित एवं परिमार्जित करती है जिसकी सहायता से बालक अवस्था, लिंग व आयु विशेष के अनुरूप सामाजिक मूल्यों को ग्रहण करता है और धीरे-धीरे एक जैविक प्राणी से सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्राणी में परिवर्तित होता जाता है। उसकी यह सामाजिक, सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ न केवल व्यक्तिगत रूप से कल्याणकारी होती हैं बल्कि समाज और मानवीय दृष्टि से भी हितकारी सिद्ध होती हैं। यह हमारे समाज में संचालित कुशल शिक्षा प्रक्रिया के माध्यम से ही सम्भव हो पाता है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व:-

किसी भी राष्ट्र की प्रगति उसके नागरिकों में वैज्ञानिकता के गुणों पर निर्भर करती है। इसी कारण से जिस राष्ट्र के लोग अधिक शिक्षित होंगे, उनमें तकनीकता पायी जाती है। ऐसे राष्ट्र वैज्ञानिक आविष्कारों साहित्यिक गतिविधियों तथा समृद्धि के उच्च शिखर पर पहुँचते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इस समाज में कई धर्मों के लोग निवास करते हैं और इन्हें अपने धर्म को मानने की स्वतंत्रता होती है। वे जिस धर्म को चाहे उस धर्म को माने इस कार्य में सहयोग के लिए शिक्षा की अति आवश्यकता होती है शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति का नैतिक चारित्रिक सांस्कृतिक तथा अन्य प्रकार के कार्यों को समझने की क्षमता विकसित होती है परन्तु हमारे समाज में बहुत सारे लोग शारीरिक मानसिक बौद्धिक रूप से समझदार होते हैं परन्तु कुछ लोग ऐसे भी दिखाई देते हैं जो शारीरिक मानसिक बौद्धिक रूप से अक्षम होते हैं जबकि ये भी सामाजिकता की धारा में आते हैं और कहीं न कहीं पिछड़े होने के कारण इन्हें भी सामाजिकता की मुख्य धारा में लाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। जिन्हें समझने के लिए हमें अलग प्रकार से अपनी योजनाओं का निर्माण करना

पड़ता है। स्पष्ट है कि संचार माध्यम एवं शिक्षा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। संचार माध्यम शिक्षा प्रदान करने का एक सशक्त माध्यम है। संचार माध्यम के अनेक साधनों- टी0वी0, केबिल, अखबार, कम्प्यूटर आदि के द्वारा विद्यार्थियों में मौलिकता प्रवाह, किसी समस्या के प्रति संवेदनाशीलता आदि गुणों का विकास किया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध कार्य के निम्नवत् उद्देश्य हैं-

1. सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का अध्ययन करना।
2. सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का अध्ययन करना।

प्रस्तुत शोध की परिकल्पना:-

शोधकर्ता ने प्रस्तुत शोध अध्ययन में सर्वोत्तम 'शून्य उपकल्पना' को अपनाते हुए अपने शोध विषय के उद्देश्यों को पूर्ण किया है। प्रस्तुत अनुसंधान के उद्देश्यों के आधार पर निम्न लिखित शून्य परिकल्पनाएं निर्मित की गयी हैं-

1. सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है।

परिसीमांकन:

1. प्रस्तुत शोध पत्र ग्रामीण तथा शहरी माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों तक ही सीमित किया गया है।
2. न्यादर्श का चुनाव माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् 800 छात्र एवं छात्राओं का चयन न्यादर्श के रूप में ही किया गया है।
3. प्रस्तावित शोध अध्ययन में माध्यमिक स्तर के 400 शहरी विद्यार्थी (200 छात्र एवं 200 छात्राएं) एवं 400 ग्रामीण विद्यार्थी (200 छात्र एवं 200 छात्राएं) को शहरी- ग्रामीण, सामान्य वर्ग एवं आरक्षित वर्ग से चयनित किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य -

उपाध्याय (2014) - ने उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का अध्ययन किया। इस अध्ययन के लिये इलाहाबाद शहर के उत्तर प्रदेश बोर्ड के कक्षा 12 वीं के 110 विद्यार्थियों का न्यादर्श के रूप में चयन किया गया। उपकरण के रूप में जे. पी. श्रीवास्तव द्वारा निर्मित शैक्षिक अभिप्रेरणा इन्वेंटरी का उपयोग किया गया। परिणाम यह दर्शाते हैं कि छात्र तथा छात्राओं की शैक्षिक अभिप्रेरणा के मध्य सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

जसराज कौर (2014) - विद्यालयीन छात्रों की तंदरुस्ती, उनके शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा के संबंध में अध्ययन किया। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य पंजाब राज्य के फरीदकोट जिले के 200 उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के तंदरुस्ती एवं शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा के मध्य संबंध को ज्ञात करना है। इसे ज्ञात करने के लिए सिंह एवं गुप्ता (2001) द्वारा निर्मित तंदरुस्ती स्केल एवं देव मोहन (1985) द्वारा निर्मित शैक्षिक अभिप्रेरणा मापनी उपकरण का प्रयोग किया गया। इस अध्ययन के परिणाम यह बताते हैं कि विद्यार्थियों के तंदरुस्ती एवं शैक्षिक अभिप्रेरणा के मध्य कोई सार्थक संबंध नहीं पाया जाता है।

कुमार एवं रमेश (2015) - अंतर्महविद्यालयीन फुटबाल खिलाड़ी छात्रों के शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा तथा आत्मसम्प्रत्यय के विश्लेषण किया। यह अध्ययन अन्ना तकनीकी विश्वविद्यालय के तिरुचिरापल्ली कॉलेज के 90 फुटबॉल खिलाड़ियों पर किया गया। आत्म-सम्प्रत्यय के मापन के लिए पियर्स हेरिस की आत्म-सम्प्रत्यय प्रश्नावली तथा डॉ एम.एल.कमलेश द्वारा निर्मित खेल उपलब्धि प्रश्नावली का उपयोग शैक्षिक अभिप्रेरणा मापने के लिये किया गया। विषयी का दो समूहों उच्च उपलब्धि एवं निम्न उपलब्धि वाले पुरुषों के शैक्षिक अभिप्रेरणा में सार्थक अंतर पाया जाता है तथा इनके आत्मप्रत्यय में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है।

शोध विधि:

वर्तमान अध्ययन की शोध विधि में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग उसके उद्देश्यों व विशेषताओं को ध्यान में रखकर किया गया है। शोध समस्या का विषय "माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी के ज्ञान का उपलब्धि अभिप्रेरणा के सम्बन्ध में अध्ययन" से सम्बन्धित है।

न्यादर्श:

प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्ता द्वारा न्यादर्श के रूप में माध्यमिक स्तर के 400 शहरी विद्यार्थी (200 छात्र एवं 200 छात्राएं) एवं 400 ग्रामीण विद्यार्थी (200 छात्र एवं 200 छात्राएं) को शहरी- ग्रामीण, सामान्य वर्ग एवं आरक्षित वर्ग से चयनित किया गया है।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण:

1. सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी -स्वनिर्मित
2. उपलब्धि अभिप्रेरणा- डॉ0 वी0 पी0 भार्गव (आगरा)

प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियाँ:

प्रस्तुत शोध अध्ययन शोधकर्ता ने आंकड़ों का आकलन कर क्रान्तिक मान प्राप्त करके निष्कर्ष प्राप्त किया है।

आंकड़ों का संकलन, विश्लेषण एवं व्याख्या:-

शोधकर्ता ने विभिन्न सांख्यिकीय विधियों द्वारा निष्कर्ष प्राप्त करने के लिए उनका विश्लेषण किया है। शोधकर्ता ने आंकड़ों की गणना हेतु सर्वप्रथम प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर प्रत्येक चर का मध्यमान ज्ञात किया, इसके पश्चात् प्राप्त मध्यमान के आधार पर प्रमाणिक विचलन निकाला, तत्पश्चात् 'माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान का उपलब्धि अभिप्रेरणा के सम्बन्ध में अध्ययन हेतु एनोवा मान का प्रयोग किया। प्राप्त परिणामों का सारणीयन व उनकी व्याख्या इस प्रकार है-

परिकल्पनाओं के सत्यापनों द्वारा विश्लेषण एवं व्याख्या:-

सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त प्रदत्तों से परिणाम ज्ञात करने के लिए शोधकर्ता ने उपर्युक्त सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया और प्राप्त परिणामों को सुविधा की दृष्टि से सारणीबद्ध किया। तत्पश्चात् परिणामों की व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण का कार्य किया है। प्राप्त परिणामों का सारणीयन व उनकी परिकल्पनाओं के आधार पर व्याख्या इस प्रकार है -

परिकल्पना संख्या-01 "सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है" का सत्यापन।

तालिका सं० 01: सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा के तुलनात्मक अध्ययन हेतु प्रसरण विश्लेषण (ANOVA)

Source of Variations	df	Sum of Squares	Mean of Squares	F-Value
समूहों के मध्य Between Groups	2	2202.770	1101.385	56.98*
समूहों के अन्तर्गत Within Groups	397	7673.220	19.328	
कुल Total	399	9875.990		

*एफ मान प्रकट करता है जो (2,397) स्वतन्त्रांश एवं .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

सारणी-01 के अवलोकन से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्रों की सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में कम से कम एक समूह दूसरे समूह से सार्थक अन्तर अवश्य रखता है। प्रसरण विश्लेषण की गणना से प्राप्त एफ मान (F=56.98) प्राप्त हुआ जो (2,397) स्वतन्त्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान से अधिक है।

अतः परिकल्पना संख्या 01 "सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है" (2, 397) स्वतन्त्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर अस्वीकृत की जाती है।

तालिका संख्या 01(A): सूचना सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत, एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन

सूचना सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के तीनों स्तरों पर उपलब्धि अभिप्रेरणा	निम्न स्तर पर उपलब्धि अभिप्रेरणा	औसत स्तर पर उपलब्धि अभिप्रेरणा	उच्च स्तर पर उपलब्धि अभिप्रेरणा
संख्या (N)	46	271	83
माध्य	18.39	22.96	26.88
Contrast $\sigma^2=19.328$			
निम्न स्तर पर उपलब्धि अभिप्रेरणा	—	3.97*	9.33*
औसत स्तर पर उपलब्धि अभिप्रेरणा			7.00*

* एफ मान प्रकट करता है जो 397 स्वतन्त्रांश एवं .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

सारणी 01(A) के अवलोकन से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की संख्या क्रमशः 46, 271 एवं 83 है तथा उनकी उपलब्धि अभिप्रेरणा का मध्यमान क्रमशः 18.39, 22.96 एवं 26.88 है।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के औसत स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का माध्य (22.96), सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का माध्य (18.39) से सार्थक अन्तर रखता है। गणना करने पर टी-मान 3.97 प्राप्त हुआ जो 397 स्वतंत्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.96 से अधिक है।

अतः परिकल्पना “सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है” 397 स्वतंत्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर अस्वीकृत की जाती है।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का माध्य (18.39), सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का माध्य (26.88) में सार्थक अन्तर है। गणना करने पर टी-मान 7.00 प्राप्त हुआ जो 397 स्वतंत्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.96 से अधिक है।

अतः परिकल्पना “सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न स्तर एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है” 397 स्वतंत्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर अस्वीकृत की जाती है।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के औसत स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का माध्य 22.96 एवं सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा के माध्य 26.88 में सार्थक स्तर है। गणना करने पर टी मान 7.00 प्राप्त हुआ जो 397 स्वतंत्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.96 से अधिक है।

अतः परिकल्पना “सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान व औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है” 397 स्वतंत्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष:-

अतः परिकल्पना संख्या 01 “सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है” अस्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना संख्या-02 “सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाली छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है” का सत्यापन।

तालिका सं0 02: सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाली छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा के तुलनात्मक अध्ययन हेतु प्रसरण विश्लेषण (ANOVA)

i j . k k r Source of Variations	Lor=k'k df	oxk dk ; kx Sum of Squeres	ek/ ; ox Mean of Squares	,Q eku F-Value
समूहों के मध्य Between Groups	2	2312.030	1156.015	58.185*
समूहों के अन्तर्गत Within Groups	397	7887.560	19.868	
; kX	399	10199.590		

*एफ मान प्रकट करता है जो (2,397) स्वतंत्रांश एवं .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

सारणी 02 के अवलोकन से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्राओं की सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाली छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा में कम से कम एक समूह दूसरे समूह से सार्थक अन्तर अवश्य रखता है। प्रसरण विप्लेषण की गणना से प्राप्त एफ मान (थ्र 58.185) प्राप्त हुआ जो (2, 397) स्वतंत्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान से अधिक है।

अतः परिकल्पना संख्या 02 “सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाली छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है” (2, 397) स्वतंत्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर अस्वीकृत की जाती है।

तालिका संख्या 2 (A): सूचना सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत, एवं उच्च स्तर वाली छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन

सूचना सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के तीनों स्तरों पर उपलब्धि अभिप्रेरणा निम्न स्तर पर उपलब्धि अभिप्रेरणा औसत स्तर पर उपलब्धि अभिप्रेरणा उच्च स्तर पर उपलब्धि अभिप्रेरणा

सूचना सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के तीनों स्तरों पर उपलब्धि अभिप्रेरणा	निम्न स्तर पर उपलब्धि अभिप्रेरणा	औसत स्तर पर उपलब्धि अभिप्रेरणा	उच्च स्तर पर उपलब्धि अभिप्रेरणा
संख्या (N)	55	264	81
माध्य	18.69	22.89	27.00
Contrast $\sigma^2=19.328$			
निम्न स्तर पर उपलब्धि अभिप्रेरणा		6.36*	10.65*
औसत स्तर पर उपलब्धि अभिप्रेरणा			7.21*

* एफ मान प्रकट करता है जो 397 स्वतन्त्रांश एवं .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है।

सारणी 02(A) के अवलोकन से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाली छात्राओं की संख्या क्रमशः 55, 264 एवं 81 है तथा उनकी उपलब्धि अभिप्रेरणा का मध्यमान क्रमशः 18.69, 22.89 एवं 27.00 है।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के औसत स्तर वाली छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा का माध्य (22.89), सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का माध्य (18.69) से सार्थक अन्तर रखता है। गणना करने पर टी-मान 7.21 प्राप्त हुआ जो 397 स्वतन्त्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.96 से अधिक है।

अतः परिकल्पना “सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाली छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है” 397 स्वतन्त्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर अस्वीकृत की जाती है।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का माध्य (18.69), सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का माध्य (27.00) में सार्थक अन्तर है। गणना करने पर टी-मान 7.21 प्राप्त हुआ जो 397 स्वतन्त्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.96 से अधिक है।

अतः परिकल्पना “सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न स्तर एवं उच्च स्तर वाली छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है” 397 स्वतन्त्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर अस्वीकृत की जाती है।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के औसत स्तर वाले छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा का माध्य 22.89 एवं सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के उच्च स्तर वाले छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा का माध्य 27.00 में सार्थक अन्तर है। गणना करने पर ही मात्र 7.21 प्राप्त हुआ जो 397 स्वतन्त्रांश एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.96 से अधिक है।

अतः परिकल्पना, “सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है” 397 स्वतन्त्रांश एवं 0.5 सार्थकता स्तर पर अस्वीकृत की जाती है।

निष्कर्ष:-

अतः परिकल्पना संख्या 02 “सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाली छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं है” अस्वीकृत की जाती है।

प्रस्तुत शोध पत्र का निष्कर्ष:

1. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाले छात्रों की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
2. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के ज्ञान के निम्न, औसत एवं उच्च स्तर वाली छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

- अरोरा रीता (1988) : “उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के लड़के-लड़कियों की शैक्षिक उपलब्धि में अभिभावकों बच्चों का सम्बन्ध और शिक्षक-शिक्षार्थी के सम्बन्ध की भूमिका”, शोध ग्रंथ द्वारा उद्धृत पी-एचडी0 साइकोलॉजी, आगरा विश्वविद्यालय, पृष्ठ-12.
- कपिल, एच.के., (2004); अनुसंधान विधियाँ, भार्गव भवन, आगरा, पृष्ठ 159
- गैरिट, हेनरी ई0, (1989); शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली
- जायसवाल, सीता राम “व्यक्तित्व का मनोविज्ञान (तृतीय संस्करण 1993) विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा-2 पृष्ठ-187.
- लाल रमन बिहारी - शिक्षा सिद्धान्त, एपसाइलन पब्लिशिंग हाउस, कानपुर, संस्करण 1998-99, पृष्ठ-05
- डॉ0 सारस्वत मालती एवं प्रो0 एस0एल0 गौतम: भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्याएँ, आलोक प्रकाशन, अमीनाबाद लखनऊ, तृतीय संस्करण 2001 पृष्ठ-195-198
- Upadhyaya, P. (2014). Academic motivation among Higher Secondary Student. ShikshaMitra 4(4), 49 – 50.
- Kaur, J. (2014). Well being of school students in relation to their achievement motivation. Praachi Journal of Psycho-Cultural Dimensions, 28(2), 110 – 114.
- Kumar, G.P. & Ramesh, K.A. (2015). Analysis of achievement motivation and self concept among inter collegiate men Football Players. Vyayam Vidnyan, 45(4), 6– 10]

हरियाणा सरकार द्वारा कृषि के आधुनिकीकरण की दिशा में किये गये प्रयास

कृष्ण कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर भूगोल विभाग, राजकीय कालेज जीन्द, हरियाणा, भारत

शोधालेख सार:-

वस्तुतः हरियाणा प्रदेश प्राचीन समय से ही धन-धान्य से भरपूर क्षेत्र रहा है। वर्तमान परिदृश्य में हरियाणा प्रदेश में कृषि भूमि, उत्पादन और फसलों के प्रारूप में तेजी से परिवर्तन हो रहा है तथा आधुनिकसिंचाई पद्धति, सिंचाई के साधन, उन्नत बीज, आधुनिक कृषि मशीनरी, खरपतवार नाशक या कीटनाशकों का उचित प्रयोग करके कृषि उत्पादन के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या का दबाव झेलते हुए कृषि भूमि के उपयोग में बदलाव आ रहा है तथा तीव्र कृषि भूमि के विवेकहीन उपयोग की प्रवृत्ति निरंतर बढ़ रही है। तकनीकी विकास का सीधा प्रभाव प्रदेश के कृषि ढांचे पर दृष्टिगोचर हो रहा है। परंतु बदलते पर्यावरण की दृष्टि से कृषि भूमि का प्रयोग भावी पीढ़ियों की खाधान आवश्यकताओं को समझते हुए सतत पोषणीय विकास की अवधारणा के आधार पर करना आवश्यक है जिससे वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकता एवं उत्पादकता में सन्तुलन कायम रखा जा सके। अतः वर्तमान कृषि योग्य भूमि केसीमित विस्तार के संदर्भ में गहन कृषि पद्धति अपनाए जाने की गहन आवश्यकता है। इस दिशा में कृषि के आधुनिकीकरण के लिए नये कृषि यन्त्रों का प्रयोग भी अत्यावश्यक है। आज बढ़ती उत्पादन लागत व मजदूरी, अकाल की संभावनाएं, मानसून का अनिश्चित होना, पशुओं की देखभाल पर बढ़ता खर्च, कृषक मजदूरों की बढ़ती कमी इत्यादि को ध्यान में रखते हुए कृषि यन्त्रीकरण के द्वारा कृषि उत्पादन को बढ़ाने व कृषि उत्पादों का निर्यातक प्रदेश बनने के लिए हरियाणा सरकार द्वारा कृषि ढांचे के आधुनिकीकरण की दिशा में प्रयास करना अपरिहार्य हो गया है। इसके साथ-साथ हरियाणा प्रदेश को औद्योगिक विकास के मार्ग पर आगे ले जाने के लिए भी कृषि के आधुनिकीकरण की आवश्यकता अनुभव की जा सकती है। इसलिए इस शोध पत्र में हरियाणा प्रदेश में कृषि के आधुनिकीकरण की दिशा में किये गए प्रयासों का अध्ययन किया गया है।

मूल शब्द:-कृषि योग्य भूमि, उत्पादकता का स्तर, सतत पोषणकारी विकास, सिंचाई के साधन, आधुनिकीकरण।

भूमिका:-चूंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है, इसलिए बढ़ती जनसंख्या के कारण कृषि भूमि पर अत्यन्त दबाव बढ़ रहा है। इसी तरह भूमि उपयोग को लेकर भी प्रतिस्पर्धा बहुत ज्यादा है, अतः भावी पीढ़ियों के सुरक्षित भविष्य के लिए सतत पोषणीय विकास ही लाभदायक माना जा सकता है। इसके साथ-साथ निरंतर जनसंख्या की खाधान मांग की आपूर्ति के लिये कृषि उत्पादकता बढ़ाना जरूरी है। यहाँ कृषि उत्पादकता से तात्पर्य-कृषि के द्वारा भूमि से उत्पादित करने की क्षमता का नाम है। अतः कृषि उत्पादकता को प्रभावित करने वाले मुख्य कारकों में फसल संयोजन, सरकारी कार्यप्रणाली, उचित सिंचाई प्रबंधन, सिंचाई के उन्नत व आधुनिक साधन, उन्नत बीज, अच्छी गुणवत्ता वाले उर्वरक, कीटनाशकों का उचित प्रयोग और कृषि का आधुनिक तरीके से मशीनीकरण व यंत्रीकरण इत्यादि शामिल हैं। वस्तुतः हमारा अध्ययन क्षेत्र हरियाणा प्रदेश है जो एक कृषि प्रधान क्षेत्र है तथा यहाँ कृषि का स्वरूप तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है जिसके लिए सिंचित क्षेत्र अत्यावश्यक माना जाता है। यहाँ पैदा होने वाली रबी की मुख्य फसलें गेहूँ, सरसों एवं राई, जौ और चना प्रमुख हैं। इस क्षेत्र में नहरों तथा नलकूपों से फसलों की सिंचाई होती है। परंतु दक्षिण हरियाणा में भूमिगत जल स्तर नीचे गिर रहा है, इसलिए इस क्षेत्र में फव्वारा कृषि पद्धति लोकप्रिय हो रही है।

अतः समय के अनुसार विगत वर्षों में मानसूनी वर्षा की अनिश्चित मात्रा एवं भूमिगत जल स्तर का गिरना इस क्षेत्र में कृषि उत्पादन की दृष्टि से एक चिंता का विषय माना जा सकता है। अन्ततः हरियाणा सरकार की तरफ से कृषि उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से कृषि के आधुनिकीकरण के लिए निम्नलिखित प्रयास किये हैं:-

- कृषि सिंचाई पद्धति में बदलाव:-समय के साथ-साथ हरियाणा प्रदेश के कुछ भागों में सिंचाई पद्धति में परिवर्तन आया है। इसमें दक्षिण हरियाणा का क्षेत्र शामिल है। पहले इस क्षेत्र में कुओं से बहुत ज्यादा सिंचाई होती थी लेकिन इस क्षेत्र में वर्तमान में फव्वारा और बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति का प्रयोग अधिक किया जाने लगा है ताकि जल की कम उपलब्धता की स्थिति में भी कृषि उत्पादन में कोई कमी न आये। वास्तव में यह बात सत्य सिद्ध हो चुकी है कि सिंचाई की आधुनिक पद्धतियों के प्रयोग से कम पानी में ज्यादा उपज प्राप्त की जा सकती है।
- फव्वारा सिंचाई पद्धति का बढ़ता प्रयोग:-वैसे तो लम्बे समय तक हरियाणा के अधिकांश क्षेत्र में सिंचाई के रूप में कुएं एवं नलकूपों का प्रयोग किया जाता रहा है। लेकिन मानसून का समय पर इस क्षेत्र में न आना बार-बार कृषि क्षेत्र के लिए चिंता का विषय बनता रहा है। चूंकि चावल की कृषि के लिए अधिक पानी की आवश्यकता होती है, इसलिए विगत वर्षों में हरियाणा का चावल उत्पादक क्षेत्र पानी की कमी से जुझ रहा है। इसलिए हरियाणा सरकार ने क्षेत्र विशेष में विशेष तरह की चावल की फसलें पैदा करने पर रोक लगाने के दिशा-निर्देश जारी किये हैं। इसके

अतिरिक्त दक्षिण हरियाणा में कुछ शुष्क फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए फव्वारा सिंचाई प्रवृत्ति का प्रयोग शुरू किया है। वास्तव में यह सिंचाई प्रणाली विद्युत पम्पसेट, डीजल पम्पसेट एवं ट्यूबवैल वाले कृषि क्षेत्रों में की जाती है। इसका मुख्यतया प्रयोग रबी और जायद की कृषि के लिए किया जाता है। फव्वारी सिंचाई प्रवृत्ति से श्रम और पानी दोनों की बचत होती है तथा सरकार से अनुदान भी मिलता है। अतः हरियाणा में इस प्रवृत्ति के प्रयोग से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है तथा वर्तमान समय में इस प्रवृत्ति का प्रयोग अधिकतर शिक्षित व आर्थिक रूप से सक्षम किसानों द्वारा किया जाता है।

- **बूंद-बूंद (टपक) सिंचाई प्रवृत्ति:-** हरियाणा प्रदेश के कई भागों में आज जल संसाधनों के निरंतर बढ़ते उपयोग एवं घटती मात्रा के कारण जल संकट गहराता जा रहा है। जहां एक ओर मनुष्य को पेयजल उपलब्ध नहीं हो पा रहा है, वहीं दूसरी ओर फसलों की सिंचाई के लिए जल की कमी होती जा रही है। इस समस्या को मध्यनजर रखते हुए सिंचाई की आधुनिक प्रवृत्ति बूंद-बूंद सिंचाई प्रवृत्ति एक उपयोगी कदम सिद्ध हो सकती है। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार इस विधि में पानी व खाद की बचत होती है तथा पौधों की जड़ों पर बूंद-बूंद करके पानी टपकाया जाता है। इस कार्य के लिए वाल्व, पाईप नलियों तथा एमिटर का नेटवर्क लगाना पड़ता है। वास्तव में यह एक ऐसी सिंचाई विधि है जिसमें पानी थोड़ी-थोड़ी मात्रा में कम अंतराल पर, प्लास्टिक की नलियों द्वारा सीधा पौधों की जड़ों तक पहुंचाया जाता है। कुछ समय से हरियाणा के दक्षिणी भाग में उपलब्ध जल के लगातार उपयोग व घटते जल की मात्रा के कारण जल संकट बढ़ता जा रहा है जिससे पेयजल एवं सिंचाई समस्या बढ़ती जा रही है। अतः शिक्षित किसानों द्वारा परम्परागत कृषि प्रणाली को छोड़कर बागवानी व फल उत्पादों की दिशा में कारगर कदम उठाये जा रहे हैं। इस सिंचाई प्रवृत्ति का प्रयोग प्रायः शुष्क कृषि क्षेत्रों में अधिक किया जा रहा है। वैसे तो आज भी फव्वारा सिंचाई प्रवृत्ति का प्रयोग अधिक होता है, परंतु बूंद-बूंद सिंचाई प्रवृत्ति के विकास के लिए सरकार द्वारा किसानों को आर्थिक मदद दी जाती है, इसलिए आधुनिक सिंचाई तकनीक के रूप में यह प्रवृत्ति दक्षिण हरियाणा व कुछ अन्य शुष्क क्षेत्रों में काफी अधिक लोकप्रिय हो चुकी है।
- **उन्नत बीजों का प्रयोग:-** वास्तव में एक अलग राज्य बनने के बाद से ही हरियाणा में हरित क्रान्ति के साथ ही उन्नत बीजों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। इसके परिणाम के तौर पर कृषि क्षेत्र में गेहूं की उत्पादकता व उत्पादन में काफी वृद्धि हुई। आज हरियाणा सरकार द्वारा स्थापित कृषि विश्वविद्यालय हर वर्ष नये-नये उन्नत किस्म के गेहूं, चावल, ज्वार, बाजरा इत्यादि फसलों के नये बीज तैयार करता रहता है। वर्तमान समय में हरियाणा प्रदेश के दक्षिणी भाग में कपास व सरसों की फसल के अच्छे उत्पादन के लिए उत्तम किस्म के बीजों का प्रयोग किया जाता है। आज उन्नत बीजों का प्रयोग करके हरियाणा देश के खाधान भण्डार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।
- **अच्छी गुणवत्ता वाले उर्वरकों का प्रयोग:-** वस्तुतः फसलों के उत्पादन की दृष्टि से उर्वरकों का उचित प्रयोग काफी जरूरी माना जाता है। लम्बे समय तक किसी भूमि पर कृषि करने से उसकी उत्पादक क्षमता कम हो जाती है। इसलिए कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार फसलों की उत्पादकता में वृद्धि के लिए उर्वरकों का प्रयोग अत्यावश्यक है। उर्वरकों में मुख्यतः नाइट्रोजन, फॉस्फेट तथा पोटेशियम शामिल होते हैं तथा इनका अनुपात 4 : 2 : 1 होता है। वर्ष 2018 में भारत में कुल 41485 स्डज् कृत्रिम खादों का निर्माण हुआ। हरियाणा भी केन्द्रीय भण्डार की मदद से फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए नाइट्रोजन आधारित उर्वरकों का प्रयोग करता है। अतः कई कृषि वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि हरियाणा में निरंतर उर्वरकों का प्रयोग समय और क्षेत्र के अनुसार परिवर्तित हो रहा है। सत्य तो यह है कि उर्वरकों के प्रयोग के बिना कृषि भूमि उत्पादन देना कम कर देती है या बंजर हो जाती है।
- **अच्छी किस्म के कीटनाशकों की व्यवस्था करना:-** विगत कुछ वर्षों से हरियाणा में भी जलवायु परिवर्तन का प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ है तथा फसलों में कीटाणु होने पर फसल उत्पादकता एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। वर्तमान समय में अधिकांश पौधों में फफूंदी जनक, जीवाणु, माइकोप्लाज्मा, मूत्रकृमि, निमेटोड्स आदि सूक्ष्म जीवों से एवं अनेक जलवायु सम्बन्धी कारक, जैसे-तापक्रम में भारी बदलाव, मृदा एवं जल का अन्तर आने से, पोषक तत्वों की कमी या अधिकता, मृदा में क्षारीयता व लवणीयता से अनेक प्रकार के फसली रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए इनके नियंत्रण के लिए कीटनाशक, सूक्ष्म जीवाणुनाशक एवं खरपतवार नियंत्रक औषधियों का प्रयोग किया जाता है। वर्ष 2018 में हरियाणा के किसानों द्वारा 74 प्रतिशत फफूंदी नाशक, 62 प्रतिशत जीवाणु नाशक तथा 58 प्रतिशत प्रोफीनोफोस नामक कीटनाशकों का प्रयोग अलग-अलग फसलों के उत्पादन में किया गया। लेकिन अधिक कीटनाशकों का प्रयोग कृषि उत्पादों को जहरीला बना रहा है। धीरे-धीरे इन जहरीले कृषि उत्पादों का प्रयोग करने से पेट का कैंसर व लीवर संबंधी समस्याएं तेजी से बढ़ रही हैं।
- **कृषि का यन्त्रीकरण:-** यह बात सत्य है कि कृषि के आधुनिकीकरण में यन्त्रों का प्रयोग बहुत जरूरी हो गया है। वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र में पशुओं का प्रयोग न के बराबर हो चुका है। जो काम पहले बैलों द्वारा किया जाता था, आज बढ़ती कृषि मजदूरी, पशुओं की देखभाल पर बढ़ता खर्च तथा समय पर कृषक मजदूरों की अनुपलब्धता कृषि यन्त्रीकरण को बढ़ावा देने को बाध करती है। हरियाणा में पुराने समय में तो हल से कृषि की जाती थी तथा उत्पादन भी बहुत कम होता था। लेकिन बदलते सामाजिक-आर्थिक परिवेश में कृषि के यन्त्रीकरण से समय कम लगता है और उत्पादकता व उत्पादन बढ़ता है। इसी तरह हरियाणा में तेजी से औद्योगिक विकास होने से कृषि यन्त्रों के उत्पादन में भी वृद्धि हुई है। अतः आधुनिक समय में बैलों वाले हल का स्थान हैरों, कल्टीवेटर आदि ने ले लिया है। वर्तमान में हरियाणा प्रदेश में पंजाब का पड़ोसी राज्य होने के कारण कृषि यंत्रों का प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है।
- **विद्युत नलकूपों की व्यवस्था करना:-** वैसे तो आज भी हरियाणा के कई क्षेत्रों में डीजल इंजनों द्वारा फसलों की सिंचाई की जाती है। परंतु हरियाणा सरकार ने विगत कुछ वर्षों में किसानों को विद्युत पम्प सेट कम बाजार रेट पर उपलब्ध कराए हैं। आज हरियाणा प्रदेश के उन क्षेत्रों में ये पम्प सेट अधिक कारगर हैं, जहां भूजल स्तर कम होता जा रहा है, क्योंकि विद्युत पम्प सेट गहरे जल का दोहन करने में सक्षम हैं।
- **ट्रैक्टर व अन्य कृषि मशीनरी का बढ़ता प्रयोग:-** वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र में ट्रैक्टर का बढ़ता प्रयोग कृषि का मुख्य आधार है। चूंकि यह एक कृषि क्षेत्र में प्रयोग होने वाली सबसे अधिक बहुपयोगी मशीन है, इसलिए इसका प्रयोग फसल बोने के प्रारम्भ से लेकर अंत तक होता है। इसी तरह कृषि के क्षेत्र में प्रयोग होने वाली मुख्य मशीनरी-हैरो, कल्टीवेटर, जीरोटीलेज मशीन, कम्पयुटर आधारित लेवलर मशीन, डील मशीन इत्यादि हैं।

- बैकिंग एवं संचार सुविधाएं:- हम इस तथ्य को नहीं नकार सकते कि कृषि क्षेत्र के विकास में बैकिंग सेवाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि इन सेवाओं का सतत् पोषणीय विकास पर प्रभाव पड़ता है तथा अच्छी बैकिंग सुविधाओं से किसानों व अन्य व्यापारियों को ऋण लेने में सुविधा रहती है। आज हरियाणा के प्रत्येक जिले में स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ओरियन्टल बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर, बड़ौदा बैंक तथा अन्य बैंक एवं जीवन बीमा क्षेत्र में भारतीय जीवन बीमा निगम, सहारा, बजाज, टाटा ए.आई.जी. आदि विद्यमान हैं। पहले कृषि संबंधी आवश्यकताओं के लिए किसानों को महँगी ब्याज दरों पर साहुकारों से कर्जा लेना पड़ता था और किसानों का अत्यधिक शोषण होता था।
- किसानों को प्रशिक्षण देना:- आज हरियाणा सरकार अपने किसानों के हितों के लिए कई प्रकार की योजनाएं व कार्यक्रम चला रही हैं। इसके तहत किसानों को उत्पादन की नई-नई तकनीक का प्रयोग करके फसल उत्पादन बढ़ाने में सुविधा रहती है। सरकार द्वारा समय-समय पर किसानों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाते हैं तथा किसानों को जागरूक किया जाता है। इसी के प्रभाव से आज किसानों द्वारा नकदी फसलें पैदा करने को वरीयता दी जाती है।
- सोलर पम्पों का प्रयोग:- उर्जा के वर्तमान व आधुनिक साधनों में सौर उर्जा वाले यंत्र अधिक प्रभावी माने जाते हैं। कृषि क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। हरियाणा सरकार द्वारा 25 जुलाई 2018 को किसानों को सोलर वाटर पम्प उपलब्ध कराने के लिए एक ड्रा निकाला गया। इसके बाद हरियाणा में किसानों द्वारा सोलर पम्पों का प्रयोग करने की दिशा में प्रगति हुई तथा विद्युत पम्पों के स्थान पर धीरे-धीरे इन पम्पों का प्रयोग किया जाने लगा।
- अन्य प्रयास:- हरियाणा सरकार ने वर्ष 2016 में फसल बीमा योजना लागू की है ताकि अधिक वर्षा या सुखे की स्थिति में किसानों की आर्थिक मदद की जा सके। इसे प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना का नाम दिया गया है। इसी तरह मृदा स्वास्थ्य कार्ड बनाये गये हैं ताकि मृदा की गुणवत्ता जांची जा सके। इसके साथ-साथ प्रधानमंत्री सिंचाई योजना, परंपरागत कृषि विकास योजना तथा सतत् पोषणकारी विकास योजना भी हरियाणा प्रदेश के किसानों के लिए मील का पत्थर मानी जाती है।

निष्कर्ष:- इस तरह हरियाणा में कृषि के विकास व आधुनिकीकरण की दिशा में कई महत्वपूर्ण बदलाव दृष्टिगोचर हुए। फलों व सब्जी उत्पादन की दिशा में कई जागरूक किसानों द्वारा नई पहल की गयी। किसानों को पहले अपनी फसलों को बेचने के लिए कृषि मण्डी तक जाना बहुत परेशानी भरा होता था, क्योंकि खेत व मण्डी को जोड़ने वाली सड़कें कच्ची होती थी। परंतु विगत वर्षों में हरियाणा सरकार द्वारा इस समस्या का समाधान कर दिया गया है। कई बार तो किसानों की फसल आनलाईन माध्यम से खेत से ही खरीद ली जाती है और किसान का मण्डी तक जाने का समय व धन दोनों की बचत होती है। आज हरियाणा में सरकार द्वारा किसानों को सस्ती दरों पर विद्युत सुविधाएं उपलब्ध करायी जा रही हैं। इसके साथ-साथ सरकार द्वारा किसानों को उचित लागत पर उन्नत किस्म के बीज, उर्वरक तथा कीटनाशक उपलब्ध कराए जा रहे हैं। जिन क्षेत्रों में नलकूपों का जल स्तर निरंतर गिरता जा रहा है, उन क्षेत्रों में सिंचाई की टपका पद्धति अधिक कारगर सिद्ध हो रही है। इसी तरह सोलर पम्पों का सरकार द्वारा वितरण करने से किसानों का कृषि खर्च कम हुआ है। अतः हरियाणा सरकार द्वारा कृषि के आधुनिकीकरण की दिशा में जो प्रयास किये गये हैं, उससे हरियाणा प्रदेश में कृषि उत्पादन के क्षेत्र में आश्चर्यजनक बदलाव आये हैं तथा इससे कृषि क्षेत्र की दशा और दिशा दोनों में बदलाव देखा जा सकता है।

सन्दर्भ सूची:-

- हुसैन, माजिद एवं सिंह, रमेश, भारत का भूगोल, टाटा मैकग्रा हिल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
- तिवारी, आर0सी0, ज्योग्राफी आफ इंडिया, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2004
- बर्णवाल, महेश कुमार, भूगोल: एक समग्र अध्ययन, कोशमॉस पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
- भट्टाचार्य, रंजन, सोयल डिग्रेडेशन इन इंडिया, रिसर्च गेट, जुलाई 2015
- <https://csharyana.gov.in/WriteReadData/Miscellaneous/Administrative%20Reforms/5752.pdf>.
- <https://core.ac.uk/download/pdf/234646244.pdf>.
- <https://www.ijsrp.org/research-paper-0714/ijsrp-p3151.pdf>.
- <https://hortharyana.gov.in/en>.
- <https://pmfby.gov.in/>.

हृदयेश के कथा साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिकता का स्वरूप

डॉ० आरती दुबे

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी विभाग) लक्ष्मी यदुनंदन महाविद्यालय कायमगंज जनपद फरुखाबाद

आलंकारित भाषा में यद्यपि साहित्य को अप्रस्तुत पुष्कर कहा गया है किंतु साहित्य पुष्कर के समान बंधा हुआ, प्रवाहहीन या गतिहीन नहीं होता। साहित्य को सरिता के सदृश कहना अधिक समीचीन है, क्योंकि साहित्य में सरिता सी स्वच्छता और प्रवाहमयता होती है। सरिता आगे की ओर सीधे चलते चलते हठात् टेढ़ी होकर मुड़ जाती है। साहित्य भी इसी प्रकार सर्वदा सीधा नहीं चलता। जब वह नया मोड़ लेता है तो युगांतर का सूचक होता है।

साहित्य युगचेतना से संश्लिष्ट होता है युग की अध्यात्मिक, नैतिक और भौतिक प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया साहित्य में होती है युग की आशा, आकांक्षा और आदर्श साहित्य में अभिव्यक्ति होते हैं। अतः युग का प्रतिबिंब भी साहित्य में मिलता है साहित्य समाज के भावों विचारों से प्रभावित होता रहता है इस प्रकार साहित्य और समाज में परस्पर आदान-प्रदान तथा क्रिया प्रतिक्रिया का क्रम चलता रहता है अतः किसी भी युग के साहित्य की सम्यक समीक्षा के लिए संबंध योग की जनता की प्रवृत्तियों का मूल्यांकन परम आवश्यक है।

युग और साहित्य परस्पर 'गिरा अर्थ' की भांति सम्पृक्त है। साहित्य को उपजीव्य सामग्री युग प्रदान करता है और साहित्यकार उस युगबोध को संप्रेषित कर एक शाश्वत रसात्मक सृष्टि करता है मानव सचेतन ज्ञानवान और संवेदनशील प्राणी होने के कारण अपने परिवेश में प्रभावित होकर संवेगानुभूति साहित्य के रूप में अभिव्यक्त करता है। साहित्य में जब कोई नई विधा जन्म लेती है अथवा परंपरागत साहित्यिक परिपाटी में जब कोई परिवर्तन क्रम होता है तो वह अकारण नहीं, उसके परिपार्श्व में युगीन पृष्ठभूमि के कारण साहित्यिक का युगबोध क्रियाशील रहता है।

“व्यक्ति और समाज के जीवन में परिवर्तन हर युग में होते हैं और उन्हीं परिवर्तनों के आधार पर जीवन मूल्य विकसित होते हैं यह जीवन मूल्य ही व्यक्ति के चरित्र और उसकी सत्यता एवं संस्कृति के मेरुदंड बनते हैं।” साहित्यकार मानवी परिवेशगत मूल्यों के उद्घाटन प्रयत्न करता है और उसकी यही पर्यटन साहित्य सृजन करता है।²

साहित्य समस्तिगत चेतना की उपज होने के कारण साहित्य और समाज का परस्पर घनिष्ठ संबंध होता है समाज के विभिन्न क्षेत्रों और परिस्थितियों में साहित्यकार के चेतन मन पर पड़े संस्कार ही अवचेतन मन में संग्रहित होते रहते हैं और उपयुक्त समय पाकर अभिव्यक्ति पाते हैं किसी भी अवस्था में सामाजिक उपादान ओ द्वारा चेतन मन पर पड़े संस्कारों की अवज्ञा सच्चा साहित्य नहीं कर सकता है साहित्य और समाज की दो समानांतर रेखाओं को मिलाने वाली तिर्यक रेखा युग चेतना ही तो है युग चेतना अपने संपूर्ण योग वैभव के साथ साहित्य की सामग्री बनती है और साहित्यकार को प्रेरणा प्रदान करती है साहित्य समाज का एवं श्रेय है एक ओर तो वह समाज से प्रभावित होता रहता है और दूसरी ओर समाज को प्रभावित करता है साहित्यकार युग चेतना द्वारा ही अपने साहित्य को मारता है जो युगीन है वह एक सामाजिक प्राणी है जो समाज में जन्म लेता है विकास पाता है और समाज में ही उसकी जीवन गाथा का अंत होता है वह अपने को समाज से अलग नहीं कर सकता उसकी कल्पना का सतरंगी समाज रूपी प्रिजम पर युगचेतना के प्रकाश पुंज द्वारा निर्मित होता है सामाजिक तत्वों का जो प्रभाव अंतर्करण पर पड़ता है वही साहित्य के रूप में अभिव्यक्त होता है।

दूसरे शब्दों में साहित्य समाज से समाज के लिए सामग्री ग्रहण करता है इस प्रकार साहित्य का साध्य एवं साधन है हिंदी साहित्य का इतिहास इसका साक्षी है जिसमें विभिन्न युगीन प्रति छवियों को प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है अतएव स्पष्टतया स्वीकार करना पड़ता है की युग चेतना के माध्यम से सृजित साहित्य समाज का दर्पण है जीवन की अनुकृति है और जो जीवन की आलोचना है।

साहित्य जीवन की प्रतिकृति है साहित्य का आधार कोरी कल्पना के रंगीन दुलीचे नहीं है और ना उनका स्रोत मनुष्य के अवचेतन में ही है, अपितु उसका केंद्र बिंदु मानव-जीवन है। साहित्य का संबंध जीवन के आनंदमय एवं विशाद युक्त दोनों पहलुओं से होता है। “साहित्यकार बहुदा अपने देश काल से प्रभावित होता है जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश बंधुओं के कष्टों से विफल होती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रुदन में व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौतिक होता है।”³ साहित्य इस प्रकार विश्वात्मा है और इस विश्वात्मा में राष्ट्रमकता निवास करती है इसी आत्मा की प्रतिध्वनि साहित्य है।⁴

साहित्य और युगचेतना-

साहित्य जीवन की रणात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति है जो जीवन के भावात्मक और सौंदर्यत्मक दोनों पक्षों का उद्घाटन करता है। साहित्यकार साहित्य में कभी प्रेम की मादक मलयालिन का संचार करता है और कभी हृदय में भरी प्रतिशोध, ईशा और वेदना की हाक ज्वाला को कला के माध्यम से सामाजिक मनोविकारों का जामा पहनाकर अभिव्यक्त करता है। तात्पर्य यह है कि सामाजिक भावनाएं ही साहित्य के पोषक खाद्य हैं इसलिए प्रत्येक जाति का साहित्य अपने देश की संस्कृति एवं संस्कारों से ओतप्रोत है।

किसी देश या जाति के चरित्र निर्माण में साहित्य का बहुत बड़ा हाथ रहता है साहित्य उत्थान द्वारा ही राष्ट्र उत्थान होता है वह मानवता की नव जागृति का संदेश के लिए होता है और उसमें राष्ट्र का आत्मसम्मान निहित होता है। “साहित्य तो वह कला है, जो समाज में जागृति और स्फूर्ति लाए जो जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डालें”⁵ युग चेतना कलाकार की लेखनी युगचिह्ने होती है, उनके जाज्वल्यमान पदों से का आवर्त सत्य के मुंह को उभारने में नहीं हिचकती है। स्पष्टतया साहित्य वह आईना है जिसके समक्ष जाते ही तत्काल समाज की वास्तविक तस्वीर दिखाई दे जाती है। वह दर्पणगत प्रतिछवि का परिवर्तन नहीं प्रतिबिंब अवश्य है जीवन के साहित्य परिवेश के जल का संचय कर अपनी भावानुभूतियों के ताप में तापाकर युग चेतना के सहारे अमृत वर्षा करता है जिससे समाजिको का हृदय समाज भाव से रससिक्त हो उठता है। इस प्रकार का साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित है, साहित्यकार के पास साहित्य की ऐसी संजीवनी शक्ति है जिससे समाज के अनेक लक्षणों को जीवनदान मिलता है। वह अपने साहित्य द्वारा जन मन में नविन चेतना के सौरव का संचार करता है। साहित्य का सबसे बड़ा दायित्व समाज के प्रति होता है जिसे युग चेतना कलाकार भी निभा पाता है।

साहित्य मानव जीवन का चित्र प्रस्तुत करते हुए समाज को विकास और नमक जीवन यापन की प्रेरणा देता है युग चेतना साहित्यकार के साहित्य में युगपुरुष के हृदय की एक-एक धड़कन एक-एक कंपन को सुना जा सकता है कलाकार जो सामाजिक प्राणी पहले हैं वह अपनी भावनाओं द्वारा प्रचलित होता है कर्म भावना एवं इच्छा का व्यक्त रूप साहित्य है और इन भावनाओं का प्रकाशन भी करता है सच्चा साहित्य यद्यपि भावनाओं के प्रचार के लिए नहीं लिखा जाता है तथा उसमें व्यक्त भावनाएं अवश्य ही युगीन होती हैं।

साहित्य समाज से गिरा अर्थ जल बीच के समान होते हुए भी अब होता है वह योग से अपने को अलग नहीं कर सकता है यदि कहीं वह समाज से दूर हो जाता है तो उसका साहित्य सरस से निकाले गए सरसिज के समान निष्प्राण एवं निष्प्रभाव हो जाता है साहित्यकार को समाज से कटकर रहने का कोई अधिकार नहीं है यदि समाज से कटकर वह विश्वामित्र की भांति किसी आदर्श लोक का निर्माण करता है जिसका वह स्वयं भू है तो उसका सृजित साहित्य एकांकी है अपूर्ण है और अमरबेल के सदस्य हैं जो देखने में आंखों को अच्छी लगती है मनोआकर्षक होती है पर पोषक तत्वों के अभाव में पांडु रोग हो जाती है तथा ग्रीष्म के ताप से टक्कर नष्ट हो जाती है उतना का प्रतिनिधित्व करने वाला साहित्य युगीन भावनाओं एवं परिस्थितियों से भी नहीं हो सकता है क्योंकि उसमें जागतिक मान मानव व्यापार की प्रणामई अनुभूति और मियां औरत होती रहती है साहित्यकार सामाजिक प्रधानों द्वारा चेतन संस्कारों की आज्ञा नहीं कर सकता है कुछ क्षणों के लिए भले ही उसके पैर धरती से ऊपर उठ जाए परंतु उसे उतरना ही होगा वह अपने अलौकिक व्यक्तित्व को पूर्णता नहीं कर सकता है निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि साहित्यकार अपनी अनुभूति संभर से प्राप्त कर और अपने करने के लिए अभिव्यक्त करता है।

इस प्रकार युग चेतना साहित्य का धर्म है जब-जब साहित्य अपने वास्तविक धर्म भावना को छोड़कर धार्मिक राजनीतिक राजनीतिक प्रचार में लग जाता है। तब तक उसका सौंदर्य प्रेरित शरीर खत्म हो जाता है सच्चा साहित्य की यथार्थ पृष्ठभूमि में मुंह नहीं मोड़ सकता है वह ना तो युगवाणी की उपेक्षा कर सकता है और न कोलाहल की अवनी तन्हा पसंद करता है तथा नवंबर के थानों में रहने की कामना ही करता है इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि समाज साहित्यकार के लिए है और साहित्य समाज के बंधुओं में विविधता होते हुए भी साहित्य समाज सापेक्ष रहेगा समाज निरपेक्ष नहीं।

निश्चय ही हृदय की भी अपने योगी ने प्रभाव से अलग नहीं हो सके हैं उनके साहित्य को तत्कालीन समाज संस्कृति एवं आर्थिक संरचना ने पूरी तरह से प्रभावित किया है उनमें साहित्य समाज का गहरा प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है तत्कालीन पारिवारिक जीवन उसमें नारी पुरुष की स्थिति दांपत्य जीवन प्रेम और विवाह के तत्कालीन रूप हमारे सामने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में स्पष्ट दिखाई देते हैं जिनका हृदयेश जी के कथा साहित्य के संदर्भ में हम इस प्रकार कर सकते हैं।

पारिवारिक जीवन -

परिवार मानव समाज का सर्वाधिकार प्राचीन मौलिक एवं सर्वव्यापी संगठन है मानव शिशु का परिवार जन्म से पूर्व से ही निश्चित हो जाता है जन्म लेने के बाद मनुष्य अपने असहाय अवस्था में परिवार में रहने के लिए बाध्य होता है व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास एवं समाजीकरण परिवार में रहकर ही होता है इससे ही मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं भोजन आशय एवं सुरक्षा आदि की पूर्ति तथा शिक्षा सभ्यता व संस्कृति आदि का विकास परिवार के द्वारा ही होता है विश्व के प्रत्येक समाज में मनुष्य के आदेश सरल जीवन में तथा वर्तमान जटिल जीवन में परिवार के दर्शन अवश्य ही होते हैं जिस्टर्ट ने कहा है कि परिवार अत्याधिक आधारभूत तथा सार्वभौमिक समूह है जिसका अस्तित्व समाज की प्रत्येक अवस्था में पाया जा सकता है।⁶ अतः मानव जीवन एवं समाज में परिवार का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है परिवार में माता-पिता पति-पत्नी भाई-बहन आदि के बीच संबंधों का आधार भावात्मक होता है परिवार में एक दूसरे के प्रति तथा पिता का संरक्षण आदि विशेषताओं के आधार पर परिवार के सदस्य एक दूसरे के साथ प्रेम सेवा सहयोग एवं सहानुभूति के संबंधों में रहते हैं परिवार के सदस्यों के बीच संबंधों की स्थापना किसी स्वार्थ के कारण नहीं होती है वरन उनका आधार भावात्मक होता है।

हृदयेश जी को भी परिवार ने बड़े गहरे तक प्रभावित किया है उनके संपूर्ण साहित्य में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से परिवार दिखाई देता है उनकी कहानियां पारिवारिक जीवन की कहानियां कही जा सकती हैं उनके प्रसिद्ध कहानी अंतहीन की पांचवी कहानी में हम पारिवारिक जीवन को इस प्रकार देख सकते हैं यह कहानी उस निर्धन परिवार की कहानी है जिसका मुखिया बट्टीनाथ संपूर्ण जीवन निर्धनता को दूर करने में व्यतीत कर देता है लेकिन निर्धनता उसका पीछा नहीं छोड़ती है।

निर्धनता से ग्रस्त पारिवारिक जीवन का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं बट्टीनाथ तेल और घी का काम करते थे दुकान पर छोटी मोटी चीजें भी रहती हैं मैदा रवा चीनी बेसन वगैरह-वगैरह पर असल काम तेल और घी का होता था तथा आय का मुख्य स्रोत भी वहीं था।

बट्टीप्रसाद की पत्नी ने दोपहर के समय कोयले की भट्टीनुमा बड़ी अंगीठी सुलगा रखी थी और उसके पास बैठी थी इधर उधर कई कनस्तर रखे थे जिन्हें कोठे से निकालकर लड़के और लड़कियां वहां ढोल लाए थे पत्नी के बाल पसीने से चेहरे पर चिपके हुए थे गर्दन और छाती पर भी ले आया था मांग का

सिंदूर और माथे पर रोली अपने निश्चित स्थानों पर नहीं थी और वहां तक आ गई थी जहां तक पसीना उनको ले जा सकता था लड़के लड़कियां भी पसीने से लथपथ थी घर घर नहीं मालूम होता था इससे इसमें से कुछ निकल गया लगता था। शायद अपने में बं/ने वाला तत्व जो दिखाई नहीं देता था पर महसूस होता था सिंचित करने वाली कोमलता अंदर ही अंदर घटकों को जोड़े रहती है वह घर रोशनी निकली फटी आँख जैसा लगता था।⁷

हृदयेश ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास अंतहीन में कहानी संख्या 6 में पारिवारिक जीवन का बहुत ही अच्छे रूप में दर्शाया है जो कि हम इस प्रकार देख सकते हैं यह कहानी दो भाइयों के बीच घर के बंटवारे की कहानी है।

“दोनों भाइयों के बीच तनातनी का मुद्दा अब मकान बन गया था परसराम का कहना था कि की दुकान तिलकराम के पास है इसलिए मकान उसे मिलना चाहिए, तिलकराम कहीं दूसरी जगह जा कर रहे तिलकराम ने आड यह ले रखी थी कि दुकान की बाजारी कीमत उतनी नहीं थी जितनी मकान की, और परसराम की किराए वाली दुकान में आधे का हिस्सेदार बन सकता है। परसराम का बड़ा लड़का नाम से ही हनुमान नहीं स्वभाव से ही हनुमान था वह एक लड़के की साइकिल तोड़ कर दूसरे को लंगड़ा बनाकर तथा एक मास्टर को स्कूल के अहाते में ही चुनिंदा गालियां देकर अपनी शिक्षा संपूर्ण कर चुका था। उसकी आंख भी चली थी और मांसपेशियों में पुष्टता आ चुकी थी दूर से ही देखने पर मालूम होता था कि वह जवान है। 4 साल की तनातनी में उसने यही जाना था कि उसके चाचा बहुत चालाक है उन्होंने अपने विवाह में आया माल पत्ता तो दबाया ही दुकान में कतरव्योत भी खूब की उसके पिता के साथ घोर अन्याय हुआ है और इसका बदला उनको लेना चाहिए।”⁸

हृदयेश जी के उपन्यास अंतहीन कहानी नंबर 17 पारिवारिक कहानी है इसका मुखिया वंश गोपाल है परिवार में निर्धनता के कारण आए दिन संघर्ष हुआ करता है जिसको हम इस प्रकार देख सकते हैं।

“पत्नी कपड़े धोने जा रही थी पूछने आई थी उनका कुर्ता धोया जाएगा?”

अभी ज्यादा गंदा नहीं हुआ है दो-चार दिन और पहलू वंश गोपाल ने उठकर 24 किरचे साबुन की पत्नी को दे दी जो एक कागज की पुड़िया में संभाल कर रखी थी कि वह धोने वाले पानी में डालकर उनका इस्तेमाल कर ले।

दालान की छत पर बड़ा सा सुराग था और धूप को 2 फिट लंबा चौड़ा एक टुकड़ा नीचे उतर आया था। वंश गोपाल छत की ओर देखने लगे छत को जब तक देखने लगना और उसकी चिंता करना उनकी दिनचर्या में शामिल हो गया था वे उनकी व्यवस्था भी छत की छुट्टी में जगह-जगह पकड़ती थी और जमी हुई ईंटें या तो नंगी हो गई थी या नीचे लटक गयी है। कड़ियों में दीमक लग गई थी। इस बरसात में जब जब पानी तेज गिरा था इस आशंका ने उन्हें डराया था कि छत अब बैठी अब बैठी खौर यह बरसात तो अपनी माट बना कर छोड़ गई थी अब अगली बरसात छत को पूरा ढहा देगी इसमें कोई संदेह नहीं था।”⁹

“बेटे पैसा पैदा करना इतना कठिन नहीं होता है जितना उन्हें रोके रहना उनकी समझ में ना आया कि जवान लड़के से इसके आगे और क्या कहा जा सकता है वह चुप हो गए ऊपर छत पर बना सुराग अंधेरे में भी चमक रहा था उन्हें लगा कि अगली बरसात में भी छत शायद ठीक ना हो सकेगी।”¹⁰

नारी और पुरुष की सामाजिक स्थिति -

हृदयेश जी को भी परिवार ने बड़े गहरे तक प्रभावित किया है उनके संपूर्ण साहित्य में तथा उनकी प्रसिद्ध कहानियों में पारिवारिक जीवन के साथ-साथ नारी और पुरुष की सामाजिक स्थिति को भी बहुत ही अच्छे ढंग से हृदय जी ने दर्शाया है हृदय जी की एक कहानी अंतहीन में कहानी संख्या चार में नारी और पुरुष की सामाजिक स्थिति को भी दर्शाया गया है।

इस प्रकार परिवार की दारुण स्थिति का चित्रण कर हृदयेश जी सफलतापूर्वक सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन को अपनी कहानियों में चित्रित करते रहे हैं।

संदर्भ -

1. महेंद्र भटनागर (स.): स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास, श्री राम गोपाल सिंह, पृ. 13
2. डॉ. देवराज: साहित्य चिंता, पृ. 68
3. मुंशी प्रेमचंद्र: साहित्य का उद्देश्य, पृ. 24-25
4. डॉ रामविलास शर्मा: प्रेमचंद्र और उनका योग, पृ. 135
5. प्रेमचंद्र: हंस, सितंबर, 1938
6. It is the most basic and Universal Group whose existence may be found in all states of society.
P. Gisbert : Fundamental of Sociology, P 85
7. हृदयेश : उपन्यास- एक कहानी अंतहीन- , मैं कहानी नंबर, 5 पृ. 50
8. वही. कहानी नंबर 6 पृ. 38
9. वही कहानी नंबर 17 पृ. 136
10. वही, पृ. 143

डॉ० ए०पी०जे० अब्दुल कलाम का तकनीकी योगदान

जयदीप सिंह

शोध छात्र (शिक्षा संकाय) गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी, जौनपुर (उ०प्र०)

डॉ० धर्मपाल सिंह

विभागाध्यक्ष (शिक्षा संकाय) गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी, जौनपुर (उ०प्र०)

सारांश:- किसी भी भारतीय से पूछें कि वे डॉ कलाम के बारे में क्या सोचते हैं और जवाब आपको अभिभूत कर देगा, क्योंकि वह सिर्फ भारत के मिसाइल मैन ही नहीं बल्कि उससे कहीं ज्यादा थे। भारत के राष्ट्रपति पद की जिम्मेदारी लेने से लेकर भारतीय मिसाइलों के विकास का नेतृत्व करने तक, डॉ. ए. पी.जे. अब्दुल कलाम ने देश में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में योगदान दिया है। अपनी कार्य अवधि के दौरान उन्होंने 2 महत्वपूर्ण अंतरिक्ष अनुसंधान संगठनों के साथ काम किया। पहला है डीआरडीओ - रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन और दूसरा है इसरो- भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन। मिसाइल कार्यक्रम के अंतर्गत पहली मिसाइल का प्रक्षेपण 16 सितंबर, 1985 को किया गया। इस दिन श्रीहरिकोटा स्थित परीक्षण रेंज से 'त्रिशूल' को छोड़ा गया। यह एक तेज प्रतिक्रिया प्रणाली है जिसे नीची उड़ान भरने वाले विमानों, हेलीकॉप्टरों तथा विमानभेदी मिसाइलों के खिलाफ इस्तेमाल किया जा सकता है। 25 फरवरी, 1988 को दिन में ग्यारह बजकर तेईस मिनट पर 'पृथ्वी' को छोड़ा गया। यह देश में रॉकेट विज्ञान के इतिहास में एक युगांतरकारी घटना थी। डॉ. कलाम की पहल पर भारत द्वारा एक रूसी कंपनी के सहयोग से सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल बनाने पर काम शुरू किया गया। फरवरी 1998 में भारत और रूस के बीच समझौते के अनुसार भारत में ब्रह्मोस प्राइवेट लिमिटेड की स्थापना की गई। 'ब्रह्मोस' एक सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल है जो धरती, समुद्र, तथा हवा, कहीं भी दागी जा सकती है। यह पूरी दुनिया में अपने तरह की एक खास मिसाइल है जिसमें अनेक खूबियां हैं।

महत्वपूर्ण शब्द: डॉ० ए०पी०जे० अब्दुल कलाम, तकनीकी योगदान

प्रस्तावना:-

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम आजाद नाम किसी भी क्षेत्र, धर्म, जाति, पंथ, रंग आदि से आने वाले किसी भी भारतीय के लिए रोंगटे खड़े करने के लिए काफी है। भारत जितना सम्मान और कृतज्ञता डॉ एपीजे अब्दुल कलाम के लिए रखता है वह किसी भी चीज से परे है। कोई भी वैज्ञानिक सिद्धांत या सूत्र भूल सकता है लेकिन विज्ञान, अंतरिक्ष और प्रौद्योगिकी में डॉ कलाम के योगदान को कभी नहीं भूल सकता। उन्होंने देश के लिए जो किया, उसी वजह से आज भारत विश्व परमाणु ऊर्जा, अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी और कई अन्य देशों में एक कठिन प्रतिस्पर्धा के रूप में खड़ा है।

डॉ. कलाम बातचीत में बड़े विनोदप्रिय स्वभाव के हैं। अपनी बात को बड़ी सरलता तथा साफगोई से सामने रखते हैं। प्रायः उनकी बातों में हास्य का पुट होता है। लेकिन बात बहुत सटीक तौर पर करते हैं। डॉ. कलाम सभी मुद्दों को मानवीयता की कसौटी पर परखते हैं। उनके लिए जाति, धर्म, वर्ग, समुदाय मायने नहीं रखते। वे सर्वधर्म समभाव के प्रतीक हैं। वह इंसान के जीवन को ऊंचा उठाना चाहते हैं। उसे बेहतर की ओर ले जाना चाहते हैं। उनका मानवतावाद मनुष्यों की समानता के आधारभूत सिद्धांत पर आधारित है। 25 जुलाई, 2002 की शाम को भारत के राष्ट्रपति का सर्वोच्च पद सँभालने के दिन घटित एक बात से इसे अच्छी तरह समझा जा सकता है। उस दिन राष्ट्रपति भवन में एक प्रार्थना सभा आयोजित की गई थी जिसमें रामेश्वरम् मसजिद के मौलवी, रामेश्वरम् मंदिर के पुजारी, सेंट जोसेफ कॉलेज के फॉर्दर रेक्टर तथा अन्य लोगों ने भाग लिया था। उनके बारे में जो पहलू सबसे कम प्रचारित है वह है उनकी उदारता या परोपकार की भावना।

उनके जीवन का अगला बड़ा अवसर तब आया जब डॉ. कलाम को भारत के सैटेलाइट लांच वेहिकल (एस.एल.वी.) परियोजना का प्रबंधक बनाया गया। परियोजना प्रमुख के रूप में नामांकित करना एक सम्मान भी था और चुनौती भी थी। एस.एल.वी.-3 परियोजना का मुख्य उद्देश्य एक भरोसेमंद प्रमोचन यान विकसित करना था जो चालीस किलोग्राम के एक उपग्रह को पृथ्वी से 400 किलोमीटर की ऊंचाई वाली कक्षा में स्थापित कर सके। इसमें एक बड़ा काम था यान के चार चरणों के लिए एक रॉकेट मोटर सिस्टम का विकास। हाई एनर्जी प्रोपेलेंट के इस्तेमाल में सक्षम रॉकेट मोटर सिस्टम में इस्तेमाल के लिए 8.5 टन प्रोपेलेंट ग्रेन निर्मित किया जाना था। एक अन्य कार्य था नियंत्रण तथा मार्गदर्शन। यह एक बड़ी परियोजना थी जिसमें दो सौ पचास उप-भाग और चालीस बड़ी उपप्रणालियाँ शामिल थीं। सभी गतिविधियों में तालमेल बैठाना और टीम का कुशल नेतृत्व करना डॉ. कलाम के लिए एक चुनौती थी। अंततः कड़ी मेहनत के बाद 18 जुलाई, 1980 को सुबह आठ बजकर तीन मिनट पर श्रीहरिकोटा रॉकेट प्रक्षेपण केंद्र से एस.एल.वी.-3 ने सफल उड़ान भरी। इस परियोजना की सफलता ने डॉ. कलाम को राष्ट्रीय पहचान दी। इस उपलब्धि के लिए उन्हें भारत सरकार द्वारा 26 जनवरी 1981 को 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया।

उन दिनों रक्षा अनुसंधान तथा विकास प्रयोगशाला में एक ऐसे नेतृत्व की जरूरत थी जो कार्य को गति प्रदान कर सके तथा मिसाइलों के विकास का काम तेजी से आगे बढ़ा सके। प्रो. राजा रामन्ना ने डॉ. कलाम के सामने गाइडेड मिसाइल डेवलपमेंट प्रोग्राम को अपने हाथ में लेने का प्रस्ताव रखा। इस चुनौतीपूर्ण प्रस्ताव को डॉ. कलाम ने सहर्ष स्वीकार किया। फरवरी 1982 में डॉ. कलाम को डी.आर.डी.एल का निदेशक नियुक्त किया गया। उसी समय अन्ना विश्वविद्यालय, मद्रास ने इन्हें 'डॉक्टर आफ साइंस' की मानक उपाधि से सम्मानित किया। एयरोनॉटिकल इंजीनियरिंग में डिग्री हासिल करने के करीब बीस साल बाद यह मानद उपाधि डॉ. कलाम को प्राप्त हुई। डॉ. कलाम ने रक्षामंत्री के तत्कालीन वैज्ञानिक सलाहकार डॉ. वी. एस. अरूणाचलम के मार्गदर्शन में इंटीग्रेटेड गाइडेड मिसाइल डेवलपमेंट प्रोग्राम (आई.जी.एम.डी.पी.) का प्रस्ताव तैयार किया। स्वदेशी मिसाइलों के विकास के लिए एक स्पष्ट और सुपरिभाषित मिसाइल कार्यक्रम तैयार करने के उद्देश्य से डॉ. कलाम की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई गई।

इस परियोजना के प्रथम चरण में एक नीची ऊँचाई पर तुरंत मार करनेवाली टैक्टिकल कोर वेहिकल मिसाइल और जमीन से जमीन पर रॉकेट मध्यम दूरी तक मार सकने वाली मिसाइल के विकास एवं उत्पादन पर जोर था। दूसरे चरण में जमीन से हवा में मार सकने वाली मिसाइल, तीसरी पीढ़ी की टैंकभेदी गाइडेड मिसाइल और डॉ. कलाम के सपने रि-एंट्री एक्सपेरिमेंट लान्च वेहिकल (रेक्स) का प्रस्ताव रखा गया था। जमीन से जमीन पर मार करने वाली मिसाइल प्रणाली को 'पृथ्वी' और टैक्टिकल कोर वेहिकल मिसाइल को 'त्रिशूल' नाम दिया गया। जमीन से हवा में मार करने वाली रक्षा प्रणाली को 'आकाश' और टैंकरोधी मिसाइल परियोजना को 'नाग' नाम दिया गया। डॉ. कलाम ने अपने मन में सँजोए रेक्स के बहुप्रतीक्षित सपने को 'अग्नि' नाम दिया। 27 जुलाई, 1983 को आई.जी.एम.डी.पी. की औपचारिक रूप से शुरुआत की गई। मिसाइल कार्यक्रम के अंतर्गत पहली मिसाइल का प्रक्षेपण 16 सितंबर, 1985 को किया गया। इस दिन श्रीहरिकोटा स्थित परीक्षण रेंज से 'त्रिशूल' को छोड़ा गया। यह एक तेज प्रतिक्रिया प्रणाली है जिसे नीची उड़ान भरने वाले विमानों, हेलीकॉप्टरों तथा विमानभेदी मिसाइलों के खिलाफ इस्तेमाल किया जा सकता है। 25 फरवरी, 1988 को दिन में ग्यारह बजकर तेईस मिनट पर 'पृथ्वी' को छोड़ा गया। यह देश में रॉकेट विज्ञान के इतिहास में एक युगांतरकारी घटना थी। यह एक सौ पचास किलोमीटर तक एक हजार किलोग्राम पारंपरिक विस्फोटक सामग्री ले जाने की क्षमता वाली जमीन से जमीन पर मार करने वाली मिसाइल है। 22 मई, 1989 को 'अग्नि' का प्रक्षेपण किया गया। यह लंबी दूरी के फ्लाइट वेहिकल के लिए एक तकनीकी प्रदर्शक था। साथ ही 'आकाश' पचास किलोमीटर की अधिकतम अंतर्रोधी रेंजवाली मध्यम की वायु-रक्षा प्रणाली है। उसी प्रकार 'नाग' टैंक भेदी मिसाइल है, जिसमें 'दागो और भूल जाओ' तथा ऊपर से आक्रमण करने की क्षमताएँ हैं।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में डॉ कलाम के महत्वपूर्ण योगदान:

1. भारत का पहला स्वदेशी उपग्रह प्रक्षेपण यान: उस समय, भारत ने मुश्किल से उपग्रह लॉन्च करने और अंतरिक्ष और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास के बारे में बात की, एक आदमी आया और अंतरिक्ष संगठन का भविष्य बदल दिया। एपीजे अब्दुल कलाम को इसरो में परियोजना निदेशक के रूप में नियुक्त किया गया था और उनके नेतृत्व ने देश के लिए ग्राउंड जीरो से स्वयं के एसएलवी का निर्माण करना संभव बना दिया। जुलाई 1980 में, SLV III ने रोहिणी उपग्रह को पृथ्वी के निकट की कक्षा में इंजेक्ट किया, जिससे देश एक विशिष्ट स्पेस क्लब का सदस्य बन गया।
2. बैलिस्टिक मिसाइलों का विकास: एक और मील का पत्थर तब बनाया गया जब डॉ. कलाम ने देविला और वैलिपुट के निर्देशन की स्थिति का नेतृत्व किया। इसका उद्देश्य एसएलवी कार्यक्रम की सफल तकनीक के आधार पर बैलिस्टिक मिसाइलों का उत्पादन करना था। यह तभी हुआ जब कई शक्तिशाली मिसाइलों के साथ AGNI- (मध्यवर्ती दूरी की बैलिस्टिक मिसाइल) और पृथ्वी (सतह से सतह पर मार करने वाली मिसाइल) जैसी मिसाइलों का निर्माण किया गया और इसीलिए डॉ कलाम ने भारत के मिसाइल मैम का खिताब अर्जित किया।
3. पोखरण परमाणु परीक्षण: यह भारत के लिए अविस्मरणीय क्षण था जब देश अंततः एक परमाणु शक्ति के रूप में उभरा। डॉ. कलाम तब तत्कालीन प्रधान मंत्री के मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार के रूप में कार्यरत थे, और पोखरण में कई परमाणु परीक्षणों के पीछे उनका दिमाग था जिसने पूरी दुनिया को चौंका दिया था। जुलाई 1992 से जुलाई 1999 तक डीआरडीओ के सीईओ के रूप में, उन्होंने पोखरण II विस्फोटों का निर्देशन किया। उनके प्रयासों और समर्पण के परिणामस्वरूप भारत अब परमाणु-सशस्त्र राज्यों की सूची में है।
4. चिकित्सा और स्वास्थ्य देखभाल में डॉ कलाम का योगदान: यदि आप सोचते हैं कि डॉ एपीजे अब्दुल कलाम ने केवल इंजीनियरिंग और वैमानिकी क्षेत्र में योगदान दिया है तो आप बहुत गलत हैं क्योंकि चिकित्सा में भी उनका योगदान महत्वपूर्ण है। उन्होंने हृदय रोग विशेषज्ञ सोमा राजू के साथ सहयोग किया और बजट के अनुकूल कोरोनरी स्टेंट बनाया। इसे व्यापक रूप से कलाम-राजू स्टेंट भी कहा जाता है। दोनों ने वर्ष 2012 में भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में बेहतर स्वास्थ्य प्रशासन के लिए एक टैबलेट कंप्यूटर डिजाइन किया, जिसे कलाम-राजू टैबलेट के नाम से जाना जाता है।
5. हल्के लड़ाकू विमान परियोजना: डॉ. कलाम एक लड़ाकू विमान उड़ाने वाले नेतृत्व की स्थिति में पहले भारतीय बने। मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से वैमानिकी इंजीनियरिंग में विशेषज्ञता के बाद, उन्होंने भारत के हल्के लड़ाकू विमान परियोजना के साथ खुद को गहराई से तल्लीन कर लिया।

डॉ0 ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम द्वारा निर्मित एवं निर्देशित मिसाइलें:-

डॉ0 कलाम को भारतीय मिसाइल का जनक कहा जाता है। उन्होंने भारत की उन्नति और उपलब्धियों के आधार पर तीन दृष्टिकोण दिये हैं-स्वतन्त्रता, विकासशीलता तथा स्वयंनिर्भरता। विकास कार्यक्रमों में बाधा नहीं थी। शीघ्र ही इंटीग्रेटेड गाइडेड मिसाइल डेवलपमेंट प्रोग्राम आई0जी0एम0डी0पी0 की शुरुआत हुई। इन प्रस्तावित योजनाओं को नाम दियो गये- पृथ्वी, त्रिशूल, नाग, अग्नि, आकाश।

पृथ्वी: एक सतह से दूसरी सतह तक युद्ध में प्रयोग होने वाला मिसाइल है। इसकी क्षमता लगभग सवा सौ किलोग्राम विस्फोट सामग्री ले जाने की है। इस मिसाइल के तीन संस्करण हैं-

1. पृथ्वी-1-थल सेना।
2. पृथ्वी-2-वायु सेना।
3. पृथ्वी-3-नौ सेना।

त्रिशूल:- यह मिसाइल जमीन से हवा में और जमीन से जमीन पर मार कर सकती है जिसकी मारक क्षमता 15 किलोमीटर तक है।

आकाश:- जमीन से जमीन पर मार करने वाली इस मिसाइल की मारक क्षमता 25 किलोमीटर तक है यह 55 किलोग्राम तक पेलोड वाहन कर सकती है।

नाग:- यह मिसाइल टैंक प्रतिरोधी है इसकी मारक क्षमता लगभग 15 किलोमीटर तक है इसका सफल परीक्षण 4 सितम्बर को उड़ीसा के चांदीपुर क्षेत्र में हुआ।

अग्नि:- इस मिसाइल का तैयार होना डॉ० कलाम के सपनों का सच होना कहा जा सकता है इस मिसाइल के विभिन्न परीक्षण हुए- अग्नि-1, अग्नि-2, अग्नि-3 जो विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरे। यह जमीन से जमीन पर मार करने वाली एक विश्वसनीय मिसाइल है। जिसकी मारक क्षमता 1500 किलोमीटर से भी अधिक है। यह एक हजार किलोग्राम तक का पेलोड वहन कर सकती है।

पोखरण की गूंज:-

डॉ० होमी जहांगीर भाभा का मानना था कि अणु और परमाणु प्राचीन काल से ही प्रकृति में उपस्थित है। इनके पुनर्जन्म से भारत दुनिया को दिखा देगा कि वह भी विश्व की सर्वश्रेष्ठ श्रेणी में गिना जाने वाला देश है। विज्ञान एवं आत्म सुरक्षा के इस युग में प्रत्येक देश को यह अधिकार है कि वह अपनी सुरक्षा के इस युग में प्रत्येक देश को यह अधिकार है कि वह अपनी सुरक्षा के लिए सदा तैयार रहे। इसी बात को ध्यान में रखते हुए सन् 1974 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने पोखरण-1 परमाणु परीक्षण की अनुमति दी थी। विश्व व्यापी, आलोचनाओं के बाद भी श्रीमती इंदिरा गांधी परमाणु अस्त्रों के इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाने का निश्चय कर चुकी थी, किन्तु 1984 में उनकी हत्या तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव के कार्यकाल में परमाणु की कार्यवाही कुछ आगे बढ़ी, किन्तु परमाणु सम्पन्न देशों के विरोधात्मक रूख के कारण भारत को शांत रहने पर विवेक होना पड़ा। इस उपलब्धि को श्रेय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को जाता है, जिन्होंने राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत एवं स्थायी आयाम देने के लिए इस साहस को विश्व के मानचित्र पर प्रदर्शित किया। दूसरा श्रेय डॉ० कलाम को दिया जाता है, जिन्होंने इस परीक्षण को सफल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। परमाणु परीक्षण-2 डिपार्टेंट आफ एटमिक सहयोग से डॉ० अब्दुल कलाम एवं परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष डॉ० आर० चिदम्बरम की निगरानी में हुआ था। पोखरण-2 के नाम से किए गए इन भूमिगत परीक्षणों से यह तो सिद्ध हो ही गया है कि भारत भी एक परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र है। इस सन्दर्भ में तत्कालीन विदेश मंत्री जसवंत सिंह द्वारा दिया गया वक्तव्य अत्यन्त प्रशंसनीय है। वे कहते हैं-“भारत समग्र परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि पर तभी हस्ताक्षर करेगा, जब तक विश्व के शिखर राष्ट्र भारत को एक परमाणु शस्त्र सम्पन्न देश के रूप में मान्यता नहीं मिल जाती। तब तक इस बात का कोई महत्व नहीं है कि भारत परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि पर हस्ताक्षर कर दे।”

आखिर जब हम परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र हैं, तो फिर यह क्यों स्वीकार करें कि हमारे पर परमाणु हथियार नहीं हैं। जिसका श्रेय प्रो० होमी जहांगीर भाभा और डॉ० अब्दुल कलाम को जाता है।

उपसंहार:-

आज भारत विज्ञान के क्षेत्र में जो भी प्रगति किया है, इसका कारण अब्दुल कलाम है। यही वजह है कि एपीजे अब्दुल कलाम को मिसाइल मैन के नाम से जाना जाता है। क्योंकि उन्होंने एक से बढ़कर एक अद्भुत योगदान विज्ञान के क्षेत्र में दिए हैं। उन्होंने एक नहीं बल्कि कई ऐसे आविष्कार किए हैं, जो कि हमारे देश के लिए बहुत ज्यादा फायदेमंद साबित हुए हैं। बैलिस्टिक मिसाइलों के क्षेत्र में भारत को आगे लाने में सबसे बड़ा हाथ हमारे मिसाइल मैन यानी की अब्दुल कलाम का ही है। हमारे देश का सबसे पहला मिसाइल अब्दुल कलाम के निगरानी में ही बना था, और बैलिस्टिक मिसाइलों के विकास में भी अब्दुल कलाम का ही हाथ है। इसीलिए इन्हें मिसाइल मैन (Missile Man) के नाम से जाना जाता है।

अब्दुल कलाम ने देवीला और वेलियान्त स्थिति का भी नेतृत्व किया है। इसका मुख्य उद्देश्य था कि एसएलवी (Satellite launch Vehicle) के सफल तकनीक के बाद बैलिस्टिक मिसाइलों (Ballistic missiles) का भी उत्पादन करना, और भारत को बैलिस्टिक मिसाइलों के क्षेत्र में आगे लाना। यह सिर्फ अब्दुल कलाम के वजह से ही संभव हो पाया है।

भारत को परमाणु मिसाइलों के क्षेत्र में आगे लाने का सारा का सारा क्रेडिट हमारे मिसाइल मैन अब्दुल कलाम को ही जाता है। क्योंकि पोखरण परमाणु के परीक्षण के पीछे उनका ही हाथ था। जुलाई 1992 से 1999 तक उन्होंने DRDO और CEO के रूप में उन्होंने पोखरण-II के विस्फोट करने का निर्देशन दिया। मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से, वैमनीकी की विशेषज्ञता प्राप्त करने के बाद, मिसाइल मैन अब्दुल कलाम ने भारत को लड़ाकू विमान के क्षेत्र में भी आगे लाने का अथक प्रयास किया, और इनका यह प्रयास सफल भी हुआ। उन्हीं की वजह से आज भारत लड़ाकू विमान के क्षेत्र में भी आगे हैं। सन 2012 में अब्दुल कलाम ने कलाम राजू टेबलेट के नाम का एक छोटा सा कंप्यूटर बनाया था। इसे उन्होंने अकेले नहीं बल्कि उनके साथी विशेषज्ञ सोमा राजू के साथ मिलकर बनाया था। इसलिए इसका नाम कलाम राजू टेबलेट पड़ा। इसे अब्दुल कलाम ने रूलर हेल्थ के लिए इनवेंट किया था। इसका मुख्य उद्देश्य था कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को भी स्वास्थ्य के संबंध में उचित व्यवस्था मिल सके, और उन्हें स्वास्थ्य संबंधी किसी प्रकार की समस्या ना हो। तो यही कारण है कि हमारे भारत देश के एपीजे अब्दुल कलाम को मिसाइल मैन के नाम से जाना जाता है, और इनके विज्ञान के क्षेत्र में ऐसे योगदान को देखकर इसरो और DRDO की तरफ से इन्हें सन 1982 में पद्म भूषण और 1990 में पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया था।

सन्दर्भ सूची

- ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम: छुआ आसमान, मंजुल पब्लिशिंग हाउस प्रा0वि0, 10 निशात् कालोनी, भोपाल, इण्डिया संस्करण-प्रथम, 2009, अनुवादक - सुरेश स्वप्निल, खण्ड-मजबूत नींव, पृष्ठ-9.
- महेन्द्र कुलश्रेष्ठ: झोपड़ी से राष्ट्रपति भवन तक, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006, संस्करण-2006, खण्ड-एक, पृष्ठ-21.
- ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम: छुआ आसमान, मंजुल पब्लिशिंग हाउस प्रा0वि0, 10 निशात् कालोनी, भोपाल, इण्डिया संस्करण-प्रथम, 2009, अनुवादक - सुरेश स्वप्निल, पाठ - शुरूआती असर, पृष्ठ-14-17.
- ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम: छुआ आसमान, मंजुल पब्लिशिंग हाउस प्रा0वि0, 10 निशात् कालोनी, भोपाल, इण्डिया संस्करण-प्रथम, 2009, अनुवादक - सुरेश स्वप्निल, पाठ - शुरूआती असर, पृष्ठ-14-17.
- ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम अरूण कुमार तिवारी: हमारे पथ-प्रदर्शक, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002, संस्करण-2006. अनुवाद - सचिन सिंहल, खण्ड-2, पथ प्रदर्शक, पृष्ठ-95. 96.
- महेन्द्र कुलश्रेष्ठ: झोपड़ी से राष्ट्रपति भवन तक, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006, संस्करण-2006, पाठ - भूमिकोपरान्त, पृष्ठ-10.
- एम0पी0 कमल: डॉ0 ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम, प्रेरणा उपलब्धियों एवम् मिशन, विजय पब्लिशर्स, गोला मार्केट दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण-2002, खण्ड-प्रेरणाएँ, पृष्ठ-43.
- ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम 'अग्नि की उड़ान', प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002, संस्करण - 2006, अनुवाद - आर्येन्द्र उपाध्याय, खण्ड-दो पृष्ठ-35.

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका- एक अध्ययन

अमरनाथ वर्मा

सहायक आचार्य, (राज. वि.) एस एन के पी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीम का थाना, (सीकर)

सारांश- लोकतन्त्र मानव गरिमा, व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं समानता, राजनीतिक निर्णयों में जन भागीदारी के कारण शासन का श्रेष्ठतम रूप माना जाता है। लोकतन्त्र राजनीतिक परिस्थिति या शासन चलाने की पद्धति मात्र नहीं हैं अपितु यह सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थिति भी है। लोकतन्त्र एक विशेष प्रकार का शासन, एक विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था, एक विशेष मनोवृत्ति एवं जीवन जीने की विशिष्ट पद्धति भी है। लोकतन्त्र का सार जनता की सहभागिता एवं नियंत्रण में निहित है। लोकतन्त्र का आधार शासन में जनसहभागिता के साथ ही शासन का निम्न स्तर तक विकेन्द्रीकरण है, उसी भावना का साकार स्वरूप पंचायतीराज व्यवस्था है। गांधीजी ने अपने अन्तिम सार्वजनिक लेख वसीयतनामे में लिखा है कि सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे 10-20 आदमी नहीं चला सकते, वह तो नीचे से गाँव के हर आदमी द्वारा चलाई जानी चाहिए।

कुंजी- लोकतन्त्र, स्वतन्त्रता, राजनीतिक, शासन, सामाजिक।

प्रस्तावना- ग्रामीण समाज में राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं की क्या स्थिति है उनकी पंचायती व्यवस्था में कितनी सहभागिता है उनकी इस भूमिका का वास्तविक मूल्यांकन किया गया है क्योंकि महिलायें भी ग्रामीण समाज की आधी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती हैं अतः उनकी वास्तविक सहभागिता होना बहुत आवश्यक है, भारतीय संविधान का 73वाँ संवैधानिक संशोधन महिलाओं के अंदर दबी हुई शक्ति को ऊपर उठाने का सार्थक कदम था। इस संशोधन के द्वारा जहाँ एक ओर पंचायती व्यवस्था को देश के लोकतांत्रिक प्रशासन के तृतीय सोपान के रूप में संवैधानिक स्वीकृति प्राप्त हुई वहीं दूसरी ओर महिलाओं के अस्तित्व और अधिकार को भी स्वीकार किया गया अतः एटा जनपद के ग्रामीण क्षेत्र को चुना गया कि इस क्षेत्र में उनकी वास्तविक सहभागिता क्या है तो पाया गया कि ग्रामीण क्षेत्र की महिलायें कम ही जागरूक हैं कुछ ही महिलायें हैं जो जागरूक हैं और अपना कार्य सही ढंग से कर रही हैं एटा जनपद के ग्रामीण क्षेत्र में जो कमियाँ उभर कर हमारे सामने आयी हैं वे ग्रामीणों में संकीर्ण मानसिकता एवं महिलाओं में शिक्षा का अभाव और जनप्रतिनिधियों के प्रशिक्षण के अभाव आदि कारणों से हैं। अधिकांश गाँवों में महिला जनप्रतिनिधियों से विचार-विमर्श के दौरान पाया गया कि उनकी कार्यक्षमता जागरूकता, और बदलाव धीरे-धीरे बढ़ रही है।

भारत में महिलाओं की विशाल संख्या अधीनता तथा उपेक्षित वर्ग का जीवन बिता रही है और इसी कारण समाज में विषमता बढ़ रही है। हालांकि महिलाएं अब बड़ी संख्या में आर्थिक एवं राजनैतिक क्रियाकलापों तथा परिवर्तन की प्रक्रिया में भाग ले रही हैं, पर वास्तव में न तो वे इससे लाभान्वित हो रही हैं और न ही वे अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए इस बदलाव की प्रक्रिया को नियंत्रित करने में सक्षम हैं। स्थानीय शासन की इकाईयों में ऐसा बहुत ही कम होता है कि ग्रामीण महिलाएं प्रत्यक्ष रूप से स्वयं अपने बलबूते पर ही निर्वाचित हों। जबकि अधिकांशतः यह देखा जाता है कि जो महिला प्रतिनिधि निर्वाचित होती हैं उसमें उसके पुरुष परिवारजनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रस्तुत अध्ययन में उत्तराखण्ड राज्य की त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की महिला प्रतिनिधियों के आनुभाषिक प्रमाणों के आधार पर राज्य में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक स्थिति एवं राजनीति में भागीदारी एवं सक्रियता की प्रकृति का परीक्षण किया गया है।

प्राचीन भारत ही भारत में ग्रामीण प्रशासन प्रचलित था। रामायण महाभारत काल के साहित्य में सभाओं, समितियों तथा गांवों का उल्लेख मिलता है। प्रो० अल्तेकर के अनुसार “अति प्राचीन काल से ही भारत के ग्राम शासन व्यवस्था की धुरी रहे हैं।” शुक्र ने गांवों की परिभाषा देते हुए बताया है कि “जहाँ से एक सहस्र चाँदी के पण की आय हो वह गाँव है।” “त्रिस्तरीय व्यवस्था के अन्तर्गत ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद की स्थापना की गयी है। पंचायती राज व्यवस्था के नवीन स्वरूप को राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा मान्यता मिल जाने के पश्चात् सर्वप्रथम 2 अक्टूबर 1959 में राजस्थान सरकार द्वारा इसे अपने प्रदेश में लागू किया गया। इसके पश्चात् उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश आदि राज्यों में भी इस व्यवस्था को लागू किया गया। मेघालय व नागालैण्ड को छोड़कर सम्पूर्ण देश में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की जा चुकी है।

भारत की अधिकांश आबादी गाँवों में रहती है। भारत के गांवों की पंचायती राज प्रणाली दुनिया में जमीनी स्तर पर लोकतन्त्र का अनोखा और नायाब उदाहरण है। यह ग्रामीण समाज को अपनी जरूरतों और विकास सम्बन्धी प्राथमिकताओं का स्वयं निर्धारण करने का अवसर प्रदान करती है। भारत देश की ग्रामीण आबादी का लगभग आधा हिस्सा ग्रामीण महिलाओं का है। संविधान के अन्तर्गत पंचायत में ग्रामीण महिलाओं को 33 प्रतिशत भागीदारी का अधिकार प्राप्त है। यद्यपि इसके बावजूद ग्रामीण महिलाओं को उनकी वास्तविक भागीदारी आज भी प्राप्त नहीं हो पाई है। आरक्षण के बावजूद सत्ता के छद्म उपयोग की विषम परिस्थिति विनिर्मित हुयी है। स्पष्ट प्रशासनिक निर्देशों के उपरान्त भी प्रधानपति या अन्य रिश्तेदार उनके अधिकारों का छद्म उपयोग करते देखे गये

जा सकते हैं। इसके अलावा विकास कार्यों के प्रति जागरूकता का अभाव और छद्म सत्ता केन्द्रों के उदय के कारण महिलाओं की पंचायती राज में प्रस्थिति कमजोर हुई है। इसके अनेक कारण हैं जैसे महिला अशिक्षा, राजनीति अनुभवहीनता, राजनीतिक चेतना का अभाव व अधिकार प्राप्ति हेतु उत्साह की कमी।

आज भारतीय ग्रामीण क्षेत्र की आबादी में अहम व बड़ा हिस्सा महिलाओं का है। सभी ग्रामीण महिलाओं की स्थिति एक समान नहीं है। क्षेत्र के अनुसार उनकी अलग-अलग आवश्यकताएँ होती हैं। ग्रामीण और शहरी महिलाओं के बीच भी बड़ा अंतर विद्यमान है। कुल कार्य में ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी 30 प्रतिशत है (2011 की जनगणना के अनुसार) यह स्थिति शहरी महिलाओं की कार्य में भागीदारी 15.4 प्रतिशत (2011 की जनगणना के अनुसार) से अधिक है। लेकिन कार्यक्षेत्र में इतनी अधिक भागीदारी के उपरान्त भी ग्रामीण महिलाओं को जो लाभ मिलने चाहिये थे वे नहीं मिल पाये। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू का कथन है कि महिलाओं की स्थिति ही देश के विकास को सूचित करती है लेकिन भारत में आज भी खासतौर से ग्रामीण महिलाएँ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उत्थान की मुख्यधारा से जुड़ने में रूकावटें महसूस करती हैं।

भारत की 71.2 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है। भारत के गाँवों की पंचायती राज प्रणाली दुनिया में जमीनी स्तर पर लोकतंत्र का अनोखा और नायाब उदाहरण है। यह ग्रामीण समाज को अपनी जरूरतों और विकास सम्बन्धी प्राथमिकताओं का स्वयं निर्धारण करने का अवसर प्रदान करती है। पंचायती राज जब से स्थापित हुआ है, तभी से इसकी व्यवस्था, कार्यप्रणाली और उससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर विपुल साहित्य प्रकाशित हुआ है। विभिन्न समाजशास्त्रियों ने पंचायती राज पर अनेक अध्ययन किये हैं। जिसमें अनेक अध्ययन पंचायत में निर्वाचित महिला सदस्यों की भूमिका पर भी किये गये।

के0सी0 विद्या (1997): आपने महिलाओं को स्थानीय स्तर पर राजनीतिक शक्ति प्रदान करने के संदर्भ इन्द्रियानुभाविक अध्ययन किया। यह अध्ययन कर्नाटक के बैंगलोर ग्रामीण जिले की महिला प्रतिनिधियों के सर्वेक्षण पर आधारित है। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि महिला नेतृत्व का चूँकि यह पहला राजनीतिक अनुभव है, अतः उनकी पंचायतों में कार्य प्रणाली व भूमिका के निर्वहन में अपेक्षित स्थिति का प्राप्त होना अभी शेष है।

विविन्द कुमार सोनी (2000: 29) आपके अनुसार निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की अनेक उपलब्धियाँ हैं जिससे सामाजिक परिवर्तन की झलक साफ दिखाई देने लगी है। कुछ संक्षिप्त विवरण महिलाओं के कार्यों और निर्णयों की आश्चर्यजनक तस्वीर पेश करते हैं। अपने लेख में श्री सोनी ने महिला सशक्तिकरण में बाधाओं का भी उल्लेख किया है। वह लिखते हैं कि अनेक स्थानों पर जब महिला प्रतिनिधि अपनी जागरूकता का परिचय देने आगे आती हैं और अधिकारों के प्रति उत्सुकता दिखाने की कोशिश करती हैं तो ग्रामीण समाज का अधिकांश दबंग पुरुष वर्ग उनका अनेक प्रकार से शोषण करता है और अमानवीय व्यवहार करता है।

डॉ. लक्ष्मी राजी कुलश्रेष्ठ (2001: 13-16) इन्होंने अपने लेख “पंचायती राज और महिलाएँ” में लिखा है कि पंचायती राज व्यवस्था में महिला आरक्षण के फलस्वरूप अब महिलाओं की मनः स्थिति बदल रही है। वे अब अपना पक्ष पूरी निर्भिकता तथा निष्पक्षता से बैठकों में रखने लगी हैं। पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी से उन्हें एक नया परिवेश मिल रहा है। जो उनके लिए प्रगति और विकास के द्वार तो खोल ही रहा है, पुरुष तथा स्त्री के बीच समाज में जो सामाजिक विषमता है उसमें भी कमी हो रही है।

पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के 33 प्रतिशत आरक्षण व कुछ राज्यों द्वारा 50 प्रतिशत आरक्षण के बावजूद निर्वाचित महिला प्रतिनिधि ग्राम पंचायतों में कोई कारगर भूमिका नहीं निभा पा रही है। इसका एक कारण तो यह है कि उनके पास गाँव के प्रशासन के लिए उपयुक्त जानकारी व पर्याप्त कौशल प्राप्त नहीं है। जिसके फलस्वरूप उनके पति ही पंचायत के कर्ताधर्ता बन जाते हैं। हालाँकि आरक्षण के बावजूद सत्ता के छद्म उपयोग की विषम परिस्थिति विनिर्मित हुयी है। स्पष्ट प्रशासनिक निर्देशों के उपरान्त भी प्रधानपति या अन्य रिश्तेदार उनके अधिकारों का छद्म उपयोग करते देखे जा सकते हैं। इसके अलावा विकास कार्यों के प्रति जागरूकता का अभाव और छद्म सत्ता केन्द्रों के उदय के कारण महिलाओं की पंचायती राज में प्रस्थिति कमजोर हुई है। इसके अनेक कारण हैं जैसे महिला अशिक्षा, राजनीति अनुभवहीनता, राजनीतिक चेतना का अभाव व अधिकार प्राप्ति हेतु उत्साह की कमी। इसके अतिरिक्त आर्थिक रूप से पराश्रितता, कार्य करने की स्वतंत्रता को प्रभावित करती है। भारतीय ग्रामीण समाज की सामाजिक रीतियाँ, विश्वास तथा रूढ़ियाँ जो समाज पर सामाजिक नियंत्रण लागू करते हैं, उनके व्यक्तित्व के विकास में बाधक हैं। इसके अलावा भारत के पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता, पारिवारिक पुरुषों का अहम् और पुरुषों पर महिलाओं की निर्भरता ग्रामीण पंचायत बैठकों में प्रतिभाग करने के लिए भी किसी पारिवारिक पुरुष जैसे पिता, पति या भाई की आवश्यकता महसूस होना। अतः कहा जा सकता है कि ग्रामीण महिला प्रतिनिधियों में किसी प्रकार की ऊर्जा, उत्साह व कर्मठता की कमी नहीं है, उनमें कर्तव्य निष्ठाव समर्पण से काम करने की शक्ति मौजूद है। पंचायतों की निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की क्षमतायें व उनके लिए आयोजित सरकारी योजनायें -

देश में पंचायती राज में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की क्षमता निर्धारण की आवश्यकता को देखते हुए महिला और बाल विकास मंत्रालय ने पंचायती राज मंत्रालय के सहयोग से 17 अप्रैल 2017 को देशभर में महिलाओं की क्षमता के निर्माण और महिला पंचायत नेताओं के प्रशिक्षण के बारे में एक विस्तृत मॉड्यूल शुरू किया। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम का उद्देश्य गाँवों के शासन और प्रशासन के क्षेत्र में पंचायतों की निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की क्षमताओं, दक्षताओं और कौशल का विकास करके उन्हें अधिकारदूसम्पन्न बनाना है। झारखंड से शुरूआत करते हुए यह प्रशिक्षण पाठ्यक्रम देश भर में विभिन्न राज्यों में राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, राज्यों के ग्रामीण विकास संस्थानों और पंचायतों की निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण प्रदान किया जायेगा। यह प्रशिक्षण प्रतिभागिता पर आधारित है जिसमें सामूहिक चर्चाओं, व्याख्यानों, प्रदर्शन, क्षेत्र का दौरा करना, कार्यशालाओं का आयोजन किया जायेगा।

महिला और बाल विकास मंत्रालय ने समाज के सबसे निचले स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में महिला प्रधानों, महिला सरपंचों व अन्य महिला प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण की देशव्यापी कार्यक्रम की शुरूआत की है। इस प्रशिक्षण से महिला सरपंचों को आम आदमी, उपेक्षित और विवादग्रस्त लोगों के लाभ की योजनाओं और कार्यक्रमों पर अमल करने में मदद मिलेगी। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम से इन महिलाओं को नेतृत्व के अगले पायदान तक पहुँचने में मदद मिलेगी।

इसके अलावा यह बताना आवश्यक होगा कि महिलाओं की सुरक्षा, बालिकाओं की शिक्षा, महिला स्वास्थ्य, रोगों से बचाव के लिए टीकाकरण और देश भर में फैली लाखों आंगनबाड़ियों के जरिए पौष्टिक आहार की समाज के सबसे निम्न स्तर एक महत्वपूर्ण मुद्दा बनता जा रहा है। महिला सरपंच इन सब में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के कार्यक्रमों का लाभ पंचायतों की निर्वाचित महिला सदस्य कितना

उठा सकती हैं? इस समय देश में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की संख्या लगभग 13 लाख है। अगर सम्पूर्ण देश की महिला सरपंचों को प्रशिक्षित कर दिया जाए तो ग्रामीण अंचल में निम्न बदलाव देखे जा सकेंगे। इससे आदर्श ग्रामों के निर्माण में मदद मिलेगी।

ग्राम पंचायतों में महिलाओं के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता संबंधी पहल आदि पर चर्चा चल सकती है और निर्णायक भूमिका अदा कर सकती है। स्थानीय विकास की कार्य योजनाओं का निर्माण करने तथा उनमें महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के उपाय कर सकती है। पुरुष वर्ग विशेषकर निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के परिवार के पुरुष सदस्यों को महिलाओं की क्षमता वृद्धि में सहायक की भूमिका निभाने की जरूरत है। यह समय की मांग है। इसमें महिलाओं के आरक्षण की सार्थकता भी निहित है।

इतनी बड़ी सामाजिक भूमिका निभाने में बहुत सी महिला प्रतिनिधियों का साक्षर न होना मुश्किल तो उत्पन्न करता है पर रुकावट नहीं, क्योंकि जिस समझदारी व सूझ-बूझ की आवश्यकता इस नई भूमिका को निभाने में है उसमें शिक्षित होना एक सहूलियत तो है पर उसकी कमी अड़चन नहीं पैदा कर सकती।

इसके द्वारा महिलाओं को भविष्य की नेत्रियों के रूप में तैयार करने में मदद मिलेगी। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को सामाजिक-आर्थिक दशा सुधारने व निर्णय लेने की क्षमता का विकास होगा। अतः ग्रामीण महिलाओं के समग्र सशक्तिकरण के पंचायती राज में उनकी भूमिकाओं को प्रभावित करने वाले सभी पहलुओं चाहे वह सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक हो, का प्रभावी सम्मिलन आवश्यक है। ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाना एक सतत प्रक्रिया है आज आवश्यकता इसी बात की है कि महिलाओं को उनकी क्षमता का अहसास कराया जाए, उन्हें इसके प्रति जागरूक किया जाए और उनका मार्गदर्शन किया जाए।

निष्कर्ष:- प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षस्वरूप हम कह सकते हैं कि महिलाएं स्वयं जागरूक एवं शिक्षित होकर अपने अधिकारों के महत्व को समझ कर यदि उनका प्रयोग करती हैं और आगे बढ़कर अपनी भूमिका को सशक्त बनाती हैं, तभी पंचायती राज में उनके 50 प्रतिशत आरक्षण का वास्तविक अर्थ साकार होगा अन्यथा केवल संख्यात्मक वृद्धि से उनकी स्थिति में गुणात्मक सुधार नहीं हो सकता है। क्योंकि 50 प्रतिशत आरक्षण द्वारा महिलाओं को नेतृत्व की कमान तो सौंपी गयी है, पर खुले तौर पर वे पराधीन हैं। वे व्यवस्था का संचालन पुरुषों की सहमति के बिना नहीं कर पाती हैं। परन्तु धीरे-धीरे उनमें परिवर्तन आया है। वे विचार-विमर्श एवं प्रशिक्षणों की सहायता से राजनीति में सक्रियता दिखा रही हैं। यदि उत्तराखण्ड में महिलाओं में यह जागरूकता आ जाए, कि वे स्वयं सब कुछ कर सकती हैं, घर संभाल सकती हैं, देश भी संभालना जानती हैं, तो महिलाओं के चेहरों पर तो रौनक लौटेगी ही, साथ ही गाँव, क्षेत्र व देश का विकास भी तीव्र गति से होगा। ऐसे कई उदाहरण हमें आँकड़ों के एकत्रीकरण के दौरान मिले जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों की इन महिला प्रतिनिधियों ने कई तरह की समस्याओं की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित किया। जिनमें कई बार समाज द्वारा महिला प्रतिनिधियों को पुरुष प्रतिनिधियों के समान महत्त्व न देकर पुरुष मानसिकता को बढ़ावा दिया जाता रहा है, तो कई बार विभागीय अधिकारियों द्वारा महिला प्रतिनिधियों में नेतृत्व क्षमता विकास व पंचायतों के काम को लेकर समय से उचित प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. भारत - प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2002 पृ० सं० 456.
2. त्रिपाठी, राजमणि, 'पंचायतीराज व्यवस्था और महिला सशक्तिकरण', कुरुक्षेत्र पत्रिका, 2001, पृ० सं० 13.
3. सिंह, निशांत, 'पंचायती राज और महिलाएं', सुनील साहित्य, दिल्ली, पृ० सं० 08
4. कौशिक, आशा, नारी सशक्तिकरण विमर्श एवं यथार्थ, प्वाइंटर पब्लिशर्स, जयपुर, 2007, पृ० सं० 123.
5. कुमार, मनीष ग्रामीण विकास में पंचायती राज की भूमिका, कुरुक्षेत्र, अगस्त 2007, पृ० सं०-27.
6. आउटलुक 2008 साप्ताहिक पंचायतों का तूफान 22-28 अप्रैल 2008; पृ० सं०-32.
7. पंचोला, राखी एवं सेमवाल, एम एम: पर्वतीय महिला एवं पंचायत राज; रिसर्च इण्डिया प्रेस, न्यू देहली, 2011, पृ० 203.

ब्राह्मणवादी प्रतिक्रिया एवं प्रतिगामिता के विरूद्ध बौद्ध धर्म का प्रगतिशील स्वर (ई. पूर्व 600 से 200 ई. पूर्व) के विशेष संदर्भ में

डॉ० राजेश कुमार सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, डॉ० राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उत्तर प्रदेश

वस्तुतः बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मणवाद के मध्य संघर्ष भारतीय इतिहास की एक सच्चाई है।¹ मौर्य साम्राज्य के पतन और ब्राह्मणों के राज्यारोहण को ब्राह्मण प्रतिक्रिया स्वरूप देखा जाता है।² यह सामाजिक और धार्मिक प्रतिक्रिया की राजनैतिक अभिव्यक्ति थी। यह सही है कि वर्णभेद और जातिभेद की व्यवस्था पर निर्णायक चोट तो बौद्ध और जैन आन्दोलन भी नहीं कर पाए परन्तु जन्म आधारित श्रेष्ठता पर सतत सवाल खड़े करते रहे।³ जाहिर है कि इससे सर्वाधिक असुविधा ब्राह्मणों को ही हुई। मनुस्मृति को इस युग की रचना माना जा सकता है।⁴ इस ग्रन्थ में ब्राह्मणों की उत्कृष्टता का उत्कट निदर्शन है।⁵ बौद्धों के द्वारा की गई क्षति की पूर्ति के निमित्त ब्राह्मणों को अपनी विशिष्टताओं को बनाए रखने हेतु कुछ अतिरिक्त प्रयास भी करने पड़े जिसके तहत काफी कठोर आचार संहिता का प्रतिपादन हुआ।⁶ यह कुपित नियमन था एवं स्वाभाविक रूप से इसकी गाज शूद्रों एवं वैश्यों पर ही गिरनी थी। अपने विशिष्ट ज्ञान के आधार पर इन्हीं का सर्वाधिक शोषण करते थे, तो अब और अधिक विशिष्टता के तर्क पर और अधिक शोषण होने लगा। बुद्ध के विचार-प्रचार और अशोक के सदाशयी क्रियान्वयन से निम्नवर्णों की बेहतरी की जो कुछ भी थोड़ी आस बंधी थी, उसे सिर से खारिज कर दिया गया।

अशोक की धारणा थी कि धर्म के प्रचार से मानव देवताओं से मिलेंगे।⁷ इसी धारण के तहत धर्म महामात्रों ने जनजातीय लोगों के बीच धर्म का प्रचार भी किया। जो धर्म प्रचारित हुआ रहा होगा, शरीर उसका जो भी रहा हो, उसकी आत्मा में बौद्ध धर्म ही बसता रहा होगा, जिससे प्रभावित होकर विशाल जनजातीय समुदाय सभ्य समाज की ओर प्रस्थान करता है। खाद्य संग्राहक न रह कर करद कृषक बनता है। यह उत्संस्करण की सुविचारित नीति थी।⁸ यानी धन और जन पर सुनियोजित कब्जा। इस तरह अशोक के राजनैतिक प्रभामण्डल के तले यह बौद्धों की सुविचारित नीति का सूत्रपात था कि अधिकाधिक लोग भेदभाव रहित धर्म भी स्वीकार करें और राजस्व भी दें ताकि राजनैतिक शक्ति भी बढ़े।

परन्तु इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ही ब्राह्मण समाज शकों एवं यवनों को अपने में समाहित करता है। वे उत्कृष्ट योद्धा थे। और विजेता थे। इस आधार पर उनकी सामाजिक और राजनैतिक हैसियत थी। वैसे इस म्लेच्छ वर्ग का स्वाभाविक सम्मिलन तो बौद्धों के साथ होना चाहिए था क्योंकि वहां तो जाति-वर्ण, ऊँच-नीच, जन्म कर्म का कोई विचार ही नहीं था। परन्तु ब्राह्मण धर्म झटपट इन्हें क्षत्रिय वर्ण में शामिल कर लेता है। यहाँ उनके जन्म-कर्म का कोई विचार नहीं किया जाता। तर्क यह है कि विदेशी जातियां मूलतः क्षत्रिय हैं। मनु महाराज की व्यवस्था है द्रविण, कम्बोज, यवन, शक, पहलव और खस जातियां क्षत्रिय ही थी जो क्रियालोप से एवं ब्राह्मणों के सम्पर्क में न रहने के कारण शूद्रत्व को प्राप्त हुई।⁹ परन्तु पुनश्च सम्पर्क में आने के कारण उनका क्षत्रियत्व वापस लौटा हुआ माना गया एवं उन्हें क्षत्रिय वर्ण में स्थान दिया गया। पतंजलि ने भी शकों को विदेशी होने के बाद भी अस्पृश्य नहीं माना है।¹⁰ महाभारत के अनुशासन पर्व में वर्णित है कि युद्ध कर्म करना विदेशी जातियों का मूल कर्म था। अतः उन्हें क्षत्रिय वर्ण में स्थान दिया गया।¹¹ यहां एक स्वाभाविक जिज्ञासा सप्रश्न होती है कि यदि युद्ध कर्म ही क्षत्रित्व का आधार था तो महान् धनुर्धारी कर्ण जीवन पर्यन्त सूत-पूत्र क्यों और किस आधार पर बना रहा?

विदेशी जातियों के प्रति यह सदाशयी लचीलापन कहीं आन्तरिक चुनौतियों एवं प्रतिरोधों के परिशमन हेतु बाहरी समर्थन की आवश्यकता के तहत तो नहीं था?

जीवन की व्यवस्था के संदर्भ में भी हल्की सी प्रतिक्रिया के दर्शन होते हैं। बौद्धों द्वारा श्रमण विचार धारा को पुष्ट किया गया। जैन मत भी इसी विचार धारा का पोषक था। तत्कालीन समाज में इसका बड़ा असर देखा गया क्योंकि काफी बड़ी आबादी स्त्री-पुरुष श्रमण जीवन की ओर आकर्षित हुई। यह पहले से चले आ रहे ब्राह्मण धर्म की आश्रम व्यवस्था के सिद्धान्तों के प्रतिकूल बैठता था।

बहुत संभव है कि उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप मनु ने सुव्यवस्थित गृहस्थ जीवन पर बल दिया हो। उन्होंने प्रतिपादित किया कि गृहस्थ रहते हुए ही मनुष्य धर्म और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का सम्यक् निर्वहन कर सकता है। अतः गृहस्थ आश्रम ही सर्वश्रेष्ठ है।¹² अन्यत्र भी गृहस्थाश्रम की महत्ता के प्रतिपादक साक्ष्य पाये जाते हैं।¹³ संन्यास को पापिष्ठा कहा गया है।¹⁴

ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्धों के भिक्षु जीवन के प्रति इस युग में एक नकार का भाव स्वतः ही प्रतिक्रिया का रूप लेकर उभरता है। एक तो पहले से ही ब्राह्मण संन्यासियों की अच्छी-खासी जमात थी। उस पर जैन एवं बौद्ध भिक्षुओं की बाढ़ तो वास्तव में एक बोझ थी। इसी से संदर्भित एक अन्य रोचक तथ्य विमर्श्य हो जाता है कि क्यों तत्कालीन सभी ग्रंथ चाहे बौद्ध चाहे जैन चाहे ब्राह्मण निरपवाद रूप से दान के सद्गुणों का बखान करते नहीं अघाते।¹⁵ यह परजीवी जमात के पालन पोषण का सुनियोजित अभियान था, जिसमें आश्चर्य जनक रूप से सभी धर्म सम्प्रदायों में आपसी एका के दर्शन होते हैं।

इस शोध आलेख में चयनित काल विशेष के दौरान प्राचीन भारतीय इतिहास एवं समाज की आधारशिला वर्ण व्यवस्था के विकास एवं स्वरूप को लेकर भी कुछ प्रश्न उठाए गए हैं।

प्रो. राम शरण शर्मा ने अपने वैदुष्य विवेचन में इस व्यवस्था के बारे में जो अभिमत दिया है वह ज्यादा सुसंगत प्रतीत होता है। वे किसानों, कारीगरों, भाड़े के मजदूरों और खेतिहर गुलामों के द्वारा उत्पन्न सामाजिक अधिशेष के उपभोग के निमित्त वर्णव्यवस्था को आविष्कृत पाते हैं।¹⁶

ऋग्वैदिक, उत्तर वैदिक और वैदिकोत्तर यानी आलोच्य कालावधि की और क्रमिक विकास के क्रम में अर्थव्यवस्था विकसित होती है। निर्वाह की अर्थव्यवस्था जैसे-जैसे अधिशेष और उपभोग की अर्थव्यवस्था की ओर प्रयाण करती है, वर्ण व्यवस्था उतनी ही अनुदार, संकीर्ण और जटिल होती गई है। दस्तकारी और कृषि में लौह तकनीक के प्रयोग से किसान भरण-पोषण से अतिरिक्त भी पैदा करने लगा। दस्तकारी में विकास ने किसानों को बेहतर औजार तो उपलब्ध कराए ही, उच्च सामाजिक तबके के लिए भोग-विलास के अवयव भी उपलब्ध कराए। यहीं पर ब्राह्मण विचारकों ने एक सर्वथा नवीन सामाजिक तंत्र की नींव डाली, ताकि आलोच्य कालावधि में आर्थिक प्रगति, विकास एवं विस्तार का फल मजदूरों एवं कृषकों को न मिलकर राजाओं और पुरोहितों को मिले।¹⁷ इस अदभुत सामाजिक तंत्र, व्यवस्था और संगठन को वर्णव्यवस्था कहा गया। यह जन्मगत आधारों पर लोगों को स्तरीकृत करने की मानवगत कोशिश थी,¹⁸ न कि दैवी विधान। यह ऐसी व्यवस्था थी जिसमें मूल उत्पादनकर्ता निम्नतम पायदान पर रहे और अधिशेष के व्यवस्थापक, वितरक एवं उपभोक्ता सामाजिक संगठन के शीर्ष पर विराजमान हुए। वैश्य-शूद्र श्रम पर आधारित इस सामाजिक संरचना में ब्राह्मण और क्षत्रिय, किसानों और कारीगरों द्वारा किए गए श्रम एवं तदुत्पन्न धन पर आराम की जिन्दगी जीते थे। चूंकि बौद्ध एवं जैन विचारधाराओं के 'प्रचार-प्रसार' या उस व्यवस्था के पोषकों की भाषा में कहें तो 'उकसावे' के कारण कभी-कभी इस व्यवस्था के गहरे संकट में पड़ जाने की संभावना भी सताती रही होगी। अतः यह व्यवस्था निर्बाध चलती रहे, इसके लिए पुनर्जन्म सिद्धान्त की व्यूह रचना की गई। गौतम धर्म सूत्र में गौतम ने यह प्रतिपादन किया है कि 'अनेक जातियों तथा श्रेणियों के लोग, जो सदा अपना कर्तव्य पालन करते हुए जीवनयापन करते हैं, वे मृत्यु के उपरान्त अपने सत्कर्मों का फल भोगते हैं और अपने पुण्य के अवशिष्ट भाग के प्रताप से ऐसे श्रेष्ठ देशों, जातियों तथा परिवारों में जन्म लेते हैं, जो सुन्दरता, दीर्घ जीवन, वेदज्ञान, सदाचरण, धन, सुख तथा बुद्धिमत्ता से युक्त होते हैं। जो इसके विपरीत कार्य करते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं और पुनः विभिन्न निम्न स्थितियों में जन्म लेते हैं।'¹⁹ आपस्तम्ब की व्यवस्था कुछ और आगे की है कि नीची जातियों के लोग यदि अपने विहित कर्तव्यों का निष्ठपूर्वक पालन करते हैं तो अगले जन्मों में उच्च जातियों में जन्म लेते हैं।²⁰ मनु ने व्यवस्था दी है कि वैश्य और शूद्र अपने निर्धारित कर्मों से विच्युत न हो, नहीं तो भारी दुर्व्यवस्था फैल जाएगी।²¹ लगे हाथ इन दोनों वर्णों के विहित कर्मों का भी जायजा लेते चलें, जिनमें इनका प्रधान कर्तव्य कृषि, पशुपालन, व्यापार-वाणिज्य एवं सुश्रुषावार्ता इत्यादि बताया गया है। वैश्य उत्पादन एवं समृद्धि के आधार थे परन्तु सत्ता के शीर्ष पर इनकी कोई भूमिका नहीं थी। शूद्रों की स्थिति तो अत्यन्त शोचनीय थी क्योंकि उनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के पैरों से मानी गयी है। वह सेवक वर्ग था। उच्चवर्णों की परिचर्या ही उसका प्रधान कर्तव्य था। वह इनके जूठन और छाड़न पर ही पल सकता था।²² और चूंकि यह उसके पिछले जन्मों का कर्मफल है इसलिए कुड़बुड़ाने का कोई कारण नहीं यदि कारण हो भी तो कोई औचित्य नहीं क्योंकि इस जन्म में अपने-अपने विहित वर्ण कर्मों को निर्लिप्त भाव से करते जाने पर ही अगले जन्मों में उच्चतर वर्णों में जन्म संभव था।

इस प्रकार एक ऐसी व्यवस्था को जन्म दिया गया जो जगत् और जीवन में प्रतिवाद की सीमा निर्धारित करती है²³ या यूँ कहें कि विरोधों की धार को भोथरा बनाती है। यह चालाक दिमाग द्वारा उसर भूमि में रूग्ण बीजों की अच्छे उर्वरकों के साथ खेती है। भावी जीवन में दण्ड और पुरस्कार की व्यवस्था ब्राह्मणवाद की आधारशिला है।²⁴ एक तो यह मलाई मार लेने की चालाकी थी और दूसरे, जन्म-जन्मांतरों तक उसे सुरक्षित रखने की साजिश भी थी। इसलिए जैसे-जैसे प्राविधिक शक्तियों के विकास के चलते अर्थव्यवस्था समृद्ध होती गई उसके अधिकाधिक लाभ हड़पने के लिए सामाजिक जकड़बन्दी बढ़ती गई। अधिग्रहण के मामले को लेकर पुरोहितों और राजाओं के मध्य भी वैमनस्य एवं कटुता के दर्शन होते हैं। परन्तु क्योंकि दोनों के हित एक ही थे अतः वैश्यों-शूद्रों के विरुद्ध एक जुट हो जाने की आपसी समझदारी उनमें विकसित हो गई थी।

कुछ विचार 'विवाह' नामक संगठन के स्वरूप और उसके निहितार्थों को लेकर भी मेरे मन-मस्तिष्क में उमड़ रहे हैं। विवाह चूंकि परिवार एवं समाज के लिए एक अत्यावश्यक संस्था थी; चार पुरुषार्थों में से एक 'काम' की वैध एवं मर्यादित अभिव्यक्ति थी, परन्तु फिर भी इसे प्राचीन व्यवस्थाकारों ने, मुझे ऐसा लगता है कि, उच्चवर्णों की हित साधना के लिए हथियार के रूप में व्यवहृत कर लिया लेकिन इस हित साधना में उच्च वर्णों की स्त्रियों को कुछ ज्यादा ही कीमत चुकानी पड़ी।

पहले, मातृ सत्ता और स्त्रियों की अर्थिक स्वतंत्रता का विवाह के प्रकारों पर पड़ने वाला प्रभाव विश्लेष्य हो उठा है। विवाह के आठ प्रकारों में पहले चार जो धर्म्य एवं स्वीकृत प्रकार के हैं, उनमें केवल पिता की सहमति आवश्यक है और वे पहले दोनों वर्णों विशेषकर ब्राह्मणों के लिए विहित है।²⁵ कौटिल्य इनके धर्म्य एवं स्वीकृत होने के कारणों के पीछे पितृसत्तात्मक तत्वों की प्रमुखता बताते हैं²⁶ जो उचित ही प्रतीत होती है क्योंकि अधर्म्य या अस्वीकृत प्रकार जो निम्न वर्णों के लिए विहित थे, उनमें माता एवं पिता दोनों की सहमति आवश्यक थी।²⁷ यह विमर्श का विषय है कि माता की सहमति आवश्यक होते ही अंतिम चार प्रकार अधर्म्य क्यों हो गए?

क्या इसलिए कि उच्चवर्णों की स्त्रियों को, चूंकि कोई आर्थिक स्वायत्तता नहीं हासिल थी, क्योंकि वे उत्पादन कार्यों से विलग ही रहती थी, पुरुष या पति अपने हाथों की कठपुतली आसानी से बनाए रख सकता था। अपनी जीविका एवं भरण-पोषण के लिए उच्चवर्णी स्त्रियां अपने पतियों या पुरुषों पर ज्यादा आश्रित रहती थी, भले ही ऐश्वर्य पूर्ण जिन्दगी बिताती थी, परन्तु स्वतंत्रता का उपभोग कम ही कर पाती थी। सामाजिक मामले में उनकी राय अनाधिकार चेष्टा मानी जाती थी। एक अश्लील कोशिश जो आर्यों की महान् परम्परा में अपमानजनक प्रतीत होती थी कि कोई स्त्री समाज की विधायी शक्तियों में कैसे शामिल हो सकती है। इसके विपरीत निम्नवर्णी स्त्रियां अपने पतियों के साथ-साथ उत्पादन कार्यों में लगी हुई थी। इसलिए वे रंचमात्र ही सही आर्थिक स्वायत्तता का उपभोग करती थी और अपने परिवार, अपनी जाति में, कुछ हैसियत, अपने पति से इतर भी रखती थी। उसकी भी कुछ राय होती थी जिन्हें वह कम से कम वैवाहिक मामलों में तो व्यक्त कर ही सकती थी। बौधायन का यह मत समीचीन जान पड़ता है कि वैश्यों एवं शूद्रों की पत्नियां कृषि और सेवा कार्य में लगी रहने के कारण नियंत्रण में नहीं रखी जा सकतीं²⁸। आर्यों के पुरुष वर्चस्व वाले समाज में सम्भवतः इस तत्व को आर्येतर मान कर अनादृत किया गया रहा होगा। तो प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृत साहित्य में स्त्री समानता, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' और प्रेम विवाह के अनेक उद्धरण एवं दावे

क्या सिर से ही खोखले थे? तब तो यह निष्कर्षण भी स्वाभाविक प्रतीत होता है कि धर्मोचित सामाजिक व्यवस्था कायम रखने के नाम पर उच्चवर्णों की स्त्रियों को गुलामी की स्थितियों तक धकेल दिया गया। किसी की राय का कोई महत्व न हो, ठीक है, परन्तु उसकी राय किसी चीज को अनैतिक बना जाय यह तो अपमान की पराकाष्ठा है।

विवाह के कुछ और पहलुओं पर भी गौर किया जाना चाहिए, मसलन 'तलाक' जिसकी सिर्फ अधर्म्य विवाह प्रकारों में अनुमति है। क्योंकि कौटिल्य प्रथम चार स्वीकृत विवाह प्रकारों में तलाक की अनुमति नहीं देते²⁹ यानी निजात की सूरत भी नहीं छोड़ते। पुनर्विवाह, नियोग एवं स्त्रियों के लिए पति प्रतीक्षावधि का निर्धारण बड़ा रोचक है एवं इतिहास के कुछ प्रच्छन्न पहलुओं को अनावृत्त भी करता है। विदेश गमन, व्यापारिक यात्राओं के चलते या किन्हीं कारणों से पति की प्रतिज्ञानुसार तय अवधि में नहीं लौट पाने की स्थिति यानी लम्बी अनुपस्थिति में कौटिल्य ने ब्राह्मण की पत्नी को चार वर्षों तक की प्रतीक्षावधि निर्धारित की है। पत्नी के बच्चे हों तो समय का अन्तर बनाए रखते हुए प्रतीक्षावधि बढ़ जाती है³⁰। धर्मशास्त्रों में भी कमोबेश प्रतीक्षावधि को लेकर यही व्यवस्था विहित है। परवर्ती स्मृतिकारों ने सभी वर्णों के लिए प्रतीक्षा की अवधि को और बढ़ा दिया है। नारद ने शूद्र स्त्री के लिए तो प्रतीक्षा की कोई अवधि ही नहीं रखी है।³¹

वैदिक अध्ययन के निमित्त लम्बी यात्रा पर गये ब्राह्मण की पत्नी के लिए गौतम ने बारह वर्षों तक सहवास वर्जित बताया है³²। ऐसी स्थिति में कौटिल्य ने बच्चे वाली ब्राह्मणी के लिए बारह वर्षों का समय तो निःसंतान ब्राह्मणी के लिए दस वर्षों का समय अभिहित किया है³³।

उपरोक्त स्थितियों के मद्देनजर प्रो. शर्मा ने दो विशिष्टताओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है³⁴। पहली यह कि प्रारंभिक धर्म शास्त्रों में विभिन्न वर्णों के लिए प्रतीक्षावधि परवर्ती स्मृतिकारों की अपेक्षा कम है और दूसरी निम्न वर्णों की स्त्रियों/पत्नियों के लिए प्रतीक्षा की समयावधि उच्च वर्णों की अपेक्षाकृत हर काल में कम है तथा विवाह विच्छेद भी इनमें अपेक्षाकृत आसान था।

उनके पहले निष्कर्षण की तर्कसंगत व्याख्या समाज में जनजातीय अवशेषों के प्रतीकों के रूप में की जा सकती है क्योंकि जनजातीय विशिष्टताओं के बचे रहने के कारण ही समाज में परिजनों की वृद्धि काम्य प्रतीत होती है। इसलिए पति की प्रतीक्षावधि कम रखी गई ताकि किसी भी तरह समागम से जन शक्ति बढ़े।

परन्तु कालांतर में वर्ण आधारित समाज जब विकसित होता है और विविध बौद्धिक व्यायामों से वैश्य-शूद्रावलम्बी व्यवस्था में धन और श्रम का उपभोग सुविधाभोगी वर्णों द्वारा यानी प्रथम दो वर्णों के सदस्यों द्वारा होने लगता है तो ऐसी व्यवस्था की जाती है कि सुविधाभोगी वर्ग कम बढ़े और सुविधाएं, प्रकारान्तर से सुविधाएं मुहैया कराने वाले, अधिक बढ़ें।

इसलिए निचले वर्णों के लिए प्रतीक्षा की अवधि कम रखी गई ताकि उनके बीच स्वतंत्र समागम के अवसर ज्यादा बढ़ें और सुविधाएं मुहैया कराने वाले लोग ज्यादा बढ़ें। शूद्रों की पत्नियों को अगर बारह वर्ष प्रतीक्षा करवाई जाए तो फिर काम करने वाले हाथ कम पड़ जाएंगे। अतः उच्च वर्णों में नियोग एवं पुनर्विवाह की व्यवस्था को भी हतोत्साहित किया गया³⁵। परन्तु शूद्रों के लिए इसकी अनुमति दी गई³⁶। उच्च वर्णों में विधवा विवाह को या नियोग प्रथा को मान्यता देने का मतलब था सुविधा भोगी वर्ग की संख्या में वृद्धि और शूद्रों के लिए इसे अभिहित करने का तात्पर्य था सुविधाओं में वृद्धि के अवसरों का खुलना। समान वर्ण में विवाह³⁷ पर इसीलिए बल दिया गया कि ऊपरी वर्णों का निम्न वर्णों से सम्पर्क न बनने पाए³⁸। एक सुविधाजनक दूरी बनी रहे और अगर अन्तर्वर्णी विवाह हो तो प्रथम दो वर्णों का आपस में ही हो³⁹।

यह बड़ा रोचक प्रतीत होता है कि विवाह नामक संस्था का भी सुविधाभोगी उच्च वर्णों या कहे ब्राह्मण धर्म के व्यवस्थाकारों ने अपने हित-पोषण में किस चालाकी से इस्तेमाल किया। वस्तुतः यह मानसिकता भारतीय रेल यात्रियों की मानसिकता है कि हम तो घुस ही गए अब और कोई-न घुसने पाए। हर नया यात्री पहले से जमें लोगों की जगह तंग करता हुए प्रतीत होता है। वह यह भूल जाता है कि अभी पिछले स्टेशन पर वह स्वयं कितनी मुश्किलों से चढ़ा था। इसी तरह इस ब्राह्मणवादी व्यवस्था में सुविधाभोगी वर्ग सीमित संख्या चाहता है, क्योंकि हर नया व्यक्ति उसे अपनी सुविधाओं में सेंध लगाता और हिस्सा हड़पता नजर आता है। इसलिए ब्राह्मणों क्षत्रियों की पत्नियों के लिए पति की प्रतीक्षा की अवधि अधिक रखी गई, वैश्यों और शूद्रों की अत्यल्प। शूद्रों की तो कभी-कभी नहीं ही, ताकि कम से कम सुविधा भोगी अधिक से अधिक सुविधाओं को भोग सकें।

यह शोध आलेख तत्कालीन शिक्षा की दशा और दिशा, उसके स्वरूप एवं क्रियान्वयन तथा उसके नियामकों की मंशा की पड़ताल की उत्प्रेरणा स्वरूप भी लिखा गया है। हिन्दू समाज के व्यवस्थाकारों ने प्रायः एकजुट होकर संस्कारों की संख्या सोलह बताई है।⁴⁰ इनमें से एक प्रमुख संस्कार 'उपनयन' भी था, जिसका सीधा सम्बंध व्यक्ति के बौद्धिक उत्कर्ष से है⁴¹। परन्तु यह 'शूद्र' को छोड़ कर तीनों वर्णों के लिए था जिन्हें 'द्विज' भी कहा जाता था। वस्तुतः यह संस्कार सिर्फ द्विजों के लिए था शूद्रों के लिए नहीं⁴²। अर्थात् जिस संस्कार का सीधा संबंध व्यक्ति के 'बौद्धिक उत्कर्ष' से था, उससे शूद्रों को वंचित रखा गया, क्यों? आपस्तम्ब धर्मसूत्र में शूद्र को उपनयन और वेदाध्ययन से वंचित रखा गया है⁴³।

वैसे तो किसी भी शूद्र परन्तु विशेषतः चाण्डाल की उपस्थिति मात्र से वैदिक पाठ बंद कर दिए जाते थे⁴⁴। कोई भी शूद्र न तो वैदिक मंत्रों का श्रवण कर सकता था और न ही उनका उच्चारण क्योंकि गौतम ने ऐसी व्यवस्था दी है कि वैदिक मंत्रों को सुनने वाले शूद्र के कान में टीन या लाख का गला हुआ गरम पदार्थ डाल देना चाहिए, वैदिक ऋचाओं का पाठ करने पर शूद्र की जिह्वा काट ली जानी चाहिए परन्तु यदि उसे वे मंत्र याद रह गए हों तो उसके शरीर के टुकड़े कर दिए जायें⁴⁵। विशिष्ट ने भी शूद्रों को धर्म संबंधी कोई भी ज्ञान रखने के सर्वथा अयोग्य घोषित किया है⁴⁶। मनुस्मृति में भी शूद्र के आस-पास वेद पाठ निषिद्ध बताया गया है। आज की भाषा में कहें तो यह सारी की सारी कवायद सिर्फ इसलिए थी कि उस विशिष्ट ज्ञान से शूद्रों को वंचित रखा जाए जिसके आधार पर यह शोषण तंत्र चल रहा है। उन्हें इस खेल के नियम ही न पता चले, क्या पता, कभी वे भी खेलने लगे। आधुनिक संदर्भों से जोड़कर इसे देखें तो यह 'ज्ञान का पेटेन्टीकरण' था जिसके आधार पर ब्राह्मण अपनी विशिष्टता बनाए रखना चाहते थे।

खैर ये तो वे लोग थे जिन्हें शिक्षा दी ही नहीं जाती थी परन्तु जिन्हें दी जाती थी उनके चयन का आधार ऋग्वैदिक युग में भले ही उनकी ज्ञान पिपासा, जिज्ञासा एवं उनकी वृत्ति रही हो⁴⁸ परन्तु आलोच्य कालावधि के समाप्त होते-होते शिष्य की आर्थिक स्थिति उसके चयन के लिए आवश्यक योग्यताओं में परिगणित हो गई।⁴⁹ तुलसीदास की पंक्तियां उतनी पहले भी कितनी समीचीन जान पड़ती है 'हरई शिष्य धन शोक न हरई' यानि शिष्य की चिन्ता, उसका

शोक, उसकी ज्ञान पिपासा शान्त करना गुरु उद्देश्य नहीं रहा अपितु येन केन प्रकारेण धन हरण प्रधान लक्ष्य बन गया।

शारीरिक श्रम के प्रति घृणा का भाव अधीत काल की एक और विशेषता है जो कुछ अतिरिक्त विश्लेषण की मांग करती है। गौतम की व्यवस्था है कि यदि कोई आर्य किसी आर्येतर (यानि शूद्र) व्यवसाय के आधार पर जीवनयापन करता है तो वह भी उसी स्थिति को प्राप्त होता है।⁵⁰ बौधायन का मत है कि जो ब्राह्मण शिल्पी, अभिनेता या सूदखोर हो, व्यापार और पशुपालन से जीविका चलाए उसके साथ शूद्र जैसा बर्ताव हो⁵¹। तात्पर्य यह कि शारीरिक श्रम से जीविकोपार्जन ब्राह्मण से उसका ब्राह्मणत्व छीन लेता है और वह शूद्रवत समझा जाता है। प्रो. शर्मा की स्थापना उचित ही प्रतीत होती है कि धीरे-धीरे शारीरिक श्रम के प्रति उच्चवर्णी लोगों की घृणा इतनी बढ़ गई कि वे दस्तकारी से घृणा करने लगे और कुछ दस्तकारों को तो अछूत ही समझा जाने लगा⁵² जैसे रथकार, जिसकी चर्चा अस्पृश्यता के संदर्भ में बहुश्रुत है। अस्पृश्यता की भावना शारीरिक श्रम के प्रति घृणा का विस्फोट है।

महात्मा बुद्ध का अविर्भाव, उनके विचार, उनका प्रचार-प्रसार, जहां तक मेरी समझ है, बहुत निर्णायक सिद्ध हुआ। उन्होंने समाज को अर्थव्यवस्था की मांग के अनुरूप ढाला तो अर्थव्यवस्था को भी समाज को गतिशील एवं प्रगतिशील चरित्र देने में मौलिक उपकरण के तौर पर इस्तेमाल किया। प्रो. शर्मा के कथन से एक बार फिर मेरी सहमति बनती प्रतीत होती है कि 'बौद्धधर्म को लौहकाल के द्वितीय चरण द्वारा निर्मित भौतिक वातावरण के उत्पाद के रूप में देखा जा सकता है'⁵³।

बौद्ध धर्म की कुछ मान्यताएं ऐसी थीं जो बदलती परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल थीं या कहें कि स्थितियों को बदलाव के लिए उत्प्रेरित कर रही थी। अब जैसे व्यापार वाणिज्य से संबंधित गतिविधियों को ही लें जो ब्राह्मण दृष्टिकोण बहुत प्रदर्शित नहीं करता। ऋग्वेद में ही हम 'पणि' लोगों का उल्लेख पाते हैं⁵⁴। जिन्हें तमाम मत मतान्तरों के बावजूद व्यापारी ही मानना युक्तियुक्त प्रतीत होता है⁵⁵ और कई जगह इनकी निकृष्टतम निन्दा करते हुए इन्हें कजूस, अयज्ञीय, एवं दस्यु बताया गया है⁵⁶। स्पष्ट है कि आलोच्य कालावधि से पहले भी व्यापार के प्रति कोई उदार रवैया नहीं था परंतु आलोच्य कालावधि में भी हम धर्म सूत्रों की व्यवस्था पर विचार करें तो व्यापार-वाणिज्य करने वालों को बहुत अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा का उपभोग करते हुए इन्हें नहीं पाते हैं। एक तो यही कि इससे सम्बद्ध लोग 'वैश्य' तीसरी श्रेणी में आते थे। बौधायन अंग और मगध के लोगों की निन्दा समुद्र यात्रा, मदिरापान एवं व्यापार कर्म में उनकी संलिप्तता के कारण करते हैं⁵⁷। समुद्र यात्रा, जिसकी उपयोगिता व्यापार के लिए असंदिग्ध है, बौधायन उसे पाप कर्म के रूप में निन्दित बताते हैं⁵⁸ और प्रकारान्तर से व्यापार वाणिज्य को हतोत्साहित करते हैं।

इसके विपरीत बौद्ध शिक्षाओं में व्यापारी या दुकानदार की उन्नति के अनेक सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं, जैसे एक व्यापारी से अपेक्षा है कि वह दृष्टि, चातुर्य तथा विश्वास करने कराने में सक्षम हो⁵⁹। दृष्टि उसे किसी वस्तु पर लाभ आंकने की क्षमता देती है⁶⁰, चातुर्य उसे माल बेच देने की क्षमता देती है⁶¹ और समय पर ब्याज सहित ऋण की अदायगी उसकी साख को कायम रखती है⁶²। इन गुणों से युक्त व्यापारी धनवान एवं महान् होता है। एक भिक्षु से भी इन गुणों को आत्मसात करने की अपेक्षा की गई है ताकि वह एक 'आदर्श' उपस्थित कर सके⁶³। एक व्यापारी से भिक्षु की तुलना अन्यत्र भी बड़ी रोचक बन पड़ी है कि जैसे एक दुकानदार अपने कर्तव्यों के प्रति लापरवाह होकर अवनति को प्राप्त होता है, उसी तरह भिक्षु भी अपने दैनन्दिन कर्मों से विमुख होकर अपनी अवस्था से च्युत हो जाता है।⁶⁴

एक तो व्यापारियों की उन्नति की कामना, उनके लिए नुस्खे तजबीज करना, अपने आप में व्यापार-वाणिज्य के समर्थन का साक्ष्य है, परन्तु उनके हर क्रिया कलाप को भिक्षुओं की आचार संहिता से जोड़ देना तो उसे एक पवित्र और उत्तमतम स्तरों पर स्थापित कर देना है जो ब्राह्मण दृष्टिकोण से तुलना करने पर एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव की यात्रा प्रतीत होती है।

ऋणों के लेन-देन को लेकर भी बौद्ध एवं ब्राह्मण दृष्टिकोण में अंतर परिलक्षित होता है। बौद्ध दृष्टिकोण ऋणों के लेन-देन को प्रोत्साहित करता नजर आता है⁶⁵। इस पर कुछ तफसील में जाकर विचार करने की आवश्यकता है⁶⁶। परन्तु ब्राह्मण व्यवस्थाकारों ने कोई प्रोत्साहन तो नहीं ही उल्टे ऋण और ब्याज की व्यवस्था को कुछ हतोत्साहित ही किया।⁶⁷ ऋण पर ब्याज की अत्यधिक ऊँची दरें शायद इस व्यवस्था के प्रति विरोध स्वरूप ही रखी गई थीं⁶⁸ तात्पर्य यह कि ब्राह्मण विचारधारा एक बार फिर नवीन परिवर्तनों के साथ समायोजन नहीं बैठा पाती और प्रतिगामिता के पाले में बैठी दिखाई पड़ती है। वस्तुतः ऋण और ब्याज की व्यवस्था ने तो व्यापार और वाणिज्य को बढ़ावा ही दिया और बौद्ध शिक्षाओं ने इसे प्रोत्साहित किया; नवीन परिवर्तनों के अनुकूल माहौल बनाया।

आलोच्य कालावधि की एक और विशिष्टता 'नगरीकरण' भी ब्राह्मण विचारकों को रास नहीं आती है। आपस्तम्ब ने लिखा है कि 'उसे चाहिए कि नगरों में न जाए'⁶⁹। बौधायन कुछ और कड़े शब्दों में विरोध करते हैं "जो धूल से भरे शहरों में निवास करता है, उसके लिए मोक्ष प्राप्ति असंभव है"⁷⁰। वस्तुतः धूल से भरे शहरों में निवास की मनाही पर्यावरणीय चिन्ता एवं तद्व्यतिरिक्त जागरूकता का परिणाम नहीं थी अपितु परम्परागत ब्राह्मणवादी विचारधारा को नगरीय जीवन से मिलने वाली चुनौतियों को सिरे से समाप्त कर देने की साजिश थी। नगरों का अभ्युदय कृषक समाज द्वारा संचालित भेदपरक ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर एक करारी चोट की तरह था। गांवों में बसने वाला कृषक समाज और उसकी मान्यताएं शहरों में निवास करने वालों के व्यापारिक औद्योगिक समाज की मान्यताओं से भिन्न तो होनी ही थी।

उच्चवर्णी लोगों के लिए आपस्तम्ब ने यह व्यवस्था दी है कि वे दुकानों में बना खाना न खाएं⁷¹। यह नियमन नगरों की आम विशेषता, भोजनालयों के प्रति तिरस्कार का भाव दर्शाता है। शहर सबसे पहले बाजार होता है तो दुकानें तो रहेंगी ही और जाहिर है दुकानदार भी होंगे लेकिन इन सबके प्रति ब्राह्मण विचारधारा कुछ अनुदार प्रतीत होती है। जबकि बौद्ध विचारधारा दुकानदारों की उन्नति के लिए आचार संहिता सुझाती प्रतीत होती है⁷²।

वेश्यावृत्ति, जो नगरीय जीवन की ही उपज है, के प्रति भी ब्राह्मण व्यवस्थाकारों का दृष्टिकोण बड़ा कटु प्रतीत होता है। बौधायन⁷³ किसी वेश्या द्वारा प्रदत्त भोजन ग्रहित बताते हैं तो गौतम⁷⁴ भी उनसे पूरी तरह सहमत प्रतीत होते हैं। परन्तु वेश्यावृत्ति आलोच्य कालावधि में नगर-जीवन का एक अपरिहार्य अंग थी, जैसा कि प्रमुख नगरों में गणिकाओं के अस्तित्व⁷⁵ एवं उनकी सुरक्षा-संरक्षा के निमित्त राजकीय प्रयासों से अभिद्योतक होता है⁷⁶। इस सत्य को स्वीकार करता हुआ बौद्ध दृष्टिकोण ब्राह्मण विचारधारा के ठीक प्रतिकूल ठहरता है। आप्रपाली के यहां बुद्ध का निवास एवं भोजन ग्रहण एक ऐतिहासिक तथ्य है जो वेश्यावृत्ति के प्रति उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट कर जाता है। अवांछित तत्वों के संघ में प्रवेश को निषिद्ध ठहराते समय गणिकाओं को छोड़ दिया जाना⁷⁷, बौद्ध दृष्टिकोण का एक और सक्षम साक्ष्य है।

उपरोक्त विश्लेषण यह सिद्ध करता प्रतीत होता है कि ब्राह्मण विचारधारा नये युग के परिवर्तनों की हमकदम नहीं रही क्योंकि ये परिवर्तन उसकी अपनी मान्यताओं के प्रतिकूल जान पड़ते थे और थे भी। अब अर्थ एवं अर्थार्जन की प्रवृत्तियाँ समाज को गढ़ रही थी। शहरों में हर चीज बिकती थी चाहे वह स्त्री शरीर ही क्यों न हो। वहाँ वर्णगत भेद भुला दिए जाते थे। पैसा प्रमुख था। मंदिरालय, भोजनालय, वेश्यालय इत्यादि ऐसी ही जगहें थी और ये सभी, नगर एवं नागरिक जीवन की सामान्य विशेषताएँ थी। बौद्ध विचारधारा वक्त की मांग पहचानती है एवं परिवर्तनों के प्रति लचीला तथा नमनीय रूख अपनाकर अपनी जड़ें तो जमाती ही है, परिवर्तनों के स्वीकार और नकार को लेकर लोगों की नैतिक हिचक को भी समाप्त कर देती है। नवीन अर्थव्यवस्था ने जो प्रश्न उछाले थे उनका उत्तर बौद्ध धर्म में था। बुद्ध ने स्त्री, और उसमें भी विधवा तक को, परजीवी के रूप में जीवनयापन करने की छूट नहीं दी और उसे भी उत्पादन की प्रक्रिया में शामिल किया⁷⁸।

पशुबलि का बौद्धों द्वारा बहिष्कार, जीव दया एवं करुणा का मामला उतना नहीं लगता जितना कृषि आधारित अर्थव्यवस्था के अनुकूल उनकी उपयोगिता एवं तत्पश्चात् उनके संरक्षण का। कृषि में उपादेयता के चलते ही गाय बैलों की रक्षा वाले यज्ञ सम्पादित करने का विधान दिया गया⁷⁹। परंतु भोजन की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा गया था। शायद इसीलिए बौद्धों में सुअर का मांस भक्षण अधिक लोकप्रिय प्रतीत होता है। बुद्ध को स्वयं भी वैशाली के गृहस्थ उग के द्वारा सूकर मार्दव परोसा गया था⁸⁰। अगर यह अहिंसा और जीव दया की बात होती तो सुअर भी 'जीव' ही है एवं उसकी हत्या भी हिंसा ही करार दी जाती। बौद्धों और जैनों के द्वारा अपनी बातों को जन-जन तक पहुंचाने के लिए जिन भाषाओं का चयन किया गया उसके पीछे एक तो यह कारण प्रतीत होता है कि वे आम जनता की भाषा में ही अपनी बात कहना चाहते थे ताकि अपनी बोल-चाल की भाषा में जनता धर्म और दर्शन के गूढ़ रहस्यों को भी आसानी से समझ सके। बौद्धों ने मागधी भाषा को अपनाया जो बाद में 'पालि' कहलाने लगी तो जैनों ने प्राकृत भाषा को। ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत उच्चवर्गीय अभिजात लोगों की भाषा बन गई थी क्योंकि निम्न वर्गों के लोगों का तो विद्यारम्भ ही नहीं हो पाता था; ये तो द्विजातियों में ही नहीं गिने जाते थे और चूँकि वैदिक ग्रन्थ, ब्राह्मण संहिताएँ, सूत्र ग्रन्थ एवं स्मृतियाँ इत्यादि संस्कृत में ही लिखे गए हैं तथा शूद्रों को इन्हें पढ़ने की मनाही भी थी अतः स्वाभाविक है कि संस्कृत तक पहुँच उनकी हो ही नहीं सकती थी। प्राचीन नाटकों में निम्नवर्गीय लोगों एवं स्त्रियों को हमेशा प्राकृत बोलते हुए पाया जा सकता है। फलतः संस्कृत धीरे-धीरे उच्च वर्णों की भाषा बनकर रह गई। और चूँकि नये-नये जन्म ले रहे बौद्ध एवं जैन आन्दोलनों को स्थापित होने के लिए व्यापक स्वीकृति की आवश्यकता थी अतः अपनी विचारधारा के प्रचार के लिए भी व्यापक रूप से व्यवहृत भाषाओं का चयन करना पड़ा। संस्कृत का चयन इनके द्वारा इसलिए भी नहीं किया गया रहा होगा क्योंकि यह उसी विचारधारा के विरोध में खड़े थे एवं उसी के विरुद्ध जनमानस तैयार कर रहे थे जिस विचारधारा ने घोषित रूप से 'संस्कृत' को अपने लिए 'पेटेट' करा लिया था। संस्कृत के बरअक्स पालि और प्राकृत को उनके व्यावहारिक क्षेत्रों से जोड़कर यानी हीनतर मानी जाने वाली जातियों की दुनिया से जोड़कर इस संभावना पर भी विचार होना चाहिए कि कहीं यह ब्राह्मणवादी सवर्ण मानसिकता या विचारधारा के वर्चस्व को चुनौती तो नहीं थी। यह भी बड़ी रोचक तुलना है कि बौद्ध एवं जैन धर्म जनता की भाषा में जनता को प्रशिक्षित करना चाहते हैं, सभी तक बात पहुँचे इसका प्रयास करते हैं, तो ब्राह्मण धर्म में, ज्ञान को गुप्त रखने पर बल दिया जाता है कि कहीं ज्ञान का वर्जित फल सबके जीभ न लग जाए।

पुनर्जन्म संकल्पना भी बड़ी रोचक है। प्रदत्त तथ्यों के आलोक में यह सुपुष्ट होता है कि पुनर्जन्म एवं स्वर्ग-नरक की अवधारणा के व्यापक प्रचार-प्रसार के आधार पर शोषण की व्यवस्था का पोषण किया जाता था।

उपरोक्त विवेचना एक बात लगभग सिद्ध कर देती है कि बौद्ध एवं जैन धर्म नवीन युग की प्रवृत्तियों के सर्वथा अनुकूल थे एवं ब्राह्मण धर्म पुराना पड़ता जा रहा था। उसकी मान्यताएँ जिन सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में परवान चढ़ी थी, वे परिस्थितियाँ ही बदल गईं। लोग अब उनके द्वारा परिचालित होने में घुटन महसूस कर रहे थे।

ऐसे में बुद्ध का आविर्भाव एवं उनकी शिक्षाओं का प्रसार एक सुखद एहसास की तरह था जिससे लोग सराबोर होते गए और निश्चित रूप से ब्राह्मणवादी प्रतिक्रियावादिता एवं प्रतिगामिता के संकुचन की अपेक्षा बौद्ध धर्म के प्रगतिशील स्वर ने यदि तत्कालीन जन-जीवन को आकर्षित किया तो आश्चर्य क्या?

संदर्भ संकेत एवं टिप्पणियाँ

1. वी. आर. अम्बेडकर, द अनटचेबिल्स 1969, पृ 147।
2. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ 123।
3. सुत्तनिपात, 1.7.21; 3.5.57।
4. व्यूलर ने मनुस्मृति का काल ई. पू. 200 से 200 ई. तक के मध्य में माना है। ड्र., सैक्रेड बुक्स ऑफ दि इस्ट 25 प्रस्तावना, CXIV-CXVII. जायसवाल ने उसे शुंगवंश में होने वाली ब्राह्मण प्रतिक्रिया का समकालीन माना है। ड्र., मनु एवं याज्ञवल्क्य, पृ. 25-32।
5. मनुस्मृति 1.93, उत्तम अंग (मुख) से उत्पन्न होने के कारण, क्षत्रियादि से पहले उत्पन्न होने के कारण, वेदों के धारणकर्ता होने के नाते ब्राह्मण ही सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी है।
उत्तमार्गोद्भवा ज्यैष्ठ्याद ब्राह्मणश्चैव धारणात् सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः।
कई अन्य उल्लेख भी द्रष्टव्य हैं, मनुस्मृति 1.95; 1.96, 1.97, 1.99 इत्यादि।
6. विज्ञानेश्वर, याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.21; इसमें सुमन्त को उद्धृत करते हुए दुराचारी ब्राह्मण के लिए प्राणदण्ड अभिहित किया गया है।
बौधायन धर्मसूत्र, 1.10; 18.19 ब्रह्म हत्या गुरुतल्प, सुवर्ण स्तेय, सुरापान करने पर तत्प लोहे से दागकर निर्वासित कर देना चाहिए।
7. शर्मा रामशरण, प्रारम्भिक भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास पृ. 158।
8. उत्संस्करण की नीति ड्र. वही, पृ. 158।
निम्न संस्कृति के लोगों का उच्चतर संस्कृति में विलयन से सम्बंधित नीति। महाकाव्य 'रामायण' की नर-वानर मैत्री क्या उत्संस्करण की नीति ही थी? या राम के द्वारा अपने हितों के निमित्त वानरों का उपयोग कर लिया गया और उन्हें अपने समाज में अपनी नियति के साथ छोड़ दिया गया। संभव है कि वानर जाति के प्रति राम की सदाशयता रही हो परंतु इस मात्र से कुछ ठोस होता है? कितने वानरों को सुसंस्कृत बनाया गया। सामाजिक- राजनैतिक संरचना में कोई पद अथवा आधार दिया गया। सभ्य समाज के अनुरूप अनुकूलित किया गया। इसकी तुलना में कम से कम अशोक ने जरूर कुछ सदाशयी क्रियान्वसन भी किया था। भले ही राजनैतिक आर्थिक हितों के लिए ही।
9. मनुस्मृति 10 43-44

- “शनवैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रिय जातयः
वृषलत्वं गत लोके ब्राह्मणादर्शनेन च”। 10.43
“पौण्ड्रकाश्चौण्ड्र द्रविणा कम्बोजा यवनाः शकाः
पारदापहल्वाशचीना किराताः दारदाः खशाः, 10.44।
10. पतंजलि महाभाष्य 2.4.10।
 11. महाभारत अनुशासन पर्व, 33.21, 23।
 12. मनुस्मृति, 3.77।
यथा वायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।
 13. मनुस्मृति 6.10;।
यथा नदी नदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् तथैव श्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।
व्यास स्मृति, 4, 2-4; 13-14 महाभारत शान्ति पर्व, 12.6।
 14. जयशंकर मिश्र, पूर्वोक्त पृ. 231।
 15. विस्तृत विवरण के लिए दृष्टव्य।
रामशरण शर्मा, प्राचीन में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ. 159।
 16. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ. 51।
 17. विस्तृत विवरण के लिए देखें रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ. 158।
 18. आर. सी. मजूमदार, ऐन्सयेन्ट इण्डिया, पृ. 49।
 19. गौतम धर्म सूत्र 5.8.235।
 20. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, पृ. 102-3।
 21. मनुस्मृति 9.418
“वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्।
तो हिच्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत्।।
 22. अर्थशास्त्र 3.7 (वैश्या ध्यानम् यजनं दानं कृषि पाशुपाल्ये वाणिज्या च) मनुस्मृति 1.90 (पशुनाम रक्षणम् ...वैश्यस्य कृषिमेव च) गौतम धर्म सूत्र, 7.26
आपस्तम्ब धर्म सूत्र, 1.1 1-7; गौतम धर्मसूत्र, 10.54-57; गौतम धर्मसूत्र 10.57-59 सैक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट, 13, 28; दीध निकाय, 1.51; जातक, 4, 475
 23. ए. स्वीत्जर, इण्डियन थॉट एण्ड इट्स डेवलपमेन्ट 1956, पृ. 46।
 24. जे. टी. व्हीलर, ऐन्सयेन्ट एण्ड हिन्दू इण्डिया, 1961, पृ. 46।
 25. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास पृ. 74-75।
 26. अर्थशास्त्र, शामा शास्त्री संस्करण, 1924, 111.2 अन्यत्र भी द्र. गौतम IV, 14-15।
विष्णु XXIV 27-28, नारद XII, 44।
आदिपर्व, 67.10।
 27. अर्थशास्त्र 111.2;। पितृ प्रमाणश्चत्वारः पूर्व धर्म्याः मातृपितृ प्रमाणरशेषः।
 28. बौधायन धर्मसूत्र 1.20, 14-15। अनियंत्रित कलता हि वैश्य शूद्रा भवन्ति कर्षण सुश्रुषाधिकृतत्वात्।
 29. अर्थशास्त्र, 111.4। अमोक्षोर्धर्म विवाहानाम् इति।
 30. अर्थशास्त्र, 111.4।
 31. नारद XII . 108।
 32. गौतम XIVIII. 18। ‘द्वादश वर्षणि ब्राह्मणस्य विद्यासम्बन्धे’।
 33. अर्थशास्त्र 111.4;।
 34. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ. -76-77।
 35. मनुस्मृति, 9.66
‘अयं द्विर्जहि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगहित’ द्विजों के लिए इसे पशु धर्म कहकर निन्दित किया है। विधवा विवाह एवं वियोग को उच्च वर्णों के लिए गहित बताने वाले साक्ष्य अन्य भी है, मनुस्मृति, 9.63, 9.64, 9.65, 9.66, 9.67 इत्यादि।
 36. पी. वी. काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्राज, II पृ. 604 पर उद्धृत। विधवा विवाह को शूद्रों के लिए मनु ने विहित किया है। मनुस्मृति 9.66।
 37. समान वर्ण में विवाह के कई प्रसंग स्मृतियों एवं सूत्रों में पाए गए हैं यथा-गौतम धर्मसूत्र, 4.1 (गृहस्थः सदृशी भार्याः ...)। मनुस्मृति, 3.12 (सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि)।
 38. धुर्ये, कास्ट, क्लास, एण्ड आकुपेशन, पृ. 176-75 धुर्ये द्वारा बताए गए तीनों कारण (1) रक्त की पवित्रता (2) वैदिक संस्कृति की रक्षा (3) ब्राह्मणों की श्रेष्ठता स्थिर रखने की अभिलाषा निम्न वर्णों से दूरी कायम करने के प्रयासों की पुष्टि ही करते हैं।
 39. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ. 78-80 जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 343-44।
 40. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ. 289।
 41. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ. 298।

42. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ. 298।
43. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.1.1.6।
(अशूद्राणाम् अदृष्ट कर्मणामुपायनम् वेदाध्ययनं मग्न्याधेयं फलवन्ति च कर्माणि)
44. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.3.9.9; शंखायन गृह्यसूत्र, 4.7.33।
45. गौतम धर्मसूत्र। 12.4.6, (अथ हास्यवेदमुप शृण्वतस्त्र पुजं तुभ्यां श्रोतं परिपूरणमुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेदः)।
46. वशिष्ठ धर्मसूत्र, XVIII, 14.।
न शूद्राय नतिम् दधात् ...।
47. मनुस्मृति, 4.98; 4.108.।
48. ऋग्वेद 10.11.9; 9.112.1।
49. मनु का कथन है कि जिस शिष्य के पास धर्म और अर्थ नहीं है वह उसर भूमि के समान है और वहां विद्या के बीज का बपन व्यर्थ है-
धर्मार्थो यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा विद्या न वक्तव्या शंभं बीजभिवासर - 2.112
'आप्तः शक्तो अर्थदः ... अन्यत्र भी मनुस्मृति में शिष्य चयन का आधार उसकी धन देने की शक्ति को भी माना गया है।
50. गौतम धर्मसूत्र, 10.67
आर्या नार्यं योण्यं तिक्षेपे कर्मणः साम्यम्।
51. बौधायन धर्मसूत्र, 1.5.10.24; वशिष्ठ धर्मसूत्र, 2.27।
52. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ. 51।
53. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ. 179।
54. ऋग्वेद, 1.33.3; 1.124.10; 1.151.9; 1.180.7; 5.34.7, 6.51.14, 7.6.3, 10.108 इत्यादि।
55. ऋग्वेद, 2.24.6, 3.58.2, 5.7, 4.25.7, 6.13.3, 33.2.39, द्र., वि वैदिक एज. पृष्ठ 252-253।
56. द्र. उपरोक्त संदर्भ सं. 54।
57. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ.174।
58. एस. सी. बनर्जी, धर्मसूत्राज, कलकत्ता, 1962, पृ. 185।
59. अंगुत्तर निकाय, 1.116।
60. वही।
61. वही।
62. वही, 117।
63. अंगुत्तर निकाय, 1.117।
64. अंगुत्तर निकाय, 1.115-16।
65. दीर्घ निकाय, (पा. टे. सो.) 1.71-72; मज्झिम निकाय, 2.116; अंगुत्तर निकाय, 2.69; अपरंच द्र., भागचन्द्र जैन, बौ) संस्कृति का इतिहास, नागपुर, 1972, पृ. 254।
66. दीर्घ निकाय, पा.टे. - 1.71-72; मज्झिम निकाय, 2.116; अंगुत्तर निकाय, 2.69; भागचन्द्र जैन, बौद्ध संस्कृति का इतिहास, नागपुर, 1972, पृ. 2.54
67. वशिष्ठ, 2.41 के आगे
बौधायन, 1.5.10.23-25, अपरंच द्र0, प्रो. रामशरण शर्मा की पुस्तक प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ. 176।
68. गौतम, 10.6; वशिष्ठ, 10.44-48; मनु. 8.144।
69. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1.32.21।
70. बौधायन धर्मसूत्र, 2.3.6.33-34।
71. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.5.1>.14।
72. अंगुत्तर निकाय, 1.115-16-17।
73. द्र., रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ. 178।
74. गौतम धर्मसूत्र, XVII 17।
75. विस्तृत विवरण के लिए द्र0, जी. एस. पी. मिश्र की पुस्तक 'दि एज आफ विनय; पृ. 197-98; जे. सी. जैन, लाइफ इन एन्स्येण्ट इंडिया, एज डिपिक्टेड इन जैन कैनन, पृ. 165-66।
76. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ. 178।
77. जी. एस. पी. मिश्र, दि एज आफ विनय, पृ. 198।
78. अंगुत्तर निकाय, 3.37-38 इसमें कहा गया है कि विधवा को भी बुनाई तथा उनके गोले बनाने की कला ज्ञात होनी चाहिए।
79. संयुक्त निकाय, 1.76।
80. अंगुत्तर निकाय, 2, 49-47।

गांधार कला: स्थापत्य की एक विशिष्ट परम्परा

कविता लखैयार

शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

परिचय- भारत में स्वर्णिम इतिहास में गांधार कला का जन्म एवं विकास तथा प्रसार कुषाण राजवंश के इतिहास में भारत के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में स्थित गांधार प्रदेश में हुआ था। स्थापत्य की एक विशिष्ट शैली के रूप में ऐसी मूर्तिकला का विकास हुआ, जिसे गांधार कला कहा जाता है। इस कला का जन्म गांधार प्रदेश में हुआ, जहाँ ऐशिया एवं यूरोप की कई सभ्यताएँ एक दूसरे से मिलती थीं। पूर्व से भारतीय और पश्चिम से यूनानी, रोमन ईरानी तथा शक संस्कृतियों का यह संक्रम-स्थल था। सिकंदर के आक्रमण, वैक्ट्रिया शासन तथा शक, पल्लव और कुषाणों के माध्यम से भी यूनानी संपर्क गांधार में दीर्घकाल तक बना रहा। इन सबके प्रभाव से गांधार में एक ऐसी मूर्तिकला का विकास हुआ जिसे गांधार कला कहा जात है। इस कला के प्रमुख केन्द्र तक्षशिला, पुष्कलावती, नगरधर, स्वातघाटी या उड्डियान, कापिशी, बानियान तथा बाहलीक या वैक्ट्रिया थे। इन सभी प्रदेशों में स्थापत्य और मूर्तिकला का विकास देखा जा सकता है।

गांधार कला का विशेष महत्व इस तथ्य का कारण है कि इस कला में पहली बार बुद्ध की सुंदर मूर्तियाँ बनाई गईं। इसके पूर्व में सिर्फ बांध चित्र ही बनाए जाते थे। पहली बार बुद्ध भगवान के चित्र और कसौटी रंग पत्थरों से बनाई गईं। इस कला में बुद्ध एवं बोधिसत्व की मूर्तियाँ विभिन्न मुद्राओं में बनीं।

तिथि- गांधार कला के जन्म को तिथि के विषय में यद्यपि विद्वानों में विवाद है पर ऐसा प्रतीत होता कि द्वितीय शताब्दी ई० पू० तक गांधार कला का आविर्भाव हो चुका था तथा कनिष्क के शासनकाल में यह उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई थी।

विषय- गांधार कला के विषय भारतीय है पर तकनीक यूनानी (Greek) है, इसी लिए गांधार कला को इंडो-हेलेनिक (Indo&Hellenic), इंडो-रोमन (Indo&Roman) तथा ग्रीको- बुद्धिष्ट (Greekoo Buddhist) कला के नाम से भी जाना जाता है।

बौद्ध धर्म की महायान शाखा के उदय से पूर्व बौद्ध को महापुरुष मानते थे। ईश्वर का अवतार नहीं है, इस कारण महात्मा बुद्ध की मूर्ति की पूजा नहीं की जाती थी। महात्मा बुद्ध के अस्तित्व को प्रदर्शित करने के लिए उनके प्रतीकों का, जैसे उन्हें घोड़े, छत्र, सिंहासन, चरण पादुकाओं, आदि का प्रयोग किया जाता था, परंतु महायान धर्म के अंतर्गत मूर्ति पूजा भी प्रारंभ हो गई। इस प्रकार महात्मा बुद्ध की मूर्तियों का तेजी से निर्माण होने लगा। कुछ विद्वानों का विचार है कि महात्मा बुद्ध की मूर्ति का निर्माण सर्वप्रथम गांधार में गांधार कला के अंतर्गत ही हुआ, अतः इस दृष्टिकोण से गांधार कला का विशेष महत्व है।

बुद्ध की मूर्तियाँ बौद्ध केन्द्रों में प्राप्त हुई हैं। भगवान के रूप में महात्मा बुद्ध की तथा बोधिसत्व की विभिन्न मुद्राओं में मूर्तियाँ बनीं। यूनानी देवता अपोलो की मूर्ति का प्रभाव बुद्ध की चेहरे की प्रतिकृति में दिखता है।¹ शाक्यमुनि बुद्ध, प्रवर्जित बुद्ध आदि के चित्र भी इसमें बने हैं। बुद्ध के ही चित्र बने हैं तथा उनके जीवन से संबंधित 61 घटनाओं के दृश्य भी प्रदर्शित किए गए हैं। वासुदेव शरण अग्रवाल 1 के अनुसार, “इन चित्रों से सूचित होता है कि गांधार कला के शिल्पी इस दिशा में सबसे पीछे छोड़ गए थे। उन्हें बुद्ध जीवन की छोटी-बड़ी सभी घटनाओं में रुचि थी और वे मानवी गौतम के इकलौकिक स्वरूप में रुचि प्रदर्शित कर रहे थे। साथ ही बुद्ध के लोकोत्तर जीवन की ओर से भी वे निरेपक्ष न थे।” इस कला के द्वारा महात्मा बुद्ध के जीवन के घटनाचक्र जैसे, जन्म, सम्बोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन, महापरिनिर्वाण, आदि को प्रमुख रूप से प्रदर्शित किया गया है। कुछ मूर्तियों में महात्मा बुद्ध के अतिमानवीय रूप में प्रदर्शित किया गया है। लाहौर संग्रहालय की खड़ी बोधिसत्व मूर्ति अत्यंत सुंदर है। वालिन संग्रहालय की ध्यानमग्न बुद्ध की मूर्ति भी अपनी शांत मुद्रा के लिए प्रसिद्ध है। लाहौर संग्रहालय की सिंहासनस्थ खड्गधारी कुवर की ऊँची मूर्ति भी गांधार कला की अलौकिक कृति प्रतीत होती है।

यूनानी प्रभाव- गांधार कला पर यूनानी प्रभाव सुस्पष्ट है। प्रायः सभी विद्वान इस बात से सहमत हैं कि गांधार कला के अंतर्गत निर्मित मूर्तियों का विषय भारतीय है पर तकनीक यूनानी है। बुद्ध की जीवन लीला, एवं जातक कथाओं का अंकन करते समय गांधार के शिल्पियों ने ईरानी और यूनानी कला के अनेक प्रभाव और अलंकरण स्वीकार कर निर्माण किया था। अतः गांधार कला में भारत, ईरान एवं यूनान-रोम की कलाओं का अद्भुत समिश्रण हुआ। कारण इस कला के अंतर्गत निर्मित महात्मा बुद्ध का आकार-प्रकार यूनानी देवता अपोलो से मिलता है। महात्मा बुद्ध के शरीर पर वस्त्र व अलंकरण भी भारतीय नहीं हैं। अधिकांश मूर्तियाँ मांसल हैं, ओठ मोटे और आँखें दूर तक खिंची हुई दिखाई देती हैं। मूर्तियों को मोटे कपड़े पहने दिखाया गया है। महात्मा बुद्ध के ललाट पर अर्णा है। उन्हें आसनमुद्रा में दिखाने के स्थान पर सिंहासन पर आसीन तथा किन्हीं मूर्तियों में चप्पल धारण किए हुए दिखाया गया है। महात्मा बुद्ध की अधिकांश मूर्तियों में आभूषण धारण किए हुए तथा केशर्यु दिखाया गया है। इन तथ्यों से गांधार कला पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रभावित होता है। बुद्ध मूर्तियों के बाल पीछे की ओर मोड़ कर एक जूड़ा बना दिया गया है। देखने में ये मूर्तियाँ अत्यंत भव्य एवं सजीव प्रतीत होती हैं। गांधार कला को महायान धर्म के विकास से प्रोत्साहन मिला और शक- कुषाणों के काल में यह कला पनपी और विकसित हुई। बुद्ध की मूर्तियाँ तीन रूपों में मिलती हैं, बैठ हुई, खड़ी अथवा लेटी (विश्राम) करती हुई। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, “प्रतिमा शास्त्र की दृष्टि से गांधार कला की ये विशेषताएँ बुद्ध के जीवन की घटनाएँ, बुद्ध और बोधिसत्व की मूर्तियाँ, जातक कथाएँ, यूनानी देव-देवी और गाथाओं के दृश्य, भारतीय देवता और देवियाँ, वास्तु संबंधी विदेशी विन्यास,

भारतीय अलंकरण एवं यूनानी, ईरानी और भारतीय देवता और देवियाँ, वास्तु संबंधी विदेशी विन्यास, भारतीय अलंकरण एवं यूनानी, ईरानी और भारतीय अभिप्राय एवं अलंकरण इन दृश्यों को उकेरने

नाही श्री गुण गानों को कर करते हैं, ने भानगाओं में शून्य नहीं है किन्तु माननीय व्यवहार की मनीन मूर्तिगी है।

डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी ने इस विषय पर लिखा है कि, “इसमें गंगेद नहीं है कि गांधार शैली में गुप्तशैली की शक्ति और निखार, सफाई और ‘फिनिश’ नहीं आ सकी, परंतु निरुसंदेश स्वयं उस शैली की चारिकियाँ भी कुछ कम नहीं हैं।” कुमार स्वामी ने इन मूर्तियों को ‘आत्मारहित पुतले’ कहा है क्योंकि उनके दृष्टिकोण में इन मूर्तियों में जैसे गाय प्रदर्शित करने में शिल्पी असफल रहे। पर प्रो० जी० एक बनर्जी ने भी गांधार शैली के विषय में कार स्वामी के विचारों की आलोचना की है। प्रो. बनर्जी ने लिखा है कि गांधार कला की मूर्तियों को आत्मारहित पुतले कहना उचित नहीं है। बर्लिन स्थित संग्राहलय में रखी बोधिसत्व की मूर्ति के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता। अतः हम कह सकते हैं कि गांधार कला को उच्च कोटि की कला स्वीकार न करना अनुचित है।

गांधार कला की मूर्तियाँ स्लेटी पत्थर की हैं। कुछ मूर्तियाँ प्लास्टर, स्टुको एवं धातु से भी निर्मित हैं। गांधार कला के अंतर्गत स्तूपों का भी निर्माण किया गया है। ये स्तूप चबुतरों के ऊपर बनाए गए तथा स्तूपों के ऊपर छत्र भी लगाया गया, जिससे इन स्तूपों की ऊँचाई बहुत बढ़ गई। गांधार कलाके साथ दृ साथ पश्चिमोत्तर क्षेत्र में चौथ्य और स्तूप निर्माण की परंपरा भी विकसित हुई। तक्षशिला के अन्य क्षेत्रों से अनेक स्तूपों का प्रभाव मिलता है। उनमें सबसे प्रसिद्ध है। तक्षशिला का धर्मशजिका या नीर स्तूप। पुरुषपुर में कनिष्क ने में एक भव्य खूप का निर्माण करवाया।

निष्कर्ष: मूर्तिकला के क्षेत्र में गांधार कला स्थापत्य का विशिष्ट योगदान माना जा सकता है। गांधार कला स्थापत्य का सांगोपांग अध्ययन से हम पाते कि भारतीय इतिहास में कला स्थापत्य को समझने एवं जानने के लिए गांधार कला द्वारा निर्मित मूर्तियाँ एवं स्तूप अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये न एक अद्भुत मिश्रण का परिचायक हैं जो भारतीय, यूनानी, रोमन ईरानी आदि कलाओं के मेल से उत्पन्न हुई, बल्कि महात्मा बुद्ध के जीवन चरित्र तथा उनकी शिक्षाओं को समझने का अद्भूत एवं अमूल्य स्रोत है।

संदर्भ

1. मित्तल, के० के०य भारत का राजनतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2007
2. प्रसाद, कामेश्वरय भारत का इतिहास, भारती भवन पब्लिकेशन्स, पटना, 1989
3. शरण, वासुदेव एवं शरण अग्रवालय भारत का प्राचीन इतिहास, साहित्य भवन, आगरा, 1995
4. स्वामी, कुमारय भारत का सांस्कृतिक इतिहास, भारतीय प्रकाशन, चेन्नई, 1985
5. बनर्जी, प्रो० जी० एन०य भारत का प्राचीन इतिहास, राष्ट्रीय प्रकाशन, कोलकाता, 1983

दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन अलवार और नयनार

नीता लखैयार

शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

650-1200 ई0 के बीच का काल भारत के इतिहास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इस काल की अनेक महत्वपूर्ण विशेषताएँ थी। इस काल में धर्मों एवं जातियों में संकीर्णता आ गई यह सही है कि भारत का समाज वर्ण-धर्म के सिद्धान्त पर आधारित था परन्तु उनमें जाति भेद न था इस काल में लोगो को अपनी इच्छानुसार शिल्प व्यवसाय तथा पेशा अपनाने की स्वतंत्रता थी। व्यक्ति को अपने कर्म के अनुसार ऊँच या नीच वर्ण प्राप्त होता था कई वर्णों के लोगो के बीच विवाह वर्जित न था। खाने-पीने के मामले में भी लोग संकीर्ण विचारों के नहीं थे। परन्तु 650 ई0 के बाद स्थिति बदल गई। जाति भेद ने उग्र रूप धारण कर लिया जातियों में संकीर्णता आ गई। प्रत्येक जाति अलग हो गई। उनमें परस्पर व्यवहार कम हो गया एवं जात-पाँत ने भारत को बहुत हानि पहुँचाई।

इस काल में हिन्दु धर्म भारत वर्ष में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। हिन्दु धर्म का केन्द्र मध्य प्रदेश था। वहाँ से ब्राह्मणों ने बंगाल में ब्राह्मण धर्म का प्रचार किया और उन्हें वहाँ के राजाओं से भी काफी योगदान मिला। राजाओं और धनी लोगो में दान देने की रुचि थी। जो दान आता गया उससे नये नये मंदिर बनाते गए। इसी समय दक्षिण भारत में दो सम्प्रदायों का उद्भव हुआ।

अलवार (वैष्णव) “अलवार का शाब्दिक अर्थ ‘ईश्वर के गुणों में गोता लगाने वाला’ होता है। दक्षिण भारत के तमिलनाडु में अलवार सन्तों ने वैष्णव उपासना अथवा विष्णु भक्ती व्यापकता प्रदान की। वे एक स्थान से दुसरे स्थान तक विष्णु की स्तुति में भजन करते भ्रमण करते थे। लोग इनके गीतों से प्रभावित होकर इनकी और बड़ी संख्या में खींचे चले आए।

साहित्यिक ग्रंथों में 12 अलवार संतों का उल्लेख मिलता है। आरंभिक अलवार संतों में पोईगई, पुडुम और पेई का उल्लेख मिलता है। वास्तव में इन्हीं लोगो ने अलवार परंपरा की नींव रखी। जिसका विकास बाद के संतों ने किया। आरंभिक वैष्णव संतों ने विष्णु की उपासना के लिए अनेक गीतों की रचना की जिसमें विष्णु के प्रति वर्ष की भावना की उनके मक्तिगीत रियों गई। महिला सत अडाल तो अपने को विष्णु की पत्नी मानती थी। में अत्याधिक लोकप्रिय थे। अलवार संतों ने विष्णु भक्ति की व्यापक प्रदान करने क अतिरिक्त जाति प्रथा की निंदा की एवं ब्राह्मणों के वर्चस्व को चुनौती देकर समाजिक समानता की बात उठाई। बड़ी संख्या में महिलाएँ एवं निम्न जाति के व्यक्ति अलवार सम्प्रदाय से जुड़ गए।

वैष्णव संतों की परंपरा में आगे चलकर वैष्णव आचार्य हुए। इन आचार्यों ने वैष्णव धर्म के भावनात्मक पक्षों के अतिरिक्त बौद्धिक और दशीनिक पक्ष को भी उजागर किया। इन आचार्यों में नाथमुनि, रामानुज और निम्बार्क के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वैष्णव संतों को दो प्रबल विरोधियों का सामान करना पड़ा। कुमारिल भट्ट ने कर्मकाण्ड के पक्ष में बड़ी प्रबलता के साथ आवाज उठाई और शंकराचार्य ने अद्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। शंकराचार्य के अगाध पांडित्य और विलक्षण काम के कारण वैष्णवों के भक्ति आन्दोलन को बहुत आघात लगा।

गुप्त सम्राटों के वैष्णव भागवत धर्म का अनुयायी होने के कारण उनके संरक्षण में यह धर्म निर्बाध गति से उन्नति करने लगा। विष्णु के दस अवतारों में कृष्ण और वराह की पूजा का प्रचलन इस काल में हुआ।

नयनार (शैव) धर्म वैष्णव धर्म की भांति शैव धर्म भी इस युग में अत्यन्त लोक प्रिय धर्म बन गया था। इसे राजशाही समर्थन प्राप्त था। भारशिव वाकाटक, मैत्रक कदम्ब आदि वंशों के राजा शैव थे। इस धर्म को उत्पत्ति भी उत्तर वैदिक काल के अंत में हुई शैव संप्रदाय की स्थापना का श्रेय लकुलिन को दिया जाता है। उसने पाशुपात महेश्वर संप्रदाय की स्थापना की शैव संप्रदाय के अनुसार कर्ता शिव है कारण शक्ति और उत्पाद बिंदु है इस मत के चार पाद (विद्या किया. योग और चर्चा और तीन पदार्थ पति, पशु और पाश है) पति शिव है पशु जीवात्मा और पाश बचन जीव पाश से मुक्त होकर ही शिव बनता है। इस सम्प्रदाय का यह सिद्धान्त था कि संसार की परम सत्ता शिव है जो सृष्टि का न केवल निर्मित कारण है बल्कि उपादान कारण भी है। इस काल में शैव धर्म के लोगो की काश्मीर में प्रधानता थी यद्यपि वहाँ बौद्ध धर्म के लोग भी थे। शैव धर्म के प्रचार में शंकराचार्य ने बहुत महत्वपूर्ण काम किया। वे न केवल दार्शनिक हो थे, अपितु शैव धर्म के बड़े आचार्य भी थे। उन्होंने शिव की स्तुति में अनेक स्त्रोतों की रचना की। शैव धर्म के प्रचार में उन्होंने सारे देश का दौरा किया और बड़े-बड़े आचार्यों एवं पंडितों से शास्त्रार्थ भी किया और उनको हराया। शंकराचार्य न भारत के चारों कोनों में चार मठों की स्थापना की।

शैव धर्म में कई संप्रदाय बने। उनमें लिंगायत (वीर शैव) शैव सिद्धान्त और शिवाद्वैत प्रधान हैं। शैव सिद्धान्त का प्रचार विशेषकर दक्षिण के तमिल प्रदेशों में हुआ। इस सिद्धान्त के अनुयायी जगत और जीव को पृथक् सत्ता मानते थे। शिव को चर और अचर जगत का स्वामी मानते थे।

श्रीकण्ड शिवाद्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। उनका सिद्धान्त था कि वह जगत का न केवल निमित्तकार है अपितु उत्पादन कारण भी है। इसके अतिरिक्त पाशुपत और कापालिक शैव धर्म सम्प्रदाय के थे। पाशुपत सम्प्रदाय अधिक लोकप्रिय था। पाशुपत दो प्रकार के थे। एक प्रकार के जो वैदिक परंपरा के अनुकूल थे और दूसरे उसके विरुद्ध थे। उस समय काशी पाशुपत धर्म का मुख्य केन्द्र था। पाशुपत लोग यह मानते थे कि साधक को जानबुझ कर वे सब कार्य करने चाहिए जिन्हें लोग निन्दीय समझते हैं ताकि साधक कर्तव्य और अकर्तव्य के ज्ञान से ऊँचा उठ सके।

कापालिक लोग कई प्रकार के कार्य करते थे जैसे नरपुण्ड के कपाल पात्र में भोजन करना, शव की भस्म को शरीर पर लगाना, निरन्तर मदिरा पान करना और उसी में महेश्वर की पूजा करना। भैरव और चण्डिका इन लोगों के उपास्यदेव थे।

वीर शैव सम्प्रदाय के पाँच प्रवर्तक आचार्य रेणुक, दारूक, घंटाकरण, धनुकरण और विश्वकरण ने पाँच मठों की स्थापना की जिनके द्वारा लिंगायत सम्प्रदाय का सब जगह प्रचार हुआ।

इस प्रकार अलवारों और नयनारों के प्रयासों से दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन एक सशक्त आंदोलन के रूप में जन्मा और विकसित हुआ। इनके प्रयासों से दक्षिण भारत में जैन एवं बौद्ध धर्म का प्रभाव कम हुआ और वैष्णव और शैव मत का व्यापक प्रसार हुआ। अलवार और नयनार सम्प्रदाय वालों ने जाति व्यवस्था पर प्रहार कर इसके बंधन ढीले कर दिए। निम्न वर्ग के लोगों को भी इन धर्मों में स्थान दिया गया। रित्रियों के प्रति विभेद की नीति त्याग दी गई। अलवार और नयनार संतों की रचनाओं से तमिल भाषा और साहित्य समृद्ध हुआ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. बी. डी. महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ सं० - 430
2. बी. डी. महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ सं० - 430
3. बी. डी. महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ सं० 439
4. कामेश्वर प्रसाद, भारत का इतिहास पृष्ठ संख्या-126
5. बी. डी. महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ सं० 439
6. प्रो० दीनानाथ वर्मा, प्राचीन भारत का इतिहास आदिकाल से 1526 ई० तक पृष्ठ संख्या -346
7. बी. डी. महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ सं० - 440

नयी कविता में मानवीय मूल्यों की अवधारणा

डॉ० सुशीला सिंह

एसो० प्रोफेसर, भोदी० आ० क० स्ना० महाविद्यालय, लखीमपुर-खीरी (उ० प्र०)

मूल्य शब्द अंग्रेजी के वैल्यू का पर्याय है। मूलतः यह अर्थशास्त्र का पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है-विनिमय क्षमता। जो पदार्थ जीवन के उपयोगी उपादानों को उपलब्ध कराने में जितना सक्षम है, उतना ही उसका मूल्य है। आधुनिक युग में मूल्य शब्द अर्थशास्त्र तक सीमित नहीं रहा, बल्कि दर्शन, मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि का भी विषय बन गया है। आधुनिक युग में शब्दों का अर्थ विस्तार हुआ है, 'मूल्य' शब्द भी इसी अर्थ विस्तार का बोधक है।¹ आदिकाल से भारतीय चिंतक सत्य, अहिंसा, दया, दान, क्षमा, तप, श्रद्धा, शान्ति, विवेक, धैर्य, विनम्रता, शील आदि सात्त्विक गुणों की जो चर्चा करते रहे हैं उन्हें आज के सन्दर्भ में जीवन मूल्य ही मानना चाहिये। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जो प्राणिजगत के कल्याण एवं सुख शान्ति के लिये परम आवश्यक होते हैं, वही जीवन मूल्य हैं।

संस्कृत साहित्य में पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि में सहायक गुणों एवं जीवनादर्शों को मूल्य की संज्ञा से विभूषित किया गया है। आधुनिक युग मूल्य संक्रमण का युग है। काव्य में वर्णित प्रेम, दया, ममता, करुणा, हर्ष-विषाद को यद्यपि काल की सीमा में बाँधना सम्भव नहीं है, फिर भी आधुनिक औद्योगिक युग में इन मूल्यों का विघटन अवश्य हुआ है। आज पाप-पुण्य की परिभाषायें बदल गई हैं। नैतिक मूल्यों के अर्थ बदल गये हैं। भावुकता का स्थान वैचारिक शुष्कता ने ले लिया है। इतने पर भी काव्य में वर्णित सत्य, शिव, सुन्दरम की भावना ने मानव को शाश्वत् मूल्यों से जोड़ने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। स्वतंत्रता, समानता एवं विश्व बन्धुत्व की भावना आज भी प्रासंगिक है। “आज हम ऐसे संक्रान्ति युग से गुजर रहे हैं, जिसके यथार्थ की ह्रासोन्मुखी और विकासोन्मुखी प्रवृत्तियों का चरमावस्था में पहुँच गया है। एक ओर जहाँ संकट एवं ह्रास है तो वहीं दूसरी ओर अभिनव-विकास। एक ओर वर्ग-समाज की अनैतिकता, हिंसा, अनाचार, अन्याय तथा शोषण की यातनाओं से संतप्त पीड़ित, कुण्ठित मानवों का चीत्कार और आह-कराह है तो दूसरी ओर नये मानव समाज के निर्माण का उल्लास और उत्साह है। आधुनिक युग की यही वास्तविकता है, इसे साहित्य और कला में प्रतिबिम्बित करने की समस्या इस युग के साहित्यकार की सबसे बुनियादी समस्या है। नयी कविता ने इस समस्या को अपेक्षाकृत अन्य काव्यधाराओं से अधिक ईमानदारी से चित्रित करने का प्रयास किया है। अपनी ईमानदारी को कायम रखने में नया कवि कहीं-कहीं अधिक कुरुचिपूर्ण एवं अनगढ़ रूप में उपस्थित हुआ है।²

जीवन और उसके परिवेश में जैसे-जैसे परिवर्तन होता जाता है वैसे-वैसे साहित्य परिवर्तित होता रहता है। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि मूल्यों में सदैव परिवर्तन होता रहा है जिसका प्रभाव साहित्य पर पड़ता है। 20वीं सदी में मानवता की पराजय, मानव मूल्यों का अवमूल्यन इतना बढ़ गया कि मनुष्य की आत्मा खोखली हो गयी। अपनी हार को छिपाने के लिये वह झूठे सिद्धान्तों को स्वीकारने लगता है। इस सम्बन्ध में धर्मवीर भारती का यह गीत दृष्टव्य है:-

“हम सबके दामन पर दाग, हम सबकी आत्मा में झूठ,
हम सबके माथे पर शर्म, हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ
हम थे सैनिक अपराजेय, पर हम थे बेबस लाचर।”

नयी कविता में प्राचीन मूल्य नहीं दिखाई देते हैं उनका स्थान आक्रोश, असन्तोष, निराशा, अनास्था, क्षोभ, संत्रास एवं कुण्ठा ने ले लिया है। धर्मवीर भारती की कविता “जाड़े की शाम” में अवसाद एवं कुंठा को देखा जा सकता है:-

“मस्तक इतना खाली-खाली, लगता जैसे
हो कोई सड़ा हुआ नारियल”
स्व अर्थ और उत्साह छिन गया जीवन का
जैसे जीने का कोई लक्ष्य नहीं।”

नयी कविता में यत्र-तत्र आस्था एवं आशावादी स्वर भी प्रस्फुटित हुआ है। गिरिजा कुमार माथुर अपनी कविता “साक्षी रहे वर्तमान” में निराशा जन्य कुंठा एवं अवसाद से बाहर निकलने का आवाहन करते हैं:-

“बंद अगर होगा मन, आग बन जायेगा,
रोका हुआ हर शब्द, चिराग बन जायेगा।”

नयी कविता पर आरोप लगाया जाता है कि वह असामाजिक है, लोक कल्याण की भावना से रहित है। किन्तु ऐसा नहीं है। नयी कविता अपने पूर्ववर्ती जर्जर रूढ़िग्रस्त मूल्यों को तिरस्कृत करती हुई सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करते हुये नवीन मूल्यों की स्थापना करती है। नया कवि वैयक्तिक होते हुए

भी सामाजिक बंधनों में जकड़ा है। यही कारण है कि वह संयुक्त परिवार से अलग नहीं हो पाता है। उसकी यह मजबूरी इन पंक्तियों में देखी जा सकती है:-

“मैं चली जा रही हूँ ऐसे
जैसे लहरों पर विवश लाश बहती जाए।” --धर्मवीर भारती

संयुक्त परिवार की घुटन का चित्र “चाँद का मुँह टेढ़ा” में मुक्तिबोध ने भी खींचा है:-

“आँखों में तैरता चित्र एक, उर में सम्हाले दर्द
गर्भवती नारी का
कि जो पानी भरती है वजनदार घड़ों में
कपड़ों को धोती है भाड़-भाड़
घर के काम बाहर के काम सब करती है
अपनी सारी थकान के बावजूद, घर की गिरस्ती के लिये ही”

सामाजिक बुराइयों-जातिप्रथा, दहेज, बहु-विवाह, छुआछूत जैसी बुराइयों को देख कर नये कवि का मन विक्षोभ से भर उठता है, क्योंकि उसकी अन्तरात्मा में जन कल्याण का भाव है जिसके समक्ष उसकी वैयक्तिकता तिरोहित हो जाती है। केदारनाथ सिंह, शमशेर बहादुर, नागार्जुन, धूमिल आदि कवि परिवर्तित होते हुए सामाजिक मूल्यों के प्रति गहरी रूचि रखते हैं। ग्रामीण जिंदगी को छोड़कर शहरी संस्कृति को अपनाने पर जिन विसंगतियों, विद्रूपताओं और अन्तर्विरोधों का सामना करना पड़ता है। नया कवि अपनी व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम से सीधे-प्रहार करता है। अज्ञेय की ‘साँप, और भवानी प्रसाद की गीत फरोश’ कविता महानगरीय सभ्यता पर तीखा व्यंग्य है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतवर्ष में सत्य, अहिंसा, न्याय, विश्वास प्रेम जैसे मानवीय मूल्यों का हास होने लगता है और उनके स्थान पर असत्य, हिंसा, अन्याय अत्याचार, विश्वासघात, घृणा, स्वार्थ जैसी मूल्यहीनता पनपने लगी है। बृहत् मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों का हास देखकर नये कवि का मन आहत हो उठता है:-

“पर मेरा एक और जीवन है
जिसमें मैं अकेला हूँ।”

समय के परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक मूल्यों में भी परिवर्तन हुआ। प्रेम जैसा मूल्य भी अर्थहीन हो गया। ‘समय बोध’ कविता में श्रीकान्त वर्मा ने इसी ओर संकेत किया है:-

“इतने मकान पास-पास सटे-सटे मगर प्रेम नहीं।
इतना धनत्व, इतनी संकुलता, इतनी एकता मगर सभी कटे-कटे।”

“नयी कविता का प्रमुख स्वर वैयक्तिक है लेकिन यह वैयक्तिकता कहीं पर भी सामाजिकता को आहत नहीं करती, बल्कि मानव स्वाभिमान, आत्म विश्वास तथा मानव विशिष्टता जैसे मूल्यों की स्थापना होने से सामाजिक मूल्यों को नये अर्थों में सशक्त आधार देती है।³ नैतिक से तात्पर्य है जो बहुसंख्यक समाज के लिये कल्याणकारी हों वहीं नैतिक है और नैतिक मूल्यों से नये कवि का तात्पर्य मानवीय संवेदना है। नये कवि नैतिक मूल्यों का रूप ही ग्राह्य है। नयी कविता पर अश्लीलता और अनैतिकता का आरोप लगाया जा रहा है, किन्तु यह आरोप पूर्ण सत्य नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि आधुनिकता के कारण नैतिक मूल्यों में बदलाव अवश्य दिखाई देने लगा है। अज्ञेय ने इस तथ्य को ‘इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे’ में स्वीकार किया है:-

“वास्तव में हमारे उन किशोर शिक्षार्थी बालकों के विश्वास भरे
चमकते चेहरों की, सहसा विजड़ित हो गई आँखें हैं
जिनके नैतिक मान हमने आधुनिकता के विस्फोट में उड़ा दिये हैं”

नया कवि परम्परागत कवियों की भाँति ‘अहं’ के प्रति अत्यंत सचेत दिखाई देता है नरेश मेहता की पंक्तियों से यह बात स्पष्ट हो जाती है:-

“विश्व के इस रेत वन पर, मैं अहं का मेघ हूँ”

परम्परागत नैतिक मूल्य आज राजनीति से इस कदर प्रभावित हैं कि उचित अनुचित का विचार ही नहीं रह गया है। युद्ध की नैतिकता पर प्रकाश डालते हुए कवि अपना आक्रोश व्यक्त करता है:-

“तुम्हारे लाडलों ने यह नहीं देखा था कि पेट में बच्चा कैसे होता में लुढ़क गया”

नया कवि आर्थिक विषमताओं के मध्य झूलता हुआ रोटी, कपड़ा, मकान के लिए संघर्षरत दिखाई देता है:-

“एक हाथ से तोड़ रहा हूँ रोटी, गीत दूसरे से लिखता जाता हूँ।”

स्वतंत्र भारत में महंगाई अपने चरम पर पहुँच गयी थी। नया कवि उससे अछूता कैसे रह सकता है। वह व्यंग्य के माध्यम से कहता है:-

“बीमार समाजवाद को निरोग बनाने के लिए
तानाईस तरह, गया है बुना
हो गये दवाइयों के दाम तीन गुना”

नया कवि इस शोषण मुक्त आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन कर मानवीय मूल्यों की स्थापना का प्रयास जारी रखता है।

देश को आजादी मिली और विभाजन हो गया। अनेक राजनैतिक पार्टियाँ उभर कर सामने आयीं। ऐसी स्थिति में राजनैतिक मूल्यों में परिवर्तन स्वाभाविक था। राजनीति भूखे आदमी की लाचारी का फायदा उठाती है, किन्तु नये कवि में भूखे होने पर भी स्वाभिमान, ईमानदारी जैसे मूल्य जीवित हैं। वह कहता है कि 'हर भूखा आदमी बिकाऊ नहीं होता। सर्वेश्वर दयाल की 'पीस पेगौड़ा' विपिन अग्रवाल की 'लड़ाई के बाद' अज्ञेय की 'यह दीप अकेला' कविताओं में तथा 'नदी के द्वीप', सूरज का 'सातवाँ घोड़ा', 'अन्धा युग' जैसी कृतियाँ राजनीति से ऊपर उठकर मानवतावाद या मानवीय मूल्यों को अक्षुण्ण बनाने में सफल हुई हैं। आजादी के बाद भी लोकतन्त्रात्मक प्रणाली के होते हुए भी देश की समस्याओं में कमी नहीं आई क्योंकि नेहरू जैसे तानाशाह की सत्ता होने के कारण राष्ट्रीय हितों की अनदेखी निरन्तर की जाती रही। नये कवि से यह स्थिति देखी नहीं जाती:-

“मैं उस देश का क्या करूँ, जो धीरे-धीरे लड़खड़ाता हुआ
मेरे पास बैठ गया है”

स्वतंत्रता पश्चात् गाँधी जी के आदर्शों, सिद्धान्तों की धज्जियाँ उड़ा दी गईं। नया कवि विश्वोभ से भर उठता है और व्यंग्य के माध्यम से अपने उद्गार व्यक्त करता है:-

“मैं जानता हूँ, क्या हुआ तुम्हारी लंगोटी का,
उत्सवों अधिकारियों के बिल्ले बनाने में काम आ गई।
भीड़ से बचकर एक सम्मानित विशेषद्वार से
आखिर वे उसी के सहारे ही तो जा सकते थे।”

नये कवि ने जीवन के यथार्थ बोध, समसामयिक सामाजिक बोध, आर्थिक वैषम्य, राजनीतिक भ्रष्टता के मध्य जूझते हुये, विवशता की बेड़ियों में जकड़े हुये जीवन सभी को अपनी लेखनी का विषय बनाया है उसमें स्थूल जगत एवं मनोजगत की समस्त स्थितियाँ और अनुभव निहित हैं। उसमें मानवता के प्रति सशक्त एवं गहन रूचि है। उसने विषमताओं-विद्रूपताओं के दल-दल से निकल मंगलकारी मूल्यों की सृष्टि की है। वह नवीन मूल्यबोध से अनुप्राणित है। अतः हम कह सकते हैं, कि नयी कविता आधुनिकता से उत्पन्न निराशा, कुठा, पीड़ा, घुटन की अभिव्यक्ति के साथ-साथ मानव में विश्वास, नैतिकता, आस्था, धर्म, संस्कृति की ओर ले जाने वाले जीवन मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास है। वह निरन्तर विकास की ओर अग्रसर है।

संदर्भ ग्रंथ:-

1. हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य- डॉ० अरूणा गुप्ता
2. नई कविता में युग बोध- डॉ० मंजू दुबे
3. नई कविता में मूल्यबोध- डॉ० शशि सहगल

गाँधीवादी सर्वोदय का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य

डॉ० मन्मथ नारायण सिंह

सहायक प्रोफेसर, विश्वविद्यालय विभाग, राजनीति विज्ञान, कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा, झारखण्ड

प्रस्तावना

सर्वोदय का दर्शन धर्म ग्रन्थों के उद्गारों में भी देखने को मिलता है। वेद सभी प्राणियों के उदय की बात करता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित दुःख भाग भवेत' में सर्वोदय का ही भाव छिपा है। ईशावास्योपनिषद् के प्रथम श्लोक 'ईशावासमिदं सर्वं यत किञ्चित् जगत्यांजगत्। तेन त्यक्तेन, भुञ्जीथाः मा ग्रीधः कश्चिद्दधनम्' तथा गीता के 'आत्मवत् सर्वभूतेषु और सर्वभूत हितो रताः' में सर्वोदय का ही भाव है।

अपने आध्यात्म वाद, आदर्शवाद और अराजकतावाद की पृष्ठभूमि तथा सत्य और अहिंसा के प्रभाव में गांधी जी ने पश्चिमी पूंजीवादी समाजवाद का परित्याग कर दिया। 30 मार्च, 1919 ई० को गांधी जी ने मार्क्सवाद को खारिज कर दिया और कहा: "आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता की परिणति बोलवैशिकवाद के रूप में हुई है। इसकी कार्यक्षमताओं में केवल उत्पादन पर बल दिया जाता है। भौतिकता ने आध्यात्मिकता को भुला दिया है। मनुष्य आत्मविहीन हो गया है।"

सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ 'सब का उदय, "सब प्रकार से उदय" और "सब तरह से उदय से लिया गया है। सबका उदय सर्वोदय का लक्ष्य है। सब प्रकार से उदय इसकी विशेषता है और सब के द्वारा उदय इसका साधन है। जब सब प्रकार से उदय की बात की जाती है तो वह धर्म की दृष्टि से की जाती है, जिसमें लौकिक और पारलौकिक उत्थान, शास्त्रीय भाषा में अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्धि दोनों का समावेश है। अतः सर्वोदय में लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के लक्ष्यों की सिद्धि का आदर्श है। सर्वोदय में सभी जीवन के साथ-साथ सम्पन्नता की बात है। जीवन का अर्थ विकास, अभ्युदय या उन्नति है। सबका विकास हो इसके लिए सर्वोदय है।

सर्वोदय मानव जाति का साध्य एवं साधन है। रस्किन की पुस्तक 'अटू दिस लास्ट' 1904 में पोलक ने जोहान्सबर्ग से डरबन की रेल यात्रा में गांधी जी को जाने से पहले पढ़ने को दी थी। आत्मकथा में गांधी जी ने लिखा है कि इस पुस्तक को हाथ में लेने के बाद मैं छोड़ ही न सका। इसने मुझे जकड़ लिया। ट्रेन शाम को डरबन पहुंची। सारी रात मुझे नींद नहीं आई इसी क्रम में आगे इस पुस्तक के बारे में कहते हैं कि पहली बात मैं जानता था, दूसरी बात धुंधली रूप में मेरे सामने थी, पर तीसरी बात का तो मैंने विचार ही नहीं किया था। अटू दिस लास्ट पुस्तक ने सूर्य के प्रकाश की भाँति गांधी जी के समक्ष यह बात स्पष्ट कर दी कि पहली बात में ही दूसरी और तीसरी बातें में समायी हुई हैं। गांधी ने 1908 में इस पुस्तक का गुजराती में अनुवाद कर सर्वोदय नामक पुस्तक लिखी।

सर्वोदय का दर्शन धर्म ग्रन्थों के उद्गारों में भी देखने को मिलता है। वेद सभी प्राणियों के उदय की बात करता है। सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित दुःख भाग भवेत में सर्वोदय का ही भाव छिपा है। ईशावास्योपनिषद् के प्रथम श्लोक ईशावास्यमिदं सर्वं यत किञ्चित् जगत्यांजगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा ग्रीधः कश्चिद्दधनम्' तथा गीता के आत्मवत् सर्वभूतेषु और सर्वभूत हितो रताः में सर्वोदय का ही भाव है। स्पष्ट रूप से सर्वोदय का प्रयोग सर्वप्रथम जैनाचार्य समंत भद्र ने सर्वोदय तीर्थ के रूप में किया था। सचमुच में सर्वोदय का विचार नया नहीं लेकिन आधुनिक युग में सर्वोदय शब्द का व्यापक प्रयोग एवं सर्वोदय का कार्य गांधी जी द्वारा प्रारंभ किया गया। गांधी जी ने सर्वोदय को तीन वाक्यों में सूत्रबद्ध करने का प्रयास किया है।

क. सबकी भलाई में अपनी भलाई है।

ख. नाई और वकील के काम का समान मूल्य है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को व्यवसाय द्वारा आजीविका चलाने का समान अधिकार है।

ग. किसान, कारीगर और मजदूर का जीवन ही सच्चा जीवन है।

गांधी जी इन सिद्धान्तों पर अमल करते हुए कार्य करते रहें। गांधी जी का कहना है कि मैं अटू दिस लास्ट वाक्यांश के निहितार्थ का समर्थक हूँ। इस पुस्तक ने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी। हमें दुनिया से जो कुछ चाहिए, वह पहले, हम खुद दुनिया के दीनतम व्यक्ति को उपलब्ध कराएं। सभी व्यक्तियों को समान अवसर मिलना चाहिए। अवसर मिले तो प्रत्येक व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास की एक जैसी संभावना है। जबकि आज के संदर्भ में देखें तो कुछ ही लोग सर्वस्व पर वर्चस्व का एकाधिकारी हैं। सर्वोदय का दर्शन समग्र जीवन के लिए निरपेक्ष और सार्वभौम होता है।

सर्वोदय की दृष्टि से जीवन विज्ञान भी है, कला भी। प्राणिमात्र के लिए समादर एवं सहानुभूति ही सर्वोदय का मार्ग है। जीवमात्र के लिए सहानुभूति का यह अमृत जब जीवन में प्रवाहित होता है, तो सर्वोदय की लता में सुरभिपूर्ण सुमन खिल उठते हैं। सर्वोदय कहता है कि तुम दूसरों को जिलाने के लिए जियो। मैं तुम्हें जिलाने के लिए जीऊँ। तभी और केवल तभी सबका जीवन सम्पन्न होगा, दूसरों को अपना बनाने के लिए प्रेम का विस्तार करना पड़ता है, इसके

लिए अहिंसा का विकास करना पड़ता है। सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन करना पड़ता है। सर्वोदय जीवन के शाश्वत और व्यापक मूल्यों की स्थापना चाहता है और बाधक मूल्यों का निराकरण। सर्वोदय वर्ग-विहीन, जाति-विहीन और शोषण विहीन समाज की स्थापना का ब्रह्मा है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति और समूह के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

गांधी जी को पूरा विश्वास था कि पश्चिमी समाजवाद या तो अधिनायकतंत्र के रूप में था या महज एक दर्शन के रूप में। यह भारतीयता के अनुकूल नहीं है। उन्होंने कहा, “भारत की परिस्थितियों में समाजवाद का प्रयोग विचारणीय प्रश्न है। सिद्धान्त के रूप में हम लोग समाजवाद को जानते हैं। क्या विवादस्पद समाजवाद भारत के हालातों में उपयुक्त है, यह विचार का विषय है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जब गांधी जी के नेतृत्व में आई तो उसने गांधी जी के समाजवाद को अपने भविष्य की नीति के रूप में अपनाया। ‘आत्मा पदार्थ नहीं’ गांधी जी ने मार्क्स के इतिहास की भौतिकवादी या आर्थिक व्याख्या को नकार दिया। यह तो जड़ पदार्थ है। इसका आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है। गांधी जी का पूरा विश्व दर्शन आध्यात्मवाद पर आधारित था। उन्होंने धन की अपेक्षा धर्म पर अधिक बल दिया। आत्मा के बिना शरीर अर्थहीन है। गांधी जी ने कहा, “मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ कि भौतिकवाद को आध्यात्मवाद से जोड़ा जाए। ईश्वर की मौजूदगी को तो साबित नहीं किया जा सकता है। उसे हम देख नहीं सकते। वह अदृश्य, अगोचर है, किन्तु सर्वत्र विद्यमान है। इसे हम केवल आत्मानुभूति द्वारा महसूस कर सकते हैं। मेरे विचार में मानव जाति की प्रवृत्ति निश्चित रूप से ऊपर उठ रही है। उन्होंने मार्क्सवादी सिद्धान्त को खारिज कर दिया जो यह बताता है कि भौतिकवाद से आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में परिवर्तन हो रहे हैं। दूसरी ओर, “आध्यात्मिकता से ही आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में प्रगति होती है। इतिहास की भौतिकवादी नहीं, आध्यात्मिक व्याख्या होनी चाहिए। गांधी जी ने मार्क्स के इतिहास की आर्थिक व्याख्या को एक सिरे से नकार दिया।

मार्क्स के अनुसार सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तन विचारों की अपेक्षा उत्पादन विधि और वितरण से संभव है। मार्क्स के अनुसार आविष्कार या निर्माण की प्रक्रिया मानसिक नहीं शारीरिक है जो परिस्थितियों और माहौल के अनुकूल होते रहते हैं। जाति विहीन, वर्ग विहीन व शोषण से मुक्त समाज का सपना महात्मा गांधी ने देखा था और उन्होंने सर्वोदय जैसा एक दर्शन उसके लिए विकसित किया। ऐसा ही एक प्रयास पश्चिम के समाज विज्ञानी कार्ल मार्क्स ने भी किया। मार्क्स ने समाज को शोषण से मुक्त करने के लिए एक क्रांति की प्रक्रिया का मत रखा। उन्होंने अपने इस मत को वैज्ञानिक समाजवाद का नाम दिया। हालांकि क्रांति की प्रक्रिया महात्मा गांधी ने भी दी, लेकिन उन्होंने स्वयं के संस्कारों के अनुरूप ही उसका स्वरूप प्रस्तुत किया। सत्य का अंश दोनों के ही दर्शन में है। समाज के लिए दोनों ही व्यवस्था को बदलना चाहते हैं, किन्तु मार्क्स ने क्रांति के लिए शस्त्रों की राह चुनी, जबकि गांधी जी ने क्रांति का स्वरूप अहिंसा व सत्याग्रह के अंतर्गत रखा। मार्क्स ने पूंजीवाद के खात्मे के लिए शस्त्र क्रांति का सहारा लिया।

यह विचार व्यवस्था परिवर्तन में पीड़ितों की पीड़ा का उपयोग करता है मजदूर वर्ग उसके लिए केवल क्रांति का एक हथियार मात्र है। सर्वोदय के लिए कोई विरोधी पक्ष नहीं है, वह मानव की अच्छाई को आधार मानकर आगे बढ़ता है दूसरा ध्यान देने योग्य बिंदु यह है कि सर्वोदय केवल व्यवस्था परिवर्तन के पक्ष में नहीं, वह तो व्यवस्था को ही मिटाना चाहता है। समाज में किसी भी प्रकार की व्यवस्था के वे पक्ष में ही नहीं, जबकि मार्क्स केवल व्यवस्था का स्थानान्तरण करना चाहते हैं, सत्ता को पूंजीपतियों के हाथ से निकालकर मजदूरों के हाथ में सौंपना ही उनका मुख्य उद्देश्य है। ऐसा करने से समाज में व्याप्त शोषण समाप्त हो जायेगा यह अनिश्चित है। आवश्यक नहीं कि सत्ता प्राप्ति के बाद मजदूर वर्ग अन्यो का शोषण नहीं करेगा। प्रसिद्ध गांधीवाद व सर्वोदयी विचारक दादा धर्माधिकारी के अनुसार, “समाजवादी क्रांति के बाद साहूकारी व शोषण की समाप्ति नहीं होगी, केवल एक व्यक्ति की साहूकारी के स्थान पर एक वर्ग की साहूकारी स्थापित हो जायेगी। ऐसे समाज का सपना सर्वोदय का नहीं।

“गांधी जी आध्यात्मिक समाजवाद के प्रतिपादक थे, इसलिए उन्होंने इतिहास की आध्यात्मिक व्याख्या की है। यह उतना ही पुराना है जितना पुराना व्यक्ति की चेतना में धर्म का उदय। उन्होंने केवल बाह्य कार्य-कलापों या भौतिकवाद को सभ्यता संस्कृति का वाहक नहीं माना।

उन्होंने गहन आंतरिक विकास पर बल दिया। उन्होंने कांग्रेस में बराबर इसके नैतिक पक्ष का समर्थन किया तथा इसे आत्म शोधक संस्था माना न कि याचक संस्था। गांधी जी के अनुसार मानव जाति का इतिहास बराबर अहिंसा की ओर बढ़ रहा है उनका विश्वास था कि मानव जाति की ऊर्जा मानव को ऊपर उठा रही है यह सत्य, अहिंसा और प्रेम का परिणाम है। अतः उनका निष्कर्ष था कि मानव समाज आध्यात्मवाद से प्रभावित है। वर्ग-संघर्ष नहीं, वर्ग सहयोग। गांधी जी ने मार्क्स के वर्ग-संघर्ष सिद्धान्त को भी खारिज किया। उनका कहना था कि इतिहास वर्ग-संघर्ष की जगह वर्ग सहयोग का अभिलेख है। मार्क्स ने आवश्यक रूप से पूंजीवादी और मजदूरों के बीच तलखी पैदा किया है। पूंजी और श्रम के सहयोग से ही उत्पादन होता है संघर्ष से तो उत्पादन ही ठप पड़ जाएगा। गांधी जी संघर्ष को बढ़ाने की अपेक्षा घटाना चाहते थे तथा दोनों में सहयोग की भावना पैदा करना चाहते थे। गांधी जी के शब्दों में, “वर्ग-संघर्ष का विचार मुझे अच्छा नहीं लगता। यदि हम अहिंसा का अर्थ समझते हैं तो वर्ग-संघर्ष की जगह वर्ग सहयोग की बात करें। जो वर्ग संघर्ष को अवश्यभावी समझते हैं, वे अहिंसा का अर्थ नहीं समझते।” गांधी जी का कथन था कि पूंजी और श्रम एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं।

दोनों का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है। उन्होंने कहा, “श्रमिक का कौशल उसकी पूंजी है। पूंजीपति अपनी पूंजी में श्रमिकों के सहयोग के बिना वृद्धि नहीं कर सकते, इसी तरह श्रमिक अपने हुनर या कौशल का उपयोग पूंजीपति के सहयोग के बिना नहीं कर सकता। इसमें कोई संदेह नहीं कि वस्तुओं के उत्पादन में दोनों का सहयोग और सहभागिता अवश्यम्भावी है। उत्पादन में दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं सर्वोदय न कि सर्वहारा वर्ग का अधिनायक तंत्र। मार्क्स के लिए सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र आवश्यक था। इसके बिना समतावादी समाज की स्थापना नहीं की जा सकती, गांधी जी को यह पसंद न था। उन्होंने इसे सिरे से नकार दिया। उन्होंने कहा, “मैं न तो प्रबुद्ध अधिनायकतंत्र और न ही किसी प्रकार के अधिनायकतंत्र में विश्वास करता हूँ। इससे न तो अमीरी दूर होगी और न गरीबी दूर होगी।” साथ ही इसकी कोई गारन्टी नहीं कि अधिनायकतंत्र, निरंकुशतंत्र साम्राज्यवादी या कुचक्री बन जाय। रूस में जब जारशाही का जमाना था तो वहाँ पूंजीपतियों, कुलीनों और जार के बीच कुचक्र का दौर बना रहता था। लेकिन जब साम्यवाद आया तो मजदूरों का अधिनायकतंत्र कायम हुआ। गांधीजी के अनुसार अधिनायकतंत्र बराबर हिंसा को जन्म देता है। इससे हिंसा प्रतिहिंसा का दौर बना रहता है।

उन्होंने इसे बिल्कुल नकार दिया, क्योंकि यह मानव जाति को तथा व्यक्तित्व को नष्ट करके बड़ी हानि पहुँचाता है।

गांधी जी का समाजवाद नैतिकता, हिन्दुत्व, ग्राम्य, मानवतावादी और प्रजातंत्र पर खड़ा था। गांधी जी एक नैतिक समाजवादी थे, इसीलिए उनका समाजवाद नैतिकता, आध्यात्मवाद और सत्य धर्म पर खड़ा था। इसे राजनीतिक संरक्षण प्राप्त कर कत्ल या रक्तपात से स्थापित नहीं किया जा सकता। यह व्यक्ति के भौतिक उद्धार से संभव है। हरिजन में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था, “समाजवाद एक व्यक्ति से शुरू होता है, धीरे-धीरे इसके अनुयायियों की संख्या बढ़ती जाती है। यदि कोई समाजवादी बनना नहीं चाहता तो व्यक्तियों को लाख समझाने-बुझाने पर भी कोई लाभ नहीं।” गांधी जी के अनुसार, सच्चा समाजवाद, अनुग्रह, सद्भावना और प्रेम पर आधारित होता है। भारत में सच्चा समाजवाद इशोपनिषद् के प्रथम श्लोक में मिलता है। वैज्ञानिक समाजवाद के जन्म पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा, “समाजवाद पूंजीवादी द्वारा पूंजी के दुरुपयोग से शुरू नहीं हुआ, जैसा कि मैंने कहा कि समाजवाद यहां तक कि साम्यवाद भी इशोपनिषद् के प्रथम श्लोक में स्पष्ट है। जो सत्य है वह यह है कि जब कुछ सुधारकों ने समाजवाद में विश्वास खो दिया, तो वैज्ञानिक समाजवाद की तकनीक का जन्म हुआ। मैं वैज्ञानिक समाजवादियों की समस्या के समाधान में लगा हूँ। फिर भी यह सत्य है कि मेरा समाजवाद अहिंसात्मक है। गांधी जी ने पश्चिमी समाजवाद और अपने समाजवाद में कहीं मेल नहीं देखा। गांधी जी ने कहा, पश्चिमी समाजवाद और साम्यवाद कुछ सिद्धान्तों पर आश्रित हैं, जो सिद्धान्तों से बिल्कुल भिन्न हैं। उनकी एक धारणा तो यह है कि मनुष्य बड़ा स्वार्थी होता है आत्मा की आवाज सुन सकता है, पशु ऐसा नहीं करता, मनुष्य कभी भी पशु की तरह हिंसक नहीं हो सकता। स्वार्थ और हिंसा पशुओं के गुण हैं।

दोनों का लक्ष्य एक है, किन्तु लक्ष्य प्राप्त करने के तरीके में मूलभूत अन्तर है। सर्वोदय दर्शन की आधारशिला अपने देश की संस्कृति के साथ गहरी जुड़ी हुई है। यही कारण है कि सर्वोदय ने समाज परिवर्तन के लिए अपनी प्राचीन परम्परा के अनुरूप अहिंसा की प्रक्रिया को चुना। यहाँ एक विशेष ध्यान रखने योग्य बिन्दु यह है कि कार्ल मार्क्स का दर्शन व्यवस्था का परिवर्तन करने पर टिका है, वहीं सर्वोदय का व्यक्ति परिवर्तन पर। महात्मा गांधी ने यह स्पष्ट रूप से स्वीकारा कि जब तक व्यक्ति में आध्यात्मिक व सांस्कृतिक परिवर्तन नहीं आता, तब तक समाज में परिवर्तन कतई नहीं होगा। केवल व्यवस्था परिवर्तन से समाज में व्याप्त असमानता का निराकरण नहीं हो सकता। उन्होंने वर्तमान में प्रचलित तीनों प्रकार की सत्ताओं से सर्वोदय को भिन्न माना। उन्होंने समाज को एक ऐसी स्थिति तक ले जाने की बात कही, जहाँ आध्यात्मिक सत्ता सर्वोच्च हो जहाँ धन, बल व शक्ति पर आधारित व्यवस्था से कहीं ज्यादा प्रभावी स्थान नैतिकता व कर्तव्य का हो।

सर्वोदय केवल अनुशासन की सत्ता का पक्षधर है। जब समाज प्रकृति के नियमों को कर्तव्य मानकर उनका पालन करेगा, तब किसी भी प्रकार की सत्ता की कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी। व्यक्ति का यह अनुशासन ही सम्पूर्ण समाज की ताकत बनेगी। यह विचार अपने देश की प्राचीन परम्परा के बिल्कुल निकट है। अपने यहाँ मान्यता है कि संसार रीत के नियमों से चलता है। ‘ये रीति ही आदिकाल से संसार का संचालन कर रहा है। इसी को सर्वोदय दर्शन में आत्मानुशासन कहा गया।’ सर्वोदय ने इस प्राचीन सिद्धान्त की नवीन व्याख्या की है। आत्मानुशासन समाज को ऐसी दिशा में ले जायेगा, जहाँ पर नियंत्रण के स्थान पर संयम की प्रधानता होगी। किसी भी व्यक्ति पर किसी प्रकार की बाध्यता नहीं होगी, फिर भी नियमों का पालन होगा। उस स्थिति में पहुँचकर समाज में अधिकारों के स्थान पर कर्तव्यों को ज्यादा मान्यता दी जायेगी। व्यक्ति में समाज के प्रति कर्तव्य-पालन की भावना होगी, क्योंकि व्यक्ति किसी शासन के द्वारा नियमित होने के स्थान पर स्वानुशासन द्वारा प्रेरित होगा। इसी को उन्होंने राजनीति का विकल्प लोकनीति का नाम दिया।

तीसरा ध्यान देने योग्य बिन्दु है कि मार्क्स की भाँति सर्वोदय सीधे शासन को समाप्त करने के बजाय समाज के आध्यात्म व अनुशासन का दायरा बढ़ाने पर बल देता है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि अनुशासन की बढ़ोत्तरी शासन को अव्यवहारिक कर देगी और धीरे-धीरे शासन-व्यवस्था स्वतः ही समाप्त हो जायेगी। साथ ही इस प्रक्रिया को प्रारम्भ करने का दायित्व भी वह राज्य पर ही डालते हैं। सर्वोदय दर्शन के अनुसार “राज्य धीरे-धीरे ऐसी स्थिति उत्पन्न करें कि समाज को राज्य व्यवस्था की आवश्यकता ही न रहे वह अव्यवहारिक हो जाये। “यानी मार्क्स की भाँति वह राज्य को आवश्यक बुराई नहीं मानते। हाँ, अहिंसक क्रांति की पूर्णता की एक आवश्यक कड़ी अवश्यक मानते हैं। इसका उपर उल्लेख हुआ है। कुछ अर्थों में यह राज्य के होने का कारण भी है। यानी समाज को यदि ऐसी उच्चतम स्थिति पर ले जाना है तो राज्य का होना भी परिहार्य है।

सर्वोदय दर्शन मार्क्स की तरह मतभेद की बजाय मनभेद को सहारा मानकर नहीं चलता है। वह किसी भी प्रकार की व्यवस्था के प्रति रंचमात्र भी दुर्भावना नहीं रखता। इसलिए वह संघर्ष को अनिवार्य नहीं मानता हैं किन्तु मार्क्स, एक वर्ग के साथ घोर दुर्भावना रखता है। अतः उसकी समाप्ति के लिए संघर्ष को भी अनिवार्य मानते हैं और उस संघर्ष के परिणामस्वरूप स्थापित नवीन व्यवस्था को वे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर स्थापित गरीबों का लोकतंत्र कहते हैं। चूँकि संघर्ष भौतिक है तो स्थापित होने वाली व्यवस्था भी भौतिक ही होगी। फिर उसकी उन्नति का आधार भी भौतिक ही होगा। यहाँ पर सर्वोदय का मार्क्सवादी व्यवस्था के साथ एक और विरोध दिखाई देता है। सर्वोदय समाज की उन्नति का आधार आध्यात्म को मानता है, क्योंकि वह शाश्वत परिवर्तन की गवाही देता है। ऐसे परिवर्तन की नहीं, जिसका कुछ समय के उपरांत पुनः शुद्धिकरण करने की आवश्यकता पड़े। समाज केवल भौतिक उन्नति पर ही आश्रित हो जायेगा, तो पुनः स्वार्थ व द्वेष का बोलबाला हो जायेगा। फिर वहीं स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। इसलिए वह लोक को आध्यात्मिक उन्नति के लिए भूमि प्रदान करने का काम हाथ में लेता है, ताकि समाज में किसी भी प्रकार की व्यवस्था व नीति के स्थान पर लोकनीति की प्रतिस्थापना हो जाये। यही सम्पूर्ण प्रक्रिया ही अहिंसक क्रांति की प्रक्रिया कहलायेगी व इस पर आधारित राज्य रामराज्य होगा और उसकी नीति होगी लोकनीति। ऐसे समाज में प्रत्येक व्यक्ति श्रम को समाज के प्रति अपना कर्तव्य मानेगा व प्रत्येक का सुख-दुख समाज का सुख-दुख होगा।

सर्वोदय दर्शन ही वर्तमान में समाज की उन्नति का एक मात्र सही हल है, ऐसा गांधी जी ने माना और सही भी है। विद्वान जिस मार्क्सवाद विचारधारा की तुलना सर्वोदय (गांधीवाद) के साथ करते हैं, उस मार्क्सवाद की सर्वश्रेष्ठ कर्मभूमि रूस में व उन देशों में जहाँ इस विचारधारा ने अपने पाँव पसारें, वर्गों के परस्पर विरोध को उभार कर क्रांति के नाम पर रक्त की होली खेली। आज सभी यह स्वीकार करते हैं कि उनकी सबसे बड़ी समस्या सांस्कृतिक है। वे समाज को भौतिक उन्नति के शिखर पर तो ले गये, किन्तु उनका नैतिक स्तर ऊँचा उठाने में वे सर्वथा अक्षम रहे। इसलिए वे देश घोर विसंगतियों से जूझ रहे हैं।

संदर्भ:-

1. हरिजन, 4 अगस्त, 1946 ई0।
2. फिशर, लुई, महात्मा गांधी, हिज लाइफ एंड मैसेज फॉर दि वर्ल्ड (भारतीय विद्या भवन, बंबई, 1964) भाग-1, पृ0-88
3. हरिजन, 4 अगस्त, 1946 ई0।
4. शुक्ला, सी.एस., गांधीजी विरू ऑफ लाइफ, (भारतीय विद्या भवन, बंबई, 1960) पृष्ठ-118
5. नायर, सुशीला, बापू की करून कहानी, (हिन्दी, न्यू) 3 सितम्बर, 192
6. यंग इण्डिया, 3 सितम्बर, 1925
7. गांधी एम.के. इण्डिया ऑफ माई ड्रीम्स (नवजीवन अहमदाबाद), 1962 पृ0सं0-34
8. हरिजन, 4 अगस्त, 1949 ई0।
9. R.K PRABHU AND U.R RAO, THE MIND OF MAHATMA GANDHI , OXFORD UNIVERSITY PRESS, LONDON 1945, P 44
- 10- COMPREHENSIVE SITE BY GANDHIAN INSTITUTE, BOMBAY SRVODAYA MANDAL AND GANDHI, ONLINE BOOK, <http://www/mkgandhi.org/cwmg.htm>
- 11- RAMJEE SINGH, GANDHI AND THE MODERN WORLD CLASSICAL PUBLISHING COMPANY, NEW DELHI 1988, P-312
- 12- HARIJAN 22 FEBRUARY, 1942

हिंदी दलित साहित्य की भाषा

प्रा० भरत सुरेशराव जवजाळे

हिंदी विभाग, गो.से. विज्ञान कला व वाणिज्य महाविद्यालय, खामगाव जिल्हा बुलढाणा, महाराष्ट्र

दलित साहित्य ने अपने लिए सहज, सरल और आम बोलचाल की भाषा को अपनाया है। संस्कृतनिष्ठ, परंपरागत, साहित्यिक भाषा को नकार कर सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है, क्योंकि ऐसी भाषा दलितों की पीड़ा, अपमान, व्यथा आदि को सही और सचोटे रूप में अभिव्यक्त कर सकती है। दलित साहित्य की भाषा नकार और विरोध की भाषा है। मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, श्योराजसिंह बेचौन, जयप्रकाश कर्दम आदि रचनाकारों ने इसी भाषा को विस्तार दिया है।

दलित समाज की बोली-बानी में ऐसे कई शब्द प्रकट होते हैं जो अश्लीलता से भरे होते हैं, क्योंकि दलित-वर्ग का मानव-समूह जिस परिवेश में जीवन जीता है वहाँ दूषित वातावरण होता है, जिसे पारंपरिक आलोचक नहीं जानते, लेकिन जब दलित लेखक कोई रचना करता है तब उस परिवेश की चर्चा करते समय भाषा में अश्लीलता आ ही जाती है। दलित साहित्य की रचनाओं में भाषा की कोई जागरूकता नहीं है। उसमें गाली-गलौच आती है और वह इसलिए कि दलित मनुष्य निम्नवर्ग में से आया हुआ है, इसलिए गालियाँ आना स्वाभाविक बात है। दलितों के जीवन की विसंगतियाँ, उत्पीड़न, शोषण और दमन की अभिव्यक्ति के लिए यही भाषा दलित साहित्यकारों को ज्यादा प्रभावशाली लगती है।

‘दलित साहित्य की भूमिका’ पुस्तक के लेखक डा. हरपाल सिंह ‘अरुष’ ने दलित साहित्य की भाषा के विषय में लिखा है कि “दलित लेखक संस्कृतनिष्ठ, प्रांजल, गरिष्ठ और बनावटी भाषा का न तो दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं और न ही साहित्य में ही प्रयोग करते हैं। ये आकर्षण का कृत्रिम जाला न बुनकर दलित जीवन की सच्चाई को उजागर करते हैं। अतः सरल, अनगढ़े, स्वाभाविक शब्द, दैनिक जीवन के मुहावरे ही इनके साहित्य को सजाने का कार्य करते हैं।”^१

दलित साहित्य में एक नया संसार, एक नया समाज, एक नया मनुष्य पहले-पहल व्यक्त हुआ है। दलित साहित्य यथार्थ का साहित्य होने के कारण इसकी भाषा

दलितों की गँवार-असभ्य भाषा है। यह भाषा दलितों की बोली भाषा है। यह भाषा शिष्ट संकेत और व्याकरण के नियम न माननेवाली भाषा है।

डा शरणकुमार लिम्बाले के अनुसार “दलित लेखकों ने अपने लेखन के लिए प्रमाणित भाषा की बजाय ‘टोली की भाषा’ का प्रयोग किया है। प्रमाण भाषा का एक ‘दर्जा’ होता है। इस प्रमाण भाषा का ‘दर्जा’ दलित लेखकों ने नकारा है। समाज में शिष्ट लोगों द्वारा लेखन के लिए मान्यता प्राप्त भाषा के रूप में ‘प्रमाण भाषा’ की ओर देखा जाता है। यह शिष्ट मान्यता दलित लेखकों ने नकारी है, क्योंकि यह शिष्ट मान्यता दंभ से भरी हुई है। दलित लेखकों को प्रमाण भाषा की अपेक्षा अपनी बस्ती की भाषा अपनी लगती है। दरअसल प्रमाण भाषा में दलितों की बोली के सभी शब्द नहीं मिलते हैं। ऐसे भी अपने अनुभव अपनी मातृभाषा में बिना प्रयास कह पाना अभिव्यक्ति को अधिक तीव्रता देने में सहायक होता है।”^२

संदर्भसूची

१. दलित साहित्य की भूमिका, डा. हरपालसिंह ‘अरुष’, पृ. ४६
२. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, डा शरणकुमार लिम्बाले, पृ. ४५-४६

वर्तमान में सोशल मीडिया का युवा वर्ग पर प्रभाव

आशीलता त्रिपाठी

शोध छात्रा (शिक्षाशास्त्र) बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी।

सारांश

प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा गुरुकुल एवं आश्रमों में प्रदान की जाती थी, बौद्धकाल में उच्च शिक्षा के लिए कुछ विश्वविद्यालय केन्द्र के रूप में थे। मुस्लिम काल में उच्च शिक्षा प्रदान करने हेतु मदरसों की स्थापना की गयी थी। किन्तु आधुनिक काल में उच्च शिक्षा के विकास में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी वह तकनीकी है जिसमें किसी विषय की जानकारी जो ब्रह्माण्ड में कहीं भी उपलब्ध है और किसी भी समय किसी भी व्यक्ति द्वारा उपलब्ध करायी जाती है। समाज के सम्पूर्ण विकास के लिए सूचना एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण स्तम्भ है। इन्टरनेट से आज दुनिया में कुछ भी अछूता नहीं है। आज के इंसान के लिए इन्टरनेट एक ऐसी उपलब्धि बनकर साथ खड़ा है जो जीवन के हर रंग को अपने में ही समेट लिया है इसके बिना जीवन अधूरा हो गया है।

आज का समय इन्टरनेट की मौजूदगी का है, सोशल साइट्स के माध्यम से लोग विभिन्न मुद्दों पर अपनी जानकारी बढ़ा भी रहे हैं और त्वरित टिप्पणी देकर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त भी कर रहे हैं। किसी भी प्रकार की घटना को लोगों के साथ सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर युवा साझा भी कर रहे हैं यदि एक तरह से देखा जाय तो सोशल नेटवर्किंग साइट्स को खरा उतरने के लिए अपना दायित्व भी बढ़ाना पड़ रहा है।

सोशल मीडिया की छात्र जीवन में भूमिका जानने से पहले हमें सोशल मीडिया को जानना होगा। सोशल मीडिया एक कम्प्यूटर उपकरण है जो लोगों को किसी विशेष नेटवर्क के माध्यम से सूचना विचारों, छवियों, वीडियो और एक दूसरे के साथ सांझा करने की अनुमति देता है। सोशल मीडिया के अपने सकारात्मक प्रभाव है तो नकारात्मक प्रभाव भी इससे अछूता नहीं है। जो अपनी नकारात्मकता से युवाओं को भ्रमित करने में भी पीछे नहीं है। आज जैसे-जैसे तकनीकी बढ़ रही है, सोशल मीडिया भी लोगों की दिनचर्या बन गया है। छात्रों के लिए सोशल मीडिया वरदान समान प्रतीत होता है, जो उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। युवाओं के तो दिन की शुरुआत और अन्त आज सोशल मीडिया के साथ ही होता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में इन्टरनेट उपयोगकर्ता छात्रों की सामाजिक समझ व उनके कैरियर में सोशल मीडिया की भूमिका का उल्लेख किया है।

युवाओं द्वारा सोशल मीडिया का उपयोग

सोशल मीडिया ने शिक्षा स्वास्थ्य और रोजगार आदि से संबंधित खबरों के माध्यम से युवाओं के ज्ञान में वृद्धि की है। आज सभी जाति, धर्म, सम्प्रदाय और देशों के युवाओं की सक्रियता सोशल मीडिया के प्लेटफार्म पर दिखाई देती है। प्रारम्भ में सोशल मीडिया का प्रयोग वही लोग करते थे जिनका उद्देश्य समान विचार वाले व्यक्तियों के साथ विचारों को सांझा करना था परन्तु अब इसका दायरा विस्तृत तथा संभावनायें और व्यापक हो गयी हैं। यदि युवाओं को सोशल मीडिया का उपयोग कर सूचनाओं से मुक्त कर दिया जाय तो हम देश को एक सूत्र व वैश्विक शक्ति में बाँध सकते हैं, क्योंकि युवा पूरे इतिहास में परिवर्तन के वाहक रहे हैं। सोशल मीडिया की परिभाषा में कहा गया है, कि 2000 के दशक में शुरू में सॉफ्टवेयर विकास कर्ताओं ने अन्तिम इस्तेमाल कर्ताओं को इस बात में सक्षम बनाया कि वे वर्ल्डवाइड वेब पर स्थिर और निष्क्रिय पृष्ठों को देखने के बजाय अधिक परस्पर क्रियाशील बन सके, ऑनलाइन या वास्तविक समुदायों में प्रयोक्ता-जनित सामग्री का इस्तेमाल कर सकें। इसकी परिणति वेब 2.0 के रूप में हुई और सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि इससे एक अद्भुत प्रयोग का सृजन हुआ जिसे अब हम सोशल मीडिया कहते हैं।

आज का दौर यदि सही मायनों में देखे तो युवा शक्ति का दौर है, भारत में इस समय 65 प्रतिशत के करीब युवा है, जो किसी और देश की तुलना में सबसे अधिक है। युवाओं में सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रयोग के माध्यम से दुनिया भर में आज सोशल नेटवर्किंग इन्टरनेट पर होने वाली नम्बर एक की गतिविधि बन गया है।

कम्प्यूटर एंड ह्यूमन बिहैवियर नामक जर्नल में प्रकाशित एक शोध के अनुसार, कुछ व्यक्तियों ने 7 या उससे अधिक सोशल मीडिया प्लेटफार्म का इस्तेमाल किया और कुछ ने 0 से 2 सोशल मीडिया प्लेटफार्म का उपयोग किया था, उनमें एंगजायटी या चिंता की समस्या तीन गुनी ज्यादा थी। इससे जाहिर है कि, सोशल मीडिया मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा असर डाल रही थी।

सन् 2018 के एक सर्वे के मुताबिक, 31 प्रतिशत किशोरों का मानना है कि सोशल मीडिया से उनके जीवन में ज्यादातर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। सोशल मीडिया ने उन्हें सामाजिक सहयोग के कई तरह के अवसर उपलब्ध कराये हैं। यद्यपि 25 प्रतिशत किशोरों का मानना है कि सोशल मीडिया ने उन पर ज्यादातर नकारात्मक प्रभाव डाला है। शोध में 12 से 17 वर्ष के 13 प्रतिशत किशोरों में डिप्रेशन की शिकायत देखी गई। 32 प्रतिशत किशोरों में चिंता की समस्या उभर कर आई। शोध में पाया गया कि 18 से 25 वर्ष के युवाओं में मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित समस्यायें तेजी से बढ़ रही हैं।

सन् 2019 में इसी विषय पर किये गये एक अध्ययन में पाया गया है कि जिन व्यक्तियों ने अपना फेसबुक अकाउंट एक माह के लिए डिएक्टिवेट कर दिया उनमें डिप्रेशन और चिंता कम देखी गई। उनमें संतुष्टि और प्रसन्नता या खुशी का ग्राफ लगातार बढ़ता हुआ देखा गया। सोशल मीडिया ने युवाओं के व्यवहार व जीवनशैली में कई महत्वपूर्ण बदलाव किया है।

सोशल मीडिया के नेटवर्क ने सभी उपयोगकर्ताओं, विशेष रूप से युवाओं को अभिव्यक्ति का सशक्त मंच दिया है। युवाओं ने इसे संवाद के साथ ही सृजन माध्यम भी बनाया है। आज विश्व के युवाओं और सोशल मीडिया की बात की जाय तो भारत पहले नम्बर पर काबिज है। इससे साफ तौर पर इस बात की पुष्टि होती है कि भारत युवाओं का देश है। देश की कुल आबादी में यदि 35 वर्ष की आयु की बात की जाय तो लगभग 70 प्रतिशत भाग में युवाओं का स्थान है। देश का सरकारी तंत्र भी युवाओं की रूचि व आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए सरकारी योजनाओं को सोशल मीडिया के माध्यम से युवाओं तक पहुँचाने की कोशिश कर रहा है।

युवाओं के कैरियर में सोशल मीडिया की भूमिका

युवाओं पर सोशल मीडिया का प्रभाव बहुत ही गहन है। ये वही उम्र है जो सपने दिखाना व सपनों को पूरा करने के लिए पूरा जी-जान लगाने की हिम्मत रखता है। युवा और सोशल मीडिया दोनों ही एक सिक्के के दो पहलू हैं। जहाँ एक तरफ सोशल मीडिया युवाओं के सपनों को एक नयी दिशा देने में मदद कर रही है, वहीं दूसरी तरफ युवा वर्ग अपने सपनों को पूरा करने में इस माध्यम पर बहुत हद तक निर्भर हैं। इन्टरनेट से लेकर 4जी मोबाइल तक युवा सोशल मीडिया के माध्यम से देश दुनिया की सरहदों को पार कर अपने सपनों को पंख दे रहे हैं। ब्लागिंग के जरिये जहाँ ये युवा अपनी समझ ज्ञान और भड़ास निकालने का काम कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर सोशल मीडिया साइट्स के जरिये दुनिया भर में अपनी समान मानसिकता वाले लोगों को जोड़कर सामाजिक सरोकार दायित्व को पूरी तन्मयता से पूरी कर रहे हैं। युवाओं के लिए तो जैसे सोशल नेटवर्किंग साइट्स ने अपने ज्ञान के सभी द्वार खोल दिये हैं, चाहे वह शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवन-शैली कैरियर, भविष्य योजना, आदि क्षेत्र का जिस तरह से चाहे उसका उपयोग करें। जैसे-जैसे सोशल मीडिया का उपयोग बढ़ता जा रहा है, वैसे भौतिकवाद भी बढ़ता जा रहा है। सोशल मीडिया फिल्मी सितारों, खिलाड़ियों, धनी लोगों, जैसी मशहूर हस्तियों को ग्लाइमेज करके भौतिकवादी दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है। आज अधिकांश लोग अधिक से अधिक धन संचय करना चाहते हैं। उन्हें सिर्फ पैसे, बैंक बैलेन्स, लम्बरी कारों, ऊँचे और विशाल घरों की ही चाहत है। इस दौड़ में उन्हें धर्म और मानवता के सभी मानकों को तोड़ने में शर्म नहीं आती। सोशल मीडिया ने दुनिया को देखने का हमारा नजरिया बदल दिया है, चाहे वह संचार के मामले में हो या सामाजिक सम्पर्क का। यदि इसके नकारात्मक पक्ष को हम नजर अंदाज करते रहे तो इसके दूरगामी नकारात्मक असर से हम बच नहीं सकते। इसीलिए सोशल मीडिया के अच्छे बुरे इस्तेमाल पर हमें गौर जरूर करना चाहिए।

निष्कर्ष

सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि सोशल मीडिया का प्रयोग दो धारी तलवार की तरह है, एक तरफ जहाँ रचनात्मक कार्यों के लिए इसका इस्तेमाल हो रहा है, वहीं दूसरी तरफ अपने नकारात्मक प्रभाव के कारण यह युवाओं के लिए घातक साबित हो रहा है।

इन्टरनेट के इस्तेमाल का सकारात्मक पक्ष तो बहुत अधिक है, किन्तु कोई भी खोज सिर्फ सकारात्मक परिणाम नहीं देती। जिस प्रकार मौसम परिवर्तन होता है, दिन होता है तो रात भी स्वाभाविक है, उसी प्रकार अनुसंधान का भी नकारात्मक पक्ष होता है।

अल्बर्ट आइंस्टीन ने एक बार कहा था, “मुझे उस दिन का डर है जब प्रौद्योगिकी हमारे मानवीय सम्पर्क से आगे निकल जायेगी। दुनिया में बेवकूफों की एक पीढ़ी होगी” वह पीढ़ी जो अपने कम्फर्ट जोन में हैं और बदलाव के अनुकूल ढलने में असमर्थ है। और इसके लिए सबसे आवश्यक है, बच्चों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखना। माता-पिता और शिक्षकों को युवाओं को जिम्मेदारी से इन्टरनेट का उपयोग करने और उनके जीवन पर इसके नकारात्मक प्रभाव से बचने में मदद करने के लिए कदम उठाने चाहिए। सूचना और संचार अत्यधिक सुलभ हो गये हैं, लेकिन इन्टरनेट के अत्यधिक उपयोग से व्यसन साइबर बुलिंग, खराब पारस्परिक सम्बन्ध और अनुचित सामग्री का जोखिम बढ़ गया है। एक संतुलित जीवन, परिवार, समाज, संस्कृति और देश के लिए सोशल मीडिया के दोनों पक्षों पर हमें खुले मन से विचार करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. <https://èkèkMentalhealthcare.in>
2. <https://èkèkijcrt.org.Paper>
3. प्रतियोगिता दर्पण आगरा आलेख अखिलेश आर्येन्दु “मीडिया एवं सोशल मीडिया की सकारात्मक एवं नकारात्मक दिशा” नवम्बर 2017, पृष्ठ सं0 102.
4. डॉ0 श्रीवास्तव, सुरेन्द्र कुमार (2017) सोशल मीडिया और युवा विकास, मीडिया मीमांसा।
5. दैनिक जागरण, 16 जुलाई, 2018, पृष्ठ सं0 13

अद्वैतवाद और मोक्ष

डॉ० लता शर्मा

सह आचार्य संस्कृत, गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर (राज०)

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥'

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येहग्रन्थयः।

अथ मतयोऽमृतो भवत्येतावद्धयनुशासनम्॥

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृता परिमुच्यन्ति सर्वे॥'

भारतीय दर्शन व ज्ञान की परम्परा में जीवन का अन्तिम, परम एवं चरम लक्ष्य है- मोक्ष। मोक्ष शब्द 'मुच्' धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ हुआ मुक्ति। सभी प्रकार के क्लेशों से आत्यन्तिक निवृत्ति। इस निवृत्ति की दार्शनिक पारिभाषिक शब्दावली है-मोक्ष। सामान्यतः मोक्ष का तात्पर्य 'मृत्यु' से लिया जाता है। मृत्यु इस पंचभूतात्मक शरीर के त्याग का नाम है और शरीर के विनाश के साथ ही सुखदुःखादि की अनुभूति भी नष्ट हो जाती है। साधारण प्राणी इस अवस्था को ही मुक्ति मानने लगते हैं किन्तु दर्शन-जगत् में मोक्ष मृत्यु से नितान्त पृथक् परम शान्ति और आनन्द की दिव्य अवस्था का नाम है।

मोक्ष एक ऐसी अवस्था है, जिसमें केवल सांसारिक दुःखों का ही नहीं बल्कि जन्म-मृत्यु श्रृंखला का भी अन्त हो जाता है। मोक्ष न तो एक भौतिक शरीर के विनाशोपरान्त अन्य नवीन शरीर को धारण करना ही है और न विनाश ही है। उपनिषदों की पूर्वोक्त व अन्य भी अनेक अमृत उक्तियों के अनुसार मोक्ष या मुक्ति मनुष्य की यह अपार्थिव अवस्था है जब यह अपनी आत्मा का शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्ममय हो जाता है। पुनर्जन्म का बन्धन अज्ञानी पुरुष के लिए है किन्तु ज्ञानी पुरुष समस्त सांसारिक कामनाओं से उपरत होकर निष्काम शुद्ध ब्रह्मरूप होकर कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है। ऐसे शुद्ध चौतन्य ब्रह्म से एकाकार हुए ज्ञानी पुरुष के हृदय के बन्धन खुल जाते हैं। वह संशय रहित होकर कर्मफल से मुक्त हो जाता है। पुनः कर्म करते हुए भी कर्म में लिप्त नहीं होता जैसे जल में कमल पत्र- पद्मपत्रमिवाम्भसा।

आत्मतत्त्व का अनुभव होने पर यह ज्ञान हो जाता है कि हृदय की सारी वासनाएँ, विकार, इन्द्रियजन्यज्ञान की सीमाएँ हृदय की शुद्धता, अनुदारता और जीवन की क्षणभंगुरता सब मिथ्या है। इस अवस्था में ज्ञानी पुरुष इन्द्रिय प्राप्त ज्ञान की परिधि से ऊपर उठकर प्रज्ञावान् हो जाता है। अनन्त एवं असीम होकर बन्धन मुक्त हो जाता है और अमर होकर मृत्यु के त्रास से मुक्त हो जाता है।

जब तक अज्ञान व अविद्या का आवरण पुरुष पर रहता है तब तक वह इच्छा और कर्म चक्र में फँसकर कर्म फल को भोगता रहता है, किन्तु अविद्या के आवरण को भेदकर यह ज्ञानी पुरुष चेतन तत्त्व परम ब्रह्म परमात्म स्वरूप ही हो जाता है। कामनाएँ विगलित हो जाती हैं और शाश्वत सत्य से साक्षात्कार करता हुआ यह अपरिमित अमृत तत्त्व को प्राप्त कर लेता है।

मोक्ष वह अवस्था है जहाँ विशुद्ध ब्रह्म ज्ञान का प्रकाश अखण्ड सत्-चित् आनन्द के घनरूप में विलक्षणतः अनुभूत होता है और माया एवं भ्रम विलीन हो जाते हैं। जिस प्रकार इस प्रपंच की सारी सत्ता उस एक अखण्ड सत्ता का ही प्रतिफलन है उसी प्रकार सारे आनन्द भी उसी चरम आनन्द के स्वरूप हैं जिसका कुछ आभास हमें सुषुप्ति से हो सकता है। ब्रह्म की सत्ता अन्य दृश्य सत्ताओं से पृथक् और अमूर्त धारणा मात्र नहीं है। वह यथार्थ सत्ता है जो शुद्ध चित् और आनन्द के साथ अपने पूर्णत्व में प्रतिभासित होती है। सत् ही शुद्ध चित् और शुद्ध आनन्द है। ब्रह्म के ऐसे स्वरूप को जानना एवं स्वयं को उससे एकात्म जानना ही मुक्ति है-

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति॥"

प्रकाशस्वरूप, ज्योतिर्मय, अज्ञानांधकार से परे महान् पुरुष परमेश्वर को जानकार ही अमृतत्व को प्राप्त होता है।

यद्यपि सभी आस्तिक दर्शन मोक्ष पर विचार करते हैं तथापि तत्त्वतः विवेचन करने पर स्पष्ट होता है कि उत्तरमीमांसा दर्शन इसका अनुसंधान विशेषतः करता है शेष दर्शन मूलतः दृश्यमान मूर्त जगत् पर अधिक विचारशील है जबकि वेदान्त मूर्त जगत् की अपेक्षा आत्म तत्त्व अर्थात् ब्रह्म पर विचारशील है। उत्तरमीमांसा द्वारा प्रदत्त इस मौलिक अनुसंधान पर आगे चलकर विशिष्टाद्वैत, द्वैत, अद्वैताद्वैत आदि दर्शनों ने अपना विशिष्ट मत प्रतिपादित किया है।

जीव का बन्धन अविद्या के कारण होता है। यह सम्पूर्ण प्रपंचमय जगत् असत्य, जड़ और दुःखमय है। केवल ब्रह्म ही सच्चिदानन्दस्वरूप है। जीव तथा ब्रह्म एक ही है, किन्तु अज्ञानावरण के द्वारा वह अपनी पृथक् सत्ता का अनुभव करता है और अहंता एवं ममता की भावना उसमें उत्पन्न हो जाती है। शरीरादि उपाधियों के सम्बन्ध से वह अपने चौतन्य-स्वरूप को विस्मृत कर देता है। उस समय माया के वशीभूत हुआ वह जीव, कामादि के बन्धनों से व्यथित होता है।

इसी माया के द्वारा अध्यास उत्पन्न होता है, जिससे जीव भ्रान्त संसार को सत्य समझने लगता है एवं ब्रह्ममय इस प्रपंच में अनेक रूपात्मक जगत् का भ्रम होने लगता है। पश्चात् शहरिरेव जगत् जगदेव हरिः “इसको भूल जाता है तथा अज्ञान की श्रृंखला में बद्ध हो जाता है। तमोगुण से विमूढ़ हुए पुरुष के अन्दर असद् बुद्धि अर्थात् जो वस्तु जैसे नहीं है उसमें वैसी बुद्धि उत्पन्न होना, विवेक के अभाव में रज्जु में सर्प की बुद्धि उत्पन्न होती है। इसके पश्चात् अत्यन्त अनर्थों का समूह मनुष्य के ऊपर टूट पड़ता है। इसलिए यह जो मिथ्या ग्रहण है, यही बन्धन का कारण है।”

इस प्रकार देह को ही आत्मा मानकर जीव संसार चक्र में घूमता रहता है। मानव जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति ही है, जो ज्ञान से सम्भव है, कर्मों से नहीं। कर्म रूपी बीजों का विद्यारूपी अग्नि से अर्थात् ज्ञानाग्नि से नाश (क्षरण) होता है। अतः ज्ञान के लिए काम्य और निषिद्ध दोनों कर्मों को छोड़ना पड़ेगा। पूर्व मीमांसा में काम्य कर्मों से ही मोक्ष या स्वर्ग की प्राप्ति कही गयी है, परन्तु यहाँ उत्तरमीमांसा अर्थात् अद्वैत वेदान्त में उन काम्यादि कर्मों का निषेध किया गया है।

ज्ञान-प्राप्ति के लिए साधन चतुष्टय परमोपयोगी है। इन साधनों के प्राप्त होने पर अध्यारोप तथा अपवाद विधि से गुरु ब्रह्म का उपदेश करता है और क्रमशः पंचकोशों से व्यतिरिक्त स्थूल, सूक्ष्म शरीर से पृथक् उसके स्वरूप का बोध कराता है। तदनन्तर ‘तत्त्वमसि नेह नानास्ति किंचन’, ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’ ‘अहं ब्रह्मास्मि’ आदि महावाक्यों से ब्रह्मवेत्ता गुरु प्रपन्न शिष्य को आत्मज्ञान कराता है। उस समय जीव और ब्रह्म का भेद मिट जाता है और दोनों अभेद को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार इस परोक्षानुभव से उसका सम्पूर्ण अज्ञान नष्ट हो जाता है। पंचकोशों के विनष्ट हो जाने पर जो नित्य आनन्द, एकरसवाली, आन्तरिक चौतन्यरूप महान् विशुद्ध ज्योति भासित होने लगती है यही मुक्ति या मोक्ष की अवस्था है। वेदान्त में भी मुक्ति के दो स्वरूप हैं—

1. जीवन्मुक्ति और 2. विदेहमुक्ति।

1. जीवन्मुक्ति—

जीवन्मुक्ति में अज्ञान नष्ट हो जाने पर देह इन्द्रिय से क्रियमाण कर्मों का अनुभव करता हुआ भी उनको परमार्थतः अनुभव नहीं करता है, वह संसार में रहते हुए भी निर्लिप्त ही रहता है, वही जीवन्मुक्ति है। जैसे—जल में कमल पत्र। जीवन्मुक्ति के स्वरूप का निर्देश करते हुए भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जल में कमल के पत्र की भाँति पाप से लिप्त नहीं होता। इसी प्रकार शंकराचार्य भी कहते हैं कि जिस प्रकार मूँज से सींक को अलग कर लेते हैं, उसी प्रकार इस दृश्य प्रपंच से प्रत्यक्ष संग्रहित तथा क्रिया रहित आत्मा को पृथक् करके समस्त दृश्य प्रपंच का लय करके जो आत्म रूप से स्थित रहता है, वही ‘जीवन्मुक्त’ है।”

2. विदेहमुक्ति—

तत्त्वज्ञान के द्वारा जब अनुभूयमान कर्म क्षीण हो जाते हैं तथा स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों का अन्त हो जाता है उस विराम को ही ‘विदेह मुक्ति’ कहते हैं। विदेहमुक्ति के स्वरूप का निर्देश करते हुए शंकराचार्य कहते हैं कि जो पुरुष आनन्दस्वरूप ब्रह्म में अपने वृत्तियों को लीन कर चुका है, वह तत्त्ववेत्ता पुरुष अपने शरीर पर पुनः ध्यान नहीं देता। जिस प्रकार गौ अपने गले में पड़ी हुयी माला पर ध्यान नहीं देती। प्रारब्ध कर्मों में सूत्रों में गुंथा हुआ यह शरीर चला जाए या रहे इस पर वह ध्यान नहीं देता।

सांख्य के समान अद्वैत वेदान्त का मोक्ष या मुक्ति दुःखों का अभावमात्र ही नहीं अपितु आनन्द की भावयुक्त दशा है। उस समय कोई कामना इच्छा नहीं रहती, पूर्ण विदेहमुक्त पुरुष ब्रह्मलीन ही हो जाता है। समस्त दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति ही मोक्ष है। मोक्ष प्राप्ति का निश्चित साधन ज्ञान है।

‘ज्ञानादेव तु कैवल्यम् और नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय तथा’ ऋतेज्ञानान्मुक्तिः

आदि श्रुति वचनों के अनुसार ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान के बिना मोक्ष का अन्य मार्ग नहीं है। द्वैतवाद अद्वैत दर्शन के बाद प्रवर्तित सभी अन्य मतों यथा द्वैतवाद, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि में जीव को ब्रह्म से पृथक् ही स्वीकार किया गया है। यथार्थतः अद्वैतवाद ही मोक्ष के मूल मार्ग का अनुसन्धान करता हुआ आत्यन्तिक निवृत्ति का मार्ग प्रशस्त करता है, और यह ज्ञान आज के भौतिक युग में शांति की कामना करने वाले मानव समुदाय के लिए अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुण्डकोपनिषद् गीता प्रेस, गोरखपुर
2. कठोपनिषद् (शांकरभाष्य) - गीता प्रेस गोरखपुर
3. श्रीमद्भगवद्गीता - गीता प्रेस, गोरखपुर
4. वामन पुराण - गीता प्रेस गोरखपुर
5. विष्णु पुराण - गीता प्रेस गोरखपुर
6. भागवत पुराण - गीता प्रेस गोरखपुर
7. बृहदारण्यकोपनिषद् - गीता प्रेस गोरखपुर
8. गीता - रामानुज भाष्य
9. भारतीय दर्शन - दत्ता और चटर्जी

मिथिलेश्वर के 'सुरंग में सुबह' उपन्यास में लोक और तंत्र के मध्य बढ़ती दूरियां

डॉ० देवेन्द्र शुक्ल

स्नातकोत्तर विभागध्यक्ष, हिंदी विभाग, जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय शक्ति जिला जांजगीर चांपा, छत्तीसगढ़

सारांश

अखिल भारतीय मुक्तिबोध पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, यशपाल पुरस्कार, अमृत पुरस्कार तथा साहित्य मार्तण्ड सम्मान से सम्मानित मिथिलेश्वर का राजनीतिक उपन्यास सुरंग में सुबह बड़े आकार का उपन्यास है। लोकतन्त्र विमर्श मुख्यतः उसके परवर्ती हिस्से में है। आधे से अधिक पृष्ठों में राजनीतिक, सामाजिक जीवन के उस यथार्थ को उभारा गया है, जिसकी देन लोकतन्त्र का यह संकट है।

बिहार प्रदेश का जो अंचल कथा के केन्द्र में है वह मिथिलेश्वर का अपना जाना बूझा अंचल, उनकी अपनी जमीन है। उपन्यास में चित्रित राजनीतिक सामाजिक जीवन की घटनाएँ इसी जमीन पर घटित होती हैं। पात्र भी इसी जमीन के हैं, वे सत्तारूढ़ दल के केन्द्रीय मन्त्री राव मानवेन्द्र हों, उनका प्रतिस्पर्द्धी आर. अण्डमान हो, उनकी बेटी नन्दिता हो या फिर जनार्दन, अंजलि, घनश्याम या दूसरे पात्र। आज की राजनीति और राजनेताओं के अधःपतन के, राजनीतिक नैतिकता की क्षय के जो प्रयोग उपन्यास में हैं, तथा लोकतन्त्र के विद्रूपीकरण के खिलाफ जो अभियान जनार्दन और अंजलि अपने युवा साथियों की मदद से चलाते हैं, विविध राजनीतिक दलों के अपने क्रियाकलाप, बाजार तन्त्र और मीडिया की अवांछित भूमिकाएँ, उन सबका सम्बन्ध भी उसी धरती के यथार्थ से है जो मिथिलेश्वर की अपनी जानी-पहचानी है। सामाजिक अराजकता, ग्रामीण जीवन की रूढ़िबद्धता, अपढ़ जनता की मानसिक जड़ता, दरिद्रता तथा हत्या, सामूहिक नरसंहार, अपहरण, दलित उत्पीड़न, स्त्री शोषण आदि की जिन घटनाओं को उपन्यास में उभारा गया है, उनका सम्बन्ध भी बिहार प्रदेश के देखे भोगे जीवन की वास्तविकताओं से है।

मूल शब्द: मिथिलेश्वर, 'सुरंग में सुबह', उपन्यास, लोक, तंत्र, बिहार

मिथिलेश्वर के उपन्यास "सुरंग में सुबह" में आज की राजनीतिक व्यवस्था का सटीक चित्रण किया गया है। समकालीन राजनीति का अन्तर्जाल किस तरह झूठ, भ्रष्टाचार, दांवपेंच और अनैतिकताओं से भरा हुआ है इसका साक्षात् रूप इस उपन्यास में उभरकर सामने आया है। राजनीति ने समाज के हर वर्ग को किस तरह से अपनी गिरफ्त में लिया हुआ है और राजनीतिज्ञों की महत्वाकांक्षाएँ किस स्तर पर जाकर सिद्धान्तों, मूल्यों, नैतिकताओं तथा आस्था को पददलित कर रही हैं इसका जीवत चित्रण इस उपन्यास में बहुत विस्तार और गहराई से किया गया है। जो लोग इस भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाते हैं उन्हें किस तरह झूठे आरोपों में फंसाकर समाप्त करने की कोशिशों की जाती हैं और इसमें मीडिया यानि पत्रकारिता की भूमिका अवसरवादी रूप ग्रहण करती है यह भी गहरी चिन्ता का विषय है। ये तथाकथित नेता धर्म, साहित्य यहाँ तक कि अपने लोगों का इस्तेमाल करने में नहीं चूकते हैं। मानवेन्द्र सिंह की बेटी नन्दिता अपने पिता के हर विरोधी को उनके पक्ष में लाने के लिए बिना किसी लज्जा के अपनी देह का इस्तेमाल करती है। राजा-महाराजाओं के काल में राष्ट्रहित में विषकन्याओं का इस्तेमाल किया जाता था लेकिन वर्तमान समय में स्त्रियाँ स्वयं को इस्तेमाल होने दे रही हैं यह राजनीति की पतनावस्था का वो वीभत्स रूप है जहाँ मूल्यों, नैतिकता और सिद्धान्तों की कोई अहमियत नहीं है सिर्फ सत्ता प्राप्ति की आकांक्षा को साकार करने के लिए माध्यमों का मूल्य रह जाता है।

मिथिलेश्वर का यह उपन्यास बड़े आकार का उपन्यास है। उपन्यास में घटनाओं का चित्रण इस तरह किया गया है कि हर कथा एक संपूर्ण कथा में बदल जाती है। हर कथा राजनीति का नया चेहरा उभारती है। आधे से अधिक पृष्ठों में राजनीतिक, सामाजिक जीवन के उस यथार्थ को उभारा गया है, जिसकी देन लोकतन्त्र का यह संकट है। बिहार प्रदेश का जो अंचल कथा के केन्द्र में है वह साहित्यकार मिथिलेश्वर का अपना जाना बूझा अंचल उनकी अपनी जमीन है। उपन्यास में चित्रित राजनीतिक सामाजिक जीवन की घटनाएँ इसी जमीन पर घटित होती हैं। पात्र भी इसी जमीन के हैं। चाहे वे सत्तारूढ़ दल के केन्द्रीय मन्त्री राव मानवेन्द्र हो या उनका प्रतिस्पर्द्धी आर. अण्डमान हो या उनकी बेटी नन्दिता हो या फिर जनार्दन अंजलि, घनश्याम या दूसरे पात्र।

आज की राजनीति और राजनेताओं का कच्चा चिट्ठा उपन्यास में लेखक ने बड़ी चतुराई के साथ प्रस्तुत किया है लोकतन्त्र के विद्रूपीकरण के खिलाफ अभियान जनार्दन और अंजलि अपने युवा साथियों की मदद से चलाते हैं विविध राजनीतिक दलों के अपने क्रियाकलाप बाजार तन्त्र और मीडिया की अवांछित भूमिकाएँ उन सबका सम्बन्ध भी उसी धरती के यथार्थ से है जो मिथिलेश्वर की अपनी जानी पहचानी है। सामाजिक अराजकता, ग्रामीण जीवन की रूढ़िबद्धता, अनपढ़ जनता की मानसिक जड़ता, दरिद्रता, हत्या, सामूहिक नरसंहार, अपहरण, दलित उत्पीड़न, स्त्री शोषण आदि जिन घटनाओं को उपन्यास में उभारा गया

है, उनका सम्बन्ध भी बिहार प्रदेश की वास्तविकताओं से है। मिथिलेश्वर के साहित्य की विशेषता यह है कि इन्होंने यथार्थवाद की अपनी कला के तहत जो भी स्थितियाँ, प्रसंग, घटनाएँ या पात्रों के अपने क्रियाकलाप उपन्यास में सजीव हुए हैं वे प्रादेशिक अथवा आंचलिक सीमाओं से आगे प्रतिनिधि बनकर उपन्यास में आए हैं और उनके जरिए हिन्दुस्तान के किसी भी भाग के राजनीतिक-सामाजिक जीवन के यथार्थ को समझा जा सकता है। यह भारतीय राजनीतिक सामाजिक जीवन का यथार्थ है जो उपन्यास में उद्घटित हुआ है।

मिथिलेश्वर का उपन्यास 'सुरंग में सुबह' इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि यह भारत के संसदीय जनतंत्र के नव रूढ़िवाद, नव जातिवाद, नव संप्रदायवाद और नव पूंजीवाद पर आरुढ़ होकर किसी भी तरह से चुनाव जीत कर जनतंत्रीय सत्ता पर कब्जा करने वाली पतनशील प्रक्रिया को पकड़ने की कोशिश करता है। यह उपन्यास इस तथ्य को प्रस्तुत करता है कि जिस देश का लोक अपने 'तंत्र' की समझ से वंचित हो, वहाँ लोकतन्त्र की परिकल्पना कभी बेहतरी को प्राप्त नहीं कर सकती। तंत्र की समझ को 'लोक' की संवेदना से जोड़ना इक्कीसवीं सदी में व्यापक चिंता का विषय है।

उपन्यास का आरम्भ मानवेंद्र सिंह की राजनीतिक यात्रा और उस यात्रा में जनार्दन द्वारा सारे आवंतरिक रहस्यों, भेदों तथा समीकरणों को जान लेना उस सत्य से साक्षात्कार करवाना है जो सत्य जनता की आँखों में धूल झोंकना है। जहाँ जनता को मूर्ख बनाकर नेता अपनी कुर्सी को मजबूत बनाते हैं और षड्यंत्र करवाकर सहानुभूति भी बटोर लेते हैं। तमाम समस्याओं – चाहे वह हिंसा हो या जातीय दंगे या हड़ताल – के जन्म में नेताओं की भूमिका तथा साजिश का भंडाफोड़ करता यह उपन्यास लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास रखने वाले जनतांत्रिक आधार की नींव हिलाने वालों की असलियत उजागर करता है।

उपन्यास में जनार्दन एक सेवक के रूप में पढ़ लिखकर नौकरी दिलवाने की आशा में नेताजी के पास रहता है। नेताजी नौकरी तो नहीं दिलवा पाते हैं अपनी जान बचाने की एवज में उसे अपना सुरक्षा कवच अंगरक्षक जरूर बना लेते हैं। नेता जी की सुरक्षा की जिम्मेदारी के कारण जनार्दन उनके काफी करीब आ जाता है और यहीं पर आकर वह उनकी चालों को देखता है...। हैरान कर देने वाली उनकी साजिशें जनार्दन की आँखें खोल देती हैं। राजनीति का यह धिनौना रूप मन में वितृष्णा भर देता है। नेता जी की हत्या के बाद कथा एक नया मोड़ लेती है जब जनार्दन अपने गाँव में आम लोगों के बीच जाकर काम करने लगता है। वह गाँव में जाकर पार्टी कार्यकर्ता बन जाता है। रैलियों में भाग लेता है। गाँव में आकर अंजली एक ईमानदार स्त्री उसके जीवन में आती है। टिकट मिलने की प्रक्रिया में जो धांधली होती है उससे जनार्दन को धक्का लगता है। उसी समय अपने पिता की उत्तराधिकारी बनकर नंदिता युवा राजनीतिज्ञ के रूप में सामने आती है।

'सुरंग में सुबह' बाजारवाद के साथ जुड़े सांस्कृतिक संदर्भों एवं उसके सामाजिक परिणामों की गहराई में जाकर इस तथ्य को पकड़ता है कि बाजारवाद का हमला सिर्फ आर्थिक स्तर पर नहीं है इसके सांस्कृतिक दुष्प्रभाव भी हैं। नतीजा यह कि बाजारवाद के विश्व महाप्रभुओं के हितों के साथ अपने हितों की नत्थी करके भविष्य को सुरक्षित समझने वाले देशी महाप्रभुओं की संख्या भी निरंतर बढ़ रही है। जिस 'तंत्र' में 'लोक' से अधिक 'लोकतंत्र' की चिंता को तरजीह मिलने लगे, वह तंत्र लोकतन्त्र के महान आदर्शों से पतन की राह पर ही आगे बढ़ता है।

बाजारवाद के हमले के बावजूद लोकतन्त्र की जड़ें मजबूत हैं इसलिए "यहाँ कोई शासक अपनी स्वेच्छाचारिता के बल पर अधिक समय तक काबिज नहीं रह सकता। अपनी प्रकृति के अनुकूल हमारा लोकतन्त्र शासकों और उसकी पार्टियों को सत्ता से बेदखल करता रहा है।"¹

बाजारवाद का प्रभाव मीडिया पर भी कम नहीं है। उसके बारे में लेखक का मत है—

"मानवीय संघर्ष में समय-समय पर प्रतिगामी दैत्यों का मारा जाना ऐतिहासिक सच रहा है। हम इस विश्वास के साथ दृढ़ हैं कि इस बाजार रूपी दैत्य का भी अंत होना है।"²

पिता की मृत्यु के बाद जब नंदिता राजनीति में आती है तो उसे जन-जन तक पहुँचाने का काम मीडिया करता है। लेखक ने मीडिया तथा पत्रकारिता पर जमकर कटाक्ष किया है। पत्रकारिता के मूलभूत सिद्धान्तों की खिल्ली उड़ाने वाले पत्रकार तथा मीडियाकर्मी धन और राजनीतिक प्रभाव के सामने कठपुतली बन जाते हैं। बाजारवाद की ओट में घुटने टेकने वाले इस तंत्र की लेखक ने जमकर खिंचाई की है। मीडिया को पूरी तरह संवेदनहीन नहीं कहा जा सकता है। उसने संवेदना की अपनी प्राथमिकताएँ बदल दी हैं। अब उसके केन्द्र में गाँव के किसान-मजदूर और जमीनी सच्चाईयों नहीं रहीं, सत्ता प्रतिष्ठान के लोग बड़े उद्योगपति, बड़े खिलाड़ी, बड़े फिल्मकार और बड़े घराने हैं।"³

बाजारवाद, मीडिया, पत्रकारिता के बाद लेखक ने वैश्वीकरण के संकट पर अपने विचार प्रो. नायर के माध्यम से व्यक्त किये हैं। प्रो. नायर का कथन "वैश्वीकरण के इस संकट का उल्लेख मैं अक्सर करता हूँ। पर इस आपदा को बहुत से लोग वरदान मानकर चलते रहे हैं। हमारे लोकतन्त्र के लिए यह वैश्वीकरण साधक है या बाधक इसकी विभाजक रेखा खींचनी ही पड़ेगी कठिनाई यह है कि विज्ञान के घोड़े पर सवार वैश्वीकरण के इस दिग्विजयी रथ को रोकने की क्षमता का अभाव लोग महसूस कर रहे हैं।"⁴

राजनीति में आने के बाद नंदिता जनार्दन को हर तरह से परेशान करता है। उसका केवल एक ही उद्देश्य है जीत हासिल करना। उसके लिए चाहे उसे किसी भी हद तक जाना पड़े वह तैयार रहती है। लेकिन जीत होती है जनार्दन की, उसके विश्वास की, उसके समर्पण की। आम लोगों की जो परिवर्तन की मुख्य शक्ति होती है "अपनी इस लड़ाई में जमीनी स्तर पर मूल्य आधारित पार्टियों और कार्यकर्ताओं की समर्पित भूमिका ही हमें विजयी बनाएगी।"⁵ उपन्यास में व्यक्ति स्थिति लोकतन्त्र में हमारी आस्था को पक्का करती है। गिरफ्तार होने के बावजूद भी जनार्दन को नंदिता अपराधी आतंकवादी घोषित नहीं करवा पाती है बल्कि जनार्दन असली जननायक बनकर राजनीति में अपनी जगह बनाने में कामयाब हो जाता है और यही लोकतन्त्र की महानता का द्योतक है।

उपन्यास में जिन समस्याओं तथा स्थितियों को लेखक ने उठाया है वे आज के लोकतन्त्र की ज्वलंत समस्याएँ हैं और उनका हमारे जीवन में गहरा प्रभाव है। उस प्रभाव से कोई भी वर्ग अछूता नहीं है और हरेक को अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी पड़ती है। बिना संघर्ष किए मनुष्य का अस्तित्व सुरक्षित नहीं, इसलिए संघर्ष के द्वारा ही प्रतिगामी शक्तियों से लड़ा जा सकता है। यह संदेश बहुत बड़ा संदेश है।

उपन्यास में मुख्य रूप से लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि राजनीति के साथ जो व्यवस्थाएँ तथा ताकतें लोकतांत्रिक व्यवस्था को प्रभावित कर रही हैं उनका सच भी लेखक ने उभारा है। 'सुरंग में सुबह' सभ्यता के निष्कवच अंतःसंघर्ष को अभिव्यक्त करता है। निष्कर्ष यह कि जनतंत्र का विकल्प जनतंत्र ही है। जनतंत्र को साध लेने से बाकी सारी समस्याएँ सधने के रास्ते पर स्वतः आने लग जाती हैं। जनतंत्र को साधने का यह संघर्ष बाहरी भी होता है और भीतरी भी। सुरंग में सुबह बेहतरी के लिए जनतंत्र केंद्रित युवा संघर्ष के सूर्योदय की सामाजिक स्थिति के आयाम पर विरचित है। उपन्यास अंत तक आते-आते बौद्धिक विमर्ष तथा बहस का केन्द्र बन जाता है। शायद यह इसलिए भी जरूरी था क्योंकि इसी बहाने तमाम बिन्दुओं पर बहस की जा सकती थी। उपन्यास अपने उद्देश्य में सफल रहा है।

निष्कर्ष

सुरंग और सुबह दोनों प्रतीक हैं। एक लोकतन्त्र पर छाए संकट और अंधियारे का, दूसरा उस संकट से टकराने, अन्धकार के खिलाफ प्रकाश के अपने संगठित अभियान का। लोकतन्त्र का यह विद्रूप जो आज हमारी आँखों के सामने है, वह सुरंग है जिसके भीतर से देश गुजर रहा है और सुबह वे कर्मठ प्रयास हैं जिनकी अगुवाई जनार्दन और उसके साथी कर रहे हैं। रचनाकार का बल सुरंग पर नहीं, उसके भीतर फूटने वाली सुबह पर है जिसे अपने प्रकाश को बिखेरने के लिए अनन्त आकाश भले न मिले हों, परन्तु वह फूट चुकी है। अंधियारा घटाटोप है, सख्त है और उसे बेधने वाली प्रकाश की किरणें अभी उतनी सशक्त नहीं हैं। परन्तु सुबह का होना ही, भले वह सुरंग के भीतर का हो, अपनी अहमियत रखता है। कुछ लोग हैं, जिनमें ईमानदारी, निष्ठा और संकल्प हैं, कुछ ताकतें हैं जो अंधियारे के खिलाफ खड़ी हैं बहुत कठिन प्रयासों की जरूरत है अंधियारे को भेदने के लिए। बड़े धीरज की जरूरत है, किन्तु प्रतिज्ञा हो चुकी है।

वस्तुतः यह घटाटोप अन्धकार से प्रकाश का महासमर है जिसे लड़ा जाना है। बिगुल बज चुका है। पूरा उपन्यास इस बिन्दु पर अन्धकार और प्रकाश के समर की महागाथा बन जाता है। जो प्रकाश के पक्ष में खड़े हैं, वे गँवई गाँव के साधारण जन हैं, परन्तु जो ईमानदार और कर्मठ हैं, समय के कुचक्र के बावजूद अपने जमीन को बचाए रख सके हैं।

यदि लोकतन्त्र भ्रष्ट और विपथित है तो क्या है उसका निदान? वही यक्ष प्रश्न, जिसका संकेत हमने प्रारम्भ में किया है। मिथिलेश्वर की निगाह में भी शायद नहीं। तभी वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि लोकतन्त्र का विकल्प लोकतन्त्र ही हो सकता है, विपथित और भ्रष्ट लोकतन्त्र का विकल्प, अपनी गरिमा और मर्यादा वाला यही लोकतन्त्र है।

संदर्भ सूची:

1. मिथिलेश्वर, सुरंग में सुबह, पृ. - 377
2. मिथिलेश्वर, सुरंग में सुबह, पृ. - 390
3. मिथिलेश्वर, माटी कहे कुम्हार से, पृ. - 299
4. मिथिलेश्वर, माटी कहे कुम्हार से, पृ. - 388
5. मिथिलेश्वर, माटी कहे कुम्हार से, पृ. - 390

दलित साहित्य में उपेक्षा, अपमान और पीड़ा की अभिव्यक्ति: सहानुभूति नहीं स्वानुभूति

डॉ० बिभा कुमारी

सहायक प्राध्यापक, वी० एस० जे० महाविद्यालय, राजनगर, मधुबनी, बिहार

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने कहा था कि दलितों की उन्नति में बाधक किसी भी व्यक्ति, संस्था या संगठन का, चाहे वह दलित समाज की ही क्यों न हो, तीव्र विरोध करना चाहिए। दलितों को स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए।...ऐसा कोई कारण नहीं है कि हम अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, तथा संवैधानिक अधिकारों के लिए आंदोलन न करें। उन्होंने यह भी कहा है कि वह धर्म जो अपने अनुयायियों को कुत्तों और अपराधियों से बदतर मानकर असहनीय अयोग्यता आरोपित करता है, वह कोई धर्म नहीं है.. धर्म और दासता परस्पर विरोधात्मक हैं। क्योंकि जो धर्म किसी वर्ग को शिक्षा ग्रहण न करने दे, धन संचय न करने दे, वह धर्म न होकर मनुष्य के जीवन की विडंबना है।

डॉ. अंबेडकर के ये विचार भारतीय समाज में, विशेष रूप से हिंदू धर्म में लंबे समय से चली आ रही, जन्म पर आधारित वर्ण-व्यवस्था पर सीधी चोट है। हिंदु धर्म में जाति और लिंग का ऐसा भेद-भाव रहा है, कि सदियों से स्त्री और अनुसूचित जाति दलित, शोषित और पीड़ित रहे हैं। अंबेडकर के विचारों ने इन पीड़ितों को आगे आने की प्रेरणा दी। अतः कह सकते हैं कि दलित-लेखन के प्रेरणास्रोत अंबेडकर ही हैं। दलित साहित्य आंदोलन का आरंभ सर्वप्रथम मराठी साहित्य से हुआ। मराठी साहित्य के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में भी दलित-लेखन का दौर प्रारंभ हुआ। दलित-लेखन पर चर्चा से पूर्व 'दलित' शब्द के अर्थ को समझना आवश्यक है। 'दलित' शब्द का अर्थ है- जिसका दलन और दमन हुआ है, जिसे दबाया गया है, जो शोषित, उत्पीड़ित, उपेक्षित, सताया हुआ, घृणित, कुचला हुआ, मसला हुआ, रौंदा हुआ है। किन्तु आज के सामाजिक, साहित्यिक और राजनीतिक संदर्भों में इस शब्द को एक भिन्न सांस्कृतिक अर्थ प्राप्त हुआ है। वर्तमान समय में यह शब्द भारतीय संदर्भों में अंत्यजों और जनजातियों के लिए रूढ़ हो गया है।

“इस विशिष्ट संदर्भ में सबसे पहले इस शब्द का इस्तेमाल सत्तर के दशक की शुरुआत में बाबा साहेब अंबेडकर के नवबौद्ध अनुयायियों ने किया था।”

दलित शब्द की इस अवधारणा से जिसमें इसे अंत्यज और अस्पृश्य तक सीमित कर दिया गया, प्रायः दलित साहित्यकार सहमत हैं। लेकिन 1973 में 'दलित पैन्थर' के घोषणा-पत्र में 'दलित' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है-

“राजसत्ता, धर्म, संपत्ति और सामाजिक हैसियत के आधार पर होनेवाली सभी नाइंसाफियों के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रतिबद्ध अनुसूचित जातियाँ और जनजातियाँ, भूमिहीन मजदूर, छोटे किसान और घुमंतू जनजातियाँ दलित मानी जाएँगी। (मुटाटकर, 1988)। कुछ कार्यकर्ताओं ने इस श्रेणी में महिलाओं, अफ्रीकी और अमेरिकी अश्वेतों एवं अन्य उत्पीड़ित राष्ट्रीयताओं को भी जोड़ लिया।”

'दलित' शब्द पिछले कुछ दशकों में ही अधिक प्रचलित हुआ है। कुछ विचारक जहाँ इसे अनुसूचित जाति तक सीमित रखना चाहते हैं, वहीं कुछ विद्वानों की राय में इसमें आदिवासी, अन्य पिछड़ी जातियों को भी शामिल किया जाना चाहिए।

डॉ. श्योराज सिंह बेचौन के शब्दों में- “दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है”

जाति- व्यवस्था के कारण, निम्न पायदान पर स्थित जाति के लोगों पर, कठोर से कठोर और हर प्रकार की गंदगी से जुड़े काम करने का दबाव बनाया जाता है। यदि वे इस तरह के काम करने से इंकार करते हैं, तो उन्हें अपमानित किया जाता है, गालियाँ दी जाती हैं, और मारा-पीटा जाता है।

कंवल भारती के अनुसार- “दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है।”

मोहनदास नैमिशराय ने दलित शब्द को अधिक विस्तार दिया है। उन्होंने कहा है कि दलित शब्द मार्क्स के सर्वहारा शब्द का समानार्थी प्रतीत होता है, लेकिन इन दोनों शब्दों में बहुत अन्तर है। सर्वहारा की व्याप्ति दलित की तुलना में सीमित है। सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है, जबकि दलित में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, तथा राजनीतिक शोषण का अंतर्भाव है। प्रत्येक दलित सर्वहारा के अंतर्गत आ सकता है, किन्तु प्रत्येक सर्वहारा दलित के अंतर्गत आए, यह जरूरी नहीं है।

“दलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है। लेकिन इन दोनों शब्दों में पर्याप्त भेद भी है। दलित की व्याप्ति अधिक है, तो सर्वहारा की सीमित। दलित के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण का अंतर्भाव होता है, तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है। प्रत्येक दलित व्यक्ति सर्वहारा के अंतर्गत आ सकता है, लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते...अर्थात् सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है, जबकि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार होता है।”

वर्ण-व्यवस्था में जिसे अछूत की श्रेणी में रखा गया, समाज में निम्नतम स्थान प्रदान किया गया, जिसका निरंतर शोषण हुआ। संविधान में इसी समूह को अनुसूचित जातियाँ कहा गया है, जो जन्म से अछूत है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि के अनुसार, “भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया, वह व्यक्ति ही दलित है। दुर्गम पहाड़ों, वनों के बीच जीवनयापन करने के लिए बाध्य जनजातियाँ और आदिवासी, जरायमपेशा घोषित जातियाँ सभी इस दायरे में आती हैं। सभी वर्गों की स्त्रियाँ भी दलित हैं। बहुत कम श्रम-मूल्य पर चौबीसों घंटे काम करनेवाले श्रमिक, बंधुआ मजदूर दलित की श्रेणी में आते हैं।”⁶

दलित शब्द जब साहित्य से जुड़ता है, तो ऐसी साहित्यिक धारा की ओर संकेत करता है जो मानवता और यथार्थ की हिमायती है।

“साहित्य के साथ दलित शब्द के जुड़ते ही उसकी व्यापकता और अधिक क्रांतिबोधक हो जाती है। अर्थ और अधिक व्यंजनात्मक होकर साहित्य की भूमिका और सामाजिक उत्तरदायित्यों को और अधिक विश्लेषित करने की क्षमता हासिल कर लेता है। दलित शब्द विरोध की अभिव्यक्ति का प्रतीक बन जाता है। मानवीय संवेदना के सरोकारों से जुड़कर सामाजिक प्रतिबद्धता स्थापित करता है।”⁷

‘दलित-लेखन’ वर्ण-व्यवस्था के विरोध में है। वर्ण-व्यवस्था के विपरीत मूल्यों के लिए संघर्ष करने वाले मनुष्यों के प्रति यह लेखन प्रतिबद्ध है। वर्ण-व्यवस्था उंच-नीच का भेद उत्पन्न करती है, छुआ-छूत फैलाती है, इसके कारण उच्च वर्ण में पैदा होते ही व्यक्ति स्वामी बन जाता है, और निम्न वर्ण में पैदा होते ही दास। जबकि वर्ण-व्यवस्था के विपरीत मूल्य प्रेम, बंधुत्व, समता, का समर्थन करती है।

दलित लेखन समाज-व्यवस्था के निचले पायदान पर अवस्थित लोगों द्वारा लिखा गया साहित्य है। इस साहित्य की अनुभूति परम्परागत साहित्य से पूर्णतः अलग है। बाबूराव बगूल के अनुसार, “‘दलित साहित्य’ वह लेखन है, जो वर्ण-व्यवस्था के विरोध में और उसके विपरीत मूल्यों के लिए संघर्षरत मनुष्य से प्रतिबद्ध है। वर्ण-व्यवस्था अर्थात् द्वेष, शत्रुता, मत्सर, तिरस्कार की युद्ध-भावना। इसके विपरीत मूल्य अर्थात् प्रेम, बंधुत्व, समता, भ्रातृभावपूर्ण शांति और समृद्धि। ‘दलित’ शब्द से अनेक प्रकार का बोध होता है, जैसे दुख-बोध, अपमान-बोध, दैन्य-दासता-बोध, जाति-वर्ग-बोध, विश्व-बंधुत्व-बोध और क्रांति-बोध।”⁸

‘दलित’ शब्द की विभिन्न व्याख्याओं को देखने के पश्चात कह सकते हैं कि समाज में जो भी पीड़ित हैं वे दलित हैं। अतः दलित का यदि व्यापक अर्थ लें, तो इसके तीन वर्ग हो सकते हैं- स्त्री, गरीब और शूद्र। किन्तु दलित साहित्य की जो परिकल्पना है, उसमें आर्थिक पक्ष को अधिक महत्व नहीं दिया गया है। अधिकांश दलित चिंतकों का मानना है कि आर्थिक आधार पर व्यक्ति अमीर या गरीब हो सकता है, लेकिन दलित नहीं। ‘दलित’ शब्द निम्न जाति के लिए ही प्रयोग किया जाना चाहिए। यही स्थिति स्त्री की भी है। अधिकतर, दलित चिंतक-साहित्यकार उच्च मानी जानेवाली जातियों की स्त्रियों को इस दायरे में नहीं रखना चाहते हैं। उनका कहना है कि दलित शब्द का प्रयोग उन व्यक्तियों के लिए होता है, जो सामाजिक संरचना और समाज-व्यवस्था में सबसे निचले पादान पर अवस्थित हैं। वर्ण-व्यवस्था में जिसे अछूत या अंत्यज समझा गया, जिसका शोषण और दलन हुआ, जिसे संविधान ने अनुसूचित किया और जो जन्मना अछूत और घृणा का पात्र रहा, वही दलित है। यह दलित शब्द साहित्य के साथ मिलकर एक ऐसी साहित्यिक धारा का निर्माण करता है, जो मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक सरोकारों की यथार्थवादी अभिव्यक्ति कर उसकी विसंगतियों को छिन्न-भिन्न कर देना चाहती है।

कंवल भारती के अनुसार, “हिन्दी दलित साहित्य वह है, जो दलित मुक्ति के सवाल पर पूरी तरह अंबेडकरवादी है। सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक क्षेत्रों में उसके सरोकार वे ही हैं, जो अंबेडकर के थे। दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है। अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों के द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य कि कोटि में आता है।”

अधिकांश दलित लेखक और चिंतक यह मानते हैं कि दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही वास्तविक दलित साहित्य है। इस प्रसंग में वे सहानुभूति और स्वानुभूति के अन्तर को स्पष्ट करते हैं। गैर-दलितों के साहित्य को ये दलित सहानुभूति का साहित्य कहते हैं। उनका तर्क है कि उस पीड़ा, उपेक्षा, त्रासद-बोध का स्वयं अनुभव किए बिना दलित साहित्य नहीं लिखा जा सकता। द्रष्टा की सहानुभूति में भोक्ता की स्वानुभूति की सच्चाई नहीं हो सकती है। इस मान्यता के समर्थक हैं- मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती, डॉ. धर्मवीर, जयप्रकाश कदम, श्यामराज सिंह ‘बेचैन’, राजेन्द्र यादव, मैनेजर पांडे, देवेन्द्र चौबे, विश्वनाथ त्रिपाठी, रमणिका गुप्ता। सवर्ण रचनाकारों द्वारा लिखे गए दलित साहित्य में जाने-अनजाने सवर्णता दोष और दलित विरोधी स्वर का समावेश हो जाता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण प्रेमचंद की दलित रचनाएँ हैं। इसी प्रकार नागार्जुन की कविता ‘हरिजन गाथा’ में आए कुछ शब्द-‘हरिजन’ ‘मनुपुत्र’, ‘वेद’, ‘ऋचाएँ’ आदि दलित-विरोधी हैं। अमृत लाल नागर के ‘नाच्यो बहुत गोपाल’ जगदीश चंद्र के ‘धरती धन न अपना’, गिरिराज किशोर के ‘परिशिष्ट’, मनमोहन पाठक के ‘गगन घटा घहरानी’, पुनी सिंह के ‘पठार घाटी का शोर’, मन्मू भंडारी के ‘महाभोज’ आदि उपन्यासों को दलित विचारक दलित साहित्य की रचना नहीं मानते हैं। दूधनाथ सिंह की कहानी ‘धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे’ को नामवर सिंह ने दलित कहानी घोषित की थी। लेकिन ओमप्रकाश वाल्मीकि इसे दलित चेतना की नहीं, जनवादी वर्ग-चेतना की रचना मानते हैं। प्रेमचंद की कहानियों पर अंबेडकर के आंदोलनों का प्रभाव है, ‘सद्गति’, ‘ठाकुर का कुआँ’, ‘दूध का दाम’, ‘आहुति’, ‘मंत्र’ आदि कहानियाँ दलित चेतना से युक्त हैं, लेकिन इन सभी कहानियों पर उनके सवर्ण संस्कारों का प्रभाव है।

मैनेजर पांडे का कथन है- “हिन्दी में दलितों के जीवन पर उपन्यास और कविता लिखनेवाले गैर दलित ने अपने वर्ग और वर्ण-संस्कारों से मुक्त होकर ही दलित जीवन पर लिखा है। फिर भी, उनके लेखन में अनजाने में ही सही, सवर्ण-संस्कारों की छाया आ गयी है।”¹⁰

दलित-लेखन की मूल चेतना है- मनुवाद का विरोध करना तथा असमानता और अस्पृश्यता को सदा के लिए समाप्त करना। बाह्य स्तर पर, यह मार्क्सवादी साहित्य जैसा प्रतीत होता है लेकिन, दलित साहित्य और मार्क्सवादी साहित्य में बहुत अन्तर है। मार्क्सवादी साहित्य के केंद्र में अर्थ और वर्ग है, जबकि दलित-लेखन के केंद्र में वर्ण और संस्कृति है। आर्थिक परिस्थितियाँ तो परिवर्तित हो सकती हैं, लेकिन वर्ण-व्यवस्था के तहत जाति नहीं बदल सकती है। समय के साथ गरीब व्यक्ति धनी हो सकता है, लेकिन जाति का संबंध जन्म से है, और मनुष्य जीवन भर इससे स्वयं को अलग नहीं कर सकता है।

ओम प्रकाश वाल्मीकी भारतीय वामपंथ से सहमत नहीं हो पाते हैं।- “इस आंदोलन ने जाति भेद को अनदेखा ही नहीं किया, बल्कि अपने बीच किसी दलित नेतृत्व को उभरने भी नहीं दिया।”¹¹

दलित-लेखन दलित अस्मिता की सुरक्षा करता है। यह दलित चेतना की सार्थक अभिव्यक्ति है। दलित लेखन की संवेदना, मानवीय मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं पर केंद्रित है। उसके मूल में सामाजिक न्याय, जातीय समरसता, समता, बंधुत्व और सम्मान की भावना है। विचार के क्षेत्र में दलित-लेखक कबीर, रैदास, आदि दलित संतों तथा महात्मा फुले, अंबेडकर, पेरियार आदि दलित विचारकों से प्रेरणा ग्रहण करते रहे हैं। दलित साहित्य के केंद्र में बौद्ध चिंतन, जोतिबा फुले, और अंबेडकर के विचार और दर्शन हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह ‘नीग्रो साहित्य’ और अमेरिकी ‘अश्वेत महिला लेखन’ से भी प्रभावित है। भारतीय इतिहास में स्त्री-समस्या, वर्ण-व्यवस्था और जातीय असमानता के सुधार की दिशा में महात्मा फुले, बाबा अंबेडकर, पेरियार, आदि का अभूतपूर्व योगदान है। महात्मा फुले ने नारी और दलित शिक्षा के लिए क्रांतिकारी प्रयास किए। उन्होंने अपने देश की स्त्रियों के लिए देश का पहला विद्यालय खोला और उसमें अपनी पत्नी को देश की पहली अध्यापिका के रूप में नियुक्त किया। यह कदम महात्मा फुले ने उस समय उठाया जब स्त्री-शिक्षा इस देश के लिए एक सपना था, इसके अतिरिक्त, आज के विश्व के अनेक विकसित देशों में भी उस समय स्त्री-शिक्षा का आरंभ नहीं हुआ था। कुछ दिनों पश्चात उन्होंने दलितों के लिए अलग से स्कूल खोला। इन कामों के लिए उन्हें व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में अनेक कष्ट उठाने पड़े। उनका सामाजिक और पारिवारिक तौर पर बहिष्कार किया गया। उनकी पत्नी को भी अनेक बार अपमानित होना पड़ा और कष्ट उठाने पड़े।

डॉ. अंबेडकर ने दलितों के लिए कई सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन चलाए। उन्होंने वर्ण-वर्ग हीन समाज की स्थापना और दलितों के उत्थान के लिए ‘शिक्षा, संगठन और संघर्ष’ का नारा दिया। अंबेडकर के इसी संघर्ष के परिणामस्वरूप मराठी साहित्य में दलित चेतना का उद्भव और विकास हुआ। लेकिन साहित्यिक भावधारा के रूप में इस चेतना का विकास देश की स्वतंत्रता के बाद हुआ। महाराष्ट्र में दलित साहित्य शब्द का प्रयोग 1954 ई. से होने लगा था। मराठी में दलित साहित्य का आंदोलन 1960ई. से शुरू हुआ। 1967 ई. से इस पर विधिवत बहस शुरू हुई और 1976 ई. के ‘नागपुर दलित साहित्य सम्मेलन’ से यह जोर पकड़ने लगा। 60 के दशक में जन-आंदोलनों का काफी जोर रहा। इन आंदोलनों में खेतिहर मजदूर और भूमिहीन किसान के रूप में दलितों ने बड़ी संख्या में भागीदारी की। आंध्र प्रदेश में ‘दिगम्बर कवालू’ जैसे कवियों और लोकगायकों के एक समूह से दलितों का जुड़ाव होने लगा। इन कवियों-लोकगायकों ने जातिगत भेद-भाव, छुआछूत और शोषण आदि के यथार्थ चित्रों को अपने गीतों में प्रस्तुत किया। ऐसा ही एक समूह बंगाल में ‘भूखी पीढ़ी’ के नाम से काम कर रहा था। यह कवियों-साहित्यकारों का समूह था, जो उत्पीड़ित जनता के कष्टों, असंतोष और कातर भावनाओं को अपने शब्दों में व्यक्त कर रहा था। इन्हीं दिनों अमेरिका में कालों का आंदोलन विकसित हो रहा था। “ठीक इसी समय अमेरिका में मेलकम एक्स के जुझारू नेतृत्व में कालों का आंदोलन विकसित हो रहा था। इस आंदोलन ने भी दलितों को काफी प्रभावित किया। यह ‘अश्वेत कविता’, ‘अश्वेत रंगमंच’, ‘अश्वेत संगीत’, और ‘अश्वेत संवाद’ का जमाना था।”¹²

इसी दशक में ‘अश्वेत शक्ति’ की अवधारणा ने जोर पकड़ा और अश्वेत लोगों ने ‘गोरों के उत्पीड़न से’ संपूर्ण मुक्ति का ऐलान कर दिया। भारत में आजादी के बावजूद दलितों पर अत्याचार हो रहे थे। 1972 में ब्लैक पैथर की तर्ज पर दलित पैथर का गठन किया गया। इसी वर्ष राजा ढाले ने एक लेख ‘काला स्वातंत्र्य दिवस’ शीर्षक से लिखा। यह काफी विवादास्पद रहा इससे दलितों में सनसनी फैल गयी और इसके साथ ही ‘दलित’ शब्द प्रचलित हो गया।

इन्ही परिस्थितियों के मध्य ‘सारिका’ के तत्कालीन संपादक कमलेश्वर ने 1975 में सारिका के दो दलित विशेषांक निकाले। इससे दलित चेतना की ध्वनि तो सुनाई पड़ने लगी, लेकिन उस समय हिन्दी में दलित लेखक नहीं थे। कमलेश्वर के शब्दों में- “उस समय तक हिन्दी का दलित साहित्य स्वानुभूत नहीं था। गैर-दलित का ही दलित विषयक लेखन था। हिन्दी के दलित लेखकों का उदय तब नहीं हुआ था। मैं खुद हिन्दी क्षेत्र का हूँ। उस समय तक कुछ ऐसा उभार और उत्थान दिखाई नहीं पड़ता था।...बाबूराव बागुल, दया पवार, अर्जुन डांगले, सतीश कालसेकर आदि लेखकों से मेरी समांतर लेखक सम्मेलन के बारे में बात-चीत हुई थी। हमने इंदौर चुना था। परंतु वह संभव नहीं हो सका।”¹³

90 का दशक आते-आते हिन्दी में दलित-साहित्य ने दस्तक देना शुरू कर दिया और हिन्दी में दलित साहित्य का दौर चल पड़ा। दलित कविताएँ, कहानियाँ, आत्मकथाओं के अंश आदि पत्र-पत्रिकाओं में छपकर आने लगे थे। 1992 तक दलित-साहित्य आंदोलन का एक दौर समाप्त हो चुका था।

दलित लेखन अनेक पत्र-पत्रिकाओं तथा सभा सम्मेलन में तो अपनी पहचान बना ही चुका था, ‘हंस’ पत्रिका की पहल, तथा ‘युद्धरत आम आदमी’ जैसी जनवादी पत्रिका (सं- रमणिका गुप्ता) से जुड़कर यह आंदोलन अधिक तेजी से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगा। ‘दलित साहित्य सम्मेलनों’ ने भी समकालीन दलित चेतना के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 1993 में आयोजित ‘नागपुर दलित लेखक सम्मेलन’ तथा 1997 में हजारीबाग में आयोजित ‘दलित साहित्य लेखक सम्मेलन’ इस दिशा में सराहनीय है। रमणिका गुप्ता के शब्दों में-

“दलित साहित्य की परिभाषा और उसकी सीमा उतनी ही है जितनी मनुष्य की सीमा। इस दृष्टि से दलित साहित्य आज की सोच का प्रतिनिधित्व करता है।”¹⁴

सदियों से शोषण, हीनता और अपमान के शिकार दलितों ने जो सामाजिक उत्पीड़न सहा है, दलित साहित्य उस दुख, आक्रोश, विरोध और विद्रोह की अभिव्यक्ति है। दलित-लेखन शुद्ध कला नहीं, बल्कि एक आंदोलन है। यह सामाजिक विसंगतियों को सामने लाकर उसके परिष्कार का प्रयत्न करता है। यह वर्ण-व्यवस्था का विरोध करता है, मानव मात्र की गरिमा को स्थापित करने की भरपूर कोशिश करता है। इस प्रकार, दलित-लेखन का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य मानव की मुक्ति है। यह लेखन अंबेडकर की विचारधारा और कबीर की समाजिकता के साथ खड़ा है। इसका उद्देश्य भी कबीर और अंबेडकर के समान समाज और साहित्य की व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन है।

वास्तव में दलित-लेखन समाज में अपनी सही भूमिका और अस्मिता की तलाश की छटपटाहट है। यही कारण है कि ‘सर्वर्ण-वर्चस्व’ वाले मुख्य धारा के साहित्य से उसका सीधा विरोध है। दलित-लेखन जहाँ एक ओर अपनी अस्मिता की तलाश में है, तो वहीं दूसरी ओर वह मानवीय मूल्यों के साथ है। मानव की स्वतंत्रता और उसकी अभिव्यक्ति दलित लेखन की प्राथमिकता है। दलित लेखन के विषय में कहा जाता है कि यह जातिजनित भेद-भाव और

सामाजिक समस्या की ही अधिक बातें करता है, आर्थिक मुद्दों को नहीं उठाता है। इसकी वजह यह है कि दलित-लेखन का उद्देश्य है- ऐसा समाज, जिसमें समता, सम्मान, बंधुत्व, प्रेम, सह- अस्तित्व और स्वतंत्रता हो। आर्थिक समस्या जातिगत समस्या नहीं है, आर्थिक स्थिति कितनी भी अच्छी हो, एक दलित को सवर्ण के समान नहीं समझा जाता है। समाज में उसे हेय दृष्टि से देखा जाता है। इस पीड़ा से सिर्फ दलित को ही गुजरना पड़ता है। इसीलिए दलितों की सामाजिकता पारंपरिक समाज-व्यवस्था पर सीधा प्रहार करती है। दलित-लेखन पारंपरिक समाज-व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन और सभी मनुष्यों के लिए एक समान सामाजिक आचार और व्यवहार संहिता का हिमायती है।

वर्ण-व्यवस्था की विषम, भेद-भावपूर्ण सामाजिक संरचना के बोझ के नीचे दलित समाज सदियों से दबा हुआ कराह रहा है। वास्तव में वर्ण-भेद, वर्ग भेद से भी अधिक पीड़ादाई है। वर्ण और जाति व्यवस्था भारतीय समाज की कड़वी सच्चाई है।

दलित साहित्य की मौखिक परंपरा के विषय में मैनेजर पांडे ने कहा है- “दलित साहित्य के रचनाकार तब भी थे, जब कोई दलित आंदोलन नहीं था, क्योंकि यातनाग्रस्त व्यक्ति को चीखने से कोई रोक नहीं सकता और दलित साहित्य एक स्तर पर यातना से पैदा हुई चीख का ही साहित्य है।”¹⁵

प्राचीन काल में दलितों को शिक्षा का अधिकार नहीं था। प्रत्यक्ष रूप से मालिक के विरोध में बोलने का भी हक नहीं था। ऐसे में व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह के भाव कला रूपों में व्यक्त हुए होंगे। विरोध की मौखिक चेतना मौखिक साहित्य के रूप में प्रकट हुई। भारतीय दलित समाज में प्रचलित ‘सूरमा सहलेस’, ‘लोरिकाइन’, ‘राजा-चुहड़मल’, ‘बिहुला-बिषहरी’, ‘सारंगा-सदावृक्ष’, ‘सोरठी-वृजाभार’, ‘ढोला-मारू’, आदि लोकगाथा एवं भिखारी ठाकुर जैसे लोककलाकारों के लोकनाट्य-‘विदेसिया’, ‘गबरघिचोर’ आदि की परंपरा तथा विभिन्न लोकदेवी-देवताओं की पूजा-आराधना उपेक्षित और दलित जन-जीवन की ही गाथा है।

दलित-लेखन की भाषा पर भी सवाल उठाए जाते हैं, और इसकी भाषा को अश्लील कहा जाता है। लेकिन तथ्य यह है कि दलित-लेखन का आरंभ ही प्रतिक्रियास्वरूप हुआ। इसमें क्षोभ, पीड़ा, आक्रोश और प्रतिरोध का स्वर है। दलित-लेखन में परम्परागत साहित्य के विषय और भाषा-शैली दोनों को ही नकारा गया है। दलित लेखक ऐसी भाषा का इस्तेमाल करता है, जो दलितों की पीड़ा, अपमान, व्यथा को पूर्ण अभिव्यक्ति दे सके, पात्रों एवं परिस्थितियों के अनुकूल हो तथा जन-सामान्य को समझ में आ जाए।

इस संबंध में कंवल भारती ने कहा है- “दलित साहित्य गाली साहित्य नहीं है। जिस परिवेश में दलित साँस ले रहा है, वे गालियाँ उसी परिवेश में हैं। दलित लेखक उन गालियों को उस परिवेश से कैसे निकाल सकता है? यथार्थ का यथार्थपूर्ण चित्रण उसकी समग्रता में ही हो सकता है।”¹⁶

मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान आदि लेखकों की कहानियों में, दलित जीवन की भाषा सहज और प्रभावशाली रूप में है। सरल, सहज, आम बोल-चाल की भाषा में दलितों की पीड़ा का यथार्थ चित्रण है।

दलित-लेखन प्रतीक, बिम्ब और रूपकों से अछूता नहीं है। दलित समाज की पीड़ा, उत्पीड़न, शोषण-दमन, बेबसी आदि को चित्रित करने के लिए प्रतीकों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। दलित कवि लाल चंद राही अपनी कविता में वृक्ष की कटी-छंटी टहनियों के माध्यम से दलितों की क्षत-विक्षत स्थितियों का चित्रण किया है। दलित-लेखन में मिथकों में भी पर्याप्त नवीनता है। दलित-लेखन में एक तरफ बिल्कुल नए मिथकों को गढ़ा जा रहा है, तो वहीं दूसरी ओर पुराने मिथकों को नयी परिभाषा दी जा रही है। राम की मर्यादा, सीता का पातिव्रत्य, कर्ण की दानवीरता, आरुणि और एकलव्य की गुरुभक्ति, आदि नयी परिभाषा और नए स्वरूप में चित्रित हो रहे हैं। प्रतीक और मिथक के साथ-साथ दलित साहित्य के बिम्ब भी दलित जीवन की त्रासदी और यथार्थ को व्यक्त करते हैं।

रमणिका गुप्ता दलित साहित्य को सामाजिक आंदोलन मानती है। उनके अनुसार-

“दलित साहित्य अभिजात साहित्य से बिल्कुल भिन्न है। वह उनके मिथकों को तोड़कर नए मिथक गढ़ता है या पुराने मिथकों को नए सिरे से परिभाषित करता है। यह साहित्य भाषा, प्रतीक, शैली में भी अभिजात साहित्य से भिन्न है। यह खुरदुरी है और जन से जुड़ी है। यह भाषा चोट करती है, चुभती है। जनवादीय पात्र मार्क्सवादी साहित्य से जुड़े हुए हैं, लेकिन उनका दृष्टिकोण केवल वर्गीय रहा है। दलित साहित्य में वर्ग और वर्ण दोनों की लड़ाई प्रमुख है।”¹⁷

दलित साहित्य पारंपरिक मिथक, मान्यता और आदर्शों से भिन्न एक नया सौंदर्यशास्त्र गढ़ रहा है, जो अधिक मानवीय, अधिक उपयोगी और अधिक यथार्थपूर्ण है। दलित साहित्य की भाषा वेदना और विद्रोह की भाषा है।

हिन्दी में दलित-लेखन विशुद्ध रूप में बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में ही दिखाई देता है, लेकिन इसके उत्स प्राचीन और मध्यकाल में भी देखे जा सकते हैं। भारत में आरंभ से ही दलित लेखन होता रहा है। आदि ग्रंथ वेदों में समतामूलक ऋचाओं और मंत्रों की संख्या सैकड़ों में है। उपनिषदों में भी ऐसी ही स्थिति है।-

सहनावतु सहनौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।

तेजस्विनाव धितमस्तु मा विद्विषा वहै॥

पाली भाषा में भी इस प्रकार के विचार व्यक्त किए गए हैं। व्यक्ति की महिमा का कारण जाति नहीं कर्म होता है।-

न जटाहि न गोत्तेन न जच्चा होति ब्राम्हणो।

यम्हि सच्चम न धम्मो च सो सुची सो च ब्राम्हणो

मध्य काल में कबीर ने भी जाति प्रथा पर कठोर कटाक्ष किया है-

तू ब्राम्हण हौं काशी का जुलाहा चीन्ह न मोर गियाना।

नामदेव भी धर्म और जाति के स्थान पर ‘ज्ञान’ को ही महत्व देते हैं-

हिन्दू अंधा तुरकौ काना, दुवौ ते ज्ञानी सयाना।

संत कवियों ने निराकार ईश्वर के गीत गाए। जाति,संप्रदाय के भेद-भाव से ऊपर उठकर मानव-मात्र की समानता का पाठ पढ़ाया। कबीर, नामदेव, रैदास, दादू दयाल आदि कवियों ने जातिगत भेद-भाव का खंडन किया।

नवजागरण कालीन दलित कवियों में हीराडोम, अछूतानंद, स्वामी शूद्रानन्द, स्वामी शंकरानन्द, अयोध्यानाथ ब्रम्हचारी, स्वामी प्रेमनाथ, स्वामी केदारनाथ, शिवानन्द पुजारी, मुंशीलाल, स्वामी ओमानन्द, स्वामी ओंकारनाथ, स्वामी जीवननाथ, स्वामी योगानन्द, स्वामी धर्मनाथ आदि नाम दिखाई पड़ते हैं। हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' 1914 में 'सरस्वती' पत्रिका में छपी थी। इस कविता में भारतीय हिन्दू समाज में, अछूतों की दीन-हीन दशा का चित्रण है। इस काल के दूसरे दलित कवि श्री सेवाराम 'धेनु सेवक' हैं। इनकी कविता 1927 में 'चाँद' के 'अछूत' अंक में छपी थी। अछूतानंद ने अपनी कविताओं में वर्ण-व्यवस्था की तीखी आलोचना की है। 'थियेटर ध्वनि' कविता में इन्होंने तत्कालीन समय और समाज का चित्रण करते हुए दलित जीवन का मार्मिक और यथार्थ चित्र खींचा है।

विभिन्न भारतीय भाषाओं में समकालीन दलित लेखन बहुत ही सक्रिय है। हिंदी के प्रमुख दलित लेखकों में-ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहन दास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, कुसुम वियोगी, डॉ. एन. सिंह, मलखान सिंह, दयानन्द बटोही, श्योराजसिंह बेचौन, डॉ. धर्मवीर, विपिन बिहारी, सोहनपाल सुमनाक्षर, सूरजपाल चौहान आदि।

मोहनदास नैमिशराय ने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में समान रूप से लिखा है, किन्तु मूलतः वे कथाकार हैं। इनके कहानी संग्रह हैं-'आवाजें', 'हमारा जवाब', 'अपने अपने पिंजरे' इनकी आत्म कथा है। 'अपने अपने पिंजरे' 1995 में प्रकाशित हुआ, इसका दूसरा खंड 2001 में प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी की पहली आत्मकथा है, जिसमें भारतीय समाज की वर्ण-व्यवस्था तले दबे दलितों के उपेक्षित जीवन, उनकी महत्वाकांक्षा, समस्या और संघर्ष को मार्मिकता के साथ चित्रित किया गया है। इनकी आत्मकथा में दलितों की गरीबी, अशिक्षा, दलित स्त्रियों के यौन-शोषण और बलात्कार आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है। दलितों के साथ समाज की मुख्यधारा के संबंध और व्यवहार का चित्रण उपन्यास में अत्यंत सजीव है। यहाँ दलितों के प्रति हिंदू सवर्णों के साथ-साथ भारतीय मुसलमानों के कुलीन तंत्र की भेदवादी दृष्टि का भी रेखांकन हुआ है, जो भारतीय समाज का यथार्थ है। आत्मकथा में एक प्रसंग में लेखक ने लिखा है कि इनकी जाति के लोग मुस्लिमों के यहाँ उगल दान हाथ में लेकर खड़े रहते थे। लेकिन पान या उनके खाने पीने की चीज को छू नहीं सकते थे। दलितों का जीवन ऐसा ही रहा है। भारतीय समाज में भंगी, पासी, चमार और मेहतारों के साथ-साथ नाई, कहार, धानुक आदि का जीवन यथार्थ यही है। शूद्र कहे जानेवाले इन लोगों का जीवन बड़े लोगों की सेवा के लिए ही समर्पित रहा है। लेखक ने अपने जन्म-स्थान मेरठ शहर में चमारों की बस्ती और उनके अनुभवों का मार्मिक चित्रण किया है। लेखक ने दिखाया है कि गाँव हो या शहर, सवर्णों की बस्ती हो या मुस्लिमों की, दलित हर जगह अपमानित होता है। उसकी दशा देश के हर कोने में एक सी शोषित, पीड़ित, अवमानित और प्रताड़ित है। भारतीय समाज की जातिवाद की विषम संरचना और मनुवादी व्यवस्था ने उसे हर पल, हर जगह छटपटाने के लिए छोड़ दिया है।

मेरठ के चमार गेट में जन्मे-पले-बढ़े लेखक को यहाँ की जीवनशैली की पूरी जानकारी है। चमारों की गरीबी, बेरोजगारी, बेगारी और शोषण के अनेक प्रकारों का मार्मिक वर्णन है। लेखक का परिवार, अपनी जाति के अन्य परिवारों की तुलना में आर्थिक रूप से सम्पन्न है। पर, भारतीय समाज में आर्थिक स्थिति सुधर जाने मात्र से ही जातिगत अपमान से छुटकारा नहीं मिल जाता है। उन्हें कदम-कदम पर अपमानित, प्रताड़ित और पीड़ित होना पड़ता है। जाति-जनित अपमान-बोध हर जगह उनका पीछा करता है। लेखक के शब्दों में पीड़ा की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है- "हम लंबे समय से अपमान सहते आये थे, पर गुनहगार न थे हम। हम हारे हुए लोग थे, जिन्हें आर्यों ने जीतकर हाशिये पर डाल दिया था।.....हमारे पास सिर्फ कड़वा अतीत और जख्मी अनुभव था। सदियों से गर्दिश में रहते-रहते हम अपने इतिहास से कट गए थे। अपनी संस्कृति भूल गए थे।"¹⁸

नैमिशराय जी दलित समाज को संदेश देना चाहते हैं कि अपने इतिहास और अपनी संस्कृति की खोज करो। अपने आपको पहचानो। हिंदू समाज की वर्ण-व्यवस्था ने संपूर्ण भारतीय समाज को वर्ण और जातियों में विभक्त कर दिया है। उसके प्रभाव से ईसाई, इस्लाम और सिक्ख जैसे समानतावादी धर्म भी नहीं बच सके। उनमें भी शोख, सैयद और पठानों के बीच जुलाहे, कसाई, कलाल और अंसारी आदि जातियाँ दलित ही हैं। लेकिन हिन्दू दलित उनकी नजर में भी दलित और गिरी हुई जातियाँ हैं। फिर, दलितों के बीच भी अनेक उपजातियाँ हैं, जिनमें श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता का भेद-भाव है। निम्न से निम्न समझी जानेवाली जाति भी अपने से नीच जातियों को खोज लेती है और इस प्रकार मनुवादी व्यवस्था की छुआछूत तथा श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ भावना यहाँ भी काम करती रहती है। नैमिशराय ने अपनी आत्मकथा में इन अंतर्विरोधों को भी उभारा है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। हिन्दी में शुद्ध रूप से दलित-साहित्य की कथा-यात्रा इन्हीं से शुरू होती है। 'जंगल की रानी' इनकी पहली दलित कहानी है, जो 1987 ई. में प्रकाशित हुई थी। इनकी आत्मकथा 'जूठन' अत्यधिक चर्चित है। यह हिन्दी में अब तक लिखित किसी दलित साहित्यकार की सर्वाधिक सशक्त और कलात्मक आत्मवृत्त है। अनेक आलोचकों ने इसे आत्मकथात्मक उपन्यास भी कहा है। किन्तु इसे उपन्यास मानना इस रचना के साथ अन्याय है। आत्मकथा में भी निश्चित रूप से कथा तत्व होते हैं। लेखक ने अपने जीवन-यथार्थ को कथात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अति अनुभवी कथाकार हैं। यही कारण है की उनकी आत्म-कथा में भी कथातत्व का नियोजन स्वाभाविक रूप से हुआ है। अपनी इस आत्मकथा में उन्होंने भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म और इतिहास में पवित्र और उत्कृष्ट माने जाने वाले तीन प्रतीकों-शिक्षण संस्थान, गुरु (शिक्षक) एवं प्रेम पर कड़ा प्रहार किया है। उन्होंने अपनी आत्मकथा के माध्यम से स्पष्ट किया है कि दलित समाज में जन्म लेने वाले व्यक्ति को तमाम योग्यताओं और सद्गुणों के बावजूद इन तीनों प्रतीकों की नकारात्मक भूमिकाओं का सामना करना पड़ता है। कल तक जो व्यक्ति आपके सद्गुणों से अभिभूत था, आज आपकी जाति का नाम सुनते ही आपको हेय दृष्टि से देखने लगता है। उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने, उच्च पद पर पहुँच जाने पर भी, आपकी लाख अच्छाई पर जाति भारी पड़ती है। इस जन्म आधारित जाति-व्यवस्था में, दलित, को समाज में सिर्फ और सिर्फ 'दलित' समझा जाता है- कभी खुले स्वर में, तो कभी दबे स्वर में, तो कभी हाव-भाव से जाति का ताना दे ही दिया जाता है। इतना ही नहीं, जहाँ ऊपरी तौर पर अस्पृश्यता या भेद-भाव प्रकट नहीं किया जाता है, वहाँ भी मानसिक अस्पृश्यता का एहसास किसी न किसी रूप में करवा दिया जाता है। विशेष रूप से,विवाह के मामले में तो समानता की बात सोची भी नहीं जा सकती।

अपनी आत्मकथा में इन्होंने लिखा है- “दलित जीवन की पीड़ाएँ असहनीय और अनुभव दग्ध हैं। ऐसे अनुभव जो साहित्यिक अभिव्यक्तियों में स्थान नहीं पा सके। एक ऐसी समाज-व्यवस्था में हमने साँसें ली हैं, जो बेहद क्रूर और अमानवीय है। दलितों के प्रति असंवेदनशील भी.....। अपनी व्यथा-कथा को शब्द-बद्ध करने का विचार काफी समय से मन में था। लेकिन प्रयास करने के बाद भी सफलता नहीं मिल पा रही थी।..... इन अनुभवों को लिखने में कई प्रकार के खतरे थे। एक लंबी जद्दोजहद के बाद मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया। तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा, उस दौरान गहरी मानसिक यंत्रणाएँ मैंने भोगी। स्वयं को परत-दर-परत उधेड़ते हुए कई बार लगा- कितना दुखदाई है यह सब! कुछ लोगों को यह अविश्वसनीय और अतिरंजनापूर्ण लगता है।”

‘जूठन’ दलित जीवन की मर्मांतक पीड़ा का दस्तावेज है। जीवन की सुख-सुविधा और तमाम नागरिक सहूलियतों से वंचित दलित जीवन की त्रासदी उनके व्यक्तिगत वजूद से लेकर घर-परिवार, बस्ती और पूरी सामाजिक व्यवस्था तक फैली हुई है। इनकी रचनाएँ अनेक देशी-विदेशी भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। दलित-लेखन के माध्यम से समाज को नए सिरे से समानता का अर्थ बताया गया है। सदियों से चली आ रही जाति व्यवस्था के लोग ऐसे आदि हो गए हैं कि दलित भी अपने शोषण को स्वाभाविक मान लेता है। ओम प्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं-

वे आजीवन रहे बेखबर, उस हमलावर से
जिसकी सेवा-टहल में
खप गयी पीढ़ियाँ
बिक गयी भूखी-नंगी
मर गई बेमौत, बेनाम
चिर-परिचित गलियों में।

सूरजपाल चौहान के कहानी संग्रह ‘हैरी कब आएगा’ में दलित के दुख, दर्द, व्यथा, अपमान, शोषण, उत्पीड़न का यथार्थ चित्रण हुआ है। सफाई कर्मचारी को यह समाज कभी भी सम्मान के योग्य नहीं समझता है। ‘अपना-अपना धर्म’ कहानी में इन्होंने लिखा है-“ धर्म विरुद्ध कार्य करने वालों को ऐसी ही कुत्ते की मौत नसीब होती है। अरे, पाण्डे होकर गंदी नालियाँ साफ करता था। लाज नहीं आई उसे नीच काम करते।” धर्म के नाम पर, होने वाले आडंबरों का भी इन्होंने पर्दाफाश किया है। एक तरफ लोगों को रोटी, पीने के लिए साफ पानी तक उपलब्ध नहीं है। दूध की तो सोच भी नहीं सकते, वहीं दूसरी तरफ, मंदिरों में मूर्तियों में प्राण-प्रतिष्ठा करने के नाम पर, सैकड़ों लीटर दूध बहा दिया जाता है। “दूध, गंगाजल आदि से इसीलिए धोकर पवित्र करते हैं कि भगवान की उस मूर्ति को बनाने वाले अछूत व नीच जाति के लोग होते हैं। जाने किस-किस भंगी, कुम्हार या चमार के हाथ उस मूर्ति पर लगते हैं।”

अपने दलित उपन्यास ‘छप्पर’ के लिए चर्चित कर्दम, कविता, कहानी और विचार साहित्य में समान रूप से लिखते रहे हैं। इनकी पहली दलित कहानी ‘सांग’ ‘पश्यन्ति’ में 1995 ई. में छपी थी। जयप्रकाश कर्दम ने दो उपन्यास लिखे हैं- ‘छप्पर’ और ‘करुणा’। वैसे तो ‘छप्पर’ पूरे दलित समाज की समस्या और उसके शोषण-उत्पीड़न को व्यक्त करता है; किन्तु दलित स्त्रियों के यौन-शोषण और बलात्कार इसकी मुख्य समस्या है। ‘छप्पर’ की कमला भी ऐसी ही दलित स्त्री है, जिसके साथ ईंट भट्टे के मालिक और उसके साथियों द्वारा सामूहिक बलात्कार होता है। मालिकों के रोब और आतंक के कारण कोई आवाज नहीं उठता। उसका बाप जब पुलिस में इसकी रपट लिखवाता है, तो उसे मार-मार कर अधमरा कर दिया जाता है। पैसे और ताकत के नीचे उसकी आवाज तो दब जाती है, लेकिन प्रतिरोध का भाव नहीं मरता है। वह अपनी बेटी की जिंदगी बर्बाद करने वाले दरिंदे से प्रतिशोध लेने का दृढ़निश्चय कर लेता है। वह ‘गँड़ासा’ लेकर उस दरिंदे की खोज में निकल पड़ता है, और जैसे ही वह दिखाई देता है, गँड़ासा उसके सिर पर मार देता है।

प्रेम कपाड़िया का अति चर्चित उपन्यास ‘मिट्टी की सौगंध’ भी बलात्कार की घटना पर आधारित है। दरअसल दलित और गरीब स्त्री को समाज के दरिंदे सबसे आसान शिकार समझते हैं। उन्हें पूरा विश्वास होता है, कि पैसे और ताकत के बल पर वे बच जायेंगे। गाँव का ठाकुर मदन सिंह शीला का बलात्कार करता है, दूसरी तरफ मदन सिंह का प्रगतिशील विचारों वाला पुत्र विजेंद्र शीला से विवाह करना चाहता है, तो उसकी दादी खानदान की दुहाई देने लगती है। ये ठाकुर गाँव की लड़कियों की इज्जत से खेलना अपना अधिकार समझता है। अंततः ये स्त्रियाँ इस ठाकुर के अत्याचारों के खिलाफ सामूहिक रूप से एकजुट होती हैं, और ठाकुर से बदला लेने के लिए सौगंध खाती हैं।

दलित साहित्य केवल दलितों के सम्मान, प्रतिष्ठा और अस्मिता तक ही सीमित नहीं है बल्कि वह उनके विकास के सभी पहलुओं को मजबूत बनाने का प्रयास करता है। दलित लेखक दलितों के सर्वांगीण विकास की बात करता है। जब वह बाकी सवर्ण समाज के साथ दलितों की समानता की बात करता है तो वह सामाजिक उपेक्षा के साथ-साथ राजनीतिक और आर्थिक की ओर भी संकेत करता है क्योंकि ये सभी पहलू आपस में जुड़े हुए हैं। वास्तव में सामाजिक भेद-भाव के कारण ही आर्थिक और राजनीतिक असमानता उत्पन्न हो जाती है। इसीलिए दलित लेखक सामाजिक समानता के माध्यम से आर्थिक और राजनीतिक समानता प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है। दलित की प्रतिष्ठा, अस्मिता, सम्मान, शिक्षा, संघर्ष, वैज्ञानिक सोच ये सभी मुद्दे मनुष्यता की जरूरी शर्तें हैं अतः दलित लेखक अपने साहित्य में इन सभी मुद्दों को उठाता है। समाज में व्यक्त सामन्ती अवशेषों, दोहरी मानसिकता, श्रेष्ठता के दंभ, कट्टरता, जातीय और धार्मिक भेदों को वह अपने लेखन के माध्यम से पूरी तरह समाप्त करने की कोशिश करता है। समाज के बहुमुखी विकास, समानता, प्रतिष्ठा, स्वाभिमान और अस्मिता का निर्माण कर, आर्थिक समानता और राजनीतिक भागीदारी भी सुनिश्चित करने का आग्रह रखता है। वह अंबेडकर के विचारों के अनुरूप भाईचारे का रिश्ता विकसित करने का इच्छुक है। दलित लेखक अपनी कृतियों में समानता, भाईचारा और आजादी का लक्ष्य हासिल करने हेतु जाति, कबीला, नस्ल या रंग के आधार पर किसी भी भेद-भाव को नकारता है। साथ ही, वह धर्म, सत्ता, दर्शन अथवा जन्म के आधार पर किसी श्रेष्ठता अथवा निकृष्टता की अवधारणा को भी अस्वीकारता है। वह पूरे समाज के भेद-भाव को मिटाना चाहता है। समतामूलक साहित्य के निर्माण में भी दलित साहित्य योगदान करता है। दलित-साहित्य हर तरह की असमानता का विरोधी है, मुख्य रूप से सामाजिक असमानता का। युगों से चली आ रही विषमता का वह

विरोधी है। आर्थिक दायरे में भी वह शोषण के विरुद्ध संघर्ष का समर्थक है। इस प्रकार, दलित-लेखन वस्तुतः उन्हीं शक्तियों के साथ है, जो भारतीय समाज को मानवीय विवेक के आधार पर, पुनर्गठित करते हुए एक समतामूलक समाज के रूप में बदलना चाहती है।

संदर्भ

1. आधुनिकता के आईने में दलित: सं. अभय कुमार दूबे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.- 196
2. वही, पृ. -209
3. डॉ. श्योराज सिंह बेचौन- युद्धरत आम आदमी (41-42), 1998, पृ.- 14
4. कंवल भारती- युद्धरत आम आदमी(41-42), 1998, पृ.- 41
5. मोहनदास नैमिशराय- साहित्य और संस्कृति में दलित अस्मिता और पहचान का सवाल, नया पथ (अंक 24-25), जुलाई-सितंबर, 1997, पृ.- 104-105
6. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र : ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.14
7. वही- पृ. 16
8. दलित साहित्य का उद्देश्य और वैचारिकता: बाबूराव बागुल, वसुधा-58, जुलाई-सित, 2003, पृ.25
9. कंवल भारती- युद्धरत आम आदमी(41-42), 1998, पृ.- 41
10. मेरे साक्षात्कार: मैनेजर पांडे, किताब घर, नयी दिल्ली, पृ.-28
11. 'कल के लिए', दिसंबर, 1998 में प्रकाशित ओमप्रकाश वाल्मीकि का लेख, पृ. -19
12. अस्मिताओं का सहअस्तित्व: घनश्याम शाह, आधुनिकता के आईने में दलित:सं. अभय कुमार दूबे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. -208
13. हिन्दी दलित साहित्य अपनी जगह मौलिक है: कमलेश्वर, अजय नावरिया के साथ कमलेश्वर के साक्षात्कार, 'हंस', अगस्त 2004
14. दलित हस्तक्षेप: रमणिका गुप्ता, पृ.-15
15. दलित साहित्य हिन्दी साहित्य का लोकतन्त्रीकरण कर रहा है: मैनेजर पांडे, साक्षात्कार, 'हंस', सत्ता विमर्श और दलित विशेषांक, अगस्त, 2004। पृ.-204
16. कंवल भारती: संकल्पिका, स्मारिका, पटना, पृ. -28
17. दलित साहित्य 'अप्प दीपो भव' में विश्वास करता है: रमणिका गुप्ता, आजकल, दिसंबर-2000, पृ.-12-13
18. अपने अपने पिंजरे: मोहनदास नैमिशरा

पिछड़ी जाति के उत्थान में गुरुघासीदास की भूमिका का अध्ययन

डॉ० महेश कुमार शुक्ला

सह प्राध्यापक इतिहास, डॉ० सी० वी० रमन विश्वविद्यालय, करगी रोड, कोटा, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

सारांश- बाबा गुरुघासीदास ने समाज में फैली हुयी कुरातियों का विरोध किया। उनका प्रमुख कदम मनखे-मनखे एक समान का नारा देकर एकता के सूत्र में आबद्ध करना चाहते थे। एकता का संदेश प्रसारित किया। एवं भावी भविष्य को सुखद बनाने हेतु बाबा द्वारा प्रयास किया गया। जिसके कारण शोषित वर्ग पिछड़े वर्गों के लोगों को समाज में प्रतिष्ठित एवं सम्मानीय जीवन जीने का अवसर प्राप्त हुआ।

शब्दकुर्जी- मनखे, उद्धार

19वीं शताब्दी में व्याप्त अंधविश्वास, छुआछुत, बलिप्रथ अत्याचार, अनाचार, अपहरण, लूट, हत्या, एवं सामंतशाही एवं शोषणकर्ता की स्थिति प्रचलित थी। यह वह समय था जब विभिन्न-विभिन्न धर्म के लोगों द्वारा मठ, मंदिर, मस्जिद एवं आदि का निर्माण कराया जाता था और धार्मिक व सामाजिक संगठन वाले इसका विरोध करने की हिम्मत जुटा पाने की ताकत नहीं रखते थे। ऐसी ही परिस्थितियों में सतनाम धर्म प्रवर्तक, अहिंसा एवं सत्यता लिये हुये युग पुरुष बाबा गुरु घासीदास का जन्म हुआ। बाबा गुरुघासीदास ने समाज में फैली हुयी कुरातियों का विरोध किया उनका प्रमुख कदम मानव-मानव एक समान एवं एकता भावना समाहित करना चाहते थे। स्त्रियों उद्धार हेतु बाबा द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किया गया जिससे नारी शोषण को रोका जा सके एवं उस समय नारियों को किसी प्रकार अधिकार प्राप्त नहीं था नारियों की स्थितियाँ दयनीय थी। तब बाबा जी ने विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहन दिया ताकि जो स्त्रियाँ को विधवा होने कारण समाज में अशुभ समझा जाता था उसे रोक सके एवं सम्मानित स्थिति प्राप्त हो सके।

पशु बलि, मावन बलि ऐसी अंधविश्वास को समाप्त करने हेतु बाबा जी द्वारा अतुलनीय कार्य किया गया। पशुओं पर हो रहे अत्याचार को रोकने हेतु प्रयास किये ताकि मूक पशुओं को सुरक्षित रखा जा सके। लोग अपने स्वार्थों के कारण मूक पशुओं का बलि दिया करते थे। मंदिर में चढ़वा चढ़ाने हेतु मावन बलि, पशु बलि उस समय प्रचलित थी इसका घोर विरोध बाबा गुरुघासीदास द्वारा किया गया।

समाज सुधारक एवं समाज के उद्धार हेतु बाबा का योगदान अनुलनीय है। एवं शोषित वर्ग के लोगों का आस्तित्व बचाने एवं उन्हें सम्मानीय अवस्था में पहुँचाने हेतु बाबा द्वारा अनेक कार्य किया गया। जिसके कारण सभी मनुष्य को मनुष्यता की पहचान करा सके। उन्होंने सत्यता सात्विका, सत्कर्म, पवित्रता को प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन का आधार बनाने को कहा। एवं नियमानुसार इनका पालन करने को संदेश दिया। बाबा द्वारा ऊँच-नीच, छुआ-छुत इत्यादि फैली हुई बुराईयों को समाप्त करने का प्रयास किया गया। ताकि कोई भी मानव किसी मानव से अलग या छोटा या बड़ा न सके। एकता का संदेश प्रसारित किया। एवं भावी भविष्य को सुखद बनाने हेतु बाबा द्वारा प्रयास किया गया। जिसके कारण शोषित वर्ग पिछड़े वर्गों के लोगों को समाज में प्रतिष्ठित एवं सम्मानीय जीवन जीने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने समाज उत्थान में महत्वपूर्ण कार्य किये जिससे समाज के लोगों को अच्छे से जीवन यापन कर सके। बाबा का सतमान पंथ किसी वर्ग विशेष के लिए नहीं था उनका पंथ सभी धर्मों के लिए खुला था कोई भी मानव सतनाम पंथ को स्वीकार कर सकता परन्तु सतनाम के ही मार्ग को स्वीकार करना पड़ता था।

संत गुरुघासीदास के व्यक्तित्व जीवन में दार्शनिक, योगी, धर्मसुधारक, समाजसुधारक, दया, करुणा, दृढ़ता, सत्यता, प्रेम-भाव, त्याग व हृदय की पवित्रता, समानता की भावना सभी गुण समाहित थे। और शिष्यों को भी अपने जीवन में धारण संदेश दिया, उनके द्वारा शुरू से ही कुरातियों, पाखंड, बाह्य आडंबर का विरोध किया गया। मूर्ति पूजा को उन्होंने सनातन मत मूर्ति पूजा के विपरित एक परमात्मा की उपासना का अलग मार्ग मानव को दिया और उसी स्वरूप को धारण करने को कहा।

मनुष्य को मूर्ति पूजा न कर सत्यरूपी आभूषण को धारण करना चाहिये। और सत् से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है। तथा सृष्टि का मूलभूत आधार सत् ही है। सत् का शाब्दिक अर्थ शक्ति और सतपुरुष का अर्थ अनादिशक्ति होता है अर्थात् जो सर्वशक्तिमान परमपिता सतपुरुष हैं। सतरूपी शब्द के उच्चारण से ही आत्मशांति एवं सतबुद्धि की प्राप्ति होती है जिसका अनुसरण कर मानव सभी दुख, कठिनाई, ऊलझनों व समस्याओं आदि में मुक्ति प्राप्त कर लेता है। बाबा सदैव एकपंथमार्गी व अद्वैतवादी थे जिस कारण वह हिन्दु धर्म में फैली कुरातियों का विरोध किया करते थे। उनका विचार था कि प्रत्येक मानव का शरीर ही उस मानव का मंदिर है और मनुष्य को उसी मानवरूपी मंदिर की पूजा करनी चाहिये इन्ही कारणों से बाबा द्वारा कंकड़-पत्थर से बने मंदिरों में जाना अपने पंथमार्गीयों के लिये निषेध कर दिया और सभी मानवों को समानता के भाव से देखते हुये मानव-मानव एक समान का संदेश दिया।

बाबा गुरुघासीदास के अनुसार मानव समानता ही जीवन की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति का माध्यम है मनुष्य को सदैव ही लोभ, मोह-माया, छल-कपट, चोरी, मंदिरापान इत्यादि व्यवसनों का त्याग कर देना चाहिये एवं सत्य के मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। मनुष्य को सदैव सीधा एवं सरल जीवन व्यतित करना

चाहिये जिसमें दुषकार्यों हेतु कोई भी स्थान नहीं होना चाहिये। संतोष की भावना प्रत्येक मनुष्य में व्याप्त होना चाहिये तथा इसी भावना के साथ अपने जीवन का निर्वाह करना चाहिये।

गुरुघासीदास का ध्येय सभी धर्मों के विपथगामियों को प्रेम व बंधुत्व के एक सूत्र में आबद्ध करना था इस कार्य हेतु बाबा द्वारा सतनाम पंथ की स्थापना की गयी। बाबा ने अपने शिष्यों को 7 सिद्धांत प्रतिपादित किया ताकि इन सभी उपदेशों को धारण कर मनुष्य अपने जीवन के अर्थ की वास्तविकता को समझ सके एवं शांतिप्रिय रूप से जीवन व्यापन कर सके।

संत गुरुघासीदास प्रकृति प्रेमी थे एवं उनके दृष्टि में सदैव प्रत्येक जीव समान थे चाहे वह मानव का रूप हो या जानवर का। वह सभी जीवों के प्रति करुणा, दया भावना व प्रेम भावना रखते थे वे पशुओं पर होने वाले अत्याचारों के प्रबल विरोधी थे यहां तक दोपहर में पशुओं को हल में जोतने के विरोधी थी उस समय फैली हुयी कुरृतियों का एक हिस्सा पशु बलि था जिसे लोगों द्वारा कई पाखंड मनोकामना पूर्ति हेतु मूक पशुओं का बलि दिया जाता था जिसका विरोध बाबा द्वारा किया गया। किसी भी जीव की हत्या करना पाप के समान है चाहे वह पशु हत्या हो या मानव हत्या। यह एक निंदनीय विषय था जिसे पूर्णतः बंद करने हेतु बाबा द्वारा प्रयास किया गया।

संत गुरुघासीदास का स्त्री उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान रहा, उस समय व्याप्त प्रथाओं में बाल विवाह, सती प्रथा एवं स्त्रियों का शोषण, विधवा प्रताड़ना प्रमुख थे उन्होंने प्रत्येक स्त्रियों को समान अधिकार व सम्मान देने को कहा तथा उनके द्वारा विधवा पुनर्विवाह हेतु प्रयास किया गया। उस समय व्याप्त समाजिक प्रथाएँ एवं कुरृतियाँ व्याभिचार तथा रूढ़िवादिता का भारतीय नारी पर गहरा प्रभाव पड़ा एवं उन्हें कमजोर बनाने में मुख्य भूमिका रहा। नारियों का सदैव पुरुषों पर सदैव आश्रित बना दिया इस वजह से नारी अधिकारों का हनन होने लगा। सती प्रथा, बाल-विवाह इन सब कारणों से स्त्रियों कमजोर होने लगी एवं विशिष्टता एवं समाज में उनका स्थान हीन होते गया तब संत गुरुघासीदास द्वारा नारी के दशा के प्रति विचार किया एवं नारी उद्धार हेतु अनेक प्रयास किये ताकि नारी समाज में अपने आप को प्रतिष्ठित एवं अपना खोया सम्मान प्राप्त कर सके।

गुरुघासीदास बचपन से ही वर्ण व्यवस्था, कुप्रथा, छुआ-छुत, अंधविश्वास, पाखंड, मूर्ति पूजा के घोर विरोधी थे प्रत्येक प्रथा चाहे वह जो भी हो, जो एक मानव को दुसरे मानव में भेद बताती है उस प्रथा के घोर विरोधी थे। उस समय वर्ण व्यवस्था जारों से प्रचलित था जिसमें मनुष्यों को वर्ण व्यवस्था के आधार पर बांटा गया जिस कारण से उच्च वर्णों के लोगों द्वारा निम्न वर्णों के लोगों की हीन दृष्टि से देखा जाता था एवं उनका शोषण किया जाता था निम्न वर्णों के लोगों को धार्मिक व उनके सामाजिक कार्यों से दूर रखा जाता था। यहां तक मंदिरों, तालाबों में प्रवेश वर्जित था उच्च व निम्न की भावना इतनी अधिक व्याप्त थी कि निम्न वर्णों का अस्तित्व ही न था।

जाति प्रथा का प्रारंभ मनुष्य के जन्म से ही प्रारंभ हो जाता था कि वह मनुष्य उच्च जाति से परिभाषित होगा या निम्न जाति से। संत गुरुघासीदास द्वारा समाज सुधार के प्रयास एवं भेद-भाव के उन्मूलन हेतु अनेकों कार्य किया गया उन्होंने मानव-मानव एक समान का संदेश प्रसारित किये जिसके अनुसार चाहे वह उच्च वर्ण का हो या निम्न वर्ण का सभी मानव उनके लिये एक समान है। कोई किसी से छोटा या बड़ा नहीं होता। वर्ण व्यवस्था एक ऐसी प्रचलित व्यवस्था थी जिसके तहत किसी मनुष्य को दूसरे जाति में जाने की अनुमति नहीं थी यहां तक विवाह भी अपने जाति से किया जाता था अर्थात् सजातीय विवाह प्रचलित था। इन सभी कारणों से बाबा में वर्ण व्यवस्था का घोर विरोध किया। इसके पश्चात् समाज सेवा का कार्य प्रारंभ किया, जिसके अनुसार सभी मानव के लिए असमानताएँ एवं विषमताएँ की स्थिति को समाप्त कर सभी मानव-मानव में समानता की भावना लाने हेतु प्रयत्न किए। वे सभी जातियों के लोगों के प्रति सद्भावना रखते हुए निम्न वर्णों के लोगों के प्रति समाजिक उत्थान का कार्य प्रारंभ किए, जिसके अनुसार मानव-मानव एक समान का संदेश प्रसारित किए।

अतः आज के मानव समुदाय के आधुनिक विकास में बाबा जी के विचारों के नितांत आवश्यकता हैं। क्योंकि इस आधुनिक समाज में युवा विभिन्न प्रकार के नशा, बुराई में लिप्त होकर अपने जीवन को अंधकार की ओर ले जाते हैं। ऐसे हालात में समाज बुद्धिजीवों को बाबा जी के संदेश को सभी वर्गों तक पहुंचना होगा। ताकि हमारे युवाओं का भविष्य सही दिशा में निर्धारित किया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

- 5 चंद्राकर अजय कुमार “छ0ग0 में अनुसूचित जाति की राजनितिक व्यवस्था में प्रभावशीलता सतनामी जाति की भूमिका में विशेष अध्ययन 1991”
- 5 चंदेल विवेक सिंह- “गुरु घासीदास विश्वविश्वविद्यालय के अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के छात्रों के उच्च शिक्षा में ग्रंथालय की भूमिका: 1983 से 1996 तक
- 5 खलखो अभय- “छ0ग0 के बंधुआ श्रम पर एक रिपोर्ट 2007”
- 5 सिंग आसना “सतनामी आत्मजोर और दलित सक्रियता: ग्रामीण छ0ग0 2013”
- 5 जोगलेकर कमलनारायण के अनुसार- “संत गुरु घासीदास एवं सतनाम पंथ का ऐतिहासिक अध्ययन 2015”
- 5 मंजिरे संजीव कुमार के लेख अनुसार- “सतनामी समाज छ0ग0 में चुनौतीपूर्ण ग्रामीण जाति संस्थान 2017”
- 5 मंजिरे संजीव कुमार के लेख अनुसार- “गुरु घासीदास और भौतिक छ0ग0 ब्राम्हणों को चुनौती 2017”
- 5 अवधेष कुमार के अनुसार:- “छ0ग0 में कबीर और सतनामी आंदोलन का तुलनात्मक अध्ययन
- 5 एंडरसन, आर। माइकल और गुहाएस (एड्स।) (1 99 8) दक्षिण एशिया में राइटिंग कॉन्सेप्ट्स ऑफ राइट्स एंड जस्टिस नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीप्रेस।

कबीर पंथ के आस्थागत प्रवाह केन्द्र कुदुरमाल

डॉ० अंजू तिवारी

सह प्राध्यापक, इतिहास, डॉ. सी व्ही रमन विश्वविद्यालय, करगीरोड कोटा बिलासपुर

सारांश-कबीर-पंथियों के आस्था का प्रमुख का केन्द्र कुदुरमाल है। आज से तकरीबन 5 सौ वर्ष पूर्व कबीर-पंथ के धर्माचार्य श्री मुक्तामणि नाम साहब (चुरामणि नाम साहब) ने इस जगह को अपनी कर्म स्थली बनाया था और यही से उन्होंने कबीर-पंथ के प्रचार-प्रसार का कार्य किया था। आज यहां मुक्तामणि नाम साहब का ना सिर्फ आश्रम है, वरन् उनकी समाधि भी इसी स्थान पर स्थित है। इस मायने से कबीर-पंथ के अनुयायियों के लिए इसका धार्मिक महत्व काफी बढ़ जाता है।

शब्दकुंजी- उपाख्य, सर्वोन्नत, त्रोटक, गौरव, अनुप्राणित, दीनदयाल, सतपुरुष।

प्रस्तावना- अविभाजित मध्यप्रदेश के बिलासपुर जिले में चाम्पा-कोरबा मार्ग में 28 कि.मी. दूरी पर स्थित ग्राम उरगा के पश्चिम में लगभग 3 कि.मी. दूरी पर 'कुदुरमाल' नामक ऐतिहासिक ग्राम है, जो पुण्य सलिला हसदेव नदी के सुरम्य तट पर अवस्थित है। कोरबा जिला मुख्यालय से तकरीबन 14 कि.मी. दूर हसदेव नदी के पावन तट पर स्थित है। कुदुरमाल को छत्तीसगढ़ गौरव योजनानर्तक कोरबा जिले का एक आदर्श ग्राम घोषित किया गया है।

यही कुदुरमाल आज सम्पूर्ण विश्व में फैले लगभग 35 करोड़ कबीर-पंथियों का आदि कबीर पीठ है। कबीर-पंथ की इसे गंगोत्री कहा जाता है। संवत् 1577 में धर्मदास साहब के शाखा जो कबीर-पंथ की सर्वोन्नत और सर्वाधिक महत्वपूर्ण और मुख्य केन्द्र है। प्रथम आचार्य चुरामणि नाम साहब उपाख्य श्री मुक्तामणि साहब ने कबीर पीठ की स्थापना कर औपचारिक रूप से कबीर की विचारधारा से अनुप्राणित जीवन पद्धति अथवा कबीर-पंथ के नाम से अभिहित पंथ की आधार शिला रखी।

कुदुरमाल में चुरामणि नाम साहब ने 60 वर्ष तक गुरुवाई गद्दी का कार्यभार संभालने के पश्चात् संवत् 1630 में श्री सुदर्शन नाम साहब को गुरुवाई गद्दी सौंपकर स्वयं पान परवाना लेकर सतलोक गमन कर गए। कबीर-पंथ के प्रधानाचार्य चुरामणि नाम साहब ने बांधोगढ़ से चलकर कुदुरमाल में आचार्य गद्दी की स्थापना की। इसलिये कबीर-पंथ का मूल स्थान कुदुरमाल कहा जाता है।

पं.श्री 1008 चुरामणि नाम साहब ने यहां अनेक कुदरती कमाल किया था। इसलिए इस पवित्र भूमि का नाम 'कुदुरमाल' पड़ा। 'कुदरत' 'कमाल' का अर्थ ईश्वरीय लीला या चमत्कार होता है इसी शब्दार्थ से लोकोक्ति में कुदुरमाल त्रोटक शब्द में वचनबद्ध किया गया जो आगे चलकर कुदुरमाल या कुधुरमाल कहलाया।

यहां के वर्तमान आचार्य श्री ज्योति स्वामी जी ने 'सार तत्व बोध' में कुदुरमाल का परिचय इस प्रकार लिखते हैं -

कु- कुलाचार्य कुल पूज्य विचारक।

दीनदयाल सतपुरुष पद धारक॥

दु- दूर समीप शरण जब आये।

पाकर ज्ञान भरम मिट जाये।

र- रम्य पाशाण पर्दापण कीन्हा।

भक्तों के सब दुःख हर लीन्हा।

मा- मान-अमान की चाह दुराई

सत्य प्रिय जन हित चितलाई।

ल- लगन लगे कोरबा नृप आवा।

गुरु दीक्षित जीवन फल पावा॥

श्री 1008 स्वामी ब्रम्हलीन मुनि श्री कबीर चरितम् ग्रंथ में कुदुरमाल को कबीर-पंथ की प्राचीन गुरुगद्दी स्वीकार किया है। उनके अनुसार -

“तत एव तदारम्य श्री कबीर पंथस्यवै।

मूल स्थानं सुविख्यातं कुधमालं निगद्यते॥

तत्रैव समुद्रभ्यं स्थानं कारितवान् शुभम्।

स्थापिंच महत्पीठं पंथ प्रसार हेतवे।

अधुनापि मठं सोऽयं वर्तते मध्य भारते।
तत् स्वास्य पंथस्य प्रचारोऽभून्महीतले॥
दृश्यन्ते मठाहि तस्यैव सर्वे सन्तीति निश्चितम्।
दुर्भाग्यवशतः सर्वे कथयन्ति च साम्प्रतम्॥
स्वतन्त्रोऽहमीति प्राज्ञा विवदन्ति परस्परम्॥

अर्थात्- सुविख्यात मूलस्थान कुदुरमाल में कबीर-पंथ के प्रचार के लिए प्रथम गुरु गद्दी की स्थापना हुई। अभी भी वह मध्य भारत के छत्तीसगढ़ प्रान्त में स्थित है। प्रायः कबीर-पंथ के सभी मठ इस मठ के शाखाएं हैं, परन्तु इस समय वे दुर्भाग्य से अपने को स्वतन्त्र घोषित कर अपनी अहता का भाव प्रकट कर रहे हैं और आपस में वाद-विवाद करते देखे जा सकते हैं।

यहां के वर्तमान आचार्य श्री ज्योति स्वामी जी के अनुसार- इस गुरु गद्दी की स्थापना समर्थ श्री मुक्तामणि नाम साहब ने संवत् 1570 में की। कोरबा के राजा जोगी दास उनके दीक्षित शिष्य थे। उनकी प्रार्थना से समर्थ श्री को यहां रूकना पड़ा। वे कोरबा राय के राज महल में न रूककर यहां से लगभग 10 कि.मी. दूर हसदेव नदी तट रमणीय शिलास्रोत (पांजी घाट) में विराजमान हुए। राजा भी समर्थ श्री के साथ रहकर ध्यान साधना, पूजा-पाठ किया करते थे। राजा ने समर्थ श्री के विश्राम के लिए मजबूत सुन्दर हवेली एवं मीलों की एरिया भूमि गुरु के चरणों में अर्पित कर दिया था। वह मजबूत हवेली (साधना स्थल) और आश्रम को प्रदत्त दान भूमि आज भी कुदुरमाल में मौजूद है। समर्थ श्री सत्य पुरुष प्रथम वंशाचार्य श्री मुक्तामणि नाम साहब द्वारा स्थापित होने के कारण यह मूल गद्दी के नाम से सर्वत्र विख्यात है।

चूरामणि नाम बांधवगढ़ से कुदुरमाल आये उस संबंध में जनश्रुति है कि- जब सद्गुरु कबीर साहब ने श्री चूरामणि नाम साहब को पंथाचार्य के पद पर आसीन किया, तब धनी धर्मदास के ज्येष्ठ पुत्र श्री नारायण दास उनसे असन्तुष्ट हो गए क्योंकि ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण वे स्वयं गुरु गद्दी पर अधिष्ठित होना चाहते थे। इसलिए अपने छोटे भाई का जीवन समाप्त करने के लिए एक कुचक्र रचा। एक दिन श्री चूरामणि नाम साहब ध्यान साधना में लीन थे, तब उनके बड़े भाई श्री नारायण दास ने उनका जीवन समाप्त करने के लिए तलवार चलाई, परन्तु उन्होंने जैसे ही तलवार खींचकर धुंवर किया। नारायणदास की तलवार ऊपर ही धरी की धरी आकाश में रह गई। अंत में श्री नारायण दास को श्री मुक्तामणि नाम साहब से क्षमा याचना करनी पड़ी। बाद में चूरामणि नाम साहब बांधवगढ़ छोड़कर पंच प्रचार करते हुए बीहड़ अंचल में स्थित ग्राम कुदुरमाल आ गए।

इस संबंध में दूसरी अन्य चमत्कारिक घटना का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि- सद्गुरु कबीर ने श्री चूरामणि नाम साहब को बांधवगढ़ में गुरु गद्दी के लिए तिलक चादर किया। उसके पश्चात् श्री चूरामणि नाम साहब कबीर-पंथ के प्रचार-प्रसार के लिए बांधवगढ़ से सुहागपुर अमरकण्टक होते हुए बिलासपुर जिला के कोरबा नामक ग्राम (वर्तमान में- औद्योगिक नगरी) आए यहां के तोमरवंशी जमींदार ने समर्थ श्री को अपने महल में आदरपूर्वक लिवा लाए (संवत् 1577 के लगभग) समर्थ श्री की वाणी-वचनों एवं उपदेश से जमींदार अत्यंत प्रभावित हुए। बाद में उनसे चौका आरती करवाकर और पान परवाना लेकर उनसे शिष्यत्व धारण कर लिया। एक दिन जमींदार को उपदेश देते हुए वे नदी में विचित्र लीला दिखाते हुए डुबकी लगा दिए। साहब को नदी में डूब गया समझकर राजा ने मछुआरों से ढूँढवाया, किन्तु साहब जी का कही पता नहीं चला। सांसारिक मोह में फँसे जमींदार साहब को क्या पता था कि समर्थ श्री मुक्तामणि नाम साहब सत्यपुरुष के नौतम अंश हैं, वे कोरबा से दूर कुदुरमाल में नदी किनारे स्थित घंटाहा पीपल के नीचे ध्यान साधना में बैठे मिले, उसे कोल भीलों ने देखा।

तत्काल इसकी सूचना भीलों ने जमींदार को दिये। जमींदार सूचना पाकर गुरुदर्शन के लिए निकल पड़े। समर्थ श्री को वन में पाकर अत्यंत खुश हुए और राजमहल चलने के लिए आग्रह किया, किन्तु राजा की बातों को सुनकर समर्थ श्री बोल पड़े राजन् मुझे तुम्हारे महल से क्या लेना? मुझे तो ध्यान साधना पूजा पाठ करना है तुम अपने राज्य को संभालो। लेकिन राजा उनसे बहुत प्रभावित हो चुके थे, इसलिए भीलों से वही एक वर्ण कुटी बनवाने का आदेश दिया। बाद में यही रहकर लोगो को कबीर साहब के सत्य ज्ञान का उपदेश सुनाने लगे। तत्कालीन समय में रतनपुर के एक धनाढ्य साव गलित कुश्ट की बीमारी से पीड़ित था इसलिए जगन्नाथपुरी तीर्थाटन करने निकले थे। वहीं साव को स्वप्न में एक साधु ने कुदुरमाल जाने के लिए संकेत किया। साव ने बीच में ही तीर्थाटन समाप्त कर वापस सीधे कुदुरमाल आ गये। साव राजा (कोरबा) के साथ गुरुदर्शन के लिए निकल पड़े। इधर समर्थ श्री ध्यान साधना में तल्लीन थे, बाद में ध्यान साधना समाप्त करने के बाद आंखें खोली तो पास में बैठे व्यक्ति पर झाड़ू से तीन बार स्पर्श किया। जैसे ही चूरामणि ने उस साव के शरीर को स्पर्श किया वैसे ही उसके शरीर की सम्पूर्ण बीमारी दूर हो गयी। इससे खुश होकर साव अपने सम्पूर्ण धन-सम्पत्ति को और साथ ही अपनी दोनों कुंवारी कन्याओं को गुरु को भेंट देना चाहा तब वे साव से ऐसा करने से मना किया। बाद में साव, के आग्रह और कबीर साहब के 42 वंशों का आशीर्वाद उनके मस्तिष्क पटल पर स्मृत हुआ। जिसके कारण चूरामणि नाम साहब ने उनकी दोनों कुंवारी कन्याओं को कुदुरमाल में आश्रय दिया और उनसे परिणय सूत्र में बंध गए। 16 वर्ष के पश्चात् छोटी माता से सुदर्शन नाम साहब हुए और बड़ी माता से श्री सुरति साहब हुए।

कुदुरमाल में कबीर पंथ के विकास में पांच पनिकाओं की भूमिका का उल्लेख किया जाता है। जब सर्वप्रथम समर्थ श्री मुक्तामणि नाम साहब कुदुरमाल के बीहड़ वनांचल में पधारे तब उन्हें पांच व्यक्ति मिले। जनश्रुति के अनुसार ये पांच व्यक्ति पनिका जाति के थे, उन्होंने कबीरपंथ के प्रचार-प्रसार के लिए प्रण किये।

वही कालान्तर में पनिका जाति के आदि पुरुष माने जाते हैं। जिस तरह से गुरु गोविन्द सिंह के 'पंज प्यारे' की जो स्थिति है प्रकारान्तर में कबीर पंथ की स्थापना में आदि वंशाचार्य चूरामणि नाम साहब के साथ पांच पनिकाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। संभवतः ये मानिकपुर के रहने वाले थे इसलिए ये बाद में मानिकपुरी कहलाये।

संभवतः इस कारण प्रण से प्रणक कालान्तर में पनक फिर पनिका होते हुए वर्तमान में प्रचलित पनिका नामक जाति अभियान रूप में अस्तित्व में आयी।

इसे सिद्ध करने के लिए यह कहावत पनिका जाति के लोग आज भी स्वाभिमान के साथ कहते हैं-

‘प्रण गहे सो पनिका होई रण बाजे रजपूत’।

समर्थ श्री मुक्तामणि नाम साहब के दो नाम हैं। दोनों असाधारण एवं महत्वपूर्ण अर्थ रखते हैं। समर्थ श्री आचार्य मुक्तामणि नाम साहब पंथाचार्य नाम महत्वपूर्ण अर्थ रखते हैं। समर्थ श्री आचार्य मुक्तामणि नाम साहब पंथाचार्य नाम से विभूषित हैं और पं० श्री आचार्य चूरामणि नाम साहब वंशाचार्य नाम से विभूषित हैं।

कुदुरमाल को वंश परम्परा के अनुसार आदि गद्दी माना जाता है। इस पीठ में अनेक सिद्ध पीठाधीश्वर महापुरुष इस स्थान को चार चांद लगाये हैं। उनमें विशेष रूप से समर्थ श्री मुक्तामणि नाम साहब का नाम आता है। यहां धर्मपीठ में एक गुफा है उस गुफा में बैठकर श्री मुक्तामणि नाम साहब समाधि लगाया करते थे। जनश्रुति के अनुसार- वे यहां शिला स्त्रोत द्वारा जगन्नाथपुरी में पहुंचकर तथा बांधवगढ़ में जाकर अपने पिता श्री धर्मदास साहेब से सत्संग सुनकर उसी मार्ग से पुनः अपने स्थान पर आ जाया करते थे। योगाभ्यास करके उस स्त्रोत में पहुंच जाते थे तथा शील स्वभाव के द्वारा अमृत रस का पान करते थे।

कबीर पंथ (वंश गद्दी) के लघु ग्रंथ संध्यापाठ से लेकर जितने भी मांगलिक क्रम और चौका आरतियों के मंगलाचरण में मुक्तामणि नाम साहब से ही मंगलाचरण प्रारंभ होता है। जैसे- सत्य सतसुकृत आदि अदली अजर अचिंत पुरुष मुन्द्रि करुणामय कबीर सुरतियोग संतायेन गुरु धर्मदास, चूरामणि नाम (मुक्तामणि) से अर्धनाम साहब तक।

कुदुरमाल गद्दी के प्रथम आचार्य पं.श्री मुक्तामणि नाम साहब नाद और विंद वंश परम्परा के संस्थापक माने जाते हैं। कोरबा के तत्कालीन जमींदार (जोगी दास) उनके दीक्षित शिष्य थे। चूरामणि नाम साहब ने सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ के लोगों को सत्य और अहिंसा का उपदेश देकर उनका आध्यात्मिक विकास किया। कुदुरमाल से कबीर पंथ का विश्वव्यापी प्रचार प्रसार हुआ। यहां मुक्तामणि नाम साहब की सिद्ध समाधि है। यहां के समाधि मंदिर के गुफाओं में ध्यान साधना करने से परमशांति का अनुभव होता है। महन्त देवनारायण दास शास्त्री के अनुसार- मुझे मानसिक परेशानी थी मैंने विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया किन्तु मुझे कुदुरमाल में अपार शांति का अनुभव हुआ। समर्थ श्री मुक्तामणि नाम साहब के उनकी समाधि पर मथ्या टेकने लोग दूर-दूर से आज तक सहज ही खींचे चले आते हैं। माधोदेव राधोदेव मालापुरे, परसोड़ी (महाराष्ट्र) के अनुसार- कुदुरमाल धर्मदास साहेब के प्रथम वंश मुक्तामणि नाम साहब की कर्म भूमि है। वे इस सिद्ध तमोभूमि का नमन एवं दर्शन करने प्रत्येक वर्ष पूरे परिवार के साथ आते हैं। जिससे अपने धर्म के प्रति आने वाले पीढ़ियों में श्रद्धा एवं निश्ठा पैदा हो सके। यहां समाधि पर आस्था एवं श्रद्धा से मन्त मांगने से मन वांछित फल की प्राप्ति होती है।

कुदुरमाल के इस सिद्ध आश्रम में महात्माओं के तप, योग व उपासना के लिए जमींदार ने मुक्तामणि धाम भवन का निर्माण कराया था। भवन साधकों का केन्द्र होने के कारण तपोभूमि बन गई। यहां प्रत्येक वर्ष माघ शुक्ल पक्ष पूर्णिमा के दिन सात्विक यज्ञ, चौका आरती, भजन कीर्तन, सत्संग, प्रवचन मेला व भंडारा का आयोजन किया जाता है। मुक्तामणि धाम के निकट समाधि स्थल भी है। जहां कबीरधाम के संतो की समाधि स्थित है। आचार्य ज्योति स्वामी के अनुसार- सत्यपुरुष मुक्तामणि नाम साहब द्वारा निर्दिष्ट स्थापित कुदुरमाल गद्दी सत्य, अहिंसा परम धर्म का प्रचार-प्रसार करने वाला छत्तीसगढ़ का सबसे प्राचीन धाम है। धनी धर्मदास के जगन्नाथपुरी चले जाने पर कुछ ही दिनों के अन्तर्गत मुक्तामणि अपनी अलौकिक प्रतिभा के बलबूते बांधवगढ़ से अंतर्धान होकर जगन्नाथपुरी और वहां से 5 भक्तों के साथ छत्तीसगढ़ के कोरबा में स्थित हसदेव नदी के तट पर विराजमान हुए थे। यही स्थल आज कुदुरमाल कबीरधाम के रूप में विख्यात है। इस धाम में तीन पूज्य स्थान हैं। इसमें से एक घंटा पीपल भी है। घंटा पीपल के नीचे संत मुक्तामणि की कुटिया थी। जहां भजन, ध्यान, सत्संग निरन्तर होते रहता था। ग्रामीणों का कहना है कि आज भी इस स्थल पर भजन, शुद्धांत व मंत्र उच्चारण की ध्वनि लोगों को सुनाई देती है। आज वह ‘घंटा पीपल’ नदी में धंस जाने के कारण स्थूल नदी है। पर सूक्ष्म का प्रभाव परम शांति की अनुभूति लोगों को आज भी होती है।

दूसरा पवित्र स्थल शिला स्त्रोत है। कबीर के प्राचीन आलेखों में उल्लेख मिलता है कि शिला (पत्थर) तल में स्त्रोत (गुफा) शब्दों से ही शिला स्त्रोत का वाक्य बना है। इस स्थल का दूसरा नाम पांजीद्वार है। पांजी हिन्दी शब्दकोश में फांजर शब्द ‘समीप’ का वाचक है अर्थात् सद्गुरु कबीर से मिलने का द्वार समीप है। पांजीद्वार नामक का एक स्थल कुदुरमाल में हैं तो दूसरा स्थल जगन्नाथपुरी में स्थित तंत्रस्थ आश्रम में मिलता है।

यहां कुदुरमाल में संतो के निवास के लिए आश्रम तथा प्रधान आचार्य के लिए आचार्य निवास का निर्माण किया गया है। आश्रम में अतिथियों को मुफ्त आवास एवं भोजन प्रदाय किया जाता है। आचार्य निवास के आंगन में एक कबीर मंदिर का निर्माण किया। आश्रम में अतिथियों को मुफ्त आवास एवं भोजन प्रदाय किया जाता है। आचार्य निवास के आंगन में एक कबीर मंदिर का निर्माण किया गया है। मंदिर के अन्दर छत्रयुक्त सिंहासन पर सद्गुरु कबीर साहब, श्री मुक्ता मणिनाम साहब एवं यहां के पूर्व आचार्य ज्ञान स्वामी जी का चित्र रखा हुआ है। उनके सामने खड़ाऊ आशावाड़ी, कबीर सद्ग्रंथ भी रखा हुआ है। यहां नित्यप्रति संध्या पूजापाठ तथा मुक्तामणि नाम साहब, कुलपति नाम साहब और इस शाखा के सिद्ध संत अलीनाम साहेब की समाधि की भी नित्य प्रति पूजा पाठ की जाती है।

पंथ श्री प्रकाशमुनि नाम साहब के अनुसार- सत्य ही धर्म है लेकिन धर्म के कथित ठेकेदारों ने इसकी परिभाषा ही बदल दिया है। कबीरदास और तुलसीदास ने भी कहा है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। जहां दया है वहां धर्म है। मनुष्य की जाति को कई धर्मों में बांट दिया गया है।

यहां मेले में कबीर-पंथ गद्दी दामाखेड़ा के वर्तमान पंथ श्री प्रकाशमुनि नाम साहब का आगमन पूरी कबीर-पंथी जमात के साथ हुआ था। यहां साधु-सन्तों के द्वारा तीन दिवस तक भक्तों को कबीर वाणी का रसास्वादन कराया गया। पंथ श्री के द्वारा निशान पूजा से संत समागम का आरंभ हुआ। कबीर-पंथियों एवं वंश गद्दी दामाखेड़ा के संयुक्त तत्वाधान में विशाल “संत समागम समारोह एवं महायज्ञ एकोत्तरी चौका आरती का कार्यक्रम पंथ श्री प्रकाशमुनि नाम साहब एवं श्री ज्योति स्वामी साहब के सानिध्य में आयोजित किया गया। इस संत समागम में विभिन्न भागों से श्रद्धालुओं का आगमन हुआ था। सत्संग समारोह में पंथ श्री ने उपदेश प्रवचन किया। साथ ही अनेक सन्तों ने उपदेश प्रवचन करके कबीर साहब के वाणी वचनों का श्रवण कराया। तीन दिन की इस ऐतिहासिक

संत सम्मेलन में लाखों लोगों ने लाभ उठाया। संतो के सत्यनाम धुन की गूंज एवं साहेब बंदगी के उद्घाश से पूरा वातावरण कबीरमय हो जाता था। इस महायज्ञ में एकोत्तरी चौका आरती पंथ श्री के कर कमलों से सम्पन्न हुई। संत समागम मेला में सभी और श्वेत वस्त्रधारी नजर आते हैं। एकोत्तरी चौका आरती (यज्ञ) की इस विधा को हजारों लोगों ने देखा। सभी महन्त समवेत स्वर में प्राणी मात्र के लिए प्रार्थना कर रहे थे। मेले में कबीर साहेब के विचार क्रांति के बीज पुनः बोये जा रहे थे। इस मेले में कबीर-पंथी एवं गैर कबीर-पंथियों ने भी हिस्सा लिया।

शिला स्त्रोत (पांजीद्वार)— कबीर पंथियों के तीर्थ नगर आचार्य पीठ कुदुरमाल से लगभग आधा कि.मी. दूर हसदेव नदी के बाईं ओर एक विशाल चट्टान के मध्य एक प्राचीन ऐतिहासिक दर्शनिय स्थल स्थित है। यह स्थल नदी के मध्य जल से घिरा हुआ है। जहाँ पर एक चबूतरा का निर्माण किया गया है। यहाँ तक पहुँचने के लिए नदी के प्रवाह से होकर गुजरना पड़ता है।

जन श्रुति है कि शीला स्त्रोत से समर्थ श्री मुक्तामणि नाम साहेब अन्तर्धान हो जाया करते थे एवं पूरी उड़ीसा के विशाल शीला प्रकट होते थे तथा अपनी इच्छानुकूल पुनः इसी प्रक्रिया के द्वारा कुदुरमाल में पांजीघाट में प्रगट होते थे। कहा जाता है कि संवत् 1569 फाल्गुन शुक्ल तेरस को अपने पिताश्री धनी धर्मदास के सतलोग गमन के पश्चात् जगत मर्यादा का पालन करने के लिए उसी शीला स्त्रोत से अदृश्य होकर अपने पिता की उत्तरक्रिया करने पुरी में प्रकट हुए तथा उनकी उत्तरक्रिया समाप्त कर पुनः पूर्व पदासीन स्थल शिला स्त्रोत में विराजमान हुए थे। इसी प्रकार के शिलास्त्रोत जगन्नाथपुरी में भी तंत्रस्थ आश्रम में स्थित है, जिसे अब पत्थर से बंद कर दिया गया है। शिला स्त्रोत का दूसरा नाम 'पांजीद्वार' है। पांजी शब्द हिन्दी शब्द कोश 'फांजर' शब्द समीप का वाचक है।

आचार्य ज्योती स्वामी इस पांजीद्वार से श्री मुक्तामणी नाम साहेब के आगमन के बारे में 'सार-तत्त्व-बोध' में लिखते हैं—

“पांजीद्वार मुक्तामणि गयउ, कुदुरमाल में प्रगट भयउ।
हसदो नदी पग पांजी आया, पिपर घंटहा आसन लाया।
हंसन मुक्ति पांजीद्वारा, पैठ महामहीमा विस्तारा।
जग प्रपंच माया के फंदा, सत्यासत्य ज्ञान निर्द्वन्दा।
पंथा-पंथ सुबोध पसारा, सत्य कबीर पंथ विस्तारा।”

कुदुरमाल में स्थित शीलास्त्रोत कबीर-पंथियों के आस्था का केन्द्र है। यहां आज भी देश-विदेश में फैले कबीर-पंथानुयायी आकर श्रद्धा से नतमस्तक होते हैं और मन्त मांगते हैं। इस शीला स्त्रोत की महत्ता कबीर-पंथ में इसलिए अधिक है कि इसपर कबीर पंथ के प्रवर्तक धनी धर्मदास के छोटे सुपुत्र समर्थ श्री मुक्तामणि नाम साहेब के चरण पड़े थे। यह सर्वविदित है कि समर्थ श्री में अद्भूत शक्ति थी, इसलिए उन्होंने इस बीहड़ वनांचल कोरबा के घनघोर जंगलो से घिरे ग्राम कुदुरमाल में अदम्य साहस का परिचय दिया और पिछड़े आदिवासी समाज को कबीर साहेब के बताए मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। इसलिए आज तक छत्तीसगढ़ में किसी प्रकार के धार्मिक उन्माद और हिंसा देखने को नहीं मिलता। यह सब कबीर साहेब के आर्शिवाद को जाता है, इनका श्रेय कोरबा जिले की धरती जहाँ पर कबीर साहेब ने ज्ञान की धारा आरंभ होकर सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित किया है। छत्तीसगढ़ में स्थित कुदुरमाल का महत्व देश-विदेश में महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि कबीर साहेब के ज्ञान को फैलाने वाले आदि पुरुष समर्थ श्री मुक्तामणी नाम साहेब की कर्मभूमि है।

समाधि मंदिर— कबीर-पंथियों के तीर्थ कुदुरमाल में प्रथम पंथाचार्य श्री मुक्तामणि नाम साहेब, तृतीय वंशाचार्य श्री कुलपति नाम साहेब एवं सिद्ध संत गोसाईं अली नाम साहेब की समाधियां एक परकोटे के अन्दर विद्यमान हैं। यहां आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व श्री 1008 श्री मुक्तामणि नाम साहेब ने संवत् 1630 में जीवित समाधि लिए थे। उनकी समाधि कबीर पंथियों के पूजनीय है। आज भी लोग यहां दर्शन पूजन के लिए नित्य प्रति आते हैं और नारियल, चादर, पुष्प चढ़ाते हैं।

घंटहा पीपल— कुदुरमाल के हसदो नदी के किनारे एक ऐतिहासिक वृहद पीपल का देव वृक्ष था। जनश्रुति के अनुसार समर्थ श्री मुक्तामणि नाम साहेब नदी जल से अदृश्य होकर वर्तमान कुदुरमाल के हसदो नदी के किनारे उसी वृक्ष के नीचे विराजमान स्थिति में मिले। इसकी खबर भिलो ने कोरबा के राजा को दिये। जिसकी सूचना पाकर राजा गुरुदर्शन के लिए शीघ्र उस ओर निकल पड़े। बाद में राजा ने उनके ध्यान साधना के लिए वही भीलो से पर्ण कुटी बनवा दिये।

इस बात की पुष्टि कुदुरमाल से प्राप्त आशा सागर नामक हस्तलिखित ग्रंथ में इस प्रकार मिलता है—

“पांजीद्वार मुक्तामणि गयऊ। कुदुरमाल में प्रकट भयऊ।
हसदो नदी पग पांजी आया। पिपर घंटहा आसन-लाया।।”

यहां शाम के समय उस देव वृक्ष के नीचे घड़ी घंट एवं बिगुल की नाद आज भी सुनाई देती है। लोग उस वृक्ष को घंटहा पीपल कहते थे। वह पीपल वृक्ष वर्तमान में स्थित नहीं है, यहां के बुर्जुगो के अनुसार उस स्थल पर आज भी शुद्ध मन, उत्तम जिज्ञासु संत-महंतों, साधकों एवं सेवक सतियों को समाधिस्थ अवस्था में घड़ी घंट की मधुर ध्वनी सुनाई पड़ती है। आज वह देव वृक्ष नहीं है किन्तु श्री मुक्तामणि नाम साहेब की वह पवित्र स्थली आज भी आध्यात्मिक कार्यों एवं शब्दों से गुंजायमान है।

सर्व तीर्थ बावली—

यह बावली मुक्तामणि साधना के सामने स्थित हैं। किंवदन्ती है कि कोरबा राय ने यहां के प्रथम वंश प्रतापाचार्य श्री मुक्ता मणि नाम साहेब के स्नान करने के लिए खुदवाया था। इस बावली में समस्त तीर्थों के जल को मिलाया गया है।

यहां साधना स्थल के समीप एक चबूतरा का निर्माण किया गया है। उसमें श्वेत ध्वजा का रोहण किया गया है। कबीरपंथी इसे अपना धर्मध्वज मानते हैं। साधना स्थल, नीम का वृक्ष एवं कुण्ड आज भी विद्यमान है। कुदुरमाल में विजयदशमी का त्यौहार क्वारं मास की शुक्ल पक्ष दशमी को मनाया जाता है। इस दिन संपूर्ण भारत वर्ष में रावण को बुराई के प्रतीक रूप में उनका पुतला का दहन किया जाता है। इस दिन यहां धार्मिक स्थलों में पूजा-अर्चना की जाती है। विजय पर्व के उपलक्ष्य में कुदुरमाल में सबेरे 8 बजे से लोगों की चहल पहल देखने को मिलता है। यहां के वर्तमान आचार्य अपने संत मण्डली के साथ समाधी स्थल के समीप चबूतरा में श्वेत ध्वज का पूजन एवं रोहण करते हैं। यह श्वेत ध्वज कबीर पंथियों के धर्म ध्वज माना जाता है उसके बाद दिवंगत आचार्यों की समाधि का पूजन किया जाता है। आचार्य, सन्त महन्त एवं सेवक सती शोभा यात्रा के रूप में पांजीद्वार पूजा अर्चना करने आते हैं। आचार्य द्वारा पांजीद्वार में पान प्रसाद अर्पित किया जाता है। शिला स्त्रोत के के विशय जन श्रुति है कि समर्थ श्री मुक्तामणि नाम साहब पांजीद्वार में विराजमान हुए थे। तथा पांजीद्वार से ही जगन्नाथ आना जाना करते थे। इसके मध्य सुरंग था जिसे वर्तमान में ढंक दिया गया है। इस दिन कुदुरमाल में नये चावल को मिलाकर खीर बनाई जाती है। यहां यह रस्म नवांखान के रूप में प्रचलित है।

इस पावन धारा की सौंधी मिट्टी की खुशबू सम्पूर्ण भारत वर्ष में फैला है। कबीर पंथ की बुनियाद समर्थ श्री मुक्तामणि नाम साहब ने यहा रखा था। जिनके प्रताप से यह पंथ विश्वव्यापी हो चुका है। संत कबीर साहब के जीवन रहस्यों को जानने के लिए देश-विदेश से लोग कुदुरमाल आते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. आशा सागर, हस्तलिखित ग्रंथ।
2. ज्याति स्वामी, सार-तत्व-बोध
3. बिहारी, स्वामी युगबलानंदः बोध सागर, पृष्ठ 6
4. गुरुग्रंथ साहबः राग, रामकली, पद 3
5. त्रिगुणायत, डॉ. गोविन्दः कबीर की विचारधारा, पृष्ठ 33
6. तिवारी, रामचन्द्रः कबीर मीमांसा, पृष्ठ 27
7. तिवारी, पारसनाथः कबीर ग्रंथावली, पद 188, पृष्ठ 109

छत्तीसगढ़ में पलायन के कारण व पलायन से वापस आये श्रमिकों की दशा सुधारने के उपाय

प्रो० डॉ० ऋचा यादव

समाजकार्य विभाग, डॉ० सी- वी- रामन् विश्वविद्यालय करगीरोड कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश:- छत्तीसगढ़ राज्य में श्रमिकों का पलायन का इतिहास कई दशक पुराना है। पलायन एक ज्वलंत समस्या है। छत्तीसगढ़ की जनसंख्या पूर्व ग्रामीण है। यहां के मानव का मुख्य व्यवसाय कृषि है। यहां निवासरत् श्रमिकों को वर्ष भर काम नहीं मिलता है इसका मुख्य कारण विभिन्न सिंचाई के साधनों की पर्याप्त व्यवस्था नहीं होना है फलस्वरूप दो फसली क्षेत्रों का विस्तार काफी कम रहता है। उच्च आमदनी के लालच एवं काम की तलाश में, कभी मजबूरी में, कभी ऊंचे ख्वाब पूरा करने एवं कभी किसी के बहकावे में आकर ये पलायन के शिकार हो रहे हैं। पलायन एक बहुआयामी घटना है जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव आर्थिक विकास एवं जनकित नियोजन, नगरीकरण और सामाजिक परिवर्तन पर पड़ता है। पलायन से वापस आने वाले श्रमिकों के कल्याण के लिए अनेकानेक कार्य सरकार को करना होगा। जिसमें कई समस्याएँ, भी आयेंगी। छत्तीसगढ़ पंचायतों में पहले से ही ढाई लाख से ज्यादा मजदूरों के जॉब कार्ड बने हुए हैं ऐसे में प्रवासी मजदूरों के जॉब कार्ड बना, जायेंगे तो हर मजदूरों को साल में 200 दिन काम देना जिला प्रशासन के लिए बड़ी चुनौती होगी।

व्यावहारिक रूप से यथार्थवादी होना सिद्धांत रूप से आशावादी होने से बेहतर है। इसके लिए हम अपनी अर्थव्यवस्था का ज्यादा से ज्यादा आधार से स्वदेशी उत्पाद पर निर्भर हों ना कि विदेशी उत्पादों पर। भारत में विदेशी माल की खपत घटाने के लिए आत्मनिर्भर में दिशा में तेजी से कदम बढ़ाना जरूरी हो गया है। हालांकि इसके लिए, दीर्घकालीन। रणनीति की दरकार है जो देशों पर भी भारत की निर्भरता को चरणबद्ध तरीके से कम करें। क्योंकि आज हम दोहरी चुनौती से जूझ रहे हैं एक ओर तो श्रमिकों का रोजगार खतरे में है तो दूसरी ओर उद्योग का बचे रहना भी जरूरी है। इसके लिए एकमात्र विकल्प है अर्थव्यवस्था को मजबूत करना। इसके लिए, सरकार के प्रयास + उद्योग जगत के सहयोग + कामगार लोगों की कड़ी मेहनत की कारागार होगी क्योंकि बड़े पैमाने पर संगठित और असंगठित क्षेत्र के मजदूरों का रोजगार छिन चुना है हालांकि रोजगार बने रहे इस उद्देश्य से कई सहूलियत दी गई हैं। कई लोगों की

समय अवधि बढ़ा दी जाती है। मजदूरों को वेतन ना मिलने पर वह नौकरी से निकाल दिए जाने की शिकायतों का निदान के लिए कंट्रोल रूम बनाये गये। लोगों की स्थानीय स्तर पर उनके गांव कस्बों में ही रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिए आत्मनिर्भर भारत में कदम उठाई गई है।

की वर्ड:- श्रमिक, पलायन, छत्तीसगढ़, संगठित, असंगठित, मजदूर।

छत्तीसगढ़ में पलायन के कारण व पलायन से वापस आये श्रमिकों की दशा सुधारने के उपाय साधारण बोलचाल की भाषा में एक स्थान से दूसरे स्थान पर थोड़े समय के लिए जाना प्रवास या पलायन कहता है। प्रवास मुख्यतः दो प्रकार का होता है पहले अंतरिक प्रवास अंतरिक प्रवास गांव से शहरों की ओर गांव से गांव की ओर और शहरों से गांव की ओर तथा शहरों से शहरों की ओर हो सकता है

आंतरिक प्रवाह दो प्रकार के होते हैं-

1. अंतर क्षेत्रीय प्रवास
2. गांव से शहरों की ओर प्रवास

1. अंतर क्षेत्रीय प्रवास- किसी देश के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र की ओर प्रवाहित होना अंतर क्षेत्रीय प्रवास कहलाता है यदि बिहार का निवासी मध्यप्रदेश में जाकर रहने लगता है तब इसे अंतर क्षेत्रीय प्रवास का उदाहरण माना जायेगा।

2. गांव से शहरों की ओर प्रवास- गांव से शहरों की ओर प्रवास मुख्यतः रोजगार के उद्देश्य से होता है अंतरराष्ट्रीय प्रवास जब देश की सीमा से बाहर जाकर प्रवास किया जाता है तो उसे अंतरराष्ट्रीय प्रवास कहते हैं इसके भेज दो भेद होते हैं पहला होता है अंतर महाद्वीपीय प्रवास अंतर महाद्वीपीय प्रवास का

अभिप्राय । महाद्वीप को छोड़कर दूसरे महाद्वीप में स्थाई रूप से बस जाता है यदि कोई भारतवासी ग्रेट ब्रिटेन जाकर वहां स्थाई रूप से रहने लगता है तब वह अंतर महाद्वीपीय प्रवास कहलायेगा क्योंकि भारत एशिया महाद्वीप में स्थित है और ग्रेट ब्रिटेन यूरोप महाद्वीप में स्थित है दूसरा होता है अभी प्रवास का अभिप्राय एक ही महाद्वीप के देश को छोड़कर दूसरे देश में जाना है इसका उदाहरण माना जायेगा। क्योंकि भारत और नेपाल दोनों ही एशिया महाद्वीप में स्थित है वित्त वर्ष 2020 की चौथे तिमाही में भारत की वृद्धि दर घटकर 3-1 रह गई है।

कोरोना वायरस समाजवादी सभाव का है वह अमीर गरीब में अंतर नहीं करता है।

लॉकडाउन के प्रभाव को हम इस प्रकार देख सकते हैं-

बेरोजगारी में तेज वृद्धि (15 मार्च को बेरोजगारी 6-7 से बढ़कर 19 अप्रैल 26 प्रतिशत हो गया)

आपूर्ति श्रृंखला ऊपर तनाव
सरकारी आय में कमी
पर्यटक उद्योग का पतन
उपभोक्ताओं गतिविधियों में कमी
इंधन की खपत में गिरावट
पारिवारिक आय में गिरावट
युवा स्टार्ट अप में गिरावट
भुखमरी
आत्महत्या, थकावट
सड़क और रले दुर्घटनाओं में वृद्धि

चिकित्सीय समस्या:- डॉक्टरों के द्वारा पुराने मरीजों को न देखा जाना, उनकी समस्या में वृद्धि कर रहा है।

पर्यावरण का प्रभाव:- नदिया साफ हुई हवा की गुणवत्ता में सुधार हुआ जीवन जीने के लिए हमें यह समझना होगा।

एक चीज खत्म होती है जब दूसरी बेहतर चीज की ओर बढ़ने का समय आता है। आगे क्या होगा यह सोचकर उसकी प्रक्रिया में डरना नहीं चाहिए। समय की धारा के साथ चलते जाना चाहिए, सब कुछ ठीक हो जायेगा या सोचना अच्छा है लेकिन अच्छा होगा हम यथार्थवादी बने रहे।

जनगणना 2011 के अनुसार हमारे देश की कुल जनसंख्या 121-02 करोड़ आंकलित की गई है जिसमें 68-94 प्रतिशत जनसंख्या गांव में निवास करने करती है और 31-16 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में निवास करती है।

वर्ष ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत

शहरी जनसंख्या का प्रतिशत

1951 83% 17%

2001 74% 26%

इन आंकड़ों को देखकर स्पष्ट परिलक्षित होता है कि भारतीय ग्रामीण लोगों का शहरों की ओर पलायन तेजी से बढ़ रहा है गांव से शहरों की ओर पलायन का सिलसिला कोई बड़ी बात नहीं है। कारण स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा सुविधाओं का अभाव है। सड़क यातायात के साधनों की कमी है, बेहतर भविष्य को सोचने वाले गांव से शहरों की ओर जाने लेगा हैं। पिछले दशक को में शहरों की जनसंख्या में वृद्धि अधिक हो रही है। गांव में रोजगार का नहीं होना इसका एक महत्वपूर्ण कारक है।

घटती जोत, बंजर होती जमीन जैसे कारणों के चलते अनपढ़ व पढ़े-लिखे रोजगार की तलाश में शहरों व महानगरों की ओर जाते हैं। प्राकृतिक आपदा इसका एक महत्वपूर्ण कारण रहा हैं।

बुनियादी सुविधायें शिक्षा बिजली और सड़क संचार स्वच्छता आदि सुविधायें शहरों की ओर अपेक्षा ग्राम में बेहद कम है। भेदभाव पूर्ण समाज सामाजिक व्यवस्था वह शोषण उत्पीड़न को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। पूर्व राष्ट्रपति एवं मिसाइल मैन डॉ० एपीजे अब्दुल कलाम ने कहा करते थे कि शहरों को

गांव में ले जाकर ही ग्रामीण पलायन को रोक सकते हैं। वर्णानुसार पलायन करने वाले मजदूरों की संख्या पलायन में पहले नम्बर पर बिलासपुर है। श्रम मंत्री शिव कुमार डहरिया ने प्रदेश में 450000 मजदूरों की वापसी की बात कही है यहां सबसे ज्यादा 70000 मजदूर तो मस्तूरी ब्लाक के हैं। छत्तीसगढ़ राज्य में श्रमिकों का पलायन का इतिहास कई दशक पुराना है। पलायन एक ज्वलंत समस्या है छत्तीसगढ़ की जनसंख्या पूर्व ग्रामीण है। यहां के मानव का मुख्य व्यवसाय कृषि है। यहां निवासरत् श्रमिकों को वर्ष भर काम नहीं मिलता है इसका मुख्य कारण विभिन्न सिंचाई के साधनों की पर्याप्त व्यवस्था नहीं होना है।

फलस्वरूप दो फसली क्षेत्रों का विस्तार काफी कम रहता है। उच्च आमदनी के लालच एवं काम की तलाश वर्ष पलायन करने वाले मजदूरों की संख्या 2017-18 898, 2018-19 918, 2019-20 807, में, कभी मजबूरी में, कभी ऊंचे खाब पूरा करने एवं कभी किसी के बहकावे में आकर ये पलायन के शिकार हो रहे हैं। पलायन एक बहुआयामी घटना है जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव आर्थिक विकास एवं जनकित नियोजन, नगरिकरण और सामाजिक परिवर्तन पर पड़ता है।

पलायन के कारण

- जनसंख्या में वृद्धि
- उन्नतशील जीवन
- भूमिहीन कृषक
- बेरोजगारी

- कुटीर उद्योग का पतन
- प्राकृतिक आपदा
- ऋण व्यवस्तता
- औद्योगिक कारण
- परिवारिक कहल
- राजनीतिक कारण
- धन कमाने की लालसा
- शहरी फैशन का आकर्षण
- नक्सलवाद नगरों की ओर आकर्षण
- परंपरागत जाति व्यवस्था
- मौलिक सुविधाओं का उपलब्धता ना होना
- शिक्षा प्राप्त करने की अवसर उपलब्ध ना होना
- सामाजिक भेद-भाव

पलायन का ग्रामीण व्यवस्था पर प्रभाव:-

पलायन के लाभप्रद प्रभाव

1. कृषि भूमि पर जनसंख्या के भार में कमी
2. रोजगार अवसर तथा श्रम पूर्ति के बीच सामंजस्य
3. श्रम विभाजन को बढ़ावा
4. सामाजिक, कता तथा राजतितिक जागृति
5. शहरीकरण
6. जनसंख्याकिय लाभ

पलायन के हानिप्रद प्रभाव:-

- सामाजिक एवं सांस्कृतिक अलगाव को जन्म- प्रवास के कारण एक ओर, मित्रों तथा कुटुम्बीजनों के साथ सम्बन्धों में अन्तराल बढ़ता है तथा दूसरी ओर नये स्थान पर प्रवासियों के लिये अपना सामाजिक स्तर एवं स्थान बनाने में कठिनाई होती है। इस तरह प्रवासियों तथा गैर-प्रवासियों के बीच सामाजिक-सांस्कृतिक अलगाव को जन्म मिलता है। समुदाय के भीतर समुदाय बनने लगते हैं। इस अलगाव के कारण जातीयता प्रान्तीयता तथा भाषीय विवाद का प्रादुर्भाव होता है
- व्यक्तित्व के विकास में बाधा
- गंदी बस्तियों का जन्म
- सामाजिक अपराधों में वृद्धि
- मानसिक असन्तोष में वृद्धि

ग्रामीण क्षेत्रों में सरकार द्वारा पलायन रोकने हेतु चलाये जा रहे कार्यक्रमों का विवरण:-

- राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन
- सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना
- माहात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)
- प्रधानमंत्री ग्राम उदय योजना
- अंत्योदय योजना
- सर्व शिक्षा अभियान
- खेतीहार मजदूर बीमा योजना
- ग्रामीण महिला रोजगार
- प्रधानमंत्री जनधन योजना

आदि अपने अध्ययन के दौरान पाया।

बिलासपुर पत्रिका 1 अप्रैल 2020 के पेज 6 के अनुसार जापवापस आने वाले मजदूरों की संख्या

बिल्हा 935, कोटा 501, तखतपुर 427, मस्तुरी 1046, छत्तीसगढ़ राज्य में 27 जिला पंचायत 146 जनपद पंचायत 10-968 ग्राम पंचायत है। शोध कार्य के लिए 50 श्रमिकों का अध्ययन किया। इकाई के रूप में चयन किये गये पंचायत का विवरण पंचायत का नाम कुल संख्या पुरुष महिला

अर्दरा 1129 588 541

बरतरी 4209 2070 2139

मुरकुटा 1178 585 593

पिरैया 1664 883 781

इन गाँव में लौटने वाले ज्यादातर प्रवासी 30 से 45 आयु वर्ग के हैं जाहिर है कि ये प्रवासी राज्य के लिए महत्वपूर्ण मानव संसाधन साबित हो सकते हैं। प्रवासी के लौटने से विरान गाँव की सूरत बदल गई है। हमने यह पाया कि सुखा के वर्षों में श्रम पलायन की दर अधिक होती है। पर निरंतरता प्रति वर्ष देखी

गई है। जिले में पलायनकारी अधिकांश ग्रामीण आदतन पलायनकर्ता की श्रेणी में आते हैं जो कि 10 वर्ष से अधिक समय से पलायन करते आ रहे हैं। परिस्थिति प्रेरित पलायनकर्ता का प्रतिशत 42 प्रतिशत मापी गई है वहीं आदतन पलायनकर्ताओं का 68 प्रतिशत है। पलायन से वापस आने वाले श्रमिकों के कल्याण के लिए अनेकोनेक कार्य सरकार को करना होगा। जिसमें कई समस्याएँ, भी आयेंगी। छत्तीसगढ़ पंचायतों में पहले से ही ढाई लाख से ज्यादा मजदूरों के जॉब

कार्ड बने हुए हैं ऐसे में प्रवासी मजदूरों के जॉब कार्ड बनाए जायेंगे तो हर मजदूरों को साल में 200 दिन काम देना जिला प्रशासन के लिए बड़ी चुनौती होगी।

कोविड- 19 की महामारी अकेले नहीं आयी इसके पीछे वैश्विक मंदी भी है। गाँवों में अब तक सड़क नहीं पहुँची है तो रिवर्स माइग्रेन से जुड़ी योजनायें कब तक पहुँचेंगी। नगर निगम वापस आने वाले श्रमिकों की संख्या

न-प- बिलासपुर 198

न-प- रतनपुर 54

न-प- तखतपुर 26

न-प- बिल्हा 21

न-प- कोटा 3

न-प- मल्हार 77

अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकला की पलायन को रोकने के लिए, इस प्रकार के कार्य किये जा सकते हैं-

- सभी राजनैतिक दोनों को सामाजिक कार्यक्रमों तथा स्वयंसेवी संगठनों के साथ ,कजुट होकर पलायन को रोकने की नीतियां बनानी चाहिए।
- शासकीय योजनाओं से हितग्राहियों के लाभ उठाने की प्रक्रिया को आसान बनाना करनी चाहिए।
- बीपीएल सूची में पात्र व्यक्तियों को ही शामिल करना चाहिए।
- कुटीर उद्योगों की स्थापना करनी चाहिए।
- हस्तशिल्प सामग्री का निर्माण
- वनोऔषधीयों के उत्पादित करने के लिए शासन के द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए।
- ग्राम पंचायत स्तर पर ग्रामी. विप.न केंद्रों की स्थापना की जानी चाहिए जहां अपने द्वारा उत्पादित उत्पादों का उचित मूल्य पर विक्रय कर सकें।
- पलायन एवं शिक्षा के मध्य नकारात्मक सहसंबंध ज्ञात हुआ है अतः ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त वृद्धि एवं उचित शिक्षा संस्थाओं का निर्माण कर ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के स्तर एवं शिक्षितों की संख्या में वृद्धि करके अप्रत्यक्ष पलायन को कम किया जा सकता है।
- व्यक्तियों को पंचायत, विद्यालय के द्वारा उनके अधिकारों के बारे में बताया जाना चाहिए।
- गाँव में नाबालिक बालक-बालिकाओं को दी गई प्रलोभन में आकर गाँव से बाहर रोजगार हेतु नहीं जाने दिया जाना चाहिए।
- लघु उद्योग उद्योग की स्थापना की जानी चाहिए।
- गोधन योजना को प्रत्येक गाँव तक पहुँचाने के लिए ठोस कार्य करना चाहिए।
- छत्तीसगढ़ के श्रमिकों को बागवानी के लिए प्रोत्साहित व प्रशिक्षित करके आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास करना चाहिए।
- सड़क व यातायात साधनों को बेहतर बनाना चाहिए, ताकि वेशहर का आसानी से लोग पहुँच सकें।

व्यावहारिक रूप से यथार्थवादी होना सिद्धांत रूप से आशावादी होने से बेहतर है। इसके लिए हम अपनी अर्थव्यवस्था का ज्यादा से ज्यादा आधार से स्वदेशी उत्पाद पर निर्भर हों ना कि विदेशी उत्पादों पर। भारत में विदेशी माल की खपत घटाने के लिए आत्मनिर्भर में दिशा में तेजी से कदम बढ़ाना जरूरी हो गया

है। हालांकि इसके लिए दीर्घकालीन रणनीति की दरकार है जो देशों पर भी भारत की निर्भरता को चरणबद्ध तरीके से कम करें। क्योंकि आज हम दोहरी चुनौती से जूझ रहे हैं एक ओर तो श्रमिकों का रोजगार खतरे में है तो दूसरी ओर उद्योग का बचे रहना भी जरूरी है। इसके लिए एकमात्र विकल्प है अर्थव्यवस्था

को मजबूत करना। इसके लिए, सरकार के प्रयास + उद्योग जगत के सहयोग + कामगार लोगों की कड़ी मेहनत की कारागार होगी क्योंकि बड़े पैमाने पर संगठित और असंगठित क्षेत्र के मजदूरों का रोजगार छिन चुना है हालांकि रोजगार बने रहे इस उद्देश्य से कई सहूलियत दी गई हैं। कई लोगों की समय अवधि बढ़ा दी जाती है। मजदूरों को वेतन ना मिलने पर वह नौकरी से निकाल दिए जाने की शिकायतों का निदान के लिए कंट्रोल रूम बना, गए। लोगों की स्थानीय स्तर पर उनके गांव कस्बों में ही रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिए आत्मनिर्भर भारत में कदम उठाई गई है।

20 जून से देश के 116 जिले में प्रधानमंत्री गरीब कल्याण रोजगार अभियान की शुरुआत कर दी गई। इसी के साथ मनरेगा की मजदूरी 182 से बढ़ाकर 202 की दर कर दी गई है। आज जरूरत है कि राष्ट्रीय स्तर पर एक नेशनल डाटा बेस हो जिसके आधार पर प्रवासी मजदूरों को कल्याणकारी योजना लाभ

मिल सके। पारदर्शी व्यवस्था हो जिसका लाभ सभी जरूरतमंद व्यक्ति उठा सके मजदूरों के हितों की रक्षा हो सके और अधिक निवेश का वातावरण पैदा हो। इससे देश में बड़ी संख्या में नए औद्योगिक संस्थान खड़े कि, जा सकेंगे और लोगों को रोजगार के नए अवसर प्राप्त हो सकेंगे।

दूसरे प्रदेशों से पलायन से वापस आने वाले मजदूरों की संख्या निरंतर बढ़त में जा रही है यूं तो जिला पंचायत ने 3 साल में महज 2626 मजदूरों को प्रवासा या जाना बताया। लेकिन पिछले 3 माह में पलायन 1 लाख 17 हजार 537 प्रवासी मजदूर वापस आ गए हैं। कोरोना वायरस की वजह से बाहर जाकर काम करने वाले मजदूरों वहीं फस गये हैं। विधानसभा के तारांकित प्रश्नों के जवाब में जिला पंचायत ने मजदूरों में पलायन की जानकारी इस प्रकार दी गई है। शिक्षित पलायनकर्ता को आजकल लोगों को ऑनलाइन साइट पर शापिंग करना लोगों को ज्यादा सुविधाजनक लगने लगा है। इसलि, कंपनियां भी ऑनलाइन माध्यम को भी अधिक तहजीर दे रही है विज्ञापन के लि, ईमेल, एस-एम-एस-, वेबसाइट, फेसबुक, व्हाट्सएप जैसे सोशल मीडिया प्लेटफार्म का सहारा ले रहा है। कंपनियों को परंपरागत मार्केटिंग अब उतनी कारगर नहीं लग रही है जितनी पहले हुआ करती थी। आज इलेक्ट्रॉनिक उपकरण लगभग हर किसी की पहुंचने हैं। इसलि, डिजिटल मार्केटिंग फील्ड युवाओं के लिए आकर्षक करियर ऑप्शंस बनकर उभरा है। इंटरनेट एड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया के आंकड़े के अनुसार इस फील्ड में 15 से 20 लाख जॉब उपलब्ध होंगे। इस फील्ड में सॉफ्टवेयर प्रोग्राम एवं डाटा एनालिसिस और सोशल मीडिया मार्केटिंग की मांग बढ़ती जा रही है। परंपरागत और डिजिटल मार्केटिंग के तौर तरीके भले ही अलग हो लेकिन मकसद एक ही है। उत्पादन के प्रति ग्राहक में ज्यादा से ज्यादा जागरूकता विकसित करना। इसके लिए ग्राहक को सोशल मीडिया मोबाइल एवं सर्च इंजन के माध्यम से इंटरनेट यूजर को आकर्षित किया जाता है तथा स्वयं कंपनियां भी ऑनलाइन अधिक सक्रिय हो रहती है। ग्राहकों के लिए नए-नए, तरीके और टेक्नॉलजी का इस्तेमाल कर रही है। जैसे मोबाइल पर एसएमएस भेजकर ऑनलाईन ब्रांड को मजबूत करने की कोशिश कर रहे हैं। मार्केट में पैठ बनाये रखने के लिए वो कन्टेन्ट रायटिंग रिसर्च और रिपोर्टिंग जैसे तरीकों को अपना रहे हैं।

लॉकडाउन के दौरान पूरी दुनिया में वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिए कारोबार किया जा रहा है आने वाले वर्षों में दैनिक व्यवसाय में प्रौद्योगिकी का एकीकरण बढ़ता रहेगा। अब पहले से कहीं अधिक डाटा और एनालिसिस का उपयोग बिक्री की जानकारी का अध्ययन करने, ग्राहक के व्यवहार का विश्लेषण करने,

कुशल स्टाफ रखने एवं अन्य व्यवसाय में कमी के चलते ऑनलाइन ग्राहक सेवा का उपयोग डेटाबेस निर्माण हेतु तथा डिजिटल माध्यमों से संधावित ग्राहकों के लिए महत्वपूर्ण होगा। अतः प्रवासी मजदूरों को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। ताकि वो अपना जीवन यापन अच्छी तरह कर सकने में सक्षम हों। इसी प्रकार धुंआ रहित उद्योग अर्थात् पर्यटन के क्षेत्र में भी सरकार को ध्यान देने की आवश्यकता है। ताकि कम समय की प्रशिक्षण से वो इस व्यावसाय में कुशल कार्य कर सकें। छत्तीसगढ़ सरकार की महत्वाकांक्षी योजना नरूवा, गरूवा, घुरूवा, बाड़ी भी श्रमिकों के पलायन को रोकने में सक्षम सिद्ध होगी। जरूरत है कि योजनाओं का क्रियान्वयन सही तरीके से हो। इस प्रकार किसी भी समाज के प्रगति के लिए उसका निरंतर विकास होना आवश्यक है परंतु साथ में ही आवश्यक है संतुलन अर्थात् समाज के सभी वर्गों का समान विकास

संदर्भ ग्रंथ:-

1. झूमक लाल कश्यप के द्वारा लिखे लेख “कृषि श्रमिकों के प्रवास के प्रवृत्ति का अध्ययन।
2. कमल मरियस के द्वारा लिखे लेख ऋण बंधन मौसमी प्रवास और वैकल्पिक मुद्दे।
3. परवेस लोन द्वारा लिखे लेख छत्तीसगढ़ के आंतरिक प्रवासन सामाजिक आर्थिक पहलू।
4. भारत में ग्रामीण समाज डॉ- अमित अग्रवाल विवेक प्रकाशन
5. न्यूज पेपर में प्रकाशित लेख

छत्तीसगढ़ में प्रचलित विवाह पद्धतियाँ

श्री रामरतन साहू

सह. प्राध्यापक (इतिहास) डॉ. सी.वी.रमन् विश्वविद्यालय करगीरोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश- विवाह की पद्धति एवं परम्परा के अंतर्गत वर और वधू की एक आध्यात्मिक इकाई को सूत्रबद्ध किया जाता है। इस पवित्र वैवाहिक यज्ञ को अग्नि तथा देवों के साक्ष्य में पूरा किया जाता है। विवाहोत्सव एक मांगलिक पर्व की भाँति जीवन को नवीन शक्ति, सामर्थ्य और ऊर्जा से परिपूर्ण कर देता है। जीवन को मर्यादा और संस्कार से अनुशासित रखने के लिए विवाह एक बहुमूल्य पद्धति है। विवाह एक धनिष्ठ, आत्मीय और अन्तरंग साथी के लिए किया जाता है। इस लोक यात्रा का लक्ष्य लोकमंगल के लिए वंशवृद्धि में योग देना है। इस पवित्र योग द्वारा वंशवृद्धि की प्रेरणा का एकमात्र यही आधार है। इस प्रकार विवाह कर पति-पत्नी आपस में प्रेम और आत्मीयता के अभिन्न तारों से एक दूसरे के प्रति जन्म-जन्मांतरों के लिए घनिष्ठ सम्पर्क सूत्रों से बंध जाते हैं जो एक सुंदर योग होता है।

शब्दकुंजी- झाँपी, जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः, अंजुली, चाँवल, हल्दी, सुपाड़ी, ब्रह्मचर्याश्रम, तथोर्विवाहों।

विवाह संस्कार वैदिक काल से ही अनिवार्य हो चुका था। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में वैवाहिक विधि को काव्यमयी अभिव्यक्ति प्राप्त थी। स्मृतियों में भी ब्रह्मचर्याश्रम के पूर्णता के पश्चात् प्रत्येक मनुष्य को विवाह करने का प्रतिपादन किया गया है। वैदिक काल में विवाह करके गृहस्थ धर्म का पालन करना आवश्यक तथा नितांत श्रेयस्कर विधान माना जाता था। सुरों, असुरों, मानवों सभी योनियों में विवाह की अनिवार्यता थी, लिहाजा यह विवाह धन, कुल, ऐश्वर्य, सौन्दर्य और आयु की समानता का ध्यान रखकर ही किया जाना उचित माना जाता था। अपने से श्रेष्ठ अथवा अधम के साथ उचित नहीं माना जाता था। भले ही इसके कुछ अपवाद भी मिलते थे।

“यथोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः।

तथोर्विवाहों मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित्॥”

एकादश स्कन्ध में तो बताया गया है कि ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह अपने अनुरूप तथा शास्त्रोक्त लक्षणों से युक्त कुलीन कन्या से विवाह करें।

हिंदू मान्यताओं के अनुसार मानव जीवन को चार आश्रमों यथा ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, संन्यास आश्रम तथा वानप्रस्थ आश्रम में विभक्त किया गया है। इन चारों आश्रमों की पूर्णता के लिए पाणिग्रहण संस्कार अर्थात् विवाह की आवश्यकता तथा महत्व सर्वमान्य है।

छत्तीसगढ़ में शाखोच्चार विवाह पद्धति छोटी विवाह पद्धति, मँझली विवाह पद्धति, जयमाला आदि प्रचलित हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

छत्तीसगढ़ की छोटी विवाह पद्धति:-

छोटी विवाह पद्धति में विवाह भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न विधियों से होता है जिसमें की उन्हे ब्राम्हण (आचार्य) की आवश्यकता नहीं होती है, समाज के लोगों द्वारा ही इसे सम्पन्न करा लेते है। वर्तमान में इस विवाह पद्धति का समाज में धीरे-धीरे चलन खत्म होता जा रहा है।

मँझली (छोटी) विवाह पद्धति:-

इस पद्धति में जब बाराती कन्या के यहाँ आते हैं तो उनकी उचित आवभगत की जाती है। उन्हें विवाह मंडप (जवनासा) में उचित स्थान पर बैठाने के पश्चात् आचार्य को बुलवाकर मण्डप में उचित आसन प्रदान किया जाता है। सर्वप्रथम वर व समधी सहित झाँपी (पेटी) बुलाव किया जाता है। जब वर कन्या के द्वार पर आता है तो उन को विवाह मण्डप के बीच खड़े कर सर्वप्रथम कन्या की माँ द्वारा वर का पूजन (मौर सोपना) किया जाता है और बारातियों से सभी चढ़ाव सामान (कपड़ा, गहना, मौर आदि) मांगकर सुवासिन के हाथ माई साड़ी व सभी साड़ियाँ प्रचलन व मांग के अनुसार कुड़ा देकर घर भिजवाया जाता है। अब सबसे पहले आचार्य द्वारा मंडप के बीचोंबीच लीपवा कर सुंदर चौक बनवाया जाता है, चौक के ऊपर एक पीढ़ा रखा जाता है। कन्या पक्ष से पीला चाँवल, फूल, दूबी, कलशा मँगवाने के पश्चात् वर को मंडप में बैठाया जाता है। पहले वर के ऊपर जल छिड़का जाता है, फिर गौरी-गणेश पूजा नवग्रह पूजा, कलश-पूजन, षोडशोपचार विधि से सम्पन्न किया जाता है। फिर कन्या को वर के दाहिने बैठा कर वर-कन्या द्वारा पुनः गौरी-गणेश, नवग्रह, कलश आदि पूजन षोडशोपचार विधि से सम्पन्न कराए जाते हैं।

लगन की सामाजिक विधियाँ:-

- 1) साहू (तेली) समाज में एक खाट में वर और कन्या को एक-दूसरे के सम्मुख बैठाया जाता है। वर के कनिष्ठा अंगुली को कन्या पकड़ती है। अब ऊपर से दोनों को एक चादर से ढँक दिया जाता है तथा सुवासिनों द्वारा करसा यानि कलश का हल्दी मिला जल छिड़कते हुए आचार्य द्वारा पाणिग्रहण का संकल्प मंत्र पढ़ा जाता है। मंत्र पूरा होने पर चादर को निकाला जाता है। अब कन्या द्वारा वर का हाथ पकड़वा कर आगे कन्या रहती है और

इस प्रकार मण्डप के चारों तरफ तीन फेरे कराये जाते हैं। तीन फेरों के उपरांत वर पक्ष से एक धोती लेकर उसमें पीला चाँवल, हल्दी, सुपाड़ी व सिक्का डालकर बाँध दिया जाता है, इस प्रकार गठबंधन कराया जाता है। अब वर कन्या का हाथ पकड़कर आगे चलते हुए तीन फेरे पूरा करता है। अब वर-कन्या को बैठाकर अंजुली भरवाई जाती है सात आचार्य और पाँच या सात सुवासिन के लिए। शाखोच्चार विधि मंत्र पद्धति के अनुसार सब विधियों के पश्चात् देव-विसर्जन ब्राम्हण-दक्षिणा की विधि सम्पन्न की जाती है। कहीं-कहीं वर-वधू को खाट के स्थान पर परा में बैठाया जाता है।

- 2) यादव (अहीर या पाहटिया) समाज में वर-कन्या के बीच में चादर इस प्रकार रखा जाता है जिससे की दोनों एक-दूसरे को न देख पाएं। अब वर की ऊंगली कन्या द्वारा पकड़ी जाती है और शेष विधि साहू (तेली) समाज अनुसार करें।
- 3) निषाद (केंवट) समाज में यही विधि जुड़ा यानि हल जुताई के वक्त दो बैलों के ऊपर रखा जाने वाला मोटा लकड़ी पर वर-कन्या को बैठा कर बीच में यादव समाज अनुसार चादर रखते हैं।
- 4) बाँकी समाज में मँझली (छोटी) विवाह पद्धति का प्रचलन है, जहाँ वर-कन्या को दो अलग-अलग परा में बैठा कर ऊपर से चादर ढंका जाता है।

इस प्रकार छः फेरों उपरांत टिकावन प्रारंभ करवाने के पश्चात् सिंदूर दान, सिर ढंकवाना, ज्येष्ठ या मामा श्वसुर द्वारा सिर ढंकवाना, गोद बैठाना आदि कार्य सामाजिक स्तर पर संपन्न किए जाते हैं।

कहीं-कहीं आचार्य वर-कन्या से गौरी-गणेश आदि देवों का पूजन कर दक्षिणा आदि कर सभी देवताओं का विसर्जन करा देते हैं। तत्पश्चात् फेरे आदि की प्रथा सम्पन्न की जाती है।

जयमाला विवाह पद्धति:-

इस पद्धति में विवाह प्रायः मंदिरों में ही सम्पन्न होता है, परन्तु कई लोग घर में भी करवाते हैं। इसमें जब बाराती कन्या के यहाँ आते हैं तो उनका स्वागत सत्कार करने के पश्चात् उन्हें लग्न मंडप में उचित स्थान पर बैठाया जाता है और आचार्य को भी उचित आसन दिया जाता है। सर्वप्रथम आचार्य मंडप के बीचोंबीच लिपवा कर सुंदर चौक बनवा कर उस पर पीढ़ा रखवाते हैं और कन्या पक्ष से पीला चाँवल, पुष्प, दूबी, कलशा रखवाते हैं। सबसे पहले झाँपी (पेटी) बुलाव करने के बाद पूजा की सामग्री रखने के पश्चात् कन्या को बुलाया जाता है। कन्या द्वारा अपने ऊपर जल छिड़का जाता है, फिर गौरी-गणेश, नवग्रह, कलश पूजा होती है। बारातियों से सभी चढ़ाव सामग्री, जैसे कपड़ा, गहना, मोर आदि मांगकर कन्या को देकर घर भेजा जाता है। अब वर और समधी का बुलाव कर के, मोर (वर का) सौंपा कर वर को मंडप में बैठाया जाता है। पहले वर के ऊपर अभिमंत्रित जल छिड़का जाता है, फिर गौरी-गणेश, नवग्रह, कलश पूजन षोडशोपचार विधि से सम्पन्न कराया जाता है। पुनः कन्या को मण्डप में बुलाया जाता है। अब वर पक्ष से हवन-सामग्री प्राप्त कर कन्या से हवन करवाया जाता है। यदि कन्या का पहली बार विवाह हो रहा हो तो वर-कन्या को हवन अग्नि का सात फेरा कराया जाता है और यदि कन्या का पहला विवाह हो चुका है और किन्ही कारणों से कन्या का विवाह दुबारा और वर का पहली बार हो रहा हो तो केवल वर कटार लेकर अकेले ही सात फेरे अग्नि के करता है। हवन के पश्चात् वर से बलिदान करवाने के बाद एक प्रदक्षिणा कराई जाती है। फिर वर कन्या की माँग भरता है और कन्या को अपने हाथों से चूड़ी पहनाता है। फिर वह कन्या के माता-पिता को बुलाकर उनके द्वारा वर-कन्या के पाँख पखरवा कर दान-दहेज की रीति पूरी करते हैं। पुनः आचार्य द्वारा दोनों पक्षों के समधियों को बुलाकर गौर-गणेश पूजन, दक्षिणा संकल्प और समापन पर देवों का विसर्जन कराया जाता है।

घट (कुंभ) विवाह पद्धति:-

किसी कन्या की कुण्डली में विषदोष, मंगलीदोष, वैधव्य दोष होने पर इन दोषों के परिहार के लिए शास्त्रघट विवाह यानि कुम्भ विवाह सम्पन्न कराया जाता है। इसके अंतर्गत सर्वप्रथम कन्या के माता-पिता किसी मंदिर, नदी या एकांत में जाकर पूर्वाभिमुख होकर बैठते हैं और पवित्रीकरण कर हाथों में अक्षत और जल लेकर संकल्प करते हैं-

॥विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णुराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य ब्राम्हणांऽहि द्वितीय प्रहराद्धं

श्री श्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टांशति तमे कलियुगे कलि प्रथमचरणे जम्बूद्वीप भारतवर्षे भारतखण्डे

आर्यावर्तान्तर्गते (अमुक) पक्षे (अमुक) ऋतौ (अमुक) तिथौ (अमुक) वासरे (अमुक) नामिनः (अमुक) गोत्रोत्तपन्ने मम अस्याः कन्याया नक्षत्रादि योगेन ग्रह योगेन च विषारव्य योग जननसूचित वैधव्यारिष्ट परिहार्य श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थ घट विवाह कर्माह करिष्ये॥

ऐसा संकल्प लेकर हाथ का चाँवल, जल भूमि पर छोड़ दिया जाता है।

अब गौरी-गणेश, नवग्रह, कलश, मातृका, नान्दीश्राद्ध, आचार्य वरण विधिपूर्वक किया जाता है। इसके बाद प्रधान वेदी पर एक कलश रख कर इस में विष्णुजी की सोने की मूर्ति या बड़ के वृक्ष की लकड़ी की मूर्ति बनाकर अथवा घट के भीतर मूर्ति को रखकर प्राण प्रतिष्ठा की जाती है। फिर उस घड़े के मुख को कपड़े से ढँक कर पुनः मंगल धागा बाँधा जाता है और वस्त्र, उपवस्त्र समर्पित कर अलंकृत कर मधुपर्क दिया जाता है। फिर कन्या एवं घट के मध्य गठबंधन करा कर मंगलाष्टक पढ़ कर यजमान द्वारा कन्यादान कराया जाता है। इस हेतु मंत्र है-

॥विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो शुभ पुण्य तिथौ अस्याः कन्या मंगलीदोष, विषारव्यदोष, वैधव्यदोष निवृत्य श्रीविष्णुरूपिणे कुम्भ श्री रूपिणी मिमां कन्या तुभ्य महं सम्प्रददे॥

इतना मंत्र बोलकर कन्या के दाहिने हाथ में विष्णु रूपेण घट दिया जाता है और मंत्र पढ़ा जाता है-

गौरी कन्या मिमां ९लक्ष्णां यथाशक्ति विभूषिताम्।

ददामि विष्णवे तुभ्यं सौभाग्यं देहि सर्वदा।

विष्णुं रूपिणे कुम्भाये इमां कन्यां सम्प्रददे॥

कन्या के द्वारा घट से प्रार्थना की जाती है कि वह उसके सौभाग्य की सदा सर्वदा रक्षा करे। वह कहती है कि -वरूणांग स्वरूपाय जीवनानां समाश्रयः।

पतिं जीवय कन्यायाचिरं पुत्रसुखं कुरु॥

देहि विष्णो वरं देहि कन्यां पालय दुःखतः॥

ऐसा होने के बाद गठबंधन खोल दिया जाता है और घट में जल को छोड़ दिया जाता है। कन्या का चूड़ियां व बिन्दी मिटाने के बाद वह अपना रंगीन वस्त्राभूषण वहीं छोड़ देती है, स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण कर आचार्य को दक्षिणा देकर उनसे सौभाग्य का आशीर्वाद लेती है और समापन स्वरूप समस्त देवों का विसर्जन कर दिया जाता है।

आक विवाह पद्धति:-

जिस प्रकार कन्या की मांगलिक दशा में घट या कुंभ विवाह किया जाता है ठीक इस प्रकार के वर की कुण्डली में मांगलिक दोष होने और उसके शमन के लिए आक पद्धति से विवाह सम्पन्न कराया जाता है। इस विवाह पद्धति में लड़के का विवाह आक जिसे फुड़हर भी कहा जाता है के छोटे पौधे से कराया जाता है। इस विधि में सर्वप्रथम घर अथवा मंदिर के पास किसी छोटे आक के पौधे को निमंत्रण दे आया जाता है जिसके लिए पौधे के पास जाकर उसका पूजन कर पीला चावल आदि रखा जाता है। फिर क्रमानुसार वर का चुलमाटी, हल्दी आदि की रस्म पूरी करने के बाद वर को बारात के लिए तैयार कर उस आक के पौधे के समीप बारात लाई जाती है। फिर विवाह की समस्त विधिपूर्वक वर से आक विवाह के लिए संकल्प कराया जाता है। गौरी-गणेश, नवग्रह पूजन, कलश पूजन, सर्वतोभद्र मंडल पूजा षोडसोपचार विधि से सम्पन्न किया जाता है। वर से हवन कराने के बाद पीले रंग के वस्त्र से वर और आक के पौधे का गठबंधन कराया जाता है। फिर वर हवन की प्रज्वलित अग्नि का फेरा कर बैठा है और भावना करता है कि इस आक के पौधे को कन्या मानकर मैं इसके मांग में सिंदूर भर रहा हूँ, सिंदूर भरता है। फिर आक के पौधे को वर साड़ी से ढंक देता है। समापन स्वरूप आचार्य को दक्षिणा देकर सभी देवों का विसर्जन किया जाता है। फिर उस आक के पौधे को इस भावना के साथ कटवा दिया जाता है कि इस वर का इस कन्या के संग विवाह हुआ था, अब इस कन्या का स्वर्गवास हो चुका है। इसके बाद वर सहित सभी बाराती घर लौटकर स्नान आदि से निवृत्त होते हैं।

छत्तीसगढ़ में विवाह का कार्यक्रम तीन से पांच दिवस का होता है। इसकी प्रमुख वैवाहिक रस्मों के नाम हैं मंगरोहन, चुलमाटी, तेलमाटी, देवतेला, मायन एवं चिकट, नहडोरी, मऊर परछन, परघउनी, रातिभाजी, पाणिग्रहण, भांवर, टिकावन, डोला परछन, धरमटीका आदि।

छत्तीसगढ़ के जनजातीय विवाहों में कुछ प्रचलित नाम हैं पेडुल विवाह, चढ़ विवाह, हठ विवाह, पुनर्विवाह, सेवा विवाह, क्रय विवाह, अपहरण विवाह पायसोतुर, विनिमय विवाह, प्रेम विवाह भगेली, उदरिया, गंधर्व विवाह, दूध लौटावा विवाह, पठोनी विवाह, तीर विवाह, छुट्टा विवाह आदि।

इस प्रकार यह आदिकाल से चली आ रही हमारी संस्कृति, सभ्यता, परंपरागत मूल्य हैं जो हमारी अनमोल धाती हैं। विवाह मात्र एक संयोग, आवश्यकता, परिपाटी होने की सीमा से भी आगे की विस्तृत एवं व्यापक व्यवस्था है जिससे जुड़े वैदिक इतिहास पर अभी अनुसंधान शेष है। विवाह वह संस्था है जिसके आधार पर अन्य समस्त सत्ताएँ अपने अस्तित्व को कायम रखे हैं। विवाह जब धर्मसंगत होता है तो वह पशु को मानव और मानव को ईश्वर बनाने की शक्ति रखता है क्योंकि वह स्वयं में एक आचार संहिता, एक संविधान बन जाता है और ऐसी न्याय व्यवस्था को जन्म देता है जो प्राकृतिक ममता व समता की रीति-नीति पर आधारित होती है।

इस प्रकार प्राचीनकाल से ही छत्तीसगढ़ में परम्पराओं पर आधारित विवाह का आयोजन सम्पन्न होता है जिसमें अनेक क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। भारत के आर्षग्रंथों के अन्तर्गत विवाह सम्बन्धित सृष्टि की विवेचना की गई है, जिन के अध्ययन तथा अनुशीलन द्वारा व्यक्तित्व के विकास में विवाह की प्रधानता और महत्व का प्रतिपादन किया गया है। धर्म से प्रेरित विवाह संस्था हर युग में अनुशासन, मर्यादा और श्रेष्ठता का प्रतिनिधित्व करती आ रही है जो 'विवाह' के समसामयिक महत्ता का परिचायक है।

संदर्भ ग्रंथ

1. श्रीमद् भागवत् 10/60/15
2. अनुभवानंदजी स्वामी एवम् श्रीनिवास ए.वी., 'हिन्दू वेडिंग: द गाइड' (6 नवंबर 2010), पेपरबैक, व्हाइट रिवर प्रेस, प्रथम संस्करण, आईएसबीएन-10 (1933052381) आईएसबीएन-13 (978-1935052388)
3. मीणा सुनीता, धर्मशास्त्रों के सन्दर्भ में गृहस्थाश्रम-विवेचन-गृहस्थाश्रम- धर्मशास्त्र के सन्दर्भ में चर्चा, सं.2014, आईएसबीएन: 9789381951613, साहित्यिक मंडल, जयपुर
4. सिंह पाठक कुमकुम, ऋग्वेद में युगल देवता, 2012, आईएसबीएन: 817081684X, नाग पब्लिसर्स
5. सरस्वती जगदीश्वरानंद, वैदिक विवाह पद्धति: वैदिक विवाह प्रणाली, सं0 2023, आईएसबीएन: 9788170770152, विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द प्रकाशन

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी का व्यक्तित्व कृतित्व एवं शिक्षा दर्शन का अध्ययन

डॉ० प्रेम सिंह

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, विजय सिंह पथिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय; श्री महावीर जी, जिला करौली, राजस्थान

शोध सारांश

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय एक महान विचारक और संगठनकर्ता थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक महत्वपूर्ण नेता और भारतीय समाज के एक महान सामाजिक कार्यकर्ता होने के साथ-साथ, वह एक साहित्यकार भी थे। समाज के लिए जीने वाले श्रेष्ठ देश के लिए मरने वाले लोग भी श्रेष्ठ होते हैं वास्तव में जो धर्म और समाज के लिए जीता है, वही धर्म और समाज के लिए मरता भी है। जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन धर्ममय बिताया है, समाजमय बिताया है, वही आखिरी समय पर समाज के लिए जीवन दे सकता है। उसके अन्दर एक ध्येयवाद, एक निस्वार्थ सेवा का भाव और कर्तव्य परायणता होती है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने मानव समाज के उद्भव एवं विकास के लिए एक महत्वपूर्ण जो कि एक शस्त्र की भाँति समाज को एक नई दिशा व व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण के लिए 'शिक्षा' को एक महत्वपूर्ण हथियार माना है। चूँकि पं. दीनदयाल उपाध्याय का कहना है कि "शिक्षा हर व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है। समाज द्वारा इसकी व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा का विक्रय समाज के लिए घातक होगा। अतः शिक्षा सुनिश्चित व निशुल्क होना चाहिए। पं. दीनदयाल जी कहते हैं कि शिक्षा से केवल मानव मात्र का कल्याण नहीं होता शिक्षा के द्वारा लोक कल्याण का भी सर्वांगीण विकास होता है। शिक्षा शब्द का सीमित और विस्तृत दोनों अर्थों में इस्तेमाल किया जा सकता है। शिक्षा का अर्थ है 'एक प्रक्रिया से जो कि जीवनपर्यन्त चलती रहती है। इसकी प्रक्रिया अनवरत् चलती रहती है अर्थात् जीवन जीने का सही मायने है 'सीखना। वस्तुतः अगर हम अपने बीते हुए कल के बारे में महसूस करेंगे तो हमें एक अनुभव सा प्रतीत होता है कि एक नये अनुभव का उद्भव होता है जिसे हमें सीखना कहते हैं। "यह जीवन की समस्याओं से, जिनमें हम जूझते हैं, प्रकृति के प्रभावों व सुझाओं, अपने लोगों से और प्रायः अपनी असफलताओं और दुःखों से हमारे पास आती है।" सभी प्रकार की विचारधाराएं चाहे वो पाश्चात्य हो या प्राच्य शिक्षा को चरित्र निर्माण में आवश्यक माना है। शिक्षा राष्ट्र को वैभवशाली बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। किसी भी देश के अतीत एवं भविष्य को रूपरेखा शिक्षा ही तय करती है अतः प्रस्तुत शोध पत्र में पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी का व्यक्तित्व, कृतित्व एवं शिक्षा दर्शन का अध्ययन किया गया है।

मुख्य बिंदु:- जीवन परिचय, पं. दीनदयाल उपाध्याय का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय स्वतंत्रता, पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी का शिक्षा दर्शन, शिक्षा दर्शन के प्रभाव, अध्यापन व निष्कर्ष।

जीवन परिचय:-

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय मुख्य रूप से एक राजनीतिक कार्यकर्ता थे। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक क्षेत्र में योगदान मुख्य रूप से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता के रूप में रहा है। वह संगठनों को साधन के रूप में मानते थे, व्यावहारिक नहीं थे लेकिन साधनों की शुद्धता के बारे में वह बहुत सावधान थे। उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ को अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के साधन के रूप में चुना, फिर वे अखण्ड भारत के समर्थक थे। कश्मीर आंदोलन, गोवा मुक्ति आंदोलन, बेरुबाड़ी हस्तांतरण के खिलाफ जन अभियान, विशाल कच्छ आंदोलन, भारत-पाक युद्ध 1965 और ताशकंद समझौता, राष्ट्रवादी विदेश नीति, पाकिस्तान और चीन के प्रति रवैया, बुनियादी सुरक्षा नीति, सैन्यीकरण और परमाणु बम, में स्वराज नीति और अर्थव्यवस्था, राज्य पुनर्गठन, भाषा नीति, स्थानीय स्वशासन, आदि के संदर्भ में उनकी देश के प्रति महत्वपूर्ण राजनीतिक योगदान रहा है। वहीं, अगर हम व्यक्ति के आर्थिक दृष्टिकोण के बारे में बात करते हैं, तो पण्डित दीनदयाल उपाध्याय आर्थिक दृष्टिकोण से मानव जीवन के दृष्टिकोण के खिलाफ थे। मानवीय सांस्कृतिक मूल्यों के दृष्टिकोण से, उनकी धारणा आदर्शवादी है, लेकिन यह सोच अव्यावहारिक नहीं है, इसलिए उन्होंने एक साथ व्यवहार्य व्यवस्था पर चर्चा करने का भी प्रयास किया है। वे जीवन के शाश्वत मूल्यों के प्रकाश में आवश्यक परिवर्तनों और मानव विवेक पर विश्वास करते हैं, बजाय किसी विशेष तर्क के। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय राजनीतिक विचारों के साथ-साथ मानवतावाद को अधिक बढ़ावा देते थे।



पंडित दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 25 सितंबर 1916 को ब्रज के मथुरा जिले के “नगला चंद्रभान” नामक एक छोटे से गाँव में हुआ था। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का बचपन, मुसीबतों के संघर्ष से घिरा हुआ था। दीनदयाल के पिता का नाम भगवती प्रसाद उपाध्याय था। जिनकी माता का नाम “रामप्यारी” था, जो धार्मिक प्रवृत्ति की थी, दीनदयाल के पिता रेलवे में नौकरी करते थे, लेकिन जब दीनदयाल महज तीन वर्ष की आयु के थे तब उनके पिता की मृत्यु हो गई और फिर बाद में 7 साल की आयु में दीनदयाल अपनी माँ एवं बाप के प्यार से वंचित हो गए। दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी माँ की मृत्यु के बाद भी अपने जीवन से मुंह नहीं मोड़ा और अपने जीवन में हंसते-हंसते संघर्ष करते रहे, दीनदयाल उपाध्याय बचपन से ही पढ़ाई के शौकीन थे, इसलिए उन्होंने बिना किसी चिंता के अपनी पढ़ाई पूरी की। 8वीं की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उपाध्याय जी ने कल्याण हाईस्कूल, सीकर, राजस्थान से दसवीं की परीक्षा में बोर्ड में प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1937 में पिलानी से इंटरमीडिएट की परीक्षा में पुनः बोर्ड में प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1939 में कानपुर के सनातन धर्म कालेज से बी०ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। एम०ए० करने के लिए सेंट जॉन्स कालेज, आगरा में प्रवेश लिया और पूर्वाद्ध में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये। बीमार बहन रामादेवी की शुश्रूषा में लगे रहने के कारण उत्तराद्ध न कर सके। बहन की मृत्यु ने उन्हें झकझोर कर रख दिया। मामाजी के बहुत आग्रह पर उन्होंने प्रशासनिक परीक्षा दी, उत्तीर्ण भी हुये किन्तु अंगरेज सरकार की नौकरी नहीं की। 1941 में प्रयाग से बी०टी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। बी०ए० और बी०टी० करने के बाद भी उन्होंने नौकरी नहीं की।

1937 में जब वह कानपुर से बी०ए० कर थे, अपने सहपाठी बालूजी महाशब्दे की प्रेरणा से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आये। संघ के संस्थापक डॉ० हेडगेवार का सान्निध्य कानपुर में ही मिला। उपाध्याय जी ने पढ़ाई पूरी होने के बाद संघ का दो वर्षों का प्रशिक्षण पूर्ण किया और संघ के जीवनव्रती प्रचारक हो गये। आजीवन संघ के प्रचारक रहे।

संघ के माध्यम से ही उपाध्याय जी राजनीति में आये। 21 अक्टूबर 1951 को डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में ‘भारतीय जनसंघ’ की स्थापना हुई। गुरुजी (गोलवलकर जी) की प्रेरणा इसमें निहित थी। 1952 में इसका प्रथम अधिवेशन कानपुर में हुआ। उपाध्याय जी इस दल के महामंत्री बने। इस अधिवेशन में पारित 15 प्रस्तावों में से 7 उपाध्याय जी ने प्रस्तुत किये। डॉ० मुखर्जी ने उनकी कार्यकुशलता और क्षमता से प्रभावित होकर कहा- “यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएं, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।”

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक महान विचारक और संगठनकर्ता थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक महत्वपूर्ण नेता और भारतीय समाज के एक महान सामाजिक कार्यकर्ता होने के साथ-साथ, वह एक साहित्यकार भी थे एवं इन्हें 1953 में अखिल भारतीय जनसंघ की स्थापना होने पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय को उ०प्र० का सचिव बनाया गया था। अधिकांश लोग पंडित दीनदयाल को उनकी समाज सेवा के लिए याद करते हैं। दीनदयाल ने अपना पूरा जीवन संघ को समर्पित कर दिया। अपनी कुशल संगठन क्षमता के लिए डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कहा था कि “अगर भारत में दो दीनदयाल होते, तो भारत का राजनीतिक परिदृश्य अलग होता।” पंडित दीनदयाल, एक और बात जो उन्हें अलग करती है, वह है उनकी सादगीपूर्ण जीवन शैली, इतने बड़े नेता होने के बाद भी, उनमें थोड़ा सा भी अहंकार न था। वह सबको एक ही नजर से देखते थे।

1967 तक उपाध्याय जी भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे। 1967 में कालीकट अधिवेशन में उपाध्याय जी भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वह मात्र 43 दिन जनसंघ के अध्यक्ष रहे। 10/11 फरवरी 1968 की रात्रि में मुगलसराय स्टेशन पर उनकी हत्या कर दी गई। 11 फरवरी को प्रातः पौने चार बजे सहायक स्टेशन मास्टर को खंभा नं० 1276 के पास कंकड़ पर पड़ी हुई लाश की सूचना मिली। शव प्लेटफार्म पर रखा गया तो लोगों की भीड़ में से चिल्लाया- “अरे, यह तो जनसंघ के अध्यक्ष दीन दयाल उपाध्याय हैं।” पूरे देश में शोक की लहर दौड़ गयी?

उद्देश्य:-

- 1 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के व्यक्तित्व, कृतित्व व शिक्षा दर्शन को स्पष्ट करना।
- 2 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के शिक्षा दर्शन के महत्व व प्रभाव को स्पष्ट करना।

परिकल्पना:-

- 1 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के व्यक्तित्व, कृतित्व व शिक्षा दर्शन का समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

आंकड़ों के स्रोत:-

किसी भी शोध के लिए, सामग्री या फिर तथ्यों का संकलन की बहुत महत्वपूर्ण है। जब तक शोध विषय से संबंधित तथ्यों की निश्चित विधियां एकत्र नहीं की जाएंगी, तब तक शोध के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। न ही किसी प्रकार के नियमों का प्रतिपादन किया जा सकता है। तथ्य दो तरह से संकलित किया जाता है। अपने शोध पत्र लेखन में तथ्यों के संकलन के लिए निम्न शोध प्राविधियों का प्रयोग किया गया है।

प्राथमिक स्रोत:-

प्राथमिक स्रोत में अध्ययन के विषय से संबंधित घटनाओं को ध्यान से देखकर, संबंधित व्यक्तियों से संपर्क करना, साक्षात्कार करना और अवलोकन विधि से जानकारी एकत्र करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीयक स्रोत:-

उन सभी जानकारी, डेटा और तथ्य जो शोधकर्ता अपने स्वयं के अध्ययन के लिए संकलित नहीं करता है, जो पहले से ही प्रकाशित या अप्रकाशित रूप में उपलब्ध है, को दूसरी सामग्री कहा जाता है। इसमें पुस्तकें, पुस्तकें, जर्नल, डायरी, स्व-कहानियां, पांडुलिपियां, सरकारी रिपोर्ट, राजपत्री दस्तावेज, रिकॉर्ड आदि शामिल हैं। इसका मतलब है कि माध्यमिक प्रमाण पहले से ही संकलित हैं, प्रस्तावित अनुसंधान विषय में तथ्यों को प्राप्त करने के लिए दोनों प्रकार के स्रोतों को अपनाया है।

ऐतिहासिक अनुसंधान विधि:-

ऐतिहासिक अनुसंधान का लक्ष्य पिछली घटनाओं की सच्चाई या आवृत्ति का पता लगाना है। ताकि हमें विषय के इतिहास का ज्ञान हो सके। इसे गैर-क्षेत्र अध्ययन कहा जाता है। यह अभिलेखागार और संग्रहालयों में किया जाता है। इसकी योजना का मूल उद्देश्य प्रामाणिक जानकारी का एकत्रीकरण है।

अतः प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक सूचनाओं का उपयोग किया गया है जिसका संकलन पत्र पत्रिकाओं, सेमिनार, शोध ग्रंथों व पुस्तकों के किया गया है। शोध पत्र में ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक विधि तंत्र को अपनाया गया है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय का व्यक्तित्व एवं कृतित्व:-

व्यक्तित्व विकास कोई आकस्मिक घटना या परिणाम नहीं है, व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया व्यक्ति के जन्म से ही प्रारम्भ हो जाती है और मृत्यु पर्यन्त जारी रहती है। व्यक्तित्व मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में अलग-अलग रूपों में होता है। ढाई साल की अवस्था में पित्र गृह छूटने के बाद दीनदयाल वापस वहां रहने के लिए कभी नहीं लौटे। उनका पालन पोषण व विकास एक प्रकार से असामान्य स्थिति में हुआ। वे स्थितियाँ ऐसी भी थीं, जिनमें व्यक्ति का व्यक्तित्व बुझ जाए, लेकिन दीनदयाल ने उसी परिवेश से ऊर्जा ग्रहण कर अपने व्यक्तित्व का विकास किया। निश्चय ही उनके जीवन पर उनकी बाल्यावस्था के भरपूर संस्कार थे।" पं. दीनदयाल उपाध्याय जी की बाल्यकाल की एक रोचक घटना "होनहार विरवान के होत चीकने पात।

एक बार बालक दीनदयाल अपनी मामी की गोद में सोय थे। रात्रि के 11.00 बजे होंगे। घर की और महिलायें भी पास बैठी थी। उनमें घरेलू वार्ता हो रही थी। अभी घर के लोग सोए नहीं थे। अचानक 10-12 डाकुओं का एक गिरोह ने घर पर आक्रमण कर दिया और लूटपाट की मंशा से बालक दीनदयाल को मामी गोद से खींच कर जमीन पर गिरा दिया और उनकी छाती पर पैर रखकर धमकाया कि घर के सभी आभूषण हमारे हवाले कर दो, नहीं तो बच्चे का प्राण ले लेंगे। दीनदयाल की समझ में पहले तो कुछ नहीं आया, थोड़ी देर में स्थिति का अन्दाजा लगा तो वे कराहते हुए बोल पड़े, "हमने तो सुना था कि डाकू धनी लोगों को लूटते हैं और गरीबों की मदद करते हैं किन्तु तुम तो हम गरीब लोगों को ही लूट रहे हो। डाकुओं का सरदार बालक दीनदयाल की बात सुनकर उल्टे पांव वापस लौट गया। बचपन से ही दीनदयाल की वाणी में सरस्वती का निवास था। वे अपनी बात से दूसरे व्यक्ति को फौरन प्रभावित कर लेते थे। आगे चलकर यह बात उनके सभी कार्यकलापों में देखने को मिली।"



पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के जीवन में शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण है सेवा एक बार दीनदयाल जी के मामा जी सख्त बीमार पड़ गये। डाक्टरों ने कहा उनका बचना सम्भव नहीं है। उन्हें क्षय रोग हो गया था और इलाज के लिए बाहर ले जाना आवश्यक हो गया था। अतः उन्हें इलाज हेतु लखनऊ ले जाने का निर्णय लिया गया, किन्तु एक विकट समस्या यह खड़ी हुई कि मामा जी को लखनऊ कौन ले जाये। छूट की बीमारी होने के कारण कोई संबंधी उनके साथ जाने के लिए तैयार नहीं था। दीनदयाल जी उस समय केवल 11 वर्ष के थे किन्तु इस अल्पायु में ही उनके अन्दर सेवा भावना कूट-कूट भर गयी थी। उन्होंने अपने मामा जी से कहा, 'आप चिन्ता न करे, मैं समझदार हो गया हूँ। मैं आपको इलाज हेतु लखनऊ ले चलूंगा और शीघ्र ही मामा जी को लेकर लखनऊ के लिए रवाना हो गये। यह दीनदयाल की परीक्षा के लिए पढ़ाई का समय था किन्तु उन्होंने पढ़ाई से अधिक सेवा को महत्व देकर मामाजी की सेवा सुश्रुआ में लगे रहे। लगभग एक माह पश्चात् मामाजी के स्वास्थ्य सुधार होने पर उन्हें लेकर वापस लौटे और सीधे परीक्षा में बैठे। परीक्षाफल निकलने पर पता चला कि वे कक्षा में सर्वप्रथम आये। इस प्रकार इधर मामा जी की बीमारी चलती रही, उधर दीनदयाल और सेवा का क्रम भी चलता रहा।

राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय स्वतंत्रता के संदर्भ में प्रचलित धारणाओं से भिन्न विचार था। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संघ में किशोर विद्यार्थी बड़ी संख्या में आया करते थे। अप्रैल 1946 की बात है, एक प्रांतीय बैठक में प्रांत प्रचारक माऊराव ने यह चिन्ता व्यक्त की हमारा विचार बाल सुलभ भाषा में उपलब्ध नहीं है। वास्तव में बाल साहित्य की बहुत आवश्यकता है। दीनदयाल जी ने चुपचाप यह बात सुनी। रातभर वे लिखते रहे तथा प्रातःकाल पाण्डुलिपि भाऊराव को सौंपते हुए बोले "देखिए, यह पुस्तक बाल स्वयंसेवकों के लिए कैसी रहेगी।" सभी देखकर चमत्कृत हुए, रातभर में दीनदयाल जी ने एक बाल उपन्यास लिख डाला। उनकी यह प्रथम पुस्तक 'सम्राट चन्द्रगुप्त' नाम से प्रकाशित हुई।

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी साहित्यकार, लेखक एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में राजनीतिक क्रांति के साथ-साथ वैचारिक क्रांति भी आवश्यक है, इस उद्देश्य को लेकर सन् 1947 में लखनऊ से 'राष्ट्रधर्म' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। उसके संस्थापक पं. दीनदयाल जी थे, पहला संपादकीय भी उन्होंने ही लिखा था। तदोपरान्त इस कार्य से श्री अटल बिहारी वाजपेयी भी जुड़ गये। शीघ्र ही इन लोगों के निर्देशन में तीन पत्र-पत्रिकाएं निकलने लगी-

- राष्ट्रधर्म (मासिक)
- पांचजन्य (साप्ताहिक)
- स्वदेश (दैनिक)

पं. दीनदयाल जी ने दो अन्य पत्रिकाओं 'हिमालय' तथा 'राष्ट्रभक्त' का प्रकाश भी किया। राजनैतिक व्यवस्तताओं के बावजूद पं. दीनदयाल जी साहित्य सृजन भी करते रहते थे। उनकी प्रमुख रचनाओं में हैं-

- सम्राट चन्द्रगुप्त
- जगद्गुरु शंकराचार्य
- भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा
- राष्ट्र चिन्तन राष्ट्र जीवन की दिशा
- इनटिगरल हयुमनिज्म

पं. दीनदयाल 'आर्गनाजर' के माध्यम से विभिन्न विषयों पर अपने विचार प्रकट किया करते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के विचारों के समरूप पं. दीनदयाल जी भी एक देशव्यापी विराट साहित्यिक योजना कार्यान्वित करना चाहते थे। वे ऐसी साहित्य रचना को प्रोत्साहित करना चाहते थे जो व्यक्ति और समष्टि की समन्वित भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति को साकार कर सके और जनमानस में एक बार पुनः राष्ट्र के अखण्ड और अभिवाजय रूप को प्रतिष्ठापित कर सके।

17 मई 1956 को पं. दीनदयाल उपाध्याय के लेखों का संग्रह पॉलिटिकल डायरी के नाम से प्रकाशित हुआ जिसकी प्रस्तावना डॉ. सम्पूर्णानन्द ने लिख थी।



उन्होंने प्राचीन भारतीय जीवन दर्शन के आधार पर सामाजिक व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में मौलिक चिन्तन करके उन्हें दार्शनिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण व्यावहारिक व्याख्याएँ दी। उनकी पुस्तक 'एकात्म मानववाद' इसका आदर्श उदाहरण है।"

हमारा व्रत जिनके सामने रोजी और रोटी का सवाल है, जिन्हें न रहने के लिए मकान है न तन ढकने को कपड़ा अपने मैले बच्चों के बीच आज वे दम तोड़ रहे हैं। गांवों और शहरों में इन करोड़ों निराश भाई बहिनों को सुखी व सम्पन्न बनाना हमारा व्रत है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के आराध्य दरिद्रनारायण हैं, पं. दीनदयाल जी का कहना था कि आज देश में ऐसे करोड़ों लोग हैं, जो मानव के किसी भी अधिकार का उपयोग नहीं कर पाते। साथ लेकर चलने के बजाय, उन्हें मार्ग का रोड़ा ही समझा जाता है।

हमारी भावना और हमारा सिद्धांत है कि मैले-कुचौले, सीधे साधे गरीब लोग हमारे नारायण हैं। हमें उनकी पूजा करनी है। जिस दिन हम इनको पक्के, सुन्दर घर बना के देंगे, जिस दिन हम इनके बच्चों और स्त्रियों को शिक्षा और जीवन दर्शन का ज्ञान देंगे, जिस दिन हम इनके हाथ और पांव के विमाईयों को भरेंगे और जिस दिन हम इनको उद्योग और धन्धों की शिक्षा देकर समाज को आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे।

पं. दीनदयाल उपाध्याय छूआछूत के कट्टर विरोधी थे। वे प्रायः इस बात का आग्रह करते थे कि उन्हें किसी हरिजन वस्ती में रहने वाले कार्यकर्ता के यहां ठहराया जाये। कुछ रचनात्मक कार्यों में, हरिजनों के साथ झाड़ू लगाने में, सफाई करने में वे आगे रहते थे और प्रसन्नता का अनुभव करते थे, उन्होंने कहा था कि किसी भी समाज में विभिन्न जातियां, उपजातियां हो सकती हैं, किन्तु उनमें आपस में टकराव या व्यवहारिक भेदभाव हो, ऐसा हमने कभी नहीं चाहा।

जिस सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति और व्यक्ति के बीच अर्थात् समाज के व्यवहार में परस्पर अनुकूलता होगी, वहां व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसका सम्मान सुरक्षित होगा।”

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि समता या मानवता ये मानव स्वभाव, संस्कृति और उसकी मानसिकता से सम्बन्ध रखते हैं। इन मानवीय सम्बन्धों को उल्लंघन करने वाले को दण्ड तो दिया जा सकता है, किन्तु इसे समाप्त कर सद्भाव का निर्माण नहीं हो सकता। जैसे बाल विवाह या छुआछूत के संबंध में कानून तो बने हैं किन्तु क्या इसमें कुछ सुधार हुआ है, कोई अपराधी पकड़ा गया है? पंडित जी का दृढ़ विश्वास था कि ऐसे सभी मामलों की जड़ में परायेपन की भावना काम करती है। छुआछूत भी इसी मानसिक परायेपन का परिणाम है। दूसरे व्यक्ति के शरीर में भी वही आत्मा व्याप्त है जो मेरे शरीर में। वह दूसरे घर में पैदा हुआ है, इतने मात्र से वह पराया नहीं। इसी प्रकरण में उनका विचार था कि छुआछूत का ऊँच नीच का भेदभाव हमारे घरों की महिलाओं के आग्रह पर अधिक होता है, अतः स्त्रियों में सामाजिक शिक्षण और जागृति की विशेष आवश्यकता है।



यदि उनमें दूसरों के लिए भी वही अपनत्व का भाव जागृत कर दिया जाये तो वे समाज के किसी वर्ग को स्नेह देने में पीछे नहीं रहेंगी।”

दीनदयाल उपाध्याय ने अपने राजनीतिक विचारों में 1. राज्य की उत्पत्ति 2. धर्म राज्य, 3. राज्यवाद, 4. प्रजातंत्र, 5, समाजवाद, 6 लोक कल्याणकारी राज्य 7, संघात्मक बनाम एकात्मक राज्य, 8, राष्ट्रवाद आदि अपनी विचारधारा प्रस्तुत कर राजनीति विज्ञान को एक बहुत बड़ा योगदान दिया है। दीनदयाल एक सामाजिक कार्यकर्ता थे। संगठनों को उन्होंने साधन माना, साध्य नहीं लेकिन साधनों की सुडोलता के बारे में बहुत सावधान थे। अतः जब उन्होंने अपने साध्य को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तथा जनसंघ को साधन के नाते चुन लिया, तो फिर वे उनमें आजीवन जुटे रहे।

उपाध्याय अखण्ड भारत के हिमायती थे। कश्मीर आन्दोलन, गोआ मुक्ति आन्दोलन, वेस्वाडी हस्तान्तरण के खिलाफ जन अभियान, कच्छ करार विरोधी विराट प्रदर्शन, भारत पाक युद्ध 1965 एवं ताशकंद घोषणा, राष्ट्रवादी विदेश नीति, पाकिस्तान एवं चीन के प्रति दृष्टिकोण, आधारभूत सुरक्षा नीति, सैनिकीकरण ती अणुबम, स्वराष्ट्र नीति एवं अर्थनीति, राज्य पुनर्गठन, भारत नीति, स्थानीय स्वशासन आदि के संदर्भ में उनकी देश का महत्वपूर्ण राजनीतिक देन एवं योगदान रहा है।

दीनदयाल के अध्यक्ष पद को संभाले अभी मात्र 44 दिन ही हुए थे लखनऊ से पटना जाते समय मुगल सराय स्टेशन पर उनकी हत्या कर दी। इस बात का खुलासा 11 फरवरी, 1968 को प्रातःकाल लगभग पौने चार बजे हुआ। जब लीवर मेन ने सहायक स्टेशन मास्टर को सूचना दी। जब उस मृतप्राण देह

को पुलिस की निगरानी में डॉक्टर के पास ले जाया गया तो डाक्टरों ने उसे पूरी तरह मृत घोषित कर दिया। इसी लाश की बाद में पहचान पंडित दीनदयाल के रूप में की गई।

पंडित दीनदयाल की मृत्यु का समाचार पूरे देश में आग की तरह फैल गया। स्टेशन पर ही हजारों की तादाद में उन्हें देखने के लिए भीड़ इकट्ठी हो गई। चारों तरफ हाहाकार मच गया। देशभर में शोक की लहर दौड़ गई। दिल्ली को बंद घोषित कर दिया गया। जब पुलिस की निगरानी में स्वयंसेवक उनके शव को लेकर आगे बढ़ रहे थे तो उन्हें भीड़ की कठिनाई का सामना करना पड़ा। चारों तरफ हैरानी का माहौल था कि इस ऋषि तुल्य महामानव के प्राण किसने हर लिए? कौन है वह हत्यारा जिसने उनके पावन शरीर को झंझोरकर रख दिया? कौन बातए?

उनके पार्थिव शरीर को सायं 06 बजे निगम बोध घाट पर लाया गया। उनके ममेरे भाई श्री प्रभुदयाल शुक्ल ने उन्हें मुखाग्नि दी। इस प्रकार भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार करने वाले एवं भारतीय राजनीति को एक नई दिशा देने वाले महामानव पंडित दीनदयाल पंचतत्व में विलीन हो गए। भारतीय एकता और अखण्डता का अमरत्व धोलने वाले पंडित दीनदयाल ने भले ही अपना नश्वर शरीर त्याग दिया हो, लेकिन उनके विचार एवं सिद्धांत आज भी सम्पूर्ण राष्ट्र का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी का शिक्षा दर्शन :-

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने मानव समाज के उद्भव एवं विकास के लिए एक महत्वपूर्ण जो कि एक शस्त्र की भाँति समाज को एक नई दिशा व व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण के लिए 'शिक्षा' को एक महत्वपूर्ण हथियार माना है। चूँकि पं. दीनदयाल उपाध्याय का कहना है कि "शिक्षा हर व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है। समाज द्वारा इसकी व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा का विक्रय समाज के लिए घातक होगा। अतः शिक्षा सुनिश्चित व निशुल्क होना चाहिए। इस संदर्भ में वह लिखते हैं कि बच्चे को शिक्षा देना समाज की अपने हित में है। जन्म से मानव पशुवत पैदा होता है। शिक्षा व संस्कार से समाज का अभिन्न घटक बनता है। जो काम समाज के अपने हित में हो उसके लिए शुल्क लिया जाय। यह तो उल्टी बात है कि कल्पना करें कि कल शिक्षा शुल्क का बहिष्कार करके अथवा उसे देने में असमर्थ होने के कारण बच्चे पढ़ना बन्द कर दे तो क्या समाज इस स्थिति को सहन कर सकेगा। पेड़ लगाना व सींचने के लिए पेड़ से पैसा नहीं लेते हम तो अपनी ओर से पूँजी लगाते हैं और जानते हैं कि पेड़ के फलने पर हमें फल मिलेंगे ही। शिक्षा भी इसी प्रकार विनियोजन है। व्यक्ति शिक्षित होकर ही समाज के लिए काम करेगा ही किन्तु जो व्यवस्था बचपन से ही हमें व्यक्तिवाद बनाती हो उससे समाज कि अवहेलना करने वाले निकले तो आश्चर्य है कि क्या? भारत में सन् 1947 से पूर्व सभी देशी राज्यों में कहीं भी शिक्षा के लिए शुल्क नहीं लिया जाता था। उच्चतम श्रेणी तक शिक्षा निःशुल्क थी। गुरुकुल में तो भोजन व रहने की व्यवस्था भी आश्रम में होती थी, केवल भिक्षा मांगने के लिए ब्रह्मचारी समाज में जाता था। कोई भी व्यक्ति गृहस्थ ब्रह्मचारी को खाली हाथ नहीं लौटाता था। अर्थात् समाज द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी।"



पं. दीनदयाल जी कहते हैं कि शिक्षा से केवल मानव मात्र का कल्याण नहीं होता शिक्षा के द्वारा लोक कल्याण का भी सर्वांगीण विकास होता है। शिक्षा शिक्षकत्रयी का वर्णन करता है। जो इस प्रकार है- (1) "माता प्रथम गुरु (2) आचार्य देवी भवः (3) आत्म दियो भवः। ये तीनों शिक्षकों के शिक्षा देने के अलग-अलग माध्यम है। प्रथम संस्कार, द्वितीय अध्यापन व तृतीय स्वाध्याय।"

इमाइल दुखीम के अनुसार "शिक्षा का सबसे प्रमुख प्रकार्य समाज के नियमों और मूल्यों को परिवर्तित करना है।" समाज केवल तभी जिंदा रह सकता है अगर इसके सदस्यों के बीच पर्याप्त मात्रा में एकता हो। शिक्षा इस एकता को पैदा करती है और फिर इसे स्थापित करती है। यह बच्चों में शुरू से आवश्यक समानतायें तय करती हैं जो सामूहिक जीवन की माँग है। हर समाज की प्रमुख जिम्मेदारी है कि सभी व्यक्तियों को सामूहिक रूप से एकताबद्ध करे। व्यक्तियों में समाज के प्रति अपनत्व कि भावना होनी चाहिए। दुखीम कहते हैं कि 'शिक्षा' व्यक्ति और समाज को मूल्यों और आदर्शों, समुदाय की परम्परा के बारे में बताकर उन्हें सिद्धान्त से लैस करती है और व्यक्ति तथा पं. दीनदयाल जी के वैचारिकी 'शिक्षा' शब्द की व्याख्या का वर्णन खूब महसूस की जाती है। समाज एवं समाज में रह रहे व्यक्ति के विकास के लिए 'शिक्षा' एक वरदान की भाँति सिद्ध है जो व्यक्ति और समाज में सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त अति सुगम बनाता है। जन्म के दौरान एक बच्चा केवल मात्र एक मांस का लोथड़ा होता है जैसे ही समाज के सम्पर्क में इस जीव का सम्पर्क होता है। धीरे-धीरे वह अपने सरलता से जटिलता की ओर विकसित होता जाता है।

डार्विन के अनुसार विकास के जीवशास्त्रीय सिद्धान्त ने इतिहास दर्शन के प्रभाव की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि "निम्न या सरल जीवों के उपरान्त जटिलतर जीवों की ओर विकास हुआ और यह स्पष्ट रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है और इनकी उत्पत्ति के काल का निर्धारण भी हो सकता है। इसी तरह अस्तित्व के लिए संघर्ष एवं प्रतियोगिता के विचार स्थापित हुए।"

अतः समाज को एक जीव की तरह समग्र माना गया और समाज के विभिन्न अंगों की तरह अंगों के अस्तित्व को जीव के अस्तित्व के संदर्भ में विश्लेषित किया गया। तत्पश्चात् सरल समाजों जो उत्तरोत्तर जटिल समाजों की ओर विकास हुआ। जिसका स्पष्ट वर्गीकरण एवं काल निर्धारण के तार्किक प्रयास किये गये।

शिक्षा शब्द का सीमित और विस्तृत दोनों अर्थों में इस्तेमाल किया जा सकता है। शिक्षा का अर्थ है 'एक प्रक्रिया से जो कि जीवनपर्यन्त चलती रहती है। इसकी प्रक्रिया अनवरत् चलती रहती है अर्थात् जीवन जीने का सही मायने है 'सीखना'। वस्तुतः अगर हम अपने बीते हुए कल के बारे में महसूस करेंगे तो हमें एक अनुभव सा प्रतीत होता है कि एक नये अनुभव का उद्भव होता है जिसे हमें सीखना कहते हैं।

“यह जीवन की समस्याओं से, जिनमें हम जूझते हैं, प्रकृति के प्रभावों व सुझाओं, अपने लोगों से और प्रायः अपनी असफलताओं और दुःखों से हमारे पास आती है।”

सभी प्रकार की विचारधाराएं चाहे वो पाश्चात्य हो या प्राच्य शिक्षा को चरित्र निर्माण में आवश्यक माना है। शिक्षा राष्ट्र को वैभवशाली बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। किसी भी देश के अतीत एवं भविष्य को रूपरेखा तय करती है शिक्षा। भारत की परम्परा एवं संस्कृति में शिक्षा को मनुष्य के जीवन का सबसे सबल पक्ष स्वीकारा है। शिक्षाविहीन मनुष्य की तुलना पशुसमाज से किया गया है। प्राचीन भारत में शिक्षा को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। नालंदा, तक्षशिला विक्रमशीला एवं वल्लभी जैसे विश्व प्रसिद्ध शैक्षिक संस्थान महान भारत भूमि पर क्रियान्वित था।

भारत में शिक्षा, भारत के सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित थी। भारत में शिक्षा को चरित्र निर्माण का एकमात्र साधन के रूप में महत्व प्राप्त था। नैतिकता विहीन शिक्षा की कल्पना भी असम्भव था। शिक्षा के इसी रूप का विचार संघ ने किया है। पं० जी और महात्मा गांधी ने शिक्षा के इसी रूप की कल्पना की। “महात्मा गांधी तो शिक्षा के सम्बन्ध में कहा है कि सच्ची शिक्षा वही होती है जो आध्यात्मिक, बौद्धिक और आर्थिक तीनों शक्तियों का एक साथ विकास करें।” “पण्डित दीनदयाल जी शिक्षा को व्यक्ति और समष्टि को जोड़ने वाला प्रथम सूत्र माना है।”

पण्डित जी बिना शिक्षा समाज की कल्पना को असम्भव मानते थे, “पण्डित जी कहते थे शिक्षा का संबंध जितना व्यक्ति से उससे अधिक समाज से है।

हम ऐसे मानव की कल्पना कर सकते हैं, जिसे किसी भी प्रकार की शिक्षा न मिली हो और जो अपनी सहज प्रवृत्तियों के सहारे ही जीवनयापन करता हो, किन्तु बिना शिक्षा के समाज संभव नहीं। शिक्षा से ही समाज का अस्तित्व है अतः शिक्षा का प्रश्न महत्वपूर्ण है। शास्त्रों के अनुसार यह ऋषि ऋण है जिसे चुकाना प्रत्येक का कर्तव्य है।”

सही मायने में एक व्यक्ति और पशु में जो अन्तर दिखाई देता है वही अन्तर शिक्षा है। बच्चे के शरीर के विकास के लिए जितनी आवश्यकता पोषक तत्वों की है वहीं महत्व मानसिक विकास के लिए शिक्षा का है। वैयक्तिक विकास से ही सम्बन्धित नहीं है बल्कि पण्डित जी का तो मानना था कि शिक्षा से व्यक्ति के साथ-साथ राष्ट्र के विकास एवं स्थायित्व में महत्वपूर्ण योगदान है। एक सबल और चरित्रवान राष्ट्र की कल्पना बिना शिक्षा के नहीं किया जा सकता है। शिक्षा के साथ-साथ पण्डित जी ने शैक्षिक शालाओं के निर्माण का भी खाका खींचा है। “शिक्षा के दोहरे ढाँचे जिसमें पब्लिक स्कूल व सरकारी अथवा निजी स्कूल की व्यवस्था होती है, के खिलाफ हैं।

कान्वेंट स्कूल राष्ट्रीय हित के लिए घातक है। वर्तमान परिवेश में तो पब्लिक स्कूल केवल अपने व्यापारिक उद्देश्य को पूरा कर रहे हैं और मैकालवीय दर्शन के महत्वपूर्ण केन्द्र बन गये हैं। जिनपर नियंत्रण आवश्यक है। पण्डित जी का मानना था कि “देश में बहुत सी शैक्षिक गतिविधियाँ मिशनरियों द्वारा चलाई गई हैं और अनेक औसरों पर उनकी कार्यों की प्रशंसा भी की जाती है।”

पण्डित जी के उपर्युक्त व्याख्याओं की सत्यता पर सन्देह नहीं किया जा सकता वर्तमान समय में भारतीय युवाओं का चारित्रिक पतन जिस तेजी से हो रहा है उसमें आज इन्हीं विद्यालयों का महत्वपूर्ण योगदान है। आज उच्च शिक्षण संस्थाओं में भी देश विरोधी गतिविधियाँ देखने को मिल रही हैं। ऐसी व्यवस्था में शीघ्र परिवर्तन अति आवश्यक है। “वे मानते हैं कि शिक्षा केवल शालेय उपक्रम मात्र नहीं है वरन् एक सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है। पण्डित जी शिक्षा, माध्यम, शिक्षक, शाला इन सभी में परिवर्तन आवश्यक मानते थे। इनकी मानसिकता राष्ट्र नाशक न होकर राष्ट्र धर्म को बढ़ाया देने वाला होना चाहिए। पण्डित जी के विचारानुकूल शिक्षा विचार को क्रियान्वित किया जाए तो भारत अपनी प्राचीन परम्पराओं, एवं नैतिक मूल्यों की रक्षा कर सकता है। और एक बेहतर कल के तरफ विश्व के लिए अग्रगामी होगा।

‘शिक्षक’ की भूमिका निभाते हैं, चूँकि संस्कार एक ऐसा शब्द है जो दोनों ओर से चलती रहती है अर्थात् हमारे वेद, वेदान्त, शास्त्र, मानव के अनुकरण, संवेदना और सूचनात्मक प्रवृत्तियों के माध्यम से समर्थकता की क्रियाएँ ही प्रभावकारी होती हैं।

संस्कार से तात्पर्य यह है कि जो हमारे पूर्व की पीढ़ी है उनका हम अनुकरण करते हुए चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष हो उसका हम अनुकरण करते हैं। माता-पिता, पूर्वजों के द्वारा जो हमें संस्कृति के रूप में प्राप्त होता है उसे हम ग्रहण करते हैं। अतः पिछली पीढ़ी को ग्रहण करना पड़ता है। संस्कार की प्राप्ति माता-पिता, परिवार, पड़ोस, गुरुजन, सहपाठी, समाज के लोगों से मिलता है। इसमें माना जाता है कि यह सभी लोग एक व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अध्यापन:-

‘अध्यापन’ शिक्षा का एक सर्वप्रमुख साधन के रूप में माना जाता है। मानव के ज्ञान का बहुत ही सीमित तथा आंशिक रूप से ‘भाषा’ के द्वारा ही अभिव्यक्ति की जा सकती है, जो कि एक लिपिबद्ध है। अध्यापन वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति तथा समूह अपने आस-पास के ज्ञान को दूसरों को चेतनात्मक रूप से प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। यह क्रियाएं घर, खेत, खलिहान, नगर, गांव, कारखाना, पाठशालाओं, कला, भवन, खेल का मैदान, पास-पड़ोस के द्वारा भी ज्ञान का सृजन होता रहता है। यह जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर सीखाने का प्रयास करता है।

अध्यापन के रूप में यह प्रक्रिया प्राचीन समय में कथा, कहानी, कीर्तन, भजन के माध्यम से तथा आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में यह क्रिया आधुनिक चलचित्रों, रेडियो, सिनेमा, समाचार-पत्र, पत्रिका, पुस्तक आदि के द्वारा भी ज्ञान की प्राप्ति होती है।

स्वाध्याय पं. दीनदयाल जी ने शिक्षा के संदर्भ में व्यक्ति को 'स्वाध्यायी' होना चाहिए। 'स्वाध्याय' से तात्पर्य है मनुष्य का स्वयं अध्यापन से है। हमें स्वाध्यायी बनना चाहिए। इसके रिक्त होने पर ज्ञान प्राप्त कर पाना कठिन है। पठन-पाठन, चिन्तन-मनन से हृदय से मनुष्य ज्ञान को आत्मगम्य करता है। स्वाध्याय से व्यक्ति मन, बुद्धि एवं आत्मा में ज्ञान स्थिर एवं लम्बे समय तक टिकता है। इस तरह से 'स्वाध्याय' से मनुष्य अपने लक्ष्योन्मुख के रूप में स्थापित करता है।

निष्कर्ष:-

इस प्रकार से स्पष्ट है कि शिक्षा का एक प्रबल माध्यम स्वभाषा होनी चाहिए। भाषा एक अभिव्यक्ति है। भाषा के आधार पर ही समाज के जीवन की अनुभूतियों तथा राष्ट्र का इतिहास छुपा रहता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपने एक वाक्य में कहते हैं कि "शिक्षा के द्वारा सामाजिक उद्देश्य को पूरा करने का प्रयास किया गया तो व्यक्ति सहज ही चतुर्विध पुरुषार्थों के लिए प्रयत्न की योग्यता और सामर्थ्य प्राप्त कर लेगा।"

इस तरह से उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि शिक्षा, समाज और व्यक्ति के अन्तःसम्बन्धों को समुचित रूप बोध कराने का मार्ग दर्शन करती है। शिक्षा के द्वारा ही एक व्यक्ति समाज में अपने सर्वांगीण विकास में अति सहजता से लक्ष्यों को प्राप्त करता है तथा समाज, राष्ट्र, परिवार आदि का एक विकसित समाज का निर्माण करता है।

सन्दर्भ सूची:-

1. कमल किशोर गोयनका, पंडित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति दर्शन, 03. दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली 1992
2. दीनदयाल उपाध्याय, पोलिटिकल डायरी, 01. सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, झण्डेवाला नई दिल्ली-110055-2014.
3. डॉ. ए.अवस्थी, डॉ. आर. के. अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक स्वयं राजनीतिक चिन्तन, 395, रिसर्च पब्लिकेशन्स, 89, टिरीपोलिया बाजार, जयपुर 02.
4. डॉ. महेशचन्द्र शर्मा, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, 2, 3, 5, 6 प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली.
5. एम.आई. राजस्वी, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, 8, 9, 10, मनोज पब्लिकेशन्स 761, मेनरोड बुराडी, दिल्ली 110084, 2009
6. डॉ. ए. अवस्थी, डॉ. आर. के. अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंत, 396, रिसर्च पब्लिकेशन्स 89, टूटोपोलिया बाजार, जयपुर-2
7. प्रभात झा, आजातशत्रु दीनदयाल जी, 7, 8, सचिव डॉ. मुखर्जी स्मृति न्याय पोपी-66, सुबहाण्यम भारती मार्ग, नई दिल्ली 110003, 11 फरवरी 2008
8. एमआई. राजस्वी, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, 24, 27, 29, 30, मनोज पब्लिकेशन्स 761, मेनरोड कुराडी, दिल्ली 110084, 2009.
9. महेशचन्द्र शर्मा, दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार, 99, 100, प्रभात पेपर बैक्स 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली 110002, 2005.
10. कमल किशोर गोयनका, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, 39 से 37 तक, दीनदयाल शोध संस्थान, रानी झांसी मार्ग, नई दिल्ली 55
11. डॉ. महेशचन्द्र शर्मा, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, 02, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार 2004
12. डॉ. महेशचन्द्र शर्मा, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, 06 प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार 2004.
13. पंडित दीनदयाल उपाध्याय की वाडी से लिया है। (लखनऊ प्रकाशन)
14. कमलकिशोर गोयनका, पं. दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति दर्शन, 06, दीनदयाल शोध संस्थान, रानी झांसी मार्ग, नई दिल्ली, 55.
15. डॉ. महेशचन्द्र शर्मा, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, 15, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार 2004

वैदिकयुग में वर्ण व्यवस्था का आधार

डॉ० दिवाकर त्रिपाठी

सहायक आचार्य- इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग डॉ राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या (उ.प्र.)

सारांश

वैदिक साहित्य प्राचीन भारतीय समाज के सामाजिक जीवन को जानने का महत्वपूर्ण आधार है। भारतीय समाज की विभिन्न व्यवस्थाएं चाहे सामाजिक हो या आर्थिक, राजनीति हो या सांस्कृतिक हो, इन सभी का आधार प्राचीन वैदिक कालीन समाज रहा है। सामाजिक संरचना का मूल आधार स्तंभ वर्ण व्यवस्था है। कालान्तर में यही वर्ण-व्यवस्था जाति-व्यवस्था में परिवर्तित हो गई। भारतीय सामाजिक जीवन में जाति-व्यवस्था जिसे वर्ण व्यवस्था कहा जाता था, अत्यन्त प्रारम्भिक काल से एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में विद्यमान रही है।

मूल शब्द: वैदिकयुग, वर्ण व्यवस्था, वैदिक साहित्य, प्राचीन भारतीय समाज, सामाजिक जीवन, ऋग्वेद, दास

प्रस्तावना

ऋग्वेद काल में समाज को पुरुष का रूपक दिया गया है। उस समाजरूपी पुरुष के चार अंग हैं— मुख ब्राह्मण, मस्तक, भुजाएँ क्षत्रिय, जंघाएँ वैश्य एवं पाद को शूद्र के रूप में कल्पित किया गया।¹ सर्वप्रथम ऋग्वेद का अध्ययन से उस समय के सामाजिक वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति पर महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। ऋग्वेद में 'आर्य' और 'अनार्य' शब्द जन समुदाय के लिए उपयोग किये गये हैं। पश्चिमोत्तर भारत में (सप्त सिंधु प्रदेश) में अधिकार स्थापित कर बसने के लिए उन्हें भारत के मूल निवासियों से संघर्ष करना पड़ा जिन्हें 'दस्यु'² 'दास'³ आदि नामों से सम्बोधित किया गया।

दस्यु या दास के सम्बोधन का कारण ऐसा विदित होता है कि आर्यों ने जब यहाँ के मूल निवासियों को पराजित कर दिया, तब बहुत से मूल निवासी तो इस क्षेत्र से भाग कर भारत के दूसरे क्षेत्रों में बस गये और कुछ यहीं रह गये जिन्हें दस्यु या 'दास' के रूप में मान लिया गया। ये लोग यज्ञादि कर्म तथा आर्यों के देवताओं में विश्वास नहीं रखते थे। ऋग्वेद में इन्हें अकर्म, अमन्तु, अन्यव्रत, अमुख आदि विशेषणों से सम्बोधित किया गया है तथा ऋग्वेद⁴ में इन्द्र से इन दासों के नाश के लिए प्रार्थना की गई है। कीथ एवं मैकडोनल ने वैदिक इन्डैक्स में लिखा है कि इन्द्र ने दस्युहत्या की। ऋग्वेद में दस्यु को अमानुष, अन्यव्रत अयज्वान, अदेवयु आदि नामों से संबोधित किया है।⁵ तथा इन्द्र से उसके नाश की प्रार्थना की गई है।

ऋग्वेद का एक मंत्र उल्लेखनीय है, जिसमें, क्रमशः ब्रह्म, क्षत और विश्व की श्री वृद्धि के लिए तथा उन्हें बुद्धि, बाहुबल एवं पशुधन प्रदान करने के लिए अश्विनो से प्रार्थना की गई है।⁶ यह अधिक संभव लगता है कि प्रारम्भ में 'ब्रह्म' तथा 'क्षत्र' केवल दो ही वर्ग थे और आर्यों में जनसामान्य को विश्व कहा जाता था। कालान्तर में विश्व के अन्तर्गत कृषि कर्म, पशुपालन, वाणिज्य कर्म में लगे हुए लोगों को वैश्य तथा पराभूत अनार्यों को, आर्थिक विपन्नता तथा अन्य कारणों से सेवा कर्म आदि में लगे लोगों को शूद्र संज्ञा प्राप्त हुई।

वस्तुतः पुरुष सूक्त के मंत्र में समाज को एक कायिक इकाई के रूप में परिकल्पित किया है। प्रकृति के समान समाज को भी दैवी पुरुष से उद्भूत माना गया है। समाज के विविध वर्ग उसके विविध अंगों के समरूप हैं। इसमें यह उपलक्षित है कि समाज व्यक्ति के समान है तथा इसके निर्मायक वर्ग अलग-अलग कार्य व्यापारों में प्रवृत्त विविध अंगों के समान हैं।

यह सहज ही प्लेटो की उस अवधारणा की याद दिलाता है, जिसमें समाज को व्यक्ति के रूप में परिकल्पित किया गया है जिसका ईकाईपन परस्पर सम्बद्ध कार्यात्मक वैविधियों में अन्तर्निहित है। मुख के समान ब्राह्मण प्रार्थना एवं शिक्षण से सम्बद्ध है तथा उसकी शक्ति शब्द अथवा 'ब्रह्मन्' में निहित है। व्यक्ति की भुजाओं के समान क्षत्रिय राज्य एवं जनसामान्य की रक्षा करता है जबकि जांघों अथवा शरीर के निचले भाग के अनुरूप वैश्य सम्पूर्ण राष्ट्र को अपनी अर्थशक्ति से वहन करता है। समाज की आर्थिक समस्याओं का समाधान 'विश्व' पर था। समाज की सेवा में प्रवृत्त लोगों को शूद्र अभिधान प्राप्त हुआ है।⁷

ऋग्वेद काल में वर्ण-व्यवस्था वंशानुगत नहीं थी, अपितु वृत्तिपरक थी, जिन्हें अपनी इच्छा और क्षमता के अनुसार कोई भी आर्य अपना सकता था। यदि इस काल में इन वर्गों ने परवर्ती काल की जातियों का स्वरूप ग्रहण कर लिया होता तो ऋग्वेद में इनका उल्लेख केवल एक बार नहीं हुआ होता। ऋग्वेद में 'वर्ण' शब्द का प्रयोग संपूर्ण आर्य जनसमुदाय के लिए हुआ है। जिसके विरोध में 'दास वर्ण' अथवा दस्युवर्ण की चर्चा की गई है। आर्य समुदाय के विभिन्न वर्गों के लिए शब्दों के प्रयोग में दृश्यमान लचीलापन भी उनके निरुद्ध न होने की ओर संकेत करता है।⁸ राजन्य 'वैश्य' तथा शूद्र शब्द केवल पुरुष

सूक्त में उल्लिखित हुये हैं। ऋग्वेद में क्षत्रिय शब्द का प्रयोग जाति के अर्थ में न होकर केवल शक्ति सम्पन्न व्यक्ति के अर्थ में हुआ है।⁹ ब्राह्मण, शब्द का प्रयोग भी सामान्यतः प्रतिभावान् अथवा गुणवान् के अर्थ में हुआ है, केवल कुछ दृष्टान्तों में ही यह व्यवसाय कर्म से 'पुरोहित' इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसे व्यक्ति के लिए केवल 'ब्रह्म' अथवा 'ब्राह्मण' शब्दों का ही प्रयोग नहीं हुआ है। 'कारू' 'विप्र' 'कवि' वेधस् आदि अन्य शब्द हैं जिनका प्रयोग भी इसी अर्थ में किया गया है। कई दृष्टान्तों में 'विश' शब्द का प्रयोग कृषक अथवा व्यापारी वर्ग के अर्थ में न होकर सम्पूर्ण आर्य जनसमुदाय के लिए किया गया है।⁸ ऋग्वेद के प्रथम मंडल के पन्द्रहवें सूक्त में स्तुति करने वाला ऋषि स्वयं को वरुण का 'विश' अर्थात् सामान्य जन कहलाता है।

ऋग्वैदिककाल में विविध व्यवसाय वंशानुगत नहीं हुए थे। एक ही परिवार में भिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न व्यवसायों को अपनाये जाने के दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। एक मंत्र में एक ऋषि कहते हैं। 'मैं मंत्र का रचयिता हूँ, मेरे पिता चिकित्सक हैं, मेरी माता चक्की पीसने वाली है।'⁹ एक ऋषि इन्द्र से प्रार्थना करता है वह उसे एक धनवान् व्यक्ति बनाये।¹⁰ एक अन्य मंत्र में भी ब्राह्मण, द्वारा चिकित्सा कर्म अपनाने का उल्लेख है।¹¹ ब्राह्मण, ऋषि भृगु, के वंशजों में से कुछ का रथ बनाने में दक्ष शिल्पियों के रूप में उल्लेख किया गया है।¹² इसी प्रकार ऋभुगण दक्ष शिल्पी थे किन्तु उन्हें दैवी सम्मान प्रदान किया गया है।¹³ वंशानुगतिक जाति व्यवस्था में इस प्रकार के दृष्टान्तों की कल्पना नहीं की जा सकती है। समाज के विभिन्न वर्गों में परस्पर ऊँच-नीच की भावना का सर्वथा अभाव था और न ही पारस्परिक खान-पान पर कोई बंधन था। एक वर्ग का व्यक्ति दूसरे वर्गों में विवाह कर सकता था।¹⁴ ऋग्वैदिक काल में अंगिरस कुल प्रसिद्ध ऋषि-कुल था, असंग नामक राजा का विवाह इस कुल की एक कन्या के साथ हुआ था।¹⁵ कक्षीवान् नामक ऋषि ने राजा रचनय की कन्याओं से विवाह किया था।¹⁶ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चारों के लिए वर्ण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण, में प्राप्त होता है। उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था पर्याप्त विकसित एवं जटिल हो चली थी तथा इसमें परवर्ती जाति व्यवस्था के विभिन्न लक्षणों का संनिवेश हो गया था। शतपथ ब्राह्मण, में विभिन्न वर्णों के लोगों को बुलाने के लिए अलग-अलग संबोधनों की व्यवस्था की गई है।¹⁷ यही नहीं मृत्युपरान्त उनके लिए अलग-अलग आकार की चिन्ताओं की व्यवस्था की गई है।¹⁸ इसी ब्राह्मण, में यह कहा गया है कि गायत्री मंत्र के पाठ का प्रारम्भ ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य अलग-अलग प्रकार से करें।¹⁹ यज्ञ के अवसर पर अलग-अलग वृक्षों की लकड़ी का प्रयोग भी बताया गया है।²⁰ शूद्रों को इन धार्मिक कृत्यों से बहिष्कृत ही रखा गया है। अपनी दक्षिण पूर्वाभिमुख विस्तारण की प्रक्रिया में आर्यजन कई आर्येतर जन जातियों के संपर्क में आये। यहाँ के मूल निवासियों के साथ संबंध ने उनकी सामाजिक व्यवस्था को नया आयाम दिया। उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों को स्पष्टरूपेण वैश्यों से श्रेष्ठ माना गया है।

वाजसनेयी संहिता में ब्राह्मणों को राजा से श्रेष्ठ माना गया है।²¹ शतपथ ब्राह्मण, के अनुसार राजा का निर्भरशील होने पर भी ब्राह्मण, राजा से श्रेष्ठ है।²² राजा की शक्ति का आधार ब्राह्मण, है।²³ किन्तु दूसरी ओर काठक संहिता में ब्राह्मण, के ऊपर क्षत्रिय की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है।²⁴ और ऐतरेय ब्राह्मण, में भी एक जगह ब्राह्मण को क्षत्रिय से नीचा कहा गया है।²⁵

फिर भी सामाजिक श्रेष्ठता के लिए दोनों वर्णों में संघर्ष का अस्तित्व मानना ठीक नहीं है। ब्राह्मण, और क्षत्रिय की तुलना में वैश्य वर्ण की हीनता की चर्चा कई ग्रंथों में मिलती है।²⁶ मुख्य रूप से यह वर्ण कृषि कार्य एवं पशुपालन में प्रवृत्त था। साथ ही साथ वाणिज्य कर्म एवं विविध उद्योग शिल्पों का भी अनुसरण करते थे। वैश्य वर्ण को ऐसे कई सामाजिक व धार्मिक विशेषाधिकार प्राप्त थे जो शूद्र वर्ण को अनुपलब्ध थे। वैश्य वेदाध्ययन कर सकता था, वह न केवल यज्ञों में भाग लेता था अपितु उसे यज्ञ करने का अधिकार था।²⁷ ब्राह्मण, और क्षत्रिय के समान उपनयनकर्म भी वैश्यों का होता था जो इनके वैदिक शिक्षा का अधिकारी होने का परिचायक है। वैसे यह बात और है कि वैश्य वर्ण अपना श्रम और समय वैदिक शिक्षा में प्रवीण होने की चेष्टा में न लगाकर अपनी व्यावसायिक शिक्षा तथा उसके बल पर धनोपार्जन में लगाता था। शूद्र वर्ण में मूलतः आर्येतर तत्व का प्राधान्य था किन्तु उत्तर वैदिक काल के अंत में सूत्रकाल तक आते-आते आर्य समाज में हीन व्यवसाय में लगे लोगों को भी इस वर्ण के अन्तर्गत रख दिया गया था। आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से पिछड़े आर्यजनों को शूद्र वर्ण के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया। शूद्रों को हीन स्थान प्राप्त था। वह दूसरों का सेवक था जिसे उसका स्वामी इच्छानुसार निष्कासित कर सकता था।²⁸ शूद्रों के साथ वैवाहिक संबंध ठीक नहीं माना जाता था किन्तु सामाजिक निषेध होने पर भी उच्च वर्ण के लोग शूद्र स्त्रियों से विवाह कर लिया करते थे।²⁹ शूद्रों को कई सामाजिक तथा धार्मिक अधिकारों से वंचित रखा गया था।

शतपथ ब्राह्मण, के अनुसार यज्ञ की अग्नि शूद्र के लिए अस्पृश्य है।³⁰ यद्यपि शूद्रों को धार्मिक अधिकार नहीं दिये गये थे किन्तु उन्हें अस्पृश्य नहीं माना जाता था जैसा कि आपस्तम्बधर्मसूत्र से ज्ञात होता है कि यज्ञ के अवसर पर आर्य लोग भोजन भी बनवाते थे।³¹ शूद्रों का मुख्य कार्य दूसरों की सेवा करना माना गया।³² शूद्र श्रमजीवी थे।

'अस्तु' वैदिक कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था सांस्कृतिक विकास का कारण बनी, क्योंकि सभी वर्णों के लोग पूरी निष्ठा, लगन और समर्पण के साथ अपना-अपना कार्य करते थे। उनमें किसी प्रकार का वैमनस्य या भेदभाव नहीं था। सभी वर्ण वाले परस्पर मिलकर वैदिक संस्कृति के विकास में गति दी और सामाजिक समरसता के साथ मानव कल्याण के विकास को बल दिया, जिससे एक सुसंगठित कर्म प्रधान समाज का निर्माण हुआ।

संदर्भ-ग्रंथः

1. ऋग्वेद-10.90.12

2. ऋग्वेद-10.49.3,10.212.8
3. ऋग्वेद-05.34.6,10.86.19
4. ऋग्वेद-10.22.8
5. ऋग्वेद-8.70.11
6. ऋग्वेद-8.35.16-18
7. प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, जी.एस.पी. मिश्र, पृ.-58
8. ऋग्वेद-1.251
9. ऋग्वेद-9.112.3
10. ऋग्वेद-3.43.5
11. ऋग्वेद-10.97.22
12. ऋग्वेद-10.39.14
13. ऋग्वेद-1.161.1-3
14. दि ओरिजन एण्ड ग्रील आव कास्ट इन इन्डिया पृ.-64
15. ऋग्वेद-8.134
16. ऋग्वेद-1.126
17. शतपथ ब्राह्मण-1.2.4.12
18. शतपथ ब्राह्मण-13.8.3.11
19. शतपथ ब्राह्मण-2.1.3.4
20. शतपथ ब्राह्मण-5.3.2.11
21. वाजसनेयी संहिता-1.21
22. शतपथ ब्राह्मण-1.2.3.3
23. शतपथ ब्राह्मण-4.1.4.6,12.7.3.12
24. काठक संहिता -28.5
25. ऐतरेय ब्राह्मण-7.29.4
26. तैत्तिरीय संहिता -2.5.10.1, शतपथ ब्राह्मण-6.4.4.13
27. ऐतरेय ब्राह्मण-1.9, तैत्तिरीय ब्राह्मण-1.1.4.8.1
28. ऐतरेय ब्राह्मण-7.29
29. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृष्ठ-126
30. शतपथ ब्राह्मण-6.4.4.9
31. आपस्तम्ब धर्मसूत्र - (11.3,1-4)
32. जैमिनीय ब्राह्मण-1.686.9

कमार जनजाति की सामाजिक आर्थिक स्थिति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (गरियाबंद जिले के मैनपुर विकासखंड के विशेष संदर्भ में)

चम्पा साहु एवं तिलोचनी साहु

एम. ए. चतुर्थ सेमेस्टर, समाजशास्त्र एवं समाज कार्य अध्ययन शाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

सारांश:-

प्रस्तुत शोध अध्ययन छत्तीसगढ़ राज्य के विशेष पिछड़ी जनजाति कमार की सामाजिक आर्थिक स्थिति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन पर आधारित है। यह अध्ययन गरियाबंद जिले के मैनपुर विकासखंड के कुल्हाड़ीघाट गांव के केस स्टडी पर आधारित है। अध्ययन हेतु दैव प्रतिदर्श के माध्यम से 20 परिवारों का चयन किया गया है। अध्ययन से प्राप्त हुआ कि कमार जनजाति आधुनिकता से कोसों दूर परम्परागत रूप से अपना जीवन यापन कर रहे हैं तथा सरकार की प्रयास से यहां मूलभूत सुविधाओं के साथ शिक्षा हेतु बालिका एवं बालक आश्रम संचालित है। लेकिन फिर कमार जनजाति की सामाजिक आर्थिक स्थिति काफी पिछड़ी हुई है आज भी कमार जनजाति में विशेष पिछड़ी जनजाति की लक्षण प्रमुख रूप से स्पष्ट दिखाई देती है।

शब्द कुंजी: कमार जनजाति एवं सामाजिक आर्थिक स्थिति

प्रस्तावना: -भारत एक जनजातीय निवासरत देश है, जहाँ लगभग 700 से अधिक जनजातीय समुदाय निवास करते हैं, जिनमें से 75 जनजातीय समुदायों को भारत सरकार ने विशेष पिछड़ी जनजाति के रूप में चिन्हांकित किया है। 1 नवंबर 2000 को मध्य प्रदेश से अलग होकर छत्तीसगढ़ राज्य भारत के 26वें राज्य के रूप में अस्तित्व में आया। छत्तीसगढ़ राज्य में कुल 42 जनजातीय समुदाय हैं, जिनमें से 5 जनजातीय समुदाय खैराबाद, बिरहोर, पहाड़ी कोरवा, अबूझमाडिया और कमार-को विशेष लक्षण आधारित मानदंडों के अनुसार स्थिर या कम जनसंख्या, न्यून साक्षरता दर, कृषि की आदिम तकनीक एवं आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर विशेष पिछड़ी जनजाति समूह का दर्जा प्रदान किया गया है। कमार जनजाति छत्तीसगढ़ राज्य के विभिन्न जिलों खैरधमतरी, गरियाबंद, महासमुंद और कांकरखर्क के विभिन्न विकासखंडों जैसे नगरी, मगरलोड, धमतरी, मैनपुर, गरियाबंद, फिगेश्वर, छुरा महासमुंद, बागबाहरा, पिथौरा, नरहरपुर आदि में निवास करती है। कमार जनजाति एक विशेष पिछड़ी जनजाति है, जो दो उपसमुदायों में विभाजित है: एक समुदाय घने जंगलों एवं पहाड़ों के भीतर निवास करता है जिसे पहारिया या पहारपटिया कहा जाता है, और दूसरा उपसमुदाय मैदानी क्षेत्रों में निवास करता है जिसे बूंदरजीवा कहा जाता है। जनगणना 2011 के अनुसार, छत्तीसगढ़ राज्य में कमार जनजाति की कुल जनसंख्या 26,530 है, जिसमें पुरुषों की संख्या 13,070 और स्त्रियों की संख्या 13,460 है। कमार जनजाति की साक्षरता दर 48.79 प्रतिशत है, जिसमें पुरुषों की साक्षरता दर 47.70 प्रतिशत और स्त्रियों की साक्षरता दर 30.15 प्रतिशत है। र सेल एवं हीरा लाल (1916) के अनुसार, कमार जनजाति द्रविड़ जनजाति से संबंधित है और यह गोंड जनजाति की उपशाखा मानी जाती है।

कमार जनजाति की उत्पत्ति :-

समाज कार्य के छात्र-छात्रों ने किया कुल्हाड़ीघाट का शैक्षणिक भ्रमण

रायपुर (प.ख.)। समाजशास्त्र व समाजकार्य अध्ययन शाला के छात्रों को रायपुर से 150 किमी की दूरी पर स्थित गरियाबंद जिले के आदर्श ग्राम कुल्हाड़ीघाट ले जाया गया। इस क्षेत्र में निवास कर रहे कमार जनजातीय लोगों की सामाजिक, आर्थिक व शैक्षणिक स्थिति का अध्ययन कराया। इस ग्राम के जनजातीय जीवन को सुरक्षित व विकसित बनाने हेतु गोद लिया गया। 1985 रिसर्च सेंटर राजीव गांधी के समय से तैयार किया गया था। राजीव गांधी इस गांव में भ्रमण किये। ग्राम के भ्रमण व वहाँ लोगों के साथ संवाद करना, स्कूल में शिक्षकों व पलकों के साथ विभिन्न विषयों में चर्चा किया गया। ग्राम के प्राचीन इतिहास तथा उनकी संस्कृति को करीब से देखने का प्रयास किया गया। जनजातियों का व्यवसाय चांस



से वस्तु बना कर अपना जीवन यापन करना है। इस गांव में मूलभूत सुविधाओं के साथ साथ बालिका और बालकों का भी आश्रम है। इस शैक्षणिक

भ्रमण में पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर के समाजशास्त्र एवं समाज कार्य अध्ययनशाला विभागाध्यक्ष डॉ. एल.एस. गजपाल, अतिथि

शिक्षक सतीश साहु, वरिष्ठ छात्र प्रदीप सेन, प्रतीक मुसा व सभी समाजशास्त्र व समाज कार्य छात्र छात्राएं आदि उपस्थित थे।

कमार जनजातियों में उनकी उत्पत्ति को लेकर प्रचलित किंवदंती एवं मान्यता के अनुसार, कमार जनजाति अपनी उत्पत्ति देवडोंगर से मानते हैं। कमार जनजातियों का सबसे बड़ा देव डोंगर आज भी वामन डोंगरी में स्थापित है, जिसे कमार लोग वामन देव के नाम से जानते हैं। आमतौर पर कमार लोग स्वयं को 'पहाड़िया' भी कहते हैं, क्योंकि उनके पूर्वजों ने घने जंगलों के पहाड़ों में अपना जीवन यापन किया है।

“कमार जनजाति की एक अन्य किंवदंती के अनुसार, जब समस्त मानवता को भगवान महादेव द्वारा दान दिए जा रहे थे, तब सबसे अन्त में एक व्यक्ति को भगवान महादेव ने आजीविका के लिए तीर और कमान प्रदान किया। कालांतर में उसी तीर-कमान से आजीविका अर्जित करने वाले व्यक्ति के वंशज 'कमार' कहलाने लगे।”

कमार जनजाति का सांस्कृतिक परिदृश्य:-

कमार जनजाति भूत-प्रेत, जादू-टोना में अत्यधिक विश्वास करते हैं। कमार समुदाय में तंत्र मंत्र एवं जड़ी बूटी के जानकर व्यक्ति को बैगा, गुनिया झरहा एवं वैद्य के नाम से जाना जाता है। कमार जनजाति का मुख्य व्यवसाय बांस बर्तन निर्माण, वनोपज संग्रहण, आखेट एवं दहिया कृषि प्रमुख है। कमार जनजाति में परिवार का स्वरूप केंद्रीय है जो पितृवंशीय है। कमार जनजाति में मुख्य रूप से नेताम, मरकाम, मराई, जगत, कुंजाम, धनुर्धारी, फुलझरिया, ठाकुरिया, पहारिया, मंडावी, नाग आदि प्रमुख हैं। कमार जनजाति अपने प्रमुख देवी- देवता के रूप में बूढ़ीमाई, धरती माता, बड़ी माता, मंझली माता, छोटी माता, कचना धुरवा, बूढ़ा देव, ठाकुर देव आदि को पूजा अर्चना करते हैं। कमार जनजाति द्वारा मनाए जाने वाले प्रमुख तीज त्योहार में हरेली, पोरा, नवाखाई, दशहरा, दीपावली, छेरछेरा आदि प्रमुख हैं।



प्रस्तुत शोध अध्ययन गरियाबंद जिला के मैनपुर विकासखंड के कुल्हाड़ीघाट गांव पर आधारित है। जून 2019 में पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर के अध्ययन इकाई समाजशास्त्र एवं समाज कार्य अध्ययन शाला के समाज कार्य के छात्र छात्राओं को शैक्षणिक भ्रमण हेतु आदर्श ग्राम कुल्हाड़ी घाट ले जाया गया था जिसमें हम लोगों को भी जाने का सौभाग्य मिला था। इस क्षेत्र में निवास कर रहे कमार जनजाति के लोगों की सामाजिक सांस्कृतिक व शैक्षणिक स्थिति का अध्ययन कराया गया था इस ग्राम के जनजातीय जीवन को सुरक्षित व विकसित बनाने हेतु 1985 में प्रधानमंत्री राजीव गांधी जी ने इस गांव का भ्रमण कर गोद लिए थे। हम लोगों को शैक्षणिक भ्रमण के दौरान कमार जनजाति के सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक के साथ साथ ग्राम के प्राचीन इतिहास तथा उनकी संस्कृति को करीब से जानने व समझने का मौका मिला। शैक्षणिक भ्रमण हेतु हम लोग समाजशास्त्र और समाजकार्य अध्ययन शाला के विभागाध्यक्ष और सह प्राध्यापक डॉ. एल. एस. गजपाल सर को धन्यवाद देते हैं की उनके सानिध्य और मार्गदर्शन में हमें शैक्षणिक भ्रमण हेतु कुल्हाड़ीघाट जाने का अवसर मिला।



अध्ययन का समाजशास्त्रीय महत्व:- छत्तीसगढ़ राज्य में विशेष पिछड़ी जनजाति समूहों की कुल संख्या पाँच है, जिनमें बिरहोर, पहाड़ी कोरवा, अबूझमाडिया, बैगा और कमार प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त, राज्य सरकार ने दो अन्य जनजाति समूहों को भी विशेष पिछड़ी जनजाति की श्रेणी में शामिल किया है। इन समूहों के विकास के लिए राज्य एवं केंद्र सरकार निरंतर प्रयासरत है। यह अध्ययन कमार जनजाति की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से आधारित है। कमार जनजाति, प्रारंभ से ही, दुर्गम एवं अभावग्रस्त क्षेत्रों में निवास करने के कारण अत्यंत पिछड़ी रही है, जिसके सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु राज्य एवं केंद्र सरकार चौथी पंचवर्षीय योजना से प्रयास कर रही है। ऐसी स्थिति में कमार जनजाति पर अध्ययन करना इस शोध के महत्व को स्पष्ट करता है। अध्ययन से यह ज्ञात होगा कि कमार परिवार के सदस्यों की वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति किस स्तर की है, साथ ही उनके सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए आवश्यक जानकारीयों भी प्राप्त होंगी। इसके अतिरिक्त, सुधार एवं विकास में कौन-कौन से कारक बाधक हो सकते हैं, यह भी ज्ञात किया जा सकेगा।

शोध अध्ययनों की समीक्षा :-

“शर्मा (1993) ने कमार जनजाति का सामाजिक मानवशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने कमार जनजाति की संपूर्ण जीवन पद्धति का गहन अध्ययन कर उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, सामाजिक संरचना आदि को स्पष्ट किया है।

विश्वकर्मा (2000) ने कमार जनजाति द्वारा उपभोग किए जाने वाले भोज्य पदार्थों और उनमें पोषण की स्थिति का अध्ययन कर यह स्पष्ट किया है कि कमार जनजाति की स्थिति अत्यंत गंभीर है। इनमें व्याप्त कुपोषण का प्रतिकूल प्रभाव इनके स्वास्थ्य और शिक्षा पर पड़ता है।

शर्मा एवं प्रधान (2010) ने महासमुंद जिले के कमारों की आर्थिक स्थिति एवं विकास प्राधिकरण के कमारों के साथ तुलनात्मक मानवशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है, जिसमें उन्होंने कमार जनजाति की आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति का विस्तृत विवरण प्रदान किया है।

प्रेमी सोनिया एवं नागवंशी (2013) ने कमार जनजाति का अध्ययन करते हुए बताया है कि आज भी कमार जनजाति पारंपरिक तरीकों से कृषि कार्य करती है और खाद्य संकलन तथा शिकार जैसी गतिविधियों में संलग्न रहती है, और कमार जनजाति का सामाजिक-आर्थिक जीवन परस्पर सहयोग पर आधारित है।

कुजूर निस्तर (2014) ने आदिम जनजाति कमार के विकास में शासकीय योजनाओं की भूमिका का अध्ययन गरियाबंद जिला के छुरा विकासखंड के विशेष संदर्भ में किया है। जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया है कि शासकीय योजनाओं का लाभ कमार जनजाति के लोगों को नहीं मिल पा रहा है केवल प्रधानमंत्री एवं मुख्यमंत्री खाद्यान्न योजना से राशन में चावल, नमक और चना प्राप्त हो रहा है। उनके सामाजिक आर्थिक सुधार हेतु पशुपालन योजना के अंतर्गत 810 बकरी देने और हस्त कला उत्पादों की उचित मूल्य में बिक्री हेतु बाजार की व्यवस्था करने की बात कही है।

अध्ययन पद्धति:

प्रस्तुत अध्ययन कमार जनजाति की सामाजिक आर्थिक स्थिति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन पर आधारित है एवं प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययन पद्धति को तीन भागों में विभक्त किया गया है।

- (1) शोध पद्धति एवं उत्तरदाताओं का चयन :- प्रस्तुत अध्ययन वैयक्तिक अध्ययन है, जो गरियाबंद जिला के मैनपुर विकासखंड के बैगा बहुल गांव कुल्हाड़ीघाट पर आधारित है जो जिला मुख्यालय गरियाबंद से 55-60 किलो मीटर की दूरी पर स्थित है। अध्ययन हेतु कमार गांव और उत्तरदाताओं का चयन हेतु दैव निदर्शन प्रविधि का प्रयोग किया गया है। 20 परिवारों के मुख्या का चयन उत्तरदाताओं रूप में किया गया था।
- (2) तथ्यों का संकलन की प्रविधि एवं उपकरण :- तथ्यों के संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार डायरी का उपकरण के रूप में प्रयोग किया गया है, इसके साथ ही समूहवार्ता, अवलोकन पद्धति का भी प्रयोग हुआ है। द्वितीयक तथ्यों के संकलन हेतु विभिन्न शोध अध्ययन, पत्र खपत्रिका, शोध आलेख, शासन द्वारा प्रसारित सूचनाओं, इंटरनेट आदि का प्रयोग किया गया है।
- (3) शोध प्ररचना: प्रस्तुत अध्ययन कमार जनजाति की सामाजिक आर्थिक जनजाति का समाजशास्त्रीय अध्ययन शीर्षक पर आधारित है जिसमें कमार जनजाति की सामाजिक आर्थिक स्थिति को वास्तविक रूप में पक्षपात रहित समझने का प्रयास कर उसका विश्लेषण किया गया है अतः प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु वर्णनात्मक शोध प्ररचना का प्रयोग किया गया है जो पूर्णतः गुणात्मक अध्ययन पद्धति पर आधारित है।

कमार जनजाति की सामाजिक आर्थिक स्थिति:- कमार जनजाति घने जंगलों पहाड़ों और तराई यो में जल स्रोतों के समीप निवास करते हैं जो कमार जनजाति का वनों एवं प्रकृति से घनिष्ठ संबंध को स्पष्ट करता है। कमार जनजाति का आवास दूर दूर तक 30-40 परिवारों के रूप में फैले रहते हैं जहां तक जाने के लिए कच्ची रास्ते होते हैं इनके आवास क्षेत्र में पेयजल की सुविधा के रूप में कुआ नदी नाले हैंड पंप झिरिया आदि है। कमार जनजाति का आवास फैले हुए थोड़ी दूर दूर पर होते हैं जिसे कमार डीह, कमार पारा कमार डेरा या कमार डीह के नाम से जानते हैं। एक कमार डीह में आमतौर से 08 -10 घर दिखाई दिए कुल्हाड़ीघाट के कमार बस्तियों में परंपरागत घर के साथ साथ सरकारी योजनाओं से बने पक्के मकान भी है। कमार बस्तियों में परंपरागत घर लकड़ी एवं मिट्टी का बना हुआ है साथ ही घर के सामने आंगन भी बांस की कांचीओं से घिरा हुआ है। घर सामान्य रूप से 1-2 कमरों का है तथा सामने बरामदा होती है जो झोपड़ीनुमा दिखाई देती है। कमार बस्ती में बाड़ी का भी था जहां लोगों के अपनी आवश्यकतानुसार साग सब्जी लगाई थी इसके साथ ही अपने पालतू पशुओं सूअर, मुर्गी, बकरी, गाय, बैल आदि को रखने के घर के सामने या किनारे में कोठा रखे थे। कमार मकानों में किसी एक कोने में पूर्वज देव का स्थान था जिसे पितर कुरिया कहते हैं इसके साथ ही इनके आवास में पूर्वज देव एवं अन्य देवी देवताओं का स्थान होता है कमार जनजातियों के अर्थ व्यवस्था का प्रमुख आधार परंपरागत कृषि, वनोंपज संग्रहण, शिकार के साथ बांस का बर्तन बनाना है।



कमार जनजाति के आजीविका और अर्थ व्यवस्था का प्रमुख आधार इनका परंपरागत व्यवसाय बांस शिल्प कला है। सबसे अधिक जीविका पार्जन हेतु बांस शिल्प कला में कमार जनजाति निर्भर है सभी कमार परिवार की स्त्री- पुरुष बांस बर्तन निर्माण कला में पारंपरिक रूप से दक्ष है। बांस बर्तन के रूप में कमार लोग झुहा, छोटी - बड़ी टोकरी, सुपा, चटाई, झाड़ू, विवाह में उपयोगी मौर, पंखा, झापी इत्यादि बनाने का कार्य करते हैं। जिसे आस- पास के साप्ताहिक हाट बाजारों में विक्रय करती है तथा उनसे प्राप्त रूपयों से अपनी दैनिक उपभोग की वस्तुएं एवं साग - सब्जी खरीदते हैं ।

कमार जनजाति का आर्थिक जीवन मुख्यता वनों पर आधारित है कमार जनजाति वनोंपज संग्रहण के रूप में वनों से प्राप्त महुआ, तेंदूपत्ता, साल बीज, कोसम बीज, चार चिरौंजी,हरा बहेड़ा आंवला, पिहरी, शहद के साथ साथ जलाऊ लकड़ी का संकलन ईंधन हेतु करते हैं जिसका अर्थपार्जन हेतु उपभोग एवं विक्रय करते हैं ।

कमार जनजाति का आर्थिक जीवन का प्रमुख आधार कृषि भी है कमार जनजाति परंपरागत रूप से दहिया कृषि करते थे जिसके अंतर्गत धान, माडिया उड़द आदि फसल लगते थे। वर्तमान समय में कमार जनजाति आदिम तकनीक से स्थाई कृषि करते हुए अपने आदिम पद्धति में उन्नत बीज, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों आदि का उपयोग कर रहे हैं जिससे इनकी उत्पादन क्षमता में काफी वृद्धि हुई है ।

प्राचीन समय में कमार जनजाति की अर्थ व्यवस्था में आखेट का भी महत्वपूर्ण योगदान था। वर्तमान समय में वन नीति के चलते जंगली जानवरों का शिकार पूरी तरह से प्रतिबंधित है। लेकिन फिर भी कमार जनजाति मनोरंजन के दृष्टिकोण से आखेट या शिकार करते हैं। कमार जनजाति के लोगों द्वारा छोटे छोटे जीव जंतुओं जैसे तीतर, बटेर,खरगोश, जंगली सूअर आदि का शिकार करते थे जो इनके भोजन का प्रमुख स्रोत था जो वर्तमान समय में पूरी तरह से प्रतिबंधित है। वर्तमान समय में कमार जनजाति के लोग आस पास के नदी नालों में मत्स्याखेट करते हैं और कभी कभी अपने परम्परा को बनाए रखने के उद्देश्य से सामूहिक शिकार करते हैं जिसमें छोटे बच्चों को तीर धनुष चलाना सिखाते हैं।

कमार जनजाति के घर में भौतिक वस्तुओं में कूलर फ्रिज रेडियो टेलीविजन आदि का अभाव है। उनके परंपरागत बर्तनों के साथ जाता ढेकी, मूसल, सील लोढ़ा आदि देखने को मिला। इसी प्रकार आवागमन की सुविधाएं कमार बस्ती तक नहीं। आवागमन की सुविधा के रूप में कुछ घरों में साइकिल और मोटर साइकिल है।

संदर्भ सूची:-

- 1). Russel,R.V.and Hiralal,1916 Tribes and Caste of the Central Provinces of India vol.I to IV Macmillan and coloimited London.Reprint Cosmo.publi.delhi.
- 2). Elvin,verrier.1936 Leaves Form the Jungle:Life inA Gond Village Oxford University press
- 3). Dubey, S.C.1951 The Kamar Ethnographic and Folk Culture Society Lucknow (UP)
- 4). Dubey,S.C.1955 The Kamar the Universal publisher LTD Lucknow
- 5). शर्मा. वी.के.1993. कमार जनजाति का सामाजिक मानवशास्त्रीय अध्ययन अप्रकाशित शोध ग्रन्थ
- 6). वैष्णव टी. के.2009 छत्तीसगढ़ की अनुसूचित जनजाति महिलाएं (स्थिति, भूमिका एवं विकास) आदिम जाति अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान रायपुर
- 7). kujur,nister 2014 intenational journal of Reviews and Research in social science
- 8). <https://repository.Tribal.gov.in>